ऑनरेरी सम्पादक :—

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुलतान सिटी ।

पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी ।

जैन दर्शन के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनायें !

(१) जैनदर्शन का प्रचार और उस पर किये गये आक्षेपों के निराकरणार्थ ही इसका उदय हुआ है।

(२) इसका प्रकाशन अंगरेज़ी महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हुआ करेगा।

(३) इसका वार्षिक मूल्य ढाई रुपया है, किन्तु संघ के सभासदों, संस्थाओं और विद्यार्थियों से केवल दो रुपया लिया जायगा। [वी० पी० से पत्र मंगाने वालों को पांच आने की हानि अवश्य रहती है, इसलिये वार्षिक चन्दा कृपया मनीआर्डर से ही भेजिये।]

(४) जैनदर्शन में पहिले अङ्क से ही उपयोगी लेखमालायें आरम्भ हुई हैं। अतः उत्तम तो यही है कि पहिले ही अङ्क से इसका ग्राहक बना जाय, फिर भी जो महानुभाव जिस अङ्क से इस के ग्राहक बनेंगे उसी अङ्क से उनका वर्ष आरम्भ समझा जायगा।

(५) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकें "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद विद्यालय भदैनी घाट बनारस" को और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैन दर्शन C/o "चैतन्य" प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहिये।

(६) विज्ञापन के रेट बहुत कम रक्खे गये हैं, तथा स्थायी विज्ञापन दाताओं को विशेष सुविधायें रक्खी गई हैं। विशेष पत्रव्यवहार से मालूम कीजिये।

सर्व प्रकार के पत्रव्यवहार का पता :—

मैनेजर—"जैन दर्शन" C/o दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

बिलंब का कारण !

जैन दर्शन का आद्य दिवस आज से एक पक्ष पहले १ जुलाई को नियत हुआ था; तदनुसार पहली जुलाई को **जैन दर्शन** के प्रकाशित होने की सूचना प्रगट की गई थी, किन्तु सम्पादन विभाग में परिवर्त्तन होने के कारण वैसा न हो सका। इस पत्र का सम्पादन भार श्रीमान् माननीय पूज्य आचार्य गणेशप्रसाद जी न्यायाचार्य ने स्वीकार किया था, किन्तु स्वीकार कर लेने के पीछे आपने काशी में एक बड़ा दिगम्बर जैन विद्या मन्दिर स्थापित करने का आदर्श कार्य अपने हाथ में गृहण किया जिसके लिये आपको अपना समस्त समय उसी कार्य में लगाना पड़ता है। उसके सिवाय आप अन्यत्र अन्य किसी भी कार्य में योग नहीं दे सकते।

इस कारण आपने **जैनदर्शन** का सम्पादन भार स्वीकार नहीं किया और अपने स्थान पर अन्य किसी योग्य व्यक्ति को सम्पादक नियत करने की आज्ञा दी। आपने जब एक अनुपम महान कार्य अपने हाथ में ले रक्खा है तब आपको किसी दूसरे कार्य के लिये कष्ट देना उचित न समझ शास्त्रार्थ संघ की प्रबन्धकारिणी ने आपका त्यागपत्र सखेद स्वीकार करते हुए निम्नलिखित व्यवस्था पास की :—

"जैनदर्शन के सम्पादक श्रीमान् पं० **अजितकुमार जी शास्त्री** तथा सहायक सम्पादक श्रीमान् पं० **कैलाशचन्द्र जी शास्त्री** बनारस हों।"

हर्ष के साथ प्रगट किया जाता है कि प्रबन्धकारिणी के निश्चयानुसार दोनों विद्वान् महानुभावों ने अपनी आदर्श सेवाओं को **जैनदर्शन** के उन्नत बनाने के लिये समर्पण करना स्वीकार कर लिया है। तदनुसार–पुस्तक समालोचना का कार्य सहायक सम्पादक जी को दिया गया है, इस कारण समालोचना के लिये पुस्तकें **श्री स्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय भदैनीघाट बनारस** के पते पर श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्रजी न्यायतीर्थ के पास भेजनी चाहियें और कवितायें व लेख **'चूड़ी सराय मुलतान सिटी'** के पते से श्रीमान् पं० अजितकुमार जी शास्त्री के पास भेजने चाहियें।

प्रकाशक श्रीमान् बा० शान्तिचन्द्र जी को नियत किया है, इस कारण समाचार **"श्री चैतन्य मिन्टिङ्ग प्रेस बिजनौर"** के पते से श्रीमान् बाबू शान्तिचन्द्र जी जैन के पास भेजने चाहियें।

निवेदक—

राजेन्द्रकुमार जैन न्यायतीर्थ

महामन्त्री—श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला-छावनी।

वर्ष १ | बिजनौर—'वीर' निर्वाण संवत् २४५९
जुलाई, सन् १९३३ ई० | अङ्क १

स्वागतम् ! स्वागतम् !! स्वागतम् !!!

[ले०—पं० सुमेरचन्द्र जी विद्यार्थी–स्याद्वाद विद्यालय, काशी]

स्वागतम् हे **जैनदर्शन** पत्रिके ! तव स्वागतम्,
मनुजमानस मञ्जुमुद नित दायिनी तव स्वागतम् ।

जैनतत्व विचारगर्भित नीतिरीति सुमंडिते,
सद्बोध भानुप्रकाशिनी प्राचीदिशे तव स्वागतम् ।
सद्भाव भूषा भूषिते, नहि पक्षपात विगर्हिते,
विज्ञानवाद विवेचनात्मक पत्रिके तव स्वागतम् ॥

आक्षेपणी विक्षेपणी संवेदनी निर्वेदनी,
जिनसेन प्रत्यागतविचारोपस्कृते तव स्वागतम् ।
मद लोभ माया व्यस्त जो वैदुष्य दूषित कर रहे,
शुभ शेमुषी उनकी बनानी पत्रिके तव स्वागतम् ॥

निष्पक्षपात विचारधारा वाहिनी हे स्वर्धुनी,
शुभज्ञान ज्योतिप्रकाशिनी दुखनाशिनी तव स्वागतम् ।
जिनधर्म मर्म विवेचनी अति अघ प्रत्ययनाशिनी,
शुभ भ्रातृभाव विबोधनी मगशोधनी तव स्वागतम् ॥

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे, यद्वचो वज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः ।

"दर्शन" का प्रथम दर्शन !

जिस प्रकार प्रिन्टिंग प्रेस (छापखाने) का आदर्श आविष्कार चीन देश में हुआ, उसी प्रकार समाचारपत्र कला के उपयोगी आविष्कार का सौभाग्य भी चीन देश को ही प्राप्त है। आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पहले चीन में कुछ एक उत्साही युवक नगर के समाचारों को एकत्र करके उनको कविता का रूप देकर नगर के चौराहों पर खड़े होकर नगर निवासियों को सुनाया करते थे। जनता में समाचार पहुँचाने का इससे अच्छा सरल मार्ग उस समय तक और कोई नहीं निकला था।

उसके पीछे उन उत्साही युवकों ने प्रेस में छाप कर समाचारों को जनता के सामने रक्खा। इस समाचारपत्र पद्धति को जनता ने बहुत पसन्द किया; तब से अखबार प्रकाशित करने की पद्धति न केवल चीन देश में फैली, किन्तु यूरोप, अमेरिका आदि ने भी इस उपयोगी आविष्कार को अपना लिया और इस कला में धीरे धीरे आगे पैर बढ़ाते हुए आज दिन आश्चर्यजनक उन्नति कर दिखाई। इस समय इंगलैंड, न्यूयार्क आदि नगरों में ऐसे अनेक दैनिक समाचारपत्र प्रकाशित हो रहे हैं जिनकी ग्राहक संख्या ३०-३५ लाख तक है।

भारतवर्ष में सब से प्रथम आज से ११७ वर्ष पहिले सन १८१६ में बंगाल गजट नामक अखबार प्रकाशित हुआ, बंबई से बंबई समाचार नामक गुजराती अखबार १ जुलाई सन १८२२ में प्रगट हुआ था जो कि अभी तक बराबर चला आ रहा है। इस समय भारतवर्ष में इससे पुराना पत्र अन्य कोई भी जीवित नहीं है।

हमारे दिगम्बर जैन समाज ने भी इस लाभजनक अखबार-पद्धति को अपनाया। तदनुसार आज से ३८ वर्ष पहले श्रीमान बा० सूर्यभान जी वकील की सम्पादकी में जैन गजट का जन्म हुआ, जो कि अविरल रूप से अभी तक चल रहा है। इस के पीछे "जैन मित्र" आदि अनेक समाचारपत्रों का जन्म हुआ, जिनमें से अधिकांश सदा के लिये सो गये हैं और कतिपय अभी तक प्रकाशित होरहे हैं।

इस समय समाज या देश का उत्थान या पतन बहुत कुछ अखबारों के ऊपर निर्भर हो गया है। साधारण जनताको अखबार अपने प्रभावशाली लेखों द्वारा जिधर ले जाना चाहें उधर ले जाते हैं। एक विद्वान का कहना है कि—

जनता झुकती है, झुकाने वाला चाहिये।

तदनुसार जिस समाचारपत्र के लेखों में जितना अधिक प्रभाव और युक्तिबल होता है वह उतना ही जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। जबकि परोपकारशील सम्पादक अपनी लेखनी की नोंक से सोते हुए समाज को जगा कर प्रकाश की ओर सुपथ पर भेजता है, उसमें जीवन-शक्ति फूंक उसको शक्तिशाली बनाकर स्वाभिमान का पाठ पढ़ाता है, तब स्वार्थप्रधान अयोग्य संपादक स्वार्थवश समाज को अंधकारपूर्ण खड्डे में जा धकेलता है और अपने स्वार्थसाधनके सन्मुख सामाजिक हित और सत्य-शुभकामना को वह कुछ मूल्य नहीं देता। इस कारण जनता के सुधार-बिगाड़ में पत्रों का बहुत कुछ हाथ होता है। कविवर अकबर का कहना है कि—

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो,
जब तोप मुक़ाबिल हो तो अखबार निकालो।

दिगम्बर जैन समाज ने भी दोनों ही प्रकार के पत्रों को जन्म दिया। जैन सिद्धान्त की प्राणपण से रक्षा करने वाले अखबार भी अनेक प्रकाशित हुए और उनमें से अनेक इस समय भी प्रतिष्ठापूर्वक चल रहे हैं। कुछ एक ऐसे सुयोग्य पत्र भी प्रकाश में आये, जिन्होंने अपनी दुर्भावनासे जैन सिद्धान्त के निर्मल मन्तव्यों को ही अपने कलमकुठार से निर्मूल करना चाहा, किन्तु वे अधिक श्वास न लेने पाये और अकाल में ही अनन्त निद्रा में सो गये।

इस समय भी दुर्भाग्यवश वैसे नवीन विष-पत्र जन्म लेकर दिगम्बर समाज की छाती पर दाल दल रहे हैं। अस्तु!

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ को जहाँ अपने उद्देश-प्रचार के लिये एक मुखपत्र की आवश्यकता थी वहाँ दिगम्बर जैन समाज को उसके विरुद्ध रचे गये गहरे षड्यंत्र से सचेत करने की भी विशेष आवश्यकता थी, जिसके ऊपर किसी भी पत्र की दृष्टि नहीं पहुँची अथवा जान कर भी जिसका किसी ने भंडाफोड़ नहीं किया।

एवं-गाढ़ निद्रा में सोते हुए जैन समाज को जागृत कर उसमें प्रगति की शक्ति फूंकने के लिये भी शास्त्रार्थ संघ को एक नवीन पत्र प्रकाशित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

ये ही गणनीय कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर जैन दर्शन का उदय हुआ है।

नीति

जैनदर्शन की नीति आर्षमार्गानुकूल रहेगी, तदनुसार विधवाविवाह तथा छुआछूत लोप के प्रतिकूल जैनदर्शन का अभिमत रहेगा। जैनदर्शन जहां तक हो सका सामाजिक झगड़ों से अछूता रहेगा। निषेधात्मक लेखों की अपेक्षा विधेयात्मक लेख प्रायः जैनदर्शन में रहेंगे, किन्तु आवश्यकतानुसार सिद्धान्तविरुद्ध लेखों का सबल, युक्तिपूर्ण खंडन भी सभ्य, सुन्दर रूप में किया जावेगा।

कुत्सित स्वार्थ, ईर्षापूर्ण महत्वाकांक्षा, भय तथा आर्थिक लोभ के सामने शिर झुका कर कुपथ का आश्रय लेना जैनदर्शन की नीति के प्रतिकूल है।

दुर्वासनाओं के शिकार होने के बजाय सदा के लिये सो जाना जैनदर्शन अपने लिये सौभाग्य की बात समझता है।

निमन्त्रण

उन उत्साही कर्मण्य युवकोंको सादर निमंत्रण है जिनके हृदय में धर्मानुकूल समाज सेवा का अदम्य उत्साह हिलोरें ले रहा है और जो कहने के बजाय कुछ कर दिखाने को उत्तम समझते हैं तथा सामाजिक अवनति और जैन सिद्धान्त पर आते हुए आक्षेपों से जिनका चित्त बेचैन हो जाता है। वे वीर युवक शास्त्रार्थ संघ और जैनदर्शन को अपनी सम्पत्ति समझते हुए अपनी सुयोग्य सेवाएं निःशंक होकर दर्शन को समर्पण करें।

उस परम विशुद्ध, अतुल शक्ति सम्पन्न, विश्व प्रकाशक ज्ञान भंडार, अनन्त गुण राशि विभूषित, अविनाशी, अपने पवित्र आदर्श से जगतके कल्याण विधाता परमात्मा को अप्रतिम धन्यवाद है जिसके पावन स्मरण और ध्यान से जगत में शान्ति और शुभ भावनाओं का प्रादुर्भाव होता है। उसका पवित्र आदर्श जैनदर्शन को बल प्रदान करेगा।

स्वागत !

[ले०—श्रीमान पं० गजाधरलाल जी शास्त्री-कलकत्ता]

'जैनदर्शन' हो चिर जयवान !
मंजुल मधुर सुखद वाणी से करो जगत कल्यान।
पक्षपात को दृढ अपनाया, मत पाखंड 'धर्म' दरशाया
शुद्ध तत्व को मूल नशाया, मेटो यह अज्ञान।
जैनदर्शन हो चिर जयवान ॥ १ ॥
आगम जिसे प्रमाण बताता, दोष न लोकरूढ़ि से आता
जबरन वह ठुकराया जाता, हरो नीच यह ज्ञान।
जैनदर्शन हो चिर जयवान ॥ २ ॥
भेषी ग्रंथ 'जिनागम' गाये, हंसि हंसि खूब उन्हें अपनाये
शुद्धागम इस रीति दबाये, खोलो पोल महान।
जैनदर्शन हो चिर जयवान ॥ ३ ॥
सामाजिक जो कार्य प्रचारित, उनकी रच न उत्तम हालत
स्वार्थपरायण उन्हें मिटावत, रक्षा का हो ध्यान।
जैनदर्शन हो चिर जयवान ॥ ४ ॥

कविवर बनारसीदास !

लेखक—सहायक सम्पादक

जैन कवियों ने अपने अमूल्य रचना-चातुर्य से संस्कृत-साहित्य-मन्दिर को ही अलंकृत नहीं किया, हिन्दीसाहित्य के भव्य-भवन-निर्माण में भी उन्होंने बहुत कुछ हाथ बटाया है। किन्तु उनमें से किसी भी हिन्दी कवि ने शृङ्गाररस को नहीं अपनाया—अध्यात्म और तत्वज्ञान के चिन्तन और निरूपण में ही उनके जीवन का अवसान हुआ है। उनका मत है कि—"जन साधारण की रुचि स्वभाव से ही विषय-सेवन में रत रहती है, शृङ्गारी कवियों की रसरङ्गमयी कविता उनके सर्वनाश के लिये कोढ़ में खाज का काम करती है"। जैसा कि इस कवित्त से प्रगट होता है—

राग उदै जग अन्ध भयो,
सहजैं सब लोगन लाज गमाई।
सीख बिना नर सीखत हैं,
विषयन के सेवन की सुघराई॥
तापर और रचे रसकाव्य,
कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अंध असूझन की अंखियन में,
झोंकत हैं रज राम दुहाई॥
—भूधर शतक

कविवर बनारसीदास भी इसी मत के पोषक थे। आपका जन्म वि० सं० १६४३ के माघ शुक्ल एकादशी को बनारस के पास जौनपुर शहर में हुआ था। इस समय देहली के सिंहासन पर बादशाह अकबर बिराजमान थे। कविवर ने स्वरचित आत्मकथा में अपने जीवन के गुण दोषों की स्पष्ट-शब्दों में आलोचना करते समय प्रसङ्गवश मुगल साम्राज्य का भी कुछ दिग्दर्शन कराया है।

आप का जन्म नाम विक्रमाजीत था। किन्तु आप के पिता जब जैन तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की जन्मभूमि बनारस की यात्रा को गये, तब भक्तिवश आपका नाम **बनारसीदास** रख दिया, जैसा कि आत्मकथा को प्रारम्भ करते हुए कविवर ने लिखा है—

जिन पहिरी जिन-जनमपुरी-नाम मुद्रिका छाप।
सो 'बनारसी' निज कथा कहै आप सों आप॥

आपने बाल्यकाल में कोष अलंकार ज्योतिष आदि का अध्ययन किया था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह हुआ। आपके पिता मोती जवाहरात का व्यवसाय करते थे। अपने पिता की इकलौती सन्तान होने से माता पिता का इन पर अतिशय प्रेम था। ऐसे अनियंत्रित प्रेम का जो दुष्परिणाम होना चाहिए, हुआ भी वही—चौदह वर्ष की अवस्था में ही यौवन के मदने कविवर को अन्धा बना दिया। बस फिर क्या था—

तजि कुलकान लोक की लाज ।
भयो बनारसि आसिख बाज † ॥
करै आसिखी धरत न धीर ।
दरद बन्द ज्यों शेख फकीर ॥
इकटक देख ध्यान सो धरै ।
पिता आपुने को धन हरै ॥
चोरै चुन्नी माणिक मनी ।
आने पान मिठाई घनी ॥
भेजे पेशकशी हित पास ।
आप गरीब कहावै दास ॥

इसी समय—

पोथी एक बनाई नई ।
मित हजार दोहा चौपई ॥
तामें नव रस रचना लिखी ।
पै विशेष वरणन आसिखी ॥
ऐसे कुकवि बनारसि भये ।
मिथ्या ग्रन्थ बनाये नये ॥
कै पढ़ना कै आसिखी मगन दुहूं रस मांहि ।
खान पान की सुधि नहीं रोजगार कछु नांहि ॥

इसी दशा में डूबते उतराते दो वर्ष बीत गये । सोलह वर्ष की उम्र में गौना करने के लिये सुसराल गये । वहां रहते हुए अभी एक मास ही बीतने पाया था कि इश्कबाज़ी का कुफल प्रगट हुआ–शरीर में कुष्टरोग फूट पड़ा । इसके लिये कविवर लिखते हैं—

भयो बनारसिदास तन, कुष्ट रोग सरवंग ।
हाड़ हाड़ उपजी बिथा, केश रोम भ्रुव भंग ॥
विस्फोटक अगणित भये, हस्त चरण चौरंग* ।
कोऊ नर साले ससुर, भोजन करहिं न संग ॥
ऐसी अशुभ दशा भई, निकट न आवे कोय ।
सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोय ॥

उस समय न तो आज की तरह वैज्ञानिक शिक्षा ही थी और न डाक्टर ही थे । फिर भी देशी चिकित्सक अपने कार्य में आधुनिक वैज्ञानिक डाक्टरों के कान काटते थे । एक जर्राह ने दो माह में कविवर का कुष्ट रोग दूर कर दिया, और वे अपने घर जौनपुर लौट आये । सत्रह वर्ष की उम्र में ही पढ़ना भी छुट गया, किन्तु इश्कबाज़ी फिर भी न छुटी ।

एक बार एक संन्यासी महाराज ने इन्हें अपने जाल में फंसाया; कहा-मेरे पास एक ऐसा मन्त्र है कि यदि कोई उसे एक वर्ष तक नियमपूर्वक जपे तो साल बीतने पर घर के द्वार पर प्रतिदिन एक स्वर्ण मुद्रा पड़ी पावे । इश्कबाज़ों को धन की बहुत आवश्यकता रहती है-बनारसी दास जी को मुहमांगी मुराद मिली । लगे संन्यासी की सेवा सुश्रूषा करने, और उधर महाराज भी लगे पैसा ठगने की बातें बनाने । इधर मंत्र का जाप प्रारम्भ हुआ, उधर संन्यासी देवता अपना मतलब साध नौ दो ग्यारह हुए । मन्त्र जपते २ बड़ी कठिनता से वर्ष पूर्ण हुआ । प्रातःकाल ही स्नान करके कविवर बड़ी उत्कंठा से द्वार पर आये, और लगे इधर उधर खोजने, किन्तु वहां क्या धरा था ?

वि० सम्वत् १६६२ के कार्तिक मास में आगरे में बादशाह जलालुद्दीन–अकबर की मृत्यु होगई । चारों ओर कोलाहल मच गया—भावी विपत्ति की आशंका ने प्रजा को व्याकुल बना दिया । सब अपनी २ जमा पूंजी पृथ्वी में गाड़ २ कर रखने

† इश्कबाज * चहुं अङ्ग ।

लगे। लूट के भय से अमीरों ने भी गरीबी वेश धारण किया। यथा—

घर घर दर दर दिये कपाट ।
हटवानी नहिं आवें हाट ॥
भले वस्त्र अरु भूषण भले ।
ते सब गाढ़े धरती तले ॥
घर घर सबनि बिसाहे शस्त्र ।
लोगन पहिरे मोटे वस्त्र ॥
ठाढ़ो कंबल अथवा खेस ।
नारिन पहिरे मोटे वेस ॥
ऊंच नीच कोउ न पहिचान ।
धनी दरिद्री भये समान ॥
चोर धाढ़ कहुँ दीसे नाहिं ।
योंही अप-भय लोग डराहिं ॥

इस अशान्ति की लहर ने दस बारह दिन तक खूब ज़ोर पकड़ा। पीछे शान्तिसूचक चिट्ठिया घर २ बांट दी गईं। प्रजा में पहिले की तरह अमन चैन हो गया। चिट्ठी का आशय इस प्रकार था—

प्रथम पातशाही करी, बावन बरस जलाल।
अब सोलह सै बासठै, कार्तिक हुवो काल ॥
अकबर को नन्दन बड़ो, साहिब शाह सलेम।
नगर आगरे में तखत, बैठो अकबर जेम ॥
नाम धरायो नूरदी, जहांगीर सुलतान।
फिरी दुहाई जगत में, जहं तहं बरती आन ॥

धीरे २ समय पाकर बनारसी के युवक हृदय में अनुभव तथा बचपन के विद्याभ्यास ने अपना प्रभाव जमाया—उन्हें अपने दुष्कृत्यों पर खेद होने लगा—जो सुधार का पूर्व रूप है।

एक दिन सन्ध्या समय मित्रों के साथ गोमती के तट पर बैठे वायु सेवन कर रहे थे। बग़लमें एक पुस्तक थी और हृदय में पश्चात्ताप की ज्वाला बैठे २ सोचने लगे—मैंने इस पुस्तक में स्त्रियों के हाव भाव नख शिख आदि का वर्णन किया है। ऐसी कविता नवयुवकों को आवारा और अकर्मण्य बना देती है ? मैंने अपना सर्वनाश तो कर ही लिया, अब क्यों दूसरों को भी पापपंक में लिप्त करने के लिये इस कृति को जीवित रहने दूँ ? अचानक किसी चीज़ के जल में गिरने की आवाज़ ने मित्रों का ध्यान आकर्षित किया। देखा—एक पुस्तक जल के प्रवाह में बही चली जाती है और तट पर बैठे कविवर मुस्करा रहे हैं। दुष्कर्मों का कितना उदार प्रायश्चित था ? उस दिन से कविवर ने जीवन के महान पथ पर पैर रक्खा, और व्यापार में पिता का हाथ बटाने लगे।

आज की तरह उन दिनों भी लोग व्यापार के लिये विदेश जाते थे। घोड़ा, बैलगाड़ी या पैदल, यही उस समय की यात्रा के साधन थे। बनारसी दास जी को भी व्यापार निमित्त अनेकबार आगरा तथा पटना की यात्रा करनी पड़ी। उन दिनों आगरा मुग़ल साम्राज्य की राजधानी होने से व्यापार का भी प्रधान केन्द्र था। अमीर उमरावों में मोती माणिक आदि बहुमूल्य सामान की अच्छी खपत होती थी। कविवर ने भी आगरे को ही अपने व्यापार का मुख्य केन्द्र बनाया। पिता का स्वर्गवास हो जाने पर तो वे आगरे में ही बस गये।

कविवर बनारसीदास जी ने अपनी आत्मकथा में मार्ग की अनेक घटनाओं का वर्णन किया है, जिनसे मुग़लकालीन शासन और प्रबन्ध-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

सम्वत् १६७३ में आगरे के भीतर पहिले पहिल

प्लेग का प्रकोप हुआ। उस समय भी उसका वही रूप था जो आज है। कविवर लिखते हैं—

इस ही समय ईति विस्तरी।
परी आगरे पहिले मरी॥
जहाँ तहाँ सब भागे लोग।
परगट भया गांठ का रोग॥
निकसै गांठ मरै छिन मांहि।
काहू की बसाय कछु नांहि॥
चूहे मरै वैद्य मर जांहि।
भयसे लोग अन्न नहिं खांहि॥

संवत् १६८४ में सम्राट जहांगीर की मृत्यु हो गई और चार मास बाद शाहजहां सिंहासनारूढ़ हुए। कविवर शाहजहां के माननीय दरबारियों में थे। कवि बनारसीदास जी की प्रथम स्त्री के मर जाने पर एक के बाद एक, इस तरह तीन विवाह हुए और उनसे नौ पुत्र हुए, किन्तु एक भी जीवित न रहा। पुत्रशोक ने इनके जीवन को जर्जरित कर दिया था, किन्तु विद्वानोंके समागम और अध्यात्म प्रेम ने इनके दुखी जीवनको बहुत कुछ शान्ति दी।

कविवर ने अपनी आत्मकथा में प्रारम्भ के ५५ वर्ष की घटनाओं का ही उल्लेख किया है, जैसा कि जीवनी के **'अर्द्ध कथानक'** नाम से भी प्रगट होता है। इसलिये उनके जीवन का अंतिम भाग कहां कैसे समाप्त हुआ, यह अभी तक अन्धकार में ही है।

नाममाला, अर्द्धकथानक, नाटकसमयसार और बनारसी विलास यह चार ग्रन्थ आपकी रचना के मुख्य हैं। **नाममाला** अभी तक अनुपलब्ध है; यह जैन कवि धनंजय के संस्कृत कोष का पद्यानुवाद है। कविवर की जीवनी का नाम **अर्द्ध कथानक** है। अनुमान से ज्ञात होता है कि कविवर ने यह जीवनी जनसाधारण को मनुष्य-जीवन के उतार चढ़ाव का बोध कराने के उद्देश से लिखी है, क्योंकि इसकी कविता साधारण और भाषा चलती हुई है—**नाटक समयसार** और **बनारसी विलास** की रचना से बहुत पिछड़ी हुई है।

नाटक समयसार भाषा साहित्य-गगन का निष्कलंक चन्द्रमा है—अध्यात्म की चरम सीमा है। इसकी रचना में कविवर ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। ज़रा इसकी कविता का कुछ आनन्द लीजिये। प्रारम्भ में भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति कितनी मनोहर है—

करम भरम जग तिमिर हरन खग *,
उरग लखन पग शिव मग दरसी।
निरखत नयन भविक जल बरसत,
हरषत अमित भविक जन सरसी।
मदन कदन जित, परम धरम हित,
सुमिरत भगत भगत सब डरसी।
सजल जलदतन † मुकुट सपतफन ‡,
कमठदलन × जिन नमत बनरसी॥१॥

और भी—

सकल करम खल दलन, कमठ शठ पवन कनक नग।
धवल परम पद रमन, जगत जन अमल कमल खग॥
परमत जलधर पवन, सजल घन समतन समकर।
परअघ रजहर जलद, सकल जन नत भव भय हर॥

---

* सूर्य। † श्याम वर्ण शरीर ‡ सप्तफण सर्प जिनका मुकुट है। × कमठ नाम के देव का दलन करने वाले।

यम दलन नरक पद छय करन,
अगम अतर भव जल तरन।
वर सबल मदन वन हर दहन,
जय जय परम अभय करन ॥ २ ॥

सुख कहां है? सुनिये—

हांसी में विषाद बसै विद्या में विवाद बसै,
काया में मरण गुरुवर्तन में हीनता।
शुचि में गिलानि बसे प्रापति में हानि बसे,
जय में हार सुन्दर दशा में छविछीनता ॥
रोग बसे भोग में संयोग में वियोग बसे,
गुण में गरब बसे सेवा माहिं दीनता।
और जग रीति जेती गर्भित असाता तेती,
साता की सहेली है अकेली उदासीनता ॥३॥

मास की गरंथि कुच कंचन कलश कहें,
कहें मुखचन्द्र जो श्लेषमा का घर है।
हाड़ के दशन पाहिं हीरा मोती कहें ताहिं,
मांस के अधर ओठ कहें बिंब फल है ॥
हाड़ दंड भुजा कहे कोल नाल काम जुधा,
हाड़ ही के थंभा जंघा कहे रंभा तरु है।
योंही झूठी जुगति बनावे औ कहावे कवि,
येते पर कहें हमें शारदा को वर है ॥ ४ ॥

शृङ्गारी कवियों के लिये कैसी मीठी फटकार है। ज़रा दुर्जन स्वभावका भी मनन कीजिये—

सरल को सठ कहे वकता को धीठ कहे,
विनैं करै ताको कहे धन को अधीन है।
क्षमी को निबल कहे दमी को अदत्ति कहे,
मधुर बचन बोले तासो कहै दीन है ॥
धनी को दम्भी निस्पृही को गुमानी कहे,
तृष्णा घटावे तासो कहे भाग्यहीन है।
जहां साधु गुण देखे तिनको लगावै दोष,
ऐसो कछु दुर्जन को हिरदो मलीन है ॥ ५ ॥

बनारसी विलास कविवर की अनेक कविताओं का संग्रह ग्रन्थ है। ज़रा इसकी भी बानगी का अनुभव कीजिये—

जिनवाणी की स्तुति—

सुधाधर्म संसाधिनी धर्मशाला।
सुधाताप निर्नाशिनी मेघमाला ॥
महा मोह विध्वंसिनी मोक्षदानी।
नमो देवि वागेश्वरी जैन बानी ॥

अपनी आत्मा में ही नव रस का आनन्द लीजिये—

गुण विचार शृङ्गार, वीर उद्दिम उदार रुख।
करुणा समरसरीति, हास हिरदै उछाह सुख ॥
अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरतै तिहि थानक।
तन विलच्छ बीभत्स, द्वंद दुख दशा भयानक ॥
अद्भुत अनन्त बल चिंतवन,
शान्त सहज वैराग ध्रुव।
नवरस विलास परकाश तब,
जब सुबोध घट प्रगट हुव ॥

लेख-विस्तारसे अपनी इच्छा को संवरण करना पड़ता है। पण्डित बनारसीदास जी जैसे अध्यात्म-भावप्रधान कवि देश जाति और भाषा के गौरव की वस्तु हैं। उनकी कविता पढ़ने और सुनने वालों के मन में सद्भाव उत्पन्न करती है। हम काव्यप्रेमियों से एक बार जैन साहित्य वाटिका की सैर करने के लिये सादर अनुरोध करते हैं। यों तो—

कि वाऽभ्यर्थनयानया यदि गुणोऽ-
स्त्यासां ततस्ते स्वयं,
कर्तारः प्रथने न चेदथ यशः—
प्रत्यर्थिना तेन किम् ॥
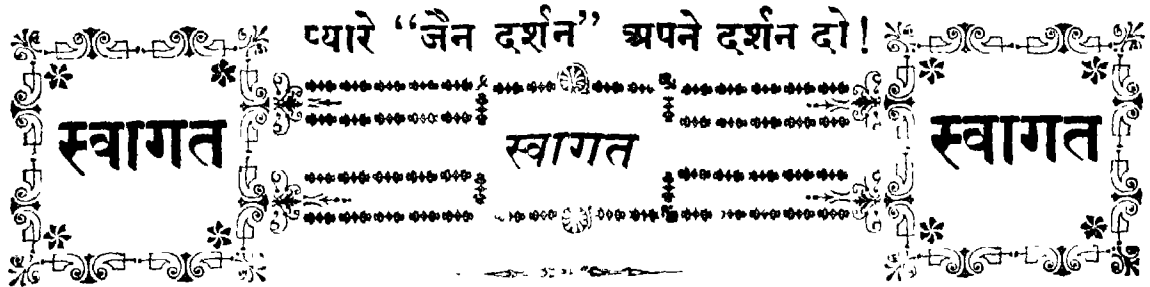
जिस शुभ घड़ी से तुम्हारे अवतार का प्रिय समाचार सुना है, तब से इस सूखे हृदय में आनन्द का अपार सागर न जाने कहां से उमड़ आया। तभीसे तुम्हारे दर्शनके पिपासु ये नेत्र युगल तुम्हारे मनोहर पथ में अपने पलक बिछाये ठहरे हुए हैं और अपने प्रमोदजल से तुम्हारे मार्ग में छिड़काव कर रहे हैं। यह भुजदंड तुम्हारी प्रतीक्षा में अपने करपल्लव फैलाये खड़े हैं। आओ! प्यारे 'जैन दर्शन' आओ!! आओ!!!

तुम्हारा नाम मधुर है, तुम्हारा काम मनोहर है, तुम्हारा धाम अभिराम है, तुम्हारा जनक ललाम है तुम तुम्हीं हो, तुम्हारी उपमा तुम्हीं को दी जा सकती है।

जैनसमाज को तुम्हारी आवश्यकता है, जैन धर्म को तुम्हारी अनिवार्य चाह है, तुम्हारे सहयोगियों को तुम्हारी मांग है, तुम्हारा उदय सुनकर तुम्हारे प्रतियोगियों का देखने योग्य स्वांग है।

जैन सिद्धान्त की वज्रभित्ति तोड़ने के लिये नादान लोग विकट प्रहार कर रहे हैं। मित्र, गज़ट, वीर, केसरी सब चुपचाप खड़े देख रहे हैं। समाज सो रहा है और उसके महान मूल दिगम्बरत्व को मनचले महानुभाव चुपचाप रूप वेश बदल कर निर्मूल करने का उद्योग कर रहे हैं। अंधकार में तुम्हारे जागृत प्रेमियों को कुछ नज़र नहीं आता। तेल से भरा हुआ बत्ती से पूर्ण दीपक रक्खा हुआ है, इसको आकर जलादो; जिसके व्यापक तेज प्रकाश में निशाचर लक्ष्मी-वाहनों का निरर्गल संचार रुक जावे। हमारे अमूल्य कोष को चुराकर स्वयं धनकुबेर बनने वाले सभ्य तस्करों की दाल कच्ची ही रह जावे और जैनसमाज के भूले भटके दुलारे लाल कुपथ छोड़ कर सुपथगामी बन जावें।

तुम्हारा जन्मदाता संघ धन्य है, तुम्हारे लालन पालन करने वाले धन्य हैं, तुम जिन जिन भाग्यवानों की गोद में खेलोगे वे धन्य हैं और हम सरीखे दर्शकों के नेत्र धन्य हैं जो तुम्हारा दर्शन करेंगे।

प्यारे दर्शन! तुम्हारे मनस्वी दर्शन में (अभिमत में) कदापि अन्तर न आने पावे। दीनता, हीनता को दूर से फटकार देना। क्षुद्रता को अपने समीप न आने देना। सत्य के सिवाय अन्य किसी का भय न लाना। असत्य पक्षपात के पक्ष तोड़ देना। विश्वप्रेम करना, किन्तु प्रतियोगियों से सदा सावधान रहना। दया तथा क्षमा का साथ न छोड़ना, किन्तु धार्मिक अपमान और तिरस्कार को देखकर अनुपम कठोरता में प्रवेश कर जाना।

जैन दर्शन! तुम चिरंजीवी होवो, सुखजीवी होवो अविनाशी होवो, संसार की कोई भी शक्ति तुमको तुम्हारे उद्देश से न डिगा सके, तुम्हारी

नीति और प्रगति में रंच मात्र भी हीयमान अंतर न आवे, सदा विजेता रहो, अटूट भाग्यवान बनो, बज्र समान दृढ बनो, सुधा समान मधुर बनो, और निष्कलंक पूर्ण चन्द्र समान प्रिय बनो, द्वितीया के चन्द्र समान निरन्तर कर्मक्षेत्र में बढ़ते जावो, एवं सूर्य समान प्रताप प्रकाशसे संसार में प्रख्याति प्राप्त करो।

यह हृदय तो तुम्हारे स्वागत में बहुत कुछ कहना चाहता है, किन्तु हाथों में वह शक्ति नहीं कि उसकी इच्छा पूर्ण कर सकें। इस कारण इतना लिख कर विश्राम लेते हैं कि जैनदर्शन ! तुम सब के नयनानंद बनो, तुम विश्व के लिये तथा अपने लिये मंगलमय होवो।

तुम्हारा दिदृक्षु
राजेन्द्र

स्वागत !

[ले० --श्री० कल्याणकुमार जी 'शशि']

आओ 'दर्शन' आओ ! आओ 'दर्शन' आओ !

छाया चारों ओर निबिड़ तम
हैं हीरकों की आभा कम
रहे चमक इमिटेशन चम चम
दिव्य प्रभा प्रगटाओ
आओ 'दर्शन' आओ ॥ १ ॥

किये प्रदर्शित झिलमिल सा बल
ये भंगे पंगे तारक दल
मचा रहे हैं जग में हलचल
इनका गर्व गिराओ
आओ 'दर्शन' आओ ॥ २ ॥

निरखो यह इस ओर चराचर
खड़ा हुआ जीवन ड्योढ़ी पर
डोल रहा है डगमग थरथर
इसको मार्ग दिखाओ
आओ 'दर्शन' आओ ॥ ३ ॥

जैन जाति आदर्श बनाना
धर्म वीरता बल सरसाना
कर्मठता का पाठ पढ़ाना
जीवित क्रान्ति मचाओ
आओ 'दर्शन' आओ ॥ ४ ॥

बनना निर्विकार निर्मोही
दया सत्य नय न्याय बटोही
बन धन स्वार्थ पक्ष-विद्रोही
अरुण रश्मि बिखराओ
आओ 'दर्शन' आओ ॥ ५ ॥

लाना पथ में कभी न अन्तर
लाना विमल प्रकाश निरन्तर
करना छाती तान युगान्तर
सौख्य सुधा सरसाओ
आओ 'दर्शन' आओ ॥ ६ ॥

इन्हीं भावनाओं पर प्यारा स्वागत है हे सखे ! तुम्हारा सादर 'प्रेमपुनीत' हमारा
लो इसको अपनाओ—आओ 'दर्शन' आओ ॥ ७ ॥

शास्त्रार्थ संघ

लेखक—पं० अजितकुमार शास्त्री
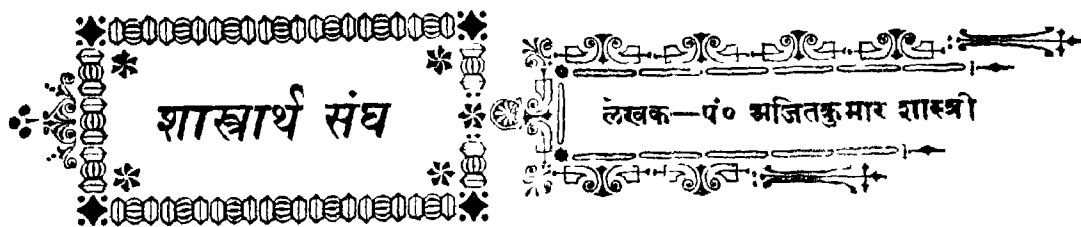
संसार में जैनधर्म से प्रायः सभी सम्प्रदाय विरोध भाव रखते हैं उसका विशेष कारण यह है कि जैनधर्म एक तो परमात्माको जगत का कर्ताहर्ता नहीं मानता और न उन वेद, कुरान, इंजील आदि ग्रंथों को ही सत्य ग्रंथ मानता है जिन को कि अन्य लोग ईश्वरीय ज्ञान कहते हैं। इस कारण जैनधर्म की सत्ता नाशकर देने के लिये समय समय पर अनेक प्रबल आक्रमण होते रहे। स्वार्थी अजैन विद्वानों ने युक्तिबलसे जैनसिद्धांत को दुर्भेद्य दुर्ग समझ कर अनेक कपटपूर्ण युक्तियों से हिन्दू राजाओंको तथा साधारण जनता को जैनधर्म का कट्टर विद्वेषी बना दिया था। जैनधर्म पर पुरातन समय में किये गये अत्याचारों का यदि निरूपण किया जावे तो रोंगटे खड़े हो जायं। अस्तु! उस पुरानी बात को छोड़ कर आधुनिक समय को सामने रखते हैं।

यद्यपि ज़माने की रफ्तार ने लोगों के दिल से वह 'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमंदिरम्' (यानी हाथी के पैर तले कुचल जाओ, किन्तु प्राण बचाने के लिये भी जैन मंदिर में न घुसो) वाली कट्टरता दूर करदी है, किन्तु उस कट्टरता का थोड़ा बहुत संस्कार बहुत से हमारे अजैन हिन्दु समाजों में अब भी अवश्य है। यही कारण है कि वे इस सूर्य की चमक में भी जैन धर्म को केवल वेद-विरोधी या ईश्वर को संसार विधाता न मानने के कारण नास्तिक धर्म कहने में कुछ संकोच नहीं करते। एवं आर्य्य समाज ने जैन समाज को मुर्दा समाज समझकर उसके साथ असह्य छेड़छाड़ शुरू कर रक्खी है।

यद्यपि अजमेर, फीरोज़ाबाद, देहली आदि स्थानों में पहले जैनसमाज और आर्यसमाज में शास्त्रार्थ हुए थे, जिनमें जैन सिद्धान्त की अच्छी प्रभावना और विजय हुई थी, किन्तु उस समय न तो आर्यसमाजी विद्वान जैन शास्त्रों से परिचित थे और न जैन विद्वान ही वैदिक साहित्य से कुछ जानकारी रखते थे। इस कारण उस समय शास्त्रार्थ केवल दार्शनिक ढंग से मोटे सिद्धान्तों पर ही होते थे।

किन्तु अब आर्यसमाज में अनेक विद्वानों ने जैन ग्रंथों का स्वाध्याय करके शास्त्रार्थ करने योग्य पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली है, उसी तरह कुछ जैन विद्वानों ने भी वैदिक साहित्य का अच्छी तरह अवलोकन किया है। इस कारण अब शास्त्रार्थ दूसरे ढंग से हुआ करता है।

जैनसमाज में आज से चार वर्ष पहले आर्य-समाज के चैलेंज स्वीकार करके शास्त्रार्थ करने के

लिये कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं था, इसी कारण अनेक स्थानों पर जैन पंचायतों को आर्यसमाज के चैलेंज सिर झुका कर टालने पड़ते थे और कहीं पर शास्त्रार्थ कराने के लिये जैन विद्वानों के आयोजन में असीम कष्ट उठाना पड़ता था।

इस अड़चन को ध्यान में रखकर **अंबाला शास्त्रार्थ** के अनंतर अंबाला छावनी में कतिपय महानुभावों के हृदय में यह विचार हुआ कि शास्त्रार्थ करने के लिये तथा जैनधर्म पर आये हुए आक्षेपोंका निराकरण करनेके लिये एक संस्था स्थापित होनी चाहिये। यह सम्मति स्वर्गीय श्रीमान प० अर्हद्दास जी पानीपत, ला० शिब्बामल जी अंबाला, पं० राजेन्द्रकुमार जी अंबाला, प० मंगलसेन जी अंबाला, पं० तुलसीराम जी बड़ौत तथा लेखक की उपस्थित मीटिंग मे अंबाला छावनी स्थान पर पास हुई तथा उसी समय श्रीमान् स्व० पं० अर्हद्दास जी, ला० शिब्बामल जी, ला० सुमेर चन्द जी तथा एक अज्ञातनाम महानुभाव ने सौ सौ रुपये की व पं० राजेन्द्रकुमार जी ने २५) की सहायता स्वीकार करके फ़ंड कायम किया। श्री० पं० मंगल सेन जी ने अपना पुस्तकालय अर्पण करना स्वीकार किया। तब उस अपने ढंग की अभूतपूर्व निराली संस्थाकी नीव पड़ी, जिसका नाम "**श्री भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्रार्थ संघ**" रक्खा गया। यद्यपि कुछ महानुभावों के विचार से नाम कुछ और होना चाहिये था, किन्तु अधिकांश सज्जनों ने यह ही नाम पसन्द किया।

इस प्रकार सन् १९३० के अप्रैल मास में इस **शास्त्रार्थ संघ** की नीव डाली गई। जिसका कि मुख्य उद्देश यह रक्खा गया कि इस संघ के कार्यकर्ता अजैन सिद्धान्तों का अवलोकन कर उनके विरुद्ध शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार रहें। यदि कहीं पर कोई अजैनसमाज जैनसमाज को शास्त्रार्थ के लिये चैलेंज देवे तो वहा की पंचायत उस चैलेंज को स्वीकार करके शास्त्रार्थ संघ को सूचना देदेवे। शास्त्रार्थ संघ वहा पहुँच कर शास्त्रार्थ का पूर्ण आयोजन करेगा।

[क्रमशः]

"दर्शन" आओ !

(लेखक—श्री वीरेन्द्र कुमार जैन "वीर")

स्वागत २ "दर्शन" आओ, जैनधर्म जग में फैलाओ !
मिथ्या ज्ञान हटाओ जग का, पाओ ज्ञान सुधा सब यश का।
शीघ्र नष्ट कर बुरी भावना, प्रेम भाव फैलाओ ॥स्वा०॥
जैन धर्म के ऊपर देखो, हो रहे अत्याचार अनेको।
सबको 'दर्शन' दूर भगाओ, 'वीर' नाद् जग में फैलाओ ॥स्वा०॥
कायरता को दूर भगाओ, जैन सूर्य 'दर्शन' चमकाओ।
जैनधर्म का मर्म मिटाओ, स्वागत स्वागत दर्शन आओ ॥ जैन०॥

जैन समाज का आधुनिक चित्र
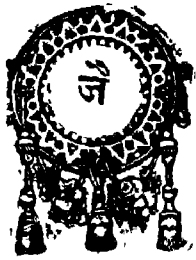
नधर्म किसी समय इस भूमंडल पर सूर्य के समान चमक रहा था। इसके प्रचारक आजकल के समान चारित्रशून्य उपदेशक नहीं थे, किन्तु वे आदर्श चारित्र की मूर्ति और अगाध ज्ञान गुण के भंडार, तपोधन ऋषीश्वर उस समय के प्रचारक थे, जिन का कार्य आत्मकल्याण करते हुए अजैन धर्मानुयायियों को अपने पवित्र उपदेश से जैनधर्म की दीक्षा देना था जो श्री लोहाचार्य सरीखे ऋषि प्रायश्चित्त के रूप में सवा लाख अजैनों को जैन धर्मानुयायी करने का न केवल संकल्प करते थे किन्तु वैसा करके दिखा भी देते थे।

उस प्राचीन समय में जैनधर्मानुयायी आजकल की तरह केवल भय तथा लोभ की मूर्ति वैश्य लोग ही नहीं थे, किन्तु बड़े बड़े शूरवीर क्षत्रिय, प्रख्यात तत्वज्ञानी ब्राह्मण, प्रसिद्ध उदार दानी धनकुबेर सेठ तथा भारतवर्ष पर एक छत्र राज्य करने वाले प्रतापी भूपति जैनधर्म के अनुगामी थे, जिनके कारण उस समय जैनधर्म राजधर्म बना हुआ था। प्रचलित सिक्कों पर जैनधर्म के आदर्श चिह्न रहा करते थे।

किन्तु आज जैनधर्म उस वैश्य लोगों के स्वल्प समुदाय की गोद में आ गया है जो कि धन उपार्जन को अपना आध्यात्मिक प्रधान ध्येय समझते हैं तथा अपने घर में बैठे हुए भी सदा भयभीत पुरुष की आदर्श मूर्ति बने हुए हैं। इस दशा में जैनसमाज का शोचनीय पतन क्यों न होवे ? शूरवीर क्षत्रियों के भुजबल से स्थापित किये धर्म-राज्यको भीरु वैश्य कहांतक सुरक्षित रख सकते हैं।

यही कारण है कि जैनसमाज की दशा दिनों दिन बिगड़ती चली जा रही है। जो जैनसमाज किसी समय करोड़ों की जनसंख्यामें था, आज वह अंगुलियों पर गिनने योग्य रह गया है, उसमें भी आधी संख्या श्वेताम्बर, स्थानकवासी सम्प्रदाय की है। सम्प्रदाय भेद होने पर तीनों सम्प्रदाय भिन्न भिन्न रूप से शान्तिपूर्वक धर्मसाधन करें, सो भी बात नहीं; पर्वत शिखरों पर तथा वन-भूमि में विराजमान विश्ववंदनीय तीर्थक्षेत्रों पर दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय परस्पर में लड़ झगड़ कर लाखों रुपया व्यर्थ बहा रहे हैं। मानों ये तीर्थ-क्षेत्र भी घर में रखने योग्य कोई वस्तु हैं। विचार-शील जैनसमाज के ये झगड़े जनता में घृणित उपहास करा रहे हैं।

इधर दिगम्बर समाज की आन्तरिक दशा और भी अधिक शोचनीय है। यों ऊपरी ढांचा तो इसका बहुत मनोहर है—बालकों की शिक्षा के लिये बीसों विद्यालय, सैकड़ों पाठशालाएं, स्कूल, हाईस्कूल, बोर्डिङ्गहाऊस निरन्तर चल रहे हैं, लड़कियों को शिक्षा देने के लिये कन्या पाठशालाएं श्राविकाश्रम आदि स्थापित हैं, अनाथ बच्चों के पालन पोषण के लिये २-३ अनाथालय विद्यमान हैं, विधवाओं को सहायता देनेके लिये अनेक आश्रम व फंड बने हुए हैं, सदाचारी विद्यार्थी उत्पन्न करने के लिये कुछ एक गुरुकुल भी हैं जिन से कि प्रतिवर्ष अनेक छात्र छात्राएं पढ़कर निकलते रहते हैं, समाज में जागृति करने के लिये अखिल भारतीय दि० जैन महासभा तथा अ० भा० दि० जैन परिषद् सरीखी बड़ी सभाएं क़ायम हैं जिनके नीचे कई छोटी छोटी प्रांतिक सभाएं या नगर सभाएं भी चल रही हैं, गज़ट, वीर, मित्र आदि अनेक पत्र निकल रहे हैं, जातीय सभाएं चल रही हैं, कुछ उपदेशक भी दौरा करते रहते हैं, अजैनसमाजों के आक्षेपों से सुरक्षित रखने के लिये श्री भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्रार्थ संघ की भी स्थापना हो गई है, संस्कृत भाषा के तथा इंग्लिश भाषा के अनेक अच्छे विद्वान, डाक्टर, वकील, बैरिष्टर, आफीसर, सेठ, गृहत्यागी, पूज्य मुनिवर आदि विद्यमान हैं, सारांश यह है कि उन्नति के लिये जिन जिन साधनों की आवश्यकता हुआ करती है प्रायः वे सभी साधन दिगम्बर सम्प्रदाय में विद्यमान हैं—, किन्तु फिर भी दिगम्बर समाज अवनति की ओर चलता चला जा रहा है।

इसका क्या कारण है?

इस प्रश्न के उत्तर यद्यपि अनेक हैं, किन्तु संक्षेप रूप में उस का मूल कारण केवल एक है, जिस को कि 'आपसी वैमनस्य' के नाम से कह सकते हैं।

इसी वैमनस्य ने अच्छे २ प्रसिद्ध विद्वानों की बुद्धि पर पर्दा डाल रक्खा है, कर्मवीरों की कर्मण्यता के पैर तोड़ दिये हैं, स्थान स्थान पर कलह का नग्नरूप खड़ा कर दिया है। कभी इस वैमनस्य ने सेठ और बाबू नाम से दो दल खड़े किये थे व कभी पंडितदल बाबूदल की मूर्ति बना दी। आज उन दलबंदी की दलदल में और भी दल दल की दलदल उत्पन्न हो गई है। यद्यपि दलबंदी का होना अधिक हानिकारक नहीं, क्योंकि एक दूसरे से आगे बढ़ने के लिये स्पर्धारूप से कर्मक्षेत्र में दौड़ने से प्रायः वह दलबंदी उन्नति का साधन हो जाती है।

किन्तु यहां तो प्रगति ही उलटी चाल की है। हमारी दलबंदी उन्नति की दौड़ में एक दूसरे की टाँग पकड़ कर एक दूसरे को अंधे खड्ड में धकेलने का उद्योग करती है। यह ही कारण है कि शिक्षित, बुद्धिमान, कर्मवीर पुरुषों की यह दलबंदी वास्तव में एक दलदल (कीचड़) है अथवा समाज को उन्नत शिखर से पतित करने वाला प्रबल तूफान है।

यदि कहीं पर कोई पंडित जी समाज की भलाई के लिये कोई प्रशंसनीय कार्य करते हैं तो वहीं पर अन्य बाबू जी केवल इस विचार से कि कहीं इस भलाई का यश पंडित जी को न मिल जावे कोई ऐसा रोड़ा डाल देते हैं कि पंडित जी

आगे बढ़ने के बजाय उस रोड़े को उखाड़ पछाड़ में ही अपनी शक्ति खो बैठते हैं।

इसी प्रकार यदि किसी बाबू जी ने कोई सामाजिक हित के लिये आदर्श कार्य किया तो वहाँ पर कोई न कोई पंडितजी आधमकते हैं, जो कि प्रशन्सा करने के बजाय बाबूजी के लिये कोई ऐसा अभिनन्दनपत्र पेश कर देते हैं कि बाबू जी की सहनशीलता हवा होजाती है और समाजसेवासे प्रतिज्ञा पूर्वक अपना मुख मोड़ लेते हैं, उसके आगे फिर उनके भोले भाले सहायक एक दूसरे से बदला लेने का अवसर देखा करते हैं और ज्यों ही जरा सा कोई छिद्र मिला कि इधर उधर का बादरायण संबंध जोड़ कर उस छिद्र के रास्ते विषैली बाण-वर्षा एक दूसरे के ऊपर कर बैठते हैं।

इस प्रकार हमारे दिगम्बर समाज में काम तो बहुत कुछ होताहै, किन्तु होता एक दूसरे को गिराने का है। कहीं सौभाग्य से कोई पंडित जी किसी बाबू प्रधान नगर में जा पहुंचे अथवा कोई बाबू जी किसी पंडित प्रधान शहर में कारणवश आ पधारे तो आशा नहीं कि उनका आतिथिसत्कार भी हो सके। अब बतलाइये कि इस दशा में दिगम्बर जैनसमाज सर्वनाश का शिकार क्यों न बन

फिर होना क्या चाहिये ?

इस प्रश्न का उत्तर सरल भी है और कठिन भी है, सरल तो इसलिए है कि केवल दृष्टिकोण फेरने की आवश्यकता है और कठिन इस कारण है कि इसका आचरण बहुत मुश्किल है। सामाजिक सेवा में द्वन्द्व युद्ध के सन्मुख रहते हुये दृष्टि फेरकर धीरता से हितकर कार्य कर दिखाना किन्हीं विरले महानुभावों का कार्य है—साधारण पुरुषों के दिमाग में सहसा वह बात स्थान नहीं पाती।

अतएव उत्तरदायित्व रखने वाले समाजहितैषी महानुभावों को पारस्परिक युद्ध से मुख मोड़ कर सामाजिक हित के लिए कुछ कार्य कर दिखाना चाहिये। श्रीमान् मान्य पं० माणिक चन्द्र जी को इसलिए खामखा आक्षेप वर्षा के लिए पात्र न चुन लेना चाहिये कि वे समाज में प्रतिष्ठित विद्वान हैं, उनको बिना गिराये हमारी विद्वता की धाक नहीं जम सकती अथवा श्रीमान पं० मक्खनलाल जी, पं० देवकीनंदन जी के उपर इस लक्ष्य से कि वे पंडित हैं, पंडितों का सन्मान समाज में से दूर कर देना अच्छा है, ठीक गलत आक्षेप न थोपने चाहिये या श्रीमान् बा० चंपतराय जी बैरिस्टर इस कारण अपमान के निशान बनाने उचित नहीं कि वे बाबू पार्टी के प्रधान नेता है। हां ! यदि उनमें कोई धार्मिक नियम के प्रतिकूल अथवा समाज हित के विरुद्ध त्रुटि दीख पड़े तो उस त्रुटि को दूर करने के विचार से भले ही कड़ी आलोचना कर लीजिये, किन्तु खयाल यह रहना चाहिये कि आलोचना उनके त्रुटिपूर्ण कर्तव्य या दुर्विचार की करनी है न कि उनके व्यक्तित्व की।

आलोचना करने के सिवाय उस त्रुटि-सुधार का मार्ग भी उनके सामने रख देना चाहिये।

अपने प्रतिपक्षी को गिराने के लिये उस की सच्ची झूठी निन्दा प्रगट करके अपमानित करना उतना सफल साधन नहीं है जितना कि उसके प्रतिकूल अच्छा कार्य कर दिखाना। किसी लकीर को छोटी बनाने के लिये उसके कुछ भाग को

मिटाने के बजाय यह बहुत अच्छा सुन्दर तरीका है कि बराबर में उस से बड़ी लकीर खींच दीजावे।

अपने प्रतिपक्षी से बढ़कर अच्छा कार्य कर दिखाना यह अपने प्रतिपक्षी को गिराने का सब से अच्छा उपाय है। आपस में लड़ झगड़ कर अपनी शक्ति को खो बैठना अपने लिये तथा समाज के लिये बहुत हानिकर है।

सच्चे समाज सेवक को यह बात अपने हृदय में दृढ़ बिठा लेनी चाहिये कि समाज का प्रत्येक भला बुरा आदमी एक आवश्यक अंग है। जिस को आप बुरा समझते हैं वह भी किसी न किसी काम के लिये बहुत उपयोगी है।

शास्त्रार्थ, सिद्धान्त-प्रतिपादन, आदि कार्यों के लिये यदि पंडित दल उपयोगी है तो तीर्थ रक्षा, विदेशों में धर्म प्रचार आदि अनेक कार्यों के लिये बाबूदल भी बहुत आवश्यक साधन है।

निचोड़

यह है कि जो पुरुष सामाजिक हित के बहाने किसी एक दल को अथवा किसी समाज सेवक को दुर्भावना से नेस्तनाबूद करना चाहता है तो वह न केवल भारी भूल ही करता है किन्तु समाज को भी बहुत हानि पहुँचाता है। इस कारण हमको यदि किसी का कोई कार्य अनुचित या हानिकर दृष्टिगोचर हो तो उस कार्य की सद्भावना से आलोचना करनी चाहिये न कि उस व्यक्ति को मिटा देने के लिये उस व्यक्ति पर सत्य असत्य आक्षेप थोप देने चाहियें।

हमारे समाज नेता यदि इस नीति से कार्य संचालन करें तो जहां समाज की विद्वेष-वह्नि बहुत कुछ शांत हो सकती है वहां सामाजिक उन्नति के लिये भी कुछ मार्ग निकल सकता है।

अधिक उत्तरदायी कौन है ?

इस प्रश्न का उत्तर यही है कि पत्रों के संपादक महानुभाव। यदि संपादक जी सच्ची नीयत से पत्र संपादन करें, सद्भावना से समालोचना करें, कलह बढ़ाने के बजाय उसको शांत करने के उपाय प्रगट करें तो उपर्युक्त नीति सफल होकर जैनसमाज का उद्धार हो सकता है। —सम्पादक

जीयात्समन्तभद्रोऽसौ भव्यकैरवचन्द्रमाः, दुर्वादिवादकंडूनां शमनैक महौषधिः ।

[लेखक—श्रीमान् पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ, अम्बाला]

चार चतुर पाठक महानुभाव! श्रीमान पं० दरबारी लाल जी जैनजगत में लगभग एक वर्ष से जैनधर्म का मर्म शीर्षक लेखमाला निकाल रहे हैं, जिस के कि अब तक २६ लेख प्रकाशित हो चुके हैं। इस लेखमाला में आपने दिगम्बर जैन सिद्धान्त पर क्या कुछ ठीक गलत लिखा है, यह बात तो हमारी लेखमाला में आगे चलकर आ ही जायगी, किन्तु यहांपर इतना लिख देना आवश्यक दीखता है कि आपने अपने लेखों में कहीं कहीं पर दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय से भिन्न अपने ख्याल पर जैनधर्म की कल्पित रचना की है और कहीं पर कुछ श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रतिकूल लिखा है किन्तु बहुभाग आपने दिगम्बर सम्प्रदाय के विरुद्ध और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समर्थनरूप में लिख डाला है।

आप्त, आगम, गुरु का स्वरूप श्वेताम्बर संप्रदाय के मंडनरूप में है जब कि दिगम्बर सम्प्रदाय के अकाट्य सिद्धान्त को आपने तोड़ने फोड़ने की असफल चेष्टा की है।

केवली कवलाहार, सग्रंथ साधुपद से मुक्ति, केशीगौतम संवाद आदि श्वेताम्बरीय सिद्धान्तों का मंडन आपने बहुत दिलचस्पी के साथ किया है। श्वेताम्बरीय शास्त्रज्ञ विद्वान पं० सुखलाल जी ने आपकी लेखमाला की प्रशंसा भी की है। पता नहीं पं० दरबारीलाल जी ने अपनी लेखमाला में ऐसा ढंग क्यों ग्रहण किया है?

हमने एक वर्ष पहले लेखमाला प्रारम्भ होते ही शास्त्रार्थ संघकी ओर से, आगमविरुद्ध बातों को प्रमाणित करने के लिये आपको निमंत्रण दिया था, जो कि हमारे और आपके बीच केवल पत्रव्यवहाररूप में साढ़े छह मास तक चलता रहा, किन्तु हमारा निमंत्रण यों ही रह गया। उस शास्त्रार्थ के लिये किसने पैर पीछे हटाया इस बात को हम नहीं लिखते—पाठक महानुभाव जैनमित्र और जैनजगत की फाइल निकालकर स्वयं देख लेवें।

मौखिक शास्त्रार्थ न हो सकने के कारण अब

लेख द्वारा ही आपकी लेखमाला का प्रतिवाद किया जायगा।

हम अपनी लेखमाला दो श्रेणियों में विभक्त रक्खेंगे। प्रथम श्रेणी तो वह होगी जिसमें जैनधर्म के मर्म के उन मुख्य मुख्य आक्षेपों का प्रतिवाद किया जावेगा जिनका कि दिगम्बर जैन सिद्धांत से प्रबल विरोध है अथवा जिनके कारण सिद्धान्त में परिवर्तन आ सकता है। दूसरी श्रेणी वह होगी जिसमें मर्म की उन गौण साधारण बातों का प्रतिवाद होगा जिनसे कि जैन सिद्धान्त पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता या जिनसे सिद्धान्त-परिवर्तन की संभावना नहीं।

प्रथम श्रेणी में हम सबसे पहले प्रधान विषयों का प्रतिवाद करेंगे, तदनन्तर अवशिष्ट आक्षेपों का प्रतिवाद करेंगे।

तदनुसार—सर्वज्ञता की व्याख्या, भगवान पार्श्वनाथ से पहिले जैनधर्म का अस्तित्व अंधकार में बतलाना तथा दिगम्बरत्व को मोक्ष के लिये अनिवार्य न मानना, ये तीन बातें ऐसी हैं जिनका कि प्रतिवाद सबसे पहले होना चाहिये। अतः सबसे प्रथम हम इनमें से सर्वज्ञताका स्वरूप विषय को ही अपनी लेखमाला का आद्य विषय रखते हैं।

लेख प्रारंभ करने से पहले उस मार्ग पर प्रकाश डालना आवश्यक दीखता है कि जिस मार्ग से इन विवादस्थ विषयों का निर्णय किया जायगा।

पं० दरबारीलाल जी लिखते हैं कि—

"शास्त्रों में हमें शुद्ध जैनधर्म नहीं मिलेगा, किन्तु उसके खोजने की सामग्री मिलेगी। वैज्ञानिक कसौटी पर कस कर जो बातें हमें ठीक मालूम हों उन्हें जैनधर्म में रखना चाहिये, बाक़ी को विकार समझकर अलग कर देना चाहिये।"

[जैन जगत वर्ष ७ अङ्क १३ पृष्ठ १]

"जैनधर्मके मर्म" नामक लेखमाला की दीवाल इनही पंक्तियों की नीवपर खड़ी की गई है। दरबारी लाल जी किस मार्ग पर क़दम रख कर आगे जाना चाहते हैं इसका आभास आपके उपर्युक्त वाक्यों से ज्ञात हो जाता है।

जैनशासन में धर्म साधन के लिये दो मार्ग बतलाये हैं—आज्ञा प्रधान तथा परीक्षा प्रधान। जैन आगम द्वारा निर्दिष्ट मार्ग को यथार्थ समझकर उसका अवलंबन करना आज्ञा प्रधानता है और युक्तियों से पदार्थ के खोटे खरेपन को जान कर सत्य स्वरूप को मानना परीक्षा प्रधानता है।

यद्यपि धर्मसाधन के लिये दोनों मार्ग उपादेय हैं किन्तु उनमें अधिक महत्व परीक्षा प्रधानता को है।

परीक्षाप्रधानी बनने के लिये जैनसिद्धान्त में स्थान स्थान पर उपदेश दिया है। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में एक अमूढ़ दृष्टि अङ्ग रक्खा है जिस का अभिप्राय यही है कि—"सत्य असत्य की परीक्षा करके सत्यको ग्रहण करो, भोलेभाले रह कर कहीं असत्य को भी न अपना बैठो।"

सांच झूठ की परीक्षा न करना जैनसिद्धान्त के अनुसार अधर्म है। इसी कारण डंके की चोट पर सबसे पहला उपदेश यह है कि धर्म के साधनभूत देव, शास्त्र, गुरु के सत्य असत्य की पहले जाँच करो, पीछे सचाई को स्वीकार करो, अन्यथा अज्ञान मिथ्यात्व में फंसे रहोगे।

विश्वविख्यात स्वामी समन्तभद्राचार्य, श्री

अकलंक देव, विद्यानन्दि स्वामी आदि दिग्गज आचार्यों का महत्त्व जैन इतिहास में उनकी **परीक्षा प्रधानता** के कारण है।

जैनधर्म में सूखे तर्क से खंडन मंडन को ही परीक्षा की सफलता या यथार्थ परीक्षा नहीं बतलाया, किन्तु जहाँ यथार्थ **अनुभव** का निवास है, जैनधर्म में उसको परीक्षा का सच्चा ध्येय बतलाया है। तद्नुसार "आत्म अनुभव के बिना सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता, मिथ्यात्व ही रहता है" यह बात जैन सिद्धान्त खुले मैदान कहता है। इस कारण आज्ञा प्रधानता तथा तर्कप्रधान परीक्षाप्रधानता केवल जैनधर्म के साधन मार्ग हैं।

हाँ! जैनधर्म ने जहाँ परीक्षाप्रधानता को महत्व दिया है, वहाँ पर **स्वेच्छाचारिता** की निन्दा भी की है—उसका एक महान अपराध ठहराया है। **स्वाधीनता** और **अराजकता** (राजनियमों का भंग करना) में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर परीक्षाप्रधानता तथा स्वेच्छाचारिता में परस्पर है। **स्वाधीनता** को उपादेय गुणरूप माना जाता है और **अराजकता** को हेय दोषरूप समझा जाता है—ठीक उसी प्रकार **परीक्षाप्रधानता** जैनधर्म में ग्रहण करने योग्य एक गुण बतलाया है और स्वेच्छाचारिता (मर्ज़ी मुआफ़िक चाहे जो कुछ मान बैठना या कर डालना) को त्यागने योग्य दोष ठहराया है।

अमेरिका आदि स्वतंत्र देशों में यद्यपि उन्नति में बाधा पहुँचाने वाले क़ानून नहीं हैं, किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वहां कोई क़ानून ही नहीं है। इसी प्रकार उचित ढंग से जाँचने योग्य विषयों की जाँच करना **परीक्षा प्रधानता** है जोकि उन्नति का एक साधन है, किन्तु इसका यह भाव कदापि नहीं **कि परीक्षा करने के लिये कोई मर्यादा या नियन्त्रण ही नहीं है**। जिन उपायों से हम परीक्षा कर सकते हों तथा परीक्षा करके कुछ परिणाम निकाल सकते हों या किसी परिणाम तक पहुँचने की संभावना हो, परीक्षा के लिये उन्हीं मार्गों का अवलंबन करना चाहिये।

वे विषय जिनका कि हमको प्रत्यक्ष और अनुमान ज्ञान नहीं, हमारी परीक्षा के योग्य भी नहीं हैं; क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान ही हमारी परीक्षा के साधन हैं।

इस कारण प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा हम विषयों की परीक्षा करें और जो जो उनसे प्रतिकूल साबित हों उनको न मानें, परीक्षा का यह प्राचीन मार्ग है। स्वामी समन्तभद्राचार्य ने तो इसी कारण शास्त्र के लक्षण में एक विशेषण ख़ास तौर से रक्खा है कि—

'अदृष्टेष्टविरोधकम्' अर्थात्—जिस में प्रत्यक्ष और अनुमान से बाधा न आती हो।

"वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर जो बातें हमें ठीक मालूम हों, उन्हें जैनधर्म में रखना चाहिये बाकी को विकार समझकर अलग करदेना चाहिये" दरबारीलाल जी अपने इस वाक्य से यदि यही भाव लेते हैं कि "जो जो बातें वैज्ञानिक कसौटी अर्थात् प्रत्यक्ष-अनुमान के प्रतिकूल हों उनको विकार समझकर निकाल देना चाहिये" तब तो इस विषय में दरबारीलाल जी तथा हमारे बीच कोई अंतर नहीं है और यह वही मार्ग है जिसका प्रतिपादन आजसे लगभग १८०० वर्ष पहले स्वामी समन्तभद्राचार्य ने किया था।

तथा—यदि पूर्वलिखित पंक्तियोंसे दरबारीलाल

जी का (व्यतिरेकरूप से) यह भाव हो कि "जो जो वैज्ञानिक कसौटी-प्रत्यक्ष अनुमान से सिद्ध न हों उनको विकार समझ कर निकाल देना चाहिये।" तब हम आपसे बहुत दूर हैं, आपका यह भाव ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इस परिस्थिति में तो अनेक सत्य बातें भी हमको निकाल देनी होंगी।

प्रत्यक्ष और अनुमान उनही बातों को जान सकते हैं जहां तक उनकी पहुँच है। आगमगम्य अनेक ऐसे विषय हैं जिनको प्रत्यक्ष अनुमान जान ही नहीं सकते। ऐसी दशा में उनको विकार या असत्य कह देना अन्याय है—परीक्षा का उपहास है। रामायण और महाभारत का युद्ध यदि हमारे प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध नहीं होता तो उसको असत्य या कल्पित करार दे देना भूल है। जहां पर जिसकी पहुँच नहीं वहां पर उसको उस स्थान का निर्णायक मानना केवल कल्पनामात्र है। इस कारण आपका उपर्युक्त अभिप्राय उचित नहीं है—वह तो उलटा परीक्षक के लिये दूष्य विकार है।

हमको यहाँ पर वस्तु की सत्यता असत्यता का ही निर्णय नहीं करना है किन्तु यह भी देखना है कि यह बात भगवान महावीर स्वामी की उपदेश परम्परा में से है या नहीं? अतः हमको जहां परीक्षा के उपर्युक्त साधनों का अवलंबन करने की आवश्यकता है वहीं पर भगवान महावीर स्वामी की उपदेश परम्परा का निर्णय करना भी आवश्यक है। यदि हम अपने ज्ञान बल से किसी बात की सत्यता सिद्ध कर दें, किन्तु यह निर्णय न कर सकें कि यह भगवान महावीर की उपदेश परम्परा से है तो हम उसको जैनधर्म के मर्मका रूप नहीं दे सकते।

जैनधर्म के मर्मका रूप तो उसी को दिया जा सकेगा, जिसका प्रतिपादन आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले भगवान महावीर स्वामी ने किया था और जो शिष्य परम्परा से अब तक चली आरही है। परीक्षाप्रधानी होने की दृष्टिसे हमको अधिकार है कि हम इस बात का निर्णय करें कि कौन कौन सी बातें प्रमाणाविरुद्ध हैं और कौन कौन श्रीमहावीर स्वामी की परम्परा द्वारा अब तक चली आरही हैं।

यदि कोई बात या उसका अंशविशेष इसके प्रतिकूल प्रमाणित हो तो हमको अधिकार है कि हम उसको मान्य न करें।

किन्तु यह बात भी दरबारीलाल जी को ध्यान में रखने योग्य है कि जहाँ हमको उपर्युक्त तौर से प्रामाणिक जैनसिद्धान्त के प्रतिकूल बात को अमान्य ठहरा देने का अधिकार है वहाँ हम को इस बात का अधिकार कदापि नहीं कि "हम उसके स्थान पर नवीन बातों की स्थापना करें"। यदि हम ऐसा करते हैं तो ऐसी बातें हमारे निजी मन्तव्य हैं या हो सकते हैं, न कि जैनधर्म का मर्म।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह बात खुलासा हो गई है कि विवादापन्न बातों के निर्णय के संबंध में इन दोनों बातों का निर्णय अवश्य करना होगा, तब ही हम उसको जैनधर्म का मर्म या अमर्म निर्धारित कर सकेंगे।

अब हम सब से प्रथम सर्वज्ञता के विषय में ही निर्णय करते हैं— [क्रमशः]

जैन स्मारकों की ऐतिहासिक उपयोगिता

[लेखक—श्री माईदयाल जी बी० ए० एल० टी० अम्बाला]

प्राचीन वस्तुएं, पुराने राजाओंके सिक्के, शिलालेख, ताम्रपत्र, स्तूप और मीनारों आदि के द्वारा एक इतिहासज्ञ ऐसी बहुत सी उलझनों को सुलझा देता है जिनको इनकी सहायता के बिना समझना अत्यन्त कठिन है। जिन वस्तुओं को हम सर्वथा साधारण और हेय समझते हैं पुरातत्व विद्याके पण्डितों ने उनको आज अमूल्य बना दिया है। सच बात है कि वस्तु का गुण गुणज्ञ ही जान सकता है। जिन घटनाओं को हम केवल पौराणिक गप्प समझते थे आज उनमें से बहुत सी प्राचीन काल की वास्तविक घटनाएं पुरातत्व विषयक खोजों से सिद्ध हो चुकी हैं। पाश्चात्य देशों में पुरातत्व विषयक सामग्री की खोज बहुत पहिले से होरही है। यूरोपीय विद्वानों ने जब यहां के इतिहास को पाश्चात्य ढंग से लिखने का प्रयत्न किया तब आवश्यकता हुई कि यहां भी उसी ढंगपर पुरानी वस्तुओं की खोजें की जायं। इस महती आवश्यकता का अनुभव कर, भारत सरकार ने पुरातत्व सम्बन्धी खोजों के वास्ते पुरातत्व अनुसंधान विभाग (Department of Archeological Survey) स्थापित किया। इस विभाग द्वारा अब तक बहुत सी ऐसी खोजें हुई हैं जिनसे भारत का अज्ञात प्राचीन गौरव फिर से सभ्य समाज के सामने आगया है। इस ही विभाग ने कई ऐसे स्थानों की खुदाई की है जहां से बहुमूल्य ऐतिहासिक सामाग्री प्राप्त हुई है। इस विभाग द्वारा प्रकाशित रिपोर्टें बहुतही उपयोगी और बड़ी २ ऐतिहासिक खोजों से परिपूर्ण होती हैं। इस विभाग द्वारा बहुत ही सराहनीय कार्य हो रहा है और भविष्य में इसके द्वारा बहुत बड़े २ कार्य्योंके संपादन किए जाने की पूर्ण आशा है। उसके लिए हम भारत सरकार की जितनी प्रशंसा करें कम है और जितना उपकार मानें थोड़ा है, किन्तु हमें यह कदापि न भूलना चाहिए कि हमारा देश बहुत बड़ा है

और उसका प्राचीन काल बहुत लम्बा है, जिसके कारण पुरातत्व सम्बन्धी खोज का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है और उसके लिए शायद वर्त्तमान विभाग जैसी दश, बीस संस्थाएं भी थोड़ी हों। पुरातत्व विषयक अन्य शाखाओं का तो कहना ही क्या है, केवल शिलालेखों के विषयमें ही भारत इतिहासज्ञ स्मिथ साहब का यह कहना है कि "भारतीय शिलालेखों के अवलोकन को समाप्त हुआ समझने से पूर्व अत्यन्त अधिक कार्य बाकी रहता है" (Infinitely more remains to be done before the study of Indian inscription can be considered as exhausted, ...)† । अब आप ही सोचिये कि इतने बड़े कार्य का बिना देश का सहायता के कैसे किया जा सकता है । यहां पर एक और बात का उल्लेख कर देना आवश्यकहै कि प्रायः खोज करने वाले विद्वान विदेशी हैं और उनको भारत सम्बन्धी बहुत सी बातों का ज्ञान नहीं, जिसके कारण वह कभी कभी बड़ी २ भूलें कर बैठते हैं । इन भूलों के वास्ते उन को दोष देना व्यर्थ है । इसके वास्ते दोष के भागी स्वयं हम भारतवासी हैं जो इस महान कार्य के वास्ते तैय्यार नहीं होते । प्राचीन साहित्य, लिपि और ऐतिहासिक कथाओं के ज्ञाता विद्वानों को खोज के कार्य क्षेत्र में उतर कर अवश्य देश की सेवा करनी चाहिए ।

अब देखना यह है कि जो जैनधर्म प्राचीन काल में देश के प्रधान धर्मों में से एक रहा है, जिसकी कीर्ति को सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, अजातशत्रु और अमोघवर्ष आदि राजाओं ने देशव्यापी बनाया है, जिसके पालने वाले वस्तुपाल तेजपाल विमलशाह आदि अमात्य हुये हैं और जिसके साहित्यको समुन्नत करने वाले स्वामीसमन्तभद्र, अकलंक, विद्यानंदि, भगवत् जिनसेन, गुणभद्र और हरिविजय सूरि आदि जैसे आचार्यगण हुए हैं, वह देश की प्राचीन अवस्था का कहाँ तक हमारे सामने लाता है ? उस से हमारे देश की प्राचीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और शिल्पकला विषयक स्थिति का कहां तक पता चलता है ? इसको देखने के वास्ते हमें कहीं दूर न जाना पड़ेगा । हमारे इतिहासज्ञों ने अपनी खोजों द्वारा, जिन में से कुछ का वर्णन अभी नीचे किया जायगा, यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है कि जैन स्मारक प्राचीन भारत के असली रूप को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। यद्यपि पहिले पहल पाश्चात्य विद्वानों ने जैन स्मारकों को बौद्ध स्मारक ही समझा किन्तु उन्होंने अपनी भूल को बहुत ही शीघ्र समझ लिया और फिर जो खोजें की वह आज सर्व मान्य और अत्यंत उपयोगी समझी जाती हैं ।

सब से पहिले सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के हाल को लीजिए । जैन ग्रन्थों में आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा हुआ है और वहां आपको जैन वर्णन किया है । साथ ही यह भी लिखा है कि आपने भद्रबाहु स्वामी से जिन दीक्षा ली और दक्षिण को गमन किया । इस जैन कथा पर किसी भी इतिहास वेत्ता ने विश्वास न किया । किन्तु जब लेविसराइस साहब ने श्रवणबेलगोल स्थान

† Early History of India by V A Smith Page 17

से प्राप्त शिलालेखों के आधार पर चन्द्रगुप्त का जैन होना सिद्ध किया उस समय, स्मिथ साहबको अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्राचीन भारतका इतिहास' में यह स्वीकार करना पड़ा कि "But on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story I am now disposed to believe that the tradition probably is true in its main outline and that Chandar Gupta realy abdicated and became a Jain ascetic." * अर्थात्—"किन्तु सब साक्षियों और कथा के विश्वास के विपक्ष में की हुई शंकाओं पर दुबारा विचार करने से मुझे अब विश्वास हो गया है कि जैन कथा मुख्य २ बातों में सत्य है और चन्द्रगुप्त ने वास्तव में राजत्याग कर जिन दीक्षा ली थी।

यदि श्रवण बेलगोल के लेख न मिलते तो इतिहासज्ञ शायद ही चन्द्रगुप्त को जैन मानते।

जैन स्मारकों में मथुरा का स्तूप भी बहुत ही महत्व का है। यह अत्यन्त बहुत ही पुराना स्तूप है और इसकी खुदाई से प्राचीन काल की बहुतसी बातों का पता चलता है। इसका विस्तृत हाल अंग्रेजी पुस्तक Jain Stupa and other antiquities of Mathura (मथुरा के जैन स्तूप और अन्य प्राचीनताओं) से मिलता है। इसके विषय में म्यूज़ियम रिपोर्ट सन् १८९०-९१ में लिखा है कि "यह स्तूप इतना प्राचीन है कि इस लेख के लिखे जाने के समय स्तूप के आदि का वृतान्त लोगों को विस्मरण हो गया था।"‡

शत्रुंजयपर्वत वाले शिलालेख भी ऐतिहासिक दृष्टि से कम महत्व के नहीं हैं। उनका अनुवाद डाक्टर मूलर ने अपनी पुस्तक Epigraphica India volume II (भारतवर्ष के शिलालेख भाग द्वितीय) में किया है। 'प्राचीन जैन लेख सग्रह' में इनको एकत्रित किया है। इन लेखों से पश्चिमी भारत की मध्यकालीन राजनैतिक स्थिति और जैनियों की अवस्था पर खूब प्रकाश पड़ता है। यहां का १२ नम्बर का शिलालेख बड़े मारके का है। उसमें ६८ श्लोक हैं। इस तीर्थ में मूलमन्दिर नाम का एक भवन है। खम्भात (बन्दर) के रहने वाले सेठ तेजपाल सौवर्णिक ने १६५० सम्वत् में उसका जीर्णोद्धार किया था। यह लेख उसी जीर्णोद्धार से सम्बन्ध रखता है। तेजपाल अमीर आदमी था। विख्यात जैन विद्वान हरिविजय सूरी के उपदेश से उसने यह उद्धार कराया था। लेखमें उद्धारकर्ता के वंश आदि का वर्णन तो है ही, किन्तु हरि विजय सूरी के पूर्ववर्ती आचार्यों और उनके शिष्योंका वर्णन भी है। ये वही हरि विजय हैं जिनको अकबर ने गुजरात से सादर बुला कर उनका सम्मान किया था और उनकी प्रार्थना पर साल में कुछ दिनों तक के लिये प्राणि हिंसा भी बन्द करदी थी। जज़िया नामक कर भी माफ़ कर दिया था। † [क्रमशः]

* Early History of India Page 116

‡ संयुक्त प्रान्त के "प्राचीन जैन स्मारक" उपोद्घात पृष्ठ १३

† सरस्वती भाग २३. खण्ड १. संख्या ६

समाचार संग्रह !

—पूज्य आचार्य शान्तिसागर जी ने अपने संघ सहित ब्यावर में चातुर्मास किया है। द्वितीय आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) भी यहाँ पर चातुर्मास करेंगे।

—ब्रह्मचारी गेवीलाल जी व प्यारेलाल जी का चातुर्मास सोंगोली (ग्वालियर) में होगा।

—श्री जैन बाला विश्राम धनूपुरा आरा को एक ट्रेन्ड अध्यापिका की आवश्यकता है।

—बिना मूल्य औषध—हमारे यहाँ १४० प्रकार की औषध तैयार हैं जिनको आवश्यकता हो बिना मूल्य मंगा लेवें।

विनीत—

सिद्धिसागर जैन वैद्य, ललितपुर (झाँसी)

—नव वधू की जगह पुरानी पत्नी—क्विलन से समाचार आया है कि एक नम्बूदरी ब्राह्मण, घर में दो स्त्रियाँ रहते हुए भी, तीसरा विवाह कराना चाहता था। लोगों ने बहुत मना किया, पर वह कामांध न माना। विरोधियों ने पर्दे का लाभ उठा कर उसी की एक स्त्री से ब्याह कर दिया। उसने जब घर आकर देखा तो बेचारा दाँत पीस कर रह गया।

—१६० वर्ष का बूढ़ा—कोहाट ज़िले में १६० वर्ष का एक बूढ़ा आदमी पाया गया है। वह ज़मींदार है, उसका नाम बाजगुल खाँ है। वह कोहाट से तीन मील दूर टप्पी गाव में रहता है। उसका एक लड़का १०० वर्ष का है और एक ९९ वर्ष का। अब भी वह तन्दुरुस्त है।

—९२ वर्ष की बुढ़िया मर कर फिर ज़िन्दा हो गई—एक डाक्टर ने घोषणा की थी कि शिरोहमाची (टोकियो) की ९२ वर्षीय एक वृद्धा मर गई। अतएव उसके घर वालों ने ताबूत में बन्द कर दिया और अन्त्येष्टि क्रिया के लिये उसे ले जाने लगे। परन्तु ताबूत में से आती हुई आवाज़ सुन कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और ताबूत को फिर खोल डाला। ताबूत के खुलते ही बुढ़िया उस में से चुपचाप बाहर निकल आई और चावल की रोटियाँ जो ताबूत के पास दफ़न करने के समय रखने के लिये लाई गई थीं, खाने लगी।

—१५ वर्ष से अन्न न खाने वाले का परलोक वास—होमडेनएविन्यू, हर्नहिल में रहने वाले एडवर्ड बुथ का ७२ वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया। इस शख्स ने १५ वर्ष से अन्न नहीं खाया था। बस दुग्ध और सोडावाटर पीकर ही रह जाता था। इसी तरह उसने पूरे १५ वर्ष व्यतीत कर दिये।

—हाथी की लाश—डा० निर्मलचन्द्र कुंडू बोगरा का हाथी मरा पड़ा है, किन्तु उसकी लाश बहुत वज़नदार होने के कारण वहां से नहीं उठाई जाती। म्युनिसपैलिटी ने ज़िला बोर्ड से उसके लिये लारी मांगी, किन्तु वज़न से टूट जाने के भय से बोर्ड ने नहीं दी।

जैन विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों से नम्र निवेदन !

संघके गत अधिवेशन में सरकारी परीक्षालयों में जैन कोर्स भर्ती कराने के लिये एक प्रस्ताव पास हुआ था, और इसके निर्धारण के लिये एक उप-समिति भी बनाई गई थी ।

संघ के इस निश्चयानुसार मैंने जैन दर्शनाचार्य जैन दर्शन शास्त्री और जैन दर्शन मध्यमा के कोर्स को संघ की निश्चित सब कमेटी में निश्चित कराके [illegible] गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज--क्विन्सकालेज बनारस की परीक्षाओं में भर्ती कराने के लिये संयुक्त प्रान्त के माननीय शिक्षा मंत्री डाइरेक्टर और उक्त कालेज के रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित किया था ।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि संघकी प्रार्थना पर ध्यान देते हुये, संयुक्तप्रान्तीय सरकार की शिक्षा विभागीय सिन्डीकेट ने जैन दर्शनाचार्य और जैन दर्शन शास्त्री के कोर्सों को तयार करने के लिये एक सब कमेटी निश्चित कर दी है । यह सब कमेटी संभवतः अपने कार्य को अगले माह में प्रारम्भ करेगी ।

संघ की उपसमिति द्वारा कोर्स के निश्चित होने पर भी मुझे इस सम्बन्ध में आपकी सम्मति की अत्यन्तावश्यक्ता है । अतः आपसे प्रार्थना है कि आप अपनी सुविधानुसार अपनी सम्मति से मुझे जूलाई के अन्त तक सूचित करने की कृपा करें, जिससे आवश्यकता पड़ने पर मैं कोर्स को और भी परिमार्जित रूपमें उक्त सब कमेटीके समक्ष उपस्थित कर सकूं । आशा है कि आप इस कार्य में अवश्य सहयोग प्रदान करेंगे ।

विचारार्थ उपस्थित किया गया कोर्स निम्न प्रकार है :—

मध्यमा परीक्षा ।

प्रथम वर्ष १—न्यायदीपिका-आलापद्धति ।
" २—मुनिसुव्रतकाव्य पूर्ण ।
" ३—अनुवाद ।
द्वितीय वर्ष १—प्रमेयरत्नमाला, सागारधर्मामृत ।
" २—चन्द्रप्रभकाव्य १-५ सर्ग ।
" ३—अनुवाद ।
तृतीय वर्ष १—आप्तपरीक्षा ।
" २—बृहद्द्रव्यसंग्रह ।
" ३—युक्त्यनुशासन लघीस्त्रय ।
" ४—अनुवाद ।
चतुर्थ वर्ष १—सप्तभङ्गी तरङ्गिणी, नयचक्र ।
" २—सर्वार्थ सिद्धि ।
" ३—अनुवाद ।
" ४—व्युत्पत्ति ।

शास्त्री ।

प्रथम वर्ष १—प्रमेयकमल मार्तण्ड पूर्वार्द्ध ।
" २—जीवकाण्ड ।
द्वितीय वर्ष १—प्रमेयकमल मार्तण्ड पूर्ण ।
" २—कर्मकाण्ड ।
तृतीय वर्ष १—अष्ट सहस्री ।
" २—पञ्चास्तिकाय ।

आचार्य ।

प्रथम वर्ष १—त्रिलोकसार ।
" २—पञ्चाध्यायी, प्रवचनसार ।
द्वितीय वर्ष १—राजवार्तिक पूर्वार्द्ध ।
" २—समयसार ।
तृतीय वर्ष १—श्लोक वार्तिक ।
" २—राजवार्तिक पूर्ण, मूलाचार ।

विनीत प्रार्थी—**राजेन्द्रकुमार जैन** प्रधान मन्त्री, श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ ।

मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रगट किया ।

वार्षिक मूल्य ३।) रुपया एक प्रति का दो आना नमूना बिना मूल्य

विद्यार्थियों संस्थाओं और संघ के सभासदों से २) रुपया

ऑनरेरी सम्पादकः—
पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी।
पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

पृष्ठ संख्या बढ़ाई जायगी और उपहार भेंट किया जायगा

आवश्यक निवेदन!

१—जैनदर्शन के विषय में अनेक महानुभावों ने पत्र द्वारा अपनी शुभ सम्मति भेजी है तथा अनेक सज्जनों ने जैनदर्शन के लिये मंगलकामना प्रगटकी है; जैनदर्शन उनका आभारी है।

२—जैनदर्शन पत्र जिन २ पत्र-संपादकों की सेवा में भेजा गया है उनमें से अनेक संपादकों ने परिवर्तन में अपने पत्र संपादक-जैनदर्शन के नाम भेजना प्रारम्भ नहीं किये हैं, सो उन्हें तुरंत अपने पत्र परिवर्तनमें रवाना करने चाहियें जिससे जैनदर्शन बराबर उनकी सेवामें पहुँचता रहे।

३—जैनदर्शन में प्रकाशित होने के लिये अनेक सुयोग्य लेखकों के लेख व कवितायें आ रही हैं, किंतु स्थान की कमी से वे सब जैनदर्शन में प्रकाशित नहीं हो पाते, इसके लिये पत्र की पृष्ठ संख्या बढ़ाकर अनेक रोचक व आवश्यक स्थायी लेख प्रकाशित करने के लिये कतिपय सज्जनों ने सम्मति प्रदान की है। शास्त्रार्थ-संघ उनकी शुभ सम्मति पर विचार कर रहा है। संभव है कि उनकी सम्मति स्वीकृत होकर जैनदर्शन में कुछ पृष्ठ और बढ़ा दिये जावें।

४—लेखक महानुभाव स्पष्ट सुन्दर अक्षरों में अपना लेख कागज़ की एक ओर लिखकर भेजा करें, जिससे दूसरी प्रेस कापी करने की आवश्यका न रहे।

५—कुछ लेख पारस्परिक वैमनस्यसूचक भी मिले हैं। जैनदर्शन उन लेखोंको सादर अस्वीकार करता है। आगामी कोई भी सज्जन व्यक्तिगत विद्वेषसूचक तथा सर्वोपयोगी संस्थाके निंदक लेखोंके भेजनेका कष्ट न उठावें। जो समालोचना हृदयसे सजीव लेखनीद्वारा लिखीगई होगी; वही 'जैनदर्शन'को स्वीकार होगी। मैनेजर-'जैनदर्शन' C/o दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अंबाला छावनी।

वर्ष १ | बिजनौर-'वीर' निर्वाण संवत् २४५९ | 1 अगस्त, सन् 1933 ई० | अङ्क २

[ले०—श्री कल्याणकुमार जी 'शशि']

जैन दर्शन है ज्ञान निराला, जैन दर्शन है ज्ञान निराला !

इसके नित्य अटल सिद्धान्त, हरने वाले मिथ्या ध्वान्त, दलने वाले दुखमय-भ्रान्त,

कर्मठ वीर बनाने वाला, जैन दर्शन है ज्ञान निराला !

सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञान, सत् सम्यक् चारित्र महान, सुख के हैं निर्मल सोपान,

शिव मन्दिर पहुंचाने वाला, जैन दर्शन है ज्ञान निराला !

तीर्थंकर के अमृत बैन, देते शान्ति-धर्म सुख चैन, देखो ज़रा उठा कर नैन,

निर्मल रस बरसाने वाला, जैन दर्शन है ज्ञान निराला !

उस का अनेकान्त उत्कर्ष, संसृति का निर्मल निष्कर्श, 'शशि' सबसे ऊंचा आदर्श,

जग उत्कृष्ट बनाने वाला, जैन दर्शन है ज्ञान निराला !

—卐—
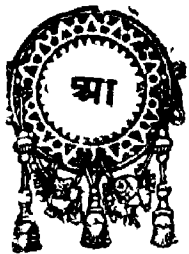
रक्षाबन्धन

पत्तिके भंवरमें फंसे हुए साधर्मीजन की रक्षा करने के लिये अपने सच्चे स्वार्थ का भी मोह छोड़कर किस प्रकार उद्यमशील बनना चाहिये, इस बातका जैन-जनता को पाठ सिखाने के लिये जिन पूज्य विष्णु कुमार ऋषीश्वर ने अपना अनुपम आदर्श संसार के सामने उपस्थित किया था, उनका स्मारक दिवस श्रावणी या रक्षाबन्धन आगया है। इस शुभ दिनमें श्रीअकंपनाचार्य के संघ का, जिसमें कि ७०० मुनिवर थे, भयानक उपसर्ग से परित्राण हुआ था। विश्वहितंकर, सज्जनता की मूर्ति, साधुओं की सज्जनता का, दुर्जनों की निंदनीय दुर्जनता का तथा परोपकारशील महात्मा के परोपकार का सजीव चित्र इस दिन संसार ने देखा था।

बात बहुत प्राचीन समय की है। उस समय उज्जैनका शासक श्रीवर्मा था। उसके बली, बृहस्पति, प्रह्लाद, नमुचि नामक चार मंत्री थे। वे वैदिक मतानुयायी होने के कारण जैनधर्म के साथ द्वेषभाव रखते थे। उस समय एक दिन श्री अकंपनाचार्य अपने सात सौ तपस्वियों के साथ विहार करते हुए उज्जैन के बाहर आ ठहरे। निमित्तज्ञान से किसी उपद्रव की आशंका जानकर उन्होंने अपने संघ के सब साधुओं से मौन रखने का आदेश दिया; किंतु उनकी यह आज्ञा उन श्रुतसागर मुनि ने नहीं सुनी थी, जोकि उस समय भोजन के लिये नगर में गये हुए थे।

श्रीवर्मा अपने चारों मंत्रियोंके साथ साधुसंघ की वंदना के लिये आया, किंतु आचार्य की आज्ञानुसार किसी भी साधु ने राजा तथा मंत्रियों को न तो आशीर्वाद दिया न उनसे कोई अन्य बात की, मौन बने रहे। इसका कारण मंत्रियों ने राजा को यह बतलाया कि ये सब मूर्ख हैं, इस कारण आपके सामने चुप हो रहे हैं।

वंदना करके नगरको लौटते समय मार्गमें राजा को श्रुतसागर मुनि मिले। मंत्रियों ने अभिमान के साथ उनसे कुछ छेड़छाड़ की। श्रुतसागर मुनि अच्छे विद्वान थे ही। उन्होंने अपने बुद्धिबल से उन मंत्रियों को हराकर राजाके सामने उनको नीचा दिखाया।

वहां से चलकर आचार्य महाराज के पास

पहुँचकर रास्ते का समाचार श्रुतसागर जी ने आचार्य महाराज को कह सुनाया। आचार्य महाराज ने कहा कि तुमने यह ठीक नहीं किया। तुम्हारे इस कार्यसे सारे संघपर उपद्रव आने की आशंका है, इस कारण तुम आज उसी स्थान पर जाकर तपस्या करो जहां मंत्रियोंके साथ तुम्हारा वादविवाद हुआ था। श्रुतसागर मुनि ने ऐसा ही किया।

श्रुतसागर साधु से अपमानित हुए मंत्रियों ने अपनी दुर्जन क्रिया दिखाकर रात्रिके अंधेरे में मुनिसंघ से बदला लेना चाहा। ऐसा विचार कर वे चारों मंत्री नंगी तलवार अपने हाथ में ले काले अंधकार में छिपकर काला कृत्य करने के लिये चल पड़े, किन्तु मार्ग में श्रुतसागर तपस्वी को देखकर प्रसन्न हुए और आपस में कहा कि मुख्य अपराधी सबसे पहले मिल गया; प्रथम ही इसको समाप्त करें।

यह सोचकर कि यहां हमारे इस अधमकार्य को देखने वाला कोई नहीं और इन चारकी नंगी तलवारों के प्रहार से इस साधु का जीवन बचाने वाला भी कोई नहीं, मुनि महाराज की जीवनलीला समाप्त करने के लिये चारों ने एक साथ अपने अपने खूनी हाथ उठाये, किन्तु उस बन की देवी शक्ति ने, जिसको कि उनके चर्मनेत्र नहीं देख पाये थे, उन्हें जहां का तहां कील दिया।

ऊपर से उज्वल किन्तु अन्दर से काले मंत्रियों की काली क्रिया संसार को दिखलाने के लिये जब सूर्य ने पूर्व दिशा से प्रकाश फेंका, तब साधुओं की वंदनाके लिये आनेवाले जनसमूहने श्रुतसागर मुनि के ऊपर तलवार उठाये हुए, किन्तु कीलित होने से पत्थर की तरह ठहरे हुए मंत्रियों को देखा। यह पाप समाचार राजा के पास जापहुँचा। राजाने भी आकर अपने मंत्रियों की काली करतूत को देखा और मुनिराज से प्रार्थना कर दैवी शक्तिसे छुड़ा स्वयंही उनको उचित दंड देने की तयारी की, किन्तु मुनि महाराज ने उनको स्वयं क्षमा कर राजा से भी क्षमा करा दिया। अतः राजा ने मंत्रियों को अपमानित करके अपने राज्य से बाहर निकाल दिया।

वे मंत्री वहां से निकल कर हस्तिनापुर पहुँचे। वहां पर अपने बुद्धिबल से राजा पद्मराय के मंत्री बन गये। पद्मराय का सिंहबल नामक एक प्रबल शत्रु था जो कि उसके वश में नहीं आता था। उन मन्त्रियों ने युक्ति से उसको जीवित पकड़ कर पद्मराय के सामने खड़ा कर दिया।

राजा अपने अजेय वैरी को अपने सामने कैदी रूप में खड़ा देखकर मंत्रियों से बहुत प्रसन्न हुआ और उनसे यथेच्छ वर माँगने को कहा। मन्त्रियों ने कहा कि हम को इस समय कुछ आवश्यकता नहीं, किसी अवसर पर आप से प्रतिज्ञा पूर्ण करावेंगे।

दैवयोग से श्री अकंपनाचार्य का वही सात सौ ऋषियों का संघ विहार करता हुआ हस्तिनापुर के बन में आ पहुँचा। यह समाचार जब मन्त्रियों को मालूम हुआ तो उन्होंने साधु संघ से उज्जैन के अपमान का बदला लेने के लिये उस समय पद्मराय राजा से उसकी प्रतिज्ञानुसार सात दिन का राजकार्य अपने हाथ में ले लिया।

फिर नरमेध यज्ञ करने के बहाने उन मंत्रियोंने उन साधुओं के चारों ओर दुर्गंधित तथा धुआं पैदा करनेवाले पदार्थ एकत्र कर अग्नि जलाई, जिस के कारण उन तपस्वियों का गला उस धुएंसे घुटने

लगा। पद्मराय राजा प्रतिज्ञाबद्ध था, इस कारण इस अत्याचार का कुछ प्रतिकार न कर सका।

मिथिलापुरी के समीप जंगल में श्रुतसागर-चन्द्राचार्य तपस्या कर रहेथे। उन्होंने आधी रातके समय आकाश में श्रवण नक्षत्र को कांपते हुए देखा और अवधिज्ञान से जाना कि हस्तिनापुर में सात सौ तपोधन मुनियों के ऊपर घोर उपद्रव हो रहा है। उनके मुख से 'हा हा' शब्द निकलपड़ा। पास में बैठे हुए पुष्पदन्त नाम के विद्याधर क्षुल्लक ने पूछा कि इस समय आपके मुख से यह दुख जनक शब्द क्यों निकला? आचार्य ने उसको हस्तिनापुर की दुर्घटना का हाल बतलाया और कहा कि धरणिभूषण पर्वत पर विष्णुकुमार मुनि तप कर रहेहैं। उनको अपना शरीर छोटा, बड़ा आदि बनाने की विक्रियाऋद्धि प्राप्त होगई है। उनके पास जाकर सब समाचार कहो; अकंपनाचार्य का उपसर्ग वे दूर कर सकते हैं।

क्षुल्लक विद्याधर थे, इस कारण आकाशमार्गसे शीघ्र विष्णुकुमार मुनि के पास पहुँचे और उनसे सारा वृत्तान्त कहा, उन्होंने अपनी विक्रिया ऋद्धि जांचने के लिये अपनी भुजा बढ़ाई तो वह बहुत लम्बी हो गई। अपनी शक्ति की जांच करके वे हस्तिनापुर पहुँचे; वहां पहले तो पद्मराय राजा को फटकारा, फिर अपना शरीर एक बौने ब्राह्मण का बना कर वहां पहुँचे जहां बली आदि मन्त्री यज्ञ करा रहे थे। इनके मुख से शुद्ध वेद मन्त्रों को सुनकर बली बहुत प्रसन्न हुआ। उसने विष्णुकुमार मुनिसे कहा कि आप जो कुछ मांगेंगे वह आपको मिलेगा।

बौने रूप को धारण किये विष्णुकुमार मुनि ने अपने रहने के लिये तीन क़दम पृथ्वी मांगी। यह सोचकर कि उनके ठिंगने शरीर के कारण तीन कदम स्थान बहुत थोड़ा होगा, बली ने कहा कि यह तो कुछ नहीं, आप कुछ और मांगिये। विष्णुकुमार मुनि ने कहा कि मुझको तीन क़दम ज़मीन से अधिक कुछ नहीं चाहिये। विक्रिया ऋद्धिसे अपरिचित बली ने कहा—जैसी आप की इच्छा।

तब विष्णुकुमार मुनि ने अपनी विक्रियाशक्ति से शरीर बढ़ा कर लिया और टांगे फैला कर दो क़दम में सारा मनुष्य क्षेत्र नाप लिया, तीसरे कदम के लिये कुछ स्थान शेष न रहा। यह देख विष्णु-कुमार मुनि की अनुपम सामर्थ्य जान कर बली ने क्षमा मांगी। इसके बाद पृथ्वी के ऊपर मदहीन बली का स्वामित्व दूर हुआ। उधर भी अकंपनाचार्य के समस्त संघ का उपसर्ग भी दूर हुआ।

मुनियों का गला धुएं से घुट गया था। इस कारण श्रावकों ने उनको उस दिन खीर, सिमरी का भोजन कराया।

वह दिन श्रावण सुदी पूर्णिमा का था, उसी समय से अकंपनाचार्य के मुनि संघ की रक्षा के स्मरण में इस दिन प्रति वर्ष रक्षाबन्धन मनाया जाता है और उस दिन खीर सिमरी का भोजन भी सब लोग बनाया करतेहैं। यादगार के लिये हाथ में राखी या रक्षासूत्र प्रायः सभी मनुष्य पहनते हैं।

सनातनी लोगों ने विष्णुकुमार मुनि को विष्णु भगवान का नाम देकर उन के बौने आकार पर वामन अवतार की कल्पना की है।

यह घटना जैन समाज के सामने आचरण में लाने योग्य आदर्शनीति रखती है। धार्मिक संकट के समय श्रुतसागर आचार्य ने रात्रि समय अपना मौन व्रत तोड़ दिया। विष्णुकुमार मुनि आत्म-

ध्यान सरीखे अपने पवित्र स्वार्थ को कुछ समय के लिये छोड़ कर अकंपनाचार्य के संघ को बचाने के लिये ऐसे बेचैन हुए कि वामन रूप बनाकर उन्होंने बली मन्त्री को छल लिया और अकंपनाचार्य का उपसर्ग दूर कर के चैन पाया। उस समय उन्होंने जितना ध्यान मुनिसंघ रक्षा का रक्खा उतना ध्यान अपनी मुनिचर्या पर नहीं दिया।

हम प्रति वर्ष रक्षाबन्धन तो मनाते हैं, किन्तु सिवाय रूढ़ि मनाने के इस दिन और कुछ हितकर कार्य नहीं करते। यही बात है कि अपने सामने श्री विष्णुकुमार मुनि का कुछ भी आदर्श नहीं रखते। बहुत से जैनों को इस दिन की सुंदर कथा का भी ज्ञान नहीं; उनके विचार में यह एक अजैन त्योहार है। अनेक जगह इस दिन न तो रक्षाबंधन की कथा स्त्री पुरुषों को सुनाई जाती है और न विष्णुकुमार मुनि का पूजन ही होता है। जैन भ्राताओं को रक्षाबन्धन के दिन निम्नलिखित कार्य करने आवश्यक हैं :—

१—अकंपनाचार्य तथा विष्णुकुमार मुनि की पूजा जो कि पं० बाबूराम जी की बनाई हुई भाषा में है, प्रातः काल अवश्य करनी चाहिये।

२—शास्त्रसभा करके समस्त स्त्री पुरुषों को रक्षाबन्धन की कथा सुनाकर उनको यह बतलाना चाहिये कि यह एक जैन त्योहार है।

३—हमारे चार संघों में किस संघ पर क्या व कैसा कष्ट है और वह कैसे दूर किया जा सकता है? इस बात का विचार करें।

४—जैनसमाज की आर्थिक परिस्थिति खराब होती जा रही है, जिससे कि अनाथ बच्चों की एवं अनाथ स्त्रियोंकी संख्या बढ़ रही है। शक्तिभर चेष्टा से उनके दुख दूर करने का उद्योग करने का निश्चय करें।

५—धार्मिक रक्षा के लिये अपने हृदय पर श्री विष्णुकुमार मुनि की आदर्श सेवा जमा लेवें और सदा चित्तपर यह भाव अंकित रहे कि आवश्यकता के समय धर्मरक्षा के लिये विष्णु कुमार मुनि के समान अपने स्वार्थ को ठोकर लगाकर सबसे प्रथम धर्मरक्षा के कार्य में अपनी शक्ति लगा देंगे।

६—निज़ाम स्टेट हैदराबाद में पूज्य मुनि जयसागर जी का विहार वहाँ के आफीसरों ने बंद कर दियाहै, यह जैनधर्मका अपमान है। इसके प्रतिकार के लिये भारी प्रयत्न करना आवश्यकहै। तार भेज कर निज़ाम सरकार को निवेदन करना चाहिये कि पूज्य शान्तिसागर जी आचार्य महाराज के समान मुनिजी को भी विहार करने की रुकावट दूर कर दें। शास्त्रार्थ संघ इस विषय में जो उद्योग कर रहा है, उसको सहायता देनी चाहिये।

जैन तीर्थङ्करों की चौबीस संख्या का अनुकरण करके अन्य प्रचलित मतों ने अपने मतप्रवर्तकों की संख्या भी चौबीस ही बतलाई है। सनातन मतानुयायी अपने अवतारों को २४ कहते हैं, जिन में उन्हों ने एक आठवां ऋषभदेव का भी अवतार माना है। ऋषभदेव का जीवनचरित्र भी भागवत में जैन ग्रन्थों के अनुरूप मिलता जुलता है। कुछ कच्छप आदि अवतार ऐसे माने हैं जो जैन तीर्थंकरों के चिन्ह हैं और कतिपय उन रामचन्द्र, कृष्ण, परशुराम आदि प्रख्यात प्रभावशाली वीरों को भी अवतारों की गणना में सम्मिलित कर रक्खा है।

महात्मा बुद्ध ने बौद्ध मत की नींव डाली थी और वे महात्मा बुद्ध पहिले पिहितास्रव जैन साधु के शिष्य रहे थे। हाथ में भोजन करना, केशों का अपने हाथोंसे लोंच करना, खड़े होकर भोजन करना आदि जैन साधुओं की क्रियाएं पहले महात्मा बुद्ध स्वयं किया करते थे, यह उनके जीवन-वर्णन से प्रगट है। उन महात्मा बुद्ध के द्वारा प्रचलित बौद्ध मत ने भी जैनधर्म का अनुकरण करके अपने बुद्धों की संख्या चौबीस ही मानी है और इन महात्मा गौतम बुद्ध को अपना अन्तिम बुद्ध बतलाया है। आदि।

इसी प्रकार देव मन्दिरों के निर्माण का तथा देवप्रतिमाओं के निर्माण का अनुकरण भी अजैन मतों ने जैन मत से किया है। जैन इतिहास जैन मन्दिरों तथा जैन प्रतिमाओं की रचना का प्रारम्भ आज से असंख्य वर्ष पूर्व के समय में बतलाता है; तदनुसार देव मूर्तियाँ सब से अधिक प्राचीन हैं भी जैनियों की! अनेक जैन प्रतिमाएं ऐसी उपलब्ध हैं जिनका समय इतिहास वेत्ता विद्वान महात्मा बुद्ध से बहुत पहले का निश्चित करते हैं। इतना ही नहीं किन्तु मुहनजोदारो में जो सिक्के मिले हैं जिन को कि ऐतिहासिक विद्वान पांच हज़ार वर्ष पुराना क़रार देते हैं उन सिक्कों पर भी भगवान ऋषभदेव का चिन्ह अङ्कित है।

यदि विचार किया जाय तो पुरातन मन्दिरों और प्रतिमाओं के कारण ही जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध होतीहै। इस समय बङ्गाल कर्णाटक, महाराष्ट्र आदि में बहुत प्राचीन मन्दिर अनेक विद्यमान हैं। बंगाल में कई ऐसे मंदिर भग्न दशा में मौजूद हैं, जिनको सरकारी गज़टियर ने दो हज़ार वर्ष पहले का निश्चित किया है। दो हज़ार वर्षों के प्रबल तूफ़ानों, बंगाल की घोर बरसात तथा सर्दी, गर्मी

के प्रहारों को सहते हुए भी आज वे मन्दिर खड़े हुए हैं और अपने आप को 'जैन मन्दिर' प्रगट कर रहे हैं; ये बातें हैं जोकि आज कल मन्दिर-निर्माण कराने वालों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

जिनालयों के निर्माण कराने में इस समय भी हमारे भाई विपुल धन व्यय किया करते हैं, किन्तु वह सब कुछ करने पर भी वे प्राचीन मन्दिरों के समान अपने पुनीत कार्य में सफलता नहीं पाते। जो बात जहां से लाभदायक मिलती हो वहां से उस बात को ग्रहण कर लेना, यही मनुष्य की बुद्धि का सराहनीय गुण है। इस कारण जिन मन्दिर-निर्माण में हम जिन कारणों से अधिक सफल हो सकते हैं, उन कारणों को हमें अपने व्यवहार में लाना चाहिये। अब यह देखना है कि प्राचीन मन्दिरों में उपादेय कौन सी विशेषताएं हैं—

१—प्राचीन मन्दिरों से सब से अधिक ग्रहण करने योग्य बात 'दृढ़ता' यानी मज़बूती है। आज कल मन्दिरों को फ़ैशनेबल बनाकर सुन्दरता का जितना ध्यान रक्खा जाता है उतना ख़याल मज़बूती का नहीं रक्खा जाता। इसीलिये आधुनिक मंदिर प्रति वर्ष मरम्मत कराते हुए भी कमज़ोर बने रहते हैं। बिना मरम्मत कराये उनका सौ दो सौ वर्ष खड़ा रहना कठिन होजाता है, जब कि प्राचीन मन्दिर दो दो हज़ार वर्ष तक खड़े रहने योग्य मज़बूत बने हुए हैं। सुन्दरता भी होनी चाहिये, किन्तु मज़बूती को उस से भी अधिक मुख्य रखना चाहिये और ऐसे विकट समय जब कि जैन मन्दिरों के ऊपर दूसरे लोगों की बुरी दृष्टि सदा बनी रहती है।

इस कारण मन्दिरों की दीवालें मोटी तथा पत्थर की बनाई जावें। छत में लकड़ी के बजाय, पत्थर, लोहा या डाट हो। शिखर, दरवाज़े आदि खूब शक्तिशाली हों।

२—प्राचीन मन्दिरों से दूसरी बात हम को अपने नवीन मंदिरों में यह लेनी चाहिये कि उनमें शिलालेख अवश्य रक्खे जावें। पहले समय में जो भी मंदिर निर्माण किया जाता था, मंदिर बनाने वाला उसमें अपना, अपने परिवार, गुरु आदि का परिचय भी पत्थर पर लिखाकर अंकित कर देता था, जिससे कि हज़ारों वर्ष पीछे भी आज हम उस मंदिर का समय, निर्माता का परिचय आदि जान सकते हैं।

यदि केशरियानाथ के मंदिर में शिलालेख न होते तो आज हमको उसे दिगम्बरीय मंदिर सिद्ध करने में कठिनाई होती। उनही दिगम्बरीय प्रमाणों को मिटा देने के लिये हमारे श्वेताम्बरीय भाइयों ने प्रयत्न किया था, किन्तु वे शिलालेख दीवालों में इस प्रकार जड़े हुए हैं कि उनका निकालना सरल काम नहीं।

अतः प्रत्येक मंदिर में चाहे वह पंचायती हो अथवा किसी एक भाई का, उसमें कम से कम एक शिलालेख अच्छे सुरक्षित स्थान पर मज़बूती से जड़ा हुआ होना चाहिये।

३—प्राचीन मंदिरोंके बाहर तथा भीतर पत्थरों पर उकेरे हुए सोलह स्वप्न, प्रतिमाएं, आठ प्रातिहार्य आदि जैन चिन्ह पाये जाते हैं, जिनसे कि किसी दुःसमय वह जैनमंदिर यदि ज़बर्दस्ती अजैन मंदिर बना लिया गया तो अपने जैन चिन्हों के कारण आज भी अपने आप को ऐतिहासिक जैन

मंदिर प्रगट करता है। जैसे कि कोल्हापुर में एक बहुत विशाल पद्मावतीमन्दिरके नाम से विख्यात जैन मंदिर था, किन्तु आज अजैन लोगों के हाथमें आकर लक्ष्मी मन्दिर बना हुआ है, तथापि उसमें छत के अन्दर, दरवाजोंपर जो मूर्तियां अंकितहैं उन से वह आज भी अपने आपको जैनमंदिर कह रहाहै। ग्वालियर का क़िला भी बनी हुई पाषाण प्रतिमाओं के कारण अपने जैनत्व को प्रगट कर रहा है।

इसी प्रकार आज कल भी शिखर, छत, दीवाल आदि स्थानों पर पत्थर में उकेरे हुए प्रतिमाओं आदि के चिन्ह अवश्य होने चाहियें।

४—नवीन मंदिरों में ज़मीन के भीतर कम से कम एक अच्छा तलघर भी अवश्य (तहख़ाना या भौंरा) बना कर उसका गुप्त द्वार रखना चाहिये जिससे कि आपत्ति समय पूज्य प्रतिमाओं, शास्त्रों तथा मूल्यवान सामान को उस तलघर में रख कर उनको सुरक्षित रक्खा जा सके।

५—पांचवीं बात नवीन मंदिरों में जहां तक हो सके, यह भी अवश्य होनी चाहिये कि उनके साथ या उनके नीचे दुकानें बनाई जावें, जिनका कि कुछ न कुछ किराया आता रहे। ऐसा होने से मंदिर की स्थायी आय बनी रहती है और वहां के जैन भाइयों की आर्थिक परिस्थिति ख़राब होजाने पर भी मंदिर का कार्य ठीक चलता रहता है। अनेक स्थान ऐसे हैं जहां कि अनेक मंदिर हैं, किंतु उनके ख़र्च चलाने योग्य न तो वहाँ जैनियों के घर रहे हैं और न उनकी परिस्थिति अच्छी है; इसलिये अविनय हो रहा है।

इस कारण मन्दिर के नीचे अथवा उसके साथ किराये पर उठने योग्य दुकानें अवश्य बनानी चाहियें। यह बात सम्मेदशिखरजी, पावापुरी आदि तीर्थक्षेत्रों के प्रबन्धकर्ताओं को भी नोट कर लेना योग्य है।

उपर्युक्त पांचों बातें बहुत उपयोगी हैं। नवीन मन्दिर जो निर्माण करावें वे इनको कार्यपरिणत अवश्य करें। पहले बने हुए मंदिरों में शिलालेख तथा तलघरों का प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये। हमारे मित्र न केवल इसको पढ़ें, किन्तु इसका शक्तिभर उपयोग भी करें। —सम्पादक।

प्रश्नोत्तर-रत्नमाला

लेखक—
पं० कैलाशचन्द्र जैन, सिद्धान्त शास्त्री, न्यायतीर्थ

विक्रम की ९ वीं शताब्दी के अन्त में महाराज अमोघवर्ष (प्रथम) जैनधर्म के परम श्रद्धालु, सहायक और उन्नायक हो गये हैं। वह राष्ट्रकूट या राठौर वंश के राजा थे। उस समय राष्ट्रकूटों का राज्य सारे महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रान्तमें फैलाहुआ था। अपनी उदारता और दानशीलता से अमोघवर्ष ने अपने नाम को इतना सार्थक एवं प्रसिद्ध किया कि पीछे से वह एक प्रकार की पदवी समझी जाने लगी, और उसे राठौरवंश में तीन चार राजाओं ने अपनी प्रतिष्ठा का कारण समझ कर धारण किया। इन पिछले अमोघवर्षों के कारण इतिहास में यह अमोघवर्ष (प्रथम) के नाम से उल्लिखित होते हैं।

अमोघवर्ष जैसे वीर और उदार थे, वैसे ही विद्वान भी थे। उनके कुछ श्लोक जो "प्रश्नोत्तर-रत्नमाला" के नाम से प्रसिद्ध हैं बड़े ही महत्व के हैं। वे सरस और सरल होकर उत्तमोत्तम उपदेशों से भी परिपूर्ण हैं। श्लोक-रत्नों की यह माला मालाकार के शब्दों में सचमुच "सुधियाम् सदलंकृतिः" है। कविने इन श्लोकों के द्वारा कुछ प्रश्न करके स्वयं ही उनके उत्तर दिये हैं। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में इसका तिब्बती भाषा में भी अनुवाद हो चुका है, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि इसकी रचना अमोघवर्ष प्रथम ने संस्कृतमें की थी।

विद्यापति नामक किसी अन्य विद्वान के भी कुछ श्लोक "प्रश्नोत्तर रत्नमाला" के नाम से प्रख्यात हैं। इतिहास में 'विद्यापति' नामक दो विद्वानों का उल्लेख पाया जाता है—एक काश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण-जिनकी उपाधि विद्यापति थी और दूसरे मिथिला वाले विद्यापति। इन दोनों में से किसने उन श्लोकों की रचना की, यह अभी तक विवादग्रस्त बना हुआ है।

"प्रश्नोत्तर रत्नमाला" नाम से प्रख्यात दो रचनाओं को देखकर हमारे मन में यह जानने का कौतूहल उपजा कि क्या इन दोनों रचनाओं में परस्पर कोई संबंध है—क्या एक मालाकार ने दूसरे कवि की माला के सौरभ से आकृष्ट हो नवीन माला की रचना की है? दोनों मालाओं के श्लोक-रत्नों की परीक्षा करने पर हमारा सन्देह सत्य निकला। विद्यापति ने अवश्य ही अपने पूर्ववर्ती कवि महाराज अमोघवर्ष की माला को देख कर उसी छन्द में उसी नाम से नवीन माला का निर्माण किया, जैसा आगे चलकर मालूम होगा।

यह विद्यापति कौन हैं? हमारा अनुमान है कि विद्यापति बिल्हण ही दूसरी माला के निर्माता हैं। उन्हों ने काश्मीर-नरेश कलश के राज्यकाल में विक्रम संवत् ११२० के लगभग, काश्मीर राज्य छोड़ा और मालवे की सुप्रसिद्ध धारानगरी में प्रवेश किया। वहां पर जैन विद्वानों और श्रीमानों

* देखो विद्वद्रत्नमाला प्रथम भाग

से भी उनका घनिष्ट सम्बन्ध हुआ। इसका प्रमाण विल्हण की 'कर्णसुन्दरी' नाटिका है, जिस के मङ्गलाचरण में जिनदेव को नमस्कार किया गया है और जो अणहिलपाटन के राजा कर्ण के जैन मन्त्री संपत्कर के बनवाये हुए आदिनाथ भगवान के प्रतिष्ठा-महोत्सव पर खेलने के लिये बनाई गयी थी।

हम ऊपर लिख आये हैं कि ईसा की ११ वीं शताब्दी में अमोघवर्ष की माला का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ। इस से ज्ञात होता है कि उस समय जैन तथा जैनेतर विद्वानों में उसकी पर्याप्त ख्याति थी, जो बहुत दिनों तक स्थिर रही। जिस समय विल्हण ने दक्षिण प्रदेश को अपना कार्य क्षेत्र बनाया, उसके कानों तक भी इसकी चर्चा पहुँची और उसने उन श्लोकों को देख, विनोदवश या उन की ख्याति से आकृष्ट हो, उसी ढंग पर एक नवीन माला रच डाली।

नीचे हम "माला" के कुछ उपयोगी श्लोक विद्यापति के श्लोकों के साथ सानुवाद उद्धृत करते हैं। पाठक देखेंगे, कि दोनों में कितना शब्द तथा अर्थ-साम्य है। अनुवाद के नीचे अपूर्ण श्लोक विद्यापति के हैं:—

(१)

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमान मिदमेव।
मनुजेषु दृष्टतत्त्वं स्वपरहितायोद्यतं जन्म ॥

प्रश्न—संसार में सार वस्तु क्या है?

उत्तर—बार बार विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यों में तत्त्वज्ञान तथा अपने और दूसरों के हित के लिये जीवन का उत्सर्ग।

संसारे कः सारः गङ्गाऽनङ्गारि सेवा च।
(विद्यापति)

(२)

किं गहनं स्त्री चरितम्
कश्चतुरो यो न खंडितस्तेन।
किं दारिद्र्यम सन्तोष एवं
किं लाघवं याच्ञा ॥

प्रश्न—गहन क्या चीज़ है?

उत्तर—स्त्रियों का चरित्र।

प्र०—चतुर कौन है?

उ०—जो उसके चक्र में नहीं आया।

प्र०—दरिद्रता क्या है?

उ०—असंतोष।

प्र०—और लघुता क्या है?

उ०—मांगना।

"किं गहनं भुजगादपि स्त्री चरितं राज सेवा च।"
(विद्यापति)

(३)

नलिनी दल गत जल लव तरलं
किं यौवनं धनमथायुः।
के शशधर कर निकरानु
कारिणः सज्जना एव ॥

प्र०—कमलिनी के पत्र पर गिरी हुई जल की बूंद के सदृश चंचल क्या है?

उ०—यौवन, धन और आयु।

प्र०—और चन्द्रमा की किरणों का अनुकरण कौन करता है?

उ०—सज्जन।

"नलिनी दल चपलं किं यौवनमायुर्धनं छाया।"
(विद्यापति)

(४)

कोऽन्धो योऽकार्यरतः
को बधिरो यः शृणोति न हितानी।
को मूको यः काले
प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥

प्रश्न—अन्धा कौन है ?

उत्तर—जो अकार्य करने में लीन रहता है।

प्र०—बहिरा कौन है ?

उ०—जो हित वचन नहीं सुनता।

प्र०—और गूंगा कौन है ?

उ०—जो समय पर प्रिय वचन बोलना नहीं जानता।

के खलु नयन विहीनाः परलोकं ये न पश्यन्ति।
वद वद बधिरतमाः के हितवचनं ये न शृण्वन्ति ॥

❀ ❀ ❀

"को मूकः खलु लोके हितवचनं यो न भाषते सदसि।"
(विद्यापति)

(५)

किं मरणं मूर्खत्वं किञ्चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात् किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यम् ॥

प्र०—मरण क्या है ?

उ०—मूर्खता।

प्र०—अमूल्य कौन सी वस्तु है ?

उ०—समय पर दिया गया दान।

प्र०—कौनसी चीज़ मृत्यु-पर्यन्त हृदय में कील (शल्य) की तरह चुभती है ?

उ०—छिपा कर किया गया पाप।

"विषमिव विषमतरं किं यत्प्रच्छन्नं कृतम् पापं।"
(विद्यापति)

(६)

काहर्निशमनुचिन्त्या, संसारासारता न च प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया करुणा दाक्षिण्यमपि मैत्री ॥

प्रश्न—सदा किसका चिन्तवन करना चाहिये ?

उत्तर—संसारकी असारताका, न कि स्त्रीका।

प्र०—प्रियतमा किसे बनाना चाहिये ?

उ०—दया और मैत्री को।

"किमहर्निशमनुचिन्त्यम् केशवचरणेषु यच्चरितम्।"
(७) (विद्यापति)

कः पूज्यः सद्वृत्तः कमधनमाचक्षते चलितवृत्तिम्।
केन जितम् जगदेतत् सत्यतितिक्षावता पुंसा ॥

प्रश्न—पूज्य कौन है ?

उत्तर—सदाचारी मनुष्य।

प्र०—निर्धन किसे कहते हैं ?

उ०—चरित्रहीन को।

प्र०—इस संसार को किसने जीता है ?

उ०—सत्यवादी और शान्ति प्रिय मनुष्य ने।

"कस्य वशं जगदेतत् प्रियहित
वचनस्य स्वधर्म निरतस्य।"
(८) (विद्यापति)

किं शोच्यं कार्पण्यं सति
विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम्।
तनुतर वित्तस्य तथा,
प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वं ॥

प्र०—शोचनीय क्या है ?

उ०—धन होने पर भी कृपणता (कंजूसी)

प्र०—और प्रशंसनीय क्या है ?

उ०—गरीब की उदारता और बलवान की सहनशीलता।

"इहं भुवने कः शोच्यः सत्यपि न यो दाता।"
(९) (विद्यापति)

इति कण्ठगता विमला प्रश्नोत्तर
रत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा अपि
विभान्ति विद्वत्समाजेषु ॥

इस निर्मल प्रश्नोत्तर-रत्नमाला को जो पुरुष सदा कंठ में धारण करते हैं, वे भूषण हीन होने पर भी विद्वानों की गोष्ठी में सुशोभित या सम्मानित होते हैं। [शेष पृष्ठ ३६ के नीचे]

जीयात्समन्तभद्रोऽसौ भव्यकैरवचन्द्रमाः, दुर्वादिवादकंडूनां शमनैक महौषधिः ।

[लेखक—श्रीमान् पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ, अम्बाला]

[गताङ्क से आगे]

(२)

सर्वज्ञता

सर्वज्ञ शब्द का अर्थ पं० दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित शब्दों द्वारा प्रगट किया है:—

"सर्वज्ञ शब्द का सीधा और सरल अर्थ यही है कि सबको जानने वाला। परन्तु सर्व शब्द का व्यवहार अनेक तरह से होता है ·····इससे पाठक समझ गये होंगे किसर्वज्ञ शब्द का अर्थ इच्छित पदार्थ का जानना है"। —जैन जगत अंक १४ वर्ष ८ पेज ४

जहां दरबारीलाल जी ने सर्वज्ञ की उपर्युक्त व्याख्या की है वहाँ आपका यह भी कहना है कि सर्वज्ञ के मन होता है और वह उसकी सहायता से जानता है। आपने यह भी बतलाया है कि सर्वज्ञके केवल ज्ञानके साथ अन्य चार ज्ञान भी होते हैं और वहाँ उसका या उनका अस्तित्व लब्धि और उपयोग दोनों ही अवस्थाओं में रहा करता है। साथ ही साथ आपने यहभी बतलाया है कि केवली के दर्शन और ज्ञान एक साथ नहीं होते।

आपके इस कथन को यदि संक्षेप और सीधे ढंग से कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि जो २ बातें हमारे ज्ञानों के सम्बन्ध में हैं वे ही केवली के भी—हम इन्द्रियों की सहायता से जानते हैं तो केवली भी, हमारे दर्शनोपयोग पूर्वक ज्ञानोपयोग होता है तो केवली के भी, हमारे ज्ञान में लब्धि और उपयोगरूप अवस्थायें मिलती हैं तो केवली के भी, और यदि हमारा ज्ञान सीमित है तो केवली का भी। अन्तर केवल इतना ही है कि हमारे ज्ञान की सीमा से केवली के ज्ञानकी सीमा कहीं अधिक है।

[शेषांश पृष्ठ ३५ का]

(१०)

विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका ।
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥

महाराज अमोघवर्ष ने विवेक पूर्वक राज्य को त्याग विद्वानोंके अलंकार स्वरूप इस "रत्नमाला" को बनाया। इति

पं० दरबारीलाल जी की समझ से सर्वज्ञ का स्वरूप जब ऐसा होना चाहिये तब प्रायः सभी जैन विद्वान सर्वज्ञ का स्वरूप वही मानते हैं जो श्री कुंद कुंद, उमास्वामी और नेमिचन्द्र सरीखे प्रमुख सिद्धान्त वेत्ता आचार्यों ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थों में प्रतिपादन किया है और जिसको समन्तभद्र अकलंक और विद्यानन्दि सरीखे आचार्यों ने युक्तियों से सिद्ध किया है। संक्षेप में उसको यों समझ लीजियेगा—

सर्वज्ञ शब्द का अर्थ सबको जानना है तथा यहां सर्व शब्द का अर्थ कालत्रय और लोकत्रय की अशेष वस्तुयें है। इसही प्रकार के ज्ञान का नाम केवल ज्ञान है। यह ज्ञान इन्द्रियों की सहायता से उत्पन्न नहीं होता और सदा उपयोग रूप रहता है।

सर्वज्ञ की एक व्याख्या से दूसरी व्याख्या में बड़ा भारी अन्तर है। अतः यह आवश्यक है कि इस बात का निर्णय किया जाय कि सर्वज्ञ की इन व्याख्याओं में से कौनसी व्याख्या समुचित है?

इन व्याख्याकारों में जहां सर्वज्ञ की व्याख्या के सम्बन्ध में अन्तर है वहीं एक बड़ा भारी अन्तर और भी है और वह है ज्ञान स्वरूप के सम्बन्ध में!

पं० दरबारीलाल जी का कहना है कि ज्ञानका स्वभाव अनन्त पदार्थों के जानने का नहीं किन्तु असंख्य पदार्थों के जानने का है। जैसा कि आपके इन शब्दों से स्पष्ट है कि—"पूर्णज्ञान के विषय अनन्त और सर्व पदार्थ नहीं किन्तु असंख्य पदार्थ हैं"। —जैन जगत वर्ष ८ अंक १३ पेज ४।

जहां दरबारीलाल जी ज्ञान में अनन्त पदार्थों के जानने का स्वभाव नहीं मानते, वहीं दूसरा पक्ष इसका बड़े खुले शब्दों में स्वागत करता है। सर्वज्ञ की व्याख्या के सम्बन्ध में यही एक बात है जो सब से ज़्यादा महत्व रखती है और जिसके निर्णय से इस विषय की भारी उलझन सुलझ जाती है। अतः सर्वप्रथम हम इस ही के निर्णय का प्रयत्न करते हैं।

अनन्त के ज्ञान के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित बाधायें उपस्थित की हैं:—

"जब केवलज्ञान के द्वारा वस्तु की अन्तिम पर्याय जान ली जाय तभी यह कहा जा सकता है कि केवल ज्ञान से पूरी वस्तु जान ली गयी, परन्तु वस्तु तो अनन्त है, इसलिये केवलज्ञान के द्वारा भी वस्तु का अनन्तपना नहीं जाना जा सकता। तब केवलज्ञान से पूरी वस्तु जान ली गई, यह कैसे कहा जा सकता है? मतलब यह है कि अगर केवलज्ञान वस्तु की सब पर्यायों को जानले तो वस्तु का अन्त हो जाय अथवा यदि वस्तु का अन्त न मिलेगा तो पूर्ण वस्तु का ज्ञान न होगा। इस प्रकार या तो वस्तु को सान्त मानना पड़ेगा या केवलज्ञान को सान्त मानना पड़ेगा, परन्तु वस्तु का अन्त कभी हो नहीं सका, उसकी सिर्फ़ पर्यायें बदलती हैं, इसलिए केवलज्ञानको ही सान्त मानना पड़ेगा"।

—जैन जगत वर्ष ८ अंक ११ पेज १०

जैन दर्शन जिस प्रकार ज्ञेयको अनन्त मानता है उसही प्रकार ज्ञान को भी। अनन्त के द्वारा अनन्त का ज्ञान हो जाता है। अतः न वस्तु को ही सान्त मानने की आवश्यक्ता पड़ती है और न ज्ञान को ही! इसको यों समझना चाहिये कि ज्ञेय के स्थानापन्न एक लोहे की पटरी है और ज्ञान के स्थानापन्न एक सीसे की पटरी तथा दोनों ही

अनन्त हैं। ऐसी अवस्था में लोहे की पटरी सीसे की पटरी में प्रतिबिम्बित भी होजायगी और दोनों अनन्त भी बनी रहेंगी। हां यदि सीसे की पटरी सान्त मानली जाय तब तो यह आपत्ति उपस्थित की जा सक्ती है कि लोहे की पटरी उसमें प्रतिबिम्बित नहीं हो सकी और यदि उसमें उसका प्रतिबिम्बित होना मानेंगे तो उस को भी सान्त मानना पड़ेगा।

जिस प्रकार प्रतिबिम्बित होने और सान्त की व्याप्ति नहीं, उसही प्रकार ज्ञान होने और सान्त की भी। इसके सम्बन्ध में स्वयं ज्ञानको ही दृष्टान्त में उपस्थित किया जा सक्ता है।

ज्ञान स्वपर प्रकाशक है और उसका अनादि से आत्मा में अस्तित्व है, यह बात ऐसी है जिसको दरबारीलाल जी भी स्वीकार करते हैं। आज तक ज्ञान की अनन्त पर्यायें हो चुकी हैं और अनन्तों में ही उसने अपना प्रकाश कियाहै। फिर भी भूतकाल में न ज्ञान की दृष्टि से ही उसका अन्त माना जा सक्ता है और न ज्ञेय की दृष्टि से ही। यहां स्व के स्थान में पर प्रकाशकत्व और पर के स्थान में सुख गुण या अन्य पदार्थों को लेकर भी यह बात घटित की जासक्ती है। दूर जाने की ज़रूरत नहीं, दरबारीलाल जी की व्याख्यानुसार सर्वज्ञ को ही यहां दृष्टान्त में लेलीजियेगा। आपके कथनानुसार सर्वज्ञ का ज्ञान असंख्य पदार्थों को जानता है, किन्तु उस का यह ज्ञान अनन्त है अर्थात् अनन्त काल तक असंख्य पदार्थों को जानता रहेगा। (अनन्त×असंख्य) ऐसी अवस्था में वह भी अनन्त पदार्थों का ज्ञाता ही ठहरता है।

प्रश्न १—एक पदार्थ या एक प्रकारके पदार्थोंके अनन्त समय तक जाननेसे अनन्त पदार्थों का ज्ञान प्रमाणित नहीं हो सक्ता, यह तो तब हो सक्ता है जब ज्ञेय ही उतने प्रकार के हों ?

उत्तर १—जितने पदार्थ हैं वे सब सत् स्वरूप हैं। सत् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक है। अतः ये तीनों ही बातें प्रत्येक पदार्थ में प्रति समय हुआ करती हैं। इससे स्पष्ट है कि पर्याय दृष्टि से प्रत्येक पदार्थ प्रति समय भिन्न २ रूप है। ऐसी अवस्थामें उसका या उनका अनन्त काल तक जानना अनन्त ज्ञेयों का ही जानना है।

प्रश्न २—आपके कथन से अब यह तो अवश्य सिद्ध हो जाता है कि अनन्त का ज्ञान भी होजाता है और फिर भी वह अनन्त ही बना रहता है, किन्तु इससे यह बात किस प्रकार प्रमाणित हो सक्ती है कि—

"ज्ञान का अनन्त पदार्थों को जानने का स्वभाव है और वह उनको एक काल में भी जान सकता है ?"

उत्तर २—अनंत का भी ज्ञान होसकता है, इस बात को स्वीकार कर लेने पर यह तो स्वयं सिद्ध हो जाता है कि ज्ञान का अनन्त पदार्थों को जानने का स्वभाव है। यदि ज्ञान का इस प्रकार का स्वभाव नहीं होता तो यह किस प्रकार संभव था कि यह अनन्त पदार्थों को जानता या जान सकता। क्योंकि "नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते" अर्थात् जो शक्ति जिस में नहीं है वह उस में किसी के भी द्वारा उत्पन्न नहीं की जासकती। इस से यह तो स्पष्ट है कि ज्ञान में इस प्रकार की शक्ति है। अब रह जाता है कि ज्ञान में क्रमशः अनन्त पदार्थों के जानने की शक्ति है या एक साथ।

जिस प्रकार किसी पदार्थ में अविद्यमान शक्ति को विद्यमान नहीं किया जा सकता उस ही प्रकार विद्यमान को अविद्यमान भी। हाँ यह बात होसकती है कि वह वहां प्रगट या अप्रगट रूप में रहे। सुख आकाश में नहीं, अतः वह वहा उत्पन्न भी नहीं किया जासकता। किन्तु वह आत्मा में है अतः उसका वहां से अभाव भी नहीं किया जा सकता। हाँ यह बात हो सकती है कि वह वहां प्रगटित या अल्प प्रगटित अवस्था में रहे।

यह सिद्ध किया जा चुका है कि ज्ञान में अनन्त पदार्थों के जानने की शक्ति है, अतः यह भी स्पष्ट है कि यह वहां सदैव विद्यमान रहती है। शक्ति का अस्तित्व और उसकी व्यक्ति ये दो बातें हैं तथा उसका अस्तित्व स्वीकार कर लेने पर उसकी व्यक्ति मानना कोई अनिवार्य बात नहीं। अतः ज्ञान में सर्वदा उसकी व्यक्ति न मिलना उस के अस्तित्व की बाधक नहीं। इस ही को यदि और भी स्पष्ट करना चाहे तो यह कह सकते हैं कि जब पहिले समय में केवली असंख्य पदार्थों को जानते हैं तब उनमें यह शक्ति मौजूद है। इसही प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवे आदि समयों में जब उनसे भिन्न २ असंख्य ज्ञेयोंको जानते हैं तब तब उन उन की। पहिले समय की शक्ति का दूसरे समय, पहले और दूसरे समयों की शक्ति का तीसरे समय, पहिले दूसरे और तीसरे समयों की शक्ति का चौथे समय और पहिले से चौथे समयों तक की शक्ति का पांचवें समय अभाव स्वीकार नहीं किया जा सक्ता।

इस प्रकार यदि अनन्त के समय में केवली की शक्ति को देखेंगे तो अवश्य अनन्त ज्ञेयों के जानने वाली मिलेगी। इसका यह भाव नहीं कि पहिले इस प्रकार की शक्ति केवली में नहीं थी या वह उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है, किन्तु यह है कि यदि व्यक्ति से भी शक्तिका अनुमान करेंगे तब भी केवली मे अनन्त पदार्थों के एक साथ जानने की शक्ति माननी पड़ेगी।

जहाँ केवली में यह बात असंख्य पदार्थों के ज्ञान के आधार से घटित की गई है वही दूसरे प्राणियों में कम से कम एक या उससे अधिक से करलेनी चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से भी अनन्तवें समय में अनन्त का नम्बर आ जाता है और फिर ज्ञान में अनन्त पदार्थों के जानने की शक्ति प्रति समय माननी ही पड़ती है। [अपूर्ण]

दर्शन !

(लेखक—श्रीमान प० पातीराम जी शास्त्री 'कमल')

पीयूषी धारा बन बरसो, हेमानल की झड़ियों में;
नव जीवन ज्योती को भर दो, हृदय कमल की कलियों में।
महावीर का यश बन सरसो, जगकी धूमिल गलियों में;
शुभ्रदीप्ति बन जा तुम झलको, परवादी की मतियों में॥
वैज्ञानिक किरणों को फैंको, अविदित पथ पंखुरियों में;
मलयानिल बन कर जा विहरो, स्याद्वाद नय जुहियों में।
नव हीरक बन कर जा दमको, झिलमिल मुक्तावलियों में;
जैनधर्म जग को दिखलादो, गुंथ करके मणि लड़ियों में॥

जैन स्मारकों की ऐतिहासिक उपयोगिता!

(ले०—श्रीमान् बाबू माईदयाल जी, बी० ए० एल० टी० अम्बाला)

[गतांक से आगे]

अब अन्त में एक और महत्वपूर्ण अनुसन्धान का कुछ हाल पाठकों से कह कर इस वर्णन को समाप्त कर दिया जायगा। वह श्रीयुत काशी प्रसाद जयसवाल द्वारा विवर्णित हाथी गुफ़ा वाला राजा खारवेल का लेख है। यद्यपि इस लेख को सन् १८२० ई० में स्टार्लिंग साहब ने मालूम किया था और इस लेख का जैनियों से सम्बन्ध डा० भगवानलाल इन्द्र जी ने सिद्ध किया था, किन्तु उस का पूरा विवरण देने का श्रेय श्रीयुत जायसवाल महोदय को ही है। इस लेख से जैन धर्म का प्रचार उड़ीसा में ई० पूर्व दूसरी शताब्दी में सिद्ध होता है तथा पता चलता है कि जैन धर्म वहां राज धर्म कुछ शताब्दियों में रहा है। इस लेख की उपयोगिता के विषय में श्रीयुत जायसवाल महोदय का कथन है कि—

"This inscription occupies an unique position amongst the materials of Indian History for the centuries preceding the Christian era. In point of age it is the second inscription after Asoka, the first being the Nanghat inscription of Vedisri. But from the point of view of the chronology of the pre-mauryan times *and the history of Jainism it is the most important inscription* yet discovered in the country. It confirms the Puranic record and carries the dynastic chronology to C. 450 B.C. Further, it proves that Jainism entered Orissa and probably became the state religion, within 100 years of the death of its founder Mahavira. It affords the earliest historical instance of the unity of Behar and Orissa (450 B.C.). For the social history of this country we get the very important datum that the population of ancient Orissa was 3½ millions in Circa 172 B.C."* अर्थात् "ईसा के पूर्व की शताब्दियों के भारतीय इतिहास के साधनों में इस लेख का स्थान बहुत उच्च है। प्राचीनता में अशोक के बाद का यह दूसरा ही लेख है। पहिला नानाघाट का वेदिश्री का लेख है। पर मौर्यकाल से पहिले के इतिहास क्रम और जैनधर्म के इतिहास के लिए तो यह अब तक देश में जितने लेख मिले हैं उन सब में अधिक महत्व का है। यह पुराणों के लेखों का समर्थन करता है और राजवंश क्रम को ईस्वी पूर्व ४५० वर्ष तक ले जाता है। उससे यह भी सिद्ध होता है कि उड़ीसा में जैनधर्म बहुत करके निर्वाण सम्वत् १०० के लगभग आया और वहां का राष्ट्रीय धर्म हो गया। वह ईस्वी पूर्व ४५० में विहार और

* सं० प्रा० के प्राचीन जैन स्मारक— उपोद्घात पृष्ठ ११

उड़ीसा के एकत्व का सब से प्राचीन प्रमाण है। सामाजिक इतिहास में उससे हमें सब से भारी बात यह विदित होती है कि १७२ ई० पू० के लगभग उड़ीसा की मनुष्य संख्या ३५ लाख थी"।

इस प्रकार के दश बीस नहीं सैकड़ों लेखों का वर्णन पुरातत्व अनुसन्धान विभाग की रिपोर्टों से मालूम किया जा सकता है। यदि उनको वर्तमान ढंग से व्यवहार में लाया जाय तो इनसे देश के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदीने सरस्वती में (भाग २३ खंड १ संख्या ६ पृष्ठ ३६५) लिखा था कि "मंदिरों और मूर्त्तियों के ये प्राचीन लेख इतिहास की दृष्टि से बड़े ही महत्व के हैं। इनमें उस समय के राजाओं, राजकुमारों, मंत्रियों, बादशाहों आदि का भी सन् संवत् समेत उल्लेख है और निर्माताओं तथा उद्धारकों की भी वंशावली आदि है। इसके सिवा जैनसंघों और जैन आचार्यों आदि की वंश परम्परा के साथ और भी कितनी ही बातों का वर्णन है। जैनों के कोई कोई तीर्थ ऐसे हैं जहां इस प्रकार के प्राचीन लेख अधिकता से पाये जाते हैं। पर तीर्थों ही में नहीं, छोटे छोटे गावों तक के मन्दिरों में प्राचीन लेख देखे जाते हैं। इन लेखों में जैन साधुओं के कार्यकलाप का भी वर्णन मिलता है। किस साधु या मुनि ने कौन ग्रंथ बनाया या कौन सा धर्मवर्द्धक कार्य किया, ये बातें भी अनेक लेखों में निर्दिष्ट हैं। अकबर इत्यादि मुगल बादशाहों से जैनधर्म को कितनी सहायता पहुँची, इसका भी उल्लेख कई लेखों में है"।

क्या अब मैं जैन समाज से पूछ सकता हूं कि इन अमूल्य प्राचीन स्मारकों के प्रति उसका क्या कर्तव्य है? क्या आपने किसी समय अपने उत्तरदायित्व पर विचार करने का कभी कष्ट उठाया है? जो जाति संसार के सामने स्वाभिमान से अपना मस्तक ऊंचा रखना चाहती है वह कदापि अपने गौरवपूर्ण तथा प्राचीन पुरुषों की समृद्धि एवं कीर्तिद्योतक पुरातन स्मारकों को जल, वायु, शीत, आताप, वर्षा की कृपा पर छोड़ कर निश्चिन्त नहीं रह सकती। हमारे जीवित रहते हुए हमारे पुरातत्व के साधन हमारे देखते देखते आंखों के सामने से मिटते चले जा रहे हैं, अरक्षित रहने से वर्षा, गर्मी, शर्दी उनको जीर्ण शीर्ण करके उनकी आयु समाप्त कर रही है और हम जैन जाति के सुपुत्र उस ओर दृष्टिपात भी नहीं करते। मानों संसार के भीतर अपने आपको मिटाने के लिये हम स्वयं सहायता कर रहे हैं, क्योंकि संसार से वह जाति मिट जाती है जिसका कि पुरातन इतिहास या पुरातत्व के साधनों की सत्तानाश हो जाती है।

जब कि जैन समाज को स्वयं जागृत होना चाहिये था, तब लज्जा की बात है कि हमको दूसरे लोग चिल्ला चिल्ला कर उठा रहे हैं। देशवासियों के सिवाय विदेशी विद्वानभी हमारी निद्रा भंग करना चाहते हैं, किन्तु हम नेत्र भी नहीं खोलते। देखिये इतिहास लेखक मर् वीसेन्ट स्मिथ साहब * जैन समाज से क्या कहते हैं—

"....... My desire is that the members of the Jain community, and more especially the wealthy members with money to spare, should interest themselves in archeological

* The Jaina Gazette Vol XVII No. B. 9 and 10 Page 262—272

research and spend money on its prosecution, with special reference to the history of their own religion and people."

अर्थात्—"मेरी अभिलाषा है कि जैनसमाज के सदस्य विशेषतया वह धनी सदस्य जिनके पास खर्च करने को धन है पुरातत्व अनुसन्धान में रुचि लेने लगें और विशेषतः अपने ही धर्म और समाज के इतिहास के सम्बन्ध में खोज कराने के लिये द्रव्य व्यय करें।"

आगे चलकर वही साहब यह कहकर कि खोज का क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है लिखते हैं :—

"The proper investigation of such problems needs as one of its bases a survey of the Jain monuments, images, and inscriptions. Many such monuments remain hidden in the soil, await the Pickaxe of the skilled excavator. Whoever takes up the examination of eminent Jain remains, should make himself familiar with the works of the early Chinese pilgrims, and especially with those of Hievan Tsang, the Prince of early pilgrims, who travelled in the 7th century A. D. and recorded notes about many Jain monuments, of which all memory has been lost. The travels of Hievan Tsang are an indispensable guide for every archeologist. I am aware of course, that a Jain scholar who desires to use the books referred to must know either English or French, if he is not acquainted with Chinese.........

अर्थात्—"इस प्रकार की समस्याओं के ठीक अनुसंधान का आधार जैन स्मारकों, मूर्तियों और शिलालेखों की खोज है। ऐसे बहुत से स्मारक हैं जो कि मिट्टी में दबे हुए हैं और चतुर खोदने वाले के फावड़े की प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रसिद्ध जैन खंडहरों की परीक्षा के कार्य को जो कोई हाथ में ले उसे प्राचीन चीनी यात्रियों विशेषतः हुवान सांग के (जो कि यात्रियों का राजकुमार है और जो सातवीं शताब्दी में यहां घूमा है और जिसने बहुत से जैन स्मारकोंके सम्बन्धमें नोट लिखे हैं व जिन की अब कोई याद नहीं है) ग्रन्थों से परिचय कर लेना चाहिये। प्रत्येक अनुसन्धान करने वाले के लिये हुवान सांग के भ्रमण विवरण अनिवार्य हैं। अतः मैं जानता हूँ कि एक जैन विद्वान को जो कि ऊपर लिखे ग्रन्थों को व्यवहार में लाना चाहता है और यदि वह चीनी भाषा नहीं जानता तो उसे अंग्रेज़ी भाषा या फ्रांसीसी भाषा जाननी चाहिये"।

अब जो अनुसंधान करें या प्राचीन स्मारकों के विषयमें कुछ लिखना चाहें उन्हें क्या करना चाहिये और किन किन वस्तुओं को व्यवहार में लाना चाहिये. इस सम्बन्ध में स्मिथ साहब लिखते हैं कि—

"Much may be done by careful registration and description of the Jain monuments above ground which of course should be studied in connection with the Jain scriptures and the notices recorded by the Chinese pilgrims and other writers. In order to obtain satisfactory results the persons who undertake such registration and survey should make intelligent use of existing maps, should clearly describe the topographical surroundings, should record accurate measurements and should make free use of photography. Such a survey even without the help of excavation, should throw much light upon the history of Jainism and especially on the story of

the decline of the religion in wide regions where it once had crowds of adherents."

अर्थात् "भूमितल पर स्थित जैन स्मारकों के सावधानी पूर्वक लिखे हुए विवरणों से परिचय बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है, फिर इनका अध्ययन जैन ग्रन्थों और चीनी यात्रियों और अन्य लेखकोंके वर्णनोंके प्रकाशमें किया जाना चाहिये। जो लोग ऐसे परिचय और वर्णन लिखें, उन्हें इस काम में संतोषजनक फल प्राप्त करने के लिये प्रचलित नकशों को बुद्धिपूर्वक व्यवहार में लाना चाहिये। स्पष्ट प्रकारसे उनके आस पास के चिन्हों को लिखना चाहिये। ठीक २ नाप लिखनी चाहिये और फ़ोटोग्राफी को खूब काम में लाना चाहिये। इस प्रकार का परिचय, खुदाई की सहायता के बिना भी जैनधर्म के इतिहास पर और विशेषतः इस धर्म के उन क्षेत्रों में ह्रास के इतिहास पर जहां किसी समय जनता के समूह के समूह इस धर्म के अनुयायी थे बहुत प्रकाश डालेगा।"

अन्त में स्मिथ साहब जैन समाज से एक **अनुसन्धान सभा** स्थापित करने का प्रस्ताव करते हुए लिखते हैं—

In conclusion, I beg to suggest that the Jains might appoint an Archeological Committee to draw out a plan for research on the lines indicated above and to collect the necessary funds, which should be considerable in amount. A Jain Assistant, properly qualified and paid by the Jain community, if appointed to the Archeological Survey, could do much, and it would be better still if there were several such Assistants working under the direction of the Superintendents........."

अर्थात्—"अंतमें मैं जैन समाजसे उपर्युक्त ढंगसे अनुसन्धान करनेके लिये, कार्य-क्रम बनाने के लिये, एक **अनुसन्धान सभा** स्थापित करने तथा आवश्यक पर्याप्त धन संग्रह करने का अनुरोध करता हूँ। यदि एक सुयोग्य जैन जिसका वेतन जैन समाज से दिया जावे (सरकारी) अनुसन्धान विभाग में सहायक रूप से कार्य करे तो वह बहुत कुछ काम कर सकता है और यह तो बहुत ही अच्छा हो कि यदि ऐसे अनेक सहायक सुपरिन्टेंडेन्टों की निगरानी में कार्य करें।"

इस पर विशेष लिखना व्यर्थ है जैन समाज की निद्रा भंग करने के लिये विदेशी विद्वान ने काफ़ी लिख दिया है। जैन समाज का कर्तव्य है कि वह अपने प्राचीन लुप्तप्राय गौरव को खोजने के लिये आदर्श कार्य करे। बहुत अच्छा होगा कि इसके लिये एक अच्छा पुरातत्व मन्दिर स्थापित किया जावे जिसमें प्राचीन खंडित मूर्तियाँ, ताम्रपत्र, शिलालेख, शास्त्र आदि सामग्री एकत्र की जावे और विशेषज्ञ उसका अध्ययन करें।

[संपादकीय अभिमत—भारतवर्ष में बौद्ध और जैनों का पुरातत्त्व बहुत महत्वपूर्ण है; उसमें भी जैन पुरातत्व तथा वहांपर भी दिगम्बर सम्प्रदायका जैन पुरातत्व अत्यन्त गौरवपूर्ण है, किन्तु पुरातत्व के साधन जो प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, ग्रन्थ, मंदिरों के खंडहर, प्रतिमाएं आदि हैं वे सब या तो यत्र तत्र अरक्षित दशा में पड़े हैं अथवा भूगर्भ के अन्धकारमें पड़े हुए अपनी जीवनलीला समाप्त कर रहे हैं या भट्टारकों के संचित भंडारों में विराजमान हैं—प्रकाशमें आने का अवसर ही नहीं पाते। ऐसी

अवस्था में जैन समाज का प्राचीन गौरव संसार के सामने किस प्रकार आवे ?

जो कुछ थोड़ा बहुत प्रकाशित जैन पुरातत्व हमारे सामने है वह भी इसलिये हमारे को लज्जा का कारण है कि उसको हमने अपने परिश्रम से प्रकाशित नहीं किया, किन्तु सात समुद्र पार करके भारत वर्ष में आये हुए उन अंग्रेज़ अथवा अन्य विदेशी विद्वानों ने प्रकाशित किया है जिनकी कि मातृभाषा इंग्लिश, फ्रेंच या चीनी आदि है। वे ही विदेशी विद्वान हमको हमारा कर्तव्य सुझा कर उठा रहे हैं, किन्तु हम सो रहे हैं, खेद।

स्वर्गीय श्रीमान बा० देवकुमार जी आरा के समान हमारे किसी एक श्रीमान महानुभाव को अपना अच्छा कोष नियत करके एक अच्छा पुरातत्व मन्दिर जैसा कि लेखक महोदय ने बतलाया है स्थापित करना चाहिये। उसकी व्यवस्था श्रीमान् बाबू चम्पतराय जी बैरिस्टर, बाबू कामता प्रसाद जी, बाबू हीरालाल जी एम० ए० आदि से विचार लेनी चाहिये। क्या ही अच्छा हो कि श्रीमान बा० निर्मल कुमार जी रईस आरा अपने पूज्य पिता के स्थापित जैन सिद्धान्त भवन में ही 'जैन पुरातत्व' भवन खोलकर सुवर्ण में सुगन्धि मिला देवें। आपके लिये यह कार्य सरल तथा सुविधाजनक होगा तथा सिद्धांत भवन के साथ बहुत उपयोगी भी रहेगा। दिगम्बर जैन समाज यदि इस कार्य में अचेत रहा तो उसको निकट भविष्य में बहुत पछताना पड़ेगा।]

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य और जैनधर्म !

(लेखक—श्रीमान बा० कामताप्रसाद जी जैन M. R. A. S. अलीगंज)

भारतके प्रख्यात् सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यका जैन ग्रंथोंमें खासा वर्णन मिलता है और उन ग्रंथोंमें उन्हें जैनधर्मानुयायी ही बताया गया है। इसमें शक नहीं कि मौर्य लोगोंमें एक समय जैनधर्म की मान्यता विशेष होगई थी। स्वयं भगवान महावीर ने आकर मौर्याख्य देश में प्रचार किया था। उनके खास शिष्यों—गणधरों में दो मौर्य्य-पुत्र ही थे *। इस दशामें सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्यका जन्म से जैनधर्मभक्त होना कुछ असंभव नहीं जंचता ! तिस पर जब हम यूनानी एलची मेगास्थनीज़ को उसे श्रमणजैन मुनि का उपासक बताते हुए पाते हैं† तो हमारा जी चन्द्रगुप्त मौर्य्य को जैन मानने के लिये तैयार हो जाता है और जैन शास्त्रों के कथन को मिथ्या कहने का साहस नहीं होता।

---

* बृहद् जैन शब्दार्णव, भाग १ पृ० ७

† "The testimony... ...seem to imply that Chandragupta submitted to the devotional teaching of the SRAMANAS, as opposed to the doctrines of the Brahmanas"
—Journal of the Royal Asiatic Society IX 174

'SRAMANA DHARMA is Jainism. (See Kalpa sutra, p 81)

किन्हीं महानुभावों का कहना है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त का जीवन व्यवहार और उनकी राजव्यवस्था के कई नियम जैनधर्म के विरुद्ध प्रमाणित होते हैं! किन्तु हमें उनके सम्बन्ध में कोई ऐसी बात नहीं दीखती जो जैनधर्म के विरुद्ध हो! सबसे बड़ी आपत्ति उनके मृगया-विहार पर की जाती है, पर यह कौन कह सक्ता है कि उनका यह विहार हिंसा-जन्य था? क्या यह संभव नहीं है कि दुष्ट जन्तुओं से ऋषि आश्रमादि की रक्षा करने के लिये ही वह मृगया-विहार पर जाते हों! मेगास्थनीज़ ने जो वर्णन लिखाहै, वह खास चन्द्रगुप्तके सम्बन्ध का नहीं है। वह साधारणतः एक भारतीय राजा के लिये है ‡। इस पर भी यदि उसे चन्द्रगुप्त के लिये ही लिखा हुआ मान लिया जाय, तो भी कुछ विरोध नहीं आता, क्योंकि जैनशास्त्रों में कई एक अव्रतसम्यक्दृष्टि राजाओं—श्रेणिक आदि—के मृगया पर जाते लिखा गया है और उधर मेगास्थनीज़ उन्हे श्रमणोपासक बताता ही है। अतः चन्द्रगुप्त के जीवन व्यवहारमें ऐसी कोई बात दृष्टि नहीं पड़ती जो जैनधर्म के विरुद्ध हो!

रही बात उसके राजनियमों की, सो इस संबंध में यह पूर्णतः प्रमाणित नहीं है कि उपलब्ध चाणक्य अर्थ-शास्त्र ही मंत्रिप्रवर कौटिल्य की अक्षुण्ण और वास्तविक रचना है तथा उसको उन्होंने सम्राट् चन्द्रगुप्त के लिये ही लिखा था। इस दशा में जब तक पुष्ट प्रमाणों द्वारा उक्त बातें सिद्ध न हो जायं, तब तक इस विषय की आपत्ति निरर्थक है। इतने पर भी यदि हम यही मानलें कि चाणक्य ने अपना अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त के लिए ही लिखा था तो भी हमें उसमें ऐसा कोई नियम नहीं दिखाई पड़ता जो जैनधर्म का पोषक न होकर उसका विरोधी हो! फांसी की सज़ा रखना, मांस-मदिरादि बिक्री के नियमादि बनाना, न केवल सम्राट् चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में अनोखे हैं, बल्कि जैन सम्राट् कुमारपाल और अमोघवर्ष के राजनियमों में भी ऐसे नियम मिलते हैं। तिस पर अर्थशास्त्र में नगर के मध्य जिन जयन्तादि देवताओंको स्थापित करने का विधान है, वे जैन हैं। उसमें के अहिंसा विषयक नियम भी बहुत कुछ जैन अहिंसाके अनुसार हैं *। अतः कहना होगा कि चन्द्रगुप्त के राजनियमों में भी कोई ऐसी बात नहीं है जो उनके जैनी होने में बाधक हो!

इस सम्बन्धमें उपलब्ध जैन ग्रन्थों और शिलालेखों की असलियत में शङ्का करना व्यर्थ है। मि० राइस, मि० नरसिंहाचार आदि विद्वानों ने उनका सूक्ष्म अध्ययन किया है और उनके बल वह चन्द्रगुप्त के जैनत्व को मान्य ठहराने के लिये बाध्य हुये हैं ǁ। स्व० मि० विन्सेन्ट स्मिथ जो पहिले इस विषय में सशङ्क थे, उन्हें भी अन्ततः जैन मान्यता को स्वीकार करना पड़ा था ‡ और हाल ही में "मंगलाप्रसाद" पारितोषक आदि प्राप्त पुस्तक "मौर्य्य साम्राज्य का इतिहास" में श्रीयुत् पं० सत्यकेतु विद्यालङ्कार जी भी लिखते हैं कि "चन्द्रगुप्त सम्बन्धी जैन शिलालेखों को प्राचीनता के कारण

---

‡ Mc. Crindle's Ancient India, pp 138—141

* संक्षिप्त जैन इतिहास भा० २ ǁ जैन शिलालेख संग्रह, भूमिका, पृ० ५४—११२

‡ अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, चतुर्थावृत्ति, पृ० १५४

इनकी प्रामाणिकतामें सन्देह नहीं किया जासक्ता। ये प्रमाण हैं, जिन्हें आधार में रखकर मौर्य्य चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध श्रवणबेलगोल (जैनतीर्थ) के साथ जोड़ा जाता है"।+ इस अवस्था में जैन मान्यता के अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त को जैन न मानना ठीक नहीं जंचता !

कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त को मात्र जैन मुनि की दीक्षा लेते स्वीकार करते हैं। वह यह नहीं मानते कि चन्द्रगुप्त अपने प्रारंभिक जीवन से ही जैनी था। किन्तु जैनग्रंथ उनको प्रारंभ से ही एक जैन राजा प्रगट करते हैं और उनके इस कथन का समर्थन मेगास्थनीज़ की साक्षी से भी होता है, जैसे कि हम देख चुके हैं। तिस पर एक मोटी सी बात है कि यदि चन्द्रगुप्त को जैन मुनि हुआ माना जाता है, तो यह कैसे संभव है कि जैनों के संसर्ग में इससे पहले आये बिना ही वह जैन मुनि हो गया? जैन मुनि होने के लिये मुमुक्षुको श्रावकाचार की नियत कक्षाओं को पास करना होता है। तब कहीं वह जैन मुनि की कठिन चर्या का पालन कर सक्ता है। एक अजनबी के लिये यह नितान्त असंभव है कि वह एक दम श्रावकाचार को पाले बिना ही जैन मुनि हो जावे। इस दशा में चन्द्रगुप्त को राज्यावस्था से ही जैनी मानना ठीक होगा।

किन्तु इस सम्बन्ध में श्रीयुत पं० सत्यकेतु विद्यालङ्कार ने अपनी उक्त पुस्तक में एक बिल्कुल नई बात की घोषणा की है। वह चन्द्रगुप्त का जैन होना और उसे श्रुतकेवली भद्रबाहु जी के साथ श्रवण बेलगोला पहुँचा हुआ मानते हैं; किन्तु साथ ही कहते हैं कि "मौर्य्य वंशके संस्थापक चंद्रगुप्त के साथ श्री भद्रबाहु और श्रवण बेलगोला का कोई सम्बन्ध नहीं है और चन्द्रगुप्त ने दक्षिण में अनशन व्रत द्वारा प्राण त्याग नहीं किये। यह बात अशोक के पौत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय के सम्बन्ध में है। जैन साहित्य में इसका दूसरा नाम सम्प्रति आता है। सम्प्रति और चन्द्रगुप्त एक व्यक्ति के ही नाम हैं×।' किंतु दुःख है कि विद्यालङ्कार जी के इस मत से हम सहमत होने में असमर्थ हैं। यदि थोड़ी देर के लिये हम यह मान लें कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का कोई सम्बन्ध जैनधर्म से नहीं था, तो उनके अन्तिम जीवन का इतिहास क्या होगा? मान्य लेखक बतावें कि वह एक दम राज्य करते २ कैसे लुप्त हो गये? स्व० मि० विन्सेन्ट स्मिथ अन्य प्रमाणों के साथ २ एक इस अभाव की पूर्ति को जैन मान्यता से होती देख कर उसे ठीक मानने के लिये बाध्य हुये थे*। इसके साथही, विद्यालङ्कार जी किस आधारसे सम्प्रति का द्वितीय नाम चन्द्रगुप्त प्रकट करते हैं? न तो जैनशास्त्र या शिलालेख यह बात प्रकट करते हैं और न कोई अन्य साक्षी ही। इस दशामें विद्यालङ्कारजी का उक्त मत निराधार है और प्रमाण कोटि में नहीं आ सक्ता।

इसके अतिरिक्त विद्यालङ्कार जी के उक्त मत की निस्सारता इस कारण से और भी स्पष्ट है कि यदि उसको मान्यता दी जावे, तो जैन अनुश्रुत का सर्वथा लोप हुआ जाता है। क्योंकि श्रुतकेवली भद्रबाहुका समय उनके मतानुसार सम्राट् सम्प्रति का समकाल अर्थात् २१६-२०७ ई० पू० होगा। किंतु यह समय जैनमान्यता से बाधित है। प्राचीन

+ पृ० ४२१ × मौर्य साम्राज्य का इतिहास पृ० ४२५ * अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, पृ० १५४

जैन ग्रन्थों जैसे 'त्रिलोक प्रज्ञप्ति' आदि से वीर-निर्वाण से १६२ वर्ष बाद भद्रबाहु श्रुतकेवली का समय निश्चित होता है † और प्रचलित वीर निर्वाण संवत् ई० पू० ५२७ वर्षों से चला माना जाता है। इस अवस्था में भद्रबाहु सम्प्रति के समकालीन नहीं हो सके। यदि डा० जार्ल कार्पेन्टियर के अनुसार वीर निर्वाण को ई० पू० ४६७ में घटित हुआ मान लिया जाय तो भी सम्प्रति और भद्रबाहु का समसामयिक होना प्रमाणित नहीं होता। साथ ही इस मत के अनुसार जैनश्रुत (अङ्गज्ञान) का अस्तित्व ईस्वी चौथी शताब्दि तक मानना पड़ेगा‡, जो सर्वथा असंभव है; क्योंकि यदि इस समय तक अंगज्ञान उपलब्ध होता तो ईस्वी प्रारंभिक शताब्दियों के जैनाचार्य जैसे श्री कुन्द कुन्द, श्री उमास्वामि, श्री समन्तभद्र आदि स्वतन्त्र ग्रंथ रचनायें ठीक उसी विषय की न करते। और यह घोषित न किया जाता कि अंगज्ञान लुप्त हो चुका है। अतः यह मानना ठीक नहीं है कि भद्रबाहु और सम्प्रति समकालीन थे। और जब वे समकालीन नहीं थे, तब जैन चन्द्रगुप्त को सम्प्रति न मान कर सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य मानना ठीक है।

श्री हेमचन्द्राचार्य के "परिशिष्टपर्व" से भी यह स्पष्ट है कि सम्प्रति के पहले ही भद्रबाहु स्वर्गवासी हो चुके थे और उनके उत्तराधिकारी स्थूलभद्र की मृत्यु भी उन्हीं के राज्यकाल में हो चुकी थी।+ अतः सम्प्रति के साथ भद्रबाहु का सम्बन्ध बैठाला ठीक नहीं है।

यह बात निर्विवाद स्पष्ट है कि सम्प्रति को स्थूलभद्र के प्रशिष्य श्री सुहस्तिसूरि ने जैनधर्म में दीक्षित किया था! अतः सम्प्रति को दिगम्बर जैन-ग्रंथों का चन्द्रगुप्त बतलाना बेजा है, क्योंकि चन्द्रगुप्त ने दिगम्बर दीक्षा ली थी जब कि सम्प्रति ने श्वेताम्बराम्नाय के पूर्वगामी अर्धफालक सम्प्रदाय की। यही कारण है कि सम्प्रति का पता दिगम्बर जैन साहित्य में नहीं चलता है! और आचार्य सुहस्ति भद्रबाहु से तीसरे या चौथे आचार्य प्रगट होते हैं।

इस लिये भद्रबाहु का सम्प्रति के समय तक जीवित रहना शङ्का से खाली नहीं है। भद्रबाहु के सम्बन्ध में यह बात भी दृष्टव्य है कि श्वेताम्बर साहित्य में उनको वह सम्माननीय स्थान प्राप्त नहीं है जो कि उन्हें दिगम्बर संप्रदाय में प्राप्त है। अस्तु; सम्प्रति, जो एक स्थविरकल्पी (सवस्त्र) आचार्य (सुहस्तिसूरि) का शिष्य था,* जिनकल्पी (दिगम्बर) भद्रबाहु को अपना गुरु नहीं मान सकता था। और इसी साम्प्रदायिक मतभिन्नता का यह परिणाम है कि 'परिशिष्टपर्व' में भद्रबाहु जी व चन्द्रगुप्त का वैसा वर्णन नहीं मिलता जैसा कि दिगम्बर जैन शास्त्रों और शिलालेखों में मिलता

† जैन हितैषी, भा० १३ पृ० ५२२

‡ अङ्गज्ञान वीर निर्वाण संवत् ६८३ तक माना जाता है—जब सम्प्रति के समय में केवल १६२ वर्ष निर्वाण को हुए मानकर भद्रबाहु को तत्कालीन माना जायगा तो अंगज्ञान स्वतः सन् ३१४ ई० तक मौजूद मानना पड़ेगा।

+ परिशिष्ट पर्व (भावनगर १९६८) पृ० ८७—९०

* जैन साहित्य संशोधक, भाग १ वंशावली पृ० ७

है। उक्त ग्रंथ में तो श्री भद्रबाहु को संघवाह्य कर देने तक का उल्लेख मिलता है। जो एक श्रुत केवली के सम्बन्ध में बड़े साहस का काम है। बस, इन ग्रंथों के अध्ययन में साम्प्रदायिकता का ख्याल रखना ज़रूरी है! विद्यालङ्कार जी इस बात का ध्यान नहीं रख सके हैं; किन्तु दिगम्बर जैन साहित्य और शिलालेखों के सम्बन्ध में वह यह नहीं कह सक्ते कि उनमें भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त का श्रवण वेल गोल जाने का उल्लेख नहीं मिलता! अतः इन सब कारणों को देखते हुए सम्प्रति और दिगम्बर जैन चन्द्रगुप्त को एक व्यक्ति तथा भद्रबाहु जी को उनका समकालीन बताना अनुचित है!

किन्तु पाठकगण, हमारे इस वक्तव्य को शायद एक अतिसाहस समझें, क्योंकि विद्यालंकार जी की मान्यता यूं ही नहीं टाली जा सक्ती! किन्तु हमें खेद है कि विद्यालंकार जी का इस विषय का उपरोक्त निर्णय मूल्यमई नहीं है। उन्होंने जिन दो अर्वाचीन जैनग्रंथों के वर्णन से अपना उक्त मत स्थिर किया है, वे प्रामाणिक नहीं हैं। "राजावली कथा" का ऐतिहासिक आधार तो सिंहलदेश की इतिहास अनुश्रुति है † और संभवतः उसही अनुश्रुति का अनुकरण 'पुण्याश्रव कथाकोष' में किया गया है। तथापि सिंहलीय इतिहास में दो अशोकों का अस्तित्व मिलता ही है! बस, दो अशोकों को देखकर जैनग्रंथकार ने अपने ढंग से इस अनुश्रुति का अनुसरण किया। उन्होंने जैन अशोक को दूसरे नाम से निर्दिष्ट किया और चन्द्रगुप्त का पोता प्रगट करने के लिये दो चन्द्रगुप्तों का उल्लेख कर दिया। क्योंकि वह यह जानते थे कि बौद्धों के अशोक का पितामह भी चन्द्रगुप्त था। और जैन अशोक का भी! लेकिन उनको इस बात का पता ही नहीं मालूम होता कि जैन अशोक और बौद्ध अशोक दो भिन्न व्यक्ति नहीं थे ‡। इसलिये यह उचित जंचता है कि सिंहलीय इतिहास की अनुश्रुति के कारण "राजावलीकथा" में गड़बड़ हुई मिलती है और इस कारण मि० राइस का यह लिखना ठीक ही है कि 'दो चन्द्रगुप्तों का लिखा जाना प्राचीन अनुश्रुति में कुछ गड़बड़ का परिणाम है'।

इसके साथ ही उपरोक्त दो जैन ग्रन्थों के अतिरिक्त किसी भी अन्य जैन ग्रन्थ में, जो उनसे प्राचीन है, दो चन्द्रगुप्तों का उल्लेख नहीं मिलता; यद्यपि वे चन्द्रगुप्त का वर्णन लिखते हैं। अस्तु;

इन सब कारणों को देखते हुये सम्प्रतिको जैन चन्द्रगुप्त नहीं कहा जा सक्ता। जैन चन्द्रगुप्त तो मौर्य वंश के संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्त ही थे। अतः विद्यालङ्कार जी के निम्न शब्द सम्राट् चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में ही ठीक लागू होते हैं कि "हम इस (जैन) अनुश्रुति में कोई संदेह नहीं करते कि चन्द्रगुप्त नामका उज्जयिनी (पाटलीपुत्र) का राजा आचार्य भद्रबाहु के साथ श्रवणबेलगोल में आया था और वहां पहुँच कर अनशन व्रत करके स्वर्गलोक सिधारा था"।

---

† साउथ इण्डियन जैनीज़्म, पृ० ३९

‡ अशोक के जैनत्व के लिए हमारा 'सम्राट् अशोक और जैनधर्म' ट्रैक्ट देखना चाहिए।

समाचार संग्रह !

—६ दिन में दुनिया का चक्कर—न्यूयार्क के वयाली पोस्ट नामक एक विख्यात उड़ाके ने हवाई जहाज़ द्वारा सारी दुनिया का चक्कर लगाने का प्रण किया है।

—अलीगढ़—अब तक २६ इंच वर्षा हो चुकी, वर्षा के कारण १००० मकान गिर गये।

—बकरी नोट खागई—दिल्ली में एक पन्सारी का १०) का नोट बकरी खा गई।

—सरधना—यहां पर १०८ मुनि नेमीसागर महाराज का चातुर्मास हो रहा है, और आप २१ दिन से व्रत कर रहे हैं—सिर्फ पानी और नींबू के रस का आहार लेते हैं।

—(तार से)—हैदराबाद के जैनबन्धु सूचित करते हैं कि हमने निज़ाम सरकार की मुलाकात एक डेप्युटेशन ले जाकर की थी, परन्तु परिणाम कुछ नहीं हुआ।

—मूर्त्तियां निकलीं—भोपाल के निकट मौजा किराना के एक प्राचीन स्थान से ४ दि० जैन मूर्त्तियां निकली हैं।

—सुवर्ण—एक अरब २८ करोड़ का सोना ता० २० मई तक भारत से लंदन जा चुका है।

—बम्बई में भूकम्प—१७ जुलाई को प्रातः पांच बजे भूचाल का एक हलका सा झटका आया।

—डाक्टर का अद्भुत साहस—अम्बाला के ज़नाने बाग़ के चौकीदार को काले साँप ने काट लिया डाक्टर बुलाया गया, मरीज़ की ख़तरनाक हालत देखकर डाक्टर ने उसके ज़हरीले खून को चूस लिया। मरीज़ अच्छा होगया।

—प्रकृति की विचित्र लीला—भागलपुर के पास वेहला गांव में एक स्त्री के दो बच्चे पैदा हुये। उनमें से एक तो मनुष्य और दूसरा बन्दर था, उसका मुंहगोल, सिर छोटा और दुम पौन बालिश्त के लगभग थी और बदन में बन्दर की तरह बाल व टांग दो के बजाय एक ही थी। यह लड़का अबतक ज़िन्दा है दूसरा मर गया। (मिलाप)

—भारत में मृत्यु का प्रकोप—१९३२ में अक्टूबर नवम्बर और दिसम्बर में १६,१२१, २८७, की मृत्यु हुई।

—स्त्री ने १०० अण्डे दिये—चटगांव की ख़बर है कि, एक किसान की स्त्री गर्भवती थी। उस के पेट से बच्चे के बजाय सौ अण्डे निकले, जिनका रंग लाल और सफ़ेद था और वे देखने में मुर्गी के से अण्डे मालूम होते थे। जब स्त्रीने पहला अण्डा देखा, तो वह बेहोश होगई। बाद में उसे होश आ गया। इस शोक से उसको हालत नाज़ुक हो गई थी, परन्तु अब वह तन्दुरुस्त है।

Regd. No. A. 2379

जैनदर्शन के नियम

(१) जैनदर्शन का प्रचार और उस पर किये गये आक्षेपों के निराकरणार्थ ही इसका उदय हुआ है।

(२) इसका प्रकाशन अंगरेज़ी महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हुआ करेगा।

(३) इसका वार्षिक मूल्य ढाई रुपया है, किन्तु संघ के सभासदों, संस्थाओं और विद्यार्थियों से केवल दो रुपया लिया जायगा। [वी० पी० से पत्र मंगाने वालों को पांच आने की हानि अवश्य रहती है, इसलिये वार्षिक चन्दा कृपया मनीआर्डर से ही भेजिये।]

(४) नमूने में २ अङ्क तक फ्री (बिना मूल्य) भेज दिये जायंगे, किन्तु जो सज्जन २ अङ्क पढ़ कर भी उसका वार्षिक मूल्य २॥) मनीआर्डर द्वारा नहीं भेजेंगे उनको आगामी अङ्क भेजना बन्द कर दिये जायंगे।

(५) जैनदर्शन में पहिले अङ्क से ही उपयोगी लेखमालायें आरम्भ हुई हैं। अतः उत्तम तो यही है कि पहिले ही अङ्क से इसका ग्राहक बना जाय, फिर भी जो महानुभाव जिस अङ्क से इस के ग्राहक बनेंगे उसी अङ्क से उनका वर्ष आरम्भ समझा जायगा।

(६) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकें "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद विद्यालय भदैनी घाट बनारस" को और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैन दर्शन C/o 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहियें।

(७) उसी पक्ष के अङ्क में प्रकाशित कराने के लिये कविता, लेख अंग्रेजी मास की पहली से आठवीं तथा १६ वीं से २४ वीं तारीख तक संपादक जी के पास आ जाने चाहियें। अन्यथा उस अङ्क में न छप कर अगले अङ्क में छप सकेंगे।

(८) अधूरे लेख नहीं छापे जायंगे, किन्तु स्थान के अनुसार बड़े लेख एक व अधिक संख्याओं में छापे जायंगे।

(९) ग्राहक को अपना नाम और पूरा पता साफ़ २ लिखना चाहिये जिससे पत्र पहुँचने में गड़बड़ी न हो। अन्य पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये -)। के टिकिट या जवाबी कार्ड आना आवश्यक हैं।

(१०) विज्ञापन के रेट बहुत कम रक्खे गये हैं, तथा स्थायी विज्ञापन दाताओं को विशेष सुविधायें रक्खी गई हैं। विशेष पत्रव्यवहार से मालूम कीजिये।

सर्व प्रकार के पत्रव्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैन दर्शन" C/o दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रगट किया।

वर्ष १ श्री जिनाय नमः अङ्क ३

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र

वार्षिक मूल्य २॥) रुपया
एक प्रति का दो आना
नमूना विना मूल्य

विद्यार्थियों संस्थाओं और संघ के सभासदों से २) रुपया

ऑनरेरी सम्पादक :—
पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी।
पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

"जैन दर्शन" पर लोकमत !

श्रीमान् पं० मुन्नालाल जी रांधेलीय मंत्री बुंदेलखंड प्रान्तीय दि० जैन सभा सागर लिखते हैं कि—"जैन दर्शन" का प्रथम दर्शन जिस नीति एवं उद्देश को लेकर हुआ है वह निःसन्देह आवश्यक और विचारपूर्ण है। इतना ही नहीं, बल्कि इसकी भाषा, भाव और भावुकता को देखकर आधुनिक सामाजिक सभी पत्रों की निःसंकोच हीनतर समालोचना करने को वाचाल होना पड़ता है। हमारी परमात्मा से एकान्त प्रार्थना है कि जैन दर्शन का दर्शन (प्रकाश) हमेशा अप्रतिहत रूप से बढ़ता ही जाय।

कुंथलगिरि ब्रह्मचर्याश्रम के अधिष्ठाता श्रीमान् ब्रह्मचारी पार्श्वसागर जी—"जैन दर्शन" का प्रथम अङ्क देखा इसके उद्देश और लेख उत्कृष्ट हैं। यह उदित जैन दर्शन अन्य दर्शनों को अपने तेज से निस्तेज करेगा और अज्ञ जनता को सत्य मार्ग बतलावेगा। जैन समाज को ऐसे पत्र की अति आवश्यकता थी।

श्रीमान् ला० मुत्सद्दीलाल जी—"जैन दर्शन" मिला इसका अनुपम रूप देखकर प्रसन्नता हुई।

श्रीमान् पं० सुरेन्द्रचन्द्रजी 'वीर' साहित्य शास्त्री—"जैन दर्शन" का प्रथम अङ्क देखा पत्र अपने ढङ्ग का जैनसमाज में अद्वितीय है। शास्त्रार्थ संघका मुखपत्र ऐसाही होना चाहिये। अरबी घोड़े के लिये तुर्की सवार चाहिये।

आवश्यक निवेदन !

माननीय महोदय ! सादर जुहार ।

"जैनदर्शन" का यह अङ्क भी आपकी सेवा में बिना मूल्य ही भेजा जा रहा है । आशा है आप अब इस का वार्षिक मूल्य २॥) मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा अवश्य करेंगे । हम चाहते थे कि हम बिना आपकी अनुमति पाये आपके नाम वी० पी० न भेजें और डाकखाने को व्यर्थ ही में ।-) पैसे न दें, किन्तु यदि आपने इस सूचना को पढ़ कर भी इस का वार्षिक मूल्य २॥) मनीआर्डर से नहीं भेजा, या यह अङ्क वापिस नहीं किया, या)॥। का कार्ड भेज कर इन्कार नहीं लिखा तो हम मजबूरन आगामी अङ्क 'पर्युषण अङ्क' उपहारी-पोस्टेज दो आने सहित २॥।=) की वी० पी० द्वारा आप की सेवा में भेजेंगे, जिसे आशा है आप अवश्य स्वीकार करेंगे । यदि आप ने २५ अगस्त तक भी केवल २॥) मनी-आर्डर द्वारा भेज दिये तो आप उपहार की पुस्तकों के साथ साथ ।=) पोस्टेज के भी लाभ में रहेंगे ।

यह बात तो आपको याद होगी ही कि

"दर्शन" के आगामी अङ्क ही में ग्राहकों को ४००) की पुस्तकें बिना मूल्य भेंट देने के लिये ४०० उपहारी टिकिट भेजे जायंगे, जिनका विशेष विवरण आप इसी अंक के टाइटिल के दूसरे पृष्ठ पर देखेंगे । इसके अतिरिक्त आपको यह बात जानकर भी हर्ष होगा कि भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ कमेटी ने

"दर्शन" की पृष्ठ संख्या बढ़ा दी है और

यह तय कर दिया है कि दर्शन के चौथे अङ्क से उसकी पृष्ठ संख्या कम से कम ३२ रहे और उसमें सर्वोपयोगी तथा कुछ दार्शनिक लेखों का प्रकाशन स्थायी रूप से किया जावे । अब आप स्वयं ही यह

दौड़धूप कर रहा था, फिर भी सुना जा रहा है कि हम दोनों एक ही लोक में निवास करते हैं ।

उषा—फिर आपने मेरे लिये इतना कष्ट क्यों उठाया ?

प्रातः—(अपने करपल्लव फैलाकर) तुम्हारे प्रणय में;

उषा—मेरे प्रणय में ! (यह कहते कहते उषा नवेली ने अपने मदिर मुख को उसकी कुछ लाली भरी अङ्क में रख दिया । यह देख प्रातःकाल उसके मुखपर एक प्रेम की स्वर्ण रेखा खींचकर, अपनी स्मृति का एक अरुणबिन्दु लगाकर न जाने कहां का कहाँ कब चला गया, उषा भी उसकी खोज में किसी अज्ञात पथ में विलीन हो गई) सचमुच यह एक संसार का स्वप्न था ।

"कमल"

उपहारी टिकिट ! उपहारी टिकिट !

"दर्शन" २॥)

के ग्राहक हो जाने से आपको

"

तय करलें कि इतनी अधिक पृष्ठ संख्या और इतना कम वार्षिक मूल्य क्या आ पाक्षिक पत्र का देखा है ? और विशेषकर इस स्थिति में जब कि उसमें १. स्थायी औ हो २. नोटिसों से ही पृष्ठ संख्या पूरी न की जाती हो ३. उसके सहायक समय २ प प्रकार के मूल्यवान उपहार भेंट करते रहते हों ४. कागज़ अच्छे किस्म का लगाय ५. उसे ठीक समय पर निकाल कर आपके पास निश्चित तारीखों में पहुंचाने का प्रबन्ध अधिक क्या ?

विनीत :—प्रकाशक "जैन दर्शन" बि

"दर्शन" बिना मूल्य भी ।

"दर्शन" के पाँच ग्राहक बनाने वाले सज्जनों को "द तक बिना मूल्य मिलेगा ।

नोटिस या अपील आदि ओड़पत्र

दशलाक्षणी पर्व में भारत वर्ष भर में भिजवाने के इच्छुक तुरन्त ही अपनी १००० प्रति निम्नलिखित पते पर भेज कर ५) बटाई चार्ज मनीआर्डर से भेज दें । १ सितम्बर का ही अङ्क भाद्रपद में निकलेगा । इसलिये छपी हुई तैयार अपीलें भी आ जाने पर उस अङ्क के साथ बाँट दी जायंगी । —प्रकाशक "जैनदर्शन", बि

चतुर्दशी व्रत के उद्यापन में "दर्शन" के सर्व प्रथम बनने वाले उन ४०० ग्राहकों को भेंट करेंगी जो 'दर्शन' का पूरा मूल्य २॥) भेज कर ग्राहक बन जायँगे । —प्रकाशक "दर्शन"

वर्ष १ | भादों कृष्णा ११—श्री 'वीर' निर्वाण संवत् २४५९ | अङ्क ३
बिजनौर, १६ अगस्त, १९३३ ई०

उषा !

उषा ने अपने अरुण अधरों पर एक मादक हंसी हंसते हुए कहा कि ओह ! तुम आगये;

मैं तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा में तुम्हारे सुन्दर गले को सजाने के लिये सद्यः पुष्पित चंचरीक चुम्बित परिमल परिप्लुत हृदय हृद्य मलयपवन परिरंभित पीत एवं अरुण, शुभ्र वासन्ती कुसुम माला को गूंथ कर कितनी देर से बाट जोह रही हूँ।

मैंने तुमको चन्द्रिकाका उजियालीमें, झिलमिल तारों की आभामें, क्षितिज की अरुण शोभा में, व्योमकी अनन्त गलियोंमें, गिरिकी उन्नत शिखरोंमें, निर्झरनों के झर झर में, कलस्विनी की कल कल में, मंदाकिनी की चंचल लहरोंमें, सुमनोंकी मुसकानोंमें, कामिनीके मधुर विलासमें, संध्या की हंसती हुई आभामें, लताओंके झरोखों में कुन्दपुष्प की धौत लीला में, मल्लिकाके यौवन में, मालती के मंद मंद हास्यमें, चंपाकलीके कटाक्षोंमें, कोकिल की कुहु कुहुमें, पक्षियों के कलरव में, चटकों की चूं चूं में ढूंढ ढूंढ कर हार गयी। न मालूम, तुम किस अज्ञात लोक में वास करते हो ?

प्रातः—(प्रेमाभिषिक्त सुमधुर वचनों मे बोला) प्रिये ! मेरे लिये इतने असुख का अनुभव, अन्वेषणका क्रम और नयनोंका दुःख क्यों उठाया। मैं तो स्वयं तुमको ढूंढने के लिये इधर उधर दौड़धूप कर रहा था; फिर भी सुना जा रहा है कि हम दोनों एक ही लोक में निवास करते हैं।

उषा—फिर आपने मेरे लिये इतना कष्ट क्यों उठाया ?

प्रातः—(अपने करपल्लव फैलाकर) तुम्हारे प्रणय में;

उषा—मेरे प्रणय में ! (यह कहते कहते उषा नवेली ने अपने मदिर मुख को उसकी कुछ लाली भरी अङ्क में रख दिया। यह देख प्रातःकाल उसके मुखपर एक प्रेम को स्वर्ण रेखा खींचकर, अपनी स्मृति का एक अरुणबिन्दु लगाकर न जाने कहां का कहाँ कब चला गया, उषा भी उसकी खोज में किसी अज्ञात पथ में विलीन हो गई) सचमुच यह एक संसार का स्वप्न था।

"कमल"

सम्पादकीय !

आपसी विरोध का सदुपयोग !

प्रत्येक समाज में अनेक स्वभाव, अनेक प्रगति, अनेक आदर्श और अनेक ढंगों के रखने वाले मनुष्य हुआ करते हैं। इस कारण समय २ पर उन मनुष्यों में आपसी विरोध होना एक साधारण बात है। इसी लिये कोई भी समाज ले लीजिये, वह चाहे मुसलमान या ईसाई समाज ही क्यों न हो—वहाँ भी आपस का विरोधभाव विद्यमान है; जब कभी कभी उनका शिया, सुन्नी आदि भेद वाला विरोध अधिक उबल पड़ता है तो खून की नदियां भी बह जाती हैं। साधारण विरोधभाव तो सभ्य, शान्त, शिक्षित जनता में भी प्रायः सभी जगह बना रहता है; उसी प्रकार हमारे दिगम्बर जैन समाज में अनेक विचार भेदों के कारण परस्पर विरोधभाव है तो यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं।

किन्तु इस आपसी विरोध में हमारा एक आदर्श लक्ष्य हमारे सामने से दूर नहीं होना चाहिये। वह लक्ष्य है 'अन्य के लिये एकता' अर्थात् वह हमारा विरोध अपने लिये है अन्य के लिये नहीं। किसी दूसरे समाज या व्यक्ति के साथ विरोध होने पर हम सब को पारे के समान मिलकर एक हो जाना चाहिये। जिस से हम को अन्य समाज कुचल न सके।

मुसल्मान आपस में अनेक बार मूर्खता पूर्ण खूनी लड़ाई कर बैठते हैं, किन्तु हिन्दुओं के साथ लड़ाई होने पर वे एक हो जाते हैं—उनके ताजिये या मसजिद अथवा उनके किसी मौलाना, फ़कीर आदि पर किसी का अपमान जनक आक्रमण हो तो वे सब एक होकर बदला ले डालते हैं—, उन में से चाहे बहुत से मुसल्मान ताज़िया, मसजिद या फ़कीर आदि के मानने वाले न भी हों। यह बात हिन्दुओं में नहीं, इसी कारण थोड़े से मुसल्मान बहुसंख्यक हिन्दुओं को दबाए रहते हैं। हिन्दुओं के दबने का इसके सिवाय और कोई कारण नहीं।

मुसल्मानों की यह आदर्श नीति सदा हमारे सामने भी रहनी चाहिये। हम चाहे आपस में विचार-भेद के कारण खूब खींच तान करें, किन्तु जहाँ दिगम्बर जैन उद्देश के विरुद्ध किसी दूसरे का अनुचित आक्रमण देखें वहाँ आपसी द्वेष दूर रखकर सम्मिलित शक्ति से उस का विरोध करें।

मान लीजिये हममें से कुछ भाइयों के विचार तीर्थक्षेत्रों के अथवा तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रतिकूल हैं तो उतनी हानि नहीं किन्तु यदि कोई अन्य समाज या व्यक्ति हमारे किसी तीर्थ या उसकी प्रबन्धक कमेटी पर हमला करता है, हमारे अधिकारों को हड़पना चाहता है तो उस समय हम को अपना विचार भेद भुलाकर सम्मिलित रूप से उसका सामना करना चाहिये। इसी प्रकार हमारे कुछ सज्जन आचार्य महाराज तथा मुनिसंघ के साथ अपना कुछ विरोध भाव प्रगट करते हैं तो कुछ हानि नहीं किन्तु इसका अनुचित लाभ आर्य-समाज आदि (हमारे प्रतिकूल) न उठाने पावे, यह हमको ध्यानमें रखना चाहिये। हमारे आदर्श साधुवेष की विहार सम्बन्धी रुकावट दूर करने के लिये एसेम्बली में बिल पेश होने वाला है; ऐसे समय हमको आपसी विरोध को भुला कर अपनी शक्ति इस बिल को पास करा कर क़ानून बनवा देने के लिये लगा देनी उचितहै। उसके लिये ५०-६० हज़ार हस्ताक्षरों वाला बहुत बड़ा मैमोरियल बनाकर ऐसेम्बलीमें तथा वाइसरायके पास भेजना चाहिये। एसेम्बलीके मेम्बरों से मिल कर बिल को पास कराना हम अपना कर्तव्य समझें। जिससे हमारे आदर्श दिगम्बर वेश का कहीं भी अपमान अथवा रुकावट न होने पावे।

नवयुवक, प्रौढ़ और वयोवृद्ध, बाबू, पंडित, सेठ, त्यागी, तेरहपंथी, बीसपंथी महानुभावों ! इस नीतिको सदा अपने साथ रक्खो, इसे हाथसे कदापि न जाने दो, तभी तुम जीवित रह सकोगे अन्यथा इस विकट ज़मानेमें तुमको सब कोई अपमानितकर देगा। आपस में लड़ो झगड़ो किन्तु अपना होश और धीरज हाथ से न जाने दो, दूसरे विरोधी के लिये एक हो जाओ, जिससे कोई अन्य तुम्हारी ओर उंगली भी न उठा सके।

इन्दौर राज्य का उपयोगी बिल !

अभी इन्दौर राज्य की कौंसिल में राज्य की ओर से एक बिल उपस्थित हुआ है, यदि यह बिल क़ानून हो गया तो इससे जनता को बहुत लाभ होगा। बिल का संक्षिप्त रूप यह है कि—

"इन्दौर राज्य में विवाह के अवसर पर अधिक से अधिक पंक्ति भोजन केवल 'दो' हों। बारात में अपने संबंधियों के अतिरिक्त ५० पचास आदमियों से अधिक न हों। दहेज आदि को लोगों में न दिखलाया जावे। **जो कोई इन नियमों को तोड़ेगा उसको एक हज़ार रुपये तक जुर्माना होगा।** पहले से पता लग जाने पर फ़र्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट नियम भंग करने वालों के विवाह को रोक भी सकताहै।"

इन्दौर राज्य का यह बिल स्वागत करने योग्य है। ऐसे नियम दिगम्बर जैनसमाज में सर्वत्र अमल में आने चाहियें।

जब कि दिनों दिन व्यापार गिरता चला जा रहा है, व्यापार में पहले से बहुत कम मुनाफ़ा हो रहा है, नौकरियों की दशा बहुत बुरी हो गई है, बेकारी का मैदान फैलता जा रहा है तब हमारे जैन समाज में विवाह के ख़र्च बढ़ते जा रहे हैं। जो लोग धनहीन हैं वे भी क़र्ज़ लेकर, मकान, ज़ेवर बेचकर धनिक लोगों की फ़िज़ूलख़र्ची में शामिल होकर अपने आपको बर्बाद कर रहे हैं। हज़ारों कमाऊ, सुंदर, सुशील नौजवान धन की कमी के कारण अविवाहित रहते जा रहे हैं। ऐसी ही बुरी

दशा लड़की वालों की है। फिर केवल लेक्चरबाज़ी से किस प्रकार समाज की रक्षा होसकती है।

सच बात तो यह है कि—

समाज का सत्यानाश करने वाले तथा समाज का उत्थान करने वाले बड़े (धनिक) आदमी हुआ करते हैं। वे स्वार्थान्ध होकर अपनी जाति वाले दरिद्र मनुष्यों के दुःखों का अनुभव न कर विवाह शादियों के खर्चों को बढ़ा देते हैं, जिस से कि वे अपनी जाति को रसातल में पहुँचाने के अक्षम्य अपराधी हैं और ऐसे अपराधी जैनसमाज में बहुत हैं।

अपनी पुत्री का सिर्फ़ ६५) पैंसठ रुपयेमें विवाह करके पीछे एक लाख रुपये का उपयोगी दान करने वाले करोड़पति सेठ जमनालाल जी बजाज़ सरीखे धनाढ्य, समाज के यशस्वी, आदर्श रक्षक एवं हितैषी होतेहैं। हार्दिक शोक है कि ऐसे परोपकारी सेठों का जैन समाज में एक प्रकार से अभाव है।

धनिक लोगों को अब जैनसमाज की रक्षा के लिये अपना ढंग बदलना चाहिये। वे अपनी गाँठ से निकाल कर किसी को कुछ न दें (बल्कि वे अपना निजी आर्थिक लाभ और कर लें) किन्तु अहिंसाधर्म और साधर्मी वात्सल्य को ध्यान में रख कर विवाह शादियों के खर्चों को अमली रूप से कम करने की कृपा कर दें। **वे यदि थोड़ा खर्च करेंगे तो कोई भी उनकी निंदा न करेगा बल्कि सेठ जमनालाल जी बजाज़ के समान सब कोई उनकी प्रशंसा करेगा।** जाति रक्षा भी हो जायगी।

दहेज़ का दुष्परिणाम !

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के अन्तर्गत अग्रवाल जाति में विवाह समय कन्यापक्ष से भारी दहेज़ ठहरा कर विवाह करने की रूढ़ि कुछ दिनों से चल पड़ी है। लड़का ज़रा एफ़० ए०, बी० ए० में पहुँचा कि अपना विवाह करनेके लिये कन्यावालों से उसने मोटर, तांगा, विलायत जानेका खर्च आदि मांगना शुरू कर दिया। कन्या के लिये सुयोग्य बर की तलाश करने वाले माता पिता ऐसे दहेज़ के भिखारियोंकी भिक्षा पूर्ण करनेके लिये प्रयत्न करते हैं और अपने ऊपर क़र्ज़ का भार लाद कर मकान ज़ेवर बेचकर भी जैसे तैसे उनको भिक्षा देडालते हैं।

जो बेचारे उतनी भीख दहेज़ में नहीं दे सकते, वे अपनी सुंदर गुणवती कन्याओंका पाणिग्रहण भी उनके साथ नहीं कर पाते। इसी कारण इस समय २२–२४–२६ वर्ष तक की, बल्कि कहीं कहीं इससे भी बड़ी आयु की लड़कियाँ कुमारी बैठी हुई हैं। जिस अभागेके घर ४–६ लड़कियाँ हुईं कि फिर वह अपार कष्टमें न तो जीवित रहता है न मृतक ही।

इस दहेज़ की भिक्षा के भिखारी हैं आजकल के अंग्रेज़ी पढ़े लिखे नौजवान, जोकि दहेज माँगने के लिये तो इतना भारी मुख खोलतेहैं किन्तु बी० ए०, एम० ए० हो जाने पर (प्रायः) सिवाय अपने मुख की मक्खियां उड़ाने के और कुछ नहीं कर पाते। पच्चीस रुपये मासिक नौकरी तकके लिये जिनको कोई जगह नहीं मिलती। ऐसे उदाहरण अनेक हमारे सामने विद्यमान हैं कि दहेज़ की भीख में मोटर तो पा गये, किंतु उसके चलानेके लिये अपने पास पैट्रौल, ड्राइवर आदि का खर्च न होने से बाबू जी के घर पर खड़ी हुई मोटर धूल खा रही है, कई एक बाबूजी आधे मूल्य में दहेज़ की मोटर बेचकर रक़म खा पी चट कर गये। कुछ एक बाबू लोग

दहेज़ में मोटर तो मांग लाये, किन्तु अपने पास उस के खड़े करने की जगह न होने से मोटर बेचने के लिये लाचार हुए।

यह हाल है दहेज़ के भिखारी कोरे जैंटिलमैन बाबुओं का; उधर दहेज़ की भीख न दे सकने से जो लड़कियाँ अविवाहित रह जाती हैं। उनकी जो शोचनीय दशा होतीहै उसको कौन लिख सकताहै। अनेक लड़कियां कुमारी रह कर माता पिता की चिन्ता का बोझ बढ़ाती हैं, कुछ दुराचारका शिकार बनती हैं और अनेक असह्य दुःख से मुक्ति पाने के लिये आत्महत्या भी कर लेती हैं।

मानो विवाह दहेज़ की रकम के साथ होता है; कन्या की योग्यता का उसमें कुछ विचार नहीं किया जाता। यही कारण है कि धनिक पुरुष अपनी दहेज़ की अच्छी भीख देकर अपनी थोड़ी योग्यता रखने वाली कन्याओंका विवाह कर सकते हैं, किन्तु असमर्थ ग़रीब अग्रवाल भाइयों की सुयोग्य लड़कियां भी सुयोग्य वरों को पसन्द नहीं आतीं। इस दहेज़ की मांग से माता पिताओं के दुःख को तो सब कोई जानता देखता है किन्तु कन्याओं के दुःख के चित्र का एक ताज़ा दृश्य हम नवयुवकों के सामने रखते हैं। घटना बंगाल की है, किन्तु दहेज़ के कारण हुई है—

"मैजखारा (ढाका) निवासी ब्रजेन्द्रकुमार चौधरी ने अपनी बहिन की सगाई दीनेशचन्द्र घोष के बड़े पुत्र के साथ सोने के गहने आदि सामानके सिवाय दो सौ रुपये नक़द दहेज़में ठहरा कर करदी, किन्तु विवाहके कुछ दिन पहले दीनेशचन्द्र ने अपने पुत्र को पढ़ने के लिये विलायत भेजने के खर्च के वास्ते आठ सौ रुपये और मंगवाये। ब्रजेन्द्रकुमार के पास रुपयों का कुछ प्रबन्ध न था; इस कारण उसने अपनी पत्नी के आभूषण बेचकर रुपये एकत्र करने चाहे, किन्तु अपने विवाह के लिये अपने भाई को इतना कष्ट देना उचित न समझ उसकी बहिन ने तेज़ाब पीकर आत्महत्या करली।"

नवयुवको! इस करुणापूर्ण घटना से कुछ शिक्षा लो, जिस को अपनी चिरसंगिनी बनाते हो उसके गुणोंपर ध्यान दो—दहेज़ की भीख न माँगो। अपने बाहुबल द्वारा पसीना बहाकर कमाया हुआ पैसा ही काम आता है—यह भीख जीवन नौकाको पार नहीं लगा सकती।

उद्बोधन !

[लेखक—पं० सुमेरुचन्द्र जी विद्यार्थी 'मेरु' बनारस]

[१]

सोते हुए भावों को जगा दो उमगा दो वीर,
पक्षपात पंक धोके भक्तिभाव भर दो;
भर दो विमल ज्योति भावनाएं भव्य होवें,
भविक जनों के जाड्यतम तोम हर दो।
हर दो अनीति पंथ सत्य का वितान तान,
नव्य कंज कलिका विकास हिय भर दो।

[२]

वीर व्रतधारी सजो, वीरता का बाना आज,
कुंभकर्णी नींद नहि लेने का ज़माना है;
वीर वर बनो वादि केसरीऽकलंक जू की,
सन्तति हमी हैं जग ज़ाहिर कराना है।
माना ना विपक्षियों ने ठाना है अनीतिवाद,
युक्त युक्तियों से उन्हें शीघ्र ही छकाना है;
मर्म जिनधर्म का यथार्थ दिखला के विश्व,
विजयी धरम जिन झंडा फहराना है।

जैन संघ भेद।

[ले०—पं० अजितकुमार जी शास्त्री, मुलतान]
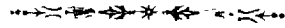
वह भी कोई समय था जब कि भारतवर्ष में जैनधर्म मध्याह्न सूर्य के समान चमक रहा था। देश भर में जैनधर्म की आनन्द भेरी कहिये या विजय भेरी समझिये बड़े ऊंचे मधुर स्वर से बज रही थी। जैनधर्म का प्रसार करने वाले तत्वज्ञानी तथा आदर्श चरित्र की प्रतिमा पूज्य ऋषियों के झुंड स्थान स्थान पर नगर, ग्राम, पर्वत, जंगल, मठ, उद्यानोंमें विहार करते फिरते थे। उनके पावन हितकर उपदेश सुनने के लिये बड़े बड़े महाराजा अपने मुकुटों को उन ऋषियों के चरणों से स्पर्श कराते हुए अपना भाग्य सफल मानते थे। कोई प्रान्त, कोइ नगर और कोई गाव जैनधर्म के गौरव से शून्य नहीं था। जैनधर्म के उपासकों की संख्या करोड़ों के परिमाण में थी।

किन्तु भाग्यने उलटा पलटा खाया अथवा वह मध्याह्न का सूर्य सायंकालीन क्षीण आभा दिखलाने के लिये अस्ताचल की ओर शनैः शनैः चलपड़ा या यों समझ लीजिये कि बड़े परिश्रमसे विस्तृत किये हुए उस धर्म साम्राज्य का उपभोग करने के लिये या अपना खेद मिटाने के लिये जैन उपासकों ने विश्राम-लाभ किया। अथवा यों कह लीजिये कि कालचक्र ने ही फेरा खाया—उस उन्नत विशाल जैन संघ के उन्नति शिखर पर चढ़ने के लिये पैर लड़-खड़ाये और असह्य निर्बलता आजाने के कारण बजाय ऊपर चढ़ने के नीचे पैर बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।

वह नीचे उतरने का समय था जैन सम्राट् मौर्य चन्द्रगुप्त का शासनकाल तथा राज्यभार त्याग कर श्री अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के चरणों में साधुदीक्षा लेजाने के बाद का ज़माना, जब कि भारतवर्ष के कुछ भाग में लगातार बारह वर्ष का विकराल दुष्काल पड़ा था। उस विकराल दुष्काल में जिस प्रकार असंख्य जन हानि हुई थी ठीक उसी प्रकार भारतीय राजधर्म (जैनधर्म) की भी असीम हानि हुई। इस बात का उल्लेख करने के पहले यह आवश्यक है कि श्री भद्रबाहु आचार्य के आदर्श जीवन पर प्रकाश डाला जावे।

आज से लगभग २३०० तेईस सौ वर्ष पहले की बात है कि इस भारतवर्ष के पुंड्रवर्द्धन प्रान्त में कोट्टपुर नामक एक नगर था, उसका प्रतापी शासक पद्मधर राजा था। पद्मधर का मान्य पुरोहित सोम-शर्मा था, उसकी सोमश्री नामक गुणवती, सुन्दर, पतिव्रता पत्नी थी।

कुछ दिनों पीछे सोमश्री की कोख से एक शुभ लक्षण विभूषित, सर्वाङ्गसुन्दर, भाग्यशाली पुत्र का जन्म हुआ जिसका कि नाम 'भद्रबाहु' रक्खा गया। भद्रबाहु दूज के चन्द्र समान बढ़ने लगे।

एक दिन वे अन्य बच्चों के साथ नगर के बाहर गोलियों का खेल खेल रहे थे। उधर गिरनार की यात्रा के लिये विहार करते हुए श्री गोवर्द्धन-आचार्य उधर कोट्टपुर आ निकले और जहां पर वे बच्चे खेल रहे थे वहां बच्चों के खेल देखने के लिये कुछ देर खड़े हो गये।

खेल में एक लड़के ने आठ गोलियों को एक दूसरी गोली के ऊपर बिना किसी सहारे के चढ़ा दिया किन्तु उसके आगे न चढ़ा सका; परन्तु भद्र-बाहु ने उन ही गोलियों को एक दूसरे के ऊपर चौदह गोलियां चढ़ा दीं! भद्रबाहु की इतनी प्रवीणता देखकर श्री गोवर्द्धन आचार्य को आश्चर्य

हुआ और उन्हों ने निमित्त ज्ञान से जाना कि यह चतुर बालक ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व का पूर्ण विद्वान श्रुतकेवली होगा। अब उन्हों ने उस बच्चे से उस का नाम पूछा; तब उसने अपना नाम भद्रबाहु बतलाया। 'भद्रबाहु' नाम सुनकर गोवर्द्धनआचार्य को निश्चय होगया कि यही बालक अन्तिम श्रुतकेवली होगा।

श्री गोवर्द्धनआचार्य ने भद्रबाहु से उसका घर पूछा। भद्रबाहु ने जाकर अपना घर बतला दिया। भद्रबाहु के माता पिता ने विद्वान तपस्वी श्री गोवर्द्धनआचार्य को अपने घर आते हुए देखकर विनयभाव से उनका स्वागत किया और ऊंचे आसन पर उनको बिठाया तथा अपने योग्य उचित सेवा पूछी।

गोवर्द्धनआचार्य ने कहा कि तुम्हारा पुत्र भद्रबाहु बहुत होनहार बालक है। इसको हम अपने पास रख कर पढ़ाना चाहते हैं, सो तुम विद्या पढ़ाने के लिये यह बालक हमको देदीजिये। भद्रबाहु के माता पिता ने हाथ जोड़ शिर झुका कर नम्रता से सहर्ष कहा कि पुत्र आप का है, आप जैसा उचित समझें करें।

श्री गोवर्द्धनआचार्य भद्रबाहु को उनके माता पिता की स्वीकारता पाकर अपने साथ ले गये।

भद्रबाहु की बुद्धि बहुत तीव्र थी; श्री गोवर्द्धनआचार्य भद्रबाहु को जो पढ़ाते थे भद्रबाहु को वह झट याद हो जाता था। इस कारण जो विद्या साधारण पुरुषों को बहुत समय में प्राप्त होती वह भद्रबाहु ने थोड़े समय में पढ़ ली। यहां तक कि समस्त श्रुतज्ञान श्री गोवर्द्धनआचार्य ने भद्रबाहु को पढ़ा दिया और भद्रबाहु ने वह पूर्ण श्रुतज्ञान प्राप्त कर लिया।

पूर्ण श्रुतज्ञानी बना कर गोवर्द्धनआचार्य ने भद्रबाहु को अपने माता पिता के पास अपने घर चले जाने की आज्ञा दी। पूर्ण विद्वान होकर जब भद्रबाहु घर पहुँचे तब उन के माता पिता को बहुत हर्ष हुआ। [क्रमशः]

कर्म-वीरता !

[ले०—श्रीमान पं० पारसराम जी शास्त्री 'कमल']

कर्मशील बन वीर जगत में, अक्षयनिधियां बरसाओ ;
सत्यमार्ग की दिव्य छटा से, जगमग जग को कर जाओ।
विश्व क्षितिजकी लघुज्योती में, अमिट प्रभा को झलकाओ ;
साहसहीन सु नवयुवकों में, जीवनलाली भर जाओ ;
उठो उठो कर्मण्य बनो अब, उन्नत गिरि पर चढ़ जाओ।
जैन धर्म की विशद विभा को, विश्व व्योम मे चमकाओ :
दर्शन में आदर्श दीप्ति भर, कृत्य वीर का बतलाओ।
अद्भुत वीर-भावना भाकर, कर्म-वीरता दिखलाओ।

× × ×

आवो, आवो अय ! अब लालो, बनकर संसृति स्वर्गविहान ;
सिहरो, थिरको, तुम हृदयों में, बन वीणा की मंजुल तान।
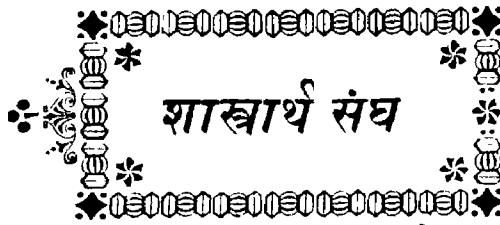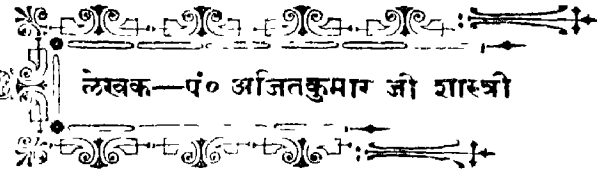
शास्त्रार्थ संघ

लेखक—पं० अजितकुमार जी शास्त्री

शास्त्रार्थ संघकी स्थापना होजाने पर संघ के संचालन की बागडोर श्रीमान पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ अम्बाला ने अपने हाथ में ली। आप ही संघ के महामंत्री नियत हुए। उत्साह बढ़ाने वाले तथा समय समय पर आर्थिक सहायता देने वाले श्रीमान लाला शिब्बामल जी रईस अम्बाला छावनी हुए। ला० शिब्बामल जी वे महानुभाव हैं जो वृद्ध होने पर भी युवकों से भी बहुत उन्नत उत्साही हैं। निकम्मे बैठना जिन्हें असह्य रोग प्रतीत होता है। धार्मिक प्रचार और सामाजिक उन्नति के लिये जो सदा उत्साहभरे रहते हैं। शास्त्रार्थ, ट्रैक्ट प्रचार आदि में जिनकी बहुत रुचि रहती है। पं० राजेन्द्र कुमार जी अच्छे वाग्मी हैं और शास्त्रार्थ के लिये सदा तय्यार रहते हैं; वैदिक साहित्य से उन को अच्छा परिचय है। संगठन करने का और कार्य को आगे चलाने का उन्हें ढंग आता है, सरल हैं मनस्वी और उदार हैं।

लाला शिब्बामल जी और पं० राजेन्द्रकुमार अम्बाला-छावनी में एकही स्थान पर रहते हैं, इस कारण दोनों ही एक दूसरे के संयोग से संघ की प्रगति बढ़ाने में अनवरत उद्योगशील रहते हैं। संघ की निःस्वार्थ सेवा के लिये यदि प्रथम स्थान पं० राजेन्द्रकुमार जी ने ले रक्खा है तो द्वितीय स्थान ला० शिब्बामल जी के हाथ समझना चाहिये।

शास्त्रार्थ संघ ने कार्यसंचालन के लिये अपने पाँच विभाग बनाये—प्रचारक, प्रकाशन, पुस्तकालय, शास्त्रार्थ और अनुसंधान विभाग।

प्रचारक विभाग

प्रचारक विभाग बहुत अच्छे ढंग पर चलानेका विचार था और इस समय भी है, किन्तु अनेक कारण वश मनोरथ सफल न हुआ। प्रचारकों के लिये संघ ने प्रारम्भ से ही श्रीमान ब्र० कुँवर दिग्विजयसिंहजी को नियत किया। आपने अपने निर्वाह योग्य स्वल्प साहाय्य पर संघ की प्रचारकी का कार्य आज तक कियाहै। आप अच्छे व्याख्याता हैं और आर्यसमाज के साथ शंकासमाधान व शास्त्रार्थ भी अच्छा कर लेते हैं। संघ के पास प्रचार के लिये जिधर से मांग आती है वहां आप को भेज दिया जाता है। स्वास्थ्य ठीक न रहने से आपको कहीं कहीं पर अधिक दिन रुक जाना पड़ता है।

किन्तु भारतवर्ष भर में प्रचार के लिये एक प्रचारक से कितना कार्य हो सकता है? तथा प्रचारकों के योग्य सुयोग्य विद्वान प्रचारकों की भी बहुत कमीहै। द्रव्य एकत्र करनेकी मैशीन व भ्रमण करने योग्य चाहे जैसे व्यक्ति का नाम प्रचारक नहीं है। प्रचारक की योग्यता बहुत अच्छी होनी चाहिये; वह जिस प्रकार अच्छा व्याख्यानदाता हो उसी प्रकार अन्य जैन अजैन मतों का ज्ञाता दार्श

निक भी हो, शंकासमाधान और शास्त्रार्थ करने का भी अच्छा अभ्यासी हो। ऐसे प्रचारक जैनसमाज में बिरले हैं। इस कमी को पूर्ण करने के लिये अम्बाला छावनी में एक उपदेशक विद्यालय स्थापित करने का शास्त्रार्थ संघ ने निर्णय किया।

उपदेशक विद्यालय

इस विद्यालयके लिये यह कार्यक्रम बना था कि कमसे कम विशारद परीक्षा पास सुयोग्य ४ छात्रों को एक वर्ष तक अच्छी छात्रवृत्ति देकर विद्यालय में एक वर्ष तक जैन अजैन दर्शनोंको पढ़ाया जावे, उनकी वक्तृत्व (बोलने की) शक्ति बढ़ायी जावे तथा प्रचारकों के योग्य अन्य शिक्षा दी जावे। बीच बीच में उनको प्रचारकीका अभ्यास कराया जावे।

इस कार्य संचालन के लिये लाला शिब्बामल जी ने स्कालरशिप तथा रहने के मकान आदि का व्यय स्वीकार कर लिया था और पं० राजेन्द्रकुमार जी एवं पं० मंगलसेनजी ने आनरेरी रूपमें पढ़ाना स्वीकार किया था।

इस प्रकार कार्यक्रम तो बहुत अच्छा था; यदि कार्य प्रारम्भ हो जाता तो समाज सेवा के लिये बहुत कुछ कार्य होता, किंतु सुयोग्य छात्र न मिलने से तथा अन्य २-१ रुकावटें आ जाने से वह कार्य चालू न हो सका, परन्तु वह उत्साह अभी निर्मूल नहीं हुआ है। संभव है कि सोचा हुआ वह कार्यक्रम किसी दिन अवश्य कार्य परिणत हो जावे।

प्रकाशन विभाग

शास्त्रार्थ संघ की स्थापनाके करीब ३ माह पूर्व श्री चम्पावती देवी सुपुत्री ला० शिब्बामल जी जैन अम्बाला का स्वर्गवास हो गया था। आपका जीवन जैनसमाज की स्त्री समाज के लिए एक आदर्श जीवन था। श्रीमान ला० शिब्बामल जी ने बड़े प्रयत्न से पढ़ाकर आपको सर्वार्थ सिद्धि आदि सिद्धान्त ग्रंथों में तथा प० राजेन्द्रकुमार जी के अध्यापन से जैन न्यायमध्यमा परीक्षा में पास कराया था।

आपके स्वर्गवासके एक माह पश्चात् ही समाज के कुछ हितैषियों ने—जिन में वेदविद्या-विशारद पं० मङ्गलसेन जी, ला० विशम्भरदासजी और ला० जगतप्रसाद जी के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं—आपके नाम को चिरस्थायी रखने एवं उसके द्वारा स्त्री समाज में आपका आदर्श जीवित रखने के हेतु एक चम्पावती जैन पुस्तकमाला की स्थापना की। इस पुस्तकमालाके चलाने के लिये कईसौ रुपये का चन्दा भी आप ही महानुभावों ने कर दिया था।

इसके करीब डेढ़ मास पीछे शास्त्रार्थ संघ की स्थापना हुई और उसमें भी एक प्रकाशन विभाग रक्खा गया। संघ की स्थापना के पश्चात् दोनों संस्थाओं की प्रबन्धकारिणियों की स्वीकारता से चम्पावती जैन पुस्तकमाला को ही संघका प्रकाशन विभाग बना लिया गया और उस ही दिन से माला की कमेटी के सम्पूर्ण अधिकार संघकी कमेटी के हाथ में आगये तथा इसका नाम ही "चम्पावती जैन पुस्तकमाला प्रकाशन विभाग श्री० भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ" हो गया। [क्रमशः]

[गतांक से आगे]

[३]

दरबारीलालजीने अनन्त काल, अनन्त आकाश और अनन्त परमाणु समुदायात्मक स्कन्ध का प्रश्न उपस्थित करके निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं:—

"काल की अनन्तता को हम जान सकते हैं, क्योंकि काल की अनन्तता एक ही पदार्थ है। अनन्तत्व एक धर्म है और अनन्तत्वयुक्त काल को जानना एक पदार्थ को जानना है। इस ही प्रकार क्षेत्र की अनन्तता को जानना एक पदार्थ को जानना है। स्कन्धों में आप अनन्त परमाणु मानते हैं परन्तु मैं असंख्य मानता हूं, खैर असंख्य हो या अनन्त, यहाँ उस से कुछ बाधा नहीं है; क्योंकि असंख्य या अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध एक ही है और हम एक स्कन्धको जानते है—उसके प्रत्येक परमाणु को अलग २ नहीं जानते। यह स्कन्ध अनन्त प्रदेशी है, इस प्रकार के ज्ञान में स्कन्ध का अनन्त प्रदेशित्व नामक एक धर्म जाना गया है।"

[जैन जगत अङ्क १२ पेज ८]

अनन्त शब्द के दो अर्थ हैं—एक काल की दृष्टि से और दूसरा क्षेत्र की दृष्टि से। सत् का नाश और असत् का उत्पाद नहीं होता, अतः जो अभी सत् है वह सदैव सत् ही रहेगा इस अनुमान के आधार से किसी भी तत्त्व को काल की दृष्टि से अनन्त ठहराया या जाना जा सकता है किन्तु क्षेत्र की दृष्टिसे अनन्त ठहरानेके लिये इस प्रकारका कोई भी अनुमान नहीं हो सकता। जहां सत् की काल की दृष्टि से अनन्तत्व के साथ व्याप्ति है और एक से दूसरे को सिद्ध किया जा सकता है वहीं क्षेत्र की दृष्टि से नहीं; अतः इस से उस को वैसा सिद्ध नहीं किया जा सकता। कोई भी यह कह सकता है कि अमुक पदार्थ सत् है इस लिए वह काल की दृष्टि से अनन्त है किन्तु इस ही लिए उस को क्षेत्र की दृष्टि से अनन्त नहीं कहा जा सकता। इसके लिए तो आवश्यक है कि आप उसकी सत्ता को अनन्त क्षेत्र में जानें। इस से काल की अनन्तता का भले ही अनन्त के ज्ञान हुए बिना भी निश्चय किया जा सके, किन्तु क्षेत्र की अनन्तता के परिज्ञान के लिए अनन्त का परिज्ञान अनिवार्य है।

यही बात अनन्त परमाणुओं के समुदायस्वरूप एक स्कन्ध के सम्बन्ध में है। यहां हमें इस बात के स्वीकार करने में रंचमात्र भी संकोच नहीं कि अनन्त प्रदेशित्व नामक एक उसका धर्म है, किन्तु जब तक उस धर्म के अस्तित्व के सम्बन्ध में जानकारी न होजाय तब तक यही किसप्रकार कहा जा सकता है कि उस में इस प्रकार का एक धर्म है।

तीन स्कन्ध हैं—एक संख्यात प्रदेशी, दूसरा असंख्यात प्रदेशी और तीसरा अनन्तप्रदेशी। संख्यात प्रदेशी को संख्यात प्रदेशी, असंख्यात को असंख्यात और अनन्त प्रदेशी को अनन्त प्रदेशी कहना यह उनकी प्रदेश संख्या की निश्चिति पर अवलम्बित है। यदि उनकी प्रदेशसंख्या के निश्चय के बिना ही इस प्रकार का कथन किया जा सके तो संख्यात प्रदेशी ही को संख्यात प्रदेशी कहा जायगा अन्य को नहीं; इसी प्रकार अन्यों को ही अन्यों के प्रकार से। इस में नियामक ही क्या है?

प्रदेश संख्या का परिज्ञान बिना उतने के परिज्ञानके हो नहीं सक्ता, क्योंकि "अवयवार्थ प्रतिपत्तिः पूर्विका हि समुदायार्थ प्रतिपत्तिः" अर्थात् अवयव के परिज्ञान पूर्वक ही समुदाय का परिज्ञान होता है यह एक सिद्धान्त है। कौन कह सक्ता है कि वह व्यक्ति जिसको एक २ का अलग २ परिज्ञान नहीं है वह उनके समुदाय स्वरूप किसी भी संख्या को जान सक्ता है। इससे स्पष्ट है कि अनन्त प्रदेशी स्कन्ध का परिज्ञान भी अनन्तके परिज्ञान के बिना संभव नहीं।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि पदार्थों की अनन्तता सर्वज्ञ के वर्तमान स्वरूपमें बाधक नहीं। इसही को दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सक्ते हैं कि अनन्त का परिज्ञान भी हो जाता है और ज्ञान और ज्ञेय में से किसी एक को सान्त मानने का प्रश्न भी उपस्थित नहीं होता।

यदि सम्पूर्ण ज्ञेयों का काल की दृष्टि से विभाजित करें तो भूत, भविष्यत और वर्तमान इस प्रकार तीन भेद होते हैं। इनही को यदि क्षेत्र की दृष्टि से और उसमें भी ऊपर और नीचे के अन्तर से तो ऊपर के, नीचे के और मध्य के, इस प्रकार तीन भेद होते हैं। इस ही प्रकार एक २ के भी अनेक २ भेद हो सकते हैं। इन सम्पूर्ण ज्ञेयों में से चाहे वह किसी भी प्रकार के किसी भी भेद से सम्बन्ध क्यों न रखता हो, किन्तु ऐसा कोई नहीं जिसको कोई भी न जानता हो या जो किसी से भी न जाना जा सकाहो। ऊपर की वस्तु को ऊपर वाले जानते हैं या जान सक्ते हैं तो नीचे की को नीचे के। इस ही प्रकार भूतकाल की वस्तु को भूतकाल के, भविष्यतकाल के पदार्थों को भविष्यत के और वर्तमान के तत्वों को वर्तमान के। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान के सम्पूर्ण जीवों की दृष्टि से वर्तमान में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो न जाना जा सक्ता हो। ठीक यही बात भूत और भविष्यत के सम्बन्ध में है।

रेखा गणित का यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वे दोनों रेखायें जो आपस में समान हैं यदि कोई तीसरी रेखा जो उनमें से किसी एक के समान है तो वह दूसरी के भी समान है। यहां दो बातें हैं—एक स्वीकृत और दूसरी प्रमाणित। तीसरी रेखा का समान दोनों रेखाओं में से किसी एक के समान होना स्वीकृत है और उस ही का दूसरी के समान होना प्रमाणित।

रेखा गणित के इस सिद्धान्त को यदि जीवों के सम्बन्ध में घटित करना चाहे तो यों कहना चाहिये कि जितनी भी आत्मायें हैं वे सब स्वरूप की दृष्टि से समान हैं अतः जिसको एक आत्मा जानती या जान सक्ती है; उसही को दूसरी भी। यहांपर किसी भी आत्मा के ज्ञेय का स्थान तीसरी रेखा का है और स्वरूप की दृष्टि से समान आत्माओं

का स्थान समान दो रेखाओं का है। जिस प्रकार तीसरी रेखा समान दोनों रेखाओं में से किसी एक के समान होने से ही वह दूसरी के भी समान है उसही प्रकार कोई भी पदार्थ किसी भी आत्मा को ज्ञेय होने से ही वह प्रत्येक आत्मा के ज्ञेय होने योग्य है। स्पष्टता के लिए इसको यों भी कह सकते हैं कि सम्पूर्ण आत्माओं के जिनदत्त, राममोहन, ब्रजलाल और घनश्याम आदि नाम हैं। जिनदत्त की आत्मा स्वरूप की दृष्टि से राममोहनादि की आत्माओं के समान है, *अतः जिसको राममोहन जानता है या* जान सक्ता है उसको जिनदत्त भी। इसी प्रकार यह बात ब्रजलाल और घनश्याम आदिक सम्पूर्ण आत्माओं के साथ घटित कर लेना चाहिये। यह हम पूर्व ही प्रमाणित कर चुके हैं कि जगत की सम्पूर्ण आत्माओं के समुदाय की दृष्टि से जगत की कोई भी बात अज्ञेय नहीं यह जानो और जिनको जगत की सम्पूर्ण आत्मायें जानतीं या जान सक्ती हैं उनको एक ही *आत्मा जान सक्ता है जैसा कि* जिनदत्त के दृष्टान्त से स्पष्ट किया जा चुका है। अतः स्पष्ट है कि एक ही आत्मा जगत के सम्पूर्ण ज्ञेयों को जान सक्ती है या उसका इस प्रकार का स्वभाव है। ऐसा कोई भी आत्मा नहीं जो स्वरूप की दृष्टि से दूसरी आत्माओं से विभिन्नता रखता हो, अतः यह भी स्पष्ट है कि ऐसा भी कोई आत्मा नहीं जिसका स्वभाव जगत के सम्पूर्ण ज्ञेयों के जाननेका न हो। *अतः दरबारीलालजीका लिखना* कि "पूर्णज्ञान ज़्यादा से ज़्यादा कितनी वस्तुओंको जानता है इसमें हम इतना तो कह सकते हैं कि वह अनन्त को नहीं जानता, परन्तु कितने को जानता है यह नहीं कह सकते। इस प्रकार नास्ति अवक्तव्य भंग से हमने इतना निर्णय किया है। जब सातो ही भंग निर्णयात्मक हैं तब हमारा नास्ति अवक्तव्य भंग से पूर्ण ज्ञान का रूप बताना भी निर्णयात्मक है.......... ये बातें मैंने इस लिए कही हैं कि जिस से लोगों के हृदय में हथेली पर आम जमाने सरीखी अनुचित माँगें पैदा न हों *और वे कल्पित समाधानों से न ठगे जावें। परन्तु* यहाँ इतनी उदारता के बिना भी काम चल सक्ता है—क्योंकि हम यहां दोनों तरह के उत्तर दे सकते हैं अर्थात् पूर्णज्ञानके विषय अनन्त और सब पदार्थ नहीं हैं किन्तु असंख्य पदार्थ हैं। पूर्ण ज्ञान असंख्य पदार्थोंको जानता है" समुचित प्रतीत नहीं होता।

यदि थोड़ी देर के लिए अभ्युपगम सिद्धान्त से दरबारीलाल जी के कथन को मान भी लिया जाय *तब भी उनका इस प्रकार के भाव को नास्ति अवक्तव्य भंग से प्रकट करना या तो उनका इस भंग* के स्वरूप तक नहीं पहुँचना है या जानकर भी जनता को भ्रम में डालना।

किसी भी विषय के सम्बन्ध में ज्ञान के अभाव से उसके स्वरूप को न कह सकना अवक्तव्य नहीं, किन्तु ज्ञात दो धर्मों को एक साथ न कह सकना अवक्तव्य † है। इसही को यों भी कह सकते हैं कि अवक्तव्य का वाच्य अज्ञान नहीं, किन्तु पदार्थ का

† सहावाच्यमशक्तितः—आचार्य समन्तभद्रः। इसही पर भाष्य करते हुए आचार्य विद्यानन्दि ने अष्टसहस्री में निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हैं—सदसत्त्वाभ्यां चतुष्टयापेक्षया सह वक्तुम शक्तेरवाच्यं, तथाविधस्य पदस्य वाक्यस्य वा [illegible] ।
—अष्टसहस्री [illegible]

न कहने योग्य एक स्वतन्त्र धर्म है। दरबारीलाल जी को यदि उन के विचारानुसार पूर्ण ज्ञान का विषय मालूम नहीं है या वे मालूम नहीं कर सके हैं तो न सही, किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वह उस को इस ही लिए अवक्तव्य भंग से कथन करने लगजायं या कर सकें। जब दरबारीलाल जी का पूर्णज्ञान के विषय को नास्ति अवक्तव्य भंग से कथन करना ही अनुचित है फिर उसको इस ही आधार से निर्णयात्मक किस प्रकार माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त भी पूर्णज्ञान के विषय को निर्णयात्मक प्रतिपादन करने में दरबारीलाल जी के पास दो ही साधन हो सकते हैं—एक अभावस्वरूप और दूसरा भावस्वरूप। अभावस्वरूप से यह मतलब है कि यदि ज्ञान अनन्त को नहीं जानता तो वह असंख्यात को जानता है, किन्तु यह बात समुचित नहीं, प्रथम तो अनन्त को न जानना ही असिद्ध है। दूसरे यदि अभ्युपगम सिद्धान्त से इस को मान भी लिया जाय तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि ज्ञान असंख्य पदार्थों को जानता है। इन दोनों पदार्थों में से जो परस्पर विरोधी हैं और दोनों में से किसी न किसी का सद्भाव रहता है एक के अभाव से दूसरे का सद्भाव सिद्ध किया जा सक्ता है जैसे पुद्गल में स्निग्ध और रूक्ष।

इसही प्रकार अनन्त और असंख्यात का ऐसा सम्बन्ध होता या अनन्तके अभाव और असंख्यात की व्याप्ति होती तब तो पहिले से दूसरे को प्रमाणित किया जा सक्ता था, किन्तु ऐसा है नहीं। संख्यात ही एक ऐसी संख्या है जहाँ अनन्त का अभाव है और फिर भी उसको असंख्यात नहीं माना गया।

इससे स्पष्ट है कि दरबारी लाल जी अभाव रूप साधनसे पूर्णज्ञान के विषय को निर्णयात्मक प्रतिपादन नहीं कर सकते।

भावस्वरूप साधनके सम्बन्धमें प्रथम तो यही विचारणीयहै कि वह कौनसा साधनहै जो पूर्णज्ञान को असंख्य पदार्थोंका जानने वाला बतलाता है?

पूर्णज्ञान असंख्यात पदार्थों को ही जानता है, यहाँ एक यह भी बात विचारणीय है कि वह उनको एक साथ जानताहै या क्रम से। यदि एक साथ तो क्या वह सदैव उनही ज्ञेयों को जानता रहेगा जिन से असंख्यातकी संख्या बनी रहे? किन्तु यह बात असंभव है, क्योंकि वे पदार्थ भी सदैव उसही अवस्था में नहीं रहते। उनमें भी प्रति समय परिणमन हुआ ही करता है। इस प्रकार सहपक्षमें यह बात ठीक नहीं बैठती। यदि पूर्णज्ञान असंख्यात पदार्थों को क्रमशः जानता है तब भी यह तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि एक समय में वह कम से कम एक तो अवश्य जानता है। इस प्रकार भी वह असंख्यात समय तक ही ज्ञाता रह सक्ता है। असंख्यात समयके बाद पदार्थोंका जानना तो स्वयं अपने स्वरूप का खण्डन करना है। ज्ञान अनादि अनन्त और स्वपर प्रकाशक है, यह बात उभय पक्ष सम्मत है। अतः क्रमशः पक्ष में भी पूर्णज्ञान के असंख्यात ही ज्ञेय सिद्ध नहीं होते।

इस ही बात को इस दृष्टि से भी विचार कोटि में लाया जा सक्ता है कि यह असंख्यात सूक्ष्मता की तरतमता की दृष्टिसे हैं या केवल संख्याकी दृष्टि से।

सूक्ष्मता की [illegible] कि सूक्ष्मता के [illegible] संख्या तक जो २ पदार्थ [illegible]

ज्ञानी जान लेता है, किन्तु ऐसा मानलेने पर भी पूर्णज्ञान के विषय अनन्त पदार्थ ही ठहरते हैं। यह हो सकता है कि वे सूक्ष्मता की तरतमता की दृष्टि से असंख्यात लाइनों में विभाजित किये जा सकें, किन्तु इससे उनके अनन्तत्वमे तो कोई बाधा नहीं आती। संख्या के पक्ष में वे दोष आते हैं जो पहिले सह और क्रमपक्षमें दिये जा चुके हैं, इससे स्पष्ट है कि पूर्ण-ज्ञान के असंख्यात ज्ञेय मानना युक्तियुक्त नहीं।

यह हम पूर्व ही कह आये हैं कि अनन्त का परिज्ञान सर्वज्ञके वर्तमान स्वरूपमें बाधक नहीं तथा आत्मा का स्वभाव सकल पदार्थों के जानने का है। अतः स्पष्ट है कि ज्ञान का स्वभाव सम्पूर्ण पदार्थोंके जानने का है न कि असंख्य पदार्थों के जानने का।

जैसा जिसका स्वभाव है प्रतिबंधक के दूर हो जाने पर वह वैसा ही हो जाया करता है; अग्नि का स्वभाव दाहक है तथा यदि चन्द्रकान्त मणि उस के पास रखदी जाय तो वह ऐसा नहीं करती। इससे स्पष्ट है कि अग्नि के दाहकत्व स्वभाव के प्रगट होने में चन्द्रकान्त मणि प्रतिबन्धक है; इस ही चन्द्रकान्त मणि को दूर कर देने पर वही अग्नि अपना कार्य करने लगती है। ठीक यही व्यवस्था संसारी आत्मा के सम्बन्ध में है। ज्ञानावर्णी कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को प्रगट होने नहीं देता। जितना २ इसका अभाव होता जाता है उतना २ ज्ञानगुण भी प्रगट होता जाताहै और जब ज्ञानावर्णी कर्म का बिल्कुल क्षय हो जाता है तब आत्मा का ज्ञानगुण भी पूर्ण विकसित हो जाता है। ज्ञान की इस ही अवस्था में उसको पूर्ण कहते हैं। ज्ञान का स्वभाव लोकत्रय और कालत्रय की अशेष वस्तुओं को जानना है जैसा कि हम पूर्व सिद्ध कर चुके हैं; अतः यह भी स्पष्ट है कि पूर्ण शुद्ध हो जाने पर वह अपने स्वभाव के अनुसार लोकत्रय और कालत्रय अशेष वस्तुओं का प्रकाश करता है। इसही का नाम सर्वज्ञता है। [क्रमशः]

प्रार्थना या दर्शन।

[लेखक—श्रीमान ब्र० प्रेमसागर जी पंचरत्न]

उठा बज उर तंत्री का तार,

तन मेरा अत्यन्त निबल था, लेकिन नहीं आप बिन कल था:
दर्शन का उत्साह प्रबल था, तब आया तुम द्वार ॥ १ ॥

आतुरता में सोच न पाया, दर्शन की कुछ भेंट न लाया,
नहीं किसी ने मुझे सुझाया, कैसे करूं विचार ॥ २ ॥

दर्शक गण मन में हरषाते, भेंट चढ़ा कर तुम्हें रिझाते,
किन्तु नहीं तुम उन्हें हंसाते, कैसा यह व्यवहार ॥ ३ ॥

जिनने केवल शीश नवाये, नहीं भेंट में कुछ भी लाये,
ज़रा नहीं उनपर रिस आये समता का व्यापार ॥ ४ ॥

ऐसा जान चला मैं आया, चरणों में यह माथ नवाया;
दर्शन किया बड़ा सुख पाया, भरा पुण्य भण्डार ॥ ५ ॥

करके कृपा हृदय में आओ, मुझे आपसा आप बनाओ;
दया करो भवताप बुझाओ, बहा 'प्रेम' की धार ॥ ६ ॥

दीवान उदयपुर की सेवा में प्रेषित पत्रका सारांश !

मुलतान नगर वासिनी दिगम्बर जैन जनता की ओर से श्रीमान सर सुखदेव प्रसाद जी दीवान उदयपुर स्टेट की सेवा में केशरिया नाथ जी के विषय में जो पत्र भेजा गया है उसका सारांश निम्न प्रकार है :—

श्री केशरियानाथ जी के मन्दिर के विषय में अनेक प्रमाण जीते जागते इस समय भी मौजूद हैं, जिनसे कि मन्दिर दिगम्बरी सिद्ध होता है। उनमें से कुछ एक आपके सामने रखते हैं—

१—जिस कारण से यह मन्दिर श्री ऋषभदेव या रिखबदेव का मन्दिर मशहूर है वह भगवान ऋषभदेव की मूलनायक काले रंग की प्रतिमा 'नग्न दिगम्बर' है। उस पर लंगोट आदि का कोई भी श्वेताम्बरी चिन्ह विद्यमान नहीं है, जो कि श्वेताम्बरी मूर्तिपर अवश्य होता है।

२—श्री तीर्थंकर भगवान जिस समय अपनी माता के गर्भ में आते हैं तब दिगम्बर जैन शास्त्रों के अनुसार माता को ये सोलह स्वप्न दिखाई देते हैं—(१) हाथी, (२) बैल, (३) सिंह, (४) स्नान करती हुई लक्ष्मी, (५) दो माला, (६) सूर्य, (७) चन्द्रमा, (८) दो मछलियाँ, (९) दो कलश, (१०) तालाब, (११) समुद्र, (१२) सिंहासन, (१३) विमान, (१४) धरणीन्द्र का भवन, (१५) रत्नों का ढेर, (१६) जलती हुई आग। ये १६ स्वप्न भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा के नीचे पत्थरपर खुदे हुए हैं।

श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में १४ स्वप्न माने गये हैं। इन १६ स्वप्नों में से दो मछलियाँ, सिंहासन, और धरणोन्द्रका भवन ये तीन स्वप्न नहीं माने हैं; इन तीनों की जगह पर ध्वजा का चिन्ह माना है। इसकारण यह मन्दिर दिगम्बर जैनोंका है—श्वेताम्बरियों का नहीं है।

३—भगवान ऋषभदेव के दोनों तरफ दो नग्न खड़े हुए साधुओं की मूर्ति हैं। नग्न साधु दिगम्बर जैनियों के होते हैं—श्वेताम्बरी साधु कपड़े पहनते हैं।

४—भट्टारक (दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के वस्त्र धारक गद्दीदार बीसपंथ आम्नाय के गुरु) धर्मकीर्ति के उपदेश से श्रीमान सेठ हरदान ने वि० सं० १४३१ में सब से प्रथम मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। पुराने मंदिर को गिराकर नया बनवाया। वही मन्दिर आज तक है।

५—वि० सं० १५७२ में श्री जसकीर्ति भट्टारक जी के उपदेश से श्रीमान सेठ हांसा ने मण्डप और नौचौकी बनवाई।

६—भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति की प्रेरणा से सेठ भोजराज ने देवकुलका बनवाकर प्रतिष्ठा कराई।

७—विक्रम सं० १८६३ में दिगम्बरी सेठ विजय चन्द्र गांधी ने मन्दिर का पक्का कोट बनवाया।

८—जिन मन्दिरके बाहर दोनों तरफ के ताकों में तथा देवकुलिकाओं के पिछले भाग में दिगम्बरी प्रतिमाएं विराजमान हैं।

९—मन्दिर के खेला मंडप में २२ और देवकुलिकाओं में ५४ मूर्तियां विराजमान हैं। उन सब में से सिर्फ ११ प्रतिमाएं श्वेताम्बरी हैं, शेष सब

दिगम्बरी हैं। श्वेताम्बरी प्रतिमायें श्वेताम्बरी दीवान वाफणा ने बाहर किसी मन्दिर से मंगवा कर वि० सं० १८८९ के पीछे रक्खी थीं।

१०—मंदिर में जितने भी प्राचीन शिला लेख हैं उनसे यह मंदिर **दिगम्बर जैन** सिद्ध होता है।

११—श्रीमान रायबहादुर पं० गौरीशंकर जी ओझा ने जो **राजपूताने का इतिहास** लिखा है उस के पृष्ठ ३४४ वें से ३४९ वें तक इस मन्दिर का उल्लेख किया है और इस मन्दिर को **दिगम्बर जैन मन्दिर** प्रमाणित किया है।

१२—स्थानकवासी जैन (जो दिगम्बरोंसे भिन्न एक श्वेताम्बर का विभागरूप सम्प्रदाय है) विद्वान श्रीमान वाडीलाल जी मोतीलाल शाह ने एक **'केशरिया जी का हत्या कांड'** नामक पुस्तक लिखी है; उस में उन्हों ने सप्रमाण इस मन्दिर को **दिगम्बर जैन मन्दिर** सिद्ध किया है।

१३—श्वेताम्बरी दीवान वाफणा के समय तक यह मन्दिर दिगम्बरी भट्टारकों के अधिकार में चला आया है। इसलिये भी यह **दिगम्बर जैन मन्दिर** सिद्ध होता है।

इस प्रकार ये तेरह प्रमाण संक्षेप से आप के सामने रक्खे हैं जिन पर आप यदि ध्यान देंगे तो आप को शीशे की तरह स्पष्ट झलक जायगा कि यह मन्दिर **दिगम्बर जैन मन्दिर** है।

जिस **धुलेव** गाँव में यह मन्दिर है वहाँ पर और उस के आसपास दिगम्बर जैनियों की ही आबादी है। धुलेव में कुछ एक दिनों से बाहर से आए हुए केवल २-३ घर श्वेताम्बरियों के बसे हुए हैं।

संवत् १८८९ में जब कि क़र्ज़ में उदयपुर स्टेट को गिरवीं रखकर जैसलमेर निवासी सेठ जोरावर मल वाफणा स्वयं स्टेट के दीवान बने थे उस समय उन्हों ने अपने दीवानी के प्रभाव से फिर भी दिगम्बरी भट्टारक के हाथों से इस मन्दिर पर ध्वजा दंड चढ़वाया था। उसी समयसे स्टेटमें श्वेताम्बरी अफ़सरों की भर्ती और श्वेताम्बर जैनों की शक्ति बढ़ती गई तथा इस मन्दिर पर अपना अधिकार जमाने के लिये श्वेताम्बरी जैन उद्योग करते रहे। २-१ अपने शिला लेख लगाये, अनेक दिगम्बरी शिला लेखों पर चूना लगाया तथा मन्दिर में ११ श्वेताम्बर मूर्तियां विराजमान करदीं।

उसी समय से इस मन्दिर में ब्रह्मा, विष्णु की मूर्तियाँ रखवा दी गईं। इस बात को पं० गौरीशंकर जी ओझा भी अपने इतिहास में स्वीकार करते हैं। मुसलमान भी मंदिर में तभी से आने जाने लगे और उसी समय से दिगम्बर जैन मन्दिर में भागवत का भी पाठ होने लगा। यह सब दिगम्बर जैनियों का अधिकार इस मन्दिर से निकाल बाहर करने के लिये किया गया। क्योंकि भट्टारक जी के स्वर्गवासी होजाने पर दिगम्बर जैनियों में श्वेताम्बरी जैन अफ़सर तथा सनातनी और मुसल्मानों का सामना करने की शक्ति नहीं रही थी।

ऐसे समय कहीं पर अपना अधिकार जमाने के लिये श्वेताम्बरी लोग छल से राज्य के फ़र्मान भी बनवा लेते हैं। कभी कभी ऐसी कार्यवाही जाली भी कर डालते हैं। अकबर बादशाह के नाम से जाली शाही फ़र्मान बनाकर ब्रिटिश गवर्नमेंट को भी धोखा देना चाहा था, परन्तु बम्बई हाईकोर्ट ने पालीताना केस में, पटना हाईकोर्ट ने पिगरी केस, पार्श्वनाथ हिल केस में इन फ़र्मानों को जाली

ऐसेम्बली में साधुओं की नग्नता का बिल !

समाज और मुनिरक्षक कमेटी ध्यान दे !

श्रीमान मान्यवर भूपतिसिंहजी एम० एल० ए० और मि० एन० एम० डोहरिया एम० एल० ए० ने एसेम्बली को सूचना दी है कि वे देहलीमें होने वाली एसेम्बली की बैठक (Autumn session) में साधुओं की नग्नता का रक्षक बिल उपस्थित करना चाहते हैं सो उनके लिये समय खाली रक्खा जावे।

इस बिल के साथ आपने अपने विषय का समर्थन करने के लिये निम्नलिखित वक्तव्य उपस्थित किया है :—

Statement of Object & reasons.

Act [illegible] 1860 and Act V of 1861 were passed at a time when public [illegible] in India had not developed [illegible] and people as a rule did not take much interest in the proceedings of the Legislative Council or in the Acts passed by it. Subsequent experience has shown that great care had not been taken at the time about ascertaining the rules and practices of various orders of saints, divines and ascetics. In the case reported in Bombay Law Reporter Volume 19 page 792 a Mohammadan Saint was prosecuted for going about naked, and the trying court, composed of Indian gentlemen, who were cognizant of such rules and practices, acquitted the Saint, remarking that his object was not to cause any annoyance to any particular person or the public, and that he was acting from a conscientious objection to wear apparel. But appeal was filed on behalf of the Government in the High Court of Bombay, and the Hon'ble Judges who most likely were not acquainted with the feelings of the Indians who regarded nudity as an emblem of sanctity rather than as assailing modesty and virtue thought it necessary to enforce the strict

---

[पृष्ठ ६४ का शेष मैटर]

ठहराया; प्रिवी कौंसिल ने भी इनको झूठा ही बतलाया।

बस; इतना बहुत है, कृपा करके आप इन पर ध्यान दें और उचित न्याय करें।

[संपादकीय नोट—अन्याय करना पाप है, किंतु अन्याय का सहना महापाप है। भयभीत होकर चुपचाप बैठ जाना अहिंसा नहीं कायरता है। तदनुसार केशरियानाथ दि० जैन मंदिर के विषय में जो दिगम्बर जैन समाज के साथ अन्याय हुआ है, दिगम्बर जैन समाज को पूर्ण शक्ति से उसका प्रतीकार करना चाहिये। स्मरणीय श्रीमान स्व० पं० गिरधारी लाल जी न्यायतीर्थ के बलिदान को भूल न जाना चाहिये। इस आशयके पत्र प्रत्येक स्थान से उदयपुर स्टेट के दीवान महोदय के पास जाने चाहिये।]

language of law, and found themselves obliged to convict the accused though exhonerating him of any evil or indecent motive The accused was fined Re 1/- only under the Bombay Police Act which contains a similar provision of Law The case does not seem to have attracted much notice of the public at that time but is now regarded as a precedent by the Courts and is being applied in all cases of Saints divines and ascetics. It has in recent times been discovered that the existence of these clauses hampers the observance of the precepts of the various religious and mystic orders which practise nudity. The present Bill is therefore introduced to remove the aforesaid restrictions on the movements of Saints, religious ascetics and divines

भावार्थ—जब सन् १८६० का XLV एक्ट और सन् १८६१ का एक्ट V पास हुए थे उस समय जनता में भारतीय धारा सभाओं के कार्यों एवं उनके द्वारा पास हुए एक्टों पर ध्यान देने की प्रगति नहीं हुई थी। बाद के अनुभव ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि उस समय भिन्न २ विचार के साधु सन्तों के आचार विचार और रीति रिवाजों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। बम्बई ला रिपोर्टर की १९ वीं जिल्द के ५०२ पेज पर जिस मुकद्दमें का उल्लेख किया गयाहै वह एक मुसलमान सन्त पर नग्न रहने के कारण चलाया गया था। भारतीय मजिष्ट्रेट ने जो कि इस सम्बन्ध में जानकारी रखते थे इस बात का उल्लेख करते हुए कि मुसलमान सन्त का अभिप्राय किसी व्यक्ति या जनता को ग्लानि पहुचाना नहीं है उस को निरपराधी ठहरायाथा। मजिस्ट्रेटके इस निर्णय से असंतुष्ट होकर बम्बई सरकार ने इसके प्रतिवाद के लिए बम्बई हाईकोर्ट में एक अपील की थी।

इस में बम्बई हाईकोर्ट के विचारपतियों ने जो कि भारतीय साधुओं के आचार विचारमें परिचित नहीं थे क़ानून के वाक्यों का कड़ाई के साथ पालन के लिए उस मुसलमान सन्त को अपराधी ठहराया और एक रुपया जुर्माने की सज़ा दी। इस निर्णय के सम्बन्ध में उस समय जनता का कोई विशेष ध्यान आकर्षित नहीं हुआ था, किन्तु अब इसको एक नज़ीर समझा जाता है और इसका प्रभाव सम्पूर्ण साधु सन्त और तपस्वियों पर होता है। पिछले समयमें यह बात निश्चित होगई है कि एक्ट में इस प्रकार के वाक्य का अस्तित्व भिन्न २ धर्मों के आचार विचारों में जिनके साधु सन्त नग्न रहते हैं बाधा पहुँचाता है। इसलिए धार्मिक सन्तों और तपस्वियोंसे उन बाधाओं और रुकावटोंको दूर करने के लिए यह वर्तमान बिल उपस्थित किया जाताहै।

[सम्पादकीय नोट—ऐसेम्बली के दो माननीय सदस्य उपर के नग्नता बिल को ऐसेम्बलीके आगामी अधिवेशन में उपस्थित करना चाहते हैं। इस बिलके पास हो जाने से दिगम्बर जैन साधुओं के निर्बाध विहार में अनुपम सहायता मिलेगी। इस कारण इस बिलको पास कराने के लिये दिगंबर जैन समाज को, शास्त्रार्थ संघ को तथा विशेषकर मुनि रक्षक कमेटी को जागृत होकर अनुकूल वायु मंडल उत्पन्न करने के लिये उद्योग करना चाहिये। प्रत्येक मेम्बर के पास एक अच्छा बना हुआ मेमोरियल भेजना चाहिये। समय पर यदि कार्य न किया तो पश्चात्ताप करना पड़ेगा। इस अवसर से उचित लाभ उठाना आवश्यक है।]

जैन जगत के आक्षेप

अभी जैनजगत के गत १८वें अङ्क में आक्षेपों का समाधान करते हुए श्रीमान पं० दरबारीलाल जी ने स्वयं अनेक आक्षेप कर डाले हैं। उन में से अन्य आक्षेपों का उत्तर तो स्वयमेव जैनदर्शन में होता रहेगा; यहाँ पर तो हम केवल तीन बातों का उत्तर देते हैं।

१—जैनधर्म का मर्म शीर्षक लेखमाला का उत्तर देने के लिये आपने हमको निमन्त्रण दिया है सो हमको सहर्ष स्वीकार है, आपके निमन्त्रण से पहले ही जैनदर्शन ने आपकी लेखमाला का प्रतिवाद करना प्रारम्भ कर दिया है। यदि मित्रवर पं० राजेन्द्रकुमार जी का अपने लिये अनिवार्य आग्रह न होता तो हम तथा और भी ३-४ मित्रों में से कोई न कोई आपके सामने आ ही जाता। अब भी आप कोई अन्तर न समझिये।

आपका जैनधर्मका मर्म वैसी ही भ्रान्त कल्पना का फल है जैसे ग्रामोफोन को बजता देखकर बच्चा ग्रामोफोन के भीतर किसी मनुष्य की कल्पना कर बैठता है। अन्तर केवल इतना है कि वह अल्प बुद्धि के कारण वैसी कल्पना करता है। आप अपने माने हुए असीम बुद्धिबल के आधार पर भ्रम को मर्म का रूप दे रहे हैं।

२—विजातिविवाह की लेखमाला के विषय में आपने जो अपनी विजयदुन्दुभी अपने आप बजा डाली सो आपका बहुत भोलापन है। ज़रा आप अपनी और हमारी उस लेखमाला को सामने रख कर देखिये; पीछे अपने आप अपनी पीठ ठोकना। यदि आप से यह काम न हो सके तो किसी अन्य निष्पक्ष विद्वान के सामने दोनों लेख रख कर निर्णय करा लीजिये।

दो दो ढाई ढाई मास तक केवल एक पक्ष की ओर से लेख निकलते थे; बाद में उसके प्रतिवाद रूपमें दूसरी ओर से। इतनी लम्बाई के कारण तथा कलकत्ता पुलिस की ओर से (जैनगजट का) अपने ऊपर दायर किये हुए केस और कुछ अनिवार्य पारिवारिक मामलों में फंसे रहने के कारण हमने बीच में ही वह लेखमाला रोक दी, जिसको कि आप अपनी विजय घोषित करते हैं। ऐसा लिखने से पहले आपको प्रकाशित दोनों लेखमालाएं पढ़ लेनी थीं। इस विषय में मेरे विचार ३-४ वर्ष पीछे स्वयं परिवर्तित हुए, न कि आपकी लेखमाला के कारण। इस कारण आप अपने इस भ्रम को सत्य-घटना समझने की भूल फिर कभी न करें।

३—आपने जो श्रीअकलंक देव और तारादेवीके शास्त्रार्थ की कथा को 'बेहूदा कथा' बतलाकर जो अपने मुख और हाथों को अपवित्र किया है, कृतज्ञता के नाते से आपको उसका सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त लेना चाहिये। जिस घटना को स्वयं अकलंक देव अपने बनाये हुए स्तोत्र के अंत में श्लोकों द्वारा स्वयं वर्णन करते हैं उस घटना को "असत्य, बेहूदी" बतलाना आपकी ओर से पूज्य अकलंक देव के लिए कैसी आदर्श विनय, सभ्यता और कृतज्ञता है आपके वे दिव्यनेत्र भी प्रशंसनीय हैं जिन्होंने इस प्राचीन घटना को असत्य रूप में देखा।

अपने आप को अपने मुख द्वारा अकलंक देव से भी बड़ा बुद्धिमान प्रगट करते हुए दरबारीलाल जी लिखते हैं कि—"अकलंक देव ने एक देवी को हरा दिया तो क्या बहादुरी की ? यहां किसी देवी को नहीं, देव को हराना है।"

हार जीत तो भविष्य का निर्णय है; आपने जो अपना अभिमान प्रगट किया है वह आपके ही योग्य है। बंबई के 'तार देव' सरीखे पवित्र वायु मंडल में रातदिन रहते हुए यदि देवी देव होते रहे तो कोई आश्चर्य नहीं; तारदेव का यह पुराना प्रभाव है। उस बात को आप न पचा सके, साफ़ साफ़ कह गये, यही एक आश्चर्य है। खैर ! पचाते भी कब तक।

तथा स्वामी समन्तभद्र आदि की ज्ञान-पूंजीको बढ़ाने के कारण जो आपने अपने बुद्धिबल से अपने आपको सपूत सिद्ध करना चाहा है, सो बिलकुल ठीक है। आज कल तो सपूत होते ही वे हैं जो कि अपने पूज्य पुरुषाओं को कमअक्ल, बन्दर आदि सिद्ध करके अपनी बुद्धिमानी का दम भरें, चाहे उनके बनाये हुए ग्रन्थों का मतलब भी ठीक ठीक न समझ सकें।

आधुनिक भाषा व्याकरण में सपूत शब्द के 'स' का अर्थ विकल्परूप हो गया है इस कारण सपूत शब्द का अर्थ सत् पूत तथा सड़ा पूत दोनों होते हैं किसी के मत में सड़ा हुआ पूत भी होता है। भाषा में कहीं कहीं पर सीतल शीतल आदि शब्दों के समान स—श में अन्तर नहीं माना जाता है। अब देखना यह है कि आप स्वामी समन्त भद्राचार्य के कौन से सपूत हैं ? जरा आप ही बतला दें।

—अजितकुमार

लेखकों से आवश्यक निवेदन।

अनेक महानुभाव परिश्रम से लिखकर अपने प्रशंसनीय लेख भेजते हैं किन्तु उसके साथ वे अपना पूरा पता नहीं लिखते जिससे कि हम पत्र द्वारा उनको लेख की पहुँच नहीं दे सकते। इस कारण लेखक महानुभावों से नम्र निवेदन है कि वे अपना पूरा पता अवश्य लिखा करें।

—संपादक

आर्थिक-समस्या

[लेखक—श्रीमान पं० प्रवीणचन्द्रजी शास्त्री, जयपुर]

बाल्यावस्था में घर पर और विद्यार्थी अवस्था में पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद प्रायः लोगों का यह ख़याल होजाता है कि वे शिक्षित हो चुके, अब उन्हें अधिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। किन्तु बात इससे बिलकुल उलटी है। विद्यार्थी अवस्था तक जो उसने शिक्षा प्राप्त की है वह तो केवल सैद्धान्तिक है, सिद्धान्तों का प्रयोग तो संसार में प्रवेश करने पर ही किया जाता है। जीवन के विषय में जो ज्ञान उनको छात्रावस्था में हुआ है, उसका प्रयोग करने के बाद अनुभव तो इस ही अवस्थामें मिला करता है। बात तो यह है कि शिक्षा जीवन भर मिला करती है। कभी अपने आपको एक व्यक्ति पूर्ण शिक्षित नहीं कह सकता।

मनुष्यको इसही अवस्थामें आवश्यकताओं—खाने, पीने, पहनने और आराम करने के साधनों की ज़रूरतों—का अनुभव होता है। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उसे स्वयं बहुत विचार के बाद सहयोगिता के भावों के साथ प्रयत्न करना पड़ता है, और इस प्रयत्न का जो फल होता है वही धन कहलाता है।

हम किसी वस्तु को उठाकर देखें तो हमें पता चलेगा कि वह एकही आदमी द्वारा नहीं बनाई गई है, अपितु उसमें बहुत से व्यक्तियोंका सहयोग है। उदाहरण के लिये कोट ही ले लीजिये। सबसे पहले किसानों ने ज़मीन जोत कर कपास का बीज बोया, इसके बाद दूसरे लोगों ने उसे सींचा, तीसरे लोगों ने उसकी निगरानी रखी, चौथे लोगों ने फल आ जाने पर उन्हें बटोरा, पांचवें लोगों ने उन्हें अपनी अपनी गाड़ियों में व्यापारियों के पास भेजा। व्यापारियों ने कपासको लुढ़वाकर रुई तैयार करवाई। फिर यह रुई मिलों में भेजी गई। वहाँ मज़दूरों ने इसे काता और बुना। कपड़ा तैयार करने के बाद रेलवे या और किसी रीति से व्यापारियोंकी दुकानों पर भेजा गया। फिर हमने ख़रीद कर दर्ज़ी को दिया. उसने सीकर दिया तो हमने यह कोट पहना। इतना ही नहीं यदि हम इस कोट बनाने के और निमित्तों को देखे तो पता चलेगा कि हल, मैशीनें, रेलवे, और अन्य साधन प्रत्येकको व्यक्तियोंने बनाये हैं। यह हिसाब अगर बढ़ा कर देखा जाय तो पता चलेगा कि संसार के प्रत्येक मानव ने इस कोट के बनाने में एक न एक प्रकारसे अवश्य हाथ जुटाया है। इस ही लिये यह कहा जाता है कि प्रत्येक आवश्यका के पूर्ण करने में मनुष्य को पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता है।

कई लोग केवल रुपये से किसी व्यक्ति का धनी होना समझते हैं और उसके अभाव में लोगों को निर्धन समझते हैं, पर बात वास्तव में कुछ और ही है। आवश्यकता के पूर्ण करने के साधन ही धन हैं। हमें भूख लग रहीहै, उस समय भोजन ही धन है, दूसरी वस्तुएं नहीं। इसी प्रकार जब हमें ठंड लग रही है उस समय कपड़े ही धन हैं, और वस्तुएं

नहीं। कहने का प्रयोजन यह है कि हमें जब २ जिस वस्तु की आवश्यकता हो उस वस्तु का होना ही धन कहलाता है। अनावश्यक वस्तु का मूल्य नहीं हुआ करता है। पानी का मूल्य यू० पी० और बङ्गाल में नहीं के बराबर है, क्योंकि वहां वह आवश्यकता से अधिक है, किन्तु राजपूताने में, विशेष कर मारवाड़ में, उसका मूल्य बहुत बढ़ा हुआ है।

जो वस्तु एक व्यक्ति के लिये अनावश्यक होती है वह दूसरे के लिये आवश्यक रहती है। अनावश्यक वस्तु को देकर आवश्यक वस्तु बदले में लेली जाती हैं: यही व्यापार कहलाता है। प्राचीन काल में इस विनिमय में बहुत कष्ट उठाने पड़ते थे और बहुत सी वस्तुओं का उपयोग नहीं किया जा सकता था। इसीलिये विद्वानों ने बहुत सोच समझ कर रुपये का आविष्कार किया। मनुष्य अपनी अनावश्यक अथवा आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को रुपये लेकर देदे, और जब आवश्यकता हो रुपया देकर कोई चीज़ लेले। इस से बड़ी सहूलियत हो गई। इस तरह हम देख रहे हैं कि आवश्यकताओं के पूरे करने को साधन स्वरूप वस्तुएँ धन हैं और इस साधन को आसानी से जुटाने वाला साधन रुपया है। यों कहना चाहिये कि रुपया तो माध्यम मात्र है हमारी आवश्यकताओं को पूरी करने का। यह कोई ज़रूरी नहीं है कि रुपया चांदी और सोने ही का हो, यह तो काग़ज़के टुकड़ों और शब्दों तक का बनाया जा सकता है और बनाया जाता है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि वह देश ही समृद्ध है जो अपनी आवश्यकताओं को अपने आप पूरा कर लेता है। वह देश कङ्गाल और ग़रीब है जहां अपनी ज़रूरतों को पूरा कर लेने के लिये लोग दूसरे देशों की ओर मुंह ताका करें। भारत को आज ग़रीब और कङ्गाल क्यों कहा जा रहा है? इस ही लिये कि वह अपनी आवश्यकता की अधिकतर वस्तुओं के लिये अन्य देशों के सामने हाथ पसारता है। यदि आज सुई भी विदेशों से न मिले तो कल ही बड़ा शोर सुनाई देगा। आज भारत की गुलामी आर्थिक गुलामी कही जा सकती है। समृद्ध देशों ने इसे अपनी मुट्ठी में कर रक्खा है। वे इसे जिस तरह चाहते हैं कठपुतली की तरह नाच नचाते हैं। इसीलिये स्वराज्य को प्राप्त करनेका सुगम मार्ग यह बतलाया जाता है कि अपने पैरों पर उठ खड़े होओ, अपनी आवश्यकता की वस्तुएं अपने देश में ही पैदा कर के सब मिल जुल कर काम में लो, करोड़ों रुपया जो हर साल बाहर भेजते हो उसे क्यों न अपने उपयोग में लेकर अपनी शक्ति और समृद्धि बढ़ाते हो? आदि २।

इस समय प्रायः सब लोगों ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि भारत को अपनी उन्नति के लिये अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करना चाहिये। इस समय प्रश्न यह चल रहा है कि कलों और कारखानोंके द्वारा समृद्धि प्राप्त की जाय अथवा घरेलू धन्धों के द्वारा। पहला उपाय काम में लेने से वस्तुएं जल्दी एकसार और सुन्दर कम क़ीमत में तैयार की जा सकती हैं और दूसरे उपाय से देर में, भिन्न भिन्न प्रकार की, व्यक्तियों के कार्योंकी अपेक्षा सुन्दर अथवा असुंदर अधिक मूल्य से प्राप्त की जा सकती हैं। देखने में ऐसा मालूम होता है कि पहला उपाय भारत के लिये हित कर है, पर ऐसा निर्णय करने के पहिले हमें एक क्षण ठहरना पड़ेगा।

जितने भी अन्य देश आज समृद्ध कहे जाते हैं उनने समृद्धि कलों और कारखानों से ही प्राप्त की है। इन से कम लोगों ने आवश्यकता से अधिक वस्तुएँ उत्पन्न की हैं। इसका परिणाम बेकारी की समस्या के रूप में आज सब लोगों के सामने है। इस से गिने चुने व्यक्तियों को आवश्यकता से अधिक लाभ अवश्य हो पाया है, पर अधिकतर लोग भूखों मर रहे हैं। दूसरी बात और है, और ठंडे देशों में खाने को इतना नहीं उपजता जिससे वहा के निवासियों की भूख शान्त हो जाय, उन्हें भूमि ऐसी नहीं मिली है जहां वे आवश्यकता योग्य खाद्य वस्तुएं उपजा सकें। इसलिये उनके लिये तो कल कारखानों के द्वारा आवश्यकता से अधिक वस्तुएं पैदा करके उनके बदले में अन्न लेना जरूरी है और इस ही लिये उनके लिये कल और कारखाने उपयोगी हो सकते हैं।

भारत की स्थिति दूसरी तरह की है, यहां की जन संख्या काफ़ी बड़ी है। कल कारखानों से शायद सब को काम न मिल सके और आज से भी गई गुज़री दशा हो जाय। दूसरे भारत की प्राकृतिक स्थिति ऐसी है कि वहां परिश्रम से आवश्यकताओं को और आराम को प्राप्त करने के योग्य सभी वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है। इसे अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये दूसरे देशों का मुंह ताकना न पड़ेगा। इसलिये आवश्यकतासे अधिक वस्तुओं का उत्पादन करके उन्हें बाहर भेजने की ज़रूरत नहीं है।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि भारत में पहले भी तो यही हो रहा था, विदेशों का शासन यहां वालों पर इन कल कारखानों से बनी हुई वस्तुओं द्वारा ही तो हो पाया है। भारत को अपने संरक्षण के लिये उस अवस्था में जब कि विदेश कल कारखानों के द्वारा संसार को अपने २ क़ाबू में रखना चाहते हैं, कल कारखानों का उपयोग लाज़िमी हो पड़ेगा। यदि ऐसा न होगा तो फिर वही स्थिति आ सकती है।

यही एक ज़बरदस्त दलील कल कारखानों के पक्ष में है। पर शासन मनोवृत्तियों पर हुआ करता है। यदि हमारी मनोवृत्तियां गुलाम हैं तो गुलामी हमें जकड़ लेगी। इसके विपरीत यदि हमारे स्वतन्त्र विचार हैं तो हम कभी किसी से अनुचित रीति से नहीं दबाये जा सकते। चाहे लाख, कल और कारखाने हमारे पास हों, हमारी गुलाम मनोवृत्तियों को नहीं हटा सकते। इसलिये आवश्यकता है सत्य की खोज की और स्वतन्त्र भावना की।

मनुष्य जीवन का ध्येय केवल भौतिक उन्नति ही तो नहीं है, बल्कि आत्मिक-बल की प्राप्ति है। आत्मिकबल के अभाव में हम स्पष्ट देख रहे हैं कि समृद्ध कहलाने वाली जातियों के जीवन कलुषित और वासनामय बन रहे हैं। धनी होते हुये भी सुखी नहीं हैं, अशान्त हैं। शान्ति और सुख तो इच्छाओं के संयम में ही मिलता है। यदि आज सब देश अपनी २ आवश्यकताओं को ही पूरा करने की फ़िक्र करें और दूसरे देशों के हड़प जाने की कोशिश न करें तो कल ही विश्व-प्रेम की लहर दिखाई दे सकती है। इस धन-प्रेम ने मानव-जाति को नीरस और सूखा बना दिया है। आज हम अपने देश ही को क्यों न देखें, बड़े २ मिल मालिक और पूंजीपति मनुष्यता की कैसी हत्या कर रहे

साहित्य समालोचना

"सनातनधर्म" (साप्ताहिक पत्र)—संरक्षक तथा संचालक पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय, सम्पादक भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र एम० ए० । आकार सुपर रायल चौपेजी; पृष्ठ संख्या १६ । वार्षिक मूल्य ३॥) । व्यवस्थापक—"सनातनधर्म" हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से प्राप्त ।

सहयोगी अ० भा० सनातनधर्म सभा का मुख-पत्र है; उसके प्रथम वर्ष का पहिला अङ्क हमारे सामने है । मुख पृष्ठ पर डा० गङ्गानाथ झा, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, महामहोपाध्याय श्री प्रमथनाथ तर्क भूषण, तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्य "ध्रुव" के आशीर्वचन अङ्कित हैं । महामना मालवीय जी ने अपने देश और धर्म के लिये जो कुछ किया है उस पर किसी भी भारतीय को गर्व हो सकता है । प्रस्तुत पत्र आप के ही विचारों का सुफल है । पत्र के पाठकों को आप के सदुपदेशों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा । सनातनधर्म का उद्देश, उस ही के शब्दों में "धर्म के सनातन स्वरूप को संसार के सम्मुख रखना तथा उसमें आस्था उत्पन्न करना" है । जिस पत्र को हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्य वर्ग, अध्यापक वर्ग और शिष्य वर्ग का सहयोग सुलभ हो—उसके लेखों के विषय में कुछ न कहना ही उपयुक्त होगा ।

हम सहयोगी का सादर स्वागत करते हैं । हमें हर्ष है कि "जैन दर्शन" को सर्व प्रथम अपने साथ २ उदित होने वाले एक धार्मिक पत्र की प्राप्ति-स्वीकार का अवसर प्राप्त हो सका ।

परीक्षालयकी रिपोर्ट—बम्बई दि०जैन परीक्षालयका इस वर्षका परीक्षाफल पुस्तकाकार छपकर सामने आया है । श्रीमान सेठ राव जी सखाराम दोशी ने अपने परिश्रम से परीक्षालय को बहुत उपयोगी बना दिया है ।

परीक्षालय में इस वर्ष ३४७१ परीक्षार्थी बैठे, जिन में ४५३ छात्राएं हैं । कुल २८३१ पास हुए हैं ।

पहले समय की अपेक्षा परीक्षालय अब अपने नियम कड़े बनाता जारहा है, यह उसकी सफलता का प्रमाण है । मन्त्री जी को शीघ्र ही यह आवश्यक सुधार अवश्य करना चाहिये कि प्रवेशिका तृतीय खंड से लेकर शास्त्रीय परीक्षा तक संस्कृत अनुवाद का एक प्रश्नपत्र अवश्य रहा करे; उसकी उत्तीर्णता के लिये कम से कम ४० प्रति शतक अंक नियत हों । जो छात्र उस प्रश्नपत्र में अनुत्तीर्ण हो, वह पूर्ण पास न समझा जावे और न वह साहित्य विषय के पारितोषिक पाने का अधिकारी हो ।

रंगीला—वीर प्रेस फ़ीरोज़ाबाद (आगरा) से रंगीलानामक एक पाक्षिकपत्र प्रकाशित होताहै । पत्र अपने नामके अनुसार रंगीला ही है । वार्षिक मूल्य केवल सवा रुपया है । पत्र होनहार प्रतीत होताहै ।

हैं । अपने से छोटी हैसियत के लोगों से प्रेमपूर्वक बोलने को अपनी शान से खिलाफ़ समझ रहे हैं । ऐसी उन्नति से क्या लाभ ? असन्तोष; केवल असन्तोष की वृद्धि ?

इसलिये चाहे हम अपनी कमज़ोरियोंके कारण दूसरे उपाय को काम में न ले सकते हों, सचाई तो इसी उपाय को काममें लेने में है । सन्तोष, सुख और समृद्धि इस ही के द्वारा बढ़ सकती है । भारत व्यापी आर्थिक समस्याको सुलझाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है ।

समाचार संग्रह !

—महर्षि शान्तिसागर जी महाराज आदि तपोधनों का चातुर्मास व्यावर में हो रहा है।

—केशलोंच—श्रावण बदी १४ को १०८ मुनि श्री मल्लिसागर जी व वीरसागर जी महाराज और ऐल्लक धर्मसागर का व्यावर में केशलोंच हो गया। जनता अच्छी संख्या में थी।

—अम्बाला—में रक्षाबन्धनपर्व सानन्द समाप्त हुआ; प्रातः पूजन व मध्याह्न में शास्त्र सभा हुई।

—धामपुर—यहां पर रक्षाबन्धन पर्व बड़े समारोह के साथ हुआ, प्रातःकाल पूजन तथा सायंकाल एक विशाल सभा साहू चण्डीप्रसाद जी रईस के सभापतित्व में हुई। जिसमें कई प्रभावशाली भाषण हुए तथा एक प्रस्ताव मुनि जयसागर जी के सम्बन्ध में पास हुआ और वह निज़ाम सरकार को भेजा गया कि उन पर (मुनि) से पाबन्दियाँ हटाली जायँ। इसी प्रकार का एक मेमोरियल भी हस्ताक्षर कराके भेजा गया है।

—जैन कन्या शिक्षालय धर्मपुरे देहली—का २५ वाँ वार्षिकोत्सव मिती भादवा बदी १४ रविवार ता० २०-८-३३ को दिन के १० बजे से शिक्षालय भवन में श्रीमान् बाबू लालचन्द जी एडवोकेट रोहतक निवासी की अध्यक्षता में मनाया जावेगा।

—दांता—मिती श्रावण शु० १३ बृहस्पतिवार को श्री आत्ममण्डल औषधालय दांता (जयपुर) का षष्ठम वर्षीय अधिवेशन धूम धाम के साथ मनाया गया; दोपहर को एक बजे से ४ बजे तक सरेबाज़ार जलूस निकाला गया व रात को ७ बजे से ११ बजे तक श्रीमान् सेठ बन्शीधर जी सेठी के सभापतित्व में औषधालय के भवन में सभा हुई।

—अम्बाला शहर—से श्रीमति लेखवती जी जैन पंजाब कोन्सिल की मेम्बरी को खड़ी हुई हैं।

—धन्यवाद—जिनवाणी भक्त मुत्सद्दीलालजी व ला० शिब्बामल जी जैन रईस ने शास्त्रार्थ संघ की लायब्रेरी में कुछ पुस्तकें भेंट दी हैं। तदर्थ धन्यवाद है।

—दाढ़ी में छत्ता—बर्लिन से एक विचित्र समाचार आया है कि एक सफेद दाढ़ी वाला वृद्धा एक पार्क में सो रहा था, उस समय उस की दाढ़ी में मक्खियों ने छत्ता बना लिया; फिर वह एक विशेष प्रकार के यंत्र द्वारा उड़ाई गई।

—बिना अङ्ग का बालक—लोधीपुर में एक लड़का जन्म से बिना हाथ और पैर का पैदा हुआ है। अब वह तीन साल का है।

—चार हज़ार आदमी डूब गये—चीन के शेसी प्रान्त में दरिया किंग और बी० आई० में बाढ़ आ रही हैं। इस बाढ़ के कारण चार हज़ार से अधिक आदमी डूब गये हैं।

—एक साथ ५ बच्चे हुए—ग्राम निरवाना में एक हिन्दू स्त्री ने एक साथ पाँच बच्चों को जन्म दिया। इनमें तीन लड़के और दो लड़की हैं। वे सब जीवित हैं।

—पुरुष की छाती से दूध—आज से १८ वर्ष पहिले अलीराजपुर में (खदाली रियासत) में भागीरथ नामक एक माहेश्वरी की स्त्री ८ दिन का बच्चा छोड़ कर मर गयी थी। भागीरथ ने बच्चे को अपनी छाती चटाना शुरू किया। इससे उसकी छाती बढ़ गई और दूध निकलने लगा। बच्चा इस समय १८ वर्ष का है और भागीरथ ४४ वर्ष का है।

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

श्री जिनायनमः

पर्यूषण अंक — सन् १९३३ ई०
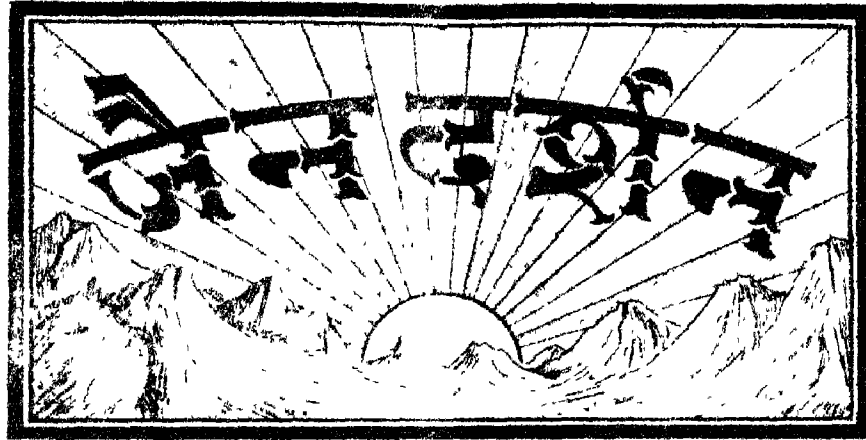
वर्ष १ — अङ्क ४

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। — ऑनरेरी सम्पादक — पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

पर्यूषण-पर्व

[१]

निर्मल धर्म स्फूर्ति अनूपम !
आत्म-विमल का मानसरूपम !
चारु-चिन्ह जैनत्व तत्व का
शान्ति-कान्ति दायक चिद्रूपम !

[२]

श्रुत-ज्ञान सिखाने वाला
धार्मिक वृत्ति जगाने वाला
जीवन-जागृति, धर्म व्यंजना-
का रस स्रोत बहाने वाला

[३]

जगमें हो यह नित्य अशान्ति क्षय
पान करें सब धर्मामृत-पय
विश्व प्रेममय आत्म धर्म का,
हो यह महा पर्व मंगल-मय

[४]

जैन धर्म का धार्मिक भूषण
लुप्तकार मिथ्यामय दूषण
शमम शमम् कल्याण कारक
'शशि' हो नित्य पर्व पर्यूषण !

'शशि'

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

यदि आप "जैनदर्शन" के ग्राहक होना नहीं चाहते तो)॥। का कार्ड लिख कर हमें सूचित अवश्य करदें।—प्रकाशक "जैनदर्शन" बिजनौर।

जैनदर्शन के नियम

(१) जैनदर्शन का प्रचार और उस पर किये गये आक्षेपों के निराकरणार्थ ही इसका उदय हुआ है

(२) इसका प्रकाशन अंगरेज़ी महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हुआ करेगा।

(३) इसका वार्षिक मूल्य ढाई रुपया है, किन्तु संघ के सभासदों, संस्थाओं और विद्यार्थियों से केवल दो रुपया लिया जायगा। [वी० पी० से पत्र मंगाने वालों को पांच आने की हानि अवश्य रहती है, इसलिये वार्षिक चन्दा कृपया मनीआर्डर से ही भेजिये।]

(४) नमूने में २ अङ्क तक फ्री (बिना मूल्य) भेज दिये जावेंगे, किन्तु जो सज्जन २ अङ्क पढ़ कर भी उसका वार्षिक मूल्य २॥) मनीआर्डर द्वारा नहीं भेजेंगे उनको आगामी अङ्क भेजना बन्द कर दिये जावेंगे।

(५) जैनदर्शन में पहिले अङ्क से ही उपयोगी लेखमालायें आरम्भ हुई हैं। अतः उत्तम तो यही है कि पहिले ही अङ्क से इसका ग्राहक बना जाय, फिर भी जो महानुभाव जिस अङ्क से इस के ग्राहक बनेंगे उसी अङ्क से उनका वर्ष आरम्भ समझा जायगा।

(६) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकें "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद विद्यालय भदैनी घाट बनारस" को और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैन दर्शन C/o 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहियें।

(७) उसी पक्ष के अङ्क में प्रकाशित कराने के लिये कविता, लेख अंग्रेजी मास की पहली से आठवीं तथा १६ वीं से २४ वीं तारीख तक संपादक जी के पास पहुंच जाने चाहियें। अन्यथा उस अङ्क में न छप कर अगले अङ्क में छप सकेंगे।

(८) अधूरे लेख नहीं छापे जायेंगे, किन्तु स्थान के अनुसार बड़े लेख एक व अधिक संख्याओं में छापे जायेंगे।

(९) ग्राहक को अपना नाम और पूरा पता साफ़ २ लिखना चाहिये जिससे पत्र पहुंचने में गड़बड़ी न हो। अन्य पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये -)। के टिकट या जवाबी कार्ड आना आवश्यक है।

(१०) विज्ञापन के रेट बहुत कम रक्खे गये हैं, तथा स्थायी विज्ञापन दाताओं को विशेष सुविधायें रक्खी गई हैं। विशेष पत्रव्यवहार से मालूम कीजिये।

सर्व प्रकार के पत्रव्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैन दर्शन" C/o दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

दो उपयोगी ट्रैक्ट छपने को तैयार हैं।

उदार पुरुष ध्यान दें !

इस ज़माने में जो कार्य उपदेशकों से भी नहीं होता वह काम ट्रैक्ट बाँटकर प्रचार करने से होता है। जैनधर्म के सत्य स्वरूप को ट्रैक्ट वितरण करके जैन अजैन जनता में जो धर्म की प्रभावना होती है वैसी प्रभावना प्रायः अन्य कार्यों से नहीं हुआ करती। इस कारण धर्मप्रचार के इच्छुक महानुभाव अपना न्याय उपार्जित धन ट्रैक्ट छपाने अथवा खरीदकर बिना मूल्य वितरण करने में सफल किया करते हैं।

दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघने १५ बहुत उपयोगी ट्रैक्ट छपाकर प्रकाशित किये हैं उनको खरीदकर जनतामें बाँटना जहां उत्साही पुरुषों का कर्तव्य है वहां अन्यान्य उपयोगी, प्रभावशाली ट्रैक्ट छपाने के लिये सहायता करना भी कर्तव्य है।

श्रीमान पं० अजितकुमार जी शास्त्री के लिखे हुए ट्रैक्ट अच्छे प्रभावशाली, उपयोगी और सारगर्भित होते हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है। आपने अपनी मधुर लेखनी से स्थानकवासी भाइयों को जैनधर्म का यथार्थ स्वरूप समझाने के लिये 'ढूंढकमतसमीक्षा' नामक ट्रैक्ट लिखा है जो कि बहुत योग्यता के साथ उपयोगी ढंग से तैयार हो गया है। स्थानकवासी साधुओं के प्रचार से हजारों दिगम्बरी घर "ढूंढिया" हो गये हैं तथा होते जा रहे हैं। उनका यथार्थ मार्ग पर लाने के लिये यह ट्रैक्ट बहुत सफल होगा। दिगम्बरी भाइयों के तथा स्थानकवासी भाइयों के पढ़ने योग्य है। लगभग १० फार्म का होगा। कोई उदार महानुभाव आर्थिक सहायता देकर इसको प्रकाशित करावें तो धर्म की प्रभावना और समाज का बहुत उपकार होगा।

दूसरा छोटा सा ट्रैक्ट आर्यभ्रमोन्मूलन है जो कि पंडित अजितकुमार जी ने जैनभ्रमोन्मूलन के उत्तर में लिखा है। यह लगभग डेढ़ दो फार्म का होगा, जो बहुत थोड़ी सहायता में प्रकाशित हो सकता है। इसको भी कोई उदार पुरुष अपनी उदारता से प्रकाशित करावें।

जो महानुभाव ट्रैक्ट छपावेंगे उनका फ़ोटो तथा परिचय ट्रैक्ट के साथ लगा दिया जावेगा।

श्वेताम्बर भाइयों की सेवा के लिये श्वेताम्बरमत समीक्षा भी उचित संशोधन के साथ संघ से शीघ्र प्रकाशित की जायगी, जिसका कि लागत मूल्य रक्खा जायगा। जो श्वेताम्बर दिगंबर विद्वान उसमें कहीं पर संशोधन कराना चाहें वे हमको सूचित करें।

निवेदक :—मैनेजर—भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

"दर्शन" के पाँच ग्राहक बनाने वाले सज्जनों को "दर्शन" एक वर्ष तक बिना मूल्य मिलेगा। —प्रकाशक "जैनदर्शन", बिजनौर (यू० पी०)

वर्ष १ | भाद्रपद शुक्ला १२—श्री 'वीर' नि० सं० २४५९
बिजनौर, तारीख १ सितम्बर, १९३३ ई० | अङ्क ४

प्रेम धारा !

बहा दे विमल प्रेम की धार !

प्रेम भाव जग में प्रगटा दे
वैर-विरोध अनीति मिटा दे
जीवन-निधि जग हेतु लुटा दे
हो उत्कृष्ट विचार !
बहा दे विमल प्रेम की धार !

सारे सुप्त हृदय सरसा दे
प्रेम-सुधा उन पर बरसा दे
सर सिज मानस के विकसा दे
निश्चय सम सञ्चार !
बहा दे विमल प्रेम की धार !

एक प्रेम का पाठ पढ़ें सब
एक पन्थ पर साथ बढ़ें सब
एक लक्ष्य पर साथ चढ़ें सब
हो एकत्व प्रसार !
बहा दे विमल प्रेम की धार !

धर्म वीर हों भारतवासी
कर्म वीर कर्मठ विश्वासी
नम्र विनीत सुहृद् मृदुभाषी
हो सन्देश उदार !
बहा दे विमल प्रेम की धार !

'शशि'

दश धर्म सार

एक एक दिन का चक्र काटते हुए बारह मास समाप्त करके **पर्युषण पर्व** फिर आ गया है। जैनदर्शन के लिये यह प्रथम पर्युषण है। यह पर्व जैनसमाज के लिए एक अनुपम उत्तम पर्व है। जैनभाई इन दिनोंमें अपना समय संयम, भक्ति, त्याग, शांति आदि पवित्र भावों के साथ व्यतीत करते है। भाद्रपद सुदी पंचमी से भाद्रपद सुदी चतुर्दशी तक के दश दिनों में दश धर्मों का विशेष रूप से पालन किया जाताहै। प्रत्येक दिन क्रमसे एक एक धर्म का खुलासा स्वरूप जनता को समझाया जाता है। हम यहां संक्षेपरूप से उन पर प्रकाश डालते हैं; उल्लेख गृहस्थाचार के ख्याल से है।

क्षमा

क्रोध एक ऐसी प्रबल वह्नि है जोकि संसार में सब कुछ भस्म कर डालती है। भौतिक अग्नि केवल कुछ एक पुद्गल पदार्थों को जला सकती है, जीवको जलाने में उसकी शक्ति असफल रहती है, तब यह क्रोध अग्नि जीव को भी दग्ध कर देती है। इस क्रोध कषाय के सद्भाव में हृदय पर दया, अहिंसा, शान्ति का अंकुर नहीं उगसकता, इसकारण अहिंसा, दया, शांतिका पौदा उगाने के लिए क्रोध कषाय पर विजय प्राप्त करके **क्षमा शील** बनना चाहिए।

क्षमा वीरस्य भूषणम्–अर्थात–क्षमा करना वीर पुरुष का आभूषण है। बात बात पर क्रोध आना भी निर्बल पुरुष को है। बलवान पुरुष को सहसा क्रोध नहीं आता, यदि आता भी है तो अपना कार्य करके शान्त हो जाता है। गाली देते रहना, खीजते रहना उसको नहीं आता। क्रोधी भावों से नरक आदि अशुभ योनियां मिलती है और क्षमा भाव से देव आदिक शुभ शरीर प्राप्त होते हैं। इस कारण क्रोध कषाय को कम करते हुए क्षमा धारण करना आवश्यक हैं।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अनीति, अत्याचार होते हुए भी, तिरस्कार पाते हुए भी क्षमा दिखलाना योग्य है। अपने धर्म के पराभवके समय, अपने स्त्री वर्गपर स्वजन परिवार या साधर्मीके ऊपर अत्याचार होते देख, असहाय दीन हीन को निष्कारण किसी दुर्जन द्वारा आपत्ति ग्रस्त देखकर, मंदिर आदि का लुटना देखकर, अपना अनुचित अपमान

होते देख क्षमा धारण करना गृहस्थ के लिए महा दोष है, कायरता है, पाप है। वहां पर अत्याचारी आततायी दुष्ट मनुष्य को यथासंभव उपायों से उचित दंड देना हमारा मुख्य कर्तव्य है। जैनधर्म क्षमाका पाठ अवश्य पढ़ाताहै, किन्तु साथही गृहस्थ को बलवान बनने का भी उपदेश देता है। जैन राजाओं ने नीति मर्यादा स्थिर रखने के लिए, धर्म रक्षा और अत्याचारों को निर्मूल करने के लिए वीरता पूर्वक बड़े बड़े युद्ध किये थे, दिग्विजय करके साम्राज्य स्थापन किये थे।

इस कारण हमको निर्बल जीवों पर क्षमा भी रखनी चाहिए, किन्तु दुर्जन लोगोंकी दुर्जन क्रिया उपस्थित हो जाने पर उनको शक्तिभर सज़ा भी अवश्य देनी चाहिए। जैनधर्म क्षत्रियों का धर्म है, वह दीन, धर्म, मर्यादा और नीति की रक्षा के लिये बलवान बनने का उपदेश देताहै। इस कारण आज हमको अपनी निर्बलता दूर करनेके लिए नवयुवकों को, बच्चों को, वृद्ध पुरुषों को व्यायाम करना चाहिए-अखाड़ा खेलना चाहिए, लाठी,गदका आदि शस्त्र अस्त्रकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। शतरंज, ताश, चौपड़ आदि खेल निर्बल मनुष्यको लाभदायक नहीं। वीर बनो, निर्भय बनने का अभ्यास करो, क्षमा उसी समय शोभा देगी।

मार्दव

'थोथा चना बाजे घना' इस कहावत के अनुसार क्षुद्र पुरुष को अपने थोड़े से बल, विद्या धन, अधिकार, कुल, जाति, तपस्या और सुन्दरता का अभिमान उत्पन्न हो जाता है। वह संसार में अपने आपको सवासेर और सब को तीन पाव समझता है। दूसरे का अपमान करना उसके लिए साधारण बात होती है।

संसारमें एक दूसरे से बड़े सर्वत्र पाये जाते हैं। अभिमान करने योग्य स्थायी बड़प्पन तो संसार में किसी के पास है नहीं। अशुभ कर्मका चक्र जिस समय उलटा चक्कर खाता है तब अभिमानी का मानभंग छोटे से कारण द्वारा भी होजाता है। उस समय सारा संसार उसके मानभंग पर खिल्ली उड़ाकर हंसताहै। अभिमानी को कभी कोई अच्छा नहीं समझता। उसके निजी, मित्र नौकर भी अंतरंग से उसके साथ घृणा करते हैं।

इस कारण तुच्छ बल, विद्या, संपदा आदि पाकर अभिमान नहीं करना चाहिये; अभिमान का त्याग ही **मार्दव** गुण है। **मार्दव** यानी **नम्रता** से पुरुष सर्वप्रिय, सर्वमान्य हो जाता है। यदि दैववश कुछ उसका बिगाड़ भी हो जावे तो संसार उस पर तरस खाता है, उससे सहानुभूति प्रकट करता है तथा उसका सहायक बनता है।

इस कारण क्षणिक विभूतिको पाकर अभिमान छोड़ नम्र बनना सब तरह श्रेयस्कर है। **स्वाभिमान** दुर्गुण नहीं है।

आर्जव

संसार में सब से बड़ा पापी **विश्वासघाती** होता है मीठी बातों में किसी को फंसा कर ठीक अवसर पर उसका नाश कर देना **विश्वासघात** है। विश्वासघात सरीखा घोर पाप मायाचारी का प्रधान गुण है। मायाचारी के मन, वचन, कार्यकी क्रियाएं भिन्न भिन्न धारा में बहती हैं। उसकी रसना मीठी और हृदय हलाहल विषसे भी अधिक

कटुक होता है। दूसरों को ठगना, धोका देना, जालसाज़ी करना, उसके नित्य नियम होते हैं। वह जितना दूसरोंको नहीं ठगता, जितना कि अप ने आप को ठगता है।

संसार में यदि सब से अधिक और गहरे शत्रु देखे जावे तो वे मायाचारीके मिलेंगे; अपने परिवार के लोग भी उसके मित्र नहीं होते। कोई पूर्वसञ्चित पुण्यकर्म उदय में आया हुआ हो तो दूसरी बात है अन्यथा मायावी मनुष्य को उसकी छल कपट से भरी हुई कार्यवाही न तो यश प्राप्त होने देती है और न धन, सुख, शान्ति ही उसको मिलती है। निंदा और शत्रुता उसको बिना बुलाए सब जगह अपने आप प्राप्त होती है।

मायाचारको छोड़कर सीधा सरल बर्ताव रखना आर्जव धर्म है। आर्जव गुण वाले मनुष्य की प्रमाणिकता, गौरव, आदर, यश, संसार व्यापी होजाता है। संपदा न होने पर भी वह सारे संसार का प्रिय मित्र बन जाता है।

किन्तु साथ ही नीति का यह भी तकाज़ा है कि दूसरे को हानि पहुंचाने के लिये मायाचार का प्रयोग न करो, किन्तु इस कुटिल संसार की प्रगति में इतने सरल भी न बनो कि स्वार्थी लोग तुमको अनुचित हानि पहुंचा कर अपना उल्लू सीधा करते रहें।

सत्य

मनुष्य दो कौड़ी का होता है और उसकी रसना कानी कौड़ी के मूल्य की भी नहीं यदि वह असत्य-वादी है। क्योंकि झूठ बोलने से मनुष्य संसार में तिनके से भी हलका हो जाता है, उसका रंचमात्र भी विश्वास नहीं रहता। वह धनवान भी हो तो भी उसके साथ लोगों का व्यवहार साधारण पुरुषों से भी गया बीता होता है। हस्ताक्षर बिना कराये अथवा अन्य किसी प्रकार की पक्की कार्यवाही किये बिना लोग उसके साथ लेन देन नहीं करते।

किन्तु यही मनुष्य अमूल्य और उसकी जिह्वा भी बहुमूल्य हो जाती है यदि वह सत्यवादी है। सत्य-वक्ता पुरुष संसार में आदरणीय प्रामाणिक माना जाता है। जो काम अन्य लोगों की पक्की लिखा पढ़ी पर होता है वह कार्य सच बोलने वाले मनुष्य के दो शब्द बोलने पर होजाता है। ललितपुरके एक जैन हलवाई अपनी सत्यवादिता के कारण अपनी मैली कुचैली पगड़ी को भेजकर घर बैठे दश दश हज़ार रुपये मंगा लेते थे। व्यापार में जो जितना अधिक सत्य होता है वह उतना ही अधिक धन उपार्जन करता है।

इस कारण सत्य वचनसे अपने मुखको पवित्र बनाना चाहिये। पर निन्दक, कठोर या प्राणदण्ड दिलाने वाला, धर्मघात कराने वाला ठीक वचन भी सत्य की सीमा से बाहर माना जाता है।

अपने सामने से प्राण बचाने के लिये भागते हुए हिरण को देखकर एक मुनि राज ने शिकारी के पूछने पर उत्तर दिया था कि हिरण आखों ने देखा है किन्तु आख बोल नहीं सकती, जीभ बोल सकती है किन्तु उसने हिरण को देखा नहीं, इस कारण कैसे बतलाऊं कि तेरा शिकार हिरण किधर गया है।

शौच

हम साबुन पानीसे नहा धोकर अपने आपको पवित्र मान लेते हैं। साफ़ सुथरे कपड़ों का पहन लेना और शरीर का ऊपरी मैल हटा देना ही हम

ने अपना असली **शौच** (पवित्रता) समझ रक्खा है, किन्तु है यह एक बहुत भारी भूल। आत्मा का मैल इस नहाने धोने पहनने ओढ़नेसे नहीं छूटता उसके लिये तो उपाय ही दूसरा चाहिये। वह उपाय है **'लोभ का त्याग'**।

लोभ एक ऐसा मैल है जो कि आत्मा को बहुत मैला बना देता है। लोभी जीव बड़े से बड़ा गंदा काम कर डालता है जिससे आत्मा के पवित्र भाव एक ओर किनारा करजाते हैं। चोरी, डाका, लूट, मार बेईमानी, जाली दस्तावेज़, अनुचित सूदखोरी आदि नीच कार्य लोभ कराताहै, झूठी खुशामद, अनीति में हां हां मिलाना, आत्मसम्मानको बेच देना, धन की चाह में अनेक प्रकार के अनर्थ इत्यादि मलीन कार्य इस लोभ के आश्रय हुआ करते हैं। इस कारण आत्मा पर मलिनता लाने वाला लोभ है। इस लोभसे छुटकारा पा लेना ही शौच या आत्मा की पवित्रता है।

गृहस्थ पुरुष को लोभ की आदत वहाँ तक अवश्य छोड़ देनी चाहिये जहां तक उसको आत्म सम्मान, समाज एवं धर्म के विरुद्ध अनुचित कार्य में प्रवृत्त होना पड़े। सदा यह भावना रखनी चाहिये कि—

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्व लोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः॥

यानी—जो लोभ के दास हैं वे सारे संसार के दास हैं और लोभ जिन का दास होकर रहता है सारा संसार उनका दास हो जाता है।

संयम

प्राणधारियों की रक्षा करना और इन्द्रिय मन का दमन करना **संयम** है। इन्द्रियों और मन की बागडोर अपने हाथ में रखकर अपनी इच्छाओं का नियंत्रण करना वीरता का साधन है। इन्द्रियों की गुलामीमें फंसकर सारा संसार विषय कामनाओंका शिकार बन रहा है। वीरता इस बात में है कि इन्द्रियों को अपना गुलाम बना कर रक्खा जावे। इच्छाओं की बढ़ती बाढ़को बाँध लगा दिया जावे।

संसार में पहले ज़माने की अपेक्षा दुखों की अधिकता इस कारण हो गई है कि स्त्री पुरुषों में खाने पीने, पहनने ओढ़ने, ऐश आराम की वासनाएं दिनों दिन बढ़ रही हैं। धन उपार्जन के मार्ग या तो बंद हो गये हैं अथवा बहुत संकीर्ण हो गये हैं, किन्तु लोगों के रंग ढंग रहन सहन बच्चे से लेकर बूढ़े तक फैशनेबल हो गए हैं। **'तन पै नहीं लत्ता, पान खाँय अलबत्ता'** वाली कहावत सब कहीं चरितार्थ हो रही है। इस फैशनेबल रहन सहनसे ही प्रायः दुख बढ़ रहे हैं।

इस कारण सुखी निर्द्वन्द जीवन व्यतीत करने के लिये संयम भावकी बहुत आवश्यकताहै। विषय भोग का नियंत्रण; सोडावाटर, चाह, शराब, सिगरेट, भंग, मिठाई, दही-बड़े आदि अशुद्ध अभक्ष्य पदार्थों का त्याग; इत्र फुलेलों से विरक्ति, सिनेमा, थियेटर, नाच देखने का परित्याग, गाने बजाने से नफ़रत, पहनने ओढ़ने में सादापन आदि संयम के साधन हैं और इन ही त्यागों से मनुष्य का जीवन सुख शान्तिमय व्यतीत होता है।

तप

जीवन को उन्नत बनाने के लिये तथा आत्मा की स्वच्छता प्रगट करने के लिये **तपस्या** एक आवश्यक कार्यहै। व्रत उपवास करना, एकान्त का रहन सहन, एकासन से सामायिक करना,

दुखी पुरुष की सेवा, पूज्य का आदरभाव, शास्त्र-स्वाध्याय आदि तपस्या के भेद हैं।

भूखे रहने का या धूप में एक टांग से खड़े रहने का अथवा पास में पांच, सात अग्नि के ढेर जलाकर बैठे रहने का नाम तपस्या नहीं है। विषय कषायों का दमन करके शान्तिपूर्वक आत्मशुद्धि का करना ही तप है। मनुष्य शरीर को पाकर अंतरंग वहिरंग तपों का यथाशक्ति अवश्य आचरण करना चाहिये, क्योंकि तप बिना आत्मशुद्धि नहीं होती।

त्याग

पूर्व जन्म के संचित पुण्य कर्म की कृपा से तथा अपने कठिन उद्योग से धन संचय होता है। उसकी तीन दशाएं हो सकती हैं—भोग, दान और क्षय। धनका उपभोग तो सर्वसाधारण मनुष्य करते हीहैं, किन्तु आगामी सुख प्राप्त करने के विचार से बुद्धिमान पुरुष उस धन का यथोचित उपभोग करते हुए दानमार्ग में भी शक्तिभर उसको व्यय करतेहैं। कुछ मूर्ख ऐसे भी होते हैं जो शुद्ध सरोवर में प्यासे बैठे हुए मनुष्य के समान अपने कठिनता से कमाये हुये धन को न तो अपने सुख साधनों के लिए व्यय करते हैं और न अपने हाथ से दान ही देते हैं; चोर डाकू छीन ले जावें या किसी और ढंग से वह नष्ट हो जावे तो दूसरी बात है।

हमको धन सम्पत्ति भविष्य में भी प्राप्त हो, इस विचार से तथा आरंभ जनित पाप की मात्रा का नाश करने के लिये गृहस्थ को यथाशक्ति दान सदा करते रहना चाहिये। जैन समाज में इस समय अनेक संस्थाएं धार्मिक प्रचार के लिए प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं; उनको सहायता करना धनका लाभकारी सदुपयोग है। अनाथ, दीन, दरिद्र लोगों की वृद्धि समाज में होती जा रही है; उनको यथोचित सहायता देकर उनका दुख दूर करना चाहिए।

धन न तो अपने साथ आया था और न साथ जावेगा; इसको यदि उपकार के लिये अपने हाथसे धर्म क्षेत्रों में, दयापात्रों में दान कर दिया जावे तो अलबत्ता वह धन अपने साथ परभव में भी जा सकताहै। इस कारण मुक्तहस्तसे विवेकपूर्वक दान करना बहुत उपयोगी है। पुत्र यदि योग्य होगा तो वह स्वयं अपनी योग्यता से धन उपार्जन कर सकताहै और यदि वह अयोग्य निकला तो तुम्हारी संचित अपार धनराशि को भी तुम्हारे नामके साथ अपनी अयोग्यता से मिटा देगा। इस कारण धनको पुत्र के लिये संचित कर रखना, उसका यथाशक्ति दान न करना, मूर्खता है।

आकिंचन्य

अपने आत्मा के सिवाय संसार का कोई भी पदार्थ अपना नहीं है। मित्र, पुत्र, पत्नी, माता, पिता, धन, मकान आदि जिन पदार्थों को मोहसे हमने अपनाया है या अपनाने का प्रयत्न करते हैं वे सभी चीज़ें अपनी नहीं हैं। यहां तक कि यह शरीर भी खाने पीने के लिये तय्यार है, किन्तु आत्म कल्याण के लिए तय्यार नहीं होता। इसको भी यहीं पर छोड़ना पड़ता है, इस विचार को अपने सामने रखते हुए इन समस्त परपदार्थों से मोह छोड़ कर इनका पीछा छोड़ देना या इनसे अपना पीछा छुड़ा लेना आकिंचन्य है।

यह आकिंचन्य गृहस्थ को यथाशक्ति ग्रहण

करना चाहिए, इस धर्म की कितनी भारी आवश्यकताहै, यह बतलाना व्यर्थ है।

ब्रह्मचर्य

कामवासना का शिकार न होना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य वह अमूल्य गुण है जिसके कारण आत्मा दुर्व्यसनों से अलिप्त रहता है। आत्मा में तेज तथा उसके गुणों का विकास और शारीरिक बलका विकास भी इस ब्रह्मचर्य के कारण होता है। जनता पर अपना प्रभाव डालने के लिए तथा मंत्र साधन के लिये ब्रह्मचर्य की अनिवार्य आवश्यकता है।

मनुष्य यदि इस मनुष्य शरीर को पाकर सफल कार्य करना चाहता है तो वह आजन्म ब्रह्मचारी रहे। क्योंकि विवाह करके मनुष्य गृहस्थाश्रम की उस कीचड़ में फंस जाता है, जिससे कि निकलकर अपना उद्धार तथा परोपकार होना, सामाजिक उन्नति एवं धार्मिक प्रचार के कार्य होने, कठिन हो जाते हैं।

यदि पूर्ण ब्रह्मचारी न रह सके तो २५ वर्ष तक या कम से कम १८ वर्ष तक बाल ब्रह्मचारी रहकर विवाह करे और फिर पत्नीव्रत पालन कर वेश्यागमन, परस्त्री-रमण सरीखे व्यभिचारों का सर्वथा छोड़ दे; अपनी पत्नी के सिवाय अन्य स्त्रियों की ओर माता, बहिन, पुत्री की पवित्र दृष्टि रखनी चाहिए। यदि अपनी पत्नी का स्वर्गवास हो जावे तो जहां तक हो सके अन्य विवाह न करके ब्रह्मचर्य का पालन करे; यदि विवश होकर विवाह करना भी हो तो चालीस वर्ष की आयु के पहले करले, उसके पीछे बिलकुल न करे। क्योंकि नित्य प्रति की घटनाएं हमको शिक्षा दे रही हैं कि चालीस वर्ष की आयु के पीछे के विवाह पति-पत्नी दोनोंके विनाशके कारण हैं। व्यभिचार और अनेक प्रकार के अनर्थ ऐसे विवाहों से खुलते हैं।

विवाहित अवस्था में यथासम्भव अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य रखना चाहिये। रजस्वला होने पर चौथी रात से लेकर सोलहवीं रात तक गर्भाधान के दिनों में सन्तान उत्पादन के विचार से विषय सेवन करे, शेष दिनों में ब्रह्मचर्य से रहे। पत्नी की या अपनी रोगी दशा में जो ब्रह्मचर्य से नहीं रहते वे राजयक्ष्मा, तपेदिक, जीर्णज्वर आदि असाध्य रोगों को निमंत्रण देते हैं। यदि पत्नी बीमार है तो उसके ऊपर और यदि पुरुष रोगी है तो उस पर इन भयंकर रोगों का आक्रमण होगा।

अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टान्हिका, पर्युषण आदि पर्व दिनों में ब्रह्मचर्य से अवश्य रहना चाहिये। जितना अधिक ब्रह्मचर्य का पालन होगा, पति-पत्नी के शरीर में शक्ति उतनी ही अधिक बढ़ेगी, दीर्घ आयु होगी, निरोग शरीर रहेगा और अच्छी गुणवान संतान उत्पन्न होगी। गर्भवती पत्नी के साथ मैथुनकर्म हानिकारक है।

बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमल विवाह, बलहीन पुरुष के विवाह अनुचित हैं—व्यभिचार फैलाने के कारण हैं। धनलोभ में फंस कर नपुंसकसे विवाह कर देना महापाप है। स्वस्थ, बलवान, पूर्णांग, गुणवान, कमाऊ पुरुष के साथ उसके पौरुष की परीक्षा करके विवाह करना चाहिये।

वीर्य शरीर का राजा है, दिमाग, शरीर, दिल की शक्ति इसके रहने पर रहती है। इसको अनावश्यक खर्च करना अपना बहुत भारी नुकसान करना है। वीर्यहीन पुरुष असमय में मृत्यु का

मेहमान बन जाता है। इसकारण अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

क्षमावणी

पर्युषण पर्वके अंतमें क्षमावणी का दिन आता है; जैनधर्म में यह एक अनुपम महत्वशाली दिवस है। इस दिन प्रत्येक जैन सारे संसार के साथ अपने पूर्व विरोध को त्याग देता है। अपने समस्त शत्रु मित्रों के दोषों को, द्वेषी भावों को शुद्ध मनसे क्षमा कर देना और स्वयं उनसे क्षमा मांगना, इस दिन का पवित्र कार्य है।

जैसे दिवाली के दिन व्यापारी अपने लेन देन के खाते साफ़ करके नई बहियां रखतेहैं, ठीक इसी प्रकार जैन लोग भी क्षमावाणी के दिन अपने द्वेष-भाव के खाते को साफ़ कर देते हैं।

आज कल यह कार्य प्रायः ऊपरी रह गया है, शुद्ध हृदय से नहीं किया जाता, क्षमा भी उनसे मांगते हैं जो अपने मित्र हैं। जिनके साथ मनमुटाव है, न तो उनसे क्षमा मांगी जाती है, और न उनको स्वयं क्षमा किया जाता है। यही कारण है कि जैन भाई स्थान स्थान पर परस्पर प्रेम से नहीं रहते। बीसों क्षमावणी के वार्षिक दिवस बिता देने पर भी दलबंदी का द्वेष ज्यों का त्यों बना हुआ है। इस कारण इस दिन की पवित्रता क़ायम रखने के लिये क्षमाभाव हृदय से होना चाहिये।

इस प्रकार सोलहकारण, पुष्पाञ्जलि, दश-लक्षण, रत्नत्रय आदि व्रतविधानों का कराने वाला यह पर्युषण पर्व जैन समाज के अभ्युदयका अच्छा साधन है।

ईश-विनय

हमारी सुध लीजे भगवान !

हम सब विद्याहीन हुये हैं,
कायरता में लीन हुये हैं,
ज्ञान बिना सब हीन हुये हैं,
जैसे शिशु अज्ञान
हमारी सुध लीजे भगवान ॥ १ ॥

बाल विवाह ने बल को छीना
वृद्ध विवाह ने धन हर लीना,
आपस के सब वैर विरोध ने,
बहुत किया हैरान
हमारी सुध लीजे भगवान ॥ २ ॥

सकल कला ने किया किनारा
दरिद्रता ने लिया सहारा,
हम मूरख अज्ञान हुये हैं
हुआ यहां अवसान
हमारी सुध लीजे भगवान ॥ ३ ॥

तुम सर्वज्ञ सकल सुखदाता
सकल जगत् के पूरन ज्ञाता,
व्यापक विश्व चराचर तुमही,
प्रभु तुम दयानिधान
हमारी सुध लीजे भगवान ॥ ४ ॥

—'अज्ञात'

जैन जगत का ब्रह्मचर्य !

जैनजगत की प्रगति निराली है; जो बात जैन-जगतको सूझती है, वह किसीके मस्तिष्क में आ नहीं सकती। उसका कल्पित जैनधर्मका मर्म तो एक पहले की बात है, अभी १८ वें अङ्क में व्यभिचार और ब्रह्मचर्य शीर्षक लेखमें जैनजगत ने जो ब्रह्मचर्य का स्वरूप प्रगट किया है वह भी निराला है। इस ब्रह्मचर्य के द्वारा जैन समाज का 'चारित्र सुधार' बहुत आदर्श हो सकता है !

इस लेख के लेखक बा० हेमचन्द्र जी मोदी हैं। शायद ये मोदी जी श्रीयुत नाथूराम जी प्रेमी के सुपुत्र हैं। हम इस लेख के विशेष अन्शों को पाठकों के सन्मुख रखते हैं। पाठक महानुभाव उनका ध्यानपूर्वक अवलोकन करें।

लेखक महानुभाव जैन हैं, किन्तु विवाह प्रणाली कब से क्यों प्रारम्भ हुई, उसके विषय में आप लिखते हैं कि—

"महाभारत में ऐसा कथन है कि प्राचीन काल में स्त्रियां अनावृत, कामाचारविहारिणी, स्वतन्त्र होती थीं जैसी तिर्यग्योनि की, तथा जैसे उत्तर कुरुदेश में अब तक होती हैं। वह अधर्म नहीं था, क्योंकि वह उस काल में धर्म माना जाता था। एक पतिव्रत विवाह की मर्यादा, बहुत दिन नहीं हुए, उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने डाली।" (जबकि उन्होंने देखा कि उनकी माता को एक दूसरे ऋषि, अपने लिये, पुत्र उत्पादन के अर्थ, ले उड़े)

लेखक का मत जैन इतिहासानुसार भोगभूमि के अन्त में विवाहप्रणाली प्रारम्भ होने के विरुद्ध है। उनके मतानुसार विवाहपद्धति अपनी माता के भगाये जाने पर श्वेतकेतु ऋषि ने शुरू की। उसके पहले स्त्रियाँ पशुओं के समान पुत्र पिता आदि का खयाल न करके चाहे जिस पुरुष के साथ विषय सेवन किया करती थीं। जैनग्रंथानुसार ऐसा पाशविक विषयसेवन विवाह-पद्धति प्रारम्भ होने से पहले भोगभूमि में भी नहीं था।

आगे आप लिखते हैं कि—

"मानव समाज में जब विवाह बन्धन नहीं था या ज़्यादा सख्त नहीं था तब वह आजकल की अपेक्षा अधिक ब्रह्मचारी, अधिक वीर्यवान्, अधिक शीलवान् था।"

यानी—जिस समय विवाह नहीं होता था स्त्रियां पशुओं के समान विषय सेवन करती थीं, तब जनसमूह अधिक ब्रह्मचारी और बलवान होता था। शायद लक्ष्मण, हनुमान, रावण, भीम, भीष्म, कृष्ण, द्रोण, अभिमन्यु आदि निर्बल थे, ब्रह्मचारी नहीं थे, क्योंकि वे विवाह पद्धति से उत्पन्न हुए थे। बाहुबली आदि को तो शायद हमारे लेखक ऐतिहासिक महा बलवान पुरुष मानते भी न होंगे, क्योंकि उनका उल्लेख जैन ग्रंथों में है, महाभारत में नहीं है।

इसके आगे २० वें पृष्ठ पर लेखक महाशय ब्रह्मचर्य और व्यभिचार का विवेचन करते हैं—

"वास्तव में देखा जाय तो व्यभिचार और

ब्रह्मचर्य ये केवल लौकिक शब्द हैं। कामशास्त्र के आचार्य वात्स्यायन मुनि विधवा तथा पतिता स्त्री के साथ संभोग करनेको बुरा नहीं समझते। प्रोन्नतयौवना स्त्री यदि अभिलषित पुरुष को प्राप्त नहीं कर सकती तो उसे उन्माद हिस्टीरिया हो जाता है या वह मर जाती है। इस बात को ठीक तौर से बूझ कर मैथुन के लिये स्वेच्छा से आई हुई दूसरे की स्त्री से संभोग करे परन्तु हमेशा नहीं,ऐसा सुमतिमान वात्स्यायन मुनि ने कहा है।"

कितने उन्नत आदर्श विचार हैं, कैसा अच्छा धर्म, अधर्मका निरूपण है, गुरु भी कामशास्त्र के रचयिता प्राप्त हैं। विधवा स्त्री को शील भ्रष्ट करना ब्रह्मचर्य है। यौवनवती कामिनी पराई स्त्री की विषय कामना तृप्त न करना व्यभिचार है। क्या ये विचार लेखक महोदय के स्वानुभव निर्णीत हैं? अथवा केवल वात्स्यायन मुनी के संकेतानुसार व्यवस्था है?

तदनन्तर आप लिखते हैं कि—

"यदि कोई दरिद्र मनुष्य अपने कुटुम्ब के भरणपोषणार्थ किसी धनवान स्त्री को फंसा कर उससे व्यभिचार करता है तो उसे वात्स्यायन मुनि धर्म समझते हैं (आप स्वयं क्या समझते हैं?); महाभारतकार व्यासमुनि तो और भी आगे बढ़कर कहते हैं कि स्वेच्छा से आई हुई कामार्त स्त्री से जो पुरुष भोग नहीं करता वह उसकी हाय सांसों से आहत हो अवश्य ही नरक जाता है।"

यहां पर मोदीजी ने वात्स्यायन की आड़ लेकर एक तीर से तीन निशाने छेद डाले हैं। दरिद्र पुरुष की कामवासना भी तृप्त हो जाय, उसे धन भी मिल जाय और धनवान स्त्री की विषयकामना सन्तुष्ट हो जाय। इस बेकारी और दिनदूनी बढ़ती हुई विषय वासना के ज़माने में बम्बई सरीखे धनाढ्य नगर निवासी एक जैनयुवक सब तरफ से लाभकारक संदेश सुना रहा है; इसको जो न माने वह हमारी समझसे बुद्धिहीन और भाग्यहीन है तथा नरकगामी है। लेखक के लिये तो क्या कहें; वे तो स्वयं अपने विचार प्रगट कर ही रहे हैं। यह विचार अनुभूत है या अननुभूत, केवल यह बात प्रगट होना चाहिये?

इसके आगे विविध देशों के राजाओं की विषय-सेवन-पद्धति का उल्लेख करते हुए आप लिखते हैं कि—

"सौराष्ट्र (काठियावाड़ गुजरात) नगर और देहात की स्त्रियाँ अकेली या सामूहिक रूप में राजा के अन्तःपुर में जा राजा से संभोग करती थीं। इस प्रकार राजा महाराजाओंने अपनी काम लालसा की तृप्ति के लिये बहुत सी प्रथाएँ प्रचलित की थीं। उस समय इन कामों की गिनती न व्यभिचार में की जाती थी, न ऐसी स्त्रियां व्यभिचारिणी समझी जाती थीं और न उनके पतियों की कोई बदनामी होती थी। जैनियों को यह न समझना चाहिये कि उनकी स्त्रियां इससे बची थीं। जैसे देश में वे रहते थे, उसके अनुसार उन्हें चलना पड़ता था। यही उस समय का—महावीर स्वामीके समय—व्यवहार धर्म था, लोक प्रचलित रिवाज था। वात्स्यायन कामसूत्र उसी समय का लिखा हुआ है।"

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ताओं ने भारतवर्ष के जो इतिहास लिखे हैं उनमें राजाओं के इस अनीति

व्यवहार का वर्णन नहीं आया है; अब कामसूत्र के आधार पर एक इतिहास मोदी जी को बना देना चाहिये, जिससे ऐतिहासिक ब्रह्मचर्यसे जनता परिचय प्राप्त कर सके। राजाओं से विषय सेवन करने वाली स्त्रियां भी ब्रह्मचारिणी समझी जाती थीं, इसका प्रमाण लेखक के पास अवश्य होगा।

लेखक ने जो **जैन महिलाओं के लिये भी राजाओं के व्यभिचार से अछूता न रहना बतलाया है** सो जैनसमाज पर उनकी अनुपम कृपा है। आप सरीखे जैन सपूत लेखकों की ही आवश्यकता है जो कि इस प्रकार जैन महिला **समाज को कलंकित करने के लिये अपनी लेखनी चलावें।** गुजराती जैन महानुभावों को अपना पुराना इतिहास देखना आवश्यक है।

हेमचन्द्र जी मोदी जैनधर्म के कितने श्रद्धालु हैं, यह उनके अन्तिम वाक्य से प्रगट हो जाता है। महावीर स्वामी का ब्रह्मचर्य व्रत उस समय यही था, स्त्रियां राजाओं के पास जाकर व्यभिचार करें और उनका ब्रह्मचर्य भी कायम रहे। लेखक के विचारानुसार ब्रह्मचर्य अणुव्रत का उस समय यह ही निर्मल रूप था।

[अपूर्ण]

नव युवकों से—

[रचयिता—"आनन्द" उपाध्याय जयपुर]

कर्मवीर बन जन्मभूमि में अपना सत्व दिखाने को।
फैल रहे पाखंड विश्व में—उनका नाम मिटाने को॥
साहस-दया-निजात्मशक्ति से विश्व प्रेम उमड़ाने को।
पथ-भ्रान्त पथिकों को सहसा जीवन राह सुझाने को॥
कार्यक्षेत्र में गौरव धन को संचित कर घर आओगे।
जन्म तुम्हारा इसीलिये है सुधाधार सरसाओगे॥ १॥

वीर प्रसविनी मातृभूमि में शौर्य प्रवाह बहाने को।
शक्ति विहीन देश में फिर से प्रबल पराक्रम लाने को॥
आत्मवीर्य-साहस दृढ़ता की असिधारा चमकाने को।
नंगे-भूखे भारत को फिर शीघ्र स्वतंत्र बनाने को॥
आओ! हे नवयुवको!! आगे शीघ्र सफलता पाओगे।
जन्म तुम्हारा इसीलिये है सुधाधार सरसाओगे॥ २॥

विपति सैन्य को हरा युद्ध में जय झण्डा फहराने को।
विलखित भारत माता को फिर अपनी शक्ति दिखाने को॥
पूत-सपूत बने हो उस के गौरव देश बढ़ाने को।
जन समाज के नत मस्तक को फिर ऊंचा कर जाने को॥
उन्नति शील कहाकर जग में अजर अमर बन जाओगे।
जन्म तुम्हारा इसीलिये है सुधाधार सरसाओगे॥ ३॥

जैनसाहित्य समीक्षा !

मित्रवर पं० हीरालालजी न्यायतीर्थ जैनमित्र में शिक्षासमस्या शीर्षक एक लेखमाला प्रकाशित कर रहे हैं। उसमें आपने शिक्षा पद्धति में आवश्यक सुधारों का दिग्दर्शन कराते हुए गत ४०-४१ वें अंक के छटे सातवें लेखों में जैनसाहित्य ग्रंथों पर अनुचित आक्षेप किया है। पढ़कर दुख हुआ। लेखों को पढ़ कर यह तो ज्ञात होता है कि लेखकने जो कुछ लिखा है वह सच्चे हृदय से अपने अनुभवगम्य ही लिखा है, किन्तु यह भी निःसन्देह है कि उनका अनुभव अधिकांश त्रुटिपूर्ण है।

काव्य ग्रंथों का जो लक्षण है उनमें जो खूबियां होनी चाहियें वे सभी बातें सब तरह से जैन काव्यों में पाई जाती हैं। साहित्य विषयक विद्वानोंकी दृष्टि से जैन काव्य ग्रंथ संस्कृत साहित्य क्षेत्र में अमूल्य चमकते हुए रत्न हैं; अपनी शान के अद्वितीय हैं। उनमें शृङ्गाररस को दिखलाते हुए अन्त में शान्तरस को ऐसे अच्छे ढंग से रक्खा है कि वह ढंग अजैनग्रंथों मे ढूंढने पर भी न मिलेगा; इस कारण जैन साहित्य ग्रन्थों में तो कोई भी विद्वान कोई त्रुटि या बुराई नहीं बतला सकता। न हमारे लेखक महानुभाव ही उन ग्रन्थों को दोषपूर्ण कहते हैं।

जैन विद्यार्थियों को साहित्य विषयक व्युत्पत्ति कराने के लिये भक्तामर, कल्याण मन्दिर स्तोत्र आदि पढ़ा देना ही कार्यकारी नहीं; ये स्तोत्र अधिक से अधिक प्रवेशिका तक किसी प्रकार लाचारी वश पर्याप्त हो सकते हैं। उसके आगे व्युत्पत्ति कराने के लिये वे ही चन्द्रप्रभचरित, जीवन्धरचम्पू, पुरुदेव चम्पू, धर्मशर्माभ्युदय, अलंकारचिन्तामणी, गद्य चिन्तामणि, यशस्तिलक आदि ग्रंथ काम दे सकते हैं; वहां कोई स्तोत्र आदि काम नहीं दे सकता। इस कारण स्वयं पं० हीरालाल जी भी इस बात से सम्मत होंगे कि विशारद, शास्त्री श्रेणियों के विद्यार्थियों के लिये सिवाय उपर्युक्त ग्रंथों के, अन्य ग्रंथ उपयोगी नहीं हो सकते।

अब एक बात रह जाती है छात्रों के दुराचार की; सो इसका मुख्य कारण जैन साहित्य ग्रंथों का अध्ययनही नहीं है। इसके बलवान कारण दूसरे हैं। यदि कोई विद्यार्थी अपनी बुरी आदत का कारण **जैन काव्य ग्रन्थों का अध्ययन** बतलाता है तो श्रीमान पं० हीरालाल जी को जानना चाहिए कि यह हमसे छल करता है, बहाना खड़ा करता है। हस्तमैथुन आदि दुराचारों की शिक्षा या दिग्दर्शन जैन काव्य ग्रंथों से मिलता है? इतना ख्याल करना भी गलत है। इन बुरी आदतों को जब तक कोई दुराचारी स्वयं क्रियात्मकरूप से न सिखावे, बीसों काव्य ग्रंथ पढ़ने से ये बुरी आदतें छात्रों में नहीं आ सकतीं; जैसे आप स्वयं इन बातों से पहले अनभिज्ञ थे।

मित्रवर हीरालाल जी को अपनी दृष्टि जैन संस्कृत विद्यालयों से बाहर साधारण मदरसों, स्कूलों तथा कालेजों के विद्यार्थियों पर डालनी चाहिये (जिनकी कि ४० वें अंक में आपने प्रशंसा भी की है) वे तो कोई भी काव्य ग्रंथ नहीं पढ़ते, फिर उनमें ये दुराचार उस हद तक क्यों फैला हुआ

है जिसकी कि कल्पना संस्कृत भाषा के विद्यार्थियों में हो भी नहीं सकती। आपको मालूम होना चाहिये कि अनेक छात्र विद्यालयों में प्रविष्ट होने से पहले (काव्य ग्रंथ पढ़ने की बात तो ४—५ वर्ष पीछे शुरू होगी) मदरसों से ही बुरी आदतें सीखकर आते हैं और उस दुर्व्यसन को अपने सहवास से विद्यालय के दूसरे तो छात्रों में फैला देते हैं। इस प्रकार संस्कृत के छात्रों में दुराचार फैलने का मुख्य कारण कुसंगति है, न कि काव्यग्रंथों का अध्ययन। यह तो एक बहाना है। हमने भी धर्म-शर्माभ्युदय आदि काव्य ग्रंथोंका अध्ययन किया है। सच्चे हृदय से हम आपके अनुभव को सारशून्य ग़लत पाते हैं। आपने विद्यार्थियों की बातों से भारी धोखा खाया है।

इस कारण विद्यार्थियों से दुराचार दूर करने के लिये जैनकाव्य ग्रंथों का अध्यापन रोक देना कार्यकारी नहीं; इसके लिये तो अन्य सफल उद्योग होना चाहिये। वह उद्योग मोटे रुपसे दो तरह हो सकता है—एक तो बोर्डिंग का उत्तम प्रबन्ध, दूसरे ब्रह्मचर्य की शिक्षा।

बड़े विद्यार्थियों के साथ छोटे लड़कों को न रखना, दुराचारी छात्रों की संगति न होने देना, फ़ैशन का भूत सवार न होने देना, आदि प्रबन्ध सदाचार के लिये छात्रावास (बोर्डिंग) से संबन्ध रखता है।

शरीर किन पदार्थों का समुदाय है, वीर्य क्या है, उसका सदुपयोग दुरुपयोग क्या है, आत्मिक शक्ति का विकास कैसे होता है? विद्याध्ययन और ब्रह्मचर्य से क्या सम्बन्ध है, पूर्वज वीर क्यों होते थे? शारीरिक शक्ति की कितनी आवश्यकता है और उसके साधन कौन से हैं? इत्यादि विषयों पर अध्यापकोंके वे मार्मिक भाषण होने चाहियें कि छात्रों के हृदय पर ब्रह्मचर्य अंकित हो जावे। इत्यादि।

पं० हीरालाल जी को इस विषय पर गहरा विचार करना चाहिये।　—सम्पादक

विद्वान की क्षुल्लक दीक्षा!

श्रीमान चांदमल जी अजमेरा उन गणनीय पुरुषों में से एक हैं, जो सतत ज्ञानाभ्यास के लिये उद्योगी रहते हैं अथवा विद्याभ्यास के लिये जो अपने प्रौढ़ आयुष्य तथा गृहस्थाश्रम को बाधक नहीं मानते। आप गया के निवासी और बम्बई में व्यापार करने वाले थे। गृहस्थ अवस्था में अब तक आप संस्कृत भाषा का अध्ययन करते रहे थे।

गत वर्ष आपने श्रीमान पूज्य आचार्य शान्ति-सागर जी से अलवर में सप्तम प्रतिमा ग्रहण की थी और अभी ब्यावर स्थान पर उन ही आचार्य महाराज से परिग्रह त्याग, क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर अधिक पूज्यता प्राप्त की है। दीक्षा ग्रहण करते समय आपने २२७२) का दान दिया है जिसमें दो हज़ार रुपये मोरेना विद्यालय को दिये हैं। आपको धन्यवाद तथा बधाई है।

आप सरीखे महानुभावों का मनुष्य जीवन सफल है। जिनेन्द्र भगवान के प्रसाद से आप और भी अधिक उन्नति करें, ऐसी भावना है।—संपादक

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[२]

भद्रबाहु जब विद्यासागरको पार करके अपनी माता के पास पहुँचे तब माता पिता अपने हर्षसागर का पार न पासके। क्योंकि एक तो बहुत लम्बे वियोग के अनन्तर पुत्र का संयोग हुआ, दूसरे वह अनुपम विद्वान होकर आया। भद्रबाहु के शरीर की सुन्दरता विद्याविभूषित होने के कारण सोने में जड़े हुए रत्न के समान और भी अधिक बढ़ गई। अपने परिवार के नेत्रों को आल्हादित करते हुए भद्रबाहु अपने दीप्तिमान गुणों से चन्द्र-समान शोभा पाने लगे।

एक दिन पिता की आज्ञा से भद्रबाहु राजा पद्मधर की राजसभा में गये। राजा ने अपने पुरोहित के गुणी, विद्वान पुत्र को आता हुआ देख कर उनका यथोचित स्वागत किया और उनके योग्य आसन देकर उनका सन्मान किया। प्रत्युत्तर में भद्रबाहु ने राजा को आशीर्वाद दिया।

राजसभा में अनेक विद्यामद से पूर्ण ब्राह्मण विद्वान विराजमान थे; भद्रबाहु का उचित सन्मान देखकर उनको कुछ ईर्ष्या हुई। उन्होंने भद्रबाहु के गंभीर-विद्या समुद्रको नापने के लिये अपनी चञ्चल रसना को हिला ही दिया। भद्रबाहु को अपना असाधारण पांडित्य दिखलाने के लिये और क्या चाहिये था। राजसभा में मनोहर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया, जिसको कि कौतूहल से पद्मधर राजा और राजसभा के सभी सभासद देखने लगे।

एक ओर समस्त पंडित थे, दूसरी ओर उनके सामने अकेले भद्रबाहु थे। भद्रबाहु एक तो वैसे ही अद्वितीय विद्वान थे, दूसरे उनकी विद्वत्ता स्याद्वाद न्याय विद्यासे भरी हुई थी; वे अपने विद्या-बल से प्रत्येक पंडित को ऐसे खिलाने लगे जैसे चतुर खिलाड़ी बच्चों को खिलाता है। भद्रबाहु ने प्रत्येक विषय में प्रत्येक पंडित का मुख बन्द करके उसको निरुत्तर कर दिया। समस्त विद्वानों को हरा देने पर राजा भद्रबाहु से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने प्रसन्न होकर भद्रबाहु को बहुत पारितोषिक देकर सन्मानपूर्वक बिदा किया।

राजसभा के शास्त्रार्थ में विजय पा लेने पर भद्रबाहु का निर्मल यश सर्वत्र फैल गया। अब भद्रबाहु यौवन, विद्या, कीर्ति से सुशोभित होकर अनुपम सुन्दर दीखने लगे। सुयोग्य कन्या के साथ पाणिग्रहण करके आदर्श गृहस्थ बनने के लिये जब माता पिता ने भद्रबाहु से प्रेरणा की तब भद्रबाहु ने अपने माता पिता की प्रेरणा को अपने लिये अहितकर जान सादर विनयपूर्वक अस्वीकार कर दिया और अखंड बाल-ब्रह्मचर्य का परिपालन ही हितकारी समझ स्वीकार किया।

कुछ दिन माता पिता के पास रह कर एक दिन भद्रबाहु ने माता पिता के सामने निवेदन किया कि जन्म मरण और बुढ़ापे के भंवर में चक्कर खाता हुआ यह जीव अपने अमूल्य मनुष्य जीवन

को भी व्यर्थ खो देता है। मैं इस भंवर से निकलने के लिये अपने गुरू के चरण कमलों में जाना चाहता हूं; सो आप मुझे आज्ञा दीजिये।

भद्रबाहु की अनोखी बात सुन कर उनके माता पिता हक्के बक्के हो गये। उन्होंने कहा कि पुत्र! तू यह क्या बात कहता है? गुरू के पास जाकर अब क्या करेगा? गुरुसे विद्या पठन करना था सो तू कर आया, अब उनके पास जानेका क्या काम? हमारा जीवन तेरे आधार से है, तेरा मुख देखकर ये नेत्र तृप्त रहते हैं। आंखों के तारे प्राण आधार! सुपुत्रों के लिये माता पिता की आज्ञा माननीय होती है। इस कारण तू अभी अपना विचार छोड़दे; अभी घर रहकर सुख भोग। यह तेरा तरुण कोमल शरीर साधु दीक्षा लेने योग्य नहीं है--उसका समय तो बुढ़ापे में आवेगा।

भद्रबाहुने नम्रतासे उत्तर दिया---पूज्य तात! आप मेरे परम हितैषी हैं, जिस मार्गमें मेरा आत्मा व्याकुल होकर दुखपावे उस मार्गपर चलनेकी आज्ञा अथवा अनुमति आप कदापि न देंगे, यह मुझे पूर्ण आशा है। फिर मैं घर रह कर विषय भोगों में पड़ा हुआ अपने अमूल्य समय को व्यर्थ ही नहीं, किन्तु पापबन्धनके लिये बिताऊं जिससे कि आगामी भव में मुझको अशुभ जन्म मिलकर दुख भोगना पड़े, इस बात के लिये आपकी प्रेरणा हो इस बात का मुझे आश्चर्य है। आपका प्रेम मेरे हित के लिय होना चाहिये। जान बूझकर भी यदि मैं संसार कूप (कुए) में गिरूं तो बतलाइये कि ज्ञाननेत्र पाने का क्या फल होगा। अमृत को देख या जान लेने से ही कुछ नहीं बनता जब तक कि उसको पिया न जावे। इस कारण हे तात! आप मुझे इस सुपथ पर जाने से न रोकिये।

पुत्रकी सारगर्भित, सत्य बातें सुनकर माता पिता निरुत्तर होगये। साधुदीक्षा लेने के लिये भद्रबाहु का दृढ़ निश्चय देख विवश होकर भद्रबाहु को आज्ञा तो दे दी, किन्तु प्रियपुत्र के अनन्त वियोग का विचार करके सांसारिक मोह से संचित अश्रुधारा को भी भद्रबाहु के समान न रोक सके। उधर भद्रबाहु घर से निकले, उधर उनके माता पिता के नेत्रों से आंसुओं की धारा बह निकली।

भद्रबाहु घरबन्धन से छुटकारा पाकर सीधे अपने गुरु गोवर्द्धनाचार्य के पास पहुँचे और उनको नम्रतापूर्वक नमस्कार करके विनय भाव से निवेदन किया कि पूज्यपाद! मोहमयी गृहजंजाल से छुटकारा पाकर आपके चरणों में शान्ति-लाभ करने आया हूँ, आप मुझे शरण दीजिये। जिस तरह आपने ज्ञानदीपक देकर मेरे हृदय में प्रकाश का बांध खोल दिया है, इसी प्रकार साधुदीक्षा देकर मेरे लिये शान्तिमार्ग का फाटक भी खोल दीजिये और बतला दीजिये वह दुर्गम किन्तु अनन्य सुखकर राजपथ, जिस पर चलते हुए मुझे मुक्तिमंदिर मिल जायगा।

गोवर्द्धन आचार्य ने भद्रबाहु के नम्रनिवेदन से प्रसन्न होते हुए कहा कि भद्रबाहु! तुम्हारा विचार उत्तम है, सिंह का बच्चा तभी तक भेड़ों के झुंड में पराधीन रह कर लाठी से हांका जा सकता है जब तक कि उसको अपनी सोती हुई सिंह वृत्ति का पता न चले। मुझे अपना उत्तराधिकार सौंपने के लिये तुम सरीखे शिष्य की आवश्यकता है। आत्मकल्याण केवल पढ़ लिखकर ज्ञान प्राप्त कर

लेने से नहीं होता, किन्तु उस ज्ञान प्रकाश से दृष्टि आये हुए चारित्र पथ के अवलंबन करने से ही यथार्थ आत्म कल्याण होता है।

यह कह कर गोवर्द्धनआचार्य ने विधिपूर्वक भद्रबाहु को साधुदीक्षा दी। भद्रबाहुने जिस प्रकार अपने शरीर के कपड़े उतार फेंके, उसी प्रकार हृदय पटल से ईर्ष्या, मद, मत्सर, सांसारिक विषय वासना को भी उतार फेंका और साधु दीक्षा लेकर श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी गोवर्द्धन आचार्य के साथ देश विदेश विहार करने लगे।

कुछ समय पीछे गोवर्द्धन आचार्य ने अपना समय निकट जानकर भद्रबाहु स्वामी को सर्वगुण सम्पन्न देख आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। गोवर्द्धन आचार्य ने संन्यास लेकर चार प्रकार आहार को छोड़कर किन्तु चार प्रकार की आराधनाओं को ग्रहण करके समाधिमरण से शरीर त्याग किया।

गोवर्द्धन आचार्य की स्वर्ग-यात्रा हो जाने पर आचार्य भद्रबाहु स्वामी अपने संघ को साथ लेकर गोवर्द्धन आचार्य के समान स्थान २ पर जैनधर्मका प्रसार करते हुये मार्ग-भ्रष्ट मनुष्यों को जैन मार्ग पर लगाते हुए विहार करने लगे। पूर्ण श्रुतज्ञान का यह अंतिम प्रकाश था जो भद्रबाहु सूर्य के कारण जगत में फैल रहा था और लोगों को अज्ञान अन्धकार में जाने से बचाता था।

[क्रमशः]

इंगलिश शिक्षा !

इल्म की हो गई है वह भरमार, हैं बराबर शरीफ़ और चमार।
बी० ए० करते हैं मुरमुरे की दुकान, एम० ए० बेचेंगे चार दिन में अचार॥ —विश्वमित्र

शोचनीय वियोग !

श्रीमान सेठ केसरीमल जी गया एक आदर्श नररत्न थे। वे न केवल खंडेलवाल जाति के, किन्तु समस्त दिगम्बर जैन समाज के भूषण थे। आपका जीवन सादा, सरल, सदय, धार्मिक जीवन था। आप उपयोगी दान निरभिमान रूप से करते थे। आपकी जीवन-यात्रा श्रावण सुदी पूर्णिमा के प्रातःकाल समाधिपूर्वक समाप्त हुई और नवीन स्वर्गयात्रा का प्रारम्भ हुआ। यह अनन्त वियोग जैनसमाज के लिये दुखकर है। आपके सुयोग्य सुपुत्र सेठ लल्लूमल जी आपके अनुरूप हैं। धर्मसेवा और समाजरक्षा का आपके हृदय में उत्साह सदा जागृत रहता है। सेठ जी के वियोग से आपको बहुत हानि पहुँची है, किन्तु आप स्वयं बुद्धिमान हैं, सांसारिक लीला को अच्छी तरह जानते हैं; अतएव संतोष धारणकर उनका अनुसरण करेंगे। स्वर्गीय सेठ केसरीमलजी की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो ऐसी भावना है।

—सम्पादक

विदेशों के अपभ्रंश नाम

स्वर्गीय श्रीयुत पं० श्यामकृष्ण जी वर्मा संस्कृत प्रोफ़ेसर आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी निम्नलिखित रूप से विदेशों के समुद्रों तथा द्वीपों के आधुनिक नाम अपभ्रंश संस्कृत भाषा में बतलाते थे जो कि ठीक जान पड़ता है :—

Mediterranean संस्कृत के मध्यधारा का अपभ्रंश
France फ्रांस—प्रांच
England इङ्गलैंड—आंग्लखंड
Ireland आयरलैंड—आर्य्य खंड
Scotland स्काटलैंड—शक्तिखंड
Shetland शेटलैंड—शीतखंड
London लंदन—नन्दन
Greece ग्रीस—गिरीश
Italy इटैली—अतुल देश
Switzerland स्वीज़रलैंड—पवित्र खण्ड
Rome रोम—रोमक
Russia रशा—आर्षिया
Denmark डेनमार्क—धेनुमार्ग
Norway नारवे—नारावज
Sweden स्वेडन—सुयोधन
Jutland जटलैंड—जाट खण्ड वा जेट खण्ड
Baltic बालटिक—बलिटक
Caspian sea कैस्पियन सी—काश्यपस्थान
Hungry हंगरी—हूनगृह
Germany जर्मनी—शर्मन देश
Austria आस्ट्रिया—राष्ट्रीय
Egypt ईजिप्ट—गुप्तदेश
Turkey टर्की—तर्कस्थान

Arab or Arabstan अरब या अरबस्तान } अर्वस्थान (घोड़ों का देश)
Palestine पैलस्टाइन—पालीस्थान
Aden अडन—उद्यान
Bilochistan बिलोचिस्तान—बलिउचित-स्थान
Afghanistan अफग़ानिस्तान-अवगाहनस्थान
Kandhar कंधार—गंधार
Iran ईरान—आर्यस्थान
Ashan अशन—अश्वस्थान
China चाईना—चीन
Japan जापान—जयपाण
Burma बर्मा—ब्रह्मा
Anam अनम—अनाम
Siam श्याम—श्याम
Andaman अंडमन—अंधमन
Java जावा—यवद्वीप
Sumatra सुमात्रा—सुमात्रा
Ceylon सीलोन—सिंहल द्वीप
Mexico मैक्सिको—मक्षीगृह
Peru पीरू—पेरु
Africa Moon's Mt. अफ्रिका या मून्स माउंटेन } चंद्रगिरि
Alexandria एलेक्ज़ान्ड्रिया—शाकेन्द्रिया

(जागरण से उद्धृत)

[४]

युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना !

सर्वज्ञ सिद्धि की युक्तियों पर आलोचना प्रारम्भ करने से पूर्व दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं :—

"प्राचीन लेखकों ने इस कल्पित सर्वज्ञत्व की सिद्धि के लिये बहुत कोशिश की है, परन्तु आत्मवञ्चना के सिवाय उसमें और कुछ नहीं है। प्राचीन आस्तिक दर्शनों में मीमांसक दर्शन सर्वज्ञत्व का कट्टर विरोधी है। प्राचीन लेखक इस विषय में इस ही दर्शन के विरुद्ध खड़े हुए हैं। मीमांसक दर्शन की कमज़ोरियों से लाभ उठा कर उनने सर्वज्ञसिद्धि की है परन्तु मीमांसक दर्शन के खंडन से सर्वज्ञत्व की सिद्धि नहीं होती।"

पं० दरबारीलाल जी अपने को परीक्षा प्रधानी मानते हैं, अतः उनको अधिकार है कि वे किसी भी प्राचीन या नवीन लेखक की किसी भी बात की परीक्षा करें। जहां उनको इस बात का अधिकार है, वहीं उनका यह भी कर्तव्य है कि वे उनके लेखकों के प्रति समुचित शब्दों का प्रयोग करें। दरबारीलाल जी की लेख माला में इस बात की कमी है। इसके समर्थन में उनके सर्वज्ञसिद्धि के प्राचीन लेखकों के सम्बन्ध के ही शब्दों को उपस्थित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में आपने लिखा है कि "प्राचीन लेखकों ने इस कल्पित सर्वज्ञत्व की सिद्धि के लिये बहुत कोशिश .की है परन्तु आत्मवञ्चना के सिवाय उसमें और कुछ नहीं है।"

इन ही प्राचीन लेखकों में स्वामी समन्तभद्र और भट्टाकलंकदेव भी हैं। इन दोनों महापुरुषों की अन्य किसी भी बात के सम्बन्ध में मतभेद हो या हो सकता हो किन्तु यह तो एक सर्वमान्य बात है कि इन्होंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जो इनकी अन्तरात्मा के प्रतिकूल हो या ऐसी किसी बात का प्रचार नहीं किया जिसको ये स्वयं मिथ्या समझते हों। ऐसी अवस्था में दरबारीलाल जी का प्राचीन लेखकों के सर्वज्ञसिद्धि के कार्य को आत्मवञ्चना बतलाना कहां तक युक्तिसंगत है, यह पाठक स्वयं विचार सकते हैं।

पदार्थों की सिद्धि दो प्रकार से हुआ करती है। एक प्रतिवादी के प्रमाणभूत आगम के सहारे से और दूसरी स्वतन्त्र युक्तियों से। जहां साध्यको या उसके सिद्ध करने वाले साधन को प्रतिवादी के प्रमाणभूत आगम के सहारे से सिद्ध किया जाता है वहां पहिले प्रकार की सिद्धि समझनी चाहिये ! इस प्रकार की सिद्धि का

परिणाम उसही प्रतिवादी तक है या उसही की दृष्टि से इसकी सिद्धि समझनी चाहिये।

जहां प्रतिवादी के आगम का सहारा नहीं लिया जाता और केवल युक्तिबल से सिद्धि की जाती है वह दूसरे प्रकार की सिद्धि है। यह सिद्धि भले ही किसी व्यक्ति विशेष या सम्प्रदाय विशेष की दृष्टि से की गई हो किन्तु यह उससे मर्यादित नहीं है। इसका प्रभाव तो हर एक पर होता है या हर एक की दृष्टि से यह सिद्धि है!

जैनाचार्यों की सर्वज्ञसिद्धि दूसरे प्रकार की सिद्धि है। अतः इसका प्रभाव केवल मीमांसक तक ही मर्यादित नहीं है। मीमांसक भले ही मीमांसा शास्त्र का प्रमाण मानने वाला हो किन्तु जब वह जैनाचार्यों की सर्वज्ञ सिद्धि की युक्तियों पर विचार करता है उस समय उसको केवल तर्क का ही आश्रय है। यही बात दूसरे धर्मावलम्बियों के सम्बन्ध में है। अतः स्पष्ट है कि आजतक जिन्होंने भी जैनाचार्यों की सर्वज्ञ सिद्धि की युक्तियों पर विचार किया है वह एक तार्किक—विचारक—की दृष्टि से, नकि साम्प्रदायिक की दृष्टि से।

जैन आचार्यों की सर्वज्ञसिद्धि जहां दूसरे किसी सम्प्रदाय के शास्त्रों के आधार से नहीं की गई वहीं यह दूसरे सम्प्रदाय का केवल खण्डन मात्र भी नहीं है। यह तो एक स्वतंत्र विधिपक्ष का समर्थन है। यदि यह दूसरे सम्प्रदाय का केवल खण्डन मात्र होता तब तो उसकी निर्बलता का इस पर प्रभाव पड़ सकता था, किन्तु ऐसा है नहीं। अतः इस सम्बन्ध में दरबारी लाल जी का लिखना कि "मीमांसक दर्शन की कमज़ोरियों से लाभ उठाकर उनने सर्वज्ञसिद्धि की है परन्तु मीमांसक दर्शन के खण्डन से सर्वज्ञत्व की सिद्धि नहीं हो सकी" समुचित प्रतीत नहीं होता!

पहिली युक्ति

आचार्य समन्तभद्र ने देवागम में सर्वज्ञसिद्धि के लिये निम्नलिखित कारिका लिखी है:—

"सूक्ष्मान्तरित दूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ संस्थितिः॥"

सूक्ष्म (स्वभाव व्यवहित परमाणु आदि) अन्तरित (काल व्यवहित राम रावण आदि) और दूरार्थ (देश व्यवहित सुमेरु आदि) किसी के प्रत्यक्ष के विषय हैं। अनुमेय होने से जैसे आग; इस प्रकार अनुमान से सर्वज्ञ की सिद्धि होती है।

व्याप्ति का निश्चय अन्वय और व्यतिरेक से होता है। साध्य की उपस्थिति में ही साधन का मिलना अन्वय है और साध्य की ग़ैर मौजूदगी में साधन की ग़ैर मौजूदगी व्यतिरेक है। धूम अग्नि की मौजूदगी में ही होता है और उस की ग़ैर मौजूदगी में इसकी भी ग़ैर मौजूदगी रहती है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि धूम और अग्नि की व्याप्ति है। जिसको हम अनुमानसे जानते हैं कालान्तर में उसीको प्रत्यक्ष से भी जान लेते हैं। वस्तुका दूसरा भाग, रसोई घरकी आग और फल का रस आदि अनेकों बातें हैं जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था मिलती है। बहुतसे ऐसे भी पदार्थ हैं जिनको हम अनुमान से जानते हैं तो दूसरे प्रत्यक्ष से। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुमान विषमता प्रत्यक्ष विषमता की मौजूदगी में ही मिलती है।

ऐसा भी कोई पदार्थ नहीं जिसमें प्रत्यक्ष विषमता की ग़ैर मौजूदगी में अनुमान विषमता मिलती हो। अतः यह भी निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्यक्ष

विषमता की ग़ैर मौजूदगी में अनुमान विषमता भी नहीं रहती।

अनुमान विषमता को प्रत्यक्ष विषमता के ही साथ देखकर और उसकी अनुपस्थिति में उसकी ग़ैर मौजूदगी से यह परिणाम निकलता है कि इन दोनों में परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है। इसही को दूसरे शब्दोंमें साहचर्य संबंध भी कह सकते हैं।

धूम और अग्नि की व्याप्ति निश्चित हो जाने पर पर्वतीय धूम पर्वत में अग्नि का निश्चायक हो जाता है। इसही प्रकार अनुमानविषमता और प्रत्यक्ष विषमता की व्याप्ति निश्चित हो जाने से सूक्ष्म, अन्तरित और दूरार्थ पदार्थों की अनुमान विषमता उनमें प्रत्यक्ष विषमता का निश्चय कराती है! स्थूल पदार्थों की प्रत्यक्षविषमता तो स्पष्ट ही है और सूक्ष्म पदार्थों की प्रत्यक्ष विषमता अनुमान विषमता से सिद्ध हो जाती है। अतः जगत में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जिसमें प्रत्यक्ष विषमता न हो।

पं० दरबारीलाल जी ने इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित बाधायें उपस्थित की हैं:—

(१) अनुमेयत्व और प्रत्यक्षत्व की व्याप्ति ही असिद्ध है।

(२) इसमें व्यधिकरण दोष आता है।

(३) व्याप्ति स्वीकार कर लेने पर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि जितना अनुमेय है वह सब किसी एक ही प्राणी का प्रत्यक्ष है।

(४) सम्पूर्ण पदार्थ अनुमान के विषय नहीं तब उनको प्रत्यक्ष कर लेने पर भी प्रचलित भाषा के अनुसार सर्वज्ञ कैसे कहा जा सकता है।

पहली बाधा के समर्थन में दरबारीलाल जी ने चुम्बक पत्थर की आकर्षण शक्ति का दृष्टान्त दिया है। आपका कहना है कि चुम्बक की आकर्षण शक्ति अनुमेय तो है किन्तु प्रत्यक्ष का विषय नहीं। अतः इससे मौजूदा व्याप्ति में बाधा आती है।

पं० दरबारीलाल जी ने जहां चुम्बक की आकर्षणशक्ति से इस अनुमान में दोषोद्भावन का प्रयत्न किया है वहीं सर्वज्ञसिद्धि के इस अनुमान के रूप को भी बिलकुल बदल दिया है। आचार्य समन्तभद्र ने इस अनुमान में सूक्ष्म, अन्तरित और दूरार्थ को धर्मीका स्थान दिया था किन्तु दरबारीलाल जी जगत के समस्त पदार्थों को धर्मी लिख रहे हैं। जैसा कि उनके निम्नलिखित शब्दों से स्पष्ट है:—

"जगत के सम्पूर्ण पदार्थ किसी न किसी के प्रत्यक्ष के विषय हैं, क्योंकि अनुमान के विषय हैं। जो अनुमान का विषय है वह किसी न किसी के प्रत्यक्ष का विषय है, जैसे अग्नि आदि। जिसके प्रत्यक्ष के विषय हैं वही सर्वज्ञ है।"

पं० दरबारीलाल जी ने ऐसा क्यों किया? इस प्रश्न का सीधा और सरल उत्तर यही है कि अनुमान में दोष पैदा करने के लिये।

यदि अनुमान को आचार्य समन्तभद्र के भाव में रक्खा जाय तब तो व्याप्तिग्रहण का स्थान सूक्ष्म, अन्तरित और देशव्यवहित पदार्थों के अतिरिक्त पदार्थ रहते हैं किन्तु यदि इसही को दरबारीलाल जी के शब्दों में रख दिया जाय तो ये पदार्थ भी व्याप्तिग्रहण का स्थान बन जाते हैं।

व्याप्तिग्रहण की पहली अवस्था में चुम्बक की आकर्षण शक्ति से व्याप्ति में असिद्धता आने की रंचमात्र भी गुंजाइश नहीं, क्योंकि सूक्ष्म होने से

चुम्बक की आकर्षण शक्ति व्याप्ति ग्रहण का स्थान ही नहीं। इसको ही यदि बदल देते हैं और दूसरी अवस्था पर ले आते हैं तो वही शक्ति व्याप्तिग्रहण का स्थान बन जाती है और उससे व्याप्ति में सन्देह उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

पं० दरबारीलाल जी आचार्य समन्तभद्र की युक्ति को युक्त्याभास बतला रहे हैं। किन्तु उनका कर्तव्य था कि वह उक्त आचार्य के कथन को उनही के भाव में रखते और फिर उसकी समालोचना करते। दरबारीलाल जी ने ऐसा नहीं किया, क्यों कि ऐसा करने से उनकी मनोरथ सिद्धि नहीं हो सकी थी। अतः स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी की बाधासे आचार्य समन्तभद्र की व्याप्ति बिलकुल असंबन्धित है!

प्रश्न

ऐसा होने पर भी अनुमेयत्व हेतु चुम्बक की आकर्षण शक्ति से व्यभिचारी है, क्योंकि चुम्बक की आकर्षण शक्ति अनुमेय तो है किन्तु प्रत्यक्ष का विषय नहीं।

उत्तर

चुम्बक की आकर्षण शक्ति को हम प्रत्यक्ष से नहीं जानते, किन्तु इसका यह अर्थ कैसे निकल सकता है कि उसमें प्रत्यक्ष विषमता का ही अभाव है।

यदि हमारी प्रत्यक्षता के साथ ही पदार्थ का अस्तित्व व्याप्त होता तब तो इस प्रकार का परिणाम निकाला जा सकता था! किन्तु ऐसा है नहीं। वायु का रूप होता है इसको हम प्रत्यक्ष से नहीं जानते, फिर भी इसका अभाव नहीं किया जासकता। यदि आपका यह कहना है कि रूप और स्पर्श का साहचर्य सम्बन्ध है, अतः एकके अस्तित्व से दूसरे के अस्तित्व का भी अनुमान हो जाता है। वायु में ठंडा, गर्म आदि स्पर्श स्पष्ट है, अतः इस ही के आधार से उसमें रूप का भी निश्चय हो जाता है। तो ठीक यही व्यवस्था अनुमान विषमता और प्रत्यक्ष विषमता के सम्बन्ध में है। चुम्बक की आकर्षण शक्ति में अनुमान विषमता है, अतः वह प्रत्यक्ष विषमता की भी अनुमायक हो जाती है। इस कारण स्पष्ट है कि चुम्बक की आकर्षण शक्तिसे प्रकृतानुमान में व्यभिचार दोष नहीं आता।

दूसरी बात यह है कि इस अनुमान में सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थों की प्रत्यक्ष विषमता पक्ष है। चुम्बक की आकर्षण शक्ति सूक्ष्म है, अतः वह भी पक्ष में ही सम्मिलित है। विपक्षमें–साध्य की निश्चित गैर मौजूदगी में–साधन के रहने को व्यभिचार कहते हैं। चुम्बक की आकर्षण शक्ति पक्षान्तर्भूत होने से इससे भिन्न है, अतः इस दृष्टि से भी इसमें अनुमेयत्व हेतु को व्यभिचारी नहीं कहा जा सकता।

यदि पक्षान्तर्भूत पदार्थों से ही व्यभिचार की कल्पना की जायगी तो कोई भी अनुमान नहीं बन सकेगा। "पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, रसोई घर की तरह" इस प्रसिद्ध अनुमान को ही ले लीजियेगा। यहां भी धूम साधन को पर्वत से व्यभिचार दिया जा सकेगा, क्योंकि पर्वत में धूम की तरह अग्नि तो दीखती नहीं है। यही बात दूसरे २ अनुमानों के सम्बन्ध में है। इसही बात का प्रतिपादन आचार्य प्रभाचन्द्र ने प्रमेयकमल* और आचार्य विद्यानन्दि ने आप्तपरीक्षादिकों में किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सर्वज्ञसिद्धि के प्रकृतानुमान में दरबारीलाल जी की पहिली बाधा बिलकुल निराधार है।

[क्रमशः]

---

* नहीं पक्षी कृतैरेव व्यभिचारोद्भावनं सर्वस्यानुमानस्य व्यभिचारित्व प्रसङ्गात्

† हेतोर्न व्यभिचारोऽत्र दूरार्थैः मन्दिरादिभिः सूक्ष्मैर्वा परमाण्वाद्यैस्तेषां पक्षीकृतत्वतः

दश धर्म

[ले०—पं० सुमेरुचन्द्र जी 'मेरु' विद्यार्थी, बनारस]

क्षमा

ईर्ष्या वल्लरी की है समूल झुलसाती मूल,
कुमति विहण्डन में अशनि कहाती है।
विजय विपत्तियों में सतत दिलाती दौरि,
मञ्जुल विनय का भंडार भरवाती है॥
पल्लवित पुष्पित बनाती है धरमबेलि,
दम्भ के विभीषण कुलाचल ढहाती है।
"मेरु" कवि मानस चकोर को दिलाती शान्ति,
ऐसी धरमाङ्ग ये क्षमा ही नाम पाती है॥

मार्दव

सन्तत विचारधार उद्गम अनुलनीय,
आपद धुनी का भीष्म शोषक कहाता है।
शिष्ट जन मान्य गुणग्राम का प्रधान केन्द्र,
विनय बगीची में ही घूमना बताता है॥
जाती अभिमान विष विषम विकार लोप,
प्रेम भरी भावना की मूरति लखाता है।
"मेरु" कवि दर्प दर्व बदन लगाता भसी,
ऐसा यह दूजा अङ्ग मार्दव कहाता है॥

आर्जव

जीवनकला की ज्योति जागृत बनाके आशु,
क्रूरता नशा के निज स्वार्थता नशाइये।
मानस प्रदेश में जे उपजे विचार चारु,
बचन सरस धार ताही को बहाइये॥
दीठिधरि ताहि पै अचल प्रतिश बनि,
जीवन सुक्षेत्र मांहि ताहि दरसाइये।
"मेरु" कवि खण्डि-खण्डि माया मन्दरा की मूल,
तीसरो प्रशस्त अङ्ग आर्जव सुध्याइये॥

सत्य

करते उपासना सुरासुर सदैव याकी,
भवभीरुओं का यह सुभग सुमंत्र है।
सर्वसिद्धि साधन कलाओं से परीत रम्य,
अमित फलों से पूर्ण अनुभूत तंत्र है॥
कीर्ति कुमुदावली विकासक मनोज्ञ चन्द्र,
विश्वद्वन्द्व दलिवे का अनोखा शुभ यन्त्र है।
"मेरु" कवि वसु सम विमुख बने हैं जो जो,
निरय (नरक) पठाया उन्हें ऐसा ये स्वतंत्र है॥

शौच

आतम विशुद्धिता का सरस पढ़ाता पाठ,
निंदनीय लोभ से ये चित्त को हटाता है।
आतम अथाह सुर सरिता नहान से ही,
अचल अचिन्त्य सुपुनीत बन जाता है॥
नर्मदा त्रिवेणी अरु कालिंदी सहस्रबार,
करके निमज्जन न सत शुद्धि पाता है।
पाता है अनर्घ्य चिन्तामणि कवि "मेरु" वही,
एक निष्ठ होकर जो शौच अङ्ग ध्याता है॥

संयम

जन्मसिन्धु तरने की कामना उठी है यदि,
संयम तरणि दृढ़ प्रस्तुत कराओ तो।
अज्ञ भवकानन में भटकें जो चहुँ ओर,
सुभग बताके उन्हें भव्य कहलाओ तो॥
श्रेय कुञ्ज भंजन में चतुर चलाक अति,
इंद्रियोंकी ऐसी आंधी शीघ्र वश लाओ तो।
"मेरु" कवि षट काय जीव पै कृपा की कोर,
करके मनुज जन्म सफल बनाओ तो॥

तप

कोटि जन्म जन्य कर्म भूधर विदारन को
कुलिश अमोघ इसे आगम बताते हैं;
भीषण करण ग्राम अहि कीलिवे को यह,
गारुड़ सुमंत्र सम योगिजन गाते हैं।
विघ्न तम तोम हरिवे को भानु आसमान
मुक्तिपथ पावन को तीरथ सुझाते हैं;
"मेरु" कवि याही हेत त्रिदिव समान भोग
छोड़ि चक्रवर्ति से भी तप अङ्ग ध्याते हैं॥

त्याग

वैभव विनश्वर विलोकि जो विवेकी जीव,
चोविध सुदान मांहि सौंपता स्वधन है।
दारिद कटाक्षपात करता न वापे कबौं,
संपति सदैव चारु चूमती चरन है॥
देवी हंस वाहिनी भी ढूंढती प्रसन्न है के,
कीर्ति भी बनाती वहीं सुभग सदन है।
"मेरु"कवि वही जीव ऐहिक सुभोग भोगि,
परलोक पाय होता सुन्दर सुमन है॥

आकिञ्चन

शान्ति के क़िले को चूर चूर कर देता चट,
धीरता विभूति को नशाता एक छन में।
कर्मनृप मोह का चमूपति फिराता यह,
भीषण विपिन औ विराट कन्दरन में॥
बैरी बन जाता पुत्र मित्र भी इसी के हेत,
होता है विवेक शून्य आत्म आचरन में।
"मेरु" कवि यातें परिग्रह का जंजाल त्यागि,
सर को झुकाओ नौवें अंग की शरन में॥

ब्रह्मचर्य

शील के प्रभाव से ही सीता ने सुयश पायो,
शील के प्रभाव से ही व्याल भयो माल है।
शील के प्रभाव से हलाहल सुपूर्ण घट,
सुन्दर सुखद भयो अमृत रसाल है॥
ताही के प्रभाव से पुरन्दर सा सौम्य पद,
पाया जिसे सुरसंघ नमता त्रिकाल है।
"मेरु" कवि पाते मुक्ति रमणी रमण हेत,
धारो शील अङ्ग अरु त्यागो भ्रमजाल है॥

सुनिए—

[लेखक—ध० र० ब्र० प्रेमसागर जी "पञ्चरत्न", भेलसा]

यही है दश धर्मों का सार—

नहीं क्रोध मनमें उपजाना, नहीं तनिक अभिमान बुलाना,
क्षमा, नम्रता को अपना कर, करना आत्म सुधार।
माया का मत जाल बिछाना, मुख से झूठी नहीं बताना,
सरल, सत्य में आप समाकर, कर लेना उद्धार।
शौच-सरित का सलिल विमल ही, धोना शीघ्र लोभ मल कल ही,
संयम की नौका में चढ़कर, करना खूब बिहार।
तप की पावक में तप जाना, अष्ट-कर्म का मैल जलाना,
त्याग धर्म से प्रीति बढ़ा कर, देना दान विचार।
किञ्चित भी परिग्रह दुख दाई, कुशील करता बड़ी बुराई,
आकिंचन अरु ब्रह्मचर्य से, करना "प्रेम" अपार।
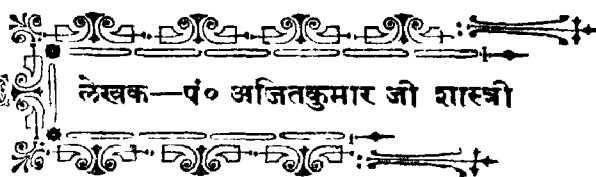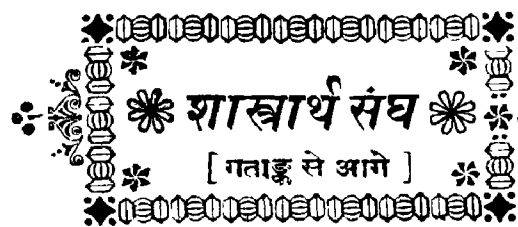
प्रकाशन विभाग

इस विभाग का मुख्य उद्देश यह रक्खा गया है कि जैनधर्म का अजैनधर्म में प्रचार करने के लिये तथा जैनधर्म पर आये हुए आक्षेपों का युक्तिपूर्वक सभ्य शब्दों में उत्तर देने के लिये अच्छे ट्रैक्ट प्रकाशित कर उनको लागत मूल्य पर बेचा जावे। यह भी निश्चय हुआ है कि प्रत्येक संस्करण (एडीशन) में से दो सौ (२००) प्रतियां अजैन पुस्तकालयों तथा अजैन विद्वानों को बिना मूल्य भेंट करने के लिये रक्खी जावें; शेष लागत मूल्य पर बेची जावे।

तदनुसार शास्त्रार्थ संघ ने इस विभाग द्वारा अब तक १५ ट्रैक्ट प्रकाशित किये हैं। श्री ऋषभदेव की उत्पत्ति असंभव नहीं है, सत्यार्थदर्पण, आर्यसमाज के १०० प्रश्नों का उत्तर, आर्यसमाज के ५० प्रश्नों का उत्तर, ये चार ट्रैक्ट जैनधर्म पर किये गये आक्षेपों को दूर करने के लिये प्रकाशित हुए हैं। जैनधर्म परिचय, जैनमत नास्तिक मत नहीं है, अहिंसा, दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि तथा जैनधर्म संदेश ये पांच ट्रैक्ट जैनधर्म के प्रचारार्थ प्रकाशित हुए हैं। शेष क्या आर्यसमाजी वेदानुयायी हैं? वेदमीमांसा, वेदसमालोचना, आर्यसमाजियों की गप्पाष्टक, क्या वेद भगवद्वाणी है? आर्यसमाज की डबल गप्पाष्टक ये ६ ट्रैक्ट वैदिक मतानुयायी तथा आर्यसमाज को उनकी त्रुटियां बतलाने के लिये प्रकाशित किये हैं।

ट्रैक्टों का मूल्य कितना थोड़ा रक्खा जाता है यह आप इसी पर से जान सकते हैं कि सत्यार्थदर्पण ३५० पृष्ठ का ग्रंथ है, मूल्य केवल १२ आने है। वेदसमालोचना ६ आने की है पृष्ठ संख्या १२४ है। दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि पुस्तक ३५० पृष्ठ की ऐतिहासिक पुस्तक है। इसमें आठ चित्र भी हैं; मूल्य केवल एक रुपया है। इत्यादि।

इस प्रकार इस विभाग से १२०० पृष्ठ का साहित्य सोलह हज़ार प्रतियों में प्रकाशित हुआ है। २-३ अच्छे उपयोगी ट्रैक्ट लिखे हुए इस समय उपस्थित हैं। आर्थिक प्रबन्ध हो जाने पर उनको प्रकाशित कर दिया जावेगा।

पुस्तकालय विभाग

वैदिक साहित्य के अनुसंधान के लिये तथा ऐतिहासिक खोज के लिये और जैनधर्म के प्रचारार्थ एवं शास्त्रार्थ के लिये अनेक आवश्यक बातों को जानने के वास्ते शास्त्रार्थ संघ को एक अच्छे पुस्तकालय की अनिवार्य आवश्यकता थी। उसकी पूर्ति के लिये शास्त्रार्थ संघ के पास एक अच्छा पुस्तकालय है। वैदिक ग्रन्थ संचय की दृष्टि से जैनसमाज में यह अद्वितीय पुस्तकालय है। इस पुस्तकालय को श्रीमान वेद-विद्याविशारद

अनुसन्धान ।

[लेखक—पं० के० भुजबली शास्त्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा]

१. अमृतनन्दि योगी

"कन्नड कवि चरिते" भाग द्वितीय पृष्ठ ३३ में एक "अमृतनन्दि" कवि के बारे में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है:—

"इन्होंने 'अकारादि वैद्यनिघण्टु' लिखा है। यह जैन कवि हैं। इनका समय लगभग तेरहवीं शताब्दि में होना सम्भव ज्ञात होता है।"

गत वर्ष "रस रत्नाकर" नामक कन्नड अलंकार ग्रंथ की भूमिका में ए० वेङ्कटराव बी० ए० एल० टी० तथा पंडित एच० शेष ऐयंगर ने लिखा है कि "अमृतनन्दि का अलंकार संग्रह नामक एक ग्रंथ है। उसमें १. वर्णगण विचार २ शब्दार्थ निर्णय ३. रस निर्णय ४. नेत्रभेद विचार ५ अलङ्कार निर्णय ६. दोष गुणालङ्कार निर्णय ७ संध्यंग निरूपण ८ वृत्ति निरूपण ९. काव्यालंकार निरूपण, ये नव परिच्छेद हैं। यह भी उनका स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, क्योंकि प्राचीन अलङ्कार ग्रंथों को देख कर "मन्व" भूपति की अनुमति से यह ग्रंथ मैंने संचय करके लिखा है, इस तरह ग्रंथारम्भ में स्वयं कवि ने कहा है। यह "मन्व" भूपति सोम सूर्य्यकुलोत्तंस, समुद्रबिरुदांकित, यमगंडरगंड, कोरवंक-भीम, समर निरंकुश, नूत्नसाहसाङ्क आदि बिरुदावली से समलंकृत थे, ऐसा कवि ने ग्रन्थ के परिच्छेदान्त पद्यों में कहा है। इस "मन्व" भूपति के पिता शिवपादाब्ज षट्पद भक्ति-भूमिप थे। (किन्तु भवन की प्रति में "जिनपादाब्ज षट्पदः" यही पाठ है)।

"तिरुचनापल्ली" में "जम्बुकेश्वर" देवस्थान में प्राप्त प्रताप रुद्रदेव के एक शासन से "मन्व-गण्ड गोपाल" नामक एक प्रतापरुद्र का सामन्त

[पृष्ठ ९६ का शेष मैटर]

पं० मंगलसेन जी ने अपने अनेक बहुमूल्य ग्रंथ भेंट किये हैं।

पुस्तकालय में संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू, प्राकृत आदि अनेक भाषाओं के ग्रंथ विद्यमान हैं। यजुर्वेद गिरिधरभाष्य, संस्कारविधि (पहला एडीशन) सत्यार्थप्रकाश (पहला एडीशन असली) आदि अनेक अप्राप्य ग्रंथ भी पुस्तकालय में हैं। वेदों की संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी भाषा की अनेक टीकाएं भी संग्रहीत हैं। अभी विलायत से ढाईसौ रुपये मूल्य वाला अंग्रेज़ी भाषा का 'मुहुनजोदारो' नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ मंगाया गया है। समय समय पर इस पुस्तकालय में अच्छे अच्छे, आवश्यक, उपयोगी ग्रंथों का संग्रह होता रहता है।

पुस्तक प्रकाशकों को अपनी नवीन प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति इस पुस्तकालय को बिना मूल्य भेंट करनी चाहियें। [क्रमशः]

था, ऐसा विदित है। इसलिये यही "अमृतनन्दि" के आश्रयदाता होंगे, ऐसा अनुमान किया जाता है।

"नेल्लूर" के एक शासन में शक वर्ष १२२१ सन् १२९९ में "तस्याग्रजः सुतो मन्व गण्ड गोपाल भूपतिः। प्रतापरुद्र भूपस्य प्रसादार्चित वैभवः।" ऐसा उल्लेख है। इससे इस मन्वभूप का समय सन १२९९ सिद्ध होता है। अतः इस कवि अमृतनन्दि का काल सन् तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग परिज्ञात होता है। यह कवि "प्रतापरुद्र" के आशय में "प्रताप रुद्रीय" नाम ग्रंथ के रचयिता "विद्यानाथ" के समकालीन होंगे या कुछ इधर के।

इन उल्लिखित तीनों उद्धरणों से अलंकार संग्रह के रचयिता यही "अमृतनन्दि" हैं। तथा इनका समय भी वही तेरहवीं शताब्दी प्रमाणित होता है।

विद्वानों को इस लेख पर विचार करना चाहिये, क्योंकि "अमृतनन्दि" का काल अभी तक अज्ञात ही है।

२. ब्रह्मसूरि

"प्रतिष्ठासारोद्धार" ग्रंथ के कर्त्ता "ब्रह्मसूरि" ने अपना वंश परिचय निम्नलिखित रूप से दिया है:—

पाण्ड्य देश में "गुडिपत्तन" (?) नामक एक द्वीप है। वहां का राजा पाण्ड्य नरेन्द्र था। यह बड़ा ही धर्मिष्ठ, शूरवीर, कलाकुशल तथा पण्डितसेवी था। वहीं "श्री वृषभ" तीर्थङ्कर का एक मनोज्ञ रत्नजटित, सुवर्णघटित मन्दिर था। उस मन्दिर में "विशाखनन्दि" आदि अनेक परम विद्वान् मुनिगण वास करते थे। यह आगे प्रख्यात पुराणकर्त्ता जिनसेनाचार्य की परम्परागत "श्री गोबिन्द-भट्ट" को ही अपना पूर्व पुरुष बतला कर निम्नलिखित रीति से अपनी वंश परम्परा का उल्लेख करते हैं:—

"गोबिन्द भट्ट" के श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण, हस्तिमल्ल और वर्द्धमान नामके छः लड़के थे। सुप्रसिद्ध कवि "हस्तिमल्ल" के पुत्र "पंडित पार्श्व जी" थे। वे अपने पिता के समान यशस्वी, धर्मात्मा तथा शास्त्र मर्मज्ञ पण्डित थे। पीछे यह काश्यप, वशिष्ठ आदि गोत्रज अपने बन्धुओं के साथ "होयसल" देश में जाकर रहने लगे। यह "होयसल" वंश पश्चिमी घाटी की पहाड़ियों में "कडूर" ज़िले के "मद्गिरि" तालुका में "अंगडी" नाम के स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसीका प्राचीन नाम "शशकपुर" है। यहां पर "सल" नामक एक सामन्त ने एक व्याघ्र से एक जैनमुनि की रक्षा करने के हेतु "पोयसल" नाम प्राप्त किया। विद्वानों का कहना है कि प्रारम्भ में "होयसल" वंश पहाड़ी था। पीछे "विनयादित्य" के उत्तराधिकारी "वल्लाल" ने अपनी राजधानी "शशकपुरी" से "बेलूर" में हटा ली। द्वार-समुद्र (हलेबीडु) में भी उनकी राजधानी थी। प्रायः यही वंश परम्परा "हस्तिमल्ल" "नेमिचन्द्र" आदि विद्वानों की कृतियों में भी मिलती है, परन्तु उक्त "ब्रह्मसूरि" के निश्चित समय का पता नहीं लगता है। विद्वानों को इस विषय में अन्वेषण करना चाहिये।

विद्वानों से दो शब्द !

[लेखक—पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री]

माननीय विद्वद्गण ! जैन समाज की झंझरी नौका जिन चट्टानों के बीच से होकर गुज़र रही है उनसे आप अपरिचित नहीं हैं; उस पर कोरे तर्कवाद के प्रबल तूफ़ानों ने तो विपत्ति के समय गीले आटे में चटकीले नमक का काम कर दिखाया है। जिस जैनधर्म का उद्योत करने के लिये आचार्य श्री समन्तभद्र को भस्मक रोग के समय चरित्र भ्रष्ट हो प्राणों की रक्षा करनी पड़ी, वीर नवयुवक निष्कलङ्क ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया—उस पर चारों तरफ़ से प्रहार हों और हम अकर्मण्य बन कर बैठे २ देखें, हा ! हमारा कैसा भीषण पतन है ? जिन जैनाचार्यों के प्रबल हुँकार से प्रतिवादियों के छक्के छूट जाते थे, जो प्रतिवादियों के झुंड में सिंह की तरह घुसकर "वादार्थी विचराम्यहम्" की आवाज़ लगाते थे, आज उनकी सन्तान अपने कर्तव्य को भूल गई है या उसे जानते हुए भी नहीं जानती। शोक !!! किसी समय विद्वान जनता को जगाया करते थे और आज जनता विद्वानों को जगा रही है, फिर भी उनकी मोह निद्रा नहीं टूटती।

जैन समाज के बच्चों को जैनधर्म का पाठ पढ़ाने वालो ! आँखें खोलो, आलस्य को दूर भगाओ और अन्तर में आत्म विश्वास का कवच पहन कर कर्तव्य क्षेत्र में कूद पड़ो और जनता को दिखादो कि जैन विद्वानों की रगों में अब भी समन्तभद्र और अकलङ्क देव का ख़ून बहता है।

उस ज़माने में—जब आज की तरह लिखने के साधन अलभ्य थे, हमारे आचार्योंने अपने ज्ञानभंडार को वृक्षके पत्तोंपर लोहे की सुई से अङ्कित कर अपनी भावी संतानको सौंपा था। आज इतने सुलभ साधन होते हुए भी हम उनकी कीर्तिगाथा को कलङ्कित करने के विरोधमें वा उनके सिद्धान्तोंका जन साधारण में प्रचार करने के लिये दो शब्द भी न लिखें, यह कितना बड़ा आश्चर्य है ? यह लिखने का युग है, अतः स्वयं लिखिये, दूसरों से लिखवाइये, किंतु सोच समझ कर। "जैन दर्शन" आपके अमूल्य भावों को संसारके सन्मुख रखेगा। उससे सहयोग कीजिये।

आइये ! आज हम सब मिल कर प्रतिज्ञा करें कि जैन समाज में एक भी ऐसा विद्वान अछूता न बचेगा जो जैनाचार्यों के पवित्र मन्तव्यों पर "जैन दर्शन" के द्वारा अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित न करे।

शुद्धात्माओं के पवित्र गुणों का स्मरण हमें कार्य क्षेत्र में दृढ़ रहने की शक्ति प्रदान करे—यही अन्तिम कामना है। इति।

शाही फ़र्मान !

(लेखक— पंडित पातीराम जी जैन शास्त्री "कमल")

१. अकबर का आज्ञापत्र मय मालकन साहब की राय के

जैनियों ने मुझसे प्रार्थना की कि पोयुषण (पर्युषण) अर्थात् उन १२ दिनों में जिनको वे पवित्र मानते हैं जीवों की हिंसा को रोका जाय और अकबर बादशाह का दिया हुआ असली फ़रमान जिसको उज्जैन में रहने वाले उनके बड़े पुजारी ने यत्न से रक्खा था उन्होंने मेरे देखने के लिये भेजा। इस अपूर्व पत्र का निम्न लिखित तर्जुमा है—

ईश्वर के नाम से ईश्वर बड़ा है

महाराजाधिराज जलालुद्दीन अकबरशाह बादशाह ग़ाज़ी का फ़रमान—"मालवा के मुत्सद्दियोंको विदित हो कि चूंकि हमारी कुल इच्छायें इसी बात के लिये हैं कि शुभाचरण किये जायं और हमारे श्रेष्ठ मनोरथ एक ही अभिप्राय अर्थात् अपनी प्रजा के मनको प्रसन्न करने और आकर्षण करने के लिये नित्य रहते हैं, इस कारण जब कभी हम किसी मत या धर्म के ऐसे मनुष्योंका ज़िक्र सुनते हैं जो अपना जीवन पवित्रता से व्यतीत करते हैं अपने समय को आत्मध्यान में लगाते हैं और जो केवल ईश्वर के चिन्तवनमें लगे रहतेहैं तो हम उनकी पूजाकी वाह्य रीति को नहीं देखते हैं और केवल उनके चित्त के अभिप्राय को विचार के उनकी संगति करने के लिये हमारे तीव्र अनुराग होता है और ऐसे कार्य करने की इच्छा होती है जो ईश्वर को पसंद हों। इस कारण हरिभज सूर्य और उनके शिष्य के, जो गुजरात में रहते हैं और वहां से हाल ही में यहां आये हैं, उग्र तप और असाधारण पवित्रता का वर्णन सुन कर हमने उनको हाज़िर होने का हुक्म दिया है और वे आदर के स्थान को चूमने की आज्ञा पाने से सन्मानित हुये हैं।"

"अपने देश को जाने के लिए बिदा होने के पीछे उन्होंने यह प्रार्थना की कि 'यदि बादशाह जो अनाथों का रक्षक है यह आज्ञा दे दे कि भादों मास के बारह दिनों में जो पोयूषण कहलाते हैं और जिनको जैनी विशेष करके पवित्र समझते हैं कोई जीव उन नगरों में न मारा जाय जहां उनकी जाति रहती है तो इससे दुनियां के मनुष्यों में उनकी प्रशंसा होगी, बहुतसे जीव बध होने से बच जायंगे और सरकार का यह कार्य परमेश्वर को पसन्द होगा'। चूंकि जिन मनुष्यों ने यह प्रार्थना की है वे दूर देश से आये हैं और उनकी इच्छा हमारे धर्म की आज्ञाओं के प्रतिकूल नहीं है, वरन उन शुभ कार्यों के अनुकूल ही है जिनका माननीय और पवित्र मुसलमान ने उपदेश किया है। इस कारण हमने उनकी प्रार्थना को मान लिया और हुक्म दिया कि उन बारह दिनों में जिनको पोयूषण कहते हैं किसी जीव की हिंसा न की जाय।"

"यह सदा के लिये क़ायम रहेगी और सबको इसकी आज्ञा पालन करने और इस बात का यत्न

करने के लिये हुक्म दिया जाता है कि कोई मनुष्य अपने धर्म सम्बन्धी कार्यों के करने में दुःख न पावे।"

मिती ७ जमादुलसानी सन् ९९२ हिजरी

माननीय मालकम साहब की राय सहित ये फुटकर नोट हैं।

(आज्ञा से)

सम्वत् १७४९ महसूद ५ वीं ईस्वी सन् १६९३ शाहदयाल मन्त्री।

देखो टॉड साहब की बनाई हुई पुस्तक "राजस्थान" की जिल्द १ का अपैंडिक्स नं० ५ पृष्ठ ६९६ और ६९७

महाराना श्री राजसिंह जी का आज्ञापत्र

[जैनियों की अहिंसा के प्रभाव का द्योतक]

महाराना श्री राजसिंह मेवाड़ के दश हज़ार ग्रामों के सरदार मंत्री और पटेलों को आज्ञा देता है, सब अपने २ पद के अनुसार पढ़ें।

१—प्राचीनकाल से जैनियों के मंदिर और स्थानों को अधिकार मिला हुआ है; इस कारण कोई मनुष्य उनकी हद में जीव बध न करे। यह उनका पुराना हक है।

२—जो जीव नर हो या मादा बध होने के अभिप्राय से इनके स्थान से गुज़रता है वह अमर हो जाता है (अर्थात् उसका जीव बच जाता है)

३—राजद्रोही, लुटेरे और कारागृह से भागे हुए महा अपराधी को जो जैनियों के उपासरे में जाकर शरण लें राजकर्मचारी उसे नहीं पकड़ेंगे।

४—फ़सल में कूंची (मुट्ठी) कराना की मुट्ठी, दान करी हुई भूमि धरती और अनेक नगरों में उनके बनाये हुये उपासरे कायम रहेंगे।

५—यह फ़र्मान ऋषि मुनि की प्रार्थना करने पर जारी किया गया है, जिसको १५ बीघे धान की भूमि के और २५ मलेटी के दान किये गये हैं। नीमच और निम्बहीर के प्रत्येक परगने में भी हर एक यति को इतनी ही पृथ्वी दी गई है। अर्थात् तीनों परगनों में धान के कुल ४५ बीघे और मलेटी के ७५ बीघे।

इस फ़र्मान के देखते ही पृथ्वी नाप दी जाय और दे दी जाय और कोई मनुष्य यतियों को दुख नहीं दे, बल्कि उनके हकों की रक्षा करें। उस मनुष्य को धिक्कार है जो उनके हकों को उलंघन करता है। हिन्दु को गौ और मुसलमान को सूअर और मुर्दार की कसम है।

अभिलाषा !

[ले०—ध० र० ब्र० प्रेमसागरजी, "पंचरत्न", भेलसा]

भूधर की चोटी पर बैठ के लगाऊं ध्यान,
थिरता बुलाऊं रोकूं मन की चपलता।
मौनी बन ढूंढूं आत्मदेव की अनोखी बिम्ब,
राग द्वेष दूर करूं पाऊं मैं विमलता॥

तन को बनाऊं नित्त मेरु के समान थिर,
विघ्न वायु नेक भी मरोरे न अचलता।
तप अग्नि ऐसी बालूं आठ कर्म काठ जालूं,
मोक्ष फल पाऊं "प्रेम" नाशके विकलता॥

आर्य समाज प्रश्नोत्तर माला !

[लि०-श्रीमान वेद विद्याविशारद पं० मंगलसेनजी अम्बाला]

[१]

वेदार्थ विषय में समाधान का उत्तर

महाशय जियालालजी वर्म्मा आगरा को हम ने अवलोकनार्थ फ़ार्म वा ट्रैक्ट भेज दिये थे और साथ ही में तारीख़ २९—१२—३२ के पत्र में लिख भी दिया था कि आप स्वामी दयानन्द जी के वेद भाष्य को वेदानुकूल वा प्रमाणीक समझते हैं तो उसपर अपने विचारों को प्रकट कीजिये। इस पत्र के उत्तर में महाशय जियालाल जी ने ता० ४—१—३३ के पत्र में लिखा है कि वेदार्थ के संबंध में आपको जितने भ्रम हुए हैं वे सब ब्राह्मण ग्रन्थ और अन्य पुस्तकों में छली और कपटी मनुष्यों की मिलावट है—यह ख्याल न रखने से है। क्या आप को इस मिलावट की चर्चा श्री स्वामी जी के लेखों में कहीं नहीं दीखी ? यदि नहीं दीखी तो आप उन के ग्रंथ अभी और ध्यान से बाँचें, इत्यादि। महाशय जी ! मुझे ब्राह्मण ग्रन्थ वा छली कपटी मनुष्यों की पुस्तकों के देखने से भ्रम नहीं हुआ बल्कि स्वामी दयानन्द जी के वेद भाष्य को देख कर ही वेदार्थ विषय में भ्रम हुआ है क्योंकि अपने यजुर्वेद भाष्य में स्वामीजी स्वयं लिखते हैं कि यज्ञ की सिद्धि मंत्र ब्राह्मण और सूत्रों द्वाराही होतीहै परंतु उन्होंने वेद के विरुद्ध कर्म काण्ड को सर्वथा नष्ट भ्रष्ट कर केवल शब्दार्थ मात्र ही भाष्य किया है। इस लिये स्वामी दयानन्द जी का वेदार्थ वेद के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है। अब यज्ञ की सिद्धी जिस प्रकार स्वामी जी ने अपने वेदभाष्य में लिखी है, उसी को हम यहां उद्धृत करते हैं, ज़रा इसे ध्यान से पढ़िये—

चत्वारित्यस्य वाम देव ऋषिः।
यज्ञ पुरुषदेवता। विराडार्षी त्रिष्टुप छन्दः।
(मन्त्र)

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्यपादा-
द्वे शीर्षेसप्तहस्तासो अस्य
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्यान् आविवेश—यजु० १७-९१

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जिस (अस्य) इसके (त्रयः) प्रातः सवन, मध्यन्दिन सवन और सायं सवन, ये तीन (पादाः) प्राप्ति के साधन (चत्वारि) चारवेद (शृङ्गा) सींग (द्वे) दो (शीर्षे) अस्त काल और उदय काल शिर वा जिस (अस्य) इस के (सप्तहस्तासः) गायत्री आदि छन्द सात हाथ हैं वा जो (त्रिधा) मंत्र ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से (बद्धः) बंधा हुआ (महः) बड़ा (देवः) प्राप्त करने योग (वृषभः) सुखों को सब ओर से वर्षाने वाला यज्ञ (रोरवीति) प्रातःमध्य और सायं सवन क्रमसे शब्द करता हुआ (मर्त्यान्)

मनुष्यों को (आविवेश) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है उसका अनुष्ठान कर के सुखी होओ।

त्रिधा बद्धो वृषभोरोरवीति—यजु० १७-९१

त्रिधा बद्धस्त्रेधाबद्धो मंत्र ब्राह्मण
कल्पैर्वृषभोरोरवीति १३—७ इति नैरुक्तः।

तथा इसी मन्त्र का अर्थ अथर्व वेदीय गोपथ ब्राह्मण में भी पक्षान्तर के अतिरिक्त यज्ञ परक ही अर्थ किया है और वह प्रमाण इस प्रकार है—त्रिधाबद्धः इति मन्त्रःकल्पो ब्राह्मणं वृषभोरोरवीति। पूर्व भागे प्र० २ कण्डिका १६। इस ब्राह्मण श्रुति के अनुसार भी व्याकरण परक अर्थ मिथ्या सिद्ध होता है। और स्वामी दयानन्दजीने इसी मन्त्र का अर्थ निरुक्त या मंत्र के देवता के अनुसार ही किया है, परन्तु इसी मन्त्र का जो द्वितीय अर्थ किया है वह निरुक्त वा देवता के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

इसके उत्तर में महाशय जियालाल जी ने आर्य्यमित्र वर्ष ३६ अंक १४ पृष्ठ २० के कालम ३ मे लिखा है कि—इस मंत्र के दोनों अर्थ अविरोधी हैं। भिन्न अर्थ होना विरोध नहीं कहाता। यदि यथार्थ में कोई विरोध होता तो आप प्रतिज्ञा मात्र न करके विरोध का स्थान अवश्य बताते—इत्यादि। महाशय जी! आपको दोनों ही अर्थ अविरोधी प्रतीत हुए हैं, परन्तु वेद के विरुद्ध होने से यह विचार आपका मिथ्या है, क्योंकि स्वामी जी ने यज्ञ विषय में "त्रिधाबद्धः" का अर्थ मंत्र ब्राह्मण और कल्प इन तीनों से बंधा हुआ किया है और व्याकरण विषय में "त्रिधाबद्धः" का अर्थ हृदय कण्ठ और शिर इन तीन स्थानों से बंधा हुआ किया है। अब जहाँ पर आपको मंत्रार्थ में विरुद्धता प्रतीत हो वहां पर "यज्ञो वै विष्णुः ब्रह्म वैबृहस्पतिः" इत्यादि श्रुतियों का प्रयोग न करके केवल हृदय कण्ठ और शिर का ही प्रयोग कर देना चाहिये—आपको पता लग जायगा कि दोनों अर्थों में अविरोधी अर्थ कौन और विरोधी अर्थ कौनसा है।

साथ ही मं मंत्र का अर्थ उसके लिखित देवता के अनुसार ही हो सक्ता है, क्योंकि यास्काचार्य्य ने स्वयं निरुक्त में लिखा है कि—यत्काम ऋषिर्यस्यां देवता यामर्थ पत्यमिच्छन्स्तुति प्रयुंक्तेतद्देवतः समंत्रोभवति—निरुक्त ७-१। जिस कामनाको ऋषि जिस देवता मे अर्थ होने की इच्छा कर स्तुति करते हैं तिस मंत्र का सो देवता है—इसका प्रयोजन यह है कि जिस मंत्र के साथ में जो देवता शब्द लिखा होगा उसके अनुसार ही उस मंत्र का अर्थ होगा; अन्य प्रकार उसका अर्थ कदापि नहीं हो सक्ता है।

स्वामी दयानन्द जी अपनी ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका पृष्ठ ३६९ मं लिखते हैं कि—जिस २ मंत्र का जो २ अर्थ होता है वही उसका देवता कहाता है—सो यह इस लिये है कि जिससे मंत्रों को देख कर उनके अभिप्रायार्थ का यथार्थ ज्ञान हो जाय, इत्यादि। इस प्रमाणानुसार देवता के अनुकूल ही अर्थ होना चाहिए, क्योंकि स्वामी दयानन्दजी ने चत्वारिशृङ्गा इस मंत्र का यज्ञ पुरुषो देवता लिखा है और यही प्रयोजन निरुक्तकार का भी है; फिर समझ में नहीं आता कि स्वामी जी ने वेदादि ग्रन्थों के विरुद्ध व्याकरण परक अर्थ क्यों किया—क्या आप इस व्याकरण परक अर्थ को वेद वा देवता के अनुकूल सत्य सिद्ध कर सक्ते हैं? यदि कर सक्ते हैं तो ज़रा प्रमाण सहित लिख कर

दिखलाइये, अन्यथा वेदादि ग्रन्थों के विरुद्ध आग्रह करना यह विद्वानों को शोभा नहीं देता।

आगे लिखा है कि—चत्वारिश्रृङ्गा—इस मंत्र का अर्थ निरुक्तकार ने जहां अग्निहोत्र परक किया है वहाँ महाभाष्यकारने व्याकरण परक किया है, इत्यादि। स्वामी दयानन्दजी ने निरुक्त के अनुसार ही मंत्रार्थ किया है और उनका किया अर्थ आपको मान्य है। इसलिये निरुक्तके अनुकूल अर्थ लिखकर हमने आपको दिखला दिया, परन्तु मंत्र के प्रमाण से मंत्र ब्राह्मण और सूत्रों के अतिरिक्त अन्य किसी महाभाष्य की सिद्धी नहीं होती और जबकि महाभाष्य वेदानुकूल सिद्ध नहीं है तब उसके अनुकूल वेदार्थ सिद्ध करके दिखलाना सर्वथा मिथ्या है। क्या आप उस महाभाष्य को वेदानुकूल सिद्ध कर सके हैं। यदि कर सके हैं तो किसी वेदमंत्र का प्रमाणलिखकर दिखलाइये अन्यथा वेद विरुद्ध प्रमाण लिखना आपकी अनभिज्ञता को अवश्य सिद्ध करता है।

स्वामीदयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास पृष्ठ ७० में लिखा है कि (प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है? (उत्तर) वेद अर्थात् जो २ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना वा छोड़ना मानते हैं, जिससे वेद हमको मान्य है, इसलिये हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्यों को ऐक्यमत होकर रहना चाहिये, इत्यादि। इस प्रमाण में वेद के अनुकूल ही करने वा छोड़ने की आज्ञा लिखी है और जबकि वेद के अनुकूल ही करने वा छोड़ने की आज्ञा है तब वेद के विरुद्ध महाभाष्य का प्रमाण कैसा? और क्यों कर प्रमाणीक हो सक्ता है; ज़रा कुछ तो समझ कर लिखना चाहिये-खेद!

स्वामी दयानन्द जी अपने वेदभाष्य की अपूर्वता दिखलानेके लिये ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ३४३ में लिखते हैं कि—जो यह मेरा भाष्य बनता है सो तो वेद वेदांग ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार होता है। क्योंकि जो २ वेदों के सनातन व्याख्यान हैं उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है—यही इस में अपूर्वता है, इत्यादि। इस प्रमाण में वेद वेदांग, ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुकूल होने से अपने वेदभाष्य की अपूर्वता को दिखलाया है, परन्तु महाशय जियालालजी ने इस अपूर्वता को मिथ्या सिद्ध करने के लिये एक स्वामी जी का प्रमाण ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ३६३ का इस प्रकार लिखा है कि—

हम इस वेदभाष्य में शब्द और अर्थ द्वारा अनेक विषयों का वर्णन करेंगे—लोगों के कर्म काण्ड में लगाए हुए वेद मन्त्रों में से जहां २ जो २ कर्म अग्निहोत्र से ले के अश्वमेधपर्यन्त करने चाहियें उन का वर्णन यहां नहीं किया जायगा, क्योंकि उन के अनुष्ठान का यथार्थ विनियोग, ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण पूर्व मीमांसा श्रौत और गृह्यसूत्रों में कहा हुआ है, इत्यादि। इस लेख में आप ने 'अनेक विषयों का वर्णन करेंगे' इतना पाठ और अपनी तरफ से मिला दिया है, यह आपकी सत्यता वा सभ्यता का नमूना है, क्योंकि स्वामीजी ने संस्कृत में स्वयं लिखा है कि—'अत्र वेदभाष्ये कर्मकाण्डस्यवर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते।' अर्थात् इस वेदभाष्य में शब्द और उनके अर्थ द्वारा कर्मकाण्ड का वर्णन करेंगे। इस प्रमाण में स्वामी जी साफ़ तौर से लिखते हैं कि इस वेदभाष्य में केवल शब्दार्थ मात्र ही कर्म

काण्ड का वर्णन करेंगे। और पूर्व प्रतिज्ञा में लिखा है कि—जो यह मेरा भाष्य बनता है सो तो वेद वेदाङ्ग ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार होता है, यही इस में अपूर्वता है।

अब आप बतलावें कि इन दोनों प्रतिज्ञाओं में से आप कौन सी सत्य स्वीकार करते हैं? यदि आप अपनी लिखित प्रतिज्ञा को सत्य स्वीकार करते हैं तो स्वामी जी की पूर्व लिखित प्रतिज्ञा मिथ्या सिद्ध हो जायगी और वेदभाष्य की अपूर्वता वा प्रमाणिकता भी मिथ्या हो जायगी। और जो आप पूर्व प्रतिज्ञा को सत्य स्वीकार करेंगे तो यह आप की लिखित प्रतिज्ञा मिथ्या सिद्ध होगी और वेदभाष्य केवल शब्दार्थ मात्र होने से आप पूर्व प्रतिज्ञा के अनुकूल भी सिद्ध नहीं कर सकेंगे। इस लिये परस्पर विरुद्ध होने से स्वामी जी की दोनों ही प्रतिज्ञाएं मिथ्या हैं। और जब कि परस्पर विरुद्ध होने से स्वामी जी की दोनों ही प्रतिज्ञाएं मिथ्या हैं तब आप वेद भाष्य की अपूर्वता व प्रमाणिकता को किस प्रकार सिद्ध करेंगे, इसे ज़रा प्रमाण सहित लिख कर दिखलाइये।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने वेदभाष्य को वेदादि ग्रन्थों के विरुद्ध इस कारण किया है कि यदि मैं भी यज्ञपद्धति के अनुसार विनियोग विधि का उपयोग करूंगा तो अल्पज्ञ पुरुषों के लेखके समान दोष इस मेरे भाष्य में भी आ जा सकता है, इस लिये उन्होंने वेदादि ग्रन्थों के विरुद्ध वेदभाष्य कियाहै। इसी बात को स्वामी जी अपनी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृष्ठ ३६३ में इस प्रकार लिखते हैं कि—जो २ कर्म अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध के अन्त पर्यन्त करने चाहियें उनका वर्णन यहां नहीं किया जायगा। क्योंकि उनके अनुष्ठान का यथार्थ विनियोग ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण, पूर्व मीमांसा श्रौत और गृह्यसूत्रादिकों में कहा हुआ है उसी को फिर कहने से पिसे को पीसने के समतुल्य अल्पज्ञ पुरुषों के लेख के समान दोष इस भाष्य में भी आ जा सकता है–इत्यादि। इस लेख में जिन प्राचीन भाष्यकारों ने वेद ब्राह्मण और सूत्रों द्वारा विनियोग विधि को अपने वेद भाष्य में किया है उन्हें स्वामी दयानन्द जी ने अल्पज्ञ पुरुष बतलाया है और जब कि स्वामी जी वेदादि ग्रन्थों के अनुसार वेद भाष्य करने वालों को अल्पज्ञ पुरुष बतलाते हैं तब वेदादि ग्रन्थों के विरुद्ध वेद भाष्य करने वाले को वेद विरोधी वा नास्तिक क्यों न कहा जाय।

स्वामी दयानन्द जी जिन प्राचीन भाष्यकारों को अल्पज्ञ पुरुष बतलाते हैं, देखो उन्होंने ही अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ३४३ में इस प्रकार लिखा है—(प्रश्न) क्यों जी! जो तुम यह वेदों का भाष्य (वेद भाष्य) बनाते हो सो पूर्व आचार्य्यों के वेद भाष्यों के समान बनाते हो वा नवीन! जो पूर्व रचित भाष्यों के समान है तब तो बनाना व्यर्थ है क्योंकि वे तो पहिले ही से बने बनाये हैं और जो नया बनाते हो तो उसको कोई भी न मानेगा, क्योंकि जो बिना प्रमाण के केवल अपनी ही कल्पना से बनाना है, यह बात कब ठीक हो सकती है। (उत्तर) यह भाष्य प्राचीन आचार्य्यों के वेद भाष्यों के अनुकूल बनाया जाता है, इत्यादि। इस लेख में स्वामी जी अपने वेद भाष्य को प्राचीन आचार्य्यों के वेद भाष्यों के अनुकूल बतलाते हैं और लेख में प्राचीन आचार्य्यों को अल्पज्ञ पुरुष लिखा है। अब आप बतलावें कि वे

प्राचीन आचार्य्य कौन से हैं जिनके कि अनुकूल स्वामी जी ने अपना वेदभाष्य किया है। आप उन प्राचीन आचार्य्यों में से दो चार का पता तो लिखें। ताकि उन प्राचीन आचार्यों के वेदभाष्यों को मंगा कर मिलान कर सकें। यदि आप प्राचीन वेद भाष्यकारों का पता तक नहीं लिखेंगे तो सिद्ध हो जायगा कि स्वामी जी का लेख सर्वथा मिथ्या है।

आगे लिखा है कि—स्वामीजी महाराज किसी मन्त्र के अग्निहोत्र परक विनियोग से इन्कारी नहीं थे, इत्यादि। स्वामी जी अग्निहोत्र परक विनियोग विधी से सर्वथा इन्कारी थे। क्योंकि उन्होंने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ३६२ में लिखा है कि—

अत्रवेदभाष्ये कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते—अर्थात् इस वेदभाष्य में शब्द और उनके अर्थ द्वारा कर्मकाण्ड का वर्णन करेंगे। इस प्रमाण द्वारा सिद्ध है कि स्वामी जी ने अपने वेदभाष्य को केवल शब्दार्थ मात्र ही किया है और कर्मकाण्ड की विनियोग विधि को सर्वथा नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। फिर आप किस प्रकार कह सकते हैं कि स्वामी जी अग्निहोत्र परक की विनियोगविधि से इन्कारी नहीं थे।

फिर लिखा है कि—एक मंत्र के अनेक सत्य और उपयोगी अर्थ करके उन्होंने ऋषियों की उक्त प्राचीन प्रणाली को अपने विद्या बल से फिर प्रकट किया है—इत्यादि। ऋषियों की प्राचीन प्रणाली यही है कि जो सूत्रानुसार मंत्र का देवता होता है अर्थ उसके अनुसार ही होता है, उसके विरुद्ध अनेक अर्थ कदापि नहीं हो सकते हैं, जैसा कि "चत्वारिश्रृङ्गा" इस मंत्र का यज्ञपुरुष देवता है—तो इसका यज्ञपरक ही अर्थ होगा—व्याकरण परक कदापि नहीं। यदि आपमें कुछ हिम्मत है तो द्वितीय अर्थवेदानुकूल सिद्ध करके दिखलावें, अन्यथा लिख देवें कि हम वेदों को प्रमाण नहीं मानते। [क्रमशः]

सम्बोधन !

[लेखक—श्री० वीरेन्द्रकुमार 'वीर']

फूल बहुत से खिले हुए जो
'वीर' तुम्हारे हृद वन में;
रिझा चुके होंगे वे सब को,
विकसित हो निज जीवन में।
मुरझाने का समय निकट है,
प्रभु पद को छू आने दो;
जीवन की उत्कट आशा का,
"वीर" आज फल पाने दो।

वैराग्य !

(ले०—श्रीयुत् पं० पातीराम जी शास्त्री 'कमल')

जीवनकी सूनी कुटियामें, बन बसन्त क्यों आये हो;
काले काले मद नैनों में, क्या जादू भर लाये हो।
प्रणयभावमें मग्न हुए यों, क्यों रतिपति ललचाये हो;
लघुकविकी इस कवितामें हो, क्या इतने भरमाये हो॥
जाओ, जाओ, यह सपना है,
नहीं कोई इसका पतवार।
मानो मानो मैं कहता हूँ,
करने दो कुछ निज उपकार।

साहित्य और इतिहास

[लेखक—"आनन्द" उपाध्याय, जयपुर]

यों तो सांसारिक सम्पूर्ण विषयों का साहित्य में अन्तर्भाव हो जाता है, किन्तु विषय-विभिन्नता होने के कारण विद्वानों द्वारा अन्यान्य संज्ञावाचक शब्दों से कहे जाने पर भी वे साहित्य के महत्वपूर्ण अङ्ग माने गये हैं; इस संबंध में इतिहास का भी यही हाल है। भूत भविष्यत, वर्तमान काल के साहित्य को जीवित रखना ही इसका प्रधान कर्त्तव्य है; केवल नाममात्र के अलग होने से ही हम किसी विषय को साहित्य से अलग नहीं कर सकते। जो लोग "अथ प्रजा नामधिपः प्रभाते" को ही साहित्य समझते हैं उन लोगों की यह समझ गहरी मूर्खता है। सच तो यह है कि सांसारिक परिवर्तन ही साहित्यस होता है, इतिहास भी साहित्य का महत्वपूर्ण अङ्ग है।

मानवीय प्रकृति का पूर्ण अध्ययन करने के लिए इतिहास की अत्यन्त आवश्यकता है, बिना इसके हमारा वह अध्ययन अपूर्णही कहा जायगा। हमारे लिए इतिहास अतीत युग का स्मारक है। समाज रचना को समझनेके लिये इतिहास देदीप्य-मान सूर्य है। आत्मीयता एवं गौरवता का अवलोकन करने के लिए इतिहास ही निर्मल दर्पण है; उसमें प्रति क्षण मनुष्य जीवन झलका करता है। भारतीय वीर और वीरांगनाओं की अति पवित्र जीवनियों से इसका मुख उज्वल है। वस्ततः साहित्य संसार में इतिहास का स्थान बहुत ऊंचा है।

जिस समय प्राचीन युग में इतिहासके विज्ञान से मनुष्य हृदय अनभिज्ञ था उस समय मनुष्यता के प्राकृतिक नियमों को समझने के लिए समाज किसी अदृष्ट विशेष की कल्पना शीघ्र ही कर लेता था। ज्यों ही धीरे २ मनुष्य का हृदय साहित्य के रहस्यों को समझने लगा त्यों ही समाज-रचना के नियमों को निश्चित करने वाले फल स्वरूप इतिहास का आविर्भाव हुआ। मानव-समाज का साहित्य एवं सभ्यता अब उन्नति मार्ग में पैर बढ़ाने लगे और इनके विकास से ही इतिहास का क्षेत्र सुविस्तृत होने लगा। अब ऐतिहासिक प्रमाणों को समाज सम्मान की दृष्टि से देखने लगा। यहां से ही बुजुर्गों की जीवनियों के सम्बन्ध में इतिहास का क्षेत्र बढ़ता है।

इस समय के लोग अपने माता पितादि परिजनों को जीवन सम्बन्धी कुछ विशेषताओं को स्मृति रूप में याद रखने लगे और उनके जीवन काल की कुछ विशेष घटनाओं को लेकर ऐतिहासिक क्षेत्र में बढ़ने लगे। कुछ ही समय में इतिहास का क्षेत्र इतना विशाल और व्यापक बना दिया गया है कि अब इस में समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि महान २ विषयों का समावेश किया गया है और उन सब का अनुशीलन भी भले प्रकार से कराया जाता है। आधुनिक स्कूल कालेजों में नियमित रूप से जिन जिन पुस्तकों को स्थान मिला है उन सब के रचयिताओं ने अपने अपने

गम्भीर अनुशीलन द्वारा इतिहास के क्षेत्र को और भी विस्तृत और व्यापक बना दिया है।

जिस समय किसी भी वर्तमान स्थिति को निश्चित किया जाता है उस समय भूतकाल में उस स्थिति का कैसा रूप था; यह जानने के लिये हम लोगों को इतिहास की सहायता अवश्य ही लेनी पड़ती है। सामाजिक जीवन किन किन समस्याओं को हल कर सकता है ? एवं इस समय समाज क्या मांग रहा है ? हमें उसके लिये क्या क्या प्रयत्न करना चाहिये ? इत्यादि मानसिक प्रश्नों को हल करने के लिए भी हमें इतिहास की शरण अवश्य लेनी होगी।

संसारमें जिस समय विचार क्रान्तियों का बाढ़ आता है तब इतिहास ही हमें बतलाता है कि भविष्य में अमुक क्रान्ति का अमुक रूप होगा, और उसका परिणाम मधुर होगा या कठोर होगा। समाज में सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्रान्ति द्वारा जीवन फूंकने के लिए भी इतिहास एक महान मित्र का काम करता है। यदि हम सर्वाङ्ग सुन्दर एक लेख लिख कर समाज के रुख को बदलना चाहते हैं अथवा वैज्ञानिक विवेचनों द्वारा किसी भी विषय को समाज के आगे रखना चाहते हैं तो हमारे लिए आवश्यक होगा कि उन विषयों में ऐतिहासिक सामग्री रख कर अपने परिश्रम को सफल बनावें, अन्यथा हमारा वह प्रयास सर्वाङ्ग सुन्दर बनने का दावा नहीं रख सकता और न अभिलाषित वांछाओं को ही पूर्ण कर सकता है। सच तो यह है कि सांसारिक विविध विषयों का अध्ययन कर लेने पर भी विद्वान बनने के लिए इतिहास के गम्भीर अनुशीलन की आवश्यकता है।

जब हमारा वर्त्तमानकाल भूतकाल के रूप को धारण करेगा, तब भविष्य में होने वाला समाज बिना इतिहास के किस तरह अपने कर्तव्यों को निश्चित कर सकेगा ? इसलिये वर्तमान में होने वाली घटनाओं को यदि हम सुव्यवस्थित रूप में रख सकें तो हमारे लिए यह अत्यन्त श्रेयस्कर है और भावी समाज का हम इतना उपकार कर सकते हैं जितना कि जन्म जन्मान्तरों में तपस्या करके भी नहीं कर सकते।

जैन समाज का इतिहास अभी तक अपूर्ण है, इसका प्रधान कारण जैन विद्वानों की कुम्भकर्णी निद्रा है। बड़े बड़े आचार्यों की जीवनियों के संबन्ध में प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र आदि बहुत कम मिल पाते हैं, सैकड़ों समस्याओं को हल करने में विद्वान लोग अटकलपच्चू से काम निकाल लेते हैं जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि कई लोग इतिहास को ही अप्रमाण मान लेते हैं।

इतिहास के सैकड़ों ज्वलन्त उदाहरणों द्वारा हम समाजको उठा सकते हैं, उन्नत बना सकते हैं, भविष्य में जीवित रख सकते हैं। जिस समाज का इतिहास सुव्यवस्थित नहीं वह समाज भविष्य में अपने अस्तित्व को भी क़ायम नहीं रख सकता। यदि जैन समाज के आधुनिक विद्वान भविष्य में भी जैन समाज को ज़िन्दा रखना चाहते हैं अथवा प्रस्थान कर जाने पर भी अपने कर्तव्यों द्वारा समाज को कुछ पढ़ाना चाहते हैं तो उनके लिये आवश्यक है कि वर्तमान इतिहास की खोज करके भावी समाज के उन्नायक बनें।

जैन इतिहास की गहरी खोज करने पर आप लोगों को मालूम होगा कि सैकड़ों जैन वीरों ने

देश, समाज, धर्म, जाति की बहुत कुछ ज्ञान रक्खी है, उन्हों ने उनके लिये अपने प्राणों का बलिदान करना ही जीवन का सार समझा था। विश्व बंधुता के सच्चे उपासक जैनी थे, किंतु दुःख होता है कि इतना होते हुए भी जातीय जीवन के लिये उन लोगों ने ऐतिहासिक शिलालेखों की स्थापना बहुत कम की है। उस समय अपनी नामवरी को लोग बहुत कम चाहते थे, यहां तक कि स्वरचित ग्रन्थों में अपना नाम तक देना भी अच्छा नहीं समझते थे। उस समय के जैनियों का ज्ञान-विज्ञान, कला यद्यपि उन्नति मार्ग में थे, किन्तु जैनियों ने भविष्य के लिए कुछ नहीं रक्खा। अपने धर्म को लेकर एक कोने में पड़े रहे जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि ऐतिहासिक क्षेत्र में जैनियों को स्थान बहुत कम मिला और उनका यह विश्व व्यापक धर्म सदा के लिये डिबिया में बन्द कर दिया गया। अब भी यदि जैन विद्वानों को अपनी दशा पर त्रास आता है तो वे भविष्य में अपने को जीवित रखने के लिए ऐतिहासिक सामग्री का संकलन, संरक्षण, संस्थापन करने वाली किसी संस्था को जन्म दें, जिस से कि भावी समाज का कल्याण हो। यह हुई जैन इतिहास की बात। अब हम संसार के इतिहास पर आते हैं।

भारत में जब तक रेल, तार आदि का निर्माण नहीं हुआ था, तब तक लार्ड मेकाले ने यत्र तत्र घूम घाम कर ही बहुत कुछ सामग्री का संकलन किया था। ऐतिहासिक क्षेत्र में इस महान आत्मा ने बहुत काल तक काम किया है। इसके लिखे हुए इतिहास को समाज सम्मान की दृष्टि से देखता है। फिर इसही की तरह अध्ययन करने वाले गिबन और ह्यूम एक अच्छे इतिहासज्ञ हो गये हैं। इन लोगों ने ऐतिहासिक साहित्य को बढ़ाने में अपना प्रबल सत्साहस प्रगट किया है।

सैकड़ों महापुरुषों ने इतिहास के क्षेत्र में काम करते हुए इसको विशाल और सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने की चेष्टा की है जिन में से मुख्यतः थ्यूसिडिडीज़, मैकियेवली, लार्ड रोज़बरी, लार्ड मार्ले, जेम्स ब्राइस, विनसेंट ए० स्मिथ, सर विलियम हण्टर, सर एल्फ्रेड लायल, एल फिन्सटन, मि० रमेशदत्त रानाडे आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने अच्छे २ ऐतिहासिक ग्रन्थ समाज के आगे रक्खे हैं। निःस्वार्थ भाव से अपनी सेवाओं को देश के सामने रखते हुए अपने साहित्य को मज़बूत बनाने में सफलता प्राप्त की है।

आज संसार में महाराणा प्रताप, शिवाजी, मीराबाई, सुकरात, प्लेटो, कांट, टाल्स्टाय आदि कोई भी वीर महात्मा मौजूद नहीं हैं किन्तु जिस समय संसार के इतिहास का अवलोकन किया जाता है उस समय हमारा सिर गौरव से समन्वित होकर ऊंचा उठने लगता है, हम मनुष्यता के कर्त्तव्यों से परिचित हो जाते हैं। संसार मार्ग में शूरवीर एवं गौरवान्वित बनने के लिये इतिहास की बड़ी भारी आवश्यका है। इतिहास में मनुष्यता के कर्त्तव्यों का प्रतिबिम्ब झलका करता है, चाहे कोई भी शिक्षित व्यक्ति अपना स्वरूप क्यों न निरखले।

अब हम इतिहास की प्रामाणिकता पर विचार करते हैं। जितनी भी घटनाएं इतिहास में उल्लिखित होती हैं वे सब सत्य एवं अनुकरणीय ही हों, यह नहीं कहा जा सकता। सैकड़ों घटनाओं की सत्यता के शतशः प्रमाण मिल जाने पर भी वे

आगे जाकर विद्वानों द्वारा अप्रमाण ठहरा दी जाती हैं। तथा इसही प्रकार जिन स्थितियों को वर्तमान में इतिहास नहीं लेता वे ही आगे जाकर प्रमाण सिद्ध होजाती हैं और उनको लेने के लिये इतिहास सहर्ष हाथ बढ़ाता है। इसको हम इतिहास की अपूर्णता कहेंगे। अभी तक हमारे ऐतिहासिक-साहित्य में बहुत कमज़ोरियां हैं। जब तक हम उनको न हटा सकें तब तक हमारा इतिहास पूर्ण नहीं कहला सकता। सच्चा इतिहास कभी भी अप्रमाण नहीं हो सकता और न उस में किसी प्रकार की त्रुटियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं।

ऐतिहासिक सत्यता की परख हम यहा तक कर सकते हैं कि अतीत काल की घटनाओं का सत्यांश यदि वर्तमान काल के अनुभवों से सिद्ध हो जाय तो हमें उसे सत्य का रूप देदेना चाहिये। जो घटना अभी तक हमारे अनुभव से सिद्ध नहीं हो जाती उस पर से भविष्य के लिए कर्त्तव्य का निश्चय कर लेना गहरी मूर्खता है।

इतिहास के अध्ययन का प्रकार वर्तमान समय में संतोषजनक है। बड़े २ कालेजों में वे ही महानुभाव इतिहास पढ़ा सकते हैं जिन्होंने उक्त विषय में आनुषंगिक रूप से अध्ययन किया है। समय २ पर ऐतिहासिक अध्ययन के लिए भारतीय कालेजों से विद्यार्थी लोग बड़े २ शहरों के अजायबघरों में एवं कई एक घटनास्थलों पर भी भेजे जाते हैं। जैन विद्वानों को एक वृहद् जैन इतिहास का निर्माण अवश्य करना चाहिए और अपने भगीरथ प्रयत्नों द्वारा किसी कालेज के कोर्स में उसे अवश्य रखवा देना चाहिये। तभी जैन समाज भविष्य में अपने जीवन को क़ायम रख सकेगा।

इतिहास के सम्बन्ध में यूरोपीय साहित्य ने बड़ी उन्नति की है। वे लोग इसका महत्व समझ चुके हैं। यद्यपि भारतीय इतिहास की जड़ बौद्ध काल से बहुत पक्की करदी गई है, तथापि इसके पुनः परिशोधन की अत्यधिक आवश्यकता है। संस्कृत साहित्यके कुछ विद्वान इतिहास का महत्व समझ चुके हैं, किन्तु अधिकांश विद्वन्मंडली अभी तक मौन है। जैन इतिहास के क्षेत्र में बाबू जुगल किशोर जी मुख्तार एवं नाथूरामजी प्रेमी, प्रोफ़ेसर हीरालाल जी किंग एडवर्ड कालेज अमरावती, बा० कामताप्रसाद जी आदि विद्वानों का परिश्रम सराहनीय है।

अंग्रेज़ी-साहित्य के विद्वान इसकी अत्यधिक सेवा कर चुके हैं और कर रहे हैं, इसके लिये भारतीय समाज बहुत कालतक उनका आभारी रहेगा। आजकल हिन्दी साहित्य में प्रतिदिन सैकड़ों पुस्तकें निकलती हैं किन्तु मौलिक (Original) पुस्तकों में उसके रचयिता का जीवनचरित्र अवश्य होना चाहिये। इससे हम लोग पुस्तक के अंशों का अनुशीलन करके उसके हृदय का पता लगा सकते हैं। बहुत कुछ समस्याओं को हल करने में आपके विद्यार्थी निष्णात होसकते हैं। प्रसन्नता का विषय है कि आजकल अधिकांश पुस्तक रचयिताओं ने इस तरफ़ अपना दृष्टिकोण बदला है।

इस युग में इतिहास की अत्यधिक आवश्यक्ता है। यूरोपीय विद्वानों ने इसको निम्न तीन भागों में विभाजित किया है—

(1) Discriptive वर्णनात्मक।
(2) Reflective विवेचनात्मक।
(3) Philosophical मीमांसात्मक।

बिना इतिहास के समाज रचना का ज्ञान मनुष्य समाज को किसी काल में भी नहीं हो सकता। बहुत विद्वानों का मत है कि मनो विज्ञान शास्त्र का प्रादुर्भाव ही इतिहास से हुआ है। राजनीति का विशद अध्ययन करने के लिए भी इस शास्त्र की बड़ी भारी आवश्यकता है। इति।

[सं० अभिमत—इतिहास की उपयोगिता पर लेखक महानुभावने अच्छा लिखा है उनकी सम्मति अनुसार जैन समाज को अपना इतिहास निर्माण करने में विशेष योग देना चाहिये। प्राचीन जैनपुरुषों ने भविष्य के लिये ऐतिहासिक सामग्री के लिए कुछ नहीं किया, इस बात से हम सहमत नहीं। जैन तीर्थ क्षेत्रों में जो महत्वपूर्ण हज़ारों शिलालेख पाये जाते हैं, प्रायः जैन प्रतिमा पर जो लेख उल्लिखित हैं, अनेक स्तूप, ताम्रपत्र, तथा मंदिरों में एवं ग्रंथों मे जो लेख विद्यमान हैं, वे जैन राजाओं, ऋषियों, आचार्यों, जैन वीरों और जैन धनिकों की तात्कालिक जीवनियों पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। भूगर्भ में जो जैन इतिहास छिपा हुआ है उसके विषय मे तो कह ही क्या सकते हैं। मुहुनजोदारो की खुदाई मे जो पांच हज़ार वर्ष पुराने जैनसिक्के निकले हैं ऐतिहासिक क्षेत्र में उनका कुछ कम महत्व नहीं है। हाँ! यह बात बिलकुल ठीक है कि आधुनिक जैन समाज ने अपने इतिहास निर्माण के लिये कुछ भी नहीं किया है, वह उसे अवश्य करना चाहिये।]

शास्त्रार्थ संघ ने क्या २ समाज सेवायें कीं ?

प्रचार—गत मासों में अजमेर, देहली, मुलतान, डेरा ग़ाज़ीखान, आगरा, पानीपत, मेरठ, खतौली आदि अनेक स्थानों पर महावीर जयंती, पर्युषण पर्व तथा अन्य उत्सवोंके समयपर शास्त्रार्थ संघ के विद्वानों ने अपने भाषणों द्वारा जैन अजैन जनता में जैनधर्म का प्रचार किया।

शास्त्रार्थ—मुलतान, डेरा ग़ाज़ीखान, मेरठ आदि स्थानों पर शंकासमाधान तथा खतौली में चार दिन तक शास्त्रार्थ संघ के विद्वानों ने आर्यसमाज के साथ बहुत बड़ा शास्त्रार्थ किया।

सरकारी परीक्षालय में जैन पठनक्रम—क्वींस कालेज बनारस के संस्कृत पठनक्रम में गत बीसों वर्षों के प्रयत्न से भी जैन कोर्स सम्मिलित नहीं हो पाया था। हर्ष है कि इस वर्ष शास्त्रार्थ संघ के प्रयत्न से जैन पठनक्रम भर्ती करके जैनग्रंथों में परीक्षा लेने की स्वीकारता क्वींस कालेज बनारस से मिल गयी है।

जैनदर्शन का प्रकाशन—इसी प्रकार जैनधर्म पर आये हुए आक्षेपों का निवारण करने के लिये तथा जैनधर्म का प्रचार और धर्मानुकूल समाजसुधार करने के लिये एक अच्छे पत्र की आवश्यकता थी। उस आवश्यकता की भी पूर्ति करते हुए संघ की ओर से जैनदर्शन पाक्षिक रूपमें प्रकाशित हुआ है,जोकि आपके सामने उपस्थित है।

इत्यादि अनेक रूप से शास्त्रार्थ संघ ने अन्य वर्षों के समान इस वर्ष भी जैनधर्म और जैन-समाज की अनुपम सेवा की है। संस्थाओं की सहायता करते समय भा० दि० जैनशास्त्रार्थ संघ को न भूलिये और निम्न पते पर सहायता भेजिये :— भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ आफ़िस

अम्बाला छावनी।

नोटः—गत ढाई वर्ष की छपी हुई रिपोर्ट आफ़िस से मंगाकर देखिये। "जैनदर्शन" के ग्राहक बनिये तथा मित्रों को बनाइये। —सम्पादक

तीर्थ रक्षा !

स्वर्गीय श्रीमान सेठ माणिकचन्द्र जी ने अपने जीवन में अन्य कार्यों के सिवाय एक यह भी बहुत उपयोगी प्रशंसनीय कार्य किया कि तीर्थों को सुरक्षित रखने के लिये श्री भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की जड़ जमाई। तीर्थक्षेत्र कमेटी ने राजगृही, पावापुरी, सम्मेद शिखर, पूजाकेस आदि के लिये जो सफल कार्य किये हैं वे दिगम्बर जैन समाज से छिपे नहीं हैं। ऐसी उपयोगी संस्था को सहायता देना समस्त दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्रों को सहायता देना है। इस कारण प्रत्येक स्थान के मुखिया पुरुषों को कम से कम एक रुपया १) प्रति-घर उगाही करके इस पर्युषण पर्व में निम्न पते पर अवश्य भेजनी चाहिये :—

सेठ चुन्नीलाल हेमचन्द्र जरीवाले,
महामन्त्री तीर्थक्षेत्र कमेटी, हीराबाग, बम्बई

—संपादक

[इस हेडिंग के अन्तर्गत आपके स्वास्थ्यको लाभ पहुंचाने वाली बातें, लेख, अनुभूत नुस्खे आदि रहा करेंगे। यदि "दर्शन" के ग्राहक अपने किसी भी रोग के सम्बन्ध में कोई प्रश्न छपाना चाहेंगे तो वह बिना मूल्य ही इस में छाप कर उसका उत्तर भी इसी हेडिंग के अन्तर्गत शीघ्र से शीघ्र छपाने का यत्न किया जायगा। —सम्पादक]

नेत्र रोगों पर अनुभूत औषधियां !

[लेखक :—पं० रघुनाथप्रसादजी वैद्य, बिजनौर]

१. आंखों में लाली हो या दुखती हों

नीचे लिखे अर्क़ को दिन में ३ दफ़े एक २ बूंद डालें। ३, ४ दिन में सुर्खी जाती रहेगी।

एक छटांक अर्क़ गुलाब में २ रत्ती सफ़ेद फिटकरी पीस कर मिला दी जावे और काम में लाया जावे। अर्क़ साफ़ शीशी में रक्खा जावे और इस्तैमाल करने से पहिले शीशी खूब हिला ली जावे।

२. आंखों पर अगर वर्म (सूजन) हो

पान पर अफ़ीम का हलका लेप करके और देसी चिराग़ की लो पर उसको ज़रा गर्म करके आंख पर बांधना चाहिये।

३. परबाल का ख़ास इलाज

गाय का दूध १ तो०, गाय का मूत्र १ तो०, गाय के दूधका घी १ तो०, आखड़े का दूध १ तो०, सबको मिला कर कांसी के बरतन में तांबे के डंडे से ३ दिन बराबर रगड़ते रहें। स्याह हो जाने पर किसी तांबे की डिबिया में रखलें। रोज़ाना लगाते रहें। १५, १६ रोज में आराम हो जायगा।

४. पलकों में बालनी लगने का इलाज

गाय का घी १ तो०, फिटकरी की खील ४ माशे, इन दोनों को नीम के सोंटे से कांसी के कटोरे में एक पहर बराबर घोटे। जब रंगकबूतर की गर्दनकी तरह हरा मालूम हो, उस वक्त आँखों की पलकों में लगाया जाय। पलकों के बाल आने लगेंगे।

५. कँवलबाय (यरक़ां या पीली आंखें)

ऐसी फिटकरी लीजाय जो बिल्लोर की मिसाल हो, बारीक कूट कर भून कर उसकी खील कर ली जाय, और पहले दिन एक चुटकी खाकर १ प्याली दही की ऊपर से पीवें, दूसरे दिन इसी तरह २ चुटकी, तीसरे दिन ३ चुटकी, बस १ हफ़ते तक ३ चुटकी के इस्तेमाल से यरक़ाँ को आराम होगा।

६. यरक़ाँ का दूसरा इलाज

कड़वी तोरीके बीज एक शकोरे में भिगोकर, मल कर, नसवार लीजावे। प्रथम कफ़ ख़ारिज होगा और पीलापन कम होना शुरू होगा, फिर बहुत शीघ्र आराम हो जायगा।

७. फूला आंख

घोड़े के सुम को खीके दूध में घिस कर आंख में चन्द रोज़ लगाया जाय तो बहुत फ़ायदा करेगा।

८. आंखों की हर क़िस्म की बीमारी का अनुभूत इलाज

१ छटांक जस्त की रुपये के बराबर मोटी या उससे कुछ पतली टिकिया बनाई जाय, फिर उसके ऊपर अढ़ाई सेर पक्का साफ़ कपड़ा जो खूब गाढ़ा हो खूब ज़ोर से लपेट कर गोला बनाया जाय और फिर हिफ़ाज़त की जगह में रखकर गोले को आग लगाई जाय। जब स्वांग शीतल हो जाय, जस्त की भस्म टिकिया जिसका वज़न उसके बराबर होगा, निकलेगी। तीसरे दिन सलाई से आँखों में डाला जाय। बड़ी अनोखी भस्मी है।

प्रमेह (जिरयान या धात) के लिए भी अनुभूत है। खुराक २ रत्ती मसके के साथ। खटाई से परहेज़।

९. आँखें धोना

त्रिफले के पानी से आंखों को नित्य धोते रहने से नेत्र निरमल रहते हैं।

आरोग्यता के उपाय!

ध्यान रखने योग्य!

१. निम्न लिखित वस्तुयें एक समय में (एक साथ) या थोड़ी ही देर आगे पीछे भी न खावें, जब तक कि एक चीज़ को खाये हुए कम से कम ३ घण्टे न हो जावें:—

१. मूली और दही	२. मूली व दूध
३. दूध व निंबू	४. दूध व छाछ
५. दूध व खटाई	६ दूध व साग
७. केला व लस्सी	८. खिचड़ी व खीर

२. बहुत भूखमें पानी से ही पेट न भरें, वरना जलोदर हो जाने का डर है।

३. जब तक खाना हज़म न हो, दौड़ना भागना या विषय सेवन करना हानिकर है।

४. बेज़ायक़ा, तबदील ज़ायक़ा, बासा, झूठा, देर का पका हुआ, कम पका हुआ, दुबारा गर्म किया हुआ और जला हुआ खाना कभी न खायें।

—शान्तिचन्द्र जैन!

किस महीने में कौनसी चीज न खावे ?

सावन साग भादों दही,
क्वार करेला कार्तिक मही।
अगहन ज़ीरा पौषे धना,
माहे मिश्री फागुन चना!!
चैते गुड़ बैशाखे तेल,
जेठा पेठा आषाढ़े बेल
इन बारह कर बचे जो भाई,
ता घर वैद्य न सपनेहु जाई॥

ठंडा खाय साये में सोवे।
उसका वैद्य पिछवाड़े रोवे॥

—हरस्वरूप शर्मा, वैद्य
बिजनौर।

सर्वोपयोगी नियम !

१. सुबह सूर्य निकलने के पहिले उठ कर एक या दो मील तक ज़रूर घूमना चाहिये।

२. नित्य प्रति शरीर साफ़ रखने के लिये स्नान ज़रूर करना चाहिये, कारण रात्रि में जो रोमकूपों द्वारा मैल निकलता है उसके साफ़ हो जानेसे शरीर हलका हो जाता है और कोई बीमारी नहीं आती। इसीलिये धर्म शास्त्रों में स्नान करके ही पूजन करना और भोजन करना बताया है।

३. भूख से सदैव कम खावे और जबतक ग्रास में स्वाद रहे यानी खूब चबा कर खाये।

४. नित्य प्रति कुछ फल खाना आवश्यक है, परन्तु बरसात में पत्ती का साग न खावे।

५. बरसात में दिन में सोना हानिकर है।

६. रात्रि में कम जागना चाहिये।

७. कपड़े, जूते तथा छत्री वर्षात में अच्छी है! कपड़ों को साफ़ और सूखे इस्तेमाल करो। गीले होने से बीमारी होने का डर है।

८. मकान बिलकुल साफ और हवादार हो, बदबूदार या कीचड़खाने में रहने की अपेक्षा देहात में रह कर सुखपूर्वक जीवन बिताना अच्छा है।

९. भोजन वस्त्र तथा अपना व्यवहार बिलकुल सरल सच्चा तथा दूसरोंको व अपने को सुख देने वाला हो—आवश्यकतायें बिलकुल सादी हों।

१०. अपने इस्तेमाल में लाने वाली सम्पूर्ण वस्तुयें देशी हों, क्योंकि देशी वस्तुयें ख़रीदने पर देश का माल देश में रहेगा। अपने देश के गरीब लोग पलेंगे और आदमी धन सम्पन्न बनेंगे।

—मुन्नालाल जैन आयुर्वेदाचार्य
मलकापुर (बरार)

श्वास या दमा के रोगी ध्यान दें !

दमा अथवा श्वास की एक ऐसी औषधि जिसकी केवल एक खूराक विधि के अनुसार सेवन करने से यह भयंकर रोग सदा के लिये दूर भाग जाता है, सदा की भांति इस वर्षभी शरद पूर्णिमा तदनुसार सोमवार तारीख २ अक्तूबर १९३३ की रात्रि को रेहवा राज्य की ओर से बिना मूल्य वितरित की जायगी। इसलिये दमा, अथवा श्वास के रोगियों से प्रार्थना है कि वे उपर्युक्त तिथि से एक या दो दिवस पूर्व बरणापुर-रेहवा पहुंच कर औषधि सेवन कर लाभ उठावें।

बरणापुर बहराइच रेलवे स्टेशन बी० एन० डब्ल्यू, आर० से आठ मील पर है। स्टेशन पर सवारियाँ सब प्रकार की मिलती हैं। बाहर से आने वाले सज्जनों की सहायता तथा सुविधा के लिये प्रत्येक ट्रेन पर स्वयंसेवक मौजूद मिलेंगे। आने से एक सप्ताह पूर्व सूचना दे देने से विशेष सुविधा होगी।

ए० प्रसाद, बी० ए०
प्राइवेट सेक्रेटरी, रेहवा राज्य, बरणापुर, बहराइच, अवध।

सवाल नं० १

दिन रात में किसी भी समय सोकर उठने के बाद आँखें उस वक्त तक नहीं खुलतीं जब तक कि पानी से न धोई जावें—आँखों में रेता सा घूमता मालूम होता है और खुश्की भी रहती है। कृपया कोई आसान उपाय लिखिये। यह शिकायत बहुत वर्षों से है। —हरीश्चन्द्र जैन।

—क्षुल्लक दीक्षा—श्री० ब्र० चांदमल जी ने आचार्य शांतिसागर जी से श्रावण शुदी ३ को क्षुल्लक दीक्षा धारण की, आपका दीक्षा नाम नेमकीर्ति जी रक्खा गया है। इस समय आपने २२७२) का संस्थाओं को दान भी दिया।

—देहली—ता० २१।८।३३ को श्री लाल मंदिर जी में आम जलसा में श्री मुनि जयसागर जी के विहार करने की रुकावट दूर करने पर निज़ाम साहब को तथा बा० अजितप्रसाद जी वकील, ख़्वाजा हसन निज़ामी, महाराजा सर किशनप्रसाद वग़ैरा सज्जनोंको कोशिश करके रुकावट दूर कराने के लिये धन्यवाद दिये गये।

—जैनमूर्तियां मिलीं—रियासत धार में एक किसान को हल चलाते समय १२ जैनमूर्तियां मिली हैं। वे बहुत प्राचीन बतलाई जाती हैं।

—२४ दिन से उपवास—दिल्ली में एक श्वे० जैनमुनि आत्मशुद्धि के लिये गत २४ दिनों से उपवास कर रहे हैं।

—इन्दौर के "तिथि दर्पण" में जो भाद्रपद के सोलह कारण व्रत मि० श्रावण शुदी १५ से लगाय आसोज कृ० २ तक के लिखे हैं सो दौज तक के भूल से लिखे गये हैं, भादों सुदी १० तक ही होने चाहियें। अतः जिन २ भाइयों के पास तिथिदर्पण हो कृपया सब सुधार लेवें।

—मैडल बन गये—जिन्हें गत हस्तिनापुर मेले पर मेरी तरफ़ से मैडल देने को कहा गया था वह अपना पता लिखकर मंगालें। —लखूमल जैन, सदर बाज़ार, मेरठ।

—बिना मूल्य—वैदिकधर्म सम्बन्धी व जैनधर्म सम्बन्धी बहुत से पोस्टर हमने प्रचारार्थ छपवाये हैं। जिन्हें आवश्यकता हो मंगालें।

—मैनेजर शास्त्रार्थ संघ, सदर बाज़ार अम्बाला छावनी।

—महात्मा गाँधी बिना शर्त छोड़ दिये गये—एक वर्ष की सज़ा मिलने पर महात्मा जी ने केवल हरिजन सम्बन्धी कार्य करने के लिये जेल में पहिली ही तरह पूरी आज़ादी चाही थी; किन्तु जब वह न मिली तो उन्होंने आजन्म उपवास धारण कर लिया। फलस्वरूप वह बहुत ही कमज़ोर हो गये। आख़िर सरकार ने उन्हें बिना किसी शर्त के जेल से मुक्त कर दिया। अब उन्होंने उपवास समाप्त कर दिया है और उनका स्वास्थ्य सुधर रहा है।

—कृत्रिम गाय—कुछ ही दिनों में एक सार्वदेशिक प्रदर्शिनी होने वाली है, जिसमें न्यूयार्क (अमेरिका) की बनी एक बनावटी गाय भी रक्खी जायगी। यह बिजली-द्वारा बनाई गई है। इसकी विशेषता यह है कि भूसा खाती है, श्वास लेती है आँख और कान हिलाती है तथा रंभाती और दूध भी देती है। किसी अच्छी जाति की गाय की खाल में यह मशीन रक्खी गई है। गाय के उदर में मशीन की क्रिया प्रतिक्रिया कैसे होती है, यह उसका पेट फाड़कर दिखलाया जाता है। मशीन का एक एक पुर्ज़ा इतनी सावधानी से चलता है कि गाय का मुंह, कान, मस्तक, आँख आदि बनावटी अंग नहीं मालूम पड़ते। दुग्ध-दोहन के लिये एक कांच के यन्त्रकी योजना की गई है, जो दूध को खींचता है। लोग इस तरह दूध का निकलना देख सकते हैं। इस गाय का मूल्य लगभग ९,०००) रुपया है।

—मई सन १९३२ ई० के बम्बई के—साम्प्रदायिक दङ्गों में जिन लोगों को जान और माल की हानि हुई थी, उनमें से ८८४ दावा करने वालों में से ५७२ को चीफ़ प्रसीडेंसी मैजिस्ट्रेट ने २०५५९६१) परिशोध दिलाया है। ३१२ दावे अस्वीकार कर दिये गये हैं। दावों की कुल रकम १४६४६७१) रु० थी।

Regd. No. A. 2379

उपहारी टिकिट !   उपहारी टिकिट !

"दर्शन" २॥)

के ग्राहक हो जाने से आपको

बारह आने की पुस्तकें तो अवश्य मिलेंगी

संभव है पांच रुपये की पुस्तकें भी मिल जावें।

'दर्शन' के केवल ४०० ग्राहक होजाने पर

३६० पीले और ४० लाल रंग के उपहारी टिकिट

रक्खे जायँगे ❋

लाल टिकिट पाने वाले सज्जनों को

५) मूल्य की पुस्तकें

—और—

पीले टिकिट वालों को बारह आने की पुस्तकें

* बिना मूल्य भेंट की जायँगी *

यह ४००) की पुस्तकों का उपहार बिजनौर निवासिनी श्री० चम्पादेई जी धर्मपत्नी स्वर्गीय ला० बिहारीलाल जी अपने चतुर्दशी व्रत के उद्यापन में "दर्शन" के सर्व प्रथम बनने वाले उन ४०० ग्राहकों को भेंट करेंगी जो 'दर्शन' का पूरा मूल्य २॥) भेज कर ग्राहक बन जावेंगे।   —प्रकाशक "दर्शन"

मुन्शी [illegible]सिंह ने [illegible] प्रिंटिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रकट किया।

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र ।

श्री जिनाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मि-
र्भास्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो,
भिन्द्यन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥
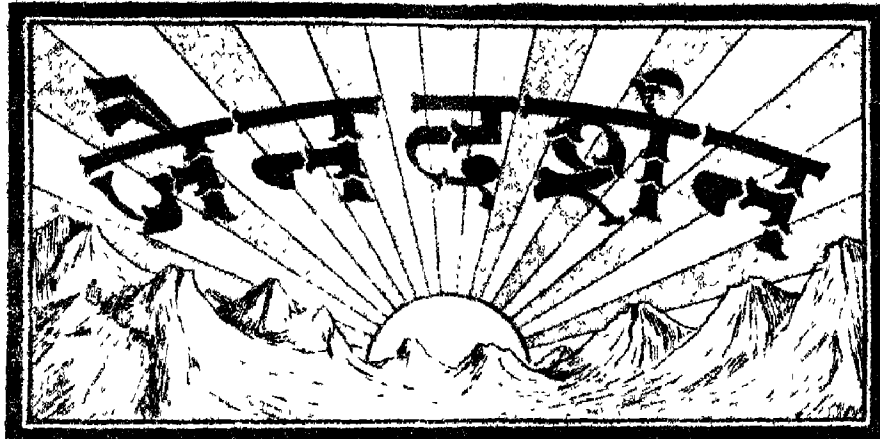
वर्ष १ — अङ्क ५

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी । — ऑनरेरी सम्पादक — पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी ।

सम्पादक जैन गजट की सम्मति—

श्रीमान् पं० किशोरीलाल जी शास्त्री साढूमल स० सम्पादक जैनगजट लिखते हैं कि—जैन समाज को एक ऐसे पत्रकी आवश्यकता थी जोकि जैन, अजैन विद्वानों द्वारा जैनधर्म के प्रतिकूल होने वाले आक्षेपों से जैनधर्म की रक्षा करे और डटकर उनका सामना करे; हर्ष है कि इस आवश्यकता को आज जैनदर्शन ने पूरा कर दिखाया है । जैनदर्शन के तीन अंकों का अवलोकन किया, जिससे कि उसके उद्देश, नीति, ढंग आदिकी हृदय से सराहना करनी पड़ती है । वह समय बहुत समीप दीखता है जब कि जैनदर्शन जैन समाज में पूर्णरूप से व्यापक रूप पा लेगा । जैनदर्शन के कारण मन चले महाशयों के धर्मविरुद्ध आक्षेप हवा में उड़ते फिरेंगे । इस लिये विद्वानों को अपनी अमूल्य सेवाएं जैनदर्शन के लिये भेंट करनी चाहियें एवं श्रीमान पुरुषों को आर्थिक सहायता से जैनदर्शन की जड़ पुष्ट कर देनी चाहिये ।

धर्मानुकूल समाज सेवा के मार्ग में अग्रेसर जैनदर्शन की हम हृदय से उन्नति चाहते हैं और हमारी भावना है, कि इसका प्यारा मोहन रूप अपने यौवन काल में और भी अधिक आकर्षण उत्पन्न करे ।

वार्षिक मूल्य— २॥)   विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के समासदों से— २)

'दर्शन' पर लोकमत !

सिवहारा निवासी श्रीमान् ला० प्रद्युम्नकुमार जी रईस लिखते हैं कि—न जाने, क्यों मुझे शिशु जैनदर्शन से इतना अधिक प्रेम हुआ कि बिना उसका नमूना देखे उसके लिए २॥) का मनीआर्डर कर दिया। धर्मपत्नी की चिकित्सा के लिए हरिद्वार गया था, वहां से आकर २० अगस्त को दर्शन का दूसरा, तीसरा अंक प्राप्त किया। अवलोकन करके मेरे हृदय ने यह निर्णय किया कि जिस कार्य को जैन समाज के अन्य युवा पत्रों ने नहीं किया था उस कठिन कार्य को यह शिशु जैनदर्शन जन्म पाते ही बहुत अच्छे प्रशंसनीय ढंग से करने लगा है। यदि पक्षपात का पर्दा आंखों से हटाकर जैनदर्शन के [illegible]धर्म का मर्म और पं० दरबारी लाल जी शीर्षक लेखमाला को पढ़ा जावे तो सर्वज्ञता सम्बन्धी [illegible] कपूर की तरह उड़ जायगा।

वैसे तो मैं वी० पी० को प्रायः लौटा ही देता हूं किन्तु जैनदर्शन में वह आकर्षण है जिससे आकर्षित होकर मैंने स्वयं वार्षिक मूल्य का मनीआर्डर कर दिया। यह मनोहर पत्र चिरायु होवे, यही भावना है।

श्रीमान् पं० मक्खनलाल जी प्रचारक अनाथालय देहली—हमने जैनदर्शन के दो अंक देखे। अंक तो पहला ही बड़ी खूबी के साथ निकला था, लेकिन दूसरा अंक पहिले से बहुत बढ़ा चढ़ा है। यों तो सब ही लेख अच्छे हैं, किन्तु श्री० बाबू कामताप्रसाद जी, श्री० बाबू माईदयाल जी, श्री० पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ के लेख विशेष उल्लेखनीय हैं। हमें आशा है कि इसके योग्य संपादक श्री० पं० अजित कुमार जी शास्त्री, तथा श्री० पं० [illegible] चन्द्रजी शास्त्री जैन समाज में इसे एक आदर्श धार्मिक पत्र बना देंगे।

श्रीयुत 'आनंद' [illegible]—जैनसमाज में जीवन फूंकने के लिए जिस नयनाभिराम "जैनदर्शन" पत्र का जन्म हुआ है, वह शास्त्रार्थसंघ की अव्याहत शक्ति का अनुरूप है। शास्त्रार्थ संघ ही इस महान यश का श्री गणेश कर सकता था। हम चाहते हैं कि पत्र सफलता में बढ़ता चला जाय। "जैनदर्शन" का सत्यभक्त वही है जो कि जैनदर्शन की ग्राहक संख्या बढ़ाता है।

श्रीमान पं० [illegible] जी शास्त्री [illegible]—जैनदर्शन के तीन अंकों का अवलोकन किया। उनके लेखों में ओज है। दर्शन के उद्देश्य में [illegible] तथा भावना में यौवन झलक रहा है। सचमुच ऐसे ही वेश, रूप और भाव से पूरित पत्र समाज में [illegible] उन्नत युग स्थापित कर सकते हैं। सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं। श्री जिनेन्द्र भगवान के प्रसाद से यह पत्र अमर होवे।

श्रीमान सुजानमल जी सोनी [illegible]—जैनदर्शन ने प्रकाशित होकर इस समय जैनसमाज की एक बड़ी भारी आवश्यकता को पूरा किया है। उसके लेख अच्छे प्रभावशाली और उपयोगी होते हैं। [illegible] पूरा करने के लिये उसमें कूड़ा करकट नहीं भरा जाता। सम्पादन सुन्दरता से होता है। धर्मविरुद्ध [illegible] का प्रतिवाद भी अच्छा रहता है।

श्रीयुत ला० मूलचन्द्र जी किशनगढ़ ने जैन दर्शन की "जैनधर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी" शीर्षक लेखमालापर अपनी सन्तोषजनक शुभसम्मति प्रगट की है कि लेखमाला शब्दाडम्बर से शून्य, [illegible] सरल और अकाट्य युक्तियों से भरी हुई है। इत्यादि।

अभी तक भी वार्षिक मूल्य न भेजने वालों से।

माननीय महोदय ! सादर जुहार।

गत अङ्क में हमने १५ सितम्बर तक भी मूल्य वसूल न होने पर यह अङ्क आपके नाम २॥।=) की वी० पी० द्वारा भेजने की सूचना दी थी। चूंकि गत अङ्क में हम आपसे यह भी बता चुके थे कि वी० पी० भेजने से आपको अथवा 'दर्शन' को ।=) की हानि व्यर्थ ही में उठानी पड़ेगी, इस कारण हमें यह तो आशा होती ही नहीं कि आप जान बूझ कर ।=) की हानि स्वयं उठाने या हमें पहुँचाने को तैयार हैं— यदि आपने हमारी सूचना पढ़ ली होती तो आप भी औरों की भांति २॥) मूल्य का मनीआर्डर तुरन्त भेज कर ।=) का बचत स्वयं करते और यदि दैवात् ऐसे उपयोगी पत्र के लिये २॥) भी खर्च करना आप नहीं चाहते, तो कम से कम)॥। के कार्ड पर इन्कार लिख हमें तो ।=) की हानि से अवश्य बचा[illegible]

इसीलिये, हम यह समझ कर कि संभव है आपने उसको पढ़ा ही न हो, संभव है [illegible] पता गलत होने से वह अङ्क ही आपको न मिला हो अथवा अन्य किसी आवश्यक कारणवश आप [illegible] समय पर मनीआर्डर न भेज सके हों, हम यह अङ्क भी आपके नाम वैसे ही इस आशा से भेज रहे हैं कि आप इस सूचना को पढ़कर अपना वार्षिक मूल्य २॥) मनीआर्डर द्वारा भेज ।=) का लाभ अवश्य उठायेंगे। अन्यथा—

"इस अंक को पढ़ कर तो तुरन्त वापस कर ही देंगे"

यदि आपका २॥) का मनीआर्डर या यह अङ्क हमें १ अक्तूबर तक भी वापस नहीं मिला तो फिर आगामी अङ्क उपहारी पोस्टेज सहित २॥।=) की वी० पी० द्वारा आपके नाम अवश्य भेजेंगे, जिसे आशा है कि आप अवश्य छुड़ा लेंगे।

हमारी इतनी प्रार्थनाओं के बाद भी यदि आपके ज़रा से आलस्य के कारण आपका वी० पी० वापस आया, तो फिर "दर्शन" को जो ।=) की हानि व्यर्थ ही उठानी पड़ेगी, उसके आप ज़िम्मेदार रहेंगे। आशा है आप ध्यान देने की कृपा करेंगे।

विनीत:—प्रकाशक "जैन दर्शन" बिजनौर (यू० पी०)

हार्दिक धन्यवाद !

"जैनदर्शन" के निम्नलिखित प्रेमियों ने 'दर्शन' के ग्राहक बढ़ाने में निम्न प्रकार सहायता दी है:—

(१) बा० कन्हैयालाल जी जायसवाल असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर बादीकुई ने अपने अतिरिक्त २ ग्राहक और बनाये।

(२) बा० चन्दूलाल गोधका, जयपुर ने अपने अतिरिक्त १ ग्राहक और बनाया।

आशा है "दर्शन" के अन्यान्य प्रेमी भी आपका अनुकरण करेंगे। आप लोगों का 'दर्शन-स्टाफ़' अत्यन्त आभारी है।

विनीत—प्रकाशक "जैनदर्शन" बिजनौर (यू० पी०)

जैनदर्शन के नियम

(१) जैनदर्शन का प्रचार और उस पर किये गये आक्षेपों के निराकरणार्थ ही इसका उदय हुआ है।

(२) इसका प्रकाशन हर अंगरेज़ी महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हो जाता है।

(३) इसका वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजने पर २॥) ढाई रुपया है, किन्तु संघ के सभासदों, संस्थाओं और विद्यार्थियों से केवल दो रुपया लिया जाता है। [वी० पी० से पत्र मंगाने वालों को पांच आने की हानि अवश्य रहती है, इसलिये वार्षिक चन्दा कृपया मनीआर्डर से ही भेजिये।]

(४) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २-२ प्रतियाँ "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद विद्यालय भदैनी घाट बनारस" को और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/o 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहियें।

(५) अधूरे लेख नहीं छापे जायंगे, किन्तु स्थान के अनुसार बड़े लेख एक व अधिक संख्याओं में छापे जायेंगे। लेख कागज़ की एक ही ओर शुद्ध, स्पष्ट और सुन्दर लिख कर आने चाहियें।

(६) ग्राहक को अपना नाम और पूरा पता साफ़ २ लिखना चाहिये जिससे पत्र पहुँचने में गड़बड़ी न हो। अन्य पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये -)॥ के टिकिट या जवाबी कार्ड आना आवश्यक हैं।

(७) विज्ञापन के रेट बहुत कम रक्खे गये हैं, तथा स्थायी विज्ञापन दाताओं को विशेष सुविधायें रक्खी गई हैं। विशेष पत्रव्यवहार से मालूम कीजिये।

सर्व प्रकार के पत्रव्यवहार का पता :—

मेनेजर—"जैन दर्शन" C/o दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

"श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला" की प्रचार योग्य पुस्तकें।

(१) जैनधर्म परिचय—पृष्ठ सं० ५० मूल्य -)॥
(२) जैनधर्म नास्तिक मत नहीं है „)॥
(३) क्या आर्यसमाजी वेदानुयायी हैं " -)
(४) वेदमीमांसा—पृष्ठ सं० ६८ „ =)
(५) अहिंसा—पृष्ठ सं० ५२ „ -)॥
(६) ऋषभदेवजी की उत्पत्ति असंभव नहीं है! पृष्ठ सं० ८४ „ ।)
(७) वेद समालोचना पृष्ठ सं० १२४ „ ।=)
(८) आर्यसमाजियों की गप्पाष्टक मूल्य)॥
(९) सत्यार्थ दर्पण—पृष्ठ सं० ३५० „ ॥।)
(१०) आर्यसमाज के १०० प्रश्नों का उत्तर =)
(११) क्या वेद भगवद्वाणी है? मूल्य -)
(१२) आर्यसमाज की डबल गप्पाष्टक „ -)
(१३) दिगम्बरत्व और दिग० मुनि सचित्र १)
(१४) आर्यसमाज के ५० प्रश्नों का उत्तर =)
(१५) जैनधर्म संदेश मूल्य -)

मिलने का पता :—मन्त्री चम्पावती पुस्तकमाला, अम्बाला छावनी।

वर्ष १ | असौज कृष्णा १२—श्री 'वीर' नि० सं० २४५९ | अङ्क ५
बिजनौर, तारीख १६ सितम्बर, १९३३ ई०

'दर्शन-तत्व'

[१]

निश्चय है जड़ या कि जीव है
यदि सत्ता भारी अजीव है
तो फिर शव सा पड़ा हुआ तू
खोद रहा क्यों बुद्धि नींव है

[२]

जीवन तत्व किया तू भक्षण
यह तो नहीं जीव का लक्षण
मानवता से विरक्त हो कर;
रखता है अनुरक्ति विलक्षण

[३]

कान बन्द कर, सब कुछ सुनना
हास, नाश, अंत पर सिर धुनना
जीवन का उपयोग नहीं यह
समुचित तुझको है 'पथ' चुनना

[४]

ज्ञानाज्ञान निहित अभ्यन्तर
आम अदर्शनीयता अन्तर
तज जग की माया सर्पिणिका,—
'दर्शन तत्व' विलोक निरन्तर

कल्याणकुमार 'शशि'

भगवान महावीर का अविनय !

अभी कलकत्ते में जापानसे कई हज़ार टाइलें (फर्श वाली चीनी ईंटें) आई हैं जिन पर पूज्य भगवान महावीर स्वामी और पूज्य गौतम गणधरके चित्र बने हुए हैं। ईंटों को हमने स्वयं अभी तक नहीं देखा, किन्तु बाज़ार में जो भगवान महावीर स्वामी एवं गौतम गणधर के चित्र बिकते फिरते हैं, उनसे जान पड़ता है कि चीनी ईंटों पर भी वे ही वस्त्र आभूषणधारी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मान्य स्वरूप वाले चित्र इन ईंटों पर अङ्कित होंगे।

ये ईंटें या तो मकानों में फर्श लगने के काम लाई जायेंगी अथवा मकान की दीवालों में लग सकेंगी। दोनों ढंग से जैनसमाज के परमपूज्य परमेष्ठियों का घोर अविनय होगा। हृदय रखने वाला पुरुष इस अविनय को सहन नहीं कर सकता। यदि जैनसमाज इस अविनय का प्रतिकार न कर सके तो समझना चाहिये कि संसार में जैनसमाज का असीम पतन हो चुका है। उसका स्वाभिमान, कर्तव्यनिष्ठा, धार्मिक जोश और बुद्धि किसी ओर किनारा कर गई है, इस कारण इसका ज़ोरदार प्रतिवाद होना चाहिये।

यह प्रतिवाद यदि श्वेताम्बर समाज की ओर से चित्रप्रकाशन के समय ही हो जाता तो इस अविनय की नौबत न आती। दिगम्बर समाज को भी यह घोर अविनय अच्छी तरह अनुभव करना चाहिये क्योंकि नाम पूज्य जैन तीर्थंकर और गणधर का है।

तथा उन चित्रप्रकाशक जैन सज्जनों को भी इस घटना से कुछ शिक्षा ग्रहण करनी होगी, जो कि पूज्य महात्माओं के तथा तीर्थङ्करदेव के फ़ोटो, कल्पित चित्र प्रकाशित किया करते हैं—उनकी यह चेष्टा धर्म का इतना घोर अपमान करा सकती है।

हमारे कुछ मनचले महाशय पूज्य बाहुबली का चित्र अंगूठी तथा होल्डरों में जड़वा कर बेचते हैं। संभव है कि वे इस प्रकार कुछ आर्थिक लाभ कर लेते हों, किन्तु उनका यह आर्थिक लाभ धर्म का बहुत भारी अविनय कराता है। अतएव ऐसे चित्रों व फोटुओं का प्रकाशन और विक्रय बन्द कर देना चाहिये।

श्वेताम्बर समाज में जागृति !

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में कल्पसूत्र, आचारांग सूत्र, भगवतीसूत्र आदि ४५ सूत्रग्रंथ प्रामाणिक आगम ग्रंथ माने गये हैं। उनकी पवित्रता एवं पूज्यता कायम रखने के लिये श्वेताम्बर साधु उन आगम ग्रन्थों का स्वाध्याय श्वेताम्बर गृहस्थों को नहीं करने देते—उनके अध्ययन का अधिकार साधुओं तथा यतियों के लिये रिज़र्व रक्खा है। यदि कोई गृहस्थ उन सूत्र ग्रंथों का स्वाध्याय करे तो उनके कथनानुसार वह गृहस्थ अनुचित कार्य करता है जिससे कि वह अनंत संसारी हो जाता है; इत्यादि।

इसी कारण अब तक भाद्रपद में पर्युषण के समय प्रायः सब जगह कल्पसूत्र को यति या साधु ही पढ़ा करते हैं, किन्तु हर्ष है कि अब श्वेताम्बर समाज जागृत हो गया है और उस के विद्वान उपर्युक्त भयानक विधान से डरते नहीं। तदनुसार वे अब कल्पसूत्र का स्वयं स्वाध्याय करने लगे हैं।

मुलतान में श्रीयुत पं० ईश्वरलाल जी एक सद्गृहस्थ नवयुवक श्वेताम्बरी सज्जन हैं। इस वर्ष मुलतान में किसी यति जी के न पहुँचने पर आपने ही कल्पसूत्र पढ़ कर सबको सुनाया। इस कार्य के लिये आपको बधाई है।

कुछ जनता की जो यह धारणा है कि श्वेताम्बरीय सूत्रग्रंथोंमें अनेक प्रमाणविरुद्ध, सिद्धान्त-प्रतिकूल, असंभव बातें विद्यमान हैं, उन बातों का परिचय साधारण जनता को न हो जावे, इसी कारण गृहस्थों को सूत्रग्रंथों के स्वाध्याय करने के अधिकार से वंचित कर रक्खा है, उसका अब निराकरण हो जायगा।

सबसे अच्छी बात यह होगी कि श्वेताम्बर श्रावकों को अपने आगम ग्रंथों की प्रामाणिकता, अप्रामाणिकता के निर्णय करने का सुअवसर प्राप्त होगा—सिद्धान्त के नाम पर असत्य, कल्पित बातों को अमान्य ठहराने का मौका मिलेगा।

केसरिया जी तीर्थ का असत्य इतिहास !

अभी छोटी सादड़ी (मेवाड़) के सद्गुण प्रसारक मंडल ने चंदनमल नागोरी लिखित केसरिया जी का तीर्थ इतिहास नामक पुस्तक प्रकाशित की है। उसको मंगा कर देखा तो दुःख हुआ कि लेखक ने असत्य बातों का उल्लेख करके इतिहास का नाम दूषित किया है। दिगम्बर जैन मंदिर को श्वेताम्बरीय मंदिर सिद्ध करने के लिये असली इतिहास पर पर्दा डालने का उद्योग किया गया है।

मूलनायक श्री भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा दिगम्बर है। उसके नीचे दिगम्बर सम्प्रदाय के मान्य १६ स्वप्न खुदे हुए हैं, प्रतिमा के दोनों ओर दिगम्बर साधुओं की मूर्तियां अङ्कित हैं, मूलमंदिर को प्रतिष्ठित कराने, कोट आदि मुख्य २ मंदिर के भागों को दिगम्बर सेठों द्वारा बनवाने के जो अनेक ऐतिहासिक शिलालेख हैं जिनसे कि यह मंदिर ऐतिहासिक रूप से दिगम्बरी सिद्ध

होता है, लेखक ने उन सभी सत्य ऐतिहासिक बातों को छोड़ दिया है।

इस असत्य इतिहास का खंडन तो जैनदर्शन के तीसरे अङ्क से ही हो जाता है तथा आवश्यकता होने पर फिर भी किसी समय इस पुस्तक को असत्य प्रमाणित कर दिया जायगा किन्तु प्रसंग वश यहां पर यह लिख देना आवश्यक दीखता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनेक महानुभावों ने पहले ज़माने में ओसवाल जाति की उत्पत्ति, संघ-भेद का कारण, आदि अनेक ऐतिहासिक बातों को अपनी प्राचीनता सिद्ध करने के लिये कल्पित बातों से इतिहास का रूप देकर ऐसा बिगाड़ा है कि इतिहास का नाम ही दूषित कर दिया है।

वही पुराना ढंग इस ज़माने में भी अनेक श्वेताम्बरी सज्जन चला रहे हैं, यद्यपि ऐसी असत्य चेष्टा सत्य इतिहास का रूप नहीं पा सकती किन्तु कुछ अनभिज्ञ लोगों को भ्रम में अवश्य डाल सकती है तथा इतिहास का नाम बदनाम कर सकती है। अस्तु।

जैनदर्शन उन सारे कल्पित इतिहासों का खोखलापन खोल दिखलावेगा और अपने उल्लिखित सत्य इतिहास की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये श्रीमान माननीय जिनविजय जी सरीखे निष्पक्ष श्वेताम्बर विद्वानों को सादर निमंत्रण देगा।

दिगम्बर जैन साहित्य के उद्धार की एक योजना !

[ले०—बा० हीरालाल जैन एम. ए., एलएल. बी., संस्कृत प्रोफेसर, किंग एडवर्ड कालेज, अमरावती (बरार)]

गत बारह वर्ष से मैं जैन साहित्य का अध्ययन कर रहा हूं। इस अध्ययन से मुझे दिगम्बर जैन साहित्य के सम्बन्ध में जिन बातों का अनुभव हुआ है उनका सार संक्षेप में इस प्रकार है—

१. दिगम्बर जैनियों का संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी साहित्य अत्यन्त प्राचीन, विस्तृत और महत्वपूर्ण है।

२. उक्त साहित्य के जितने ग्रन्थ अभीतक प्रकाशित हुए हैं उनसे बहुत अधिक ग्रंथ अभी प्राचीन भण्डारों में अज्ञात और अप्रकाशित पड़े हुए हैं।

३. इन अप्रकाशित ग्रन्थों में बहुत से ग्रंथ ऐसे हैं जो भाषा और विषय की दृष्टि से इस देश में अद्वितीय हैं।

४. इन ग्रन्थों के पठन-पाठन की प्रथा तो अब बन्द है ही, उनकी नई प्रतियां भी अब तैयार कराने का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं है। जो कापियां की भी जाती हैं वे लेखकों के विषय, भाषा और लिपि सभी बातों से अनभिज्ञ होने के कारण बहुत अशुद्ध

तैयार होती हैं और पुरानी प्रतियाँ जीर्ण-शीर्ण होकर जल्दी २ नष्ट भ्रष्ट हो रही हैं। इसलिये इन ग्रंथों का आगे शुद्ध और पूर्ण रूप से उद्धार होने का कार्य दिनों दिन कठिन होता जा रहा है।

५. जो ग्रन्थ अभीतक प्रकाशित हुए हैं उनमें ऐसे बहुत ही कम हैं जिनका सम्पादन भाषा की दृष्टि से सूक्ष्म विचार द्वारा किया गया हो, विषय की दृष्टि से सर्वाङ्गपूर्ण हो तथा मुद्रणकला की दृष्टि से सुन्दर और हृदयग्राही हुआ हो। इसलिये संसार के विद्वत्समाज में इन ग्रंथों का आदर उनकी योग्यता की अपेक्षा बहुत ही कम है और विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में पढ़ाये जाने के योग्य सुप्रकाशित ग्रंथ दृष्टि में नहीं आते।

६. उपर्युक्त दुरवस्था का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि अभी तक दिगम्बर जैन समाज ने साहित्य प्रकाशन के महत्व को पूर्ण रूप से नहीं समझा और इसलिये इस ओर कोई सुदृढ़ और व्यापक योजना नहीं की। समाज में धर्मसेवा और उन्नति की भावना की कमी नहीं है। धार्मिक और सामाजिक कार्यों में प्रति वर्ष समाज के विपुल धन और अपरिमित शक्ति का व्यय होता है। किन्तु दुर्भाग्य से इस सर्वोपरि प्रधान और उपयोगी कार्य की ओर समाज उदासीन है। कदाचित् उसे इस बात का ध्यान भी नहीं है कि प्रत्येक धार्मिक समाज का जीवन-रस, यश और बल उसके प्राचीन साहित्य पर ही निर्भर है। प्राचीन प्रतिमायें खण्डित हो जाने पर नई प्रतिष्ठित हो सकती हैं, पुराने मन्दिर जीर्ण होकर गिर जाने पर उनकी जगह नये खड़े किये जा सकते हैं, धर्म के अनुयायियों की संख्या कम हो जाने पर कदाचित् प्रचार द्वारा संख्या बढ़ाई जा सकती है, किन्तु प्राचीन आचार्यों के जो शब्द ग्रन्थों में ग्रथित हैं उनके एक बार नष्ट हो जाने पर उनका पुनरुद्धार होना असम्भव है। इसी लिये अन्य धर्मों के अनुयायी अपने प्राचीन साहित्य के छोटे से छोटे खण्डों को खूब उत्तम रीति से प्रकाशित कर रहे हैं। इस कार्य में श्वेताम्बर समाज ने दिगम्बर समाज की अपेक्षा अधिक कार्य किया है। अतएव प्रत्येक दिगम्बर धर्म के अनुयायी तथा जैन साहित्य के प्रेमी का इस महत्वपूर्ण कार्य में योग देना आवश्यक है।

७. उपर्युक्त क्षति की पूर्ति के लिये मैं निम्न लिखित योजना प्रस्तुत करता हूं। आशा है समाज के हितचिंतक उस पर अपना मत प्रगट कर उसे कार्य में परिणत करने में सहायक होंगे:—

मण्डल की स्थापना।

१. एक मण्डल की स्थापना की जाय, जिसका नाम 'दिगम्बर जैन साहित्योद्धारक मण्डल' हो।

२. इस मण्डल का ध्येय समस्त दिगम्बर जैन साहित्य को उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा उत्तम रीति से सम्पादित करा कर शुद्ध और सुन्दर रूप में यथा शक्य शीघ्र प्रकाशित कराने का हो।

३. मण्डल का संगठन निम्न प्रकार का हो:—

(क) अधिकारी वर्ग—इसके सदस्य वे सज्जन होंगे जो मण्डल को एक निश्चित रकम या उससे ऊपर की सहायता देंगे तथा जो किसी विशेष सहायता के उपलक्ष में इस वर्ग द्वारा चुने जायँगे।

(ख) **कार्यकारिणी समिति**—इस में मण्डल के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, मंत्री और प्रधान सम्पादक होंगे।

(ग) **सम्पादक समिति**—इसके निम्न विभाग होंगेः—

(१) संस्कृत विभाग (२) प्राकृत विभाग
(३) हिन्दी विभाग (४) इतर भाषा विभाग
(५) नूतन साहित्य निर्माण विभाग।

(घ) **सदस्य वर्ग**—इस में वे सज्जन होंगे जो निश्चित वार्षिक चन्दा मण्डल को देंगे।

४. मण्डल की कार्यकारिणी समिति का निर्माण करना तथा मण्डल के अन्य उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों का निर्णय करना अधिकारी वर्ग का कर्तव्य होगा।

५. मण्डल के ध्येय को सुचारु रूप से पूर्ति करने का भरसक प्रयत्न करना कार्यकारिणी समिति का कर्तव्य होगा।

६. सम्पादन व मुद्रण सम्बन्धी समस्त बातों का प्रबन्ध करना सम्पादक समिति का कर्तव्य होगा।

७. मण्डल के प्रत्येक सदस्य को मण्डल की रिपोर्ट आदि बिना मूल्य पाने तथा मण्डल द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों को रियायती मूल्य से खरीद सकने का अधिकार होगा।

अभिप्राय

इस अपील और योजना से मेरा अभिप्राय कोई छोटी मोटी ग्रन्थमाला स्थापित कराने का नहीं है। यों तो कुछ ग्रन्थमालायें इस ओर अपने २ ढंग का कार्य कर ही रही हैं। मेरा अभिप्राय एक ऐसा विशाल आयोजन उपस्थित करने का है जिसके द्वारा दिगम्बर साहित्य के कम से कम प्रधान ग्रंथ, समान उत्तम ढंग से प्रकाशित होकर, एक जीवन के भीतर ही भीतर देखने को मिल जायँ। अनेक विद्वानों ने समय समय पर यह अभिलाषा प्रकट की है कि क्या ही अच्छा हो यदि वीर प्रभु का समस्त शासन अपने पुस्तकालय में एक जगह रखने को मिल जाय। क्या इस अभिलाषा की पूर्ति दुःसाध्य है? यदि समाज के धनिकों और विद्वानों का सहयोग मिल जावे तो यह कार्य सिद्ध होना बहुत कठिन नहीं है। मण्डल की स्थापना के लिये उपर्युक्त स्कीम कुछ पूरी नहीं है, दिग्दर्शन मात्र है।

मैं पत्र सम्पादकों, लेखकों, भण्डार-संरक्षकों, ग्रंथमालाओं के संचालकों, धनिकों और अन्य विद्वानों को इस योजना पर मत प्रगट करने के लिये आग्रहपूर्वक निमन्त्रित करता हूं। यदि आशाजनक उत्तर मिला तो योजना को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा।

कृपया अपना मत उपरोक्त पते पर निम्न पतेपर यथाशक्ति शीघ्र भेजिये।

सं० अभिमत—श्रीमान बा० हीरालाल जी का विचार बहुत आवश्यक और उत्तम है, क्योंकि दिगम्बर जैन साहित्य का प्रकाश आना दिगम्बर जैन समाज के अभ्युत्थान का मुख्य कारण है। "अंधकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है; है वह मुर्दा जाति, जहाँ साहित्य नहीं है" कविकी यह उक्ति बिलकुल ठीक है। इस कारण प्रोफ़ेसर साहिब की स्कीम को अवश्य शीघ्र कार्यरूप में परिणत करना चाहिये।

जैनजगत का ब्रह्मचर्य !

[गताङ्क से आगे]

इसके आगे जैनजगत मोदी जी के लेख द्वारा स्त्रियों के अप्राकृतिक मैथुनविधि का विधान करते हुए लिखता है—

"उन सबको तृप्त करना राजा के लिये असंभव था इसलिये उन स्त्रियों ने भी तरह तरह के उपाय निकाले थे। अप्राकृतिक मैथुन (धातु के कृत्रिम लिंग, कंद, मूली, केला, कद्दू के द्वारा तथा पुरुष की कृत्रिम मूर्ति के साथ तथा पुरुष वेश में स्त्री के साथ) का खूब प्रचार था। तथा वे अन्तःपुर की विश्वस्त दासियों द्वारा नागरिकोंको स्त्री के वेश में लोभ दिला कर बुलवाती थीं और उनसे मैथुन करती थीं। प्रकट तौर से भी अन्तःपुरों में व्यभिचार होता था।"

रसीले कामी युवकों को जैनजगत तथा मोदी जी का कृतज्ञ होना चाहिये कि वे ब्रह्मचर्य के नाम पर स्त्री पुरुषों की पवित्र कामवासना को तृप्त करने के लिये प्राकृतिक, अप्राकृतिक सभी प्रकार की सरल से सरल तदबीरें उनके सामने रख रहे हैं। जैनसमाज की सेवा करने का यह आदर्श ढंग और चारित्रसुधार का यह अनुपम मार्ग जैन-जगत के ही योग्य है। ब्रह्मचर्य के प्रचार के लिये ऐसे उल्लेख जैनजगत को अवश्य करने चाहियें।

कुछ दूर चल कर आप महाभारत के उल्लेख से नारायण कृष्ण के परिवार पर कलङ्क लगा कर लिखते हैं कि—

"महाभारत में लिखा है कि (भगवान) कृष्ण के पुत्र साम्ब ने अपनी विमाताओं के साथ संभोग किया, जिस पाप के कारण उसे कुष्ठ रोग हो गया। इससे मालूम होता है कि श्रीकृष्ण की हज़ारों पत्नियाँ कितनी पतिव्रता और सती होंगी जो कि अपने पुत्र तक से व्यभिचार करने में न शर्माती थीं। महाभारत के अधिकांश प्रसिद्ध व्यक्ति ऋषि, महर्षि इंगलैंड के विचक्षण कूटनीतिज्ञ प्रधानमंत्री मि० लायड-जार्ज के समान व्यभिचार से पैदा हुए थे। जैनियों के पुराणग्रन्थों में भी ऐसे चरित्र कुछ कम नहीं हैं।"

एक ऐतिहासिक महापुरुष को कलंकित करने के लिये लेखक ने कैसा अच्छा निर्लज्ज ढंग पकड़ा है। जनसमाज को ब्रह्मचर्य का शुभ संदेश सुझाने के लिये उन्होंने जैनपुराण ग्रंथों को दृष्टि से ओझल करके, जहा कहीं से भी उन्हें व्यभिचार लीला का उल्लेख मिला है जैनजगत में लिख दिखाया है। 'जैनग्रन्थों में भी ऐसे व्यभिचार वर्णन हैं' यह लेखक का जैनग्रंथों के लिये आदर्श भक्ति-भाव है—'जैन सपूत' ऐसे ही होने चाहियें। एक कहावत है कि 'अन्धे को सारा संसार अंधा ही नज़र आता है', पता नहीं यह कहावत लेखक पर कहां तक चरितार्थ होती है? या कुछ और रहस्य है?

आगे चलकर लेखकने जो आदर्श सती सीता के विषय में अपनी निन्द्य कालिमा प्रगट की है, पाठक महानुभाव उसको हृदय थाम कर पढ़े—

"रावण यदि वास्तव में धर्महीन नीच जन्तु था तो ऐसा कौन बेवकूफ़ होगा जो कि इस बात पर विश्वास करे कि सीता उसके यहाँ इतने दिन रहकर अछूती बची होगी ? नित्य प्रतिकी घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि कैसी भी सती स्त्री हो, बदमाशों के हाथ में वह कभी भी अछूती नहीं बच सकती। जनता में सीता के सतीत्व के सम्बन्ध में जो प्रवाद फैला था, वह वास्तव में झूठा नहीं मालूम होता।"

हमारे विचार से लेखक और सम्पादक जैन-जगत तथा सम्भव है कुछ उनके इने गिने मित्रों के सिवाय प्रायः सारा संसार बेवकूफ ही है जो कि सीता को अभी तक आदर्श सती मानता है। लेखक का हृदय कितना स्वच्छ है वह कितना सत्य लेखक है कि सीता पर व्यभिचार का कलंक थोपकर चुप रह जाता है। उसकी कृष्णमुखी लेखनी सीता के सतीत्व परिचय वाली अग्निप्रवेश सरीखी घटना को लिखने के लिए टूट जाती है। मक्खी गंदे घाव पर बैठती है और जहां घाव नहीं होता वहां वह घाव बनाने की चेष्टा करती है। ठीक यही हाल जैनजगत और उसके लेखक का है, वह भी सीता सरीखी आदर्श सती में अपनी बुद्धि से व्यभिचार की गंध सूंघता है।

तदन्तर आप रावणकी वकालत करते हैं कि—

"रामायणकर्ता ने सीताहरण के पाप की गठरी जो रावण के ऊपर फोड़ी है वह भी अनुचित है। दूसरों की स्त्रियों को ले भागना तो उस समय का आम रिवाज था और उस में कोई अधर्म नहीं समझा जाता था।"

लेखकने यह बात तो ऐसे लिखी है मानों लेखक भी उस समय कोई ऐक्टिंग पार्ट ले रहे थे। उस आम रिवाज की दश पांच घटनाएं लेखक के दिमाग में अवश्य होंगी, ऐतिहासिक ग्रंथों में तो हैं नहीं। पर-नारी-हरण का उस समय आम रिवाज था या नहीं इसका प्रमाण तो इसी से मिलता है कि रावण की इस निन्दनीय क्रिया से वह जगतप्रसिद्ध, अनन्य महायुद्ध हुआ जो कि इतिहास के सिवाय लेखक के दिमाग में भी न होगा। आम रिवाज होता तो क्या ऐसा भीषण संग्राम होना सम्भव था ?

इतिहास प्रसिद्ध आदर्श व्यक्तियों को लेखक अपनी हार्दिक कालिमा से काला करता हुआ लिखता है कि—

"कुमारावस्था और विवाहितावस्था दोनों अवस्थाओं में अन्य पुरुष से प्रसङ्ग करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री कुन्ती को उन्होंने सती सिद्ध किया है। पांच पतियों वाली द्रोपदी भी सती हो गई है। युधिष्ठिर सरीखे जुआरी को धर्मराज बना दिया··· श्रीकृष्ण सरीखा कायर और दुःशील परन्तु कूटनीतिज्ञ राजा, भगवान् बन बैठा।"

जैन समाज ! तेरा सौभाग्य है जो तुझे तेरे एक न्यायतीर्थ विद्वान अपनी सम्पादकी में जैन जगत

के लेखद्वारा मोदी जी से ऐसे मर्म भेदी वाक्य सुना रहा है। सुन; लेखक कहता है कि कोटिशिला का उठाने वाला वीर कृष्ण कायर और दुशील (व्यभिचारी) था, द्रौपदी के पाँच पति थे और एक मात्र पाँडुराजा से गांधर्व विवाह करने वाली युधिष्ठिर की माता कुन्ती कुमार तथा विवाहित अवस्था में अन्य पुरुषों के साथ व्यभिचारिणी थी। कौरवों की कुटिलता में अपने भोलेपन से फंसकर केवल एक बार उनके साथ जुआ खेलने वाला युधिष्ठिर जुआरी था।

विधवा-विवाह निषिद्ध क्यों है, इस विषय में जैन जगत का लेखक अपनी बुद्धि लड़ाता है कि—

"ये पूंजी पति अधिकांश नपुंसक हुआ करते हैं, इस कारण इन्हें हमेशा डर लगा रहता है कि कहीं हमारी सुन्दरी स्त्री दूसरे से न फंस जाय और विष दे हमें न मार डाले और अपने यार से शादी न कर ले। इस भय से किसी अंश में मुक्त होने के लिये उन्होंने विधवा विवाह नाजायज़ कर दिया कि उनके मरने के बाद उनकी स्त्री दूसरा विवाह न कर सके।"

विधवा विवाह को नाजायज़ करार देने वाले धनिक लोग हैं अथवा श्रावकाचारों के रचयिता निःस्पृह, वीतराग, तपोधन मुनीश्वर हैं जिनको कि किसी की पूंजी या खुशामद से कोई सरोकार नहीं, इस बात को जान बूझ कर लेखक हड़प गया। धनिक अधिकांश नपुंसक होते हैं यह भी लेखकने स्वयं किस प्रकार अनुभव किया, यह बात विचारणीय है।

धनिक पुरुषों के लिये लेखक अपनी सभ्य लेखनी को बेलगाम दौड़ाता है कि—

"जैन समाज में भी सीपों से मोती निकालकर बेचने का अत्यन्त हिंसापूर्ण धंधा करने वाले, मिलों में चर्बी और पट्टे के लिये हज़ारों जानवरों की हिंसा कराने वाले, स्त्री का गर्भाशय निकलवा फेंकने वाले, कसाईखानों के ठेकेदार, शराब के ठेकेदार, सेठ लोग संघपति, धर्मवीर, धर्मधीर, सिंघई बने डोलते हैं। यह सब पैसे की लीला है, जिसके द्वारा वे मंदिर बनाकर, रथ चलाकर, विद्यालय स्थापित कराकर, उदासीनाश्रम बनवा कर, कांग्रेस में पैसे देकर, समाज को रिश्वत देते हैं, भगवान को रिश्वत देते हैं।"

जैनजगत सरीखा स्वतन्त्र पत्र मिले, फिर बिना शिर पैर की बातें हांक देने में लेखक कमी क्यों रक्खे। जैन सेठ कसाईखाने के ठेकेदार, शराब के ठेकेदार हैं, हज़ारों जानवरों की वे अपनी मिलों के लिये हिंसा कराते हैं और अपने पापों को छिपाने के लिये मंदिर, विद्यालय आदि बनवा कर समाज को ही नहीं भगवान को भी रिश्वत देते हैं, इत्यादि चाहे जो कुछ कहालो। लिहाज़ का पर्दा ज़रा सा मुख से हटना चाहिये। लेखक यदि चमड़े के बूट पहिनता है तो वह भी बीसों जानवरों को अपने लिये मरवाता है। यदि पुस्तकें बेचता है तो कागज़, सरेस के बेलन आदि के लिये घोर हिंसा कार्य कराता है। अन्तर सिर्फ़ इतना है कि समाज को रिश्वत न दे सकनेके कारण उपाधि न पाने का उसे डाह है।

इत्यादि और भी बहुत कुछ इस लेख में

हेमचन्द्र जी मोदी ने (संभवतः नाथूराम जी प्रेमी के सुपुत्र ने) बहुत अनापसनाप लिख मारा है।

वाचक महानुभाव स्वयं अनुभव करें कि लेखक का अभिप्राय इस उच्छृङ्खल लेख से समाज में पशुओं सरीखी किस पवित्र प्रणाली को चलाने से या उसको समीचीन सिद्ध करने से है।

संपादक जी ने अपने नोट में लेखक की एक आध बात से असम्मति प्रगट करते हुए प्रायः पूर्ण लेख का समर्थन किया है। आप लिखते हैं कि—

"राम, कृष्ण आदि भाटों से बढ़ाये गये हैं, या बनाये गये हैं या वे स्वयं भी महान थे, ये तीनों कोटियां संशयात्मक हैं।"

रामकृष्ण आदि का महत्व बलभद्र नारायण होने के कारण, नीति रक्षा का मार्ग बतलाने से, तथा अडिग तपस्वी होकर मुक्ति प्राप्त करने से एवं अन्य असाधारण कार्य करने के कारण निःस्वार्थ, निर्ग्रन्थ आचार्यों ने अपने पद्मपुराण आदि ग्रंथों में यथावसर बतलाया है। उनके दूषित कार्यों पर भी किसी लिहाज़वश परदा नहीं डाला, नरकगामी को स्वर्गगामी नहीं बतलाया। फिर आपका मुख है कि आप ऐसे प्रातः स्मरणीय, जगतपूज्य आचार्यों को भाट सरीखा विशेषण दे दीजिये। आपकी श्रद्धा जब जैनधर्म में यहां तक प्रशंसनीय है कि भगवान पार्श्वनाथ से पहले जैन-धर्म का अस्तित्व ही आपको स्वीकृत नहीं फिर राम, कृष्ण आदि के विषय में आपको संशय हो, यह कौन सी बड़ी बात है ?

जैनजगत जैनसमाज का एक पत्र होकर जैन-धर्म तथा जैनसमाज का कितना भारी हितसाधन कर रहा है, इसका थोड़ा सा नमूना इस लेख में विद्यमान है। अपने महान पूर्वजों के लिये जो मर्मभेदी, असत्य निन्दक वचन हम किसी अजैन से भी नहीं सुन सकते, वह आज जैन नामधारी विद्वान से सुन रहे हैं।

जयतु जिन दर्शनं !

(राग-शंकरा झपताल)

जयतु जिन शासनं ! जयतु जिनदर्शनं !! ॥ध्रु०॥

आदिजिन—सन्मती, सिद्धगण मोक्ष में।
सुरत सद्ध्यान में करत तव चिंतनं ॥ १ ॥

आदि तुझको न है, मध्य ना अंत है।
करत चिरसुखद तू शुद्धमत मंडनं ॥ २ ॥

सूर्य की प्रखरता, चन्द्रसम शीतता।
पूर्ण गांभीर्यता धारयसि सद्गुणं ॥ ३ ॥

वेद में चमकता, विश्व में प्रगटता।
साङ्ख्य अरु बौद्ध मत करत झट खंडनं ॥ ४ ॥

पूर्ण मिथ्यात्वतम विश्व को व्यापता।
देखते भागता तेजयुत आननं ॥ ५ ॥

राग ना द्वेष तव रूप में झलकता।
वसत है शांतता पूर्ण सुख कारणं ॥ ६ ॥

शांत मुख से अहा ! झरत नित है सुधा।
प्राशते होत हैं अमर नरजीवनं ॥ ७ ॥

अतुल तव शक्ति, दृढभक्त भवि जीव को।
करत भवमुक्त कर कर्म-उच्चाटनं ॥ ८ ॥

सच्चिदानन्द में मग्न करता है तू।
ध्यात है 'बालसुत' सतत दे दर्शनं ॥ ९ ॥

—बालसुत

जैनसमाज के महारथियों से !

[ले०—पं० प्रवीणचन्द्र जी शास्त्री]

संसार की प्रगति तुम से छिपी नहीं है। रात दिन स्वाधीनता और पराधीनता में, पुण्य और पाप में, न्याय और अन्याय में, शासक और शासित में, ढोंग और वास्तविकता में, तथा पूंजी और मज़दूरी में जो घोर संघर्ष चल रहा है उसके प्रभाव से तुम लोग बच सको यह असम्भव है—झूठी कल्पना है।

इस संघर्ष में वे ही जातियां और समाज ज़िन्दा रह सकते हैं जिनके जीवन में जागृति हो, शोध की कसक भरी कामना हो तथा काम करने की अमिट भावना हो। केवल पाशविक बल—दमन—के द्वारा जो जाति अपना मान और गौरव रखना चाहे उसके लिये मर जाना ही श्रेयस्कर है। वह तो मनुष्य जाति की उन्नति में भयंकर रोड़ा है, एक तीव्र विशाक्त कीड़ा है।

यह संघर्ष भलाई के ही लिये है। यह इस समय हो रहा है यह और भी अच्छा है। सदियों का जो कूड़ा करकट घर और बाहर जमा हो रहा है उसको साफ़ करने के लिये 'वर्तमान' से अच्छा अवसर कब आयेगा ?

जैनों का अस्तित्व है या नहीं ? यह प्रश्न सन्देह भरा है पर साथ ही दुख भरा भी है। विश्व-प्रेम का आदर्श अपने सामने रखने वाले समाज का यह दुरवस्थापूर्ण भीषण दृश्य किस सचेता को न खलेगा ? क्या हुआ ? ऐसा पतन, और ऐसी आत्म-विस्मृति क्यों हो पाई ?

जयपुर जैनियों का घर कहा जाता है, नगर कहा जाता है। यहां से भारतीय नहीं तो राजस्थानी जैन जनता बड़ी २ आशाएं रखती है, पर यहां की हालत, सो. वह तो आशावादियों की आशा से भी कोसों परे है। भाई भाई का नहीं, पति स्त्री का नहीं, माता पुत्र की नहीं !

माना संसार विषम और भयावह व्याधि है, इससे जितने जल्दी मुक्त हो सकें उतना ही अच्छा है। पर मुक्ति, किससे मुक्ति ? मनुष्यता से। तो फिर क्या पशुता से प्रेम होगा ? इस भ्रम ने, झूठी धारणा ने, बन्धनयुक्त अवस्था को क्या कम कलंकित किया है ! संसार का सम्बन्ध तो वे ही छोड़ सकते हैं, इतना ही नहीं, उन्हें छोड़ देना चाहिये, जिनको जीवन में कुछ करने को नहीं रहा है।

संसार स्वयं एक विषम पहेली है। साधारण जन तो इससे घबरा जाते हैं, सिहर उठते हैं, भागने की चेष्टा करते हैं, व्यर्थ के कायक्लेश से अपनी शक्तियों को कुण्ठित बनाते हैं। पर यह स्वयं सदा अपूर्ण है। यहां किसी न किसी रूप में काम करने को क्षेत्र रहता ही है। इस समय इस भ्रम को फैलाना बुरा है—बड़ा बुरा है।

जैनियों में महारथी हो, लड़ने में शूर हो। गालियाँ देने वालों में अद्वितीय हो, पर इससे नाश किसका होता है, सम्भव है तुम्हें व्यक्तिगत रूप से लाभ पहुँचता हो, पर तुम्हारे पालन करने

वाले समाज का तो सर्वनाश होता जा रहा है। तुम्हें अपने महारथीपन पर लज्जा नहीं आती!

अल्पसंख्यक समाज तो हिलजुल कर प्रेम, सहानुभूति और संगठन से स्वयं एक बड़ी शक्ति बन जाया करते हैं। पारसी तुम्हारे सामने हैं, ९५ प्रतिशत शिक्षित, सब समृद्ध अवस्था में, एक दूसरे की सहायता को सदा तत्पर। तुम्हें ही आज यह क्या कुबुद्धि उत्पन्न हुई है, धर्म-रक्षा, वह तो यों नहीं हो सकती, समझ रखो।

धर्म भावना का विषय है, हृदय की अनुभूति है, आत्मा की उज्वल आभा है, वह यों वितंडावाद में प्राप्त हो सकता है क्या? त्याग का स्वरूप उस की परिभाषा से समझ में आ सकता है क्या? चाहते हो धर्मरक्षा हो, स्वयं अपना मुंह बन्द करो, अपने आचरणों को उज्वल बनाओ, अपने प्रेम का सिक्का जमाओ, नहीं तो यह ढोंग है, दिखावा है, आडम्बर है।

सांसारिक उन्नति बुरी वस्तु नहीं है। यह भी आत्मयोग का ही सुन्दर परिणाम है। यदि चाहो तो मोहरहित होकर इसे प्राप्त कर सकते हो, फिर इससे भौतिक आवश्यकता भी पूरी कर सकते हो। संसार में ममत्व क्यों रखते हो, इसे कर्मक्षेत्र समझ लो। यहां काम करना दूसरे को दान समझ लो, सब झगड़ा निमट जायगा।

तुम्हें किसी की बात बुरी लगती है, कड़वी लगती है, उसका उत्तर दिये बिना तुमसे रहा नहीं जाता, तुम समझते हो उसका नतीजा अच्छा नहीं होगा, अपना मन्तव्य सुनाओ और बड़ी ज़ोरदार भाषा में तथा स्थायी आवेश में। पर असभ्य न बनो, व्यवहार स्पष्ट और खरा रक्खो। किसी का नाम देकर किसी बात का विरोध करना व्यक्तिगत द्वेष और विरोध कहलाता है, किसी सिद्धान्त का प्रतिवाद करना सिद्धान्त प्रेम और उन्नति की कामना कहलाती है।

तुम्हारे सामने तो और ही बहुत से काम हैं। ज़रा आत्म-विश्वास रक्खो, शिक्षा के क्षेत्र में कूद पड़ो, विज्ञान की शोध में लगो, सत्य की खोज करो, यदि इनमें अपने आप को लगा दोगे तो इन झंझटों में व्यर्थ समय नष्ट करने को अपने आप छोड़ दोगे।

तुम आर्य समाजियों से शास्त्रार्थ करते हो, मुक़ाबिला करते हो, पर देखो तो वे अपने विचारों के साथ ही हिन्दुओं को और क्या दे रहे हैं? सेवा-अनेक आश्रम, शिक्षा संस्थाएं। इसमें तुमने क्या मुक़ाबिला किया? तुम्हारे पास क्या जवाब है?

आओ हम तुम मिलें और जैनियों की—कम से कम—बेकारी और अज्ञान को हटाने का काम सोचें और करें।

तुम्हें शास्त्रार्थों की ज़रूरत नहीं है, ज़रूरत है सेवा की। क्या तैयार हो?

"दर्शन" के पाँच ग्राहक बनाने वाले सज्जनों को "दर्शन" एक वर्ष तक बिना मूल्य मिलेगा। —प्रकाशक "जैनदर्शन", बिजनौर (यू० पी०)
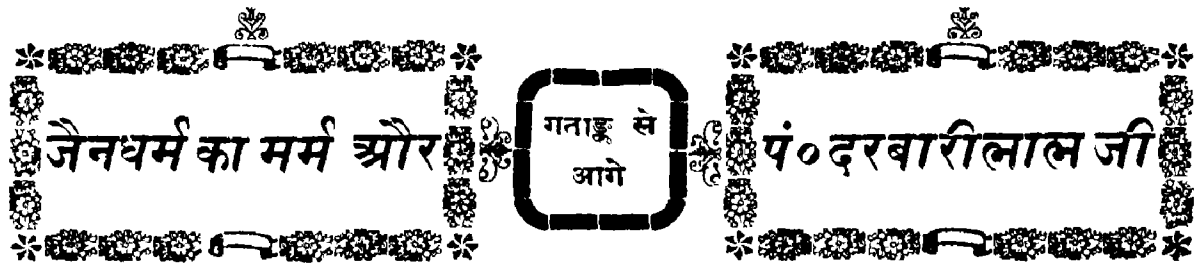
[५]

युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना।

मौजूदा व्याप्ति के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने दूसरी बाधा व्यधिकरण की उपस्थित की है। आपका कहना है कि "दूसरे को प्रत्यक्ष न हो तो हमें अनुमान भी न होगा, इस प्रकार एक आत्मा के ज्ञान का गठबन्धन ज़बरदस्ती दूसरे के साथ करने का कोई कारण नहीं है। इसलिये हमारे अनुमेयत्व से दूसरे के प्रत्यक्षत्व का कोई सम्बन्ध नहीं है"। इस ही के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने एक दृष्टान्त भी लिखा है और वह इस प्रकार है—"एक मकान के भीतर आग लगती है, बाहर से उसका धुआँ देख कर हम अग्नि का अनुमान कर लेते हैं। यहा यह आवश्यक है कि मकान के भीतर कोई मनुष्य बैठा बैठा उस अग्नि का प्रत्यक्ष कर रहा होगा तब तो हम बाहर से अग्नि का अनुमान कर सकेंगे, अन्यथा नहीं कर सकेंगे।"

हम यह कब कहते हैं कि प्रत्यक्ष के अभाव में अनुमान भी नहीं होता या आग वाले कोठे को आग का यदि कोई प्रत्यक्ष नहीं कर रहा तो हमको उसका अनुमान भी नहीं होगा। एक आत्मा के ज्ञान के साथ दूसरे के ज्ञान का गठबन्धन जोड़ने का हमारा अभिमत कदापि नहीं है। ये बातें तो तब कही जा सकती थीं, जबकि मौजूदा व्याप्ति प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमान ज्ञान की होती, किन्तु ऐसा है नहीं। मौजूदा व्याप्ति तो प्रत्यक्षविषयता और अनुमान विषयता की है।

प्रत्यक्ष ज्ञान और प्रत्यक्ष विषयता ये बिल्कुल भिन्न २ बातें हैं। इस ही प्रकार अनुमान ज्ञान और अनुमान विषयता, इन दोनों में पहिला यदि ज्ञानस्वरूप है तो दूसरा ज्ञेय स्वरूप।

प्रत्यक्षज्ञान और प्रत्यक्षविषयता इसी प्रकार अनुमान ज्ञान और अनुमान विषयता में साहचर्य सम्बन्ध भी नहीं जिससे अनुमान विषयता और प्रत्यक्ष विषयता की व्याप्ति के आधार से अनुमान ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान की भी व्याप्ति स्वीकार की जा सके। मौजूदा अनुमान में ऐसा कोई शब्द भी नहीं है जिसका यह अर्थ निकाला जा सके कि एक के प्रत्यक्ष के साथ दूसरे के अनुमान ज्ञान का अविनाभाव सम्बन्ध यहां अभीष्ट है जिससे कि इसके व्यतिरेक रूप में यह भी कहा जा सके कि यदि एक को प्रत्यक्ष न होगा तो दूसरे को अनुमान भी न होगा। यहां तो कस्यचित्प्रत्यक्षाः और अनुमेयत्वात् ये दो पद हैं जिस से व्याप्ति निकालना है। कस्यचित्प्रत्यक्षाः का सीधा अर्थ यही है कि

किसी के प्रत्यक्ष के विषय और अनुमेयत्वात् का अनुमान के विषय। अतः यहां तो प्रत्यक्ष विषयता और अनुमान विषयता की ही व्याप्ति निकालनी है। पं० दरबारीलाल जी इसको स्वयं भी एक जगह स्वीकार कर चुके हैं जैसा कि उनके निम्न लिखित वाक्यों से स्पष्ट है:—

"जगत के समस्त पदार्थ किसी न किसी के प्रत्यक्ष के विषय हैं, क्योंकि वे अनुमान के विषय हैं। जो अनुमान का विषय है वह किसी न किसी के प्रत्यक्ष का विषय है; जैसे अग्नि आदि"—

—जैनजगत अङ्क १२ पृष्ठ १।

व्यधिकरण के सम्बन्ध में बात यह है कि प्रथम तो व्यधिकरण कोई दूषण ही नहीं। दूसरे यहाँ व्यधिकरण है भी नहीं। अनुमान विषयता किसी अन्य पदार्थ में होती और प्रत्यक्ष विषयता किसी अन्य में, तब तो व्यधिकरण की सम्भावना थी किन्तु यहां तो जिसमें प्रत्यक्ष विषयता है उसी में अनुमान विषयता।

अतः स्पष्ट है कि इस व्याप्ति के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी की दूसरी बाधा भी ठीक नहीं।

मौजूदा अनुमान के सम्बन्ध में पं० दरबारी लाल जी का तीसरा आक्षेप निम्न प्रकार है:—

"यदि यह व्याप्ति स्वीकार भी करली जाय तो भी यह कैसे कहा जा सकता है कि जितना अनुमेय है वह सब एक प्राणी का प्रत्यक्ष है। जगत के जितने पदार्थ जुदे २ प्राणियों के अनुमेय हैं इसी प्रकार जुदे २ प्राणियों के प्रत्यक्ष हो सकते हैं। एक ही आत्मा सब पदार्थों का प्रत्यक्ष करे इस बात की सिद्धि इस अनुमान से नहीं होती। इसलिये इससे सर्वज्ञसिद्धि नहीं हो सकती।"

आचार्य समन्तभद्र का इस अनुमान से केवल इतना ही प्रयोजन है कि विवादस्थ विषयों में प्रत्यक्ष विषयता सिद्ध की जाय। आचार्य ने जो इस कारिका के अन्त में "इति सर्वज्ञ संस्थितिः" पद दिया है, उसका यह भाव नहीं है कि केवल इसी ही कारिका से सर्वज्ञ की सिद्धि होती है, किन्तु यह है कि यदि इस कारिका के कथन को इससे पहिले के कथन से मिला दिया जाय तो सर्वज्ञसिद्धि हो जाती है।

इससे पहिली कारिका † से आचार्य ने आत्मा में दोष और आवरणों का बिलकुल अभाव प्रमाणित किया है। आत्मा में दोष और आवरणों के अभाव से यह बात स्वयं निकल आती है कि वह अपने स्वभाव के अनुसार सम्पूर्ण पदार्थों को प्रत्यक्ष जानता है। इस सम्बन्ध में मीमांसक का अभिप्राय कुछ भिन्न है। उसका कहना है कि सम्पूर्ण दोष और आवरणों से रहित आत्मा भी विप्रकृष्ट-सूक्ष्मान्तरित-दूरार्थ को प्रत्यक्ष के द्वारा नहीं जान सकता ‡। इस प्रकार के पदार्थों का ज्ञान तो अनुमानादिक से ही सम्भव है।

† दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात्। क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः॥ आप्तमीमांसा ४

‡ ननु निरस्तोपद्रवः सन्नात्मा कथमकलङ्कोऽपि विप्रकर्षिणमर्थं प्रत्यक्षी कुर्यात्। इसके भाष्यकार आचार्य विद्यानन्दिने निम्न लिखित वाक्य लिखे हैं:—

"नहि नयनं निरस्तोपद्रवं विगलित तिमिरादिकलङ्कपटलमपि देशकालस्वभाव विप्रकर्षभाजमर्थं प्रत्यक्षीकुर्वत् प्रतीतं, स्वयोग्यस्यैवार्थस्य तेनप्रत्यक्षी करणदर्शनात्। निरस्तग्रहोपरागाद्युपद्रवोऽपि दिवसकरः प्रतिहतघनपटलकलङ्कश्च स्वयोग्यानेव वर्त्तमानार्थान् प्रकाशयन्नुपलब्धो नातीतानागतानर्थानयोग्यानिति जीवोऽपि निरस्तरागादिभावकर्मोपद्रवः सन् विगलित ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मात्मकमकलङ्कोऽपि च कथं विप्रकृष्टमर्थमशेषं प्रत्यक्षीकर्तुं प्रभुः ?

इससे स्पष्ट है कि मीमांसक विप्रकृष्ट पदार्थों में विशेष कर पुण्य और पाप में प्रत्यक्ष विषयता नहीं मानता * और जब इनमें प्रत्यक्ष विषयता ही नहीं है तब इनको कोई प्रत्यक्ष से जान सकेगा, यह केवल कल्पना मात्र है।

इन्हीं विवादस्थ पदार्थों में प्रत्यक्ष विषयता को सिद्ध करने के हेतु ही आचार्य समन्तभद्र ने देवागम की पाँचवीं कारिका की रचना की—और जब अनुमेयत्व साधन से इनमें प्रत्यक्ष विषयता की सिद्धि हो गई तब ही कारिका के अन्त में "इति सर्वज्ञसंस्थितिः" पद को जोड़ा। इससे पाठक समझ गये होंगे कि जहां तक इस कारिका का सम्बन्ध है आचार्य समन्तभद्र का अभिप्राय विवादस्थ पदार्थों में केवल प्रत्यक्ष विषयता सिद्ध करने का है। यदि इस कारिका के साथ पहिले वक्तव्य को जोड़ दिया जाता है तो सर्वज्ञ सिद्धि होती है। आचार्य समन्तभद्र के इस भाव को न लेकर दरबारीलाल जी के वर्तमान कथन को ही ले लें तब भी इस अनुमान से सर्वज्ञ सिद्धि हो जाती है।

जब पं० दरबारीलाल जी इस व्याप्ति को स्वीकार कर लेते हैं तब यह तो स्वयं सिद्ध है कि सूक्ष्म, अन्तरित और दूरार्थ में वह प्रत्यक्षविषयता को स्वीकार करते हैं तथा स्थूल, वर्तमान और सम्बद्ध पदार्थों की प्रत्यक्षविषयता स्वयं सिद्ध है। इसका परिणाम यह निकला कि जगत के संपूर्ण पदार्थों में प्रत्यक्षविषयता दरबारीलाल जी को इष्ट हुई। विरोध की इतनी ही बात है कि यह प्रत्यक्षविषयता एक व्यक्ति के प्रत्यक्ष की दृष्टि से है या अनेक के।

जगत के संपूर्ण पदार्थों में अनेक व्यक्तियों के प्रत्यक्षों की दृष्टि से प्रत्यक्षविषयता स्वीकार करना ही इस बात को प्रमाणित करता है कि उनमें एक व्यक्ति की दृष्टि से भी प्रत्यक्षविषयता है। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि समान से समान हुआ करता है, सोलह आने और एक रुपया समान है, अतः इन दोनों में से एक के जो समान होगा वह दूसरे के भी अवश्य समान होगा, चार चवन्नियां या चौसठ पैसे हैं, यह सोलह आने के समान हैं अतः एक रुपये के भी समान हैं। इसी प्रकार जितनी भी आत्मायें हैं वे सब स्वरूप की दृष्टि से समान हैं, अतः जिसको एक आत्मा जान सकता है या जानता है, उसी को दूसरा भी। इसी प्रकार तीसरा और चौथा आदि। जिस प्रकार कि एक आत्मा के ज्ञेय को दूसरी तीसरी आदि आत्मायें जान सकती हैं उसी प्रकार यह भी उनके ज्ञेयों को। इससे यह परिणाम निकला कि अनेक आत्माओं के प्रत्यक्षों द्वारा जाने जाने वाले पदार्थों को एक आत्मा भी प्रत्यक्ष से जान सकती है। इस प्रकार भी दरबारीलाल जी के कथन का निराकरण हो जाता है। अतः मौजूदा अनुमान में दरबारीलाल जी की तीसरी बाधा भी निराधार है।

इस अनुमान के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने चौथी बाधा निम्न लिखित शब्दों में उपस्थित की है:—

"व्याप्ति को स्वीकार कर लेने पर भी चौथा दोष यह है कि सम्पूर्ण पदार्थ अनुमान के विषय नहीं हैं। अनुमान के द्वारा हम संसार के सब पदार्थों की त्रैकालिक समस्त पर्यायें नहीं जान

* धर्मज्ञत्व निषेधस्तु, केवलोऽत्रोपयुज्यते। सर्वमन्यद्विजानस्तु पुरुषः केनवार्यते ॥
—मीमांसा श्लोक वार्तिक।

सकते। अनुमेय पदार्थ बहुत थोड़े हैं तब उनको प्रत्यक्ष करने से कोई प्रचलित भाषा के अनुसार सर्वज्ञ कैसे कहला सकता है।"

दरबारीलाल जी ने अपनी इस बाधा के समर्थन में निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हैं—

"सम्पूर्ण पदार्थ अनुमान के विषय नहीं हैं—यह बात तो बिलकुल स्पष्ट है, क्योंकि कहीं पर अनुमान सर्वज्ञसिद्ध नहीं हुआ। इस विषय में जैनशास्त्रों की साक्षी भी मिलती है। जैनशास्त्रों में अनुमान को मति या श्रुतज्ञान के भीतर माना है और मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय बतलाया है कि ये द्रव्यों की थोड़ी सी पर्यायें जानते हैं। जब समग्र मति श्रुति ज्ञान में अनन्तपर्यायें जानने की शक्ति नहीं है तब उसके एक टुकड़े अनुमान में सब पर्यायें जानने की शक्ति कहां से आ सकती है। इस प्रकार जब अनुमेयत्व रूप हेतु सब पदार्थों में नहीं हैं तब प्रत्यक्षत्वरूपसाध्य वहां कैसे रह सकता है।"

सम्पूर्ण पदार्थ अनुमान के विषय नहीं, यह बात एक अनुमान की दृष्टि से है या अनेक अनुमान की। यदि एक अनुमान की, तब तो इस बात को हमभी स्वीकार करते हैं। कोई अनुमान सर्वज्ञसिद्ध नहीं हुआ, यह भी एक ही अनुमान की दृष्टि से है। जैनशास्त्रों की साक्षी भी इस ही के सम्बन्ध में है, या जैनशास्त्र भी इस बात का इस ही दृष्टि से वर्णन करते हैं। अनुमान का विषय मतिज्ञान या श्रुतज्ञान के भीतर बतलाया है, और मति या श्रुत पदार्थ की सम्पूर्ण अवस्थाओं को नहीं जानते, यह भी एक अनुमान और एक मति या श्रुत की दृष्टि से है।

यदि उपर्युक्त प्रकार का कथन—सम्पूर्ण पदार्थ अनुमान के विषय नहीं—अनेक अनुमान की दृष्टि से है तो यह बात समुचित नहीं।

भूत, वर्तमान और भविष्यत् के पदार्थों का अनेक अनुमान का ज्ञेय होना यह एक स्वाभाविक बात है। प्रमाण से जाने हुये पदार्थ के एक अंश को नय जानता है, इस ही लिये प्रमाण और नय में अंश और अंशी का भेद है किन्तु यदि अनेक नय मिल जांय तो वे उस पदार्थ के सम्पूर्ण अंशों को जान लेती हैं। नय का ज्ञेय प्रमाण के ज्ञेय की सीमा के भीतर ही रहता है, यह कथन जब एक नय की दृष्टि से होता है तब तो इस बात की पुष्टि करता है किन्तु जब यही कथन अनेक नयों की दृष्टि से होता है तो इसकी सिद्धि इससे नहीं होती।

मौजूदा व्याप्ति अनुमानविषयता के साथ प्रत्यक्षविषयता की है। चाहे यह अनुमानविषयता एक अनुमान के द्वारा आवे या अनेक के, एक प्राणी के अनुमान के द्वारा आवे या अनेक प्राणियों के। यहां तो केवल अनुमानविषयता से प्रयोजन है न कि उसकी व्यक्ति विशेष से। इससे स्पष्ट है कि मौजूदा व्यक्ति के संबन्ध में दरबारीलाल जी की चौथी बाधा भी युक्तियुक्त नहीं।

दरबारीलाल जी ने इन्हीं बाधाओं के आधार से आचार्य समन्तभद्र की सर्वज्ञता को सिद्ध करने वाली युक्ति को युक्त्याभास बतलाया था, किन्तु ये बाधायें मौजूदा युक्ति पर कुछ भी असर नहीं रखतीं, जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है। अतः आचार्य समन्तभद्र की युक्ति युक्त ही है—उस को युक्त्याभास कहना बिलकुल निराधार है।

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[३]

श्री भद्रबाहु आचार्य अपने विशाल मुनिसंघ के साथ विहार करते हुए मालवा प्रान्त के उज्जैन नगर में आ पहुँचे। नगर के बाहर पवित्र उपवन में भद्रबाहु स्वामी ने अपने संघ को ठहरने का आदेश दिया।

उस समय भारतवर्ष का एकछत्र सम्राट शासक राजा चन्द्रगुप्त था, चन्द्रगुप्त मौर्य बहुत पराक्रमी, तेजस्वी और न्यायी था, जैनधर्म का उपासक था। भारतवर्ष पर जब अफ़ग़ानिस्तान के मार्ग से सेल्यूकस ने आक्रमण किया तब इसी वीर सम्राट ने उसका वीरता से सामना किया और सेल्यूकस को बुरी तरह हराकर पीछे भगा दिया, इतना ही नहीं किन्तु इस विजय के उपलक्ष्य में चन्द्रगुप्त ने काबुल, कन्धार का प्रदेश भी अपने साम्राज्य में मिला लिया।

चन्द्रगुप्तकी सेना के सैनिक धनुष बाण का युद्ध बहुत अच्छा करते थे, उनका बाण (तीर) इतने ज़ोर से चलता था कि वे शत्रु सैनिकों की ढाल और लोहे के कवच को भी छेद कर उनके हृदय को भी छेद डालते थे।

चन्द्रगुप्त की सेना का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। उस सेना में नौ हज़ार हाथी, उन के सवार ३६ हज़ार योद्धा, आठ हज़ार रथ, उनमें बैठ कर युद्ध करने वाले २४ हजार सिपाही, तीस हज़ार घुड़सवार और छः लाख पैदल सिपाही थे। इस तरह वेतन भोगी (तनख़्वा पाने वाले) कुल छः लाख, नब्बे हज़ार चतुरंग सेना के वीर सैनिक थे। सेना-विभाग का कार्य ६ भागों में विभक्त होकर चलता था, प्रत्येक भाग के पांच पांच सदस्य थे, इस तरह ३० सभासदों के प्रबन्ध से सेना का (भर्ती, अस्त्र शस्त्र संग्रह, रसद आदि) सारा कार्य संचालन होता था।

समस्त राज्यशासन को चन्द्रगुप्त ने गुप्तचर विभाग (खुफिया पुलिस), सेनाविभाग, चुङ्गी विभाग, आबकारी, कृषिविभाग, शिक्षा, न्याय, चिकित्सा, डाक, जनगणना (मर्दुमशुमारी) आदि ३० उपयोगी विभागों में विभक्त कर रक्खा था।

उस समय म्युनिसिपलिटी भी थीं, सिंचाई के लिये नहरें भी थीं, बहुत लम्बी बड़ी २ सड़कें भी थीं। प्रजा के जन्म, मृत्यु की शुमार भी की जाती थी। व्यापार बढ़ाने के लिये राज्यकी ओर से अनेक उपाय किये जाते थे। स्थान २ पर अस्पताल थे। मार्ग पर चुङ्गी बहुत अच्छे ढङ्ग से लगाई जाती थी। राज्य कर्मचारियों की (अफ़सरों की) गुप्त जांच की जाती थी; इत्यादि।

जैसा राज्य करने का ढंग बृटिश सरकार का आज कल यहां पर है ठीक वैसा ही बल्कि अनेक बातों में इससे भी अच्छा ढंग आज से २३०० वर्ष पहले जैन सम्राट चन्द्रगुप्तने भारतवर्षमें चला रक्खा था। ऐसे अच्छे शासन के कारण ही चार लाख

मनुष्यों की आबादी वाले पटना नगर में कभी ८०) अस्सी रुपयों से अधिक की चोरी नहीं हुई थी। इस प्रबन्धपर दृष्टिपात करने से कहना पड़ता है कि प्राचीन समय में चन्द्रगुप्त सरीखा राज्यकुशल सम्राट भारतवर्ष में क्या किन्तु संसार भर में नहीं हुआ।

राज्य शासन के लिए चन्द्रगुप्त ने भारतवर्ष में चार प्रान्त और उनकी चार राजधानियां बना रक्खी थीं। चारों प्रान्तों के भिन्न २ चार शासक (गवर्नर) थे। पटने के समान उज्जैन भी उस समय राजधानी का नगर था। जिस समय का यह वर्णन चल रहा है उस समय सम्राट चन्द्रगुप्त उज्जैन नगर में ही विराजमान थे।

एक दिन चन्द्रगुप्तने सुखनिद्रा में सोते समय रात के पिछले समय भयानक अशुभ निम्नलिखित १६ स्वप्न देखे:—

१—सूर्य अस्त, २—शाखा टूटा हुआ कल्पवृक्ष, ३—छिद्रों वाला चन्द्रमंडल, ४—बारह फण का सांप, ५—स्वर्ग को ओर लौटता हुआ देवविमान, ६—अपवित्र स्थान पर उगा हुआ कमल, ७—नाचता हुआ भूतों का दल, ८—खद्योत (जुगुनू) का प्रकाश, ९—बीच में सूखा किन्तु किनारे पर जल भरा तालाब, १०—सोने के थाल में कुत्ते का खीर खाना, ११—हाथी पर चढ़ा हुआ बन्दर, १२—समुद्र का मर्यादा तोड़ना, १३—छोटे बछड़ों के कन्धों पर रक्खा हुआ भारी रथ, १४—ऊंट पर सवार राजपुत्र, १५—धूल धूसरित रत्न-राशि और १६—काले हाथियों का युद्ध।

भारतवर्ष का सौभाग्यशाली वीर सम्राट चन्द्रगुप्त अशुभ स्वप्नों को देखकर उठ बैठा और विचारने लगा कि कौन सी ऐसी दुर्घटना घटेगी जिसकी सूचना इन दुःस्वप्नों ने आज मुझे दी है। चन्द्रगुप्त स्वयं कुछ निर्णय न कर सका, इस कारण स्वप्नफल जानने के लिए उसने अपने गुरु श्री भद्रबाहु आचार्य के निकट चलने का विचार किया।

महाराज चन्द्रगुप्त अपने प्रातः समय के नित्य नियम से निश्चिन्त होकर अपने परिकर सहित उत्साह, भक्तिभाव तथा जिज्ञासा से प्रेरित होकर वहां उपवन में पहुँचे, जहां भद्रबाहु स्वामी का संघ विराजमान था। चन्द्रगुप्त समस्त साधुसंघ की वंदना करके अपने पूज्य गुरु श्री भद्रबाहु आचार्य को विनयभाव से नमस्कार, प्रदक्षिणा, स्तवन करलेने के बाद उनके समीप बैठ गया और रात के पिछले समय देखे हुए अशुभ सोलह स्वप्नों को निवेदन किया तथा उन के यथार्थ भविष्य फल को सुनने की जिज्ञासा प्रगट की।

अपने विनीत शिष्य और भारतवर्ष के आदर्श सम्राट का निवेदन सुनकर अष्टांगनिमित्त के पूर्ण-ज्ञाता, अंतिम श्रुतकेवली कहने लगे कि राजन् ये स्वप्न भविष्य काल की काली सूचना देने के लिये तेरे सामने चित्र के रूपमें आये हैं, संसार का कैसा भीषण भविष्य होगा इसका संक्षेपसार सुन—

पहला स्वप्न (सूर्यका अस्त होना) सूचना देता है कि इस कलिकाल में अब पूर्ण श्रुतज्ञानी न होंगे। पूर्ण श्रुतज्ञान इस रूप में अस्त हो जायगा।

दूसरा स्वप्न (कल्पवृक्षका शाखाभंग) सूचित करता है कि अब राजा लोग साधुदीक्षा ग्रहण कर अपना कल्याण न करेंगे।

तीसरा स्वप्न (छिद्रोंवाला चन्द्रमा) कहता है कि विशुद्ध जैनधर्म में भी अनेक भेद उत्पन्न हो जावेंगे।

चौथे स्वप्न (बारह फणका सांप) का फल है कि बारह वर्ष का भयानक अकाल पड़ेगा।

पांचवां स्वप्न (उलटा जाता हुआ देवविमान) का भविष्यफल यह है कि अब इस आर्य खंड में कल्पवासी देव, विद्याधर, चारण ऋद्धिधारक मुनि न आवेंगे।

छठा स्वप्न (अयोग्य स्थान पर उगा हुआ कमल) यों बतलाता है कि क्षत्रिय ब्राह्मण आदि उत्तम कुल के पुरुष जैनधर्मी न हो कर नीचकुल के लोग जैनधर्म के अनुयायी होंगे।

सातवें स्वप्न (भूतोंका नृत्य) की सूचना है कि अब संसार में कुदेवों की मान्यता का प्रसार होगा।

आठवां स्वप्न (जुगनू का प्रकाश) कहता है कि जैनधर्म का प्रकाश बहुत क्षीण हो जायगा।

नौवां स्वप्न (किनारे पर पानी से भरा, किन्तु बीच में सूखा तालाब) सूचना देता है कि तीर्थङ्कर भगवान की कल्याणक भूमियों में (अयोध्या आदि में) जैनधर्म का अभाव होगा, किन्तु दक्षिण आदि देशों में जैनधर्म विद्यमान रहेगा।

दशवें स्वप्न (सुवर्ण थाल में कुत्ते का भोजन) का फल यह फलित होगा कि इस कलिकाल में लक्ष्मी कुलीन पुरुषों के पास न रह कर नीच लोगों के पास रहेगी।

ग्यारहवां स्वप्न (हाथी पर बन्दर सवार) यह सूचना देताहै कि राज्यशासन क्षत्रिय लोगों के हाथ से छिन कर नीच लोगों के हाथ में चला जावेगा।

बारहवें स्वप्न (समुद्र का मर्यादा छोड़ना) का फल यह होगा कि कलिकाल में राजा न्यायमार्ग का उल्लंघन करेंगे।

तेरहवां स्वप्न (भारी रथ बछड़ों के कन्धे पर) सूचना देता है कि अब मनुष्य बड़ी अवस्था में संयम (मुनिदीक्षा) ग्रहण न करेंगे।

चौदहवां स्वप्न (ऊंट पर सवार राजपुत्र) का कहना है कि अब राजा लोग अहिंसामार्ग छोड़ कर हिंसाकर्म के प्रेमी होंगे।

पन्द्रहवां स्वप्न (धूलि से ढकी हुई रत्नराशि) बतलाता है कि महाव्रती साधु भी निर्दोष न होंगे; परस्पर निन्दक होंगे।

सोलहवां स्वप्न (काले हाथियों का युद्ध) सूचित करता है कि जैन लोग आपस में लड़ेंगे और बादलों की वर्षा अयोग्य ढंग से हानिकर रूप में होगी।

इस प्रकार सम्राट चन्द्रगुप्त के देखे हुए १६ स्वप्नों का भविष्यफल आचार्य श्री भद्रबाहु ने स्पष्ट कह सुनाया। स्वप्नफल सुनकर चन्द्रगुप्त के चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा।　　[क्रमशः]

प्रश्न ?

[रचयिता—श्री "भगवत्" ऐत्मादपुर]

ज्ञानी बने चाहो तो सुशास्त्रन को पाठ करो—
　ध्यानी बने चाहो तो सुकोशल को पेखिये।
धनी बने चाहो तो धरम बीच चित्त देहु—
　दानी बने चाहो तो 'श्रेयांस' को विशेषिये॥

नामी भये चाहो तो पराया उपकार करो—
　दया, क्षमा, शील, धर्म, मन बीच लेखिये।
शान्ति चाहो चित्त में, सन्तोष धरियेगा उर—
　कर्म जो मिटाया चाहो, शुद्ध व्रत देखिये॥

भुज्यमान आयु में अपकर्षण और उत्कर्षण।

[लेखक—श्रीमान पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य, न्यायतीर्थ]

कई विद्वानों का ऐसा मत है कि भुज्यमान किसी भी आयु में उत्कर्षणकरण नहीं होता, अपकर्षणकरण भी भुज्यमान तिर्यगायु और मनुष्यायु में ही हो सकता है; कारण इन दोनों की उदीरणा संभव है। भुज्यमान देवायु और नरकायु अनपवर्त्य होने के कारण उदीरणा रहित हैं; इसलिये इनमें अपकर्षणकरण भी नहीं होता है। आयुःकर्म में यदि उत्कर्षण, अपकर्षणकरण हों तो वे बध्यमान में ही होंगे।

बध्यमान आयु में उत्कर्षण, अपकर्षणकरण होते हैं, इसमें किसी का विवाद नहीं, लेकिन अभी तक मेरा ख़्याल है कि भुज्यमान संपूर्ण आयुओं में भी उत्कर्षण, अपकर्षणकरण हो सकते हैं, इसका कारण यह है कि भुज्यमान तिर्यगायु और मनुष्यायु की उदीरणा तो सर्वसम्मत है, भुज्यमान देवायु और नरकायु की भी उदीरणा सिद्धान्त ग्रन्थों में बतलाई है—

गा०—संकमणाकरणूणा णवकरणा होंति सव्व आऊणं ॥४४१॥ कर्म०॥

एक संक्रमणकरण को छोड़ कर बाकी के बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्व, उदय, उपशान्त, निधत्ति और निकाचना ये नव करण संपूर्ण आयुओं में होते हैं।

किसी भी कर्म की उदीरणा उसके उदयकाल में ही होती है; कारण उदीरणा का लक्षण निम्न प्रकार माना गया है:—

गा०—अण्णत्थठियस्सुदये संथुहण मुदीरणा हु अत्थित्तं ॥४३९॥ कर्म०॥

सं० टी०—उदयावलि वाह्यस्थित स्थितिद्रव्यस्यापकर्षणवशादुदयावल्यां निक्षेपणमुदीरणा खलु।

उदयावली के द्रव्य से अधिक स्थिति वाले द्रव्य को अपकर्षणकरण के द्वारा उदयावली में डाल देना अर्थात् उदयावली प्रमाण उस द्रव्य की स्थिति कर देने का नाम उदीरणा है। उदयगत कर्म के वर्तमान समय से लेकर आवली पर्यन्त जितने समय हों उन सबके समूह को उदयावली कहा गया है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि कर्म की उदीरणा उसके उदय हालत में ही हो सकती है।

गा०—परभव आउगस्सच उदीरणा णत्थि-णियमेण ॥१५९॥ कर्म०॥

यह नियम स्पष्ट रूप से परभव की (बध्यमान) आयु की उदीरणा का निषेध कर रहा है।

गा०—उदयाणमावलिह्मि उभयाणं वाहिरम्मि खिवणट्टं ॥६८॥ लब्धिसार॥

अर्थात्—उदयावली में उदयगत प्रकृतियों का ही क्षेपण होता है। उदयावली के बाहिर उदयगत और अनुदयगत दोनों तरह की प्रकृतियों का क्षेपण होता है।

इससे भी यही सिद्ध होता है कि जिस कर्मका उदय होता है उसी का उदयावली बाह्य द्रव्य उदयावली में दिया जा सकता है। इसलिये देवायु और नरकायु की उदीरणा क्रम से देवगति और नरकगति में होगी अन्यत्र नहीं, अर्थात् भुज्यमान देवायु और नरकायु की ही उदीरणा हो सकती है वध्यमान की नहीं।

शंका—परभव आउगस्स च उदीरणा णत्थि णियमेण ॥ ९१८ ॥ कर्म० ॥

सं० टी०—परभवायुषो नियमेनोदीरणा नास्ति, उदय गतस्यैवोपपादिक चरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुर्भ्योऽन्यत्र तत्संभवात् ॥

अर्थात्—परभव की (वध्यमान) आयु की नियम से उदीरणा नहीं होती है—कारण कि देव, नारकी, चरमोत्तमदेह के धारक तथा असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य तिर्यंचों को छोड़कर बाकी के जीवों के उदय गत आयु की ही उदीरणा सम्भव है। इस कथन से यह बात निकलती है कि देवायु और नरकायु की उदीरणा ही नहीं होती है तथा पूर्व कथन से यह सिद्ध होता है कि देवायु और नरकायु की भी उदीरणा होती है; इसलिये शास्त्रों में ही पूर्वापर विरोध आता है।

उत्तर—शास्त्रों में उदीरणा दो तरह की बतलायी है—एक तो अन्य निमित्त से मरण हो जाने को उदीरणा कहते हैं, दूसरी स्वतः आत्मा की क्रिया विशेष से उदयावली बाह्य द्रव्य को उदयावली में डाल देने को उदीरणा कहते हैं। ऐसी उदीरणा देवायु और नरकायु की भी होती है—उदीरणामरण नहीं होता। आचार्यकल्प पं० टोडरमल जी इस शंका का निरास इस प्रकार करते हैं—"बहुरि उदीरणा शब्द का अर्थ जहां देवादिक के उदीरणा न कही तहां तो अन्य निमित्ततें मरण होय ताका नाम उदीरणा है। अर दश करणनि के कथन विषें उदीरणा करण देवायु के भी कहा तहां ऊपर के निषेकनि के द्रव्य को उदयावली विषें दीजिये ताका नाम उदीरणा है।

—मोक्ष० प्रकाश पुस्तकाकार पृ०-४२१

इस प्रकार शास्त्र के दोनों प्रकार के कथनों को आपेक्षिक कथन स्वीकार करने से पूर्वापर विरोध की शंका नहीं रहती है।

कर्मों की उदीरणा अपकर्षण पूर्वक ही होती है। जब तक कर्म के द्रव्य की स्थिति का अपकर्षण नहीं होगा तब तक उस द्रव्य का उदयावली में प्रक्षेप नहीं हो सकता है, कारण उदयावली में प्रक्षेप का मतलब ही यह है कि जो कर्म द्रव्य अधिक समय में उदय आने योग्य था वह अब उदयावली में ही उदय आकर नष्ट हो जायगा। इसी अभिप्राय से कर्मकाण्ड की संस्कृत टीकाकार ने उदीरणा के लक्षण में "अपकर्षणवशात" यह पद दिया है।

इस कथन से भुज्यमान देवायु और नरकायु में अपकर्षण करण होता है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

"हाणी ओकट्टणं णाम" "उक्कट्टणं हवे वड्ढी" ॥ गा० ४३८ ॥ कर्म० ॥

सं० टी०—स्थित्यनुभागयोर्हानि रपकर्षणम्, स्थित्यनुभागयोर्वृद्धिरुत्कर्षणम् ॥ कर्मों की स्थिति और अनुभाग को घटा देना अपकर्षण है और बढ़ा देना उत्कर्षण है। शुभ प्रकृतियों के स्थिति और अनुभाग में कमी संक्लेश परिणामों से होती है और वृद्धि विशुद्ध परिणामों से होती है। अशुभ

प्रकृतियों के स्थिति और अनुभाग में हानि विशुद्ध परिणामों से होती है और वृद्धि संक्लेशपरिणामों से होती है। देवायु शुभ प्रकृति है, इसलिये उसके स्थिति और अनुभाग में कमी संक्लेश परिणामों से होगी और वृद्धि विशुद्ध परिणामों से होगी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब देवों के संक्लेशता होने से देवायु का अपकर्षण हो सकता है तो विशुद्धता होने से देवायु का उत्कर्षण होना भी न्याय संगत है। इसीप्रकार नरकायु अशुभ प्रकृति है, इस लिये उसके स्थिति और अनुभाग में कमी विशुद्ध परिणामों से होगी और वृद्धि संक्लेश परिणामों से होगी; इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब नारकियों के विशुद्धता होने से नरकायु का अपकर्षण हो सकता है तो संक्लेशता होने से नरकायु का उत्कर्षण होना भी न्याय संगत है। इस प्रकार भुज्यमान देवायु और नरकायु में भी अपकर्षण और उत्कर्षण सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार भुज्यमान तिर्यगायु और मनुष्यायु में भी अपकर्षणकरण की तरह उत्कर्षण करण स्वीकार करना चाहिये।

शंका—किसी भी कर्म प्रकृति का उत्कर्षण उसकी बन्धव्युच्छित्ति के पहिले तक ही होना है।

गा०—बंधुक्कट्टणकरणं सग सग बन्धो-च्छित्तिणियमेण॥ ४४४॥ कर्म०॥

इससे यह निष्कर्ष निकला कि आत्मा की जो अवस्था जिस कर्म प्रकृति के बन्ध में कारण पड़ती है उसी अवस्था में उस प्रकृति का उत्कर्षण हो सकता है। वर्तमानभव में उत्तर भव की आयु का ही बन्ध होता है—वर्तमान (भुज्यमान) का नहीं। इसलिये भुज्यमान आयु का उत्कर्षण भी नहीं हो सकता है।

उत्तर—बन्धव्युच्छित्ति के पहिले २ ही उत्कर्षण होता है, यह कथन उत्कर्षण को मर्यादा को बतलाता है अर्थात् जहां तक जिस प्रकृति का बंध हो सकता है वहाँ तक उस प्रकृति का उत्कर्षण होगा, आगे नहीं। इसका यह आशय नहीं कि आत्मा की जो अवस्था कर्मप्रकृति के बन्ध में कारण है उसी अवस्था में उस प्रकृति का उत्कर्षण हो सकता है अन्यत्र नहीं। यदि ऐसा माना जाय तो उत्कर्षणकरण को त्रयोदशगुणस्थान तक मानना असंगत ठहरेगा।

छुन्व सजोगित्ति तदो ॥गा० ४४२॥ कर्म०॥

सयोगी पर्यन्त उत्कर्षण, अपकर्षण, उदय, उदीरणा, बन्ध और सत्व ये ६ करण होते हैं। लेकिन स्थिति अनुभाग की वृद्धि को उत्कर्षणकरण माना गया है, यहां आत्मा की कोई भी अवस्था किसी भी कर्म के स्थिति-अनुभागबन्ध में कारण नहीं तब ऐसी हालत में उस कर्म के स्थिति और अनुभाग का उत्कर्षण भी नहीं हो सकेगा। किन्तु जब उक्त वचन को उत्कर्षण की मर्यादा बतलाने वाला मान लेते हैं तो कोई विरोध नहीं रहता; कारण त्रयोदश गुणस्थान में सातावेदनीय का प्रकृति प्रदेशबन्ध होता ही है। इसलिये उसी का उत्कर्षण भी त्रयोदशगुणस्थान तक होगा, अन्य का नहीं, ऐसा संगतअर्थ निकल आता है।

उक्त वचन मर्यादासूचक ही है इसमें दूसरा प्रमाण यह है कि संक्रमणकरण को—

संकमणंकरण पुण सग सग जादीण बंधोत्ति॥ गा०-४४४॥ कर्म० ॥

इस वचन के द्वारा अपनी २ सजातीय प्रकृति के बन्धपर्यन्त बतला करके भी—

णवरि विसेसंजाणे संकममवि होदि संत मोहम्मि ॥ मिच्छत्तस्स य मिस्सस्स य सेसाणं णत्थि संकमणं ॥४४२॥ कर्म०॥

इस वचन के द्वारा मिथ्यात्व और मिश्रप्रकृति का संक्रमण ११ वें गुणस्थान तक बतलाया है। इसलिये जिस प्रकार यह वचन संक्रमण के लिये यह नियम नहीं बना सकता कि आत्मा की जिस अवस्था में जिस कर्म की सजातीय प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है उसी अवस्था में उस कर्म का संक्रमण होगा, दूसरी अवस्था में नहीं, इसी प्रकार उक्त वचन उत्कर्षण के लिये भी ऐसा नियम-सूचक नहीं है।

इस लेख का सारांश यह हुआ कि चारों भुज्यमान आयुओं की उदीरणा हो सकती है और उदीरणा अपकर्षण पूर्वक ही होता है। इसलिये चारों भुज्यमान आयुओं में अपकर्षण भी सिद्ध हो जाता है। शुभ प्रकृतियों का अपकर्षण संक्लेश परिणामों से और अशुभ का विशुद्ध परिणामों से होता है। जब चारों आयुओं के अपकर्षण के योग्य शुभ अशुभ की अपेक्षा संक्लेश या विशुद्ध परिणाम चारों गतियों में पैदा हो सकते हैं तो उनके उत्कर्षण के योग्य उनसे विपरीत परिणाम भी चारों गतियों में पैदा हो सकते हैं। इसलिये चारों भुज्यमान आयुओं में उत्कर्षण भी सिद्ध हो जाता है।

यह लेख मैंने अपनी शंका को दूर करने के लिये लिखा है। इस लिये विद्वानों से निवेदन है कि यदि उनको मेरे ये विचार विपरीत मालूम पड़ें तो अपने विचार प्रमाण सहित अवश्य ही जैन दर्शन में प्रगट करें ताकि इस बात का निर्णय हो सके।

जीवन-तन्त्री !

[रचयिता—"आनन्द" उपाध्याय, जयपुर]

बिखर जाते जीवन के तार
कहो सजनि ! किस वीणा से मैं गाऊँ राग मल्हार ॥ टेर ॥

[१]

अन्तरीक्ष सम अन्तस्तल में,
लहरें आती हैं पल पल में,
मचा रहो जीवन में हलचल—
अविरल यह व्यापार।
बिखर जाते जीवन के तार ॥

[२]

विश्व प्रपंचों में नित रहना,
ऐहिक दुःसह ताप का सहना,
नहीं मुझे इनसे ही फुरसत—
कैसे आऊं द्वार।
बिखर जाते जीवन के तार ॥

[३]

अपने दुर्गुण सदा छिपाना,
पर निन्दा का ढोल बजाना,
स्वार्थशील जगती से सीखा—
नहिं सीखा कुछ सार।
बिखर जाते जीवन के तार ॥

[४]

उज्वल भाव सुमन ले आता,
किन्तु सदा पथ में मुस्काता,
नहीं पहुंच पाता मैं तुमको—
कैसे दूँ उपहार।
बिखर जाते जीवन के तार ॥

* भारत के शासक और जैनधर्म *

[लेखक—बा० कामताप्रसाद जी, एम आर. ए एस.]

प्राक्कथन ।

किन्हीं लोगों का ख्याल है कि जैनधर्म मनुष्य में वह भाव उत्पन्न ही नहीं होने देता कि जिससे कोई मनुष्य योग्य शासक बन सके, शासक बननेके लिये मनुष्य मे मुख्यतया वीरता और धीरता का होना आवश्यक है। जैनधर्म से कदाचित धीरता को मनुष्य पा सकता है, किन्तु जैनधर्म वीर वृत्ति से दूरकी ही वस्तु है, उससे मनुष्य में उतना ओज और उतनी कार्यदक्षता नहीं उत्पन्न हो सकती कि कोई जैनी होकर एक शासक के कर्तव्य को वहन कर सके। किन्तु लोगों की यह भावना ठोस नीव पर खड़ी हुई मालूम नहीं देती—उनका यह मत स्वकल्पित और मिथ्या है। सम्भवतः उसका आधार जैन अहिंसा के स्वरूप को विकृत रूप मे ग्रहण करना है, किन्तु इस भ्रान्तिका दोष उनपर नहीं, स्वयं हम जैनियों पर है, जिन्होंने न तो अपने सिद्धान्त ग्रन्थों को ठीक तरीके से जनता के सम्मुख रक्खा और न अपने आचरण से उन्होंने जैन अहिंसा का वास्तविक रूप प्रगट होने दिया।

भला सोचिये तो ज़रा एक वह व्यक्ति जो पल्ले दर्जे का स्वार्थी है और जिसका ईमान—धर्म—एकमात्र पैसा कमाना है वह यदि छोटे मोटे कीड़ों की रक्षा करके अपने अहिंसा धर्म की दुग दुगी पीटे तो उसका जनता पर क्या असर पड़ेगा जो मनुष्य अपने धर्मायतनों और स्त्री बच्चो की रक्षा के समय डरके मारे बग़लें झांकने लगे और उसपर भी अहिंसाधर्म की डींग मारे तो निस्सन्देह वह उपहास पात्र होना ही चाहिये। पिछले सौ पचास वर्षों में जैनियों की कुछ ऐसी ही वृत्ति रही है। साधारण जनता किसी सम्प्रदाय के अनुयायियों की दैनिक चर्या से ही उनके धर्म का मूल्य आंकती है, अतः इस प्रकार की स्थिति में उक्त मिथ्या धारणा का लोगों म फैल जाना कोई अचरज की बात नहीं है, किन्तु यदि जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त और उसके व्यवस्थापक रूपको लोग समझ जायँ तो फिर वह ऐसी गलती शायद ही कर पायें। वस्तुतः जैन अहिंसा का आधार मनुष्य का बाह्य आचरण नहीं है, बल्कि उसके परिणामों की विशुद्धि पर ही वह अवलम्बित है, पवित्र और प्राचीन जैन सिद्धान्त ग्रन्थ "जयधवल" में देखिये, यही लिखा है।

"रागादीणमणुप्पा अहिंसत्तनि देसियं समए,
तेसिंच उप्पत्ती हिंसेति जिणेहि णिद्दिट्ठा"

भावार्थ—"रागादिक का न पैदा होना ही अहिंसा है, ऐसा आगम में कहा है; उन्हीं का उपजना हिंसा है ऐसा जिनेंद्र ने कहा है।" रागद्वेष परिणति ही तो वैर विरोध और लोभ आकांक्षा की जड़ है, इसलिये यदि मनुष्य विशुद्ध परिणामों से परे है तो निस्सन्देह वह हिंसक है, फिर ज़ाहिरा वह एक साधु ही क्यों न दीखता हो। उक्त सिद्धान्त ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है।

"जो होइ अप्पमत्तो अहिंसओ, हिंसओ इयरो"

अर्थात्:—जो अप्रमत्त—कषाय वासना से रहित—है वह अहिंसक है और जो प्रमत्त है वह हिंसक है। चाहे जीव मरे या न मरे, यदि उसके मारने के भाव कर लिये तो वहां हिंसा हो गई और जहां दयावासित हृदय से सावधान होकर स्व-पर कल्याण के लिए वर्तन किया जाय और उसपर भी कोई जीव मर जाय तो वहां हिंसा न होगी। एक डाक्टर किसी रोगी का आपरेशन उसके भले के लिये करता है उसपर भी यदि उसकी मृत्यु होजाय तो यह कोई नहीं कहेगा कि डाक्टर ने उस रोगी को मार डाला, बस जैन अहिंसा भाव-प्रधान है, यही उसका सार है।

अब ज़रा देखिये, कि जैन अहिंसा का उक्त रूप एक शासक के कर्तव्य में विधायक है या विरोध लिये हुए है! शासक का कर्तव्य प्रजा की रक्षा और उन्नति करना है। देश पर कोई आक्रमण करे अथवा विश्व के किसी भाग में कोई शासक अमानुषिक अत्याचार कर रहा हो तो एक न्यायशील शासक का धर्म होगा कि वह अपने शौर्य को प्रकट करके उनका प्रतिकार करे। उसका यह प्रतिकार कार्य हिंसात्मक न होकर जैन-अहिंसा के सर्वथा अनुकूल होगा, क्योंकि उसका भाव अपनी प्रजा की रक्षा करना और धर्म का प्रचार करना है। अत्याचार को मेटना ही तो धर्म है। बस, बाह्य परिकर को शमन करने में एक न्यायी शासक के भाव शुभ रूप होंगे—उनमें क्रूरता की गंध देखने को नहीं मिलेगी। इस दशा में वह अहिंसा का पालन करते हुए भी एक आक्रमण से देश की रक्षा बखूबी कर सकेगा! और दुनियां में से अत्याचार का भी अन्त कर सकेगा। अपने राज्य की भीतरी व्यवस्था सुचारु रखने के लिये वह दण्डविधान भी ठीक-ठीक रख सकेगा।

जैनाचार्यों ने एक शासक के लिये पद-पद पर इस शिक्षा का ही निर्देश किया है कि वह शुभाशय वाले साधु पुरुषों की रक्षा और धर्मवृद्धि के लिये दुष्ट पुरुषों का निग्रह करे। श्री जिनसेनाचार्य तो **'आदिपुराण'** में यह कहते हैं कि इस कल्पकाल में सबसे पहले व्रतीश्रावक और प्रथम भारतीय सम्राट् भरत चक्रवर्ती ने ही लोगों में से अन्यायप्रवृत्ति को मेटने के लिये अपराधियों को कारागार में रखने तथा उनका बध करने आदि रूप शारीरिक दंड देने की प्रणाली प्रचलित की थी। * इस प्रणाली को प्रचलित करने में भरत महाराज का उद्देश्य सदाचार और साधुभाव को वृद्धि देना था। दण्डविधान का उद्देश्य हो भी यह ही सकता है।

बस, एक अहिंसक शासक के लिये इसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है! बल्कि सच तो यह है कि उस शासक में जो अहिंसाव्रत का पालन करता है, कभी भी उद्धत, क्रूर और अन्यायवृत्ति आ ही नहीं सकेगी। शासक की राजसी प्रकृति को सात्विक बनाने वाली अहिंसा है। ऐसे शासक का राज्य ही राम-राज्य कहलाता है और वह मनुष्यों को धर्म, अर्थ और कामरूपी यथेष्ट फलों को देने वाला होता है। इसीलिये महाकवि हरिश्चन्द्र कहते हैं कि—

"धिनोति मित्राणि न पाति न प्रजा—
विभर्ति भृत्यानपि नार्थसंपदा।

* "शारीरं दण्डनं चैव वधबंधादि लक्षणम्। नृणां प्रबल दोषाणां भरतेन नियोजितम् ॥२१६॥३॥

न यः स्वतुल्यान्विदधाति बान्धवान्
स राजशब्द प्रतिपत्तिभाक्कथम् ॥"†

अर्थात्—"जो राजा अपने मित्रों को प्रसन्न नहीं रखता, प्रजा का रक्षण नहीं करता, आश्रित सेवकों की धनसम्पदा से सहायता नहीं करता और अपने बन्धुओं को अपने सदृश ऐश्वर्यशाली नहीं बनाता वह 'राजा' कहलाने का पात्र ही नहीं है।" बस, यह स्पष्ट है कि जैनधर्म में शासक के कर्तव्य का पूरा ध्यान रक्खा गया है और उसे एक आदर्श शासक बनाने के लिये उसमें समुचित नियमों का विधान भी किया गया है। अब भला बताइये, यह कैसे माना जाय कि जैनधर्म मनुष्य को योग्य शासक नहीं बनाता? बल्कि बात इससे ठीक उल्टी है। आगे भारतीय शासकों के उदाहरणों को उपस्थित कर देने से यह विषय स्वतः स्पष्ट हो जायगा। हम अपने मुंह से क्या कहें?

[क्रमशः]

समाचार-संग्रह

सुधार कर पढ़ें

गत अङ्क में "जैनधर्म का मर्म" लेख में जहाँ पर "विषमता" छपा है पाठक उस की जगह "विषयता" पढ़ें। —प्रकाशक।

जैनसमाज सावधान हो!

हमें सिंघई अमृतलाल जी मु० पाटन जिला जबलपुर सी० पी० द्वारा मालूम हुआ है कि ता० ११।८।३३ को किसनलाल नामक एक व्यक्ति अपने को श्री ऋषभदेव जी विद्यालय की तरफ से उपदेशक कह कर हर जगह से चन्दा वसूल कर रहा है और उसने छपी हुई नाथूलाल जी सर्राफ के नाम की रसीद बही भी बना ली है। अब नागपुर की तरफ गया है, इसलिये दि० जैन भाई सावधान हो जावें—इसको एक पाई भी नहीं देवें। हमारे यहां से किसी उपदेशक को मुकर्रर करके चन्दा वसूल करने को नहीं भेजा गया है। वह धोखेबाज लुच्चा है कि हमारे नाम से पैसा वसूल कर दि० जैनसमाज को ठगरहा है। इसलिये जहां वह मिले वहाँ गिरफ्तार कराके हमको टेलीग्राम देवें ताकि ज़ाब्ते की कार्रवाई की जावे। उसने रसीदबुक बिलकुल जाली बनाया है। इस व्यक्ति का हुलिया इस मूजब है कि उसका चेहरा गोल, चेचक के निशान हैं, नाटा कद का है, उमर २८ साल की है। वह जिस जगह मिले वहाँ पुलिस में इत्तला देकर गिरफ्तार करा देवें।

आपका—
सेठ नाथूलाल जैन सर्राफ़
सेक्रेटरी दि० जैन विद्यालय ऋषभदेव (मेवाड़)

आवश्यकता है!

जैन बोर्डिङ्ग हाउस, आगरा के लिये एक धर्माध्यापक की आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार

† धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १८ श्लोक ४०

नोट—जैन अहिंसा के विशद वर्णन के लिये वर्तमान लेखक का "भ० महावीर की अहिंसा और भारत के राज्यों पर उसका प्रभाव" शीर्षक ट्रैक्ट देखना चाहिये।

दिया जायगा। प्रार्थनापत्र में योग्यता का पूरा वर्णन देने के साथ २ यह भी लिखना चाहिये कि कम से कम वेतन कितना स्वीकार होगा। साथ ही प्रमाण पत्रों की प्रतिलिपि ता० २५ सितम्बर तक आनी चाहिये।

—सुन्दरलाल जैन
मंत्री जैन बोर्डिङ्ग हाउस, आगरा।

—श्री मुनि जयचन्द्र महाराज ने अकोला के श्री भा० जैन विधवा रक्षा आश्रम का निरीक्षण करके लिखा है कि इस आश्रम में अनाथ विधवाओं को भरती करके उनकी रक्षा का उत्तम प्रबंध है। मन्त्री कस्तूरचन्द्र जी उत्साह से कार्य करते हैं। आश्रम को सहायता देनी चाहिये।

—धरणगांव में हमेशा की भांति इस वर्ष भी पर्यूषणपर्व आनन्द से मनाया गया। पं० कैलाश-कुमार जी शास्त्री का प्रवचन तत्त्वार्थ सूत्र पर उपदेश होता था। श्रीमान् सेठ नानचन्द पेमासा की तरफ से जलयात्रा निकाली थी। इन दस दिनों में स्थानीय पाठशाला को १८९) की सहायता मिली।

—समुन्दरी ज़िला लायलपुर में कल ४ सितंबर को एक भैंस के पेट से एक कट्टा पैदा हुआ जिसके ८ टांगें, दो मुंह, शिर चार, आंखें दो, पूंछ दो, कान पेट एक ही था। पैदा होते ही मर गया।

—धामावाला की एक मुसलमानी को ऐसा विचित्र बालक पैदा हुआ कि जिसकी गर्दन नहीं थी, आँखें माथे पर थीं और कान कंधों पर। उस बालक की लाश रास-बच्चाघर में बोतल में रक्खी है।

—संसार में सबसे मोटा आदमी डिक्हैरो नामक एक मनुष्य है। उसका वजन ६ मन ३२ सेर है। उसकी कमीज ९ गज कपड़े से बनती है। रेलगाड़ी के साधारण डब्बों में वह नहीं घुस सकता, इस कारण गार्ड के डब्बे में बैठा करता है।

—श्रीमती कल्याणीदेवी ने ६ सन्तानों की माता होने पर भी इस वर्ष कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बी० ए० परीक्षा पास की है।

—इङ्गलैण्ड में बहुतसी ऐसी इमारतें हैं, जो गत ५० वर्षों से बन रही हैं और अभीतक पूरी नहीं हुई हैं। कहा जाता है कि उनके पूरा होने में ५० वर्ष और लगेंगे।

—दुनिया के विभिन्न देशों की खानों से १५०० मन के करीब सोना प्रति वर्ष निकलता है।

—भारतवर्षमें कुल शहरों की संख्या १०२३१६ है और गांवों की संख्या ६ लाख ८८ हजार है।

—अभी डा० कर्णसिंह नामक कृष्णा मिल्स के एक वीवर की स्त्री ने एक ऐसे पुत्र का प्रसव किया है कि जिसके पेशाब करने की इन्द्रिय तो है, परन्तु पाखाना फिरने को कोई स्थान नहीं है। कहते हैं कि उस बालक को पाखाना भी पेशाब करने की इन्द्रिय द्वारा ही होता है। स्थानीय डाक्टर उस बालक की बड़े ध्यान से परीक्षा कर रहे हैं।

—राजोयावास के मेले पर एक औरत भी आई हुई थी। जनता की बड़ी भीड़ वहां एकत्रित हो गई। औरत के काफी लम्बी दाढ़ी और मूछें हैं। यह औरत राजोयावास ग्राम के किसी एक काश्तकार की स्त्री बतलाई जाती है। औरत की उम्र लगभग ४०-४५ वर्ष बतलाते हैं।

१२. जिसके नेत्र पलक पकने और बिना किसी पीड़ा के धोने और न धोने से भी बार बार चिपक आते हों उसे अक्लिन्नवर्त्म तथा क्लिष्ट वर्त्म कहते हैं।

१३. जिस के नेत्र की पलकें सब ओर से उस पलक के चर्म के रंग की फुंसियों से पूरित हों और वे फुंसियां अचल हों उस रोग को बहलवर्त्म कहते हैं।

फ़सली ज्वर (मलेरिया)

जाड़ा देकर या हाथ पैर ठंडे होकर या देह ऐंठ कर जो ज्वर आता है वह फ़सली ज्वर कहलाता है। इसी को अंग्रेज़ी वाले मलेरिया फ़ीवर कहते हैं।

इलाज

१. आक के फूलों में जो घुंडी निकलती हैं वह ४—५ गुड़ में मिलाकर ज्वर से पहले १—१ घंटे पर ३ बार खा लेने से जाड़े का ज्वर नहीं आता।

२. फिटकरी का फूला करके रख लेना चाहिये, ज्वर से पहले १—१ घंटे बाद २ खुराक १—१ रत्ती की बताशे में या गुड़ या चाशनी में या शर्बत-बनफ़शा में खाने से भी जाड़ा नहीं आता।

३. विषखपरा (साठ—पुनर्नवा) को लेकर ३ माशे गुड़ में खावे या अर्क निकाल कर गर्म करके पीवे तब भी फसली बुखार रुक जाता है। विधि पूर्ववत् है।

४. फूली फिटकरी २ तोला, गेरू १ तोला, चूना १ तोला, गोदंती भस्म २ तोला, सबको पीसकर जल में गोली चना बराबर बना लेनी चाहिये; फिर ज्वर से पहले २—२ गोली पान में या गर्म जलसे १—१ घंटे बाद खानी चाहिए। यदि ज्वर से पहिले ६ गोली पेट में पहुँच जायंगी तो जाड़े का ज्वर नहीं आवेगा।

नोट १—यदि कब्ज़ ज़्यादा हो तो एक तोला गुलकंद या ६ माशे हर्ड़ का चूर्ण या सनाय पीस कर उसका ३ माशे चूर्ण गर्म जल या दूध में फांक लेना चाहिये।

नोट २—अगर ज्वर का कोई वक्त ठीक न हो तो ऊपर के प्रयोगों को हर ३—३ घंटे बाद सेवन करना चाहिये। —आपका एक हितैषी।

आधाशीशी पर अनुभूत

[लेखक—पं० हरस्वरूप जी शर्मा]

१. सम्हालू (सञ्जीवन) के पत्तों का अर्क प्रातःकाल ही नाक में सुंघाने से या २-३ बूंद नाक में टपकाने से अवश्य लाभ होता है।

२. बिन्दाल का पानी नाक में टपकाने पर भी लाभ अवश्य होता है।

३. नकछीकनी घास ३ तोले, कश्मीरी पत्ता १, मग़ज़कद्दू ६ माशे, बड़ी इलायची ६ माशे, स्याह मिर्च १ माशा; इन सबको घोट कर कपड़छन कर लें। इसके सूंघने से आधाशीशी व मस्तक पीड़ा को लाभ होता है।

प्रश्न नं० १ के उत्तर

[१] राजवैद्य पं० बाबूलाल जी जैन भिषगरत्न कलकत्ता लिखते हैं कि मस्तिष्क में रक्त की बाहुल्यता और पित्तोल्वण होने से आंखों में रेत सा घूमता रहता है।

त्रिफला जल से नित्य मस्तक स्नान करना, कमल का शर्बत पीना; बादाम, खीरा, कद्दू, पोस्ता एवम् काहू के मग्ज़ों का तैल शिर पर मलना चाहिये।

[२] पं० रघुनाथप्रसाद जी वैद्य बिजनौर लिखते हैं कि मन्दाग्नि के कारण ऐसा होता है।

नित्य कई बार नेत्रों को त्रिफला जल से धोवें; त्रिफले का शर्बत पीवें; मेंहदी पीस कर गुदा स्थान पर बांधें।

Regd. No. A. 2379

उपहारी टिकिट ! उपहारी टिकिट !

"दर्शन" २॥)

के ग्राहक हो जाने से आपको

बारह आने की पुस्तकें तो अवश्य मिलेंगी

संभव है पांच रुपये की पुस्तकें भी मिल जावें।

'दर्शन' के केवल ४०० ग्राहक होजाने पर

३९० पीले और १० लाल रंग के उपहारी टिकिट

रक्खे जायँगे

लाल टिकिट पाने वाले सज्जनों को

५) मूल्य की पुस्तकें

और

पीले टिकिट वालों को बारह आने की पुस्तकें

* बिना मूल्य भेंट की जायँगी *

यह ४००) की पुस्तकों का उपहार बिजनौर निवासिनी श्री० चम्पाबाई जी धर्मपत्नी स्वर्गीय ला० बिहारीलाल जी अपने चतुर्दशी व्रत के उद्यापन में "दर्शन" के सर्व प्रथम बनने वाले उन ४०० ग्राहकों को भेंट करेंगी जो 'दर्शन' का पूरा मूल्य २॥) भेज कर ग्राहक बन जायँगे। —प्रकाशक "दर्शन"

मुन्शी अयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रकट किया।

बड़ा ज़रूरी! वार्षिकमूल्य न भेजने वालों से तथा

वी॰ पी॰ वापस कर देने वालों से।

मान्यवर! सादर जुहारु!

आप जानते हैं "दर्शन" मुफ्त में नहीं छप जाता— छपाई देनी पड़ती है, काग़ज़ का मूल्य देना पड़ता है, काम करने वालों को तनख्वाह भी देनी पड़ती है, डाक महसूल देना ही पड़ता है—, तिस पर भी "जैनदर्शन" तीन मास से भारतवर्ष के जैन जाति नेताओं, श्रीमानों, वकील मुख्तारों आदि पढ़े लिखे लगभग ८००-९०० विद्वानों के पास प्रतिपक्ष बिना मूल्य ही भेजा जा रहा था। हर अङ्क में, यह प्रार्थना छापी जाती रही थी कि—"कृपया वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजें और यदि आप इस पत्र के ग्राहक बनना नहीं चाहते हों तो कृपया "दर्शन" को लौटा दें या)॥। का कार्ड लिख कर मना कर दें, नहीं तो आगामी अङ्क आपकी सम्मति समझ वी॰ पी॰ द्वारा भेजा जायगा, जिसमें व्यर्थ ही ।=) पैसे की आपको या संस्थाको हानि उठानी पड़ेगी"। तब कुछ कृपालुओं ने वार्षिक मूल्य का मनीआर्डर भेजा, कुछ ने पत्र ही वापस कर दिया या इन्कारी चिट्ठियां लिख दीं, किन्तु अधिकाँश ने कुछ भी नहीं किया।

हमने ४ अङ्क तक तो किसी को भी वी॰ पी॰ किया ही नहीं, किन्तु ५ वां अङ्क लगभग १०० उन महानुभावों के नाम अपनी पूर्व सूचनानुसार वी॰ पी॰ कर दिये, जिन्हें हमने श्रीमान विद्वान समझा। किन्तु दुःख है कि उन १०० वी॰ पी॰ में से लगभग २० वी॰ पी॰ वापस आ गये और संस्था को छपाई आदि खर्चों के अतिरिक्त ।) प्रति वी॰ पी॰ की व्यर्थ ही हानि उठानी पड़ी; समय नष्ट हुआ सो अलग।

यह देखकर हमारी तो समझमें ही नहीं आता कि इन वी॰ पी॰ वापस करने वालों ने शास्त्रार्थ संघ जैसी धार्मिक एवं उपयोगी संस्था को, बराबर एक वर्ष तक सेवा करने के बदले में भी, यदि केवल ३) सहायता देना भी उचित नहीं समझा तो फिर २-३ मास तक उसका पत्र बिना मूल्य रख कर, फिर उसके वी॰ पी॰ को लौटा कर, उसको व्यर्थ ही में इतनी बड़ी हानि किस उद्देश्य से पहुंचाई— एक होनहार नवजात शिशु को हानि के इतने बड़े गढ़ढे के नीचे कुचल डालने का भाव ही क्यों पैदा हुआ? क्या केवल अपने २॥) या ३) बचाने के लिये? यह रुपये तो केवल हमारा भेजा अङ्क ही वापस करके बचा सकते थे, किन्तु वैसा न कर वी॰ पी॰ को क्यों वापस किया? इसको वे जानें। अस्तु—

अब हमारी वी॰पी॰ वापिस कर देने वाले महानुभावों से सनम्र प्रार्थना है कि यदि वी॰पी॰ आपके प्रमाद से हमें वापस हो गई है तो कृपया अब उपहारी पोस्टेज व गत वी॰पी॰ खर्च सहित २॥।=) मनीआर्डर से तुरन्त भेज दीजिये और यदि जान बूझ कर वी॰पी॰ वापस की हो तो कम से कम ।) वी॰ पी॰ खर्च के ही मनीआर्डर से भेज दें। साथ ही जितने अङ्क "दर्शन" के आपके पास मौजूद हों वे भी वापस कर दें। आपकी इस सहायता के लिये भी संस्था अत्यन्त आभारी रहेगी।

जो सज्जन हमारी इस प्रार्थना पर भी ध्यान देने की कृपा नहीं करेंगे, उन—अपने प्रमाद या बेपरवाही से दूसरोंको व्यर्थही हानि पहुंचाने वाले—विद्वानोंकी शुभ नामावली आगामी अङ्कोंमें इसलिये प्रगट की जायगी, जिससे कि अन्य पत्र-प्रकाशक उनके नाम के बड़प्पन के धोके में न फंसें।

जिन महानुभावों ने अभी तक भी वार्षिक मूल्य नहीं भेजा है उनसे प्रार्थना है कि वे अब भी या तो २॥) मनीआर्डर से भेज कर हमारी सहायता करें, नहीं तो इस अङ्क को तुरन्त वापिस कर दें या इंकारी लिख दें। अन्यथा आगामी अङ्क उनकी सेवा में भी २॥) की वी॰ पी॰ से अवश्य भेजा जायगा। आशा है वे उसे छुड़ाकर संस्था को हानि से बचाने की कृपा अवश्य करेंगे। विनीत:—प्रकाशक

उपहारी टिकिट !　　　　　　　　　　उपहारी टिकिट !

"दर्शन" २॥)

के ग्राहक हो जाने से आपको

बारह आने की पुस्तकें तो अवश्य मिलेंगी

संभव है पांच रुपये की पुस्तकें भी मिल जावें।

'दर्शन' के केवल ४०० ग्राहक होजाने पर

३९० पीले और १० लाल रंग के उपहारी टिकिट

रख जायँगे

लाल टिकिट पाने वाले सज्जनों को

५) मूल्य की पुस्तकें

— और —

पीले टिकिट वालों को बारह आने की पुस्तकें

*** बिना मूल्य भेंट की जायँगी ***

यह ४००) की पुस्तकों का उपहार बिजनौर निवासिनी श्री० चम्पादेई जी धर्मपत्नी स्वर्गीय ला० बिहारीलाल जी अपने चतुर्दशी व्रत के उद्यापन में "दर्शन" के सर्व प्रथम बनने वाले उन ४०० ग्राहकों को भेंट करेंगी जो 'दर्शन' का पूरा मूल्य २॥) भेज कर ग्राहक बन जायेंगे।

—प्रकाशक "दर्शन"

तारीख १ अक्तूबर सन् १९३३ ई०

श्री जिनाय नमः
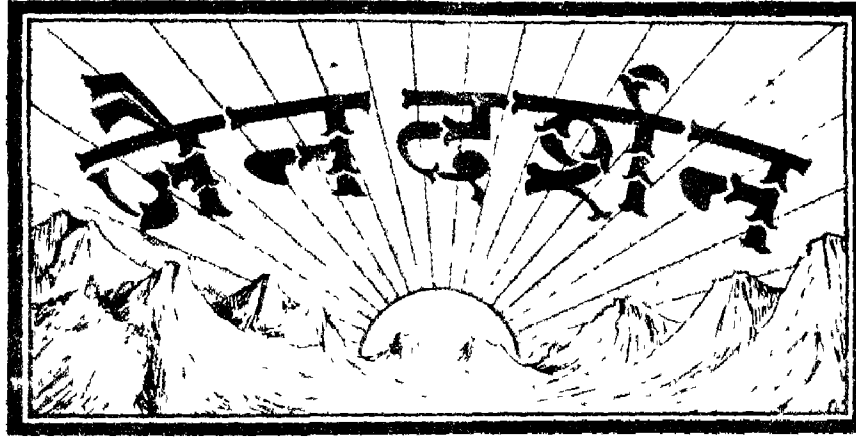
भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क ९

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। } —ऑनरेरी सम्पादक— { पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

जैन दर्शन का विशेषाङ्क !

बसन्तपञ्चमी तक जैनदर्शन का एक स्याद्वाद-अंक नामक विशेषाङ्क प्रकाशित होगा, जिसमें कि स्याद्वाद विषय पर अपूर्व लेख रहेंगे, पृष्ठ संख्या लगभग सौ सवासौ होगी। मूल्य १) एक रुपया होगा। 'दर्शन' के ग्राहकों को मुफ्त ही मिलेगा। यह अङ्क स्याद्वाद विषय पर अनूठा रहेगा। इसका सम्पादन एक दूसरे विद्वान करेंगे। विशेष विवरण आगामी अङ्क में देखिये।

—सम्पादक।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

हार्दिक धन्यवाद !

श्रीमान् पं० वंशीधर जी जैन, बीना (सागर) ने "दर्शन" के ३ ग्राहक बनाकर उनका चन्दा मनीआर्डर से भेजा है। पंडित जी की इस सहायता के लिये "दर्शन-स्टाफ" अत्यन्त आभारी है। आशा है "दर्शन" के अन्यान्य प्रेमी भी आपका अनुकरण करेंगे। —प्रकाशक।

'जैनदर्शन' पर लोकमत !

राजपंडित श्रीमान् पं० ए० शांतिराजैया जी न्यायतीर्थ मैसूर लिखते हैं कि— जैनदर्शन को देख कर और उसको ध्यान से पढ़ कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। इसका प्रत्येक लेख महत्वशाली है। विरुद्ध लेखों का प्रतिवाद विद्वत्ता से किया जाता है। इस पत्र की इस समय बहुत आवश्यकता थी। मैं हृदय से इसकी उन्नति चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि जैन समाज इसको सादर अपनावेगा।

श्रीमान कवि कल्याणकुमार जी शशि—जैनदर्शन प्रत्येक दृष्टि से अच्छा निकला है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें किसी प्रकार की ठूंस ठाँस नहीं है।

श्री दि० जैन विद्यालय किशनगढ के मंत्री श्रीयुत चांदमल जी काला—कतिपय मनचले व्यक्ति जैनधर्म का शुद्ध रूप बिगाड़ने की चेष्टा कर रहे हैं; अतएव इस समय एक ऐसे ही पत्र की आवश्यकता थी, इस कमी को जैनदर्शन ने पूरा किया है। जैनदर्शन के दो अंक हमारे सामने हैं। लेख उच्चकोटि के हैं पठनीय तथा मननीय हैं। जैनदर्शन वास्तव में जैनदर्शन है, अथक परिश्रम का फल है। हम इसकी हृदय से उन्नति की कामना करते हैं।

श्रीमान पं० शंकरलाल जी सम्पादक 'वैद्य' लिखते हैं—जैनदर्शन के मैंने कई अंक देखे हैं, जो कि एक दूसरे से बढ़कर अच्छे तथा उपयोगी हैं। मैं हृदय से जैनदर्शन का स्वागत करता हूं।

तर्करत्न पं० केन्द्रकुमार जी शास्त्री पारगुगांव—जैनसमाज की एक बहुत भारी कमी को दि० जैनशास्त्रार्थ संघ के मुखपत्र जैनदर्शन ने पूरा किया है। इसके लेख मनोहर, उपयोगी तथा जैनसिद्धान्त पोषक हैं। सिंहवृत्ति से यह सिद्धान्त-विरुद्ध लेखों का प्रतिवाद करता है।

श्रीमान पं० सुरेशचन्द्र जी न्यायतीर्थ—जैनदर्शन के मैंने चार अंक पढ़े हैं, प्रसन्नता हुई कि शास्त्रार्थ संघ ने अन्य कमी पूर्ति करने के समान जैनदर्शन प्रकाशित करके समाज की एक महती त्रुटि की पूर्ति की है। जैनदर्शन के लेख सजीव, प्रभावक, प्रतिभापूर्ण हैं। इसकी अनेक लेखमालाएं भिन्न २ आवश्यक विषयों का स्पष्ट खुलासा कर रही हैं। जैन दर्शन का उत्कर्ष चिरस्थायी हो ऐसी मेरी भावना है। धर्म प्रेमी, समाज हितैषी महानुभाव जैनदर्शन की ग्राहक संख्या बढ़ाकर सहायता प्रदान करें।

श्रीमान ला० भगवत्स्वरूप जी—आपका प्रयत्न प्रशंसनीय ही नहीं, बल्कि अनुकरणीय भी है। एक शब्द में 'जैनदर्शन' उन्नतिमार्ग का भावी पथिक जान पड़ता है। यह निश्चय है कि अगर 'जैनदर्शन' जैनदर्शनानुकूल ही रहेगा तो एक दिन निकट भविष्य में सभी जैनपत्रों में सर्वश्रेष्ठ माना जावेगा।

रतलाम निवासी श्रीमान सरदार मथरलाल जी जैन यदुवंशी भाटी—जैनदर्शन का दूसरा अंक मिला, पत्र का संपादन बहुत योग्यता के साथ प्रशंसनीय हुआ है। आशा है पत्र शीघ्र अच्छी उन्नति करेगा।

विनीत—**प्रकाशक "जैन दर्शन", बिजनौर (यू० पी०)**

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽस्ति मर्भाभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधकल्पवृक्षो, भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ { बिजनौर, असौज शुक्ला ३—श्री 'वीर' नि० सं० २४५६ } अङ्क ६

संबोधन !

[रचयिता—ब्रह्मचारी प्रेमसागर पञ्चरत्न]

बनो मत बन्धु विवेक विहीन !
बिना विवेक नीर के भीतर कंठ छिदाता मीन ।
हिरण विवेक बिना फँस जाता सुन कर मधुरी बीन ॥
बनो मत बन्धु विवेक विहीन !
रहित विवेक पतंग दीप पर हो जाते हैं लीन ।
किन्तु प्राण खोकर ही रहते चक्षु विषय के दीन ॥
बनो मत बन्धु विवेक विहीन !
हाथी रहित विवेक काम वश हो जाता मति हीन ।
हथिनी के धोके में आकर, होता पर आधीन ॥
बनो मत बन्धु विवेक विहीन !
अलि विवेक बिन कमल कर्णिका में होता आसीन ।
गंध-ग्रहण में मुग्ध हुआ करता है प्राण विलीन ॥
बनो मत बन्धु विवेक विहीन !
बिन विवेक नहि कार्य सफल हो दिल में करो यक़ीन ।
इससे "प्रेम" विवेक प्राप्त कर, शिक्षा देत प्रवीण ॥ बनो० ॥

अशान्ति का बीज वपन !

जैन समाज ने अपनी पतित दशा के अभ्युदय के लिये जैनपत्रों को जन्म दिया है। अतएव उद्देश के अनुसार जैनपत्रों को जैनसमाज की उन्नत दशा के लिये जी तोड़ कर उद्योग करना चाहिये था, किन्तु आज उससे ठीक विपरीत हो रहा है। हमारे जैनपत्र समाज को बलात् अवनति के गड्ढे में धकेल रहे हैं।

जिन पत्रों की नीति धर्मानुकूल समाजसुधार का आदर्श मार्ग दिखलाने की थी, वे ही जैनपत्र अपने हृदय का कूड़ा करकट धर्म का नाम लेकर समाज में बखेर रहे हैं। जिस कुमार्ग के अवलम्बन से धार्मिक ह्रास व सामाजिक विनाश सन्मुख आता है, हमारे हितैषी कतिपय जैनपत्र समाज को उसी मार्ग पर चलाना चाहते हैं।

कुछ अखबार ऐसे रद्दी निकम्मे लेखों से अपना कलेवर पूरा किया करते हैं जिनसे कि व्यर्थ में कागज़ काले होते हैं और पाठकों का अमूल्य समय नष्ट होता है। बहुत से मनचले लेखक अपने स्वार्थवश किसी बहाने की आड़ लेकर किसी प्रतिष्ठित महानुभाव पर अनुचित गाली बरसा देते हैं; संपादक जी की कुछ प्रशंसा करदी कि लेख छप जाता है।

कुछ संपादक महानुभाव भी किसी विषय की समालोचना की आड़ में लेकर विष उगलते रहते हैं, जिससे कि विचारशील-सहृदय मनुष्यको कहना पड़ता है कि धर्म और समाज का विनाश इन पत्रों (अखबारों) के द्वारा हो रहा है।

अभी भाद्रपद में एक पत्र में एक व्यक्ति का लेख छपा था, जिसमें श्रीमान ब्र० गणेशप्रसाद जी वर्णी, पं० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य, पं० वंशीधर जी न्यायालंकार इन्दौर, पं० देवकीनन्दन जी शास्त्री, प० कैलाशचन्द्र जी न्यायतीर्थ आदि विद्वानों को सुधारकों के लकड़दादा, अधर्मपोषक, नास्तिकों के सहायक आदि विशेषणों से विभूषित किया था तथा ब्यावर, मुरेना, जयपुर आदि २-४ विद्यालयों को छोड़ कर शेष सभी विद्यालयों को अधर्मप्रचारक विद्यार्थी उत्पन्न करने की मशीन बतलाया था।

समन्तभद्र शिक्षामंदिर की आयोजना करने पर श्रीमान ब्र० गणेशप्रसाद जी वर्णी पर समा-

लोचना के बहाने जो नित्य नये तरह तरह के अनुचित ढंग से, अनुचित शब्दों में आक्षेप हो रहे हैं उसको समाज देख ही रहा है। अब वे पत्र-संपादक ही स्वयं बतलावें कि उनके ऐसे लेख जैनसमाज का भला करेंगे अथवा अशान्ति का पौदा हरा भरा करेंगे?

एक तो दुर्भाग्य से जैनसमाज में अपना उल्लू सीधा करने के लिये कलहप्रिय महानुभावों की वैसे ही कमी नहीं, फिर ये संपादक महाशय भी दियासलाई रगड़ने आ गये; अब सिवाय विद्वेषवह्नि बढ़ने के और क्या होगा।

अतः संपादक महानुभावों को सचेत होकर अपना पद देख कर लेखनी चलानी चाहिये—विद्वेष फैला कर वे समाज के कृतघ्न साबित होंगे। उन्हें यदि किसी विषय की समालोचना करनी हो तो शक्ति भर खूब जोर से करें; युक्तियों की बौछार से उस विषय को खोखला कर दें, किन्तु उसमें असभ्यता तथा कटुता न आने दें, सम्मान्य व्यक्ति पर आक्षेप न होने दें।

उन्हें यदि शिक्षापद्धति पर लिखना है तो वे सहर्ष अकाट्य युक्तिबल से अपना विषय समाज के सामने ऐसी दृढ़ता से उपस्थित करें कि समाज उसके सामने झुक जावे, किन्तु यह न हो कि जिन विद्वानों से अपना निजी द्वेष है उन्हीं को अपने कलमकुठार का निशाना बनाने की कृपा करें—उन विद्वानों से संबन्धित उपयोगी संस्थाओं को व्यर्थ दूषित कर डालें।

अन्य व्यक्ति पर आक्षेप करते समय जरा अपने ऊपर दृष्टिपात कीजिये कि स्वयं आप कितने मलीन हैं। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो संपादकी छोड़ दीजिये, व्यर्थ को वायु-मंडल गंदा न कीजिये, जैनधर्म प्रचार और जैनसमाज के अभ्युत्थान के लिये अभी आपको बहुत कुछ करना है।

हमारे नवयुवक

नवयौवन वह सुहावना समय है जो कि जीवन में सबसे अधिक सौन्दर्य, उत्साह, बल, साहस प्रदान करता है; नवयौवन का समय ही मनुष्य-जीवन का मार्ग निश्चित करता है। अत एव इस समय यदि मनुष्य विवेक, गम्भीरता और सहनशीलता से हाथ धो बैठे तो अनेक अनर्थकारी कार्यों में उतर सकता है। इसीलिये नीतिकारों ने यौवन समय अनर्थ का कारण बतलाया है। इन बातों को सामने रखते हुए मानना पड़ेगा कि नवयौवन (नौजवानी) एक बहुत नाजुक समय है जिसमें कि सावधान रहने की बहुत भारी आवश्यकता है। प्रबल वायु के झोंके इसी अवस्था में चरित्र-भ्रष्ट करके नीच मार्गपर धकेल देते हैं और बुद्धिमान पुरुष को सच्चरित्र बनाकर उन्नत मार्ग पर चढ़ा देते हैं। इस कारण नवयौवन अनुपम सुनहरा समय है।

इस नवयौवन समय में बलकी प्रधानता रहती है, इस अवस्था में मनुष्य का वीर्य पक जाता है, शरीर के अंगोपांग दृढ़ होना प्रारंभ होते हैं, इसकी झलक मनुष्य के प्रत्येक अंग से फूट फूट कर झलकती है। मुखपर लाल रंग की हलकी चमकीली झलक, भुजा, छाती, जाँघों का सुडौल उभार मनुष्य की सुन्दरता को बिना बुलाये शरीर में खींच लाते हैं। यह अवस्था मनुष्य में प्रायः कम से कम १८ वर्ष की आयु में प्रगट होती है। अतः

इस समय को बलवान बनाने का प्रारंभ काल कहना चाहिये।

किन्तु खेद है कि हम जिस नवयौवन की संक्षिप्त व्याख्या कर रहे हैं वह व्याख्या हमारे जैन नवयुवकों में नहीं पाई जाती। हमारे नवयुवक ८५ प्रतिशतक (फ़ीसदी) बल्कि इससे भी अधिक बलहीन, दुर्बल, पके आम की तरह पीले, बेत की तरह लचकदार पतले, वैद्य डाक्टरों के उपासक पाये जाते हैं। उनकी धंसी हुई छाती, बैठा हुआ चेहरा इस बात को प्रगट करता है कि शायद इनको खाने पीने का कष्ट होगा।

अब बताइये कि ऐसे नवयुवक क्या तो अपना गृहस्थाश्रम चलावेंगे और क्या आदर्श सन्तान को जन्म देंगे और क्या उनसे धार्मिक सेवा तथा समाज सेवा होगी, एवं क्या वे अपना निर्खेद, सुख जीवन बितावेंगे? जब कि धर्म, कर्म की उन्नति अपने बलवान शरीर पर निर्भर है तब इन नवयुवकों से किस बात की आशा की जा सकती है?

इसलिये जो महानुभाव जैन समाज का उद्धार तथा जैनधर्म का व्यापक प्रचार करना चाहते हैं उनको सबसे प्रथम नवयुवकों को बलवान बनाना चाहिये तथा नवयुवकों को भी उन्नति पथ में अपने आपको उपयोगी बनाने के लिये बलवान बनना चाहिये। यह कार्य न तो असाध्य है और न कष्टसाध्य है, केवल लक्ष्य देनेकी आवश्यकता है।

बलवान बननेका सबसे सरल उपाय व्यायाम (कसरत) करना है। हमारा शरीर एक मशीनघर है। मशीन का यह नियम है कि वह यदि चलती रहे तब तो ठीक रहती है अन्यथा बन्द रखने से उस पर ज़ंग चढ़ जाता है, तदनुसार शरीर की मशीन को जब तक व्यायाम, परिश्रम से खूब हिलाया चलाया न जावे तब तक वह ठीक नहीं रह सकती; इसके यंत्र ढीले निकम्मे हो जाते हैं। इस कारण जिस तरह मशीन को तेज़ हलका चलने के लिये तेल की आवश्यकता होती है उसी तरह शरीर को भी भोजन की आवश्यकता तो होती है किन्तु वह भोजन लाभकारक तभी होता है जब कि शरीर के यंत्र खूब हिलते चलते रहते हैं।

व्यायाम न करने से जहां शरीर के यंत्र ढीले हो जाते हैं वहाँ किया हुआ भोजन भी पर्याप्त अच्छा रस शरीर में तयार नहीं कर पाता, क्योंकि शरीर की जठराग्नि (बिना व्यायाम-परिश्रम किये) मंद होती है, उस मंद अग्नि पर पचे हुए भोजन में से रस अच्छी तरह नहीं निकल पाता। जिस तरह कि धीमी अग्नि पर चढ़ी हुई जड़ी बूटियों से रस (अर्क) अच्छी तरह नहीं निकलता, ठीक वैसी ही दशा मंद जठराग्नि से पचे हुए भोजनकी है। जिस मनुष्य की जठराग्नि (भोजन पचाने वाली पेट की अग्नि) जितनी अधिक प्रबल होती है, किये हुए भोजन से उतना ही अधिक रस उस मनुष्य के शरीर में निकलता है। [क्रमशः]

सम्राट् पंचम जार्ज की दैनिक चर्या

इंगलैंड, भारतवर्ष, अफ्रिका आदि अनेक देशों पर शासन करने वाले सम्राट् पंचम जार्ज इस समय ६९ वर्ष के हैं, किन्तु फिर भी वे कितने कर्तव्य परायण हैं यह बात उनकी नीचे लिखी दिनचर्या से प्रगट होती है। हमारे भारत वर्ष के राजे तथा धनिक लोग जिस प्रकार अंग्रेज़ी फैशन तथा रहन सहन की नकल करके अपने आपको अंग्रेज़ों की श्रेणी में मिला देने का उद्योग करते हैं उसी प्रकार वे अंग्रेज़ों से समय की अमूल्यता का पाठ नहीं सीखते।

हमारे सेठ, रईस लोग अपना समय आवश्यक धार्मिक, सामाजिक अभ्युदय में न लगाकर प्रायः भोग विलास, दुर्व्यसनों में खो दिया करते हैं। उनका धन भी उपयोगी, उपकारक कार्यों में न लगकर प्रायः फ़िज़ूल खर्ची में स्वाहा होता रहता है। ऐसे लोग सम्राट् पंचम जार्ज की नीचे दी हुई दिनचर्या पढ़कर अपने नेत्र खोलें :—

"प्रातःकाल आठ बजे के समय महाराज पंचम जार्ज एक विशेष कमरे—स्टडी—में आकर बैठते हैं। वहां उन्हें डेस्क पर ढेर के ढेर कागज़ात सजाये हुए मिलते हैं, जिनमें आफ़ीशियल तार, सरकारी कागज़ पत्र तथा आवश्यक राजकीय चिट्ठियां रहती हैं। एक दूसरे ऊँचे डेस्क में प्रातः कालीन समाचार-पत्र फैलाकर रखे रहते हैं। प्रत्येक तार और पत्र पर यथोचित उत्तर के लिये नोट लिखकर, समाचार-पत्रों पर सरसरी निगाह डाल कर, सम्राट् एक घण्टे तक अपने महल के बाग में पर्यटन के लिये चले जाते हैं। उसके बाद आकर नाश्ता करते हैं। कभी-कभी वह अकेले ही नाश्ता करते हैं, कभी रानी आकर उनके पात्र में चाय उंडेलती हैं। अनेक समयों पर राजकीय अतिथियों के साथ उन्हें नाश्ता करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर वह राज्य-सम्बन्धी कार्यों की चिन्ता भूल जाते हैं और रानी तथा बच्चों के साथ हंसी-खुशी की बातें करते हैं।

गृहस्थी के प्रबन्ध के मामले में भी राजा-रानी ठीक उसी प्रकार लगे रहते हैं जैसे अन्यान्य कुटुम्बों के लोग। रानी जब किसी पारिवारिक आवश्यकता के खर्च का प्रस्ताव करती हैं, किन्तु जार्ज उस खर्च में कुछ कमी करने और किफायतशआरी से चलने की राय देते हैं, पर अन्यान्य पतियों की तरह उन्हें अन्त को अपनी पत्नी ही की बात मानने को बाध्य होना पड़ता है।

नाश्ते के बाद 'हिज़ मैजेस्टी' अपने 'आफ़िस रूम' में पदार्पण करते हैं और वहां उनके प्राइवेट सेक्रेटरी सर क्लाइव विग्राम उनके सामने नयी आई हुई डाक पेश करते हैं। उनकी निजी (राजकीय नहीं) डाक का परिमाण इतना अधिक, इतना विविध, होता है, जितना अन्य किसी भी लोक-विख्यात व्यक्ति का नहीं होता। उदाहरण के लिये 'सेम्पल' के लिये आई हुई चीज़ों ही को लीजिये। केवल एक सप्ताह के भीतर पांच हज़ार से अधिक सिगार, बतौर नमूने के, उनके पास विभिन्न फर्मों से आते हैं! एक छोटी सी चीज़ का

जब यह हाल है, तब अन्यान्य सहस्रों वस्तुओं का ढेर कितना बड़ा न होता होगा!

सम्राट् की व्यक्तिगत डाक के चार्ज में सर क्लाइव विग्राम ही रहते हैं। इस डाक को संभालने, उन्हें सजाकर तरतीबवार फाइलों में रखने, उत्तरों के टाइप करने तथा अन्यान्य कामों के लिये सर क्लाइव विग्राम के आधीन छः स्त्री सेक्रेटरी रहती हैं। ये स्त्रियां सब अविवाहिता होती हैं और उनके लिये पूर्णतः विश्वासपरायण होना आवश्यक है। उनके नाम सर्वसाधारण को मालूम नहीं कराये जाते।

आफ़िस के बाद किङ्ग जार्ज एक बड़े ड्राइंग रूम में जाकर दर्शनार्थियों से मिलते हैं। प्रतिदिन साम्राज्य के विभिन्न भागों से उनके दर्शन के लिये लोग आया करते हैं। उनमें सभी प्रकार के लोग होते हैं—सिपाही, नाविक, राजनीतिक, उपनिवेशों के राजकीय कर्मचारी, वैज्ञानिक, लेखक, डाक्टर, विदेशों के प्रतिनिधि, इत्यादि। प्राइवेट सेक्रेटरी से सबके सम्बन्ध में पहले परिचय प्राप्त करके सबके सम्बन्ध में सलाह लेकर 'हिज़ मैजेस्टी' प्रत्येक के साथ काम की बातें करके, उसे विदा करते हैं। मिलने वालों की संख्या कितनी भी अधिक हो, वह उकताते नहीं।

इसके बाद वह लंच (मध्याह्न भोजन) के लिये जाते हैं।

राजाओं के ईश्वरीय अधिकार (Divine Right) पर उनका विश्वास है। नाव में बैठकर जलक्रीड़ा करना उन्हें बहुत पसन्द है। थियेटर अलीम्पिया, टूर्नामेन्ट, प्रदर्शनी, 'फ्लावर शो' आदि में भी वह दिलचस्पी लेते हैं। जब वह थियेटर में 'रायलबक्स' पर बैठते हैं, तब बीच बीच में नाटक रचयिताओं तथा दो एक ऐक्टरों और ऐक्ट्रेसों को वहां बुलाकर उनसे दो-एक बातें कर लेते हैं।

महल के दुमंज़िले में किङ्ग जार्ज का विशाल शयन-कक्ष है। रात्रिभोजन के बाद, जब कोई अतिथि नहीं होते, तब वह दिनभर की थकावट के बाद रानी का साथ देते हैं। वह रानी को बहुत प्यार करते हैं। कभी-कभी रात को भोजन के बाद उत्सुकता-पूर्वक रेडियो सुनने में दत्तचित्त हो जाते हैं।

राजकीय कार्यों के भार से उन्हें शायद ही किसी दिन मुक्ति मिली हो। विगत वर्ष राज-परिवार को तीन सौ से भी अधिक सार्वजनिक कार्यों में शरीक होना पड़ा। उन्हें ४,७०,००० पौंड, सिविल लिस्ट के अनुसार, मिलते हैं। यह रकम काफ़ी है, इसमें सन्देह नहीं; पर सब प्रकार के आफिशियल खर्चों के बाद जो कुछ उनके निजी खर्च के लिये बचता है, वह उनके राज्यान्तर्गत बहुत से धनिकों की आमदनी से भी बहुत कम है। देश की आर्थिक दुर्दशा देखकर पिछले वर्ष जब उन्होंने ५०,००० पौंड प्रतिवर्ष अपनी तनख्वाह में से छोड़ देने की घोषणा की, तब वह साधारण त्याग नहीं था। इस समय उनकी ६९ वर्ष की अवस्था है।

—शिक्षा

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[४]

अपने देखे हुए दुःस्वप्नों का फल सुनकर चन्द्रगुप्त चकित रह गया। भयानक, विशाल शत्रु सेना से भी भय न खाने वाला वीर सम्राट प्रजा के असह्य भविष्य को देख कर भय-भीत हो गया। उसकी रसना कुछ समय के लिये बाहर से रुक कर भीतर ही भीतर चन्द्रगुप्त से कहने लगी कि चन्द्रगुप्त! तू किस धोखे में फंसा हुआ है, तेरे ये नेत्र जो कुछ बाहर देख रहे हैं वास्तव में सपना तो वह है। रात को सोते समय तेरे भीतरी नेत्रों ने जो कुछ देखा है वह तो एक सत्य दुर्घटना का रंगीन चित्र है, जिसको कि कुछ एक दिनों में तू ही क्या सारा संसार प्रत्यक्ष देख लेगा। तुझे अभिमान है कि मैं भारतवर्ष का एक छत्र सम्राट हूं, मेरा प्रताप शेर बकरी को एक घाट पर पानी पिलाता है, मेरा सुशासन प्रजा को दुख की बौछार नहीं आने देता, परन्तु देख, थोड़े दिन में ही देख, तेरा यह अभिमान चूर चूर हो जायगा, विकराल दुष्काल का पंजा तेरी प्यारी प्रजा पर इस तरह पड़ेगा कि उसको हटाने की तुझमें सामर्थ्य नहीं होगी। तू देखता रहेगा और तेरी प्रजा अकाल के गाल में पहुँच कर मृत्यु का पेट पूरा करेगी।

इन विवेक भरी बातों को स्वयं चन्द्रगुप्त ने ही कहा और चन्द्रगुप्त ने ही सुना; समीपवर्ती मनुष्य भी न समझ सके कि हमारा दयालु सम्राट् क्या कुछ कह सुन रहा है।

अन्त में चन्द्रगुप्त ने भीतर ही भीतर निर्णय किया कि जिस राजसिंहासन पर बैठ कर मैं अपनी प्रजा की भी रक्षा न कर सकूं वह राज-सिंहासन व्यर्थ है और मेरा सम्राट होना भी एक कल्पित बात है, इस कारण सच्चा साम्राज्य प्राप्त करने के लिये ही मेरा उद्योग होना चाहिये।

यह निर्णय करके चन्द्रगुप्त श्री भद्रबाहु स्वामी को वंदना करके उद्विग्न चित्त होकर घर वापिस लौट आया। वहां आकर उसने अपना निर्णय सबके सामने रख दिया और जिस भारतवर्ष का साम्राज्य पाने के लिये चन्द्रगुप्त ने अनेक कष्ट स्वयं सहन किये थे तथा दूसरे अनेक लोगों को अपार कष्टसागर में धकेल दिया था, नन्दराजवंश का सत्तानाश किया था, उस प्यारे साम्राज्य को दुख-कर भार समझ कर अपने कंधे से उतार डाला; वह राजमुकुट जो पहले चन्द्रगुप्त को भारतवर्ष का सम्राट बुलवाता था चन्द्रगुप्त ने स्वयं अपने हाथों से अपने पुत्र बिन्दुसार के शिर पर रख दिया।

चन्द्रगुप्त अपने विपुल साम्राज्य का स्वामी अपने पुत्र बिन्दुसार को बनाकर आप भद्रबाहु स्वामी के पास जा पहुँचा और उनसे साधु दीक्षा लेकर साधु बन गया। चन्द्रगुप्त का दीक्षित नाम प्रभाचन्द्र रक्खा गया, किन्तु व्यवहार में वह अपने प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त नाम से ही पुकारा जाता था।

एक दिन भद्रबाहु स्वामी सेठ जिनदास के घर भोजन करने गये; वहां पर एक छोटे बच्चे ने

भद्रबाहु स्वामी से कहा कि 'जाओ, जाओ'। आचार्य महोदय अन्तराय समझ कर विना भोजन किये वापिस लौट आये, किन्तु उस अबोध बच्चे ने अपने घर में आने से भद्रबाहु स्वामी को क्या रोका? इस बात का विचार भद्रबाहु आचार्य ने अपने निमित्त ज्ञान से किया। निमित्त ज्ञान से उन्होंने निर्णय किया कि अब इस प्रान्त में बारह वर्ष का घोर अकाल पड़ने वाला है, जिससे कि यहाँ पर साधुओं को निर्दोष भोजन मिलना असंभव हो जायगा।

तदनन्तर श्री भद्रबाहु आचार्य ने समस्त साधु-संघ को जिसमें कि अपने अपने संघ के स्वामी अनेक आचार्य भी थे अपने पास बुलाया और उन समस्त चौबीस हज़ार साधुओं से शीघ्र आने वाले लगातार बारह वर्ष के अकाल का समाचार कह सुनाया तथा उनको आदेश दिया कि पवित्र मुनिचर्या को निर्दोष क़ायम रखने के लिये इस प्रान्त को छोड़ कर कर्णाटक की ओर दक्षिण देश के लिये प्रयाण कर दो, क्योंकि उस प्रान्त में दुर्भिक्ष नहीं होगा।

प्रधान आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी की पुनीत आज्ञा को समस्त साधुओं ने सहर्ष स्वीकार किया और दक्षिण देश की ओर चलने की तय्यारी करने लगे।

यह समाचार जब उज्जैन के श्रावकों को मालूम हुआ तब उनका चित्त व्याकुल हो उठा, वे नहीं चाहते थे कि उनका मालवा प्रान्त पवित्र साधुविहार से शून्य हो जावे, इस कारण उनके मुख्य पुरुष साधुसंघ का निर्णय रुकवाने के लिये आचार्य भद्रबाहु स्वामी के पास पहुंचे।

सबने मिल कर भद्रबाहु स्वामी से निवेदन किया कि गुरुवर! जिस प्रकार सूर्य के अभाव में अंधकार का साम्राज्य हो जाता है, ठीक इसी प्रकार आप सरीखे आदर्श गुरुदेव के अभाव में हमारे ऊपर अज्ञान का साम्राज्य हो जायगा, इस कारण आप इसी प्रान्त में विहार कीजिये, अन्यत्र कहीं न जाइये।

भद्रबाहु स्वामी ने उत्तर दिया कि अभी कुछ दिनों के पीछे इस प्रान्त में लगातार बारह वर्ष का दुर्भिक्ष होगा, जिससे कि मनुष्य अन्न न मिलने के कारण बिलबिलाते हुए प्राण देंगे। उस कठिन समय में मुनिचर्या इस प्रान्त में कठिन ही नहीं, किन्तु असंभव हो जायगी। इस कारण हमारा यहाँ पर रहना सब प्रकार हानिकर, अनुचित, एवं असंभव है।

इसके उत्तर में जिनदास, कुबेरमित्र, माधवदत्त आदि सेठों ने निवेदन किया कि महाराज! बारह वर्ष के दुष्काल की आप तनिक भी चिन्ता न करें; हमारे पास आपकी कृपा से धन धान्य का पर्याप्त प्रबन्ध है। हमारा अन्न आपकी बारह वर्ष की साधु सेवा में भी समाप्त नहीं होगा। इतना ही नहीं, बल्कि दुर्भिक्ष के दिनों में हम यदि बारह वर्ष तक उज्जैन के समस्त मनुष्यों को अन्नदान करते रहे तो भी आपके प्रसाद से हमारा भंडार ख़ाली नहीं होगा। इस कारण आपके पवित्र साधु-जीवन में दुर्भिक्ष से कोई अंतर न पड़ सकेगा। अतएव दुर्भिक्ष के कारण आपका अन्य देश में विहार कर जाना ठीक नहीं।

तब भद्रबाहु स्वामी बोले कि निमित्तज्ञान से मैं ने जो भविष्यवाणी की है वह असत्य नहीं हो

सकती। तुम कुबेर के समान धनिक तथा बहुत उदार दानी अवश्य हो, किन्तु उस दुःसमय की परिस्थिति से आपके विपुल अन्नभंडार भी हमारे साधु-जीवन को निर्दोष न रख सकेंगे। इसलिये हमने जो दक्षिण देश की ओर विहार करने का निश्चय किया है वह अटल है, किसी प्रकार टल नहीं सकता। यहां से विहार अवश्य होगा।

भद्रबाहु स्वामी का निश्चल निश्चय देखकर वे सेठ संघ में रामल्य, स्थूलाचार्य तथा स्थूलभद्राचार्य के पास गये और वहीं पर ठहरने का नम्र निवेदन किया तथा अपना विपुल वैभव बतलाते हुए विश्वास दिलाया कि हम अपनी दानशालाएं खोलकर अकाल का प्रभाव उज्जैन पर बिलकुल न होने देंगे।

सेठों का भक्तिभाव, धार्मिक प्रेम, अतुलवैभव और दयापूर्ण उदारभाव एवं बलवान आग्रह देख कर स्थूलाचार्य आदि झुक गये, उन्होंने दक्षिण देशका विहार स्थगित करके सेठों की प्रार्थना स्वीकार कर उज्जैन में ठहर जाना निश्चित कर लिया, उनके साधुभी उनके साथ वहीं पर ठहरगये।

श्री भद्रबाहु स्वामी बारह हज़ार साधुओं के साथ दक्षिण देश की ओर विहार कर गये। मुनि-संघ में भद्रबाहु आचार्य तारामंडल से शोभित चन्द्रमा समान दीख पड़ते थे। भद्रबाहु स्वामी का नवीन किन्तु सबसे अधिक विनीत भक्त शिष्य चन्द्रगुप्त अपर नाम प्रभाचन्द्र भी भद्रबाहु स्वामी के साथ साथ दक्षिण देश की ओर चल दिया।

[क्रमशः]

बटोही !

[रचयिता—श्री "भगवत्" ऐत्मादपुर]

ओ ! विकट बटोही आंख खोल !

किस नींद पड़ा होकर अचेत।
निज दशा ओर नहीं लक्ष्य देत॥
अब जाग! तनिक होकर सचेत!
अपने अन्तःस्थल को टटोल! ओ०—

सब लुटा दिया क्या? अतुल माल।
बन बैठा क्या? कंगाल हाल॥
उठ हो सचेत, करतो खयाल!
मन से-विवेक से-ज्ञान तोल! ओ०—

किसलिये सोच, क्यों? है मलीन।
क्या? पड़ी कोई विपदा नवीन॥
टुक धैर्य धर मन बनै दीन!
कुछतो,मुखसे प्रिय वचन बोल! ओ०—

उन्माद किसलिये लिया हाथ।
क्यों? मूर्ख बन रहा है अनाथ॥
कुछ कर विवेक बन जा, सनाथ!
निश्चय जीवन दुर्लभ अमोल! ओ०—

जीवन अमोल दुर्लभ अतीव।
साधन सुख का नृप वा गरीब॥
जीवनधारी-मत बन अजीव!
क्यों? बेच रहा कौडी के मोल! ओ०—

अब छोड़ मोह निद्रा विराट।
आलस्य और तन्द्रा की खाट॥
जग के झंझट से मन उचाट!
अमृत में विष पुड़िया न घोल! ओ०—

चल उठ! देह-सम्पति बटोर।
दुर्व्यसन रूप हैं यहाँ चोर॥
अब गई निशा हो गया भोर!
मारग पर 'भगवत्' चल-अडोल! ओ०—

लेखक—पं० अजितकुमार जी शास्त्री
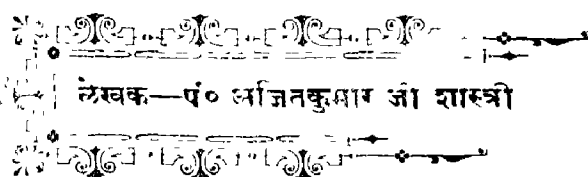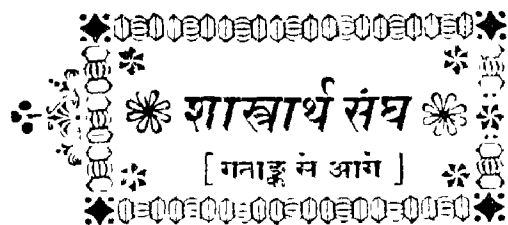
[४]

शास्त्रार्थ विभाग

आर्यसमाज जैनसमाज को अब तक सदा बोना बलहीन समाज समझता है, इसी कारण वह समय २ पर अनुचित असह्य रूप से जैन-सिद्धान्त की भर्त्सना करते हुए शास्त्रार्थ करने के लिये चैलेञ्ज दे डालता है। ऐसे अवसर पर जैन-समाज को विवश होकर उसके साथ शास्त्रार्थ करना पड़ता है।

अभी पिछले ३-४ वर्षों में जितने भी शास्त्रार्थ हुए हैं वे सब शास्त्रार्थ संघ की ओर से ही किये गये हैं। यद्यपि उन सब शास्त्रार्थों की संख्या रक्खी जाय तो १३ १४ तक जा पहुँचती है, किन्तु उनमें से चार स्थानों पर जो शास्त्रार्थ हुए हैं उनकी आयोजना विराट रूप में थी।

अम्बाला छावनी।

पहला शास्त्रार्थ लालकुर्ती अम्बाला छावनी के आर्यसमाज का निमंत्रण मिलने पर लालकुर्ती अम्बाला छावनी में आर्यसमाज के मंडप में ता० २१।४।३० से २३।४।३० तक तीन दिन किया गया।

इस शास्त्रार्थ में जैनसमाज की ओर से श्रीमान पं० मंगलसेन जी, पं० राजेन्द्रकुमार जी पं० तुलसीराम जी, स्व० पं० अर्हद्दास जी पानीपत, बा० महावीरप्रसाद जी वकील और हम तथा ला० शिखामल जी ने प्रमुख भाग लिया था। तथा आर्यसमाज की ओर से श्रीमान् स्वामी कर्मानन्द जी, पं० देवेन्द्रनाथ जी और पं० शिवशर्मा जी सम्मिलित हुए थे। जैनसमाज की ओर से केवल कारणवश सभापति बदलते रहे थे, किन्तु वक्ता चारों दिन पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ ही रहे थे—जबकि आर्यसमाज की ओर से उक्त तीनों विद्वान शास्त्रार्थ के लिये खड़े हुए थे।

शास्त्रार्थ के विषय तीन थे—१. वेद ईश्वरकृत नहीं हैं, २. जैनधर्म से मुक्ति हो सकती है या नहीं, ३ क्या मुक्त जीव वापिस लौटते हैं ?

शास्त्रार्थ का परिणाम अच्छा और मधुर निकला, जो कि पत्रों में प्रकाशित किया गया था।

केकड़ी-शास्त्रार्थ।

केकड़ी में महावीर जयन्ती के समय आर्यसमाज ने जैनसमाज को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा; तदनुसार आर्यसमाज का निमंत्रण स्वीकार करके ता० ५।५।३१ से १०।५।३१ तक ६ दिन तक शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ।

विषय तीन चुने गये थे—१. ईश्वर जगत्कर्ता नहीं है, २. वेद ईश्वरीय नहीं हैं, ३. जैनधर्म से मुक्ति प्राप्त हो सकती है या नहीं। स्थान जैनमंडी का था।

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ करने के लिये स्वामी कर्मानन्द जी तथा पं० रामचन्द्र जी

देहलवी खड़े हुए थे। जैनसमाज की ओर से ६ दिन तक केवल पं० राजेन्द्रकुमार जी बोले थे। गर्मी की ऋतु तथा फेकड़ी रेल स्टेशन से दूर होने के कारण बाहर से अधिक विद्वानों की वहां पर उपस्थिति नहीं हुई थी। पं० राजेन्द्रकुमार जी, पं० मंगलसेन जी, ला० शिब्बामल जी अम्बाला छावनी तथा मुलतान से हम पहुँचे थे। शास्त्रार्थ का परिणाम बहुत अच्छा रहा।

सर्वज्ञ होता हुआ ईश्वर जीवों को पाप करने से पहले क्यों नहीं रोक देता, इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी कर्मानन्द जी कह गये कि **ईश्वर को भविष्य का ज्ञान नहीं है।**

पानीपत शास्त्रार्थ।

ऊपर लिखे दोनों शास्त्रार्थों से अधिक बलवान शास्त्रार्थ पानीपत का हुआ। यह शास्त्रार्थ ता० १०। १०। ३१ से १३। १०। ३१ तक चार दिन जैनधर्मशाला में हुआ।

इस शास्त्रार्थ में दोनों ओर से अधिक संख्या में विद्वान एकत्र हुए थे। आर्यसमाज की ओर से श्रीमान पं० बुद्धदेव जी, स्वामी कर्मानन्द जी, पं० रामचन्द्र जी, पं० देवेन्द्रनाथ जी उपस्थित हुए थे। और जैनसमाज की तरफ से श्रीमान पंडित माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य, पं० मक्खनलाल जी शास्त्री, न्यायभास्कर पं० दुर्गाप्रसाद जी, वाणीभूषण पं० तुलसीराम जी, वेद विद्याविशारद पं० मंगलसेन जी, पं० निद्धामल जी न्यायतीर्थ, पं० राजेन्द्रकुमार जी, कुंवर दिग्विजयसिंह जी और स्वयं लेखक आदि पधारे थे।

दर्शक, श्रोताओं की उपस्थिति ४-५ हजार होती थी। आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले स्वामी कर्मानन्द जी, पं० देवेन्द्रनाथ जी, पं० रामचन्द्र जी खड़े हुए थे, किन्तु जैनसमाज की ओर से केवल पं० राजेन्द्रकुमार जी ही चारों दिन बोले थे।

"वेद ईश्वरीय ग्रंथ नहीं हैं? तथा जैनधर्म से मुक्ति मिल सकती है या नहीं" इन दो विषयों पर शास्त्रार्थ हुआ था।

अथर्ववेद का मांस प्रकरण जब पं० राजेन्द्रकुमार जी ने सुनाया तब पं० देवेन्द्रनाथ जी ने कहा कि हम तो पौने दो वेद (पूर्ण यजुर्वेद, ऋग्वेद सात मण्डल) ही प्रमाण मानते हैं, शेष सवा दो वेद प्रमाण नहीं मानते। [क्रमशः]

निर्झर से—

[रचयिता "आनन्द" उपाध्याय जयपुर]

अय निर्झर इस सूने वन में,
किसे सुनाते राम-कहानी।
विरह रंज से क्यों पीड़ित हो,
वहा रहे खारा पानी॥
दुखिया हो इस शैलराज की,
चट्टानों में क्यों छिपते।
किस प्रेमी के प्रणय जाल में,
फंस कर यह दुखड़ा रोते॥

भृकुटि बाण से घायल हो क्यों,
शोक-सिन्धु उमड़ाते हो।
क्या जीवन में मेरे सम ही,
दुःसह व्यथा तुम पाते हो॥
बहा रहे क्यों अश्रुधार तुम,
निर्झर? अब इन नयनों से।
क्यों रोते हो अपने सिर को,
फोड़ फोड़ चट्टानों से॥

[एक अंग्रेज़ी कविता का भाव]

दशहरे का महत्त्व और क्षत्रियों का कर्त्तव्य।

[लेखक—सरदार भँवरलाल, यदुवंशी भाटी, इन्द्राश्रम-रतलाम]

भारतवर्ष में प्रधान चार त्योंहार चार वर्णों में विभक्त हैं। दशहरा क्षत्रियों का मुख्य त्योंहार माना जाता है; उसी प्रकार दिवाली वैश्यों का, होली शूद्रों का, व राखी ब्राह्मणों का मुख्य त्योंहार है। यद्यपि इन चारों त्योंहारों पर चारों वर्ण वाले यथायोग्य उत्सव मनाते हैं, तथापि हर एक त्योंहार पर विशेषता प्रत्येक वर्ण की ही है।

हम अपने आज के इस लेख में "दशहरे" का महत्त्व और क्षत्रियों का कर्त्तव्य दिखलाना चाहते हैं—"दशहरा" शब्द की उत्पत्ति के दो कारण हैं। एक धार्मिक और दूसरा व्यावहारिक। धार्मिक उत्पत्ति अनादि से है। जबकि जैनधर्मानुसार क्षत्रिय वर्ण अनादि से है तो उसका प्रधान त्योंहार भी अनादि से ही है। आत्मा का निजधर्म दशलाक्षणिक (उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य) रूप है, इन धर्मों के विपरीत जो क्रोध, मान माया, लोभादिक आत्मिक गुणों के घातक शत्रु हैं उन पर विजय प्राप्त करना—दशों आत्मिक शत्रुओं को हराना ही—सच्चा "दशहरा" है। दशहरे के दिन वीर क्षत्रिय के सर्व कर्त्तव्यों में उपरोक्त दश धर्मों का प्रगट रूप से प्रकाश हो जाना ही यथार्थ विजयादशमी है। जैसे "क्षमा वीरस्य भूषणम्" वीर क्षत्रिय में सर्व प्रथम क्षमा गुण होना चाहिये। यदि उसमें क्रोध का भाव प्रगट हो गया तो उसने अपने वीरोचित क्षमाधर्म का घात किया। इसी प्रकार उत्तम कुल के मनुष्य में अहंकार नहीं होना चाहिये, यही मानव धर्म है; इत्यादिक दश धर्मों कर युक्त जो विजयोत्सव यानी "दशहरा" मनाता है, वही वीर क्षत्रिय प्रशंसा के योग्य है।

इस दशहरे के अवसर पर ही अस्त्र शस्त्रादि की स्वच्छता करना यह एक प्राकृतिक नियम है, क्योंकि वर्षा ऋतु के कारण अस्त्र शस्त्रादिकों पर कीट (जङ्ग) का चढ़ जाना स्वाभाविक है, अतः आश्विन मासकी कड़ी धूप पड़ने से सब अस्त्र शस्त्रादिकों की स्वच्छता करना व इसी अवसर पर "दशहरा" जैसा प्रधान त्योहार आ जाने से वीर क्षत्रियों के लिये रक्षा के मुख्य उपकरण अस्त्र शस्त्रादिकों का पूजन (आदर) करना आवश्यकीय कर्तव्य है। जिस प्रकार दिवाली पर वैश्य लोग अपने मुख्योपकरण कलम, दावात, व नई बहियों का पूजन करते हैं उसी प्रकार क्षत्रिय भी अपने क्षात्र धर्म के उपकरणों की पूजन करते हैं।

कितनेक जैनी इसको मिथ्यात्व बतलाते हैं, यह उनकी भूल है। मिथ्यात्व का लक्षण जैन शास्त्रों में यह कहा गया है कि "हाथी घोड़े अस्त्र शस्त्र आदि को देव मान पूजना मिथ्यात्व है? परन्तु हाथी घोड़े को नहलाना व उनको सजाना व अस्त्र शस्त्रों को स्वच्छ करना, यह सब लोक व्यवहार है"। इससे यह सिद्ध होता है कि देव मान पूजना यही

मिथ्यात्व है; किन्तु अपने प्रधान उपकरणों का आदर करना उचित स्थान पर रखना मिथ्यात्व नहीं है। आदर नाम ही पूजा का है। जैन शास्त्रों में चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण द्वारा "चक्र" के पूजन करने का विधान है और चक्र भी एक प्रकार का शस्त्र है, जिसकी एक हज़ार देव सेवा करते हैं और वह आयुधशाला में प्रगट होता है। इस प्रमाण से क्षत्रियों का अस्त्र शस्त्रादि का पूजन करना सर्वथा योग्य है। इस क्रिया से क्षत्रियों में वीर भाव उत्पन्न होते हैं और वीरता ही उनका मुख्य गुण है।

दशहरे का दूसरा व्यावहारिक कारण यह है कि इसी दिन परस्त्रीलम्पट दशानन (रावण) हारा था। उसी ऐतिहासिक यादगार में प्रति वर्ष क्षत्रिय राजा महाराजा इसे "दशहरा" के रूप में मानने लग गये। पर अब तो इस पवित्र त्यौहार का स्वरूप बिगड़ते २ इतना घृणित हो गया है कि हर साल इस त्यौहार पर अनेक देवी देवताओं के नाम से लाखों पाड़े भैंसे और बकरे जैसे निरपराध पशुओं की बलि दी जाती है, इस घोर हिंसा के प्रचलित हो जाने से दशहरे का महत्त्व एकदम घट गया है। यहां तक कि दया धर्म के माननेवाले समाजों में तो यह एक शोकका दिन समझा जाने लगा है। क्योंकि उस दिन घोर हिंसा होगी, यह जान कर कई लोग व्रत उपवास करते हैं और दिन भर अपने कोमल हृदय में हाय हाय शब्द उच्चारण करते रहते हैं। अब सोचना चाहिये कि इतर तीन वर्णों के त्यौहारों में हिंसा का कोई लेश नहीं है, परन्तु सर्व्वोच्च वीर क्षत्रियों का यह पवित्र त्यौहार ही हिंसा के कर्दम से कलङ्कित है। अतः हम अपने क्षत्रिय भ्राताओं से निवेदन करते हैं कि इस पशु बलि की घृणित प्रथा को शीघ्रातिशीघ्र नष्ट करने का प्रयत्न करें और निम्नलिखित प्रकार से दशहरे का महोत्सव मनाया करें:—

१—प्रातःकाल ईश्वरोपासना के लिये उत्तम वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो देवमंदिरों व धर्मस्थानों में जावें। पश्चात् यथाशक्ति दान पुण्य करें।

२—मध्याह्न में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी का जीवनचरित्र पढ़ें या सुनें व उनके गुणों का पूजन करें। अपने यहाँ आगन्तुक स्नेही सज्जनों का प्रेमपूर्वक यथायोग्य सत्कार करें।

३—सायंकाल को विजय मुहूर्त्त में ससैन्य वीरवेष से अपने अपने नगरकी सीमा का उल्लंघन करें। [यह क्रिया राजा महाराजाओं के लिये ही है, जिससे कि उनको अपनी सेना की कार्यकुशलता व अस्त्र शस्त्रों का निरीक्षण प्रतिवर्ष भले प्रकार से हो जाया करे]

४—इस दिन सर्व क्षत्रिय उत्तम उत्तम खाद्य पदार्थों का भोजन करें; जो मांस मदिरा खाते पीते हों वे इन अभक्ष्य पदार्थों का त्याग कर दें।

५—अपनी शक्ति अनुसार दुःखित जीवों का दुःख दूर करें। इस प्रकार अपने यथार्थ कर्त्तव्यों का पालन करने से ही वीर क्षत्रियों का यह प्रधान त्यौहार "दशहरा" महत्त्व को प्राप्त होवेगा।

---

* आर्यसमाज प्रश्नोत्तर माला *

वेदार्थ विषय में समाधान् का उत्तर

[लेखक—वेदविद्या विशारद पं० मंगलसेन जी, अम्बाला छावनी]

मैंने अपने पूर्व लेख में लिखा था कि आर्यसमाजी विद्वान् ईश्वर की सिद्धी में दो ही हेतु देते हैं—१. वेद ईश्वर कृत है, २. ईश्वर जगत कर्त्ता है। इन दोनों हेतुओं में से प्रथम हम "वेद ईश्वर कृत हैं" इसी पर ही अपना विचार प्रकट करते हैं। देखिये आर्य समाजी विद्वान ईश्वर को सर्वज्ञ वा दयालु आदि गुणों वाला ही मानते हैं, परन्तु उक्त गुणों कर सहित होने से वेद ईश्वर कृत सिद्ध नहीं होते और जो वेदों का कर्त्ता है वह ईश्वर भी सिद्ध नहीं होता—क्योंकि वेदों में असम्भवदोष, गन्दी बातें, व्यभिचार की शिक्षा, हिंसा का विधान, मांसादि पदार्थों का होम और हुत शेष मांस का भक्षण करना भी लिखा है; इत्यादि वेद विहित कथन होने से वेद ईश्वर कृत सिद्ध नहीं होते और जब कि वेद ईश्वर कृत सिद्ध नहीं होते तब ईश्वर के होने में जो हेतु बतलाया जाता है उसका अभाव होने से उस ईश्वर का भी अभाव ही सिद्ध होता है। इसलिये हम प्रथम वेद मंत्र द्वारा असम्भव दोष को ही लिख कर दिखलाते हैं।

इस का उत्तर आर्यमित्र वर्ष ३६ अंक १६ पृष्ठ २३ कालम ३ में चौथी शंका का समाधान करते हुए लिखा है कि—दयालुता इत्यादि ईश्वर के गुण वेदोत्पत्ति के बाधक किस प्रकार हैं वह आपने कुछ नहीं लिखा —इत्यादि। महाशय जी! जो वेदों की उत्पत्ति ईश्वर कृत मानी जावे तो आप का माना ईश्वर दयालु वा सर्वज्ञ कदापि सिद्ध नहीं हो सका, क्योंकि मैंने पूर्व लेख में (गणानांत्वा) इस मंत्र द्वारा असम्भव दोष दिखलाया था, आपने उसका उत्तर वेद वा यज्ञ पद्धति के अनुसार कुछ भी नहीं दिया और जबकि वेदों में यज्ञ पद्धति के अनुसार असम्भव दोष सिद्ध है तब वेद ईश्वर कृत किस प्रकार सिद्ध हो सकते हैं, जरा इसे प्रमाण सहित लिखिये। और वेदों में असम्भव दोष के अतिरिक्त पुनरुक्त दोष भी पाया जाता है, इसलिये वेदों का कर्त्ता ईश्वर सर्वज्ञ कदापि सिद्ध नहीं होता और वह पुनरुक्त दोष इस प्रकार है, जरा इसे ध्यान से पढ़िये—

मखस्य शिरोसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखस्य शिरोसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखस्य शिरोसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
—यजु० ३७-८ इत्यादि

यदि आपकी इच्छा और भी सुनने की होगी तो और भी मंत्र पुनरुक्त दोषवाले लिख दिये जावेंगे। अब आप ही बतलावें कि पुनरुक्त दोष के होने पर भी क्या वेद ईश्वर कृत हो सके हैं—कदापि नहीं। साथ ही में वेद हिंसा से भी बचे नहीं है, क्योंकि

अश्वमेधयज्ञ में तीन सौ पशुओं के अतिरिक्त अश्व-रत्न का भी बध किया जाता है और उनका मांस पका कर देवताओं की तृप्ति की जाती है। अब यज्ञ में शामिल नामक ब्राह्मण ने जिस प्रकार छुरी से अश्व को मारा है जिसके प्रमाण का मंत्र इस प्रकार है, ज़रा इसे ध्यान से पढ़िये—

ऋग्वेद १—१६२—९

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति। यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु—यजु २५-३२

ॐ यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। अश्वो देवता। अश्वस्तुति करणे विनियोगः।

पदार्थः—(अश्वस्य) अश्वका (यत) जो (क्रविषः) घनीभूत मासवत् शोणित (मक्षिका) मक्खियोंने (आश) भक्षण किया है (यत) जो रुधिर (स्वरौ) खड्ग वा यूप काष्ट (वा) अथवा (स्वधितौ) शासछुरा में (रिप्तम्) लगा हुआ है (शमितुः) शमन (वध) करने वाले के (हस्तयोः) हाथों में (यत) जो लगा है (नखेषु) नाखूनों में (यत) जो लगा है (ते) तुम्हारे (ताः) वे (सर्वा) सब (अपि) भी (देवेषु) देवताओं में (अस्तु) हो अर्थात् तुम्हारा सब भाग देवताओं के योग्य है।

इसी मंत्र का अर्थ आर्य पण्डित लालचन्द जी शर्मा ने अपनी आमिष समीक्षा नामक पुस्तक के पृष्ठ ३७ में इस प्रकार लिखा है कि (अश्वस्य) घोड़े के (क्रविषः) कच्चे मांस को (यत) जिसको (मक्षिका) मक्खियें (आश) खाती हैं (स्वरौ) पशु के बनाने के समय (स्वधितौ) छेदने काटने के समय (शमितुः) काटने वाले के (हस्तयोः) हाथों में (नखेषु) नाखूनों में (यत) जो (रिप्तम्) लगा हुआ है वह भी (ते) तुझ सम्बन्धी (देवेषु) दिव्यगुणवान् धार्मिकों का (अपि) भी (अस्तु) खाना हो—अर्थात् हाथों नाखूनों आदि में लगा २ कर माँस वृथा न गमाओ।

भावार्थ—यज्ञ में मार काट कर जो अश्व का मांस बनाया जाता है उसको मक्खी आदि जीव गमाने न पावें तथा मारने काटने बनाने के समय लगा है वह भी वृथा न जावे यह ईश्वर की आज्ञा है।

तथा इसी मंत्र का अर्थ काशी की हस्त लिखित पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—यदश्वस्य। अश्वस्य अवयवभूतस्य क्रविषः आम मांसस्य यत अङ्गं मक्षिका आशभक्षयति अशभोजने—यद्वा कर्मणिपशे-अश्वस्ययत् मांसं भक्षयति वा अथवा स्वरौपश्वञ्जन काष्ठेयत रिप्तं लिप्तमस्ति—स्वरुणांपशुमनक्तीतिश्रुतेः अथवा स्वधितौ शासेछेदन काले अवदान काले यत लिप्तमस्ति शमितुर्हस्तयोर्यल्लिप्तमस्ति विशसन कालेयच्चनखेषु लिप्तं तानि सर्वाणि ते तव हे अश्व देवेषु सन्तु तेषामर्थायभवन्तु अतिपकम ईषत् पकम् च मा कुर्वन्त्वित्यर्थः।

महाशय जी! इस वैदिक हिंसा के अतिरिक्त आपको यह भी जानना चाहिये कि यज्ञ में जिस पशु का बध किया जाता है तिस पशु के प्रत्येक अङ्गों को काट २ कर याज्ञिक लोग भिन्न २ हिस्से किस प्रकार बांटते हैं और पशु का कौनसा अंग किस याज्ञिक के हिस्से में आता है इसी का उत्तर ऐतरेयब्राह्मण की सप्तमी पंचिका अध्याय १ में इस प्रकार लिखा है—

अथातः सवनीयस्यपशोर्विभागं वक्ष्यामः—हनुस जिह्वे प्रस्तोतुः श्येनंवक्ष उद्गातुः कण्ठः काकुद्रः

प्रतिहर्तुर्दक्षिणाश्रोणिर्होतुः सव्या ब्रह्मणो दक्षिणं सक्थि मैत्रा वरुणस्य सव्यं ब्राह्मणाच्छंसिनो दक्षिणं पार्श्वसांसमध्वर्योः सव्यमुपागातृणां सव्योंऽसः प्रतिप्रस्थातुर्दक्षिणंदोर्नेष्टुः सव्यंपोतुर्दक्षिणऊरुर च्छावाकस्य सव्य आग्नीध्रस्य दक्षिणो बाहुरात्रेयस्य सव्यः सदस्यस्य सदं चानूकं च गृहपतेर्दक्षिणौपादौगृहपतेर्व्रत प्रदस्य सव्यौ पादौगृहपतभार्यायैव्रत प्रदस्यौष्ठएनयोः साधारणोभवति तंगृहपति रेव प्रशिष्याज्जाघनीं पत्नीभ्योहरन्ति तांब्राह्मणाय दद्युः स्कन्ध्याश्चमणिकास्तिस्रश्च कीकसा ग्रावस्तुतस्तिस्रश्चैव कीकसा अर्धं च वैकर्तस्योन्नेतुरर्धंचैव वैकर्तस्य क्लोमा च शमितुस्तद्ब्राह्मणायदद्यायद्य ब्राह्मणः स्याच्छिरः सुब्रह्मण्यायैयश्वः सुत्याप्राह तस्याजिन मिडा सर्वेषांहोतुर्वा । इत्यादि ।

जिह्वासहितंतनूद्वयं प्रस्तोतुर्भागः । श्येनाकारं वक्षउद्गातुर्विभागः । इस प्रकार प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता, अध्वर्यु, उपगाता प्रतिप्रस्थाता ब्रह्म ब्राह्मणाच्छंसि होतामैत्रावरुण अच्छावाक नेष्टा सदस्य अग्नीध्रग्रावस्तोता उन्नेता शमितृ सुब्रह्मण्य गृहपते व्रतपद प्रमुख करने में मददगार जो पुरोहित ऊपर लिखे हैं वे सब जिस तरह यज्ञ में वध किये हुए पशु के अङ्ग आपस में छुरियों से काट २ बांटा करते हैं और जो २ अङ्ग जिस २ के हिस्से में आते हैं उन पुरोहितों के नाम और उस पशु के अङ्गों का नाम लिखा है । इस श्रुति के प्रमाण से वेदों में हिंसा का विधान अवश्य सिद्ध होता है, क्योंकि यदि वेदों में हिंसा का विधान न होता तो ऐतरेय ब्राह्मण की श्रुति में पशु के प्रत्येक अङ्गों का विभाग करना भी न होता, परन्तु पशु के प्रत्येक अङ्गों का नाम और उन अङ्गों के ग्रहण करने वालों का नाम स्पष्ट लिखा है । इस में किसी को भी सन्देह नहीं होसकता है ।

स्वामी दयानन्द जी ने वाल्मीकीय रामायण को भी प्रमाण माना है, जैसा कि संस्कारविधि के वेदारम्भ संस्कार के पृष्ठ १०९ में लिखा है कि—मनुस्मृति विदुरनीति और किसी प्रकरण में के दशसर्ग वाल्मीकीय रामायण के—ये सब एक वर्ष के भीतर पढ़ें; इत्यादि । इस प्रमाण में किसी प्रकरण के दशसर्ग वाल्मीकीय रामायण के पढ़ने की आज्ञा लिखी है, परन्तु किसी प्रकरण के दशसर्ग लिख देने से यह सिद्ध नहीं होता कि स्वामी जी अश्वमेध यज्ञप्रकरण को प्रमाण नहीं मानते थे, क्योंकि वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड (१-१४-३८) में अश्वमेधयज्ञप्रकरण में अश्व का मारना काटना और आहुति देना इस प्रकार लिखा है—

हयस्ययानि चाङ्गानितानिसर्वाणि ब्राह्मणाः
अग्नौप्रास्यन्ति विधिवत् समस्ताः षोडशर्त्विजः ।

अनन्तर सोलह ऋत्विज ब्राह्मण घोड़े के सब अङ्ग प्रत्यङ्गादि काट काट कर अग्नि में विधिपूर्वक आहुति देने लगे । इस प्रमाण में यज्ञीय अश्व के प्रत्येक अङ्ग ब्राह्मणों द्वारा काटना और फिर अग्नि में उसके मांस की आहुति देना लिखा है । यदि "अश्वोयत ईश्वरो वा अश्व" इस ब्राह्मण श्रुति के अनुसार घोड़े के अर्थ को छोड़ कर ईश्वर का अर्थ ग्रहण किया जाय तो ईश्वर निराकार होने से उसके प्रत्येक अंग का काटना और अग्नि में आहुति देना आदि कार्य कदापि नहीं हो सकते हैं । इसलिये अश्वमेधयज्ञप्रकरण में घोड़े के अतिरिक्त ईश्वर का अर्थ ग्रहण करना सर्वथा मिथ्या है । इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण से भी अश्वमेध यज्ञ में घोड़े का मारा जाना वा काटा जाना सिद्ध होता है ।

(अपूर्ण)

[६]

युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना ।

सर्वज्ञसिद्धि के सम्बन्ध में द्वितीय युक्त्याभास का उल्लेख करते हुए दरबारीलाल जी ने द्वितीय युक्ति को निम्न लिखित शब्दों में लिखा है :—

"त्रिकाल त्रिलोक में कहीं भी सर्वज्ञ नहीं है, ऐसा कहने वाले ने अगर त्रिकाल त्रिलोक नहीं देखा तो उसके वचनों का मूल्य ही क्या है। अगर उसने त्रिकाल त्रिलोक देखकर सर्वज्ञत्व का अभाव बतलाया है तब तो वही सर्वज्ञ हुआ क्योंकि त्रिकालत्रिलोक ज्ञाता ही सर्वज्ञ है। इसलिये सर्वज्ञ हुए बिना कोई सर्वज्ञत्व का अभाव नहीं बतला सकता। और सर्वज्ञ होकर कोई सर्वज्ञत्वका अभाव कैसे बतलायगा।"

इसके सम्बन्ध में आपका कहना है कि यदि सर्वज्ञता के बिना त्रैकालिक निर्णय नहीं हो सकता तो व्याप्तिज्ञान भी न होगा, क्योंकि यह भी त्रैकालिक निर्णय से सम्बन्ध रखता है। व्याप्तिज्ञान के बिना अनुमान न होगा।

यदि सर्वज्ञत्व के बिना भी हम त्रैकालीय निर्णय कर सकते हैं तो सर्वज्ञ के विषय में भी दे सकते हैं।

दूसरी बात आपने यह लिखी है कि यदि किसी भी वस्तु का अभाव सिद्ध नहीं किया जा सके तो इसी से उसका सद्भाव सिद्ध नहीं हो सकता। सद्भावसिद्धि के लिये प्रमाण देने पड़ते हैं।

वस्तु के निर्णय के लिये जहां उसके समर्थक प्रमाणों की आवश्यकता है वहीं उसके निषेधक प्रमाणों के निराकरण की भी। निषेधक प्रमाणों का निराकरण और समर्थक प्रमाणों का भाव इन दोनों में से एक के भी अभाव में वस्तुस्वरूप का वास्तविक निर्णय नहीं होता। इस ही को यदि दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों भी कह सकते हैं कि इन दोनों में से एक के सद्भाव से ही दूसरे की दृढ़ता होती है।

सर्वज्ञ के सम्बन्ध में भी जैनशास्त्रों में दोनों ही बातें मिलती हैं। जैनाचार्यों ने यदि सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध करने में किसी बात को उठा नहीं रक्खा तो उन्होंने उसके निषेधक प्रमाणों की आलोचना में भी किसी बात की कमी नहीं की। प्रस्तुत कथन दूसरे प्रकार का कथन है। सर्वज्ञ के विधि पक्ष में जैनाचार्यों की यह युक्ति नहीं है, किन्तु उसके निराकरण पक्ष के प्रमाणों की आलोचना है और वह भी केवल पक्ष की। उनका

कहना है * कि प्रत्यक्ष से सर्वज्ञ का अभाव प्रमाणित करने के पक्षमें यह बात पैदा होती है कि यह अभाव क्षेत्र विशेष और काल विशेष की दृष्टि से है या सर्व देश और सर्व काल की दृष्टि से। मत भेद को छोड़ कर यदि पहिली बात मान भी लें तब भी इससे सर्वज्ञ का अभाव नहीं होता, क्योंकि क्षेत्र विशेष और कालविशेष के अभाव की वस्तु के अभाव के साथ व्याप्ति नहीं। यह सम्भव हो सकता है कि वह क्षेत्र विशेष और काल विशेष में न रहे, किन्तु इसका यह भाव कैसे हो सकता है कि वह वस्तु ही नहीं है। एक नहीं अनेकों दृष्टान्त इसके समर्थन में उपस्थित किये जा सकते हैं। बम्बई शहर ही है, इसका कलकत्ता के क्षेत्र विशेष में अभाव है, फिर भी वह अपने अस्तित्व को रखता है!

दूसरे † पक्ष में भी प्रत्यक्ष से सर्वज्ञ का अभाव प्रमाणित नहीं होता। सर्व क्षेत्र और सर्व काल में सर्वज्ञ के अभाव को बतलाने वाला प्रत्यक्ष इनको जान कर इनमें सर्वज्ञ का अभाव करता है या बिना ही जाने—

यदि जानकर तब तो यों कहना चाहिये कि वह प्रत्यक्ष ही सर्वज्ञ है, सर्व देश और सर्व काल के परिज्ञान के अतिरिक्त और सर्वज्ञता ही क्या है? इस प्रकार तो यह सर्वज्ञता के अभाव के बजाय उसका साधक ही होता है। यदि यह उनको बिना ही जाने उनमें सर्वज्ञ का अभाव बतलाता है तब तो इसकी मान्यता ही क्या हो सकती है।

इस तरह यह बात निश्चित हुई कि प्रत्यक्ष के द्वारा सर्वज्ञ का अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा माना जायगा तो यह अभाव के बजाय भाव को ही सिद्ध करेगा। दरबारीलाल जी का विचार यदि वास्तव में शास्त्रकारों के कथनों की परीक्षा एवम् आलोचना का था तो उन का कर्त्तव्य था कि वह उनके कथन को उनके भाव में रखते और फिर उसकी आलोचना करते, ऐसा करने से ही वह अपने मन्तव्य को पूरा कर सकते थे।

प्रस्तुत युक्ति के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने ऐसा नहीं किया है। यदि ऐसा किया होता तो उनको यहां आलोचना योग्य कोई बात ही न मिलती।

शास्त्रकार ने जिस बात का कथन प्रत्यक्ष की दृष्टि से किया है दरबारीलाल जी उसको सम्पूर्ण प्रमाणों की दृष्टि से घटित करते हैं। यदि इस बात को बदल दिया जाय और प्रस्तुत युक्ति को शास्त्रकार के ही भाव में रक्खा जाय तब तो दरबारीलाल जी की बाधायें उपस्थित ही नहीं होतीं।

---

*सर्वविदोऽभावः प्रत्यक्षेणाधिगम्यः प्रमाणान्तरेणवा! नहि सकल देश कालाश्रित पुरुषपरिषत्साक्षात्करणमन्तरेण प्रत्यक्षस्तदाधारमसर्वज्ञत्व प्रत्येतुं शक्यम्। द्वितीय पक्षेतु न सर्वथा सर्वज्ञाभावसिद्धिः।

—प्रमेयकमल मार्तण्ड पे० ७२

† तत्र न तावदस्मदादिभिः प्रत्यक्षं सर्वत्र सर्वदा सर्वज्ञस्य बाधकं तेन त्रिकाल भुवनत्रयस्य सर्वज्ञ रहितस्यापरिच्छेदात् तत्परिच्छेदे तद्व्याऽस्मदादि प्रत्यक्षत्व विरोधात्। नापियोगि प्रत्यक्षं तद्बाधकं तस्य तत्साधकत्वात्।

—आप्त परीक्षा पे० ५६

सर्वज्ञ के बिना त्रैकालिक निर्णय हो सकता है और वह सर्वज्ञ के सम्बन्ध में भी हो सकता है किन्तु इस प्रकार का निर्णय प्रत्यक्ष के द्वारा नहीं हो सकता। इसके लिये तो सर्वज्ञता की ही आवश्यकता है। इससे स्पष्ट है कि जैनशास्त्रकार सर्वज्ञता के बिना त्रैकालिक निर्णय के विरोधी नहीं हैं, किन्तु वे प्रत्यक्ष के द्वारा इस बात के निर्णय के लिये सर्वज्ञता को अनिवार्य बतलाते हैं। व्याप्ति का निर्णय त्रैकालिक है, किन्तु वह प्रत्यक्ष से नहीं होता। अतः व्याप्तिज्ञान एवं अनुमान ज्ञानादिक के अभाव की आपत्ति उनके कथन के सम्बन्ध में उपस्थित नहीं की जा सकती।

इससे स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी की पहिली बाधा शास्त्रकार के कथन के सम्बन्ध में लागू नहीं होती। दूसरी बाधा के सम्बन्ध में बात यह है कि यदि शास्त्रकार ने यह कहा होता कि हम केवल अभाव सूचक प्रमाणोंकी आलोचनासे ही सर्वज्ञताको सिद्ध करते हैं तब तो दरबारीलाल जी की बात ठीक हो सकी थी। शास्त्रकार तो वस्तु के निर्णय के लिए दोनों ही बातों को आवश्यक मानते हैं। अभाव सूचक प्रमाणों की आलोचना के अतिरिक्त सर्वज्ञ के विधिपक्ष में भी जैनशास्त्रकारों ने अनेक युक्तियाँ दी हैं। जिस समय जिस बात का वर्णन हो उस समय उस ही की आलोचना होनी चाहिये, अतः दरबारीलाल जी को यहां तो इस ही युक्ति की सत्यता और असत्यता की परीक्षा करनी थी, नकि वक्तव्य में न्यूनता बतलाना, न्यूनता तो वह तब कह सकते थे जबकि सर्वज्ञ के विधिपक्ष के समर्थन में जैन शास्त्रों में उनको युक्तियां न मिली होतीं।

सर्वज्ञ के भावपक्ष में न हम युक्ति का अभाव ही पाते हैं और न सन्देह ही, अतः इन दोनों पक्षों के सम्बन्ध में बतलाई बातों की आलोचना भी अनुपयोगी है। इससे स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी की दोनों बाधाओं का प्रस्तुत युक्ति पर कोई भी प्रभाव नहीं है।

विद्वान् लेखक ने तृतीय युक्त्याभास का उल्लेख करते हुए तृतीय युक्ति को प्रश्न के रूप में निम्न लिखित शब्दों में लिखा है :—

"यदि सर्वज्ञत्व न होता तो उसका निषेध कैसे होता। क्यों कि सर्वज्ञत्व की अभाव सिद्धि में जो साध्य और हेतु रहे जायंगे वे अगर सर्वज्ञरूप पक्ष में हैं तो सर्वज्ञत्व सिद्ध हो जायगा अगर पक्ष में नहीं हैं तो सर्वज्ञत्वाभास साधक हेतु रहा रहेगा; निराधार होने से वह कुछ भी सिद्ध न कर सकेगा। साथ ही साध्य भी निराधार हो जायगा।"

जिस प्रकार दूसरी युक्ति सर्वज्ञ की विधि में नहीं थी किन्तु सर्वज्ञ के अभाव सूचक प्रमाणों की आलोचना थी और वह भी केवल प्रत्यक्ष की, उस ही प्रकार यह भी सर्वज्ञ के अभाव सूचक प्रमाणों की आलोचना है और वह भी केवल अभाव की।

शास्त्रकार का कहना है * कि यदि अभाव प्रमाण में सर्वज्ञ का अभाव प्रमाणित किया जायगा

---

* गृहीत्वा वस्तु सद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम्। मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षया॥

नचाशेषज्ञनास्तिताधिकरणखिलदेशकाल प्रत्यक्षता कस्यचिदस्त्यऽतीन्द्रियार्थदर्शित्व प्रसङ्गात् ।............
न ह्यप्रतिपन्ने भूतले घटे च घट निषेधो घटते। —प्रमेयकमल० पे० ७३

निषेध्य सर्वज्ञाधारभूतं त्रिकालं भुवनत्रयं च कुतश्चित्प्रमाणाद् ग्राह्यं तत्प्रतियोगी च प्रतिषेध्यः सर्वज्ञः

तो सर्वज्ञ का अस्तित्व ही सिद्ध हो जायगा, क्यों कि बिना सर्वज्ञ के अस्तित्व के इसके विषय में अभाव प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं होसक्ती।

किसी पदार्थ का अभावज्ञान मानसिक ज्ञान है। यह तब ही हो सकता है जबकि उस पदार्थ का ज्ञान हो, जहां कि किसी भी पदार्थ का अभाव करना है। साथ ही उस पदार्थ का जिसका अभाव करनाहै स्मरण होना भी अनिवार्यहै। ऐसी अवस्था में मानसिक अभाव ज्ञान होता है। सर्वज्ञ का अभाव कालत्रय और लोकत्रय में करना है, अतः इनका ज्ञान और सर्वज्ञ का स्मरण हुए बिना सर्वज्ञ के सम्बन्ध में अभाव प्रमाण कैसे हो सक्ता है, तथा इस प्रकार की परिस्थिति बिना सर्वज्ञ के हो नहीं सक्ती। अतः यदि अभाव प्रमाण से सर्वज्ञ का अभाव किया जायगा तो वह अभाव के स्थान पर उसके भाव को ही प्रमाणित कर देगा।

विद्वान लेखक ने शास्त्रकार के इस कथन की परवाह नहीं की और उसको एक दम बदल दिया। बदला भी इस ढंग से कि उसमें इस प्रकार की बातों का समावेश कर दिया जिनका प्रतिवाद कि स्वयं शास्त्रकारों ने किया है। दरबारीलाल जी यदि अपने ध्यान को भट्टाकलंक की अष्टशती एवं विद्यानन्दि की अष्टसहस्री पर ले जायेंगे तो आपको मालूम होगा कि इस प्रकार की बातें जिनको आप जैनशास्त्रकारों की बात बतला रहे हैं उन्होंने अज्ञानियों की बातें बतलाई हैं†। जैनशास्त्रकारों द्वारा खण्डित जिन बातों को आपने जैनशास्त्रकारों की बतलाकर उन पर जो २ आपत्तियां की हैं वे हो एवं उनसे भी बढ़ी चढ़ी बातें शास्त्रकारों ने सिद्धान्त के रूप में बतलाई हैं।

इससे स्पष्ट है कि शास्त्रकारों का प्रस्तुत वक्तव्य केवल अभावप्रमाण की दृष्टि से है और इस पर इस ही रूप में रखने से वे बाधायें जो कि दरबारीलाल जी ने इसके सम्बन्ध में बतलाई हैं बिलकुल घटित नहीं होतीं। हां यदि इस प्रकार का कथन अनुमान की दृष्टि से होता और वहां यह बतलाया गया होता कि यदि अनुमान से सर्वज्ञ का अभाव प्रमाणित किया जायगा तो सर्वज्ञ के अभाव के बजाय सर्वज्ञ का भाव ही प्रमाणित होजायगा, तब तो विद्वान लेखक का कथन यहां पर घटित हो सकता था किन्तु यहां ऐसा है नहीं।

इसही को यदि सीधे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि विद्वान लेखक ने जिन वाक्यों को जैनशास्त्रकारों के बतला कर पूर्वपक्ष स्वरूप प्रश्न के रूप में लिखा है वह उनकी कल्पनामात्र है न कि जैन शास्त्रकारों का कथन। अतः उनका निराकरण भी विद्वान् लेखक की निजी कल्पना का निराकरण है न कि जैनशास्त्रकारों के वक्तव्य का। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत युक्ति युक्ति ही है न कि युक्त्याभास। [क्रमशः]

स्मर्तव्य एवान्यथा तत्र नास्तिताज्ञानस्य मानसस्यानुपपत्तेर्न च निषेध्याधार त्रिकाल जगत्त्रयसद्भावग्रहणं कुतश्चित्प्रमाणान्मीमांसकस्यास्ति नापि प्रतिषेध्यसर्वज्ञस्य स्मरणं तस्य प्रागननुभूतत्वात्पूर्वं तदनुभवने वा क्वचित्सर्वत्र सर्वदा सर्वज्ञाभाव साधन विरोधात। —आप्त परीक्षा ५९।

† धर्मिण्यसिद्धसत्ताके भावाभावोभय धर्माणामसिद्ध विरुद्धानैकान्तिकत्वात्कथं सकलविदि सत्त्व सिद्धिरिति प्रज्ञाकरोपि दयानां प्रियस्तद्धर्मिस्वभावं न लक्षयति .... विप्रत्यधिकरण भावापन्न विनाश धर्मि धर्मत्वे कार्यत्वादेरसंभवद्बाधकत्वादेरपि संदिग्धसद्भाव धर्मिधर्मस्य सिद्ध बोद्धव्यम्। भट्टाकलंक। अष्टसहस्री छपी पेज ५८-९

इसके सम्बन्ध में विशेष परिचय के लिये इसही की टीका—अष्टसहस्री को इनही पेजों पर देखना चाहिये।

अनुसंधान !

[ले०—श्रीमान पं० के० भुजबली जी शास्त्री-आरा]

[३]

संगीत समयसार ।

संगीत विषयक यह जैन ग्रंथ श्री "अनंत शयन संस्कृत ग्रंथावली" में प्रकाशित हुआ है। इसके रचयिता श्रीपार्श्वदेव हैं। इस ग्रंथ में ९ अधिकार हैं। यद्यपि संस्कृत साहित्य की दृष्टि से यह ग्रंथ कोई विशेष महत्व नहीं रखता किन्तु अपने विषय की दृष्टि से यह अपूर्व एवं पठनीय है। इसकी शुद्ध प्रति न मिल सकने से छपाई में भी अधिक अशुद्धियाँ रह गई हैं।

इस ग्रंथ के विद्वान संशोधक त० गणपति शास्त्री के 'उपलब्धभागावधिरधुना प्रकाश्यते' (यानी-जितना हिस्सा मिला है वहां तक प्रकाशित किया जाता है) इस वाक्य से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ अपूर्ण है। उनका यह कथन ग्रंथ के नौवें अधिकार के अंत में उल्लिखित निम्न लिखित पद्य से पुष्ट होता है—

"नानाराजसभान्तराल (सरि ? रसि-) कस्तुत्य-श्रुतिज्ञानसत्, चक्रेशो रसभावभेदनिपुणः साहित्य विद्यापतिः। संगीताकर नाम धेय विबुध श्री पार्श्वदेवो + +, चित्रं सर्वजगत्प्रियं व्यरचयत् नालस्य पट् प्रत्ययं।"

इस अंतिम पद्य से ग्रंथकर्ता एक प्रकरण की समाप्ति सूचित कर रहे हैं न कि ग्रंथ की समाप्ति।

अब ग्रंथकर्ता के विषय में कुछ विचार करना है। इस संगीत समयसार के मान्य संशोधक गणपति शास्त्री ने अपनी 'निवेदना' में ग्रंथरचयिता के विषय में इस प्रकार लिखा है कि—

"इति मदभिनवभरताचार्यसर विमल हेर्मणार्य विद्यापुत्र श्रुतिज्ञान चक्रवर्ति संगीता करनामधेय पार्श्वदेव विरचिते ज्ञान ग्रंथान्तिम वाक्यात् पार्श्वदेवोऽस्य ग्रंथस्य प्रणेतेति ज्ञायते। तस्य कोऽभिजनदेशो जीवितकालो वेति नावगच्छामः। किन्तु स जैन इत्येतावदनुमातुं शक्नुमः यतो जैनतीर्थंकरेष्वन्यतमस्य तत्रभवतो नामधेयेनात्मानं व्यपदिशंस्तद्भक्तत्वमात्मनमाविष्करोति।" यानी-ग्रंथके अंतिम वाक्य से यह तो पता चलता है कि इस संगीत विषयक संकृत ग्रंथ के रचयिता का नाम पार्श्वदेव है किन्तु वे कब किस देश में हुए यह कुछ मालूम नहीं होता। हां; उनके नाम से यह अनुमान होता है कि वे जैन थे क्योंकि जैनों के पूज्य तीर्थंकरों में से श्रीपार्श्वनाथ भी एक तीर्थंकर थे। ग्रंथकर्ता ने अपना नाम उन्हीं के नाम पर रख कर अपनी ओर से उनकी पूज्यता प्रगट की है।

इस प्रकार ग्रंथकर्ता जैनधर्मावलंबी तो ज्ञात होते हैं, किन्तु "वे कौन हैं" यहां पर यह विचार करना है।

मेरा अनुमान है कि विबुध (पंडित) पार्श्वदेव कवि चक्रवर्ति हस्तिमल्ल के वंशज हैं, जिनका

उल्लेख नेमिचन्द्रकृत प्रतिष्ठातिलक की प्रशस्ति में निम्न प्रकार से मिलता है :—

"तदात्मजः पार्श्वनाथः संगीतागमशास्त्रवित् ।
आदिनाथस्तु तत्सूनुरायुर्वेदविशारदः ॥"

(जैनहितैषी भाग १२ पृ० १९६)

इस पद्य से यह सिद्ध होता है कि पं० पार्श्वदेव संगीत शास्त्र के ज्ञाता थे। संगीत समयसार में यत्र तत्र प्राप्त होने वाले वैदिक धर्म के मान्य ब्रह्मा विष्णु आदि देव तथा मतंग आदि कुछ आचार्यों के नाम देखकर कतिपय जैन विद्वान प्रायः कवि पार्श्वदेव जी को जैन मानने में सहमत नहीं होंगे। इस विषय में मेरा यह निवेदन है कि आज तक उपलब्ध ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों के लोकोपकारी जैन ग्रंथ कतिपय ग्रंथों के सिवाय इस बात से एकान्त मुक्त नहीं हैं।

मेरा यह भी ख्याल है कि जैन विद्वान अपने ग्रंथों को बनाते समय इन सर्वसाधारण उपयोगी विषयों में अजैन ग्रंथों की सहायता लेने में तथा अपने ग्रंथों में अजैन ग्रंथकारों का नाम उल्लेख करने में कुछ हानि नहीं समझते थे। मेरा अनुमान है कि निवेदना में पार्श्वदेव के विद्यापिता के रूप में प्रतिपादित हेमेणार्य कोई अजैन विद्वान ही होंगे।

जो भी कुछ हो श्रवणबेलगोला की ग्रंथसूची से पता लगता है कि इस **संगीतसमयसार** की एक प्रति वहां पर मौजूद है। अतः दक्षिणी जैनविद्वानों को उस प्रति का अवलोकन कर इस विषय पर विशेष प्रकाश डालना चाहिये।

सं० अभिमत—शास्त्री जी का अनुसंधान प्रशंसनीय है जो उन्होंने हिन्दी पत्रों के पाठक महानुभावों के सामने प्राचीन जैन संगीत शास्त्र का शुभ समाचार प्रगट किया। आपको ग्रंथ के मंगलाचरण तथा बीच बीच के कुछ पद्य भी प्रगट करने चाहिये थे।

जैनधर्म और आयुर्वेद ।

[लेखक—सम्पादक "वैद्य" मुरादाबाद]

इस समय कई सुधारक लोग आयुर्वेद की अवनति के कारणों का पता लगाते हुए जैनधर्म और बौद्धधर्म की अहिंसा को भी आयुर्वेद की अवनति का एक मुख्य कारण बतलाया करते हैं। उनका ऐसा बतलाना सर्वथा निराधार और असत्य प्रतीत होता है। जैनधर्म या बौद्धधर्म की अहिंसा से आयुर्वेद का कुछ भी ह्रास नहीं हुआ है। बल्कि उक्त दोनों धर्मों के द्वारा आयुर्वेद की अधिकाधिक उन्नति ही हुई है। जो लोग कहते हैं कि जैनधर्म की अहिंसा से शल्यतन्त्र या शस्त्र चिकित्सा का पतन हुआ है, मालूम होता है कि वे इतिहास से अनभिज्ञ हैं। जैनधर्म की अहिंसा भारत की किसी भी विद्याकला की घातक नहीं है। अशोक, चन्द्रगुप्त आदि जैन राजाओं के समय में भी शस्त्र चिकित्सा का उपयोग होता था। इस विषय के उस समय भारत में आने वाले कई विदेशी यात्रियों के लिखे हुए प्रमाण मिलते हैं। जैन राजाओं के बड़े बड़े युद्धों में जब योद्धाओं के

शरीर आहत हो जाते थे, तब शस्त्रचिकित्सा के द्वारा उन्हें आरोग्य किया जाता था।

यद्यपि जैनवैद्यक ग्रन्थों में शस्त्र चिकित्सा को विशेष महत्व नहीं दिया गया है, तथापि उसको कहीं घृणा की दृष्टि से भी नहीं देखा गया है। सर्व-साधारण की शल्यतन्त्र या शस्त्र चिकित्सा पर पहले इस कारण भी उदासीनता थी, कि उस समय बड़े २ शस्त्र साध्य रोग भी सामान्य जड़ी-बूटियां के द्वारा सहज में आरोग्य होजाया करते थे। कदाचित किसी विशेष और दुस्तर रोग में ही शस्त्र चिकित्सा की आवश्यकता होती थी। आजकल की तरह जरा २ सी बात में ऑपरेशन का नाम नहीं लिया जाता था। अतः ऐसे कारणों से जैनधर्म की 'अहिंसा' को आयुर्वेद की अवनति का कारण मान लेना, मिथ्या धारणा के सिवाय कुछ नहीं है।

प्राचीन जैनाचार्यों ने जिस प्रकार व्याकरण, न्याय, काव्य, कोष, अलंकार, ज्योतिष आदि विविध विषयों पर अनेक ग्रन्थों की रचना की है, उसी प्रकार उन्होंने आयुर्वेद के भी अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। जैनाचार्यों द्वारा निर्मित सैकड़ों ऐसे अपूर्व वैद्यक ग्रन्थों का नाम सुना जाता है, जिनकी समता करने वाला दूसरा ग्रन्थ मिलना कठिन है।

स्वामी समन्तभद्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य, स्वा० पूज्यपाद, नागार्जुन, वाग्भटाचार्य, उग्रदित्याचार्य, भावसेन, इन्द्रनन्दि आदि जैनाचार्यों के बनाये हुए वैद्यक ग्रंथों के नाम आज भी जगत में खूब प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें वाग्भटाचार्य कृत-वाग्भट, अष्टांगसंग्रह और श्री उग्रदित्याचार्य कृत-कल्याणकारक आदि कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त चिकित्सासारसंग्रह, योगरत्नाकर, योगचिन्तामणि, पद्मनन्दी-निघंटु, हितोपदेश वैद्यक, तथा और भी बहुत से छोटे बड़े वैद्यक ग्रन्थ देखने में आते हैं। जैनाचार्यों के द्वारा अन्य शास्त्रों की भाँति आयुर्वेद का भी बड़ा उपकार हुआ है। जैनाचार्यों के बनाये हुए ग्रन्थ सर्वत्र आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। इसी कारण अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों ने अपने २ ग्रंथों में जहा तहां उनके उद्धरण दिये हैं। इसके अतिरिक्त चिरकाल से भारत में जैन जाति के द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा का जितना प्रचार हो रहा है, उतना शायद अन्य किसी जाति के द्वारा नहीं होता होगा। देश में अब भी जैन धनिकों की ओर से सैकड़ों धर्मार्थ औषधालय खुले हुए हैं, जिनमें प्रतिदिन सहस्रों रोगियों को बिना मूल्य शुद्ध-स्वदेशी औषधियां प्रदान की जाती हैं। जैन लोग प्रायः स्वयं तो आयुर्वेदीय औषधियाँ सेवन करते ही हैं, किन्तु अन्य लोगों में देशी औषधियों के प्रचार के लिये भी वे अपना अतुल द्रव्य खर्च करते हैं। जैनधर्म में चार प्रकार के दानों में 'औषधदान' सर्वप्रधान समझा जाता है। इसी कारण जैन लोग प्रति वर्ष आयुर्वेदीय औषधियों के वितरण करने में लाखों रुपये व्यय किया करते हैं।

सं० अभिमत—स्वामी कुंदकुंदाचार्य, स्वामी समन्तभद्राचार्य, पूज्यपाद आदि प्रसिद्ध आचार्यों के बनाये हुए वैद्यक ग्रंथरत्नों से जो आज सर्व साधारण जनता अपरिचित है वह अक्षम्य अपराध जैन-समाज और उसके समर्थ-सम्पन्न नेताओं का है। यदि ये जैन वैद्यक ग्रंथ प्रकाशित हो जावें तो वैद्यक विषय में भी जैन ऋषियों की महत्वशालिनी

विद्वत्ता की धाक बैठ जावे। धार्मिक प्रभावना और धर्मप्रचारका यह भी एक अंग है, इस कारण ऐसे ग्रंथ प्रकाशित करने के लिये सम्पन्न सज्जनों को तथा पुस्तक विक्रेताओं, श्रीमान सेठ रावजी सखाराम दोशी सरीखे साहित्य प्रेमियों को इधर योग देना चाहिये।

सम्पादक वैद्य श्रीमान पं० शंकरलाल जी जैन एवं सरस्वती भवनों के मंत्री महानुभाव सेठ ठाकरसीदास जी आदि को वेंकटेश्वर प्रेस, निर्णय-सागर प्रेस आदि के साथ पत्रव्यवहार करके ऐसे ग्रंथों के प्रकाशित कराने का प्रशंसनीय उद्योग करना चाहिये। बहुत आशा है कि उनका उद्योग सफल हो जायगा।

जैनधर्म और भारत के शासक

(लेखक—श्रीमान बा० कामताप्रसाद जी)

[गताङ्क से आगे]

[२]

पौराणिक (पुरातन) शासक।

जैनधर्म का अहिंसा सिद्धान्त एक सामान्य गृहस्थ से लेकर चक्रवर्ता सम्राट् के लिए उपादेय है। वह उन्हें एक आदर्श नागरिक बना देता है। अतः यह स्वाभाविक है कि भारतीय शासकों ने जैन सिद्धांत का अनुगमन किया हो! वस्तुतः एक अति दीर्घकाल से भारतीय शासक उसका सम्मान करते आये हैं!

पहले ज़रा उस अति प्राचीनकाल के भारत पर दृष्टि डालिये जिसका ठीक-ठीक पता अभी तक आधुनिक इतिहासज्ञों ने नहीं पाया है। इस काल के लिए हमारे आधार पुराण-ग्रंथ ही हैं! उनके अनुसार ही हम इस काल के मुख्य २ शासकों का सम्बन्ध जैनधर्म से प्रगट करेंगे!

सम्राट् ऋषभदेव।

आधुनिक आर्य सभ्यता के अरुणोदय में, जिसका आदि समय काल के गहन गह्वर में ओत प्रोत है, इक्ष्वाकुवंश के क्षत्रिय रत्न सम्राट् वृषभदेव अथवा ऋषभदेव थे। वे नाभिराय और रानी मरुदेवी के पुत्र थे। अयोध्या में उनका जन्म हुआ था। उनके समय तक भारतीय जनता अर्ध-सभ्य के तुल्य थी। उनके पहले हुए कुलकरों अथवा मनुओं ने जनता को करने-धरने की बहुत कुछ व्यवहार शिक्षा दी थी, किन्तु फिर भी जनता को अभी तक इतनी तमीज़ न हुई थी कि वह अनाज बो-काटकर उसके आटे से भोजन बनाकर अपनी उदर-पूर्ति कर सके! इसका एक कारण था। पहले यहां के लोगों को इस बात की आवश्यक्ता ही न पड़ी थी। उनके सर्व संचित पुण्य-धर्म का फल इतना मीठा था कि उन्हें बिना कुछ-करे-धरे ही जीवन की आवश्यक्ताओं की पूर्ति हो जाती

थी। लोग आनन्द से भोग भोगना ही जानते थे।* किन्तु श्री ऋषभदेव के समय में लोगों का पुण्य इतना प्रबल न रहा। अब उन्हें अपने पुरुषार्थ की परीक्षा करने का अवसर मिला। ऋषभदेव ने उन्हें पुरुषार्थी होने की शिक्षा दी और वही आर्यजाति के पहले शासक हुए। जनता ने उन्हें ही अपना शासक चुना। राजा ऋषभदेव ने जनता को असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या, शिल्प की शिक्षा दी। और जिस मनुष्य ने जिस कर्म में अपने को दक्ष बनाया उस को उसी वर्ग में नियुक्त किया. क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र के संचालन कार्य और उन्नति में तीन बातें आवश्यक होती हैं। अर्थात् (१) सेना (Army) (२) अर्थ (Finance) और (३) श्रम (Labour)। इनके बिना राष्ट्र का कार्य चल नहीं सकता। ऋषभदेव ने भी आर्यजाति में इन तीन गुणों की अभिवृद्धि के लिए उसे तीन भागों में विभक्त कर दिया! जो सेना बनने की अथवा राष्ट्र की रक्षा करने की योग्यता—असिबल—रखते थे, उन्हें 'क्षत्रिय' ठहराया; जो व्यापारादि द्वारा अर्थ संचय करके राष्ट्र के कोष को बढ़ाते और उसको समृद्धिशाली बनाने की क्षमता रखते थे, उन्हें 'वैश्य' बनाया; और जो शिल्प और शारीरिक श्रम द्वारा राष्ट्र की सेवा करने में अग्रसर हुए, वे आर्य 'शूद्र' नाम से अभिहित हुए। इस प्रकार इस देश के पहले शासक ने राष्ट्र-व्यवस्था नियुक्त की! उन्होंने क्षत्रिय-वर्ग के मुख्यतः चार महामंडलेश्वर राजा नियुक्त किये। यह हरि, अकंपन, काश्यप और सोमप्रभ थे। हरि ने हरिवंश, जो उपरान्त यदुवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ, की स्थापना की। अकंपन ने नाथ (ज्ञातृ) वंश, काश्यपने उग्रवंश और सोमप्रभने

* जैनशास्त्र ही नहीं, अजैन शास्त्र भी यही कहते हैं कि पहले यहां के मनुष्य बड़े सुखी थे—उन्हें आरंभ-जनित कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। हिन्दू-ग्रन्थ "महाभारत" से प्रगट है कि सृष्टि के आदि में मनुष्य विशेष सुखी और सन्तोषी थे और इसका कारण आवश्यकताओं की कमी तथा आवश्यक वस्तुओं का प्रभूत परिमाण में उत्पन्न होना था—लोगों को वस्तुओं में मोह नहीं था, इसीलिये उन्हें संचय करने की चिन्ता भी नहीं थी। धीरे-धीरे पैदावार कम हो जाने से मनुष्यों में वस्तुओं का मोह उत्पन्न हुआ और वे संचय करने में तत्पर हुए, जिससे प्राकृतिक नियमों की शृङ्खला छिन्न भिन्न हो गई और तब व्यवस्था करने के लिये दण्डविधान तथा राजसंस्था की आवश्यकता पड़ी ? (श्रम द्वारा आजीविका करने से कर्मभूमि के प्रारम्भ को ही लोगों ने सृष्टि का प्रारंभ समझ लिया है)। बौद्धग्रन्थ 'दीघनिकाय' में भी यही बात कही गई है। वहां जो कुछ लिखा है उसका सार यह है कि "सृष्टि के आदि में मनुष्य सुखी और सन्तोषी थे। जिसे जब भोजन की आवश्यकता होती थी घर से बाहर जाता था और अपने कुटुम्ब के एक बार भोजन करने के योग्य चावल ले आता था, क्योंकि चावल यथेष्ट परिमाण में उत्पन्न होता था। पर यह व्यवस्था देर तक क़ायम न रही—कुछ आलसी मनुष्यों ने सोचा कि हम प्रातःकाल के लिये प्रातःकाल और सायंकाल के लिये सायंकाल चावल लेने जाते हैं। इसमें दो बार कष्ट उठाना पड़ता है। यदि दोनों समय के लिये एक बार ही चावल ले आया करें तो बहुत सुगमता होगी। उन्होंने यही किया। जब दूसरे मनुष्यों को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने कहा—यह तो बहुत ठीक है और वे तब दो दिन के लिये चावल उठा लाये। इस प्रकार जिन जिन मनुष्यों को यह बात मालूम होती गई उन सबने चावल जमा करना आरम्भ कर दिया। सारांश यह है कि मनुष्यों में सन्तोष न रहा, उसका स्थान मोह ने ले लिया। बुराइयाँ उत्पन्न हो गईं। आखिर सबने मिल कर एक मनुष्य को मुखिया चुना और उसके द्वारा दण्ड व्यवस्था की गई। सब लोग उसे चावलों का एक भाग प्रदान करने लगे और वह 'महासम्मत' कहलाया।" (अनेकान्त, वर्ष १ पृ० ६०१)

कुरुवंश को जन्म दिया था। ऋषभदेव का वंश इक्ष्वाकु कहलाता था। वही उपरांत (१) सूर्यवंश और (२) चन्द्रवंश में विभक्त हो गया! इस प्रकार इस देश में शासन अथवा राजव्यवस्था का जन्म हुआ था। उसके जन्मदाता सम्राट् ऋषभदेव थे।

ऋषभदेव ने एक कुशल सम्राट् के समान दीर्घकाल तक शासन किया था। उन्होंने जनता को सभ्यता का पाठ पढ़ाया था। इसीलिये उन्हें 'आदि ब्रह्मा' कहा जाता है और हिन्दू पुराण उन्हें 'अवतार' बताते हैं। †

वृद्धावस्था के पहुँचते-न-पहुँचते सम्राट् ऋषभ ने मोक्ष पुरुषार्थ को साधने का महान अनुष्ठान किया था। वह दिगम्बर मुनि होकर ज्ञान-ध्यान में लीन हुये थे। सचमुच वह कर्मवीर के साथ २ धर्मवीर भी थे। आखिर वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जीवन्मुक्त परमात्मा हुए थे और उन्होंने जनता को धर्म का यथार्थ रूप सुझाया था। धर्म के बिना मनुष्य में विवेक जागृत नहीं रह सक्ता और विवेक-हीन मनुष्य मनुष्य नहीं रहता। इसी बात को लक्ष्य करके मानो ऋषभदेव ने धर्म-तीर्थ की स्थापना की थी। वही धर्म आज जैनधर्म के नाम से विख्यात् है। धर्मोपदेश देकर अन्ततः भगवान् ऋषभदेव माघवदी १४ के दिन सूर्योदय के समय अनेक साधुओं सहित कैलाश पर्वत से मोक्ष को सिधारे थे।

इस प्रकार भारत के पहले सम्राट् ऋषभदेव के द्वारा राज्यव्यवस्था और धर्म व्यवस्था दोनों का ही जन्म हुआ था। अब बताइये, उनका परस्पर सम्बन्ध क्यों न हो? और एक शासक के लिए जैनधर्म उपादेय क्यों न माना जाय? [शेषमग्रे]

बे-परदा।

बेपरदा नज़र आयीं जो कल चंद बीबियां, 'अकबर' ज़मीं में ग़ैरते क़ौमी से गड़ गया।
पूछा जो उनसे आपका परदा वह क्या हुआ, कहने लगीं कि अक्ल पै मरदों के पड़ गया॥
तालीम लड़कियों की ज़रूरी तो है, मगर—
ख़ातूनख़ाना हों, वह सभा की परी न हों।

† श्री भागवत (५।४) में ऋषभदेव को अवतार लिखा है। 'ब्रह्माण्ड पुराण' में उन्हें सर्वश्रेष्ठ सम्राट् और क्षत्रियों का आदि पुरुष बताया गया है; यथा.—

'नाभे निसर्गं वक्ष्यामि हिमाङ्केऽस्मिन्निबोधयत्।
नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिः॥५९॥
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः॥६०॥
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्रव्रज्यया स्थितः।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्॥६१॥ १४॥'

भावार्थ—नाभि के वंश का वर्णन लिखते हुए बताया है कि वह हिम नामक देश में हुए। उनकी रानी मरुदेवी से महाद्युतिवान् पुत्र ऋषभदेव हुए। वह राजाओं में श्रेष्ठ और सारे क्षत्रियों के पूर्वज थे। ऋषभ के पुत्र भरत हुए जो महावीर थे। उनके सिवा ऋषभदेव के ९९ पुत्र और थे। संसार से विरक्त होकर ऋषभ ने भरत को हिमदेश दिया, जो दक्षिण में है।

इस हेडिंग के अन्तर्गत आपके स्वास्थ्य को लाभ पहुं-चाने वाली बातें, लेख, अनुभूत नुस्खे, आदि रहा करेंगे। यदि "दर्शन" के ग्राहक अपने किसी भी रोग के सम्बन्ध में

कोई प्रश्न छपवाना चाहेंगे तो वह बिना मूल्य ही इसमें छाप कर उसका उत्तर भी इसी हेडिंग के अन्तर्गत शीघ्र से शीघ्र मंगा कर छापने का यत्न किया जायगा। —सम्पादक

नेत्र रोगों पर परीक्षित

[लेखक—पंडित हर स्वरूप जी, वैद्य]

[१] तिलों के फूल ८०, पीपल के दाने ६०, चमेली के फूल ५०, काली मिर्च १६, इनको जलमें महीन पोसकर बनाई बत्तीको जलमें घिसकर नेत्रों में डाले तो यह कुसुमिकावर्त्ती तिमिर, अर्जुन, फूला, मांसवृद्धि, इनको नष्ट करती है।

[२] रसौत, हल्दी, दारु हल्दी, चमेली के पत्ते, ये सब समान लेकर गौ के गोबर के रस में पीस इनकी बत्ती बनावे। इस रसाञ्जनवर्त्ती को जल में घिस के नेत्रों में डाले तो रतौंध दूर होवे।

[३] सांठी (पुनर्नवा या बिसखपरे की जड़) को दूध के संग घिसकर नेत्रों में आंजे तो नेत्रों की खुजली दूर होवे। शहदके साथ आँजे तो नेत्रस्राव बंद होय। घृत के साथ आँजे तो फूला दूर होवे। तल में घिस कर लगाने से तिमिर रोग जाय। कांजी में घिस कर लगाने से रतौंधा जाय। इस प्रकार यह साँठी शीघ्र ही इन रोगों को इस प्रकार जीतती है, जैसे सूर्य अंधेरे को जीतता है।

प्रश्न नं० १ का उत्तर

[क] रक्त पित्त विकार से सोकर उठने पर नेत्र भारी और मिचे हुए से रहते हैं।

उपाय—रक्त पित्त के कोप में रोपण सेंक करे यानि त्रिफले को गाय के दूध या पानी में पीस ज़रा गुनगुना करके उसकी धारादेवे (रोपण सेंक—१ से ४०० तक संख्या गिननेमें जितना समय लगे)।

[ख] वात रोगमें नेत्रों में खुजाल लिये भारीपन होता है। उपाय उपरोक्त औषधि से स्नेहन सेंक करे (स्नेहन सेंक—१ से ६०० अंक तक गिनने के समय तक करे)।

[ग] कफ रोग में उपरोक्त औषधि से लेखन सेंक—तीनसौ अंक तक गिननेके समय तक—करें।

नोट—नेत्र रोग में दिन में सेंक करे और रोग की अधिकता होय तो रात्रि में भी सेंक करे।

मुफ़्त इलाज

जिन सज्जनों को किसी प्रकार का रोग हो तो वे निम्नलिखित पते पर रोग तथा रोगी का सारा ठीक हाल लिख भेजें। उत्तर के लिये कार्ड या टिकिट रख दे। यूनानी चिकित्सा के अनुसार रोग की औषधि का नुस्खा लिखकर तुरन्त मुफ़्त भेज दिया जायगा।

हकीम कुन्दनलाल जैन,
सिकन्दराबाद (ज़िला बुलन्दशहर)

प्रश्न नं० २

मेरी आँखें बीसों बरस से कभी नहीं दुःखीं, तो भी डाक्टर मेरी आँखों में पुराने रोहे बताते हैं। मैं डाक्टरी इलाज कराना चाहता नहीं, इसलिये रोहों की कोई सरल व सीधी देशी औषधि लिखिये जो पुराने रोहों के लिये रामबाण हो। बोरिकलूशन से रात्रि को और त्रिफले के पानी से सुबह को प्रायः मैं नित्य ही धोता हूं, किन्तु रोहों को आराम नहीं हुआ बताते।

—राम प्रसाद जैन।

समाचार-संग्रह

—भूल संशोधन ! पांचवें अङ्क में जो "समाचार संग्रह" में अकोला के विधवा आश्रम का समाचार छपा है वह "जैनदर्शन में भूल से आश्रम की नीति-उद्देश न जानने के कारण छपा है। इस आश्रम से विधवा विवाह होते हैं। अतएव पाठक उसको भूल से छपा समझें। —प्रकाशक

—भेलसा (ग्वालियर) में दशलाक्षणि पर्व बड़े आनन्द से गुज़रा। ता० २२-८-३३ बुधवार को माधो गंज की धर्मशाला में ब्रह्मचारी प्रेमसागर जी ने "पर्युषण पर्व पर हमारा कर्त्तव्य" इस पर प्रभावशाली भाषण दिया। आपने बतलाया कि पर्युषण पर्व में हमको सादा जीवन बिताना चाहिये। हमारी मातायें व बहनों को महीन बारीक व विदेशी वस्त्र न पहनना चाहिये ! समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा। बहुतों ने अमली कार्यवाही भी की।

ता० ३—९—३३ को जैन न० यु० मं० को यह खबर मिली कि मुंगावलि में पं० राजेन्द्रकुमार जी मंत्री जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला के आये हुए हैं। मंडल के साग्रह बुलाने पर पंडित जी यहाँ भी ता० ५—९—३३ को पधारे। पंडित जी को लेने के वास्ते लगभग १०० व्यक्ति स्टेशन पर गये। गाड़ी से उतरते ही सेठ लक्ष्मीचन्द जी ने व सेक्रेट्री जै० न० यु० मं० ने मालायें पहना कर आपका स्वागत बाजे गाजे के साथ किया। आपने उसी समय जैनधर्म के महत्त्व के ऊपर प्रभावशाली भाषण देकर अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया! भाषण पर कट्टर पंथियों ने भी प्रशंसा खूब की। ता० ६—९—३३ को सुबह बड़े मन्दिर में शास्त्र सभा हुई, जिसमें पण्डित जी ने धर्म का विवेचन बड़ी अच्छी तरह से किया। शाम को माधोगंज की धर्मशाला में बाबु तखतमल वकील के सभापतित्व में जैन आम सभा हुई, जिसमें जैनधर्म के सिद्धान्त पर आपने महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। ता० ७-९-३३ को मण्डल के कुछ सदस्यों के साथ पण्डित जी उदयगिरी पहाड़ पर गुफायें देखने गये (जो कि ऐतिहासिक हैं)। नं० १ व नं० २० की गुफायें जैनियों की हैं। गुफा नं० २० में एक शिला लेख है जो समझ में नहीं आता किस भाषा का है। पण्डित जी ने उस शिला-लेख का फ़ोटू लेकर संघ को भेजने के लिये सैक्रेट्री से कहा और कहा कि संघ इसका विवरण भी यथा संभव शीघ्र प्रगट करेगा।

शाम को बड़े मन्दिर में आम सभा हुई, जिसमें अजैन जनता काफ़ी संख्या में उपस्थित थी। सभा में श्रीमान नायब सूबा साहब भी जो इस समय सूबा साहब के इनचार्ज थे, पधारे थे। पंडित जी ने जैन धर्म के बाबत बड़ा ही प्रभावशाली भाषण दिया। नायब सूबा साहब ने बड़ी ही प्रसन्नता से भाषण सुना। सभा विसर्जन होने पर आप ने पण्डितजी को और ठहरने को कहा, लेकिन समय की कमी से पण्डित जी यहां और न ठहरे और ८ ता० को सुबह चले गये। हम लोग यह बात सच्चे दिल एवं गौरव से कहते हैं कि जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला व पण्डित जी जैन धर्म की सच्ची सेवा कर रहे हैं। —लच्छीराम जैन, मंत्री।

—सिकन्दराबाद में एक अजैन अग्रवाल ने अपने परिवार सहित जैनधर्म स्वीकार किया है। नित्य देवदर्शन करना आदि प्रारंभ कर दिया है। ... वर्ष पहले एक महिलाने जैनधर्म स्वीकार किया था, अब वह चारित्र में ऊंची बढ़ती आ रही हैं, पर्युषण पर्व में केवल चार दिन थोड़ा गर्म पानी लेकर १० दिन तक अन्न ग्रहण का त्याग किया था, आपका विचार आर्यिका होनेका है।—चुन्नालाल जैन

—श्री अनन्तकीर्ति ग्रन्थ भंडार नीलीकर कारकल—को जिनवाणीभक्त मुसद्दीलाल जी ने पंच संग्रह, तत्व भावना आदि ७ ग्रन्थ दान दिये हैं। धन्यवाद। —मंत्री

—श्रीबाल सद्ज्ञान वर्द्धिनी सभा किशनगढ़ ने यह प्रस्ताव पास किया है कि लेजिस्लेटिव असेंबली में जो मि० रंगा अय्यर प्रभृति ने अछूत मंदिर प्रवेशबिल और छूताछूत निवारक बिल पेश किये हैं, वे धर्म विरुद्ध पड़ते हैं। अतएव यह सभा भा० दि० जैन महासभा और श्री दि० जैन खण्डेलवाल महासभा कलकत्ता से सानुरोध प्रार्थना करती है कि उनके विरोध में प्रबल आंदोलन कर धर्म को सुरक्षित रक्खें।

—जैन झंडे का चिन्ह जर्मनी में; जर्मनी की नई सरकारने अपने झंडे में स्वस्तिक (साथिया) का चिन्ह अंकित किया है जो कि जैन झंडे का चिन्ह है।

—बिना मूल्य—शास्त्र का प्रारंभिक मंगलाचरण (ओंकारपाठ) शुद्ध—मोटे, चिकने कागज़ पर सुन्दर छपा हुआ निम्नलिखित पते पर आध आने का टिकट भेजने से मुफ्त भेजा जाता है।

—कुन्दनलाल खिच्चूमल जैन आढ़ती;
सिकंदराबाद (बुलन्दशहर)

अध्यापिकाओंकी आवश्यकता—जैनकन्या शिक्षालय धर्मपुरा देहली के लिए एस. वी. जे. वी. मिडिल पास, दस्तकारी में विशेषज्ञ, ऐसी अध्यापिकाओं की आवश्यका है। वेतन योग्यतानुसार दिया जावेगा। प्रार्थनापत्र मय सार्टिफिकेट मंत्री शिक्षालय को ७—१०—३३ तक पहुंच जाना चाहिए।

—पन्नालाल जैन अग्रवाल, मंत्री।

—मोम बत्तियां बनाने का कार्य गर्मी की छुट्टियों के अनन्तर बनारस हिंदू युनीवर्सिटी में पूरे ज़ोर से आरम्भ हो गया है। दस्तकारी रसायन विभाग में विद्यार्थियों की बड़ी भीड़ है। इस वर्ष से मोमबत्तियाँ बनाने का कार्य भी आरम्भ किया गया है, जिस के लिये आवश्यक मशीनें खरीदी जा चुकी हैं। यह कार्य उन्नति कर रहा है।

—बनावटी बादल—रूस की सरकार ने आवश्यकतानुसार कृत्रिम उपायों से वर्षा का प्रबन्ध कर लिया है। कहते हैं कि दो बेलून के बीच में रबर के ट्यूब लगे रहते हैं, जिनमें बहुत से छिद्र रहते हैं। इन ट्यूबों को पानी पटानेवाले हौज से जोड़ दिया जाता है और बैलून जब आकाश में उड़ता है तब हौज के द्वारा ऊपरको पानी पम्प किया जाता है, जिससे ट्यूब के छिद्रों से पानी वर्षा की बूंदों की भांति गिरने लगता है।

—२६३ वर्ष की सज़ा यूरोप के टेक्सास नामक स्थान के निवासी रेमण्ड हेमिल्टन को चोरी, बैंक की लूट और हत्या आदि के अभियोग में कुल मिलाकर २६३ वर्ष की कैदकी सज़ा दी जा चुकी है। अभी उसकी उम्र सिर्फ बीस वर्ष की है और वह कभी जेल से जीवित निकल सकेगा, इसकी कोई उम्मीद नहीं है।

—गुरुदासपुर में एक ९ वर्ष का लड़का अपनी बहिन के साथ आंख मिचौनी खेलता हुआ एक संदूक में जा छिपा, जिसका ढक्कन गिर कर लग गया। ३—४ घंटे पीछे जब उसे इधर उधर ढूंढ कर उस संदूक को खोला तब वह वहां पर मरा पाया।

—भारतवर्ष में जब जगह जगह घनघोर वर्षा हो ही रही है, तब इङ्गलैंड में इस समय खूब गर्मी है। वर्षा न होने से वहां घास आदि सूख गये हैं, इसी कारण जङ्गलों में आग लग जाती है।

Regd. No. A. 2370

जैनदर्शन के नियम

(१) जैनदर्शन का प्रचार और उस पर किये गये आक्षेपों के निराकरणार्थ ही इसका उदय हुआ है।

(२) इसका प्रकाशन हर अंगरेज़ी महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हो जाता है।

(३) इसका वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजने पर २॥) ढाई रुपया है, किन्तु संघ के सभासदों, संस्थाओं और विद्यार्थियों से केवल २) रुपया लिया जाता है। [वी० पी० से पत्र मंगाने वालों को पाच आने की हानि अवश्य रहती है, इसलिये वार्षिक चन्दा कृपया मनीआर्डर से ही भेजिये।]

(४) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २ २ प्रतियां "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद विद्यालय भदैनी घाट बनारस" को और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/o 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहिये।

(५) अधूरे लेख नहीं छापे जायंगे, किन्तु स्थान के अनुसार बड़े लेख एक व अधिक संख्याओं में छापे जायंगे। लेख कागज़ की एक तरफ़ हो और शुद्ध, स्पष्ट और सुन्दर लिख कर आने चाहियें।

(६) ग्राहक को अपना नाम और पूरा पता साफ़ २ लिखना चाहिये जिससे पत्र पहुँचने में गड़बड़ी न हो। अन्य पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये -)। के टिकिट या जवाबी कार्ड आना आवश्यक है।

(७) विज्ञापन के रेट बहुत कम रक्खे गये हैं, तथा स्थायी विज्ञापन दाताओं को विशेष सुविधायें रक्खी गई हैं। विशेष पत्रव्यवहार से मालूम कीजिये।

सर्व प्रकार के पत्रव्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैन दर्शन" C/o दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिंटिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रगट किया।

तारीख १६ अक्तूबर सन् १९३३ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र ।

वर्ष १ अङ्क ७

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी । } —ऑनरेरी सम्पादक— { पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी ।

स्याद्वाद-अङ्क !

पाठक महानुभाव यह समाचार बहुत हर्ष के साथ पढ़ेंगे कि 'जैन दर्शन' वसन्तपञ्चमी के दिन अपना १३ वाँ अङ्क विशेष आयोजन के साथ प्रकाशित करेगा । इस विशेषाङ्क का नाम स्याद्वाद अङ्क होगा । स्याद्वाद जैनधर्म का एक प्रमुख एवं मूल सिद्धान्त है । इस स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) से अजैन विद्वान ही क्यों किन्तु स्वयं अधिकांश जैन भी पूर्णतया अनभिज्ञ हैं । स्याद्वाद को बिना ठीक तरह समझे ही शंकराचार्य तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती सरीखे विद्वानों ने अखण्डनीय स्याद्वाद सिद्धान्त के खण्डन करने का विफल उद्योग किया है ।

इस अङ्क में स्याद्वाद विषय पर मनोहर, उत्तमोत्तम लेख रहेंगे, ऐसे लेख अभी तक पाठकों के देखने में न आये होंगे । कुछ चित्र भी रहेंगे; पृष्ठ संख्या लगभग १२५ होगी । मूल्य १) रहेगा । जो महानुभाव जैनदर्शन के ग्राहक होंगे उनको यह उपहार रूप बिना मूल्य प्राप्त होगा । इस विशेषाङ्क का सम्पादन 'श्रीमान कविरत्न पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ C/o मनिहारों का रास्ता जयपुर करेंगे । जो महानुभाव विशेषाङ्क के लिये लेख लिखना चाहें वे आप के साथ पत्रव्यवहार करें ।

—सम्पादक ।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

वीर भगवान के चरणों में !

वीर ! तुम्हारी चट्टान से चिरन्तन हा हा कार ! विस्तृत निर्दयता, हृदय-विदारक क्रन्दन, भयानक चीत्कार, नृशंस अमानुषिकता, और वीभत्स अनाचार खड २ हो धराशायी हुये।

युग ने पलटा खाया ! अत्याचार दहला ! अन्याय कांपा, पापाचार ने कला खाई, आततायी तिलमिला उठे और जगत में एक चमत्कृत झंझावात का आविर्भाव हुआ।

आत्म बल ने पशुबल पर विजय पाई ! प्रेम-मार्तण्ड उदय हुआ, अहिंसा विजयी हुई, दया ने जीवन पाया, करुणा दृष्टिगोचर हुई, क्षमता खुलकर खेलने लगी, शान्ति का साम्राज्य फैला और विश्व-मण्डल एक नई लहर से अभिमण्डित हो मज्जित हो उठा।

अशान्ति विफल हुई, क्रान्ति सफल हुई, वीर चट्टान से प्रेम, अहिंसा, दया, क्षमता, शान्ति तरंगों से प्रवाहित होकर एक निर्मल धारा बह चली जिसके कल-कल निनाद ने समस्त संसार को सहज ही अपनी ओर आकर्षित किया; उस धारा ने गति नहीं रोकी, अपितु हृदय बदलने की मौलिकता विश्व के समक्ष उपस्थित की।

वीर पताका फहरा चली, अहिंसा-प्रेम का बिगुल बजा। मनुष्यता का द्वार खुला। जगज्जीव उसकी छाया में शरण पाने लगे। विरोधियों ने घुटने टेक दिये। उदारता उमड़ने लगी। इस समय दुनियां ने शान्ति की ठण्डी और सुखद सांस ली।

वीर ! आज तुम्हारे पुण्य निर्वाण दिवस पर फिर वही दृश्य रह रहकर हमारी आंखों में घूम रहा है, मन चाहता है —चिल्ला कर कह उठें कि वीर ! हम तेरे अनुगामी हैं, किन्तु हमारे कुकृत्य कानों पर पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि शर्म-हया दुनियां में जब तक जिन्दा है तब तक तो ऐसी धृष्टता नहीं होनी चाहिये।

वीर ! तब भी आज तुम्हारी पुण्य-स्मृति पर तुम्हारे पवित्र चरणों में श्रद्धा के फूल चढ़ाने का मोह संवरण नहीं होता।

हे विश्वोद्धारक ! तुम अपनी विशाल उदारता और महान विशेषता के नाते सेवक की श्रद्धाञ्जलि स्वीकार लोगे, मुझे ऐसी आशा है !

— शशि —

सम्पादकीय !

हमारे नवयुवक !

[गताङ्क से आगे]

[२]

व्यायामसे जहां जठराग्नि तेज़ होकर भोजन पचानेकी शक्ति तीव्र होती है जिससे कि खाये हुए पदार्थों से रस अच्छी तरह निकलता है वहीं उस रससे अच्छा रक्त भी तयार होता है। रक्त (खून) ही शरीरका अच्छा पोषक पदार्थ है। यहां पर इतना और समझ लेना चाहिये कि शरीर को पुष्टि शुद्ध रक्त से होती है और रक्त की शुद्धता भी व्यायाम करने से ही होती है। इस कारण शरीर को बलवान बनाने के लिये कसरत कराना बहुत आवश्यक है।

जैन नवयुवकों में इस समय शौकीनी बढ़ती जा रही है। उनका ध्यान जितना शारीरिक बल बढ़ानेकी ओर नहीं है जितना कि विलासितामें है। हमारे जैन विद्यार्थियों में भी अपने शरीर बल की ओर रुचि नहीं दीख पड़ती। यही कारण है कि हमारे अधिकांश नौजवान पीले रंगके निस्तेज मुख से अपने यौवनका स्वागत करतेहैं। इस दशामें जैन समाज का भविष्य उन्नत कदापि नहीं होसकता।

जिन महानुभावोंको जैन जातिका अभ्युदय करना है उन्हें सबसे प्रथम जैन नवयुवकों को बलवान बनाने का रचनात्मक कार्य करना प्रारंभ कर देना चाहिये। प्रत्येक विद्यालय, पाठशाला, स्कूल, बोर्डिंगहाऊस के साथ एक अखाड़ा हो जिसमें सवेरे शाम सब विद्यार्थी कुश्ती खेलें, मुद्‌गर घुमावें, दंड बैठक करें, रस्सा खींचें, डंबल बढावें। जो युवक विद्यार्थी नहीं हैं उन्हें भी मिल कर या तो अपना अलग अखाड़ा बनाना चाहिये अथवा बने हुए अखाड़े में जाकर उपर्युक्त कसरत करनी चाहिये।

यदि हमारे नवयुवक पहलवान बनने की इच्छासे अखाड़ा खेलें तबतो बहुत अच्छा है, क्योंकि जैनसमाजको आदर्श पहलवानों की भी बहुत आवश्यकता है। पहलवान बनना निर्बल जाति के लिये शुभचिन्ह है। किन्तु यदि यह लक्ष्य न हो तो कमसे कम अपने यौवनको स्थिर रखने के लिये, गार्हस्थ्य सुख पाने तथा अच्छी संतान उत्पन्न करने के लिये ही अखाड़े में जाना आवश्यक है।

हमारे विलास-प्रिय शौकीन नौजवान नक़ली सभ्यताका बहाना रखकर अखाड़े में जाना असभ्यता समझते हैं, उनका यह समझना बहुत कुछ

ठीक भी है, क्योंकि आजकल सभ्यता का जो चिन्ह माना जाता है वह सभ्यता अखाड़ा खेलने से नहीं आती। आधुनिक सभ्यता पुरुषों को बाहर तथा भीतर से नामर्द बनाने वाली है, ऊपर से उनके शिरके बाल औरतों के बराबर होने चाहियें, मुखपर मूछें सफ़ाचट होनी चाहियें, शरीर लचकदार पतला, चेहरा वैस्लिन आदिसे चिकना चुपड़ा होना चाहिये। हृदय में स्त्रियों के से शौकीनी भाव, भयातुर दिल और पुरुषोचित साहस से शून्य विचार आजकल की रंगीली सभ्यतामें चाहियें, जोकि भारतीय सभ्यता के लिहाज़ से स्त्रियों के गुणों में सम्मिलित हैं।

अखाड़े की कसरत मनुष्यको बलवान, मर्द बनाती है। हमारे महान पूर्वज बाहुबली, सनत्कुमार चक्रवर्ती, भीमसेन, हनुमान, लक्ष्मण आदि ने इसी अखाड़े की कसरत को अपना नित्य नियम बनाया था। तभी उन्होंने समय आने पर अपनी वीरता का परिचय दिया, जिसका हम अनुमान करने में भी चकराते हैं। इस समय भी प्रोफेसर राममूर्ति आदि पहलवान अखाड़े की कसरत से संसार में अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इस कारण जो सभ्यता नौजवानों को अखाड़े के व्यायाम से रोकती है या उसे असभ्यताका प्रमाणपत्र देती है उस सभ्यताका भारतवर्ष से जितना जल्दी नाश हो जावे उतना ही अच्छा है। इसलिये सच्ची वीर सभ्यताके पुजारियों को तो अखाड़ा अवश्य खेलना चाहिये।

जिन सज्जनों को अखाड़े में जाकर व्यायाम करने का सुभीता न हो वे सज्जन अपने घर पर स्वच्छ वायु में प्रतिदिन नियम से व्यायाम किया करें। अन्य सामान के समान प्रत्येक जैन के घर में मुद्गर, डम्बल, डंड निकालने की घोड़ी आदि व्यायाम का सामान अवश्य रखा रहना चाहिये। विद्यार्थी तो जितना व्यायाम कर सकें थोड़ा है। यह बात निकम्मे आदमी कहा करते हैं कि व्यायाम करने से बुद्धि निर्बल होजाती है, ऐसा कहने वालों की बुद्धि ठिकाने पर नहीं।

विद्यार्थियों को पुराने उदाहरण छोड़ कर अपने सामने श्रीमान पं० वंशीधर जी शास्त्री सोलापुर का आदर्श रखना चाहिये। उनसे अधिक न हो सके तो कम से कम उन सरीखी शारीरिक शक्ति तो अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिये।

हमारे नवयुवक घी, दूध, मलाई, मेवा आदि पौष्टिक पदार्थ खाकर भी जो दुबले, पीले दिखाई देते हैं वह सब व्यायाम न करने का परिणाम है। बलहीन मनुष्य पौष्टिक पदार्थ पचा नहीं सकता, इस कारण वे हितकर पदार्थ भी उलटा उसको हानि पहुंचाते हैं। [क्रमशः]

भगवान ऋषभदेव का असह्य अपमान !

अभी २२ सितम्बरके वेंकटेश्वर समाचार में सोनीपत निवासी वैद्य रामेश्वरानंद जी शास्त्री ने परशुरामावतार शीर्षक लेख प्रकाशित कराया है। उसमें आपने परशुराम को ईश्वरका ब्राह्मणवर्णी अवतार, रामचन्द्र को क्षत्रिय अवतार, कृष्णको वैश्य अवतार और भगवान ऋषभदेव तथा महात्मा बुद्धको शूद्र अवतार लिखकर अपमानित किया है।

इस असह्य अपमानका उचित परिशोध कराने

के लिये श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघने कार्यवाही शुरू करदी है, जिसका कि परिणाम जैनसमाज को शीघ्र मालूम हो जायगा।

किन्तु हमारे ख़्याल से औरोंकी चिकित्सा करने वाले वैद्य रामेश्वरानन्द जी को अपनी बुद्धि की भी चिकित्सा करनी या करानी चाहिये और शास्त्री होकर कमसे कम अपने शास्त्रोंका अवलोकन करना चाहिये। वे जब भागवत का स्वाध्याय करेंगे तब उन्हें पता चलेगा कि भगवान ऋषभदेव क्षत्रिय राजकुल में उत्पन्न हुए थे। अपने शास्त्रों से भी अनभिज्ञ रहकर दूसरे लोगों को उलटा सुलटा उपदेश देकर जैन समाज का अपमान करने चले, यह कोई शास्त्रीपन का चिन्ह नहीं। महात्मा बुद्ध सरीखे ऐतिहासिक पुरुष का कुल भी मालूम नहीं, किन्तु कलम घिस ही डाली। आपको क्षमा माँगकर अपना लेख वापिस लेना चाहिये।

जर्मनी का झंडा

महायुद्धके पीछे जर्मनी देश को दंडस्वरूप मित्रराष्ट्रों ने १४ शर्तें मनवा कर निःशस्त्र, निर्बल बना दिया था, तदनुसार १५ वर्ष तक जर्मनी की गणना दूसरे नम्बरके राष्ट्रों में होती रही। इस अपमान को जर्मन लोग सहते रहे, किन्तु अभी गत मार्च मासमें जबसे एडोल्फ हिटलर (जो कि पहले कभी मकान बनाने वाला मज़दूर था) जर्मनी का अधिकारपूर्ण चान्सलर बन बैठा है, तबसे उसने जर्मनी को महायुद्धसे पहले का जर्मनी बनाने का दृढ संकल्प करके सैनिक शक्ति का विशाल संगठन शुरु कर दिया है।

उसकी प्रभावशालिनी कार्य दृढता को देखकर लोग उसकी तुलना इटली के सर्वेसर्वा मुसोलिनी, रूसके स्टैलिन तथा टर्की के कमालपाशा से करते हैं।

वह जिस दल का नेता है वह विशुद्ध जर्मनी रक्त से उत्पन्न नाज़ीदल है; नाज़ीदल की संख्या आज कई लाख है। अभी एक काँग्रेस में हिटलरको दश लाख नाज़ी सैनिकरूपधारी स्वयंसेवकोंने सलामी दी थी। वहां पर हिटलरने जिस झंडेको फहराया, उसपर स्वस्तिक (साँथिया) 卐 का चिन्ह है। यह चिन्ह सदासे जैन झंडे का चिन्ह रहता चला आया है। पूज्य तीर्थङ्करका जब विहार होता है तब जो आठ मंगल द्रव्य उनके साथ चलते हैं उसमें एक यह स्वस्तिक का चिन्ह भी होता है। पूजन, विवाह आदि प्रत्येक शुभ कार्य में हमारे यहां साँथियाका चिन्ह बनाया जाता है। उसी हमारे विशेष चिन्हको आज जर्मनी ने सन्मान के साथ अपनाया है यह गौरवकी बात है।

एसेम्बली में छुआछूत निवारक बिल

अभी एसेम्बली में अस्पर्श्य मंदिर प्रवेश तथा छूताछूत निवारक नामक दो बिल उपस्थित हुए हैं जो कि सन् १९३४ के जून मास तक जनता की सम्मति जानने के लिये स्थगित कर दिये गये हैं। यदि ये बिल एसेम्बली में पास हो जावें तो वे कानून का रूप पा लेंगे तब

प्रथम बिल के अनुसार देवमंदिरों में अस्पर्श्य (भंगी, चमार, चांडाल आदि) लोग बे रोकटोक जा सकेंगे, जो रुकावट डालेगा वह कानूनन अपराधी होगा। दूसरे बिल के अनुसार कुंए आदि स्थानों पर उन अस्पर्श्य लोगों को कोई रुकावट न होगी, जो रोकेगा वह दंड पावेगा।

यद्यपि हिन्दुओं की राजनैतिक शक्ति बढ़ाने के लिये सात करोड़ अछूत लोगों को गांधी जी ने उपवास करके हिन्दू जाति के साथ मिला कर हिन्दुओं की संख्या १५ करोड़ से २२-२३ करोड़ करा दी है, किन्तु इसके बदलेमें अस्पर्श्य लोगों का अनुचित रूपसे बढ़ावा देकर जो धार्मिक सिद्धान्तों पर हस्तक्षेप किया जा रहा है, वह अयोग्य है।

अजैन-हिन्दू समाज की बात को छोड़कर हम अपने जैनसमाज की बात को खुलासा करना चाहते हैं। जैनसमाज के लिये धार्मिक नियम कोई कौंसिल या एसेम्बली नहीं बना सकती, उसके नियम आर्ष आगम ग्रंथों में लिखे हुए हैं, जैनसमाज उनका ही पालन कर सकता है।

जैनसिद्धान्तानुसार छूताछूत एक सैद्धान्तिक विषय है; शूद्र लोग नीचगोत्र कर्म के अनुसार हैं। उस भव में उनका वह गोत्र नहीं पलट सकता, यह कर्मसिद्धान्त है। तदनुसार शूद्र जैनधर्म का प्रतिपालक हो सकता है, किन्तु स्पर्श्य शूद्र क्षुल्लक दीक्षा से आगे के व्रत ग्रहण नहीं कर सकता, दिव्यज्ञानियों के आदेशानुसार उसके उससे ऊंची श्रेणी के निर्मल परिणाम नहीं हो सकते, फिर आजकल के वायुमंडल में तो वे पाक्षिकश्रावक भी नहीं मिलते। क्षुल्लक होकर भी वह अपने पास 'लोहे का पात्र रक्खे' आदि भेद वहां पर भी हैं।

जो अस्पर्श्य शूद्र जैन हों और जिनेन्द्रदेव का दर्शन करना चाहें तो वे मंदिर के बाहर खड़े होकर दर्शन करें, इसी कारण मंदिर के शिखर में प्रतिमाएं रक्खी जाती थीं जैसे कि बनारस, दक्षिण देश आदि अनेक स्थानों के मन्दिरों के शिखरों में हैं।

शूद्रों के साथ पंक्तिभोजन का निषेध तो जैन आचारग्रंथों में पाया ही जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों बिल जैनसिद्धान्त के विरुद्ध हैं, इस कारण इन दोनों बिलों का विरोध स्थान स्थान पर होना चाहिये और सरकार पर धार्मिकरक्षा के उद्देश से इतना दबाव अवश्य डालना चाहिये कि यदि ये बिल धांधलबाजी से कदाचित पास भी हो जावें तो इनसे जैनसमाज को मुक्त रक्खा जावे।

गांधी जी ने भी एक बार नवजीवन में लिखा था कि अस्पर्श्य लोगों को जैनमंदिरों में प्रवेश करने का आग्रह नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे स्वयं उस धर्म के अनुयायी नहीं।

हमारे अनेक सुधारक लोग जिनको कि स्वयं बहुत कुछ सुधरने की, शुद्ध खानपान करने की, धार्मिक नित्य नियम करने की, तथा साधारण रूप से भी जैनसिद्धान्त जानने की बहुत आवश्यकता है, अस्पृश्य लोगों (महतर आदि) को जैनमंदिरों में घुमाना चाहते हैं तथा उनके साथ भोजन पान करना चाहते हैं और अनेक करते भी हैं यहां तक कि महतरों के घरों में झाडू दे आते हैं, उनकी टट्टी तक साफ़ कर आते हैं। पता नहीं अपना पवित्र आचार छोड़कर महतरों के इस कार्य करने से कौनसा अपना अभ्युदय होगा। उन लोगों से

निवेदन है कि आप धैर्य और बुद्धिमानीसे विचार-पूर्वक कार्य करें। जिन मेहतरों को जैनधर्म से न तो रुचि है और न वे उसके मानने वाले हैं उनको जैनमंदिर में प्रवेश कराके आपने क्या लाभ सोचा है? आपकी इस अनुचित क्रिया से धार्मिक नियमों का उल्लंघन, मंदिर की अपवित्रता तथा आपस का विरोध बढ़ेगा। इस क्रिया का स्वयं गांधी जी भी निषेध करते हैं, विश्वास न हो तो जाकर पूछ देखिये।

जो लोग न तो जैन हैं और न जैन होने की इच्छा प्रगट करतेहैं, ख्वामख्वाँ उनका निमित्त लेकर आपस में विरोध डाल कर जैनसमाज का नाश करना बुद्धिमानी नहीं। यदि आप जैनधर्म का प्रचार करना चाहते हैं तो आपके लिये कार्यक्षेत्र बहुत पड़ा है, सैकड़ों हज़ारों घर ढूंढिया होगये हैं, अजैन हो गये हैं, उनको मंदिर में बुलाकर सच्चे जैन बनाओ। सच्चा सुधार यह होगा।

जिसको आप सुधार कहते हैं वह तो बिगाड़ है। यदि मेहतरों के लिये तुम्हारा आग्रह है तो जाओ पहले उनको पक्का जैनी बनाओ, वर्ष दो वर्ष समाज उनको देख लेवे, फिर उनका भी उचित विचार हो जायगा। यदि सुधारक बनते हो तो कुछ रचनात्मक सच्चा हितकर कार्य करो, व्यर्थ हुल्लड़बाज़ी से तो सिवाय बिगाड़ के और क्या करोगे।

जो लोग चर्चासागर, त्रिवर्णाचार के विरोध में बहुत आन्दोलन करते थे, उनको अब इन दोनों बिलों का घोर विरोध करके आर्षमार्ग की रक्षा करनी चाहिये। इस विषय पर जैनमित्र में पंडित मिलापचन्द्रजी कटारिया ने भी अच्छा प्रकाश डालाहै।

भारत की मनुष्य गणना!

अनेक राजनैतिक समस्याओं को हल करने के लिये सरकार प्रति दश वर्ष पीछे भारतवर्ष की जन-गणना (मर्दुमशुमारी) कराया करती है। तदनुसार पहले सन् १९२१ में जनगणना हुई थी उसके पीछे अब सन् १९३१ में हुई जिसकी कि रिपोर्ट अभी प्रकाशित हुई है। यह रिपोर्ट सन् २१ की रिपोर्ट से बहुत बड़ी है। वह रिपोर्ट जब ३१५ पृष्ठ की थी, तब यह ५१८ पृष्ठ की है।

भारतवर्ष की जनसंख्या इस बार ३५२८३७७७८ हुई है। यह संख्या सन् २१ की जनसंख्या से ३३८९५२९८ अधिक है। तदनुसार इस समय भारतवर्ष से अधिक जनसंख्या वाला अन्य कोई देश नहीं। चीन देश भी पिछड़ गया है। यूरोप, अमेरिका आदि पांचों महाद्वीपों की सम्मिलित जन संख्या के पांचवें भाग यहां की जनसंख्या है।

२३९१९५१४० हिन्दू हैं, ७७६७७५४५ मुसलमान, ६२९६७६३ ईसाई, ८२८०३४७ ट्राइबल (कबीले) तथा १९०७४७६२ जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि हैं।

इतनी भारी संख्या में पढ़े लिखे पुरुष स्त्री केवल २८१३१३१५ हैं, सन् २१ में २२६२३६५१ थे, तदनुसार इस समय भी ९२ प्रतिशतक (फ़ीसदी) अशिक्षित लोग भारतवर्ष में हैं।

जनसंख्या सिक्खों में सबसे अधिक बढ़ी है, और हिन्दुओं में सबसे कम।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या मद्रास, विहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त में अधिक है, शेष सब प्रान्तों में स्त्रियां पुरुषों से कम हैं। पंजाब में प्रति सहस्र (हज़ार) पुरुषों को अपेक्षा स्त्रियां सिक्खों में ७९९, मुसलमानों में ८०१ और हिन्दुओं में ८२६ हैं।

विवाहित स्त्रियों से विवाहित पुरुषों की संख्या ६०१२४४ अधिक है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि विवाहित छोटी आयु की लड़कियों की संख्या शारदाकानून के भय से छिपाई गई है।

शारदा ऐक्ट पास होने से पहले अनेक लोगों को अपनी १४ वर्ष से कम आयुकी लड़कियों का विवाह कर देने की बहुत जल्दबाज़ी पड़ गई थी। इसी जल्दबाज़ी में बंगाल में एक कायस्थ ने अपनी लड़की धोखे में एक नाई के साथ ब्याह दी।

अंधे और पागल मनुष्यों की संख्या भी सन् २१ से बढ़ गई है।

आबादी पहले शहरों में ८ फीसदी थी, किन्तु अब की बार ११ फीसदी हो गई है। ८९ फी सदी जनता गाँवों में रहती है।

रिपोर्ट के अनुसार भारत में १० फीसदी बाल-माताएं प्रसूति के समय मर जाती हैं। भारतीय लोगों की औसतन आयु केवल २३.०२ वर्ष की है। इस सामान्य विवरण के सिवाय कुछ अन्य मनोरंजक विवरण भी है, वह यहाँ पाठकों के समक्ष रक्खा जाता है—

—बर्मा में बच्चों की मौत सब से कम होती है—अर्थात् २३ सैंकड़ा।

—यहूदियों के बच्चे बहुत होते हैं। हर परिवार में ६ बच्चे औसतन पाए जाते हैं।

—हर १० हजार आदमी पीछे ६८२४ व्यक्ति हिन्दू हैं।

—ईसाइयों का परिवार अधिक पाया जाता है। हर परिवार में औसतन ५ आदमी पाए गए।

—विधवाओं की सबसे अधिक संख्या बंगाल में है अर्थात् हर एक हजार स्त्रियों पीछे २२६ विधवाएं हैं।

—पागलों की अधिक संख्या वर्मा में है—अर्थात् हर १ लाख पीछे ८८।

—अजमेर मारवाड़ में अन्धों की संख्या अधिक है—अर्थात् हर १ लाख पीछे ३८६।

—पढ़े लिखों की भी अधिक संख्या बर्मा में ही है—अर्थात् हर १ लाख पीछे ३६८।

—बर्मा सबसे बड़ा प्रान्त है। इस का क्षेत्र-फल २३३४२९ वर्ग मील है।

—आबादी के हिसाब से बंगाल प्रान्त सर्व प्रथम है। उसकी आबादी ५०११४००२ है।

—सी० पी० में सब से अधिक मौतें होती हैं। अर्थात् ३३.५, और आसाम में सबसे कम अर्थात् २३.८।

—मदरास प्रान्त में १ हज़ार मर्द पीछे १०२५ स्त्रियां हैं।

—पंजाब में स्त्रियों की न्यूनता है, यहां १ हज़ार मर्द पीछे ८३१ स्त्रियां हैं।

—बर्मा में बूढ़ों की संख्या अधिक है। ५० साल से ऊपर वालों की संख्या सवा ११ सैंकड़ा है। यह संख्या भारत भर में सर्व प्रथम है।

नोट—हर्ष है कि जैनी भी सन् २१ से कुछ बढ़ गये हैं। कांग्रेस ने जनगणनाका बहिष्कार किया था, इस कारण जनगणना में कुछ त्रुटि भी रह गई है।

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[५]

श्री भद्रबाहु आचार्य अपने साधु संघ सहित विहार करते हुए मार्ग में अपने पवित्र उपदेश से जनता को धर्मपथ लगाते हुए दक्षिण देश में पहुँचे; वहाँ पर उन्होंने एक जंगल में आकाशवाणी सुनी। भद्रबाहु स्वामी ने अपने निमित्त ज्ञान से जाना कि अब मेरा यह मानव जीवन प्रायः समाप्त हो चुका, केवल थोड़ा सा शेष रहा है।

यह बात जानकर उन्होंने निश्चय किया कि अब अपने साधुसंघका शासनभार छोड़कर समाधि से अपना समय बिताना चाहिये, क्योंकि संघ में रहते हुए कुछ न कुछ मलिन मोहभाव बना रहता है। ऐसा निश्चय करके उन्होंने समस्त साधुओं को अपने पास बुलाकर अपने निकट जीवन का समस्त समाचार सुनाया और कहा कि अब मैं आप लोगों से पृथक रह कर एकान्त स्थान में समाधि से शरीर त्याग करना चाहता हूं। अतः अपने स्थान पर दशपूर्व वेत्ता श्री विशाख मुनि को जो कि सब प्रकार सुयोग्य हैं साधुसंघ का शासनभार अर्पण करते हुए अपने स्थान पर उनको आपके संघ का नायक आचार्य बनाता हूँ; आप लोग अबसे मेरे पदपर श्रीविशाख मुनिवरको आचार्य समझ कर उनके आदेशानुसार चलें।

यह कह कर उन्होंने विधिपूर्वक विशाख मुनीश्वर को आचार्य पद पर स्थापित किया और समस्त संघ को वहां से विहार कर जाने की आज्ञा दी। श्री विशाखाचार्य मुनिसंघ को साथ लेकर चोल पाण्ड्य देश की ओर चले गये।

भद्रबाहु स्वामी समाधिपूर्वक आयु समाप्त करने के लिये कटवप्र पहाड़ी पर जिसका नाम कि आजकल चन्द्रगिरि है चले गये, वहां एक पवित्र गुफा में बैठकर ध्यान करने लगे। उनकी सेवा करने के लिये चन्द्रगुप्त मुनि उनके साथ रह गये।

कुछ दिनों पीछे अंतिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी का उसी पर्वत पर स्वर्गवास हो गया जिस से कि श्रुतज्ञान का सूर्य भरतक्षेत्र में दीर्घकाल के लिये अस्त हो गया। चन्द्रगुप्त मुनि श्री भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गवास हो जाने पर वहीं तपस्या करने लगे।

उधर मालवा प्रान्त में दुर्भिक्ष होना प्रारम्भ हुआ। जलवर्षा न होने से अन्न की उत्पत्ति नहीं हुई, जिससे कि दरिद्र जनता भूख से मरने लगी। दूसरे वर्ष भी पानी की एक बूंद न बरसी, तीसरे वर्ष भी पानी न बरसने से अकाल पड़ गया, इस प्रकार लगातार दुष्काल होता गया। इस कारण गरीब लोग अपने पास खाने के लिये ज़रा भी अन्न न रहने से भूख के मारे छटपटाने लगे।

एक एक ग्रास भोजन के लिये लोगों ने आपस में कुत्तों की तरह लड़ना शुरू किया। भूखी मातायें अपने प्राणप्यारे पुत्रों को इधर उधर छोड़ कर अपना उदर भरने के लिये दौड़ने लगीं, छोटे छोटे बच्चे अपने माता पिताओं से छुटकर विलाप

करते हुए भूख से बिलबिलाते हुए प्राण देने लगे उनकी सुध लेने वाला कोई न रहा।

ऐसा करुणाजनक समय देखकर उज्जैन के कुबेरमित्र आदि सेठों ने निर्धन लोगों को भोजन पाने के लिये अपनी विशाल दानशालाएं खोलदीं, जिससे उज्जैन की दरिद्र जनता अपना पेट भरने लगी।

इस अन्नदानकी बात जब उज्जैन से बाहर के लोगों ने सुनी तो वे भी चारों ओर के झुण्ड उज्जैन की उस दान शालाओं में आ पहुँचे। इतनी भारी भीड़को भी सेठों की दानशालाएं दान देती रहीं, किन्तु जब यह भीड़ बराबर दिन पर दिन बढ़ती ही चली गई तब तो दानशालाओं को कठिनता उत्पन्न हो गई। अंतमें अन्न पाने वाले गरीब लोग उज्जैन के बाहर से उज्जैन में इतने आ गये कि उनको अन्न देना असम्भव हो गया। तब विवश होकर सेठों को अपनी दानशालाएं बन्द करनी पड़ीं। उस समय उज्जैनके सेठों को श्री भद्रबाहु स्वामी का वह वाक्य याद आया कि 'तुम्हारी विशाल दानशालाएं भी लोगों की भूख न मिटा सकेंगी।'

दानशालाओं के बन्द हो जानेपर तो उज्जैन में हाहाकार मच गया। भूखे लोग पेड़ों की पत्तियाँ, पेड़ों की छाल तथा जड़ खाने लगे, किन्तु लाखों भूखे मनुष्योंका इससे भी गुजारा कहां तक चलता; पेड़ भी भूखी जनता के पेट को शान्त न कर सके। तब लोग बच्चों को मार मार कर खाने लगे, अकेले मनुष्यको पकड़ कर मार के खा जाते थे।

ऐसी दुर्घटना रामल्यादि के संघवर्ती एक साधु के साथ हो गई। वह साधु आहार करके अकेले पीछे रह गये थे, भूखे लोग उन पर टूट पड़े और उनको मारकर उनका कलेवर खा गये।

इस दुर्घटना से उज्जैन के जैनियों तथा साधुओं में हाहाकार मच गया, सबने भद्रबाहु स्वामी के बचन याद किये। तब सब श्रावकोंने मिल कर स्थूलभद्रादि आचार्यों से निवेदन किया कि पूज्यवर! समय बड़ा भयानक आ गया है। अब आपका निवास उज्जैन से बाहर रहना कठिन है, इस कारण आप नगर में चल कर रहें।

समय की भयंकरता देखकर आचार्यों ने स्वीकार कर लिया और बनवास छोड़कर उज्जैन का नगर निवास प्रारम्भ कर दिया। तदनुसार सेठों के खाली मकानों में आकर बस गये।

किन्तु कुछ दिनों बाद एक दूसरी कठिनता उनके सामने यह आगई कि दिनमें आहार के लिये साधु जिस समय श्रावकों के घर में प्रवेश करते थे तब उनके साथ भूखे लोग भी अन्न पाने की आशा से घुस पड़ते थे। उनको जिस समय बलपूर्वक बाहर निकाला जाता था तब वे दुखसे चिल्लाते थे, बिलबिलाते थे, भूख से छटपटाकर गिर पड़ते थे। इस करुणाजनक दयनीय अवस्था को देखकर अन्तराय समझ मुनि बिना भोजन किये पीछे लौट जाते थे।

इस विकट समस्या से छुटकारा पाने के लिये उज्जैन के श्रावकों ने एकमत होकर स्थूलभद्र आदि के पास जाकर प्रार्थना की कि गुरुदेव! समय बहुत विकराल आ गया है, दिन में निरन्तराय भोजन आपका अब नहीं हो सकता। इस कारण विकट समयको बितानेके लिये आप कृपा करके लकड़ी के पात्रों (बर्तनों) में रात के समय हमारे

घरोंसे भोजन ले आकर दूसरे दिन प्रातःकाल खा लिया करें।

आचार्यों के पास अपने संघके साधुजीवन के लिये सिवाय इसके कि वे अपने भक्त श्रावकों की प्रार्थना स्वीकार करते, अन्य कोई उपाय न रहाथा। इस कारण साधु चरित्र के प्रतिकूल होने पर भी उन्होंने जीवन सुरक्षित रखनेके लिये उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तब से साधु श्रावकों के घरसे लकड़ी के बर्तनों में रात्रि समय भोजन ला लाकर दूसरे दिन करने लगे।

रात्रिको आते जाते कुत्ते भौंकते थे तथा आते जाते हुए मार्ग में साधुओं को रुकावट डालते थे, इस आपत्ति को दूर करने के लिए श्रावकोंने साधुओं को अपने साथ एक लकड़ी रखनेका निवेदन किया, साधुओं ने अपने भक्तों की यह बात भी स्वीकार कर ली और तब से अपने साथ लकड़ी भी रखने लगे।

इस प्रकार महाव्रतधारी वे मुनि कालकी विकरालता को टालने के लिये विवश (लाचार) होकर अपने पास लाठी व पात्र रखने लगे और शहर में आकर रहे तथा रातको भोजन लाकर दूसरे दिन खाने लगे, किन्तु विकराल समयने अभी कुछ और भी पतन कराना था।

एक दिन एक काले, पतले साधु यशोभद्र सेठ के घर रातको भोजन लेने गये, तब रात को उनका शरीर सेठकी पत्नी धनश्री को डरावना दीखा और वह उनको कोई भूत समझकर ऐसी डरी कि भय से उसका गर्भपात हो गया।

इस दुर्घटना से श्रावकों तथा साधुओं में और भी अधिक व्याकुलता फैल गई। श्रावकों ने एकत्र होकर आपस में सलाह की, फिर सबने स्थूलभद्र आदि आचार्यों के चरणों में जाकर विनयसे प्रार्थना की कि गुरुराज! समय बहुत विकट है, भद्रबाहु स्वामी के वचन असत्य नहीं हुए। किन्तु इस विकटता को पार करने के लिये आप हमारी एक प्रार्थना और भी स्वीकार करें कि एक छोटा सा कपड़ा अपने शरीर पर रक्खे जिससे कि कलकीसी दुर्घटना न हो सके।

श्रावकोंकी प्रार्थना विकट कालके अनुसार आचार्यों को ठीक जंची और अनुचित होने पर भी अपने शरीर पर एक छोटा वस्त्र भी रखना प्रारंभ कर दिया। [क्रमशः]

ओसवाल जाति।

[ले०—श्रीमान सरदार भंवरलाल जी यदुवंशी भाटी, रतलाम]

ओसवाल जाति विशुद्ध क्षत्रिय (Pure Rajput) है, यह बात इतिहासों से प्रसिद्ध है। बहुत से ओसवालों की वंशावलियां आबू, उदयपुर, जोधपुर, जैसलमेर इत्यादि बड़े २ क्षत्रिय राज्यकुलों से ही प्रारम्भ होती हैं। ओसवालों का क्षत्रियों से पृथक हो जाने का मुख्य

कारण धर्म व आचार भेद है। जिस समय राजपूताने में वाम मार्ग पंथ का प्रचुर प्रचार था उसी समय जैनाचार्यों ने क्षत्रियों को मांस मदिरा के सेवन से छुड़ाकर अहिंसामयी जैनधर्म में दीक्षित किया था, तथा उस समय की आवश्यकता के अनुसार ओसियाँ नगरी के नाम से क्षत्रियों से पृथक एक ओसवाल जाति स्थापित की थी। किन्तु ओसवाल जाति किसी एक ही समय की बनी हुई नहीं है, इस जाति में भिन्न २ जैनाचार्यों ने भिन्न २ समयों में क्षत्रियों को जैनधर्मी बनाया है और वे जैनक्षत्रिय ओसवाल जातिमें सम्मिलित किये गये हैं।

वर्तमान में ओसवालों की गणना वैश्य वर्ण में की जाने का मुख्य कारण ओसवाल जाति की निज की अनभिज्ञता व अन्य लोगों का धार्मिक द्वेष ही है, तथापि यह भूल सर्वत्र नहीं है। राजपूताना, बंगाल, बिहार, यू० पी० के कितने ही ओसवाल आज भी अपने को जैनक्षत्रिय ही प्रगट करते हैं व इसी प्रकार कितने ही निष्पक्ष इतिहासकार भी ओसवालों को क्षत्रिय ही मानते हैं। ओसवालों को वैश्य (बनिया) विशेषकर मालवा मेवाड़ गुजरात में माना जाता है, अतः इसको कालदोष व समय का परिवर्तन कहना चाहिये।

अब ओसवाल जाति और क्षत्रियों का पुनः सम्मेलन हो अथवा न हो, किन्तु थोड़े ही समय में क्षत्रियों के व ओसवाल जाति के आचार विचार में भेदभाव नहीं रहेगा—क्योंकि वर्तमानमें हम यत्र तत्र हमारे क्षत्रिय भ्राताओं में मांस मदिरा शिकार इत्यादि दुर्व्यसनों के त्याग करने का ज़ोरों से प्रचार देख रहे हैं और यही पृथकता का मुख्य कारण था। जैनक्षत्रिय किसी दीन हीन निरपराध जीव को संकल्प करके नहीं मारते, किन्तु हिंसक और त्रासदायक दुष्टको मारने में जैनक्षत्रिय धार्मिक दृष्टि से उतने ही स्वतन्त्र हैं जितने कि हिंदू क्षत्रिय।

रहा धार्मिक भेदभाव सो इसके लिये कोई बन्धन नहीं है; यह तो अपने २ मनके विश्वास की बात है कि कोई वैदिक धर्म को हितकारी मानता है और कोई जैन या बौद्ध धर्म को लाभदायक मानता है; वैदिकधर्म के मानने वालों में भी अनेक सम्प्रदाय हैं और जैनधर्म में भी अनेक फिर्के हैं।

जैनधर्म से क्षत्रियों का कितना घनिष्ट संबंध है यह बात हम अपनी पूर्व लेखमाला (जो सन् १९२५ में क्षत्रिय मित्र के अङ्कों में प्रगट हुई है) में भले प्रकार से दिखला चुके हैं।

वर्तमान में हिन्दू क्षत्रियगण जैन राजपूत ओसवालों को चाहे वैश्यही समझें, किन्तु आज भी ओसवाल जाति भारतवर्ष में एक विशेष धनवान और प्रतिष्ठित जाति है; इतना ही नहीं परन्तु कई ओसवाल ज़िमींदार जागीरदार और राजा भी हैं।

पटियाला नरेश व मलकाना राजपूतों को क्षत्रियों ने अपने में शामिल करके जितना हित सोचा है उससे कहीं अधिक ओसवाल जाति के पुनः क्षत्रियों में मिल जानेसे हो सकता है। क्योंकि जिस हालत में ओसवाल अपने को जैनक्षत्रिय कहते हैं व उनकी वंशावलियाँ बराबर सिलसिलेवार क्षत्रिय वंशों से मिली हुई हैं, इस हालत में क्षत्रियों का और ओसवालों का रक्त सम्बन्ध नहीं टूट सकता; दोनों के मध्यमात्र आचारका ही भेद है; यदि हमारे क्षत्रिय भ्राता मांस मदिरा और शिकार का त्याग कर देवें तो उनको एक बिछुड़ी हुई अपनी विशुद्ध जाति पुनः मिल सकती है।

वर्तमान ओसवालों में भी जैनी वैष्णव आर्यसमाजी आदि सभी सम्प्रदायों के लोग हैं, अतएव धर्म का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। अलबत्ता कितनेक धर्मभीरु ओसवाल जो खासे बनिये बन चुके हैं वे अपने को अब क्षत्रिय कहलानेसे इन्कार करेंगे, और ऐसे लोगों से वे ओसवाल जो अपनेको क्षत्रिय मानतेहैं आजभी शादी ब्याह करने से परहेज़ करते हैं। अतः समय आने पर बनिये-ओसवाल वैश्यों में मिल जांयगे और क्षत्रिय-ओसवाल क्षत्रियों में।

हम उस दिन की प्रतीक्षामें हैं कि हमारे संपूर्ण क्षत्रियभ्राता शुद्धाचरणी हो जायं और कोई भी क्षत्रिय मादक पदार्थ का सेवन करने वाला न रहे व क्षत्रियों के द्वारा समस्त जगत में "अहिंसा परमोधमः" का डंका बज जाय और साथ ही वे अपने ब्रह्मचर्य व्रत के द्वारा वीरत्व प्राप्त करके दुष्ट जीवों के संहार के लिये सदा तत्पर रहें व दीन हीन निरपराध जीवों की व अपने देश की रक्षा करने में निजप्राणको भी अर्पण करदें, तभी क्षत्रियों का क्षत्रिय कहलाना सार्थक होगा।

सं० अभिमत—अग्रवाल, खंडेलवाल, पद्मावतीपुरवाल, लम्बेचू आदि अनेक जातियों के इतिहास उनको क्षत्रिय वंश का सिद्ध करते हैं, किन्तु इन जातियों को आजकल वैश्य लिखा, समझा और माना जाता है। लेखक महानुभाव की वंश परम्परा जैसलमेर नरेश की वंशावली से मिलती है, उनके पूर्वज जैसलमेर के राजा थे। वर्तमान जैसलमेर नरेश और लेखक महोदय की वंशावली बराबर मिलती है, यह बात फिर कभी प्रकाशित की जायगी। अतएव हमारे जैनभ्राताओं को अपने क्षत्रियत्व का गौरव न भूलना चाहिये तथा शूरवीर बनना चाहिये। समय का तकाज़ा है कि प्रत्येक जैन जाति अपना पूर्व इतिहास खोजे और इस कलंक को सप्रमाण धो डाले कि जैनी तो बनिये ही हुआ करते हैं।

जैनधर्म और भारत के शासक

(लेखक—श्रीमान बा० कामताप्रसाद जी)

[गताङ्क से आगे]

[३]

चक्रवर्ती–सम्राट् भरत।

ऋषभदेव के बाद उनके पुत्र भरत इस देश के शासक हुये। वह महावीर थे। उन्होंने धर्म-मार्ग को बढ़ाने की नियत से सारी पृथिवी को अपने वश किया था। अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर वह अयोध्या से निकले थे और वर्षों बाहर रहकर उन्होंने कोई मनुष्य बाकी न छोड़ा था जो उनके सम्मुख नतमस्तक न हुआ हो। स्वयं उनके खास भाई बाहुबलि को भी उनका लोहा मानना पड़ा था। भरत ने अपनी दिग्विजय के हर्षोपलक्षमें 'कल्पवृक्ष महामह' नामक धर्मानुष्ठान किया था, जिसमें प्रत्येक याचक को किमिच्छिक दान दिया जाता है। सचमुच भरत जितने वीर थे वैसे ही धर्मात्मा भी थे। उन्होंने निर्वाध

दान देने की सुगमता और ज्ञानवृद्धि के भाव से 'ब्राह्मण' वर्ण की स्थापना की थी। कैलाशपर्वत पर आकर उन्होंने भगवान् ऋषभदेवकी वन्दना की और उनके मुक्त होने के बाद उन्होंने वहाँ सोने के मंदिर बनवाये थे। भला कहिए ऐसे बहादुर और धर्मात्मा सम्राट् का भारतीय जनता विशेष आदर कैसे न करती? उसने इस देश का नाम उनके नामकी अपेक्षा 'भारतवर्ष' रखकर भरत के नाम को अमर कर दिया। *

सम्राट् भरत एक न्यायशील राजा थे। एक दफ़ा उनके पुत्र अर्ककीर्ति काशी के राजा अकंपन की पुत्री सुलोचना के स्वयंवर में गये थे। सुलोचना ने वरमाला अर्ककीर्ति के गले में न डाल कर एक अन्य राजा जयकुमार के गले में डाल दी, अर्ककीर्ति को यह सहन न हुआ और उसने अकंपन तथा जयकुमार से युद्ध ठान दिया। भरत ने जब यह समाचार सुने, तब उन्हें अपने पुत्र पर बड़ा क्रोध आया और वह उसे दण्ड देने के लिए उद्यत हो गए। किन्तु अकंपन ने स्वयं उसे अपनी छोटी कन्या व्याह दी, जिससे भरत को उसे क्षमा करना पड़ा! इस घटना से पाठक समझ सकते हैं कि भरत नीति और धर्म के कितने क़ायल थे। इसीलिये उन्होंने दण्डविधान में भी परिवर्तन किया था। उन्होंने प्राणदंड, देश निकाले, कैद आदि की सज़ायें रक्खी थीं, जैसे पहले लिखा जा चुका है।

सम्राट् भरत का अतुल वैभव और महान ऐश्वर्य था। बड़े-बड़े राजा उनको मस्तक नवाने के लिये ईर्ष्या करते थे। प्रजा उनकी आज्ञाकारिणी थी। सारा संसार उनकी आज्ञा मानना अपना अहोभाग्य समझता था। किन्तु इतने पर भी सम्राट् भरत सरल थे—उन्हें मान छू तक नहीं गया था। वह अपनी धन सम्पदा को तृणवत् समझते थे। उनका मोह उसमें ज़रा भी नहीं था। वह उस विपुल सम्पति के एक रक्षक मात्र थे। आजका साम्यवाद इससे अधिक और क्या चाहेगा? बड़े से बड़ा सम्राट् जहां धन-सम्पदासे निरपेक्ष है, वहां राजा और प्रजा में असंतोष कहां से हो? वस्तुतः राष्ट्र को सुखसमृद्धिशाली बनाने के लिये राजा को अथवा शासकको स्वयं संतोषी और अल्प परिग्रही बनना चाहिये—तबही तो जनता उसके आदर्श को अपनायगी और सुखी बनेगी। अल्प आवश्यक्तायें और प्रचुर भोगोपभोग की सामिग्री जहां हो, वहाँ असंतोष को स्थान ही नहीं होता। सम्राट् भरतने इस आदर्श को अपने जीवन में मूर्तिमान् बनाया था!

* 'मार्कण्डेयपुराण' में लिखा है कि :—

ऋषभादभरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः । सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः ॥ ३९ ॥
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रम संश्रयः । हिमाह्वयं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ॥ ४० ॥
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः । भरतस्याभवत्पुत्रः सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥ ४१ ॥

भावार्थ—'ऋषभके पुत्र भरत थे। ऋषभने भरत का राज्याभिषेक किया और स्वयं तप तपने चले गये। दक्षिण का हिमनामक देश भरत को अपने पिता से मिला और उस महात्मा की नाम अपेक्षा भारतवर्ष नामसे वह प्रख्यात् हुआ। भरत का धर्मात्मा पुत्र सुमति था'।

आर्यसभ्यता में राजा पिताके तुल्य माना गया है। उसका आविष्कार उसे इस पदके योग्य ठहराता है। प्रजा उसकी सन्तान है। सन्तान अपने पिताके पास निस्संकोच भाव से पहुँचती है। राजा को भी एक पिताके समान सरल और दयालु होना चाहिये, जिससे प्रजा को उसतक पहुँचने में ज़रा भी संकोच न हो। भरत जी के निकट हर खासो आम पहुँचता था। प्रजा उनसे इतनी हिलमिल गई थी कि एक साधारण मनुष्य अपने सम्राट् की परीक्षा करने तक को उद्यत हो जाता था। सम्राट् भरत के धर्म और निस्पृहभाव की प्रसिद्धि चहुँ ओर हो गई थी।

एक दिन एक किसान उनके पास पहुचा और बोला कि 'महाराज' आप बड़े धर्मात्मा और निस्पृही सुने जाते हैं और आप राज्य कर रहे है! यह परस्पर विरोधी बात कैसे संभवित हो सकी है? जब आपके ऐश्वर्य है, तब निःस्पृहता कैसे? भरत मुस्करा दिये और बोले कि—'देख, यह तेलका भरा कटोरा तुझे देता हूं। जा तू मेरी सारी सेना देख आ, परन्तु खबरदार कटोरे से एक बूंद तेल न गिरने पाये! वरन् प्राणदण्ड निश्चित है'। आज्ञानुसार किसान तेल का कटोरा लेकर सेना का निरीक्षण करने निकला। वह सारे कटक में फिर आया, परन्तु मारे डरके उसकी दृष्टि तेल के कटोरे से एक क्षण के लिए भी अलग न हुई। उसके लौट आने पर भरत ने पूछा कि—'भाई, मेरी सेना में तुमने क्या देखा?' वह किसान चुप था। हठात् उसे अपनी भयातङ्क जनित विवशता को कहना पड़ा। उस पर भरत बोले कि—'बस भाई, अब तो तू समझ गया कि मैं राज्य कार्य करते और ऐश्वर्य को रखते हुए भी किस तरह निस्पृह हूँ।' किसान खुशी से भरत को प्रणाम करके अपने घर गया! यह था एक आर्य शासक का आदर्श! जैनधर्म में कहे हुये अणुव्रतों का प्रत्यक्ष प्रभाव सम्राट् भरतके जीवन में झलकता है। वे निस्संदेह अणुव्रती श्रावक थे। अपने पिता ऋषभदेव के वह अनन्यभक्त थे।

एक दिन सम्राट् भरत ने अपने सिर के बालों में एक सफेद बाल देखा। वह उन्हें यमदूत के समान दृष्टि पड़ा। उन्होंने झट से राजभार अपने पुत्र अर्ककीर्ति पर डाला और स्वयं दिगम्बर मुनि हो तप तपने लगे। उनका हृदय इतना निस्पृह और विशुद्ध था कि घर छोड़ते ही उन्हें सर्वज्ञता का लाभ हुआ! सर्वज्ञ होकर उन्होंने लोगों को धर्मोपदेश दिया और अन्त में निर्वाण पद पाया!

सम्राट् सगर

भरत के पश्चात् भारतीय राजाओं में सगर मुख्य थे। वह भी इक्ष्वाकु वंश के रत्न थे। उनके पिता का नाम समुद्र विजय और माताका नाम सुबाला था। उन्होंने भी छहों खण्ड पृथ्वी को जीत कर 'चक्रवर्ती' पद प्राप्त किया था। निस्संदेह भरत के समान ही वह महावीर थे किन्तु उन जैसे वह धर्मवीर न थे। उन्हें अपने ऐश्वर्य का मोह था और उसे वह जल्दी न छोड़ सके थे। सम्राट्-पद का आर्य-आदर्श समय के फेर से अक्षुण्ण न रहा; परिणामतः प्रजामें उत्तरोत्तर असंतोष बढ़ता गया, जो आज अपनी चरमसीमा पर है! किन्तु सगर तीव्रमोही न थे, उन्होंने आखिर मोह की धज्जियां उड़ा दीं थी और परमधाम निर्वाण को पाया था! 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' की उक्ति को उन्होंने चरितार्थ किया था।

सम्राट् शान्तिनाथ

सगर के अतिरिक्त **मघवा** और सनत्कुमार भी 'चक्रवर्ती' सम्राट् थे। किन्तु इनके बाद हुये सम्राट् **शान्तिनाथ** विशेष उल्लेखनीयहैं! हस्तिनापुर में कुरुवंशी राजा विश्वसेन राज्य करते थे। उनके **ऐरादेवी** नामक विदुषी रानी थी। शान्तिनाथ का जन्म उन्हीं की पावन कोख से हुआ था। युवावस्थाको प्राप्त होनेपर उनका राज्याभिषेक हुआ। उस समय जनता धर्म-कर्म से सर्वथा विमुख थी। राजव्यवस्था भी अपने आदर्श को गंवा बैठी थी। सत्य और विवेक के अभाव में कोई भी राष्ट्र समुन्नत नहीं हो पाता। उस समय भारतीय राष्ट्र इन बातों से शून्य था, क्योंकि वह धर्म से विमुख हो गया था। परिणामतः राष्ट्र भी उन्नति शिखर से नीचे की ओर खिसकने लगा था। ऐसे समय पर स्वभावतः एक ऐसे वीर शासक की आवश्यकता थी जो प्रजा को सत्य के दर्शन कराके उसे धर्मानुगामी बनाता! राजा शान्तिनाथ में प्रजा को वह वीर पुरुषत्व मिल गया! शान्तिनाथ बड़े धर्मनिष्ठ विद्वान् और विक्रमी वीर थे। उन्होंने अन्याय और अनाचार का नाश करने के लिये छहों खंड पृथिवी की दिग्विजय करने की ठानी और वह इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये अपनी सेना लेकर निकल पड़े।

समझाने से जो माने उनको शान्तिनाथ का सौहार्द्र सुगमता से मिल गया और सीधे सीधे जिन्होंने अपनी पापवृत्ति को नहीं छोड़ा उन्हें अपने असिबल से शान्तिनाथ ने सत्पथ पर आरूढ़ किया। आखिर उनका पवित्र और महान् अनुष्ठान सफल हुआ और सारे संसार ने उन्हें अद्वितीय महापुरुष माना। अब शान्तिनाथ **'चक्रवर्ती-सम्राट्'** घोषित किये गये। उनमें आर्य-सम्राट् का आदर्श पुनः मूर्तिमान् होता दिखाई दिया! वे महावीर तो थे ही, पर साथ ही विवेकी और निःस्पृही भी अनोखे थे। प्रजा उन्हें अपने से भिन्न नहीं समझती थी—वह ऐसे प्रजा-हितैषी थे।

एक दिन सम्राट् शान्तिनाथ को दर्पण में अपने दो मुंह दिखाई पड़े—यह एक मामूली बात थी—पहलदार शीशे में ऐसा हो जाना कुछ बेजा नहीं! परन्तु शान्तिनाथ के लिये इस साधारण घटना ने बड़ा काम किया! विचक्षण दृष्टि में यही तो विशेषता होती है। साधारण मनुष्य जिन बातों को साधारण समझता और उन्हें महत्व नहीं देता, मनीषी उन्हीं में महान् और महत्व के दर्शन करते हैं! शान्तिनाथ ने उक्त घटना से अपने पूर्वभव का स्मरण किया—उन्हें संसार का क्षणिकरूप दृष्टि पड़ा! झट उन्होंने राज-पाट और ममता-मोह की श्रृंखला को भङ्ग किया! वह दिगम्बर साधु हो गये और तप तप कर जीवन्मुक्त परमात्मा बने। जिस प्रकार वे पहले संसार दृष्टि से सम्राट् शासक थे, ठीक, उसी प्रकार अब वे यथार्थ परमार्थ दृष्टि से आध्यात्मिक साम्राज्य के अथवा धर्मसाम्राज्य के अतुल शासक थे। धर्मतीर्थ का निर्माण करने के कारण 'तीर्थङ्कर' कहलाये।

अब उन्होंने प्राणीमात्र का सच्चा हित साधने के लिये धर्म-तीर्थ की फिर से स्थापना की! लोगों को भगवान् शान्तिनाथ ने धर्म का महत्व समझाया, क्योंकि बिना धर्मभाव के कोई मनुष्य मनुष्य नहीं हो पाता। धर्म वस्तुस्थिति है और जब तक कोई वस्तुस्थिति (TRUTH) न समझे तब

तक वह मनुष्य क्योंकर कहाये? आखिर मनन करना—अच्छे बुरे की तमीज़ रखना ही तो मनुष्य की विशेषता है। यह विशेषता मनुष्य में धर्म-तत्व से ही जागृत होती है। भगवान शान्तिनाथ ने साधु-पद से जनता को यह सत्य विशेष रूप में समझाया था और उसके गले यह सत्य उतार दिया था कि सच्चा सुख उसकी स्वाभाविक दशा—मोक्ष—में है। प्रजा ने इस सत्य-दर्शन में अपना वास्तविक सुख साधा था।

आखिर भ० शान्तिनाथ सम्मेदशिखर पर्वत (Parasnath Hill) से मोक्षधाम सिधारे और आज भक्तजन उन्हें सिद्ध परमात्मा जानकर पूजते हैं!

[क्रमशः]

* दीपावली *

आज से २४५९ वर्ष पहले का वह कार्तिक वदी अमावस्या का दिन भी एक बड़ा शुभ दिन था जिसकी रात के पिछले पहर (कार्तिक सुदी प्रतिपदा के प्रभात समय से कुछ पहले) अंतिम तीर्थंकर, तरणतारण श्री भगवान महावीर स्वामी कर्मजंजाल को आत्मासे दूर करके पावापुरी के सरोवर से मुक्त हुए थे। उस समय कुछ अंधेरा था, इस कारण भगवान महावीर स्वामी का मुक्ति उत्सव करने के लिये वहाँ पर जो भक्त मानव समुदाय तथा देवमंडली आई थी उन्होंने असंख्य दीपक जलाकर प्रकाश किया था।

उसी दिनसे श्री भगवान महावीर स्वामी के पुनीत स्मरण में प्रतिवर्ष कार्तिक वदी अमावस्या तथा कार्तिक सुदी प्रतिपदा को दीपावली उत्सव भारतवर्ष में सर्वत्र हिन्दू लोग मानते हैं, किन्तु अजैन भाई सत्य आदर्श को भूल चुके हैं। अतः वे उस दिन भगवान महावीर की मुक्ति लक्ष्मी का पूजन न करके एक कल्पित लक्ष्मी को पूजा करते हैं। जैन समाज में वह आदर्श चला आ रहा है।

वही पुण्य दिवस अब आ पहुँचा है, तदनुसार समस्त भारतवर्ष में आनन्द, मंगल उत्सव सजावट आदि हो रही है; जिस तरह भगवान महावीर स्वामी ने उस दिन अपने आत्मा से कर्म मैल दूर करके आत्माको स्वच्छ किया था, ठीक उसी प्रकार लोग भी अपने घरों मे कूड़ा करकट निकाल कर घर स्वच्छ बनाते हैं। यहां तक कि व्यापारी लोग अपने बही खातों के कूड़े करकट को दूर करके अपने हिसाब को साफ़ करते हैं। इस तरह दीपावली अन्य सब त्योहारों में विशेष मंगलमय शुभ त्योहार है।

किन्तु जैनसमाज के प्रमाद से आज संसार तो क्या भारतीय अजैन जनता भी इस दीपावली (दिवाली) के रहस्य से अनभिज्ञ है; अनेक जैन भ्राता भी इस दिन के पवित्र इतिहास से जानकारी नहीं रखते, यही कारण है कि वे भी देखादेखी कल्पित लक्ष्मी की पूजन करने तथा ब्राह्मण पुरोहितों को खिलाने बैठ जाते हैं, मानों लक्ष्मी सचमुच कोई धनदात्री देवी है।

हमको अब अपने कर्तव्य में तत्पर होकर भगवान महावीर स्वामी के इतिहास से, उनके पवित्र उपदेशसे तथा उनके सिद्धान्त से संसार को परिचय कराना चाहिये। भगवान महावीर स्वामी से संसार का जो भला हुआ है उसको सुन्दर शब्दों में लिख पैम्फलेट, ट्रैक्ट छपाकर हिन्दी, बंगला, गुजराती, उर्दू फ़ारसी, कनड़ी अंग्रेज़ी आदि लिपियों में हज़ारों लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष बिना मूल्य वितरण करके घर घर पहुँचाने चाहियें।

यह विज्ञापन का ज़माना है आजकल जो नोटिसबाज़ी में बढ़ जाता है वह प्रसिद्धि पा लेता है। जो इसमें पीछे रहा, वह चाहे मूल्यवान सच्चा ही क्यों न हो, पीछे ही रह जाता है। महात्मा बुद्ध के अनुयायी भारतवर्ष में जैन लोगों से बहुत थोड़े हैं, किन्तु फिर भी प्रत्येक भाषा और लिपि में बुद्ध जीवनचरित प्रकाशित हो जाने से भारतवर्ष ही नहीं किन्तु समस्त संसार महात्मा बुद्ध का जानता है। जबकि भगवान महावीर स्वामी को समूचा भारतवर्ष भी नहीं जानता।

आज इस प्रचार में आर्यसमाज ने भी पैर फैलाया है, सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद भारतवर्ष की प्रत्येक लिपि और भाषा में हो चुका है जिससे कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों से सब लोग परिचित हो गये हैं।

इस कारण प्यारे जैन वीरो! आपस का विवाद छोड़ो, व्यर्थ व्ययको दूर करो, बड़े बनने का झूठा उद्योग न करो, ज़रा छोटे बनकर नम्र होकर इस ट्रैक्ट प्रचार के लिये अपना धन लगाओ। यदि हमारे खंडेलवाल भाई लहान बांटना ही ठीक समझते हैं तो पूर्वजों की स्मृति में इसी जैन-ग्रन्थ प्रचार, ट्रैक्ट वितरण द्वारा लहान बांटने का उद्देश पूरा करें जिससे यथार्थ कल्याण हो, ज्ञान व इतिहास के भूखे लोगों को तृप्ति मिले। वह उपयोगी दान ही आपके साथ जायगा। —संपादक

वीर निर्वाण !

जयति वीर भगवान ! जयति वीर भगवान !!

यह नभ पर प्रकाश है कैसा ?
यह जग में विकास है कैसा ?
यह वैचित्र्य भास है कैसा ?
कैसा स्वर्ण-विहान ?
जयति वीर-भगवान !

हो उल्लास-प्रेम अभिमण्डित
आज मुदित है नर सुर पण्डित
घोर निविड-तम हुआ विहण्डित
क्या है हेतु प्रधान ?
जयति वीर भगवान !

जिसने हिंसा-पाप मिटाया
दयाधर्म का स्रोत बहाया
विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ाया
कर निज जीवन दान !
जयति वीर भगवान !

सूर्य उगाया प्रेमोदय का
झंडा फहराया जिन जय का
आज उन्हीं 'शशि' महिमामय का
हुआ वीर निर्वाण !
जयति वीर भगवान !

—शशि

श्वेताम्बर जैन का अनाधिकार आक्षेप।

वैसे तो प्रत्येक मनुष्य अपने आपको अनधिकार चर्चा से बचावे, किन्तु पत्र संपादक को तो विशेषकर अनधिकारचर्चा से दूर रहना चाहिये; किन्तु हमारे अनेक संपादक महानुभाव इस बात को भूल जाते हैं। तदनुसार श्वेताम्बर जैन के संपादक जवाहरलाल जी लोढ़ा भी अनधिकार चर्चा में अनुचित रूप से लुढ़क गये हैं।

उन्होंने १४ सितम्बर के श्वेताम्बर जैन में ८ वें पृष्ठ पर 'दिगम्बराचार्य का विचित्र विधान' शीर्षक लेख में पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी पर अनुचित अयोग्य शब्दों द्वारा आक्षेप किया है। णमोकार मंत्र के जाप को आचार्य महाराज ने आर्तध्यान बतलाया या नहीं? यदि बतलाया तो क्यों? जैनजगत का लिखना कहाँ तक सत्य है? इत्यादि बातों का खुलासा तो हम आगामी अंक में करेंगे, किन्तु यहां पर हम संपादक श्वेताम्बर जैन से यह पूछते हैं कि आपको क्या आवश्यकता थी कि व्यर्थ बिना कुछ पूछे ताछे दिगम्बर जैन-समाज के पूज्य आचार्य के विषय में असभ्य शब्द व्यवहार कर बैठे। आप लिखते हैं कि "एक दि० मुनिवेषी ने फ़रमाया, पंडित जी ने…… भी पेट को प्रणाम करके हां में हां मिलाया, सिद्धान्तशास्त्र के निरे अनभिज्ञ दिगम्बराचार्य श्री शान्तिसागर जी की दिव्यध्वनि हुई, ब्यावर वाले अन्धभक्त हैं"।

इन असभ्य शब्दों को आप श्वेताम्बर जैन में प्रकाशित तो कर गये हैं किन्तु यहभी कुछ सोच लिया है कि ये अपमानजनक शब्द जोकि दिगम्बर समाजका मर्म छेदते हैं कितने महंगे पड़ेंगे? इनका मूल्य चुकाना कठिन हो जायगा।

आचार्य महाराज की सैद्धान्तिक योग्यता कितनी है? यह बात आपको क्या बतलावें, इसको तो यदि आपका कोई विद्वान पूछे उसको प्रगट करें? किन्तु इतना अवश्य लिख देते हैं कि योग्यता प्राप्त करने के लिये आपको उनकी चरण-सेवा में पहुँचना चाहिये।

कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद में श्वेताम्बरीय यति, साधु, गृहस्थों के जो परस्पर विरुद्ध पैम्फलेट छपे, तथा पोलपत्रिका नामक गुजराती पत्र में जो अनेक श्वेताम्बर साधुओं के दुश्चरित्र के सचरित्र समाचार छपे जोकि हमारे पास विद्यमान भी हैं, किन्तु हमने अनधिकार चर्चा समझ उनपर न कभी प्रकाश डाला और न कभी इस बात की आवश्यकता समझी, किंतु आप "जैनजगत" सरीखे पत्र की बात को लेकर दिगम्बर समाज के पूज्य आचार्य महाराज का अपमान करने से बाज़ न आये। अस्तु।

अब हम और अधिक कुछ न लिख कर यही पर्याप्त समझते हैं कि श्री जवाहरलालजी लोढ़ा हृदय से क्षमा मांग कर अपने लेख को वापिस ले लें, अन्यथा परिणाम ठीक न होगा।

मेरा स्पष्टीकरण !

मेरे कुछ मित्रों ने जिनमें शास्त्रार्थ संघ के महा मन्त्री श्री पं० राजेन्द्रकुमार जी का नाम विशेष उल्लेख योग्य है, मुझ से कहा है, कि मेरे कुछ लेखों से उनको मेरे सम्बन्धमें विधवा विवाह और छूता-छूत के विषयमें कुछ भ्रान्ति पैदा होती जा रही है।

ऐसी अवस्था में मुझे आवश्यक प्रतीत होता है कि इन बातों के सम्बन्ध में, मैं अपने अभिमत को जनता के समक्ष स्पष्ट शब्दों में उपस्थित करदूं।

आज तक मैंने जितने व्याख्यान दिये हैं व लेख लिखे हैं, उन में कहीं भी विधवा विवाह का समर्थन नहीं किया! मैं नहीं समझता कि मेरे मित्रों को इस सम्बन्ध में मेरे विषय में क्यों सन्देह पैदा हो गया है।

विधवा विवाह को मैं जैन शास्त्रों की आज्ञा के प्रतिकूल एवं समाज हित का विरोधी समझता हूं। यही मेरा इस सम्बन्ध में स्पष्ट मत है।

छूताछूत लोप के सम्बन्ध में भी मेरा अभिमत नहीं, मैं यह नहीं चाहता कि शूद्रों के साथ या उनके हाथ का स्पर्श किया हुआ भोजन किया जावे। अस्पर्श शूद्रों का श्री जिन मंदिर जी के भीतर लेजाकर दर्शन करना भी मेरी समझ से शास्त्रविहित मार्ग नहीं है! हाँ यह मैं अवश्य चाहता हूं कि शूद्रों की दशा को सुधारा जावें। इससे मेरा यह मतलब है कि उनको नशीली चीज़ों के त्याग और मांस त्याग के उपदेश दिये जावें, उनका रहन सहन स्वच्छ बनाने की चेष्टा की जावे, और उनकी यथा योग्य शिक्षा का भी प्रयत्न किया जावे। आशा है मेरे मित्रों एवं अन्य धर्म बन्धुओंको इससे उक्त दो बातों के सम्बन्ध में मेरे विषय में स्पष्ट परिचय हो जावेगा।

भेलसा
ता० ७-९-३३

समाज का तुच्छ सेवक—
ब्र० प्रेमसागर पंचरत्न।

दुःखद वियोग !

वह असोज सुदी पूर्णिमा (ता० ३—१०—३३) की काल रात्रि का मध्य भाग भी असह्य दुखकर समय था जिस समय पंडित नेमिचन्द्र मुरेना में सन्तान शून्य युवती पत्नी को अनाथ बनाकर एवं अपने परिवार तथा मित्र परिकर को रोते हुए छोड़ कर अपनी २४-२५ वर्ष की यौवन दशा में स्वर्ग यात्रा कर गये। आप श्रीमान ला० मिट्ठनलाल जी के शिक्षित इकलौते सुपुत्र थे और श्रीमान पं० लालाराम जी शास्त्री तथा श्रीमान पं० मक्खनलाल जी शास्त्री के भतीजे एवं श्रीमान पं० जयन्तीप्रसाद जी शीलव्रती के लघु जामाता थे। सरल तथा प्रेमी सज्जन थे। श्री जिनेन्द्रदेव के प्रसाद से आपकी आत्मा को शान्तिलाभ हो। —सम्पादक।

श्री दि० जैन महापाठशाला जयपुर ।

कुछ एक महानुभावों ने निजी कारणवश नवीन चुनाव की आड़ लेकर **श्री दि० जैन महापाठशाला जयपुर** के विषय में असत्य अपवाद प्रकाशित किया है, जो कि उन्हें सज्जनता की नीति से कदापि नहीं करना चाहिये था।

समाज को मालूम होना चाहिये कि पाठशाला का प्रबन्ध शिक्षण आदि पहले से उत्तम है, इसी कारण विद्यार्थियों की संख्या अधिक हो गई है। आचार्य परीक्षा की कक्षा खुल गई है, दो छात्र आचार्य कक्षा में अध्ययन भी कर रहे हैं, स्थानीय चंदे में भी वृद्धि हुई है। इस बात को कोई भी महानुभाव आकर देखना या जानना चाहे तो जान व देख सकते हैं। विद्यालयों की उन्नति के लिये जो बातें आवश्यक होती हैं वे सभी यहां विद्यमान हैं।

फिर भी न जाने क्यों, हमारे समालोचक महानुभावों को सत्य असत्य लिखकर पाठशाला की व प्रबन्धकारिणी कमेटी की निंदा करने में क्या आनन्द आता है? यह कोई कारण नहीं कि यदि किसी विद्यालय के कार्यकर्ता हमारे मित्र नहीं तो उस विद्यालय का शिक्षण ही ठीक नहीं रहा! क्या कार्यकारिणी कमेटी में अपने मित्रों का या अपना नाम न होने से ही जयपुर, बनारस, इन्दौर, सहारनपुर, मथुरा, कारंजा आदि के विद्यालय खराब हो गये? इन बातों से क्या होगा?

ऐसी असत्य निन्दा से जहां अपना पतन होता है, वहीं सामाजिक अशान्ति व दलबंदी पैदा होती है तथा उपयोगी संस्थाओं को हानि पहुँचती है। अन्त में सत्य छिपेगा नहीं, उसकी विजय होती है; इस कारण शिक्षा संस्थाओं पर सोच समझ कर लेखनी उठानी चाहिये।

—'आनन्द' उपाध्याय, जयपुर।

वीराह्वान !

[ले०—श्रीमान पं० सुमेरुचन्द्रजी 'मेरु', बनारस]

वीर शिरोमणि वीर भद्र हे आओ आओ,
वीरतनय! आ रंगभूमि दुखद्वंद मिटाओ।
शत्रु वाहिनी हाय वाहिनी सी बढ़ि आई,
काटत कूल समूल मोद मन मध्य बढ़ाई।
वीर जननि के वीर सुत आन भुलाना ना कहीं।
सांसारिक इतिहास के भासमान मणि हो तुम्हीं॥

घिरी घटायें घोर वीर वाणी भयंकारी,
आओ बन कर पवन उड़ादो घटा करारी।
वीर नाद से एक बार दिग्नाग कँपादो,
जैनतत्वकी लगा छाप त्रय ताप मिटादो।
भ्रांति क्लांति मिट जाय सब दास बने दुनिया सभी।
जैन रूप रेखा खिंचे प्रण पूरण होवे तभी॥

युक्तिवाद से व्यस्त बनें तो व्यस्त बनाना,
शस्त्र शास्त्रका समय देखि चटपट अपनाना।
होवे यदि व्या मोह कहीं रण रंगस्थल में,
कर लेना जिन ध्यान वहीं तुम अन्तस्तल में।
विजय विभूति विनम्र हो निश्चय चूमेगी चरण।
धूलि मिलेंगे चमकते, अखिल के सब उपकरण॥

[७]

युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना ।

पं० दरबारीलाल जी ने चौथे युक्त्याभास का उल्लेख करते हुये चौथी युक्ति को निम्नलिखित शब्दों में लिखा है :—

"कोई प्राणी थोड़ा ज्ञानी होता है कोई अधिक। इस प्रकार ज्ञान की तरतमता पाई जाती है। जहां तरतमता है वहाँ कोई सबसे छोटा और कोई सबसे बड़ा अवश्य है। जिस प्रकार परमाण परमाणु में सबसे छोटा और आकाशमें सबसे बड़ा (अनन्त) है उसी प्रकार कोई सबसे बड़ा ज्ञानी भी होगा, किन्तु वह अनन्त ही होगा"।

इसके सम्बन्ध में आपका कहना है कि जहां तक इस व्याप्ति का सबसे छोटे और सबसे बड़े से सम्बन्ध है वहां तक तो हम इससे सहमत हैं किन्तु जब इस सबसे बड़े को अनन्त बतलाया जाता है तबही हमारा मतभेद हो जाता है। जैसा कि आपके निम्नलिखित शब्दों से स्पष्ट है :—

"जहां तरतमता है वहां कोई सबसे बड़ा अवश्य होगा परन्तु वह अनन्त होना चाहिये यह नियम नहीं है" इसके सम्बन्ध में दूसरी बात आपने यह बतलाई है कि वह सबसे बड़ा ज्ञानी अपने से छोटे ज्ञान वालों की बातों को जानता ही हो यह भी आवश्यक नहीं है। इसके लिये आपने निम्नलिखित शब्द लिखे हैं :—

"जब ज्ञान में तरतमता है तब कोई सबसे बड़ी ज्ञानशक्तिवाला अवश्य होगा। परन्तु सबसे बड़ी ज्ञानशक्ति वाला छोटी ज्ञान शक्ति वाले के विषयको अवश्य जाने यह नहीं हो सका"।

—जैनजगत वर्ष ८ अं० १२ पे० ८

तीसरी बात आपने यह बतलाई है कि जितना ज्ञान रहता है उतना कार्य नहीं होता।

अब विचारणीय यह है कि क्या ये बातें सत्य हैं? पहिली बात का निर्णय दूसरी और तीसरी बात के निर्णय से बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है, अतः यहाँ हम पहिले उसही के निर्णय पर प्रकाश डालते हैं।

विद्वान् लेखकने अपनी दूसरी बात के समर्थन में निम्नलिखित वक्तव्य उपस्थित किया है :—

"ज्ञान में जब तरतमता है तब हम ज्ञान के अन्शों की कल्पना करलेते हैं। किसी को एक अंश प्राप्त है किसी को दो, किसी को पांच, इसी प्रकार दस बीस तीस आदि। जो सबसे बड़ा ज्ञानी है उसके १०० अंश हैं। मानलो १०० अंशों से अधिक ज्ञान किसी को नहीं होता। अब एक ऐसे मनुष्य को लीजिये जिसके पास ज्ञानके पांच अंश हैं। उसने ५० अंश धर्मविद्या में लगाया है, एक अंश व्यापार विद्या में, एक अंश कलाआदि की जान-

कारी में, एक अंश काव्य में, एक अंश अन्य प्रकीर्णक बातों में। अब एक दूसरा ज्ञानी है, उसके भी पांच अंश वाला ज्ञान है परन्तु उसने अपने अंशों को किसी दूसरे ही कामों में लगाया है। इसी प्रकार कोई तीसरा ज्ञानी है जिसने कि अपने ज्ञानांशों का उपयोग किसी तीसरे ही क्षेत्र में लगाया है। इस प्रकार पांच अंश वाले ज्ञान का उपयोग सैकड़ों तरह से हो सकता है। अब एक ऐसे मनुष्य को जिसके छः अंशवाला ज्ञान है उसका पांच अंश वाले से अधिक अवश्य है, परन्तु जितने पांच अंश वाले हैं उन सबसे अधिक नहीं है, क्योंकि पांच अंशवाले सभी ज्ञानियों के ज्ञान को एकत्रित करो तो वह सैकड़ों अंश का हो जायगा और १०० अंश वाला ज्ञान भी उन सबको न जान पायगा। यह भी हो सक्ता है कि पांच अंशवाले का कोई ज्ञानांश छः अंश वाले के न हो फिर भी छः अंशवाला बड़ाज्ञानी है, क्योंकि पांच अंशवाले के अगर कोई एक अंश नया है तो छः अंश वाले के दो अंश नये हैं। यही उसकी महत्ता है.........
.................स्पष्टता के लिये एक उदाहरण और देखिये—कल्पना कीजिये कि कोई करोड़पति सबसे बड़ा धनवान है, उस नगर के बाकी धनवानों में कोई ९० लाखका धनी है कोई ८० लाख, ५० लाख, १० लाख, १ लाख आदिके श्रीमान् हैं। यद्यपि यहां करोड़पति सबसे बड़ा धनी है फिर भी अगर नगर के सब धनियों की सम्पत्ति एकत्रित की जाय तब यह धन उस धनी से बढ़ जायगा। साथ ही ऐसा भी हो सक्ता है कि पचास लाख के धनी के पास कोई ऐसी चीज़ हो जो करोड़पति के पास न हो। परन्तु करोड़पति के पास पचास लाख के धनी की अपेक्षा अन्य वस्तुयें अधिक होंगी। इसी प्रकार हर एक प्रकार की तरतमता को उदाहरण रूप में पेश किया जा सक्ता है।"

जहां तक दरबारीलाल जी के इस वक्तव्य का ज्ञानांश के स्वीकार करने से सम्बन्ध है वहां तक तो हम उनसे सहमत हैं किन्तु जब वह इन अंशों को ज्ञेयों की संख्या से निर्धारित करते हैं वहीं हमारा और उनका मतभेद हो जाता है। ज्ञान में न्यूनता और अधिकता मिलती है, अतः उसमें अंशों का सद्भाव माना जाता है किन्तु यह उसकी निजी चीज़ है। इसका सम्बन्ध बाह्य पदार्थों के जानने और न जानने में कुछ भी नहीं। गुणांश के सम्बन्ध में जैनशास्त्रकार बतलाते हैं * कि गुण के दो विभाग करो और फिर एक विभाग के दो विभाग करो। ऐसा तब तक करते जाओ जब तक कि विभाग हो सकते हों। जिस अंश का विभाग न हो सकता हो उसको अविभागी अंश समझो। ऐसे ही अविभागी अंश प्रत्येक गुण में अनन्त हैं। इन्हीं अंशों के द्वारा गुण की तरतमता का माप किया जाता है। ये अविभागी अंश गुण स्वरूप ही हैं। दूसरी बात यह है कि ज्ञानज्ञापक-प्रकाशक है न कि कारक।

---

* क्रमोपदेशश्चायं प्रवाह रूपोगुणः स्वभावेन। अर्धच्छेदेन पुनश्छेत्तव्योपि च तदर्धछेदेन ॥ ५७ ॥
एवंभूयो भूयस्तदर्ध छेदैस्तदर्धछेदैश्च। यावच्छेतुमशक्यो यः कोपि निरंशको गुणांशः स्यात् ॥ ५८ ॥
तेन गुणांशेन पुनर्गणिताः सर्वे भवन्त्यनन्तास्ते। तेषामात्मा गुणश्चेत नहि ते गुणतः पृथकत्व सत्ताकाः ॥ ५९ ॥
—"पञ्चाध्यायी"

यदि ज्ञान बाह्य पदार्थों का कारक होता तब तो जिस शक्ति के द्वारा किन्हीं विशेष कार्यों को किया जाता उसही शक्ति के द्वारा अन्य कार्य नहीं हो सकते थे। दृष्टान्त में कुम्भकार को लिया जा सकता है। कुम्भकार जिस शक्ति से घट का निर्माण करता है उस समय उसको वह शक्ति उस ही कार्य में संलग्न रहती है उस समय उसके द्वारा अन्य वैसे कार्यों का होना सम्भव नहीं—किन्तु—

प्रकाशक के सम्बन्ध में यह बात घटित नहीं होती। प्रकाशक जिस पदार्थ का प्रकाश करता है उसमें ही उसकी शक्ति संलग्न नहीं रहती। अतः वह उस ही समय वैसे हो अन्य पदार्थों का भी प्रकाश कर सकता है। प्रकाशक के लिये तो योग्य स्थान में प्रकाश योग्य पदार्थ का आना हो आवश्यक है।

जब वह वहां आ जाता है प्रकाश उसको प्रकाशित कर देता है। यदि कोई दो पदार्थ जो अपनी स्थूलता के कारण एक स्थान में नहीं आ सकते तो यह प्रकाश का दोष नहीं। यह तो उनकी स्थूलता का दोष है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि प्रकाश में उनके प्रकाश की योग्यता नहीं है। यदि ऐसा होगा तब तो वह एक के बाद दूसरे को भी प्रकाशित न कर सकता। इन सब बातों को यदि औरभी स्पष्ट करना चाहे तो आकाश से कर लेना चाहिये।

आकाश के एक प्रदेश या अधिक स्थान में जिस पदार्थ को स्थान देने की शक्ति है वह वैसे ही अनन्त पदार्थों को भी दे सकता है। आकाश के एक प्रदेश पर पुद्गल का एक परमाणु रहता है उसही पर वैसे ही अनन्त परमाणु भी रह सकते हैं। जिस प्रकार आकाश का एक प्रदेश एक परमाणु की उपस्थिति में भी अन्य परमाणुओं को स्थान दे सकता है उसही प्रकार आकाश का एक क्षेत्र एक स्कंध की मौजूदगी में भी अन्य स्कंधों को—यदि ऐसा न होता तो एक ही क्षेत्र में अनेक सूक्ष्म स्कंध कैसे ठहर सकते थे। रह जाती है बात स्थूल स्कंधों की, सो यह उनकी स्थूलता का दोष है कि वे एक स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकते न कि आकाश के अवगाह गुण का—वह तो सदैव तत्पर है। इससे स्पष्ट है कि एक ज्ञान जिस पदार्थ का प्रकाश करता है वह वैसे ही अन्य पदार्थों का भी कर सकता है। उसको इस कार्य के लिये किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं।

दरबारीलाल जी के कथन में इसको घटित करना चाहें तो यों कर सकते हैं कि जितने भी पांच अंश वाले ज्ञानी हैं, चाहे वे भिन्न २ पदार्थों को जान रहे हों, किन्तु एक पांच अंश वाला ज्ञानी अन्य पांच अंश वाले ज्ञानियों के ज्ञेयों को जान सकता है। इसही प्रकार छः अंश वाला उन सब के ज्ञेयों को और उनसे एक अंश चढ़े बढ़े ज्ञेयों को। यही बात अगाड़ी अगाड़ी के अंश वाले ज्ञानियों के सम्बन्ध में घटित कर लेनी चाहिये।

इस कथन से मेरा यह मतलब नहीं कि मैं फिर ज्ञेयों की दृष्टि से ज्ञान में अंश का विभाग कर रहा हूं किन्तु यह है—कि ज्यों ज्यों ज्ञान के अंश बढ़ते चले जाते हैं त्यों २ वह सूक्ष्म २ पदार्थों का प्रकाशक होता जाता है। इसके दृष्टान्तमें भौतिक पदार्थ बिजली के प्रकाश को ही उपस्थित किया

जाता है। ज्ञान के अविभागी अंशों की भांति प्रकाश में भी अविभागी विभाग है और इन्हीं के द्वारा इसकी न्यूनाधिकता का माप होता है। यद्यपि इनका सम्बन्ध बाह्य प्रकाश्य पदार्थ से कुछ भी नहीं है फिर भी ज्यों ज्यों ये बढ़ते चले जाते हैं त्यों २ वह सूक्ष्म २ पदार्थों को प्रकाशित करती चली जाती है।

बिजली का एक वह प्रकाश है जो कि १० नम्बर के लट्टू के द्वारा होता है दूसरा वह है जो कि पचास के द्वारा होता है, और तीसरा वह है जो पांचसौ के द्वारा होता है। उत्तरोत्तर प्रकाश में अपने अपने नम्बरों की वृद्धि के अनुसार वृद्धि है। प्रकाश की वृद्धि के साथ ही साथ प्रकाश्य के क्षेत्र का भी वृद्धिगत है। यहां प्रकाश्य के क्षेत्र की वृद्धि से मेरा अभिप्राय प्रकाश्यों की संख्या की वृद्धि से नहीं है किन्तु सूक्ष्मता के ध्यान से उनकी वृद्धि से है।

ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जिसको कोई भी १० नम्बर के लट्टू का प्रकाश प्रकाशित कर सकता है उसको मौजूदा १० नम्बर के लट्टू का प्रकाश प्रकाशित न कर सकता हो। यही बात अगाड़ी २ के नम्बर के लट्टुओं के प्रकाश के प्रकाश्यों के सम्बन्ध में है। साथ ही साथ यह भी निश्चित है कि ऐसा भी कोई पदार्थ नहीं जिसको कोई भी नीचे की शक्ति के लट्टू का प्रकाश प्रकाशित कर सके, किन्तु उसको ऊपर की किसी के लट्टू का प्रकाश प्रकाशित न कर सकता हो। जिस प्रकार कि प्रकाश में न्यूनाधिकता अपने अंशों की तरतमता से है और अगाड़ी २ के अंशों वाला प्रकाश नीचे २ के किसी भी प्रकाश के प्रकाश्य को प्रकाशित कर सकता है उसही प्रकार ज्ञान में भी न्यूनाधिकता अपने अपने अंशों की न्यूनाधिकता से है और अगाड़ी २ के अंशों वाले ज्ञान पीछे पीछे के अंश वाले किसी भी ज्ञान के ज्ञेय को जान सकता है।

इससे स्पष्ट है कि सबसे बड़ा ज्ञानी अपने से छोटे ज्ञान वालों की बातों को जान सकता है।

दरबारीलालजी ने अपने इस कथन के सम्बन्ध में करोड़पति का एक दृष्टान्त भी दिया है। इससे आपका कहना है कि वह जिस शहर में सबसे बड़ा धनी है उसही शहरमें अन्य धनिक भी हैं जिनकी पूंजी नब्बेलाख, पचास लाख, और बीस लाख आदि २ की हैं। करोड़पति सबसे बड़ा धनी है किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उसकी सम्पत्ति शहर के सब धनियों की सम्मिलित सम्पत्ति से भी अधिक है। ठीक इसी ही प्रकार सबसे बड़े ज्ञानी के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह अपने से छोटे सम्पूर्ण ज्ञानियों के ज्ञेयों को जानता हो। किन्तु यह प्रस्तुत कथन के सम्बन्ध में घटित नहीं होता। धन में और ज्ञान में भारी अन्तर है, जहां ज्ञान ज्ञायक है वहीं धन कारक से भी चढ़ा बढ़ा है, कारक तो कार्य को करके फिर भी अपने अस्तित्व को रखता है किन्तु इसके सम्बन्ध में तो यह बात भी घटित नहीं होती। यह तो एक ऐसी वस्तु है जिसका अस्तित्व ही भिन्न नहीं रहता। रुपया तो एक व्यवहार का साधन है या इसको सम्पत्ति का मापक भी कह सकते हैं—वह दोनों सम्पत्तियों का मापक होता है किन्तु वह सम्पत्तियां एक सी हैं। अतः करोड़पति के धनसे जब दूसरे के धन की तुलना करते हैं तब उसके धन का उतना हिस्सा तो उसही की तुलना करने में रह

जाता है, शेष धन इतना अधिक नहीं जिससे दूसरे धनिकों के धन से भी उसकी तुलना की जा सके और फिर भी वह अधिक ही बना रहे। इसही को यदि दूसरे ढंग से कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि करोड़पति के अतिरिक्त धनियों के धन को एकत्रित करने में उसका मूल्य अधिक हो जाता है, अतः उसकी दृष्टि से करोड़पति का धन बड़ा नहीं रहता। किन्तु ज्ञान में ये दोनों ही बातें घटित नहीं होतीं। नाही ज्ञान से एक जैसे सैंकड़ों या हज़ारों पदार्थों को जानने के लिये भिन्न २ शक्ति की आवश्यक्ता है और नाहीं वे मिल कर ज्ञान की शक्ति की न्यूनता को कर सकते हैं। हां यह हो सकता था यदि ज्ञान के अविभागी अंशों का आधार ज्ञेय होता, किन्तु ऐसा है नहीं। इसका वर्णन हम पूर्व ही कर चुके हैं।

यहां हम यह भी लिख देना अनुपयोगी नहीं समझते कि दरबारीलाल जी का यह लिखना कि ऐसे बहुतसे पदार्थ हैं जो पचास लाख के धनी के पास तो हों, किन्तु करोड़ के धनी के पास न हों, सम्पत्ति शास्त्र के प्रतिकूल है।

कोई भी पदार्थ केवल अपने २ नाम से ही सम्पत्ति नहीं, यदि ऐसा होता तब तो कोई भी पदार्थ असम्पत्ति न ठहरता या जो एक स्थान पर सम्पत्ति में सम्मिलित है वह हर जगह इसही प्रकार का समझा जाना चाहिये था, किन्तु ऐसा है नहीं। जमुना का रेता ही है; वह जमुना के किनारे तो सम्पत्ति नहीं समझा जाता है, किन्तु वही अम्बाले में सम्पत्ति समझा जाता है और बाज़ार में अन्य वस्तुओं की भांति बिकता है!

सम्पत्ति का लक्षण मूल्यवान है। यही सम्पत्ति-शास्त्र का कथन है। जहां जिस चीज़ का मूल्य है, वहां वह सम्पत्ति है और जहां जिसका मूल्य नहीं वहां वह सम्पत्ति भी नहीं। प्राचीनकाल में इस मूल्य का निर्णय वस्तुओं के परिवर्तन में होता था, किन्तु जब इस व्यवहार में अड़चन होने लगी, तब पारस्परिक व्यवहार के सुभीते के लिये मूल्य का मापक रुपया आदि सिक्के निश्चित किये गये।

इससे स्पष्ट है कि ऐसी कोई सम्पत्ति पचास लाख वाले के पास नहीं, जो करोड़ के अधिपति के पास न हो, भले ही उसके नाममें अंतर हो, किन्तु इसका प्रभाव सम्पत्ति पर कुछ भी नहीं।

(अपूर्ण)

समन्तभद्र जैन कालेज की चर्चा।

यद्यपि जैन कालेज की चर्चा समाज में बहुत समय पहिले ही उठ चुकी थी, परन्तु कारणकूट न मिलने से वह दब रही थी, बाबू (अंग्रेज़ी विद्याभ्यासी) लोग इसका दोष पण्डितमण्डली पर देते थे, कि ये उन्नति के बाधक हैं, कट्टर पंथी स्थितिपालक हैं, ये उन्नति की रफ्तार याने आवश्यकताओं को नहीं समझते, इसलिये विरोध करते हैं।

पण्डित लोग कहते थे कि यह (इंग्रेज़ी) विद्या धर्मविध्वंसिनी है। इसके पढ़ने वाले धर्म कर्म

कुलाचारादि से विमुख होजाते हैं, इसलिये इसकी आवश्यकता ही नहीं है।

श्रीमान् लोग दोनों की खटापटी में ही अपने धन की रक्षा समझते थे—न इनका मत मिलेगा, न हमको कुछ देना पड़ेगा। बाबू लोग भी जानते थे कि पंडित विरोधी हैं ही, इसलिये कुछ होना जाना तो है नहीं, तब वाचनिक उदारता से क्यों चूकना चाहिये ?

साधारण स्थिति वाले गरीब मध्यस्थ थे—होवे तो भला, न होवे तो भला, क्योंकि उनको न देना है न लेना है, उनके बच्चे द्रव्याभाव से हिन्दी ही नहीं पढ़ सकते, फिर इंग्रेज़ी में डिग्री लेना तो स्वप्न की सम्पत्ति पर अधिकार करना है, वे तो जैसे आज हैं वैसे ही पहिले थे और आगे भी रहेंगे। अतएव वे न साधक ही हैं और न बाधक ही हैं।

हाल में खतौली में होने वाले जैन और आर्यसमाजियों के शास्त्रार्थ होते समय वहां की परिस्थिति को देखकर हमने इसपर विचार किया, कि क्या वास्तव में कोई विद्या (भाषा) धर्म रक्षक या भक्षक होती है, याकि इसमें अन्य कारण है जो रक्षक भक्षक होता है, तो अन्तरात्मा से यही उत्तर मिला कि कोई भी भाषा या विद्या न तो धर्मकी रक्षा ही कर सकती है और न धर्म का घात ही कर सकती है, क्योंकि भाषा तो अपने भावों को दूसरों पर प्रकाशित करने का संकेत मात्र है, और उसी के अनुसार लिपियां भी कल्पित की जाती हैं, परन्तु धर्मका रक्षक या भक्षक कोई कारण हो सक्ता है तो उन २ भाषाओं में संकलित साहित्य ही हो सक्ता है अथवा उन स्थानों का वातावरण, संगति, समाज आदि, जहां उन भाषाओं की शिक्षा होती है।

संस्कृत साहित्य भी मिथ्यात्व का पोषक हो सकता है, विषय और कषायों का वर्द्धन कर सकता है, और अन्य भाषाओं का साहित्य भी मिथ्यात्व का नाशक और विषय कषायों का उच्छेदक हो सकता है।

इसलिये यह निश्चित है कि कोई भाषा हो व कोई लिपि हो, परन्तु यदि उसका साहित्य सत्य व सदाचार की नीव पर स्थित है, तो वह उपादेय है और यदि वह मिथ्यात्व व दुराचार का वर्द्धक व पोषक है तो हेय है। भाषाएं न तो हेय ही हैं, न उपादेय ही हैं, वे तो मात्र ज्ञेय हैं। अनेकों संस्कृत के विद्वान् भी मिथ्यात्वादि व्यसनासक्त आजभी विद्यमान हैं और अन्य भाषा-भाषी सदाचारी सत्यान्वेषी पाये जाते हैं, इसका कारण मात्र यही है कि उन्होंने जैसे संस्कारों को लेकर, जैसी संगति व वातावरण में रहकर, जैसे साहित्य का अध्ययन किया है उन पर वही असर पड़ गया—वे वैसे ही बन गये—, इसमें भाषा का कोई अपराध नहीं है।

इसके सिवाय यह भी देखते हैं कि हमारे कितने ही सज्जन जो अपने आप को धर्मात्मा मानते हैं, वे भी अपने बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ाते हैं। यदि वास्तव में वह धर्मघातक है तो उन्होंने क्यों अपनी संतान को पढ़ाया और अब भी जानकर क्यों भावी सन्तान को पढ़ाकर उसका सर्वस्व नाश कर रहे हैं ? क्या यह मायाचारी नहीं है कि मन में कुछ और है, कहते कुछ और हैं, और करते कुछ और ही हैं। इससे विदित होता है कि वे इंग्रेज़ी पढ़ाना लाभदायक तो समझते हैं, परन्तु केवल अपने

ही बच्चों को, दूसरों के बच्चों के लिये नहीं, क्योंकि उसमें उन्हें कुछ त्याग करना पड़ता है, जो वे करना नहीं चाहते; यह अत्यन्त स्वार्थ और तीव्र लोभ नहीं तो क्या है ?

तात्पर्य यह है कि अंग्रेज़ी तो सभी पढ़ाना चाहते हैं, वे शब्दों में स्वीकार करें या न करें, उनके कार्य तो यही बता रहे हैं। और जब यह निश्चित ही है कि अब अंग्रेज़ी की आवश्यकता सबको हो ही गई है, वे उसको अवश्य ही पढ़ायेंगे, तब फिर उनको क्यों नहीं स्वच्छ वातावरण में रखकर पढ़ाया जाय? क्योंकि जो बिगाड़ दिख रहा है वह मात्र गंदे वातावरण व गंदे साहित्य का ही है। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि हम वातावरण बदलें, साहित्य में फेर फार करें। प्रत्येक समाज ने, अपने बच्चोंके संस्कार धार्मिक बने रहें और देश में किसी से पीछे न रहें इसलिये, अपनी २ स्वतंत्र शिक्षा संस्थाएँ बना दी हैं—सिक्खों ने, जाटों ने, आर्यसमाज ने, सनातनधर्मियोंने, क्रिश्चियनों ने, इत्यादि। तब जैनियोंको क्यों नहीं अपनी संतान को सुसंस्कृत रखने के लिये अपनी प्रतिनिधि संस्था बनाना चाहिए, जिसमें उन्हीं के अध्यापक हों, उन्हीं के साधर्मी साथी हों, जहां धार्मिक विचार उनमें भरे जा सकें, बुराइयों से बच सकें, इत्यादि।

इसके सिवाय यह भी देखा कि आजकल बीसों बोर्डिंग जैनियों के खुल गये व खुल रहे हैं, कई प्राथमिक शालाएं, कई मिडिल स्कूल, हाई स्कूल भी खुल गए हैं, तब कालेज ही कौन सा बिगाड़ पैदा कर देगा, जो विरोध किया जा रहा है ?

बस इन्हीं विचारों से हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि जैन समाज में इनका निजी कालेज होना भी बहुत ज़रूरी है, ताकि इनके बच्चे, अपने ही कालेज में पढ़कर धर्म से अच्युत रहकर, सुसंस्कारी विद्वान् सद्गृहस्थ बनें और अपने पवित्र धर्म की प्रभावना करने में अग्रसर होवें, इसीलिये खतौली में यह प्रतिज्ञा की कि हम १ वर्ष तक इस कार्य के लिए प्रयास करेंगे, ग्रामों में भी भ्रमण करके इसकी आवश्यकता प्रत्येक जैनी के कानों तक पहुँचावेंगे, फिर जो अदृष्ट होगा सो होगा।

हमारा अभिप्राय धर्म-जागृति करने का ही है, धर्म-शून्य तो संस्कृत भी हम अनुपयुक्त समझते हैं, इसलिए हमारे प्रयास का अर्थ कोई विपरीत न लगावे, न समाज को विपरीत अर्थ समझाकर भड़कावे, जैसे—

D R या D. S. C. (डाक्टर) का अर्थ हमारे भाई ने डाक्टरी (चीरफाड़) कर दिया, वह भाई इतना भी न समझ सका कि डाक्टर D. S. C. या P. H. D. आदि का क्या अर्थ है ? डाक्टर नाम से ही भड़क उठा, भाई डाक्टर का पद M. A. से ऊपर होता है, उसका अर्थ मैडिकल-सर्जन (डाक्टर) नहीं होता, यह तो बड़े २ विद्वानों द्वारा किसी व्यक्ति विशेष को उसकी किसी विषयक विशेष खोज करने व पुस्तकादि लिखने पर दिया जाता है। दोष दिखाना तो बुरा नहीं है, परन्तु झूठी कल्पना करके दोष देना और जनता को भड़काना, अन्याय है। मतभेद भी बुरा नहीं है, यह होना स्वाभाविक है, परन्तु वह होना चाहिये वस्तु के निर्णयार्थ, न कि स्व वचन पक्ष पोषणार्थ, या पर वचन खंडनार्थ। अस्तु, इन गत ४ महीनों में कालेज सम्बन्धी चर्चा समाज में खूब फैली है।

कितनेक व्यक्ति अपने को धर्म का धारी मानकर जैनसमाज में यह वातावरण फैला रहे हैं कि जैन कालेज से जैनधर्म को आघात पहुँचेगा। लिखते तो हैं ही, किन्तु यहाँ तक साहस किया है कि आचार्य शान्तिसागर जी द्वारा दिल्ली के लाला जग्गीमल जी चौधरी को संदेश भेजा है कि जैन कालेज मत खुलने देना, इससे अधर्म का प्रचार होगा।

कितनेक बाबू लोग भी, हमारे से द्रव्य की याञ्चना न हो अर्थात् हमको द्रव्य न देना पड़े इसीलिये, इसका होना कष्ट साध्य बता रहे हैं। क्योंकि इनको विशेषरूप से इसमें हाथ बटाना पड़ेगा। द्रव्य भी देना पड़ेगा, समय भी देना होगा, स्वार्थ भी कम करना होगा, इसलिये कष्ट साध्य कहकर छूटना चाहते हैं। यदि कष्ट साध्य था, तो पहले से आवाज़ क्यों उठाई थी, क्यों समाज और पण्डितों को बाधक समझते थे? यदि नहीं, तो अब अपने इच्छित शुभ अवसर का लाभ उठाइए।

कतिपय पण्डित महोदय पत्रों द्वारा जनता को सूचित कर रहे हैं कि कालेज में पैसा देना अधर्म होगा, इत्यादि।

इसी प्रकार बहुत सज्जन इस कार्य का अनुमोदन भी कर रहे हैं और स्वशक्ति अनुसार सहायता करने को भी कह रहे हैं।

इस प्रकार समाजका जो हाल व इसके विषय में वासना है वह समाज के सामने रखदी है, इसमें जो समाज को इष्ट हो व उचित समझे सो करें। किन्तु हमारी तो यही सम्मति है कि जो एक ऐसी सुसंगठित संस्था न होगी, तो पाश्चात्य विद्या का अभ्यास करने वाली आपकी संतति जैनधर्म के पवित्र सिद्धान्तों के ज्ञान से वञ्चित रह जावेगी, और एतज्जन्य जो हानि होगी वह समाज को भोगना पड़ेगी, और फिर वह पछतावे से पूरी न हो सकेगी, क्योंकि धर्म विद्या शून्य कोई भी लौकिक विद्याएं उभयलोक श्रेयस्करी नहीं हो सकतीं। इसलिये आप लोग किसीके बहकाने में न आयें, स्वयं विवेक बुद्धि से काम लेवें, हम लोगों ने तो जो प्रतिज्ञा की है, उसका पालन करेंगे। उसका अभिप्राय मात्र इतना ही है कि हमारे पाश्चात्य विद्या के अभ्यासी विद्वान् जैनधर्म के ज्ञान और संस्कारों से वञ्चित न रह जायं तथा धार्मिक विद्वान् भी लौकिक ज्ञान से वञ्चित न रहें; इसी लिये कालेज के दो विभाग मुख्य रहेंगे—(१) प्राचीन विद्या का (२) अर्वाचीन (अंग्रेजी) का; धर्मशास्त्र दोनों में अनिवार्य रहेगा—अर्वाचीन विद्या में साइन्स शामिल है, परन्तु वही साइन्स उपादेय होगा, जिसमें प्राणियों की हिंसासे संबन्ध न होगा।

इस विषय में समाज को पत्रों द्वारा अपने विचार प्रगट कर देने चाहिये, बहुसम्मति अनुसार ही कार्य करेंगे।

यदि समाज के गण्यमान्य, धार्मिक विद्वान्, श्रीमान्, मध्यम श्रेणी के धर्मप्रेमी सज्जन, त्यागी, ब्रह्मचारीगण, सर्वसंघ त्यागी मुनि, आंग्लविद्याभ्यासी, धार्मिक, पण्डितगण आदि सभी का प्रतिकूल मत आया तो हम लोग केवल धार्मिक विद्या के अर्थ ही प्रयास करेंगे, हमको कोई हठ नहीं है, और न हम अपने वचन से ही हटते हैं, परन्तु धार्मिक विद्या के साथ आजीविका-साधन

विद्या भी होना अनिवार्य होगी, ताकि धार्मिक विद्वानों को आजीविकार्थ यत्र तत्र न भटकना पड़े और उसके लिये किसी की हां में हां मिलाकर सच्चे धार्मिक भावों को दबाना न पड़े। वे स्वतंत्राजीवी बनकर धर्म का प्रकाश जैसे का तैसा आधुनिक साइन्स के तरीके से संसार के सामने फैला सकें, यही भावना है।

आशा है—समाज विचार कर सत्यमार्ग पर आवेगी।

हितैषी—
गणेशप्रशाद वर्णी,
भागीरथ वर्णी, दीपचन्द्र वर्णी

संघ का प्रचार कार्य !

संघ के महामंत्री पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ ता० २५ अगस्त को अम्बाला से चल कर ता० २६ की सबेरे १० बजे की गाड़ी से बीना पहुँचे। यहां आज आपकी दो शास्त्र सभायें हुईं, एक शास्त्र सभा दूसरे दिन सबेरे हुई। यहां से २७ की दुपहर को चलकर आज ही मुंगावली पहुँचे और ता० ४ सितम्बर तक यहीं रहे, यहां प्रतिदिन दुपहर को १०॥ बजे से १२॥ बजे तक एवं रात्रि को ८ से १० बजे तक शास्त्र सभाये होती थीं, दुपहर की शास्त्र सभा में तत्वार्थ सूत्र का अर्थ और दशलाक्षणी धर्म होते थे, और रात को भिन्न २ विषयों पर आपके रोचक एवं गम्भीर भाषण होतेथे। आपके मुंगावली पहुँचने के ही दिन स्थानीय दि० जैन समाने स्थानीय आर्यसमाज सनातन सभा और शहर के प्रतिष्ठित् व्यक्तियों को आपके व्याख्यानों में पधारने का निमंत्रण भेज दिया था, अतः प्रतिदिन शहर के अजैन व्यक्ति भी अच्छी संख्या में पहुँचते थे।

ता० ५ सितम्बर की दुपहर को चलकर उसही दिन शाम के ७॥ बजे आप भेलसा पहुंचे, भेलसा में आपके २ खास व्याख्यान और दो शास्त्र सभायें हुईं, इनके अतिरिक्त बड़े मन्दिर जी के चौक में जैनधर्म पर आपका एक पबलिक भाषण हुआ। इसमें शहर के गण्य मान्य व्यक्तियों के अतिरिक्त ज़िले के नायब सूबा आदि कर्मचारी भी उपस्थित थे! जनतापर आपके व्याख्यान का अपूर्व प्रभाव पड़ा।

ता० ८ सितम्बर की सबेरे की गाड़ी से चलकर उसही दिन फिर मुंगावली पहुंचे।

मुंगावली में आज विमानोत्सव था और वह सानन्द समाप्त हुआ! रात्रि को पबलिक जल्से का आयोजन किया गया था, किंतु बारिश के कारण इसे दूसरे दिन को मुलतवी करना पड़ा।

तारीख ९ सितम्बर को दो पबलिक सभायें हुईं, एक दुपहरको और दूसरी रात्रि को, दुपहर को महामन्त्री जी के भाषण के अतिरिक्त पं० नाथराम जी न्यायतीर्थ और पं० हरिचरण लाल जी नायब तहसीलदार (अजैन) के भी भाषण हुए।

महामंत्री जी के रात्रि के भाषण का विषय जैनधर्म की प्राचीनता के साथ जैनधर्म का महत्व था, आपने अपने इस भाषणमें अनेक आधुनिक प्रमाणों

के द्वारा जैनधर्मको सबसे प्राचीन सिद्ध किया, आज के आपके भाषण में पं० हरिचरणलाल जी ने कुछ आपत्तियां उपस्थित कीं, जिनका कि आपने उसही समय समाधान कर दिया, इस प्रकार मुंगावली में आपके भाषणों से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई।

आर्य समाज मुंगावली को जैनधर्म का प्रभाव सहन न हुआ, अतः उसने स्थानीय जैन पंचायत को शास्त्रार्थ का चैलेंज दे दिया।

आर्यसमाज का यह चैलेंज स्थानीय जैन-समाज ने सहर्ष स्वीकार कर लिया है, और नियमावलि के निर्णय एवं तारीखों के निर्णय के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार हो रहा है।

महामंत्री जी के मुंगावली पहुँचने से एक विशेष उल्लेखयोग्य बात और हुई है और वह है "व्यापारिक-संगठन"।

मुंगावली में कपड़े का क़रीब क़रीब सम्पूर्ण व्यापार केवल जैनियों के हाथ में ही है। किन्तु आपस में संगठन न होने से उन में खेंचा-तानी रहती थी, आपने इसको दूर करने के लिये एक सम्मिलित थोक बेचने वाली कम्पनी की आयोजना मुंगावलि के जैनियों के समक्ष रखी, जिसको कि यहाँ के जैनियों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस कम्पनी का मुहूर्त भी हो गया है।

इस प्रकार आपके प्रयत्न से यह कार्य सकुशल हो गया।

मुंगावलि से आप ता० ११ सितम्बर को दुपहर को चलकर बारह को अम्बाला पहुँच गये।

निवेदक :—
मंत्री—उपदेशक विभाग संघ

हार्दिक धन्यवाद।

"जैनदर्शन" के प्रेमियों ने 'दर्शन' को निम्न प्रकार सहायता देकर अपना प्रेम प्रगट किया है। आशा है 'दर्शन' के अन्यान्य प्रेमी भी आपका अनुकरण करेंगे—

(१) पं० बंशीधर जी जैन बीना-इटावा (सागर) ने 'दर्शन' के ३ ग्राहक पहिले और ४ ग्राहक इस बार इस तरह कुल ७ ग्राहक बना कर भेजे हैं। हार्दिक धन्यवाद।

(२) ला० त्रिलोकचन्द जी वोहरा लशकर ने ३ ग्राहक बना कर भेजे हैं। हार्दिक धन्यवाद।

(३) दि० जैन पंचान मुलतान सिटी ने ११) 'दर्शन' की सहायतार्थ भेजे हैं, एतदर्थ धन्यवाद।

—प्रकाशक।

इस हेडिंग के अन्तर्गत आपके स्वास्थ्य को लाभ पहुंचाने वाली बातें, लेख, अनुभूत नुस्खे, आदि रहा करेंगे। यदि "दर्शन" के ग्राहक अपने किसी भी रोग के सम्बन्ध में कोई प्रश्न छपवाना चाहेंगे तो वह बिना मूल्य ही इसमें छाप कर उसका उत्तर भी इसी हेडिंग के अन्तर्गत शीघ्र से शीघ्र मंगा कर छापने का यत्न किया जायगा। —सम्पादक

गठिया वायु

जो मनुष्य गठिया वायु के रोग से व्याकुल हो, जिसको असह्य पीड़ा होती हो, यहां तक कि उसका चलना फिरना तक बन्द होगया हो, उस मनुष्य को यदि गठिया वायु के स्थान पर मधु मक्खी काट ले तो गठिया को लाभ होकर पीड़ा दूर हो जाती है।

पागलपन

यदि उन्मादग्रस्त पागल मनुष्य को मलेरिया फैलाने वाले मच्छरों से कटवा कर बुखार पैदा कर दिया जावे तो उसका पागलपन दूर हो जाता है।

मन्त्र बिच्छू !

ओ३म् उतर बिच्छू श्री महादेव जी की दुहाई उतर जा ॥१॥ सर्व प्रथम किसी भी दिन यह मन्त्र १०८ बार पढ़ लेने से सिद्ध हो जाता है।

विधि—गाय या भैंस के गोबर से जहां तक बिच्छू चढ़ा हो वहीं मन्त्र पढ़ गोबर से बंद लगा कर (ज़रा सा गोबर चारों ओर लपेट कर) फिर मन्त्र पढ़ एक चपत बंद पर लगा देवे और उससे पूछे कि अब कहां पर झनझनी मारती है, जहां पर बतलावे, वहीं पर पुनः बंद लगा कर उपरोक्त विधि से चपत लगावे और फिर पूछे, इसीप्रकार करते २ जब काटने के स्थान पर आ जाय तब तीन बार गौ का गोबर उस स्थान पर मल मलकर तीन बार चपत लगावे। ज़हर दो या तीन मिनिट में ही उतर जाता है। परीक्षित है। —हरस्वरूप शर्मा।

प्रश्न नं० ३

मेरी दाहनी आंख गीध व उसके पानी से भरी रहती है। त्रिफले के पानी से सुबह को धोया भी है, किन्तु आराम नहीं होता और डाक्टरी इलाज मैं चाहता नहीं। रोग एक साल से है, उम्र ५० साल की है। कृपया कोई औषधि लिखिये।

—चिरञ्जीलाल जैन मु० वैर (भरतपुर)

शोक !

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के सुयोग्य विद्वान् छात्र, मदरास प्रान्त निवासी, पं० नाभिराज जी शास्त्री न्यायतीर्थ का सिर्फ़ २४ वर्ष की अवस्था में देहावसान होगया। गत भाद्र मास में ही आप ११ वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् अपने पिता के साथ देश गये थे, जहां यह दुःखदायक घटना घटी। हम पं० दुर्गस्वामी जी तथा उनके कुटुम्बी जनों से समवेदना प्रकट करते हुए जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि उनको भक्ति अभागे पिता को इस दारुण दुःख के सहन करने की शक्ति प्रदान करें। —सम्पादक।

युवक मंडल की तरफ से नाटक खेला जारहा था। ता० १० को कुछ लोगों ने उपद्रव मचाया और इस बात की कोशिश की कि नाटक बन्द होजाय, किन्तु वे असफल रहे। इसपर ११ तारीखको दो बम फेंक गये, दूसरा बम पहले बम के १० मिनट बाद फेंका गया था। आवाज़ बहुत ज़ोर की थी, दूसरे बमसे कुछ आदमियोंके चोट लगी बतलाई जाती है। नाटक में दोनों दिन उपस्थिति ८ और १० हज़ार के अनुमान थी। इस घटना के कारण ही वहां के जैनियों को अपना वार्षिक उत्सव जो कि दूसरे दिन होने का था बन्द करना पड़ा है।

इस बात की रिपोर्ट स्थानीय पुलिस को कर दी गई है। ब्राह्मणाभी संघ ने भी इस सम्बन्ध में [illegible] डिप्टी कमिश्नर और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट का ध्यान आने के लिये लिखा है।

आवश्यकता है!

एक जैन अध्यापिका की जैन कन्यापाठशाला के लिए, [illegible] प्रार्थनापत्र में वेतन [illegible] लिखें। जैनधर्म में निपुण हो, सुशीला और [illegible] हो, पत्र इस पते पर भेजें —

मंत्री—[illegible] जैन कन्यापाठशाला

[illegible] बाज़ार [illegible]।

—श्रीमान् [illegible] जैन [illegible] स्वर्गीय [illegible] श्रीमती मनोहरी देवी [illegible] दिगम्बर जैन हाईस्कूल बड़ौत के [illegible] विद्यार्थियों को ५) मासिक छात्रवृत्ति देना स्वीकार किया है जो ९ वीं, १० वीं कक्षा में धर्मविषय में प्रथम रहेंगे। एतदर्थ आपको धन्यवाद है। —मैनेजर।

—हैदराबाद दक्खन के कैसर बाग़ जैनमन्दिर में एक बहुत बड़ी सभा करके वहां के निवासियों ने ता० १४ सितम्बर को निज़ाम हैदराबाद व अन्यान्य उन लोगों को जिन्होंने श्री १०८ मुनि जयसागर जी पर से रुकावट दूर कराने में किसी तरह की भी मदद की है हार्दिक धन्यवाद दिया।

—वहीं (हैदराबाद दक्खन) से ब्रह्मचारी जिन सागर महाराज का ता० ४ अक्तूबर का तार मिला है कि वहां के जैनियों ने मुनिउपसर्ग के कारण अब तक लगभग ७००) खर्च किये हैं। अन्य आवश्यक खर्चों के लिए ५००) की सहायता की अब भी ज़रूरत है।

बाद को ११ तारीखको एक तार और मिला है जिसमें ब्रह्मचारी जी ने लिखा है कि —

(१) ७ अक्तूबर तक मुनि-उपसर्ग दूर करने में १३३५॥) खर्च हो चुके हैं। वहाँ की खंडेलवाल पंचायत ने १३७७॥) का चन्दा किया था, जिसमें ७३०) वसूल हुए। शेष ६४७॥) उनमें वसूल [illegible] हुआ। २५०) बाहर से सहायता मिली। और ३५०॥) क़र्ज़ लेकर काम करना पड़ा। आगे [illegible] की [illegible] होने में ३००) और खर्च होने हैं। खंडेलवाल पञ्चायत ने आपस में झगड़ा हो जाने से चन्दे का शेष रुपया दिया नहीं। इस कारण क़र्ज़ा उतारने व आगे के खर्चों के लिए [illegible] की सहायता की ज़रूरत है। भारतवर्षीय जैन समाज को चन्दा करके सहायता भेजनी चाहिये।

(२) निज़ाम साहब पधारे हुए हैं, सारी जैन समाज को चाहिये कि उन्हें मुबारकबादी [illegible]।

(३) २१ अक्तूबर को निज़ाम साहब की वर्ष गाँठ है, उस दिन उन्हें दीर्घजीवी होने के तार सारी जैन समाज को भेजने चाहिये।

—लंदन के पुस्तकालय में ३० लाख, पेरिसके पुस्तकालयमें ३४ लाख, फ्रांस इम्पीरियल लाइब्रेरी में १८ लाख, न्यूयार्क के पुस्तकालय में १७ लाख और बर्लिनके पुस्तकालय में १५ लाख पुस्तकें हैं।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भ्भ्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्न्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ { बिजनौर, कार्त्तिक शुक्ला १४—श्री 'वीर' नि० सं० २४५९ { अङ्क ८

सन्देश !

हे नवयुवक उदार !

चमकादो नव-क्रान्ति सितारा
जग मानें आदर्श तुम्हारा
कांप जाय जिससे नभ सारा
ऐसी हो हुङ्कार !
हे नवयुवक उदार !

बनो तुम्हीं नूतन जग विरचित
बाधायें कर सकें न विचलित
हो उद्देश तुम्हारा पर-हित
संसृति का उपकार !
हे नवयुवक उदार !

उदित तुम्हारा अन्तःस्थल हो
बहता उसमें निर्मल जल हो
विश्व प्रेम का व्रत अविचल हो
उठता हो नव ज्वार !
हे नवयुवक उदार !

ऐक्य तुम्हारी अटल नीति हो
विघ्नों से किंचित न भीति हो
प्राप्त परस्पर सरल प्रीति हो
हो एकत्व प्रसार !
हे नवयुवक उदार !

'शशि'

सम्पादकीय !

हमारे नवयुवक !

[गताङ्क से आगे]

[३]

बलवान बनने के लिये जहां हमारे नवयुवकों को व्यायाम करने की तथा अखाड़े में उतर कर कुश्ती लड़ने, डंड बैठक करने, मुद्गर घुमाने, डंबल उठाने, रस्सा खींचने आदि की आवश्यकता है वहीं पर हमारे लिये शस्त्रशिक्षा का लेना भी बहुत आवश्यक है।

हमारे पूज्य श्री ऋषभदेव भगवानने गृहस्थोंके लिये जहाँ छह कर्मोंका उपदेश दिया है वहां सबसे प्रथम असिकर्म यानी अस्त्र शस्त्र चलाना रक्खा है। पढ़ना लिखना यानी मसिकर्म उसकेपीछे रक्खा है। तदनुसार आदर्श वीतरागी गृहस्थ भरत चक्रवर्तीको तथा बाहुबलीको अस्त्र शस्त्र चलाना सिखलाया। सनत्कुमार सरीखे अनेक चक्रवर्ती राजा, श्री शान्तिनाथ सरीखे तीर्थंकर चक्रवर्ती सम्राट एवं अन्य जैनराजा शस्त्रविद्यामें पारंगत हुए—समयपर उन्होंने युद्ध करके विजय प्राप्त की तथा धर्म, न्याय और प्रजा की रक्षा की। द्रोणाचार्य सरीखे ब्राह्मण, श्री जम्बूकुमार सरीखे सेठ भी शस्त्रविद्या के निपुण अभ्यासी हमारे सामने चमकीले उदाहरण हैं।

इस कारण यह बात तो स्वयमेव सिद्ध होजाती है कि शस्त्र विद्या जैन गृहस्थ के लिये भी उतनी ही प्रमुख, आवश्यक, उपादेय शिक्षा है जितनी कि किसी अजैनके लिये। अतएव हमारे नवयुवकों को शस्त्रविद्याका अवश्य अभ्यास करना चाहिये।

जैनियोंके अहिंसाधर्मकी हंसी अन्य लोग इसी लिये उड़ाते हैं कि जैनलोगों ने आज कल इस ज़माने में अपने आपको कायर बना लिया है। कायरता हमारे भीतर तभी से प्रवेश कर गई है जबसे हमने अस्त्र शस्त्र विद्याको हिंसाका कारण जानकर सीखना छोड़दिया है।

यह बात बिलकुल ठीक है कि कायर मनुष्य अपने अहिंसा धर्मको सदा बदनाम करता है; साधारण हो हर एकसे मार खा लेना और अपने धर्मायतन व परिवार आदि की भी रक्षा न कर सकना क्या अहिंसाधर्म है? जो मनुष्य अपनी या परिवार अथवा देवालय की रक्षा नहीं कर सकता वह अन्यकी रक्षा क्या कर सकेगा?

प्रसंग पाकर यहाँपर कलकत्ते के पहले दंगेका चित्र सामने आखड़ा होता है, जबकि कोलूटोले का चैत्यालय लूटा गया था। कोलूटोले में चैत्यालय ऊपर तीनमंजिले छतपर बना हुआ था।

दंगेके समय वहाँपर २--३ कायर जैन भी विराजमान थे। वे बहादुर जैन छतके ऊपर चैत्यालयमें खड़े हुए इस भयभीत रूपसे नीचे सड़कपर दंगाइयोंको देख रहे थे मानो वे उन भक्तों के शिरपर ही सवार हैं। मुसलमान गुण्डों ने उन डरपोक जैन वीरोंकी सूरत देखकर ताड़लिया और वे छत पर चढ़ गये। उन्हें आते देख कायर जैन जो कि भागने में बड़े बहादुर थे भाग गये और अपने प्राण बचा कर वीरता के इतिहास में कालिमा लगाकर अमर हो गये।

यदि ऐसे जैनियों के कारण **अहिंसाधर्म** बदनाम न होवे तो क्या सम्राट चन्द्रगुप्त या राजा खारवेल सरीखे आदर्श वीरोंके कारण होगा। छत पर चढ़ा हुआ एक मनुष्य नीचे सामने खड़े हुए हजार मनुष्योंके लिए बहुत है। लुटेरे चाहे कितने ही बलवान क्यों न हों छत पर चढ़ा हुआ मनुष्य उनको एक कदम भी अपनी ओर नहीं आने दे सकता, तिसपर वे कायर जैन भाई अनेक थे। उनको जितना प्रेम अपने प्राणों से था उतना धर्म से न था, अन्यथा जीनेके दरवाजे पर अड़ जाते और एक भी गुंडेको चैत्यालयमें पैर न रखने देते— उसी धर्मरक्षामें अपना बलिदान कर देते। जीनेके ऊपरी दरवाजे में खड़ा हुआ एक आदमी जीने में चढ़ने वाले सैकड़ों मनुष्यों को एक हाथकी चोट से गिरा सकता है। अस्तु। यदि वे भागे ही थे तो जिस जिनेन्द्र प्रतिमाको वे पूज्य समझते थे उसको, अविनय से बचाने के लिये, साथ लेते जाते तो क्या प्राण न बचते? किन्तु भागते वीरोंसे वह भी न बना।

इतनी कायरता किस लिये? इसी लिये कि कभी हाथमें हथियार तो क्या लाठी भी नहीं उठाई। तब क्या इसी प्रकार अहिंसाधर्मका पालन प्रशंसनीय होना चाहिये?

अभी कानपुरके दंगे में एक धनाढ्य लालाजी की कोठी को जब मुसल्मानों ने घेर लिया तब गोरखे पहरेदारोंने लाला जी से लायसंसदार बन्दूक मांग कर कहा कि आप ज़रा बन्दूक दे दीजिये, हम इन सबको भगा देंगे। लाला जी सिटपिटा गये, बन्दूक देने में उन्हें अपने ऊपर कानूनी आफत दीखने लगी। अंतमें दोनों गोरखे तो अपनी खुखरी (हथियार) निकालकर मुसल्मानोंपर टूट पड़े और मारते काटते निकल गये; किन्तु लालाजी घिर गये। तब लाला जी ने दो हजार रुपये उन मुसल्मान गुन्डोंको देकर घंटे भर की छुट्टी मांगी; घंटे भरमें आप अपने बाल बच्चों और उस बन्दूक को साथ लेकर कोठीसे बाहर निकले, पीछे मुसलमानों ने उस कोठी को लूट कर आग लगा दी। भलेमानस गुंडों ने रुपयों के लोभ में लाला जी को सपरिवार छोड़ दिया, अन्यथा कोठीके साथ उनकी भी भस्म हो जाती।

ऐसी कायरता हमारे भीतर इसीलिये घुस गई है कि हमने हथियार उठाना छोड़ दिया, लाठी को भी दूर फेंक दिया, इस दशा में हम अपनी अहिंसा को बदनाम न करें तो क्या करें?

———

[क्रमशः]

माता मरुदेवी का शिलालेख।

धुलेव में श्री भगवान ऋषभदेव का विशाल मंदिर है जिससे कि उस स्थान का तथा पोष्ट आफिस का नाम भी रिखबदेव

पड़ गया है। भगवान ऋषभदेव की मूर्ति पर केशर चढ़ाने के कारण श्वेताम्बरी भाई भगवान ऋषभदेव को केशरियानाथ भी कहने लगे हैं। [किन्तु केशरियानाथ कहना उचित नहीं, क्योंकि केशरियानाथ नाम न तो तीनों चौबीसी में किसी तीर्थंकर का है और न भगवान ऋषभदेव का ही अपरनाम केशरियानाथ है। यदि केशर चढ़ाने से केशरियानाथ नाम हो सकता है तो फूल चढ़ाते रहने से फुलियानाथ नाम हो जायगा ? इस कारण केशरियानाथ नाम का प्रयोग छोड़ कर उसी वास्तविक ऋषभदेव नाम से संबोधन करना चाहिये] यह ऋषभदेव का प्रसिद्ध मंदिर दिगम्बर सम्प्रदाय का है, यह बात हम जैनदर्शन के तीसरे अङ्क में सिद्ध कर चुके हैं।

श्वेताम्बरी भाई इस मंदिर पर अपना स्वत्व प्रगट करते हैं जिसमें वे अन्य निर्बल प्रमाणों के समान एक यह प्रमाण भी उपस्थित करते हैं कि मंदिर में हाथी पर बैठी हुई माता मरुदेवी की मूर्ति विराजमान है, यह श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मालिकी सिद्ध करती है।

किन्तु श्वेताम्बर भाइयों की इस युक्ति से भी मंदिर की श्वेताम्बरीयता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि एक तो माता मरुदेवी का हाथी पर सवार होना दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रतिकूल नहीं। दूसरे माता मरुदेवीके हाथी पर जो शिलालेख हैं भी वे दिगम्बर सम्प्रदायका ही स्वामित्व सिद्ध करते हैं। देखिये—

"संवत १७११ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमे श्री मूलसंघे सरस्वति गच्छे बलात्कार गणे श्री कु'.........।"

"संवत १७३४ व० माघ मासे शुक्ल पक्षे... तिथौ भृगुवासरे श्री मूलसंघ काष्ठासंघ भट्टारक श्री रामसेनान्वये तदाम्नाये भ० श्री विश्वभूषण भ० यशःकीर्ति भ० श्री त्रिभुवनकीर्ति.........।"

"संवत १७४६ वर्षे फागुण सु० ५ सोमे श्री मूलसंघ सरस्वतिगच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री सकलकीर्तिस्तदनन्तर भट्टारक श्री रामकीर्ति.........।"

इन लेखों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि हाथी का निर्माण भी मूलसंघ आम्नाय वाले भट्टारकों द्वारा दिगम्बर जैन श्रावकों ने कराया था। इसलिये हमारे श्वेताम्बर भाइयों को यह प्रमाण दिगम्बर सम्प्रदाय के पक्ष में स्वीकार करना चाहिये।

नाम के साथ 'जैन' शब्द।

अभी सितम्बर के जैनसंसार में श्रीमान बा० इन्द्रलाल जी आडीटर धर्मपुरा देहली का लेख प्रकाशित हुआ है, उसमें उन्होंने यह आशय प्रगट किया है कि जैनियों को अपने नाम के साथ केवल गोत्र सूचक ही शब्द लिखना चाहिये—'जैन' न लिखना चाहिये, जैसे कि हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई आदि करते हैं।

इस आशय का आपका एक पत्र हमारे पास भी आया था, उसका विस्तृत उत्तर हमने आपको दे दिया था। यह लेख शायद पत्र पहुँचने से पहले आपने छपने भेज दिया होगा, अथवा हमारे उत्तर से आपको सन्तोष न हुआ होगा। अस्तु।

जैनियों को अपने नाम के साथ 'जैन' शब्द क्यों अवश्य लगाना चाहिये, उसके कतिपय मुख्य कारण यहाँ उपस्थित किये जाते हैं, पाठक विचार करें—

१—पहले ज़माने में विद्वान जैनसाधु प्रचुर संख्या में सर्वत्र भ्रमण कर जैनधर्म का सन्देश तथा परिचय लोगों को दिया करते थे, किन्तु वह साधन आज नहीं के बराबर है, अतः जैनत्व का परिचय कराने के लिये नाम के साथ जैन लिखना आवश्यक है।

२—पहले अनेक प्रतापी राजा, सेनापति, मंत्री आदि जैनधर्मानुयायी होते थे जिससे संसार जैनियों के अस्तित्व से परिचित था, किन्तु आज वह बात नहीं है। स्वल्प संख्या रह जाने से प्रायः अजैन लोगों को पता नहीं होता कि जैन भी हमारे कोई पड़ोसी हैं; उनको परिचित बनाने के लिये जैन लिखना आवश्यक है।

३—जिन लोगों की धारणा है कि शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म के समान जैनधर्म को भी भारतवर्ष से निकाल बाहर किया है, उनका भ्रम भी हमारे जैन लिखने से दूर हो सकता है।

४—जैनधर्म एक पवित्र, आदर्श, सत्य धर्म है तथा जैनसमाज एक सच्चरित्र, निरपराध (बहुत कम अपराध करने वाला) व्यापारिक, धार्मिक समाज है, इस गौरव को प्रगट करने के लिये भी स्वाभिमानपूर्वक जैन शब्द अपने नाम के साथ लगाना उचित है।

५—हम अपने आपको जैन समझते हुए मद्यपान, मांस भक्षण आदि अनेक अनुचित कार्यों से दूर रहते हैं, इस कारण जैन शब्द लगाने के कारण हम दुराचार से भी बचे रहते हैं। हमको लोकलज्जा सदाचार की रक्षा के लिये प्रेरित करती है कि कहीं लोकनिन्दा न होवे कि अमुक व्यक्ति जैन होते हुए ऐसा दुष्कार्य करता है। इस लाभ के लिये जैन लिखना आवश्यक है।

६—जैसे हम अनेक प्रकार के ट्रैक्ट, विज्ञापन आदि साधारण जनता में बाँट कर जैनत्व का प्रचार करते हैं उसी प्रकार अपने नाम के साथ जैन लिखना भी जैनत्व का प्रचार करना है।

७—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि शब्द ऐसे हैं जो कि नाम के साथ सुन्दर फबते नहीं, किन्तु हमारा 'जैन' शब्द ऐसा है जो कि अपने नाम के साथ लगानेसे फबताहै—नाम सुन्दर मालूम होता है। इस कारण भी नाम के साथ 'जैन' लिखना चाहिये।

८—हज़ारों मील के फ़ासले पर बैठे मनुष्य का नाम ज्ञात होने पर, यदि उसके नाम के साथ "जैन" शब्द जुड़ा है तो, अपने धर्म बन्धु का परिचय सहज ही में हो जाता है तथा किसी भी "जैन" व्यक्ति द्वारा कोई भी असाधारण कार्य संपन्न होने पर उस व्यक्ति विशेष की ख्याति के साथ उसके धर्म की भी प्रभावना होगी और किसी न किसी अंश में साधारण जनता तक का उस धर्म की ओर आकर्षण होना स्वाभाविक है।

इनके सिवाय अन्य भी कारण इस बात को पुष्टि देने वाले हैं, अतः सभी व्यापारी, नौकर, आफीसर, देशसेवक, समाजसेवक महानुभावों का कर्तव्य है कि वे अपने नामों के साथ 'जैन' शब्द अवश्य लगाया करें।

जैन जगत की निन्द्य चेष्टा

सुधार के नाम पर जैनजगत जैनधर्म और जैनसमाज का कितना अधःपतन करना चाहता है, यह बात उसके जैनधर्म का मर्म तथा व्यभिचार और ब्रह्मचर्य शीर्षक दो लेखों से

जानी जा सकती है। किन्तु इसके साथ ही काला झूठ लिखकर वह समाज में अशान्ति भी उत्पन्न करना चाहता है। पूज्य, मान्य महानुभावों को कमीने शब्दों द्वारा अपमानित करना, यह तो उस का नित्यकर्म है।

पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी का मुनिसंघ जैनजगत की आँखों में काँटे की तरह चुभता है, इस कारण जब तक वह प्रत्येक अङ्क में उनको किसी न किसी बहाने कोसकर अपना दिल ठंडा न कर लेवे, उसको संतोष नहीं होता—इस बात की कोई आवश्यकता नहीं कि वह बहाना सत्य हो अथवा असत्य।

अभी जैनजगत के २१ वें अङ्क में **कलिकाल सर्वज्ञका विचित्र विधान** शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें यह आशय प्रगट कियागया था कि **"आचार्य शान्तिसागर ने णमोकार मंत्र का जाप करना निदान नामक आर्तध्यान बतलाया है"**। वास्तविक समाचार से अनभिज्ञ लोग इस बातसे धोका खाकर आचार्य शान्तिसागर महाराज पर अश्रद्धा तथा कुपितभाव कर सकते हैं। **श्वेताम्बर जैन** ने यह समाचार बड़े उत्साह से झट छाप दिया, क्योंकि उस लेख से एक प्रमुख दिगम्बर जैन आचार्य की निंदा प्रगट होती थी।

किन्तु बात वास्तव में यह थी कि ब्यावर में शास्त्रसभा के समय यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि **"यदि कोई अपने विरोधी को मारने के विचार से तथा वशीकरण आदि के विचार से णमोकार मंत्र का जाप करे तो वह कौनसा ध्यान होगा?"** आचार्य महाराज ने उत्तर दिया कि मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि के विचार से णमोकार मंत्र का जाप निदान नामक आर्तध्यान है।

आचार्य महाराज का यह उत्तर बिलकुल ठीक है। जैन सिद्धान्त मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि उद्देश्य सिद्धि के लिये किये हुए जापों को, वह चाहे किसी भी मंत्र द्वारा हो, डंके की चोट पर निदान आर्तध्यान कहता है।

जैनजगत के सम्पादकजी तथा श्वेताम्बर जैन के सम्पादक जी एवं अन्य महानुभाव, जो कि आचार्य महाराज के इस उत्तरसे आचार्य महाराज को कोसते हैं, स्वयं उत्तर दें कि उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर जैन सिद्धान्त अनुसार क्या हो सकता है?

यह तो हुई एक बात; दूसरी बात पर दृष्टिपात करें कि सभ्यता की दुहाई देने वाले पं० दरबारी लाल जी की संपादकी का जैनजगत पूज्य आचार्य महाराज को तथा अन्य महानुभावों को किन सुंदर सभ्य शब्दों में उल्लिखित करता है?— **"सिद्धान्त शास्त्र के निरे अनभिज्ञ कलिकाल सर्वज्ञ श्री शान्तिसागर जी की दिव्यध्वनि हुई, मुनिवेषी, अंधभक्त"** आदि। एक अङ्क में जैनजगत ने पूज्य मुनियों को 'गुण्डा' शब्द से सम्बोधन किया था।

सज्जनता तो यह आदेश करती है कि यदि आचार्य महाराज में अथवा मुनिसंघ में कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो वह प्राइवेट तौर से, निजी पत्र द्वारा, शान्ति से गुप्त रीति द्वारा उपगूहन अंग को अमल में लाते हुए दूर की जा सकती है। इतने से यदि कुछ न बने तो बहुत नम्र विनीत शब्दों में सभ्यता पूर्वक उस बात को पत्र में प्रकाशित करें।

किन्तु पता नहीं जैनजगत के संचालक अपने आपको क्या कुछ समझते हैं? उनको उच्च आचार

पालक, समाज पूज्य, निःस्पृह, धर्मप्रचारक महानुभावों के लिये भी अपनी सभ्यता में दुर्जन असभ्य पुरुषों जैसे कमीने शब्द ही लिखने के लिये मिलते हैं। कम से कम अपने आपको देखकर दूसरों पर लेखनी चलानी चाहिये।

तथा अंधभक्त लिखते समय जैनजगत को यह बात कैसे भूल गई कि बिना कुछ ठीक छान बीन किये, चाहे जो ऊट पटांग छापने वाला कितना शोचनीय, नेत्र-शून्य है।

खेद है कि जैनजगत की घृणित नीति जैनसमाज को सब तरह अधःपतन की ओर खींचती है।

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[६]

इस प्रकार विकराल कालके थपेड़ों से विचलित होकर उज्जैनका मुनिसंघ अपने चरित्र की रक्षा न कर सका। अपने जीवनके लिए उसको अपना विमल मुनिव्रत बेचना पड़ा, सिंहवृत्ति छोड़ कर उसने कायर वृत्तिका आश्रय लिया। जैनसाधु के लिये जहां शास्त्र, पीछी, कमंडलु के सिवाय एक तिनके का ग्रहण करना भी निषिद्ध है वहाँ उन उज्जैन निवासी साधुओंने उस दुष्कालके समय वस्त्र, पात्र, लाठी आदि पदार्थ स्वीकार कर लिये थे।

यह सब कुछ होने पर भी उनमें से अधिकतर मुनियों का विचार यही रहा कि जिस तरह आपत्ति के अवसर पर इन अग्राह्य पदार्थोंको विवश होकर ग्रहण किया है उसी तरह आपत्ति टल जानेपर जब सुख शान्तिका समय आवेगा तब यह सब आडम्बर उतार फेंक देंगे और अपने मलिन चरित्र का मैल धोकर विमल मुनिचर्या का अनुसरण करेंगे। अस्तु।

धनकुबेर जैन सेठों के भक्तिभाव से मुनियोंको तो खान पान का कष्ट न हुआ, किन्तु साधारण दरिद्र प्रजाका जिस दयनीय दशासे प्राणनाश हुआ उसका भीषण चित्र अंकित करना लेखनी की शक्ति से बाहर की बात है। उस भयानक दुष्काल में मनुष्य अन्नका दाना न मिलनेसे भूख के कारण बिलबिलाते थे, इधर उधर दौड़ते थे, बच्चों की तो चिन्ता ही कौन करता था, कहीं भी भूख शान्त करनेको वस्तु न मिलने पर अशक्त होकर गिर पड़ते थे, पड़े पड़े चीखते थे, कराहते थे, बोलने की शक्ति भी न रहने पर अपनी अन्तर्वेदना को चुपचाप सहते थे और अंत में छटपटाते हुए प्राण छोड़ देते थे। निर्जीव मृतक शरीरों के ढेर जहाँ तहाँ हो जाते थे, उनका अग्नि संस्कार तो अलग किन्तु जलप्रवाह भी नहीं हो पाता था, क्योंकि नदी नालों में जल भी न था। हां! पशु पक्षी लाशों को ठिकाने लगा देते थे।

इस प्रकार बारह वर्ष का अकाल असंख्य मनुष्य पशुओं की असमय में बलि लेकर सन्तुष्ट हुआ जिस तरह पर्याप्त भोजन कर चुकने पर

मनुष्य भोजन से विमुख हो जाता है मानो उसी प्रकार दुष्काल भी बारह वर्ष की अवधि में अपना विशाल उदर अगणित प्राणियों से भर कर एक ओर चला गया। तब सुभिक्ष आया, यथा समय जलवर्षा होने लगी, जो पृथ्वी बारह वर्ष से प्यासी मुख फाड़े सूखी पड़ी हुई थी यथेष्ट जल पाकर वही हरी भरी दिखने लगी। खेतों में अनाज पैदा होने लगा हाहाकर मिटकर शान्ति हो गई।

बारह वर्ष बीते हुए जान कर विशाखाचार्य ने अपने मुनिसंघ के साथ मालवा की ओर प्रयाण किया। मार्ग में समाधिमरणके लिये जिस कटवप्र पहाड़ीपर चन्द्रगुप्तके साथ अन्तिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामीको छोड़ा था वहां पर आये और वहां आकर देखा कि श्री भद्रबाहु आचार्य बहुत समय पहले स्वर्ग यात्रा कर गये हैं और चन्द्रगुप्त वहीं पर तपस्या कर रहे हैं। वहाँ चन्द्रगुप्तसे मिलकर चन्द्रगुप्त को मालवाकी ओर विहार करने के लिये पूछा किन्तु चन्द्रगुप्त ने उसी क्षेत्र पर रहना स्वीकार किया। अतः विशाखाचार्य चन्द्रगुप्तको वहींपर छोड़ कर मालवाकी ओर आगे बढ़े और क्रमशः उज्जैनके निकट जा पहुँचे।

विशाखाचार्य को मुनिसंघके साथ उज्जैनके समीप आया जान स्थूलाचार्यने विशाखाचार्यका स्वागत करने के लिये अपने शिष्योंको उनके पास भेजा।

स्थूलाचार्यके शिष्य विशाखाचार्य के पास पहुँचे, उन्होंने विशाखाचार्यको वंदना की किन्तु विशाखाचार्य ने उनका वस्त्र, पात्र, लाठी धारक अद्भुत वेश देखकर उनसे प्रतिवंदना न की।

विशाखाचार्य ने स्थूलाचार्य के शिष्यों को संबोधित करके कहा कि जब भद्रबाहु आचार्यने बारह वर्ष के दुष्कालके समय साधुचर्या सुरक्षित रखनेके लिये तुम सबको दक्षिण देशकी ओर विहार करनेके लिए कहा था उस समय तो तुम सेठ लोगों का आग्रह मानकर उज्जैन में ही रह गये, किन्तु जब तुमको दुष्कालका भयानक समय परीक्षाके लिये उपस्थित हुआ तब कायर होकर ऐसा कुवेश बना बैठे इस पर भी अपने आपको जैनसाधु समझते हो!

विशाखाचार्यकी बात सुनकर स्थूलाचार्य के शिष्य बहुत लज्जित हुए, वे विशाखाचार्यको कुछ उत्तर न देकर पीछे चले गये और स्थूलचार्यको सब बातें कह सुनाई। विशाखाचार्य की बातें अपने शिष्योंके मुखसे सुनकर स्थूलाचार्य का हृदय बहुत प्रभावित हुआ।

स्थूलाचार्य ने समस्त साधुओं को अपने पास बुलाया और उनसे विशाखाचार्यका सारा समाचार कह डाला, फिर बोले कि हम सबने गृहस्थाश्रम को छोड़कर साधुदीक्षा आत्मकल्याण करने के लिए ली है, यदि साधु होकर भी हम अपना कल्याण न कर सके तो हमारा साधु होना व्यर्थ है। जैनसाधु पांच महाव्रतधारी होता है, उसके लेश रंचमात्र भी परिग्रह नहीं होता, किन्तु हमने दुष्काल के विकट संकटमें बहुत कुछ अग्राह्य पदार्थ अपनी साधुचर्या के अंग बना लिये हैं जोकि विमल मुनिमार्ग के काले दाग हैं। इस कारण हमको अपने शुद्ध हृदय से प्रायश्चित्त लेकर इन काले दागों को धोडालना चाहिये।

साधुओंमें से कुछ एक ने उत्तर दिया कि गुरुवर! समय विकट आगया है, इस ज़मानेमें सब कुछ त्याग कर नग्न विहार करना कठिन है, हम नग्न

रहने योग्य शक्तिशाली नहीं हैं इस कारण यह स्वल्प परिग्रह नहीं छोड़ सकते। यदि पूर्ण महाव्रती नहीं तो गृहस्थों से तो फिर भी बहुत अच्छे हैं।

स्थूलाचार्यने कहा कि साधुओ! विकट समय तो चला गया अब सुभिक्षके शान्त समयमें तुम्हारे नग्न मुनिवेश को कुछ बाधा नहीं आ सकती। विशाखाचार्य का मुनिसंघ देखो—उनके मुनियोंका शरीर भी तुम्हारे शरीर सरीखा है, इस कारण कायर न बनो। काले वस्त्र पर गहरा दाग भी दिखलाई नहीं देता किन्तु सफेद स्वच्छ कपड़ेपर जरा सा धब्बा भी बुरा दिखाई देता है। इस लिये तुम्हारा यह दूषित साधुवेश त्याज्य है। मुनिदीक्षा तुमने अपने उद्धार के लिये ली है न कि उदरपूर्ति तथा अपनी पूज्यता प्राप्त करने के लिये।

स्थूलाचार्य के ये चुभने वाले सत्य वचन अनेक भद्र साधुओं को पथ्य औषध समान प्रिय मालूम हुए, तदनुसार उन्होंने शुद्ध हृदय से प्रायश्चित लेकर वस्त्र, पात्र, लाठी आदि परिग्रह को तथा मुनिमार्ग के प्रतिकूल अन्य चर्या को त्याग दिया।

किन्तु कुछ शिथिलाचारी साधुओं को (जिनको कि अपने भ्रष्ट आचरण में प्रेम हो गया था, अतः उसको न छोड़ना चाहते थे) स्थूलाचार्य के हित कर वचन बहुत अप्रिय लगे। उन्होंने क्रोध से प्रज्वलित होकर कहा कि इस बुड्ढे की बुद्धि मारी गई है, यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को न देख कर मन चाहे सो बड़बड़ाता है। यह मुनिमार्ग का घातक है। धर्मघातक का घात कर देना ही धर्म की रक्षा है। ऐसा कहते हुए वे लाठी लेकर स्थूलाचार्य पर टूट पड़े और स्थूलाचार्य को लाठियों से मार मार कर प्राणरहित कर दिया तथा उनका निर्जीव शरीर एक खड्डे में फेंक दिया।

स्थूलाचार्य आर्तध्यान से प्राण त्याग कर व्यन्तरदेव हुए, वहां उन्होंने अवधिज्ञान से पूर्वभव का हाल जानकर उन प्राणघातक दुष्ट साधुओं को उपद्रव कर सताना प्रारम्भ किया तथा उन साधुओं से कहा कि तुम इस वेश को छोड़ कर नग्न वेश धारण करो अन्यथा तुमको जीवित न छोड़ूंगा।

वे हत्यारे साधु देवका प्रबल उपद्रव देख कातर होकर देवसे कहने लगे कि हे देव! अपराध क्षमा कर हमारे ऊपर दया करो, हम शक्तिहीन हैं, परिग्रह छोड़कर अब हमसे अपना नग्नवेश नहीं बनाया जाता। इस कारण क्षमा करो। हमने क्रोधवश अज्ञानता से आपका पूर्वभव में (स्थूलाचार्य का) अपमान किया है, इस कारण हम आपका सन्मान रखने के लिये आपकी हड्डियों को भी अब पूज्य समझ कर अपने पास रक्खेंगे और उनकी पूजा करेंगे।

व्यन्तरदेव उनकी कायरता पर तरस खाकर तथा अपनी पूज्यता देखकर सन्तुष्ट हो गया। तब उन साधुओं ने स्थूलाचार्य की हड्डियाँ उठा कर अपने पास रख लीं।

एक श्वेताम्बर साधु के कथनानुसार अब तक वह प्रथा चली आ रही है। अब श्वेताम्बर साधु एक मोटे बड़े सफेद चांवल में गुरुदेव की स्थापना करके उसको कपड़े में लपेट कर अपने पास रखते हैं। संभवतः यह उसी प्रथा का अनुरूप होगा। अस्तु। [क्रमशः]

बनस्पति घी अभक्ष्य है।

हालेण्ड आदि देशों से कुछ दिन से भारतवर्ष में वैजीटेबल घी आने लगा है वनस्पतिसे प्रयोगों द्वारा निकाला हुआ शुद्ध घी समझ कर भारतीय जनता उसको व्यवहारमें लाने लगी है। सस्ता भाव होने से तथा शुद्धता के ख्याल से उसका खान पान दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा है।

हमारे अनेक जैन व्यापारी भी मुनाफे के विचार से इस घी की एजेन्सी लेकर इसका व्यापार कर रहे हैं और बड़े बड़े विज्ञापनों द्वारा इस विलायती घी की पवित्रता तथा लाभ जनता को बतलाकर इस अशुद्ध घीकी खपत बढ़ा रहे हैं।

घी की असलियतसे अनभिज्ञ अनेक जैन भाई मितव्यय (किफायत) के विचार से इस घी को खाने लगे हैं।

उनसे निवेदन है कि जैनधर्म जहां पवित्र भोजन का उपदेश देता है वहाँ यह भी कहता है कि जिस पदार्थ की असल दशाका आपको पता न हो उस पदार्थ को कदापि भक्षण न करें। यह विलायती घी जिसको वनस्पति घी कह कर बेचा जाता है विद्वान रसायनशास्त्रज्ञातओं के परीक्षित मतसे अशुद्ध, हानिकारक है—उनका कहना है कि इसमें मछलियोंकी चर्बी आदि मिली होती है।

उनकी सम्मतियों को सन्मुख रखकर इस विलायती घी के विषय में पत्रों ने जो मत प्रकाशित किया है वह हम यहाँ आपके सामने रखते हैं—

(१) १९२३ अथवा १९२४ के सितम्बर महीने के आंगल भाषा के एक प्रसिद्ध दैनिक सिंध आवज़रवर में पढ़ा था कि कलकत्ता के दो नामी रसायन शास्त्रियों ने सिद्ध किया है कि हालेण्ड इत्यादि देशों से आने वाले "बनस्पति घी" में अधिकांश जानवरों की चरबी मिली हुई है—तथा कुछ निकल NICKLE भी मिलाई गई है।

(२) विविध वृत्त मासिक पत्र के १९३३ के विशेषांकमें "घी" के व्यापारी अपने घी की प्रसिद्धि देते हुए लिखते हैं कि व्हेजिटेबल घी के नाम से जो पदार्थ परदेश से हिन्दुस्तान में आता है वह दुर्गंध निकाली हुई मछलियों की चरबी ही है। इसका नाम व्हेजिटेबल अर्थात् बनस्पति घी रखा ही इस कारण है कि लोग धोखा खायें।

(३) परलोकवासी भजाराम जी वैद्य पटियाला वालों ने इस "बनस्पति घी" का अपने मासिक तथा साप्ताहिक पत्र अमृत में कई बार घोर विरोध किया था। आपका कथन है कि विशेषतः यह घी बच्चों को शीघ्र ही यक्ष्मा खांसी अथवा फेफड़ों की बीमारियों में फंसा देता है। बड़ोंको कुछ देर में रोगी बनाता है।'

१४। ८। ३३ के हिन्दी प्रचारक में प्रकाशित हुआ है कि दयालबाग (आगरा) की 'डेरी' (शुद्ध दूध आदि बेचने वाली दुकान) देखकर बाबा हरदयालसिंह ने कहा कि—शुकर है दयालबाग डेरी ने खालिस घी व मक्खन मुहय्या करके पब्लिक की एक बड़ी ज़रूरत पूरी की है। आपने "बड्डा" ज़िला होशियारपुर का एक दिलचस्प मुआमला

बयान किया—"एक शख्स की गाय मर गई। जिनका काम था वह उठाने आये, लेकिन एक दूसरा शख्स आया और कहने लगा कि यह मुर्दा गाय मैं ख़रीदता हूँ। फरीक अव्वल इसके लिये रज़ामन्द न था। ग़रज़ेकि हर दो में तनाज़ा हो गया और दूसरा, जिसका हक न था, सीनाज़ोरी से मुर्दा गाय को ले गया। घर जाकर उसने उसकी चर्बी निकाली और उसे तीन दिन तक तेल में उबाला और घी बना कर तीन टीन भरकर "बक्का" ले आया और साठ रुपया में तीनों टीन फरोख्त कर दिये। बात खुल गई और हज़रत गिरफ्तार कर लिये गये।"

यह बातें जानकर हमारे जैन भाइयों को दूध, दही से निकाला हुआ शुद्ध घी ही अपने व्यवहार में लाना चाहिये।

जैन धर्म में क्षत्रियों की प्रधानता।

[ले०— श्रीमान सरदार भंवरलालजी यदुवंशी भाटी, रतलाम]

वर्ण व्यवस्था को पूर्वसञ्चित कर्मानुसार एवं कुलपरम्परा से मानने वाले भारत-वर्ष के मुख्य दो ही धर्म हैं—एक हिन्दू धर्म और दूसरा जैन-धर्म। इनमें भी हिन्दू धर्म का सनातन सम्प्रदाय जिस प्रकार पूर्णता और यथावत् रीति से वर्ण व्यवस्था मानता है, उसी प्रकार जैन धर्म का दिगम्बर सम्प्रदाय भी मानता है।

जैन-धर्म में कर्म ही प्रधान है और कर्म का सम्बन्ध जीव (आत्मा) से ही रहता है। इस कर्म के सम्बन्ध से ही जीव को ऊंच नीच पर्याय पुण्य-पाप के फल स्वरूप भोगनी पड़ती है, कर्म के नाश करने पर जीव मोक्ष को प्राप्त हो जाता है अर्थात् बन्धनों से छूट जाता है। अतएव जैन-धर्म में जो कुछ भी सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है अथवा जो २ क्रियाएँ बतलाई गई हैं वे सब जीव को कर्म-बन्धन से छुड़ाने या मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही हैं। मोक्ष अवस्था अर्थात् सिद्धस्थान में ऊँच नीच का भेद-भाव नहीं रहता, वहां सब जीव एक समान हैं और यह विधान जैन धर्म में दूसरे सब धर्मों की अपेक्षा विशेषता रखता है।

कर्म-बन्धनों से मुक्त होने के लिए जीव को सम्पूर्ण और सर्वोच्च योग्यता (उत्तम द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) की प्राप्ति होना आवश्यक है और यह प्राप्ति कई भवों (जन्मों) के पुण्य-कर्मों से होती है; क्योंकि जिन कर्मों का सम्बन्ध जीव के अनादि काल से लगा हुआ है वह सहज ही नहीं छूट सकता। उसके लिए प्रथम पाप-कर्म के बन्धनों को कम करके पुण्य बढ़ाना पड़ता है और पश्चात् पाप और पुण्य दोनों का क्षय करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। कर्म का क्षय अर्थात् नाश करना यह एक प्रकार की सर्वोच्च युद्ध-क्रिया है और इसके लिए महान् वीर आत्माएँ ही योग्यता प्राप्त कर सकती हैं।

इसलिए जैन-धर्म ने एक मुख्य सिद्धान्त स्था-

पित किया है कि—"जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा" अर्थात् जो कर्म करने में समर्थ है वही कर्म काटने में समर्थ है। इसी एक मुख्य सिद्धान्त के आधारपर जैन-धर्म ने प्रधानता क्षत्रियों को ही दी है; क्योंकि वीरता क्षत्रियों में विशेषतया होती है। अतः जिस प्रकार वे सांसारिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार से वे आत्मा के कर्म रूपी शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसी कारण जैन धर्म में जो २ पुराण-प्रसिद्ध पूज्य पुरुष हुए हैं वे प्रायः सब के सब क्षत्रिय ही हुए हैं। जैसे चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलभद्र, ऐसे त्रिशष्टिशलाका अर्थात् ६३ पदवीधारी पुरुष सब ही क्षत्रियों के सर्वोच्च सूर्य्य, चन्द्र, कुरु आदि वंशों में उत्पन्न हुए हैं और यह बात केवल एक कल्प काल के लिए ही नहीं वरन् अनन्ताऽनन्त काल से ये त्रिशष्टि शलाका पुरुष नियमित क्षत्रियकुल में ही होते थे, हुए हैं और भविष्य के अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी कालों में होंगे।

अतः वर्त्तमान हुण्डावसर्पिणी काल में भी जब से कर्म भूमि की रचना प्रारम्भ हुई, प्रथम तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेव जी या आदिनाथ का जन्म क्षत्रियों के इक्ष्वाकु वंश में हुआ और इन्हींके ज्येष्ठ पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए, जिनके नाम से यह हमारा पवित्र देश भरतखण्ड या भारतवर्ष कहलाता है। श्रीऋषभदेव जी के १०० पुत्र और २ कन्यायें हुई थीं, जिनमें भरत जी के पुत्र अर्ककीर्ति से सूर्यवंश की स्थापना हुई। एवं बाहुबली जी के पुत्र सोमकीर्ति से चन्द्रवंश की स्थापना हुई। अर्क नाम सूर्य का और सोम नाम चन्द्रमा का है। यहीं से सूर्यवंश और चन्द्रवंश संसार में प्रसिद्ध हुए। इन्हीं दोनों वंशों की शाखाओं में उत्तम कुलों के सब क्षत्रिय विभक्त हैं।

पूर्व काल में सूर्य और चन्द्रवंश के क्षत्रिय भूमिगोचरी कहलाते एवं राक्षस वंश और वानर वंश के क्षत्रिय विद्याधर कहलाते थे। राक्षस वंश और वानर वंश की प्रसिद्धि क्षेत्र और ध्वजा चिन्ह के कारण से हुई थी। इन वंशों के मनुष्य भी मनुष्याकृति में परम सुन्दर होते थे जैसे प्रतिनारायण, रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद तथा पवनंजय हनूमान आदि वंश भी क्षत्रिय वंशों में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। इन विद्याधरों के कुलों से भूमिगोचरी कुलों का परस्पर विवाह सम्बन्ध भी होता था।

जैनधर्म के पुराणों या चरित्रों में कोई भी बात कर्म-भूमि के मनुष्यों की उत्पत्ति, स्थिति आदि विषय में सृष्टि नियम के विरुद्ध नहीं बतलाई गई है, वरन् सत्य और विश्वास के योग्य सब वर्णन किया गया है। जैन पुराणों में यदि कुछ आश्चर्य का स्थल है तो प्राचीन काल के मनुष्यों की आयु, कायादि की दीर्घता और तीर्थङ्करों के देवों द्वारा पंचकल्याणकीय उत्सवों का वर्णन, और लोक-रचना में स्वर्ग, नरक के सुख दुःखों का कथन है। इनके विषय में हम लघु दृष्टि से अतिशयोक्ति का होना तो कह सकते हैं, किन्तु नितान्त असम्भव नहीं कह सकते।

पुराण और चरित्रों में अतिशयोक्ति अलङ्कार का होना आवश्यक है। यह दूषण नहीं, किन्तु भूषण है। इनसे पढ़ने वालों का चित्त लग जाता है, कोरी नीरस बातों के पढ़ने में मनुष्यों का

चित्त नहीं लगता। अतः जैन पुराण और चरित्रों में जहां कहीं अतिशयोक्ति अलङ्कार का व्यवहार किया गया है वहां भी युक्तियुक्तता का पूरा ध्यान रक्खा गया है, जिससे कथन आश्चर्यकारी होते हुए भी असम्भव प्रतीत नहीं होता।

जैन पुराणों को यदि हम वास्तव में क्षत्रियों का इतिहास कहें तो अयुक्त न होगा। हम अपने इस कथन की सत्यता के लिए समस्त क्षत्रिय भ्राताओं से निवेदन करना चाहते हैं कि वे अपने जातीय महत्व की आकांक्षा से ही एक बार जैनधर्म के हरिवंश पुराण और पद्मपुराण इन दो ग्रंथों का तो अवश्य ही अवलोकन करें। कदाचित् इतने बड़े ग्रन्थों के पढ़ने में जो भाई समय खर्च न करना चाहें वे "प्राचीन जैन इतिहास" (बाबू सूरजमल सम्पादित दो भाग) को अवश्यमेव देखें। इससे उन्हें विदित हो जायगा कि रघुवंशतिलक मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी और यादव कुल मुकुट मणि आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र का जीवनचरित्र कितना युक्तियुक्त बताया गया है और उनके समय की सम्पूर्ण घटनाएं किस प्रकार से सृष्टि नियमानुसार प्रतिपादित की गई हैं।

हमारे क्षत्रिय भ्राताओं के सम्मुख क्षत्रियों की उत्पत्ति के विषय में दो विधान उपस्थित हैं—एक तो जैन-धर्मानुसार यह कि संसार अनादि है और यह धारा-प्रवाह अखण्ड प्राकृतिक नियम से चल रहा है, इसमें सब नियमित व्यवस्था है, अतः मनुष्य की उत्पत्ति मनुष्य से ही होती है और इसी कारण क्षत्रियों की उत्पत्ति भी वर्त्तमान अवसर्पिणी काल की कर्मभूमि के आदि में प्रधान पुरुषों द्वारा मानी गई है। दूसरा हिन्दू सनातन-धर्मानुसार यह कि पद्मकाल में श्री विष्णु भगवान ने शेष-शय्या पर शयन किया, तब उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ और कमल में ब्रह्मा उत्पन्न हुए और ईश्वरीय लीला से विष्णु के दोनों कान की मैल से मधु-कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए और ब्रह्मा को मारने दौड़े। ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की, पश्चात् विष्णु की आज्ञा से ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की, इत्यादि और यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय पुरुषसूक्त में परमात्मा के मुख, बाहु, जङ्घा और चरणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की उत्पत्ति लिखी है।

हिन्दू पुराणों के अनुसार भगवान श्रीरामचन्द्र के दो पुत्रों में से लव की उत्पत्ति श्री सीता जी से और कुश की उत्पत्ति भिन्न प्रकार से बतलाई है। इसी प्रकार पाण्डवों में कर्ण कान से, कौरव बांस के छेद से और परमार, परिहार, चौहान और सोलंकी अग्निकुण्ड से इत्यादि विधान कदाचित् पुराने समय के श्रद्धालु मनुष्य मान लेते होंगे, किन्तु वर्त्तमान समय में जब कि ऐतिहासिक प्रकाश दिनों दिन बढ़ रहा है ऐसे समय के विद्वान लोग सृष्टि-नियम के विरुद्ध विधान में विश्वास करें, यह असम्भव है।

हिन्दू धर्म में परशुराम अवतार की मान्यता ने तो क्षत्रियों के अस्तित्व पर इतना बुरा प्रभाव डाला है कि आज सच्चे क्षत्रियों को भी क्षत्रिय कहना दुस्तर हो रहा है और इस परशुराम की कथा के आधार पर ही वर्त्तमान समय में कई जातियें अनुचित लाभ उठा कर क्षत्रिय बनने की धुन में लगी हुई हैं। अतएव हमारे क्षत्रिय भ्राताओं को भारतवर्ष के प्रधान और प्राचीन धर्मों में से

एक जैनधर्म की बातों पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिये।

यद्यपि वर्त्तमान समय में जैनधर्म के अनुयायी वैश्य ही अधिक हैं, किन्तु क्षत्रियों का भी सर्वथा अभाव नहीं है। यह तो काल-दोष का प्रभाव है कि किसी समय किसी धर्म में जाति-विशेष का बाहुल्य हो जाता है तथापि जैन-धर्म में तो प्रधानता क्षत्रियों की ही है; क्योंकि जैन-धर्म में क्षत्रियों ने ही अधिकता से कर्मों का नाश करके ईश्वर पद को प्राप्त किया है और जैनधर्म के जो भी प्रधान पद (त्रिशष्ठिशलाका पुरुष) निर्यमित हैं वह केवल मात्र क्षत्रियों के लिये ही रक्षित (Reserved) हैं, उनमें क्षत्रिय वर्ण को छोड़ कर इतर वर्ण वाले का प्रवेश ही नहीं हो सकता। जैनधर्म के महान् उपदेष्टा (तीर्थङ्कर) जो प्रत्येक कल्पकाल में २४ होते हैं, वे सब क्षत्रिय वर्ण को ही सुशोभित करने वाले होते हैं। संक्षेप में यह कि जैनधर्म क्षत्रियों द्वारा ही उपदेश किया हुआ और प्रचारित धर्म है, अपितु दूसरे शब्दों में जैनधर्म विशेषतया क्षत्रिय धर्म है। इसमें जैनधर्म में क्षत्रियों की कितनी प्रधानता है, इसको सिद्ध करने के लिये किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

संसार—

[ले०—श्री० नाथूरामजी डोंगरीय जैन न्यायतीर्थ, मुंगावली]

[१]

जहां विनश्वरता का प्रति क्षण,
नर्तन होता रहता है।
और काल अनवरत अलापें,
अपनी भरता रहता है॥

[२]

सुन्दर तानें स्वार्थियों की—
सतत छिड़ी ही रहती है।
आशाएँ अन्तस्थल में आ—
समा बांधती रहती हैं॥

[३]

कभी निराशा आकर के यदि—
रंग भंग कर देती है।
माया मुस्काकर महफिल में—
रंग जमा तब लेती है॥

[४]

जीवन मरणादिक से चित्रित—
परदे उठते गिरते हैं।
इन परदों की ओट जगत जन,
नित नव अभिनय करते हैं॥

[५]

विषय वासना जन नट वर के,
नाना रूप बदलती है।
डट कर गट गट पल पल भर में,
मोह वारुणी ढलती है॥

[६]

इसी रंग भू को कह लेते,
लोग परस्पर में संसार।
किन्तु कदाचित् कचित् किसीको,
इसमें किंचित् मिला न सार॥
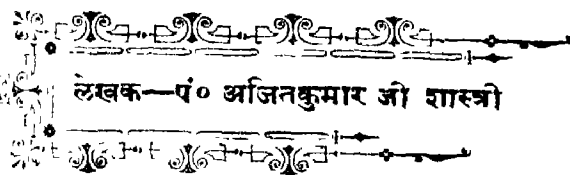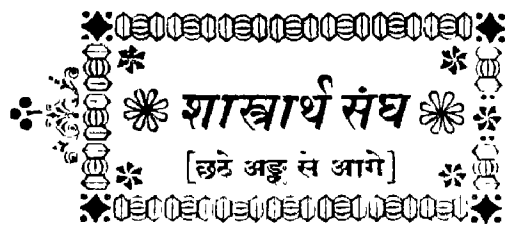
[५]

पानीपत शास्त्रार्थ

अंतिम दिन आर्यसमाजने यजुर्वेद २१ वें अध्याय के ४३ वें मन्त्र के दयानन्दभाष्य को सत्य सिद्ध करने के लिये एक अद्‌भुत चेष्टा की। आर्य-समाज के कुछ महाशय एक बकरा अपने साथ यह दिखानेको लेते आये कि वह दूध देताहै जिससे कि जनता पर प्रभाव डाला जा सके कि उपर्युक्त मंत्र में जो बकरे का दूध लिखा है वह असम्भव बात नहीं।

शास्त्रार्थ समाप्त हो जाने पर बकरे के अंड कोषों के स्थान से दूध निकाल कर दिखाने की चेष्टाकी गई, किन्तु व्यर्थ हुई, दूध चुल्लू भर तो दूर किन्तु ४-६ बूंद भी दूध नहीं निकला। आये हुए प्रतिष्ठित मुसलमानों ने कहा कि यह बकरा यदि सचमुच दूध देता है तो इसको २-४ दिन हमारे पास रक्खो, ठीक बात मालूम हो जायगी। किन्तु आर्यसमाजी भाइयों ने वह उसी समय कहाँ से कहाँ कर दिया, किसी को पता न चला। इस बात से बहुत हंसी हुई।

पांचवें दिन उसी स्थान पर जैनसमाजकी ओर से एक सभा हुई जिसमें आये हुए विद्वानों के व्याख्यान हुए और अन्त में पानीपत जैन पंचायत ने विजय के उपलक्ष में श्रीमान् पं० राजेन्द्रकुमार जी को एक सुवर्णपदक भेंट किया, किन्तु पं० राजेन्द्रकुमार जी ने अनेक आग्रह होने पर भी स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ अच्छी शान से समाप्त हुआ।

खतौली-शास्त्रार्थ

इसी गत चैत्र मास में महावीर जयन्ती के समय खतौली में श्रीमान् चौधरी धर्मचन्द्र जी के कई आम व्याख्यान हुए थे, जिनमें प्रसंगवश ईश्वर सृष्टिकर्तृत्व का खंडन, वेद ईश्वरीयग्रन्थ नहीं हैं इत्यादि विषय आगये थे। ये व्याख्यान स्थानीय आर्यसमाजको अच्छे न लगे। इस कारण उसने जैन पंचायत को शास्त्रार्थ के लिये चैलेंज दे दिया। चैलेंज जैन पंचायतने स्वीकार कर लिया।

विषय ईश्वर जगतकर्ता है या नहीं? तथा वेद ईश्वरीय ग्रन्थ है या नहीं? ये दो निश्चित हुए और समय ता० १ मई से ४ मई तक रात्रि को ८ बजे से ११ बजे तक नियत हुआ।

इस अवसर पर बाहर से श्रीमान ब्र० गणेशप्रसाद जी वर्णी, बाबा भागीरथ जी वर्णी, ब्र० दीपचन्द्र जी वर्णी, ब्र० गंगाप्रसाद जी, ब्र० मूलचन्द्र जी, अन्य भी ३-४ त्यागी महानुभाव, श्रीमान पं० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य, श्रीमान ला० दुलासराय जी रईस, दयासिन्धु भगत जयचन्द्र जी, पं० तुलसीराम जी, पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य,

पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ, चौ० धर्मचन्द्र जी, पं० मक्खनलाल जी देहली, पं० निद्धामल जी, पं० जयचन्द्र जी, साहू रघुनन्दनप्रसाद जी, ला० शिब्बामल जी, वैद्य विद्याविशारद पं० मंगलसेनजी, ला० मुक्खामल जी आदि महानुभाव पधारे थे।

आर्यसमाज की ओर से स्वामी कर्मानन्द जी, पं० देवेन्द्रनाथ जी, पं० रामचन्द्र जी देहलवी, महाशय जियालाल जी आगरा पधारे थे।

प्रथम दिन इधर से पं० राजेन्द्रकुमार जी, उधर से स्वामी कर्मानन्द जी शास्त्रार्थ के लिये उठे। विषय ईश्वरसृष्टि कर्तृत्व का था। स्वामी जी के सामने प्रश्न रक्खा गया कि सृष्टि के पहले समस्त संसार की प्रलय दशा सिद्ध कीजिये तथा गर्भज जीवों का बिना माता पिता या नर-मादा के उत्पत्ति सिद्ध करें। अनेक प्रयत्न होने पर भी स्वामी जी से वह सिद्ध न हो सका। ईश्वर को कर्मफलदाता सिद्ध करते हुए स्वामी जी ने कर्म का लक्षण कहा, वह गलत था, उसी को जब उन्होंने लिखकर दिया तो उसमें ५ अशुद्धियाँ थीं।

दूसरे दिन दूसरे विषय पर इधर से पंडित राजेन्द्रकुमार जी, आर्यसमाज की ओर से पं० देवेन्द्रनाथ जी बोले। पं० राजेन्द्रकुमार जी ने वेदों में असंभव अश्लील, व्यर्थ, ऊटपटांग बातों का विधान बतलाया—हिंसाविधान भी दिखलाया। पंडित देवेन्द्रनाथ जी उनका उचित समाधान न कर सके।

तीसरे दिन पं० राजेन्द्रकुमार जी का स्वर बैठ गया था, इस कारण इधर से चौ० धर्मचन्द्र जी बोले, आर्यसमाजकी ओर से पं० रामचन्द्रजी बोले। चौधरी जी ने साइन्स द्वारा सिद्ध किया कि रैडियम धातु का सदा प्रचुर परिमाण में अस्तित्व रहेगा, उसके रहते हुए गर्मी कम न होने से संसार का कभी विनाश नहीं होगा जिससे कि प्रलय तथा फिर सृष्टि होना संभव हो। और भी अनेक अकाट्य युक्तियों से अपना पक्ष सिद्ध किया।

चौथे दिन इधर से पं० राजेन्द्रकुमार जी, उधर से स्वामी कर्मानन्द जी बोले। इस दिन शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने के कुछ समय पीछे ही पौन घंटे तक ज़ोर से जलवर्षा हुई जिससे साधारण श्रोताओं की भीड़ तो कम हो गई किन्तु वक्ता तथा गणनीय श्रोता नहीं हटे। वर्षा समाप्त हो जाने पर फिर शास्त्रार्थ हुआ और बहुत सफलतासे समाप्त हुआ।

इस शास्त्रार्थ से आर्यसमाज का अपनी निर्बलता और जैनसमाज की प्रबलता का अनुभव हो गया। इन ही दिनों में से शास्त्रार्थ के तीसरे दिन प्रातःकाल के अवसर पर शास्त्रार्थ संघकी मीटिंगमें रक्षाबन्धन तक जैनदर्शन नामक पाक्षिक पत्र निकालने का निश्चय हुआ तथा चौथे दिन की मीटिंग में श्रीमान ब्र० गणेशप्रसाद जी ने अपनी प्रतिज्ञा प्रगट की कि हम एक जैन कालेज स्थापित करेंगे। इस प्रकार खतौली शास्त्रार्थ भी बड़ी सफलता से समाप्त हुआ।

---
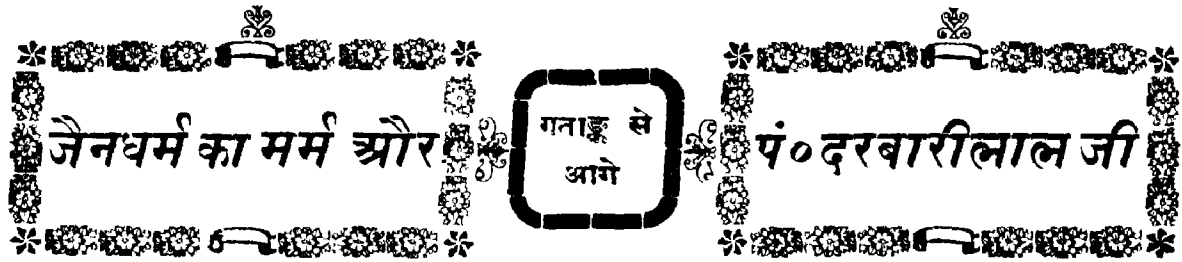
[८]

युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना ।

इसके सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने एक निम्नलिखित प्रश्न भी उपस्थित किया है :—

"एक केवली का ज्ञान दूसरे केवली के ज्ञान को जान सक्ता है या नहीं? यदि नहीं जानता तो सर्वज्ञ कैसा? यदि जानता है तो ज्ञाता केवली का ज्ञान दूसरे केवली से बड़ा कहलाया, तभी तो दूसरे केवली का ज्ञान ज्ञाता केवली के ज्ञानके भीतर आ गया। इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट ज्ञानियों में भी तरतमता हुई, इससे उनकी सर्वोत्कृष्टता नष्ट होगई"।

एक सर्वज्ञ का ज्ञान दूसरे सर्वज्ञ के ज्ञान को जानता है, इसका यह मतलब नहीं कि उसके जानने वाले की भी उसके जानने में उतनी ही शक्ति उपयोग में आती है जितनी कि उसकी अपने ज्ञेयोंके जाननेमें। दर्पण ही है—इसमें अनेक पदार्थ प्रतिविम्बित हो रहे हैं, किन्तु इसके जानने के लिए उतनी शक्ति की आवश्यक्ता नहीं जितनी कि उन पदार्थों को प्रथक २ जानने में आवश्यक होती!

जिस प्रकार अनेक पदार्थों को प्रतिविम्बित करना दर्पण का एक स्वभाव है और उस स्वभाव के अनुसार कार्यान्वित दर्पण को जानना एक पदार्थ का जानना है, उसही प्रकार सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करना पूर्ण शुद्ध ज्ञानका एक स्वभाव है और इस स्वभाव के अनुसार कार्यान्वित ज्ञानको जानना एक पदार्थ का जानना है।

आत्मा में दो स्वतंत्र गुण हैं—एक जानने का जिसको चेतना कहते हैं दूसरा जाने जाने का जिस को प्रमेयत्व कहते हैं। जबकि आत्मा पहिले गुणसे जानता है तभी वह दूसरे गुण से जाना जाता है!

स्पष्टता के लिए इसही को यों समझियेगा! दो इञ्जिन हैं, जिनमें सोलह २ घोड़ों की शक्ति है और चालीस २ मील प्रति घन्टा के हिसाब से चल सक्ते हैं! इनही में से एक को यदि ट्रेन के अन्य डिब्बोंके साथ साथ जोड़ दिया जाता है और दूसरा इसको खींच ले जाता है तो क्या दूसरे को इसके खींचने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगानी पड़ती है? यदि ऐसाही स्वीकार करलें तब भी यह न खिचना चाहिए, क्योंकि इसकी शक्ति भी तो उतनी ही है जितनी कि खेंचनेवाले कीऔर यदि इसका खिचना भी मानलें तो भी इसके साथके दूसरे डिब्बों का खिचना तो बिलकुल ही असंभव होजाता है, किन्तु इस प्रकार की बातें प्रतिदिन हुआ करती हैं!

दोनों इञ्जिनों में जहां खींचने की शक्ति है वहीं खिचने की भी। खींचते समय उसकी खींचने की

शक्ति प्रयोग में आती है और खिंचते समय खिंचने की !

जहां कि इन दोनों इञ्जिनों में सोलह घोड़ों की या सोलह डिब्बों के खींचने की शक्ति है वहीं स्वयम् के खिंचने की। अतः एक इञ्जिन दूसरे को खींच लेता है और फिर भी उसकी खींचने को शक्ति बाकी रह जाती है जिसके कि द्वारा वह अन्य डिब्बों को खींचता है।

यदि खिंचते समय भी खींचने की ही शक्ति उपयोग में आती होती तब तो एक इञ्जिन का दूसरे के द्वारा खिंचना असंभव हो जाता या एक के बल को दूसरे के बलसे कम मानना पड़ता !

ठीक ऐसी ही बात सर्वज्ञों के ज्ञानों के सम्बन्ध में है ! जब एक सर्वज्ञ दूसरे सर्वज्ञ के ज्ञान को जानताहै उस समय उन दोनों की भिन्न २ शक्तियाँ प्रयोग में आती हैं। पहिले की जानने की तो दूसरे की जाने जाने की। जहां कि इनमें अनन्त पदार्थों को जानने की शक्ति है वहीं केवल स्वयम् के जाने जाने की। अतः जब एक सर्वज्ञ दूसरे सर्वज्ञको जानता है तब उसकी उतनी ही शक्ति प्रयोग में आती है नकि सम्पूर्ण। अतः वह उसही समय अन्य पदार्थों को भी जानता रहता है।

यदि जाने जाते समय भी जाने जाने के लिए जानने की ही शक्ति उपयोग में आती तब तो यह कहा जा सक्ता था, कि एक सर्वज्ञ दूसरे सर्वज्ञ को नहीं जान सक्ता, क्योंकि दोनों की शक्तियाँ तुल्य हैं और यदि जानता है तो उनकी शक्तियों में विषमता है !

इससे स्पष्ट है कि एक सर्वज्ञ का दूसरे सर्वज्ञ के ज्ञान को जानना केवल एक ज्ञेय का जानना है और ऐसी अवस्था में जहाँ जानने वाले सर्वज्ञ का ज्ञान गुण प्रयोग में आता है वहीं जाने जाने वाले का प्रमेयत्वगुण !

एक सर्वज्ञ का दूसरे सर्वज्ञ के ज्ञान को जानना केवल एक ज्ञेय का जानना है, इस बात के स्वीकार कर लेने पर तो असमानता की बात ही उपस्थित नहीं होती। इसको यों घटित किया जा सक्ता है कि समान सम्पत्ति वाले एकसौ व्यक्ति हैं और सब ही एक २ रुपया प्रत्येक को देते हैं। ऐसी अवस्था में प्रत्येक को ९९ ही देना पड़ेंगे और ९९ ही उस को मिलेंगे। देने और लेने की एक संख्या होने से उनकी सम्पत्ति में अन्तर आने की संभावना ही नहीं।

ठीक ऐसी ही बात सर्वज्ञों के सम्बन्ध में है। जितने भी सर्वज्ञ हैं वे सब एक दूसरे के ज्ञानों को जानते हैं अतः उनके ज्ञानों में भी न्यूनाधिकता की संभावना नहीं। अतः इसके आधारसे दूसरे सर्वज्ञ के ज्ञान में पहिले सर्वज्ञ के ज्ञान की दृष्टि से छोटा पन नहीं माना जा सक्ता।

इससे स्पष्ट है कि इस प्रश्न से भी दरबारी लाल जी का मनोरथ सिद्ध नहीं होता।

चौथी युक्ति की समीक्षा के प्रकरण में दरबारी लाल जी ने तीसरी बात यह बतलाई है कि जितना ज्ञान रहता है उतना कार्य नहीं होता। आपने अपनी इस बात के समर्थन में ज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेदों की न्यूनाधिकता को उपस्थित किया है! आपका कहना है कि ज्ञानमें जिस प्रकार अविभागी प्रतिच्छेदों की संख्या बढ़ती जाती है उसही प्रकार उसके ज्ञेयों की संख्या में वृद्धि नहीं होती।

ज्ञान में अविभागी प्रतिच्छेदों का अस्तित्व उस

के अविभागी अंशों की दृष्टि से है न कि ज्ञेय की दृष्टि से ! अतः अविभागी अंशों की न्यूनाधिकता से ही ज्ञान में अविभागी प्रतिच्छेदों की वृद्धि होती है।

कहने का मतलब यह है कि ज्यों २ ज्ञानावर्णी कर्म का अभाव होता है त्यों त्यों ज्ञान का अधिकाधिक प्रकाश होता है। जितने २ अधिक अंशों का प्रकाश होता है उतने २ ही अविभागी प्रतिच्छेदों की वृद्धि होती है।

ज्ञान में अविभागी प्रतिच्छेदों का अस्तित्व यदि अविभागी अंशों की बजाय ज्ञेयों की दृष्टि से होता तब तो अविभागी प्रतिच्छेदों की वृद्धि के साथ ही साथ तदनुरूप ही ज्ञेयों की वृद्धि भी अनिवार्य थी, किन्तु ऐसा है नहीं। अतः एक निगोदिया जीव के ज्ञान में अनन्त अविभागी प्रतिच्छेदों के रहते हुए भी यदि वह अनन्त पदार्थों को नहीं जानता तो इसमें हानि की कौनसी बात है ?

यही बात दूसरे निगोदिया और अन्य ज्ञानधारियों के सम्बन्ध में है ! अतः इसके आधार से यह नहीं कहा जा सकता कि जितना ज्ञान रहता है उतना कार्य नहीं होता !

यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि प्राणी के चारों तरफ एक विद्युत तेज (human electricity or magetism) रहता है और ज्यों २ उसके विचारों में अन्तर होता रहता है त्यों २ उस विद्युत तेज के रंग में भी परिवर्तन हो जाता है। इस बात का परीक्षण अमेरिका में सन १९२९ में हो चुका है। इससे स्पष्ट है कि विचारों के परिवर्तन के अनुरूप ही बाह्य परिवर्तन भी होता है। अतः दरबारीलाल जी का यह कहना कि जितनी गुणी कषाय होती है उतने गुणा उसका बाहिरी असर नहीं होता समुचित प्रतीत नहीं होता, अतः कषाय का दृष्टान्त भी ज्ञान के सम्बन्ध में उपयुक्त नहीं।

जिस आत्मा में जितना ज्ञान रहता है वह तदनुसार पदार्थों को जान सकता है और बड़े २ ज्ञानी छोटे २ ज्ञानियों की बातों को जान सकते हैं। इन दोनों बातों के निर्णय से तीसरी बात का निर्णय याने तरतमता से जो सबसे बड़ा ज्ञान सिद्ध होता है वह अनन्त है या नहीं स्वयम् हो जाता है!

थोड़ी देर के लिये हमको दरबारीलाल जी के ही शब्दों में रख लीजियेगा और सबसे बड़ा ही ज्ञान कहिये। तब भी तो यह सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञाता ही ठहरता है, क्योंकि इससे छोटे ज्ञानों के ज्ञेयों का जानना भी तो इसकी शक्ति के बाहर की बात नहीं है और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसको कोई भी न जानता हो ! इस बात का विशेष खुलासा हम अपने पिछले लेख में कर चुके हैं ! इस प्रकार यह सबसे बड़ा ज्ञान भी जगत के सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञाता ही ठहरता है।

दूसरी बात यह है कि तरतमता से सिद्ध होने वाले सब से बड़े की व्याप्ति यदि अनन्त के साथ नहीं है तो सान्त के साथ भी नहीं है। जिसप्रकार कि तरतमता से सिद्ध होने वाली सब से बड़ी वस्तुएं सान्त भी हैं उसही प्रकार अनन्त भी। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, स्वयम् दरबारीलालजी ने इसी स्थान में आकाश को अनन्त स्वीकार किया है। ऐसी अवस्था में ज्ञान को सब से बड़ा मानकर भी यदि इसही व्याप्ति के आधार से

उसको अनन्त सिद्ध नहीं किया जासका तो इसही के आधार से उसकी अनन्तता का निराकरण भी नहीं किया जासका।

ज्ञानों में तरतमता उनकी व्यक्ति की दृष्टि से है न कि उनकी शक्ति की दृष्टि से। शक्ति की दृष्टि से तो सब ही ज्ञान तुल्य हैं। दरबारीलाल जी ने भी अभी तक इसके सम्बन्ध में कोई आपत्ति उपस्थित नहीं की है।

व्यक्ति शक्ति के अनुरूप ही हुआ करती है। यह एक सर्वतन्त्र सिद्धान्त है! ज्ञान की शक्ति अनन्त है, अतः व्यक्ति की दृष्टि से सब से बड़ा ज्ञान भी अनन्त ही होगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस युक्ति के (चौथी के) सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने जितनी भी बाधायें उपस्थित की थीं वे सब निराधार हैं, अतः प्रस्तुत युक्ति युक्ति ही है न कि युक्त्याभास!

[अपूर्ण]

भुज्यमान आयु में उत्कर्षण और अपकर्षण।

[लेखक—न्यायतीर्थ पं० महेन्द्रकुमार जी शास्त्री न्यायाध्यापक स्या० वि० काशी]

जैनदर्शन अङ्क पांच में शीर्षोक्त विषय पर पं० वंशीधर व्याकरणाचार्य का मननीय लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें विज्ञ लेखकने भुज्यमान सम्पूर्ण आयुओं में उत्कर्षण और अपकर्षण करण होसकते हैं ऐसा अपना विचार प्रगट किया है।

हम लेखक के विचारों से सहमत हैं किन्तु पाठकों को कुछ भ्रम हो सकने की सम्भावना से उत्कर्षण और अपकर्षण के विषय में दो शब्द लिखना आवश्यक समझते हैं।

भुज्यमान आयु में उत्कर्षण इस शब्द को सुनते ही साधारण रूप से यह ख्याल होता है कि आयु बढ़ जाती है लेकिन उत्कर्षण के निम्न लक्षण पर विचार करने से यह धारणा भ्रान्त ठहरती है :—

"बहुरि स्थिति अनुभाग के बँधना ताका नाम उत्कर्षण है, तहां स्तोक काल में उदय आवने योग्य जे नीचे के निषेक तिनके परमाणुनि बहुत काल में उदय आवने योग्य जे ऊपर के निषेक तिन विषैं मिलें, ऐसे स्तोक स्थिति का बहुत स्थिति होने का नाम स्थिति उत्कर्षण है। (लब्धिसार पृष्ठ १२)

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि मौजूदा निषेकों में ही पूर्व में उदय आने योग्य निषेकों का पीछे उदय आने वाले निषेकों के साथ उदय आना उत्कर्षण कहलाता है। कल्पना कीजिये आयुके सौ निषेक हैं, तो उत्कर्षण होने पर एक नं० के निषेक का कुछ द्रव्य अधिक से अधिक १०० वे निषेक के साथ उदय में आसकेगा। इसे उस द्रव्य का उत्कर्षण कहा जायगा। लेकिन उत्कर्षण हुये निषेकों द्वारा कभी भी १०१ वां निषेक तय्यार नहीं हो सकता।

आयु का बंध त्रिभाग में होता है तथा आबाधा भी भुज्यमान आयु प्रमाण होती है, इसलिये आयु कर्म में नया निषेक तय्यार नहीं हो सका। अतः उत्कर्षण होने पर भी आयु की वृद्धि नहीं होसकी।

* आर्यसमाज प्रश्नोत्तरमाला *

वेदार्थ विषय में समाधान का उत्तर !

[ले०—वेदविद्याविशारद पं० मंगलसैन जी]

[छठे अङ्क से आगे]

महाशय जी ! यजुर्वेद के पुरुषसूक्त मंत्रों में एक तरफ़ तो पुरुषमेधयज्ञ का वर्णन और दूसरी तरफ बाजीगर की भांति सृष्टि का उत्पन्न होना लिखा है और जबकि यज्ञ द्वारा पशुओं की सृष्टि होना सिद्ध है तब यज्ञ की सिद्धि भी बिना पशुओं के नहीं हो सकी। इसी बात को अब जरा ध्यान देकर पढ़िये; देखिये यजुर्वेद अध्याय ३१ मंत्र ८ में इस प्रकार लिखा है—

(मंत्रः)

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।

—यजुः ३१-८

ॐ तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः। निच्युदा र्प्यनुष्टुप छन्दः । पुरुषो देवता । स्तुति करणे विनियोगः।

(पदार्थः)—(तस्मात्) उस (यज्ञात) यज्ञ पुरुष से (अश्वाः) घोड़े (अजायन्त) उत्पन्न हुए (च) और (ये) जो (के) कोई घोड़ों से भिन्न गर्दभादि तथा (उभयादतः) ऊपर नीचे के दांतों से युक्त उत्पन्न हुए (ह) प्रसिद्ध है कि (तस्मात्) उस यज्ञ पुरुष से (गावः) गौएं (जज्ञिरे) उत्पन्न हुईं (तस्मात्) उससे (अजावयः) भेड़ बकरी (जाताः) उत्पन्न हुई।

इसी मंत्र का अर्थ काशी हस्तलिखित पुस्तक में इस प्रकार लिखा है कि—तस्मादश्वाः। तस्मात् पुरुषमेधात् अश्वाः अजायन्त इत्यादर्थम्। ये के च उभयादत। उभयदन्तयुक्ताइत्यनेनैव ग्रहणात्। ह स्फुटं गावस्तस्माज्जज्ञिरे अजा अवयश्च तस्मात्-जाताः। नहि पशुभिर्विना यज्ञसिध्यति सृष्टिः स यज्ञोह्यसाविति—इति काशी भाष्यम्।

नहि पशुभिर्विना यज्ञः सिध्येत्-इति उवटभाष्यं
नहि पशुभिर्विना यज्ञः सिध्येत्-इति महीधरभाष्यं
पशुओं के बिना यज्ञ सिद्ध नहीं होता—इति गिरधर भाष्यं।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यज्ञ की सिद्धि बिना पशुओं के नहीं होती और इसी मंत्र

[पृष्ठ २२४ का शेष मैटर]

देव या नरक आयुकी उदीर्णा भी इसी तरह सम्भव हो सकती है, कि १०० वें निषेक का कुछ द्रव्य अपकृष्ट होकर उदय आने वाले निषेक के साथ उदय में आजाये, लेकिन १०० वें निषेक का मूलोच्छेद कदापि नहीं हो सका, ऐसा मूलोच्छेद बाह्य निमित्त से ही सम्भव है। अतः उत्कर्षण, अपकर्षण करण होने पर भी देवायु और नरकायु के न हानि होती है और न वृद्धि।

के आधार से मनुस्मृति अध्याय ५ में इस प्रकार लिखा है कि—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टा स्वयमेव स्वयंभुवा
यज्ञस्यभूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञेवधोऽवधः ।
५—३९ मनु०

यज्ञ की सिद्धि के लिये प्रजापति ने आप ही पशु उत्पन्न किये हैं और यज्ञ कहिये अग्नि में डाली हुई आहुति इस सब जगत की वृद्धि के लिये होती है तिससे यज्ञ में जो पशुका वध है वह अवध अर्थात् हिंसा नहीं है ।

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः'५-४०

औषधि पशु वृक्ष और पक्षी यज्ञ के लिये नाश को प्राप्त हुए फिर दूसरा जन्म होने पर ऊँची गति में उत्पन्न होते हैं; इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि यज्ञ के द्वारा पशुओं की उत्पत्ति होती है और पशुओं के द्वारा ही यज्ञ की सिद्धी होती है। और जो पशु मंत्र द्वारा प्रोक्षण पूर्वक यज्ञ में मारा जाता है उसे मरते समय थोड़ा सा दुःख तो होता है परन्तु वह पशु देवयान मार्ग से जाता है और सविता अर्थात् सूर्यदेवता उस मरे हुए पशु को स्वर्ग में स्थापन कर देता है—इसी बात को स्पष्ट करने के लिये दो मन्त्रों को उद्धृत करते हैं; ज़रा इन्हें ध्यान से पढ़िये—

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं-
जुषस्व महिमातेऽन्येन न संनशे । यजु० २३-१५

ॐ स्वयमित्यस्य प्रजापति ऋषिः । आर्चीपंक्ति-छन्दः । अश्वोदेवता । अश्व प्रोक्षणे विनियोगः ।

पदार्थः—(वाजिन) हे अश्व ! (स्वयं) अपने (तन्वं) शरीर को (कल्पयस्व) कल्पना कर अर्थात् यथायोग्य यथेच्छ कल्पना कर—स्वयंरूपं कुरुस्व यादृशमिच्छति—१३ । २ । ७ । ११ इतिश्रुतिः । (स्वयं) आप ही (यजस्व) यजन कर अर्थात् तुम्हारा और यजन करने वाला नहीं तुम स्वयं ही यजनकर्त्ता हो (स्वयं) स्वयं ही (जुषस्व) अपने इष्ट स्थान को सेवन करो (ते) तुम्हारी (महिमा) महिमा (अन्येन) दूसरे की महिमा से (न) नहीं (सन्नशे) नष्ट होती है ।

न वा उ एतन्म्रियसे न न रिष्यसि देवां इदेषि
पथि भिः सुगेभिः । यत्रासते सुकृतोयत्र
तेययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ।
—यजुः २३—१६

ॐ नवा उइत्यस्यप्रजापति ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । अश्वोदेवता । अश्व प्रोक्षणेविनियोगः ।

पदार्थः—(एतत्) यह अश्व (वै) निश्चयकर (न) नहीं (म्रियसे) मरता है (उ) और (न) नहीं (रिष्यसि) विनष्ट होते हैं किन्तु (सुगेभिः) श्रेष्ठ गमन वाले (पथिभिः) देवयानमार्गोसे (देवान) देवताओं के (इत) प्रति (एषि) गमन करते हैं (यत्र) जिस स्थान में (सुकृतः) पुण्यात्माजन (आसते) स्थित होते हैं (यत्र) जहां (ते) वे पुण्य करने वाले (ययु) गये हैं (तत्र) वहां (सविता) सबका प्रेरक (देवता) देवता (त्वा) तुमको (दधातु) स्थापन करें—सवितै वैनं स्वर्गे लोके दधाति—१३-२-७-१२ इतिश्रुतेः । भावार्थ इस स्थान में अश्व का शरीर त्यागना मरण नहीं है किन्तु स्वर्ग गमन है और जो शरीर त्याग अनेक जन्म लेते हैं वही मरण है और स्वर्ग की प्राप्ति ही परम लाभ है—यह मरण नहीं है; इत्यादि प्रमाणोंसे वेदों में हिंसा का विधान सिद्ध होता है और जब

कि वेदों में हिंसा का विधान सिद्ध है तब वेदोंका कर्त्ता ईश्वर दयालु वा कृपालु कदापि नहीं हो सक्ता और जो सृष्टिका संहार वा महाप्रलयका कर्त्ता है वह स्वयं हिंसक होनेसे ईश्वर कदापि नहीं होसक्ता है।

आर्य्यसमाजी विद्वान् अहिंसा धर्म की सिद्धी के लिये स्वामी दयानन्दजी का वेद भाष्य उपस्थित किया करते हैं और कहते हैं कि वेदों में हिंसा का विधान कदापि नहीं है, परन्तु जिसको उपस्थित करते हैं वह वेद भाष्य स्वामीजी की लिखित प्रतिज्ञा वा वेदों के सर्वथा विरुद्ध है। इसलिये जब तक आर्य्यसमाजी विद्वान् स्वामीजी की लिखित प्रतिज्ञा वा वेदों के अनुकूल वेदभाष्य को सिद्ध न कर दें तब तक यह नहीं कह सक्ते कि वेदों में हिंसा का विधान नहीं है।

आगे लिखा है कि जब आप हिंसा सिद्ध करने का साहस करेंगे तब हम उनको कपोल कल्पना भी वहीं बतला देंगे—इत्यादि। महाशयजी! वेदोक्त हिंसा विषय में आप हमारा साहस क्या देखेंगे, क्योंकि स्वामी दयानन्दजी की जितनी भी कल्पनायें हैं उनके लिये आज कोई भी ऋषि वा आचार्य्य की साक्षी नहीं है और जिसका वेदभाष्य स्वयं ही प्रतिज्ञा वा वेदों के विरुद्ध है उसको आप प्रमाणों सहित सत्य किस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं और प्रथम बार का असली सत्यार्थप्रकाश तो स्वामी दयानन्द जी की दया को स्वयं सार्थक सिद्ध कर रहा है जिसके कुछ प्रमाण हम "वास्तव में स्वामी दयानन्दजी कौन थे" इस शीर्षक लेख में लिख भी चुके हैं—और विशेष आपकी इच्छा होगी तो फिर भी असली सत्यार्थप्रकाश मोहरदार के कुछ प्रमाण लिख कर उपस्थित करदेंगे—इस लिए हिंसा विषय में साहस वा हमारी कल्पनायें जब आपकी इच्छा हो देख सकते हैं।

इस हेडिंग के अन्तर्गत आपके स्वास्थ्य को लाभ पहुंचाने वाली बातें, लेख, अनुभूत नुसखे, आदि रहा करेंगे। यदि "दर्शन" के ग्राहक अपने किसी भी रोग के सम्बन्ध में

कोई प्रश्न छपवाना चाहेंगे तो वह बिना मूल्य ही इसमें छाप कर उसका उत्तर भी इसी हेडिंग के अन्तर्गत शीघ्र से शीघ्र मंगा कर छापने का यत्न किया जायगा। —सम्पादक

खाँसी पर अनुभूत

(१) काली मिर्च १ तो०, पीपल १ तो०, जवाखार ६ माशे, अनार की छाल २ तोले; इनका चूर्ण कर आठ तोले पुराना गुड़ मिला चार चार माशे की गोली बनाकर मुख में रक्खे तो इसके प्रभाव से सब प्रकार की खांसी नष्ट होवे।

(२) सोंठ, काली मिरच, पीपल, अमलवेत, चव्यतालीस पत्र, चित्रक, जीरा, इमली की छाल इन को एक एक तोले प्रमाण लेवे और दालचीनी, इलायची बड़ी, तेजपात, यह तीन औषधि चार चार माशे लेवे। इन सब का चूर्ण बना २० तोले पुराने गुड़ में ४-४ माशे की गोली बनावे। यह गुटका पीनस, स्वास, खांसी इनको नष्ट करती है रुचि और स्वर को उत्पन्न करती है अर्थात् कंठ को साफ़ करती है और ज्वर स्वास को नष्ट करती है।

—हरस्वरूप शर्मा वैद्य बिजनौर

मलेरिया पर अनुभूत

उत्तम कुनैन ढाई तोला, भुनी हुई फिटकरी ढाई तोला, करंजवा के बीजों का महीन चूर्ण पाव तोला; इन तीनों को एक साथ पानी के साथ में घोंट कर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। जिस समय बुखार न हो तीन तीन घंटे के अन्तर से दो २ गोली खिलावें—बुखार न आवेगा। रोगी को पेट अवश्य साफ़ रखना चाहिये। —वीरेन्द्रकुमार।

कान के दर्द पर अनुभूत

मूली का अर्क कान में डालने से दर्द फ़ौरन बन्द हो जाता है।

प्रश्न नं० ४

मेरी छाती में २॥ साल से दर्द है वैद्यों ने उसको वायु और कमज़ोरी से बतलाया है, इसलिये इनमें से पहिले किसका इलाज करना चाहिये और उसकी दवा क्या है और इसका निदान क्या है?

—एक जिज्ञासु।

जैनदर्शन पर लोकमत !

श्रीमान पं० जवाहरलालजी शास्त्री जयपुर, भूतपूर्व संपादक जैनगज़ट तथा जैनरत्नमाला आदि लिखते हैं कि—

"दर्शन के दर्शन से दर्शन पर चित्ताकर्षण हुआ, मर्षणपूर्वक लिखा जाता है कि यह युक्तियों के संघर्षण से जगत् को कुयुक्तियों का घर्षण कर जैनजगत् का जगत के चंक्रमण से रक्षण करेगा तथा धार्मिक जैनजगत् को सत्यघोषण द्वारा मिथ्यादर्शन के स्पर्शन से बचा सम्यग्दर्शन के पोषण से दर्शन मोहनीय का शोषण करने में समर्थ होगा।"

* समाचार-संग्रह *

भूल संशोधन !

(१) इसी अंक के मुख पृष्ठ पर छपे हुए वीर सं० २४५९ की जगह वीर संवत् २४६० पढ़ें।

(२) गत अङ्कमें आरोग्य-भवनमें बिच्छू उतारने मन्त्र प्रकाशकीय असावधानी से छप गया था, धर्म विरुद्ध है। पाठक क्षमा करें।—सम्पादक।

—शास्त्रार्थ—पानीपत में जैन समाज और आर्यसमाज में ता० ५ नवम्बर से "ईश्वर सृष्टि कर्ता" विषय पर शास्त्रार्थ होगा। सब भाईयों को वहाँ पहुँच कर लाभ उठाना चाहिये। —वीरेन्द्र

—पञ्जाब कौंसिल के नवीन चुनाव में श्रीमती लेखवती जी जैन, जो भारी बहुमत से मेम्बर चुनी गई हैं, पंजाब कौंसिल के इतिहास में पहिली महिला हैं जो कौंसिल हालको अपनी उपस्थिति से सुशोभित करेंगी। आपकी इस अपूर्व सफलता पर हार्दिक बधाई है! —वीरेन्द्र।

—जापान का राजदूत जैनसमाजकी ओर से तीव्र विरोध को देख कर जापानी राजदूत ने आश्वासन दिया है कि दाइसों पर भगवान महावीर स्वामी व गौतम गणधर की तस्वीर भूल से छपी है। मैं जैन समाज के विरोधी प्रस्ताव जापान गवर्नमेंट के पास भेज दूंगा!

—अमेरिकामें बैरिस्टर चम्पतरायजी—जैन लण्डन से दो माह से अमेरिका पधारे हुए हैं, वे चिकागो में ९ माह तक होने वाला अखिल विश्वधर्म परिषद में भाग ले रहे हैं। आप विदेश में जैनधर्म का प्रचार कर रहे हैं!

—अजायब घर में दिगम्बर जैन मूर्ती—मैं लाहौर ता० १८। १०। ३३ को गया था, वहापर कई दिगम्बर जैन मूर्ती हैं, जो गुप्त काल से लेकर वीं शताब्दी तककी मालूम पड़ती हैं।—वीरेन्द्र।

—भेलसामें इस माहमें पं० गणेशप्रसादजी वर्णी, ब्रह्मचारी मोतीलालजी वर्णी, पं० देवकीनंदन कारंजा, ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी आदि जैन विद्वानोंके पधारने से अच्छी खासी धर्म प्रभावना हुई। सबही विद्वानोंके आम सभाओंमें जिनमें सूबा साहब, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट आदि बड़े बड़े आफिसरान भी शामिल हुए थे, प्रभावशाली भाषण हुए।

यहाँ की परवार समाज ने दिसम्बर में परवार सभा का अधिवेशन बुलाने का निश्चय किया है, जिसका कुल खर्च सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी देंगे।

सेठजी ने ८१) की पुस्तकोंका दान वर्णी जी के शुभागमन पर मंडलके वाचनालयको दिया। उपरोक्त वाचनालय से सितम्बर मास में २५८ आदमियों ने पुस्तकें घर लेजाकर व ६०९ व्यक्तियोंने वहीं बैठकर लाभ उठाया। मंत्री—प्रेम नवयुवक मंडल, भेलसा

आवश्यकता

एक ऐसे विद्वान की है जो कि श्री दि० जैन मंदिर जी में पाठकों को शास्त्र स्वाध्याय करा सकें और सभामें शास्त्रजी पढ़ सकें तथा कुछ ज्योतिष के भी जानकार हों। वेतन २०) से २५) तक दिया जायगा।—सेठ शोभाराम गोपालराय मेरठ सदर।

नग्नता का महत्व!

शिकागो (अमेरिका) के जज जोजेफ, डी० सेबिकका फ़ैसला—"नग्नताके विरुद्ध जो कुछ कहा जाता है वह सब व्यर्थ है; जो वास्तव में दूषित प्रकृति के होते हैं उन्हीं के हृदयों में बुरी भावनायें पैदा हुआ करती हैं; जो शुद्ध प्रकृति के लोग हैं वे दूसरों को नंगा देखेंगे तो उनके हृदय में कोई बुराई उत्पन्न न होगी—नंगे रहनेमें अश्लीलता नहीं है। इसमें जो लोग अश्लीलता और लज्जा का अनुभव करते हैं उनकी चले तो शायद वे घोड़ों को भी पतलून पहना कर छोड़ें।" —"कमल"

[सरस्वती पूर्णाङ्क ४०५ सितम्बर १९३३ से]

देशी राजों का जेब खर्च

हैदराबाद	५० लाख	सन्	३०-३१
मैसूर	२१ ,,	,,	३१-३२
बड़ोदा	२६ ,,	,,	,,
काश्मीर	२२॥ ,,	,,	,,
ट्रावन्कोर	१४॥ ,,	,,	३०-३१
इन्दौर	२२९३२१९	,,	३१
जोधपुर	१०६३३८४	,,	३१-३२
भूपाल	२६००००	,,	२८

[मरहट्टा]

Regd. No. A. 2879

शोक !—श्रीमान लाला कन्नोमलजी एम० ए० न्यायमंत्री राज्य धौलपुर का १७ अक्टूबर को स्वर्गवास हो गया। आप अच्छे दार्शनिक विद्वान थे; जैनधर्म से आपको बहुत प्रेम था। जैनधर्म के विषय में आपने अनेक लेख लिखे थे।

शोक !—श्रीमान विट्ठल भाई पटेल का २२ अक्टूबर की रात को डेढ़ बजे जिनेवा में स्वर्गवास हो गया। आप पांच वर्ष तक एसेम्बली के सभापति रहे। सभापति पद आपने कितनी योग्यता, निर्भयता और उदारता से निभाया यह बात सारा संसार जानता है। आपके वियोग से भारतवर्ष में एक अद्वितीय प्रतिभाशाली नेता का अभाव हो गया।

—कानपुर में एक जुआरी ने जुआ खेलने के लिये अपनी स्त्री से उसके गहने मांगे, स्त्री के मना करने पर उसने स्त्री को मार डाला। दिवाली पर कानपुर में १२५ जुआरी गिरफ्तार हुए हैं।

—सरहाली (अमृतसर) में सवर्णसिंह नामक एक सिक्ख ने अपनी स्त्री को इसलिए मार डाला कि उसके पुत्र नहीं होता था। पुलिस ने उसका चालान किया है।

—कुमारी इस्मादन नामक एक तुर्की लड़की बहुत पहलवान है। एक वर्ष से समस्त तुर्किस्तान में घूमी है, किन्तु उसका प्रतिद्वन्द्वी पहलवान नहीं मिला है।

—[illegible] के पास एक गांव में ३५ पुरुष रहते हैं। उनमें से २७ सब पुरुषों को एक आदमी की हत्या के अभियोग में ६-६ साल की सजा हुई। गांव में सिर्फ ८ आदमी रह गये हैं।

—जापान एक अमरीकी फर्म द्वारा अपने यहां का एक लाख टन यानी २७ लाख मन चावल बेचने का प्रबन्ध कर रहा है। उसे बेचकर वह नया जहाज खरीदना चाहता है।

—ला कोरुना (पुर्तगाल) के एक मकान में माता तथा पुत्री एक घंटे के भीतर प्रसूता हुईं। दोनों के पुत्र ही उत्पन्न हुए, दाई ने जब दोनों बच्चों को स्नान कराया, तब वे मिल गये। अब उनमें पहचान नहीं हो सकती कि माता का बच्चा कौनसा है और पुत्री का कौनसा?

—शिकागो (अमेरिका) की प्रदर्शिनी में हेमूर अर्जुन लॉग नामक एक आयरिश मनुष्य भी अपनी ७८ इंच लम्बी मूंछों का प्रदर्शन करने पहुँचा है।

—ग्वालियर में अभी कुछ दिन पहले रात के समय जब कि एक पुराने मकान में लोग बेखबर सो रहे थे, अकस्मात् वह मकान गिरने लगा। तब उस मकान के मालिक ने ज़ोर से चिल्लाकर लोगों को जगा दिया। लोगों ने तुरन्त मकान खाली कर दिया। मकान उसी समय बैठ गया।

—बंगलोर के मि० राजा रामाराव ने एक ऐसा चर्खा तैयार किया है जो कि एक घंटे में १००० गज सूत निकाल सकता है।

—दक्षिण अफ्रीका में कॉनस्टाइन के पास [illegible] नामक एक नीग्रो स्त्री की मृत्यु हुई है जो कि ८ फीट ऊंची और १२० वर्ष की बूढ़ी थी।

—हाल में चीन देश के कोहा-लीन ग्राम में एक किसान की मृत्यु हुई है। कहते हैं कि उसकी आयु २५६ वर्ष की थी और वह दुनिया में सबसे पुराना आदमी था।

मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिंटिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रकट किया।

तारीख १६ नवम्बर सन् १९३३ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क ९

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। —ऑनरेरी सम्पादक— पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

उपहारी सूचना !

१. २॥) मूल्य देने वाले सर्वप्रथम ४०० ग्राहक हो जाने पर १० लाल और ३९० पीले उपहारी टिकिट बाँटने की सूचना "जैनदर्शन" में छापी गई थी।

२. किन्तु २॥) मूल्य देने वालों की कुल संख्या आज तक भी केवल १६४ ही हुई है, इसीलिये उपहारी टिकिट नहीं बाँटे जा सके।

३. कुछ प्रेमी ग्राहकों के उपहारी पुस्तकें भेजने के आग्रह के कारण अब हमने यह निश्चय किया है कि २॥) वाले ग्राहकों के साथ में रिआयती मूल्य वालों को भी यानी मूल्य देने वाले सब ही ग्राहकों को ॥)—॥) की पुस्तकें ३० नवम्बर तक भेज दी जावें।

४. इसलिये उपहारी पुस्तकें पोस्टैल सार्टीफिकेट लेकर कार्यालय से ३० नवम्बर तक अवश्य २ रवाना कर दी जावेंगी। ग्राहक नं० १५१ से २२० तकके और नं० ३०१ से ४७० तक के ग्राहकों में से यदि किसी को ३ दिसम्बर तक भी पुस्तकें न मिलें तो वे अपने २ डाकखाने को लिख कर मालूम करें और डाकखाने का उत्तर हमारे पास भेज दें।

५. इसी वर्ष में ४०० ग्राहक-संख्या पूरी होने तक भविष्य में बनने वाले कुल ग्राहकों को भी पुस्तकें उपहार में भेजी जाती रहेंगी।

—प्रकाशक "जैनदर्शन", बिजनौर (यू० पी०)

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

जैन समाचार !

आक्षेप—हिन्दी मिलाप ता० १३ नवम्बर के अङ्क में एक पत्र छपा है जिसमें आचार्य शान्तिसागरजी के खिलाफ बहुतसा विष उगला गया है। इसके भेजने वाले कोई श्वेताम्बर बन्धु प्रतीत होते हैं, क्योंकि आपने लिखा है कि इन्होंने श्वेताम्बर शास्त्र में मांस खाना आदि बतला कर दो पार्टी करा दीं—इत्यादि। पत्र प्रेषककी यह सब अनर्गल बातें हैं। सम्पादक मिलाप को इस तरह की खबरें विना परीक्षा किये नहीं छापना चाहियें।

ब्यावर—यहां ता० ९ नवम्बर से ११ नवम्बर तक जो उत्सव होगा, उस समय महासभादिक के अधिवेशन भी होंगे !

प्राचीन प्रतिमा—कलकत्ते के अन्तर्गत बेहला नामक स्थान से श्री आदिनाथ जी की सवा हाथ ऊंची खडगासन प्रतिमा मिली, जिसको शान्तिविधान आदि क्रिया कराके कलकत्ते के बड़े दिगम्बर जैन मन्दिर में स्थापन कर दिया गया !

उपवास—सुना गया है कि मुनि जयसागर जी ने पुनः आमरणान्त उपवास जारी कर दिया है। कारण यह मालूम हुआ है कि निज़ाम सरकार ने जो प्रतिबन्ध दूर करने को कहा था, उनपर विचार नहीं किया।

तीर्थयात्रा—इस वर्ष दिसम्बर में तारंगा, शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा के लिये कासगंज (एटा) स्टेशन से एक स्पेशल गाड़ी छूटेगी, जिसमें रोशनी, पानी, भोजन, सोने आदिकी सुविधा होगी। एक जैन विद्वान, ब्रह्मचारी, तथा रेलवे की ओर से एक जैन मैनेजर भी साथ रहेंगे। दोनों ओरका तीसरे दर्जे का किराया ३०) और दूसरे दर्जे का ७०) होगा! पत्र व्यवहार का पताः—

कुंवर बहादुर जैन वकील, एटा।

जैनयुवक मंडल—ने बेकार जैन भाई तथा बहिनों को काम पर लगाने के लिये एक कमेटी बनाई है। जो भाई, बहन बेरोजगार हों वे अपना नाम, पता आदि खुलासा लिख कर भेजें।

सागरचन्द्र जैन-मंत्री जैनयुवक मंडल,
सराय मुहल्ला, रोहतक।

नरेसन (ग्वालियर)—में पालकी निकालने के समय अजैन जनता ने उपद्रव मचाना चाहा, किन्तु राज्य कर्मचारियों के सुप्रबंध के कारण वे सफल न हो सके। जैन समाज ग्वालियर महाराज के सुप्रबंध के लिये अत्यन्त आभारी है।

लश्कर में—ता० ८-११-३३ को ब्र० नन्दलाल जी नागपुर निवासी पधारे। श्रीमान सेठ गनपत लाल जी के चैत्यालय में शास्त्रसभा हुई। आपके भाषण से जनता पर अच्छा असर पड़ा। कुछ साहबानों ने शास्त्र स्वाध्याय के नियम लिये।

लश्कर में—ता० १२-११-३३ को श्रीमान् ब्रह्मचारी कुंवर दिग्विजयसिंह जी का श्रीयुत बाबू सूर्यप्रकाशजी के सभापतित्वमें जैनधर्मके विषय पर अपूर्व भाषण हुआ। आपके भाषणका जैन व अजैन जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

आवश्यकतायें !

१—जगह जगह जाकर जैन शास्त्र भण्डारों की सूची बनाने के लिये १ दिसम्बर से विशारद पास अनेक स्वच्छ लेखकों की आवश्यकता है। वेतन ३०) मासिक और मार्ग व्यय दिया जायगा। लिखो—मंत्री जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला छावनी।

२—डेरागाजीखान की श्री दिगम्बर जैन पाठशाला के लिये एक विशारद पास अध्यापक की आवश्यकता है, जो बच्चों को अच्छी तरह पढ़ा सके। मकान मुफ्त, वेतन ३०) मासिक तक।

अजितकुमार जैन-चूड़ी सराय, मुलतान सिटी।

३—दो जैन प्रचारकों की और वैद्यों की आवश्यकता है। प्रचारक कुछ आयुर्वेद के जानकार हों, उन्हें बाहर भ्रमण करके प्रचार करना होगा और वैद्यों को ब्रांचों में रहकर काम करना होगा। वेतन २०) रु० से ३०) तक।

पता—रा० वै० सिद्धिसागर जैन
बाहुबलि औषधालय ललितपुर (झाँसी)

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽग्रगण्यधर्मोऽभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ { बिजनौर, अगहन कृष्णा १४—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० } अङ्क ६

प्रेम-प्रार्थना

[लेखक—प्र० र० ब्र० प्रेम सागर जी पञ्चरत्न]

भगवन् ! आज कृपा कर मेरे मन-मन्दिर में करलो वास,
अपनी ज्ञान ज्योति का स्वामिन, कर दो उसमें दिव्य प्रकाश !
मैंने अपना मानस आसन, बना लिया है सुथरा साफ़,
बड़ी देर से बाट जोहता, किन्तु, नहीं आते हैं आप !
क्रोध, मान, माया, तृष्णा का, नहीं रहा है किंचित् मैल,
शांति प्रदर्शक बनी हुई है, मन मन्दिर की सुन्दर गैल ।
बहुत समय से सोच रहा हूँ; मन इत-उत दौड़ाता हूँ,
ना आने का कारण क्या है इसका पता न पाता हूँ !
एकाएक याद में आया, आज आपका वह उपदेश—
"निश्चय नय से निज स्वरूप का चिन्तन करते रहो हमेश !
निश्चय नय से समा रहा है, आत्म तत्व में आत्म स्वरूप,
सभी तरफ़ से मन को रोको, तभी प्राप्त होगा वह भूप ।
रत्नत्रय की माला फेरो, पढ़ो पाठ समता का रोज़,
तभी "प्रेम" तुम लगा सकोगे, आत्म तत्व में मेरी खोज ।"

हमारे नवयुवक !

[गताङ्क से आगे]

[४]

उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त में ६५ प्रतिशतक मुसलमानोंकी संख्या है, ५ प्रतिशतक मनुष्योंमें हिन्दू, ईसाई, सिक्ख आदि सभी लोग समझने चाहियें। इस कारण यदि देखा जाय तो वहाँपर सिक्ख आटे में नमक के बराबर हैं, किन्तु वे ही अल्पसंख्यक सिक्ख जिस २ गांवमें रहते हैं उस २ गांव में मुसलमानों को यह साहस नहीं होता कि ईदके दिन भी वे गोवध कर सकें; क्योंकि गाय का वध सुनते ही वीर सिक्खों की कृपाणें म्यान से बाहर निकल आती हैं जिससे कि बहु-संख्यक मुसलमानों को भी अपने शिरपर मृत्यु खड़ी दीखती है। इस उदाहरण से प्रगट होता है कि अहिंसाका प्रचार ऐसे वीरोंसे हो सकता है, कायर लोग क्या गोरक्षा करावेंगे।

यह वीरता हाथमें हथियार पकड़नेसे आती है। तलवार आदि की बात छोड़िये, किन्तु लाठी चलाने में निपुण पुरुष बुरे मौके पर शत्रु से न केवल अपनी रक्षा कर सकता है, किन्तु अपने आश्रित परिवार, समाज को भी सुरक्षित रख सकता है।

कलकत्ते में दंगे के समय सुरेश, नरेश नामक दो बङ्गाली युवकों ने लाठियोंकी मार से एक गली के स्थानपर तीन सौ मुसलमान गुन्डों को भगा दिया था। धीरज पहाड़ी देहली में ईद के अवसर पर चौधरी लोटनसिंह के १५-२० युवकों ने लाठी के बलसे ७००-८०० सशस्त्र कसाई पठान मुसलमानोंको अपनी सीमामें एक इञ्च भर भी पैर नहीं रखने दिया, उनसे गायको छीन लिया जिसको कि वे मारना चाहते थे तथा उनको पीछे भगा दिया।

इस कारण प्रत्येक जैनयुवक को शस्त्र विद्या का बड़ी तीव्र इच्छासे अभ्यास करना चाहिये। जैन शब्द वीरविजेता की सूचना देता है। हम यदि कायरता न छोड़ें तो समझना चाहिये कि सच्चा जैनत्व हमसे दूर है।

गृहस्थाश्रम में विरोधी हिंसा का त्याग नहीं होता; शत्रु तथा गुण्डे, बदमाशोंसे अपनी, अपने धर्मायतन, परिवार आदि की रक्षा करने के लिये साधारण जैन की तो क्या किन्तु श्री शान्तिनाथ

सरीखे तीर्थंकरको भी साधारण युद्ध नहीं, किन्तु महायुद्ध करने पड़े हैं।

इस कारण प्रत्येक जैनको हथियार चलाने की शिक्षा अवश्य ग्रहण करके वीर योद्धा बनना चाहिये; संसार में शूरवीर समाज ही सन्मान पूर्वक जीवित रहते हैं। सिक्खों को यदि उनके गुरु गोविन्दसिंह जी शूरवीर न बनाते तो कौन कह सकता है कि पंजाब में आज कोई सिक्ख या हिन्दू दीख पड़ता। यह सिक्खों के हथियार हाथ में लेने का ही फल है कि जिस काबुलके दरवाजे से बराबर ८०० वर्षसे मुसलमान लुटेरे आ आकर भारतवर्ष को लूट पाट कर तबाह करतेथे, न केवल उन लुटेरों के लिये वह दरवाजा ही बन्द हुआ, किन्तु रणजीतसिंह ने काबुल पर भी विजय प्राप्त की।

ये चमकीले उदाहरण हमको शिक्षा देते हैं कि जैनधर्म का अस्तित्व रखने के लिये शूरवीर बनो, केवल दुकानोंपर बैठने वाले साग बनिये ही न रहो, किन्तु हाथ में हथियार उठाना सीखो, तभी तुम्हारे भीतर वीरता का संचार होगा, उसी समय तुम संसार में अहिंसा धर्म की शान कायम कर सकते हो।

हमारे विद्यार्थियोंको नियम से शास्त्रविद्या के समान शस्त्रविद्या का भी अभ्यास करना चाहिये। जिस प्रकार कुन्थलगिरि आश्रम के छात्र लाठी, तलवार, गदका आदि में निपुण होते हैं उसी प्रकार प्रत्येक पाठशाला, प्रत्येक विद्यालय, स्कूल, हाईस्कूल के विद्यार्थियों को लाठी, गदका आदि का पूर्ण अभ्यासी होना चाहिये।

लाठी, गदका चलाने के अच्छे जानकार मनुष्य के हृदय में इतना आत्मविश्वास हो जाता है कि यदि उसके सामने १०-२० आक्रमणकारी भी आ जावें तो वह उन से निर्भय रह कर उनका सामना कर सकता है। अभी कुछ दिन पहले एक मनुष्य ने लाठी के जोर से १५-१६ लुटेरों को पृथ्वीपर सुला दिया था। इस कारण यद्यपि तलवार, भाला, बन्दूक, धनुष गिलोल आदि सभी हथियारों का चलाना सीखना आवश्यक है, किन्तु अधिक न हो सके तो कम से कम लाठी, गदका तो अवश्य ही सीखना चाहिये।

शस्त्रशिक्षा को केवल हिंसा का कारण समझना बहुत भारी भारी भूल है, वीरता, हिंसकता, रक्षा, आक्रमण इनमें बहुत अंतर है। यदि हथियार चलाने की शिक्षा हिंसा ही की कारण होता तो भगवान ऋषभदेव इसको आजीविका का साधन न बतलाते।

मनुष्य जब तक अपनी, अपने परिवार और अपने धर्मायतन मन्दिर आदि की रक्षा न कर सके तब तक उसको गृहस्थ होने का क्या अधिकार है? जो मनुष्य शत्रु से याचना पूर्वक अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता उसके साथ यदि उसका परिवार धन सम्पत्ति भी हो तो उसकी दयनीय दशा का क्या कहना है? इस कारण अपने जीवन, धन, धर्म, परिवार को सुरक्षित रखने के लिये प्रत्येक जैन युवक को नियम पूर्वक कम से कम लाठी, गदकका चलाना अवश्य सीखना चाहिये।

[क्रमशः]

अनुकरण !

कौन कहता है कि अनुकरण करना खराब बात है, क्योंकि बिना अनुकरण किये

इस विकट संसार कानन में सुपथ प्राप्त नहीं हो सकता। महान पुरुषों के आदर्श मार्गका अनुकरण ही तो मानव शक्ति का तथा आध्यात्मिक तेजका विकास करता है।

हाँ! नेत्र बन्द करके विवेकशून्य होकर अन्धा अनुकरण न करो। मनुष्य हो, तुम्हारे पास विवेचन शक्ति विद्यमान है उसको काम में लो जिससे कि तुम्हें भेड़ियाधसान का कलंक और दुःख प्राप्त न हो।

आज पश्चिमी सभ्यता तुम्हारे सामने मनोहर रूप लेकर चली आ रही है, देखना! कहीं विवेक बुद्धि को एक किनारे रखकर भेड़ियाधसान की तरह उसका अंधा अनुकरण न कर बैठना।

इस विदेशी सभ्यताका ऊपरी ढाँचा जितना चमकीला है इसके भीतर गंदा मैल भी उससे अधिक भरा हुआ है। पहले भीतर घुसकर उसका मनन करलो पीछे भले ही सारभाग का अनुकरण कर लेना।

अनुकरण के लिये चलनी की तरह निःसारग्राही न बनो, किन्तु सूपके समान सारग्राही बनो। यूरोप ने जिन कारणों द्वारा अपनी पतित दशाका उद्धार किया है उन कारणोंका अनुकरण करो। स्याही-चूस (ब्लाटिंग) की तरह नैकटाई आदि सार शून्य बातों के ग्रहण करने से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।

श्रीमती लेखवतीजी एम० एल० सी०

गत पक्षमें जो एक हर्षजनक घटना घटी है वह है अम्बाला नगर निवासिनी श्रीमती लेखवती जी जैन का पंजाब कौंसिल की सदस्यता में विजय प्राप्त करना। वैसे तो इस कौंसिल मेंबरी के विषय में हमारा मतभेद है जो कि कभी प्रगट करेंगे, किन्तु इस समय श्रीमती लेखवती जी ने एक बलवान मुकाबिलेमें शानदार विजय पाई है, इसके लिये आपको बधाई दिये बिना नहीं रहा जाता।

आपने पहले पंजाब हाईकोर्ट द्वारा पंजाब कौंसिल में चुनाव होकर महिलाओंकी सदस्यता का अधिकार स्थिर कराया, फिर जब चुनाव का अवसर आया तब विरोधी दलने आपके मुकाबिले में आर्यसमाजके प्रसिद्ध नेता श्रीमान डा० दीवान चन्द्र जी की सुपुत्री डाक्टर दमयन्ती बाली को खड़ा कर दिया।

इतना ही नहीं किन्तु कुछ लोगों ने पंजाब प्रान्तीय हिन्दूसभा की आड़ से सूचना निकलवाई कि जनता डा० दमयन्ती बालीको अपने मत देवे। आर्यसमाज की ओर से भी श्रीमती लेखवती जैन के विरुद्ध बहुत उद्योग हुआ। लाहौर के प्रायः सभी आर्यसमाजी समाचारपत्रोंने डा० दमयन्ती का पक्ष लिया, विपक्षी दलने अन्तिम उद्योग यहाँ तक किया कि जैन होने के कारण हराना चाहा, किन्तु उनके सभी प्रयत्न व्यर्थ रहे।

अम्बाला कमिश्नरी में जहाँ की कि आप प्रतिनिधि हैं डा० दमयन्ती बाली की अपेक्षा १७०० वोट अधिक मिले। इसप्रकार जहाँ लेखवती जी को विजय हुई, वहाँ उससे भी अधिक जैन समाजकी पंजाब में लाज रह गई।

श्रीमती लेखवतीजी श्रीमान बा० सुमतिप्रसाद जी वकील की धर्मपत्नी हैं। आप हिन्दी की सर्वोच्च परीक्षा प्रभाकर पास हैं। अङ्गरेजी भी

जानती हैं। आपका रहन सहन, वेश भूषा सादा है खद्दर ही पहनती हैं। पिछले समय आप कॉंग्रेस में बहुत अच्छा काम कर चुकी हैं।

आपका भाषण अच्छा प्रभावशाली होता है। पिछले रथयात्रा महोत्सव पर आपने मुलतान आकर ७-८ पब्लिक व्याख्यान दिये थे। आप सरीखी महिलायें ही समाज सुधार का विकट संकट मार्ग सरल बना सकती हैं।

स्वर्गीय श्री० विट्ठलभाई पटेल !

गत पक्ष के २२ अक्टूबरकी रातको जिनेवा में भारतवर्ष के एक महान नेता का स्वर्गवास हो गयाहै, उनका अमर शुभनाम श्रीमान विट्ठलभाई पटेल है। आप सरदार वल्लभभाई पटेल के सहोदर बड़े भाई थे। विट्ठलभाई पटेल भारतवर्ष के उन नीतिकुशल, निर्भय, वीर, निःस्पृह नेताओं में से एक थे जिनका सिक्का विपक्षी दल भी मानता है और जिन्होंने इस अवनत भारतवर्षका मस्तक उन्नत किया है।

विट्ठलभाई पटेल के जीवन में चमकते हुए आदर्श दिन वे थे जिस समय वे ऐसेम्बली के अध्यक्षपद पर आसीन थे। पराधीन भारतका एक पुरुष कितने अच्छे ढंगसे शासन कर सकता है, इस बातको उन्होंने बड़े सुन्दर रूपमें संसार को दिखला दिया। वाइसराय इरविन द्वारा भेजे गये लोक रक्षक बिल (पब्लिक सेफ्टी बिल) को ऐसेम्बली में पेश न होने देना, कमिश्नर देहली द्वारा नियुक्त पुलिस सिपाहियों को ऐसेम्बलीसे निकलवा देना, अपने पिछले दरवाज़े से आने के कारण कमाँडिरन चीफ़ से क्षमा मंगवाना, अनेक बार होम मेम्बर से क्षमा याचना कराना विट्ठल भाई पटेल की नीति कुशलता तथा निर्भीत शासकताकी परिचायक है।

नमक सत्याग्रह के समय जो उन्होंने अपने वेतन में से एक हज़ार रुपये मासिक कांग्रेस को बिना किसी प्रेरणा के देना स्वीकार किया, यह उनकी उदारता का एक साहसपूर्ण छोटासा उदाहरण है।

न्यूयार्क (अमेरिका) में जो उनका अपूर्व एवं विराट् स्वागत हुआ जैसा कि वहाँ पर अभी तक किसी भी विदेशी पुरुष का नहीं हुआ इस बातकी साक्षी देता है कि अमेरिका सरीखा देश भी विट्ठलभाई पटेल की नीतिज्ञता तथा महान व्यक्तित्व को कितना समझता था और कितना उनको आदरणीय मानता था। आयर्लैण्ड में उन्होंने जो आदर पाया, समाचारपत्र पढ़ने वाले इस बातको अच्छी तरह जानते हैं।

सवा लाख रुपये वार्षिक का वेतन तथा ऐसेम्बली के अध्यक्षपद सरीखे ओहदे को विपरीत वातावरण देखकर ठुकरा देना विट्ठलभाई पटेल की आदर्श निःस्पृहता का परिचय देता है। निर्बल वृद्ध शरीर द्वारा भी देशसेवा करते हुए जेल जाना विट्ठलभाई पटेल की प्रशंसनीय देश भक्ति का एक उदाहरण है।

विट्ठलभाई पटेलका नाम तो अमर है, किन्तु उस नेता की सजीव मूर्ति दृष्टिसे ओझल हो जाने के कारण भारतवर्ष ही नहीं किन्तु आधुनिक दीख पड़ने वाला संसार एक नीतिकुशल नेता से शून्य अवश्य हो गया।

स्वर्गीय श्री० ला० कन्नोमल जी !

इसी गत पक्ष में भारतवर्ष का एक गणनीय व्यक्ति और भी स्वर्गयात्रा कर गया जिसका नाम श्रीमान ला० कन्नोमलजी एम०ए० है। आप धौलपुर राज्य के सेशन जज थे। आप एक अच्छे साहित्य प्रेमी तथा हिन्दी भाषा के सेवक एवं निष्पक्ष गुणग्राही थे।

आपने गीतादर्शन संग्रह आदि ग्रंथ लिखकर हिन्दी साहित्य की अच्छी सेवा की है। जैनधर्मसे भी आपको बहुत प्रेम था। आपने जैन इतिहास तथा जैन सिद्धान्त का अच्छा अनुसंधान और मनन किया था जिससे कि आपने यह परिणाम प्रकाशित किया कि जैनधर्म का उदयकाल इतिहास की सीमा से बहुत दूर है और जैनधर्म का स्याद्वाद सिद्धान्त अटल तथा सत्यता की कसौटी है। आपके वाक्य ये हैं—

"ऐतिहासिक गवेषणा से मालूम हुआ है कि जैनधर्म की उत्पत्ति का कोई काल निश्चित नहीं है प्राचीन से प्राचीन ग्रंथों में जैनधर्म का हवाला मिलता है।.........जैनसाधु उच्च श्रेणी के हैं वे अन्य धर्मों के साधुओं से बहुत बढ़े चढ़े हैं और उनकी उत्कृष्टता स्वयं सिद्ध है।" इत्यादि

वे समय २ पर जैनधर्म के महत्वसूचक लेख अखबारों में प्रकाशित कराया करते थे, उनके वियोग से जैनसमाज को भी बहुत हानि हुई है।

वृद्धविवाह निवारक बिल !

वृद्ध विवाहके कारण समाज का किस प्रकार विनाश होता है, यह बात ऐसी है जिसको विशेष बतलाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसको सब कोई समझता है तथा सब किसीको प्रत्यक्ष दीख रहा है। इस नाशक प्रथा को दूर करने के लिये हमारी सभाएं दर्जनों प्रस्ताव पासकर चुकीं, किन्तु उनसे कुछ भी रोक थाम नहीं होपाई। अतः आवश्यक है कि सरकारी कानून द्वारा इस वृद्धविवाह को रोक दिया जाय।

समाजकी उस आवश्यकताको (सी० पी०) मध्यप्रान्तमें श्रीमान् बा० गोकुलचन्द्र जी जैन वकील दमोह पूरा करने जा रहे हैं। उन्होंने अभी सी० पी० कौंसिल में वृद्धविवाह निवारक बिल पेश किया है। यदि वह पास होकर कानून बन गया तो सी० पी० में वृद्धविवाह रुक जावेगा। हम इस बिलका स्वागत करते हैं। आवश्यकता है कि एसेम्बली से भी ऐसा बिल पास होवे।

यद्यपि विवाहोंपर सरकारी कानूनोंसे प्रतिबन्ध लगना हमारी स्वतंत्रतामें एक बाधा है, किन्तु क्या किया जावे जब स्वार्थी लोग स्वतंत्रता का अनुचित लाभ उठाकर समाजका अधःपतन करें तब उस उच्छृंखल स्वतंत्रता का अपहरण होना ही श्रेयस्कर है। वह बिल इस रूप में रक्खा गया है—

[१] इस एक्ट का नाम सी० पी० विवाह निषेध एक्ट होगा।

[२] यह क़ानून सी० पी० भर में लागू होगा।

[३] इसका अमल पास होने पर फ़ौरन काम में लाया जायगा।

[४] यह कानून उन जातियों में लागू होगा जिनमें स्त्रियों के पुनर्विवाह और तलाक़ होने का रिवाज नहीं है।

[५] इस एक्ट में नीचे लिखे शब्दों का अर्थ यह होगा :—

(अ) "कन्या" के मायने अविवाहित स्त्री।

(ब) "नाबालिग़" के मायने १८ साल से कम उमर का पुरुष या स्त्री।

[६] यदि कोई भी पुरुष जिसकी उमर ४५ साल से अधिक हो किसी कन्या के साथ विवाह करेगा तो उसको दोनों क़िस्म में से एक क़िस्म की क़ैद की सज़ा दी जायगी जिसकी म्याद एक माह तक होगी या जुरमाना जिसकी हद ५०००) रु० तक होगी या दोनों सजायें दी जायंगी।

[७] यदि कोई पुरुष ऐसी शादी करायेगा, मदद देगा, शादी के कार्य में भाग लेगा जो दफ़ा ६ के विरुद्ध की गई है तो वह उस दफ़ा के अयानत का जुर्मदार समझा जायगा और उसको वही सज़ायें दी जायँगी जो उस जुर्म के वास्ते रक्खी गई है।

[८] (अ) अगर कोई नाबालिग़ लड़की ४५ साल के ऊपर की उमर के पुरुष का विवाही जायगी तो वह आदमी जिसके चार्ज में लड़की है चाहे वह मां बाप हो, वली हो या किसी दूसरी हैसियत से जायज़ या नाजायज़ तरह वली होकर लड़की को रखता हो शादी करने की इजाज़त दे या मदद दे या अपनी ग़फ़लत से शादी को न रोके तो उसको दोनों में से एक किस्म की एक माह की क़ैद या १०००) रु० तक जुर्माना या दोनों सज़ायें दी जायँगी, मगर कोई जुर्मदार स्त्री को इस दफ़ा के माफ़िक़ क़ैद की सज़ा न जुर्माने की वसूली न होने में न जुर्म में दी जायगी।

(ब) इस दफ़ा के लिये जब तक कि इसके विरुद्ध सबूती न दीजायगी यह मान लिया जायगा कि उसकी यदि नाबालिग़ लड़की की शादी दफ़ा ६ के विरुद्ध की गई है तो उस आदमी की गफ़लत से हुई है जिसके चार्ज में लड़की थी।

[९] दफ़ा १९० ज़ाब्ता फ़ौजदारी सन १८९८ लागू न होकर इस एक्ट के जुर्म के मुक़दमे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट या सबडिवीज़नल मजिस्ट्रेट की अदालत में ही होंगे।

[१०] अदालत को इस एक्ट के जुर्म की तहक़ीक़ात का अधिकार क़ानून विरुद्ध शादी होने के ६ महीने के अन्दर इस्तग़ासा पेश होनेपर होगा।

[११] इस्तग़ासा पेश होनेपर अगर वह दफ़ा २०३ ज़ाब्ता फ़ौजदारी सन् १८९८ के अनुसार खारिज न हो तो अदालत बमूजिब दफ़ा २०२ ज़ाब्ता फ़ौजदारी सन् १८९८ के खुद या बज़रिये मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल के तहक़ीक़ात करेगी।

[१२] (१) मुस्तग़ीस के इजहार होने के बाद और मुलज़िम के तलब करने के पेश्तर अदालत, सिवाय उन हालतों के जो तहरीर किये जायेंगे, मुस्तग़ीस से ज़मानतनामा मय या बिना ज़मानतदारों के १०००) रु० तक बतौर ज़मानत वास्ते दिये जाने मावज़ा मुलज़िम बमूजिब दफ़ा

२५० ज़ाब्ता फौजदारी सन् १८६८ के तलब करेगी और अगर यह ज़मानत वक्त मुकर्रा पर पेश न की जायगी तो इस्तग़ासा ख़ारिज कर दिया जायगा।

(२) ज़मानतनामा जो इस दफ़ा के माफ़िक लिया जायगा वह ज़ाब्ता फौजदारी सन् १८६८ के माफ़िक समझा जायगा और ज़मानतनामों की दफायें उसमें लागू होंगी।

[१३] अगर दफ़ा ६ के विरुद्ध शादी होने के पहले या शादी होते वक्त इस्तग़ासा पेश किया जाय और दफ़ा ११ और १२ की कारवाई हो चुके तो अदालत को अधिकार होगा कि मुलज़िम पर इस तरह का हुक्म निकाल सके कि मुलजिम शादी की कारवाई को बन्द कर दे और अदालत में हाज़िर होकर सबब बतावे कि उसको ऐसी शादी न करने का हुक्म क्यों न दिया जाय।

[१४] (१) अगर तारीख़ पेशी पर मुलज़िम अदालत को यह सबूत दे कि क़ानून विरुद्ध शादी बिलकुल नहीं होना है तो अदालत अपना हुक्म रद्द करेगी और इस्तग़ासा ख़ारिज करेगी।

(२) अगर अदालत की राय में यह पाया जावे कि मुस्तग़ीस ने हुक्म झूठ वाक़यात या दुश्मनी के सबब से हासिल किया था तो अदालत मुलज़िम को ५००) रु० तक मुस्तग़ीस से मावज़ा दिला सकेगी और मावज़े की वसूली बतौर जुर्माना की जायगी।

[१५] जो आदमी दफ़ा १३ के हुक्म को न मानेगा उसको सज़ा दोनों किस्म में से एक किस्म कैद की होगी कि जिसकी म्याद ६ माह या १०००) रु० तक जुर्माना या दोनों होंगी।

[१६] अदालत जुर्माना होने पर मुस्तग़ीस को जुर्माने की रक़म में से उसका असल ख़रचा जो अदालत वाजिब समझेगी दिलायगी।

खोज !

[लेखक—विद्यार्थी सुनहरीलाल "लाल", असरौली-एटा]

ढूँढ़ि फिरयो नाथ मैं अथाह रतनाकर में,
　　छानि फिरयो पांव खोजिडारयो कमलनमें।
नैनन में तेज, चाव बढ़यो सब अङ्गन में,
　　आश्वासन बांधि ढूँढ़ि फिरयो हिमवन में।
कहूँ प्रतिबिम्ब रविशशि में न पायो तोर,
　　नाथ नाहिंमिल्यो ढूँढ़ियो गिरीकी गुफनमें।
बड़े बड़े संतन महंतन सों पूंछ लीनो,
　　पर नाथ नाहिं पायो तोहिं त्रिभुवन में।

देखूं कैसे नाहिं चाह देखने की मोंगी अति
　　पाया कछु अंश जिन मुनि के वचन में।
सुनि उपदेश सत, ज्ञान भयो आतमा को,
　　नाथ नाहिं पायो निज मन उपवन में।
बहु सुखभास तव पायो रम रामन में
　　तऊना अघायो आयो आतम पतन में।
फेरि सुधि आई नाथ करूं दरशन तोरे,
　　भावना सफल भई 'लाल' की जनम में।

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[७]

इस प्रकार बारह वर्षके दुष्काल समय जैनसाधुओंके रूपमें जो विकार आगया था वह विकार दुष्काल समाप्त हो जाने पर भी समाप्त न हुआ—थोड़े बहुत रूपमें जमा ही रहा। इस विकृत रूपके अनुयायी साधुओंका समुदाय **अर्द्धफालक** कहलाया। क्योंकि वे न तो नग्न ही थे और न पूरे वस्त्र ही पहनते थे, केवल एक ज़रा सा कपड़ा उनके पास रहता था। मथुराके कंकाली टीले में जो मूर्तियाँ निकली हैं उनमें एक पाषाण तोरण स्तंभ पर उस अर्द्धफालक मतके एक साधुकी मूर्ति बनी हुई है।

अर्द्धफालक साधुओंके कुछ जैन भक्त भी बन गये, इस प्रकार अर्द्धफालक संघ बहुत दिनों तक चलता रहा। उसके पीछे उज्जैन में **चन्द्रकीर्ति** नामक एक राजा हुआ, उसके **चन्द्रलेखा** नामक एक सुन्दर पुत्री हुई। चन्द्रलेखा का अध्ययन अध्यापन अर्द्धफालक साधुओंके पास हुआ जिससे कि वह उनकी भक्तिन बन गई।

गुजरात प्रान्तवर्ती बल्लभीपुर के शासक **लोकपाल** राजाके साथ चन्द्रलेखा का पाणिग्रहण हुआ। चन्द्रलेखा बहुत सुन्दरी तथा गुणवती थी, इस कारण लोकपाल का उस पर अगाध प्रेम था। इसीलिये उसको पट्टरानी का पद प्राप्त हुआ।

एक समय चन्द्रलेखा ने राजा से निवेदन किया कि उज्जैन में मेरे गुरु विद्यमान हैं; वे बड़े विद्वान एवं तपस्वी हैं, उनको यहाँ पर बुलवाइये। राजा ने रानी की बात स्वीकार करके उन जिन-चन्द्र आदि अर्द्धफालक साधुओं को बल्लभीपुर बुलवाया।

जब वे अर्द्धफालक साधु बल्लभीपुर आये तो राजा अपने मन्त्री, सरदार आदि परिकर सहित उनके स्वागतके लिये चला, किंतु उन साधुओंका अद्भुतरूप देखकर शैल ही पीछे लौट आया, और आकर उसने रानी से कहा कि ये तुम्हारे गुरू न तो नग्न ही हैं और न वस्त्रधारी ही हैं। इन्होंने यह कैसा अद्भुत भेष बनाया है? इस रूप में मैं इनका आदर सत्कार नहीं कर सकता।

रानीको बहुत दुःख हुआ, दूसरे दिन रानीने उन अर्द्धफालक साधुओंके पास चादर आदि वस्त्र भेज दिये और संदेश भेजा कि आप इन्हें पहन लेवें तब राजा आपका भक्त बनेगा। राजा को अपना भक्त होते देखकर उन साधुओंने रानी की सम्मति स्वीकार कर ली और तब उन्होंने अपना **अर्द्धफालक** (आधा वस्त्र) त्याग कर पूर्ण वस्त्र ओढ़ लिया।

रानी के निवेदन पर लोकपाल राजा ने साधुओं का वह वेश मान लिया और उनका बहुत धूमधाम से स्वागत किया। तब से उस संघ का नाम **अर्द्धफालक** न रहकर **श्वेताम्बर** (सफ़ेद वस्त्रधारी) प्रसिद्ध हुआ। उसके प्रतिकूल जो साधु अपने प्राचीन नग्न वेष में स्थिर रहे उनके संघ का नाम **दिगम्बर** (नग्न) क़ायम हुआ।

यह दिगम्बर श्वेताम्बर नाम रचना का वह समय विक्रम संवत् १३६ (विक्रमादित्य राजा के स्वर्गवास के १३६ वर्ष पीछे) था।

इस रीति से भद्रबाहु स्वामी के पीछे बारह वर्षी अकाल के कारण पहले नग्न साधु संघ में से भ्रष्ट होकर कुछ साधुओं ने अर्द्धफालक संघ चलाया, फिर उसी अर्द्धफालक परम्पराके साधुओंने वल्लभीपुर में कपड़े पहन अपना रूप बदल कर विक्रम स० १३६ में श्वेताम्बर संघ स्थापित किया।

इतिहास से प्रतीत होताहै कि उन श्वेताम्बर साधुओं में से बहुतेरे साधुओं ने अपने मन्त्र बल से अजैन लोगों को प्रभावित करके जैन बनाया और इस तरह अपने श्वेताम्बर जैन संघ की संख्या बढ़ाते रहे । इस बात की पुष्टि स्वयं श्वेताम्बरीय ऐतिहासिक ग्रन्थ करते हैं।

युक्तिवारिधि उपाध्याय रामलाल जी गणि विरचित महाजन वंश मुक्तावली एक पुस्तक है, यद्यपि उसमें उन घटनाओं के संवत् असत्य दिये हैं, किंतु यहाँ पर जो बात देखने योग्य है वह यह है कि श्वेताम्बर साधुओंने किस प्रकार अपना मत प्रचार किया।

पहले इस पुस्तक का सातवाँ पृष्ठ देखिये—

रत्नप्रभसूरि ने अपने मन्त्रबल से रुई की पौनीका साँप [illegible]ाकर राजा उपलदेव के पुत्र को राजसभा[illegible] [illegible]ने के लिये भेज दिया। उस सांप ने राजपुत्र को काट लिया, फिर रत्नप्रभसूरि ने अपने मन्त्र बल से उस राजपुत्र को सचेत करके राजा उपलदेव को अपना अनुयायी बनाया।

सं० १०२६ में दिल्ली नगर के चौहान राजा सोनीगरा के पुत्र बोहित्थ कुमार को सांप ने काट लिया था, जिनेश्वरसूरिने, राजा से यह प्रण कराकर कि मेरे मंत्रबल से कुमार के स्वस्थ हो जाने पर आपके सारे परिकरको मेरा अनुयायी होना पड़ेगा, उस राजपुत्रका विष दूर किया। तदनन्तर राजा भी उनका उपासक बन गया। पृ० १५

नेमिचन्द्रसूरिने मथुरा के पास केकई ग्राम में लक्ष्मणपाल के घरके पिछले भाग में ज़मीन में गढ़ा हुआ धन बतलाया और इस प्रकार उसको अपना अनुयायी बनाया। पृ० १६

जिनवल्लभसूरिने सं० ११७६ में मन्डोदर के राजा नानदे पडिहार को एक वासचूर्ण दिया, जिसको कि उसकी स्त्रियोंने अपने शिरपर रक्खा; तब उसके चार पुत्र हुए। इस प्रकार वह जिनवल्लभसूरि का अनुयायी हो गया। पृष्ठ १७

मन्दोवर नगर के बड़े राजपुत्र को साँप का विष चढ़ गया। उस विषको औषध द्वारा दूर करके जिनदत्तसूरिने राजा को अपना मतानुयायी बनाया। पृष्ठ १६

जिनवल्लभसूरिने गुजरात में हीदाजी नामक एक डाकू सरदार को वासचूर्णद्वारा शस्त्र प्रहार से बचाकर अपना भक्त बनाया। पृष्ठ २०

एक श्वेताम्बर साधुने भंवदेव राजा को काला भैरों का आराधन कर युद्ध में विजय प्राप्त करा दी, जिस पर राजा उनका अनुयायी बन गया। पृष्ठ २२

जिनवल्लभसूरिने लालसिंह के पुत्र अहादेव का जलोदर रोग चामुंडा देवी की आराधना करके अच्छा कर दिया। इसके उपलक्ष में राजा ने जैनधर्म स्वीकार किया।

जिनदत्तसूरिने चंदेरी के राजा खरहत्थसिंह के असाध्य घायल चार पुत्रों को योगिनियों द्वारा अच्छा कर दिया। इस पर राजा उनका भक्त बन गया। पृ० २४

इत्यादि अनेक कथायें इस महाजन वंश मुक्तावली पुस्तक में उल्लिखित हैं जिनसे प्रायः यही आशय प्रकट होता है कि श्वेताम्बर साधु मंत्र, यंत्र, तंत्र, औषध आदि के अच्छे जानकार होते रहे और उन्होंने समय समयपर अपने मंत्र, तंत्रादि का प्रभाव दिखलाकर लोगों को अपना अनुयायी बनाया।

[क्रमशः]

हितेच्छुका हितसाधन !

हमको यह पता था कि शास्त्रार्थसंघ की सेवाएं हमारे कुछ विद्वानों को खटकती हैं; उनके खयालमें शास्त्रार्थसंघ का दरवाजा बन्द होजाना चाहिये। इसी खयालसे उन्होंने शास्त्रार्थ संघ की जड़ पर कुठाराघात करने का छिपा हुआ कुछ उद्योग भी किया, किन्तु हमने वे बातें समाज के सामने नहीं रक्खीं. परन्तु जब हमारे सहयोगी खंडेलवाल जैन हितेच्छु ने अभी २० अक्टूबर के अङ्क में वर्षारंभ समय शास्त्रार्थसंघ पर आक्रमण कियाहै तो उसको अब हम नहीं छिपाना चाहते।

इस अंक में वक्ष्यमाण वक्ता नामक किसी पर्दानशीन जनाने लेखक या लेखिका ने अपने भविष्य बताने वाले विद्वान् शीर्षक लेख में १३वें पृष्ठ पर संघ के विषय में लिखा है कि—

"नवीन भविष्य वाणी पंजाब शास्त्रार्थ संघ, जैनदर्शन की जन्मपत्री के देखने से ज्ञात होता है कि इसका लग्नेश उच्च होने पर भी नीच ग्रहों के साथ है तथा केन्द्र का स्वामी भी नीच भाव का है, इससे यह विजातिवाला ही नहीं, किंतु अपने संघ में जाति पांति लोपक बनेगा। किन्तु जब तक इस पर मंगल की दृष्टि रहेगी, दबा रहेगा। परन्तु मंगल की दृष्टि समझ कर अन्य संघ के ग्रह उपग्रह बल बढ़ाते रहेंगे। यदि मंगल और शिवग्रह की दृष्टि अपने में होगई तो भंडाफोड हो जावेगा।"

यह परंच-परंच लिखने वाले कौन से व्रती, अव्रती शर्मीले पंडित जी हैं यह हमको पता है. उनका निजी व्यक्तित्व कितना निर्मल है यह भी भली भाँति ज्ञात है, किन्तु जो मनुष्य कायरतासे अपना मुख महिलाओं के समान छिपाता है, उस का नाम प्रकाशित करना भी उचित नहीं। इस कारण हम लेखक के व्यक्तित्वको हाथ न लगाकर मूल बात पर आते हैं।

महासभा के थूबोन अधिवेशन के समय विजातिविवाह विषय पर श्रीमान पं० राजेन्द्र कुमार जी की कुछ विद्वानों के साथ ज़ोरदार झड़प हुई थी तथा शास्त्रार्थ संघ ने चर्चासागर के गोबरादि प्रकरणों का समर्थन नहीं किया, ये ही मूल दो बातें हैं जो कि चर्चासागर समर्थक पंडित मंडली का रोषभाव शास्त्रार्थ संघ पर पैदा कराती हैं। उसी दूषितभाव से प्रेरित होकर अन्य

उपाय न देखकर अब यों शास्त्रार्थसंघ की जन्म-कुण्डली मिलाई जाने लगी है।

शास्त्रार्थ संघ तथा जैनदर्शन के तुच्छ सेवक के नाते से हम खंडेलवाल हितेच्छु को तथा उनके संपादक श्रीमान पं० इन्द्रलालजी शास्त्रीको सादर निमन्त्रण देते हैं कि उन्होंने शास्त्रार्थ संघ तथा जैनदर्शन में जो नीचभाव समझ रक्खा है उस का तुरंत भंडाफोड कर दें। यों गुप चुप रूप से लिखकर अपनी लेखनी को व्यर्थ खराब न करें।

यदि शास्त्रार्थ संघ और जैनदर्शन नीच भावों से भरा है तो उसको तत्काल सदाके लिये लो आना चाहिये। धार्मिक तथा सामाजिक सेवामें कूट कपट रखना अमिट पाप है। उसका रहस्य उद्घाटन जितना शीघ्र हो उतना अच्छा है।

खेद है कि विचित्र षड्यंत्रोंसे मिश्रलोग स्वार्थ-साधन कर जैन समाज को भरमाते हैं। इस बात को विचारशील महानुभाव भी अच्छी तरह जानते हैं। किन्तु विरोधी मित्रोंको ख़याल रहना चाहिये कि सत्य, असत्य परनिन्दा ही आत्म उज्वलता का प्रमाण नहीं। ऐसी मायामयी उज्वलता कपूर की तरह उड़ जायेगी।

हमको दुख है कि हितेच्छु ने विवश करके जैनदर्शन का कुछ स्थान व्यर्थ काला कराया है। किन्तु हम भूलते हैं—इस प्रकार गाली गलौज कर मैटर पूरा करना तो खंडेलवाल जैन हितेच्छु का नित्यनियम है, ऐसा न करे तो शायद उसके १६ पृष्ठ पूरे न होवें। जैनसमाजका उद्धार और जैनधर्म का प्रचार भी उसके ऐसे लेखोंसे ही होगा!

आगत पत्रों का सार!

[१]

गत २२ सितम्बर के वेंकटेश्वरसमाचार में जो वैद्य रामेश्वरानन्द जी ने परशुरामावतार शीर्षक लेख छपाया था जिसमें कि उन्होंने भगवान ऋषभदेव और महात्मा बुद्ध को शूद्रवर्णी अवतार बतलाया था, उसका प्रतिवाद जैनदर्शन के सातवें अङ्क में किया गया था। तथा उस विषयमें शास्त्रार्थ संघ की ओर से वैद्यजी के साथ लिखा पढ़ी की गई थी। पत्र व्यवहार में वैद्य जी ने जो समाधान किया है उसका सार यह है—

भगवान अपने अंगरूप चारों वर्णों की रक्षा अवतार लेकर किया करता है; जैसे परशुराम अवतार लेकर ब्राह्मणवर्णको रक्षा की, रामावतारसे राक्षस ब्राह्मणोंसे क्षत्रिय वर्णको सुरक्षित रक्खा, कृष्णावतार में गोपालनादि कर्मों से वैश्यवर्ण की रक्षा की। इसी प्रकार भगवान ने ऋषभ अवतार तथा बुद्ध अवतार में सेवा का महत्व बतलाते हुए, हिंसकों को आदर्श शिक्षा देकर शूद्रवर्ण का रक्षण किया।"

यह हमारे लेखका आशय है; व्यक्तिगत आक्षेप या अपमान करने का हमारा अभिप्राय नहीं था।

[२]

ला० खुशीराम जी जैन आगरा लिखते हैं

कि सासनी में बहुत पहले समय का पल्लीवालों द्वारा बनवाया हुआ एक दि० जैन मंदिर है। सासनी में अब पल्लीवालोंके न रहने से उसका प्रबन्ध पीछे से आकर बसे हुए एक खण्डेलवाल परिवार के हाथ में है। मंदिरका भंडार लगभग बीस हजार रुपये का है। सो उसका हिसाब खंडेलवाल भाई प्रगट नहीं करते हैं। उनसे निवेदन है कि वे हिसाब प्रगट करदें।

सं० अभिमत—मंदिरोंका भंडार आदि धर्मादे के द्रव्य का संपर्क अपने साथ किसी भी भाई को नहीं रखना चाहिये, क्योंकि यह द्रव्य प्रमाद से यदि कहीं ज़रा भी अपने घरमें आजावे तो घरका समस्त वैभव नष्ट हो जाता है, ऐसे अनेक उदाहरण जैन समाज में प्रत्यक्ष दीख रहे हैं।

इस कारण धर्मादे के द्रव्य से मंदिरका खर्च निर्विघ्न चालू रखने के लिए १. स्थायी आमदनी वाली दुकानें, मकान आदि अचल संपत्ति खरीद लेनी चाहिये २. अपने यहाँ के अथवा किसी तीर्थ स्थान के मंदिर धर्मशाला आदि का जीर्णोद्धार करा देना चाहिये ३. जिस जैनियों की बस्ती में जिन मंदिर न हो वहां मंदिर बनवा देना चाहिये ४. अजैन जनता में जैनधर्म का प्रचार करने के लिये अजैन शिक्षित लोगों को जैनग्रंथ बिना मूल्य बांटने चाहियें। इत्यादि उपयोगी कार्य उस धर्मादे के द्रव्य से नेकनीयती के साथ करना चाहियें। तथा हिसाब प्रकाशित करते रहना आवश्यक है, क्योंकि हिसाब की सफ़ाई अन्य सफ़ाइयों से अधिक प्रशंसनीय एवं मुख्य है।

[३]

श्रीमान पं० बाबूराम जी बजाज़ मंत्री—जीवदयाप्रचारिणी सभा आगरा का छपा हुआ ४ पृष्ठ का पैम्फलेट छपने आया है जिसको हम स्थानाभावसे तथा पारस्परिक झगड़े का विषय होने से नहीं छाप सकते। इस पैम्फलेट में आपने ज़ोरदार शब्दोंमें अपने ऊपर होने वाले आक्षेपों को सफ़ाई दी है।

आपका कहना है कि ता० ८—१०—३३ की सभामें मुझसे वैमनस्य रखने वाले कुछ लोगों ने मुझपर असह्य अपमान जनक कटाक्ष किये थे। उनही लोगोंको संबोधन करके मैंने उत्तर दिया था। आगरा जैन पंचायत का मैंने अपमान नहीं किया, आदि।

इस पर्चेमें बेलनगंज पंचायतसे ६ प्रश्न तथा समस्त आगरा दि० जैनपंचायतसे ६ प्रश्न भी किये गये हैं।

उभय पक्ष का सारांश जैनदर्शनके प्रस्तुत तथा गत आठवें अंकमें प्रकाशित हो गया है। जैनदर्शनमें झगडालू लेख स्थान नहीं पाते, अतः निवेदन है कि भविष्यमें हमारे पास कोई भी महानुभाव इस झगड़े का लेख न भेजें। यदि भेजेंगे तो उनको जैनदर्शनमें स्थान नहीं दिया जा सकेगा।

जैन न्याय के इतिहास पर एक दृष्टि !

[लेखक—श्रीमान पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री]

जैन न्याय के इतिहास का सिंहावलोकन करने से पूर्व न्याय शब्द का आशय जान लेना आवश्यक है। दार्शनिक ग्रन्थोंमें न्याय शब्द की अनेक परिभाषायें पाई जाती हैं। यथा.—

प्रमाण से अर्थ की परीक्षा करना न्याय है। प्रत्यक्ष और आगमके अनुकूल अनुमान को अन्वीक्षा कहते हैं। न्याय शास्त्र में वस्तु तत्व की सिद्धि के लिये अन्वीक्षा, प्रत्यक्ष और आगम के अनुकूल अनुमान की प्रधानता रहती है, अतः उसे आन्वीक्षिकी भी कहते हैं। यदि अनुमान प्रत्यक्ष और आगम के अनुकूल न हो तो वह न्याय नहीं न्यायाभास है *।

प्रकृत अर्थ का ज्ञापन कराने वाले परार्थानुमान को न्याय कहते हैं †। अनित्यत्व, अस्तित्व आदि वस्तु धर्मों का निर्बाधज्ञान कराने वाले तर्क शास्त्र को न्याय कहते हैं ‡।

जो अनिश्चित और निर्बाध वस्तुतत्व का ज्ञान कराता है वह न्याय कहलाता है ÷।

युक्ति शास्त्र को भी न्याय कहते हैं। +

बौद्ध और जैन दर्शन की उक्त परिभाषाओं का यही सार है कि वस्तु तत्वकी स्थापना और न्याय परीक्षा में जिन साधनों को आवश्यकता पड़ती है वे साधन न्याय के नाम से पुकारे जाते हैं। तर्क और युक्ति न्याय के ही नामान्तर हैं।

"प्रमाण और न्याय"

न्याय शास्त्र का उद्देश्य है "वस्तु व्यवस्था" और प्रमाण का भी उद्देश्य यही है, अतः दोनोंमें कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता। बौद्ध और जैन नैयायिकों के शुद्ध न्याय के ग्रन्थ "न्याय प्रवेश" "न्याय बिन्दु" "परीक्षामुख" "प्रमाणनयतत्वालोक" के अवलोकन से भी उक्त मतका ही समर्थन होता है। क्योंकि उन ग्रन्थों में प्रमाण का ही वर्णन पाया जाता है।

किन्तु यदि हम न्याय शास्त्र के क्रमिक विकास के इतिहास पर दृष्टि डालें तो न्याय दर्शन के

* प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः—प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानं सा अन्वीक्षा। प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्यान्वीक्षणमन्वीक्षा, तया वर्तते, इत्यान्वीक्षिकी न्याय विद्या न्याय शास्त्रम्, यत्पुनरनुमान प्रत्यक्षागम विरुद्ध न्यायाभास सः [न्यायदर्शन वात्स्यायनभाष्य]

† नीयते ज्ञाप्यते विवक्षितार्थोऽनेनेति न्यायः [न्याय कुसुमाञ्जलि वरदराज]

‡ नितरामीयन्ते गम्यन्ते गत्यर्थाना ज्ञानार्थत्वात ज्ञायन्तेऽर्था अनित्यत्वास्तित्वादयोऽनेनेति न्यायः तर्क मार्गः [न्याय प्रवेशवृत्ति पञ्जिका]

÷ अनिश्चितं निर्बाधश्च वस्तुतत्व नीयतेऽनेनेति न्यायः [न्याय विनिश्चयालकारः]

+ युक्ति शास्त्रमपि न्यायः [प्रमेयरत्नमाला टिप्पणी पृष्ठ ३]

टीकाकारों के मन्तव्य के अनुसार न्याय शब्दका शुद्ध आशय हेतुवाद या युक्तिवाद ही ठीक प्रतीत होता है, जैसा कि बौद्धों के "न्यायः तर्कमार्गः" तथा जैनों के "युक्तिशास्त्रमपि न्यायः" वाक्य में प्रकट है। अपने कथन को स्पष्ट करने के लिये हमें न्याय शास्त्र के विकास का सिंहावलोकन करना आवश्यक है।

भारतीय दर्शन साहित्य में कणाद का वैशेषिक दर्शन बहुत प्राचीन माना जाताहै। उसकी रचना प्रमेय-बहुल है, प्रमेय की साधक अनुमान प्रणाली का संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र करा दिया गया है, किन्तु कणादके अनुगामी गौतम के न्याय दर्शन में बिलकुल विपरीतता पाई जाती है, गौतमके कणादके षट् पदार्थ वादको अपना कर भी पदार्थ के साधक उपाय विशेषतया अनुमान प्रमाण की चर्चा में ही अपनी बुद्धि कौशल की इतिश्री करदी है और प्रतिवादीको पराजित करने के लिये शास्त्रार्थ के उपयोगी जल्प वितण्डा हेत्वाभास छल जाति आदि उपायोंके ज्ञानको मोक्षके ज्ञानका जनक मानाहै। न्याय दर्शन की रचना से पता चलता है कि उस समय वैशेषिक के षट् पदार्थ-वाद पर प्रतिवादियोंके जबर्दस्त आक्रमण होतेथे, जिनसे बचने के लिये गौतम मुनिने न्याय दर्शन के सुदृढ दुर्गका निर्माण किया।

बौद्धदर्शन के प्रारम्भिक काल में भी न्याय शास्त्र का विकास नहीं होसका था, मध्यम काल में जब बौद्ध दर्शन पर प्रतिवादियों के प्रहार होने लगे तब दिग्नाग आदि बौद्ध विद्वानों ने न्याय शास्त्र पर अपनी लेखनी उठाई और शुद्ध न्याय के अनेक ग्रन्थों की रचना कर डाली।

इसी तरह जैन दर्शन का प्रारम्भिक काल न्याय शास्त्र में कोई महत्व नहीं रखता, किन्तु बौद्ध तथा मीमांसक नैयायिकों के संघर्ष काल में ही जैनदर्शन में न्याय का विकास हुआ था, जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा।

इसी तरह भारतवर्ष के तीन प्रमुख न्याय "गौतमीय न्याय" जैनन्याय और बौद्ध न्याय के विकास से प्रमाणित होता है कि संघर्षकाल में ही न्यायशास्त्रका विकास हुआ, अर्थात् दार्शनिकों को प्रतिवादियों के आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिये हेतुवाद को पल्लवित करना पड़ा, अतः न्यायका अर्थ हेतुवाद या युक्तिवाद संगत होता है।

यदि न्याय का शुद्ध आशय हेतुवाद ही है तो न्याय शास्त्र के रचयिताओंने अपने न्याय के ग्रन्थों में केवल हेतुवाद का वर्णन न करके प्रमाण मात्र का वर्णन क्यों किया?

इस तर्क का समाधान स्पष्ट है, दर्शनकार को जिन लोगों के सामने अपनी मानी हुई वस्तु के स्वरूप का स्थापन करना होता है, वे दो भागों में विभक्त हैं, एक दर्शनकार के मन्तव्य से सहमत या तटस्थदल, दूसरा विरोधी दल। सहमत या तटस्थ दलके संतोष के लिए साधारण युक्तियां और प्रत्यक्ष आगमादि प्रमाणोंकी व्यवस्था ही पर्याप्त समझी जाती है, किन्तु उक्त दोनों उपायों से विरोधी दलका संतोष नहीं हो सक्ता, अतः दर्शनकार प्रखर हेतुवाद का अवलम्बन लेता है। न्याय शास्त्र के ग्रन्थों में प्रमाण मात्रके वर्णन किये जाने का यही मूल कारण है।

न्याय शब्द का आशय तथा प्रमाण के साथ

उसका समीकरण बतला कर अब हम प्रकृत विषयपर आते हैं। हम ऊपर लिख आये हैं कि वैदिक और बौद्ध साहित्य की तरह जैन साहित्य के प्रारम्भिक काल में भी न्याय की ओर किसी का विशेष लक्ष्य न था। प्रथम शताब्दी के विद्वान् आचार्य श्री कुन्दकुन्द के "प्रवचनसार" नामक ग्रन्थ में यद्यपि तर्क पूर्ण दार्शनिक शैली का अवलम्बन लिया गया है तथापि उसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण के सामान्य लक्षण के अतिरिक्त निर्णय करने के अन्य उपायों की ओर कोई संकेत नहीं किया गया। हां उनके उत्तराधिकारी आचार्य उमास्वामि ने अपने तत्वार्थ सूत्र में 'मतिःस्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्' सूत्रके द्वारा न्यायोपयोगी सामग्री का अवश्य संकेत किया है।

"भगवतीसूत्र" "नन्दीसूत्र" स्थानांग आदि श्वेताम्बरीय आगम ग्रन्थों* में किसी किसी स्थल पर न्याय का आभास पाया जाता है दशवैकालिक सूत्र पर रचित भद्रबाहु की निर्युक्ति में "कत्थइ उदाहरणम् कत्थइ पंचावयवम् दस हा" आदि वाक्यों द्वारा अनुमान के अवयवों का उल्लेख मिलता है, जिससे अनुमान किया जाता है कि उससमय तक जैन न्याय शास्त्रका कोई स्वतंत्र रूप निर्धारित न हो सका था। स्वामी समन्तभद्र तथा उनके समकालीन कहे जाने वाले सिद्धसेन दिवाकर" ने सर्वप्रथम उसमें अपना पग बढ़ाया। जैन वाङ्मय में सर्वप्रथम न्यायशब्दके उल्लेख करने का श्रेय सम्भवतः इन्हीं दोनों तार्किकों को है।

यद्यपि न्याय शब्द से जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं हेतुवाद का ही बोध होता है, तथापि अनेकान्तवादी जैनदर्शन में अनेकान्त वाद के साधक स्याद्वाद, सप्त भंगीवाद, नयवादभी न्याय शास्त्रसे सम्मिलित समझे जाते हैं, जैसाकि स्वामी समन्तभद्रके निम्नलिखित वाक्य से प्रकट है:—

"स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्म विद्विषाम्"

(स्वयम्भू स्तोत्र श्लोक सं० १०२)

स्वामी समन्तभद्र ने अपने आप्तमीमांसा नामक प्रकरण में जैन न्याय के प्राण स्वरूप स्याद्वाद का अनुपम निरूपण किया है उन्होंने सत्, असत्, नित्य, अनित्य, द्वैत, अद्वैत, सामान्य, विशेष, आदि परस्पर विरोधी कहे जाने वाले वस्तु धर्मों का ही समन्वय करने का ही प्रयास नहीं किया किन्तु युक्ति वाद और आगमवाद जैसे वस्तु विवेचक मन्तव्यों को भी अनेकान्त दृष्टि की तुलामें तोला है। इसी तरह दिवाकर जी ने भी अपनी "सम्मतितर्क" नामक प्रकरण में नयवाद वगैरह का अपूर्व निरूपण किया है। उन्होंने अपने "न्यायावतार" ग्रन्थ में प्रमाण का प्रदर्शन करते हुये परार्थानुमान का विस्तृत वर्णन कियाहै। दिवाकरजीसे पहिले जैनदर्शनका अनुमान प्रमाण स्वार्थ और परार्थ के भेद से विभाजित न होसका था।

इसलिये परार्थानुमान जैन न्याय शास्त्रकी दृष्टि से एक नवीन वस्तु थी, जिसे दिवाकर जी ने समर्पित किया।

[क्रमशः]

* श्वेताम्बरीय सूत्र ग्रन्थों की रचना वीर स० ९८० या विक्रम स० ५१० में हुई है, जैसा कि कल्पसूत्रादि से स्पष्ट है। देखिये — वल्लहिपुरम्मि नयरे, देवड्ढिपमुह सयल संघेहि। पुत्थे आगमलिहिओ, नवसय असीआओ वीराओ॥

अर्थात्—वल्लभीपुर नगर में देवर्द्धिगणी आदि समस्त संघ ने वीर सं० ९८० में आगम पुस्तक रूप रचे।—अ० कु०

भारत के शासक और जैनधर्म।

[लेखक—श्रीमान् बा० कामताप्रसाद जी]

[क्रमागत]

[४]

सम्राट् कुंथुनाथ।

सम्राट् कुंथुनाथका जन्मस्थान हस्तिनागपुर था। वह कुरुवंशी राजा शूरसेन के सुपुत्र थे। उनकी माता का नाम कान्ता था। युवा होने पर राजा शूरसेन ने उनका राजतिलक कर दिया। जब वह राजा हो गये और सारे लोक में न्याय को फैलाने के लिये उन्होंने अपनी सेना के साथ छहों खंडों को विजय किया। अब वह आनन्दपूर्वक राजसी भोग भोगने लगे। एक दिन जब वह बनक्रीड़ा से लौट रहे थे तो उन्होंने मार्ग में एक मुनिराज को तप तपते देखा। मुनि को देखते ही उन्हें वैराग्य हो आया। वह घर छोड़ कर कुंथु आदि जीवमात्र की रक्षा करने के भाव से बन में जा बसे। वहां उन्होंने घोर तपस्या तपी, जिसके फलस्वरूप उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। अब वह सार्थक नाम थे। लोग आजतक उन राज-चक्रवर्ती और धर्मचक्रवर्ती (तीर्थङ्कर) की उपासना करते हैं।

सम्राट् अरहनाथ।

श्री कुंथुनाथ के समान श्री अरहनाथ भी चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनका जन्म भी हस्तिनागपुर में हुआ था। वह सोमवंश काश्यपगोत्र के रत्न थे। हस्तिनागपुर में तब राजा सुदर्शन राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम मित्रसेना था। अरहनाथजी का जन्म उन्हीं की पवित्र कोख से हुआ था। जब आप पच्चीस वर्ष अपनी आयु को पूर्ण कर चुके तब आपका राज्याभिषेक एक माण्डलिक राजा के रूप में हुआ। बहुत समय तक आपने माण्डलिक राजा होकर राज्य किया। उपरान्त आप छहों खण्ड पृथिवी की दिग्विजय के लिये निकले और उसमें सफल मनोरथ हुए। प्रजाने तब आपको चक्रवर्ती सम्राट् घोषित किया। अरहनाथ जी ने प्रजा का पालन समुचित रीति से किया था। वृद्धावस्था के निकट पहुँचने पर उन्होंने तपस्या द्वारा कर्मों से जूझने में अपना कौशल दिखाया। आखिर वह सर्वज्ञ परमात्मा होकर मोक्ष पधारे।

चक्रवर्ती सुभौम।

कर्मभूमिकी आदि में जो असंतोष आर्यजनता में घर कर गया था, उसकी जड़ उसके हृदय में जमी रही। अनेक बार उसे धर्म उपदेश सुनने को मिला, किन्तु भावी बलवान होने के कारण वह प्राय हृदय को शुद्ध नहीं कर सकी। आखिर असन्तोष चरमसीमा को पहुँच गया। धर्म और समाज की व्यवस्था जहां राष्ट्रोन्नति के लिये की गई थी, वहाँ वह उसके नाश के कारण बन गये। क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ण के लोगों में ज़ोरों की आग धधकी। परशुराम ने क्षत्रियों को निःशेष करने की ठान ली और उसने किया भी वही! एकदा सारी

पृथिवी क्षत्रिय-हीन बना दी गई। जो बचे वे वेश बदल कर छिप रहे। किन्तु यह अत्याचार अधिक न चल सका—सब दिन एकसे नहीं होते। परशुराम के टखने तोड़ने वाला भी एक दिन पैदा हो गया। यह चक्रवर्ती सुभौम था। जिस समय मुग़ल-शासन संकट में था, उस समय उसके उद्धारक अकबर का जन्म सिन्ध देश के एक अज्ञात स्थान—उमरकोट—में हुआ था! बादशाह के घर लड़का जन्मा, पर उत्सव नाममात्र का भी न हो सका! सुभौम का जन्म भी ऐसे ही आपत्तिमय वातावरण में हुआ था। क्या प्रकृति महाराणी महापुरुषों के जन्मते ही उनको परीक्षाओं और आपत्तियों में दृढ रहने का पाठ पढ़ाने के लिये यह करती है? कुछ हो, उनकी महानता इसी में है; निस्सन्देह!

अच्छा तो जब सुभौम जन्मे तब न उनके पिता जीवित थे और न भाई ही। दोनों ही परशुरामकी तलवारके घाट उतर चुके थे। वे अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रियों के रत्न थे। सुभौम के पिता राजा सहस्रबाहु अपने पीछे रानी चित्रमति ही को एक मात्र छोड़ गए थे। वह बेचारी गर्भभार को लिये एक तापसाश्रम में जा रही। सिद्धार्थ ऋषि ने उसे धर्मबोध कराया था। आखिर वहीं रानी चित्रमति ने एक पुत्र प्रसव किया। यही सुभौम थे और हुये क्षत्रियोंके उद्धारक और संरक्षक। मुनि सुसिद्धार्थ ने उसे देखकर आशीर्वाद दिया और अपने भविष्यवक्तव्य में कहा कि 'यह बालक अपने सोलहवें वर्ष में चक्रवर्ती सम्राट् होगा!'

हुआ भी यही! जैनमुनिकी भविष्यवाणी ठीक उतरी!! तापसाश्रम में रहकर सुभौम योग्य और साहसी वीर बने। वह क्षत्रियों के उद्धार के लिये शक्तिसंचय करने में लग गये। परशुराम को भी इस बात का पता चला। उन्होंने वैरी को ढूंढ निकाला। वह सुभौम को मारने पर तुल गये। सुभौमके साहस और शौर्य की परीक्षा का समय आया और वह उसमें सोलहटंच ठीक उतरे! सुभौम के हाथों परशुरामकी जीवन लीला समाप्त हुई।

अब सुभौम निष्कंटक होकर संसार से स्वार्थ और अन्यायका आतङ्क दूर करने के लिए निकल पड़े। उन्होंने शीघ्र ही छहों खंड पृथ्वीको जीत लिया और उनका चक्रवर्ती-सम्राट् पद का अभिषेक हुआ! क्षत्रियों को फिर एक बार चैन मिली—वे सुखकी सांस ले सके!

सुभौम महान् सम्राट् हुए, परन्तु उनमें एक ऐब था। वह जिह्वालम्पटी थे और अपनी जिह्वा-लम्पटता के कारण उन्हें असमयमें ही अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। राजा को अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखना प्रत्येक बात में आवश्यक है। उसका जीवन महान् ऐश्वर्य के होते हुए भी त्याग और सेवा का जीवन है। यदि वह अपने राजधर्म से विमुख होकर एकमात्र ऐश्वर्य के भोग में लग जाय तो निस्सन्देह उसका पतन होगा। सुभौम जब तक राजधर्म पर दृढ़ रहा, तब तक वह संसार में पुजता रहा, किन्तु ज्योंही उसने 'स्वाद' के लिए अन्याय पर कमर कसी, कि वह धर्म से नीचे गिरा और मृत्यु में ही उसको सान्त्वना मिली! इस तरह के थे सम्राट् सुभौम!

———

[क्रमशः]

[६]
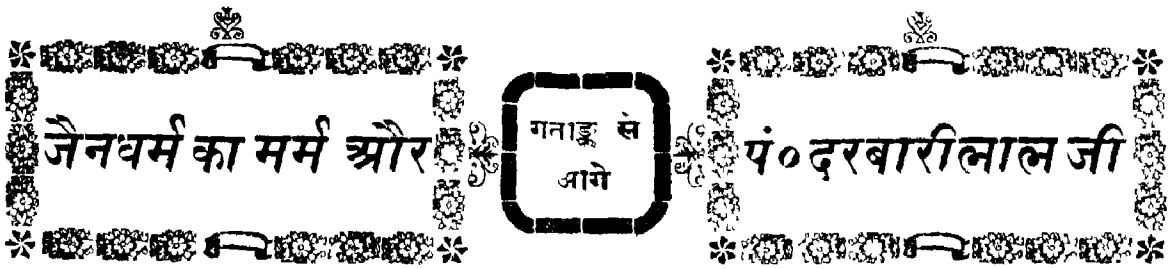
युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना।

पाँचवीं युक्ति की आलोचना करने से पूर्व दरबारीलाल जी ने उसको निम्नलिखित शब्दों में लिखा है :—

"ज्ञान स्वभाव सब आत्माओं का एक बराबर है। उसमें जो न्यूनाधिकता है वह ज्ञानावरण कर्मसे है। जब ज्ञानावरण कर्म चला जायगा तब जिनका ज्ञानावरण कर्म जायगा उन सबका ज्ञान एक बराबर हो जायगा। इस शुद्ध ज्ञान की मर्यादा अगर वास्तविक अनन्त ज्ञानस्वरूप नहीं है तो कितनी है"।

यहाँ भी दरबारीलाल जी ने पूर्व पक्ष का प्रतिपादन ठीक २ नहीं किया। जिसको आप पाँचवीं युक्ति बतला रहे हैं वास्तव में वह पांचवीं युक्ति नहीं। यह तो एक प्रश्न है जैसा कि इसकी भाषा से स्पष्ट है। प्रश्न और पूर्व पक्ष में बड़ा अन्तर है। जहां पहिला किसी विषय को सिद्ध या उसका खण्डन करता है, वहीं दूसरा उसके सम्बन्ध में जानकारी को बतलाता है। विद्वान लेखक ने यदि मूलवाक्यों को जिनका भाव कि उन्होंने यहां लिखा है लिखकर उनका भाव लिखा होता तो इसके सम्बन्ध में पाठकों को और भी विशेष परिचय प्राप्त हो सकता था। क्या हम आशा कर सकते हैं कि आप अब हमारी इस लेख माला के सम्बन्धमें अपने वक्तव्यके साथ ही साथ उन मूल वाक्यों को भी लिखने का कष्ट उठावेंगे जिनके आधार से कि आपने यह लिखा है!

सर्वज्ञ सिद्धि के सम्बन्ध में जैनाचार्यों की इस ढगकी यदि कोई युक्ति हो सकती है तो वह यह है कि कोई आत्मा विशेष सर्वज्ञ है सम्पूर्ण पदार्थों के जानने का स्वभाव होकर आवरणों के हट जाने से *। जिसका जैसा स्वभाव होता है प्रतिबन्धक के दूर हो जाने से वह वैसा ही होजाया करता है; जैसे अग्नि में दाहकत्व। आत्मा का सम्पूर्ण पदार्थों के जानने का स्वभाव है तथा प्रतिबन्धक भी दूर होगये हैं, अतः यह सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञाता है।

जहाँ तक इस कथन का आवरणों के नाश से सम्बन्ध है वहां तक तो इसके सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं, क्योंकि ज्ञान से सम्पूर्ण आवरणों का अभाव तो दरबारीलालजी ने भी स्वीकार

* कश्चिदात्मा सकल पदार्थ साक्षात्कारी तद्ग्रहण स्वभावत्वे सति प्रक्षीण प्रतिबन्ध प्रत्ययत्वात्।

—प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ० ७०

किया है ! आत्माके सम्पूर्ण पदार्थों के जानने के स्वभाव को दरबारीलाल जी स्वीकार नहीं करते। आपने इसके सम्बन्ध में दो बाधायें उपस्थित की हैं—एक अनन्त पदार्थों के ज्ञान के सम्बन्धकी और दूसरी भूत पदार्थों के ज्ञान के संबंध की ।

अनन्त के ज्ञान के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित बाधायें उपस्थित की हैं:—

"जब केवलज्ञान के द्वारा वस्तु की अन्तिम पर्याय जान ली जाय तभी यह कहा जा सकता है कि केवलज्ञान से पूरी वस्तु जान ली गयी. परन्तु वस्तु तो अनन्त है, इसलिये केवलज्ञान के द्वारा भी वस्तु का अनन्तपना नहीं जाना जा सकता। तब केवलज्ञान से पूरी वस्तु जान ली गई, यह कैसे कहा जा सकता है ? मतलब यह है कि अगर केवलज्ञान वस्तु की सब पर्यायोंको जानले तो वस्तु का अन्त हो जाय अथवा यदि वस्तु का अन्त न मिलेगा तो पूर्ण वस्तु का ज्ञान न होगा। इस प्रकार या तो वस्तु को सान्त मानना पड़ेगा या केवलज्ञान को सान्त मानना पड़ेगा, परन्तु वस्तु का अन्त कभी हो नहीं सक्ता. उसकी सिर्फ पर्यायें बदलती हैं, इसलिए केवलज्ञानको ही सान्त मानना पड़ेगा" ।

—जैन जगत वर्ष ८ अंक ११ पेज १०

जैनदर्शन जिस प्रकार ज्ञेयको अनन्त मानताहै उसही प्रकार ज्ञान को भी । अनन्तके द्वारा अनन्त का ज्ञान होजाता है । अतः न वस्तु को ही सान्त मानने की आवश्यक्ता पड़ती है और न ज्ञान को ही ! इसको यों समझना चाहिये कि ज्ञेय के स्थानापन्न एक लोहे की पटरी है और ज्ञान के स्थानापन्न एक सीसे की पटरी तथा दोनों ही अनन्त हैं । ऐसी अवस्था में लोहे की पटरी सीसे की पटरी में प्रतिविम्बित भी होजायगी और दोनों अनन्त भी बनी रहेंगी । हां यदि सीसे की पटरी सान्त मानली जाय तब तो यह आपत्ति उपस्थित की जा सक्ती है कि लोहे की पटरी उस में प्रतिविम्बित नहीं हो सक्ती और यदि उसमें उसका प्रतिविम्बित होना मानेंगे तो उस को भी सान्त मानना पड़ेगा ।

जिस प्रकार प्रतिविम्बित होने और सान्त की व्याप्ति नहीं, उसही प्रकार ज्ञान होने और सान्त की भी । इसके सम्बन्ध में स्वयं ज्ञानको ही दृष्टान्त में उपस्थित किया जा सक्ता है ।

ज्ञान स्वपर प्रकाशक है और उसका अनादि से आत्मा में अस्तित्व है, यह बात ऐसी है जिसको दरबारीलाल जी भी स्वीकार करते हैं । आज तक ज्ञान की अनन्त पर्यायें हो चुकी हैं और अनन्तों में ही उसने अपना प्रकाश किया है । फिर भी भूतकाल में न ज्ञान की दृष्टि से ही उसका अन्त माना जा सक्ता है और न ज्ञेय की दृष्टि से ही । यहां स्व के स्थान में पर प्रकाशकत्व और पर के स्थान में सुख गुण या अन्य पदार्थों को लेकर भी यह बात घटित की जा सक्ती है । दूर जाने की ज़रूरत नहीं, दरबारीलाल जी की व्याख्यानुसार सर्वज्ञ को ही यहां दृष्टान्त में ले लीजियेगा । आपके कथनानुसार सर्वज्ञ का ज्ञान असंख्य पदार्थों को जानता है, किन्तु उस का यह ज्ञान अनन्त है अर्थात अनन्त काल तक असंख्य पदार्थों को जानता रहेगा । (अनन्त × असंख्य) ऐसी अवस्था में वह भी अनन्त पदार्थों का ज्ञाता ही ठहरता है ।

इससे स्पष्ट है कि पदार्थों की अनन्त संख्या सर्वज्ञ के वर्तमान स्वरूप में बाधक नहीं * । भूत पदार्थों के ज्ञान के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित वक्तव्य उपस्थित किया है—

> "कोई पदार्थ कितना भी दूर हो, फिर भी संभव है उसका प्रत्यक्ष हो जाय, क्योंकि दूर और व्यवहित होने पर भी कम से कम वह है तो, परन्तु जो वस्तु है ही नहीं उस का प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है। अगर असत् का भी प्रत्यक्ष होने लगे तो खरविषाण का प्रत्यक्ष भी होगा। इसलिए केवलज्ञान के द्वारा वस्तु की वर्तमान पर्यायों का ही प्रत्यक्ष हो सकता है, भूत भविष्यत की अनन्त पर्यायों का नहीं। क्योंकि प्रत्यक्ष करते समय उनका अस्तित्व ही नहीं"

भूत पदार्थ वर्तमान में नहीं हैं, फिर भी वे अपने समय में थे, किन्तु खरविषाण न अभी है और न पहिले हो था। इसका होना तो किसी समय भी नहीं। अतः भूत पदार्थों के ज्ञान के सम्बन्ध में खरविषाण के ज्ञान की बाधा ठीक नहीं। हाँ यदि हमारा कथन यह होता कि जिस काल की दृष्टि से जिस पदार्थ का ज्ञान किया जाय उस काल में भी उसका अस्तित्व अनिवार्य नहीं, तब तो खर विषाण के ज्ञान की बात कही जा सकती थी, किन्तु हम ऐसा कह नहीं रहे। हमारा तो यह कहना है कि सत् पदार्थ का ही प्रत्यक्ष होता है, चाहे वह अभी सत् हो या रहा हो अथवा रहने वाला हो। इस प्रकार की कोई भी बात खरविषाण के सम्बन्ध में लागू नहीं होती। अतः दरबारीलाल जी को इसके सम्बन्ध में आपत्ति उपस्थित करना ठीक नहीं।

दूसरी बात यह है कि यदि दूर और व्यवहित पदार्थों का भी प्रत्यक्ष हो सका है तो भूतकाल के पदार्थों का क्यों नहीं ? जिस प्रकार यह पदार्थ क्षेत्र व्यवहित हैं उसी प्रकार वे काल व्यवहित । जिस प्रकार ये पदार्थ ज्ञाता के क्षेत्र में नहीं उस ही प्रकार वे ज्ञाता के कालमें। जिस प्रकार इनको अपने क्षेत्र में ही जाना जाता है न कि ज्ञाता के क्षेत्र में, उसही प्रकार उनको भी अपने ही काल में न कि ज्ञाता के काल में। यदि क्षेत्र ज्ञाता और ज्ञेय के बीच में रहता हुआ भी रुकावट नहीं डाल सका तो काल ही कैसे डाल सका है ?

तीसरी बात यह है कि भूत और भविष्यत बातों के ज्ञान भी होते ही हैं। सत्य स्वप्न ज्ञान एवं भावना ज्ञानों से किसको इन्कार हो सका है और कौन कह सका है कि इस प्रकार के ज्ञानों के विषय भूत और भविष्यत पदार्थ नहीं ?

चौथी बात यह है कि भूत और भविष्यत बातों के सम्बन्ध में ज्ञान का होना तो पं० दरबारीलाल जी को भी मान्य है, क्योंकि वह यह स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार के पदार्थों का निर्णय अनुमानादिक से हो सकता है। यदि अन्तर है तो केवल इतना ही है कि वह इनके सम्बन्ध में ज्ञान मानकर भी प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं मानते।

प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञानों में जहाँ तक ज्ञान और उसके फल-ज्ञप्ति का सम्बन्ध है वहाँ तक इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं ! प्रत्यक्ष भी चेतना गुण का परिणमन स्वरूप है और परोक्ष भी।

---

* विशेष के लिए हमारी इसही लेखमाला का दूसरा और तीसरा लेख देखें।

इसी प्रकार प्रत्यक्ष से भी बाह्यार्थ के सम्बन्ध में अन्धकार दूर होता है और परोक्ष से भी। अंतर केवल इतना ही है कि पहिला स्वाधीन है और दूसरा पराधीन।

स्वाधीनता और पराधीनता के कारण ही इन के बाह्यार्थ प्रकाशन में अन्तर रहता है। या यों कहिये कि इनकी सबलता और निर्बलता से ही ये स्वाधीन और पराधीन होते हैं और फिर इसका प्रभाव बाह्यार्थ प्रकाशन पर पड़ता है। कुछ भी क्यों न सही, किन्तु यह तो एक स्वयं सिद्ध बात है कि परोक्ष की दृष्टि से प्रत्यक्ष कहीं प्रबल है। ऐसी अवस्था में यह कैसे कहा जा सकता है कि जिस को परोक्ष जान सकता है या जानता है उस को प्रत्यक्ष न जान सके या ऐसा करना उसकी शक्ति के बाहर की बात हो। स्पष्टता के लिए इस को यों समझियेगा कि एक आदमी है जो कि इन्द्रियों का दास है। जो २ पदार्थ उसके सामने आता है उस २ की तरफ़ उसका ध्यान आकर्षित हो जाता है और जब तक उस को उसकी प्राप्ति नहीं होती तब तक वह उसके वियोग में दुःखी बना रहता है। जैसे २ उसको अपने इच्छित पदार्थों की प्राप्ति होती जाती है तैसे २ उसके दुःख में भी कमी होती रहती है। अचानक इसके जीवन में परिवर्तन हो जाता है और यह पक्का इन्द्रिय-विजयी बन जाता है। इस अवस्था में इसको कोई भी पदार्थ विकारी नहीं बना सकता। यहां यदि कोई कहने लगे कि जो सुख इसको पहिले था वह अब नहीं है, क्योंकि सुखके साधन इससे दूर होचुके हैं तो यह उसका भोलापन है। पहिली अवस्था भी इसही के गुण का परिणमन था और वर्तमान भी। अन्तर केवल इतना ही है कि पहिले इसको बाह्य निमित्त थे, अब उनका अभाव है। पहिली अवस्था में निमित्तों का होना अनिवार्य था क्योंकि उनकी अनुपस्थिति ने ही इसकी अवस्था को बिगाड़ रक्खा था, किन्तु वर्तमान में उससे भिन्न है। पहिले यह इन्द्रियों का दास था तो अब इन्द्रियविजयी, पहिले इसको यदि अनुकूल अवस्था के लिये बाह्य साधनों की जरूरत थी तो अब नहीं। इससे स्पष्ट है कि इन्द्रिय दास होने से ही इसको बाह्य निमित्तों की आवश्यकता थी और वह बात इसमें है नहीं, अतः इसको उनकी जरूरत भी नहीं। अतः निश्चित है कि वैसा ही क्या उससे भी अधिक सुखी है।

यही बात ज्ञान के सम्बन्ध में है। जिस प्रकार यहां मन के आधीन न होने से अनुकूल अवस्था के लिये बाह्य साधनों की जरूरत है, उसी प्रकार ज्ञान का भी उसकी निर्बल अवस्था में। जैसे यह मन को स्वाधीन करके बिना बाह्य साधनों के भी वैसी ही अवस्था का अनुभव कर सकता है उसही प्रकार ज्ञान भी निर्बलता को दूर करके उन पदार्थों को बिना बाह्य निमित्तों की सहायता से जान सकता है जिनको कि वह बाह्य साधनों की सहायता से जानता था।

इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार पदार्थों की अनंत संख्या सर्वज्ञ के वर्तमान स्वरूप में बाधक नहीं, उसही प्रकार पदार्थों की भूत और भविष्यत अवस्थायें भी।

इस प्रकरण की अन्य आवश्यकीय बातों का, जैसे ज्ञान के स्वरूप को अस्ति नास्ति अवक्तव्य भंग से वर्णन करना, अनन्त के परिज्ञान बिना भी

आकाशादिक की अनन्तता का परिज्ञान होजाना आदि का समाधान एवं ज्ञान में सम्पूर्ण पदार्थों के जानने का स्वभाव है, इसके समर्थन को भी हम अपनी इसही लेखमाला के तीसरे लेख में कर चुके हैं। विज्ञ पाठक इसको भी वहीं से देखने की कृपा करें।

दरबारीलाल जी ने इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त दर्पणों का भी दिया है। आपका कहना है कि अनेक शुद्ध दर्पण हैं। ये शुद्धि की दृष्टि से तो समान हैं, किन्तु आकार इनके भिन्न हैं। इसही प्रकार जहां तक ज्ञान का शुद्धि से सम्बन्ध है वहां तक तो वे सब समान हैं, किन्तु जब यही बात बाह्य पदार्थों के परिज्ञान की दृष्टि से कही जाती है तबही इनमें असमानता आजाती है।

यदि थोडी देर के लिये अभ्युपगम सिद्धान्त से दरबारीलाल जी के इस दृष्टान्त को सत्य भी स्वीकार कर लिया जाय तब भी इसके आधार से ज्ञानों में बाह्य पदार्थ परिज्ञान की शक्ति में विभिन्नता सिद्ध नहीं की जासकी, क्योंकि दृष्टान्त पदार्थ-सिद्धि में बिलकुल अनुपयोगी है। इसका सहारा तो केवल भोले मनुष्यों के समझाने तक ही है।

दूसरी बात यह है कि दर्पण के आकारों में अन्तर हो सक्ता है, क्योंकि ये स्कंधरूप हैं तथा अवयवों की न्यूनाधिकता से स्कंधों में अन्तर हो जाया करता है, किन्तु यह बात ज्ञानों में नहीं। ज्ञानोंमें ऐसी कोई चीज़ नहीं जिनके समुदायात्मक ये हों, जिससे कि उनकी न्यूनाधिकता से इनमें भी न्यूनाधिकता मानी जा सके।

तीसरी बात यह है कि दर्पण में दूसरे पदार्थ प्रतिबिम्बित हो सक्ते हैं किन्तु इसके लिये कुछ सहायक अनिवार्य हैं। अतः जब जब एवं जिन जिन के सम्बन्ध में वे समुपलब्ध रहते हैं तब २ वे २ पदार्थ दर्पण में प्रतिबिम्बित होते रहते हैं, किन्तु ज्ञानमें यह बात नहीं। जिस शुद्ध ज्ञानमें दर्पण की समानता से अन्तर डालने के लिये इसको दृष्टान्त में रक्खा गया है उसको बाह्य किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं।

चौथी बात यह है कि सहायक सामिग्री की अनुकूलता से जो पदार्थ दर्पण में झलक रहे हैं उन्हीं को प्रतिबिम्बित करना दर्पण का स्वभाव नहीं। यदि ऐसा होता तो उनसे दूसरे पदार्थ दर्पण में प्रतिबिम्बित ही न होते, किन्तु ऐसा है नहीं। वहाँ तो चाहे ये पदार्थ हों या इनसे अन्य, जिनके अनुकूल सहायक सामिग्री है वे ही प्रतिबिम्बित हो जाते हैं। अतः दर्पण के प्रतिबिम्बित करने के स्वभाव को भी किन्हीं विशेष पदार्थों तक ही मर्यादित नहीं रक्खा जा सकता। दर्पण का तो उन्हीं पदार्थों को प्रतिबिम्बित करने का स्वभाव है जिनको कि वह ऐसा कर सकता है, चाहे यह एक साथ करे या क्रम से। ऐसी अवस्था में भिन्न २ दर्पणों में बाह्य पदार्थों के प्रतिबिम्बित करने की शक्ति भेद का प्रश्न भी उपस्थित नहीं होता। क्योंकि जिनको अभी एक दर्पण प्रतिबिम्बित करता है, उन्हीं को दूसरा दूसरे समय में। जिनको दूसरे ने दूसरे समय में प्रतिबिम्बित कर रक्खा है उनको यह पहले ही समय में कर देता है। इस प्रकार समय भेद से यह भी बात समुचित बैठ जाती है और दर्पण में बाह्य पदार्थ के प्रतिबिम्बित करने की शक्ति-भेद का अवसर नहीं आने देती।

शुद्ध ज्ञान में सहायकों की आवश्यकता न होने से वहां शक्ति के अनुकूल कार्य न होनेकी बात ही उपस्थित नहीं होती।

इससे स्पष्ट है कि दर्पणों में बाह्य पदार्थों के प्रतिविम्बित करने की शक्ति में विभिन्नता नहीं और यदि व्यक्ति की दृष्टि से इसको मान भी लिया जाय तब भी इसके आधार से ज्ञानों में इस प्रकार की विभिन्नता नहीं आती।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि दर्पणोंके आकार-भेद के आधार से ज्ञानों में विषयभेद स्वीकार नहीं किया जासकता। अतः दर्पण का दृष्टान्त इस सम्बन्ध में कार्यकारी नहीं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ज्ञान में अनन्त एवं समस्त पदार्थों के जानने का स्वभाव है तथा उसके सम्पूर्ण आवरण दूर हो गये हैं। अतः यह भी स्पष्ट है कि वह समस्त पदार्थों का ज्ञाता है। इसही का नाम सर्वज्ञता है। अतः पांचवीं युक्ति युक्ति ही है उस को युक्त्याभास कहना भूल है।

[क्रमशः]

साहित्य समीक्षा और प्राप्तिस्वीकार।

ईश्वर कर्तृत्व विचार——लेखक और प्रकाशक पं० भगवानदास शास्त्री, सुपरि० जैन बोर्डिङ्ग जबलपुर। मूल्य एक आना; उक्त ट्रैक्ट में ११ पेज हैं। ईश्वर के सृष्टिकर्तृत्व पर सरल शब्दों में विचार किया गया है। पढ़ने में रोचक होने पर भी कहीं २ पांडित्य की भाषा आगई है–जिसे साधारण जनता के समझमें आने योग्य बनाना चाहिये था।

वीर वन्दना——यह अनेक समस्यापूर्तियोंका संकलन है। संकलन-कर्त्ता श्रीलक्ष्मीचन्द्र जी एम०ए० व प्रकाशक जैन मित्रमंडल देहली हैं। पृष्ठ संख्या ४४, मूल्य दो आना है।

वीर-जयन्ती उत्सव पर देहली में "जैन मित्र मंडल" के द्वारा अक्सर कवि सम्मेलन का समारोह किया जाता है। सन् ३२ तथा ३३ के कविसम्मेलनों में पठित समस्यापूर्तियों का संकलन उक्त पुस्तक में किया गया है। प्रायः सर्व रचनाएँ सुन्दर हैं। कविता प्रेमियों को पुस्तक अवश्य देखना चाहिये।

पद्मनन्दि श्रावकाचार——अनुवादक पं० परमेष्ठी दास जी न्यायतीर्थ सूरत। प्रकाशक सेठ मूलचन्द किसनदास कापड़िया—दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत। मूल्य एक आना।

आचार्य श्री पद्मनन्दि कृत पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका बहुत सुन्दर ग्रन्थरत्न है। उसका छठवाँ अध्याय–जिसमें ६२ श्लोक हैं—उपासक संस्कार के नाम से लिखा गया है। पंडित जी ने उस छठवें अध्यायका सरल हिन्दी अनुवाद कियाहै। अनुवाद बहुत सरल और रोचकहै। पुस्तकके सुन्दर साइज तथा छपाई ने उसकी रोचकता को द्विगुणित कर दिया है। पुस्तक में गृहस्थों के उपयोगी धर्मका स्वरूप, सप्तव्यसन का संकेत, श्रावकों के व्रत दान पूजा और बारह भावना का वर्णन है। प्रत्येक गृहस्थ की जेब में इसकी एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। पाठशालाओं में बालक बालिकाओं को वितरण भी की जा सकती हैं।

भक्ति प्रवाह या अपूर्व दर्शन—

लेखक व प्रकाशक पं० मुन्नालालजी "समगौरया" कन्नड़ (निज़ामस्टेट) । मूल्य तीन आना, पृ० ४८

"समगौरया" जी ने राधेश्याम की तर्ज़ में उक्त भक्ति-प्रवाह की रचना की है । कविता साधारण है—भक्तों के योग्य है । जिन भाईयों को गाना गाने का शौक है, उन्हें चाहिए कि वे इधर उधर की पुस्तकें न पढ़कर भक्तिप्रवाह को गाया करें । पर्व आदि के समयों पर मन्दिर जी में हारमोनियम पर भी गाया जा सकता है । पंडित जी से हमारा एक निवेदन है कि जैन पौराणिक कथाओं का गाने के लायक तर्ज़ में रचने का श्रम करें तो उत्तम है । और अपनी कविता को कुछ ऊंची श्रेणी में रखने का प्रयत्न करें । जिससे साधारणजनों के साथ ही साथ इतर लोग भी आनन्द ले सकें ।

जिनेन्द्र पूजन व भजन पचीसी—

रचयिता ला० सरदारमल जैन, सीतला माता के पास, सिरोंज । इस छोटी सी पुस्तक में श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा तथा पचीस भजनों का संग्रह है । नई तर्ज़ है जिन्हें आवश्यकता हो एक आने का टिकट भेजकर लेखक से मंगा लेवें ।

श्री स्याद्वाद विद्यालय काशी की अठाईसवीं वार्षिक रिपोर्ट—

यह संस्था अट्ठाईस वर्ष से जैन विद्वान बनाने का शुभ कार्य कर रही है । अब तक लगभग १५० विद्वान तैयार होकर समाज में धर्मप्रचार का कार्य कर रहे हैं । काशी की संस्कृत पाठशालाओं में इसका गणनीय स्थान है । इस आवश्यक और प्रतिष्ठित विद्यालय को भी—लिखते हुए क्षोभ होता है—दो वर्ष से आर्थिक कष्ट उठाना पड़ रहा है । दो वर्ष में करीब १५००) का घाटा हुआ । ध्रौव्य कोष करीब ५००००) है जिसका ब्याज करीब २५०) मासिक आता है । दातारों से १९८॥) मासिक की स्थायी सहायता मिल जाती है । शेष २५०) मासिक व्यय का भार फुटकर सहायता पर अवलम्बित है । वर्त्तमान में ४८ छात्र हैं । समाज के दानियों को दान के अवसर पर इस विद्यालय को अवश्य अच्छी सहायता भिजवाते रहना चाहिये ।

रिपोर्ट--जैन मित्रमंडल देहली—

प्रकाशक उक्त मंडल के मंत्री । यह मंडल के १६, १७, १८ वें वर्ष की रिपोर्ट है । इस संस्था ने जैन धर्म के प्रचार में बड़ी ख्याति प्राप्त की है—अब तक ९० ट्रैक्ट भिन्न विषयों पर प्रकाशित कर चुकी है, इसके कार्यकर्त्ता बड़े उत्साही और सच्चे सेवक हैं । जो भाई मंडल की सेवाएं जानना चाहें मंत्री जी से रिपोर्ट मंगा कर जान सकते हैं ।

श्री देशभूषण कुलभूषण ब्रह्मचर्याश्रम कुंथलगिरि का उन्नीसवाँ

वार्षिक विवरण हमारे सन्मुख है । वीर सं० २४३९ में श्रीजिनसेवी ब्र० पार्श्वसागर महाराज ने इसकी स्थापना की थी । यहां मुख्यतया धार्मिक के साथ अंग्रेज़ी ३ री, मराठी ७ वीं तथा उस्मानिया मिडल तक लौकिक शिक्षण का प्रबन्ध है । धार्मिक विषयों की परीक्षा बम्बई परीक्षालय से ली जाती है और लौकिक विषयों की परीक्षा निज़ाम सरकार के वाशी म्यूनिसिपल स्कूल में दिलाई जाती है । इस वर्ष में आमदनी ५६५८=)॥ की हुई और खर्च ५८११॥)॥ हुआ अर्थात् १५३।=) घाटा रहा । वर्त्त-

मान में ५६ विद्यार्थी हैं। ध्रौव्य फण्ड में ३०६५८) भरा गया था, किन्तु दुःख है कि ५८०१) रुपया दातारों ने स्वीकार करके भी नहीं दिया।

दानियों को उक्त आश्रम की सहायता करते रहना चाहिये।

श्री जैन कन्या शिक्षालय धर्मपुरा देहली का पच्चीसवाँ वार्षिक विवरण—यह शिक्षालय संवत् १९६४ में स्थापित हुआ था। देहली की जैन स्त्री समाज में शिक्षा प्रचार का अधिकांश श्रेय इसी संस्था को प्राप्त है। रिपोर्ट के देखने से ज्ञात होता है कि संस्था के कार्यकर्त्ता अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं और उसके लिये जी तोड़ परिश्रम भी करते हैं। शिक्षालय के लिये द्रव्य एकत्र करने का भार एक फाइनेन्स बोर्ड पर है, जिसमें ५ सदस्य हैं। उक्त बोर्ड ने परिश्रम करके २०१॥।) मासिक चन्दे का प्रबन्ध किया है।

शिक्षालय के स्टाफ़में ६ अध्यापिकायें हैं, जिन में २ ट्रेन्ड हैं। बालिकाओं की संख्या १८७ है। २ वर्ष की लगातार कोशिश से यह शिक्षालय रेकगनाईज़ हो चुका है और इस वर्ष की ग्रान्ट ८५४॥।) भी मंजूर हो गई है। संस्था के मैनेजर लाला महावीरप्रसाद ठेकेदार साहिब ने अपनी तरफ़ से १५) मासिक तक की एक शिक्षिका रखने की स्वीकारता दी है जो बालिकाओं को बेल आदि का काम विशेष रूप से सिखलाएगी।

मंत्री जी ने कार्यकारिणी समिति के सामने एक निवेदन इस आशय का उपस्थित किया है कि बालिकाओं की धार्मिक परीक्षा परिषद् परीक्षाबोर्ड बड़ौत, तथा जैन परीक्षालय बम्बई में दिलाई जावे और प्रयाग महिला विद्यापीठ में भी परीक्षा दिलाई जावे। हम मंत्री महोदय के उक्त विचारों का हृदय से अनुमोदन करते हैं। कमेटी को इधर ध्यान देना चाहिये।

श्री शान्ति भावना—लेखक व प्रकाशक, पं० हीरालाल जी जैन न्यायतीर्थ सिद्धान्तशास्त्री मु० साढूमल पो० मडावरा (झांसी), पृष्ठ ५६ मूल्य सात आना।

इस पुस्तक में शान्तिनाथाष्टक, षोडशकारणभावना, आत्मभावना, कल्याण-आलोचना, और वैराग्य मणिमाला नामक पाँच कविताओं का संग्रह है। प्रथम की दो रचनाएं स्वतन्त्र हैं। शेष में से आत्मभावना श्री अमितगति आचार्य के भावना द्वात्रिंशतिका का, कल्याण आलोचना प्राकृत के कल्याणालोयणा का तथा वैराग्य मणिमाला संस्कृत वैराग्य मणिमाल का पद्यानुवाद है। शान्तिनाथाष्टक में—जैसा कि उसके अष्टक नाम से व्यक्त होता है—आठ पद्य हैं, प्रत्येक पद्य का अन्त एक समस्या के साथ होता है। वह समस्या यह है—"लखें तेरी मुद्राविमल मुझको शान्ति मिलती"। आठवें पद्यके अन्तमें उक्त समस्या (तरह) के न होने से कुछ विरसता आगई है। षोडश कारण भावना की कविता सरल और सुंदर है। कविता की सरलता के अनुरूप सीधे सादे छन्द ने सोने में सुहागे का काम कर दिखाया है। साधारण पाठक भी इससे लाभ ले सकते हैं—कंठस्थ करने के योग्य है।

पद्य का पद्य में अनुवाद करना टेढ़ी खीर है—सिद्धहस्त कवि ही उसमें सफल हो सकते हैं, फिर भी लेखक महोदय ने अपने कार्य में सन्तोषजनक

सफलता प्राप्त की है। यद्यपि भावनाद्वात्रिंशतिका का अनुवाद सफलतापूर्ण नहीं कहा जा सकता है तथापि कल्याणलोचना तथा वैराग्य मणिमाला की रचना सरस और हृदयग्राही है। यहां हम कुछ पद्य उद्धृत करते हैं—

माना नहीं आसन ध्यान का है,
धरा कुशा डाभ तृणादि को भी।
हे नाथ नाशे विषयादि जिसने,
कहा वही संस्तर शुद्ध तूने॥ —आत्म भावना

जो पांच ज्ञान जिन आगम में बताये,
सत्यार्थ! अर्थ तिनका नहिं जान मैंने।
अज्ञान से यदि विराधन जो किया हो,
तो वे समस्त मम दुष्कृत नाश होवें॥
—कल्याण आलोचना

मत कर यौवन धन का गर्व,
काल हरेगा तेरा सर्व।
इन्द्रजाल सम निष्फल येह
खोज मोक्ष पद सुख का गेह॥
—वैराग्य मणिमाला

वैराग्य मणिमाला में ध्यान का स्वरूप भी बतलाया गया है। उसका पद्य में अनुवाद होना बहुत कठिन कार्य था, अतः पुस्तक के अन्तमें ध्यान का स्वरूप समझा दिया गया है। पुस्तक उपादेय है। उक्त पते पर मिल सकती है। मूल्य कुछ अधिक जान पड़ता है।

बंगाल के क्रांतिकारियों के कारनामे

गत साढ़े तीन वर्षोंमें बंगाल प्रान्तके क्रान्तिकारियोंने अपने काले कारनामोंमें जो सरकारी अफसरों तथा अन्य कतिपय अंग्रेजोंके ऊपर सफल या विफल आक्रमण करके अशान्ति उत्पन्नकी है उनकी मुख्य २४ घटनाओं की सूची अर्जुन से उद्धृत कर नीचे दी जाती है। ऐसी घटनाएं शान्ति स्वातंत्र्य प्राप्तिके मार्गमें बहुत बाधक हैं:—

(१) १८ अप्रैल १९३०—चटगाँवमें शस्त्रागार पर धावा।

(२) २५ अगस्त १९३०—सर चार्लस टेगर्ट पुलिस कमिश्नर कलकत्ता पर बम फेंका गया। (आक्रमणकारी मजूमदार को मि० आर० आर० गार्लिक ने आजीवन कारावास की सज़ा दी।)

(३) २६ अगस्त १९३०—मि० एफ० जे० लोमेन इन्सपेक्टर जनरल पुलिस बंगाल, ढाके में गोली से मारे गये, और मि० ई० होडसन सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस जख्मी हुए।

(४) २८ दिसम्बर १९३०—लैफिटनेन्ट कर्नल सिम्पसन इन्सपेक्टर जनरल आफ प्रिजन्स बंगाल को 'राईटर्स बिल्डिंग' कलकत्ते में गोली से मारा गया। आक्रमणकारी दिनेश गुप्त को फाँसी दी गई तथा अन्य दो आक्रमणकारियों ने आत्म-हत्या कर ली।

(५) ६ अप्रैल १९३१—मि० जेम्सपेडी, आई० सी० एस० डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिदनापुर पर गोली चली और वह अगले दिन मिदनापुर में ही मर गए।

(६) २७ जुलाई १९३१—मि० आर० आर० गार्लिक, आई०सी० एस० डिस्ट्रिक्ट और सेशनजज अलीपुर को उसकी अदालत में मि० बिमल गुप्त ने

गोली से मारा और आक्रमणकारी एक सार्जेण्ट द्वारा मारा गया।

(७) २१ अगस्त १९३१—मि० अलेक्जेण्डर कैसल्स, आई० सी० एस० कमिश्नर ढाका डिवीज़न टंगाइल (ज़िला मेमनसिंह) में एक युवक द्वारा गोली से ज़ख्मी हुए।

(८) ३१ अगस्त १९३१—खानबहादुर अहसानउल्ला इंस्पैक्टर पुलिस फुटबाल का मैच समाप्त होने के बाद एक १६ वर्षीय युवक द्वारा मारे गए।

(९) २८ अक्तूबर १९३१—मि० एल० जी० डुरनो, आई० सी० एस० मैजिस्ट्रेट और कलक्टर ढाका को दिन-दहाड़े ढाके की एक गली में दो नौजवानों ने गोली से ज़ख्मी कर दिया।

(१०) २९ अक्तूबर १९३१—मि० ई० वीलीयर्स सभापति योरोपियन एसोसियेशन कलकत्ता को उनके दफ्तर में गोली से ज़ख्मी किया।

(११) १४ दिसम्बर १९३१—मि० सी० जी० बी० स्टीवन्स, आई० सी०एस० डिस्ट्रिक्ट मैजिस्टेट टिपरा मील में अपनी कोठी पर शान्ति घोष नामक एक कन्या विद्यार्थी द्वारा गोली से मारे गए।

(१२) २२ जनवरी १९३२—मि० एल० क्वीण्टन, आई० सी० एस० डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के कलकत्ता से आमना आते हुये उनकी गाड़ी पर बम फेंका गया; परन्तु वे ज़ख्मी नहीं हुए।

(१३) ६ फरवरी १९३२-कलकत्ता यूनिवर्सिटी कन्वोकेशन के समय एक ग्रेजुएट कन्या विद्यार्थी श्रीमती वीणादास ने बंगाल गवर्नर पर ५ बार गोली चलाई, परन्तु उसके सब निशाने खाली गये।

(१४) ४ अप्रैल १९३२—मजहरहुसैन सब इंसपेक्टर माधोपुर रेलवे स्टेशन पर गोली द्वारा मारे गये। संभवतः आक्रमणकारी का नाम शीतला प्रसाद था।

(१५) ३० अप्रैल १९३२-मि० राबर्ट डगलस आई० सी० एस० डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिदनापुर को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मीटिंग में श्री प्रद्योतकुमार भट्टाचार्य ने गोली से ज़ख्मी किया, जिसके कारण वह मर गए। श्री भट्टाचार्य को फाँसी पर लटका दिया गया।

(१६) १३ जून १९३२-फ़रीदपुर के मैजिस्ट्रेट पर श्री सुरेशचन्द्र बोस द्वारा रेलगाड़ी में बम फेंका गया।

(१७) १३ जून १९३२—कैप्टिन ई० कैमरन चटगांव के पास पटिया में क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार करते समय गोली से मारे गए। इस आक्रमण में दो क्रान्तिकारी भी मारे गये।

(१८) २७ जून १९३२—मि० कामिख्याप्रसाद सेन स्पेशल मैजिस्ट्रेट मुंशीगंज से ढाके में भ्रमण करते हुए गोली से मारे गये।

(१९) २९ जुलाई १९३२—मि० ई० बी० एलीसन, एडिशनल सुपरिन्टेंडेन्ट पुलिस कोमिल्ला को साइकिल पर बँगले की ओर जाते हुए गोली से ज़ख्मी किया गया और वह बाद में ढाका अस्पताल में मर गए।

(२०) ५ अगस्त १९३२—'स्टेट्समैन' के सम्पादक सर एल्फ्रेड वाटसन पर उनके आफ़िस के पास गोली से आक्रमण किया और आक्रमणकारी स्वयं आत्म हत्या करके मर गया।

(२१) २२ अगस्त १९३२—मि० सी० जी० ग्रेजवी, असिस्टेण्ट सुपरिन्टेंडेण्ट पुलिस को विनयभूषण राय द्वारा ढाके में ज़ख्मी किया गया।

(२२) २४ सितम्बर १९३२—चटगाँव के पास पहाड़तली में यूरोपियनों के नाच में बम फेंका गया, जिससे एक मरा और ११ घायल हुये। आक्रमणकारियों में से भी उस स्थान पर प्रीतिलता नामक एक कन्या की लाश गोलियों से छिदी हुई पाई गई।

(२३) २८ सितम्बर १९३२—सर अलफ्रेड वाटसन् को कलकत्ते में मोटर से जाते हुए गोली से ज़ख्मी किया गया। आक्रमणकारियों में से एक का नाम शचीन्द्र मुखर्जी था।

(२४) २ सितम्बर १९३३—मि० बी० जे० बर्ज आई० सी० एस० डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिदनापुर को दिन दहाड़े फुटबाल के मैच के समय गोली से मारा गया। एक आक्रमणकारी अनाथपञ्ज वहीं गोली से मरगया और दूसरा मृगेन्द्रदत्त अस्पताल में जाकर मरा, तीसरे आक्रमणकारी को गिरफ्तार कर लिया गया। —अर्जुन

देश विदेश समाचार!

लाहौर—एम० सी० सी० टीम और नार्दर्न इन्डिया क्रोकेट टीम में मैच हुआ, महाराजा पटियाला भी खेले।

बम्बई—स्वर्गीय पटेल का दाह कर्म करने की आज्ञा चौपाटी पर नहीं मिली, इसलिये हिन्दू स्मशान भूमि में ही दाह संस्कार किया गया।

अर्थी के साथ लाखों मनुष्य थे, जगह २ शव पर मालायें भी चढ़ाई गईं!

काबुल—यहां के शाही महल में यूनीवर्सिटी खुल गई, और उसमें डाक्टरी की उच्च शिक्षा प्रारम्भ हो गई!

भविष्यवाणी—जे० कृष्णमूर्ती ने एक पत्र-प्रतिनिधि से भेंट करने पर भविष्यवाणी की कि संसार व्यापी युद्ध शीघ्र होने वाला है।

विचित्र बच्चा—इटावा में एक हिन्दू स्त्री के एक विचित्र बच्चा हुआ जिसके २ सिर ४ हाथ और ४ पैर थे, परन्तु धड़ एक ही था।

नागपुर—जेलखाने का इन्सपेक्टर जनरल बिछौने पर मरा पड़ा मिला, जांच हो रही है।

सत्याग्रह—ता० ९ नवम्बर के सुबह महात्मा गांधी कोठी से रामटेक को मोटरकार द्वारा जाने लगे, उस समय एक दर्जन सनातनी भेंट करने आये, किन्तु गांधी जी ने कहा कि अन्य समय आवें। इस उत्तर से असंतुष्ट होकर वे लोग मोटरकार के आगे लेट गये। उन्हें घसीट कर एक तरफ़ कर दिया गया।

Regd. No. A. 2379

—जर्मनीमें संस्कृत भाषा की शिक्षा अनिवार्य करदी गई है, वहां जीवित जानवरोंके न मारे जाने का कानून बन रहाहै तथा बेकारी दूर करनेके लिये यह प्रयत्न हो रहा है कि जिस उद्योग धंधे को कोई एक मनुष्य कर रहा हो उसको दूसरा न करे।

—इटली में संतान उत्पत्ति घट रही है, इस कमीको पूर्ति करनेके लिये वहां पर दो हज़ार वृद्ध-विवाह हुए हैं। वर बधुओं का बहुत भारी जलूस निकाला गया।

—बेकारी की समस्या हल करने के लिये अब अमेरिका में चरखे का प्रचार हो रहा है।

—अर्जण्टाइन के एक युवकने ग्रामोफ़ोनके ढंग पर एक ऐसा यंत्र बनाया है जो समाचारपत्र पढ़-कर सुनाया करेगा।

—झरिया (बिहार) की कोयले की खानों से अब धुआँ तथा कभी कभी लपटें निकलती हैं जिससे पता चला है कि खानमें आगलग गई है।

—ब्रिटिश गायना में एक स्त्रीके एक साथ ७ बच्चे हुए हैं; स्त्री और सभी बच्चे स्वस्थ हैं।

—कलकत्तेका प्रफुल्ल घोष नामक बङ्गाली युवक अभी कुछ दिन पहले ७२ घंटे १८ मिनट तक पानी में बराबर तैरता रहा था। इसके बाद एक जर्मन लड़की ७८ घंटे तक बराबर तैरी। तब प्रफुल्ल घोष उसके रिकार्ड को नीचा करने के लिये रंगून की एक झीलमें तैरने के लिये उतरा और लगातार ७९॥ घंटे तक तैरता रहा।

—कलकत्ते में निषिद्ध भयानक औषधें बेचने के अपराध में ए० एच० काङ्ग नामक एक चीनी पुरुषको सज़ा हुई। उसने ज़मानत पर छूटकर हाईकोर्टमें अपील की। अपील अस्वीकार हुई। इस समय में उसने जेल जाने के लिये किराये पर एक दूसरा चीनी आदमी ठीक कर लिया। अपील ख़ारिज होने पर वही किराये वाला मनुष्य जेल चला गया, चार मास पीछे भेद खुला।

—शेखू पुरा में ३ नवम्बर को एक आदमी के घर रातके समय दहीमें साँप गिर गया था। सबेरे अंधेरे दही बिलोते समय वह मंथनी से चोट खा कर मर गया, जिससे उसका विष छाछमें मिल गया। घरके एक छोटे बच्चे ने छानकर छाछ पीनेकी हठ की। छानने पर वह मरा सांप निकला, जिससे वह छाछ फेंक दी; अन्यथा जो कोई भी छाछ पीता, मर जाता।

—करांची म्यूनिस्पैलिटी अब कार्पोरेशन हो गई है, उसका प्रेसीडेन्ट अब मेयर कहलावेगा।

—४ नवंबर को करांची में भारत के लिये विलायतसे आये हुए १२०० फ़ौजी अफसर उतरे हैं।

—भारतके निम्नलिखित पुरुष विश्वविख्यात हैं—कविता में डाक्टर रवीन्द्रनाथ, विज्ञान में जगदीशचन्द्र बोस तथा सी० वी० रमन, गणित में डा० गणेशप्रसाद, हाकीमें दीवानचन्द्र, व्यायाम में राममूर्ति, मल्लयुद्ध में गामा (उससे भी बढ़कर शायद बंशीसिंह जिसका अभी निश्चय नहीं हुआ) और तैरने में प्रफुल्लकुमार घोष है।

—पिछले ६ मास में सरकार को चुंगीमें ३ करोड़ रुपये का घाटा है। पिछले १० वर्ष से इस समय देशपर २० फ़ीसदी टैक्स अधिक है।

—अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह नादिरशाह गत सप्ताह में गोली से मार दिया गया।

—केवल हिन्दुओंको लूटने वाला सिन्धका प्रसिद्ध डाकू अब्दुलरहमान ३ नवंबरको पुलिस के हाथ मारा गया।

मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिंटिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रगट किया।

तारीख १ दिसम्बर सन् १६३३ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।
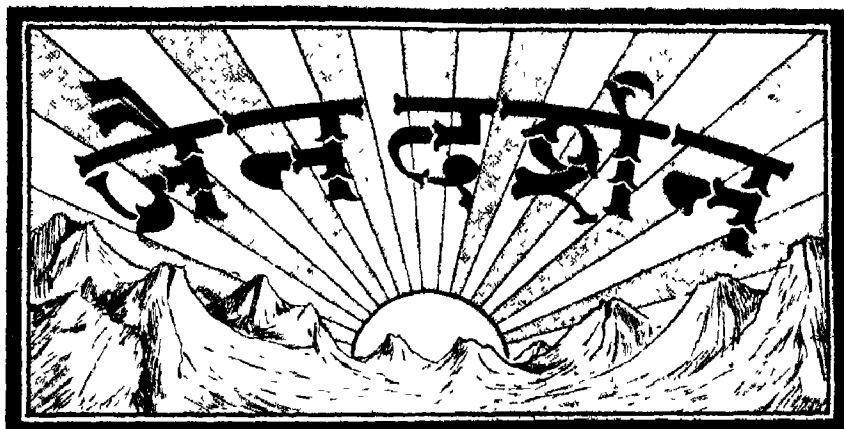
वर्ष १ अङ्क १०

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। } —ऑनरेरी सम्पादक— { पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

आवश्यक निवेदन !

१. गत अङ्क की सूचना के नं० ४, में "१५१ से २२०" की जगह पाठक "५१ से २२०" पढ़ें। प्रेस कम्पोज़ीटर की भूल से ५१ की जगह १५१ छप गया था। नं० ५१ से नं० १५० तक के ग्राहकों को भी पुस्तकें भेज दी गई हैं।

२. गत अङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार उपहारी पुस्तकें लगभग ३५० ग्राहकों को ३० नवम्बर तक ही भेजी जा चुकी हैं। नं० २२० और ४७० से बाद के ग्राहकों को भी पुस्तकें इसी सप्ताह अवश्य भेज दी जायंगी। ग्राहकगण सम्हाल लें।

३. हमारे यहाँ से 'दर्शन' का प्रत्येक अङ्क यद्यपि दो बार जाँच कर भेजा जाता रहा है, किन्तु फिर भी हमारे पास जिन २ पाठकों को 'पत्र न मिलने की' शिकायत आई हैं, हम बराबर उन्हें दुबारा और तिबारा तक भी अङ्क भेज देते रहे हैं। किन्तु इस प्रकार बार बार अङ्क भेजते रहने से व्यर्थ ही हानि उठानी पड़ती है। अतएव जिन ग्राहकों को पत्र 'न मिलने की' शिकायत रहती है वे पाठक कृपया अपनी २ पते की चिट देखकर उनके पते में जो कोई कमी या ग़लती हो उससे हमें तुरन्त सूचित करें, जिससे प्रत्येक अङ्क उनके पास बराबर ठीक समय पर पहुंचता रहे। साथ ही अन्यान्य प्रेमी भी अपने पते की चिट में कोई कमी पावें तो तुरन्त सूचित करें।

विनीत—प्रकाशक "जैनदर्शन", बिजनौर यू० पी०।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

लेखक और कवियों से !

हमारे अनेक प्रेमी सज्जन लेख और कविताएं भेज कर जैनदर्शन के साथ अपना हार्दिक अनुराग प्रगट करते हैं। जैनदर्शन उनके प्रेम तथा कृपाभाव का आभारी है और उनके उत्साह को आदर की दृष्टि से देखता है। किंतु उनमें अनेक लेख ऐसे होते हैं जो समयानुसार तथा आवश्यकतानुसार समुचित नहीं बैठते हैं। उनका विषय नवीन, सामयिक एवं आवश्यक नहीं होता और रचना ढंगभी ज़रा ठीक नहीं होता; इसी कारण विवश होकर उन्हें जैनदर्शन में स्थान नहीं दिया जाता। उसी प्रकार अनेक कविताएं, भावशून्य, लालित्यरहित, केवल तुकबंदी के रूपमें होती हैं; वे भी स्थान नहीं ले पातीं।

अतः लेख व कविता प्रेषकोंसे निवेदन है कि वे समाज में स्फूर्ति पैदा करने वाले सुन्दर भावपूर्ण लेख व कविताएं भेजा करें। ऐतिहासिक अनुसंधान वाले तथा दार्शनिक लेख भी लिखने का उद्यम करें। जैनदर्शन को अपना पत्र समझें। —संपादक

प्रकाशित नहीं होंगे।

जीवदयाप्रचारिणी सभा आगरे के विषयमें अनेक अनुकूल प्रतिकूल लेख हमारे पास छपने आये हैं। स्थानाभाव से तथा जैनदर्शन के उद्देश से प्रतिकूल होने के कारण वे लेख प्रकाशित नहीं किये जावेंगे। —सम्पादक

पारितोषिक

ईश्वर विषय पर न्याय, सांख्य, वेदान्त तथा जैनदर्शनके अनुसार दार्शनिक ढंगसे सर्वोत्तम लेख लिखने वालेको सुनहरी पदक, और द्वितीय नंबर को रौप्य पदक मिलेगा। लेख १५ जनवरी तक आजाना चाहिये। —जैनदर्शन कार्यालय, चूड़ीसराय मुलतान सिटी।

आवश्यकता !

डेरा ग़ाज़ीखान में बच्चों के पढ़ाने के लिये एक विशारद तक की योग्यता वाले विद्वान की आवश्यकता है जो धर्मशास्त्र, हिन्दी-संस्कृत पढ़ा सकें। वेतन ३०) मासिक तक, मकान मुफ़्त।

अजितकुमार जैन-चूड़ी सराय, मुलतान सिटी।

प्राप्ति स्वीकार

श्रीमान ला० भगवतस्वरूप जी जैन ऐत्मादपु (आगरा) लिखित उपवन नामक पुस्तक जिस ८-१० छोटी मनोहर कविताओं का संग्रह है हमा यहाँ आई है। दो पैसे का टिकिट भेजकर प्रत्ये मनुष्य उपरोक्त पते से बिना मूल्य मंगा सकता है।

आयुर्वेद जैन छात्रालय कानपुर।

कानपुर में लगभग २६ वर्ष से जैन औषधाल स्थापित है। उसी के साथ श्रीमान पं० कन्हैया लाल जी वैद्यरत्न ने वैद्यक पढ़ाने के लि १०—१२ वर्ष से एक आयुर्वेद विद्यालय भी खोल रक्खा है जो कि गवर्नमेन्ट से रिकग्नाइज़्ड है। इस विद्यालय से अखिल भा० वैद्यसम्मेलन के भिषक्, विशारद, आचार्य परीक्षा दिलाई जाती है। इस विद्यालयके उत्तीर्ण छात्रों को म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में नौकरी मिल सकती है।

औषधालय साथ होनेसे चिकित्सा, औषध नाड़ी आदिका अनुभव छात्रोंको सरलता से हो जाता है। यहांके पढ़े हुए छात्र अनेक जगह अच्छा काम चलाकर स्व-पर उपकार कर रहे हैं।

संस्कृत भाषाकी अच्छी योग्यता रखने वाला विद्यार्थी यहां की पढ़ाई ४ वर्ष में समाप्त कर सकता है। वैद्यक सीखना आजकल आर्थिक दृष्टि से कितना आवश्यक है इसको सब कोई समझता है। पढ़ने में बहुत शीघ्रता करने से अनुभव, पढ़ाई कच्ची, अधूरी रह जाती है। इस कारण ३ या ५ वर्ष तक लगातार पढ़ना चाहिये। यहां पढ़ने के लिये आने वाले छात्र ३ या ५ वर्ष का पक्का इरादा करके ही पढ़ने आवें।

सर्वसाधारण से यह भी निवेदन है कि वैद्यसम्मेलन, कानपुर विद्यालय एवं कानपुर जैन औषधालय का प्रमाणपत्र (सार्टीफ़िकेट) देख कर ही यहां का पढ़ा, उत्तीर्ण वैद्य समझें। उचित समझें तो हमसे भी पूछ ताछ कर लिया करें।

निवेदक—आनरेरी मंत्री
दिगम्बर जैन ऐसोसियेशन कानपुर।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भष्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्॥

वर्ष १ | बिजनौर, अगहन शुक्ला १५—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० | अङ्क १०

स्त्री-शिक्षण

लड़कियों को पढ़ने से रोकना तो न केवल उनकी हानि करना है किन्तु समाज का नाश करना है। क्योंकि आज जो छोटी लड़की है कल वह माता होने वाली है; अशिक्षिता माता गुणी सन्तान किस प्रकार उत्पन्न कर सकती है?

हाँ! तुम्हारा यह कहना पूर्ण ठीक है कि शिक्षा का अर्थ केवल पढ़ाना लिखाना ही नहीं है, चारित्र-सुधार, सीना, कसीदा काढ़ना, कपड़े रंगना, भोजन बनाना आदि भी शिक्षा है जो कि अक्षरज्ञान के साथ लड़कियों को सिखाना आवश्यक है। उसके बिना पढ़ाई लिखाई लड़की के लिये एक घोर आपत्ति है।

यह विचार भी ग़लत नहीं कि अंग्रेजी स्कूल कालेजों की शिक्षा एवं लड़कों के साथ पढ़ना स्त्री जाति के लिये अहितकर है, क्योंकि नेत्र इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि स्कूल, कालेजों की शिक्षिता लड़कियां गृह-देवियां नहीं बनतीं परन्तु सभा की परियां तय्यार होती हैं।

हम भी इस बात से पूर्ण सहमत हैं कि लड़कियों को खूब अच्छा पढ़ाओ किन्तु भारतीय सभ्यता के साथ। अंग्रेजी भाषा भी सिखानी हो तो कन्याविद्यालय में ही महिलाशिक्षिकाओं द्वारा उसका प्रबन्ध करो। साथ ही भारतीय सभ्यता और धार्मिकशिक्षा को प्रधानता दो।

सारांश—महिला जाति का अभ्युदय भारतीय सभ्यता से है—पश्चिमी सभ्यता स्त्री जाति का पतन कराने में सहायक है। जो सदाचार महिलाओं का सुन्दर भूषण है वह उनको भारतीय कन्याविद्यालयों में मिलेगा। अंग्रेज़ी स्कूल कालेजों में ढूंढने पर भी न प्राप्त होगा। इस कारण सोच समझकर तथा आगा पीछा देखकर पैर बढ़ाओ।

हमारे नवयुवक !

[गताङ्क से आगे]

[५]

हमारे शौकीन जैंटिलमैन प्रायः अपने हाथमें अपने शरीर के अनुरूप पतली लचकदार छड़ी रखते हैं; उनको आधुनिक ज़मानेसे कुछ सीखना चाहिये। यद्यपि प्रायः सभी ज़माने शक्ति संचयका संदेश देते हैं किन्तु विशेष करके यह ज़माना तो निर्बल मनुष्यों के लिये बहुत भयानक है। अतएव पतली छड़ीका शौक छोड़ देना ही उपयुक्त है।

हाथमें मज़बूत लकड़ी रहनी चाहिये, जो कि कुसमय पर अपने कुछ काम आ सके; क्योंकि अनेक भयानक समयोंपर हाथकी लकड़ी एक सहायक मित्रका काम देतीहै। मन यदि न माने तो उसको सुन्दर बना लीजिये, किन्तु होनी चाहिये मज़बूत।

वीरवर नैपोलियन का अपने सैनिकों से कहना था कि "परमात्मा पर विश्वास रक्खो किन्तु बारूदको गीली न होने दो।" यानी यदि बारूद गीली हो गई तो शत्रु के मुकाबिले के समय परमात्मा बारूद सुखाने नहीं आ जावेगा। इसी नीतिका हमको भी सदा ध्यान रखना चाहिये कि हम आस्तिक बुद्धिसे अपने भाग्यपर तो कुछ विश्वास रक्खें, किन्तु आत्मरक्षा में सदा तत्पर रहें; कभी असावधान न होवें।

बल प्राप्त करने के लिए एक और भी आवश्यक बात है जिसका कि पवित्र नाम ब्रह्मचर्य है। सदाचार पूर्वक अपने वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य है।

हमारे शरीरके यन्त्रोंसे खाया हुआ भोजन पहले काढ़े के समान रस रूपमें परिणत होता है; उस रससे रक्त (लोहू) तैयार होता है। लोहू गाढ़ा होकर मांस को बनाता है, मांसका सार भाग चर्बी बन जाता है। तदनंतर चर्बी से हड्डी बनती है, हड्डी का सार अंश मज्जा के रूप में तयार होता है, उसके पीछे अंत में मज्जा से वीर्य बनता है। इस तरह वीर्य अंतिम धातु है तथा सबसे अधिक सारपूर्ण पदार्थ है, तदनुसार सबसे अधिक बलदाता है। शरीरका राजा है तथा जीवनशक्तिका मूल कारणहै। अतएव शरीरमें सबसे अधिक अमूल्य है।

किया हुआ भोजन प्रायः सत्ताईसवें या तीसवें दिन जाकर वीर्य बनाता है। अनुभवी वैद्य और डाक्टरोंका मत है कि चालीस सेर भोजनसे प्रायः

एक सेर खून बनता है और उस एक सेर खूनसे केवल दो तोले वीर्य तयार होता है। मनुष्य यदि एक सेर भोजन प्रति दिन करता है तो एक मास में डेढ़ तोले वीर्य तयार हो पाता है। एक बारके विषय सेवन से डेढ़ तोला वीर्य खर्च हो जाता है।

यह साधारण संक्षेप हिसाब है जो कि जीवन-यात्रा में प्रत्येक पुरुष के सन्मुख रहना चाहिये। आर्थिक आय व्ययके समान इसका भी ठीक ठीक हिसाब अपने चित्त में जमा लेना चाहिये—विशेष करके हमारे नवयुवकोंको।

अन्य बातोंसे पहिले यह बात भी अपने हृदयमें पूर्ण रूपसे रख लेनी आवश्यक है कि संसारदशा में शरीर और आत्माका घनिष्ठ सम्बन्ध है। आत्माका स्वास्थ्य प्रायः शारीरिक स्वास्थ्यपर निर्भर है। शरीर की निर्बलता आत्माको निर्बल बना देती है। तदनुसार वीर्यरक्षा जितनी शरीरके लिये लाभदायक है उतनी ही लाभदायक आत्मा के लिये भी है। अर्थात् एक वीर्य रक्षासे शरीर और आत्मा दोनोंकी शक्तियोंका विकास होता है।

इस हिसाब से सबसे उत्तम मार्ग तो यही है कि वीर्य को पूर्ण रूपसे सुरक्षित रखने के लिये मनुष्य अखंड ब्रह्मचारी रहे। जिन्होंने अपने जीवन में अखंड ब्रह्मचर्य पालन किया है उन्होंने संसारमें अपना अतुल तेज और पराक्रम प्रगट किया है। किन्तु इस कठिन मार्गके अनुयायी विरले महानु भाव होते हैं—साधारण नहीं हो सकते।

इसी कारण ब्रह्मचर्यको छोटे रूपमें पालन करने के लिये विवाह करनेकी प्रथा चलाई गई है, जिससे कि पुरुष तथा स्त्रीकी विषय वासना उच्छृंखल न होकर सीमित रहे।

इसके सिवाय इस विवाह प्रथाका दूसरा किन्तु मुख्य ध्येय यह है कि अपनी कुल परम्परा तथा धर्मपरम्परा स्थिर रखने के लिए मनुष्यको आदर्श सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये। यद्यपि पशुओंके समान उच्छृंखल कामसेवन से भी सन्तान उत्पन्न हो जाती है, किन्तु वह गुणवती और आदर्श उत्पन्न नहीं होती।

इस कारण विवाह करनेका सार अभिप्राय यह निकला कि अपना सदाचार स्थिर रखने के लिये और यथासंभव वीर्य रक्षाके लिये एवं अच्छी सन्तान उत्पन्न करने के लिये ही विवाह किया जाता है। [क्रमशः]

ब्यावर उत्सव।

अभी मंगसिर बदी ७ से ११ तक ब्यावर में रथोत्सव के निमित्त से अच्छा उत्सव हुआ। रथयात्रा श्रीमान सेठ चम्पालाल जी रानीवालों की नशियाँ से निकल कर नगरमें घूमकर नशियाँ में वापिस आई थी। ४—५ दिन का उत्सव इसी नशियां के विस्तृत मैदान में होता रहा।

इसी अवसर पर महासभा तथा शास्त्रिपरिषद् के अधिवेशन भी हुए। उभय आचार्य संघ विराजमान होने से ९ मुनिराज तथा अनेक ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि विद्यमान थे। कारंजा से विद्वान पूज्य ब्र० देवचन्द्र जी (ग्रेजुएट) भी पधारे थे। आप क्षुल्लकदीक्षा लेना चाहते हैं। विद्वान पंडित भी १०–२० नहीं किन्तु ५५ पधारे थे। अनेक श्रीमान भी सम्मिलित हुए थे। इस प्रकार रौनक की दृष्टि से तो उत्सव ठीक रहा।

किन्तु कार्यकी दृष्टि से बहुत ही असफल रहा। महासभा तथा शास्त्रीपरिषद् में से किसी ने भी

कोई ऐसा उपयोगी कार्य या अमली कार्यक्रम नहीं बनाया जोकि उनके अधिवेशनोंको सफल बनाता। इतने अच्छे जमघट के समय कोई अच्छा उपयोगी स्मरणीय कार्य होना चाहिये, सो कुछ न हुआ। यों लेखपूर्ति के लिये अनेक निःसार प्रस्ताव पास हो ही गये।

विद्वानोंकी परस्पर कुछ गर्मागर्म बातें भी हुईं, जिसका परिणाम बहुत बुरा रहा। विशेष उल्लेखनीय कार्य कुछ भी न हुआ व्यर्थ वादविवाद में समय चला गया।

ब्यावर जाकर जो हमने निष्पक्ष जांचसे समाचार मालूम किया वह यह है कि पिछले दिनोंमें जो चांदीकी प्रतिमा चोरी जानेके विषयमें मोतीलाल रांका ने पुलिसकी असत्य मारसे छुटकारा पानेके लिये दुःखजनक आत्मघात किया था उसका रंच मात्र भी दोष श्रीमान सेठ चंपालाल जी तथा उनके सुपुत्रों या ला० राजमल जी बाकलीवालके ऊपर नहीं है। इनमें से किसी भी व्यक्ति ने न तो मोतीलाल रांका पर चोरी का संदेह प्रगट किया था और न पुलिस को उसे कष्ट देनेकी ही प्रेरणा की थी। पुलिसने पहले एक दो बारकी घटनाओंसे संदेह पाकर स्वयं उसको गिरफ्तार किया था और अपनी निर्दय प्रकृतिसे उसको कष्ट दिये थे। कुवर सुंदरलाल जी ने इन्सपेक्टर से थाने में आकर मोतीलालको छोड़ देनेकी कई बार प्रेरणा भी की। मोतीलालके भाई के साथ राजमल जीको भी थाने भेजा, बार २ कहा तथा कहलवाया कि इसपर हमारा तनिक भी संदेह नहीं है किन्तु पुलिस ने कुछ न सुना जिससे कि रोमांचकारी दुर्घटना हुई। यह समाचार हमने गलतफ़हमी हटानेके लिये लिखा है, किसी स्वार्थभाव या चापलूसीका इससे कुछ संबंध नहीं।

आर्यसमाज को देखिये!

आप अपने १०-५ शिक्षालय देखकर फूले नहीं समाते, मानो आपने बहुत भारी काम कर लिया है। किन्तु निद्रा हटा कर दूर न जाइये, कल परसों स्थापित होने वाले आर्यसमाज को देखिये कि आर्थिक कठिनाइयों का सामने करते हुए भी उसने कितने अधिक शिक्षामंदिर खोल रक्खे हैं। उनका वार्षिक खर्च आर्यसमाज लगभग बीस लाख रुपये वार्षिक करता है; यह केवल ४० वर्ष के भीतर हुआ है। देखिये आर्यसमाज की निम्नलिखित रूप से संस्थाएं चल रही हैं:—

३ कालेज	३ उपदेशक विद्यालय
१०५ हाईस्कूल	२३ अनाथालय
५३ गुरुकुल	४७ विधवाआश्रम
३ कन्या महा विद्यालय	११ प्रेस समाचार पत्र
५ कन्या गुरुकुल	४९ पुस्तकालय
२३१ कन्या पाठशाला	११ औषधालय
११२ हिंदी संस्कृत पाठशाला	१ मातृ मंदिर
३४७ दलित स्कूल	३४ शास्त्र पाठशाला

हमारे ग्रन्थ व्यवसायी!

जब से छापेखानोंकी उन्नति हुई है, लेखनकला की तभी से अवनति भी हुई है। लेखनी द्वारा सुन्दर लिपि लिखना बराबर घटता जा रहा है। पूज्य ग्रंथों का विनयभाव भी कम हो गया है तथा होता जा रहा है। यह भी ठीक है कि

लिखे हुए ग्रंथ सैकड़ों वर्ष चल सकते हैं, जब कि छपे हुए थोड़े वर्षों में जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं।

इत्यादि अनेक दोषों के रहने पर भी छापेखाने का प्रचार क्यों बढ़ा और अभी तक दिनों दिन क्यों बढ़ता जा रहा है? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि "सुलभता"। लिखे हुए ग्रंथ अधिक मूल्य में कठिनता से उपलब्ध होते हैं, तब छपे हुए शास्त्र अल्प मूल्य पर सरलता से प्राप्त होजाते हैं। लिखा हुआ सटीक (तीन टीकाएं) पूर्ण गोम्मटसार यदि लिखाया जाय तो पांच सौ रुपये में मिलेगा जब कि छपा हुआ वही सटीक गोम्मटसार ५१) रुपये में ही मिल जाता है।

यह सब कुछ होने पर भी दिगम्बर जैन ग्रंथों का प्रकाशन शोचनीय है। उसका विशेष कारण यह है कि दिगम्बर जैन ग्रंथ केवल व्यापार के ढंग पर प्रकाशित होते हैं, वह भी अनुचित नीति के साथ। जब तक इस नीति में परिवर्त्तन न होगा, दिगम्बर जैन ग्रंथों का प्रकाशन उन्नति नहीं कर सकता।

ग्रंथ छपाने में द्रव्य उपार्जन के साथ कुछ धार्मिक नीयत को भी स्थान मिलना चाहिये। किन्तु खेद है कि हमारे अधिकतर ग्रंथव्यवसायी प्रायः द्रव्य उपार्जन का ही ख़याल रखते हैं। इसी कारण वे अच्छा कागज़, शुद्ध सुन्दर छपाई और थोड़े मुनाफ़ेका ख़याल नहीं रखते। कागज़ मुर्दार लगाते हैं, टाइप छोटा, टूटा फूटा, मेकअप ख़राब होते हुए भी मूल्य बहुत रखते हैं। जिस पुस्तक की लागत आधा पैसा हो उसका मूल्य एक आना रखते हैं। सुदृष्टितरंगिणी का मूल्य पहले १०) रुपये रक्खा गया किन्तु जिस समय दूसरे छापेख़ाने से प्रकाशित होकर वह थोड़े मूल्य पर बिकने लगी, तब उसी ग्रन्थ का मूल्य दस रुपये से झट दो रुपये हो गये। अब पाठक महानुभाव स्वयं समझ लेवें कि हमारे ग्रंथ व्यवसायी पुस्तकों के मूल्य में किस प्रकार लूट रखते हैं।

कतिपय जैन प्रेस ऐसे भी हैं जो किसी अन्य पुरुष द्वारा एक हज़ार छपाई गई पुस्तकों को डेढ़ हज़ार की संख्या में छापकर पांच सौ प्रतियों का अनुचित लाभ स्वयं उठाते हैं।

इसके विपरीत हमारे श्वेताम्बरी तथा स्थानकवासी भाई इस ग्रन्थप्रकाशन में प्रशंसनीय उन्नति कर रहे हैं। वे ग्रन्थों को तन मन धन से छपाते हैं और उनका कागज़ पुष्ट चिकना, सुन्दर मोटी शुद्ध छपाई रहने पर भी दिगम्बरीय ग्रन्थों की अपेक्षा मूल्य कम रहता है।

लिखने को तो इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है जो कि कभी लिखा भी जायगा, किन्तु यहां पर संक्षेप से ग्रन्थ व्यवसायी महानुभावों को ग्रन्थप्रकाशन सरीखा उपयोगी कार्य केवल व्यापारिक दृष्टि से ही न करना चाहिये, किन्तु उसमें कुछ धार्मिक दृष्टि को भी स्थान देना चाहिये।

जैनजगत की सफ़ाई

जैनदर्शन के चौथे पांचवें अङ्क में जो जैनजगत के व्यभिचार और ब्रह्मचर्य शीर्षक लेख का संक्षिप्त प्रतिवाद किया था, उसकी सफ़ाई श्रीमान पं० दरबारीलाल जी ने जैनजगत के गत २४ वें अङ्क में पेश की है। आपका कहना है कि "वह लेख बाबू हेमचन्द्र जी का निजी अभिप्राय सूचक था जैनजगत का संदेश न था आपने निराधार खंडन किया है, आदि"।

इस विषय में हमको पं० दरबारीलाल जी से केवल यह कहना है कि आप दिगम्बर जैन विद्यालय से अध्ययन करके सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने योग्य विद्वान हुए हैं। जैनसमाज का धर्मानुकूल सुधार करना तथा जैनधर्म का प्रचार करना आपका ध्येय होना चाहिये। जैनजगत के आप संपादक हैं, उसमें छपने वाले लेखोंका उत्तरदायित्व आपके ऊपर है, फिर आप ऐसे लेखों को स्थान क्यों देते हैं, जिनसे पीछे आपको उससे असहमति प्रगट करनी पड़ती है।

बा० हेमचन्द्र जी के लेख से दो बातें प्रगट होती हैं—एक तो यह कि ब्रह्मचर्य एक मनमाना खिलौना है, चाहे जिस स्त्री की कामवासना पूर्ण करने वाला ब्रह्मचारी है और पत्नीव्रत का पालक ब्रह्मचारी नहीं है।

दूसरी यह कि अजैन पुराणों का कथन सत्य है, जैन कथा ग्रंथ असत्य हैं। तदनुसार श्वेतकेतु ऋषि ने वैवाहिक प्रथा चलाई, कृष्ण के पुत्र अपनी विमाताओं से व्यभिचार करते थे; आदि।

तीसरी यह कि सीता का शीलव्रत रावण ने भंग कर दिया था; आदि।

विचारणीय विषय है कि हेमचन्द्र जी मोदी का यह लेख क्या तो, जैनसमाज ही नहीं, किन्तु मनुष्य समाज का भला कर सकता है और क्या उससे जैनधर्म के प्रचार में सहायता मिलती है? किन्तु स्पष्ट तो यह है कि वह लेख व्यभिचार मार्ग का पोषण करता है और कपोलकल्पित कल्पना की पूंछ पकड़ कर सीता सरीखी इतिहास-प्रसिद्ध सती महिला के पवित्र आचरण पर धब्बा लगाते हुए जैनशास्त्रों का अपमान तथा अजैन पुराणों का (महाभारत आदि का) सन्मान करता है।

ऐसे लेख को संपादक जैनजगत छापकर भी आप अपनी भूल स्वीकार नहीं करते किन्तु उलटा आक्षेप करते हुए अपनी सफाई प्रगट करते हैं; यह आपका दुःसाहस है।

धनकुबेर!

वैसे तो धनकुबेरोंकी संख्या बहुत है, किन्तु उनमें इस समय निम्नलिखित १७ धनाढ्य सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, जिनमें भारतीय केवल तीन हैं, अवशिष्ट विदेशी हैं—जैन कोई भी नहीं है। उन धनकुबेरोंके नाम ये हैं—

१. एडसेल फोर्ड (अमेरिकन)
२. हेनरी फोर्ड (अमेरिकन)
३. एडोआर्ड डी रोथ्स चाइल्ड (फ्रेंच)
४. ड्यूक आफ वेस्टमिंस्टर (ब्रिटिश)
५. विलियम आफ होहेन जोलर्न (जर्मन)
६. श्रीमान् गायकवाड़ बड़ोदा।
७. सर वेसिल जहारोफ (यूनानी)
८. साइमन पेटिनो (बोलिवियन)
९. लार्ड इवियन (ब्रिटिश)
१०. श्रीमान् आगाखां।
११. निज़ाम हैदराबाद।
१२. जी० डी० वेंडेल (फ्रेंच)
१३. जानडी० राकिफेलर [छोटे] (अमेरिकन)
१४. जान डी० राकिफेलर [बड़े]
१५. लुईलुई ड्रेफस (फ्रेंच)
१६. एण्ड्रू मेलन (अमेरिकन)
१७. फ्रिज थायसन (अमेरिकन)

जैनन्याय के इतिहास पर एक दृष्टि !

[ले०—श्रीमान पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री]

(गतांक से आगे)

[२]

स्वामी समन्तभद्र तथा श्री सिद्धसेन दिवाकर के बाद सातवीं शताब्दी तक यद्यपि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नयचक्र" के कर्त्ता श्री मल्लवादि तथा "विशेषावश्यक" भाष्य के रचयिता श्री जिनभद्र गणि "क्षमाश्रमण" ये दो अच्छे दार्शनिक हुए कहे जाते हैं, तथापि दिगम्बर सम्प्रदाय में किसी ऐसे उल्लेख योग्य दार्शनिक के होने का पता नहीं चलता जो कि न्यायशास्त्र में अपनी अमिट छाप लगा सका हो।

बड़ौदा "गायकवाड़" सीरीज़ से बौद्धाचार्य्य शान्तरक्षित का तत्वसंग्रह नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उसमें दो जैनाचार्यों के मतों का निरसन किया गया है, जिनमें एक का नाम "सुमति" तथा दूसरे का नाम पात्र स्वामी लिखा है। तत्व संग्रह के प्रत्यक्ष परीक्षा नामक समुद्देश में पृष्ठ (३१९) "नन्वित्यादिना प्रथमे हेतौ सुमति दिगम्बरस्य-मतेनासिद्धतामाशङ्कयते" ऐसा उल्लेख है तथा अनुमान परीक्षा नामक प्रकरण में पृष्ठ (४०५) अन्यथेत्यादिना पात्रस्वामिमतमाशङ्कयते ऐसा लिखा हुआ है, ग्रन्थकार के लिखने से आचार्य सुमति का दिगम्बरत्व सिद्ध है। कहा जाता है कि ये अपने समय के बहुत अच्छे दार्शनिक थे। तत्व-संग्रह में अनेक मत का उल्लेख होने से भी उनके पाण्डित्य की प्रसिद्धि का पता चलता है, यह भी कहा जाता है कि उन्होंने सिद्धसेन दिवाकर के "सन्मतितर्क" नामक प्रकरण पर एक टीकाग्रन्थ लिखा था।

तत्वसंग्रह की अंग्रेज़ी भूमिका में पात्र स्वामी को जैन नैयायिक लिखा है। हमारे विचार में ये पात्रस्वामी पात्र केसरी से भिन्न विद्वान् नहीं हैं। पात्रकेसरी का ही पात्रस्वामी नाम से उल्लेख किया गया है। भूमिका लेखक ने "सुमति" का समय ई० सन् ६७० से ७२० तक और पात्र स्वामी का ई० सन् ७०० निश्चित किया है। इस तरह उक्त बौद्ध ग्रन्थ पर से सातवीं शताब्दी के अन्त में होने वाले दो प्रख्यात नैयायिकों का निर्देश मिलता है।

आठवीं शताब्दी के अन्त में जब भारतवर्ष में बौद्धवाद का प्रबल प्रभाव छाया हुआ था, जैन-संस्कृति की पावनगोद में अकलङ्क का उदय हुआ। अकलंकदेव अपने समय के प्रखर तार्किक वाग्मी तथा प्रबल वादी थे। "अष्टशती" "लघीयस्त्रय" "बृहत्त्रय" तथा राजवार्तिक ग्रन्थ उनकी अनुपम विद्वत्ता के उदाहरण हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण के सांव्यवहारिक और पारमार्थिक प्रत्यक्ष का स्पष्ट समन्वय सर्व प्रथम अकलंकदेव की प्रतिभा के द्वारा ही हो सका था। बात यह थी कि जैन परम्परा में इन्द्रिय प्रत्यक्ष को परोक्ष कहते थे, जबकि इतर दर्शनकार उसे प्रत्यक्ष के नाम से व्यवहृत करते थे।

जैनदर्शन की उक्त मान्यता को लेकर दार्शनिक क्षेत्रमें बड़ा संघर्ष पैदा होगया था। श्वेताम्बर सूत्रों के कर्त्ताओं ने उक्त संघर्ष के समाधान करने का

इस विषय में हमको पं० दरबारीलाल जी से केवल यह कहना है कि आप दिगम्बर जैन विद्यालय से अध्ययन करके सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने योग्य विद्वान हुए हैं। जैनसमाज का धर्मानुकूल सुधार करना तथा जैनधर्म का प्रचार करना आपका ध्येय होना चाहिये। जैनजगत के आप संपादक हैं, उसमें छपने वाले लेखोंका उत्तरदायित्व आपके ऊपर है, फिर आप ऐसे लेखों को स्थान क्यों देते हैं, जिनसे पीछे आपको उससे असहमति प्रगट करनी पड़ती है।

बा० हेमचन्द्र जी के लेख से दो बातें प्रगट होती हैं—एक तो यह कि ब्रह्मचर्य एक मनमाना खिलौना है, चाहे जिस स्त्री की कामवासना पूर्ण करने वाला ब्रह्मचारी है और पत्नीव्रत का पालक ब्रह्मचारी नहीं है।

दूसरी यह कि अजैन पुराणों का कथन सत्य है, जैन कथा ग्रंथ असत्य हैं। तदनुसार श्वेतकेतु ऋषि ने वैवाहिक प्रथा चलाई, कृष्ण के पुत्र अपनी विमाताओं से व्यभिचार करते थे; आदि।

तीसरी यह कि सीता का शीलव्रत रावण ने भंग कर दिया था; आदि।

विचारणीय विषय है कि हेमचन्द्र जी मोदी का यह लेख क्या तो, जैनसमाज ही नहीं, किन्तु मनुष्य समाज का भला कर सकता है और क्या उससे जैनधर्म के प्रचार में सहायता मिलती है? किन्तु स्पष्ट तो यह है कि वह लेख व्यभिचार मार्ग का पोषण करता है और कपोलकल्पित कल्पना की पूंछ पकड़ कर सीता सरीखी इतिहास-प्रसिद्ध सती महिला के पवित्र आचरण पर धब्बा लगाते हुए जैनशास्त्रों का अपमान तथा अजैन पुराणों का (महाभारत आदि का) सन्मान करता है।

ऐसे लेख को संपादक जैनजगत छापकर भी आप अपनी भूल स्वीकार नहीं करते किन्तु उलटा आक्षेप करते हुए अपनी सफाई प्रगट करते हैं; यह आपका दुःसाहस है।

धनकुबेर!

वैसे तो धनकुबेरोंकी संख्या बहुत है, किन्तु उनमें इस समय निम्नलिखित १७ धनाढ्य सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, जिनमें भारतीय केवल तीन हैं, अवशिष्ट विदेशी हैं—जैन कोई भी नहीं है। उन धनकुबेरोंके नाम ये हैं—

१. एडसेल फोर्ड (अमेरिकन)
२. हेनरी फोर्ड (अमेरिकन)
३. एडॉआर्ड डी रोथ्स चाइल्ड (फ्रेंच)
४. ड्यूक आफ वेस्टमिंस्टर (ब्रिटिश)
५. विलियम आफ् होहेन जोलर्न (जर्मन)
६. श्रीमान् गायकवाड़ बड़ोदा।
७. सर वेसिल जहारोफ (यूनानी)
८. साइमन पेटिनो (बोलिवियन)
९. लार्ड इवियन (ब्रिटिश)
१०. श्रीमान् आगाखां।
११. निज़ाम हैदराबाद।
१२. जी० डी० वेंडल (फ्रेंच)
१३. जानडी० राकिफेलर [छोटे] (अमेरिकन)
१४. जान डी० राकिफेलर [बड़े]
१५. लुईलुई ड्रेफुस (फ्रेंच)
१६. एण्ड्रू मेलन (अमेरिकन)
१७ फ्रिज थायसन (अमेरिकन)

जैनन्याय के इतिहास पर एक दृष्टि !

[ले०—श्रीमान पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री]

(गतांक से आगे)

[२]

स्वामी समन्तभद्र तथा श्री सिद्धसेन दिवाकर के बाद सातवीं शताब्दी तक यद्यपि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नयचक्र" के कर्त्ता श्री मल्लवादि तथा "विशेषावश्यक" भाष्यके रचयिता श्री जिनभद्र गणि "क्षमाश्रमण" ये दो अच्छे दार्शनिक हुए कहे जाते हैं, तथापि दिगम्बर सम्प्रदाय में किसी ऐसे उल्लेख योग्य दार्शनिक के होने का पता नहीं चलता जो कि न्यायशास्त्र में अपनी अमिट छाप लगा सका हो।

बड़ौदा "गायकवाड़" सीरीज़ से बौद्धाचार्य्य शान्तरक्षित का तत्वसंग्रह नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उसमें दो जैनाचार्यों के मतों का निरसन किया गया है, जिनमें एक का नाम "सुमति" तथा दूसरे का नाम पात्र स्वामी लिखा है। तत्व संग्रह के प्रत्यक्ष परीक्षा नामक समुद्देश में पृष्ठ (३१९) "नन्वित्यादिना प्रथमे हेतौ सुमति दिगम्बरस्य-मतेनासिद्धतामाशङ्कयते" ऐसा उल्लेख है तथा अनुमान परीक्षा नामक प्रकरण में पृष्ठ (४०५) अनयथत्यादिना पात्रस्वामिमतमाशङ्कयते ऐसा लिखा हुआ है, ग्रन्थकार के लिखने से आचार्य सुमति का दिगम्बरत्व सिद्ध है। कहा जाता है कि ये अपने समय के बहुत अच्छे दार्शनिक थे। तत्व-संग्रह में अनेक मत का उल्लेख होने से भी उनके पाण्डित्य की प्रसिद्धि का पता चलता है, यह भी कहा जाता है कि उन्होंने सिद्धसेन दिवाकर के "सम्मतितर्क" नामक प्रकरण पर एक टीकाग्रन्थ लिखा था।

तत्वसंग्रह की अंग्रेजी भूमिका में पात्र स्वामी को जैन नैयायिक लिखा है। हमारे विचार में ये पात्रस्वामी पात्र केसरी से भिन्न विद्वान् नहीं हैं। पात्रकेसरी का ही पात्रस्वामी नाम से उल्लेख किया गया है। भूमिका लेखक ने "सुमति" का समय ई० सन् ६७० से ७२० तक और पात्र स्वामी का ई० सन् ७०० निश्चित किया है। इस तरह उक्त बौद्ध ग्रन्थ पर से सातवीं शताब्दी के अन्त में होने वाले दो प्रख्यात नैयायिकों का निर्देश मिलता है।

आठवीं शताब्दी के अन्त में जब भारतवर्ष में बौद्धवाद का प्रबल प्रभाव छाया हुआ था, जैन-संस्कृति की पावनगोद में अकलङ्क का उदय हुआ। अकलंकदेव अपने समय के प्रखर तार्किक वाग्मी तथा प्रबल वादी थे। "अष्टशती" "लघीयस्त्रय" "बृहत्त्रय" तथा राजवार्तिक ग्रन्थ उनकी अनुपम विद्वत्ता के उदाहरण हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण के सांव्यवहारिक और पारमार्थिक प्रत्यक्ष का स्पष्ट समन्वय सर्व प्रथम अकलंकदेव की प्रतिभा के द्वारा ही हो सका था। बात यह थी कि जैन परम्परा में इन्द्रिय प्रत्यक्ष को परोक्ष कहते थे, जबकि इतर दर्शनकार उसे प्रत्यक्ष के नाम से व्यवहृत करते थे।

जैनदर्शन की उक्त मान्यता को लेकर दार्शनिक क्षेत्रमें बड़ा संघर्ष पैदा होगया था। श्वेताम्बर सूत्रों के कर्त्ताओं ने उक्त संघर्ष के समाधान करने का

प्रयत्न किया था। अनुयोगद्वार में प्रत्यक्ष के दो भाग किये गये—एक भाग में मतिज्ञान को प्रत्यक्ष रूप में माना, दूसरे भागमें अवधि आदि तीनों ज्ञानों का प्रत्यक्षपना स्वीकार किया। परन्तु जब इतने मात्र से उक्त समन्वय बिलकुल स्पष्ट न हो पाया, तब श्वेताम्बराचार्यों में "जिनभद्र गणि" "क्षमाश्रमण" और दिगम्बर आचार्यों में भट्टाकलंकदेव ने शताब्दियों से चले आये हुए उक्त विवाद को दूर किया।

अकलंकदेव ने अपनी "लघीयस्त्रय" में स्पष्ट लिखा है कि प्रत्यक्षके दो भेद हैं—"सांव्यवहारिक" और "मुख्य", जिनमें इन्द्रिय-जन्य मतिज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और अवधि मनःपर्यय केवल ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष जानना चाहिये।

श्वेताम्बर विद्वान पं० सुखलाल जी के शब्दों में दोनों सम्प्रदायों के (अकलङ्कदेव के बाद होने वाले) सभी आचार्यों ने अपनी प्रमाणविषयक मीमांसा कृतियों में कुछ भी फेरफार किये बिना एक ही जैसी रीति से अकलङ्कदेव की की हुई योजना और ज्ञानके वर्गीकरणको स्वीकार किया है।

अकलंकदेव के सैद्धान्तिक ग्रन्थों में "तत्वार्थ-सूत्र" टीका "राजवार्तिक" अपनी शैली का एक ही ग्रन्थ है। इसके अवलोकन से भट्टाकलंक के अगाध पाण्डित्य बहुश्रुतत्व और प्रखर तार्किकत्व का स्पष्ट परिचय मिलता है। उनने उन मार्मिक विषय को तर्क के सांचे में ढालने का अभूत पूर्व कार्य किया है। राजवार्तिक में की गई अनेकान्त की चर्चा "सप्तभंगी की व्याख्या और ऋजुसूत्र" के विषय निर्देशन की शैली जैनदर्शन में अपनी सानी नहीं रखती।

अकलंकदेवसे पहिले यद्यपि सिद्धसेन दिवाकरने "न्यायावतार" नामक न्याय ग्रंथकी रचना की थी, जैसाकि हम ऊपर लिख आयेहैं; फिर भी जैनदर्शन में न्याय शाखाकी स्वतंत्रता स्थापित न होसकी थी—दार्शनिक ग्रन्थों में ही युक्तिवादके रूपमें उसके दर्शन होते थे। अकलंक देव ने अपने न्याय विनिश्चय ग्रंथ के द्वारा जैन न्यायशास्त्र को पुनरुज्जीवित किया। दिगम्बर समाज में तो आठवीं शताब्दी के बाद में जितने प्रख्यात नैयायिक हुये उन सबने अकलंक देव के दिखाये हुये मार्ग का अनुसरण किया। नवीं दशवीं शताब्दी में अनन्त वीर्य विद्यानन्दि और माणिक्यनन्दि प्रख्यात दिगम्बराचार्य हुये हैं। श्री अनन्तवीर्य आचार्य ने अकलंकदेव के ग्रन्थों पर टीका लिखी है। उनकी युक्तियों के प्रति प्रभाचन्द्र आचार्य ने अपने "न्यायकुमुद चन्द्रोदय" में बड़ी ही महत्व तथा कृतज्ञता का भाव प्रगट किया है। स्वामी विद्यानन्दिने अकलंकदेव की अष्टशती के ऊपर अष्टसहस्री नामक उच्च कोटिका दार्शनिक ग्रन्थ बनाया, जिसके अध्ययन में दुनिया के संस्कृतज्ञ विद्वान् अष्टसहस्री का अनुभव करते हैं।

नवीं शताब्दी के मध्यकाल तक यद्यपि भट्टाकलंक देवकी कृतियों से जैनन्याय शास्त्र का पूर्ण संस्कार हो चुका था तथापि अन्य दर्शनों की न्याय-शास्त्र से तुलना करने पर उसमें एक बड़ी भारी कमी अवशेष रह गयी थी। जैन न्याय शास्त्र में सूत्र ग्रन्थ का अभाव था। उस समय तक बौद्ध-नैयायिकों ने "न्याय प्रवेश" "न्यायबिन्दु" आदि अनेक सूत्र ग्रन्थोंकी रचना करडाली। आचार्य माणिक्यनन्दि के हृदय ने इस कमी का अनुभव

किया और "परीक्षामुख" नामक एक सूत्र ग्रंथ की रचना की। परीक्षामुख में समस्त जैन न्याय का समावेश बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। हो सका तो हम किसी स्वतंत्र लेख में उसपर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तमें आचार्य प्रभाचन्द्र प्रकाण्ड नैयायिक हुये। इन्होंने माणिक्यनन्दि के उक्त सूत्र पर "प्रमेयकमल मार्तण्ड" नाम से वृहत् टीका ग्रन्थ का निर्माण किया तथा अकलंक देव के लघीयस्त्रय ग्रन्थ का कुछ अंशलेकर "न्याय कुमुद चन्द्रोदय" की रचना की। उनके ग्रन्थों के अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ये बड़े भारी तार्किक थे—किसी विषय को लेकर उसे ऊहापोह के विकल्प जाल में ऐसा फांसते हैं कि देखते ही बनता है। उनके न्याय ग्रन्थोंमें जो एक नई बात पाई जाती है वह यह है कि इन्होंने श्वेताम्बर सम्प्रदाय की स्त्री मुक्ति और केवली भुक्ति सरीखे साम्प्रदायिक मन्तव्यों को न्यायकी कसौटी पर कसने का अभूत प्रयास किया। इनकी देखा देखी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ग्यारहवीं शताब्दी के विद्वान् "अभयदेव" सूरिने "सम्मति तर्क" की टीका में तथा "देवसूरि" ने स्वरचित "स्याद्वादरत्नाकर" में प्रभाचन्द्रकी युक्तियोंका निरसन करते हुये उक्त दोनों मान्यताओंको सिद्ध करनेका प्रयत्न कियाहै।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "अभयदेव सूरि" तथा "वादिदेव सूरि" दोनों कुशल टीकाकार हुए। वादिदेव सूरि ने माणिक्यनन्दी के परीक्षामुख नामक सूत्र ग्रन्थ से प्रभावित होकर बिलकुल उसी ढंग पर प्रमाणनयतत्वालोक नामक सूत्रग्रंथ बनाया, और उस पर स्याद्वाद रत्नाकर के नाम से स्वोपज्ञ विस्तृत व्याख्या ग्रन्थ का निर्माण किया। वादिदेवसूरि के बाद आचार्य हेमचन्द्र जी श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अच्छे नैयायिक हो गए हैं और लगभग सतरहवीं शताब्दीके उपाध्याय "यशोविजय" जी ने भी जो नव्य न्याय के उत्कृष्ट विद्वान थे अनेक ग्रन्थ लिख कर श्वेताम्बर समाज का मान बढ़ाया! दिगम्बर आचार्य विद्यानन्दि के अष्ट सहस्री पर नव्य न्याय की शैली में वृहत् टिप्पणी लिखी है, जो श्लोक संख्या के ८००० प्रमाण है।

बारहवीं शताब्दी के बाद दिग० समाज में किसी उल्लेखनीय नैयायिक के होने का पता नहीं चलता।

छोटे टीकाकारोंमें परीक्षामुख की लघुवृत्ति प्रमेयरत्नमाला के कर्ता अनन्तवीर्य तथा "न्यायदीपिका" के लेखक यति श्री धर्मभूषण जी का नाम सदा आदर के साथ लिया जायगा! दिगम्बर तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के नैयायिकों के संक्षिप्त उल्लेख के साथ जैन न्याय के इतिहास का विवरण समाप्त किया जाता है। यद्यपि जैन शास्त्र की आनन्दरूपी वार्ताओं पर इस लेख में प्रकाश नहीं डाला गया है और काल क्रम से होने वाले जैन नैयायिकों के कार्यों का संक्षिप्त दिग्दर्शन करा दिया गया है तथापि जैनन्याय के शास्त्रीय इतिहास की गवेषणा करने में यह संक्षिप्त सूचन अवश्य सहायक होगा।

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[८]

एक ही जैन संघ इस प्रकार विक्रम संवत् १३६में दिगम्बर श्वेताम्बर रूपसे दो भागोंमें विभक्त हो गया। संघभेदकी यही कथा श्वेताम्बरीय ग्रन्थोंमें अन्यरूपमें पाई जाती है। श्वेताम्बरीय ग्रंथ आवश्यकनिर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि में संघभेद जिस रूपसे लिखा है वह इन निम्न-लिखित गाथाओंसे प्रगट होता है :—

छव्वास सयाइं नवुत्तराइं तइया सिद्धिगयस्सवीरस्स।
तो बोडियाण दिट्ठी, रहवीरपुरे समुप्पण्णा ॥९२॥
रहवीरपुरं नगरं दीवगमुज्जाणमज्जकण्हेय।
सिवभूइस्सुवहिम्मि, पुच्छा थेराण कहणा य ॥९३॥
ऊहाएपन्नत्तं, बोडियसिवभूइउत्तराहिइमं ।
मिच्छादंसणमिणमो रहवीरपुरे समुप्पण्णं ॥९४॥
बोडियसिवभूईओ, बोडियलिंगस्स होइ उप्पत्ती।
कोडिन्नकोट्टवीरा परंपराफासमुप्पन्ना ॥९५॥

इनका भावार्थ यह है कि बोटिकमत (दिगम्बर-मत) वीर सं० ६०९, अथवा विक्रम सं० १३९ में रथवीरपुर में उत्पन्न हुआ। कथा इस प्रकार है—

रथवीरपुर नगर में सहस्रमल्ल शिवभूति नामक एक पुरुष रहताथा। वह बहुत साधुभक्त था।

किसी समय उसी नगर के दीपक बागमें कृष्ण नामक एक आचार्य पधारे; सहस्रमल्ल शिवभूति उनकी सेवा करने में अपना बहुत समय लगाने लगा, यहाँ तक कि वह प्रति दिन बहुत रात बीत जानेपर घर आता था। तब तक उसकी स्त्री घर पर भूखी प्यासी जागती रहती थी।

एक दिन उसकी स्त्रीने अपनी साससे कुपित होकर कहा कि तुम्हारा पुत्र प्रति दिन आधी रात को घर आया करता है तब तक मैं भूखी प्यासी बैठी रहती हूं, सासने उससे कहा कि आज तू सो जा, मैं जागती रहूंगी। उसकी बहूने ऐसाही किया। उसकी सास किवाड़ बंद करके जागती रही।

शिवभूति अन्य दिन के समान उस दिन भी आधी रात को आया और द्वार खोलने के लिये आवाज़ दी, उसकी माता ने उत्तर दिया कि इस समय जिस घरका द्वार खुला हो वहां चला जा। शिवभूति अपनी माता का उत्तर पाकर सीधा आचार्य के मठ पर जा पहुँचा।

वहां पहुंच कर उसने आचार्य महाराज से साधुदीक्षा लेनेकी प्रार्थना की, किन्तु आचार्य महा-राज ने उसको दीक्षा देना अस्वीकार किया, तब शिवभूतिने अपने आप अपने शिरके बालों का लोंच कर डाला। यह देख कर आचार्य महाराजने भी उसको साधु का वेश दे दिया।

कुछ समय पीछे कृष्णाचार्य वहां से बिहार कर गये। एक दिन रथवीरपुर के राजा ने शिवभूति को एक रत्नकंबल भेंट किया, शिवभूतिने वह क़ीमती कंबल अपने पास रख लिया।

संयोगवश घूमते फिरते वे कृष्णाचार्य एक दिन फिर उसी रथवीरपुरमें आ पधारे; उन्होंने शिवभूति

के पास रत्नकंबल देखकर शिवभूति से कहा कि साधुओंको ऐसे बहुमूल्य पदार्थ अपने पास नहीं रखने चाहियें, ऐसा कहकर शिवभूति की इच्छा के विरुद्ध कृष्णाचार्यने उस रत्नकंबल के टुकड़े टुकड़े कर दिये और उन टुकड़ों को रजोहरण (ऊनी पोछी) के निशीथिये बना डाला। इसपर शिवभूति कृष्णाचार्यपर बहुत क्रोधित हुआ।

एक दिन कृष्णाचार्य ने जिनकल्पका स्वरूप स्पष्टरूपसे बताया कि—

जिनकल्पी साधु दो प्रकारके होते हैं—एक उत्कृष्ट पाणिपात्र; जो कि वस्त्ररहित नग्न होते हैं और हाथों में भोजन करते हैं।

दूसरे—पात्रधारी वस्त्रसहित, अर्थात जो भोजन के लिये काठ के बर्तन और पहनने के लिये कपड़ा अपने पास रखते हैं। उनके निम्न आठ भेद हैं—

१—रजोहरण (भूमि शोधनके लिये ऊनी धागों की बनी हुई पोछी) तथा मुखपत्ती (स्वाध्याय या वार्त्तालाप करते समय मुख ढांकने के लिये कपड़ा) केवल इन दो चीज़ों के रखने वाले।

२—रजोहरण, मुखपत्ती तथा एक पछेवड़ी (ओढ़ने की चादर) रखने वाले।

३—रजोहरण, मुखपत्ती और दो पछेवड़ी अपने पास रखने वाले।

४—रजोहरण, मुखपत्ती तथा तीन पछेवड़ी. ऐसे ५ चीज़ें स्वीकार करने वाले।

५—रजोहरण, मुखपत्ती, पात्र (बर्तन), पात्रबन्धन (बर्तन बांधनेका कपड़ा), पात्रस्थापन (बर्तन रखनेका), पात्रकेसरिका, तीन पडले, रजस्त्राण, गोच्छक ऐसे नौ उपकरण धारक।

६—उपर्युक्त नौ उपकरण तथा एक पछेवड़ी ऐसे दश उपकरणधारी।

७—नौ उपकरणों के साथ दो चादर रखने वाले।

८—नौ उपकरणोंके साथ साथ तीन चादरें, इस तरह बारह उपकरण अपने पास रखने वाले साधु।

कृष्णाचार्यका यह सैद्धान्तिक उपदेश सुनकर शिवभूतिने उनसे पूछा कि फिर आप अपने पास इतना परिग्रह क्यों रखते हैं, जिनकल्पी क्यों नहीं हो जाते?

आचार्य ने उत्तर दिया कि इस काल में जिनकल्पका आचरण नहीं हो सकता; जिनकल्प भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गवास हो जाने पर समाप्त हो गया है।

शिवभूतिने कहा कि जिनकल्प ही उत्तम मार्ग है, उसका व्यवच्छेद कैसे होगया है, मैं करके दिखलाता हूं, यह कह कर गुरु की आज्ञा के विरुद्ध उसने सब वस्त्र पात्र छोड़कर नग्न (जिन-कल्प) रूप बना लिया।

शिवभूतिकी बहिन उत्तरा ने भी वस्त्र उतार कर नग्न आर्यिकाका वेश बनाया, किन्तु गणिका ने उसके शरीरपर एक कपड़ा डाल दिया जोकि शिवभूतिके कहने पर उसने स्वीकार कर लिया।

कालान्तरमें शिवभूति के कौडिन्य और कोट्टवीर नामक दो शिष्य हुए। उन शिष्योंके और अनेक नग्न रूपधारी शिष्य हुए। इस प्रकार वह परम्परा चलती रही। इस रूपसे दिगम्बर मत प्रचलित हो गया।

जैनसंघ भेद का कथन श्वेताम्बरीय ग्रंथोंमें इस प्रकार लिखा हुआ है।

[क्रमशः]
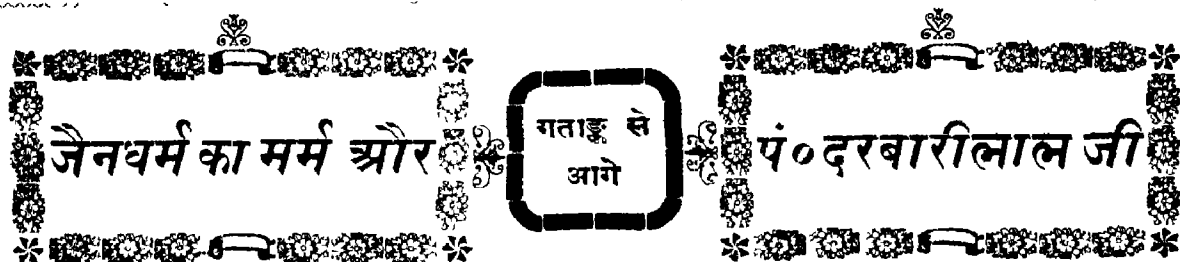
[१०]

युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना।

छठी युक्ति की समालोचना करने से पूर्व दरबारीलाल जी ने उसको प्रश्न के रूप में निम्नलिखित शब्दों में लिखा है :—

"अमुक दिन ग्रहण पड़ेगा तथा सूर्य चन्द्र आदि की गतियों का सूक्ष्म ज्ञान बिना सर्वज्ञ के नहीं हो सकता। भविष्य की जो बातें शास्त्रों में लिखी हैं वे सच्ची साबित हो रही हैं। पंचमकाल का भविष्य आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रचना भी साफ़ मालूम होती है। और भी बहुत सी बातें हैं जो हमें शास्त्रों से ही मालूम होती हैं। उनका मूल प्रणेता अवश्य होगा जिसने उन बातों का ज्ञान शास्त्र से नहीं, अनुभव से किया होगा; बस वही सर्वज्ञ है।"

इस कथन में दो बातें हैं—एक सूर्य और चन्द्र आदि की गतियों का परिज्ञान और दूसरी भविष्य संबंधी एवम् उत्सर्पिणी अवसर्पिणी संबंधी घटनाओं की यथार्थता। इन दोनों में से दरबारीलाल जी ने केवल पहिली बातको स्वीकार किया है किन्तु फिर भी वह इसके लिये सर्वज्ञता की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते।

अब विचारणीय यह है कि क्या सूर्य और चन्द्र आदि नक्षत्रोंकी गति का परिज्ञान सर्वज्ञके बिना भी हो सक्ता है? क्या भविष्य सम्बन्धी एवं उत्सर्पिणी अवसर्पिणी सम्बन्धी घटनायें यथार्थ हैं?

पहिली बात के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित दो बातें लिखी हैं :—

(१) आज जो जगत को ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान है वह किसी सर्वज्ञ का बताया हुआ नहीं है, किन्तु विद्वानों के हज़ारों वर्ष के निरीक्षण का फल है। तारा आदि की चालें आंखों से दिखाई देती हैं, उनके ज्ञान के लिये सर्वज्ञ की कोई ज़रूरत नहीं है।

(२) जो लोग जैन शास्त्र, जैनधर्म और जैन-भूगोल नहीं मानते वे भी ग्रहण आदि की बातें बता देते हैं और जितनी खोज को हम सर्वज्ञ बिना मानने को तय्यार नहीं हैं, उससे कई गुणी खोज आजकल के असर्वज्ञ वैज्ञानिक कर रहे हैं। ज्योतिष आदि की खोज से सर्वज्ञ की कल्पना करना कूप मण्डूकता की सूचना है।

प्रकृत अनुमान यह है कि सर्वज्ञ त्रिकाल और त्रिलोक का ज्ञाता है, क्योंकि इसके बिना ज्योतिष ज्ञान की अनुपपत्ति है। इसके सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने कहा था कि ज्योतिषज्ञान सर्वज्ञ के बिना भी अनुभव से हो सकता है। "मौजूदा ज्योतिषज्ञान विद्वानोंके हज़ारों वर्षके ज्योतिष सम्बंधी अनुभव का फल है" अपने इस वक्तव्य के समर्थन में दरबारीलाल जी ने कोई भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया, ऐसी अवस्था में विद्वान् पाठक स्वयं

सोच सकते हैं कि उनका यह वक्तव्य इस परीक्षा के अवसर पर क्या मूल्य रखता है ? जहां कि दरबारीलाल जी ने यह लिखा था कि वर्तमान ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान का आश्रय केवल विद्वानों का हज़ारों वर्ष का अनुभव है वहीं उनको यह भी लिखना था कि वे कौन २ से विद्वान् हैं, उनके अनुभव की वृद्धि किस २ प्रकार हुई, किस २ ने कहां २ तक अनुभव प्राप्त किया और उन्होंने अपने अनुभवों को अगाड़ी २ के विद्वानों को किस २ प्रकारसे दिया। बग़ैर इन सब बातोंके सामने आये कोई श्रद्धालु तो दरबारीलाल जी के मौजूदा कथन पर विश्वास कर सकता है, किन्तु परीक्षक के लिये तो इस कथन में तनिक भी सामिग्री नहीं है।

दूसरे तरफ़ याने मौजूदा ज्योतिष ज्ञान का आधार सर्वज्ञ ज्ञान है, इसके समर्थन में अनेक प्रमाण मौजूद हैं—

(१) जितने भी ज्योतिष के बड़े बड़े शास्त्र हैं उन सबके रचयिताओं ने परम्परा से ज्योतिषज्ञान का आधार सर्वज्ञ को माना है।

(२) सर्वज्ञ के द्वारा ज्योतिष ज्ञान की बातों के प्रतिपादन में कोई आपत्ति भी नहीं, ऐसी अवस्था में प्राचीन आचार्यों के कथनों में और भी दृढ़ता आ जाती है।

(३) अन्य अनेक दार्शनिक विद्वानों ने भी ज्योतिष का आधार सर्वज्ञ ज्ञान माना है।

ऐसी अवस्था में यह कैसे कहा जा सकता है कि ज्योतिषज्ञान अनुभव से भी हो सकता है और मौजूदा ज्योतिष ज्ञान विद्वानों के हज़ारों वर्ष के ज्योतिष सम्बन्धी अनुभवों का फल है।

दरबारीलाल जी की दूसरी बात के पहिले अंश के सम्बन्ध में बात यह है कि यहां सर्वज्ञ विशेष का प्रकरण नहीं है किन्तु सर्वज्ञ सामान्य का, और उसकी सिद्धि में हेतु भी सामान्य ज्योतिष ज्ञान है। सर्वज्ञ सामान्य के स्थान पर यदि हम इस युक्ति से जैन सर्वज्ञों की सर्वज्ञता प्रमाणित कर रहे होते तब तो आपका जैन एवं जैनेतर ज्योतिष का प्रश्न उपस्थित करना समुचित हो सकता था किंतु यहां ऐसा है नहीं! जहां तक जैन एवं जैनेतर ज्योतिष की मुख्य २ बातों का सम्बन्ध है वहां तक इनमें कोई ऐसी विभिन्नता नहीं जिससे कि इनके मूल प्रणेताओं में भिन्नता का प्रश्न उपस्थित हो सके। दूसरे एकही सिद्धान्त है और जिसका प्रतिपादक भी एक एवं वही व्यक्ति है, फिर भी वह साम्प्रदायिक उपभेदों में पड़ कर विभिन्न हो जाया करता है। भगवान महावीर के उपदेश को ही ले लीजिये। यह एक था और इसके उपदेशक भी वीर प्रभु थे, फिर भी आज यह साम्प्रदायिक उपभेदों में मिलने से एक रूप नहीं मिलता, एक उपसम्प्रदाय यदि अपने रूप बतलाता है तो दूसरा अपने रूप! यह भेद कब और कैसे हुआ यह एक जुदी बात है, किन्तु यह तो निश्चित है कि इस विभिन्नता का कारण केवल मात्र साम्प्रदायिकता है!

जबकि ऐसी बात के सम्बन्ध में जिसका समय कि केवल ढाई हज़ार वर्ष के क़रीब है इस प्रकार की विभिन्नता हो सकती है फिर ज्योतिषज्ञान के सम्बन्ध में जिसका कि अस्तित्व ऐतिहासिक दृष्टि से आज से हज़ारों वर्ष पहिले तक मिलता है कुछ विभिन्नता हो गई हो तो आश्चर्य की कौनसी बात है! ऐसा होने पर भी यह नहीं कह सकते कि ज्योतिष के प्रतिपादक एक ही व्यक्ति नहीं थे। यह

व्यक्ति कौन थे, उन्होंने इसका उपदेश किस समय दिया और वर्तमान सम्प्रदायों में आगतप्रदान कैसे हुआ, यह एक ऐसी बात है जिसके सम्बन्ध में यहां प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं ! यहां तो केवल इतना ही कहना है कि ज्योतिषज्ञान से सर्वज्ञ सामान्य की सिद्धि में जैन एवं जैनेतर का प्रश्न बिलकुल असम्बन्धित है।

इसही बात के दूसरे अंशके सम्बन्धमें बात यह है कि वर्तमान वैज्ञानिकों ने जो ज्योतिष के सम्बन्ध में अनुसन्धान किये हैं। इसके द्वारा उन्होंने इस विषयका स्थापन नहीं किया, किन्तु इसके द्वारा उन्होंने इस प्रकार के साधन सुलभ कर दिये हैं जिनसे कि आज हम इसका परिचय सुविधासे कर सकते हैं। साध्य की उन्नतिसे साधक की उन्नति एक भिन्न बात है। अभी साल डेढ़ सालकी बात है कि अम्बालेके एक ज्योतिषी विद्वान् को एक प्राचीन श्लोक मिल गया था जिसके आधार से उन्होंने एक यंत्र बनाया है जोकि अपनी समानता नहीं रखता और जिसके द्वारा अद्भुत २ कार्य अति सरलतासे हो जाते हैं। इसका यह मतलब थोड़ेही है कि ये विद्वान ज्योतिषके किसी विशेष विषयके संस्थापक हैं। इस ही प्रकार के अनुसंधान वर्तमान वैज्ञानिकों के हैं।

हमारे विद्वान् मित्र ने किसी से यह बात सुन ली है कि आधुनिक वैज्ञानिकोंने ज्योतिषके सम्बन्ध में बड़े २ अनुसन्धान किये हैं; इसही के आधार से उन्होंने यह लिख मारा है कि उनके अनुसन्धानों से उनका ज्ञान मौजूदा ज्योतिष के ज्ञान से कई गुणित हो गया है, किन्तु यह उनकी भूल है।

इससे स्पष्ट है कि दरबारी लाल जी का असर्वज्ञ वैज्ञानिकों के ज्ञान को इस सम्बन्ध में कई गुणित बतलाना एवं विद्वानों के अनुभव मात्र को ज्योतिष शास्त्र की रचना का कारण बतलाना मिथ्या है; अतः ज्योतिष विषयक ज्ञान के आधार से सर्वज्ञ सिद्धि में यह बाधक नहीं हो सकता।

इस प्रकरण की दूसरी बात भविष्य कथन और उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के वर्णनकी है। भविष्य कथन के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने लिखा है कि "भविष्य की बातें जो शास्त्रों में लिखी हैं वह सिर्फ लेखकों का मायाजाल है, शास्त्रों में ऐसा कोई प्रमाणिक भविष्य नहीं मिलता जो शास्त्र-रचनाके बाद का हो। भविष्यकी कुछ सामान्य बातें भी हैं परन्तु वे सामान्य बुद्धिसे कही जासक्ती हैं"।

यदि थोड़ी देर के लिये शास्त्रों के अन्य विषयों को छोड़ भी दें तो भी केवल सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के गुरुमंत्र ही इस विषय के लिये यथेष्ट हैं। सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का शास्त्रीयवर्णन भविष्य का वर्णन है, इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं और ऐसा होने पर भी न यह शास्त्रकारों का मायाजाल है और न केवल सामान्य कथन ही।

सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का कथन केवल सामान्य दृष्टि से होता या जिस समय में इसका वर्णन शास्त्रों में मिलता है उस प्रकार ही यह न हुआ होता तब तो इस कथन को भी केवल सामान्यकथन या मिथ्याकथन कह सकते थे किन्तु ऐसा है नहीं।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के कथन की बातें भी इसही प्रकार की बातें हैं !

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का सिद्धान्त जिसको आजकल के विज्ञान के शब्दों में उत्कर्षवाद और अपकर्षवाद कहते हैं एक ऐसा विषय है

जिसका लगातार परीक्षण हो चुका है। मौजूदा वैज्ञानिक अपने सतत् परीक्षण के फल से इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि पृथ्वी की शक्ति लगातार कम होती जारही है। अन्य जितनी भी भौतिक बातें हैं जो पृथ्वी से सम्बन्धित हैं, उनके बल में भी न्यूनता आती जारही है। यही कारण है कि ज्यों २ समय जा रहा है पृथ्वी जल अन्नादिक और प्राणियों के शरीर निर्बल होते जा रहे हैं। इस प्रकार के परिणमन की संज्ञा वैज्ञानिकों ने अवनतिवाद दी है। ये लोग यह भी स्वीकार करते हैं कि एक समय ऐसा भी आयगा जबकि ये सब बातें बढ़ती चली जायँगी जिसको कि उन्होंने उन्नतिवाद लिखा है। जैन शास्त्रों के वर्णनों में हम इसही प्रकार के युगों को उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के नामों में पाते हैं।

इससे स्पष्ट है कि उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी के वर्णन वैज्ञानिक वर्णन हैं, उनके सम्बन्धमें शंका करना बिलकुल निराधार है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन शास्त्रों का भविष्य के सम्बन्ध में कथन एवं उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के वर्णन मिथ्या नहीं। अतः यह भी स्पष्ट है कि छठी युक्ति युक्ति ही है उसको युक्तयाभास कहना भूल है।

सातवीं युक्ति

अन्य युक्तियों की तरह इसको भी पं० दरबारीलालजीने प्रश्नके रूपमें निम्न शब्दोंमें लिखा है:—

"भगवान सर्वज्ञ है, क्योंकि निर्दोष है। भगवान निर्दोष है क्योंकि उनका उपदेश युक्ति शास्त्र से बाधित नहीं होता और न परस्पर विरुद्ध साबित होता है।"

दरबारीलाल जी ने इस पर निम्न लिखित वाक्य इसकी समालोचना स्वरूप लिखे हैं:—

"आज जो शास्त्र हैं उनमें परस्पर विरोध अच्छी तरह है और वे युक्ति शास्त्र के विरुद्ध भी हैं। अगर यह कहा जाय कि सच्चे शास्त्र आज उपलब्ध नहीं हैं तो वर्तमान के शास्त्र अविश्वसनीय होजायेंगे। ऐसी हालत में इन्हीं शास्त्रों में सर्वज्ञता का जो अर्थ लिखा है वह भी अविश्वसनीय होगया। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार का बहाना तो हर एक धर्मवाला बना सकेगा। वह भी कहेगा कि हमारे शास्त्र सच्चे हैं आदि। खैर यहां पर असली वक्तव्य यह है कि परस्पर अविरोध आदि से सत्यता सिद्ध होती है न कि सर्वज्ञता। अल्पज्ञ भी परस्पर अविरुद्ध बोल सक्ता है। मिथ्यावादीही परस्पर विरुद्ध बोलता है। सत्यवादी होने से ही कोई सर्वज्ञ नहीं कहा जा सकता"।

यदि हमारे विद्वान मित्र ने जैन शास्त्रों के इस कथन के पूर्वापर सम्बन्ध को अध्ययन की दृष्टि से देखा होता तो उनको इसमें कोई खण्डन योग्य बातही न मिलती।

जैन शास्त्रकारों ने यदि प्रस्तुत युक्तिको सर्वज्ञ सामान्य की सिद्धिमें उपस्थित किया होता तब तो आपका कथन ठीक हो सक्ता था, किन्तु ऐसा है नहीं। जैन शास्त्रकारों का तो इस युक्ति से प्रयोजन सर्वज्ञ विशेष की सिद्धि से है।

यह देवागमकी छठी कारिकाका भावहै। इससे पहिली कारिका से आचार्य समन्तभद्र ने सर्वज्ञ सामान्य की सिद्धि की है। सर्वज्ञ सामान्य की सिद्धि हो जाने पर वह सर्वज्ञ जैन तीर्थङ्कर ही हैं, इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य समन्तभद्रने इस

कारिका की रचना की है। इस बात का खुलासा आचार्य विद्यानन्दि ने अपनी अष्टसहस्री में बड़े ही सुन्दर शब्दों में किया है।

नन्वस्तु नामैवं कस्यचित्कर्मभूभृद्भेत्तृत्वमिव विश्वतत्त्व साक्षात्कारित्वं प्रमाण सद्भावात्। सतु परमात्मार्हन्नेवेति कथं निश्चयो यतोऽहमेव महानभिवन्द्यो भवतामिति, व्यवसिताभ्युनुज्ञान पुरस्सरं भगवतो विशेष सर्वज्ञत्व पर्यनुयोगं सत्याचार्याः प्राहुः।

ऐसी अवस्थामें दरबारीलालजी का यह लिखना कि "यहाँ पर असली वक्तव्य यह है कि परस्पर अविरोध आदि से सत्यता सिद्ध होती है न कि सर्वज्ञता" कहां तक प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित है यह विचारशील पाठक स्वयं विचार सकते है!

हम परस्पर अविरोधी वचन के साथ सर्वज्ञता की व्याप्ति नहीं मानते, किन्तु सर्वज्ञता के साथ परस्पर अविरोधी वचन को मानते हैं। हमारा यह कहना नहीं कि जो जो परस्पर अविरोधी वचन बोलता है वह २ सर्वज्ञ है किन्तु यह है कि जो २ सर्वज्ञ है वह २ परस्पर अविरोधी वचन बोलता है। परस्पर अविरोधी वचन केवल जैनतीर्थङ्करों के ही हैं; अतः वे ही सर्वज्ञ हैं।

इससे पाठक भलीभांति समझ गये होंगे कि इस कारिका से आचार्य समन्तभद्र का अभिप्राय सर्वज्ञ विशेष की सिद्धि से है। यदि इसही को दूसरे शब्दों में कहना चाहे तो यों कह सकते हैं कि सर्वज्ञता के सिद्ध हो जाने पर वह सर्वज्ञता केवल जैनतीर्थङ्करों में ही है, यह बात इस कारिका से अभीष्ट है। अब रह जाती है मौजूदा जैनशास्त्रों के परस्पर विरोधी कथन एवं असंभव कथनों की बात, इसके सम्बन्ध में यह कहना है कि यदि दरबारीलाल जी ने इस सम्बन्ध के कथनों का उल्लेख कर दिया होता तबतो उनके सम्बन्ध में विशेष रूप से लिखा जा सकता था किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया है। अतः इतना ही लिख देना पर्याप्त होगा कि जिस २ शास्त्र के जिस २ कथन में विरोध हो वहां इस बात का निर्णय करना आवश्यकीय है कि कौन २ प्राचीन एवं प्रमाणाविरुद्ध मान्यता है; जिसमें ये बातें मिलें उसीको मान्य करना चाहिये। जिसमें इस प्रकार की बातें न हों उसको विकारी समझ कर छोड़ देना चाहिये।

ऐसी अवस्था में वर्तमान के शास्त्रों की अविश्वसनीयता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि जिस शास्त्रके जिस अंश के सम्बन्ध में विरोधी कथन मिलता हो उसही सम्बन्ध में यह बात कही जासकती है न कि सम्पूर्ण उस शास्त्र के सम्बन्धमें। अतः इस दृष्टि से भी शास्त्र की अविश्वसनीयता का प्रश्न नहीं रहता।

तीसरी बात यह है कि प्राचीन अनेक शास्त्र हैं जिनमें परस्पर विरोध की गन्ध भी नहीं।

युक्ति शास्त्र के विरुद्ध कथन की बात यह है कि जहा इस प्रकार का कथन है वह जिनवाणी एवं उसके आधार से बने हुये शास्त्र ही नहीं। यह कोई नवीन बात नहीं है। आचार्य समन्तभद्र आज से ठीक २००० वर्ष पूर्व इसकी घोषणा कर चुके हैं। किन्तु हम इस बातको दावे के साथ कहते हैं कि प्राचीन जैन शास्त्रोंमें इस बात का अभाव है। अतः इस दृष्टि से भी जैनशास्त्रों की अमान्यता की बात ठीक नहीं जंचती।

शास्त्रों की अविश्वसनीयता का प्रश्न दूर हो जाने पर सर्वज्ञ के अर्थ का प्रश्नभी हलहो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मौजूदा युक्ति से आचार्य समन्तभद्रका अभिप्राय केवल सर्वज्ञ विशेष की सिद्धि है तथा दरबारीलाल जी का कथन बिलकुल इससे असम्बन्ध है। अतः प्रस्तुत युक्ति युक्तिही है इसको युक्त्याभास कहना मिथ्या है।

जैनसमाज की विधवा बहिनों तथा अनाथ बच्चों को विधर्मी और दुराचार के शिकार से

दानदेकर बचाइये !

आज जैन समाज की अगणित ललनायें दाने दाने को तरसती दिखाई दे रही हैं। वे बाल, वृद्ध तथा अनमेल और अयोग्य विवाह की घातक प्रथा का शिकार हो दुःखद वैधव्य अवस्था को प्राप्त कर अनाथ और असहाय हो रही हैं। कोई २ प्राणघात कर जीवन समाप्त कर देती हैं, कोई विधर्मियो तथा दुराचारियों के चुङ्गल में फंस पथ-भ्रष्ट हो जैनधर्म को कलंकित बनाती हैं। इसी प्रकार सैकड़ों अनाथ, बच्चे और अशक्त भाई बहिन पापी पेट के भरने को अपने प्यारे जैनधर्म से नाता तोड़ विधर्मी हो अनाचार का शिकार हो जाते हैं।

इसी विचार से "श्री जैन सेवा मंडल, आगरा" ने सन् १९२९ ई० में विधवा अनाथ सहायक फंड की स्थापना की थी; यह तब से बराबर काम कर रहा है। इस फंड द्वारा दुर २ तक जैन समाज की असहाय विधवाओं की रक्षा की जा रही है, और उन्हें धर्मानुकूल पथ पर चलने के लिये उनके घर बैठे सहायता भेजी जाती है। प्रथम वर्ष १ भाई को २॥) मासिक, द्वितीय वर्ष ३ भाई बहिनों को ७) मासिक, तृतीय वर्ष ७ भाई बहिनों को २२) मासिक और वर्त्तमान में ९ भाई बहिनों को २८) मासिक सहायता देकर इन चार वर्षों में २९ प्राणियों का उद्धार किया जा रहा है। इससे समाज इस फ़ंड द्वारा की गई सेवा का अनुमान लगा सकता है। यह सहायता किन २ को दी जाती है, वह इसके आय व्यय के नक्शे से आपको ज्ञात हो जायगा।

धनाभाव के कारण कितने ही प्रार्थनापत्रों पर ध्यान देते हुए भी सहायता देने में समर्थ नहीं हो सके। इस समय भी कितने ही प्रार्थनापत्र कार्यालय में विचारार्थ रक्खे हैं। दुःख है कि फंड सहायता देने में असमर्थ है।

इस फंड की कितनी आवश्यकता और उपयोगिता है, यह बात किसी से छिपी नहीं रह जाती। यदि जैनसमाज ने इस कार्य में पूरी पूरी आर्थिक सहायता दी तो हमें विश्वास है कि सैकड़ों अनाथों और असहाय विधवाओं का पेट पालन हो जायगा और वे अपने प्यारे जैनधर्म को छोड़ कभी विधर्म और दुराचार के शिकार न होंगे! अतएव प्रत्येक जैनी भाई बहिन से हमारी सविनय प्रार्थना है कि वे इस फंड में अधिक से अधिक दान देकर उन दीनों का दुःख दूर करें, उन्हें विधर्मी तथा दुराचारी होने से बचावें और अपने धर्म का झण्डा नत न होने दें। निवेदक :—

डा० मंगलसेन जैन L. M. P., सभापति
मा० हजारीलाल जैन, कोषाध्यक्ष
श्यामलाल जैन, बारौलिया, मन्त्री
श्री भा० जैन विधवा अनाथ सहायक फंड
धूलियागंज, आगरा।

[सं० अभिमत—इस अनाथ विधवा सहायक फंडका कार्य विश्वस्त, धर्मानुकूल तथा प्रशंसनीय है। दयालु भाइयों को इसको सहायता करनी चाहिये।]

नमस्कार मंत्र की महिमा !

[ले०—श्रीमान पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री]

राष्ट्रीयता का युग है, मनुष्यों के आचार और विचार दोनों राष्ट्र के रंग में सराबोर होते जाते हैं—उदारता की प्रशान्त सरिता में भयंकर तूफान के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जो असहिष्णु और अविचारक मतान्धता के साथ ही साथ शुद्ध सम्प्रदाय वाद को भी बहा ले जाना चाहता है। किन्तु सम्प्रदायवाद की सुदृढ़ भित्ति विचारों की दृढ़ नींव पर खड़ी हुई है—जब तक एक मनुष्य में भी सोचने समझने की शक्ति बनी रहेगी संसार के रंग मञ्च पर सम्प्रदायवाद का अभिनय होता रहेगा। राष्ट्रीयता की आँधी सम्प्रदायवाद का वेश बदल सकता है—उसे धार्मिक क्षेत्र से निकाल कर राष्ट्रीय क्षेत्र में पटक सकती है, किन्तु मूलोच्छेद नहीं कर सकती। यूरोप का इतिहास उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अस्तु

श्वेताम्बर विद्वान् पं० बेचरदास जी ने उक्त वर्तमान युग की दृष्टि से ही नवकार मन्त्र का अर्थ किया है जिसका अनुवाद श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल संपादक "वीर" व "जैनजगत" के १६ अगस्त के अङ्क में प्रकाशित कराया है। लेखक का मन्तव्य है कि अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पद में किसी सम्प्रदाय, किसी वेष, किसी प्रकार के क्रियाकाण्ड या अमुक गच्छ वगैरह को लेश मात्र भी स्थान नहीं दिया गया है। × × ×

जैनधर्म, बौद्धधर्म, सांख्यधर्म, या और किसी भी धर्म का अनुष्ठान करके अहिंसा और सत्य की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ आत्मा इस प्रकार की सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर सकता है। × × ×

अर्हन्तपन भी अहिंसा और सत्य के द्वारा चाहे जिस धर्म से मनुष्य प्राप्त कर सकता है। आदि। × × ×

लेखक महोदय के उक्त वाक्यों को पढ़कर प्रत्येक विचारक के हृदय में एक प्रश्न पैदा होता है कि क्या किसी भी धर्म का अनुष्ठान करके अहिंसा और सत्य की पराकाष्ठा पर पहुँचा जा सकता है? यदि इस प्रश्न का उत्तर "हां" दिया जा सकता तो लेखक महोदय का श्रम सफल हो जाता। किन्तु हमें दुःख है कि ऐसा नहीं हो सकता। क्यों? सुनिये—

संसार के प्रत्येक धर्म-संस्थापक ने अपने धर्म को दो भागोंमें विभाजित किया है—क्रियाकाण्ड और ज्ञान काण्ड। लेखक ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है कि—"आचरण के बिना शिक्षा की कुछ भी कीमत नहीं"। इसलिये प्रत्येक धर्मसंस्थापक महापुरुष ने क्रिया और ज्ञान इन दोनों को ही आत्मविकास का साधन माना है। क्रिया ज्ञान के अनुकूल होनी चाहिये; अतः जो मनुष्य जिस धर्म का अनुष्ठान कर रहा है उस मनुष्य की क्रिया का उस धर्म में वर्णित ज्ञान के अनुकूल होना आवश्यक है—अन्यथा वह बिना विवेक की क्रिया कहलावेगी। अस्तु

संसार के धर्मों ने हिंसा और अहिंसा को

भिन्न २ दृष्टिकोणों से देखा है। जिन धर्मों का विश्वास है कि मनुष्यों के आहार के लिये ही खुदावन्द ने पशुओं की सृष्टि की है या यज्ञ की बलिवेदी पर हलाल करने के लिये ही स्वयंभू ने मूक पशु पैदा किये हैं उन धर्मों का अनुष्ठान करने से अहिंसा की तो नहीं, किन्तु हिंसाकी पराकाष्ठा पर अवश्य पहुँचा जा सकता है।

कुछ धर्मों ने अहिंसा को आंशिक रूपमें अपनाने का प्रयत्न किया है, किन्तु उनकी अहिंसा की व्याख्या मनुष्य और जंगम पशुओं तक ही सीमित रह गई है।

किसी किसी ने अहिंसाको आदर्श मान कर भी, उसे अव्यवहार्य होने का सार्टीफिकेट दे दियाहै।*

पूर्ण अहिंसक होने के लिये अहिंसा का क्षेत्र जङ्गम प्राणियों तक ही सीमित नहीं रक्खा जा सक्ता। उसमें स्थावरों का भी स्थान मिलना ही चाहिये। किन्तु उनकी पूर्ण रक्षा का क्रमिक विकास किस तरह किया जा सकता है—इस प्रश्न पर जैनधर्म के अलावा सर्व धर्म मूक हैं। एक बार हिन्दू विश्व विद्यालय के प्रोवाईस चान्सलर आचार्य ध्रुवने अहिंसा पर अपने विचार प्रगट करते समय कहा था कि—भारतीय धर्माचार्यों ने अपने २ **धर्म के मूल में अहिंसा को स्थान अवश्य दिया, किन्तु "उसका पालन किस अवस्था में कैसे किया जावे" इसका उत्तर जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में नहीं मिलता।**

अब हम लेखक जी से पूछते हैं कि किसी भी सम्प्रदाय के अनुष्ठान का अवलम्बन करने से अहिंसा की पराकाष्ठा पर कैसे पहुँचा जा सक्ता है। यदि आपको सब पन्थों के साथ उदारता दर्शानी है तो अहिंसा और सत्य को भी निकाल डालिये। तब आपकी उदारता का क्षेत्र बहुत विस्तृत और महान हो जायेगा, किन्तु ऐसा करने से शायद गाँधीवाद को हानि पहुँचे जिसके रंग में रंगकर आपने नवकार मंत्र की राष्ट्रीय व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। अस्तु

किसी भी धर्मका अनुष्ठान करने से यदि लेखक महोदय का अभिप्राय यह हो कि अपने को किसी भी धर्म का मानने वाला व्यक्ति जिनोक्त मार्ग का अनुसरण करके पूर्ण अहिंसक बन सकता है तब तो कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु इस दशा में वह किसी भी धर्म का अनुष्ठान करने वाला नहीं कहा जा सक्ता—पाठक विचार करें।

अतः "साधु पद में किसी सम्प्रदाय को किसी क्रिया काण्ड को लेशमात्र भी स्थान नहीं है" लेखक के इस मत से हम ही क्या, कोई भी विचारक सहमत न होगा क्योंकि साधु जिस मार्ग का अनुसरण करता है वह अनुसरण ही तो **क्रियाकाण्ड है।** और वह मार्ग जिससे सम्बन्ध रखता है वही **सम्प्रदाय है।**

हां! वेष को अवश्य स्थान नहीं है—तरह २ के लाल, पीले कपड़े पहिनना, डंडा लाठी रखना ही तो वेष है। नग्नता वेषातीत है—वेष से बहिष्कृत है। अतः उस वेषातीत में जो निर्ग्रन्थ सत्य मार्ग के द्वारा सत्य का अन्वेषण करते हैं—**नवकार मंत्रमें जिनको नमस्कार किया गया है—"वे किसी सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं हैं किन्तु विश्व की विभूति है"।**

---

* देखो लोकमान्य तिलक कृत गीतारहस्य का कर्मजिज्ञासा नामक परिच्छेद।

रचना चातुर्य और जैनियों की अलौकिक रचनायें !

[लेखक—श्री० "आनन्द" उपाध्याय, जयपुर]

मनुष्य-हृदय विचार धाराओं का केन्द्र है; उस महासागर में प्रति क्षण उत्ताल तरंगें उठा करती हैं, जिनसे कि समस्त समाज रूपी नभस्तल आछन्न हो जाता है। विचार शक्ति संसार की अव्याहत शक्ति है। जब मनुष्य-हृदय विचारों से घुट जाता है तब वह उनके प्रकाशन के लिये भाषा का आश्रय लेता है—अपने स्वगत भावों को समाज के आगे रखता है। भाषा-भेद से ही समाजभेद, जातिभेद और देशभेद हो जाते हैं। मनोनीत भावों को प्रगट करने के लिये व्याकरण शास्त्र के नियमानुसार की जाने वाली वाक्य योजना को "रचना" कहते हैं। रचना-चातुर्य ही का दूसरा नाम शैली है। रचना-प्रणाली के दो भाग हैं—वक्तृता और लेखन। जिस प्रकार मनुष्य हरेक बात को कह सकता है उसी तरह वह प्रत्येक बात को लिख भी सकता है, किन्तु वक्तृत्व शैली से लेखन शैली का महत्व बहुत ज़्यादा है। प्रस्तुत लेख में लेखिनीबद्ध रचना पर ही प्रकाश डाला जायगा।

लेखिनीबद्ध रचना को दो समान भागों में विभाजित किया जा सकता है—गद्य और पद्य। वर्तमान समय में पद्य रचना को कविता और गद्य रचना को लेख कहा जाता है। मनुष्य अपनी लेखिनी द्वारा इन दोनों साधनोंसे विश्व में अपना एकच्छत्र साम्राज्य जमा सकता है। विजय लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये लेखिनी में निःसीम शक्ति की आवश्यकता है।

संसार में तीन प्रकार के वीर हैं—बोलने वीर, कलम वीर, शूरवीर। जो महानुभाव अपनी शारीरिक शक्ति से रणक्षेत्र में विजय प्राप्त करते हैं, वे शूरवीर कहलाते हैं। समाज के व्यावहारिक क्षेत्र में उनकी उसी समय माँग है जिस समय किसी को डंडे की चोट समझाना पड़ता है। समाज-क्षेत्र में बोलने वीर भी उसी समय सम्मान प्राप्त कर सकते हैं जिस समय वे अपने सद्भाषणों द्वारा तत्कालीन उपस्थित जनता में क्रांति प्रसार करते हैं। सम्पूर्ण संसार में कई वर्षों के लिये क्रांति मचा देना क़लम वीरों ही का काम है। राज सिंहासनों को स्थानभ्रष्ट कर देना भी कलमवीरों ही का काम है। कलम वीरों के बाण इतने तीखे हैं कि चलाने के पश्चात् यह निर्धारण नहीं किया जा सकता कि वे अब कहां जाकर लगेंगे। इसलिये कहना पड़ता है कि लेखक वीरों को इस विषय में सदैव सतर्क रहना चाहिये। रचना-निर्माण में सिद्धहस्त बनने के लिये जिन २ आवश्यक साधनोंकी आवश्यकता है वे इस ही लेख में लिखे जा रहे हैं। आशा है हमारे पाठकगण इस लेख से कलमवीर बनने की शिक्षा लेंगे।

संसार में जितने विषय होते हैं; उतनी ही रचनाएं हो सकती हैं। मनुष्य जिस समय अपने भावों को भाषा के साथ दौड़ाता है उसी समय रचना का जन्म हो जाता है। भावों की महत्ता भाषा की प्रौढ़ता से है; कितनेही अमूल्य भावोंको आप कुप्रयोगों द्वारा अप्रासंगिक शब्दों में रख

दीजिये, वह आपकी रचना संसार के घासलेटी साहित्य में गिनी जायगी। लेखक का महत्व तभी है जबकि वह भावानुकूल शब्द योजना में सिद्धहस्त होता है।

भाषा पर अधिकार रखते हुए काल्पनिक क्षमता द्वारा लेखक को अपने विचार उज्वल करने चाहियें। काल्पनिक शक्ति से ही रचना में जीवन आता है। यदि कोई साहित्यिक साधारण जनता की तरह ही वाक्यों का प्रयोग करता है तो इसमें उसकी कुछ भी महत्ता नहीं और न वह लोकप्रिय ही बन सकता है। वस्तुतः साहित्य मर्मज्ञ जो होते हैं वे साधारण से साधारण विषय को भी काल्पनिक क्षमता द्वारा मनोमोहक और हृदय-द्रावक बना डालते हैं। कभी २ तो वे अपनी अलौकिक रचनाओं द्वारा विश्व में युगान्तर कर डालते हैं; यह ही साहित्य-शास्त्र के अध्ययन का फल है—राजदरबार में प्रशंसा के दो श्लोक सुनाकर यश प्राप्त करना या पैसे बटोरना नहीं।

रचना निर्माण करते समय भाषा को जटिल बनाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उस समय हमें किसी से शास्त्रार्थ नहीं करना है—साधारण जनता में ज्ञानप्रसार के पवित्र उद्देश्य से आप लिखने जारहे हैं, क्लिष्ट एवं अप्रचलित शब्दों से रचना को दूषित नहीं करना चाहिये। सरल शब्दों द्वारा गुम्फित रचना से आप वाचक का हृदय ले सकते हैं, धीरे धीरे आपकी रचना में वह गुण आजायगा कि जिससे आप संसार में हलचल भी मचा सकते हैं।

जिस समय आप रचना निर्माण करने जा रहे हों उस समय आपका मनोयोग उस विषय की तह में लगा हुआ हो तभी आप मानस सागर से गम्भीर भावों की मीन निकाल सकते हैं। जिस विषय पर आपको लिखना हो उस विषय में अध्ययन भी ऊँचे दर्जे का होना चाहिये। साहित्य संसार में प्रकाशित तत्सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन प्रत्यहं होना चाहिये। बिना इसके लेखक की कमज़ोरी मालूम होती है और न वह वर्णनीय विषय का सर्वांगणिता से प्रतिपादन ही कर सकता है। लेखक कोई सर्वज्ञ नहीं होता और न अभीतक उसके पास नवीन २ अनुभव ही हैं, ऐसी अवस्था में लेखक को आगे बढ़ने के लिये पुस्तकावलोकन के सिवाय दूसरा क्षेत्र नहीं। उसे प्रत्येक विषय की पुस्तकें देखते रहना चाहिए और उनसे जो अनुभव प्राप्त हों उन्हें संसार के आगे अपनी भाषा में रखते जाना चाहिये; इसीसे वह आगे जाकर महान लेखक बन सकता है।

जैन संसार में कई लेखक ऐसे भी हैं जो कि रचनानिर्माण में पुस्तकावलोकन की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते, वे अपने को ही सर्व ज्ञाता समझते हैं। अस्तु—विचार करने से ज्ञात होगा कि ऐसे लेखक महानुभाव कभी कभी समाज को बखेर देते हैं, अधः पतनोन्मुख कर देते हैं। आधुनिक समय में प्रादुर्भूत होनेवाली दलबन्दियां भी ऐसे लेखकों की कृतियों के प्रकाशन का ही दुष्परिणाम है। रचना शास्त्र में पारंगत विद्वानों के मत से ऐसे लेखक साहित्य के कलंक हैं। ऐसे लेखक और संपादक परिणाम को बिना समझे बूझे ही कभी २ समाज में विद्वेष की ज्वालाएँ जगा देते हैं जिसका कि मुख्य कारण अंट संट लिखी जाने वाली रचना ही है। इन पंक्तियों से लेखकों को अपना उत्तर-

दायित्व समझकर किसी भी विषय पर लेखिनी उठाना चाहिए।

जिस कार्य का जो समय निश्चित है, उस कार्य को उसी समय करने से वह सुंदर एवं हृदय-ग्राहक बनता है। प्रकांड विद्वानों ने रचना के निर्माण का भी समय निश्चित किया है—उनके मतानुसार प्रातःकाल में जो कुछ भी लिखा जायगा वह भावों की गम्भीरता से सरस एवं परिपूर्ण होगा, क्योंकि मनुष्य का मस्तिष्क उस समय शान्त रहता है। प्रातः काल में मनुष्य का हृदय कमल प्रफुल्लित होता है। उस समय हमारा मस्तिष्क हमें कुछ न कुछ नवीन विषय देता है। जो संसार में प्रकाड लेखक बनना चाहते हैं अथवा जो अपनी रचना शैली से समाज को उन्नत बनाना चाहते है वे अवश्य ही लिखने का समय निर्धारित करते है, क्योंकि सदैव लिखते रहने से भावों की गम्भीरता एवं काल्पनिक शक्ति का ह्रास हो जाता है। प्राचीन लेखकों के इतिहास को देखने से भी यही पता चलता है कि अधिकांश लेखक महोदय प्रातः काल में ही रचनाओं का आविष्कार किया करते थे।

समय निर्धारित कर चुकने के बाद लेखकों को नियमबद्ध लिखने का नियम लेना चाहिये—चाहे वे प्रति दिन दस पंक्तियाँ ही क्यों न लिखें लिखें अवश्य। ऐसा करने से वे कठिन २ विषयों की उलझनों को सहज ही सुलझा सकेंगे। समाज में जीवन ला सकेंगे। आज हम यदि जैन समाज के शिक्षितों पर नज़र डाले तो कहना पड़ेगा कि समाज में प्रति शत १० लेखक कुछ लिखते हैं। आज यदि समाज का सम्पूर्ण शिक्षित वर्ग नवीन नवीन विषयों पर कुछ लिखे तो सहज ही समाज में ज्ञानप्रसार के साथ साथ अमर जीवन आ सकता है।

रचना प्रारंभ में विद्वानों के दो मत हैं—एक मत यह कहता है कि सबसे पहिले वर्णनीय विषय को भूमिका के साथ २ नीचे से उठाकर ऊँचा लाना चाहिए और फिर रचना का उपसंहार करना चाहिए; दूसरा मत यह कहता है कि भूमिका के साथ २ क्रमशः वर्णनीय विषय का प्रतिपादन करना चाहिये। किन्तु मेरी समझ में तो इस विषय में लेखकों को अपनी अपनी सुविधाएँ देख लेना चाहिये। जिस किसी भी प्रकार से हमारी रचना हृदय-ग्राहक बन सके उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। यह ही श्रेयस्कर होगा।

रचना में वर्णनीय विषय के हिस्से करलेना चाहिये और प्रत्येक हिस्से पर फिर मार्मिक विवेचन करना चाहिये—इससे लेखक को कई सुविधाएं होंगी और उसकी रचना सर्वांग सुन्दर होने के साथ २ सर्वमान्य भी हो सकेगी। रचना में अनुच्छेद एवं विराम चिन्हों पर अधिक ध्यान रखना चाहिये। प्राचीन लेखक विराम चिन्हों की आवश्यकता नहीं समझते थे, किन्तु भावों को सरल बनाने के लिए अर्वाचीन लेखक रचना में इनका ध्यान अत्यधिक रखते हैं। विराम चिन्हों के स्थान रचना सम्बन्धी पुस्तकों को देखकर मालूम कर लेना ही अच्छा होगा।

भावों को सूत्रबद्ध करते समय रचना में एक ही भाव को बारम्बार न दोहराना चाहिये, क्योंकि इससे रचना में पुनरुक्ति नामका दोष आजाता है और पाठक का मन भी ऐसी रचनाओं का अध्ययन

करने से ऊब जाता है। इसी प्रकार एक ही विषय को बार २ न सोचना चाहिये। ऐसा करने से हमारी विचार शक्ति निर्बल हो जाती है। अश्लील, ग्रामीण एवं अप्रचलित शब्दों का रचना में अधिक प्रयोग न होना चाहिये। जिस स्थान पर जो भाव दिखाना हो तदनुकूल ही शब्द योजना करना चाहिये। अच्छे २ वाचकगण शाब्दिक योजना को देखकर ही लेखक की विद्वत्ता का पता लगा लेते हैं। इसलिये रचना में भावानुकूल शब्द-योजना का होना आवश्यक है।

रचना की सुन्दरता विशेषतः शब्द चयन पर निर्भर है, जिस शब्द से जो भाव निकलता हो वहां उसी शब्द का प्रयोग करना चाहिये, यह गुण नियमबद्ध लिखने से प्राप्त होता है। कई स्थान ऐसे भी आ जाते हैं जहां पर नियोजित किसी शब्द को उठा लेने से सौन्दर्य का नाश होजाता है तथा उसके वहीं रक्खे रहने से भावमें विषमता आजाती है। इसको हम अभीतक हिन्दी साहित्य के शब्द भंडार की अपूर्णता कहेंगे।

वर्तमान हिन्दी साहित्य में अभी तक शब्दों की अत्यधिक न्यूनता है। संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि कई भाषाओं के शब्द हिन्दी साहित्य में आते हैं और जिनका उपयोग कई रचनाओं में होता है। जिस रचना में विविध भाषाओं के शब्दों का संमिश्रण हो जाता है वह रचना पाठक का हृदय नहीं ले सकती। स्पष्टता, सुकुमारता, चित्ताकर्षकतादि सभी गुणों का अपहरण हो जाता है। रचना-शास्त्र के मतानुसार ऐसी रचनाओं द्वारा समाज में ज्ञान-प्रसार नहीं हो सकता क्योंकि पाठकगण सब भाषाओं के तो विद्वान होते ही नहीं। ऐसी विकट समस्या में हम अपने विचारों को प्रत्येक पाठक के लिए नहीं समझा सकते।

किसी छोटे से भाव को शब्दाडंबर द्वारा विस्तृत बनाने की आवश्यक्ता नहीं। आवश्यक्ता इस बात की है कि कोमल-कान्त-पदावली द्वारा रचना में जीवन लाया जाय। व्यर्थ ही वाक्य-प्रयोगों द्वारा रचना को दूषित बनाना बुद्धिमानों का कर्त्तव्य नहीं है।

लेखकों को लिंगों का ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक है। बिना लिंग ज्ञान के वाक्य-रचना में अशुद्धियों का समावेश होजाता है। कई शब्द ऐसे भी हैं जिनका स्त्रीलिंग व्यवहार में प्रचलित नहीं होता, एवं कई शब्दों का पुल्लिंग व्यवहार में नहीं आता। इस विषय में लेखकों को सदैव व्यवहार मार्ग का अनुकरण करना चाहिये। जो शब्द व्यवहार में जिस अर्थ को कहता है एवं व्यवहार में जिस लिंग से प्रचलित है तदनुकूल ही लेखक महाशयों को उसका प्रयोग करना चाहिये।

शब्दों के समूह को वाक्य कहते हैं, व्याकरण सम्बन्धी लेखों से जब लेखक अपरिचित होता है तब वह वाक्य-रचना के विषय में बड़ी भारी गलतियां कर जाता है। वाक्य को ठीक बनाने के लिए कारक, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया विशेषण, क्रिया आदि सभी बातों पर ध्यान रखने की आवश्यकता है। वाक्य में मुहाविरे और कहावतों का भी प्रयोग होना चाहिये। वाक्य-परिवर्तन पर भी लेखक को अत्यधिक ध्यान रखना चाहिये, किसी वाक्य को यदि कर्तृवाच्य बनादिया जाय तो वह वाचक के हृदय को कितना आनन्द पहुँचा सकेगा

एवं उसी को कर्मवाच्य बनादिया जाय तो वह कितना शोभाजनक हो सकता है । लेखक को इस विषय में व्याकरण-ज्ञान अच्छा होना चाहिये ।

हिन्दी व्याकरण निर्माण में विद्वानों के दो मत हैं, पहला पक्ष कहता है कि यदि हिन्दीभाषा का व्याकरण बनादिया जायगा तो वह संस्कृत भाषाकी तरह मृतभाषा हो जायगी, राष्ट्रीय भाषा न रह सकेगी । व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने में ही विद्यार्थियों के ग्यारह ग्यारह वर्ष बीत जायेंगे; आदि २ । दूसरा पक्ष यह कहता है कि बिना व्याकरण के रचना में उज्वलता नहीं आसकती । व्याकरण ज्ञान करने के लिए ११ वर्ष की आवश्यकता नहीं । प्रकाशित होने वाली नवीन २ पुस्तकों के अवलोकन मात्र से ही वह प्राप्त हो सकता है । हमारे विचार दूसरे पक्ष के समर्थन में हैं । भाषा की जड़ ही व्याकरण है । जिस भाषा का व्याकरण कमज़ोर होता है वह अपने अस्तित्व को कुछ ही समय तक संसार में क़ायम रख सकती है ।

[क्रमशः]

पानीपत में आर्यसमाज की तीसरी पराजय !

जहां कि पानीपत दूसरी दृष्टियों से एक प्रसिद्ध स्थान है, वहीं यह कुछ दिनों से शास्त्रार्थों की दृष्टि से भी एक प्रसिद्ध स्थान हो गया है । आर्यसमाज के दूसरे सम्प्रदाय के साथ समय २ पर शास्त्रार्थ होते ही रहते हैं । जैनसमाज भी इन शास्त्रार्थों से बचा हुआ नहीं है । अभी कुछ ही वर्ष में एक मूर्तिपूजा और दूसरा कई विषयों पर, ये दो विशाल शास्त्रार्थ हो ही चुके थे फिर भी आर्यसमाज से चुप्पी न साधी गई और फिर उसने तीसरे शास्त्रार्थ की तय्यारी करदी ।

आर्यसमाज और जैनसमाज पानीपत का यह तीसरा शास्त्रार्थ लिखित रूप से, क्या ईश्वर जगतकर्ता है; और क्या जैन तीर्थंकर सर्वज्ञ थे, विषयों पर ता० ५ नवम्बर से १२ नवम्बर तक लगातार हुआ है । प्रतिदिन दो २ पत्र एक २ तरफ़ से भेजे जाते थे और एक २ पत्र के भेजने का समय चार २ घण्टे था । पहिले चार दिन का विषय "क्या ईश्वर जगतकर्ता है ?" था और दूसरे चार दिन का "क्या जैन तीर्थङ्कर सर्वज्ञ थे ?" था । पहिले चार दिनों तक आर्यसमाज का पहिला पत्र प्रातःकाल ठीक ८ बजे जैनसमाज के पास आजाता था जिसका जवाब कि जैनसमाज ठीक १२ बजे भेज देता था । आर्यसमाज का दूसरा पत्र ठीक ४ बजे जैन समाज के पास आता था और इसका जवाब जैनसमाज ठीक आठ बजे रात के आर्यसमाज के पास भेज देता था । पिछले चार दिनों में ठीक इससे उल्टी व्यवस्था थी । प्रति पत्र में चार फुलिसकेप पेज और प्रति पेज में ३२ लाइनें रहती थीं । यह शास्त्रार्थ एक अपूर्व शास्त्रार्थ हुआ है । और यदि यों कहना चाहें कि इस पचास वर्ष में यह सबसे विशाल शास्त्रार्थ हुआ है तो कोई अत्युक्ति न होगी । यद्यपि दोनों तरफ़ के वक्तव्य १२८ फुलिसकेप पेज पर ही हैं, किन्तु वे इस सूक्ष्मता के साथ लिखे गये हैं कि छपने पर

२०×३० साइज़ के कम से कम चार सौ पेज रहेंगे। शास्त्रार्थ का परिणाम क्या रहा, इसको विशदता के साथ तो पाठक छपे हुए शास्त्रार्थ के बाद ही जान सकेंगे, किन्तु फिर भी संक्षेप में यहां हम यह बतलाये देते हैं कि आर्यसमाज की इस शास्त्रार्थ में स्पष्ट पराजय हुई है। जिस समय आर्य समाज के शास्त्रों एवं युक्तिबल से आर्यसमाज की मान्यता का खण्डन किया गया है उस समय आर्यसमाज को जैन सिद्धान्त के आगे मस्तक ही झुकाना पड़ा है। आर्यसमाज ने अपनी निर्बलता को अनुभव करते हुये यह स्पष्ट स्वीकार कर लिया है कि वह प्रलयवाद एवं कर्तावाद को उस ढंग से नहीं मानता जैसा स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है; आदि २। यही बात सर्वज्ञता वाले शास्त्रार्थ में हुई है। वहां भी आखिरकार आर्यसमाज को स्वीकार ही करना पड़ा है कि हम सशरीर सर्वज्ञ को मानते हैं आदि २। इस शास्त्रार्थ में तीन बातें और भी विशेष उल्लेख योग्य हुई हैं—एक नकल की, दूसरे झूठे प्रमाणों की, और तीसरी विज्ञानवाद की।

जिस समय आर्यसमाज ने जैनजगत के सर्वज्ञत्व खण्डन के वक्तव्य को नकल करके जैनसमाज के सामने रक्खा और जैन समाज ने उसकी कलई खोली तब आर्यसमाज को मुंह की खाते ही बना। जैसा कि पाठक छपे हुए शास्त्रार्थों के पढ़ने से और भी विशदतासे जान सकेंगे। दूसरी बात यह है कि जब आर्यसमाजके वेदादि शास्त्रोंसे उसकी मान्यता का खण्डन किया गया तो इसपर आर्यसमाजसे कुछ भी जवाब नहीं बना; तब उसने यह लिख मारा कि जैनतीर्थंकरों की सर्वज्ञता का खण्डन जैन द्वादशांग एवं जयधवल और महाधवल में लिखा है।

इसके जवाबमें जब जैनसमाजने आर्यसमाजसे पूछा कि और बातें तो जाने दीजियेगा, कृपया यही बतला दीजियेगा कि ये जैनशास्त्र किस भाषा के हैं तथा आपने इनके दर्शन कहां किये हैं। इस पर तो आर्यसमाज की कलई खुल गई और उसको अपना झूठा लिखना लिखितरूप से स्वीकार करना पड़ा।

तीसरी बात विज्ञानवाद की है कि एक समय आर्यसमाज के एक M. A. विद्वान् ने कुछ वैज्ञानिक बातें लिख कर इस बात को सिद्ध करना चाहा कि इस पृथ्वी का प्रारम्भ और अन्त निश्चित है। आर्यसमाज के इन उल्लेखों में एक दो उल्लेख तो ऐसे थे जिनसे कि पृथ्वी अनादि और अनन्त प्रमाणित होती थी तथा आर्यसमाज ने जिनका उलटा अर्थ करके अपने पक्ष में घटित करने की चेष्टा की थी और कुछ ऐसे थे जोकि बहुत पुराने थे और विज्ञानवाद ने ही जिनके मिथ्यात्व को घोषित कर दिया है। जैनसमाज की तरफ़ से आर्यसमाज के इस विज्ञानवाद की जब कलई खोली गई और संसार के सर्वश्रेष्ठ विज्ञान-वेत्ताओं की वर्त्तमान घोषणाओं को उद्धृत करके यह सिद्ध किया गया कि समुदाय दृष्टि से इस जगत का न कभी अभाव होगा और न कभी अभाव था तब आर्यसमाज को पलायते ही होना पड़ा।

एक दो नहीं, किंतु सैकड़ों नवीन प्रमाण पाठकों को इस शास्त्रार्थ में ऐसे मिलेंगे जिनके द्वारा जैन-तीर्थंकरों की सर्वज्ञता, जैनधर्म की प्राचीनता, और पंचकल्याणक के अतिशयों का समर्थन होता है।

जहां कि आर्यसमाज की तरफ़ से उसके माननीय विद्वानों ने इसमें भाग लिया है वहां जैन समाज की तरफ़ से भी यह शास्त्रार्थ भारत

दिगम्बर जैनशास्त्रार्थ संघ की निगरानी में हुआ है और उसके ही निश्चित विद्वान पं० राजेन्द्र-कुमार जी मंत्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, पं० कैलाशचन्द्र जी सम्पादक जैन दर्शन और वेदविद्या विशारद पं० मंगलसेन जी ने इसको किया है।

स्थानीय विद्वान् बा० जयभगवान जी वकील, बा० ईश्वरदास जी B. S. C. (लंदन) चौ० धर्मचन्द जी अध्यापक जैनहाई स्कूल, पं० रामजीदास जी, ला० रूपचन्द जी गार्गीय और ला० आनन्द-स्वरूप जी का सहयोग भी उल्लेख योग्य है। ये दोनों शास्त्रार्थ भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ से सम्पादित होकर शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। पानीपत जैन पंचायत ने संघ को इसके लिये दो सौ रुपये की सहायता का वचन दिया है।

निवेदक—
मुनिसुव्रत दास जैन
प्रतिनिधि जैनसमाज, पानीपत।

भारत के शासक और जैनधर्म।

[लेखक—श्रीमान् बा० कामताप्रसाद जी]

[क्रमागत]

[५]

सम्राट् रामचन्द्र !

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के नाम से भारत का बच्चा बच्चा परिचित है। वह एक आदर्श शासक, आदर्शपुत्र, आदर्श पति और आदर्श ऋषि थे। उनका जन्म अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशी राजा दशरथ के यहां हुआ था। महारानी कौशल्या उनकी माता थी। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न उनके सौतेले भाई थे। उन चारों भाइयों ने योग्य गुरु के पास शिक्षा ग्रहण की थी। उन्हें आरि नामक ब्राह्मण ने बाणविद्या में निष्णात बनाया था। वे महान् विद्वान और अद्वितीय धनुर्धर थे। विदेह में उसी समय राजा जनक राज्य करते थे। उनके सीता नामक एक परम विदुषी कन्या थी। जनकने रामचन्द्रजी के गुणों की प्रसिद्धि सुनकर अपनी कन्या उन्हीं को देना निश्चित कर लिया था। जनक यह सोचही रहे थे कि उनको एक अनदेखी चिन्ता ने आ घेरा! उनको खबर मिली कि अर्द्धवर्बर देश के जिन म्लेच्छों ने आर्यावर्त्त पर आक्रमण किया था वह बढ़ते बढ़ते उनके राज्य की सीमा पर आ पहुंचे हैं। उन्होंने यह भी देखा कि उनका सैन्यबल म्लेच्छों से लोहा लेने के लिये अपर्याप्त है। देश की रक्षा के लिये वह बेचैन हो उठे। उन्होंने महाराज दशरथ के पास दूत भेजा कि वे आकर उनकी सहायता करें। दशरथ ने अपने पुत्र राम और लक्ष्मण को सेनासहित जनक की सहायता के लिये भेजा। राम और लक्ष्मण ठीक उस अटके पर पहुँचे जब जनक और उनके भाई कनक म्लेच्छों से बुरी तरह हारकर पीछे हट रहे थे। रामचन्द्रकी सेना ने उनके भागते हुये सैनिकों में बल और धैर्य का संचार किया। वे लोग नये उत्साह से लड़ने लगे। रामचन्द्रजी ने इस चातुर्य से सैन्य संचालन किया कि देखते ही देखते शत्रु के पैर उखड़ गये और वे

अपनी जानें लेकर इधर-उधर भाग गये! देश संकट से मुक्त हो गया! जनक ने स्वयम्वर की रीति से सीता का विवाह रामचन्द्र जी के साथ कर दिया।

सीता का एक भाई भामण्डल नामक था। उसे जन्मते ही एक विद्याधर उठा लेगया था। इसलिये उसे पता न था कि सीता उसकी बहिन है। इस अबोध दशा में उसने सीता को अपनी हृदयेश्वरी बनाना चाहा, किन्तु जब वह उस स्थान पर पहुँचा कि जहां से वह हरा गया था तो उसे पूर्वस्मृति चेत गई। अब वह एक भाई की तरह जाकर सीता से और अन्य कुटुम्बीजनों से मिला। भामण्डल विद्याधरों का राजा हुआ।

दशरथ को कैकेई ने स्वयंवर में वरमाला डाल कर बरा था। इसपर अन्य राजालोग, जो वहां पर उपस्थित थे, दशरथ से रूठ कर उनसे लड़ने के लिये उद्यत हुए थे। बड़ा घमासान युद्ध हुआ था। उस युद्ध में दशरथ का सारथी मारा गया था। उस संकट में कैकेई ने स्वयं रथ हांक कर अपने पति की रक्षा की थी। दशरथ की विजय हुई। इस हर्ष के समय दशरथ ने इच्छित वस्तु माँगने के लिए कैकेई को वर दिया था। कैकेई ने उस समय तो उस वर का कुछ भी उपयोग नहीं किया; किन्तु जब रामचन्द्रका राज्याभिषेक होने लगा तो उसने छल से अपने वर का अनुचित लाभ उठाया। रामचन्द्र बनोबास को भेज दिये गये। उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी गये। इस अवसर पर रामचन्द्र जी एक आदर्श पुत्र दृष्टि पड़ते हैं। अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राजके अधिकारी वह ही थे। किन्तु उन्होंने पिता की आज्ञा को राजसम्पत्ति से अधिक समझा। और खुशी खुशी बन को चले गये। दशरथ पुत्रवियोग में महलों में न रह सके—वह बनमें जाकर मुनि हो गये।

दशरथ के मुनि हो जाने पर भरत और कैकेई आदि राम के पास वन में पहुंचे और उनसे घर लौट कर राज्य करने के लिये विनय करने लगे, किन्तु रामचन्द्र पिता के वचन का उल्लंघन करने को तैयार न हुये; बल्कि उन्होंने वहीं अपने हाथ से भरत का राजतिलक कर दिया। भरत हताश अयोध्या लौट आये। इस घटना का भरत पर गहरा असर पड़ा—वह विरक्तचित्त होकर राज्य करने लगे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अबकी बार रामचन्द्र के मिलते ही वह राज-पाट छोड़कर बन-बासी साधु हो जायंगे। भरत सचमुच धर्मात्मा थे। उन्होंने इसी अवसर पर श्रावक के व्रत लिये थे। प्रति दिन वह तीनों समय श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा-वन्दना किया करते थे।

राम—सीता—लक्ष्मण, तीनों वन-वन भटकने लगे। उन्होंने दूसरों का भला करने में अपनी शक्ति और समय को लगा देना उचित समझा था। इस भ्रमण में वह एक दिन नलकूबर नगर पहुंचे। वहां के नरेश बाल्यखिल्ल थे। वह राजा सिंहोदर के करद थे। सिंहोदर ने यह शर्त उन पर लगा रक्खी थी कि यदि तुम्हारे पुत्र होगा तो राज्य तुम्हारे वंश में रहेगा, वरन् वह उनके बाद उसे ज़ब्त कर लेगा। दुर्दैव से बाल्यखिल्ल के पुत्र न होकर पुत्री हुई। राज्य के लोभ से उन्होंने उसे पुत्र ही प्रगट किया और पुरुष भेष में उसे रखने लगा। एकदा बाल्यखिल्ल म्लेच्छों से लड़ते हुए संग्राम में पकड़ा गया। उसकी अनुपस्थिति में

पुत्री कल्याणमाला ने बड़े अच्छे ढंग से शासन की व्यवस्था की थी। जब राम नलकूबर पहुंचे थे तब कल्याणमाला के हाथ में ही शासन की बागडोर थी। उसने इन अतिथियों का खूब आदर सत्कार किया। राम-लक्ष्मण ने बाल्यखिल्ल को म्लेच्छों के बन्धन से मुक्त करा दिया और उनकी परस्पर सन्धि भी करा दी। म्लेच्छराज ही बाल्यखिल्ल का मंत्री हुआ। अब उन्हें सिंहोदर का भी डर न रहा!

घूमते-घामते राम-टोली दण्डकवन पहुंची। वहां विद्याधर राजा खरदूषण से राम-लक्ष्मण का युद्ध ठना। खरदूषण का बहनोई लङ्का का राजा रावण था। खरदूषण ने उसे भी सहायता के लिये बुला भेजा। रावण जब दण्डक बन से निकला तो उसने सीता देखी। सीता के रूपधन ने उसे लुभा लिया। रावण खरदूषण की बात भूल गया; उसे सीता को पाने की चिन्ता सवार हो गई। रावण ने जाना कि यदि सिंहनाद किया जाय तो राम सीता को छोड़ कर लक्ष्मण की सहायता के लिये चले आयंगे। बस, उसने यही किया। उसका यह छल काम कर गया। राम लक्ष्मणको संकटमें जानकर उसके पास रणभूमिको चले गये। सीता अकेली रह गई। रावण को अपनी काली करतूत करने का अवसर मिल गया। वह सीता को ले भागा। बेचारी सीता रोई-चिल्लाई पर उसकी एक न चली। रावण उसे सीधा लंका ले गया और वहाँ उसे एकान्त वाटिका में रक्खा! सीता को अपने में अनुरक्त करने के लिए वह उस सती को तरह तरह के प्रलोभन और भय देने लगा। किन्तु वह सती अपने शील धर्म पर अडिग थी उसके सम्मुख रावण की एक न चली।

उधर खरदूषण को मार कर जब राम-लक्ष्मण अपनी कुटिया को लौटे, तो उसे उन्होंने खाली पाया। सीता का वहां नाम-निशान न था। राम-लक्ष्मण बड़े हैरान हुए। राम सीता के वियोग में आकुल-व्याकुल हो अपने तन-मन की सुधबुध भूल गये। आखिर वह सीता का पता लगाने में निरत हुये। कितने ही विद्याधर राजाओं का उन्होंने उपकार किया था। जब उन्होंने इनके संकट की बात सुनी तो वह इनको ढाढस बंधाने लगे। सुग्रीव ने अपने दूतों द्वारा सीता का पता चला लिया। किन्तु जब विद्याधर राजाओं ने यह जाना कि सीता रावण के रणवास में क़ैद है, तो वे हतसाहस हो गये। उन्होंने रामचन्द्र जी को यही सम्मति दी कि वह सीता का मोह त्याग दें। उनके साथ अनेक सुन्दर से सुन्दर विद्याधर रमणीरत्नों का विवाह कर दिया जायगा। रावण से लोहा लेना सुगम नहीं है! किन्तु रामचन्द्र जी ने उनकी एक न सुनी। उन्होंने इस समय अपने को एक आदर्श पति प्रमाणित किया। सती सीता का पति यदि पतिधर्म के आदर्श को खो बैठता—वासना का गुलाम बनकर सीता को भुला देता, तो वह मर्यादा पुरुषोत्तम कैसे कहलाता?

हठात् रामचन्द्र का कहना सबको मानना पड़ा। लङ्का पर राम-लक्ष्मण और उनके विद्याधर सहायकों ने आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ, जिसमें रावण मारा गया। सीता राम को मिलीं। लङ्का के राजा विभीषण हुए। राम लक्ष्मण छै वर्ष तक लङ्का में रहे। उपरान्त वे अयोध्या के लिये रवाना हुए।

अयोध्या में राम-लक्ष्मण और सीताका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। वर्षों बाद रामको पाकर अयोध्या फूले अंग न समाई। भरत ने राजभार रामको सौंपा रामका राज्याभिषेक हुआ। बड़ा हर्ष मनाया गया। अब रामचन्द्र राजा हो गये। उन्होंने प्रजा की रक्षा और उन्नति इस अच्छे ढंग से की कि आज तक एक अच्छा राज्य 'रामराज्य' कहलाता है।

भरत अधिक समयतक घर में न रहे। उन्होंने देशभूषण केवली के निकट आकर दिगम्बर जैन साधुके व्रत ग्रहण कर लिये। उन्होंने घोर तप तपा और वे मुक्तिधाम को सिधार गये।

[क्रमशः]

* समाचार-संग्रह *

उदयपुर स्टेट का कोरा जवाब !

उदयपुर स्टेट में केशरियानाथ जी का मन्दिर भारत के प्रसिद्ध जैन मंदिरों में से एक है। इस मंदिर में अनेक शिलालेख हैं, जिनसे इसका दिगम्बरीय होना प्रमाणित है। ऐसा होनेपर भी उदयपुर राज्य में श्वेताम्बर जैनों के उच्च स्थानों पर रहने से उन्होंने इसपर अपना अधिकार जमा रक्खा था। श्वेताम्बर समाज ने प्रबन्ध ही को अपने हाथ में नहीं रक्खा, किन्तु इसकी पूजन आदि बातों में भी अंतर डाल दिया था। दिगम्बर समाज को यह बात सहन न हुई और उसने श्वेताम्बर समाज की इस नादिरशाही में हस्तक्षेप किया—यहाँ तक कि उसके एक नररत्न ने इस पवित्र कार्य के हेतु अपने शरीर की भी आहुति दे दी। उन स्वर्गीय नररत्न का शुभ नाम श्रीमान् पं० गिरधारीलाल जी है।

इस घटना के पश्चात् इस मन्दिर के आधिपत्य के सम्बन्ध में दोनों तरफ़ से आन्दोलन जारी रहा। कुछ ही समय हुआ कि इसकी व्यवस्थार्थ उदयपुर राज्य ने एक कमेटी नियुक्त की है। इस कमेटी में २ दिगम्बर २ श्वेताम्बर और चार या पांच अजैन-बन्धु हैं। इससे पहिले की कमेटी में सब मेम्बर श्वेताम्बर ही थे। दिगम्बर समाज को इस नवीन कमेटी से भी संतोष न हुआ, अतः उसने उदयपुर महाराज से प्रार्थना की कि वह एक कमीशन नियुक्त करे, जोकि इस मंदिर की मिल्कियत का निर्णय सदैव के लिये करदे। जैन समाज की इस न्यायो-चित मांग को उदयपुर महाराज ने ठुकरा दिया है और कोरा जवाब दे दिया है कि इस मन्दिर की मिल्कियत का सम्बंध व्यक्ति विशेष से नहीं है। इसको सबही पूजते हैं। जहाँ तक इसकी पूजा का सम्बंध है हमें इस बात के स्वीकार करने में रंच-मात्र भी संदेह नहीं कि इसकी पूजा जैनेतर बंधु भी करते हैं, किन्तु इसका यह मतलब कैसे हो सकताहै कि वे इसके मालिकहैं। पूजना एक भिन्न बात है और मालिक होना भिन्न, यही कारण है कि जिससे अनेक अनुसन्धान कर्त्ताओंने इसकी मिल्कि-यत दिगम्बरीय स्वीकार की है। इस प्रकार का जवाब उदयपुर राज्य से हमको मिला है। संभवतः अन्य व्यक्तियों के पास भी यही जवाब पहुँचा होगा। यह मन्दिर उदयपुर स्टेट में अवश्य है, किन्तु वह केवल स्टेट की ही सम्पत्ति नहीं; इसके निर्माण में जैसाकि उसके शिलालेखों से प्रगट है भारत के अन्य स्थानों की दिगम्बर समाज का भी धन लगा है। अतः यह एक वह प्रश्न है जिसके सम्बन्ध में भारतीय प्रजा आवाज़ उठा सकती है तथा उसको अपने अधिकारों की रक्षा के लिये ऐसा अवश्य करना चाहिये।

ऐसी अवस्था में दिगम्बर जैन समाज का कर्त्तव्य है कि वह संगठन रूप से अपनी न्यायोचित मांग को पोलीटिकेल एजेण्ट राजपूताने के समक्ष उपस्थित करे।

रायबहादुर श्रीमान सेठ टीकमचन्द् जी ने अब तक इस कार्य में उल्लेख योग्य प्रयत्न किया है, जिसके लिए वे दिगम्बर जैन समाज के धन्यवाद के पात्र हैं। क्या हम आशा कर सकते हैं कि उक्त सेठ साहब इस मामले को अगाड़ी बढ़ाकर दि० जैन समाज के अधिकारों की रक्षा के हेतु यथेष्ठ प्रयत्न करेंगे। विनीत प्रार्थी—राजेन्द्रकुमार जैन

महामंत्री, भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ

दिगम्बर जैन आई० सी० एस०

हर्ष है कि स्व० डिप्टी चम्पतरायजी महामंत्री महासभा के पौत्र तथा बाबू नवलकिशोरजी वकील कोषाध्यक्ष महासभा, वाईस चेयरमैन म्युनिसि-पिलबोर्ड कानपुर के सुपुत्र श्रीमान बाबू लक्ष्मीचंद्र जी बी० एस० सी० इस वर्ष लन्दन में आई० सी० एस० (कलेक्टरी) की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। यह जैन समाज के लिये गौरव की बात है, ख़ासकर दि० जैनियों में तो आप ने ही सर्व प्रथम इस पद को प्राप्त किया है। बधाई!

Regd. No. A. 2379.

—सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) में चैत्यालयों सम्बन्धी आपसी झगड़े तय होकर ४००) लागत की एक वेदी बननी तय हो गई है।

—पं० बाबूराम जैन शास्त्री, साहित्य चक्रवर्ती सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर), जो ज्योतिष, वैद्यक, प्राकृत, जैन व्याकरण, न्याय आदि विषयों के विद्वान् हैं तथा यू० पी० व पंजाब की सरकारी परीक्षायें दे चुके हैं, नौकरी के लिये तैयार हैं। इच्छुक महानुभाव आपसे पत्र व्यवहार करके बुला लें।

—१०३ मील लम्बी स्वेज नहर १० वर्षमें तयार हुई थी और ५० मील लम्बी पनामा नहरके बनानेमें ११ वर्ष लगे थे, किंतु अभी रूसने अपने यहाँ केवल १९ महीने में १५२ मील लम्बी नहर बना डाली है।

—लंदनके हेन्स सचेनीडर नामक मनुष्य ने एक बार खड़े २ मुख मार्ग से एक चूहा अपने पेट में उतार लिया और फिर एक डोरी अन्दर डालकर उस पर से चूहे को चढ़ाकर बाहर निकाल लिया। यह खेल दिखाते हुए उसने एक दिन एक चूही अपने पेटमें उतारी। चूहीने पेटमें पहुंचते ही दो बच्चे पैदा किये। पीछे चूही तो डोरीके सहारे बाहर आगई किंतु बच्चोंको आपरेशन कराकर निकलवाना पड़ा।

—हयाटी द्वीपके डॉफिन नामक एक व्यक्ति ने अपने ऊपर प्रयोग करके रोहजी नामक पेड़ के चूर्णसे मनुष्यके काले रंगको बदल कर गोरा रंग कर देने की तरकीब निकाली है। वह ६३ वर्ष की आयु में काले से एक दम गोरा हो गया है।

—ब्रिटना में एक बौना आदमी २० वर्ष तक छोटे कद का रहा। पीछे उसके गले की गांठ तथा उसका कद बढ़ने लगा और अब वह २ अब वह ७ फ़ीट ऊंचा होगया है।

—रूस और अमेरिका में परस्पर व्यापारिक तथा राजनैतिक संधि हो गई है।

—महाराज देवास अपना राज्य छोड़ कर फ्रांस राज्य पांडेचिरी में जा बैठे हैं।

—चौरहट (बनारस) में मथुरा पांडे के घर पर २६ अक्टूबर से हर समय पत्थर, ढेले बरसते रहते हैं। पीढ़ी, बेलन, पंसेरी आदि अपने आप उछलने लगते हैं। भूत का उपद्रव बतलाया जाता है।

—डाकखाने (पोष्टआफिस) की पद्धति सबसे पहले जर्मनी ने सन १२७० में निकाली थी।

—फि[illegible]इन द्वीप के समुद्र की गहराई ९७८० मीटर यानी लगभग ६ मील डेढ़ फर्लांग है। इतनी गहराई अन्यत्र नहीं है।

—वेशार्न (यूरोप) की बर्फीली नदी (ज[illegible] वर्षों में एक मील बहती है) से एक मनुष्य की लाश निकली है। उसके कपड़ों में एक [illegible] (पाकेट बुक) मिली है जिसमें सन १९१५ लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि उस बर्फ में १७ वर्ष उस मनुष्य की लाश नहीं सड़ी।

— बिफला नामक बंदरगाह में घुसनेसे पहले एडमिरल जहाज़ टकरा गया और उसकी पैंदी में एक छेद होगया जिससे जहाज़में पानी भरने लगा। इतने में एक बड़ी मछली की पूंछ उस छेद में अटक गई जिससे छेद बंद हो गया। पीछे जहाज़ भीतर से भी सुधार लिया गया —इस तरह मछली ने उसे डूबने से बचा लिया।

—एक फ्रांसीसी नवयुवक ने ऐसी साइकिल बनाई है जो कि जल और स्थल दोनों पर चलती है।

—कहते हैं कि शंघाई में एक चीनी पुजारीने २७ वर्ष तक अपने हाथ के अंगूठे के नाखून कटवाये ही नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि इस समय उसके नाखून पौने तेइस इंच लम्बे हो गये हैं!

—जापान में एक वृक्ष है जो केवल ३ फीट ऊंचा है। कहते हैं कि यह पाँचसौ वर्ष का पुराना है।

मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रकाशित किया।

तारीख १६ दिसम्बर सन् १९३३ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क ११

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। —ऑनरेरी सम्पादक— पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

जैनदर्शन पर लोकमत !

आगरा जैन सेवामंडल के प्रधानमन्त्री श्रीमान श्यामलाल जी वारौलिया लिखते हैं कि "जैनदर्शन" ने जन्म लेकर जैनसमाज की एक कमी को पूरा किया है, जिसकी कि अत्यन्त आवश्यकता थी। मैं हृदय से पूर्णतया इसकी उन्नति चाहता हूँ।

लश्कर निवासी श्रीमान देवचन्द्रजी बरैया लिखते हैं कि जैनदर्शनमें चित्ताकर्षक मोहनरूप है। उसमें कूड़ा करकट न रहकर उपयोगी, मनोहर, जैनसिद्धान्त पोषक लेख रहते हैं। प्रत्येक धर्मप्रेमी मित्र को इसका दर्शन करना चाहिये।

मेढा निवासी श्रीमान पं० मिलापचन्द्र जी गोधा विशारद लिखते हैं कि "जैनदर्शन" के लेख बहुत सुंदर, गंभीर एवं आदरणीय हैं। जैनजगत की लेखमाला का खंडन भी बहुत उत्तम है। इस सफलता के लिये शास्त्रार्थ संघ को बधाई है।

किशनगढ़ से श्रीमान सुगनचन्द्र जी सौगानी लिखते हैं कि "जैनदर्शन" निकट भविष्यमें बहुत उन्नति करेगा। जैनधर्म पर आये हुए आक्षेपों का निराकरण करने तथा जैनसमाज को जागृत करने के लिये वास्तव में ऐसे ही पत्र की आवश्यकता थी।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

स्याद्वाद अंक

जैनदर्शन के इस अङ्क के लिये निम्नलिखित विषयों पर लेख भेजने के लिये सुयोग्य लेखकों से सादर प्रार्थना की जाती है। लेख कागज़ की एक ओर शुद्ध और स्पष्ट लिखकर आने चाहियें :—

१—स्याद्वाद की महत्ता
२—स्याद्वाद की व्यावहारिक उपयोगिता
३—जैनेतर दर्शनों में स्याद्वाद
४—स्याद्वाद का स्वरूप
५—स्याद्वाद ही विश्वशान्ति का प्रधान हेतु है।
६—स्याद्वाद और स्वामी समन्तभद्र
७—प्रमाणवाद और नयवाद
८—श्रुतप्रमाण में स्याद्वाद का स्थान
९—सप्तभंगी और स्याद्वाद
१०—प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी
११—स्याद्वाद का सैद्धान्तिक सम्बन्ध
१२—आइन्स्टाइन की थ्योरी आफ् रिलेटिविटी और स्याद्वाद।
१३—वर्त्तमान विज्ञान और स्याद्वाद
१४—स्याद्वाद का इतिहास
१५—स्याद्वाद के सम्बन्ध में लोकमत
१६—प्रमाण, नय, अनेकान्त और स्याद्वाद का पारस्परिक सम्बन्ध।
१७—भगवान महावीर और स्याद्वाद —सम्पादक

आवश्यकतायें

१—इसी पत्र के लिये मिलनसार जैन विद्वान की आवश्यकता है जो जैनसिद्धान्त का अच्छा ज्ञाता और उसकी उन्नति का इच्छुक हो। साथ में इङ्गलिश में बी० ए० या एम० ए० पास हो, मगर इसका अच्छा वक्ता हो। वेतन ८०) से ९०) रु०

२—एक ऐसे जैन ग्रेजुएट की भी आवश्यकता है जो भाषणकला में निपुण हो और अच्छे अच्छे [illegible] बना सकता हो।

—(रा० ब०) छोटेलाल जैन ओ० बी० ई०
सिविल लाइन, मुरादाबाद।

हार्दिक धन्यवाद !

जैन दर्शन के प्रेमियों ने "दर्शन" को निम्न प्रकार सहायता देकर अपना प्रेम प्रकट किया है जिसके लिये धन्यवाद है। आशा है दर्शन के अन्यान्य प्रेमी भी अनुकरण करेंगे :—

४) ला० अन्नूलाल श्योसिंह राय शाहदरा—विवाहोपलक्ष में।
५) ला० खंडाराम जी मुलतान सिटी—विवाहोपलक्ष में।
५) श्री सेठ बापूलाल जी पाटणी इन्दौर छावनी—आरोग्य लाभ में। *
५) ब्र० धर्मेन्द्र दास जी आरा—स्वर्गवास समय। *

जगदुद्धारक महावीर !

जैनधर्म के २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की जयन्ती के शुभ अवसर पर ला० हरिचन्द इन्द्रसेन जैन अंबाला शहर ट्रस्ट फंड की तरफ से उपरोक्त विषय पर सबसे उत्तम लेख लिखने वाले सज्जन को २५) का पारितोषिक दिया जावेगा। लेख में निम्न बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है:—

१—लेख हिन्दी भाषा में हो।
२—लेख लगभग पांच हज़ार शब्दों का हो।
३—लेख १५ फरवरी तक मंत्री श्री आत्मानन्द जैन सभा अंबाला शहर के पास पहुंचना चाहियें।
४—लेख के मुद्रण और प्रकाशन करने का अधिकार मंत्री श्री आत्मानन्द जैन सभा अंबाला शहर को होगा।

नोट—इनामी लेख के अतिरिक्त बाकी लेख यदि लेखक चाहेंगे, वापिस कर दिये जायेंगे।

निवेदक :—

मंत्री—श्री आत्मानन्द जैन सभा, अम्बाला शहर।

* यह दोनों नाम भूल से छपे हैं; इनसे सहायता अभी प्राप्त नहीं हुई है। आशा है शीघ्र भेजने की कृपा करेंगे। —प्रकाशक

आवश्यक सूचनायें !

(१) "जैनदर्शन" का प्रकाशन हर महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हो जाता है।

(२) इसका वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजने पर ३॥=) है, किंतु संघके सभासदों, संस्थाओं और विद्यार्थियों से केवल २=) ही लिया जाता है। [वी० पी० से पत्र मंगाने वालों को बार आने की हानि अवश्य रहती है, इसलिये वार्षिक चन्दा कृपया मनीआर्डर से ही भेजिये।]

(३) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय, मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २-२ प्रतियाँ "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद जैन विद्यालय भदैनी घाट बनारस" के पास और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/O 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहियें।

(४) इस पत्र में अश्लील व धर्म-विरुद्ध विज्ञापन नहीं छापे जाते। इसी कारण विज्ञापन छपाने के रेट बहुत कम रखे गये हैं, जो निम्न प्रकार हैं। इनमें किसी प्रकार भी कमी करने के लिये लिखना व्यर्थ होगा। कुल रुपया पेशगी लिया जाता है; अतः कृपया विज्ञापन के साथही कुल रुपया भेजिये:—

	एक बार	३ मास (६ बार)	एक वर्ष (२४ बार)
१. साधारण पूरा पृष्ठ	४)	२०)	७२)
२. साधारण आधा पृष्ठ	२॥)	१२॥)	४५)
३. टाइटिल पूरा पृष्ठ (पृष्ठ २-३-४)	६)	३०)	१००)
४. टाइटिल आधा पृष्ठ	४)	२०)	६०)

५ आधे पृष्ठ से कम जगह के विज्ञापनों पर ।) प्रति लाइन के हिसाब से चार्ज किया जाता है।

सर्व प्रकार के पत्र व्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैनदर्शन" C/O दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽयं समर्पयन्नखिल दर्शनपक्षदोषः।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भयात्॥

वर्ष १ | बिजनौर, पौष कृष्णा १४—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० | अङ्क ११

अमेरिका की अनुकरणीय बातें !

व्यापारिक मंदी तथा [illegible] के कारण अमेरिका सरीखे समृद्धिशाली देश का विकट आर्थिक परिस्थिति [illegible] परिवर्तन करना पड़ा है। अमेरिका निवासी जनता ने निम्नलिखित रूप से अपने व्यर्थ [illegible] खर्चों [illegible] को हटा दिया है :—

१—अपनी सन्तान को कार्य चलाने योग्य व्यावहारिक शिक्षा देना—उच्च शिक्षा न दिलाना। क्योंकि [illegible] होता ही नहीं यदि दैववश होता भी है तो बहुत कम।

२—[illegible], जहाज, विमान, मोटर आदि [illegible] सवारियोंसे व्यर्थका सैर सपाटा करना बंद कर दिया है।

३—सिनेमा सर्कस, नाटक आदि देखने का [illegible] कम कर दिया है।—अधिकतर बंद भी कर दिया है।

[illegible]—रहन सहन, वेश भूषा आदि के व्यर्थ [illegible] बहुत कम कर दिए हैं। फैशनेबल कपड़ों का [illegible] अमेरिका निवासी हटाते जाते हैं।

हमारे उन महानुभावों को जो कि अपने ऊपरी रंग ढंग से अंग्रेजों को भी मात करना चाहते हैं अमेरिका निवासियों की उपर्युक्त असली बातोंसे कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हमारे इस अभागे देश में कालेजों की शिक्षा अमेरिका की अपेक्षा बहुत मंहगी पड़ती है, किन्तु इतने पर भी हमारे डिग्री प्राप्त शिक्षित महानुभाव अपने योग्य नौकरी न मिलने के कारण दुरवस्था दुखी होते हैं। संस्कृत शिक्षा भी बेकारी की चिकित्सा नहीं किन्तु वह बहुत सस्ती है तथा व्यर्थ फैशन, विलासी रहन सहन को नहीं सिखलाती।

अमेरिका की उपर्युक्त बातें प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनुकरणीय हैं।

हमारे नवयुवक !

[गताङ्क से आगे]

[६]

अतएव विवाह करना कोई मनोविनोद का खेल नहीं किन्तु यह एक अपने जीवनका सबसे अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है। इसी कारण पुरुष जब तक युवावस्थामें न पहुंचा हो एवं जब तक उसने परिवार चलाने योग्य अर्थ उपार्जन का कलाकौशल हासिल न करलिया हो तब तक उसको अपना विवाह कदापि न करना चाहिये। उन मूर्खोंकी मूर्खता तो अवर्णनीय है जो अपनी अयोग्यता तथा नपुंसकता को छिपाकर अनेक प्रपंचोंसे अपना विवाह कराकर अपना तथा अपनी पत्नी का जीवन घोर दुःखमय बनालेते हैं।

मनुष्यका वीर्य १८ वर्षकी आयु में पक जाता है; यद्यपि पूर्ण रूपसे वीर्य पकने का समय तो वैद्य-सम्मत २५ वर्षकी आयुमें आताहै किन्तु सन्तान उत्पन्न करनेकी योग्यता १८ वर्षकी आयुमें भी हो जाती है। इससे पहले वीर्य कच्चा रहता है। लड़कियों में सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता रजस्वला होनेपर प्राप्त होती है; इससे पहले उनकी अवस्थाभी कच्ची ही होती है। इस कारण लड़कियों का विवाह १४ वर्षसे पहले तथा लड़कोंका विवाह १८ वर्षसे पहले नहीं करना चाहिये।

इस हिसाबसे नवयुवकोंको कमसे कम अपनी विवाहित अवस्था तक वीर्यरक्षा पूर्णरूपसे करनी चाहिये। अपनी कच्ची आयुमें कुमार्गगामी होकर वीर्य नाश करना न केवल अपना शारीरिकबल नाश करना है किन्तु साथ ही अपनी आयु और उत्पादन शक्ति को भी क्षीण करना है।

आज कल अधिकांश नवयुवकों में जो नपुंसकता तथा बलहीनता दीख पड़ती है, अन्य कारणों के सिवाय उसका मुख्य कारण एक यह भी है कि वे अपनी कच्ची आयुमें वीर्यनाश कर चुके हैं।

विवाह होजाने पर पुरुषको काम शास्त्र का ज्ञाता होना आवश्यकहै। कामविज्ञानके बिना विवाहित जीवन सुखमय नहीं होता। कामशास्त्र से अनभिज्ञ पुरुष अनेक हानियाँ कर बैठते हैं। अतः **कामविज्ञान, रतिरहस्य, विवाहितआनन्द, संतानकल्पद्रुम** आदि पुस्तकोंका अवलोकन प्रत्येक विवाहित पुरुषको आवश्यक है।

विवाहित जीवनमें पुरुषको विषयान्ध न बनना चाहिये; उसको अपना होश हवास ठीक

रखकर अपना कर्त्तव्य कार्य करना चाहिये अन्यथा मानवजीवन और पशुजीवनमें कुछ अंतर नहीं रहता। "उत्तमसंतानका उत्पन्न करनाही विवाह का मुख्य उद्देश है" यह उद्देश विवाहित पुरुषों को सदा अपने सामने रखना चाहिये।

विषयान्ध होनेसे निकृष्ट सन्तान उत्पन्न होती है। आदर्श सन्तान उत्पादनके लिये मनुष्यको अपना ध्यान वृक्षसमुदाय के ऊपर देना चाहिये। अच्छी भूमि में उचित ऋतुके समय अच्छा बीज बो देने पर ही अच्छा वृक्ष उत्पन्न करने योग्य अंकुर निकलता है। भूमि खराब हो तो अच्छा बीज भी अच्छा अंकुर नहीं उगा सकता और यदि भूमि अच्छी किन्तु बीज निर्बल है तो भी अच्छा अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता तथा बीज भूमि अच्छे रहने पर यदि ऋतु समय अनुकूल नहीं तब भी मनोरथ नहीं फलता। सारांश यह कि तीनों चीजें ठीक होनी चाहिये।

मानव सन्तानकी उत्पत्ति के लिये भी वे ही तीन बातें हैं—स्त्री भूमि समान है, पुरुष का वीर्य बीज है और स्त्री का पुष्पवती (रजस्वला) होना योग्य ऋतुसमय है। इस कारण सन्तान उत्पादन के लिये पुरुषको तीनों बातोंका ध्यान रखना आवश्यक है।

विषयसेवन से जहां मनुष्यकी शक्ति क्षीण होती है वहीं स्त्री की शक्ति भी क्षीण हुआ करती है, इस कारण भूमि तथा बीज को बलवान बना रखने के लिये यह आवश्यक है कि ऋतुसमयके सिवाय अन्य समय विषयसेवन त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन किया जावे।

अनुभवी विद्वानोंकी सम्मति है कि रजस्वला होने पर १६ रात्रि तक स्त्री में गर्भधारण की योग्यता होती है। उसमें पहली ४ रातें स्वास्थ्य के लिये हानिकारक तथा गर्भाधानके अयोग्य होती हैं। उन के पीछे समय ज्यों ज्यों बीतता जाताहै स्त्रीके रजमें अच्छी सन्तान उत्पन्न करने योग्य शुद्धता आती जातीहै। इस कारण सबसे अच्छे गर्भाधानके योग्य १६ वीं रात्री है। मध्यम गर्भाधान दशवीं से पंद्रहवीं रात्री तक होता है और जघन्य गर्भाधान चौथी रात्री से दशवीं रात्री तक होता है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार युग्म (चौथी, छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं, सोलहवीं) रात्रियों का गर्भाधान पुत्र उत्पादक होता है और अयुग्म (पांचवीं, सातवीं, नौवीं आदि) रात्रियों का गर्भाधान पुत्री को जन्म देता है। किन्तु अधिकांश विद्वानों की सम्मति यह है कि पुरुषका वीर्य बलवान रहने पर पुत्र होता है और वीर्य बलहीन तथा स्त्रीका रज बलवान होने पर पुत्री गर्भ में आती है।

इस सूत्ररूप संक्षिप्त बातका विस्तार जितना चाहे होसकता है। विवाहका यथार्थ लाभ उठाने के लिये इस उपर्युक्त बातपर प्रत्येक पुरुषको ध्यान रखना चाहिये। संसारको उलट पुलट कर देनेका अतुल तेज, पराक्रम हमारे पूर्वजोंमें हो क्यों था? हमारे भीतर क्यों नहीं पाया जाता, इसका रहस्य बहुत कुछ इसीके भीतर छिपा हुआ है।

[क्रमशः]

धार्मिक प्रेम का मनोहर चित्र

धार्मिक अनुराग भी एक वह अतुल बल है जो किसी के दबाए दब नहीं सकता। इस धार्मिक प्रेम का रंग जिस हृदय पर चढ़ गया

उसपर दूसरा रंग चढ़ नहीं सकता। इसका एक मनोहर, शिक्षाप्रद, ताज़ा उदाहरण पाठकोंके सामने रक्खा जाता है।

अभी गत आसोज मास में आगरा नगर में नूरी दरवाज़े होकर दिगम्बर जैन रथयात्रा निकली थी। स्वार्थी पुरोहितों के भड़काये हुए मूर्ख हिन्दू लोगों का हठ था कि जैनियों की रथयात्रा इस मार्ग से न निकले, मानो जैन लोग अछूत हैं या उनका रथयात्रा उत्सव ताज़ियों की तरह भयानक होता है। किन्तु जैनियों की न्यायोचित मांग को सरकार ने स्वीकार करके नूरी दरवाज़े होकर रथयात्रा निकालने की आज्ञा देदी और पुलिसका यथोचित प्रबंध कर दिया।

इस पर नूरी दरवाज़े के हिन्दुओं ने अपनी अप्रसन्नता प्रगट करने के लिये रथयात्रा के समय अपनी दुकानें बन्द कर दीं, क्योंकि पुलिसके प्रबंध के सामने इससे अधिक और क्या किया जाता।

इन बन्द होने वाली दूकानों में कुछ उन अजैन अग्रवालों की भी दूकानें थीं जिनकी पुत्रियों का सम्बन्ध जैन अग्रवालोंके साथ हुआ था। रथयात्रा देखने के लिये वे लड़कियां भी उन दूकानों की छतों पर बैठी हुई थीं।

जिस समय रथ उन दूकानों के सामने आया **तब उन लड़कियों ने बड़े आनन्द से रथ पर फूल बरसाये।**

धार्मिक अनुराग का वह मनोहर चित्र देखने योग्य था। जहां पिता हार्दिक अप्रसन्नता प्रगट करने के लिये अपनी दुकान को बन्द कर देता है वहां उस की पुत्री हार्दिक आनन्द स्रोत को खोल कर पुष्पवर्षा करती है। प्रत्येक जैन महिला के भीतर ऐसा धार्मिक अनुराग होना चाहिये।

गिरनार का न्याय

गिरनार तीर्थक्षेत्र पर श्वेताम्बर समाज के साथ दिगम्बर समाज के ४-५ वर्षों से दो अभियोग (मुकद्दमे) चल रहे थे। जूनागढ़ के मान्यवर दीवान साहिब मि० केडिल ने उनका निर्णय अभी दिगम्बर समाज के अनुकूल कर दिया है।

प्रथम अभियोग तो यह था कि सहसाम्रवन में भगवान नेमिनाथ के तप कल्याणक तथा ज्ञान-कल्याणक की जो चरणपादुकाएं थीं, श्वेताम्बर समाज ने उन पर किवाड़ लगा कर ताले लगा दिये थे तथा वहीं पर चार कोठरियाँ थीं उनमें भी ताले लगा दिये थे जिससे कि दिगम्बरी यात्रियों को पूजन दर्शन तथा विश्राम में अन्तराय होता था। दीवान साहिब ने दिगम्बरियों के निवेदन अनुसार वे सब ताले खुलवा दिये।

दूसरा अभियोग पहाड़ वाली दिगम्बरी धर्मशाला का था। श्वेताम्बरी लोगोंने झूठा दावा किया था कि यह धर्मशाला हमारी है। वह धर्मशाला भी दिगम्बर समाज को मिल गई है।

अभी शहर वाली धर्मशाला का झगड़ा और चल रहा है।

उपर्युक्त निर्णय से जहां हर्ष होता है वहीं दुख भी होता है कि हमारे कतिपय स्वार्थी, अन्याय-प्रेमी श्वेताम्बरी भाई व्यर्थ में धर्मसाधन का अन्तराय खड़ा करके अपनी व पराई शक्ति क्षीण करते हैं। तीर्थक्षेत्र सरीखी वस्तु को वे तालेमें बंद रखना चाहते हैं!

भारतवर्ष का नाम 'हिन्दुस्थान' कैसे हुआ ?

भारतवर्ष का अपरनाम 'हिन्दुस्थान' हो जाने के अनेक कारण बतलाये जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि 'सिन्धु' नदी के कारण अरब के लोग भारतवर्ष को 'सिन्धुस्थान' कहते थे। उसी सिन्धुस्थान शब्द का अपभ्रंश हिन्दुस्थान हो गया।

किन ही का मत यह है कि मुसलमानी भाषामें हिन्दू शब्द का अर्थ 'काफ़िर' यानी इस्लाम धर्म का न मानने वाला नास्तिक है; तदनुसार भारतवर्ष में अपनी हुकूमत जमाते समय भारतीय मनुष्यों को मुसल्मान हिन्दू कहते थे। इसी कारण देश का नाम हिन्दुस्थान प्रचलित हो गया।

चीनी यात्री हुएनसांगने अपनी भारतीय यात्रा का विवरण पेशावर से पटना तक बहुत सुन्दर रूप में लिखा है। उसने नालन्दा विश्वविद्यालय का भी निरीक्षण किया था। उसके विषय में उसने लिखा है कि वहाँ १० विद्वान अध्यापक थे, जिसमें ४ ऐसे भारी विद्वान थे जो कि संसार की ५१ भाषाएं जानते थे।

ऐसे विद्यावैभव का उल्लेख करते हुए वह हिन्दू शब्द की परिभाषा 'इन्दु' शब्द द्वारा यों करता है कि भारतीय विद्वान संसार के शिक्षा-गुरु थे; इस कारण वे विद्याप्रकाश के कारण 'इन्दु' (चन्द्रमा) कहलाते थे। कालान्तर में वही इन्दु शब्द अपभ्रंश होकर हिन्दु हो गया। तदनुसार भारतवर्ष का नाम इन्दुस्थान से हिन्दुस्थान हो गया।

नमक अधिक खाना योग्य नहीं !

प्रत्येक पदार्थ वह चाहे लाभकारक ही क्यों न हो, परिमाण से अधिक खा लेने पर हानिकर सिद्ध होता है; तदनुसार नमक जबकि उचित परिमाण में खाने से स्वास्थ्य को हितकर है वहीं अधिक परिमाण में खा लेने से स्वास्थ्यको बिगाड़ देता है। देखिये; इस विषयपर एक डाक्टर निम्नलिखित सम्मति देता है :—

वैसे तो नमक के बिना (सादा) न भोजन ही किया जावेगा और न खाने में कोई लज़्ज़त आवेगी। शरीर के पोषण के लिये नमक का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु यदि अधिक खाया जावे तो इस से स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुंचती है। मनुष्य श्वेत-कुष्ट का शिकार हो जाता है, जिससे कि शरीर के कई स्थानों पर सफ़ेद चकटे से दीख पड़ने लगते हैं जो देखने में बड़े भद्दे मालूम होते हैं। यही कारण है कि कोढ़ियों को नमक नहीं दिया जाता। कोढ़ी यदि चाहे तो नमक छोड़ कर बिना किसी औषधि के कुछ दिनों में आपही स्वस्थ हो सकता है।

नमक अधिक खाने से 'क़ब्ज़ियत' बढ़जाती है। कई अंग्रेज़ी दवाइयां जो बतौर जुलाब के दी जाती हैं वे पहिले तो जुलाब का सा असर करती हैं और बाद में वे भी क़ब्ज़ियत पैदा करने लगती हैं। क्योंकि वे तो स्वयं भी नमक ही हैं। क़ब्ज़ियत से पीड़ित लगभग २५ फ़ी सदी ऐसे रोगी हैं जिसका कारण केवल नमक का अपरिमित उपयोग है।

'दृष्टि-क्षीणता' भी नमक के अति प्रयोग का ही फल है। आज कल घर तथा बाहर सभी जगह चटोरापन बढ़ रहा है। इसी के फल स्वरूप तरह २

के नमकीन पदार्थ तैयार किये जाते हैं और आबाल वृद्ध सभी उस का मज़ा लेते हैं। ख़ास कर बालकों की दृष्टि पर और उनकी अस्थिवृद्धि पर इसका भयानक परिणाम होता है। आंखों में फूली तथा माड़ा हो जाने का प्रधान कारण भी यही है। सुखी को रोगी बनाने का एक कारण यह भी है।

लिपज़िक के सुप्रसिद्ध डा० लेहमान का कथन है कि नमक का प्रभाव मस्तिष्क की विचार-वाहिनी शक्ति पर विशेष रूप से पड़ता है। अतएव नमक का प्रयोग कभी भी अधिक न करना चाहिये। एक साधारण दैनिक उपयोग की चीज़ से भी कितनी हानि हो सकती है।

[मिलाप]

सिद्धिसोपान

सिद्धिसोपान नामक छोटा सा किन्तु महत्वपूर्ण कवितामय ट्रैक्ट हमारे सामने है; यह जैनसाहित्य उद्यानका एक सुगंधित पुष्प है। श्री पूज्यपाद आचार्यकृत सिद्धभक्ति का कवितावद्ध अनुवाद श्रीमान बा० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने किया है। मूल संस्कृत सिद्धभक्ति के साथ वह भाषा कवितावद्ध अनुवाद लघु पुस्तका-कार में सुन्दर कागज़ पर सुन्दर टाइप में छापा गया है जिसकी कि पृष्ठ संख्या ४८ है; इसीका नाम सिद्धिसोपान है। यह पुस्तक ला० जौहरीमल जी सर्राफ़ बड़ा दरीबा देहली से प्रत्येक संस्था को आध आने का टिकट (फी १ प्रति) आने पर बिना मूल्य भेजी जाती है। एक साथ ४० प्रतिसे अधिक नहीं भेजी जातीं।

कविता का नमूना देखिये :—

स्वात्मभावकी लब्धि 'सिद्धि' है,
होती वह उन दोषोंके
उच्छेदनसे, आच्छादक जो
ज्ञानादिक-गुण-वृन्दोंके।
योग्य साधनोंकी सुयुक्तिसे;
अग्निप्रयोगादिक-द्वारा
हेम-शिलासे जगमें जैसे
हेम किया जाता न्यारा ॥२॥
नहीं अभावमय सिद्धि इष्ट है,
नहिं निजगुण-विनाशवाली;
सत्का कभी नाश नहिं होता;
रहता गुणी न गुण-खाली।
जिनकी ऐसी सिद्धि न उनका
तप-विधान कुछ बनता है;
आत्मनाश—निजगुणविनाशका
कौन यत्न बुध करता है ॥३॥
इस सिद्धान्त मान्यताके बिन
साध्य-सिद्धि नहिं घटती है—
स्वात्मरूपकी लब्धि न होती,
नहिं व्रत-चर्या बनती है।
बन्ध-मोक्ष-फलकी कथनी सब
कथनमात्र रह जाती है,
अन्त न आता भव भ्रमणका,
सत्यशान्ति नहिं मिलती है ॥५॥

सरल कविता द्वारा गूढ़ विषय को परिमित पद्य में स्पष्ट रख देना कविता की प्रशंसनीय महिमा है; वह इस सिद्धिसोपान में है। क्या ही अच्छा हो कि मुख्त्यार महोदय अन्य समीक्षा आदि विवादों को छोड़कर इस प्रकार साहित्य सेवा करें।

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[६]

तदनुसार श्वेताम्बरीय ग्रन्थकार विक्रम सं० १३९ में दिगम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्ति बतलाते हैं। इससे यह बात तो अनायास सिद्ध हो जाती है कि चाहे सम्प्रदाय भेदकी नीव विक्रम संवत से पहले पड़ चुकी हो किन्तु विक्रम सम्वत् की दूसरी शताब्दी के ३० वें वर्ष तक दोनों सम्प्रदायोंका नामकरण नहीं हुआ था (दिगम्बरीय ग्रन्थों के अनुसार तब तक उस नूतन संघका नाम अर्द्धफालक रहा)। उसके ५-७ वर्ष व्यतीत होने पर (दिगम्बरीय मतानुसार १३६ वें वर्ष में तथा श्वेताम्बरीय ग्रन्थानुसार १३९ वें वर्षमें) स्पष्ट तौर से संघभेद हो गया और एक दूसरेके मुकाबिले में उन दोनों संघोंने अपने अपने दिगम्बर तथा श्वेताम्बर यथार्थ नाम रख लिये।

यानी दोनों संप्रदायोंके मतानुसार निर्विवाद-रूपसे संघभेदका समय विक्रम संवत १३० और १४० के बीचका है। अतः संघभेदके समयपर विचार करना व्यर्थ है।

यहां पर विवादापन्न विषय दो है; एक तो यह कि जैनसाधुओंका प्राचीन रूप क्या था तथा संघभेदकी दोनों कथाओंमें से कौन सी कथा प्रामाणिक है और कौनसी अप्रामाणिक ?

इन दोनों विचारणीय बातों में से प्रथम बात के विषय में एक बात जो निर्विवाद रूप से प्राप्त होती है वह यह है कि "जैनसाधु का नग्न वेश संघभेद से पहले ही नहीं किन्तु भगवान ऋषभदेव के समय से ही प्रचलित था" क्योंकि इस बात को दोनों सम्प्रदाय मानते हैं। संघभेद की श्वेताम्बरीय कथानुसार भी यह स्वयं सिद्ध होता है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी तक जैन साधुओं का नग्न वेश प्रचलित था—असमर्थ साधु वस्त्र भी पहनते थे। भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गवास हो जाने पर जिनकल्प (साधु का नग्नवेश) कालदोष से नष्ट हो गया था जिसको कि फिर रथवीरपुर में शिवभूति ने गुरु-आज्ञा के प्रतिकूल चला कर दिगम्बर सम्प्रदाय खड़ा किया।

इसके सिवाय संघभेद की इन दोनों कथाओं से एक और भी उभयमतसम्मत बात स्पष्टरूप से झलकती है कि जैन साधुओंके वेश में गड़बड़ कालदोष के कारण भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गवास हो जाने के पीछे ही हुई; पहले न थी। अस्तु।

अब यहां पर परीक्षा की कसौटी पर यह बात कसनी है, कि दोनों कथाओं में से **'कौनसी कथा सत्य है'**—यही एक मूल बात है जिस पर कि सारा मामला निर्भर है।

तदनुसार—जब हम श्वेताम्बरीय कथा पर दृष्टिपात करते हैं तब उसकी प्रामाणिकता का साधक कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता। कोई भी शिलालेख, ताम्रपत्र, मूर्तिलेख आदि इतिहास साधन अभी तक ऐसा उपलब्ध नहीं हुआ जिससे कि वह कथा सत्य साबित हो सके, इस कारण रथवीरपुर नगर, शिवभूति श्रावक, उत्तरा

नामक उसकी बहिन, कृष्ण नामक आचार्य आदि सभी बातें ऐसे गूढ़ अंधकार में छिपी हुई पड़ी हैं जिनको किसी भी जैन अजैन इतिहासवेत्ता ने यहां तक कि श्रीमान बा० पूरणचन्द्रजी नाहर एवं प्रसिद्ध विद्वान साधु श्रीमान जिनविजय जी आदि श्वेताम्बरीय इतिहासज्ञों ने भी आज तक अपना प्रकाश डालकर उस अंधकार से नहीं निकाला। अतएव कहना पड़ेगा कि यह कथा कपोल कल्पित है; उसमें कुछ ऐतिहासिक सार नहीं।

तथा—उस कथा से यह भी सिद्ध नहीं होता कि दिगम्बर सम्प्रदाय नवीन है, पीछे से निकला है, क्योंकि कथा स्पष्ट कहती है कि भद्रबाहु स्वामी की स्वर्गयात्रा हो जाने के पीछे जिनकल्प (साधु का नग्नवेश) व्युच्छन्न हो गया था, जिसको कि विक्रम सं० १३९ में शिवभूति ने फिर चलाया अर्थात् ३००-४०० वर्ष के रुके हुए प्राचीन मार्ग को उसने खोल दिया; नवीन कार्यवाही कुछ नहीं की।

अतएव संघभेदकी श्वेताम्बरीय कथा अंधश्रद्धा से मान्य हो सकती है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उसका कुछ मूल्य नहीं। दिगम्बरीय कथा के मुकाबिले में वह कल्पित गढ़ी गई है। अस्तु—

अब दिगम्बरीय कथा की सत्यता जांचिये।

संघभेद की वह कथा श्री हरिषेणकृत कथाकोष (१० वीं शताब्दी) तथा रत्ननन्द्याचार्य निर्मित भद्रबाहु चरित्र नामक ग्रंथों में उल्लिखित है।

वह कटवप्र अपरनाम विन्ध्यगिरि पहाड़ी भी दक्षिण देश के मैसूर राज्य में अब तक विद्यमान है, जिस पर चन्द्रगुप्त के सामने श्री भद्रबाहु स्वामी का स्वर्गारोहण हुआ है। मुनि चन्द्रगुप्त के निवास करने के कारण ही उनके पौत्र सम्राट् अशोक ने अपनी जैनदशा में इस पर्वत पर अनेक जैनमंदिर निर्माण कराये जिनका कि नाम 'चन्द्रगुप्त बस्ती' रक्खा गया और पर्वत का नाम 'चन्द्रगिरि' बदलदिया। चन्द्रगुप्तवस्ती और चन्द्रगिरि ये दोनों शब्द (और उनके वाच्य दोनों पदार्थ) आज तक चले आये हैं।

यह चन्द्रगिरि पर्वत ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्व का है। इसके ऊपर न केवल प्राचीन जैन मंदिर विद्यमान हैं किन्तु अनेक पुरातन शिलालेख भी मौजूद हैं, जिन पर से ऐतिहासिक विद्वानों को इतिहास निर्माण के सुलभ साधन प्राप्त होते हैं। ये सारे शिलालेख माणिकचन्द्र जैन ग्रंथमाला के जैन शिलालेख संग्रह नामक पुस्तक में उल्लिखित हैं।

इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिलालेख चन्द्रगुप्त बस्ती के सन्मुख १५ फ़ीट ७ इंच लम्बी तथा ४ फ़ीट ७ इंच चौड़ी चट्टान पर हेल कनड़ी लिपिमें खुदा हुआ है। यह शिलालेख लुईस राईस आदि ऐतिहासिक विद्वानों ने आज से प्रायः २२०० वर्ष पहले यानी वीर सं० २६६ या वी० सी० २६० में लिखा हुआ निश्चित किया है। शिलालेखको प्रतिलिपि इस प्रकार है—

सिद्धम् स्वस्ति

जितं भगवता श्रीमद्धर्मतीर्थविधायिना।
वर्द्धमानेन सम्प्राप्त--सिद्धिसौख्यामृतात्मना ॥१॥
लोकालोकद्वयाधारवस्तु स्थाष्णु चरिष्णु वा।
सच्चिदालोक शक्तिःस्वा व्यश्नुते यस्य केवला ॥
जगत्यचिन्त्यमाहात्म्य पूजिताशयमीयुषः।
तीर्थकृन्नाम पुण्यौघमहार्हन्त्यमुपेयुषः ॥२॥

तदनुश्रीविशालेयजयत्यघ जगद्धितम्।
तस्य शासनमव्याजं प्रवादिमतशासनम् ॥४॥

अथ खलु सकल जगदुदयकरणोदितातिशय गुणास्पदीभूतपरमजिनशासनसरस्समभिवर्द्धितभव्यजनकमल विकसन वितिमिरगुण किरणसहस्रमहोति महावीरसवितरि परिनिर्वृते भगवत्परमर्षिगौतम-गणधरसाक्षाच्छिष्य लोहार्यजम्बु विष्णुदेव-अपराजितगोवर्द्धनभद्रबाहुविशाल प्रोष्ठिलक्षत्रीकार्यजय-नाम सिद्धार्थ धृतषेण बुद्धिलादिगुरु परम्परीण क्रमाभ्यागत महापुरुष सन्तति समवद्योतितान्वय भद्रबाहुस्वामिना उज्जयिन्यामष्टाङ्गमहानिमित्ततत्वज्ञेन त्रैकाल्यदर्शिना निमित्तेन द्वादशसम्वत्सरकाल वैषम्यमुपलभ्यकथितेसर्वसङ्घउत्तरपथात् दक्षिणापथं प्रस्थितः क्रमेणैव जनपदमनेक ग्रामशत संख्यमुदित जनधनकनक सस्यगोमहिषाजाविकुलसमाकीर्णम् प्राप्तवान्, अतः आचार्यप्रभाचन्द्रेणामावनितललामभूतेऽथास्मिन् कटवप्रनामकोपलक्षितेविविधतरुवरकुसुमदलावलिविकचनशवलविपुल सजलजलदनिवहनीलोपलतले वराहद्वीपिव्याघ्रर्क्षतरक्षुव्यालमृगकुलोपचितोपत्यकाकन्दरदरी महागुहागहनभोगवति समुत्तुङ्गशृङ्गे शिखरिणि जीवितशेषमल्पतरकालमवबुध्यात्मनः सुचकितः तपःसमाधिमाराधयितुमापृछ्य निरवशेषेण संघं विसृज्य शिष्येणैकेन पृथुलतरास्तीर्णतलासु शिलासु शीतलासु स्वदेहं सन्न्यस्याराधितवान् क्रमेण सप्तशतमृषीणामाराधितमिति जयतु जिनशासनमिति। [क्रमशः]

मर्म

[लेखक—श्री० पं० वीरेन्द्र कुमार जैन, हिन्दी-रत्न]

हृदय सुमन अब शुष्क हो गया,
इसमें है कुछ सार नहीं।
मन का भाव उड़ा क्षण भर में,
उसका भी यहां भाव नहीं!

समझा मैंने प्यार जिसे,
केवल दो दिन का सपना है!
इस पथ से आने वालों का,
ईश्वर से अनुराग नहीं!

जल बुद बुदसा जीवन है यह, है पल भर का ही मेहमान।
जग में सार कुछ नहीं केवल, एक प्रभू की भक्ती है!

विनोद!

मुसाफ़िर—"बाबू जी! तीसरे दर्जे का एक टिकट दे दीजिये।"

बाबू—"कहाँ का?"

मुसाफ़िर—"आप जगह का नाम क्यूं पूछते हैं? चाहे मैं कहीं जाऊं।"

बाबू—"भले आदमी! मैं तब तक तुम्हें कोई टिकट नहीं दे सकता, जब तक तुम यह न बतलाओगे, कि कहाँ जा रहे हो।"

मुसाफ़िर—"बहुत अच्छा! मैं अपनी प्रेमिका से मिलने जा रहा हूं।"

स्वामी दयानन्द और जैनधर्म।

[लेखक—श्रीमान बा० कामताप्रसाद जी एम० आर० ए० एस०]

सहारनपुर के साप्ताहिकपत्र 'विकास' के सम्पादकमंडलने मुझसे कहा कि मैं 'कुछ' उनके 'आर्यसमाज अंक' नामक विशेषांक के लिये लिख दूं। तदनुसार मैं ने उक्त शीर्षक से एक लेख लिख भेजा और वह प्रगट भी हो गया। उस लेख पर आर्यसमाज के स्वा० कर्मानन्दजीने एक लेख 'आर्यमित्र' वर्ष ३६ अंक ४१-४२ में प्रकाशित कराया है। स्वामी जी इस बातको स्वीकार करते हैं कि मैंने उक्त लेख सद्भावसे लिखा है। वास्तव में बातभी यही है। किसीके मत को व्यर्थ ही हेय प्रगट करने की नियतसे कुछ लिखना, मेरी तुच्छबुद्धि के अनुसार, स्वयं अपने मतकी निन्दा कराना है। किन्तु खेद है कि इतने पर भी स्वामी जी भड़क गये हैं और उन्होंने अपने लेखमें ऐसी ऊट पटांग बातें लिखी हैं जिनका सम्बन्ध प्रकृत विषयसे ज़राभी नहीं है। उनकी लेखनशैली का एकमात्र उद्देश्य यह प्रगट होता है कि पाठकों में मेरे प्रति अविश्वास उतपन्न हो जाय और मैं एक उछृङ्खल लेखक समझा जाऊं। उनकी इस कृपा के लिये मैं आभारी हूं। एक जैनीको इसी में हर्ष होगा कि वह किसी के दिलका बोझा हल्का करसके। किन्तु मुझे खेद है कि स्वामी जी जो बात मेरे पर लागू करना चाहते हैं वह स्वयं उनके लेखों से उनपर घटित होती है; जैसे पाठक आगे देखेंगे।

स्वामी जी को यह बात असह्य है कि उनके स्वा० दयानन्द पर किसी मत और खासकर जैन मतका किसीरूपमें प्रभाव पड़ा व्यक्त हो। मैंने अपने उपरोक्त लेख में किन्हीं ईसाई मिशनरी के मतको उपस्थित करके यह प्रगट किया था कि मूर्तिपूजाका निषेध करनेके भाव बालक दयानन्दमें स्थानकवासी जैनधर्म के कारण ही संभवतः उत्पन्न हुये। किन्तु मुझे इस बातको ज़ोर देकर सिद्ध करने की चिन्ता नहीं थी—मैंने अपने लेखमें स्पष्ट लिखाथा कि "इस विषयमें हम स्वयं कुछ न कह, पाठकों के सम्मुख दो ईसाई लेखकोंका मत उपस्थित करदेना चाहते हैं" और ईसाई लेखकों ने बालक दयानन्द को जैनप्रधान वातावरण में रहनेके कारण उन पर वैसा प्रभाव पड़ा माना था। उनके वाक्य निम्न प्रकार हैं:—"This clearly gives the environment which prepared the boy for his experience in the temple"

इस वास्तविक घटनामें तर्क के लिये गुंजाइश नहीं है। स्वामी जी को मानना पड़ेगा कि प्रत्येक व्यक्ति पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का असर पड़ता है। खरबूज़े को देखकर ही खरबूज़ा रंग बदलता है। इस सत्य का अर्थ यह है कि बालक दयानन्द पर तत्कालीन वातावरण का प्रभाव ज़रूर पड़ा था। वह वातावरण स्थानकवासी जैनधर्म को लिये हुए था, यह भी प्रकट है। मोरबी राज्य के शासक स्था० जैन साधुओं के भक्त और उनके प्रधान मंत्री स्वयं स्था० जैन थे और वहां जैनों की अधिक बस्ती थी—क्या यह सब बातें वहां के वातावरणको जैनत्व से अछूता रहने दे सकती हैं?

स्वामी जी लिखते हैं कि स्था० जैन साधु

आज भी भ्रमण करते हैं, परन्तु साधारण जनता उनके सिद्धान्तों से अपरिचित रहती है! ठीक है, साधारण जनता—खास करके उत्तरभारत की जनता एकाध जैनसाधु को वर्ष भर में एक दो बार देखकर पूर्ण प्रभावित न हो तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु मुझे पता है कि जैनसाधुओं का यह क्षणिक भ्रमण भी उन पर एक चिरस्थायी छाप डाल जाता है और वह छाप जीवदया की होती है। उस पर गुजरात में जैनों की संख्या अधिक है और किन्हीं रियासतों में वह काफ़ी प्रभाव रखते हैं। वहां पर सर्वथा जैनधर्म का ही वातावरण होता है और साधारण जनता उसके प्रभाव को खुले दिल से स्वीकार करती है। मुझे ऐसे राज-कर्मचारियों तक का पता है कि जो जैन साधुओं के संसर्ग से जैन जीवन बिताने लग गये हैं। ऐसा ही वातावरण स्वा० दयानन्द जी के बाल्यजीवन में उनके आसपास था और उसका प्रभाव उन पर पड़ा, यह बात उक्त मिशनरी लिखते हैं। मैं नहीं समझता कि इसमें कौनसी अनहोनी बात है? हां यदि यह बात सिद्ध कर दी जाय कि वहां का तत्कालीन वातावरण जैनप्रधान न था, तो दूसरी बात है। इस पर भी यदि स्वामी जी को यही इष्ट है कि उनके श्री दयानन्द जी तत्कालीन वातावरण से अछूते रह कर किसी दूसरे जगत में रहे माने जायं, तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं! इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं! ने इस विषय का ज़िक्र मात्र एक घटना को प्रकट करने के लिये किया है! किन्तु एक बात स्वामी जी याद रक्खें कि तार्किक बुद्धि आपकी इस मान्यता को स्वीकार करने के लिये जल्दी तैयार न होगी कि बालक मूल शंकर तो दर्शन मात्र से मूर्तिपूजा का विरोधी बन गया! ख़ैर!

स्वामी जी की जानकारी के लिए मैं बता देना चाहता हूँ कि न तो मुझे स्थानकवासी साधुओंका सत्संग प्राप्त हुआ और न विशेषरूप में मेरा उनके साहित्य से परिचय है; किन्तु इतने पर भी मैं अपने को उस भाव में मूर्तिपूजक नहीं मानता जैसे कि स्वामी जी समझे बैठे हैं। मैं स्वप्न में भी पत्थर पीतल और सोने की पूजा नहीं कर सका। मैं उसी तरह आदर्श का पुजारी हूं जैसा कि कोई पत्थर और पीतल की पूजा करने का विरोधी होसक्ता है। मेरी मूर्तिपूजा मूर्ति की पूजा Idol-atry न होकर उस वीतराग छवि (आदर्श भाव) की पूजा Ideal-atry है जो दि० जैन मूर्तियों में मूर्तिमान् होती है। जैन सिद्धांत में इस आदर्श पूजा का ही विधान है। पत्थर-पीतल की पूजा का निषेध जैन शास्त्र खुले तरीक़े करते हैं (देखो रत्नकरण्डक श्रावकाचारादि)। यह जैन पूजा वैसी ही है जैसी कि अंग्रेज़ों का प्रति वर्ष लन्दन के ट्राफलगरस्क्वायर में स्थित एडमिरल नेलसन की मूर्ति पर फल फूल चढ़ाना और उसके सामने नेलसनके गुणोंका बखान करना। क्या कोई अंग्रेज़ोंको मूर्तिपूजक कह सक्ता है?

आज अनेक आर्यसमाजी भाई अपने घरों और मन्दिरों में स्वा० दयानन्द जी आदि के चित्रों को लगाते हैं और उनपर फूलों के हार भी चढ़ाते हैं। स्वा० जी की प्रशंसा में पद्य पढ़ते हुए वे उस चित्र को ओर भक्ति से निहारने लगते हैं क्या वह चित्र काग़ज़ की मूर्ति नहीं है? और तब ऐसी दशा में क्या आर्यसमाजी अपने को मूर्ति-पूजक कहाने

को तैयार होंगे ? नहीं ! बस ठीक इसी तरह जैनी भी, मूर्ति को रखते हुए भी उस पत्थर की मूर्ति के उपासक नहीं बल्कि उस भाव और उस आदर्श के उपासक हैं जो उस मूर्ति से हृदय पर अंकित होता है।

सचमुच मूर्ति की सहायता के बिना हमारा लौकिक व्यवहार चलही नहीं सक्ता। हम बोलने में मूर्तियां बनाते हैं, लिखने पढ़ने में मूर्तियां बनाते हैं और ध्यान करने के लिए मूर्तियाँ बनाते हैं। पार्थिव विज्ञान से यह सिद्ध है कि शब्द पुद्गल का एक विकार है—होठ तालुओं के संचालन से आकाश में स्थित पौद्गलिक परमाणुओं में प्रतिक्रिया होती है—वे नये नये आकार में कानों से जाकर टकराते हैं और हम बोलने का लाभ उठाते हैं ! क्या यह मूर्तियाँ नहीं बनीं ? इसी तरह लिखने में हम अपने भावों को प्रगट करने के लिए तरह २ की मूर्तियाँ बनाते हैं। इन मूर्तियों का ही तो नाम लिपि है।

स्वा० जी को मैंने देखा नहीं, उनकी वाणी मैंने सुनी नहीं, किन्तु उनके शब्द और उनके भाव मुझतक आ गये—यह इस लिखित मूर्ति का ही विचित्र चमत्कार है। इसी तरह ध्यान के लिये स्वयं हमें ध्यानको मूर्तिमय बनाकर उससे लाभ उठाना उचित है। बोलने और लिखने में जब हम अतदाकार मूर्तियाँ बनाकर अनूठा चमत्कार होता पाते हैं, तब क्या कारण कि साकार मूर्तियां उससे अधिक चमत्कारिक न हों ?

आज सभ्य जनता अपने मनोनीत सभापति को कदाचित् अपने बीच में न पाकर उनके चित्र को ही सभापति के आसन पर विराजमान करती है और उसका वैसाही आदर करती तथा उससे काफ़ी प्रभावित भी होती है। यह साकार मूर्ति का प्रभाव है। मेरे ख़याल में ऐसी आदर्श उपासना का विरोधी कोई भी बुद्धिमान् पुरुष नहीं हो सका ! वर्तमान जैनियों की प्रवृत्ति जैन मूर्ति पूजा के सिद्धान्त के कितनी अनुकूल है, यह विषय दूसरा है। स्वामी जी को जान लेना चाहिये कि प्रत्येक सम्प्रदाय की प्रवृत्ति उस सम्प्रदाय के धर्म सिद्धान्तों के अनुकूल सर्वांशरूप में सदा नहीं बनी रहती ! यदि ऐसा होता तो मानवसमाज को सुधारकों की आवश्यकता ही न रहती ! आज स्वयं आर्यसमाज में सुधार की आवाज़ उठ रही है और उनमें दलबन्दी भी सुनी जाती है ! आर्यसमाज के सिद्धान्त एक हैं, फिर यह बातें क्यों ? प्रवृत्ति इसी को कहते हैं—विद्वान् उससे किसी धर्म का मूल्य नहीं आंकते ? विचारशील जैनी दूषित प्रवृत्ति को सुधारने में लगे हुए हैं, यह आपको जान लेना चाहिये।

[क्रमशः]

विनोद !

जज (क़ैदी से)—"क्या तुम विवाहित हो ?"
क़ैदी—"जी हज़ूर वाला !"
जज—"तुम्हारा विवाह किससे हुआ है ?"
क़ैदी—"हज़ूर वाला एक स्त्री से।"

जज (गुस्से में भर कर)—"क्या तुमने किसी को मर्द से भी विवाहकरते हुए सुना है ?"
क़ैदी—"हां, मेरी बहन ने किया है।"

× × ×

रचना चातुर्य और जैनियों की अलौकिक रचनायें !

[लेखक—श्री० "आनन्द" उपाध्याय, जयपुर]

[गतांक से आगे]
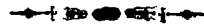
वाक्यके तीन प्रधान अंग होतेहैं—आकार, ध्वनि, अर्थ। रचना में कुशलता प्राप्त करने के लिए इन तीनों की समान रूप से आवश्यकता है। तीनों में से किसी एक को प्रधान करदेने से रचना में त्रुटि रहजाती है, जैसे—हमारे कई लेखक अर्थ गौरवता को ही मुख्य समझ कर वाक्यों के आकार को नहीं देखते। जहाँ किसी वाक्य को भाव की सूक्ष्मता से छोटा बनाना हो वहां वे उसे भीमकाम बना डालते हैं। कई ध्वनि को ही मुख्य समझ कर अर्थ गौरवता की उपेक्षा कर जाते हैं। लम्बे २ समास-युक्त पदों से भी रचना को दूषित करना बुद्धिमानों का कर्त्तव्य नहीं।

लेखक को प्रत्येक परिस्थिति का अच्छा अध्ययन करना चाहिये। यदि उसे अपनी रचना में करुण रस का वर्णन करना है तो उसका चित्र इस प्रकार से खेंचना चाहिये कि पढ़ने वालों के अश्रु धाराएँ टपक पड़ें और यदि उसे कहीं वीर रसका वर्णन करना है तो इस प्रकार करना चाहिये कि पढ़ने मात्र से वाचक के सामने युद्ध का चित्र खिंच जाय। इस प्रकार रसानुकूल विवेचनों से ही विद्वानों का रचना में आदर होता है। विवक्षित पद्य-रचना के नियमों में भी इन पंक्तियों का समावेश किया जा सकता है।

लेखक को देशाटन, बन विहार, बसन्त भ्रमण, प्रकृति निरीक्षण आदि सन्मार्गों द्वारा खूब अनुभव लेना चाहिये। जितना बाहर हो सके घूमना चाहिये, प्रकृति निरीक्षण करना चाहिये। इन सदुपायों द्वारा प्राप्त किये हुए अनुभवों से ही रचना में जीवन आता है। जङ्गलों, पहाड़ों, बन प्रदेशों में जितना हो सके घूमना चाहिये, इससे लेखक में आत्म-साहस आता है और वस्तुतः जीवन का आनन्द भी वही प्राप्त कर सकता है।

लेखक को चित्रकार भी होना चाहिये। मनुष्य हृदय के कितने ही सूक्ष्म भावों को बिना चित्र लेखन के नहीं बतलाया जा सकता। रचना को पढ़ने से आनन्द आता है, किन्तु चित्र को देखलेने मात्र से मनुष्य का हृदय खिंच जाता है। चित्रकला (Drawing) साहित्य की संपत्ति है। काव्य पढ़ने वाले विद्यार्थियों को चित्र-लेखन और संगीत भी सिखलाना चाहिये। प्राकृतिक दृश्यों को चित्र-लेखन द्वारा संसार के सामने रखने से लेखक की रचना में आदर बढ़ता है।

समाज के आगे रचना को रख देने के बाद देखना चाहिये कि समाज पर उसका कैसा परिणाम हुआ। ऐसी रचनाएँ कभी न लिखना चाहिये जिनसे समाज का चारित्र भ्रष्ट होता हो। नवयुवकों में ज्ञानप्रसार के बदले दुराचार फैलता हो। वर्तमान समय में ऐसी रचनाओं की भरमार है जिनसे नवयुवकों के सदाचार में बाधा आती है। उपन्यास लिखकर पैसे कमालेना आजकल एक

प्रकार का व्यापार हो गया है। प्रेमचन्द जी आदि दो चार सज्जनों के उपन्यासों को छोड़कर हिन्दी साहित्य में सैकड़ों उपन्यास ऐसे लिखे हुए हैं जिनमें अश्लीलता का तांडव नृत्य कराया गया है। लेखक गण शृङ्गाराभास को सीमा से भी आगे कह जाते हैं। किसी पुरुष और स्त्री में प्रेम करा देना ही आजकल का कहानी लेखन होगया है। विद्यार्थियों को जब सबसे पहिले ऐसी रचनाएँ पढ़ने को मिल-जाती हैं तब वे अपने आप को कलंकित कर डालते हैं; किसी भी तरह से अपनी आत्मा का पतन कर डालते हैं। जबतक हिन्दी संसार ऐसी रचनाओं का बहिष्कार न करेगा तब तक नव युवकों में सदाचार का प्रसार होना दुर्लभ है।

साहित्य एक कला है; जीवन में इसका सबसे पहिला स्थान है। वह किसी के जीवन को कलंकित नहीं करता, किन्तु जब ऐसी २ रचनाओं को ही साहित्य कह दिया जाता है तब साहित्य के सिर भी कलंक का टीका अविवेकियों द्वारा लगा दिया जाता है। वस्तुतः साहित्य साहित्य ही है।

रचना को अधिक विस्तृत नहीं करना चाहिये, किन्तु वर्णनीय विषय का प्रतिपादन भी गहरा एवं मार्मिक होना चाहिये। समाज के आगे कुछ न कुछ नई खोज करके रखना चाहिये।

रचना में सत्य का गला कभी न घोंटना चाहिये, स्वार्थवश या पैसे के प्रलोभन में आकर सत्य की उसही प्रकार हत्या न करनी चाहिये जिस प्रकार कि एक कसाई पैसे के प्रलोभन से गो-हत्या कर डालता है। सत्य सत्यही रहेगा; केवल आप अपने जीवन को कलंकित कर लीजिये। ऐसे रचना लेखकों का इतिहास में कोई स्थान नहीं है।

रचना में सहृदय शब्दों का प्रयोग करने के साथ २ स्वयं लेखक को भी सहृदय होना चाहिये। बिना इसके वह किसी भी अवस्था का तदनुरूप वर्णन नहीं कर सकता। सहृदयता मनुष्य का गुण है, उसका विकाश भी धीरे २ होता है।

लेखक को अपनी रचना पर गौरव होना चाहिये। गौरवहीन लेखक समाज पर अपना अधिकार नहीं जमा सकते। उनकी रचना पर चारों ओर से आरोप होना प्रारम्भ हो जाता है और वे समाज की दृष्टि से गिरा दिये जाते हैं। फिर यह उनका क्षेत्र नहीं रह जाता—वे हताश हो जाते हैं। इसलिये लेखक को रचना पर किये गये संपूर्ण आक्षेपों का मुंह तोड़ उत्तर देना चाहिये। व्यर्थ के आक्षेप करने वालों को बुरी फटकार बताना चाहिये, तभी वे कोने में दुबके हुए रह सकते हैं। अपने कर्तव्यमार्ग को कभी न छोड़ना चाहिये, यह ही बुद्धिमान और चतुर लेखकों का सिद्धान्त है।

गौरव से उन्नति होती है और अभिमान से पतन; यह समझ कर लेखक को अभिमानी भी न होना चाहिये। अपनी ग़लती को मंजूर करने में ज़रा भी आनाकानी न करनी चाहिये, किन्तु सत्य पक्ष को कभी न छोड़ना चाहिये। प्रत्यहं अपने ज्ञानको विशाल एवं व्यापक बनाते रहना चाहिये। यह ही विजयश्री प्राप्त करने का मुख्य साधन है। यदि हम किसी को दौड़ में पीछे रखना चाहते हैं तो हमें आगे भगने की कोशिश करनी चाहिये; यह ही विद्वान लेखकों के गुण हैं। जब कारीगर अच्छा होता है तभी चीज़ अच्छी बन सकती है। ऐसे लेखकों की रचनाओं से ही संसार का महान

उपकार होता है। समाज उन्नत होता है। कीर्ति चन्द्रिका भी दिगन्त व्यापिनी हो जाती है।

हम ऊपर कह आये हैं कि संसार में जितने विषय हो सकते हैं रचनायें भी उतनी ही हो सकती हैं; फिर भी मुख्यतः रचना को चार भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—वर्णनात्मक, ऐतिहासात्मक, व्याख्यात्मक, और समालोचनात्मक।

इनका विस्तृत सरल वर्णन रचना सम्बन्धी पुस्तकों से जानना चाहिये; लेख विस्तार भय से हम यहां नहीं दे सके हैं। वर्णनात्मक रचना में अशिक्षितों को समझाने के लिये हास्य रस में सभ्यता की शिक्षाएं गुथी रहनी चाहियें। रचना को और भी सुन्दर बनाने के लिये रस और अलंकारों पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि कविता के अलङ्कार ही अलंकार हैं। समालोचनात्मक लेखों में लेखक की समालोचना न करके उसकी रचना की समालोचना करना चाहिये। लेखक की समालोचना करने से पारस्परिक विद्वेष बढ़ जाता है; उससे ज्ञान-प्रसार के बदले मनोमालिन्य बढ़ता है जिसका कि परिणाम संतापकारक ही होता है।

आधुनिक कालिजों एवं विद्यालयों में रचना सम्बन्धी शास्त्रों का अध्ययन संतोषजनक नहीं, क्योंकि वहांसे निकलने वाले विद्यार्थी लोग रचना-शास्त्र में अधिक कमज़ोर देखे जाते हैं। यद्यपि कोर्स में हिन्दी साहित्य की कई पुस्तकें लगादी जाती हैं तथापि उनका अध्यापन एक वर्ष में नहीं हो सकता। यदि किसी तरह हो भी जाता है तो उसही प्रकार जिस प्रकार कि पैसे कमाने वाला ब्राह्मण वर्णीपाठ करता है। यही कारण है कि बहुत कुछ पढ़ जाने पर भी वहां के विद्यार्थी लोग प्रायः एक अच्छा निबंध नहीं लिख सकते।

अध्ययन का फल ही लेखन है, यह समझ कर विद्यार्थियों से प्रत्येक विषय को खूब लिखवाना चाहिये। केवल पुस्तकें रटा देने मात्र से हम विद्यार्थियों को योग्य नहीं बना सकते। इसके लिए कालेजों एवं विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों को अपने यहां कोई हस्तलिखित पत्र प्रकाशित करवाना चाहिये। जिसमें विद्यार्थियोंके ही निबंध हों। संपादक और प्रकाशक भी विद्यार्थी लोग ही हों। ऐसा कर देने से विद्यार्थियों की लेखन-शैली ज़ोरदार होगी। वे किसी भी विषय को समाज के सामने अच्छे रूप में रख सकेंगे। इस प्रकार गद्य-रचना में आवश्यक साधनों का विवेचन कर चुकने के बाद अब हम यहां पद्य रचना पर आते हैं।

[क्रमशः]

भारत के शासक और जैनधर्म ।

[लेखक—श्रीमान् बा० कामताप्रसाद जी एम० आर० ए० एस०]

[क्रमागत]

[६]

रामचन्द्र जिनेन्द्रभक्त थे और थे एक आदर्श शासक ! वह न्याय की मूर्ति और प्रजा की बात को मानने वाले भी एक थे। आर्यशासक के पुरातन आदर्श को उन्होंने खूब निभाया। उनके अनूठे शासन के दो उदाहरण ही देखलेना पर्याप्त हैं।

मथुरा में तब मधु नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा शक्तिशाली था। परन्तु अपनी प्रियतमा रानी में वह अतिशय आसक्त था। रानी के कारण उसने राज्य को भुला दिया था—प्रजाकी समृद्धि का उसे ज़रा भी ध्यान न था। आमोद प्रमोद में मग्न रहकर वासना में रत रहना उसकी दिनचर्या थी। रामने देखा कि एक शासक को वासना का गुलाम होना ठीक नहीं ! उन्होंने शत्रुघ्न को मथुरा का राज्य दिया और मधुसे लड़ने के लिये उन्हें भेज दिया। मधु को संग्राम में पराजय हुई। वह राज्य छोड़कर मुनि हो गया। शत्रुघ्न मथुरा में राज्य करने लगे। एक योग्य शासक योग्य शासन ही सर्वत्र रखना अपना कर्तव्य समझता है। रामने यही किया।

जब राम सानन्द शासन कर रहे थे तब एक दिन एक गुप्तचर ने आकर उन्हें यह संवाद सुनाया कि प्रजा विवाह बन्धन की अवहेलना करके सदाचार से विमुख होती जारही है। यदि उसको अधिक कहा जाय तो उत्तर मिलता है कि महाराजा रामचन्द्रने भी तो यही कियाहै। रावणके घर में रही हुई सीताको उन्होंने फिर पत्नी बनालिया। राम यह सुन कर चिन्ता में पड़ गये। एक ओर सीता का प्रेम था दूसरी ओर प्रजा के धर्म-संरक्षण का प्रश्न ! प्रेम और कर्तव्य का मनो युद्ध उन्हें बेचैन करने लगा। आखिर कर्तव्य की प्रेम पर विजय हुई। राम फिर एक आदर्श शासक प्रमाणित हुये।

लक्ष्मण ने राम के निर्णय का विरोध किया। उनका कहना ठीक था, क्योंकि सर्वसाधारण प्रजा विचारशील नहीं होती। उसके विचारों और निन्दा का महत्व विद्वानों की दृष्टि में न-कुछ होता है। वे उसमें विवेक जागृत करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु रामके सामने प्रश्न लोक विचार का नहीं था। उन्हें एक कर्तव्यशील शासक के कर्तव्य का पालन करना था—उन्हें अपनी प्रजा को बता देना था कि उनके राज्य में एक साधारण नागरिक की आवाज़ का भी पूरा मूल्य है—उसकी सम्मति यूं ही ठुकराई नहीं जा सकती ! राम के इस उच्च आदर्श के सम्मुख लक्ष्मणका विवेक-विरोध कुछ न चला ! सीता को बन में भेज दिया गया।

बन में पुण्डरीकपुर का राजा वज्रजंघ सीता को मिला और वह उसे धर्मकी बहन स्वीकार करके अपने घर ले गया। इस समय सीता गर्भवती थी और उसके उचित काल में लव और मदनांकुश नामक दो तेजस्वी पुत्र हुए। क्षुल्लक सिद्धार्थ ने

इन दोनों बालकों को शास्त्र और शस्त्रास्त्र की शिक्षा देकर निपुण बनाया। युवा होने पर जब उन्हें रामचन्द्र जी के आदेश से सीता के बनवास का हाल मालूम हुआ तो उन्हें बहुत क्रोध आया। वे सेना लेकर अयोध्या पर चढ़ गये। पिता-पुत्रों का युद्ध होने लगा, किन्तु जब राम लक्ष्मण को उनका परिचय हुआ तो उन्होंने शस्त्र पटक दिया। बड़ी शान से लव और अंकुश का अयोध्या-प्रवेश हुआ।

सुग्रीव, हनूमान आदि ने सीता को बुलाने के लिये राम से कहा। राम ने एक शर्त पर उसे स्वीकार करना मंजूर किया। वह शर्त थी, अग्नि प्रवेश परीक्षा। सीता जी आईं और उन्होंने इस अग्नि-परीक्षा को सहर्ष स्वीकार किया। सीता के शील-प्रभाव से एक देवता ने सीता की सहायता की। सीता के घुसते ही वह अग्निकुण्ड कमलों से लहलहाता सरोवर हो गया! सबने सीता के सत्य को सराहा। किन्तु अब सीता लौट कर राजमहल में न गईं। उसकी आत्मप्रतिष्ठा को गहरी ठेस पहुंची। मानो महिला महत्त्व को स्थापित करने के लिये ही वह पृथ्वीमति आर्यिका के पास जाकर साध्वी होगईं! सबके मुखसे अनायास निकल पड़ा 'धन्य हो माता सीता!'

राम एक बार फिर सीता के वियोग में आत्म-विस्मृत हो गये—उनके दुखका कोई पारावार न था। लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया। साधुओं की संगति कराई। आखिर सकल भूषण स्वामी के उपदेश से उन्हें सान्त्वना मिली। अपने में आने पर राम लक्ष्मण को साथ लेकर सीता की वन्दनार्थ गये। सीता तपश्चर्याके कारण कृशगात होरही थी। उनकी यह दशा देख राम-लक्ष्मण का दिल रो उठा। रामको अपने किये का रह रह कर पछतावा होने लगा। किन्तु अब हो क्या सका था। वे सीता के आगे नतमस्तक हो गये। सीता को प्रणाम करके वे अयोध्या लौट आये। सीता तपके प्रभावसे आयुके अन्तमें अच्युतस्वर्ग में इन्द्र हुई!

राम को लक्ष्मण से अति प्रेम था। कदाचित लक्ष्मण का स्वर्गवास हो गया। राम इस दुःखद समाचार पर विश्वास करने के लिए तैयार न हुये। वह लक्ष्मण के वियोग में हतबुद्धि हो गये और उनके शव को हर घड़ी कंधे पर लटकाये फिरतेथे। लोग उन्हें समझाते, पर वह न मानतेथे। इसी समय रावण के हितैषियों ने अयोध्या पर आक्रमण कर दिया। लक्ष्मण के शव को रामचन्द्र संग्राम में भी न भूले। रामचन्द्र के मित्रों ने विद्याधरों को मार भगाया। राम पुनः लक्ष्मण के मोह में डूब गये।

एक बार किन्हीं जीवों ने राम के सामने एक शव का शृंगार करना आरम्भ कर दिया। राम उनके इस कार्य को मूर्खता बताने लगे। इस पर उन लोगों ने राम का ध्यान लक्ष्मणके शव की ओर आकृष्ट किया। राम को अब होश आया। उन्होंने लक्ष्मणके शव का सरयूतट पर दाह संस्कार किया और अपने नाती को राज्य सौंपकर वे सुव्रत मुनि की वन्दना के लिये चले गये। सुव्रत भगवान से धर्मोपदेश सुना और विरक्त हो राम मुनि हो गये। उनके साथ सुग्रीव, विभीषण, शत्रुघ्न आदि भी मुनि हो गये। राम खूब तप तपने लगे। नगर में जब वह आहार लेने गये तो उन्हें विधिपूर्वक आहार न मिला; इस पर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि यदि

बन में आहार मिलेगा तो लूंगा, वरन् नहीं ! कैसी उग्र प्रतिज्ञा थी ! इसे वही मनीषी कर सकता है जिसे शरीर का मोह न हो—जो सर्वथा अभय बन गया हो ! यही प्रतिज्ञा रामको एक आदर्श-ऋषि प्रगट करती है ! सचमुच वह एक आदर्श साधु-महात्मा थे । उन्हें बन में ही आहार मिला—एक राजा ने उनको वहीं आहार दान दिया था ।

अन्त में राम कलिङ्ग देश के कोटिशिला नामक पर्वत पर जाकर उग्र तप तपने लगे । ज्ञान-ध्यान के योग में वे ऐसे लीन हुए कि उन्होंने कर्मों का नाश करके कैवल्यपद प्राप्त किया । सर्वज्ञ भगवान् होकर रामचन्द्र जी ने देश भर में घूम कर मुमुक्षुओं को कल्याणमार्ग पर लगाया । आखिर वह मोक्ष को पधारे ! और भव्यजीव उन्हें 'सिद्धभगवान' मान कर पूज रहे हैं ।

[क्रमशः]

आचार्य कुन्द कुन्द और उनका समय *

[अनुवादक—श्री० पं० खुशाल चन्द्र जी शास्त्री, स्या० वि० काशी]

श्री कुन्दकुन्दाचार्य एक प्रसिद्ध दार्शनिक और ग्रन्थकार थे । दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में उनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है । बहुत से जैनाचार्य्य अपनी वंश परम्परा को कुन्दकुन्दाचार्य्योद्भव बताने में अपना गौरव समझते हैं । जैनाचार्य्य सम्बन्धी बहुत से शिलालेख जो दक्षिण भारत और मैसूर में पाये जाते हैं कुन्दकुन्दान्वय से प्रारम्भ होते हैं । जैन साहित्य क पढ़ने वाले विद्यार्थी इन वाक्यांशों को खूब जानते हैं—

श्री कुन्दकुन्द गुरु पट्ट परम परायण
श्री कुन्दकुन्द सन्तानम्
श्री कुन्द कुन्दाचार्य मुनीन्द्रवंशः

ये वे वाक्यांश हैं, जिनका उल्लेख उपदेश-रत्नमालाके कर्ता सकलभूषण ने, "उपासकाध्ययन" के कर्त्ता वसुनन्दी ने तथा आराधना कथा कोष के कर्ता ब्रह्मनेमिदत्त आदि ने अपने ग्रन्थों में किया है । जैनाचार्य-परम्परा में जिस उन्नत स्थान पर आचार्य्य कुन्दकुन्द स्थित हैं, उस की महत्ता सिद्ध करने के लिये असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं । मुनीन्द्र मुनिचक्रवर्ती तथा कौन्डेश आदि कुछ विशेषण भी जो उनके नाम के पहिले लगाये जाते हैं उनकी महत्ता को सिद्ध करते हैं ।

संसार प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनी के विषय में जैसा होता आता है आचार्य कुन्दकुन्द का व्यक्तित्व भी अंधकार से पूर्ण और अनेक दन्त कथाओं से आच्छादित है ।

इन महापुरुष के विषय में कुछ जानने के लिये

---

* "पंचास्तिकाय" नामक ग्रंथ में प्रोफ़ैसर ए० चक्रवर्त्ती द्वारा लिखित Historical Introduction का अनुवाद ।

हमें केवल मौखिक या लिखित कथाओं का आश्रय लेना पड़ता है।

भारत वर्ष का प्रारम्भिक इतिहास अनुमेय मात्र है। उसमें भी बहुत अन्तराल पड़ गयेहैं। ऐसी दशा में हमें अपने चरित्रनायक की जीवनी के विषय में बहुत सावधान रहना होगा।

भारत का सिलसिलेवार इतिहास सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य्य से प्रारम्भ होता है। इस मगध सम्राट का उल्लेख केवल भारतीय साहित्यकोंने ही नहीं, किन्तु विदेशी, विशेषतः ग्रीक इतिहासकारों ने किया है। जैनों के प्रारम्भिक इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह सम्राट विशेष रुचिकर विषय है। सम्राट चन्द्रगुप्त का स्वामी भद्रबाहु के साथ दक्षिण चला जाना तथा सम्राट अशोक का प्रारम्भ में जैन होना अब ऐतिहासिक घटनायें मानी जाने लगी हैं।

पश्चिमीय इतिहासज्ञों का—जो ईसा के जन्म के आधार पर समयका निर्णय करते हैं—भारतीय घटना क्रम तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों के समय को पास ले आने की प्रवृत्ति, भारतीय लेखकों के—जो कल्प काल से गणना करते हैं—आभासिक तथा कहावती विचारों से बिलकुल विपरीत है। तो भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि कभी कभी प्राच्य इतिहासज्ञों के कार्य अतिशयोक्ति पूर्ण होते हैं। वे इस आनुमानिक आधार पर चलते हैं कि भारतीय सभ्यता में लेखन कला का प्रवेश बाद में हुआ है। कुछ विद्वान लोग पाणिनि से उसका प्रारम्भ मानते हैं, किन्तु गोल्डस्टिकरने लेखन कला को उक्त अनुमान से एक दशक पूर्व का सिद्ध कर दिया है। मथुरा के जैन स्तूप पर तथा महाशय के० पी० जायसवाल द्वारा प्राप्त कुणिक की मूर्ति पर अङ्कित शिला लेख भी भारतीय समय गणना के अनुसार लेखन कला को पाणिनि से पूर्व का ही सिद्ध करते हैं।

महाशय विंसेन्ट स्मिथ जैन स्तूप के विषय में लिखते हैं—

"यह अनुमान किया जाता है कि इस स्तूप की रचना बौद्ध स्तूपों के जैसी है। परीक्षा करने पर शिलालेख १५७ ई० के बाद का सिद्ध नहीं हो सका। वास्तव में यह स्तूप इतना पुराना है कि पुराने लोग इसे ईश्वर कृत मानते थे। इसलिये सम्भव है कि ईस्वी सन् से कई शताब्दी पूर्व इसका निर्माण हुआ हो।"

आगे चल कर वे लिखते हैं कि—

"भगवान महावीर के निर्वाण काल को ५२७ वर्ष पूर्व मानने पर उनका केवलज्ञान प्राप्तिकाल ५५० ई० पूर्व के लगभग ठहरता है। तथा स्तूप का जीर्णोद्धार काल उसके प्रारम्भिक निर्माण १३०० वर्ष बाद अर्थात् १५० ई० स० कहा जा सकता है। इस का प्रारम्भिक निर्माण महावीर के पूर्ववर्ती तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ के समय में हुआ था जो कि ईस्वी सन् से ६०० वर्ष पूर्व के लगभग अन्दाज़ा जा सकता है। शिलालेख में आये हुए "देव निर्मितम्" पद के आधार पर जो कि ईस्वी सन् के प्रारम्भ से पूर्व पौराणिक काल में स्तूप की रचना होने का संकेत करता है—उसके निर्माण काल को ईसा० से ६०० वर्ष पूर्व बतलाना कम नहीं है। अतः यह स्तूप—जिसका पता डाक्टर फुहरर (Dr. Fuhrer)

ने लगाया था सम्भवतः भारत की सर्व प्राचीन इमारत है।" ‡

जब हम इन ऐतिहासिक घटनाओं की जैन-मान्यता से तुलना करते हैं—जिसके अनुसार भ० महावीर के पहिले अनेक तीर्थङ्करों का होना सिद्ध है—तब यह कल्पना करना असंगत न होगा कि भगवान महावीर के पूर्व जैनधर्मानुयायी किसी न किसी रूप में अवश्य थे, तथा भगवान महावीर जैनधर्म के प्रभावक थे, न कि संस्थापक। अतः यदि जैन लोग ६०० ई० पूर्व में भी अपने साधुओं की स्मृति में स्तूप बनवाते थे तो यह मानना अनुचित न होगा कि भद्रबाहु की दक्षिणयात्रा के पहिले भी जैनधर्मानुयायी दक्षिण भारत में थे।

इस कल्पना के लिये एक प्रबल आधार यह भी हो सकता है कि उत्तर में भयानक दुर्भिक्ष पड़ने के कारण साधुओं का एक बड़ा संघ दक्षिण में स्वधर्मानुयायिओं की सहानुभूति प्राप्त करने की आशा से ही जावेगा। यदि दक्षिण जैनधर्मानुयायिओं के अतिरिक्त अपरिचित अन्य धर्मावलम्बियों का ही निवास-स्थान होता तो श्रीभद्रबाहु आचार्य साधुओं के इतने बड़े संघ को अपरिचित देश में ले जाने का साहस कभी न करते जब कि उन्हें जनता की उदारता पर ही पूर्ण रूप से रहना पड़ता था। "अतः दक्षिण का राजा पाण्डय जैन था और उससे भद्रबाहु को अतिथिसत्कार की आशा थी" इस किंवदन्ती में कुछ ऐतिहासिक तथ्य अवश्य छिपा हुआ है।

भद्रबाहु के दक्षिण जाने के पहिले जैनों में श्वेताम्बर और दिगम्बर का भेद न था। भद्रबाहु प्रथम के समय में दुर्भिक्ष की कठोरता के कारण श्वेताम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ती हुई। दक्षिण भारत में श्वेताम्बर सम्प्रदाय का सर्वथा अभाव भी उक्त घटना की सत्यता का साक्षी है। दक्षिण भारत के जैन अपने को मूल संघ (प्रारम्भिक धार्मिक समाज) का अनुयायी बतलाते हैं।

[क्रमशः]

---

‡ "Assuming the ordinarily received date B. C. 527 for the death of Mahavira to be correct the attainment of perfection by that saint may by placed about B. C. 550. The restoration of the stupa may be dated about 1300 years after or A. D 650 Its original erection in brick in the time of Parshwa Nath, the predecessar of Mahavira would fall at a date not later than B C 600 considering the significance of the phrase in the inscription "Built by the gods" as indicating that the building at about the begining of the Christian era was believed to date from a period of mythical antiquity, the date B C. 600 for its erection is not too early. Probably therefore this stupa of which Dr. Fuhrer exposed the foundation is the oldest known building in India"

[११]

युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना ।

पंडित दरबारीलाल जी ने सर्वज्ञता के अभाव के समर्थन में निम्नलिखित बातें और भी उपस्थित की हैं:—

(१) केवली के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग का क्रम से होना ।

(२) केवली के कार्यकारी मन का सद्भाव ।

(३) केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों का सद्भाव

(४) सर्वज्ञता का प्रचलित अर्थ ।

सर्वज्ञता का भाव जहाँ कालत्रय और लोकत्रय की अशेष वस्तुओं का ज्ञान है वहीं उस ज्ञान का लगातार रूप से अनन्त काल तक रहना भी । दरबारीलाल जी इन चारों बातों से इस मान्यता का खण्डन करना चाहते हैं, क्योंकि वह ज्ञान जो कभी २ होता हो और जिसके लिये मन की सहायता आवश्यक पड़ती हो, कालत्रय और लोकत्रय की अशेष वस्तुओं को लगातार अनन्त काल तक जानता रहेगा यह बात असंभव है । कभी २ होने से जिसका अस्तित्व ही लगातार अनन्तकाल तक नहीं फिरभी वह लगातार अनन्तकाल तक पदार्थों को जानता रहेगा यह ऐसा है जैसा कि वन्ध्या-पुत्र का सौन्दर्य ! इसही प्रकार जो मन की सहायता से होता हो उसका कालत्रय और लोकत्रय की अशेष वस्तुओं को जानना । अब विचारणीय यह है कि क्या पं० दरबारीलाल जी की ये बातें सत्य हैं ? दरबारीलाल जी ने अपनी पहिली बात के समर्थनमें निम्नलिखित दो बातें उपस्थित की हैं:—

(१) प्राचीन मान्यता होने से ।

(२) लब्धि के सर्वदा उपयोगात्मक न होनेसे ।

केवली के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के क्रमवर्तित्व की प्राचीनता के समर्थन में आपने पण्णवणा सूत्र का एक उद्धरण उपस्थित किया है । जहां कि उक्त सूत्र के उद्धरण का भाव केवली के ज्ञान और दर्शन को भिन्न भिन्न समयवर्ती प्रगट करता है वहीं आचार्य कुन्दकुन्द इन दोनों का एक साथ होना स्वीकार करते हैं *

श्वेताम्बरीय आगम सूत्रों की रचना का काल

---

* जुगवं वट्टइ णाणं केवल णाणिस्स दंसणं च तहा । दिणयरपयासतापं जह वट्टइ तह मुणेयव्वम् ॥

—नियमसार गाथा १४९

अर्थात्—जिस प्रकार सूर्य के प्रताप और प्रकाश एक साथ रहते हैं, उसही प्रकार केवलज्ञानियों के दर्शन और ज्ञान एक साथ रहते हैं ।

वीर सम्वत् ९८० है* और आचार्य कुन्दकुन्द ईसा की पहिली शताब्दि के महापुरुष हैं। ‡ इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द और श्वेताम्बरीय आगम शास्त्रों की रचना में कई सौ वर्षों का अन्तर है और आगमों की रचना कालकी अपेक्षा उक्त आचार्य का समय ही प्राचीनतर है। श्वेताम्बरीय सूत्रों के सम्बन्ध में यह कहना कि वीर सम्वत् ९८० में तो इनको लिपिबद्ध किया गया था, इनकी रचना तो आचार्य कुन्दकुन्द से भी कई सौ वर्ष पूर्व श्री जम्बूस्वामी और श्री भद्रबाहु स्वामी द्वारा होचुकी थी, ऐसा ही है जैसे वैदिक मंत्रों को ईश्वर प्रणीत बतलाकर भिन्न २ वैदिक ऋषियों को उनका या उनके अर्थों का अवतरण स्थान बतलाना। वेद-मंत्रों में वैदिक ऋषियोंके नामोल्लेख हैं; अतः वैदिक सम्प्रदाय उनसे उन २ ऋषियों का सम्बन्ध विच्छेद तो कर नहीं सका तथा यह कहना कि अमुक २ ऋषि अमुक २ मंत्र के रचयिता हैं उसके लिए मरणका स्थान है। अतः उसने यह कल्पना की है कि अमुक २ ऋषि के समय में जब २ अमुक २ ऋषि ने ध्यानस्थ होकर अमुक २ मंत्रार्थ का चिन्तवन किया था तब २ परमात्मा ने उनको उन उन मंत्रों का अर्थ दिया था। वैदिक सम्प्रदाय की यह कल्पना भले ही उसके श्रद्धालुओं के लिये मान्यताका स्थान हो सकती हो किन्तु एक परीक्षक के लिए तो इसमें तनिक भी बल नहीं है। यही बात श्वेताम्बरीय सूत्रों के सम्बन्ध में है। इनमें स्थान २ पर भद्रबाहु आदि का अन्य पुरुषसे उल्लेख मिलता है। अन्य भी अनेक घटनाओंका उल्लेख इन सूत्रों में विद्यमान है जिनका अस्तित्व समय कि स्वयं आचार्य भद्रबाहु के बाद का है†। ऐसी अवस्था में भी इनको श्री जम्बू स्वामी या श्री भद्रबाहु स्वामी द्वारा विरचित स्वीकार करना केवल एक साम्प्रदायिक विचार है; अतः पण्णवणा सूत्र के आधार से केवली में ज्ञान और दर्शन के क्रमवर्तित्व की प्राचीनता को स्वीकार नहीं किया जा सकता!

दरबारीलालजीने इसके सम्बन्ध में दूसरी बात लब्धि को कही है। आपका कहना है कि लब्धि सदैव उपयोगात्मक हो यह नियम नहीं है। आपने इस बात पर एक प्रश्न और फिर उसके उत्तर-स्वरूप में निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हैं :—

प्रश्न—"जो लब्धियाँ क्षायोपशमिक हैं उनका उपयोग सदा न हो यह हो सकता है परन्तु जो क्षायिक लब्धि है उसके विषय में यह बात नहीं कही जा सकती"।

उत्तर—"लब्धि और उपयोग का क्षयोपशम और क्षय के साथ कोई विषम सम्बन्ध नहीं है।

* वल्लहि पुरम्मि नयरे देवड्ढिय मुह सयल संघेहि। पुत्थे आगमलिहिओ नवसय असिआओ वीराओ॥ अर्थात्—वल्लीपुर नगरमें देवर्धिगणी आदि समस्तसंघने वीर सं० ९८० में आगम पुस्तक रूप रचे।

‡ देखो प्रो० चक्रवर्ति की पंचास्तिकायकी ऐतिहासिक भूमिका। पाठकों की सुविधाके लिये इसका हिन्दी भाषान्तर दर्शन के इसी अंक से निकाला जारहा है।

† ठाणांग सूत्र ५८७ और इसकी टीका। इनमें सात निह्नवों का वर्णन है जिनमें से अन्तके दो निह्नवों का समय इनहीके अनुसार वीर सम्वत् ५४४ और ५८४ है। इसही बातका वर्णन विशेषावश्यक भाष्य में भी मिलता है। यह सब वर्णन इन पुस्तकों में भूतकाल के रूपमें किया गया है।

क्षयोपशम से अपूर्ण शक्ति प्राप्त होती है और क्षय से पूर्ण शक्ति प्राप्त होती है । क्षयोपशम में थोड़ी शक्ति भले ही रहे परन्तु जितनी शक्ति है उसको तो सदा उपयोग रूप रहना चाहिये । यदि क्षायोपशमिक शक्ति लब्धि रूप में रहते हुए भी उपयोगरूप में नहीं रहती तो केवलज्ञान भी लब्धि रूपमें रहते हुए भी उपयोगरूपमें रहना ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता.........दूसरी बात यह है कि अन्य क्षायिक लब्धियां भी उपयोग रहित होती हैं। अन्तराय कर्म के क्षय होने से जैसे केवली में दानादिक"

अर्थग्रहण शक्ति का नाम लब्धि* और अर्थग्रहण व्यापार का नाम उपयोग है† । जहां कि उपयोग लब्धि के अनुसार होता है वहीं लब्धि भी ज्ञानावरणकर्म के अभाव से। जैसे २ और जितना २ ज्ञानावर्णी कर्म का अभाव होता जाता है वैसे २ और उतनी उतनी अर्थग्रहण शक्ति निरावरण होती जाती है, इस ही को लब्धि कहते हैं। जब तक ज्ञानावर्णी कर्म का बिलकुल अभाव नहीं होता तब तक की लब्धि को क्षायोपशमिक कहते हैं और जब ज्ञानावर्णी कर्म का बिलकुल अभाव हो जाता है उस समय की लब्धि को क्षायिक लब्धि कहते हैं।

जब तक लब्धि क्षायोपशमिक रहती है तब तक उसको उपयोगात्मक होने में अन्य साधन भी अपेक्षणीय रहते हैं। मति ज्ञान और श्रुतज्ञान स्पष्ट इन्द्रिय और मन की सहायता से होते हैं तथा मन और इन्द्रिय सदैव एक विषय पर दृढ़ नहीं रह सकते । इस बात के समर्थन के लिये प्रमाणों की आवश्यकता नहीं; इसके समर्थन के लिये तो हमारा दैनिक अनुभव ही पर्याप्त है। प्रत्येक मनुष्य अनुभव करता है कि उसकी इन्द्रियाँ और मन एक विषय पर चिरकाल तक नहीं टिकते । इसही प्रकार यह भी हमारा अनुभव बतलाता है कि अधिक समय तक किसी एक विषय पर दृष्टि लगाने या विचार करने से इसको मानसिक एवं ऐन्द्रिक विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। इससे प्रगट है कि इनकी सहायता दृढ़ एवं स्थायी नहीं; अतः इनके निमित्त से होने वाले मति और श्रुतज्ञान भी दृढ़ और स्थायी नहीं।

यद्यपि अवधिज्ञान में इन्द्रिय और मनकी आवश्यकता नहीं पड़ती और यह केवल आत्ममात्र सापेक्ष ही होता है, किन्तु ऐसा होने पर भी यह एकदम नहीं हो जाया करता—अवधिज्ञानी उसही को अवधिज्ञान से जानता है जिसको वह जानना चाहता है। यही बात मनःपर्ययज्ञान के सम्बन्ध में है। अर्थात् मनःपर्ययज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता के निरपेक्ष होने पर भी उसही को जानता है जिसको कि मनःपर्ययज्ञान जानना चाहता है । इससे प्रगट है कि जिस प्रकार मति और श्रुतज्ञान इन्द्रिय सापेक्ष्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं उसही प्रकार अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति भी निराकारण नहीं। इच्छा और उपयोग पूर्वक प्रयत्न भी उनमें से हैं जिनके द्वारा कि अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति होती है। इच्छा और उपयोग पूर्वक प्रयत्न ऐसी बातें हैं जिनकी मति और श्रुत की उत्पत्ति में भी आवश्यकता होती है।

* तत्रार्थग्रहण शक्तिर्लब्धिः † अर्थग्रहण व्यापार उपयोगः —लघीयस्त्रय पे० १५

जिस बात को हम करना चाहते हैं और जिस के लिये हम प्रयत्न करते हैं उसके पूर्ण हो जाने पर हमारा ध्यान उधर से स्वयमेव निवृत्त हो जाया करता है। यही बात अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान के सम्बन्ध में है। एक अवधिज्ञानी या मनःपर्यय-ज्ञानी किसी विशिष्ट विषयको जानना चाहताहै और उसके लिये उपयोग पूर्वक प्रयत्न करके अवधि या मनःपर्यय के उपयोग को उसकी तरफ़ ले जाता है. किन्तु जब वे इस कार्य को कर लेते हैं तब उनका ध्यान स्वयमेव उस विषय से निवृत्त हो जाता है। इससे प्रगट है कि मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्यय जिन परिस्थितियों में उपयोगात्मक होते हैं वे इस प्रकार की नहीं जिससे वे सदैव रह सकें। किन्तु ये बातें क्षायिकज्ञान के सम्बन्ध में घटित नहीं होतीं। न केवलज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है और उसके उपयोगात्मक होने में इच्छा आदि बातें आवश्यक ही हैं। केवलज्ञान तो उस अवस्था में आविर्भूत होता है जब कि मोहनीय कर्म ही नष्ट हो जाता है फिर इच्छा की तो बात ही क्या है। *अतः केवलज्ञान की उपयोगात्मक अवस्था में कादाचित्क की बात नहीं आती।* इससे स्पष्ट है कि क्षय और क्षायोपशमिक इन दोनों अवस्थाओं में लब्धि के रहने पर भी पहिली अवस्था में उसके अनुसार उपयोग होने में उपयोग के कादाचित्क की गुंजाइश नहीं जब कि यह बात दूसरी अवस्था में युक्तियुक्त ठहरती है।

दानादिक के लिये केवल अन्तरायकर्म का क्षय ही आवश्यक नहीं, किन्तु उच्च जातिका शुभ नाम और साता का उदय भी अनिवार्य है। अन्तराय कर्म के अभाव से तो इस प्रकार की शक्ति विशेष का प्रादुर्भाव होता है, किन्तु दानादिक के लिये तो अन्य बातों की भी आवश्यका है! भगवान संसार दुखों से तप्त प्राणियों को उपदेश द्वारा अभय दान देते थे। यह उनके केवल अन्तराय के क्षय का ही परिणाम नहीं था, किन्तु उनका तीर्थङ्कर नामकर्म भी अपेक्षित था। जब इन दोनों में से एक का भी अभाव होजाता है तो उपदेश स्वरूप अभयदान नहीं हो सक्ता। यह तो तीर्थङ्करों की बात है। यदि इस ही बातको अपने में ही घटित करना चाहेंगे तब भी यह इसही प्रकार मिलेगी। जिस प्रकार हममें दान की शक्ति विशेष के रहने पर भी बाह्य द्रव्य के अभाव से हम बाह्य द्रव्य त्याग रूप दान नहीं करते, फिर भी हमारी वह शक्ति विशेष अनुपयोगात्मक नहीं, इसही प्रकार सिद्धोंमें बाह्यनाम कर्मके उदयके अभाव से उपदेश के न रहने पर भी उनकी शक्ति विशेष अनुपयोगात्मक नहीं। इसके साथ ही साथ दरबारीलाल जी को यह भी देखना चाहिये कि ये लब्धियां जिनको वह सिद्धों में लब्धि रूप बतला रहे हैं स्वतंत्र गुण हैं या किसी गुण की अवस्थायें हैं। *यदि स्वतंत्र गुण हैं तो फिर इनकी उपयोग स्वरूप अवस्था क्या है?* यदि उनको किसी गुण की अवस्था विशेष स्वीकार किया जायगा तो वह गुण कौनसा है और उसकी इसप्रकार की अवस्थायें क्यों हुईं, आदि २। इन सब बातों के समाधान से स्पष्ट हो जायगा कि सिद्धों में यह लब्धियां उपयोग स्वरूप ही हैं। इससे प्रगट है कि सिद्धों में भी लब्धियां उपयोग स्वरूप हैं; अतः इसके आधार से भी केवली के ज्ञान को अनुपयोगात्मक प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इससे यह भी स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी के वे समाधान भी जोकि उन्होंने

सहबादियों की तरफ़ से क्रमबादियों पर किये गये आक्षेपों के सम्बन्ध में दिये हैं निराधार हैं। सहबादियों का कहना है कि केवली में यदि दर्शन और ज्ञान को क्रम से मानोगे तो निम्न लिखित बातें ठीक नहीं बैठेंगी :—

१—ज्ञानावरण और दर्शनावरण का एक साथ अभाव।

२—ज्ञान और दर्शनका सादि अनन्तत्व।

३—एक की अवस्था में दूसरे की क्या अवस्था रहेगी और वह क्यों?

४—ज्ञान के समय दर्शन का अभाव और दर्शन के समय ज्ञान का अभाव होने से उपदेश कैसे होगा—यदि होगा तो अज्ञात वस्तु का उपदेश देना कहलायेगा; आदि।

इन सबका ही समाधान दरबारी लाल जी ने उपयोग को लब्धि के अनुसार न मान कर ही किया है किन्तु जब यह ही बात नहीं बनती तब इसी के आधार से इन आक्षेपों के समाधान कैसे ठीक बैठ सकते हैं। केवली में लब्धि के अनुसार ही उपयोग होता है इस बात का समर्थन हम पूर्व ही कर चुके हैं; अतः सहबादियों के आक्षेप क्रमबादियों पर तदवस्थ हैं।

जहाँ कि दरबारीलाल जी की युक्तियों की यह हालत है वहां केवली में ज्ञान और दर्शन के सहपक्ष में इस प्रकार की दोनों बातें मौजूद हैं। केवली में ज्ञान और दर्शन के सहवाद की मान्यता एक अति प्राचीन मान्यता है। इसको हम आचार्य कुन्दकुन्द के नियमसार की गाथा से स्पष्ट कर चुके हैं। दूसरे युक्तियाँ भी इसका समर्थन करती हैं, जैसाकि निम्न लिखित वक्तव्य से स्पष्ट है :—

ज्ञान और दर्शन यह दो स्वतंत्र गुण नहीं, किन्तु चेतना गुणकी पर्याय हैं। जिस समय चेतना गुण स्वातिरिक्त अन्य ज्ञेयों से असम्बन्धित होकर केवल अपना ही प्रकाश करता है उस समय उसको दर्शन कहते हैं। जब यही अपने प्रकाश के साथ ही साथ अन्य ज्ञेयों का भी प्रकाश करता है उस समय इसी को ज्ञान कहते हैं। प्रकाशात्मक पदार्थ किसी भी अन्य पदार्थ का प्रकाश न करें यह सम्भव है, किन्तु यह सम्भव नहीं कि वह बिना अपने प्रकाश के दूसरों का प्रकाश करदें। दीपक ही है; इसकी ऐसी अवस्था तो मिल सकती है जबकि यह किसी का प्रकाश न कर रहा हो किन्तु ऐसी अवस्था का मिलना नितान्त असंभव है जबकि यह दूसरों का प्रकाश तो कर रहा हो और स्वयं अप्रकाशित हो। यही बात है जिससे प्रकाश की प्रकाश्य के स्थान पर आवश्यक्ता हुआ करती है न कि द्रष्टा के। इससे यह निष्कर्ष निकला कि जितने भी प्रकाशात्मक पदार्थ हैं जिस समय वे दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करते हैं उसी समय अपने को भी। ज्ञान भी एक प्रकाशात्मक तत्त्व है, अतः उसके सम्बन्ध में भी यही बात है। यह भी जिस समय दूसरों का प्रकाश करता है उसी समय अपना भी।

जिस प्रकार द्रव्य में प्रति समय परिणमन हुआ करता है उसी प्रकार गुण में भी। चेतना भी एक गुण है, अतः इसमें भी प्रति समय परिणमन हुआ करता है।

सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार इसके भी दो कारण हैं। एक उपादान और दूसरा निमित्त। उपादान कारण तो चेतना गुण ही है और निमित्त कारण कालादिक। जबकि यह चेतनागुण जीव की संसारी अवस्था में रहता है तब इन्द्रियादिक एवं मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले भावों का भी इसके परिणमन पर प्रभाव पड़ता है। यह बातें कादाचित्क हैं, अतः चेतना का इस अवस्था का परिणमन भी भिन्न २ रूप को लेकर होता है। जब संसारी आत्मा इस अवस्था को पार कर जाता है और जीवन्मुक्त या सिद्ध होजाता है तब चेतना गुण के परिणमन पर उन बातों का प्रभाव जिनका जीव की संसारी अवस्थामें पड़ताथा नहीं पड़ता। क्योंकि उनका कारण मोहनीय कर्म इन अवस्थाओं में नष्ट होजाता है। अतः इस समय चेतना गुणका परिण-

मन भी भिन्न २ रूपवाला नहीं होता। ऐसी अवस्था में इसका जैसा परिणमन होता है वह सदैव वैसाही रहताहै। यह परिणमन स्वपर प्रकाशक स्वरूपहै। अतः यह इसी प्रकारको अवस्थामें रहताहै।

दृष्टान्त के लिये इसको यों समझियेगा कि आत्मा में प्रदेश गुण है, जिसके कारण इसका कुछ न कुछ आकार अवश्य रहता है तथा रहेगा। जब तक यह आत्मा शरीर में रहता है तब तक शरीर के छोटे बड़ेपन से इसके आकार में भी विभिन्नता आती रहती है। जिस समय यह शरीर बन्धन को दूर कर देता है और मुक्त हो जाता है उस समय इसका जैसा आकार होता है वैसा ही अनन्तकाल तक रहता है, क्योंकि संसारी अवस्थामें जिस शरीर के कारण इसके आकार में परिवर्त्तन होते थे अब वह इसके साथ नहीं हैं। अतः इसके आकार में परिवर्तन भी नहीं होते। आत्मा की मुक्त अवस्था में भी इसके प्रदेशगुण में परिणमन होते हैं किन्तु वे सदृश ही होते हैं न कि असदृश तथा जब इन सदृश परिणमनों के अतिरिक्त कारणों का भी संयोग था उस समय उनके कारण इन परिणमनों में भी विसदृशता आ जाती थी। अब वे कारण हैं नहीं, अतः वह विसदृशता भी नहीं आती। यही बात चैतन्यगुण के सम्बन्ध में है। उसमें भी प्रति समय परिणमन होता है तथा जब तक असमान परिणमन के कारण रहते हैं तब तक यह ऐसा होता है और जब यह दूर हो जाते हैं तब सदृश परिणमन होने लगता है। जीवन्मुक्त अवस्था या मुक्त अवस्था में चैतन्य गुण के विसदृश परिणमन के कारण दूर हो जाते हैं, जैसा कि हम पहिले बतला चुके हैं। अतः उस समय चैतन्यगुण का परिणमन भी सदृश ही होता है। इसका यह भाव कदापि नहीं कि जीवन्मुक्त या सिद्धों में दो उपयोग एक साथ होते हैं किन्तु यह है कि दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग में जिन २ बातोंकी मुख्यता थी वे बातें चेतना गुण की इस अवस्थामें होती हैं। जहाँ दर्शन में केवल स्वप्रकाश की बात है वहाँ ज्ञान में परप्रकाश की मुख्यता तथा इस अवस्था में ये दोनों ही होती हैं। अतः यह कहा जाता है कि केवली या सिद्धों के दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग एक साथ होते हैं।

प्रश्न—इस प्रकार की व्यवस्था तो संसारी जीवों के भी ज्ञान में है फिर यही क्यों कहा जाता है कि केवली या मुक्तों में ही दोनों उपयोग एक साथ होते हैं? उत्तर—संसारी जीवों के ज्ञान में इस प्रकार की व्यवस्था होने पर भी उनके चेतना गुण की यह पर्याय स्थिर नहीं है। कभी वह ज्ञान रूप रहता है तो कभी ज्ञान को छोड़ कर ऐसी अवस्था को धारण कर लेता है जहां कि केवल स्वप्रकाश है और जिसको दर्शनोपयोग कहते हैं। अतः वहां इस प्रकार की व्यवस्था सार्वकालिक न होने से ऐसा नहीं कह सकते किन्तु यही कहना पड़ता है कि उनका ज्ञान दर्शनपूर्वक होता है। इसका यह भाव कदापि नहीं कि संसारी जीवों का सब ही ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगपूर्वक होता है या ज्ञानोपयोग ज्ञानोपयोगपूर्वक होता ही नहीं किन्तु यह है कि संसारी अवस्था में ज्ञान से पूर्व चैतन्यगुण का परिणमन दर्शनरूप भी होता है। ये बातें जीवन्मुक्त या सिद्धों में नहीं, अतः उनके साथ संसारी जीवों के उपयोगों की बातें घटित नहीं होतीं। प्रश्न—घातिया कर्मों के नाश के समय चैतन्य गुण का जैसा परिणमन होता है वैसा ही सदैव रहता है; यदि यह बात है तो उस समय के चैतन्यगुण के परिणमन को ज्ञानस्वरूप ही क्यों माना जाय, दर्शनस्वरूप क्यों नहीं? उत्तर—जिस समय यह जीव घातिया कर्मों का नाश करता है उस समय इसकी अवस्था ध्यानावस्था होती है। तथा ध्यानावस्था में चैतन्यगुण का परिणमन ज्ञानस्वरूप ही रहता है। अतः इसकी उस समय की अवस्था ज्ञानस्वरूप ही है और फिर आगाड़ी भी इसकी अवस्था ज्ञानस्वरूप ही रहती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केवली के ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगपूर्वक नहीं होता। [क्रमशः]

शीत ऋतु चर्या।

[ले०—श्री वैद्यराज पं० शङ्करलाल जैन, संपादक "वैद्य", मुरादाबाद]

शीतकाल स्वास्थ्य के लिये सम्पूर्ण ऋतुओं की अपेक्षा उत्तम है। इस ऋतु में मनुष्यों का जैसा अच्छा स्वास्थ्य रहता है, वैसा अन्य ऋतुओं में नहीं रहता। कारण, इस ऋतु में सूर्य के दक्षिणायन होने से मनुष्योंके शरीर में स्वाभाविक बल की वृद्धि होती है। अतएव बलवान मनुष्यों के शरीर पर सहसा रोग आक्रमण नहीं कर सकते। बाहरी शीत के लगने से इस ऋतु में शरीर के भीतर की गर्मी एकत्रित होकर जठराग्नि को अत्यन्त बलवान बना देती है। इस कारण जठराग्नि के दीपन होने से अनेक रोग स्वयं नष्ट हो जाते हैं। एवं जो कुछ हलका या भारी भोजन किया जाता है, वह सहज में पच जाता है। इसलिये यह जाड़े का मौसम सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है।

पाश्चात्य विद्वानों के मत से शीतकाल में वायु के अधिक शीतल होने के कारण उसका फैलाव कम हो जाता है। ग्रीष्मकाल में जितनी वायु जितने स्थान में रहती है, शीतकाल में वायु संकुचित होकर उतने स्थान में उसकी अपेक्षा कहीं अधिक भर जाती है। ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीत ऋतु की वायु में अम्लजन अधिक होता है। अम्लजन की अधिकता के कारण ही ग्रीष्म की अपेक्षा शीत ऋतु की वायु अधिक भारी होती है। शीतऋतु की वायु में जल की वाष्प बहुत कम होती है, इस कारण इस ऋतु में वायु अत्यन्त शुष्क व रूखी होती है।

शीतकाल की वायु में अम्लजन अधिक होने से शीतकाल में शरीर की गरमी शीघ्रता से कम होती है, इसलिये हम शीत का अनुभव करते हैं। बाहरी शीत की अधिकता के कारण शरीर के भीतर गरमी एकत्रित हो जाने से स्वभावतः क्षुधा अधिक लगती है और खाया हुआ भोजन सहज में उत्तम प्रकार से पच जाता है। इस कारण इस ऋतु में भोजन और वस्त्र की अधिक आवश्यकता होती है।

शीतकाल में वायु की शीतलता के कारण शरीर की त्वचा सिकुड़ जाती है और रुधिर का संचालन त्वचा की ओर कम होता है, इस कारण उसकी क्रिया भी अल्प हो जाती है। तथा पसीना न आने के कारण रुधिर उत्तम प्रकार से परिष्कृत नहीं होता और शरीर का अधिक रक्त यकृत, प्लीहा, मस्तिष्क, अन्त्र, पाक स्थली, मूत्रयंत्र आदि स्थानों में संचित होता है। त्वचा के उत्तम प्रकार से कार्य न कर सकने के कारण यकृत, फुफ्फुस और मूत्र यन्त्र को अधिक कार्य करना पड़ता है, इस कारण वे सहज में दुर्बल और पीड़ित हो जाते हैं। अतः शीतकाल में सर्दी, जुकाम खांसी, पेट की पीड़ा, प्रस्राव की अधिकता आदि विकार उत्पन्न होते हैं, एवं त्वचा की क्रिया उत्तम प्रकार से न होकर त्वचा में विविध प्रकार के रोग जैसे दाद, खुजली, चकत्ते आदि उत्पन्न होते हैं। जिह्वा, ओष्ठ आदि में घाव हो जाते हैं। इन कारणों से शीतऋतु में वृद्ध,

दुर्बल, पुराने रोगी और बालकों को अधिक मृत्यु होती है।

आजकल सब प्रकार के जल विशेषकर खुले स्थानों के जल अधिक शीतल हो जाते हैं, उनका व्यवहार कर अनेक मनुष्य रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। शीतऋतु में कुए का जल गरम रहता है, कारण वायु की शीतलता का नीचे अच्छे प्रकार से प्रवाह नहीं होता। कुये का जल तत्काल निकालने पर गरम मालूम होता है, किन्तु कुछ समय तक रखा रहने से वह अत्यन्त शीतल हो जाता है। शीतऋतु में शीतल जल का अधिक उपयोग करने से भारी हानि होने की सम्भावना हो सकती है। आजकल मुख गह्वर गरम रहता है। इस कारण मुख में अत्यन्त शीतल जल के पहुँचने से दाँतों की शिरायें पीड़ित होकर दांत हिलने लगते हैं। इसके सिवाय ठंडे जल में सहसा अवगाहन करने से सर्दी, जुकाम, खांसी, श्वास, ज्वर, निमोनिया आदि शीत सम्बन्धी अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

पहले लिख चुके हैं कि शीतकाल में वायु में जल की वाष्प बहुत कम हो जानी है, इसकारण वायु अत्यन्त रूक्ष और शुष्क हो जाती है। वायु के स्थिर होने की अपेक्षा प्रवाहित होने की अवस्था में शुष्कता या रूक्षता अधिक मालूम होती है। इस कारण जो मनुष्य आजकल प्रवाहित वायु में अधिक समय तक रहते हैं, उनके शरीर के सब अंग शुष्क हो जाते हैं। मुखमण्डल और ओष्ठ बिल्कुल खुले रहते हैं, इस कारण शीतल वायु के स्पर्श से वे फट जाते हैं।

वायु जितनी शीतल होती है, उतना ही उसके जल का भाग शीतल होकर गिर जाता है, और उतनी ही वह जल की वाष्प को धारण करने में असमर्थ हो कर अधिक शुष्क हो जाती है। अतएव प्रातःकाल के समय और रात्रि में वायु अधिक शुष्क होती है। उक्त समय बहती हुई वायु में अधिक रहने से मुखमण्डल, त्वचा और ओष्ठ फट जाते हैं। त्वचा में क्लेद के संचित होने से उसकी स्थिति स्थापकता नष्ट हो जाती है। इस कारण वह सहज ही में फट जाती है। जिन २ स्थानों में चर्म की स्थिति-स्थापकता कम हो जाती है, वे सब स्थान सूखे व रूखे प्रतीत होते हैं; जैसे हाथ, पांवों के तलुए, ओष्ठ आदि। इस ऋतु में नङ्गे और अशुद्ध शरीर रहने से त्वचा का फटना स्वाभाविक है। शीतकाल में-जिनको शरीर ढकने के लिये पूरा वस्त्र और पेट भरने के लिए पूरा भोजन प्राप्त नहीं होता, उनके लिये यह मौसम बड़ा ही कष्टप्रद है। किन्तु ऐसे दरिद्र कंगाल मनुष्यों की शरीर रक्षा के लिये प्रकृति माता ने अग्नि की सृष्टि की है। बाह्य अग्नि की समान शरीर के भीतर भी सदैव अग्नि जलायी जा सकती है। बाहरी अग्नि जिस प्रकार ईंधन के द्वारा प्रज्वलित की जाती है, शरीर के भीतर की अग्नि भी उसी प्रकार खाद्य-रूपी ईंधन और परिश्रमरूप हलनचलन से प्रज्वलित होकर शरीर में ताप उत्पन्न कर शीतकाल में शरीर की रक्षा करती है। शीतकाल में जो नियमित रूप से शारीरिक परिश्रम करते हैं, उनको शीत बहुत कम लगता है। इस कारण दरिद्री और निर्धन मनुष्यों को अधिक शारीरिक परिश्रम करने के कारण, ज़्यादह गरम वस्त्र न होने पर भी रात्रि में सुखपूर्वक नींद आ जाती है। शीतकाल में शरीर की त्वचा संकुचित हो जाती है, इस कारण त्वचा की तरफ़ रुधिर का ठीक २ संचालन नहीं होता, किन्तु उचित परिश्रम करने से उत्तम प्रकार से त्वचा की ओर संचालन हो सकता है। त्वचा की सिकुड़न दूर होकर शीत कम लगता है, इसलिये धनी और निर्धन प्रत्येक मनुष्य को इस ऋतु में शारीरिक परिश्रम कर स्वास्थ्य-लाभ करना चाहिये।

[क्रमशः]

* समाचार-संग्रह *

—श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजाके अधिष्ठाता श्रीमान पूज्य ब्रह्मचारी देवचन्द्रजी बी० ए० ने ब्यावरमें आचार्य महाराजसे मंगसिर सुदी ३ को क्षुल्लकदीक्षा ग्रहण की है। दीक्षा लेनेके पश्चात् आचार्य महाराज से आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्याश्रम का कार्य संभालने आप कारंजा चले गये हैं। आपका नाम "समन्तभद्र" रक्खा गया है। बधाई!

—श्रीमान मैनेजर तेरापंथी कोठी मधुवनको सूचनासे ज्ञात हुआ है कि सम्मेदशिखर में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा माघ के बजाय अब फागुन सुदी १ से ५ तक होगी।

—श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जी का मेला इस वर्ष मिती फागुन बदी २, ३, ४ तदनुसार ता० १-२-३ फ़र्वरी सन् ३४ को होगा।

—श्री जैन रजत रथोत्सव, सिवनी ता० २८-२९ दिसम्बर १९३३ को होगा। साथ ही स्थानीय वर्द्धमान जैन सभा तथा जैन मनोरंजन क्लबका विशेष उत्सव भी होगा।

—जैन नवयुवक मंडल, भेलसा द्वारा स्थापित वाचनालय से गत अक्तूबर व नवम्बर मास में ११४० आदमियों ने वाचनालय में पहुँचकर व ५०५ आदमियों ने पुस्तकें घर ले जाकर लाभ लिया।

—ला० मन्नु लाल जैन, भोपालनिवासी अपने पत्रमें लिखते हैं कि उपरोक्त वाचनालय का कार्य संतोषजनक रीति से नहीं चल रहा है। सेठ लक्ष्मी चन्द्र जी को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

—बाहुबली धर्मार्थ औषधालय ललितपुर की शाखा खोलने वाले महाशयों को रेलवे स्टेशन का पूरा पता लिखना चाहिये।

—लायलपुरमें एक बढ़ईकी स्त्री अपनी ४ दिन की लड़की को घरमें अकेली छोड़कर पड़ोसीके घर गई थी; जब वह लौटकर आई तो उसने देखा कि लड़कीको बिल्ली खारही है।

—ला० मुन्नालाल द्योसिंहराय शाहदरा ने पुत्र विवाह में २०१) और ला० रामजीलाल सम्पतराय सिकन्दरपुरने पुत्री विवाहमें २०१) कुल ४०२) दोनों पक्ष ने निम्न प्रकार दान किए हैं :—

१०१) सिकन्दरपुर में नवीन मन्दिर बनाने को।
२५) जैन मन्दिर शाहादरा
११) गऊशाला „
३१) दि० जैन हाई स्कूल बड़ौत
२५) सूर्यप्रकाश समीक्षाके प्रकाशनार्थ
१०) स्याद्वाद महाविद्यालय काशी;
१०) गोपाल दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना;
१०) ऋषभ ब्र० आश्रम मथुरा;
१०) श्राविकाश्रम बम्बई;
१०) जैनबाला विश्राम आरा;
१०) जीवदया सभा आगरा;
१०) जैन बोर्डिङ्ग हाउस मेरठ;
८) दिगम्बर जैन परिषद् बिजनौर;
४) वीर मल्हीपुर;
४) सनातन जैन बुलन्दशहर;
४) जैन जगत अजमेर;
४) जैनदर्शन बिजनौर;
४) जैन मित्र सूरत;
४) जैन संसार देहली।
२१) जैनकन्या शिक्षालय देहली
२१) जैन अनाथाश्रम „
२१) नमिसागर औषधालय „
११) जैनसंस्कृत कमरशियल स्कूल देहली
१०) जैनमहिलाश्रम देहली
११) जैनपाठशाला धर्मपुरा देहली
५) जैनमित्र मंडल „
५) वर्द्धमान लायब्रेरी „
२) मनीआर्डर फीस

४०२)

नोट—लड़के वाले ने १००) के चांदी के बर्तन भी सिकन्दरपुर मन्दिर के लिये दिये।

—सबसे बड़ा तथा १३७६० फुट ऊंचा ज्वाला

Regd. No. A. 2379.

मुखी पहाड़ मौनालोआ फट गया है; कोई प्राणि-हानि नहीं हुई है।

—इटली में जनसंख्या बढ़ानेके लिये इटलीके भाग्य विधाता मुसोलिनी अविवाहित पुरुषोंपर भारी टैक्स लगाकर विवाह करने के लिये लोगों को बाध्य कर रहे हैं।

—अम्बालेमें एक हिन्दु वृद्ध स्त्री के नेत्र जो २० वर्ष पहले अंधे होगये थे असह्य शिरपीड़ा के पीछे अब ठीक हो गये हैं। अब अच्छी तरह देखती है लिखती पढ़ती है।

—जापानमें "नीची-ई-हिमनरोन" (इंगलेण्ड जापान का निश्चयात्मक युद्ध) नामक पुस्तक का बहुत प्रचार है। उसके ४५ संस्करण (एडिशन) हो चुके हैं। उसमें लिखा है कि भविष्य में जापान-इंगलेण्ड का युद्ध होगा।

—किशोरगढ़ (ग्वालियर) में एक साथ एक स्त्री के सात बच्चे उत्पन्न हुए।

—करन (ग्वालियर) में शिवबख्श मल्लाह के एक सील मछली के आकार का बच्चा हुआ। दाई ने उसे एक ओर फेंक दिया। रात को वह खिसक कर माता की बगल में आ गया। सवेरे उसको मार डाला—माता भी उसी समय मर गई।

—जेल में अपना ठीक इलाज न होने के कारण अपनी शारीरिक हानि की पूर्ति करने के लिये डाक्टर आलम ने भारतमंत्री पर २५ हज़ार रुपये का नोटिस दिया है।

—प्रिवी कौंसिल से फैसला होने तक एक मुसल्मान कैदी को फांसी की सज़ा न देने की आशा आई थी, किन्तु लाहौर में तार पहुंचने से पहले ही उसको फांसी दे दी गई।

—मुंशीगंज में एक आदमी प्रगट हुआ है जिस को कि पोस्टमार्टम होकर मृतक घोषित किया गया था और उस हत्या के विषय में मुकद्दमा भी चला कर कुछ मनुष्यों को लंबी सजाएं दी गई थीं।

—१८ वर्ष से कम आयु का जैन या अजैन लड़का साधु नहीं हो सकता, ऐसी आज्ञा अपने राज्य में बड़ौदा महाराज ने निकाली है। आज्ञा उल्लंघन करने पर १ वर्ष की जेल तथा ५००) रुपये जुर्माना होगा।

—जर्मनी ने एक ऐसा विमान तैयार किया है, जो आकाशमें भी उड़ सकता है और ज़मीन पर भी चल सकता है। यह ज़रा सी जगह में उतर सकता और मामूली-सी मोटर चलने वाली सड़क पर मोटर की तरह ही चल भी सकता है।

—डेढ़ लाख रूसी फौज मंचूरिया की सीमा पर आ गई है। तीन सौ हवाई जहाज़ भी वहां नियत किये गये हैं।

—देहली से लन्दन का टेलीफोन का सिलसिला जुड़ गया है; बातचीत होती है।

—सुना है नवीन वर्ष के प्रारम्भ में सर तेजबहादुर सप्रू को प्रिवीकौंसिल का जज बनाया जायगा।

—स्व० विट्ठल भाई पटेल एक लाख रुपया देश के लिये दान कर गये हैं जो कि विदेशों में भारतवर्ष के प्रचारार्थ खर्च होगा।

—कलकत्ता कारपोरेशन की प्रेरणा से एक बंगाली युवक ने एक मोटर बनाई है।

—बड़ौदा नरेश ने अपने राज्य में राज्य का सभी काम हिन्दी भाषा में चलाने की घोषणा करदी है। वकीलों का भी ३१ अक्तूबर १९३५ तक हिंदी का प्रमाण पत्र ले लेना होगा।

—फ्रांस के पास १६५०, रूस के पास १५००, अमेरिका के पास ११०० और अंग्रेज़ सरकार के पास ७५० हवाई जहाज़ हैं।

—बरार प्रान्त निज़ाम सरकारका होगा, किंतु उसका शासन अंग्रेज़ सरकार के हाथ में रहेगा।

—आस्ट्रिया के मुश्च नामक व्यक्ति ने सन् १९०० में अपनी पत्नी को पीठ पर बिठाकर मेला दिखाने के लिये ग्रेज़ से लेकर पेरिस तक सफ़र किया था और वह सफर ७२० मील लम्बा था।

—एक भारतीय व्यापारी ने एक लाख ३३ हज़ार रुपये का सोना इङ्गलेण्ड से खरीद कर भारत को भेजा है।

मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रकाशित किया।

तारीख १ जनवरी सन् १९३४ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क १२

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। } —ऑनरेरी सम्पादक— { पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

आवश्यक सूचना !

हमारा विचार सोनागिरि, देवगढ़, अयोध्या, बनारस, सिंहपुरी, चंद्रपुरी, चंपापुरी, पावापुरी, कुन्डलपुर, राजगृही, खंडगिरी, उदयगिरि, सम्मेदशिखर आदि तीर्थक्षेत्रों की वंदना के लिये स्थानीय सज्जनों के साथ माघ बदी द्वितीया को रवाना होने का है। तीर्थयात्रा का यह कार्यक्रम प्राय: दो मास का होगा। अतएव इन दिनों में जैनदर्शन का संपादनभार श्रीमान पं० राजेन्द्र कुमार जी न्यायतीर्थ अंबालाछावनी तथा श्रीमान पंडित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री बनारस पर रहेगा। अत: जैनदर्शन के लिये लेख, कविता आदि उक्त विद्वानों के पास भेजने चाहियें।

हमारे निजी पत्र "उदयचन्द्र अजितकुमार जैन चूड़ीसराय मुलतान सिटी" के पते पर भेजे जावें और जैनदर्शन सम्बन्धी पत्र व्यवहार "मैनेजर—जैनदर्शन अंबाला छावनी" के पते पर करना चाहिये।

स्याद्वाद अङ्क सम्बन्धी लेख "श्रीमान कविरत्न पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ—मणिहारोंका रास्ता जयपुर" के पते पर पहुंचने चाहियें। आपही उस विशेषांकका संपादन करेंगे।

—अजितकुमार जैन।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

"जैनदर्शन" की आवश्यक सूचनायें!

(१) "जैनदर्शन" का प्रकाशन हर महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हो जाता है।

(२) इस का वार्षिक मूल्य केवल ३॥) है, किन्तु संघ के मेम्बरों से वार्षिक मेम्बरी फ़ीस सहित ३) एवं संस्थाओं तथा विद्यालयों से केवल २) लिया जाता है। [इस वर्ष उपहारी पुस्तकों के पोस्टेज के लिये प्रत्येक से ≈) और अधिक लिया जा रहा है।]

(३) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय, मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २-२ प्रतियाँ "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद जैन विद्यालय भदैनी घाट बनारस" के पास और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/o 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहियें।

(४) इस पत्र में अश्लील व धर्म विरुद्ध विज्ञापन नहीं छापे जाते। इसी कारण विज्ञापन छपाने के रेट बहुत कम रखे गये हैं, जो निम्न प्रकार हैं। इनमें किसी प्रकार भी कमी करने के लिये लिखना व्यर्थ होगा। कुल रुपया पेशगी लिया जाता है; अतः कृपया विज्ञापन के साथही कुल रुपया भेजिये :—

	एक बार	३ मास (६ बार)	एक वर्ष (२४ बार)
१. साधारण पूरा पृष्ठ	४)	२०)	७२)
२. साधारण आधा पृष्ठ	२॥)	१२॥)	४५)
३. टाइटिल पूरा पृष्ठ (पृष्ठ २-३-४)	६)	३०)	१००)
४. टाइटिल आधा पृष्ठ	४)	२०)	६०)

नोट—मुख पृष्ठपर विज्ञापन छपाई केवल आधे ही पृष्ठकी ५) ली जातीहै। साधारण पृष्ठोंमें आधे पृष्ठ से कम जगह के विज्ञापनों पर ।) प्रति लाइन प्रति कालम के हिसाब से चार्ज किया जाता है।

सर्व प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :—

मैनेजर—"जैनदर्शन" C/o दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

हमारे नवयुवक !

[गताङ्क से आगे]

[७]

इस कारण उत्तम आदर्श सन्तान उत्पन्न करने के लिये ऋतुसमय ही विषय सेवन करना उचित है। कमसे कम मैथुन जहां संतान उत्पादन के लिये लाभकारक है, वहीं पती पत्नीके स्वास्थ्यके लिये भी बहुत हित कर है। देहली जाते हुए एक बार हमने एक वृद्ध सिक्ख को देखा जिसकी आयु उसके कहे अनुसार ९१ वर्ष की थी, उसकी पत्नी की आयु ८७ वर्ष की थी, किन्तु वे दोनों शरीर में अच्छे हृष्ट पुष्ट थे, वे १०-११ कोस चलकर रेलगाड़ी पर सवार हुए थे।

सिक्ख को पूछा कि सरदार जी! आपने ऐसे कौनसे पदार्थ खाए हैं जो इतनी आयु होनेपर भी आपका शरीर ऐसा बलवान है?

सिक्खने उत्तर दिया कि क्या मेरी बातपर विश्वास करोगे? हमने कहा क्यों नहीं?

सिक्खने कहा कि मैंने विवाहसे लेकर अबतक कुल १७ बार विषय सेवन किया है जिससे मेरे ५ पुत्र, एक पुत्री हुई है। बड़ा पुत्र ६४—६५ वर्षका है। खुराक मेरी घी, दूध, छाछ तथा दाल, रोटी रही है। खेती करना मेरा काम रहा है। अब तक भी मैं वही काम करता हूं। रेलगाड़ी में अब तक केवल ८—९ बार सवार हुआ हूं।

सिक्खकी बातें सुनने वालों में से कुछ एकको कुछ गप्प मालूम हुई, किन्तु सिक्खने शपथ खाकर अपनी बातोंको सत्य बतलाया।

उस अपढ़ सिक्खके जीवन से हमारे नवयुवकों को शिक्षा ग्रहण करना चाहिये कि गृहस्थ होजाने पर भी विषयवासना को संयत रखने से तथा सतत परिश्रम करनेसे कितना भारी लाभ है।

पवनंजय के एक बार के प्रसंग से ही अंजना सुंदरीने हनुमान सरीखे प्रख्यात वीर पुत्र को जन्म दिया था। आजकल स्त्री पुरुषों का स्वल्प जीवन इस बातकी साक्षी देता है कि लोगोंने ब्रह्मचर्य को एक दम छोड़ दिया है। ब्रह्मचारियों का जिस तरह शरीर बलवान रहता है उसी प्रकार उनका जीवन भी दीर्घ रहता है।

अतः स्वस्थ, सुखी, दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य का अभ्यासी बनना चाहिये।

ब्रह्मचर्यके लिये कुछ निम्नलिखित साधन बहुत उपयोगी हैं:—

१—पति पत्नी का अलग अलग बिस्तर पर सोना।

२—बुरे उपन्यास आदि न पढ़कर वीर सदाचारी पुरुषों के जीवनचरित्र पढ़ते रहना।

३—सोते समय किसी अच्छे विचारमें अपने मनको उलझा कर नींद करना।

४—बलवान बननेकी सदा भावना रखना।

५—तेल, तिल, गुड़की चीज़ें तथा लाल मिर्च, खटाई, गर्म मसाले के चटपटे भोजन नहीं करना।

६—लंगोट बांधकर रहना।

७—सिनेमा, नाच आदि देखने का त्याग।

इनके सिवाय ब्रह्मचर्य रक्षणके लिये जो नौ बाढ़ें बतलाई हैं उनका भी शक्तिभर पालन करना आवश्यक है।

यहांपर यह समझ लेना आवश्यकहै किब्रह्मचर्य पालनकी भावना पति पत्नी दोनोंके हृदय में होनी चाहिये। अपनी पत्नी को ब्रह्मचर्यके लाभ बताकर अधिक से अधिक यथाशक्ति ब्रह्मचर्यको अपने आचरण में लाने की शिक्षा देनी चाहिये। अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टान्हिका, दशलक्षण पर्व आदि पवित्र दिवसोंमें तो ब्रह्मचर्यसे रहनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा ले लेना जैन पुरुषके लिये उचित है।

एवं रोगी दशा में विषयसेवन करना मृत्यु को निमंत्रण देना है। जिस प्रकार थके मांदे भूखे घोड़े को सरपट दौड़ाना उसको मृत्यु मुख में भेजना है, उसी प्रकार निर्बल रोगी दशा में विषयसेवन द्वारा अपनी शक्ति और भी अधिक क्षीण करना मृत्यु के निकट दौड़ना है।

आजकल तपेदिक (राजयक्ष्मा) द्वारा जो बहुत से युवा स्त्री पुरुष असमय परलोकयात्रा कर जाते हैं, अन्य कारणों के अतिरिक्त, उसमें प्रधान कारण एक यह भी रहता है। जिस रुग्णदशा में उनको रोग द्वारा गई हुई शक्ति को प्राप्त करने के लिये आराम करना चाहिये उस समय वे आराम के बजाय कामवासना के शिकार होकर अपने रोग को स्थायी बना डालते हैं।

जिस प्रकार मनुष्य साधारण ज्वर की अवस्था में ब्रह्मचर्य का पालन न करके अपने शरीर में तपेदिक का अंकुर उगाता है ठीक उसी प्रकार पत्नी की साधारण रोगी दशा में मैथुनकर्म करने पर पत्नी का शरीर जीर्णज्वर का घर बन जाता है। यह रोग कितना भयंकर है, इसका बतलाना व्यर्थ है।

इस कारण साधारण बीमारी के समय भी स्त्री पुरुषों को पूर्णतया संयम से रहना चाहिये। उस समय की ज़रा सी भूल प्राणनाश का गहरा खड्डा तय्यार कर देती है जिसको कि भरना कठिन हो जाता है।

[क्रमशः]

आदर्श क्षुल्लक दीक्षा

श्रीमान पूज्य क्षुल्लक समन्तभद्र जी जो कि मगसिर सुदी ३ से पहले ब्रह्मचारी देवकुमार जी थे बा० अर्जुनलाल जी सेठी के उन पांच शिष्यों में से एक हैं जो कि वर्द्धमान शिक्षा समिति जयपुर के प्रधान फल माने जाते हैं। यद्यपि वे सभी एक ही गुरू के शिष्य एवं एक ही विद्यालय के विद्यार्थी थे किन्तु मान्यवर देवकुमार जी का जीवनउद्देश राजनीतिमय न होकर धार्मिक रंग से रंगा हुआ था। उस विद्यार्थी जीवनमें भी आप

को देवपूजन, सामायिक आदि करना बहुत प्रिय थे। इस कारण बा० अर्जुनलाल जी सेठी के विद्यालय में एक प्रकारसे आपका दृष्टिकोण सबसे भिन्न था।

आपने अपना नरजीवन सफल बनाने के लिये विद्यार्थी जीवन में ही आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। आपने जब बी० ए० पास किया तब आपने सातवीं प्रतिमा ग्रहण करके जैनसमाज में शिक्षाप्रचार कार्यक्रम अपने सामने रक्खा।

तदनुसार आपको कार्यक्षेत्र बरार प्रान्त प्राप्त हुआ। वहां पर श्रीमान सेठ प्रद्युम्न सा—चांगा सा, चंवरे परिवार, सेठ श्यामलाल दूला सा आदि महानुभावों ने आपके कार्यक्रमके लिये कारंजामें श्री **महावीर ब्रह्मचर्याश्रम** आजसे १५ वर्ष पहले स्थापित कर दिया। आपने उस कार्य को अपने हाथ में संभाला।

आपके अथक परिश्रमसे यह गुरुकुल दिगम्बर जैन समाजमें एक आदर्श संस्था बन गई है। इसका ध्रौव्यफंड डेढ़ लाख रुपया है। एक लाख रुपयेकी गुरुकुलकी इमारतहै। १३० विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। मैट्रिक तक अंग्रेजी और गोम्मटसार, राजवार्तिक पंचाध्यायी तक धार्मिक शिक्षण दिया जाताहै।

आपका स्वभाव बहुत सरल, शान्त एवं मृदु है। आप हित, मित, प्रियभाषी हैं। बाहरी दिखावा या महत्वाकांक्षा आपमें बिलकुल नहीं है। ब्यावर के मेलेमें रात्रिको सभाके समय जब कुछ अन्य संयमी महानुभाव सभामें तख्तपर आ बिराजते थे तब आप पीछे की ओर मेजके नीचे बैठकर सब कुछ सुना देखा करते थे। किसीको पता भी न लगता था कि आप कहां बैठे हैं।

आपने अभी मगसिर सुदी तृतीया को श्री आचार्य शान्तिसागर जी से क्षुल्लक दीक्षा ली है। आपका दीक्षित नाम 'समन्तभद्र' रक्खा गया है। आप दीक्षा लेकर आचार्य महाराज से आज्ञा पाकर पुनः गुरुकुलका कार्यभार संभालने कारंजा चले गये हैं। इस प्रकार आप एक विद्वान, आदर्श त्यागी हैं।

हमारा संयमी समुदाय

कुछ समय पहले जिस प्रकार धार्मिक विद्या का अभाव था केवल तत्वार्थ सूत्र के जानकारों को जैन सिद्धान्त का विद्वान माना जाता था उसी प्रकार त्यागी महानुभावों का भी प्रायः अभाव था, किन्तु सौभाग्य से इस समय वे दोनों अभाव दूर होगये हैं। तदनुसार अनेक अच्छे अच्छे विद्वान और मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी उदासीन समाजमें आज दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

जैन समाजका और जैनधर्मका प्रचार विद्वानों की अपेक्षा चारित्रभूषित त्यागियों द्वारा अच्छा हो सकता है क्योंकि स्वार्थत्याग होने के कारण उनके उपदेशका जो प्रभाव पड़ता है वह चारित्रशून्य विद्वान के उपदेशसे कदापि नहीं पड़ सकता। अतः दिगम्बर जैन समाजका जो दिनों दिन पतन होता जा रहा है उसका विशेष उत्तरदायित्व हमारे त्यागी समुदायके ऊपर है।

हमारे त्यागी महानुभाव यदि अपने कर्तव्य को समझते हुए कार्य करें तो समाज सुधार कोई कठिन कार्य नहीं, किन्तु हमारे अधिकांश संयमी महानुभाव जिस तरह संसारसे उदासीन हैं उसी प्रकार वे धार्मिक प्रचारसे भी पूर्णतया उदासीन हैं। वे या तो आत्मसाधन करते हैं अथवा केवल अपनी मान्यता प्राप्त करने के प्रयत्न में संलग्न रहते हैं।

अधिकतर त्यागी महानुभाव अपने आपको पूज्य गुरू मान बैठे हैं, अतः वे अपने ज्ञानको उन्नत बनाने में ध्यान ही नहीं देते। कतिपय अक्षरशून्य त्यागियोंको देखकर बहुत दुख होता है।

कुछ त्यागी महानुभाव ऐसे भी हैं जिन्होंने चारित्र तो बहुत ऊँचा ग्रहण कर लिया है किन्तु उनको जैनसिद्धान्त का साधारण ज्ञान भी नहीं है। बहुतसे ऐसे महानुभाव भी हैं जो अपने साधारण ज्ञानको चरम उन्नत ज्ञान समझ बैठे हैं, उससे अधिक अभ्यास करने का प्रयत्न ही नहीं करते।

इत्यादि—अनेक रूप हमारे त्यागी महानुभावों में ज्ञानाभ्यासकी कमी पाई जाती है। उनको यह खयाल ही नहीं होता कि जिस प्रकार चारित्रशून्य ज्ञान व्यर्थ है उसी प्रकार ज्ञानशून्य चारित्र भी तो कार्यकारी नहीं।

इस दशामें वे त्यागी महानुभाव स्व-पर कल्याण के लिये कुछ आदर्श कार्य कर सकें यह बात बहुत कठिन है। [अपूर्ण]

प्राप्त समालोचना

यशोधर—चंपकसेठ

श्रीमान् पं० राजमल जी लोढ़ा शास्त्री तथा श्रीमान् पं० विद्याकुमार जी सेठी न्यायतीर्थ ने हिन्दी जैन साहित्यका प्रसार करने के लिये अजमेरमें जैनधर्मप्रचारक मंडल स्थापित किया है। उसी के चौथे पाँचवें पुष्परूप चंपकसेठ तथा यशोधर नामक दो ट्रैक्ट प्रकाशित हुए हैं। बड़ी कथाओंको संक्षेप व सरल रूपमें मधुर भाषाके साथ रक्खा गया है। छपाई सफ़ाई काग़ज़ आदि ठीक है। मूल्य एक एक आना रक्खा है। उभय विद्वानोंका उद्योग प्रशंसनीय है।

हम दुखी क्यों हैं ?—मिथ्यात्वनिषेध

यह दो ट्रैक्ट जैनमित्र मंडल, देहली से प्रकाशित हुए हैं। प्रथम ट्रैक्टमें दुखी होनेके कारण तथा उनसे छुटकारे का उपाय लेखक महोदय ने बहुत अच्छी तरह बतलाया है। व्यर्थव्यय को रोकने वाले सज्जनोंको इस ट्रैक्टको वितरण करके अपना कार्य सरल बना लेना चाहिये। दूसरा ट्रैक्ट भी अपने विषयपर ठीक लिखा गया है, किन्तु विषय जिस सरलता के साथ साधारण मनुष्य के हृदय में उतार देना चाहिये वह खूबी इसमें कम पाई जातीहै। इन का मूल्य एक एक आना है। छपाई सफाई ठीकहै।

आर्यभ्रमोन्मूलन

विनोदरूप में श्रीमान पं० अजितकुमार जी शास्त्री ने आर्यसमाजियों की गप्पाष्टक नामक एक छोटा सा ट्रैक्ट लिखा था। उसका उत्तर देते हुए श्रीमान् स्वामी कर्मानन्दजी ने जैनभ्रमोन्मूलन नामक ट्रैक्ट प्रकाशित कराया। इस जैन भ्रमोन्मूलन के उत्तर स्वरूप पं० अजितकुमारजीने आर्यभ्रमोन्मूलन नामक ट्रैक्ट लिखा है जो कि श्रीमान् बा० कपूरचन्द्र जी जैन—स्वामी—महावीर प्रेस आगराने प्रकाशित कराया है। मूल्य एक आना है।

वेदमीमांसा

श्रीमान स्व० पं० पुत्तूलाल जी लिखित वेदमीमांसा की उर्दू लिपि में बहुत आवश्यकता थी, शास्त्रार्थसंघ ने इस आवश्यकताकी पूर्ति कर दी है। उर्दू जानकार आर्यसमाजी विद्वानोंमें इसका प्रचार करना चाहिये, मूल्य केवल दो आने है।

यह दोनों ट्रैक्ट पाठकों को "भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला छावनी" से मंगा कर अवश्य पढ़ना चाहिये। —कैलाशचन्द्र शास्त्री

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[१०]

शिलालेख का भावार्थ

"अन्तरङ्ग बहिरंग लक्ष्मी से सहित, धर्मतीर्थ के कर्त्ता, आत्मसिद्धि और अनन्तसुख को पाये हुए भगवान महावीर पूर्ण उत्कर्ष पा चुके हैं।"

"अतुल महिमा और पूज्यता को प्राप्त तथा तीर्थङ्कर नामक पुण्यातिशय एवं महान अर्हंतपद से विभूषित उन भगवान महावीर का केवलज्ञान लोक अलोक के समस्त चर अचर पदार्थों को प्रकाशित करता है।"

"भगवान महावीर स्वामी के पीछे यह नगरी धन धान्य सम्पन्न है। उसमें आज परवादियों पर शासन करने वाला, संसार का हितकर, सच्चा भगवान महावीर स्वामी का शासन (जैनधर्म) जयशील बना हुआ है।"

"सकल संसार का उदय करने वाले, अतिशय गुणविभूषित, जैन शासनरूपी सरोवर के बढ़ाने वाले, भव्यजनकमलों को विकसित करने वाले, हजारों स्वच्छगुण किरणों से प्रकाशमान भगवान महावीर स्वामी के मुक्त हो जाने पर परम ऋषि भगवान गौतम गणधर के साक्षात् शिष्य श्री लोहाचार्य, जम्बूस्वामी, विष्णुदेव, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रबाहु, विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिकार्य, जयसेन सिद्धार्थ, धृतषेण, बुद्धिल आदि गुरुपरम्परा से आई हुई महापुरुषों की सन्तान में उत्पन्न हुए अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता, निमित्तज्ञान से तीन काल की बात जानने वाले श्री भद्रबाहु स्वामी ने उज्जैन में निमित्त से बारह वर्ष का विषम दुष्काल जानकर समस्त मुनिसंघ से कहा और अपने मुनिसंघ सहित उत्तरदेश से दक्षिण देशको प्रस्थान किया। क्रम से जन, गाय, भैंस, बकरी, धन धान्य सहित सैकड़ों नगर, देश, गांवों में विहार करते हुए निमित्तज्ञान से अपना अल्पजीवन जानकर अनेक वृक्ष फल, फूल पत्तों से सुशोभित, नीले बादल सरीखे पाषाण वाले, सिंह, रीछ, सूअर, सर्प, हिरणादि वन्य जन्तुओं से भरे हुए, अनेक तरह की गुफाओं से सहित, ऊंचे उठे हुए शिखर वाले पृथ्वीतल के भूषणरूप इस कटवप्र पर्वत पर अपना शेष जीवन बिताने के लिये मुनिसंघ से पूछ कर तथा समस्त संघ को बिदा करके अपने एक प्रभाचन्द्र शिष्यके साथ सन्यास लेकर अपने शरीर को छोड़ गये। तथा अन्य भी ७०० साधुओं ने यहां समय समय पर आराधना आराधीं। जैनधर्म की जय हो।"

इस शिलालेख से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि उज्जैन के बारहवर्षी अकाल के प्रभाव से बचने के लिये अन्तिमश्रुतकेवली, अष्टाङ्ग निमित्त के ज्ञाता श्री भद्रबाहु स्वामी ने उत्तरदेश से दक्षिण की ओर विहार किया।

दूसरी बात यह कि प्रभाचन्द्र शिष्य के साथ वे उस कटवप्र (चन्द्रगिरि) पर्वत पर समाधिमरण के लिये ठहरे तथा वहाँ से स्वर्गयात्रा कर गये।

राजवलिकथा नामक कनड़ी भाषा के ऐतिहासिक ग्रंथ के लिखे अनुसार सम्राट चन्द्रगुप्त का ही दीक्षित नाम प्रभाचन्द्र था। अतः समाधिमरण के समय भद्रबाहु स्वामी के साथ चन्द्रगुप्त था, यह भी इस शिलालेख से सिद्ध होता है।

लेख में श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के पीछे होने वाले गणनीय आचार्यों का नाम उस ऋषि परम्परा का महत्व सूचित करने के लिये लिखा गया है। जैसे कि "नाभिराय, ऋषभदेव, भरत, बाहुबली, अर्ककीर्ति, सोमकीर्ति आदि। विख्यात महापुरुषोंकी सन्तान परम्परामें भगवान ऋषभदेव एक अतुल पराक्रमी हुए।

इस कारण इस शिलालेख से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि संघभेद की दिगम्बर कथा निराधार एवं अप्रामाणिक नहीं।

इस शिलालेख के सिवाय और भी अनेक शिलालेख हैं जो कि श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी तथा चन्द्रगुप्त का कटवप्र पर्वत पर तपस्या करने का समर्थन करते हैं। हम यहां पर उनका सारभाग पाठक महानुभावों के समक्ष रखते हैं—

२. कनड़ी भाषा का शिलालेख

श्री भद्रबाहु सचन्द्रगुप्त मुनीन्द्र युग्मादी नोप्पोवल भद्रभाग इदाधर्म अन्दुवलि केवन्द इनिपलकुलो········विद्रुमधरे शान्तिसेन मुनीशनाक्कि एचेलगो·········राआद्रि मेल अशनादि विट्ट्रपुनर्भवकिर······गी।

अर्थ—शान्तिसेन की पत्नी यह कहती हुई पर्वत पर चली गई कि भद्रबाहु स्वामी तथा मुनिराज चन्द्रगुप्त के अनुकूल चलना ही परम धर्म है। वह भोजनादि छोड़कर परिसहों को सहकर शरीर छोड़ गई।

३. शिलालेख

वर्ण्यः कथन्नु महिमा भण भद्रबाहोः
मोहोरुमल्लमदमर्दन वृत्तबाहोः।
यच्छिष्यताप्तसुकृतेन च चन्द्रगुप्तः
शुश्रूष्यते स्म सुचिरं वनदेवताभिः ॥४॥

अर्थ—बतलाओ मोहरूपी महामल्ल के मद का मर्दन करने वाले भद्रबाहु स्वामी की महिमा किस प्रकार कही जाय जिनके शिष्यत्व रूप पुण्य के कारण चन्द्रगुप्त की वन देवताओं ने सेवा की।

४. शिलालेख

श्री भद्रस्सर्वतो योहि भद्रबाहुरिति श्रुतः।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरमः परमो मुनिः ॥ ४ ॥
चन्द्रप्रकाशोज्ज्वलसान्द्रकीर्तिः
श्रीचन्द्रगुप्तोऽनि तस्य शिष्यः।
यस्य प्रभावाद्वनदेवताभि—
राराधितः स्वस्य गणो मुनीनाम् ॥५॥

भावार्थ—सर्व प्रकार भद्र (कल्याणरूप) तथा श्रुतकेवलियों में सबसे अन्तिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी हुए।

चांदनी समान उज्वल कीर्ति धारक उनके चन्द्रगुप्त नामक शिष्य हुए जिनके प्रभाव से वनदेवताओं ने मुनिसंघों की सेवा की।

इस शिलालेख से दोनों बातें सिद्ध होती हैं कि कटवप्रपर्वत पर समाधिमरण करने वाले भद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवली प्रथम भद्रबाहु ही थे तथा सम्राट् चन्द्रगुप्त उन्हीं के शिष्य थे। यह चन्द्रगुप्त यदि कोई साधारण मुनि होते तब या तो उसका

नामोल्लेख ही न होता क्योंकि आचार्यों को समाधिमरण कराते समय परिचर्या में रहने वाले साधुओंका अन्यत्र भी कहीं नामोल्लेख नहीं पाया जाता तथा चन्द्रगुप्त मुनीने अपनी साधुदशा में कोई ऐसा उल्लेखनीय कार्य भी नहीं किया, न वह कोई बहुत भारी विद्वान ही थे जो कि उनका यश चन्द्रमाके समान बतलाया जाता। अतः सिद्ध होता है कि भूतपूर्व प्रभावशाली, विख्यात सम्राट् होने के कारण ही उसका शिलालेख में गुणगान किया गया है।

भारत वर्ष के सम्राट पद पर विराजमान रहते हुए वे चन्द्रगुप्त नामसे विश्वविख्यात थे। साधुदीक्षा लेने पर यद्यपि उनका नाम बदलकर प्रभाचन्द्र हो गया था किन्तु फिर भी नामोल्लेख करने वाले मनुष्य उनका उसी पूर्वप्रसिद्ध 'चन्द्रगुप्त' नामसे उल्लेख करते थे। अतः यह शंका व्यर्थ है कि प्रथम शिलालेखमें उनका नाम प्रभाचन्द्र और अन्य शिलालेखों में उनका नाम चन्द्रगुप्त क्यों लिखा गया।

[क्रमशः]

जैनराजा कुमारपाल व विक्रमसिंह !

[लेखक—सरदार भँवरलाल, यदुवंशी भाटी, इन्द्राश्रम—रतलाम]

कुछ वर्ष पूर्व मैंने एप्रीग्राफिया इंडिका पहिला भाग देखा था। उसमें जैनधर्मका बहुतसा ऐतिहासिक विवरण छपा है। मथुराके विवरणमें दिगम्बर जैन मूर्तियोंके व नक्कासियोंका चित्र भी है, गोमट्ट स्वामी की प्रसिद्ध मूर्तिका चित्र भी यथा स्थान है, शिलालेखों के तो सबके फोटो दिये गये हैं। इसी पुस्तकमेंसे मैंने निम्नलिखित परिचय नोट किया है:-

Chitorgarh Inscription of Chalukya Kumarpal—P. 424

२८ श्री जयकीर्ति शिष्येण दिगँव (ब) र गणेशिना प्रशस्तिरी दृशीचक्रे श्रीरामकीर्तिना संवत् १२०७ सूत्रधा।

जब कि राजा कुमारपाल को श्वेताम्बर आम्नायी प्रगट किया जाता है तब उसीके, चित्तौरगढ़ में स्थापित, प्रसिद्ध शिलालेख में स्पष्ट शब्दों में दिगम्बराम्नाय व उसके भट्टारकों के नाम अङ्कित हैं; इसका क्या कारण ?

P 232—240

Dubkund Stone Inscription of the Kachhapghata Vikramsimh The (Vikram) year 1145 By Prof. F. Kielhorn Ph D. C I. E.

इस विक्रमसिंहके विषयमें बहुत जिक्र किया गया है। यह परम जैनी था। इसके बनाये जैन मंदिर की प्रशस्ति ६१ लाइनकी बड़ी है। आदि में "ओं वीतरागस्य" लिखा है।

अतएव हमारे विद्वानोंको चाहिये कि वे इन शिलालेखों को अवश्य देखें। सम्भव है कि सम्पूर्ण शिलालेख पढ़ने से विशेष भेद प्रगट हो। मैं इस कारण लाचार हूँ कि संस्कृत अंग्रेजी नहीं जानता। मात्र रोमनसे मतलब निकाल लेता हूँ। पुस्तक बहुत बड़े आकार में अंग्रेजीमें छपी है। पूरा नाम पता इस प्रकार है—

Epigraphia Indica Volume I
Edited by Jas Burgess L L. D, C I. E
1892
Thacker & Co Ld Bombay [Price Rs. 16]

[सम्पादकीय अभिमत—राजाकुमारपाल के विषय में उपर्युक्त लेखसे एक नवीन बातका पता चलता है। श्रीमान बा० कामताप्रसाद जी तथा श्रीमान प्रोफेसर ए० एन० उपाध्ये जी को एप्रीग्राफिया इन्डिका तथा कुमारपाल के इतिहास का अध्ययन करके इस पर प्रकाश डालना चाहिये।]

रचना चातुर्य और जैनियों की अलौकिक रचनायें !

[लेखक—श्री० "आनन्द" उपाध्याय, जयपुर]

[गतांक से आगे]

पद्य-रचना पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है किन्तु हम यहाँ संक्षेपतः कविता निर्माण में आवश्यक साधनों का विवेचन करेंगे।

जिस वाक्य में वर्ण या मात्रा के अनुसार ठहरने का नियम हो वह पद्य रचना कही जाती है। यह कलायें पूर्वानुभव से मनुष्य हृदय में रहती हैं। पद्य-रचना का बनाने वाला कवि कहा जाता है। कवि का जीवन निराला है वह अपने समय का आदर्श होता है। बाहरी दुनिया की तरह उसके हृदय में ही कल्पना सृष्टि का निर्माण होता है—कवि होना बड़ा दुर्लभ है।

कविता बनाने वाले को सबसे पहिले भावुक होना चाहिये। जितनी जिस व्यक्ति में अधिक भावुकता होगी उतना ही वह कविता निर्माण में सिद्धहस्त उतरेगा। स्वगत विचारों को गम्भीर बनाने के लिये कल्पना-शील भी होना आवश्यक है। कविता का जीवन ही कल्पना है। इसके लिये कविको प्रकृति निरीक्षण, वनविहार, आदि साधनों में अधिक तत्पर होना और प्रत्येक भाव को भाव प्रदर्शन के साथ समझना चाहिये। काव्य ग्रन्थों को पढ़ लेने मात्र से कोई कवि नहीं हो सकता। कविता मनुष्य हृदय का एक संस्कार है। यद्यपि संसार में गाना और रोना सब जानते हैं तथापि सिद्धहस्त, यशस्वी कवि होना भी एक मुख्य संस्कार है।

सबसे पहिले जो कविता-निर्माण करना चाहता है उसके लिये आवश्यक है कि हृद्गत भावों को एकत्र करके किसी कविता के अनुसार शाब्दिक योजना करे। इसका यह अर्थ है कि जिस जाति के छन्द में अपनी अधिक रुचि हो उसके वर्ण या मात्राओं को गिनकर शब्दों को रक्खे। कविता सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन भी करे। शब्द-ध्वनि के साथ भाव प्रदर्शन करते हुए कविता को पढ़े। सबसे पहिले बनाई हुई कविता उत्तम न होगी—इससे बनाने वाले को हताश न होना चाहिये और प्रतिदिन भाव व्यक्ति के समय एक कविता बनाने का अभ्यास करना चाहिये। धीरे धीरे कुछ ही समय में उसकी रचनायें अच्छी बनने लगेंगी और वह अच्छा कवि भी भविष्य में हो सकेगा।

कविता में भाव-प्रधानता होनी चाहिये, इसके बिना वह हृदय-ग्राहक नहीं बन सकती। आधुनिक हिन्दी पत्रों में कभी २ ऐसी कवितायें पढ़ी जाती हैं जिनमें यह पता नहीं लगता कि भाव किधर रक्खा हुआ है। समझ में नहीं आता संपादक लोग ऐसी रचनाओं को किस तरह हिन्दी संसार में प्रकाशित कर देते हैं!

आजकल हम लोग यद्यपि सिद्धहस्त कवि नहीं बन सकते, तो भी हमें इतना अभ्यास जरूर होना चाहिये कि जिससे शब्द योजना द्वारा हम अपने

भावों को कविता के रूप में रख सकें। महान कवि होना बच्चों का खेल नहीं है।

छन्द शास्त्र के सिद्धान्तानुसार छन्द भी अनंत हो सकते हैं किन्तु मुख्यतः छन्द दो प्रकार के माने गये हैं—वर्णिक, मात्रिक। जिस छन्द के चरण में अक्षरों की संख्या एवं उनकी लघुता गुरुता का विचार होता है वह वर्णिक छन्द कहा जाता है जैसे वंशस्थ, उपेन्द्र वज्रा, मालिनी आदि। जिस छन्द में मात्राओं की गणना का विचार होता है वह मात्रिक छन्द कहा जाता है जैसे रूपमाला, रोला, चौपाई, दोहा आदि।

आजकल समय के परिवर्तन से कविता का क्षेत्र बदल गया है नायक और नायिकाओं के नख-शिख वर्णनों द्वारा संसार में श्रृङ्गार फैलाने की आवश्यक्ता नहीं, आवश्यकता इस बात की है कि अपने सद्विचारों को कविता में गूंथ कर नवयुवकों में जीवन लाया जाय। संसार में क्रांति-क्षेत्र को बढ़ाया जाय। कवि लोग समाजका पोषण भी कर सकते हैं और शोषण भी। उनका जीवन ही संसार में विचित्र जीवन है।

कविता के क्षेत्र में आने वाले सज्जनों को अभ्यास और अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता है, जितना हो सके अभ्यास और अध्ययन करना चाहिये। इनके बिना हम अच्छे कवि और लेखक नहीं बन सकते।

कालेजों में अब हिन्दी साहित्यका कोर्स विशेष रूप से बढ़ाया जा रहा है। जैनसमाज के विद्यालयों के कार्यकर्त्ताओं को अब इधर झुकना चाहिये और अपने पठन क्रम में हिन्दी-साहित्यको सम्मान के साथ बढ़ाना चाहिये—प्रत्येक वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद की परीक्षायें दिलानी चाहियें। इससे जो आपके विद्यार्थी निकलेंगे वे हिन्दी साहित्य से परिपूर्ण होंगे और साथ ही संस्कृत-साहित्य के भी उन्नायक बन सकेंगे।

जैनियों की अलौकिक रचनाएँ।

जैनाचार्यों की अमूल्य रचनाएँ आज शास्त्र भंडारों में पड़ी २ अपना कालयापन कर रही हैं। जैन समाज अपने धनका सदुपयोग करना ही नहीं जानता—वह व्यर्थ-व्ययोंमें अपनी संपत्ति को लुटा रहा है। सैकड़ों शास्त्र भंडारों में आज उन परोपकारी मुमुक्षु आचार्योंका परिश्रम छुप रहाहै उसको प्रकाश में लाना संसार का महान उपकार करना है। अच्छा हो, यदि भारतवर्ष में जैनियों का एक साहित्य भवन निर्माण कराया जाय। जो विशाल एवं व्यापक हो। साहित्यकी सेवा करनेवाले विद्वान लोग इसमें काम करें। जैन साहित्य के सम्पूर्ण ग्रंथ यहां उपलब्ध हों और उनका संशोधन भी जैनसमाज के प्रकांड एवं अनुभवी विद्वान ही करें।

जैन साहित्य की रचनाएँ अलौकिक हैं, वे असाधारण प्रतिभा द्वारा लिखी गई हैं। भविष्य में जैन साहित्य की अभ्युन्नति के लिये विद्वानों को आगे आना चाहिये। यदि संसार में जैन धर्मानुयायियों को अच्छी संख्या में देखना है तो सदैव साहित्य को बढ़ाना चाहिये। जैन विद्वानों को अब सभल जाना होगा। अपने सद् व्याख्यानों द्वारा समाजमें जागृति फैलाकर अन्ध विश्वास को हटाना होगा। घर २ में आचार्यों की रचनाओं के प्रति गौरव एवं साहित्य के अभ्युदय के लिए सदैव प्रयत्नशील बनना होगा। इत्यलम्

रिपोर्ट धर्म्मोपदेशकीय भ्रमण

ब्रह्मचारी कुंवर दिग्विजयसिंह, प्रतिष्ठित धर्मोपदेशक और प्रचारक "संघ"

देहरादून (यू० पी०)—में तारीख १९ और २० ऑक्टूबर को श्री महावीर जैन पाठशाला का वार्षिकोत्सव व नवीन भवन निर्माणका शिलान्यास महोत्सव था। उसमें वहांके भाइयों की प्रेरणासे आप संघ द्वारा भेजे गये। १९ की सभाके आप सभापति बनाये गये और उसमें शिक्षा सम्बंधी आपका भाषण हुआ। २० की आम सभामें आपने "विद्यार्थियों के कर्तव्य" बतलाये। २१ से २३ तक तीन दिन आपने मन्दिर जी की आम सभा में "जैन धर्मकी कुछ विशेषताएं" समझाईं। जैन-अजैन जनता में व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव पड़ा। सब लोग प्रसन्न रहे। कई अजैन भाइयोंने शङ्का समाधान भी किया।

अम्बाला छावनी—में आप २६ अक्टोबर से १ नवम्बर तक एक सप्ताह ठहरे और कुछ कार्य्यालयका काम किया।

कोलारस—राज्य ग्वालियर में ५ नवम्बर को विमानोत्सव था। उसमें निमन्त्रित होकर आप ३ नवम्बर को संध्याको कोलारस पहुँचे। उस रात्रिको आपने मंदिरजी में शास्त्र पढ़ा। ४ नवम्बरकी रात्रिको आपका मन्दिर जी में आम व्याख्यान हुआ। राज्य के तहसीलदार और मुन्सिफ़ आदि अहलकार भी सभामें पधारे थे। ५ नवम्बर को दिन में और रात्रि में भी आपने विमानोत्सव में आम व्याख्यान दिये। वे बड़े पसन्द आये। ६ नवम्बर को आपने मंदिरजी में पुनः व्याख्यान दिया जहाँ अनेक अजैन सज्जन भी उपस्थित थे। ६ नवम्बर को कोलारस के तहसीलदार साहबने अपने स्थान पर आपको सादर बुलाया और सन्ध्या समय दो घण्टे तक अपनी अनेक शङ्काओं का समाधान किया। ७ नवम्बर को कोलारस से शिवपुरी के मार्ग में कोलारस के एक अजैन वकीलने कई घण्टे अपनी शङ्काओंका समाधान पाया।

शिवपुरी (सीपरी) सिटी—राज्य गवालियर के पञ्चोंके आग्रह से आप शिवपुरी तीन दिन ठहरे। ७ व ९ को आपने मन्दिरजी में दो सभाएं कीं। अनेक जैन भाइयों ने अपनी शङ्काओं का समाधान किया। ८ नवम्बर को बाज़ार में आपकी आम सभा हुई। जैन धर्म के "आदर्श वैराग्य" की पुष्टी की गई।

लश्कर—राज्य गवालियर में तेरापंथी मन्दिर जी का वार्षिक रथयात्रा व मण्डल विधान महोत्सव था। आप अकस्मात वहाँ जाकर सम्मिलित हुए। ११ नवम्बर की रात्रि को धर्मशाला के मण्डप में आपका आम व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के पश्चात् एक आर्यसमाजी भाई ने मोक्ष सम्बन्धी अपनी शङ्काका समाधान पाया। १२ नवम्बर की रात्रि को माधवगञ्ज के चौराहे पर आपका

प्रभावशाली आम व्याख्यान हुआ। जिसमें अनेक अजैनों पर बड़ा अच्छा असर पड़ा और वे प्रायः प्रति दिन आपसे अपनी शङ्काओं के समाधानार्थ आपके ठहरने के स्थान व जयाजी पब्लिक पार्क में आने लगे और दो दो तीन तीन घण्टे तक अपनी शङ्काओं का समाधान करते थे। दर्शकों की बड़ी भीड़ सुनने को एकत्रित होती थी। नवम्बर १३ से २५ तक प्रायः प्रति दिन सर्राफ़ा बाज़ार व माधव गञ्जके मन्दिर जी में जाकर आप तत्त्वचर्चा करते थे और माधव गञ्जकी जैन पाठशाला के विद्यार्थियों को पढ़ाते व शिक्षा देते थे। लश्कर में आपके कारण अच्छी जागृति हुई।

शिवपुर कलाँ—राज्य ग्वालियर में २७ नवम्बर से ४ दिसम्बर तक श्री दिगम्बर जैन तेरापन्थी मन्दिर जी की ओर से रथयात्रा व मण्डल विधान महोत्सव था वहाँ के पञ्चोंने लश्कर में आपसे वहां पधारनेका विशेष आग्रह किया। तदनुसार आप २६ नवम्बर को शिवपुर पधारे और उस रात्रि को मन्दिर जी में व्याख्यान दिया। २७ नवम्बर से ४ दिसम्बर तक आठ दिन रात्रि को सात से नौ तक दो दो घण्टे आपने जैनधर्म की सिद्धि व श्रेष्ठतामें सभामण्डप में धारावाहिक-व्याख्यानमाला दी। एकत्रित जैन भाइयोंके सिवाय अजैन बन्धु भी बड़ी संख्या में (शहर से स्थान दूर होने पर भी) पधारते थे। राज्य के प्रतिष्ठित कर्मचारी सूबा साहब, तहसीलदार, अफ़सर अह्लकार आदि भी पधारते थे और व्याख्यानसे मुग्ध होकर लाभ लेते थे। वहीं सभामण्डप में एक दिन विद्यार्थी सम्मेलन और एक दिन महिला परिषद् हुई थी। उसमें आपने विद्यार्थियों और स्त्रियों को एक एक घण्टे योग्य उपदेश दिया था। ५ दिसम्बरको शहरमें सूबाइनके निकट आपका आम व्याख्यान हुआ। इस दिन शहरकी जनता अच्छी संख्या में पधारी थी। राज्यके सर्व प्रतिष्ठित कर्मचारी सूबा साहब आदि पधारे थे। उपदेश को सुनकर सबको बड़ा लाभ व हर्ष हुआ। सूबा साहब आदिने आपकी बड़ी प्रशन्सा की। शिवपुर में आपके उपदेशका बड़ा अच्छा क्रम रहा। तेरापंथी पञ्चोंने संघको इकत्तर रुपये सहायता में दिये। "जैन दर्शन" के ग्राहक बने।

खण्ढ़ार—राज्य जयपुरके भाइयों की प्रेरणा से आप बैलगाड़ी द्वारा उन्हींके साथ खण्ढ़ार पधारे और वहाँ दिसम्बर ७ से १३ तक सात दिन रात्रि को सात से नौ तक दो दो घण्टे आपके व्याख्यान प्रति दिन हुए। अजैन भाई भी सभामें पधार कर लाभ लेते थे। खण्ढ़ार वाले भाइयोंने पन्द्रह रुपये संघको सहायतार्थ दिये। पत्र के ग्राहक बने।

खण्ढ़ार में पहाड़ीपर एक प्राचीन बड़ा किला है। उसमें प्राचीन दिगम्बर जैन मूर्तियां व शिला लेख हैं। भाइयों को दर्शनार्थ जाना चाहिए। यह स्थान शिवपुर कलाँ व सवायी माधवपुर से बारह बारह कोसकी दूरी पर है। पक्की सड़कें बनी हुई हैं। बैलगाड़ी व ताङ्गे जाते हैं।

सवायी माधवपुर—राज्य जयपुर में आप १४ दिसम्बर के सन्ध्या समय पधारे। वहां के तेरहपन्थी मन्दिरजी में प्रति दिन आपके व्याख्यान हो रहे हैं।

निवेदकः—
मंत्री उपदेशक विभाग,
भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ।

[१२]

युक्तियों में युक्त्याभास की कल्पना।

केवली में ज्ञान और दर्शन के क्रमवर्तित्व का वर्णन करते हुए दरबारीलाल जी ने एक बात और लिखी है और वह केवलज्ञान की उपयोगात्मक अवस्था के सम्बन्ध में है। इससे आपका यह मन्तव्य है कि एक समय केवलज्ञान में एक ही वस्तु का प्रतिभास हो सकता है। केवलज्ञान में एक ही समय में यदि दो वस्तुओं का प्रतिभास माना जायगा या होगा तो वह उनकी समानता का ही होगा न कि विशेषता का; जैसा कि आपके निम्नलिखित शब्दों से प्रगट है—

"एक समय में सब पदार्थों का सामान्य प्रतिभास तो किसी तरह उचित कहा जा सकता है किन्तु सब पदार्थों का विशेष प्रतिभास उचित नहीं कहा जा सकता। सब पदार्थ हैं इस प्रकार का प्रतिभास एक साथ हो सकता है किन्तु अगर आप सब पदार्थों की विशेषता को एक साथ जानना चाहें तो यह असंभव है। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट होगी। एक मनुष्य एक समय में एक फल को देखता है; अब यदि वह एक साथ दो फलों को देखेगा तो दोनों फलों की विशेषतायें उसके विषय के बाहर हो जायँगी और उन दोनों फलों में जो समानतत्व है सिर्फ वही उसका विषय रह जायगा। इसी प्रकार ज्यों २ उपयोग का क्षेत्र विशाल होता जायगा त्यों २ विशेषता के अंश विषय से बाहर होते जायंगे।"

इससे दरबारीलाल जी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि केवलज्ञान एक साथ लोकत्रय और कालत्रय के सम्पूर्ण पदार्थों का प्रकाश नहीं कर सकता। अब विचारणीय यह है कि क्या दरबारीलाल जी का उक्त वक्तव्य युक्तियुक्त है?

जहाँ कि दरबारीलाल जी ने अपने भाव को स्पष्ट करने के लिये उक्त वक्तव्य उपस्थित किया है वहाँ इसको आगम की मान्यता का रूप देने के लिये पण्णवणसूत्र का वह उद्धरण भी लिखा है जिसको कि आप केवली में दर्शन और ज्ञान के क्रमवर्त्तित्व के समर्थन में पहिले लिख चुके हैं।

एकत्व के साथ अनेकत्व का अविनाभावी सम्बन्ध है। इसही को यदि सीधे शब्दों में कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि जहां जहां एकत्व है वहाँ २ अनेकत्व भी। इसही प्रकार समानता और असमानता का भी। घट पदार्थ ही है— यदि यह घट अवयवी की दृष्टि से एक या समान है तो अवयवों की दृष्टि से अनेक या असमान। यही बात पट आदि अन्य पदार्थों के

सम्बन्ध में है। जिस प्रकार कि घट पदार्थ ज्ञेय है उसही प्रकार उसके मुख, पेट आदि अवयव भी। जिस समय हम घट को जानते हैं उसही समय उनका भी ज्ञान होता ही है। जिस प्रकार घट ज्ञान में घट में रहने वाली समानता या एकता का बोध होता है उसही प्रकार उसके अवयवों में रहने वाली असमानता या अनेकता का भी। कौन कह सकता है कि घट ज्ञान में उसके पेट की विशालता एवं उसके मुख की लघुता नहीं झलकती। यही बात अन्य पदार्थों के सम्बन्ध में है। इससे प्रगट है कि जिस प्रकार एक उपयोग में एक ज्ञेय प्रतिभासित होता है उसही प्रकार अनेक भी या जिस प्रकार कि उसमें उनकी समानता झलकती है उस ही प्रकार विशेषतायें भी। यही व्यवस्था भिन्न २ अनेक अनुभवियों के सम्बन्ध में है। जिस प्रकार घट अवयवी की दृष्टि से समान है और अवयवोंकी दृष्टि से असमान, उस ही प्रकार भिन्न २ अवयवी भी समानधर्म से समान और असमान धर्मों से असमान। जिस प्रकार घट के प्रतिभास में उसके सामान्य और विशेषधर्मों का प्रतिभास होता है उसही प्रकार उन भिन्न २ अवयवियों के प्रतिभास में उनके सामान्य और विशेषधर्मों का भी। स्पष्टता के लिये इसको यों समझियेगा कि दर्पण है और उसमें एक घट प्रतिबिम्बित होता है। ऐसी अवस्थामें उसमें जहां घटके सामान्य धर्म प्रतिबिंबित होरहे हैं उसही प्रकार विशेष भी। इसही दर्पणमें यदि एक घटके स्थान पर दो, तीन, चार और पांच आदि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं तब भी यही व्यवस्था मिलती है। इसको यदि और भी स्पष्ट करना चाहें तो फ़ोटूग्राफ़ के केमरे के दृष्टान्त से कर सकते हैं। फोटूग्राफ के कैमरे में यदि एक २ करके पांच या इससे अधिक व्यक्तियों के चित्र खींचे जाते हैं तो इनकी जो आकृतियां दीखती हैं वे ही आकृतियां तब भी दीखती हैं जबकि इनका समुदायरूप से एक चित्र खींचा जाता है। यही बात आंख की पुतली के सम्बन्ध में है। अर्थात् आँख की पुतली में भी यदि एक २ करके पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं तब भी उनके वे ही आकार झलकते हैं और जब एक साथ अनेक झलकते हैं तब भी वे ही! फ़ोटूग्राफ का केमरा या आंख की पुतली इनमें तो केवल शब्द भेद ही है कार्य तो इनके एक ही जैसे हैं! दर्पण और फ़ोटूग्राफ का केमरा आदि में अनेक पदार्थ एक साथ प्रतिबिम्बित भी हो जाते हैं और उनके आकार भी वैसे ही झलकते हैं जैसेकि उनकी भिन्न २ अवस्था में! जो व्यक्ति इसको और भी स्पष्ट जानना चाहें वे दो या तीन मनुष्यों को एक २ दर्पण में जुदी २ अवस्था में प्रतिबिम्बित करके या फोटूग्राफ के केमरे द्वारा चित्र उतरवा कर और फिर एक साथ प्रतिबिम्बित होकर या केमरे द्वारा चित्र उतरवा कर जान सक्ते हैं।

नेत्र रूप भावेन्द्रिय उसही का उसही ढंग से प्रकाश करती है जैसा कि पुतली में प्रतिबिम्बित हुआ है। इससे प्रगट है कि एकही उपयोग में अनेक पदार्थ प्रकाशित भी हो जाते हैं और उनका प्रतिभास भी उसही रूप से होता है जैसा कि उनकी भिन्न भिन्न अवस्था में।

दरबारीलाल जी का फल का दृष्टान्त भी इस ही आशय का समर्थन करता है। एक मनुष्य एक समय में एक फल को देखता है और दूसरे समय में दूसरे फल को। यही मनुष्य यदि एक ही समय

में इन दोनों फलों को देखेगा तो ये दोनों फल उसके ज्ञान में उसही प्रकार प्रतिभासित होंगे जैसेकि ये भिन्न २ ज्ञानों में हुये थे। कोई भी पाठक किन्हीं दो फलों को अलग २ और एक साथ दर्पण में प्रतिबिम्बित करके या इसही ढंग से इनके चित्र खिंचवा कर इस बात का परीक्षण कर सकते हैं। फोटूग्राफ के केमरे में भी पदार्थ प्रकाश को फेंकता है जिसके द्वारा कि उसमें उन २ पदार्थों के चित्र आजाया करते हैं तथा यही बात आंख की पुतली के सम्बन्धमें है। नेत्ररूप भावेन्द्रिय उसही का प्रकाश करती है जिसका चित्र कि पुतलीपर आजाता है। अतः यह स्पष्ट है कि नेत्र रूप भावेन्द्रिय उसही पदार्थ का उसही ढंग से प्रकाश करती है जिसका जिस ढंग से चित्र पुतलीपर आ जाता है। केमरे की पलेट की तरह पुतली पर उसही ढंग का पदार्थ का चित्र आता है जिस प्रकार का कि पदार्थ है। भिन्न २ अवस्था में पदार्थ जिस स्वरूप है सम्मिलित अवस्था में भी उसी ही रूप। भिन्न २ अवस्था में दो फलों में जो गुण हैं संयुक अवस्था में भी वे ही रहते हैं। अतः इससे यह भी प्रगट है कि भिन्न २ पदार्थों का भिन्न २ उपयोगों द्वारा जैसा प्रतिभास होता है वैसा ही एक उपयोग द्वारा भी! इसही को यदि दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि जो पदार्थ अनेक उपयोगों के ज्ञेय हैं उनही को एक उपयोग भी प्रतिभास कर देता है और फिर भी उनके प्रतिभास में रंचमात्र भी अन्तर नहीं आता। अतः प्रगट है कि दरबारीलाल जी का दो फलों का दृष्टान्त बजाय इस बात के कि वह भिन्न २ अवस्था के ज्ञान की अपेक्षा सहज्ञान में उनके विशेष प्रतिभास के अभाव और सामान्य प्रतिभास के अस्तित्व को सिद्ध करता यह तो यह सिद्ध करता है कि इनका जिस प्रकार का स्वरूप इनके भिन्न २ ज्ञानों में झलकता है वैसाही इनके सम्मिलित ज्ञान में भी। इससे यह भी दरबारीलाल जी के लिये हानिकारक ही ठहरता है। यही बात दरबारीलाल जी के उन प्रमाणों की है जो कि उन्होंने इसके हेतु उपस्थित किये हैं। पहिला प्रमाण पण्णवण सूत्र का है। जहां तक पण्णवण सूत्र का केवली के ज्ञान और दर्शन के क्रमवर्तित्व से सम्बंध है वहां तक तो हम इसकी प्राचीनता एवं युक्तियुक्तता की आलोचना अपने पूर्व लेख में कर चुके हैं! हम अपने पूर्व लेख में यह भी सिद्ध कर चुके हैं कि क्षायिक ज्ञान लब्धि के अनुसार ही उपयोगात्मक होता है, अतः इस सूत्र का यह वक्तव्य भी कि 'केवली एक समय में रत्नप्रभा को जानते हैं और फिर इससे भिन्न किसी समय में शर्कराप्रभा आदि को' युक्ति-विरुद्ध है। यदि थोड़ी देर के लिये एक समय में केवली के एक या अनेक पृथिवियों के ज्ञान के प्रश्न को छोड़ भी दिया जाय और अभ्युपगम सिद्धान्त से यही मान लिया जाय कि केवली एक समय में एक ही पृथ्वी को जानते हैं तब भी तो यह उल्लेख दरबारीलाल जी की मान्यताका खण्डन ही करता है। जहां कि रत्नप्रभा पृथ्वी संख्या की दृष्टि से एक है वहीं उसमें अनेक भेदोपभेद भी मौजूद हैं। जिस प्रकार केवली इसको एक संख्या को जानते हैं वैसे ही उसके भेदोपभेदको भी। जिस प्रकार कि एकता एकता ही रहती है उसही प्रकार भेदोपभेद भी भेदोपभेद। इससे प्रगट है कि केवली के एक ही ज्ञान में अनेक भेदोपभेद प्रतिभासित होते हुए भी अपने अपने रूप को नहीं छोड़ते और

निज २ रूप से ही प्रतिभासित होते हैं। दरबारीलाल जी का मन्तव्य ठीक इससे उल्टा है। वह यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जिस समय अनेक विशेष ज्ञेय एक ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं उस समय वे अपनी २ विशेषता को छोड़ देते हैं और समानरूप से ही उस ज्ञान में झलकते हैं। रत्नप्रभा का दृष्टान्त इसके विपरीत सिद्ध करता है जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं; अतः दरबारीलाल जी का कथन इसके आधार से भी युक्तियुक्त नहीं। दरबारीलाल जी ने इस सम्बन्ध में दूसरा प्रमाण विशेषावश्यक का दिया है। विशेषावश्यक की गाथाओं का भाव दरबारीलालजी के शब्दोंमें निम्न प्रकार है:—

"एक समय में शीत और उष्ण का ज्ञान हो जाय तो क्या दोष है ? उत्तर—इसमें दोष कौन कहता है। हमारा कहना तो यह है कि दो उपयोग एक साथ न होंगे किन्तु दोनों का एक सामान्य उपयोग ही होगा। जैसा सेना शब्द से होता है। सेना यह सामान्य उपयोग है किन्तु रथ अश्व पदाति आदि विशेषोपयोग हैं; वे अनेक हैं। वे अनेकोपयोग एक साथ नहीं हो सकते, हां उनमें जो समानता है वह हम एक साथ ग्रहण कर सकते हैं। जो एक साथ उष्ण वेदना और शीतवेदना का *अनुभव करता है वह शीत और उष्ण के विभागको अनुभव नहीं करता। हां सामान्य रूपसे वेदना का* ग्रहण करता है।"

अब विचारणीय यह है कि यहाँ सामान्य शब्द का क्या अर्थ है ? यदि दो या अनेक पदार्थों में रहने वाला सामान्यधर्म तब तो न यह सेनाज्ञान में ही घटित होता है और न युक्तियुक्त ही प्रतीत होता है। सेनाज्ञान में उन पदार्थों के, जिनका समुदाय स्वरूप कि यह है, केवल सामान्यधर्म का प्रतिभास ही नहीं होता किन्तु उन पदार्थों की वे सब विशेषतायें भी जो कि उन २ पदार्थों को भिन्न २ समय में एवं भिन्न २ अवस्था में देखने से प्रतिभासित होती थीं प्रतिभासित होती हैं। यदि सेनाज्ञान में केवल सामान्यधर्म का ही प्रतिभास होता होगा तो वहां रथ, घोड़े आदि पदार्थों का बोध भी न होता, क्योंकि इनका बोध बिना इनके विशेषाकारों के प्रतिभास के असंभव है तथा इनका प्रतिभास एक आकार विशेष का प्रतिभास है जो कि केवल सामान्य प्रतिभास की अवस्था में हो नहीं सकता। सेनाज्ञान में इन सब पदार्थों का ज्ञान होता है, इससे प्रगट है कि जहाँ सेना-ज्ञानमें उसके सामान्यधर्मका प्रतिभास होता है वहीं उन पदार्थोंके विशेष धर्मों का भी जिनका समुदायात्मक कि यह है। इसमें युक्तिविरोध को हम पूर्वही दर्पण आदि के दृष्टान्त से स्पष्ट कर चुके हैं। अतः स्पष्ट है कि सामान्यशब्द का अर्थ यहां अनेक पदार्थों का केवल सामान्यधर्म ही नहीं है।

यदि सामान्य शब्द का यह भाव है कि जो २ बातें भिन्न २ उपयोगों में प्रतिभासित होती थीं वे २ यहां एक ही उपयोगमें प्रतिभासित होंगी अर्थात् *यहां सामान्य शब्द का समन्वय उपयोग के साथ है न कि ज्ञेयों के,* तब तो यह बात सेनाज्ञान में भी घटित हो जाती है और युक्तियुक्त भी प्रतीत होती है किन्तु इससे दरबारीलाल जी की मान्यता की सिद्धि नहीं होती, प्रत्युत यह तो उनकी मान्यता के विपरीत ही सिद्ध करती है। इसका तो यही भाव है कि जो बातें हम भिन्न २ उपयोगों द्वारा

जानते थे उनही को अब एक उपयोग के द्वारा जानते हैं। जैसे जिन पदार्थों के अनेक चित्र लिये गये हों—और फिर उन्हीं का एक चित्र ले लिया जाय। इससे यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि ऐसी अवस्था में उन पदार्थों के विशेष धर्मों का प्रतिभास नहीं होता। यह तो यही प्रमाणित करेगा कि सम्मिलित चित्र की तरह ऐसी अवस्था में भी उन पदार्थों को विशेष धर्मों का भी प्रतिभास होता है तथा यही पंडित दरबारीलालजी के विरुद्ध है।

प्रश्न—यदि सामान्य प्रतिभास का यही अर्थ है कि जिन पदार्थों को भिन्न २ उपयोगों द्वारा जानते थे अब वे एक उपयोग से जाने जाते हैं तथा ऐसी अवस्था में उनका भिन्न २ स्वरूप भी प्रतिभासित होता है तो यह बात शीत और उष्ण की वेदना में क्यों नहीं घटती। जिस प्रकार कि नेत्रस्वरूप भावेन्द्रिय उसही को जानती है जिसका प्रतिबिम्ब कि नेत्रस्वरूप द्रव्येन्द्रिय पर पड़ जाता है उसही प्रकार स्पर्शन भावेन्द्रिय भी उस ही को जानती है जो कि स्पर्शन द्रव्येन्द्रिय से सम्बन्धित हो जाती है। जिस समय शीत स्पर्शन द्रव्येन्द्रिय से सम्बन्धित होता है यदि उसही समय उष्ण भी होता है तो ये दोनों अपने बलाबल के अनुसार स्पर्शन द्रव्येन्द्रिय पर एक दूसरे के प्रभाव पर आघात प्रतिघात करते हैं। ऐसी अवस्था में यदि शीत अधिक शक्तिशाली होता है तो वह उष्ण को दबा देता है और यदि उष्ण अधिक शक्तिशाली होता है तो वह शीत को दबा देता है। यदि ये दोनों समान शक्तिशाली होते हैं तो एक दूसरे की शक्ति एक दूसरे के पराभव से ही नष्ट हो जाती है। इस प्रकार इन दोनों के स्पर्शन द्रव्येन्द्रिय से एक साथ सम्बन्ध होने में स्पर्शन द्रव्येन्द्रिय पर उसका उतना ही प्रभाव पड़ता है जो कि जितने अंश में दूसरे से अधिक है। स्पष्टता के लिये इसको यों समझियेगा कि एक बालू का ढेर है। इस पर गर्मी और सर्दी दोनों ही शक्तियों का प्रयोग किया जा रहा है। गर्मी की शक्ति ७० डिग्री है और ठंड की ५० डिग्री की—या दोनों ही बराबर डिग्री की हैं। इनमें से पहिली अवस्थामें इसमें बीस नम्बर की गर्मी मिलेगी और दूसरी अवस्था में यथापूर्व। इनही शक्तियों की यदि डिग्रियों को बदल दिया जाय और गर्मी की शक्ति को ७० की जगह पचास की कर दी जाय और ठंड को पचास की जगह ७० की तो फिर बालू के ढेर से २० नं० की गर्मी के बजाय बीस नम्बर की ठंड प्रतीत होने लगेगी।

भाव स्पर्शनेन्द्रिय उसही को जानती है जोकि द्रव्य स्पर्शनेन्द्रिय से सम्बन्धितहै। द्रव्य स्पर्शनेन्द्रिय से शीत और उष्ण की उतनी ही शक्ति सम्बन्धित है जितनी कि एक दूसरे के आघात प्रतिघात से बची हुई है अतः भावस्पर्शनेन्द्रिय उसहीको जानती है। इसका यह मतलब कदापि नहीं हो सकता कि उष्ण और शीत इन दोनों के संयोग में भावस्पर्शनेन्द्रिय इन दोनों के केवल सामान्य धर्म को ही जानती है। यदि ऐसा होता तो केवल स्पर्श का ही प्रतिभास होना था, क्योंकि शीत और उष्ण में रहने वाला यही एक सामान्य धर्म है। सामान्य विशेष के अभाव में रह नहीं सकता, उसके साथ तो किसी न किसी विशेषका अस्तित्व अनिवार्य है इससे सिद्ध है कि ऐसी अवस्था में भी केवल सामान्य का प्रतिभास नहीं होता।

केवली के ज्ञानमें इन्द्रियोंकी सहायता आवश्यक नहीं पड़ती, अतः उनके शीत और उष्ण का एक साथ ज्ञान हो जाता है। यहां हम यह भी लिख देना अनावश्यक नहीं समझते कि दरबारीलाल जी का यह लिखना कि "इस प्रकार का सामान्य ज्ञान तो दर्शन का विषय है" मिथ्या है। दर्शन के विषय का पर-पदार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं, चाहे वह सामान्य स्वरूप हो या विशेषरूप। दर्शन तो केवल स्व-प्रकाशक ही है या यों कहिये कि जिस समय चेतन गुण केवल अपना प्रकाश करता है उस समय इस को दर्शन कहते हैं। इसके सम्बन्ध में विशेषरूप से हम अपने अगले लेख में प्रकाश डालेंगे।

प्रश्न—आपने दर्पण आदि भौतिक चीज़ों के दृष्टान्त से यह बात सिद्ध की है कि एक साथ अनेक पदार्थ भी उसी तरह प्रकाशित होते हैं जिस तरह कि भिन्न २ रूप से, किन्तु यह बात ज्ञान मे नहीं घटती। क्योंकि एक पदार्थ दर्पण के एक देश में प्रतिविम्बित होता है और दूसरा दूसरे हिस्से में; इसही प्रकार तीसरे, चौथे आदि। किन्तु ज्ञानमें यह बात नहीं है—ज्ञान में जो भी प्रतिभासित होता है वह ज्ञान के सर्वदेश में। इससे दर्पण के दृष्टान्त से ज्ञान में एक साथ अनेक पदार्थों का अपने २ रूप से प्रतिभासित होना प्रमाणित नहीं हो सकता।

उत्तर—दर्पण में भी जिस जगह एक पदार्थ प्रतिविम्बित होता है उसी जगह दो तीन आदि पदार्थ प्रतिविम्बित हो सकते हैं तथा होते हैं। एक दर्पण के सामने एक २ फुट के अन्तर से इस पदार्थ एक लाइन में रख दीजियेगा। वे दसों उस हीः में और उसही जगह प्रतिविम्बित हो जायगे। इस और बीस ही क्या, इसमें तो सैकड़ों और हज़ारों यहां तक कि असंख्य पदार्थ भी प्रतिबिम्बित हो सकते हैं। वे व्यक्ति जिन्होंने किसी ऐसे स्थान के देखनेका सौभाग्य प्राप्त किया है जहां कि चारों तरफ़ बड़े २ दर्पण लगे हुये हैं इस बात को भली भांति जानते हैं कि एक २ दर्पण में एक २ व्यक्तिके हज़ारों और लाखों प्रतिविम्ब प्रतिविम्बित होजाया करते हैं।

इससे यह बात स्पष्ट है कि जहां एक पदार्थ प्रतिविम्बित या प्रतिभासित है वहीं दूसरे पदार्थ प्रतिविम्बित या प्रतिभासित नहीं हो सकते, यह नियम नहीं बनाया जा सकता। अतः इसही के आधार से ज्ञान में एक साथ अनेक पदार्थों के प्रतिभास का अभाव भी नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एक साथ अनेक पदार्थों के अपने २ स्वरूप से प्रतिभासित होने में दरबारीलाल जी ने जो बाधायें उपस्थित की हैं वे बिलकुल निराधार हैं तथा एक साथ एक ही उपयोग में अनेक पदार्थों की अपने २ स्वरूप के अनुसार प्रतिभासित होना युक्तियुक्त है। अतः स्पष्ट है कि केवली के ज्ञान में इसके सम्बन्ध में दरबारीलाल जी का कथन बिलकुल मिथ्या है।

[क्रमशः]

आचार्य कुन्द कुन्द और उनका समय *

[अनुवादक—श्री० पं० खुशालचन्द्र जी शास्त्री, स्या० वि०, काशी]

[क्रमागत]

धर्म प्रचार के उद्देश्य से दाक्षिणात्य दिगंबरों का उत्तर में आना भी उक्त घटना की पुष्टि के लिये दूसरा तात्विक प्रमाण है। यह भ्रमण दक्षिण में भागलपुर से उत्तर में देहली और जयपुर तक हुआ था। यह इस विचार के अनुकूल पड़ता है कि अविभक्त जैन जाति के निवास स्थान बिहार प्रान्त में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने के कारण भद्रबाहु के नायकत्व में जैन संघ के दक्षिण जाने के फलस्वरूप ही दिगम्बर श्वेताम्बर भेद की स्थापना हुई थी। ❀

प्रोफेसर हर्नल साहब (Professor Hoernle) लिखते हैं कि वे भादलपुर ग्राम का निश्चय नहीं करसके। हमारे मतसे पाटलिपुर या पाटलिपुत्र ही भादलपुर है। पाटलिपुर का पुराना नाम थिरुप्पापुलियर (Thiruppapuliyar) है और आज कल उसे कुडलोर (Cuddalore) कहते हैं।

वि० वेन्कैय्या (V. Venkayya) महोदय पनरुती (Panruti) के पास के तिरुवदी (Tiruvadi) के स्थान को भादलपुर बतलाते हैं जहां पर प्राचीन समय के बहुत से जैन भग्नावशेष पाये जाते हैं †। यह बात कुछ विस्तार से सम्बन्ध रखती है; इसलिये इसे यहीं समाप्त करते हैं, किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि वि० वेन्कैय्या द्वारा दिये गये प्रमाण कुछ ज़ोरदार नहीं हैं।

पाथरी पुलियर (Pathiri Puliyur) का देवागम में वर्णित शिवतीर्थ होना उसके जैनतीर्थ होने में बाधा उपस्थित नहीं करता। इस भादलपुर या पाटलिपुर का आचार्य कुन्दकुन्द से सम्बन्ध है—जैसा कि हम आगे बतावेंगे।

आचार्य कुन्दकुन्द के विषय में विशेष लिखने के पहिले हमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वे कब हुए थे। और उन्होंने कैसी परिस्थिति में कार्य-क्षेत्र में प्रवेश किया था। इसके लिये हम दिगम्बर तथा श्वेताम्बरों द्वारा सुरक्षित पट्टावलियाँ साक्षी रूप में उपस्थित करते हैं। महावीर स्वामी के बाद निम्न प्रकार से धर्मोपदेशक हुए :—

केवली	गौतम	१२ वर्ष
„	सुधर्मा	१२ „
„	जम्बू	३८ „
श्रुतकेवली	विष्णुकुमार	१४ „

❀ देखिये—प्रोफ़ेसर ए० एफ० रुडोल्फ हर्नल निर्मित भारतीय पुरातात्विक प्रति २१ (Prof A. F. Rudolf Hoernle Ind. Ant. vol XXI.) तथा (Three further Pallavalis of the Digambaras. pp. 60 and 61.)

† देखिये—वि० वेन्कैय्या निर्मित भारतीय पुरातत्वान्वेषक विभाग की रिपोर्ट की १९०६ तथा ७ की प्रति में पल्लव विषयक निबन्ध (Reports on the Archeaological Survey of India, vol. 1906, 07—Article on Pallvas by V. Venkayya.)

श्रुतकेवली	नन्दिमित्र	१६ वर्ष	
"	अपराजित	२२ "	
"	गोवर्धन	१६ "	
"	भद्रबाहु प्रथम	२९ "	
दश पूर्वधारी	विशाख	१० "	
"	प्रोष्ठिल	१५ "	
"	क्षत्रिय	१७ "	
"	नाकसेन	१८ "	
"	जयसेन	२१ "	
"	सिद्धार्थ	१७ "	
"	धृतिसेन	१८ "	
"	विजय	१३ "	
"	बुद्धिलिंग	२० "	
"	देवप्रथम	१४ "	
"	धरसेन	१४ "	

ग्यारह अङ्गधारी	नक्षत्र	१८ वर्ष
"	जयपालक	२० "
"	पाण्डु	३९ "
"	ध्रुवसेन	१४ "
"	कंस	३२ "
		४६८
एक अङ्गपाठी	सुभद्र	६ वर्ष
"	यशोभद्र	१८ "
"	भद्रबाहु द्वितीय	

सुभद्राचार्य के आचार्य पद पर आसीन होने के दो वर्ष बाद विक्रम की उत्पत्ति हुई, और विक्रम के राज्यारोहण के चार वर्ष बाद भद्रबाहु द्वितीय आचार्य पदपर भूषित हुए। इसके बादकी आचार्य परम्परा नीचे लिखी वंशावलीमें दी गई है *:—

प्रोफ़ेसर होर्नल निर्मित, दिगम्बर पट्टावल्यानुकूल कुन्दकुन्दाचार्य परम्परा

क्रम संख्या	नाम	[illegible]	अवस्था की अपेक्षा वर्ष विभाग												
			गृहस्थ			साधु			धर्मोपदेशक			[illegible] ‡	योग		
			वर्ष	मास	दिन	वर्ष	मास	दिन	वर्ष	मास	दिन		वर्ष	मास	दिन
१	भद्रबाहु (द्वि०)	५३†	२४	...	...	३०	...	...	२२	१०		३	७६	११	...+
२	गुप्तिगुप्त	३१†	२२	...	...	३४	...	...	९	६	२५	५	६५	७	...×
३	माघनन्दिन	२१†	२०	...	...	४४	...	...	४	४	२६	४	६८	५	...÷
४	जिनचन्द्र	१७†	२४	९	...	३	३	...	९	०	६	३	६५	०	९
५	कुन्दकुन्द	८†	११	...	...	३३	...	...	५१	१०	१०	५	९५	१०	१५¶

यदि कुन्दकुन्द की आचार्य पदारोहण तिथि ईसा से ८ वर्ष पूर्व मानी जाय तो उनकी जन्म तिथि ५२ ई० पू० माननी होगी, क्योंकि वे ४४ वर्ष की अवस्था में आचार्य हो गये थे। [क्रमशः]

* देखिये—'भारतीय पुरातात्त्विक' प्रति २० और २१ में रुडोल्फ होर्नल द्वारा परीक्षित अनेक पट्टावलियां। ("Indian Antiquary" vol. XX and XXI. The several Pattavalies examined by Rudolf Hoernle) † ईसा से पूर्व। ‡ काल की तुल्यता के निमित्त अधिक जोड़े गये। + जाति के ब्राह्मण थे × जाति के पंवार थे ÷ जाति के साहु थे ¶ इनके चार नाम और थे:—(१) पद्म नन्दिन (२) वक्रग्रीव (३) गृद्धपिच्छ (४) इलाचार्य।

स्वामी दयानन्द और जैनधर्म।

[लेखक—श्रीमान बा० कामताप्रसाद जी एम० आर० ए० एस०]

[गताङ्क से आगे]

स्वामी जी ने मेरी साहित्यिक सेवा पर जो प्रशंसात्मक शब्द कहे हैं उनके भी लिये मैं आभार मानना अपना कर्तव्य समझता हूँ, किन्तु उनसे मैं इस बात में असहमत हूँ कि जैनधर्म की महिमा फैलाने की धुन में मैं उचित और अनुचित का विचार न करके अपनी लेखनी चलाता हूँ। यदि मेरी लेखनी विवेकहीन ही होती तो 'विकास' में उससे यह शब्द न निकलते :—

"लोग स्वामीजी (दयानन्दजी) को जैनधर्म का द्वेषी ही समझते हैं। मेरे ख़याल में स्वामीजी की तीव्र आलोचना ने जैनधर्मनुयायियों को सोते से जगाया और ठीक वक्त पर जगाया, इस लिये स्वामीजी को जैनधर्म का द्वेषी समझना भूल है।"

मुझे अविचारी और उच्छृङ्खल लेखक प्रमाणित करने के लिए मेरी रचनाओं में से आपने दो उदाहरण उपस्थित किये हैं—(१) वेदों के व्रात्य जैनी थे (२) म० बुद्धने म० महावीर को सर्वज्ञ कहा ! मेरे उक्त लेख में जिसका स्वा० जी विरोध कर रहे हैं, इन बातों का कोई ज़िक्र नहीं है। उससे ये असम्बद्ध हैं—फिर भी स्वामी जी ने अपने मन को संतोषित करने और मेरी कृतियों में दोष निकालने की नीयत से उन्हें यहां घर घसीटा है। किन्तु खेद है कि इसमें भी वह सिद्ध-मनोरथ न हो सकेंगे। "वेदों के व्रात्य जैनी थे" यह खोज मेरी नहीं है—मद्रास के प्रो० ए० चक्रवर्ती, एम० ए० आई० ई० एस० की वह सूझ है। अपने ग्रंथ 'भगवान पार्श्वनाथ' की प्रस्तावना में उसको हिन्दी-रूप देते हुये मैंने यह बात स्पष्ट शब्दों में प्रगट करदी थी (पृ० ३२ देखो) और उससे अपना मतैक्य प्रगट किया था। इस पर भी स्वामी जी यह खोज मेरी बताते हैं और उस पर व्यङ्ग करते हैं। यह व्यवहार एक विद्वान् के लिये शोभनीय नहीं—वह व्यङ्ग न करके उस मत के निरसन में प्रबल प्रमाण उपस्थित करेगा जिसे वह उचित नहीं समझता और नहीं ही वह किसी का मत किसी दूसरेके मत्थे मढ़ने की धृष्टता करेगा।

स्वामी जी यदि समझते हैं कि व्रात्य वैदिक धर्मानुयायी थे, तो उन्हें यह बात प्रमाणित करना चाहिये। मनुस्मृति में तो उन्हें भ्रष्ट लिखा गया है। महामहोपाध्याय पं० काशीप्रसाद जी जायसवाल, एम० ए० बैरिस्टर ने भी व्रात्यों से मतलब अब्राह्मण (अवैदिक) क्षत्रियों का प्रगट किया है। लिच्छविक्षत्रियों को वे व्रात्य (Vratyas or un-Brahmanical Kshatriyas) प्रगट करते हैं और कहते हैं कि उनके अपने मंदिर अपनी अवैदिक (Non-Vedic) पूजा और अपने धर्म नेता थे—उन्होंने जैनधर्म को अपनाया था। (Modern Review for 1929 p. 499)। रा० ब० प्रो० राम-

प्रसाद चन्दा एम० ए० ने भी व्रात्यों को अवैदिक सम्प्रदाय प्रगट किया है। इस दशा में प्रो० चक्रवर्ती प्रभृति के मतों का निरसन जब तक स्वामी जी न करदें तबतक उनका व्यङ्ग निरर्थक है—विद्वत्समाज में वह उपहास सूचक है।

स्वामी जी का दूसरा आक्षेप भी निर्मूल है। अवश्य ही उल्लिखित बौद्ध उद्धरण म० बुद्ध के ही शब्द हैं। म० बुद्ध ही उसमें यह कहते हैं कि जैनमुनियों ने उनसे कहा कि भ० महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। एक दूसरे मत के नेता का महत्व इस ही प्रकार एक विरोधी प्रकट कर सकता है। म० बुद्ध ही उस वक्तव्य के उत्तरदाता हैं—न कि जैनमुनि। प्रकारान्तर से वह स्वीकार करते हैं कि भ० महावीर सर्वज्ञ प्रसिद्ध हैं। उनकी सर्वज्ञता का निषेध बौद्ध साहित्य में कहीं नहीं दिखता। इसलिये हमने म० बुद्ध के वक्तव्यानुसार भ० महावीर को ठीक ही सर्वज्ञ लिखा था। इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। हम ही नहीं, अन्य अजैन विद्वान् भी बौद्ध उद्धरणों से भ० महावीर की सर्वज्ञता को सिद्ध करते हैं। वर्षों पहले डा० बुल्हर ने लिखा था कि—

"The Buddhist remarks on the personality and life of Nataputta [Mahavira] are still more remarkable They say repeatedly that he laid claim to the dignity of an Arhat and to omniscience.. ."

—Indian Sect of the Jainas p 32

भ० महावीर के व्यक्तित्व और जीवन के संबंध में बौद्धों के उल्लेख महत्वशाली हैं। उनमें बार २ यह बात कही गई है कि भ० महावीर अर्हत् और सर्वज्ञ होने का दावा करते थे। डा० विमलचरण लॉ एम० ए०, पी-एच० डी० बौद्ध उद्धरणों के आधार से भ० महावीर की विशेषतायें निम्न प्रकार लिखते हैं:—

"As a man Mahavira was a wonderful personage and a true prophet. austerely scrupulous and subtly wise .. He was highly respected by the people (Book of the Kindered Sayings, I p. 94) .. Mahavira was all-knowing all-seeing, one whose omniscience was infinite ..[Anguttara Nikaya, I., 220] He could say where his disciples were reborn etc [Samyutta Nikaya, IV 398]". —Vardhamana Mahavira.

भावार्थ—महावीर एक मनुष्यरूप में अनूठे महापुरुष और एक सच्चे धर्मप्रवर्तक तथा महान् विद्वान् थे। जनता उनका खूब सम्मान करती थी (संयुत्तनिकाय, १ पृष्ठ ९४)······महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे—उनकी सर्वज्ञता अनन्त थी (अंगुत्तरनिकाय १।२२०) वह बता सकते थे कि उनके शिष्य कहां जन्मे हैं। इत्यादि (संयुत्तनिकाय, ४।३९८)।

यही बात मैंने अपनी रचनाओं में दुहराई है। मैं नहीं समझता, मैंने इसमें कौनसी अविचार की बात की है?

स्वामी जी शौक़ से हमारी पुस्तकों की समालोचना करें किन्तु करें एक सत्यानुवेषी की भाँति। उपरोक्त प्रकार अर्थ का अनर्थ करके न लिखें।

आगे स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में जैनधर्म विषयक कथन को सत्य प्रकट करके उसका सम-

र्थन किया है; किन्तु जैनी शुरू से आजतक बराबर उसका खंडन करते आये हैं जिसका प्रतीकार आर्य-समाज ने मेरे ख़याल में किसी रूप में भी नहीं किया है। यदि स्वा० जी उसे सत्य प्रमाणित कर सकते हों, तो करें। भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ सदृश संस्थायें इसको सिद्ध करने के लिये उन्हें आमंत्रित करने को भी तैयार होंगी। किन्तु यह समर्थन सत्य पर अवलम्बित होना चाहिये। यह शब्द इसलिये लिखे हैं कि स्वामीजी की लेखनशैली स्खलित और प्रमाण से परे पक्षपोषण को लिये होती है।

उदाहरणतया स्वामीजी का 'विकास' के विशेषांक में प्रकट हुआ "जैनधर्म और वेद" शीर्षक लेख है, जिसमें उन्होंने जैनियोंकी दोनों सम्प्रदायों के मान्य शास्त्रों में वेदों की मान्यता घोषित की है और महावीर स्वामी को वेदों का अनन्य भक्त बतलाया है। प्रमाण दि० जैन ग्रन्थ 'महापुराण' व 'हरिवंश पुराण' आदि के दिये हैं; किन्तु वे छल से ख़ाली नहीं हैं; क्योंकि उन्हीं प्रमाणों से स्वामी जी के कथन का खंडन होता है। महापुराण के ५६ वें पर्व से यह स्पष्ट है कि भ० शीतलनाथके उपरांत किन्हीं ब्राह्मणों ने लोभ में आकर नये २ ग्रन्थ रचे और उन्हींको उन्होंने 'श्रुति' (वेद) कहा। जैनश्रुति अथवा वेद से यह कृति भिन्न हो गई। महापुराण के ६७ वें पर्व में इस श्रुति का ही अर्थ बदला गया लिखा है न कि जैनश्रुति का। दोनों ही स्थलों पर उसे 'दुश्रुति' लिखा है। ६७ वें पर्व में स्पष्ट रूप में 'अथर्ववेद' को 'पापशास्त्र' लिखा है। स्वामी जी ने ६७ वें पर्व का ही प्रमाण दिया है सो यह शब्द अवश्य देखे होंगे; परन्तु उनको तो अपने मनोगत पक्ष को सिद्ध करना है—सत्य से क्या मतलब ? इतने पर भी आश्चर्य है कि स्वामी जी मुझ पर अविचार और विवेकहीनता का लाञ्छन लगाते हैं। पाठकगण देखें यह किस पर घटित होता है ?

भ० महावीर यदि आपके वेदों के भक्त थे तो उन्होंने वेदभक्त ब्राह्मण इन्द्रभूति गौतम से उनका त्याग कराकर क्यों अपने मत में दीक्षित किया ? तब तो उन्हें स्वा० दयानन्द की तरह ही उन वेदों का ठीक अर्थ इन्द्रभूति गौतम को बतलाना था ? किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ ! अतः इतिहास इस बात का साक्षी है कि भ० महावीर वेदभक्त नहीं थे। उन्होंने अपना धर्म-तीर्थ अलग ही स्थापित किया था, जिसमें प्राचीन जैनधर्म का भी समावेश हुआ था !

स्वामी जी ने एक बात और विलक्षण कही है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो कटु और अप-शब्दों का व्यवहार किया है उनसे कहीं भयानक अपशब्द जैनशास्त्रों में मिलते हैं। स्वामी जी कम से कम मुझपर बड़ी दया करते यदि एकाध नमूना उद्धृत कर देते ! मुझे तो अभी तक अपने स्वाध्याय में ऐसे अप-शब्द देखने को नहीं मिले हैं !

अन्त में मैं स्वामीजी के ही हित के लिये उनसे विनयपूर्वक कहूंगा कि महाराज, आप सन्यासी बने हैं—फिर सम्प्रदाय मोह में पड़ कर सत्य का खून करना आपके लिये उचित नहीं है। आप जो कुछ भी लिखें, कहें और करें वह सत्य और हितकारी होना चाहिये। किमधिकम्।

विद्यार्थी-जीवन में काव्य साहित्य पढ़ने की आवश्यक्ता

[लेखक—एक साहित्य का विद्यार्थी]

कवि की प्रतिभा से उत्पन्न रसात्मक वाक्य और दृश्य वस्तु की उपलब्धि होना ही काव्य है। माना गया है कि जिस काव्य में वस्तु, अलंकार और रस क्रम से अधिकतया व्यंग्य होंगे वह काव्य उतना ही अधिक उत्कृष्ट होगा। रस के भेदों से वह नौ विभागों में बाँटा जा सका है। आजकल शृङ्गार, वीर और करुण रस प्रधान काव्यों की अधिकतर उपलब्धि है तथा वे ही अधिकतर उपयोग में भी आरहे हैं। काव्य का प्रयोजन सुकुमार मतियों तथा परिपक्व बुद्धि-वालों को भी आसानी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थों का स्वरूप समझा देना है।

बड़े २ डाक्टरों एवं मनोविज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि नवयुवावस्था (१५ से १८ वर्ष तक) में स्वभाव से ही युवकों के दिल में क्रम से अधिक विक्रिया पैदा हुआ करती है। सिवा सामाजिक पतन के भय के इस समय कोई भी योग्यायोग्य विचार बुद्धि नहीं रहती। बाद इसके विक्रिया तो पैदा होती ही है परन्तु युवकों को उस समय तक अपने को अपने काबू में रखने की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है। १८ वर्ष की अवस्था अधिक पत-नोन्मुख होती है—इसी लिये शारदा कानून में उस समय विवाह करने की अनुमति दी गई है। फलतः इस अवस्था तक शृङ्गार रस प्रधान काव्यों के पढ़ने की आवश्यकता नहीं। मुग्ध स्वभाव थोड़ी सी स्वतन्त्रता को भी विशेषतया उपयोग में लाता है। यही कारण है कि सच्ची बातों का भी उस पर उलटा असर पड़ता है।

जैन साहित्य में क्षत्रचूड़ामणि जैसे काव्यों को पढ़ने वाले सज्जन अनुभव करते होंगे कि समय समय पर उन २ स्थलों में धर्म, अर्थ, और काम-पुरुषार्थों का वर्णन करते हुए कवि ने अन्त में किस तरह—

मथ्नेन वनपालोऽयं काष्टाङ्गारायते हरिः।
राज्यं फलायते तस्मान्मयैवं त्याज्यमेव तत् ॥

(क्षत्र चूड़ामणि, पृष्ठ १२२)

श्लोक द्वारा वैराग्य का चित्र खींचा है जिस को पढ़ते ही दिल में विरक्ति * पैदा होती है।

जैनेतर साहित्य में भी यथा स्थान प्रथम तीन पुरुषार्थों का तथा किसी २ स्थल पर मोक्ष का प्रति-पादन भी किया गया है। जैसे शान्तरस में—

यच्च कामसुखं लोके, यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते, नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥

(साहित्य दर्पण पृष्ठ १९४)

अर्थात—संसार में जो कामवासना का आनंद है तथा स्वर्ग का जो महासुख है वह सभी तृष्णा नष्ट हो जाने से उत्पन्न हुए आध्यात्मिक सुख के सोलहवें हिस्से भी नहीं।

---

* सभी जैन काव्य परिणामस्वरूप वैराग्य के उपदेशक हैं, अतः मोक्ष-पुरुषार्थ के प्रवर्तक हैं। ये प्रायः हर एक परिस्थिति में उपादेय हैं बशर्ते कि शुरू से आखीर तक पढ़े जायं।

उक्त काव्यों में किसी कवि ने कोई झूठी घटना नहीं घटित की है। कवि का उद्देश्य हमेशा सच्ची बात को आगे रखकर लोगों को यह बतलाना होता है कि बुद्धि के अनुसार उचित को ग्रहण करो और अनुचित को छोड़ो। काव्य का प्रयोजन ही कवि के अन्तिम उद्देश्य को ज़ाहिर करना है। दृश्य काव्यों (नाटकों के अभिनयों) से यह बात प्रत्यक्ष अनुभूत है कि शृङ्गाररस पूर्वक किसी वस्तु का वर्णन करके अंत में यदि परिणामस्वरूप विरक्ति दिखलाई जाय तो उसका साधारण पुरुषों पर भी कैसा हृदयद्रावक असर होता है। फलतः जो लोग अच्छी बातों को भी बुरी तरह ग्रहण कर लेते हैं, उनके लिये ये काव्य हैं ही नहीं। वे इसके अधिकारी नहीं। वैद्यक शास्त्र में यदि मांस में भी गुण बतलाये हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि हम उसे खालें।

दुनिया में दो तरह के—हंसते हुए और रोते हुए दार्शनिक (Laughing Philosopher and weeping Philosopher) हैं। पहला तो वही "कवि" है—दूसरा तत्ववेत्ता। पहला मानता है कि इस असार संसार में भी कुछ वस्तु सौन्दर्य है तो दूसरा इसके विषय में पश्चाताप करता है और इससे उदासीन सा रहता है। पाठक विचार सकते हैं कि यदि कवि न हो तो दुनिया के बैलेंस को सम्हालना मुश्किल होजाय। सब लोग त्यागी नहीं होते, समझदार का त्यागी होना अधिक श्रेयस्कर है। फलतः कवि सुकुमार मतियों को भी समझा कर त्याग की तरफ़ ले जाता है।

साथ में वह काव्यों द्वारा आदर्श और सामूहिक सत्य (Philosophy of Common Sense) एवं अन्य उपयोगी बातों का भी उपदेश देता है महाकवि कालिदास अपने "अभिज्ञान शाकुन्तल' में काश्यप द्वारा शकुन्तला को पति-गृह जाने से पहले गृहिणी कर्तव्य का आदर्श बतलाते हैं—

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥
(पेज १४३)

भावार्थः—शकुन्तला! घर में बड़ों की सेवा शुश्रूषा करना। सौत को प्रिय सखी समझना। पति देव यदि विरुद्ध भी होजाय तो क्रोधसे तू उनके विरुद्ध मत जाना। परिवार भर में अत्यन्त कुशल बनना। अपने विपरीत भाग्यपर पश्चात्ताप भी मत करना। इसी तरह युवतियाँ सद्गृहणी और धर्मपत्नी के पद को प्राप्त होती हैं। इससे विपरीत, कुल को लजाने वाली होती हैं।

दूसरे स्थल पर वे ही सामूहिक सत्य का उपदेश देते हैं—

सतीमपि ज्ञाति कुलैक संश्रयां
जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतु रिष्यते
प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः॥ (पृष्ठ १६७)

भावार्थः—अपने कुटुम्बियों के आश्रित रहने वाली—सौभाग्यवती पतिव्रता के विषय में भी लोग कुछ से कुछ संदेह करते हैं। इसलिये कुटुम्बी जन पतिकी प्रिय या अप्रिय स्त्री को पति के घर भेज देना चाहते हैं।

इसी सत्य के विषय में "मेघदूत" में भी उनकी कृति सुनने योग्य है—

"नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मागमः कातरत्वं ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्र नेमिक्रमेण ॥

(पेज ८२)

भावार्थः—यक्ष कहता है—प्रिये ! मैं तो मन में तरह २ की आशाओं के पुल बांधकर जीवित हूँ। कल्याणकारिणी, तुम क्यों कातर हुई जा रही हो ? अरे ! न तो किसी को हमेशा सुख ही रहा और न दुख ही। इनकी दशा तो पहिये के पुठे के समान कभी ऊपर और कभी नीचे होती रहती है।

शूद्रक कवि "मृच्छकटिक" में चारुदत्त के मुख से करुणता और दरिद्रता का कैसा सुन्दर चित्र खींचते हैं—सुनिये !

एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीयं
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति ।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम् ॥
सत्यं न मे विभव नाशकृतास्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति ।
एतत्तु मां दहति, नष्टधनाश्रयस्य
यत्सौहृदादपि जनाः शिथिली भवन्ति ॥

(पृष्ठ २०-२१)

भावार्थः—मुझे गरीबी का कुछ दुख नहीं। रंज है तो इस बात का कि मेरे घर में धन नहीं, इस लिये अतिथिगण मेरे यहां आना बन्द करदेते हैं। जैसे, किसी मदजलयुक्त गण्डस्थल वाले हाथी का मदजल सूख जाने पर भ्रमर उसके इधर उधर ही घूमते रहते हैं। वहां बसेरा नहीं करते।

मेरा धन नष्ट होगया इसकी मुझे चिन्ता नहीं। भाग्यसे धन मिलता और नष्ट होता है। परन्तु एक बात मुझे अवश्य चिंतित करती है "कि निर्धन के मित्र भी अपने व्यवहार में शिथिल पड़ जाते हैं"।

[अपूर्ण]

मराल !

[ले०—श्रीयुत "मेरु" स्याद्वाद विद्यालय काशी]

आशा कर दी है पूर्ण आशा अन्तर्यामिन की,
ऐसे "मेरु" मानस में नित्य रमता रहा।
धन्य कहलाते जिसे स्वप्न में हू देखि ऐसे,
चुन चुन मोतियों से पेट भरता रहा ॥
आनन्द (उदधिमें) लगाता रहा गोता सदा,
सुखद स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ता रहा।
विधि की विडम्बना से पोखर में हाय वही,
पड़ा पड़ा ज़िन्दगी के दिन है बिता रहा ॥

* आर्यसमाज प्रश्नोत्तरमाला *

[म० जियालालजी आगरा से पत्रोत्तर]

ईश्वर जगतकर्त्ता नहीं है !

[लेखक—वैद्यविद्याविशारद पं० मंगलसैन जी, अंबाला]

[आठवें अङ्क से आगे]

ईश्वर की सिद्धी में द्वितीय हेतु—ईश्वर जगतकर्त्ता है—और इसके लिये मन्तव्य दश में इस प्रकार लिखा है कि—सृष्टि सकर्तृक है, इसका कर्ता पूर्वोक्त ईश्वर है क्योंकि सृष्टिकी रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादिस्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का कर्त्ता अवश्य है—इत्यादि। और स्वामी दयानन्द जी अपने सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास पृष्ठ २२४ में सृष्टि के मूलकारण अनादि पदार्थों को गिनाते हैं और बतलाते हैं कि यदि इनमें से एक भी न हो तो जगत भी न हो और देखो वह प्रमाण इस प्रकार है, ज़रा इसे ध्यान से पढ़ो—मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता, इससे अकारण सब कार्यों का कारण होता है क्योंकि किसी कार्य्य के आरम्भ समय के पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं जैसे कपड़े बनने के पूर्व तन्तुवाय, रुई का सूत और नलिका आदि पूर्व वर्तमान होने से वस्त्र बनता है—वैसे ही जगत की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर प्रकृति काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत की उत्पत्तिहोती है। यदि इनमें से एक भी न हो तो जगत भी न हो—इत्यादि। इस प्रमाणमें जगत के प्रति कारण परमेश्वर प्रकृति काल आकाश और जीव—ऐसे पाँच अनादि पदार्थों का होना बतलाया है और नियम किया है कि यदि इनमेंसे एक भी न हो तो जगत भी न हो।

फिर इसके विरुद्ध सत्यार्थप्रकाश के मन्तव्य छह में अनादि पदार्थ तीन लिखे हैं और वे इस प्रकार हैं कि—अनादि पदार्थ तीन हैं—ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरी प्रकृति अर्थात् जगत का कारण इन्हीं को नित्य भी कहते हैं—जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण कर्म स्वभाव भी नित्य हैं-इति। स्वामी जी ने इस छठे मन्तव्य में ईश्वर जीव और प्रकृति को ही अनादि माना है काल और आकाश को अनादि नहीं माना। इसलिये काल वा आकाश के अनादि न मानने से सृष्टि का होना सर्वथा असम्भव है।

त्रयोदशवें समुल्लास के प्रारम्भ में ईसाई मत का खण्डन करते हुए समीक्षा में लिखा है कि—पोलकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई। क्योंकि यह विभु पदार्थ और अति सूक्ष्म है और ऊपर नीचे एक सा है। जबकि आकाश नहीं सृजा था तब पोल और आकाश था या नहीं! जो नहीं था तो ईश्वर, जगत का कारण और जीव कहां रहते थे? बिना आकाश के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सका। इस लिये तुम्हारी बाइबलका कथन ठीक नहीं—इत्यादि।

इस लेख में ईसाइयों से तर्क की है कि—जब आकाश नहीं सृजा था तब ईश्वर जगत का कारण और जीव कहाँ रहते थे। परन्तु यही तर्क स्वामी जी पर भी लागू होती है, क्योंकि आपने भी तीन ही अनादि पदार्थ छठे मन्तव्य में लिखे हैं और आकाश को अनादि नहीं माना। इसलिये आकाश को अनादि माने बिना आपके भी तीनों अनादि पदार्थ अर्थात् ईश्वर जीव और प्रकृति मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं और जबकि आपके माने हुए अनादि तीनों पदार्थ अर्थात् ईश्वर जीव और प्रकृति किसी भी प्रमाणद्वारा सत्य सिद्ध नहीं होते तब ईश्वर को निमित्त कारण कर्त्ता बतलाना अथवा ईश्वरकी सिद्धी में जगत कर्ता का हेतु देना सर्वथा मिथ्या है।

ज़रा और भी ध्यान देकर सुनिये—देखिये स्वामी दयानन्द जी ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १२२ में लिखा है कि—एकं जङ्गमं जीव चेतनादि सहितं जगत्। द्वितीयपृथिव्यादिकं च यज्जडं जीव सम्बन्ध रहितं जगद्वर्तते तदुभय तस्मात्पुरुषस्य सामर्थ्यकारणादेवजायते। अर्थात् एक जगत जंगम जीवआदि, द्वितीय जड़ पृथिव्यादि, ये दोनों उस परमात्मा की सामर्थ्य से उत्पन्न होते हैं। यदि आप यहां पर सामर्थ्य का अर्थ प्रकृति करेंगे तो जीव भी प्रकृति से उत्पन्न मानना पड़ेगा और फिर आप में और चारवाक में अन्तर ही क्या होगा?

तथा इसी पुस्तक के पृष्ठ १२३ में लिखा है कि जो उसी पुरुष के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है जिस को मूल प्रकृति कहते हैं। इस प्रमाण में पुरुषके सामर्थ्य से ही मूल प्रकृति का उत्पन्न होना लिखा है, इसलिये उपर्युक्त लेखानुसार जीव और प्रकृति दोनों ही परमात्मा के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए सिद्ध हैं।

तथा इसी पुस्तक के पृष्ठ ११६ में लिखा है कि (नासदासी०) यदाकार्यं जगन्नोत्पन्नमासीत्तदाऽसत् सृष्टेः प्राक्शून्यमाकाशमपिनासीत्। (नोसदासीत्तदानी) तस्मिन्काले सत्प्रकृत्यात्मकमव्यक्तं सत्संज्ञकं यज्जगत्कारणं तदपिनो आसीन्नावर्त्तते (नासीद्र०) परमाणवोऽपिनासन् (नो व्योमापरोयतः) व्योमाकाशमपरं यस्मिन् विराडाख्ये सोपिनो आसीत् किन्तु पर ब्रह्मणः सामर्थ्याख्यमतीवसूक्ष्मं सर्वस्यास्य परमकारणसंज्ञक मेवतदानींसमवर्त्तत। अर्थात् जब यह कार्य्य सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी तब शून्य नाम आकाश भी नहीं था और रजोगुण सतोगुण और तमोगुण मिलाकर जो प्रधान कहाता है वह भी नहीं था और उस समय परमाणु भी नहीं थे और विराट अर्थात् जो सब स्थूल जगत के निवासका स्थान है सो भी नहीं था, केवल उस परमात्मा की अत्यन्त सूक्ष्म सामर्थ्य ही थी।

तथा इसी पुस्तक के पृष्ठ १३३ में लिखा है कि उस परमेश्वरने अपने सामर्थ्यसे आकाशको भी रचा है जोकि सब तत्वों के ठहरनेका स्थान है, इत्यादि। त्रिपादूर्ध्वउदैत्पुरुषः। यजु० ३१—४। अर्थात् जब कि आकाश उत्पन्न नहीं हुआ था तिसके पूर्वही आपका मान्य निराकार ब्रह्म तीन हिस्सों में ऊपर अधर जा लटका। अब आप बतलावें कि ब्रह्म के विषय में ऐसी २ असम्भव बातें कौन व्यक्ति मान सकता है इत्यादि लेखों से आपके मान्य अनादि पदार्थ एक भी सत्य सिद्ध नहीं होते। और जबकि आपके मान्य अनादि पदार्थ सत्य सिद्ध नहीं

हैं तब ईश्वर को जगतकर्त्ता बतलाना सर्वथा मिथ्या है।

सत्यार्थप्रकाश में लिखित पाँच अनादि पदार्थों को यदि आप सत्य समझते हैं तो उन्हें वेद मंत्रों द्वारा सिद्ध करके दिखलावें, अन्यथा व्यर्थ समय खोने से लाभ क्या ?

आगे लिखा है कि—मुझे आपके धर्ममें अविद्या और असत्य दीखता है—इत्यादि। महाशय जी! जिस धर्म में आपका जन्म हुआ है उसमें सर्वथा अविद्याका ही स्वराज्य रहा है और उन्हीं संस्कारों के कारण आपको असत्य ही असत्य नज़र आता है। यदि आप पत्रों द्वारा कुछ समय तक निष्पक्ष होकर विचार करेंगे तो आपको "अविद्या और असत्य किस धर्म में हैं" इस बात का यथार्थ रूप से पता लग जायगा और आपके धर्म में जैसा मुझको दीख रहा है वैसा आपके सन्मुख स्वयं उपस्थित कर रहा हूँ—आप इसको अच्छी तरह विचार कर उत्तर लिखें और वह उत्तर प्रमाणसहित होगा, तब ही माना जायगा।

आगे लिखा है कि—इस जगत के सम्बन्ध में अनेक प्रश्नों का निर्णय पहिले न हो ले तब तक अमृत रूपी शास्त्र न तो मुझे और न आपको कोई लाभ पहुंचा सकते हैं—इत्यादि। महाशयजी। जिस जगत के विषय में आप पूर्वनिर्णय करना चाहते हैं वह आप-मान्य जगत अभी साध्य कोटि में है। आप जब तक उसको प्रमाणों द्वारा सिद्ध न करदें तब तक उसके विषय में निर्णय ही क्या कर सके हैं। प्रथम आप उसको ईश्वरकृत सिद्ध करके दिखलावें और इसी के लिये वैदिक प्रमाणों सहित विषय हमने लिख भी दिया है—आप उस का उत्तर वैदिक प्रमाणों द्वारा ही लिखें। विशेष आगामी।

आगे लिखा है कि—आप जैन सिद्धान्त से प्रत्येक जैनी को राग द्वेषात्मिका पुंज ही मानते हैं—इति। महाशय जी! इस आपके लेखसे पता लगता है कि अभी आपने जैन सिद्धान्त को अच्छी तरह से देखा नहीं और देखा है तो उसका मनन नहीं किया—क्योंकि उसमें अपेक्षाओं से कथन किया जाता है। आपने बिना समझे ही—प्रत्येक जैनीके साथ में—ही—का प्रयोग किया है और साथ में कोई आर्ष वाक्य का प्रमाण भी नहीं दिया, इसलिए जैनसिद्धान्त के विषय में आपकी अनभिज्ञता ही सिद्ध होती है।

स्वामी दयानन्द जी ने छठीवार के सत्यार्थ-प्रकाश पृष्ठ २०० में—द्वेष वा वैर को जीवका निजी गुण बतलाया है और वह प्रमाण इसप्रकार है—इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञान्यात्मनोलिङ्ग मिति। (इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थबल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक—ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इस लेख में स्वामी जी ने द्वेष वा वैर को जीव का निजगुण स्वीकार किया है और प्रथम वार के सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३९८ में लिखाहै कि हिंसा नाम वैर का है-सो योगशास्त्र पर व्यास भाष्यानुसार इस प्रकार लिखाहै कि—सर्वथा सर्वदा सर्व भूतेष्वनभिद्रोहः अहिंसा—यह अहिंसा का लक्षण है—इस का अभिप्राय यह है कि—सर्व-प्रकार से सब कालमें सब भूतोंमें अनभिद्रोह अर्थात् वैर का जो त्याग सो कहाती है अहिंसा—इत्यादि।

स्वामी दयानन्द जी ने उपर्युक्त लिखित गौतम सूत्र के भाष्य में तो द्वेष वा वैर को जीवात्मा का निजी गुण स्वीकार किया और लिख दिया कि—ये जीवात्मा गुण परमात्मा से भिन्न है और सत्यार्थ प्रकाशके प्रमाणमें—हिंसानाम वैर का लिखा है—इस कारण हिंसा जीवात्मा का निजी गुण होने से अहिंसा धर्म कदापि सिद्ध नहीं हो सक्ता है और इसी कारण वेदों में हिंसा का विधान सिद्ध होता है; फिर समझ में नहीं आता कि अपने काले हाथों को दूसरों के लगाने में ही आपने विशेष लाभ क्या समझा है ? आगामी आप बहुत सोच विचार के साथ ही कलम उठावें और जो भी आपको लिखने की इच्छा हो—लिखें परन्तु प्रमाण सहित अवश्य लिखें। यदि आप प्रमाण सहित नहीं लिखेंगे तो वह आपका लेख व्यर्थ समझा जावेगा।

आगे लिखा है कि—आप अनादि कालके मोहनीय कर्म से मूर्छित अवस्था में भी हैं तब सत्य और असत्य को जानने की योग्यता भी कुछ नहीं रखते—इत्यादि। महाशय जी! इस लेख से आप की द्वेष बुद्धि और जैन सिद्धान्त के विषय में अनभिज्ञता ही सिद्ध होती है। अच्छा है इसी तरह आप कुछ दिनों तक प्रश्नोत्तर करते रहेंगे तो सम्भव है कि निष्पक्ष बुद्धि होने से आपको जैन सिद्धान्तका परिचय हो जावे, परन्तु मैं आपसे पूछता हूं कि आपने जो जैनियों से सत्यासत्य-निर्णयार्थ पचास प्रश्न किये हैं वे मूर्छित अवस्था में किये हैं या अमूर्छित में। यदि मूर्छित अवस्था में प्रश्न किये हैं तो सत्यासत्य का निश्चय न होने से आपके प्रश्न ही व्यर्थ हैं। और अमूर्छित अवस्था में प्रश्न किये हैं तो आपको मेरे से प्रश्न करना ही व्यर्थ है—ज़रा कुछ तो सोच समझ कर लिखना चाहिये।

आगे लिखा है कि—मेरे विचारानुकूल मैंने जैनभाइयों से पचास प्रश्न किये थे जिनका सम्बन्ध केवल प्रत्यक्षादि प्रमाण और स्वात्म-प्रियता से है-इत्यादि। आपने उत्तरों के लिये—प्रत्यक्षादि प्रमाण और स्वात्मप्रियतारूप कसौटी को तो तैयार करदी परंतु आप तो करना वा छोड़ना सब वेदानुकूल ही मानते हैं इस लिये इस कसौटी को वेदानुकूल सिद्ध कर के दिखलावें अन्यथा आपकी कसौटी वेद-विरुद्ध होने से मिथ्या सिद्ध हो जावेगी।

अन्तिम आपको ध्यान दिलाया जाता है कि प्रथम आप—वेद ईश्वरकृत है, ईश्वर जगतकर्ता है और स्वामी जी का वेदार्थ वेदानुकूल सत्य है, इन बातों को सत्य सिद्ध करके दिखलावें और जब तक कि आप उक्त विषयों को प्रमाणों द्वारा सत्य-सिद्ध कर नहीं दिखला सकते हैं तबतक आपको जैनियोंसे प्रश्न करना ही व्यर्थ है। जैनी जगतको ईश्वरकृत नहीं मानते और आप मानते हैं इसलिये जब तक आपका जगत ईश्वर कृत सिद्ध न हो जावे तब तक तो आप जैनियों की कृपा से ही इस जगत में स्थित हैं और इसके लिये आपको उनका कृतज्ञ होना चाहिये।

ता० २२—१—३३

शीत ऋतु चर्या।

[ले०—श्री वैद्यराज पं० शङ्करलाल जैन, संपादक "वैद्य", मुरादाबाद]

[गताङ्क से आगे]

शीतऋतु में शरीर पर तैल को मलना शीत निवारण करने का अत्युत्तम उपाय है। तैल के द्वारा शरीर की त्वचा वायु की रूक्षता से सहज में शुष्क नहीं होती, और त्वचा के स्थिति-स्थापक गुण की वृद्धि होती है, इसलिये शीत का अनुभव कम होता है। अतएव इस ऋतु में शीत को दूर करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को सरसों, तिल, नारियल आदि के तेल अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार मलने चाहियें।

शरीर में गरमी उत्पन्न करने के लिये सबसे प्रधान वस्तु भोजन है। जिन खाद्य पदार्थों के द्वारा शरीर में स्वाभाविक ताप की वृद्धि हो, वे सब पदार्थ शीतकाल में अधिकता के साथ सेवन करने चाहियें। आजकल स्निग्ध, पौष्टिक, भारी और मधुर रस वाले पदार्थ विशेष हितप्रद हैं। गेहूं, उड़द, नये चावल, पूरी, कचौरी, खीर, खिचड़ी, दूध, दही, मक्खन, मलाई, छाछ, घी, तैल, मोहनभोग, लड्डू आदि नाना प्रकार के पाक और पौष्टिक पदार्थों के बने हुए हलुवे आदि खाद्य पदार्थ सेवन करने चाहियें। गेहूँ, उड़द, चावल, खीर आदि श्वेतसार वाले पदार्थ पाचक रस के साथ मिलकर शरीर में खांड को प्रस्तुत करते हैं; खांड, गुड़ और तरह २ के मिष्टान्न व पकान्न ताप को उत्पन्न करते हैं। घृत, तैल, दूध, मलाई आदि पदार्थ ताप उत्पन्न करके शरीर की पुष्टि करते हैं। इसके अतिरिक्त बादाम, अखरोट, चिलगोज़े, खुबानी, पिस्ते, खजूर, किशमिस, नारियल आदि सूखे और केला, सन्तरा, अमरूद आदि ताज़े फल तथा बथुआ, सरसों आदि के शाक घी या तैल में संस्कार कर खाने चाहियें। ऐसे पदार्थों के शीतकाल में सेवन करने से शीत कम लगता है और सर्दी, खांसी, जुकाम, क्षय आदि रोगोंका शरीर में शीघ्र प्रवेश नहीं हो पाता।

बालक, वृद्ध, दुर्बल और रोगी मनुष्यों के ताप उत्पन्न करने की क्रिया बहुत थोड़ी होती है, इसलिये उन्हें तैल व घृत वाले पदार्थ और श्वेत सार वाले पदार्थ सहज में नहीं पच सकते। अतएव ऐसे मनुष्यों को भारी और दुष्पाच्य पदार्थ कदापि नहीं सेवन करने चाहियें। क्योंकि उनसे उनके स्वास्थ्य की विशेष हानि हो सकती है। आजकल बहुत लोग अपनी अग्नि का बल और अपनी प्रकृति का कुछ भी विचार न करके, केवल दूसरों की देखादेखी बड़े बड़े भारी और दुष्पाच्य पाक व हलुए खाया करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्राप्य लाभ के बदले उन्हें हानि ही उठानी पड़ती है। कारण अग्नि की दुर्बलता व स्वभाव के विरुद्ध होने के कारण सबको पौष्टिक व भारी पाक आदि पदार्थ हज़म नहीं हो सकते। इसलिये उनके अजीर्ण,

कोष्ठबद्धता आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य को अपनी जठराग्नि और स्वभाव के अनुसार प्रत्येक ऋतु में आहारकी कल्पना करनी चाहिये। इस ऋतु में स्नानादि कार्यों के लिये गरम जल व्यवहार करना अधिक उपयोगी है, परन्तु जिनको स्नानादि में सदैव शीतल जल ही अनुकूल पड़ता है, उनको गरम जल व्यवहार करने की आवश्यकता नहीं है। इस ऋतु में पीने के लिये साधारणतः ताज़ा जल लेना चाहिये। किन्तु जिन को सर्दी, खांसी, जुकाम आदि की शिकायत अधिकता से रहती है, उनको रात्रि में अधिक शीतल जल नहीं पीना चाहिये। ऐसे मनुष्यों को रात्रि में मन्दोष्ण जल पीना बहुत लाभदायक है।

पहले लिखा जा चुका है कि इस ऋतु में शरीर पर तैल की मालिश करना अत्यावश्यक है। स्नान से पहले तेल की मालिश करने से शरीर पर दूषित वायु और जल का असर नहीं होता। एव मालिश के द्वारा तेल शरीर के रोम कूपों में प्रविष्ट होकर शरीर का अतिशय हित साधित करता है। स्नान से पहले शरीर पर अगर, चन्दन कपूर, केशर आदि पदार्थों का मर्दन करना भी विशेष लाभप्रद है।

शीतऋतु में शीतल वायु के लगने से सर्दी, जुकाम, आदि का होना एक साधारण बात है। कभी २ तो अधिक शीत के लगने से निमोनिया, छाती में दर्द, इन्फ्लुएञ्जा आदि बड़े २ भयङ्कर रोग हो जाते हैं; अतएव आजकल शीतल वायु से अधिक बचाव रखना चाहिए। विशेषकर बालक वृद्ध दुर्बल और रोगी मनुष्यों को रात्रि में खुली हवा से खूब बचाव रखना चाहिए। रात्री को खुली हवा में नंगे शरीर फिरना ठीक नहीं है, कारण उस समय की वायु का नग्न शरीर पर जितना जल्दी असर होता है, उतना अन्य समय की वायु का नहीं होता। इस कारण रात्रि अथवा दिन में जब शीतल हवा में जाने का काम पड़े, तब शरीर पर कपड़ों का अच्छे प्रकार से प्रबन्ध करके जाना चाहिए। इस मौसम में ओढ़ने, पहरने, बिछाने आदि के सब वस्त्र गरम, भारी, और रुई, ऊन आदि के होने चाहियें। पैरों में सदैव जूता और मोज़े पहरे रहना चाहिये। शीतकाल में शीतको निवारण करने की इच्छा से कदापि मद्यपान नहीं करना चाहिए। क्योंकि मद्य से शरीर में विशेष उष्णता नहीं बढ़ती, प्रत्युत रुधिर के शीतल हो जाने से शरीरकी हानि होती है। इति

जाड़ा, बुख़ार, खांसी, हड़कल, सर दर्द पर अनुभूत

मिर्च काली ११ दाने, गुलबनफ़शा ४ माशे, गाउज़बां ४ माशे, मुलैठी ६ माशे, कोकड़का कक्कसा ४ माशे, रेटें ५ दाने, सौंफ़ ४ माशे, गुल सुर्ख ४ माशे, मिसरी ३ तोले—इन सबको ४ छटांक पानी में औंटा कर २॥ छटांक रहने पर गर्म २ पीकर सो जावे। पसीना आकर सुबह हो तबीयत ठीक होगी। बच्चों को यह औषधि आधी देवें।

—हकीम कुन्दनलाल

हिचकी पर अनुभूत

काली मिर्च सुई में गाड़ कर, फिर उसको जलाकर उसका धुआं सिगरेट की तरह भीतर खींचा जाय तो हिचकी आना बन्द हो जाता है।

—एक जानकार

* समाचार-संग्रह *

२२५) इनाम

ता० १३-११-३३ को श्री जैन पंचायती मंदिर अलवर से श्री चन्द्राप्रभू की ६० तोला चाँदी की मूर्ति तथा ता० ११-१२-३३ को नसियाँ जी के मन्दिर से एक पीतल की मूर्ति और चांदी का छत्र तथा यंत्र जाता रहा है। पता लगाने वालेको १००) प्रति मूर्ति तथा २५) छत्र व यंत्र के लिये दिये जायंगे। हर तरह की पूछ ताछ निम्न पते पर करें:— ला० सूर्य्यमल जैन,

मंत्री जैन समाज, अलवर।

अब पत्र न भेजें

डेरा ग़ाज़ीख़ान की पाठशाला के लिये अनेक विद्वानों के निवेदनपत्र हमारे पास आये थे; हमने वे डेराग़ाज़ीख़ान भेज दिये। डेराग़ाज़ीख़ान के सज्जनों ने उनमें से एक विद्वान को नियुक्त कर लिया है। हम समय न मिलने के कारण शेष विद्वानों को पृथक २ पत्र नहीं दे सकते, अतः वे क्षमा करें। इस विषय में अब कोई महानुभाव पत्र न भेजें। —अजितकुमार जैन।

मुलतान दि० जैन तीर्थयात्रा संघ

श्री सम्मेदशिखर जी के लिए मुलतान से २५—३० स्त्री पुरुषों का संघ माघ वदी द्वितीया को रवाना होगा जो कि मार्ग में लाहौर, अमृतसर, सहारनपुर, हरिद्वार, देहली, मथुरा, आगरा, ग्वालियर, सोनागिरि, ललितपुर, चंदेरी, थूवोन, देवगढ़, इलाहाबाद, लखनऊ, अयोध्या, बनारस, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, आरा, पटना, गया, चम्पापुरी, पावापुरी, कुंडलपुर, राजगृही, कलकत्ता, खंडगिरि उदयगिरि में ठहरता जायगा। स्थान २ पर शास्त्र-सभा, व्याख्यान सभा, स्त्री सभा भी होती जावेंगी। प्रत्येक स्थान के सज्जनों को लाभ उठाना चाहिये। संघ में महिला लैक्चरार तथा गायन मंडली भी होगी। समय अधिक न मिलने से एक दो दिन से अधिक कहीं भी ठहरना न हो सकेगा।

फूटका फल

उदयपुर के दि० जैन नरसिंहपुरा भाइयों में मंदिर पूजन के विषयमें पारस्परिक झगड़ा हुआ, जिससे १२ दिन तक मंदिर का ताला बन्द रहा तथा मामला हाईकोर्ट में पहुंचा। कोर्ट ने मन्दिर की पूजन के लिये एक ब्राह्मण पुजारी रख दिया, जो कि वैष्णव विधिसे पूजन करता है। खेद!

प्रतापगढ़ में प्रतिष्ठा

फागुन सुदी २ से १२ तदनुसार ता० १५ से २६ फरवरी तक प्रतापगढ़ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, रथोत्सव, मंदिरपर ध्वजादंडारोहण आदि उत्सव, मेला होगा। उभय आचार्य संघ भी उस अवसर पर पधारेंगे।

जैन लायब्रेरी

ता० ५ दिसम्बर को धूलियान में "धूलियान जैन लायब्रेरी" स्थापित हुई है, जिसके प्रेसीडेण्ट बा० चांदमल जी पाटनी म्यूनिस्पिल कमिश्नर, वाइस प्रेसीडेण्ट बा० जमनालाल जी काला, सेक्रेटरी बा० धन्नालाल जी, ज्वाइण्ट सैक्रेटरी व लायब्रेरियन पं० जुगमन्दरदास जी नियत किये गये हैं। कुछ चन्दा भी हो गया है।

परिषद् का इटारसी अधिवेशन !

[सम्मान्य संवाददाता द्वारा प्रेषित]

ता० २८-१२-३३ को ही प्रायः अनेक प्रतिनिधि आ चुके थे। प्रतिनिधियों की कुल संख्या ४०० से ऊपर होगी। इस अधिवेशन में आए हुए सब ही सज्जन थे चुने हुए मनुष्य थे जिन्हें कि यथार्थ में प्रतिनिधि कहा जासकता है। हर व्यक्ति कुछ न कुछ विशेष व्यक्तित्व रखता था।

ता० २९ को परिषद् का अधिवेशन २ बजे से प्रारम्भ हुआ। मंगलाचरण व स्वागत गायन के बाद बाबू कस्तूरचन्द जी वकील के प्रस्ताव व अनेक सज्जनों के समर्थन पर बाबू जमुनाप्रसाद जी कलरैया एम. ए. एल-एल. बी., रायबहादुर एक्स. सबजज (चेमनरा दुर्ग) ने सभापति का आसन ग्रहण किया। पश्चात् श्री मूलचन्द्र जी निवारी (अर्जुन) स्वागताध्यक्ष ने अपना महत्वपूर्ण भाषण दिया। आपका भाषण करीब फुलिस्कप के २५-३० पत्रों से कम न होगा। कोई विषय ऐसा नहीं था जो आपके व्याख्यान में न आया हो; सारांश में यह कहा जा सकता है कि आपका भाषण अनेक महत्वपूर्ण भाषणों का निचोड़ था जिसमें जैन समाज की सभी कमज़ोरियों और उनके दूर करने के समुचित उपायों का आदर्श वर्णन था। आपका भाषण लिखित था इससे उसकी कापी नहीं मिली।

आपके भाषण के बाद सभापति साहेब का भाषण हुआ, जो कि छपा हुआ था।

इसके बाद जनता के विशेष आग्रह से विद्या-वारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी ने अपनी विलायत यात्रा के समाचार व वहाँ पर किये गये जैनधर्म प्रचार के कार्य की रिपोर्ट सुनाई। आपने इस कार्य के लिए अधिक से अधिक सहायता देने की अपील की।

इसके बाद विषय निर्धारिणी समिति का चुनाव हुआ व रात्रि में उसकी बैठक हुई जो दो बजे रात्रि में खतम हुई।

ता० ३०-१२-३३ को प्रातःकाल ही बाबू जमुना प्रसाद जी सभापति "सलमा नवयुवक मंडल" के डेरे पर पधारे और श्री सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी भेलसा से जैन साहित्य के उद्धार के लिये जो कि बाबू हीरालाल जी प्रोफेसर अमरावती द्वारा प्रचालू है और जिसमें सेठ अम्बादास जी कारंजा २५०००) लगा चुके हैं कम से कम १००००) रु० की प्रार्थना की—उन्होंने अपनी सरल प्रकृति साहित्य प्रेम की भावना के वशीभूत हो उक्त सेठ जी के चरणों में अपना मस्तक झुका कर भी उस महत्वपूर्ण कार्य के लिये भिक्षा माँगी और उदार सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी ने अपने सभापति साहब का समुचित आदर कर १००००) की स्वीकारता दे दी।

इसके बाद ९ बजे से एक ऐसी समिति योजना की गई जिसमें आये हुए सज्जनों का परस्पर एक दूसरे का परिचय कराया जावे। यह हमारे नवयुवक सभापति जी के मस्तिष्क की एक बिल्कुल नई उपज थी जिसकी वास्तव में अत्यन्त आवश्यकता थी।

परस्पर परिचय के बाद उपस्थित जनता ने सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी को जिन्होंने उपरोक्त दान किया था "श्रीमंत सेठ" की उपाधि देने का विचार किया। तदनुसार सेठ जी को सभा में गाजे बाजे के साथ बुलाया गया और उपस्थित जनता की इच्छा के अनुसार आपको शायद बार २ मना करने पर भी प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी पं० मूलचन्द्र जी के हाथ से तिलक व पगड़ी बांधकर "श्रीमंत सेठ" की उपाधि दी गई। पश्चात् शकुन्तला देवी छात्रा श्री महिला आश्रम देहली ने सेठ जी को बधाई दी। उस समय हमारे नवयुवक सभापति जी के उक्त सेठ जी से प्रार्थना की कि वे उपस्थित जनता को दर्शन देवें और १००००) के दान की स्वीकारता देते हुए महिलाश्रम को भी इस देवी की बधाई के उपलक्ष में कम से कम १११) प्रदान करें। हर्ष है कि सेठ जी ने खड़े होकर उपस्थित जनता को दर्शन दिए और दस हज़ार के बदले में ११०००) रुपया जैन साहित्य उद्धार के लिए, तथा ५०१) महिलाश्रम देहली को प्रदान किए। इसके अलावा आपने २०१) जैन परिषद् को भी प्रदान किए।

पश्चात दोपहर के एक बजे से परिषद् का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ जिसमें २१ प्रस्ताव पास हुए और रिपोर्ट वगैरा पढ़कर सुनाई गई।

"जैनदर्शन" की आवश्यक सूचनायें!

(१) "जैनदर्शन" का प्रकाशन हर महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हो जाता है।

(२) इस का वार्षिक मूल्य केवल ३॥) है, किन्तु संघ के मेम्बरों से वार्षिक मेम्बरी फीस सहित ३) एवं संस्थाओं तथा विद्यालयों से केवल २) लिया जाता है। [इस वर्ष उपहारी पुस्तकों के पोस्टेज के लिये प्रत्येक से =) और अधिक लिया जा रहा है।]

(३) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय, मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २-२ प्रतियाँ "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद जैन विद्यालय भदैनी घाट बनारस" के पास और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/O 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहिये।

(४) इस पत्र में अश्लील व धर्म-विरुद्ध विज्ञापन नहीं छापे जाते। इसी कारण विज्ञापन छपाने के रेट बहुत कम रखे गये हैं, जो निम्न प्रकार हैं। इनमें किसी प्रकार भी कमी करने के लिये लिखना व्यर्थ होगा। कुल रुपया पेशगी लिया जाता है; अतः कृपया विज्ञापन के साथही कुल रुपया भेजिये:—

	एक बार	३ मास (६ बार)	एक वर्ष (२४ बार)
१. साधारण पूरा पृष्ठ	४)	२०)	७२)
२. साधारण आधा पृष्ठ	२॥)	१२॥)	४१)
३ टाइटिल पूरा पृष्ठ (पृष्ठ २-३-४)	६)	३०)	१००)
४. टाइटिल आधा पृष्ठ	४)	२०)	६०)

नोट—मुख पृष्ठपर विज्ञापन छपाई केवल आधे ही पृष्ठकी ७) ली जाती है। साधारण पृष्ठोंमें आधे पृष्ठ से कम जगह के विज्ञापनों पर ।) प्रति लाइन प्रति कालम के हिसाब से चार्ज किया जाता है।

सर्व प्रकार के पत्र व्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैनदर्शन" C/O दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

परिषद् का अधिवेशन !

इटारसी में परिषद् का अधिवेशन खूब धूमधाम से होगया। हमारे एक सम्मान्य संवाददाता ने—जो छपारा में महासभा का अधिवेशन देख चुके थे और महासभा तथा परिषद् की कार्यप्रणाली की तुलना करने की दृष्टि से ही पहिली बार इटारसी के अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे—अधिवेशन के जो समाचार भेजे हैं उन्हें देखते हुए हमारा मत है कि अधिवेशन कई अंशों में सफल रहा। भारतवर्ष के सुदूर प्रान्तों से अनेक प्रतिष्ठित प्रतिनिधियों का ४०० की संख्या में सम्मिलित होना इस बात को सूचित करता है कि अंग्रेज़ी शिक्षित समुदाय में अब कार्य करने की भावनाएं जाग्रत होने लगी हैं। भिन्न २ कार्यों के सम्बन्ध में २१ प्रस्ताव पास किये गये जिनमें एक दो प्रस्ताव विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। जैसे १. रियासतों में अनेक जगह धर्मबाधाएं आया करती हैं, इस सम्बन्ध में नरेन्द्र मण्डल से लिखा पढ़ी करना ताकि ऐसा न हो सके। २. किसी भी अपराध पर स्त्री या पुरुष का मन्दिर बन्द न किया जावे बल्कि अपराध के अनुसार जातीय दण्ड दिया जाये और दण्ड अङ्गीकार न करने पर ही जाति बहिष्कार किया जावे।

रियासतों में जैन मुनियों के विहार में आए दिन रुकावटें आती रहती हैं—निज़ाम हैदराबाद का ताज़ा उदाहरण आंखों के सामने है। इसके प्रतीकार के लिये कोई उपाय होना आवश्यक है। यद्यपि नरेन्द्र मण्डल से लिखा पढ़ी करने की बात प्रस्ताव में की गई है तथापि हमें उससे विशेष लाभ की आशा नहीं होती। कारण, नरेन्द्र मण्डल में सब राजा लोग सम्मिलित नहीं हैं। फिर भी यदि मण्डल इस तरफ़ लक्ष देगा तो आगे कार्य करने के लिये मार्ग खुल जायेगा।

सामाजिक या धार्मिक अपराध करने वालों को जिनदर्शन से वंचित करना दण्डदाताओं की नैतिक भूल का परिणाम है। संभव है इस प्रथा के प्रचलित होने के समय में इससे कुछ लाभ हुआ हो। किन्तु इस समय तो यह प्रथा धर्म का घात करने वाली ही सिद्ध हो रही है। मन्दिर बन्द कर दिये जाने से अनेक स्त्री पुरुष दुःखी होकर विधर्मी बन जाते हैं और अपने अमूल्य मनुष्य भव को व्यर्थ गंवा कर संसार पथ के पथिक हो जाते हैं। यदि परिषद् पंचायत के मुखियाओं से इस प्रस्ताव

को अमल में लाने में समर्थ हुई तो वह अनेक मनुष्यों के आत्मकल्याण करने में सहायक हो सकेगी। अन्त में परिषद अधिवेशन के एक अन्य महत्व पूर्ण कार्य का उल्लेख करना आवश्यक है; वह कार्य है दिगम्बर साहित्य के प्रकाशन के लिए ११०००) का दान। इस दान ने अधिवेशन के महत्व को बहुत अधिक बढ़ा दिया है।

परिषद् अधिवेशन पर लेखनी चलाते हुए, हृदय में रह २ कर एक दुःख भरी आह हमें व्यथित कर रही है। जर्जरित दि० जैन समाज शरीर के दो अवयव जुदे २ होकर नाच रहे हैं। एक सुदूर पूर्व में है तो दूसरा पश्चिम की ओर। मेल हो तो कैसे हो। अन्त में हमारी यही कामना है कि श्री जिन देव की भक्ति, परिषद के उत्साही कार्यकर्त्ताओं को सर्वदा सुपथगामी बनाये रहे।

आदर्श दान

इटारसी में परिषद अधिवेशन के समय, भेलसा के दानी नररत्न सेठ लक्ष्मीचन्द जी ने ११०००) एक मुश्त दिगम्बर साहित्य के प्रकाशनार्थ दान किया है। इस उपयोगी एवं आवश्यक दान के लिए सेठ जी को जितनी भी बड़ाई की जाये थोड़ी है। बुन्देल खण्ड तथा सी० पी० प्रान्त देव-मन्दिरों के निर्माताओं की खान है। वहां प्रति वर्ष एक दो बिम्बप्रतिष्ठा (गजरथ) खूब धूम धाम से होती रहती हैं। उनमें जोमन (दावतें) भी होती हैं; हजारों रुपया खर्च किया जाता है। उसी प्रान्त के एक दानी ने जिनबाणी के उद्धार के लिये संभवतः सर्व प्रथम इतनी बड़ी रकम देकर वहाँ के जैनों के लिए एक आदर्श उपस्थित कर दिया। जिनदेव और जिन बाणी दो वस्तु नहीं हैं—केवल समझ का फेर है। इस दान के उपलक्ष में इटारसी की उपस्थित जैन जनता ने भी सेठ जी को श्रीमंत की उपाधि से विभूषित करके अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है।

हम सेठ जी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं किन्तु (सेठ जी क्षमा करें) हमें उनके इस दान से पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ है। कारण, आपने करीब १ लाख रुपया खर्च करके भेलसा में विशाल जैन धर्मशाला बनवाई है तब क्या जिनबाणी माता की शाला के लिए केवल ग्यारह हज़ार। इतने में तो माता का एक अंग भी न संवारा जा सकेगा। अस्तु—आपने माता की दीन हीन दशा पर ध्यान देकर उसके उद्धार का मार्ग खोल दिया है। सम्भव है अन्य दानी भाई भी माता के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करें। अधिवेशन के सभापति बाबू जमनाप्रसाद जी कलरैय्या बैरिष्टर का सत्प्रयत्न भी अभिनन्दनीय है जिन्होंने सेठ जी से जिनवाणी माता के उद्धार के लिये आंचल पसार कर भीख मांगी और भावावेश में आकर सेठ जी के पैरों में अपना मस्तक झुका दिया। अन्त में हम अपने मित्र प्रो० हीरालाल जी को—जिनकी दिगम्बर साहित्य के प्रकाशन की योजना इतनी जल्दी कार्य रूप में परिणत होने जा रही है—इस सफलता के लिए बधाई देते हैं।

हमारा-संयमी समुदाय

[गतांक से आगे]

उदासीन श्रावकों के ज्ञानाभ्यास के लिये इन्दौर में उदासीनाश्रम खोला गया था। उसका कार्यभार श्रीमान पं० पन्नालाल जी गोधा

को सौंपा गया, जो कि अभी तक चल रहा है। यद्यपि इस आश्रम में कुछ उदासीन श्रावक थोड़ा बहुत धर्मशास्त्र का अभ्यास करते हैं किन्तु इस संस्था के द्वारा जितना कार्य होना चाहिये उतना नहीं हुआ।

क्योंकि एक तो इस आश्रम के उदासीन कोई प्रतिमा धारण कर ऊंचा संयम ग्रहण नहीं करते और न संस्कृत भाषा, लेखन, व्याख्यान आदि सीखने का अभ्यास ही करते हैं इस कारण आश्रम से निकले हुए उदासीन धार्मिक प्रचार के लिये अच्छे उपयोगी साबित नहीं होते। स्वर्गीय श्रीमान् ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी न्यायतीर्थ की भावना थी कि त्यागी लोग अच्छे विद्वान बनें, किन्तु उनकी भावना सफल न हो सकी। उसके बाद किसी ने इस ओर लक्ष्य नहीं दिया।

इस समय जैनसमाज को ऐसे प्रभावशाली संयमियों की आवश्यकता है जो कि अच्छे व्याख्यानदाता हों। समय आने पर शास्त्रार्थ कर सकते हों तथा जिनको दर्शन शास्त्रों का अच्छा ज्ञान हो और जो अच्छे मार्मिक लेख लिख सकते हों।

श्वेताम्बर समाज में आज अनेक अच्छे अच्छे विद्वान् साधु हैं, कतिपय न्यायतीर्थ आदि परीक्षा पास हैं। श्री जिनविजय जी सरीखे इतिहास आदि अनेक विषयों के अच्छे विद्वान हैं। हमारे यहां यदि श्रीमान न्यायाचार्य पंडित गणेशप्रसाद जी वर्णी सरीखे २-१ विद्वान त्यागी हुए तो क्या हुआ।

श्रीमान पं० पन्नालाल जी गोधा को अपने आश्रम में संस्कृत भाषा तथा न्याय, साहित्य आदि पढ़ाने का प्रबन्ध करना चाहिये। इस उच्च शिक्षा से उदासीन रहना उचित नहीं।

हमारे नेताओं को त्यागी महानुभावों से तीव्र प्रेरणा करनी चाहिये कि वे कम से कम २-३ वर्ष एक स्थान पर ठहर कर विद्याभ्यास करें। जब तक उनमें धार्मिक प्रचार के योग्य अच्छी योग्यता न आ जावे तब तक भ्रमण न करें।

स्वामी समन्तभद्राचार्य ने अपने ज्ञानबल से जो भारतवर्ष में स्थान स्थान पर बड़े बड़े शास्त्रार्थ करके जैनधर्म का प्रचार किया था वह आदर्श कार्य हमारे त्यागी महानुभावों का लक्ष्य होना चाहिये। अपने आपको महान मानकर ज्ञानाभ्यास से अपने आपको बचाना अपना अहित करना है। आपको स्मरण होगा कि स्वर्गीय पूज्य मुनि अनन्तकीर्ति जी महाराज दक्षिण देश से मुरैना में ज्ञानाभ्यास करने पधारे थे।

इसके सिवाय हमारे त्यागियों में धर्मप्रचार करने की भी बहुत कमी है वे नगरों में तो भ्रमण करते हैं किन्तु गाँवों में पधारते भी नहीं, जिससे कि ग्रामीण दिगम्बरी भाई उपदेश न मिलने से अज्ञानतावश धर्म से शिथिल होते जा रहे हैं। रोहतक, मेरठ, हिसार, कैथल आदि के आस पास जो सैकड़ों घर स्थानकवासी हो गये हैं उसका विशेष कारण यही है कि वहां प्रचारार्थ न तो कोई त्यागी महानुभाव पहुँचे और न कोई उपदेशक ही पधारे।

श्रीमान ब्रह्मचारी मूलचन्द्र जी को धन्यवाद देना चाहिये जो कि स्थानकवासी भाइयों में अच्छा प्रचार कर रहे हैं। क्या हम आशा करें कि हमारे त्यागी महानुभाव इस पर कुछ ध्यान देने की कृपा करेंगे।

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[११]

श्री भद्रबाहु स्वामी तथा चन्द्रगुप्त की गुरुशिष्यता एवं समकालीनता सिद्ध करने वाले चन्द्रगिरि पर्वत पर तथा उसके आसपास और भी निम्नलिखित शिलालेख विद्यमान हैं :—

५. शिलालेख

तदन्वये शुद्धमतिप्रतीते, समग्रशीलामलरत्नजाले ।
अभूद्यतीन्द्रो भुवि भद्रबाहुः,पयःपयोधाविव पूर्णचन्द्रः

भद्रबाहुरग्रिमस्समग्रबुद्धिसम्पदां
शुद्धसिद्धशासनः सुशब्दबन्धसुन्दरम् ।
इद्धवृत्तसिद्धिरत्र बद्धकर्मभित्तपो
वृद्धिवर्द्धितप्रकीर्तिरुद्धधीर्महर्द्धिकः ॥ ७ ॥

यो भद्रबाहुःश्रुतकेवलीनांमुनीश्वराणामिहपश्चिमोऽपि अपश्चिमोऽभूद्विदुषां विनेता सर्वश्रुतार्थप्रतिपादनेन यदीयशिष्योऽजनिचन्द्रगुप्तस्समग्रशीलानतदेववृद्धः विवेश यत्तीव्रतपःप्रभावात्प्रभूतकीर्तिर्भुवनान्तराणि

अर्थ—समस्त, निर्मल शीलरूपी रत्नसमूह से परिपूर्ण तथा शुद्ध बुद्धिशाली उस मुनिवंशमें क्षीर-सागर में चन्द्रमा समान भद्रबाहु आचार्य हुए।

समस्त बुद्धिमानों में भद्रबाहु स्वामी अग्रेसर थे। वे शुद्ध एवं सिद्ध शासन करने वाले थे तथा जिनकी व्रतसिद्धि सुन्दर प्रबन्ध से शोभित थी, एवं—बद्धकर्मों की छेदक तपऋद्धि से जिनकी कीर्ति बढ़ी हुई थी ऐसे महामतिमान महर्द्धिधारी भद्रबाहु स्वामी थे। भद्रबाहु स्वामी यद्यपि श्रुतकेवली मुनियों में सबसे अन्तिम थे किन्तु समस्त शास्त्रों के प्रतिपादक होने के कारण अपने समय के विद्वानों में सबसे प्रथम थे। उन भद्रबाहु स्वामी का शिष्य चन्द्रगुप्त अपने पूर्ण शीलव्रत से बड़े बड़े देवों को भी नम्रीभूत करने वाला था, जिसकी तपस्या के प्रभावसे उसका यश समस्त देशों में फैल गया था।

यह शिलालेख भी सम्राट् चन्द्रगुप्त के गुरु श्री भद्रबाहु स्वामी को अन्तिम श्रुतकेवली प्रथम भद्रबाहु बतलाता है।

इन शिलालेखों के सिवाय हम यहाँ पर कनड़ी भाषा के दो शिलालेख और भी उपस्थित करते हैं जो कि कावेरी नदी के पश्चिमी किनारे पर बसे हुए रामपुर नामक ग्राम के खेत में उस ग्राम के अधिपति सिंगरी गौड़ा को प्राप्त हुए हैं।

६. शिलालेख

श्री राज्यविजय सम्वत्सर सत्यवाक्य परमानदि गल्तु आलुत्त नालिकनेय वर्षात् मार्गशीर मासद परतले दिवास भाग स्वस्ति समस्त विद्यालक्ष्मी प्रधाननिवास प्रभव प्रणत सकल सामन्तसमूह भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मुनिपति चरण लांछनाश्चित विशाल सिरकल वप्पु गिरिसनाथ बेलगुलाधिपति गणधा श्रीधर मतिसागर पण्डित भट्टार वेम्दोल अन्नयनुं देवकुमारनुं धोरनुं इलदुर आरणे वाणपल्लिय कोण्ड श्रीके सिग·········तले नेरिपुल कट्टन कट्टु सुडरके कोट्टस्थिति क्रमवपन्तुव यन्दोहे बंडर नियनीर वयगिय गिड़ वरिस पेत्तेन्दि परद-नेय वरिसमेड़ अलघिमुरने यवरिस दन्दिग यडल-वीयेलाकलांक यल्लं इल्द गुलल्तु सलगु।

भावार्थ—समस्त लक्ष्मी, सरस्वती का निवास-स्थल बेलगोलाधिपति और समस्त सामन्तों द्वारा नमस्कृत श्रीमान् भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त महामुनियों के चरणों से मण्डित कटवप्र नामक पर्वत सदा विजयशील रहे।

सत्यवाक्य परमानदी महाराजके राज्य के चौथे वर्ष में मार्गशीर्ष शुक्लाष्टमीको श्रीमतिसागर पंडित भट्टारक को आज्ञानुसार अन्नय्या, देवकुमार और घोरा इन तीनों ने वेनपल्ली के खरीददार केशी के लिये तेल्लुर में सेतु निर्माण के बदल में निम्नलिखित दान दिया है :—सम्पूर्ण ग्रामवासियों ने खेती के लिये इस सेतु से जल लेने का प्रयोग किया। प्रथम वर्ष में बिना कुछ दिये ही जलका उपयोग करना, द्वितीय वर्ष में कुछ देकर उपयोग करना और तृतीय वर्ष में जो कुछ दिया जायगा वही निश्चित रूप से निर्द्धारित कर समझा जाय।

७. शिलालेख

[नौवीं शताब्दी का]

भद्रमस्तु जिनशासनाय। अनवरत······अखिल सुरासुर नरपति मौलिमाला·········चरणारविन्द युगल सकल श्रीराज्य युवराज्य भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मुनिपति चरणमुद्रणाङ्कित विशाल·········मान जगल ललामापित श्री कल्लवप्पु तीर्थ सनाथ बेलगुल निवासी···········श्रव (म) ण संघ स्याद्वादाधारभूतरप्पा श्रीमत्स्वस्ति सत्यवाक्योङ्गुणि वर्म्मा धर्म महाराजाधिराज कुवलाल पुरवरेश्वर नन्दि गिरिनाथ स्वस्ति समस्तभुवनविनुतगङ्ग कुलगगन निर्मलतारापतिजलधि जलधिपुल विलय मेखलाकलापालंकृतैलाधिपत्य लक्ष्मीस्वयम्वृतपतित वद्य अगणितगुणगणभूषणभूषितविभूति श्रीमत्पर मानदि गङ्ग पेरेयप्पमरं इल्लुवगि परमनदि गल कलावसन्द आचयरप्पा परविङ्ग कुमारसेन भट्टारक पदे स्थितिविलय अक्कियं सोल्लगयु विट्टिउनट्टपर मन यल्लाकलकम् सर्वबाधा परिहरं आग विट्टिसि-दार इदन लिङ्ग अडोनं कोडन पशुवं परवरं केरेयं अमेयं वनोसियुनं अलिदं पञ्चमहापातकं।

देवस्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते।
विषमेकाकिनं हन्ति देवस्वं पुत्रपौत्रकं॥

यह शिलालेख क्यातन हल्ली ग्रामके दक्षिण भाग में जो बस्ती है वहीं है।

भावार्थ—जैनधर्म मंगलमय हो। समस्त सुर असुर तथा राजाओं के नतमस्तक होने के कारण मुकुटमणियों की चमक से प्रकाशमय चरणकमल वाले श्रीमान भद्रबाहु स्वामी को नमस्कार करो।

मोक्षराज्य के युवराज, स्याद्वाद के संरक्षक, बेलगोलस्थश्रमणसंघके अधिपति अपने चरणकमल से जगद्भूषण कटवप्र पर्वत को पवित्र करने वाले श्रीमान भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मुनि हमारी रक्षा करें। गंगराज कुल आकाश के निष्कलंक चन्द्रमा और कुवलपुर तथा नंदगिरिके स्वामी श्री सत्य-वाकोङ्गुणि वर्मा धर्म महाराजाधिराज की स्तुति सभी संसार ने की है। समुद्रमेखलासे परिवेष्टित तथा पृथ्वी के स्वयम्वरित पति सकलगुणविभूषित श्री परमानदि परेयप्पसरप्पाने जिनेन्द्रभवन के लिये श्रीमान कुमारसेन भट्टारक को निम्नलिखित दान दिया है :—एक ग्राम—स्वच्छ चावल—बंगार—घी—इन दानकी सामाग्रियोंके अपहरण करने वालों को हिंसा और पंच महापातक का पाप लगेगा।

केवल विष ही विष नहीं कहलाता किन्तु देव-

द्रव्य को भी घोर विष समझना चाहिये । क्योंकि विष तो केवल खाने वाले को ही मारता है किन्तु देवद्रव्य समस्त परिवार का नाश कर डालता है।

ये शिलालेख संघभेद की दिगम्बरीय कथा पर प्रामाणिकता की अखंड छाप लगाते हैं तथा निम्न-लिखित बातें सिद्ध करते हैं:—

१—चन्द्रगुप्त नामके साथ मुनीन्द्र आदि विशेषणों का होना यह साबित करता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने मुनिदीक्षा ली थी।

२—स्थान २ पर स्वामी भद्रबाहु के साथ शिष्य-स्वरूपमें उनका नाम आना इस बात का परिचायक है कि चन्द्रगुप्त भद्रबाहु स्वामी के शिष्य थे और उन के साथ कटवप्र पर्वत पर उन्होंने तपस्या की थी।

३—चन्द्रगुप्त के गुरु भद्रबाहु स्वामी द्वितीय भद्रबाहु नहीं थे क्योंकि उनके नाम के साथ अन्तिम श्रुतकेवली विशेषण आया है।

४—भद्रबाहु स्वामी के शिष्य चन्द्रगुप्त भी सम्राट् चन्द्रगुप्त ही थे; द्वितीय चन्द्रगुप्त नहीं थे। क्योंकि द्वितीय चन्द्रगुप्त से बहुत समय पहले श्रुत-केवली भद्रबाहु का स्वर्गवास हो गया था।

इसके सिवाय कटवप्र पर्वतपर विद्यमान चन्द्र-गुप्त बस्ती, भद्रबाहु गुफा, भद्रबाहु चरण आदि पदार्थ भी दिगम्बरीय कथा का तथा भद्रबाहु चन्द्र-गुप्त की समकालीनता को अकाट्यरूप से सिद्ध करते हैं।

[क्रमशः]

विद्यार्थी-जीवन में काव्य साहित्य पढ़ने की आवश्यक्ता

[लेखक—एक साहित्य का विद्यार्थी]

[गताङ्क से आगे]

चन्द्रप्रभचरित के रचयिता श्रद्धेय श्री वीर-नन्दि आचार्य उसी ग्रंथ में राजनीति का उपदेश देते हैं—

> कुर्याः सदा संवृतचित्तवृत्तिः
> निजानुमेयानि परेहितानि।
> गूढात्ममंत्रः परमंत्रभेदी
> भवत्यगम्यः पुरुषः परेषाम् ॥

भावार्थः—राजपुत्र, अपने दिल की बात दिल में रखो और शत्रुओं की चेष्टाओं को जानने का प्रयत्न करो। इस तरह जो अपने विचार को गुप्त रखता है और दूसरों की मंत्रणा का भण्डाफोड़ करता है, उस तक किसी शत्रु की पहुँच नहीं होती।

"शरीर परिमाण आत्मा, अन्यथा शरीराफल्य मात्माफल्यं वा" इति आर्हताः। आत्मा शरीर के बराबर है, अन्यथा—शरीर से छोटा या बड़ा मानने पर—या तो शरीर ही विफल है या फिर आत्मा। इस जैन सिद्धान्त का समर्थन करते हुए, कविराज राजशेखर अपनी काव्यमीमांसा में एक लौकिक उदाहरण देते हुए लिखते हैं—

> शरीर मात्रमात्मानं ये वदन्ति जयन्ति ते।
> तच्चुम्बनेऽपि यज्जातः सर्वांग पुलकोऽस्यमे ॥

अर्थ—जो शरीर परिमाण आत्मा को मानते हैं वे ही सर्व विजेता हैं क्योंकि स्त्री का चुम्बन करते ही सारे शरीर में एक दम रोमाञ्च हो जाता है।

वीर रस को जीवन दान देने वाले कवि शिरोमणि भारवि, द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर से कहते हैं—

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम् विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं जटाधरः सञ्जुहुधीहि पावकम् ॥

(किरातार्जुनीय पेज ५०)

भावार्थ—यदि आप पराक्रमहीन होकर क्षमा को ही नित्य सुख का साधन समझते हैं तो राजत्व के चिन्ह धनुष को ताक में रखकर बाबा बन जाइये।

कविवर बाणभट्ट जिनसे कोई उपमा बची ही नहीं है, सती प्रथा के विरोध में कैसी उत्तम युक्ति बतलाते हैं—

"अत्र हि विचार्यमाणे स्वार्थ एव प्राणपरित्यागोऽयमसह्यशोक वेदना प्रतीकारत्वादात्मनः। उपरतस्य तु न कमपि गुणमावहति। न तावत्तस्यायं प्रत्युज्जीवनोपायः,न धर्मोपचयकारणमिति।"

(कादम्बरी पूर्वभाग)

भावार्थ—यहाँ यदि विचार किया जाय तो (सती होने के लिये) प्राण त्याग करना स्वार्थ ही मालूम होता है क्योंकि अपने असह्य शोक की वेदना का प्रतीकार है। स्त्री के आग में जलने से मृत व्यक्ति का कुछ भला तो होता नहीं—वह जीवित नहीं हो जाता तथा न धर्मसंचय ही होता है।

प्रसिद्ध कवि माघ संसार की विचित्रता का वर्णन करते हैं—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम्
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधि ललितानां ही विचित्रोविपाकः।

भावार्थः—कुमुदवन कान्तिहीन हो रहे हैं। कमल श्री शोभा को प्राप्त हो रही है। उल्लू का आनन्द भंग हो गया है। चकवा मुहब्बत की खुशियाँ मना रहा है। सूर्य उदय हो रहा है। चन्द्रमा अस्त होता है। दैव के दुर्विपाक से प्रसित लोगों की कोई विचित्र ही हालत होती है !!!

पाठक स्मरण करेंगे कि यह वही श्लोक है जिसके केवल "ही" शब्द के लिये राजा भोज ने प्रणेता को एक लाख रुपया भेंट किया था। यही शब्द वास्तव में संसार की विचित्रता बतलाता है।

इस तरह शृंगार रसप्रधान काव्यों से शिक्षाप्रद श्लोक संकलित करके, १८ वर्ष की उम्र तक, करुण और वीर रस प्रधान यथासंभव अन्यरस प्रधान भी काव्य खुशी से पढ़ाये जा सकते हैं। कोई हानिका संभव कारण नहीं प्रतीत होता। बाद उसके शृंगार रस प्रधान भी पढ़ सकते हैं। शृंगार रस के काव्यों को पढ़ते समय तथा कथित युवकों को अपने दिल में कविराज राजशेखर का यह श्लोक खयाल रखना चाहिये—

येषां वल्लभया समं क्षणमिव स्फाराः क्षपा क्षीयते
तेषां शीततरः शशी विरहिणामुल्केव संतापकृत।
अस्माकं न तु वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंशिना-
मिन्दु राजति दर्पणाकृतिरयं नोष्णो न वा शीतलः।

तात्पर्य यह कि हम लोगों को कवि की प्रतिभा,

वर्णनशैली और वस्तु के याथार्थ्य (Reality) की ओर रुचि रहनी चाहिये। कालिदास के यदि "अधरः किसलयरागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू । कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धं" इस श्लोक को पढ़ा जाय तो निश्चय ही यह प्रतीति होती है कि शकुन्तला का शरीर अत्यन्त सरस और पुष्पवत कोमल था। उसके यथार्थ वर्णन में तदनुरूप ही पद कवि ने रक्खे हैं। पढ़ते ही कोमलता झलकती है। यदि इसी तरह के अन्य नायिकाओं के सत्य स्वभाव के वर्णन करने वाले जैसे "कालो मधुः कुपित एव च पुष्पधन्वा" इत्यादि श्लोकों को पढ़कर जो अपनी परिपक्व अवस्था में भी कुचेष्टाओं में पड़ जाते हैं, वे मनुष्य नहीं हैं--नितान्त पतित एवं भीरु हैं। यह वीरता का लक्षण नहीं। संभवतः ऐसे महाशय विपत्ति में फँसी हुई किसी तरुण बाला का उपकार भी नहीं कर सकते।

साधारणतया लोगों ने "ज्ञातास्वादो विवृत जघनां को विहातुं समर्थः" इत्यादि कालिदास के तात्पर्य का उल्टा गृहण करने की चेष्टा करके अपने को १८ वर्ष का बना लिया है। दर असल कवि का वह अभिप्राय ही नहीं है। वहाँ पर काकु है। मेघ के बहाने दुनिया को कवि व्यंग मुख से कहता है—ज्ञाता..................विहातुं समर्थः को ऽस्त्यस्ति ? नास्ति कश्चिदिति। अर्थात् दुनियाँ में लम्पटी बहुत हैं, निर्लम्पटी मुश्किल से एक दो। कवि दुनियां पर विषयी और भोगविलासिता की बौछार करता है। हम उसकी कृति को विपरीत बुद्धि या अनुभव शून्यता से प्रयोगार्ह समझते हैं! "कः" शब्द ही बतलाता है कि यह सामान्य उक्ति है।

अलावा इसके, भाषा--सौन्दर्य ❀, उसे सत्प्रयोगों द्वारा धनी बनाना काव्य का ही कार्य है। आनन्द जनक होने से(Aesthetical point of View) भी काव्य उपादेय है। अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध लेखक Charles Dickens इस सामान्य शब्द विन्यास "The sky was bright and pleasant, the air balmy and the appearance of every object around was also beautiful" की रचना जिस साहित्यिक कलानुसार करते हैं—Bright and pleasant was the Sky, balmy the air and beautiful the appearance of every object around उसे पढ़ते ही आनन्द उत्पन्न होता है। लेखक ने दूसरी रचना को कविता का सा रूप दे दिया है जिससे प्रकृति के सौन्दर्य का अनुकूल वर्णन, लेखक के आनन्दमय स्वभाव का भी परिचय मिलता है। संस्कृत गद्य काव्य, "दशकुमार" में भी इसी तरह के वर्णन मिलते हैं—"कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा समी कृतारयो रयो पहसित समीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशसं राजानमाचकर्षुः।"

इस तरह आबाल वृद्ध उपयोगी होने से काव्य उपादेय है। अतः छात्रावस्था में भी उक्त क्रम से पढ़ना कोई क्षति पहुँचाने वाला नहीं—प्रत्युत श्रेयस्कर है, आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

❀ इतना ही नहीं, भाषा का पिता साहित्य है, उसके बिना भाषा कोई चीज़ नहीं। हर एक भाषा मनुष्य जाति की है; इसलिये उसका और उससे सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तु का वर्णन करना काव्य का मुख्य अंग है।

[१२]
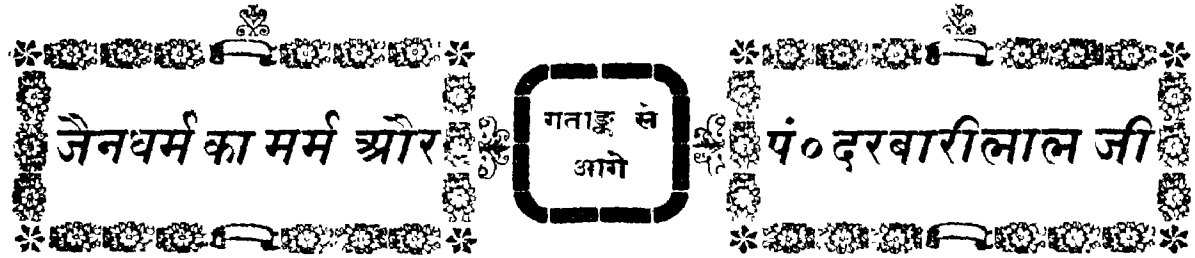
दर्शनोपयोग का वास्तविक स्वरूप

पंडित दरबारीलाल जी ने दर्शनोपयोग के स्वरूप को प्रश्नोत्तर के रूप में निम्नलिखित शब्दोंद्वारा प्रगट किया है:—"स्वरूपग्रहण अर्थात् आत्मग्रहण को दर्शन कहते हैं और परवस्तु के ग्रहण को ज्ञान कहते हैं। दर्शन अनुभवरूप है, इसलिये उसको चैतन्य भी कहते हैं। यह निर्विकल्पक होता है। ज्ञान कल्पनारूप है, इसलिये यह सविकल्पक है। प्रश्न—दर्शनोपयोग तो सभी प्राणियों को होता है परन्तु आत्मग्रहण सभी को नहीं होता। आत्मज्ञान तो सम्यग्दृष्टि कर्मयोगी केवली आदि को होता है। इसलिये आत्मग्रहण दर्शन कैसे हो सकता है? उत्तर—सम्यग्दृष्टि आदि को जो आत्मग्रहण होता है वह शुद्धात्म ग्रहण है......यहाँ तो दर्शन शब्द का अर्थ बाह्य पदार्थों के ज्ञान के लिये उपयोगी आत्मग्रहण है। प्रश्न—बाह्य पदार्थों के ज्ञान के लिये उपयोगी आत्मग्रहण कैसा? उत्तर—हम किसी भी बाह्य पदार्थ को तभी ग्रहण कर सकते हैं जब उसका कुछ न कुछ प्रभाव अपने ऊपर पड़ता है। जैसे—हम किसी पदार्थ को तभी देखते हैं जब उसमें से किरणें अपनी आंख पर पड़ती हैं; जब तक उसकी किरणें आंखों पर नहीं पड़तीं तब तक वह दिखलाई नहीं देता। अंधेरे में हमें दिखलाई नहीं पड़ता इसका कारण यही है। चक्षु अपने शरीर का एक अवयव है जिसके साथ कि आत्मा बंधा हुआ है। इसलिये आत्मा चक्षु के ऊपर पड़े हुए प्रभावों को अनुभव करता है, यही दर्शन है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों और मन के ऊपर पड़े हुए प्रभावों का अनुभव करना भी दर्शन है। इस दर्शन के बाद जो हमें पर पदार्थ की कल्पना होती है उसे ज्ञान कहते हैं। घड़े ने जो हमारे ऊपर प्रभाव डाला उसका जो हमें अनुभव हुआ वह दर्शन है और इस अनुभव से जो हमें घड़े के अस्तित्व आदि की कल्पना हुई वह ज्ञान है"।

दरबारीलाल जी ने अपने इस वक्तव्य में एक जगह तो आत्मग्रहण को दर्शन लिखा है और दूसरी जगह चक्षु आदि इन्द्रियों पर पड़े हुए प्रभावों का आत्मा द्वारा अनुभव करना दर्शन बतलाया है। आत्मा का ग्रहण और आत्मा द्वारा ग्रहण ये दो बातें हैं। जहाँ कि "आत्मा का ग्रहण" में आत्मा कर्म है वहीं आत्मा द्वारा ग्रहण में आत्माकरण और इन्द्रियों पर पड़ा हुआ प्रभाव कर्म है। क्या दरबारीलाल जी का दर्शनोपयोग के सम्बन्ध

में इस प्रकार का वक्तव्य परस्पर विरोधी कथन नहीं है ? दूसरी बात यह है कि वह प्रभाव जो कि इन्द्रियों या मन पर पड़ता है और जिसके ग्रहण को दरबारीलाल जी दर्शनोपयोग बतलाते हैं क्या पदार्थ है ? यदि नेत्रेन्द्रिय के सम्बन्ध में ही इसको घटित किया जाय तो क्या यह उन किरणों [illegible] जो कि पदार्थ से आ रही हैं और पदार्थाकार हैं या उनका पूर्व रूप !

यदि किरणों का सम्बन्ध है तब तो इसके ग्रहण और पदार्थ ग्रहण में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। पदार्थ ग्रहण भी तो तभी होता है जबकि पदार्थ से सम्बन्धित और अतएव पदार्थाकार किरणें चक्षु से सम्बन्धित हो जाती हैं तथा यही अवस्था चक्षु पर प्रभाव की है। इस प्रकार तो यह भी ज्ञान ही हो जाता है, क्योंकि परपदार्थ के ग्रहण ही का नाम तो ज्ञान है। दरबारीलाल जी स्वयं भी इसको स्वीकार कर चुके हैं। चक्षु सम्बंधी प्रभाव से तात्पर्य यदि चक्षु पर पड़े हुए किरणों के पूर्व रूप से है तो यह किरणों का पूर्वरूप भी क्या है—किरणों की तरह ही पदार्थाकार अन्य किरणें या अन्य पदार्थाकार किरणें अथवा अपदार्थाकार किरणे ? पहिले पक्ष में तो पूर्वोक्त ही दूषण आता है। दूसरे पक्ष में भी यही बात है, क्योंकि सम्बन्धित किरणें किसी भी पदार्थाकार क्यों न सही वे तो नेत्रेन्द्रिय पर अपने जैसे आकार की ही उत्पादक होंगी और फिर वैसा ही ज्ञान होगा ! अतः इस पक्ष में भी दर्शन ज्ञान ही हो जायगा। तीसरे पक्ष में बात यह है कि इस प्रकार की किरणोंका प्रभाव ही नेत्र पर नहीं पड़ सकता। ऐसी किरणों का सम्बन्ध तो केवल स्पर्शेन्द्रिय से ही माना जा सकता है। यह तो नेत्रेन्द्रिय के सम्बन्ध की बातें हैं, स्पर्शनादिक अन्य इन्द्रियों में तो इस प्रकार के प्रभाव की और भी अधिक मिट्टी पलीत है। नेत्रेन्द्रिय में तो किरणों के द्वारा पदार्थ की आकृति आ जाती है, अतः इस प्रकार के प्रभाव के घटित होने की कल्पना भी उठाई जा सकती है किन्तु स्पर्शनादिक इन्द्रियों में तो इस प्रकार की कल्पना को भी स्थान नहीं है। स्पर्शनादिक के द्वारा तो वे ही पदार्थ ग्रहण होते हैं जिनका सम्बन्ध कि इनसे हो जाता है। सम्बन्ध और ग्रहण में कोई समयभेद भी नहीं, अतः यहाँ तो इस प्रकार के प्रभाव की कल्पना भी नहीं हो सकती। जब हम अपने ध्यान को मन की तरफ़ ले जाते हैं तब यह बात और भी असंभव जचने लगती है। नेत्र में किरणों द्वारा और स्पर्शनादिक में विषयस्पर्श से विषयसम्बन्ध की गुंजायश थी, किन्तु मन में तो इन दोनों ही बातों को लेश मात्र भी स्थान नहीं है। अतः वहां इस प्रकार के प्रभाव की तो बात ही क्या हो सकती है ? यदि थोड़ी देर के लिये अभ्युपगमसिद्धान्त से प्रभाव और आत्मा द्वारा उसका अनुभव भी स्वीकार कर लिया जाय तब भी निम्नलिखित विकल्पों का उठना अनिवार्य है:—आत्मा इस प्रभाव को इन्द्रियों की सहायता से अनुभव करती है या बिना ही सहायता के ? पहिले पक्ष में यह ज्ञान ही ठहरता है, क्योंकि जिस प्रकार अन्य पदार्थों को आत्मा इन्द्रिय के द्वारा जानता है उसही प्रकार इस प्रभाव को भी। जबकि अन्य पदार्थों का ग्रहण ज्ञान है फिर प्रभाव का ग्रहण ज्ञान क्यों नहीं ? दूसरे पक्ष में भी यही बात है, क्योंकि इन्द्रियों की सहायता न

लेने पर भी आखिर तो आत्मा प्रभाव— पर पदार्थ— को ही जानना है। उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि इस प्रकार के प्रभाव का अस्तित्व ही अनिश्चित है जिसको कि दर्शनोपयोग का विषय माना जा सके। दरबारीलाल जी ने अपने दर्शन सम्बन्धी लेख में अनेक मतों पर विचार किया है और अन्त में यह परिणाम निकाला है कि दिगम्बराचार्य श्री जयधवलकार का मत इस सम्बन्ध में युक्ति युक्त है। अतः यहां हम दरबारीलाल जी के उपर्युक्त कथन की समीक्षा उक्त दिगम्बराचार्य के मतानुसार भी करते हैं। पाठक दर्शनोपयोग के सम्बन्ध में श्री धवलकार के मत और उसके अर्थ के सम्बन्ध में हमारे और पं० दरबारीलाल जी के मत भेद को सरलता के साथ जान सकें, अतः यहां हम श्री धवल के इस सम्बन्धी वाक्य और उसका पं० दरबारी लाल जी का हिन्दी अर्थ उद्धृत किये देते हैं—दृश्यते ज्ञायतेऽनेनेति दर्शनमित्युच्यमाने ज्ञान दर्शनयोरविशेषः स्यात् इति चेन्न अन्तर्बहिर्मुखयोश्चित प्रकाशयोर्दर्शन ज्ञान व्यपदेश भाजो रेकत्व विरोधात्। त्रिकाल गोचरानन्त पर्यायात्मकस्य जीव स्वरूपस्य स्व क्षयोपशम वशेन संवेदनं चैतन्यं स्वतो व्यतिरिक्त बाह्यार्थावगतिः प्रकाशः इति अन्तर्वहिर्मुखयोश्चित्प्रकाशयोर्जानात्यनेनात्मानं बाह्यमर्थमिति च ज्ञानमिति सिद्धत्वादेकत्वं ततो न ज्ञान दर्शनयोर्भेदः इति चेन्न ज्ञानादिव दर्शनात् प्रतिकर्म व्यवस्थाभावात्। ततः सामान्य विशेषात्मक बाह्यार्थ ग्रहणं ज्ञानं तदात्मक स्वरूप ग्रहणं दर्शनमिति सिद्धं। सत्यमेवमनध्यवसायो दर्शनं स्यात् इति चेन्न स्वाध्यवसायस्य अनध्यवसायबाह्यार्थस्य दर्शनत्वाद्दर्शनं प्रमाणमेव। आत्म विषयोपयोगस्य दर्शनत्वेऽङ्गीक्रियमाणे आत्मनो विशेषाभावात् चतुर्णामपि दर्शनानामविशेषः स्यात् इति चेन्नैष दोषः यद्यस्य ज्ञानस्योत्पादकं स्वरूप संवेदनं तस्य तद्दर्शनव्यपदेशात् न दर्शन चातुर्विध्यानियमः। श्रीधवल के इन वाक्यों का पं० दरबारीलालजीने निम्नलिखित हिन्दी भाषांतर किया है:—

"प्रश्न—जिसके द्वारा जानते हैं देखते हैं वह दर्शन है, ऐसा कहने पर दोनों में क्या भेद रहेगा? उत्तर—दर्शन अन्तर मुख है अर्थात् आत्मा को जानना है उसको चैतन्य कहते हैं ज्ञान बहिर्मुख है वह परपदार्थ को जानना है उसको प्रकाश कहते हैं; इनमें एकता नहीं हो सकती। प्रश्न—आत्मा को और बाह्यार्थ को जाने उसे ज्ञान कहते हैं। यह बात जब सिद्ध है तब त्रिकालगोचर अनंत पर्यायात्मक जीव स्वरूप का अपने क्षयोपशम से वेदन करना चैतन्य और अपने से भिन्न बाह्यार्थों को जानना प्रकाश यह बात कैसे बन सकती है? इसलिये ज्ञान दर्शन में भेद नहीं रहता। उत्तर—ज्ञान में जिस प्रकार जुदी २ कर्म व्यवस्था है अर्थात् जैसे उसके जुदे २ विषय हैं वैसे दर्शन में नहीं है। इसलिये सामान्य विशेषात्मक बाह्यार्थ ग्रहण ज्ञान और सामान्य विशेषात्मक स्वरूप ग्रहण दर्शन सिद्ध हुआ। प्रश्न—यदि ऐसा माना जायगा तो दर्शन अनध्यवसाय हो जायगा। इसीलिये यह प्रमाण न होगा। उत्तर—नहीं, दर्शन में बाह्यार्थ का अध्यवसाय न होने पर भी आत्मा का अध्यवसाय होता है; इसलिये वह प्रमाण है। प्रश्न—आत्मोपयोग को यदि आप दर्शन कहोगे तो आत्मा तो एक ही तरह का है, इसलिये दर्शन भी एक ही तरह का होगा; फिर दर्शन में चार भेद

क्यों किये ? उत्तर—जो स्वरूप सम्वेदन जिस ज्ञान का उत्पादक है वह इसी नाम से कहा जाता है। इसलिये चार भेद होने में बाधा नहीं है।"

पं० दरबारीलालजी ने मोटे टाइप के नं० १, ३ और ४ के वाक्योंमें आये हुये अन्तर्मुख, स्वाध्यवसाय और आत्मोपयोग शब्दों के दर्शन अंतरमुख है अर्थात् आत्मा को जानता है, आत्मा का अध्यवसाय और आत्मोपयोग अर्थ किये हैं। आत्मा शब्द इन तीनों ही शब्दों में मिलता है, अतः विचारणीय यह है कि यहां आत्मा शब्दका क्या अर्थ है ? आत्म द्रव्य या चेतना गुण ? यदि आत्मा शब्द से दरबारीलाल जी का अभिप्राय आत्म द्रव्य से है तब तो यह युक्ति संगत नहीं। यहां ऐसी कोई भी बात नहीं जिससे इन वाक्यों के साथ आत्मद्रव्य का सम्बन्ध घटित किया जा सके—इन वाक्यों में जितने भी शब्द प्रयुक्त हुये हैं उनमें भी कोई ऐसी बात ध्वनित नहीं होती जिससे कि आत्म द्रव्य को यहां लिया जासके। अन्तर और स्व शब्दों का अर्थ आत्मद्रव्य नहीं तथा यहाँ आत्मोपयोग शब्द भी स्वोपयोग के अर्थ मेंप्रयुक्त हुआ है जैसा कि आत्मोपयोग शब्द वाले वाक्य के उत्तर वाले वाक्य से प्रगट है। आत्मोपयोग शब्द जिस वाक्य में प्रयुक्त हुआ है उसके द्वारा शास्त्रकार ने यह शंका उपस्थित की है कि यदि आत्मोपयोग का नाम ही दर्शन है तो आत्मोपयोग तो एक ही प्रकार का होता है फिर दर्शन के चार भेद कैसे रहेंगे। इसके उत्तर में शास्त्रकार ने लिखा है कि जो २ स्वरूप सम्वेदन जिस २ ज्ञान के उत्पादक हैं वे वे उस २ नाम से कहे जाते हैं। प्रश्न में आचार्य ने जिस अर्थ में आत्मोपयोग शब्द का प्रयोग किया है उत्तर में उसही अर्थ में स्वरूप सम्वेदन शब्द का प्रयोग हुआ है। स्वरूप सम्वेदन का अर्थ आत्मद्रव्य सम्वेदन कदापि नहीं हो सकता। अतः निश्चित है कि यहां पर आत्म सम्वेदन का अर्थ भी आत्म द्रव्य सम्वेदन नहीं है। इससे प्रगट है कि यहां आत्म शब्द का अर्थ आत्म द्रव्य कथमपि नहीं लिया जा सकता। जहाँ कि आत्म शब्द का अर्थ आत्म द्रव्य करनेमें आधार का अभावहै वहीं इसका अर्थ चेतना गुण करने में अनेक प्रमाण मौजूद हैं। पहिली बात तो यह है कि ये शब्द ही इस अर्थ को बतलाते हैं। इन शब्दोंमें स्व शब्द का प्रयोग उस वाक्य में हुआ है जो कि एक प्रश्न का उत्तर स्वरूप है। प्रश्न यह है कि इस प्रकार तो दर्शन अनिश्चयात्मक हो जायगा। इस बात के उत्तर में शास्त्रकारने लिखा है कि यह बात ठीक नहीं, क्योंकि दर्शन बाह्यार्थ का अनिश्चयात्मक होने पर भी स्व का निश्चयात्मक है। इससे प्रगट है कि स्व शब्द का प्रयोग दर्शन के ही लिये हुआ है। इसी प्रकार आत्मोपयोग शब्द का प्रयोग भी स्वरूप सम्वेदन के अर्थ में ही हुआ है। इसका खुलासा हम पूर्व ही कर चुके हैं। यहाँ तो हमको केवल इतना ही लिखना है कि श्रीधवल कार ने उस ही वाक्य में यह भी लिखा है कि जो २ स्वरूप सम्वेदन जिस २ ज्ञान का उत्पादक होता है वह २ उस २ दर्शन के नाम से कहा जाता है। दर्शन या ज्ञान स्वतंत्र गुण नहीं किन्तु चेतना गुण की पर्याय हैं, यह बात दरबारीलाल जी भी स्वीकार कर चुके हैं। दर्शन ही ज्ञान रूप परिणमन करता है। यदि इस ही को दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि चेतना गुण ही अपनी दर्शन रूप अवस्था का त्याग करके ज्ञानरूप परिणमन करता है। अतः यह भी निश्चित है कि चेतना गुण की ज्ञान

रूप अवस्था में उस ही गुण की दर्शन रूप अवस्था ही उपादान कारण है †। कार्य की विभिन्नता से कारण में भेद माना जाता है, अतः यहां भी ज्ञानों की विभिन्नतायें उनके कारण दर्शन की विभिन्नता की निश्चायक हो जाती हैं। चेतना गुण की इस अवस्था में यदि इसको स्व निश्चायक ही माना जाता है तब तो यह विभिन्नता तदवस्थ रहती है और फिर दर्शनभेद की नियामक होजाती है। यदि इस अवस्थामें चेतना गुणको आत्म द्रव्य निश्चायक माना जाता है तो वह इस प्रकार की सभी अवस्थाओं में आत्म द्रव्य निश्चायक ही रहता है और ऐसा होने से फिर चेतना गुण की इस अवस्था में उस विभिन्नता का अभाव हो जाता है जिसके आधार से कि दर्शन में भेद स्वीकार किया गया है। इससे प्रगट है कि स्वरूप सम्वेदन में भी स्व शब्द का अर्थ दर्शन ही है। दूसरी बात यह है कि इन वाक्यों के अतिरिक्त स्वयं श्री धवलकार के ही अन्य वाक्य भी हैं जो कि इस ही अर्थ का समर्थन करते हैं। श्रीधवलकार ने स्पष्ट लिखा है कि—

"ततः सामान्य विशेषात्मक बाह्यार्थ ग्रहणं ज्ञानं तदात्मक स्वरूप ग्रहणं ज्ञानमिति सिद्धं" अर्थात् सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थों का ग्रहण करना ज्ञान है और सामान्य विशेषात्मक स्वरूप का ग्रहण दर्शन है।

एक बात इस सम्बन्ध में और भी उल्लेख योग्य है और वह यह है कि आचार्य अमृतचन्द्र और ब्रह्मदेव भी, जिनकी दर्शनोपयोग सम्बन्धी मान्यता को स्वयं पं० दरबारीलाल जी श्रीधवलकार की मान्यता के अनुसार ही मानते हैं, हमारे ही वक्तव्य का समर्थन करते हैं।

लघीयस्त्रय के टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा है कि ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से दर्शन ही अर्थ विशेष ग्रहण लक्षण स्वरूप अवग्रह रूप से परिणमन करता है; जैसे आकाश में यह वस्तु ! ‡ आचार्य अमृतचन्द्र का दर्शन और अवग्रह के स्वरूप को आकाश में यह वस्तु वाले दृष्टान्त से स्पष्ट करना बतलाता है कि जिस प्रकार खाली आकाश में वस्तु के आने से यह कहा जाता है कि आकाश में यह वस्तु है उसही प्रकार केवल चैतन्य में बाह्य पदार्थों के प्रतिभासित होने से यह कहा जाता है कि यह अमुक पदार्थ ग्रहण स्वरूप अवग्रह है। दर्शन का ही ज्ञान स्वरूप परिणमन बतलाना और फिर खाली आकाश में वस्तु के दृष्टान्त से उस ही में वस्तु का प्रतिभासित होना बतलाना स्पष्ट प्रमाणित करता है कि यहाँ दर्शन शब्द का अर्थ चैतन्य गुण का केवल स्व प्रकाश ही है।

इसही प्रकार ब्रह्मदेव ने लिखा है कि जैसे एक ही अग्नि जलाने से दाहक और पचाने से पाचक कहलाती है उसही प्रकार एक ही चैतन्य भेद नय की दृष्टि से जब अपना ही प्रकाश करती है उस

---

† कार्योत्पादः क्षयः हेतोः।—देवागम, स्वामी समन्तभद्र।

‡ दर्शनमेव ज्ञानावरण वीर्यान्तराय क्षयोपशम विजृम्भितमर्थ विशेष ग्रहण लक्षणावग्रह रूपतया परिणमत इति यथा आकाशे इदं वस्त्विति लघीयस्त्रय।

समय उसको दर्शन और जब दूसरों को ग्रहण करती है तब ज्ञान कहते हैं। ※

पं० दरबारीलाल जी ने दर्शनोपयोग के स्वरूप को इससे भिन्न रूप से माना है जिसको हम पूर्व ही उद्धृत कर चुके हैं। अतः स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी का दर्शनस्वरूप श्रीधवल के कथन के अनुसार नहीं है।

दूसरी बात यह है कि दर्शन को आत्मद्रव्य निश्चायक मानने पर उसको प्रमाणरूप ही नहीं माना जा सकता! ज्ञेय की यथार्थता प्रमाणता की सूचक है और अयथार्थता अप्रमाणता की। आत्म-द्रव्य जिसका निश्चायक कि दर्शन को माना जाता है उसही रूप हैं जिस प्रकार से कि दर्शन उसको प्रकाशित करता है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। जब तक कि ज्ञेय की यथार्थता का ही निश्चय न हो जाय तबतक उसके ज्ञानको प्रमाणरूप ही नहीं स्वीकार किया जा सकता! मिथ्या दृष्टि के दर्शन को तो प्रमाणरूप कहा ही नहीं जा सकता। जबकि दर्शन का स्वरूप चेतनागुण की केवल स्वप्रकाशात्मक (चैतन्य प्रकाशात्मक) अवस्था मानते हैं तब यह बाधा उपस्थित नहीं होती, क्योंकि चैतन्य गुण तो स्वयं प्रकाशात्मक है। वह न अपने किसी अंश विशेष को छिपा सकता है और न दूसरे को ही अपने में सम्मिलित कर सकता है। वह तो जितना और जिस रूप है उतना और उस रूप से ही प्रकाशित होगा। अतः उसमें यह बाधा उपस्थित नहीं हो सकती।

तीसरी बात यह है कि उस समय जबकि हम घटादिक पदार्थों को जानते हैं आत्मद्रव्य का भी प्रतिभास होना चाहिये, क्योंकि ज्ञान को तो स्वपर व्यवसायात्मक माना है तथा स्वव्यवसाय का अर्थ विद्वान लेखक ने आत्मद्रव्य व्यवसायात्मक किया है। घटादिक पदार्थों को जानते समय आत्मद्रव्य का प्रतिभास नहीं होता यह हर एक जानता है। जबकि स्वव्यवसाय का अर्थ चेतनागुण की अवस्था विशेष—प्रकाशात्मिका—किया जाता है तब यह बाधा उपस्थित नहीं होती, क्योंकि घटादिक के प्रकाश के समय भी वह अपना प्रकाश भी तो करती है। ऐसा कौन प्रकाशात्मक तत्त्व है जो अपना प्रकाश किये बिना ही दूसरे पदार्थों का प्रकाश कर सके!

प्रश्न—जब हम रूप को देखते हैं तब यही तो कहते हैं कि हम रूपवान को देख रहे हैं। इसही प्रकार यदि चेतना के प्रकाश को चेतनावान्—आत्मद्रव्य—का प्रकाश कह दिया जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर—रूप के द्वारा रूपवान को जानना या कथन करना प्रमाणज्ञान या कथन है इसही प्रकार चेतना के द्वारा चेतनावान का ज्ञान या कथन भी! जहां इस प्रकार का ज्ञान या कथन हो वहाँ यह व्यवस्था घटित हो सकती है किन्तु प्रकृत विषय में नहीं। प्रकृत में दर्शनोपयोग का विवेचन इससे भिन्न विवेचन है। यहाँ द्रव्यदृष्टि से आत्मद्रव्य का विचार नहीं किन्तु यहाँ तो गुण और पर्याय दृष्टि से

※ यथैकोऽप्यग्निर्दहतीति दाहकः पचतीति पाचको विषयभेदेन द्विधा भिद्यते तथैवाभेद नये नैकमपि चैतन्यं भेद नय विवक्षायाम् यदात्म ग्राहकत्वेन प्रवृत्तं तदा तस्य दर्शनमिति संज्ञा पश्चात् यच्च परद्रव्यग्राहकत्वेन प्रवृत्तं तदा तस्य ज्ञानसंज्ञेति विषयभेदेन द्विधा भिद्यते।—बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा ४३।

चेतना और दर्शन का विचार है। अतः यहाँ नय-ज्ञान एवं कथन ही लागू होगा! इससे प्रगट है कि यहाँ उस दृष्टि से आत्मद्रव्य का ग्रहण नहीं हो सकता!

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि न इन्द्रियों पर पड़े हुए प्रभावों का अनुभव करना दर्शन है और न आत्मद्रव्य का अनुभव ही दर्शन है किन्तु चेतना-गुण जिस समय केवल अपना प्रकाश करता चेतना गुण की इस अवस्था का नाम दर्शन है ब्रह्मदेव ने इस ही को एक दृष्टान्त के द्वारा भ स्पष्ट किया है। वे बतलाते हैं कि जिस सम हमारा उपयोग एक विषय से हट जाता है किन्तु दूसरे पर लगता नहीं है उस समय जो चेतनागुण की अवस्था होती है उसका नाम दर्शन है। [क्रमशः

आचार्य कुन्द कुन्द और उनका समय

[अनुवादकः—श्री पं० खुशालचन्द्र जी शास्त्री, स्या० वि०, काशी]

[गताङ्क से आगे]

जन्म स्थान

आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म स्थान तथा कार्य-क्षेत्र कहाँ था? यह विचारणीय है। जन्मभूमि के विषय में कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता है, अतः इस विषय में भी हमें लिखित और मौखिक दन्त-कथाओं का आश्रय लेना पड़ता है। "पुण्याश्रव कथा कोष" में हमारे चरित्रनायक का नाम शास्त्र-दान-महत्व के दृष्टान्त रूप में उल्लिखित है, कथा निम्न प्रकार है:—

"भारतवर्ष के दक्षिण खण्ड में पिडथनाडु (Pidatha Nadu) जिला के कुरुमरई (Kurum ari) नगर में एक करमुण्ड नाम का धनिक वणिक रहता था, जिसकी श्रीमती नाम की धर्मपत्नी थी। इनके मतिवर्ण नाम का ग्वाला नौकर था जोकि इन की गायें चराने ले जाया करता था। एक दिन उसने जंगल में देखा कि पूरा बन दवार से जला जा रहा है, तो भी थोड़े से बीच के पेड़ हरे हैं। यह देख उसे इसका कारण जानने की उत्कण्ठा वहाँ ले गई, पहुँचने पर उसने देखा कि वहां एक मुनि का निवास स्थान है और एक शास्त्रों की एक पेटी भी रक्खी है, अशिक्षित होने के कारण स्थान का सुरक्षित रहना—शास्त्र सद्भाव निमित्तक मानकर उन्हें भक्ति, भाव पूर्वक घर उठा लाया, और अपने मालिक के घर में अच्छे तथा पवित्र स्थान पर उन शास्त्रों को स्थापित करके प्रति दिन पूजा करने लगा। एक समय एक मुनि महाराज उनके घर आये, सेठ जी ने भक्तिपूर्वक आहार दान दिया और ग्वाले ने वे शास्त्र भेंट किये, इन दोनों दानों से प्रसन्न होकर मुनि महाराज ने दोनों को आशीर्वाद दिया।

पश्चात् मतिवर्ण ग्वाला मरकर सेठ जी की स्त्री श्रीमती की कुक्षि से पुत्र हुआ, जो बाद में

शास्त्रदान के प्रभाव से जैन संसार में कुन्दकुन्दाचार्य नामसे ख्यात हुआ। इसके बाद उनके धार्मिक जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन है। यथा—

पूर्व विदेहस्थ सीमंधर स्वामी द्वारा उनका विश्व बुद्धिमान कहा जाना, अतः दो चारणों का उनकी परीक्षा करने आना, ध्यानस्थ होने के कारण इनके द्वारा उनका सत्कार न होना, असंतुष्ट हो चारणों का लौट जाना, वहाँ इनके द्वारा सत्कार न करने का कारण बताया जाना, चारणों का पुनः कुन्दकुन्दके पास जाना, परस्परमें सख्य होना और उनके साथ विदेह जाना, आदि घटनायें विस्तार पूर्वक वर्णित हैं। शास्त्रदान प्रभाव से ही वे जैन तत्त्व के ज्ञाता और संघ नायक हुए, और अन्त में आचार्य हो अवशिष्ट आयु को सार्थक और कीर्तिमय बनाया।

'दिगम्बर जैन' सूरत से पम्फ्लेट रूप में प्रकाशित कुन्दकुन्दाचार्य चरित्र में इन का बाल्यकाल वर्णन दूसरे प्रकारहै:—मालवा देशके किसी नगरमें कुन्दश्रेष्ठि तथा कुन्दमाला नामके दम्पति इनके पिता माता थे, बालक कुन्दकुन्द पढ़ने के लिये एक धर्मगुरु के पास भेजे गये। इन्होंने अपनी बाल्यावस्था में ही मुनिवृत्तिका परिचय दिया, इसलिये यह मुनि दीक्षा दे संघ में प्रविष्ट कर लिये गये। इसके आगे का चरित्र पूर्व कथा से मिलता जुलता है। उक्त दोनों कथायें पौराणिक हैं। दूसरी तो, ऐसा मालूम देता है कि किसी कल्पनाशील मस्तिष्क ने बाद को माता पिता के नाम के आधार पर गढ़ डाली है। प्रथम कथा में वर्णित स्थान को हम आसानी से निश्चित नहीं कर सके, अतः केवल इतना माना जा सक्ता है कि चरित्रनायक दक्षिण देश के थे। यदि हम इन दोनों कथाओं को व्यर्थ समझ कर छोड़ दें तो हमें आगमिक प्रमाणबल पर कहना पड़ेगा कि वे द्रविड़ संघ के थे। "दिगम्बर सम्प्रदाय के मूलसंघ विभाग में 'द्रविड़संघ' विशेष ध्यान देने योग्यहै, जिन्हें 'द्रविड़ियन' भी कहते हैं। इस (द्रविड़संघ) में अनेक कुल हुये हैं जिनमें कुन्दकुन्दान्वय प्रधान माना गयाहै।"(जैन स्मारक रिपोर्ट की भूमिका पृष्ठ ४२)। *

गेरीनट (Guerinot) महाशय की यह राय विस्तीर्ण प्रमाणोंके आधार पर है, अतः कुन्दकुन्दाचार्यको द्रविड़ सिद्ध करनेके लिये सफल संकेत है।

इसके अतिरिक्त उन्हें द्रविड़ देशीय सिद्ध करने के लिए और भी प्रमाण एकत्रित करने पड़ेंगे। एक हस्तलिखित शास्त्र में 'मंत्रलक्षण' वर्णन में अधोलिखित श्लोक मिलता है:—

"दक्षिण देशे, मलाये हेम ग्रामे मुनिर्महात्मासीत
एलाचार्यो नाम्ना द्रविड़ गणाधीशो धीमान्।"

यह श्लोक हमारे काम का है, इसका सम्बन्ध कुन्दकुन्द की एक शिष्या से है जिसे ब्रह्मराक्षस सताता था। वह विदुषी होने पर भी हेमग्राम के पास की पहाड़ी नीलगिरी पर चढ़ जाती थी, और कभी रोती कभी हंसती थी। कहा जाता है कि यह

* "La communauto digambra portrait le nom de Mula Sangha Unsynonyme de ce terme parait. Etra Dravila Sangha qui ne signifie saus doubte rien de puls que Communaute "Des pays dravidiaus". La Mula Sangha comptait plusieurs sectes dont la plus importante etait le Kunda Kunda anvaya" (P. 42. Introduction, Reportaire epigraphic Jaina) इस वाक्यांश के फ्रेंच भाषा में होने के कारण इसका भावानुवाद दिया गया है।

एलाचार्य द्वारा 'ज्वालामालिनीकल्प' के एक मंत्र से निरोग की गई थी। सौभाग्यवश इस श्लोक में कथित सब स्थान भी हम निश्चित कर सके हैं।

मद्रास प्रेसीडेन्सी के उस हिस्से का नाम मलाय है, जो उत्तरी और दक्षिणी आर्काट के मिलने से बनता है, और जिसे पूर्वीघाट विभाजित करता है। मलाया का मध्यभाग कल्लाकुरिचि (Kalla Kurichi) त्रिनवन्नामाली (Trinvannamali) वनदेवाश (Wandewash) के मिलने स बनता है। वन्देवाश के निकटस्थ पोन्नूर (.Ponnur) ग्राम का संस्कृतनाम हेमग्राम है। इसीके पास एक छोटी सी पहाड़ी है जिसका नाम नीलगिरी है। इसके ऊपर अब भी एक शिलापर एलाचार्य के पद चिन्ह हैं, यह स्थान उनका तप स्थान कहा जाता है। अब भी यात्री वर्ष में १ बार चरण पूजा करने वहा जाते हैं। श्लोक में एलाचार्य को 'द्रविड्गणाधीश' कहा है, और हम अच्छी तरह जानते हैं कि एलाचार्य, कुन्दकुन्द का ही दूसरा नाम था।

जैन दन्तकथाओं के अनुसार एलाचार्य तामिल ग्रन्थ 'तिरुक्कुरल' (Thirukkural) के कर्ता हैं। यह ग्रन्थ प्राचीन तामिल के 'वेन्व' (Venva) छन्द में रचा गया है। जैन कथानुसार उक्त ग्रन्थ एलाचार्य ने ही लिखकर अपने शिष्य 'थिरुवल्लुवर (Thiruvalluvor) को दे दिया था जिसने इसका मदुरासंघ में प्रचार किया, और यह घटना सर्वथा असम्भव भी नहीं प्रतीत होती है। क्योंकि 'तिरुक्कुरल' के कर्त्ता के विषय में अजैनों में जो कथा प्रसिद्ध है वह पूर्व कथा का रूपान्तर मात्र है। हिन्दू कथानुसार 'तिरुवल्लुवर' स्वयं कर्ता हैं, जो कि धर्म से शैव और जन्मना वल्लुव (Valluva) थे, इनका जन्म स्थान 'थिरुमयाली' (Thirumayali) अथवा म्यलापुरी (Mylapuri) अथवा म्यलापुर (Mylapore) वर्तमान मद्रास नगर का दक्षिणी भाग कहा जाता है। यह ग्रन्थ इलालसिंह की देख रेख में लिखा गया था, जोकि थिरुवल्लुवर के साहित्यक संरक्षक थे।

हिन्दू कथा के इलालसिंह इलाचार्य या एलाचार्य का ही अपभ्रंश नाम प्रतीत होता है। थिरुवल्लुवर दोनों कथाओं में आये हैं, एक में कर्ता, दूसरे में प्रचारक रूपसे। इनकी जन्मभूमि म्यालापुरी में एक विशाल जैन मन्दिर है, जो कि 'नेमिनाथ वेदी तामिल वर्क'"Tirunur ruanthathi"को समर्पित कर दिया गया है। यह जैनियों की सभ्यता व शिक्षा का केन्द्र था, यह बात वहा पाई गई प्राचीन वस्तुओं तथा भग्नावशेषों से अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है। यद्यपि इस ग्रन्थ को शैव, बुद्ध, जैन सभी मानते हैं पर इसमें ग्रन्थ कर्त्ता के धार्मिक विश्वास के विषय में कोई उल्लेख नहीं पाया जाता है। तो भी इस ग्रन्थ का निष्पक्षपात दृष्टि से, और उसमें वर्णित लाक्षणिक शब्दों पर तथा धार्मिक, चारित्र विषयक सिद्धान्तों पर ध्यान देने से, पढ़ने वाला इस बात को मानने के लिये वाध्य होगा कि इसकी रचना वीतरागता का आश्रय लेकर ही हुई है जो कि जैनधर्म का प्रधान तत्त्व है। इस ग्रंथ में वर्णित ऋषि की उत्तमता वल्लाल सम्बन्धी दन्तकथाओं के अनुकूल पड़ती है। वल्लाल दक्षिण जमीन्दार तथा जैनधर्म के सर्व प्रथम अनुयायी थे।

कुन्दकुन्द का समय

कुरल (Kural) के कर्ता की एलाचार्य से

समानता मानने पर उनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी पड़ेगा जो असंभव नहीं है। डाक्टर जी० यू० पोप (G. U. Pope) इसको ८ वीं शताब्दी के बाद का बताते हैं, किन्तु उनके ऐतिहासिक प्रमाण पर्याप्त नहीं हैं। उन्होंने अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार ही यह लिखा है कि—ऐसा उच्च आदर्श ग्रंथ जिसमें गम्भीर तत्त्व विवेचना की गई है, द्रविड़ सभ्यता पर प्रारम्भ में आई क्रिष्टियनिटी का प्रभाव पड़े बिना द्रविड़ों द्वारा नहीं लिखा जा सका। इस कल्पना पर साधु थोम्स (St Thomas) वाली कथा भी प्रभाव डालती है। पर ग्रन्थकर्त्ताके क्रिष्टियनिटी से प्रभावित होने का कोई भी अन्तरङ्ग साक्षी नहीं है। क्योंकि वे सिद्धान्त जिनका वर्णन कुरल में किया गया है जैन तामिल साहित्य में नालादियर (Naladiyar) अरण्यानोचर (Araneneharma) पज़ामाजी (Pazamozi) इलाथी (Elathi) आदि में बहुलता से पाये जाते हैं। तामिल साहित्यवेत्ता कुरलकर्त्ता की विदेशी प्रभावशून्य शुद्ध द्रविड़ विद्वत्ता को अमान्य नहीं करेगा। इसलिये हम विश्वास पूर्वक मान सकते हैं कि प्राभृतत्रय के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य ही कुरलकर्त्ता एलाचार्य थे, जो कि प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ तक जीवित थे।

कुन्दकुन्द और कुरलकर्त्ता की समानता एक दूसरी ऐतिहासिक घटना को उपस्थित करती है। यह सर्व मान्य सत्य है कि कुरल शिलापदीकर्म (Shilapadikaram) तथा मणिमेखला (Manimekhala) के पूर्व का है। इनमें प्रथम के कर्त्ता वंगी (Vangi) के चेरवंशीय राजा सिन्गुत्तुमन सेरान (Singuttuman Seran) के छोटे भाई इलन्गोवादी गोल (Ilangovadigol) थे, तथा मणिमेखला जोकि शिलापदीकर्म की कथा का अन्तिम भाग है इलन्गोवादीगोल के समकालीन मित्र कुलावनीकान सत्तनार (Kulavanikan Settanar) ने लिखा है। शिलापदीकर्म अर्थात् देवी के मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय लंकेश गजबाहु प्रथम (Gajahbahu I) उपस्थित थे जिनका राज्यकाल महावंश परम्परानुसार ११३ ई० है। क्योंकि कुरल इससे पहिले ही लिखा गया होगा, अतः यह भी कुन्दकुन्दाचार्य के उक्त काल को पुष्ट करती है।

यह विभिन्न प्रमाण मिलकर यह सिद्ध करते हैं कि हमारे चरित्रनायक द्राविड़ियन थे अर्थात् द्रविड़ संघ के नेता थे और अनेक भाषा जानते थे। 'द्रविड़' शब्द द्रविड़ संघ में विशेषकर जैनियों का द्योतक है। यह प्राचीन तामिल साहित्य के अहिंसाधर्मपालक वल्लाल हैं, तथा यह बात 'द्रविड़' शब्द के 'द्रविड़-ब्राह्मण' अर्थ में प्रयुक्त होने से और भी प्रमाणित हो जाती है। यह ब्राह्मण गौड़ ब्राह्मणों के विपरीत शुद्ध वनस्पतिभोजी होते हैं, तथा इनका यज्ञ के पशुवध को छोड़कर नित्य शाकाहारी होना, दक्षिण भारत की प्रारम्भिक जैन संस्कृति का प्रभाव मात्र है। अतः यह भी उपर्युक्त कथन की ही पोषक घटना है।

रिपोर्ट धर्म्मोपदेशकीय भ्रमण

ब्रह्मचारी कुंवर दिग्विजयसिंह, धर्मोपदेशक और प्रचारक "शास्त्रार्थ संघ"

[ता० १६ दिसम्बर से ३१ दिसम्बर सन् १९३३ तक]

सवाई माधवपुर—राजस्थान के जयपुर राज्य का बड़ा कसबा है। वह चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ बड़ा स्वास्थ्यप्रद और रमणीक स्थान है। यहाँपर खण्डेलवाल जैनों के लगभग चालीस घर सात बड़े मनोज्ञ मन्दिर और दो नशियां जी हैं। मन्दिरों में जिनबिम्ब बड़े मनोज्ञ हैं और एक मन्दिर जी में तहखाने के भीतर बड़ा भारी समोशरण व विशाल प्रतिमाओं का दर्शनीय संग्रह है।

यहां पर दिन में दो आम सभाएं बड़े धूम धाम से हुईं जिनमें जैन अजैन और प्रायः सभी राज्य कर्मचारी नाज़िम साहब तहसीलदार साहब व डाक्टर साहब आदि सम्मिलित हुए। आम सभाओं में धर्म्म की आवश्यकता व दूसरी उपयोगी बातें बतलाई गईं जिनसे सबको बड़ा आनन्द व लाभ रहा। दिवस की दो स्त्री सभाओं में स्त्रियोपयोगी भाषण हुए और उनके काम की सब बातें बतलाई गईं। मन्दिर जी में रात्रि की सभाओं में "जैन धर्मका महत्व" "श्रावकों के षट आवश्यक कर्तव्य" और अन्य उपयोगी बातों का प्रति रात्रि को दो दो तीन २ घण्टे तक विवेचन हुआ। उन सभाओं में भी जैन अजैन जनता पर्याप्त संख्या में पधार कर लाभ लेती रही। अनेक जैन अजैनों ने अपनी शङ्काओं का समाधान पाया।

रणथम्भौर क़िला—सवाई माधवपुर से दो तीन मील दूर घने जङ्गल में एक ऊंची पहाड़ी पर चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ दुर्गम स्थान है। यद्यपि यह आजकल उजड़ा हुआ और ऊबड़ खाबड़ स्थान है पर फिर भी प्राकृतिक दृश्यों से भरा हुआ प्राचीन व ऐतिहासिक स्थान होने के कारण दर्शनीय है। यहां पर जयपुर राज्य का प्राचीन खज़ाना सुरक्षित कहा जाता है और बहुतसा पुराना सामान कपड़े आदि कुछ दिन हुए नीलाम में लोगों ने लिये थे। क़िले में जैनियों के कई प्राचीन मन्दिर थे जिनमें अब केवल एक विद्यमान है। इस मन्दिर जी में सम्वत् दस १० वैशाख सुदी ३ की प्रतिष्ठित चन्द्रप्रभु स्वामी की प्रतिमा बड़ी प्राचीन दर्शनीय है। इसका फ़ोटो शिखर जी के मुकदमे में भेजा गया था और सवाई माधवपुर के तेरहपन्थी मन्दिर जी में है।

शेरपुर—सवाई माधवपुर से तीन चार मील की दूरी पर है। यहां किसी समय में जैनियों की बड़ी आबादी थी और जैन नगरसेठ की हवेली में बड़ा धन गड़ा हुआ अज्ञात पड़ा है। एक प्राचीन मन्दिर भग्न दशामें है और इन दिनों उसकी मरम्मत चल रही है। यहां के जिन बिम्ब बड़े चमत्कारी और दिन रात में कई कई वर्ण के दिखलाई पड़ने वाले हैं। यहांपर सम्वत् १५ वैशाख सुदी

[शेषांश टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर]

दिगम्बर जैन साहित्य के उद्धार की एक योजना !

[लेखक—हीरालाल जैन प्रोफ़ेसर, किंग एडवर्ड कालेज, अमरावती]

उक्त शीर्षक विज्ञप्ति मैं ने दो मास पूर्व प्रकाशित की थी। मुझे हर्ष है कि इस बीच में उस विज्ञप्ति को प्रायः सभी प्रमुख जैन पत्रों ने प्रकाशित किया है तथा सम्पादक महोदयों ने अपनी समालोचना में उस योजना को कार्य में परिणत करने का पाठकों से अनुरोध किया है। व्यक्तिगत रूप से भी कुछ विद्वानों ने उस योजना में अपनी पूर्ण सम्मति प्रगट की है तथा मेरे पास इस सम्बन्ध में अपने सद्विचार और सत्परामर्श भेजने की कृपा की है। यद्यपि समाज के प्रमुख कर्णधारों और विद्वानों का ध्यान उस ओर कम आकर्षित हुआ है तथापि जो कुछ उत्तेजन मिला है वह निराशाजनक नहीं है। इसीलिये मैं इस सम्बन्ध में अपने और भी विचार प्रगट करता हूँ।

जो परामर्श मेरे पास आये हैं उनमें योजना के सम्बन्ध में कोई विशेष मत प्रगट करने वालों की संख्या बहुत कम है। एक समाज-हितैषी सज्जन का मत है कि एक तो जो दो तीन ग्रंथ-मालायें अपने सम्प्रदाय की चल रही है उन्ही में काम करने वालों की कमी के कारण कोई अधिक संख्या में ग्रंथ नहीं निकल रहे हैं। दूसरे, जो ग्रंथ निकलते भी हैं वे बिकते नहीं। तीसरे, इस समय आर्थिक संकट के कारण इस कार्य के लिये अभी द्रव्य एकत्रित होना कठिन है और चौथे, इस समय जो जैन कालेज की स्कीम चल रही है उसी में अभी शक्ति लगाने की आवश्यकता है तथा यदि कुछ साहित्यिक कार्य करना है तो जैन इतिहास तैयार करना चाहिये। उक्त सब बातें विचारणीय हैं। मैंने इन बातों पर जो धैर्यपूर्वक विचार किया है उससे मेरी प्रस्तुत योजना की भावना शिथिल होने के विपरीत और भी दृढ़ होती है। जो ग्रंथ-मालायें चल रही हैं उनकी हीन सफलता का कारण यह नहीं है कि हमारे साहित्य में प्रकाशनीय ग्रंथों की या संसार में सम्पादन कार्य कर सकने वाले विद्वानों की कमी हो यह मैं स्वीकार करता हूं कि साहित्यिक विद्वानों और विशेषतः संस्कृत प्राकृत में संशोधनात्मक योग्यता रखने वाले विद्वानों की हमारे समाज में कमी है। पर तो भी अभाव नहीं है। जो थोड़े बहुत उस योग्यता के विद्वान हैं उनसे समाज काम नहीं ले रहा है। चालू ग्रंथ मालाओंके कार्य में शिथिलता का कारण यह प्रतीत होता है कि एक तो उनके पास उत्तम संपादन और प्रकाशन के खर्च के लिये यथेष्ट द्रव्य नहीं है, दूसरे उनके सञ्चालन का सारा भार प्रायः एक व्यक्ति के ऊपर निर्भर रहता है और एक व्यक्ति की सुविधा और शक्ति कभी चिरस्थायी नहीं रह सकती। हमारी संस्थाओं के संगठनों में यह एक बड़ी त्रुटि है। उनका उत्थान और पतन एक व्यक्तिकी सदसत् अवस्था पर निर्भर रहता है। एक देवेन्द्रप्रसाद के न रहने से 'दि जैन पब्लिशिंग हाउस, आरा' का उत्तम कार्य वर्षों के लिये बन्द पड़ गया था। एक प्रेमीजी के अस्वस्थ हो जाने से माणिकचन्द ग्रंथ-

माला का कार्य मंद पड़ गया है। यही अवस्था हमारी कई संस्थाओं की हुई है और हो रही है। हमारे 'कारंजा जैन सीरीज़' के एक ग्रंथ 'जसहर-चरिउ' की समालोचना करते हुए 'इंडियन हिस्टोरिकल कार्टरली' में एक अजैन विद्वान लिखते हैं कि "यह बड़े खेद की बात है कि सुव्यवस्थित और सुसंयोजित कार्य के अभाव के कारण जैन साहित्य के प्रकाशन सम्बन्धी अनेक संस्थायें, जो व्यक्ति विशेष की उदारता से प्रारम्भ हुई थीं, असफल हो चुकी हैं और अभी तक जैन साहित्य का केवल एक थोड़ासा अंश प्रकाशित हो पाया है"।

ग्रंथ न बिकने के अनेक कारण हैं। प्रथम तो ग्रंथ उत्तम रीति से सम्पादित और सुन्दर रूप से प्रकाशित नहीं होते। दूसरे, सब प्रकार के ग्रंथ सब के लायक़ नहीं होते और इसलिये सब ग्रंथों की एक समयावधि के भीतर समान संख्या में बिक्री की आशा करना वृथा है। तीसरे, बिक्री के लिये भी सुसंगठित आयोजन की आवश्यकता है और चौथे, धार्मिक ग्रंथों की बहुत धीरे धीरे बिक्री के लिये तथा आवश्यकता पड़े तो कुछ हानि उठानेको भी हमें तैयार रहना चाहिये। कोई पचास साठ वर्ष हुए श्वेताम्बर जैन आगम के समस्त साहित्य को मुर्शिदाबाद के रायबहादुर बाबू धनपतसिंह जी ने लाखों रुपया लागत से छपा कर बटवा दिया था जिसका फल यह हुआ कि उक्त साहित्य विद्वत्संसार की दृष्टि में आगया और उसका पठन पाठन और प्रचार खूब बढ़ गया। दिगम्बर जैनियों के साहित्य से अधिकांश विद्वत्समाज अभी सर्वथा अपरिचित है। अब आजकल श्वेताम्बर समाज अपने आगम का एक एक ग्रंथ बड़ी उत्तम रीति से बड़े२ विद्वानों द्वारा सम्पादित करा कर निकाल रहा है। हाल ही में अहमदाबाद के आनन्दजी कल्यानजी फंड ने 'दशवैकालिक सूत्र' को जर्मनी के डा० शूब्रिंग से सम्पादित करा कर तथा जर्मनी में ही छपाकर प्रकाशित किया है। ऐसा सुन्दर छपा है कि देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। ऐसे ग्रन्थों को विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के कोर्स में भरती होने में कुछ देर नहीं लगती। कारंजा से जो हमारे अपभ्रंश भाषा के अभीतक तीन ग्रंथ निकले हैं वे इलाहाबाद, नागपुर, व जर्मनी और फ्रांस आदि की यूनीवर्सिटियों में अनायास ही स्वीकृत हो गये हैं। यदि आप अपने साहित्य को हृदयग्राही रूप में प्रस्तुत करेंगे तो, मेरा विश्वास है, संसार में उसकी अवश्य कद्र होगी।

आर्थिक संकट के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि यद्यपि समय कठिनाई का है पर तो भी धार्मिक और सामाजिक कार्यों में हमारा लाखों रुपया आखिर खर्चा होता ही है। फिर हम इस प्रकार की कोई योजना नहीं करते जिसमें सारा आर्थिक बोझ किसी व्यक्ति विशेष पर पड़े। यदि सुसंगठन द्वारा शक्ति और श्रद्धा के अनुसार उक्त कार्य के लिये द्रव्य एकत्रित किया जायगा तो इसमें किसी पर कोई विशेष कठिनाई आने की सम्भावना नहीं है। यथार्थतः संकट के समय में ही अपनी संस्कृति की रक्षा करने की अधिक चिन्ता पड़ती है। यदि इस कठिन समय में हम अपने साहित्य की रक्षा का आयोजन नहीं करेंगे तो और कौन करेगा? यदि हम इन ग्रन्थों के छपाने की ओर उदासीन हो गये तो और किसे इसके उद्धार की जल्दी चिन्ता

होगी ? ऐसे समय में जबकि लोगों की रुचि, धर्म और धार्मिक साहित्य से उड़ रही है, हमें प्रयत्न पूर्वक अपने साहित्य को रुचिकर रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना चाहिये।

जैन कॉलिज की स्कीम में इस योजना से कोई बाधा पड़ने की सम्भावना नहीं है। यथार्थ में यह तो उस स्कीम का सहकारी कार्य है। मैं स्वप्न में भी यह नहीं चाहता कि इस कार्य से जैन कालेज के कार्य में ज़रासा भी विघ्न उपस्थित हो। यह मेरे जैसे व्यक्ति से सम्भव भी कैसे हो सकता है ? मेरा सारा जीवन कालेज और यूनिवर्सिटी जीवनसे गुंथा हुआ है। मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि प्रत्येक जैन युवक जैन धार्मिक शिक्षाके साथ साथ कालेज की शिक्षा ग्रहण करने में सफल हो। किन्तु जब मैं गम्भीर विचार करता हूँ तब मुझे यह भावना उत्पन्न होती है कि साहित्य रक्षा का कार्य इस समय सर्वोपरि प्रधान है। बिना हमारा पूरा साहित्य प्रकाशित हुए हमारा पुराना सच्चा इतिहास भी कैसे लिखा जा सकता है ? आखिर कालेज में भी हम जैनत्व के नाते पढ़ावेंगे क्या ? वही जैन साहित्य न ? तो हम पहले अपने ग्रंथों का तो समुचित रूप से संशोधन करलें।

अब मैं उस परिस्थिति पर आता हूं जिसके अनुभव से इस योजना का भाव मेरे मन में जागृत हुआ। मैं नागपुर यूनीवर्सिटी के संस्कृत बोर्ड की बैठक के लिये जा रहा था। कोर्सों में वाञ्छनीय परिवर्तनों पर विचार करते हुए यह इच्छा हुई कि कुछ प्राकृत के दिगम्बर जैन ग्रंथ बी. ए., एम. ए., की परीक्षाओं के लिये नियुक्त कराने का प्रयत्न किया जाय। इस विचार से मैं उपयुक्त ग्रंथ ढूंढने लगा। कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रंथ उपयुक्त जंचे, पर ऐसा एक भी ग्रन्थ मेरी दृष्टि में न आया जिसका प्राकृत का पाठ प्रयत्नपूर्वक शुद्धता से छपाया गया हो। मैंने अपने अन्य प्राकृत ग्रन्थ देखे किन्तु प्रायः सभी में उसी त्रुटि का अनुभव किया। पञ्चास्तिकाय और नियमसार ग्रन्थ मैंने एम० ए० कोर्स में रखवाये किन्तु मैं दृढ़तापूर्वक किसी एक संस्करण विशेष की सिफारिश न कर सका। इस विषय में मेरे हृदय में कचाई रही और अपनी कमज़ोरी का अनुभव हुआ। बार बार हमारी सभा सोसायटियाँ यह प्रस्ताव पास करती हैं कि जैन ग्रन्थ यूनीवर्सिटियों में भर्ती कराने का प्रयत्न किया जाय किन्तु यह विचार नहीं करतीं कि हमने अपने ग्रन्थों के इस योग्य संस्करण तैयार किये हैं या नहीं ? इस बात का हमको ध्यान रखना चाहिये कि विश्वविद्यालयों में यदि किसी बात के लिये हमारे ग्रन्थों की कदर हो सकती है तो वह हमारी प्राकृत भाषायें हैं। इनके लिये सब जगह जैन ग्रंथ ही पढ़ाये जाते हैं, क्योंकि अन्य किसी समाज ने प्राकृत भाषाओं में विशेष ग्रंथ नहीं रचे। यथार्थतः जैसे संस्कृत के ज्ञान के लिये ब्राह्मण साहित्य के ग्रंथों का पठन अनिवार्य है और पाली भाषा के ज्ञान के लिये बौद्ध साहित्य आवश्यक है, इसी तरह प्राकृत भाषाओं के ज्ञान के लिये आज विद्वत् समाज को जैन साहित्य का सहारा लेना पड़ता है। इसी बात के लिये श्वेताम्बर आगम का यूनीवर्सिटियों में जगह २ मान है, क्योंकि अर्धमागधी प्राकृत का रूप केवल वहीं मिलता है। दिगम्बर साहित्य में समय समय की अनेक प्राकृत भाषायें सुरक्षित हैं पर जिस रूप

में हमारे प्राकृत ग्रंथ अभी छपे हैं उस पर से यही कहना कठिन है कि वह कौनसा प्राकृत है। उसमें व्याकरण की दृष्टि से बहुत खिचड़ी दिखाई देती है। इस रूप में उसे संसार के सामने प्रस्तुत करने में हमारा गौरव नहीं है, वह केवल हमारी वर्तमान अविद्या, अकर्तव्यता और अधः-पतन का ही द्योतक हो सकता है। हमारे संस्कृत ग्रंथों की भी वही दुरवस्था है। यदि हम सूक्ष्म वैज्ञानिक रीति से सम्पादित कराकर अपने ग्रंथ निकालें तो उन्हें उच्च विद्वानों तथा विश्वविद्या-लयों में पहुँचाने में ज़रा भी कठिनाई नहीं है। यथार्थतः विद्वान् और यूनीवर्सिटियाँ तो ऐसे ग्रंथों की ताक में हैं। जैसा मैं ऊपर कह आया हूं **मुझे कारंजा से प्रकाशित अपभ्रन्श भाषा के ग्रंथों को अनेक यूनिवर्सिटियों में भरती कराने में ज़रासा भी प्रयत्न नहीं करना पड़ा।**

इस संशोधन कार्य के लिये अभी हमारे पास यथेष्ट सामग्री विद्यमान है। अनेक भंडारों में इन ग्रंथों की पांच पांच छै छै सौ वर्ष पुरानी प्रतियाँ मिलती हैं, जिनके विचारपूर्वक मिलान से शुद्ध पाठ तैयार किये जा सकते हैं। किन्तु अब यह सामग्री जल्दी जल्दी क्षीण होती जा रही है। पांच छै सौ वर्षों में काग़ज़ की बड़ी दुरवस्था हो जाती है। कितने ही ग्रंथ मेरे देखने में ऐसे आये हैं जो हाथ लगाते ही नष्ट होते हैं। यदि सौ पचास वर्ष तक और हमने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो हमारे ये प्राचीन ग्रंथ फिर हाथ लगाने के काम के नहीं रहेंगे और फिर संशोधन का कार्य एक तरह से असंभव हो जावेगा। इन ग्रंथों की अब जो प्रतिलिपियां कराई जाती हैं वे संशोधन कार्य में विशेष सहायक नहीं होतीं क्योंकि वे प्रायः ऐसे लिपिकारों द्वारा लिखाई जाती हैं जिन्हें न विषय का ज्ञान है, न उस भाषा का और न पूर्ण रूप से प्राचीन लिपि का। मैंने पुराने ग्रंथों की कुछ नई की हुई प्रतियाँ देखी हैं। उन्हें देखकर बड़ा सन्ताप होता है। वे बेहद भ्रष्ट हैं। हम समझते हैं कि हमने इन ग्रन्थों को यथा तथा लिखवाकर या छपाकर उनकी रक्षा करली और इसलिये हम पुरानी प्रतियों की रक्षा में कुछ शिथिल हो जाते हैं किन्तु हम यह नहीं जानते कि इस तरह से हमने उनकी रक्षा नहीं की किन्तु उनमें और विकार उत्पन्न कर लिया है। इस घोर दुरवस्था से हम अपने साहित्य का जितने शीघ्र उद्धार कर सकें उतना ही अच्छा है।

अब सबसे कठिन प्रश्न संगठन का है। अभी जो ग्रंथमालाएं चल रही हैं उनको प्रत्येक की पूरी या अधिकांश पूंजी एक व्यक्ति विशेष के दान की है, उनका सम्पादनादि कार्य सर्वथा एक एक व्यक्ति के ऊपर अवलम्बित है, तथा सम्पादनीय ग्रंथों का कोई निश्चित क्रम नहीं है। उनके पास यथेष्ट खर्च करने की सुविधा नहीं है, प्रकाशित ग्रन्थों के प्रचार व बिक्री की कोई सुदृढ़ व्यवस्था नहीं है तथा उनमें समाज का जो प्रेम और अप-नत्व का भाव चाहिये वह नहीं है। हम जो संगठन चाहते हैं वह ऐसा हो कि समाज उसको अपनत्व के भाव से देखे और उसे अपने गौरव की एक संस्था समझे, उसके पास ग्रंथों को योग्य से योग्य व्यक्तियों द्वारा उत्तम से उत्तम रीति पर संपादित कराने की सामर्थ्य हो, उसके सम्पादन व प्रकाशन की व्यवस्था ऐसी हो जिसमें किसी एक व्यक्ति की सत्ता व असत्ता से कार्य में कोई विशेष रुकावट न

पड़े, तथा उसके प्रकाशित ग्रंथों की सब जगह विज्ञापना और बिक्री की सुदृढ़ व्यवस्था हो। इस सम्बन्ध में हमारे पास जो परामर्श आये हैं तथा हमने जो स्वतन्त्र विचार किया है उस पर से दो स्कीमें हमारे ध्यान में आती हैं, वे ये हैं:—

स्कीम नं० १

जो वर्तमान ग्रंथमालाएं चालू हैं उनमें परस्पर सहयोग स्थापित कर दिया जाय तथा उनकी पूंजी और कार्य को बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय! यह कार्य निम्न सिद्धांतों को दृष्टि में रखकर हो—

१. ग्रंथमालाओं के नाम यथावत् क़ायम रखे जावें तथा उनकी पूंजी पर वर्तमान अधिकारियों का ही स्वामित्व क़ायम रखा जावे।

२. प्रत्येक ग्रंथमाला को प्रकाशन के लिये जैन साहित्य का एक विशेष अङ्ग सुपुर्द कर दिया जाय और प्रत्येक के लिये एक एक या दो दो सुयोग्य सम्पादक नियुक्त कर दिये जायं। **सब सम्पादकों की मिलकर सम्पादक समिति बने जो निश्चित समय समय पर अपना अध्यक्ष और मंत्री चुन लिया करे, और समय समय पर बैठकें** किया करे। प्रत्येक के सम्पादन और प्रकाशन का कार्यक्रम इन्हीं बैठकों में निश्चित किया जाया करे जिसको कार्य में परिणत करने का पूरा खर्च उसी ग्रंथमाला को उठाना पड़ेगा।

३. उक्त ग्रंथमालाओं के अधिकारियों की अधिकारी समिति होगी। यह समिति सम्पादक समिति की सलाह और सहायता से ग्रंथमालाओं के कार्यक्रम की सब और जाहिरात तथा प्रकाशित ग्रन्थों की विज्ञापना और बिक्री की सुदृढ़ व्यवस्था करेगी।

४. ये ग्रंथमालायें समाजोपयोगी कार्य के लिये एक निश्चित चंदा प्रति वर्ष दिया करेंगी।

इस स्कीम में विशेषता यह है कि पूँजी एकत्रित करने का बड़ा प्रश्न हमारे सन्मुख उपस्थित नहीं होता, तथा वर्तमान संस्थाओंमें सहकारिता, सुदृढ़ता, सुप्रबन्ध और उपयोगिता की वृद्धि हो जावेगी। कठिनाई केवल अधिकारियों को इस सहकारिता के लिये राज़ी करने की है। दूसरे देशों में सहकारिता से बड़े २ उत्तम काम हो रहे हैं और प्रत्येक क्षेत्रमें काम करनेवाले अपने बीच सहकारिता स्थापित कर लेते हैं। पूँजीपतियों, श्रमजीवियों, दुकानदारों आदि सभी में सहकारिता देखनेमें आती है, जिससे उनका कार्य उत्तम रीति से चलता है। किन्तु दुर्भाग्यतः हमारे देश में इस सिद्धान्त की अभी विशेष कदर नहीं है; खासकर हमारी समाज में तो इसका अभावही है—हमें मिलकर काम करना सुहाता ही नहीं है। अस्तु, यह एक कठिनाई है। मुझे प्रत्येक वर्तमान ग्रंथमाला की आर्थिक स्थिति का ज्ञान नहीं है। यदि उनके पास इस कार्य के लिए काफ़ी पूँजी न हुई तो या तो उनकी पूँजी बढ़ाने का प्रयत्न करना पड़ेगा या साहित्य के सब अंगों का काम यथेष्ट वेग से चलाने के लिये एक दो नई ग्रन्थमालायें प्रारम्भ करनी पड़ेंगी। यह दूसरी कठिनाई है। मुझे अपनी समाज की निम्न ग्रन्थमालाओं के नाम याद आते हैं। यदि उनके व अन्य चालू ग्रन्थमालाओं के अधिकारी अपनी अपनी ग्रन्थमाला का पूरा परिचय व उक्त स्कीम के सम्बंध में अपनी राय मेरे पास भेजने की कृपा करेंगे तो बड़ा लाभ होगा:—

१. माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई.

२. अनन्तकीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
३. रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, बम्बई.
४. सेक्रेड बुक्स आफ दि जैन्स सीरीज, लखनऊ
५. कारंजा जैन सीरीज, कारंजा
६. देवेन्द्रकीर्ति जैन सीरीज, कारंजा

स्कीम नं० २

एक लाख का फंड स्थापित करने का प्रयत्न किया जाय, जिसका मार्ग यह है:—

१. सौ सौ रुपया के एक हज़ार शेअर निकाले जायँ।

२. धनी मानी सज्जनों और फ़र्मों तथा जे. एल जैनी ट्रस्ट फंड आदि धार्मिक संस्थाओं से जितने हो सकें उतने शेअर खरीदने का आग्रह किया जाय।

३. पचास हज़ार के शेअरों का चन्दा हो जाने पर ट्रस्ट रजिस्टर करा लिया जाय। जो सज्जन दो हज़ार या उससे अधिक के शेअर खरीदें उन्हें ट्रस्ट बोर्ड में रखा जाय। शेष सब शेअर होल्डर अधिकारी मंडल में रखे जावें। पूँजी गवर्नमेंट सिक्यूरिटीज़ या अन्य शंकारहित, लाभदायक धन्धे में लगा दी जावे।

४. सम्पादन और छपाई का कार्य एक सम्पादक समिति के अधीन कर दिया जाय जिसके विभाग प्रथम विज्ञप्ति में बतलाये अनुसार रखे जावें।

५. मंडल के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, मंत्री और प्रधान सम्पादक की बनी हुई कार्यकारिणी-समिति ग्रंथों के विज्ञापन व बिक्री का तथा मंडल के अन्य आवश्यक कार्यों का सुप्रबन्ध करे।

६. वर्तमान ग्रन्थमालाओं को यह मंडल सब प्रकार का सत्परामर्श देने के लिए तथा उनके अधिकारियों की इच्छा होने पर उनका काम सम्हालने के लिए तैयार रहे।

इस स्कीम से बड़ा भारी लाभ यह है कि यह सच्ची सामाजिक संस्था होगी और सारी समाज को उससे प्रेम तथा उसके संचालन की चिन्ता रहेगी, मंडलका प्रत्येक कार्य बिलकुल उत्तम 'अपटू-डेट' ढंग से प्रारम्भ किया जा सकेगा तथा उसका संचालन किसी व्यक्ति-विशेष की मर्जी पर अवलम्बित नहीं रहेगा। कठिनाई है 'शेअर कैपिटल' एकत्रित करने तथा उसकी सुव्यवस्था करने की। इसके लिये एक विशेष व्यक्ति-समुदाय को अग्रगण्य होकर खूब प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

मैं चाहता हूँ कि दिगम्बर जैन परिषद् जैसी कोई बृहत् सभा इस कार्य को अपने हाथ में ले और उसे सफल बनाने का प्रयत्न करे। यदि आगामी इटारसीके परिषदके अधिवेशन में † इस विषय पर कुछ संगठनात्मक कार्य हो सके तो अच्छा हो। यदि ग्रन्थमालाओं के संचालकों, धार्मिक फंडों के ट्रस्टिओं व अन्य धर्मिष्ट धनी और विद्वानों को इस कार्य पर ठोस विचार करने के लिए उक्त अधिवेशन पर विशेष रूप से आमन्त्रित किया जा सके तो बहुत अच्छा है। इसके लिये मैं परिषद् के संयोजकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करता हूँ।

---

† यह अधिवेशन गत २९—३० दिसम्बर को हो चुका है। लेख यथोचित समय पर न मिलने के कारण इससे पूर्व नहीं छापा जा सका। उपयोगी जान अब भी प्रकाशित किया जा रहा है।

[संपादकीय अभिमत]

साहित्य समाज का जीवन है और समाज संस्था का। नष्ट समाज का पुनर्निर्माण किया जा सकता है साहित्य का नहीं। इस सत्य को दृष्टि में रखकर जो समाज स्वयं मर कर भी अपने साहित्य को अमर रखता है जनता कि दृष्टि में उस समाज का स्थूल अस्तित्व लुप्त हो जाने पर भी संसार के हृत्पटल पर उसके अस्तित्व की अमिट छाप सर्वदा अङ्कित रहती है। उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म ही पर्याप्त है। भारत वर्ष से बौद्ध धर्म का लोप हुए कई शताब्दियां बीत गईं। बौद्ध धर्म के संसारव्यापी प्रचारकों की गगन भेदी आवाज़ भी उनके साथ ही शून्य में विलीन होगई। किन्तु बौद्ध लेखकों की सुरक्षित अमर कृतियां आज भी मृत बौद्ध धर्म की स्मृति को सुरक्षित रक्खे हुये हैं और देश तथा विदेश के विद्वानों को बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित करके फिरसे बौद्ध समाज के पुनर्निर्माण में हाथ बढ़ा रही हैं।

दिगम्बर समाज तथा उसके साहित्य की बड़ी शोचनीय दशा है। समाज और साहित्य दोनों ने मानों होड़ लगा रक्खी है कि दोनों में से कौन पहिले रसातल में समा सकता है। दिगम्बर साहित्य का निर्माण काल ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग अन्दाजा जाता है। तबसे अनेक जैनाचार्य्यों ने स्मृति रूप में सुरक्षित जैन शासन की अमूल्य निधि लोह लेखनी से ताड़पत्रों पर अंकित करने का अनुपम् प्रयास किया है। उन्हें भय था कि भगवान् महावीर का उपदेश संसार से नष्ट न हो जाये, किन्तु खेद है कि जिस भय को दूर करने के लिये उन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग किया था वह भय बाये खड़ा हुआ है। और जैनाचार्य्यों के पसीने की कमाई को, नहीं नहीं, खून को पसीना बनाकर संचित की हुई निधि को, भगवान महावीर के पवित्र उपदेशों के एक मात्र स्मृति चिन्हों को धीरे २ अपनी विकराल दंष्ट्रा में दबाता जाता है। और समाज—अन्धा समाज, अज्ञानी समाज, मरणोन्मुख समाज—उसे देखते हुये भी नहीं देखता, उसकी अन्ध भक्ति उसकी श्रद्धा के गीत का इतना ही कार्य है कि प्रति दिन किसी शास्त्र के सामने चार चावल चढ़ाकर लम्बी दण्डवत करली जाये। यह सरल कार्य तो किसी भी शास्त्र से साधा जा सकता है, अतः यदि शास्त्र नष्ट होते हैं, वे भण्डारों की काल कोठरियों में चूहों, दीमकों के शिकार होते हैं तो होने दो—उनके नष्ट भ्रष्ट हो जाने से जैनों के चावल चढ़ाने में कोई बाधा नहीं पहुंच सकी। जैनाचार्य्यों के नष्ट भ्रष्ट साहित्य भण्डारों की चिता पर नग्न ताण्डव करने वाली अबोध समाज! तुझे कैसे समझाया जाय कि उन कागजोंके टुकड़ों के साथ जैनधर्म के जीवन मरण का प्रश्न गुंथा हुआ है। दीमक और चूहे कागज़ के टुकड़ों को नहीं खाते—बल्कि जैनधर्म की आत्मा को खाते हैं।

प्रति वर्ष अनेक बिम्ब प्रतिष्ठा और वेदी प्रतिष्ठायें होती हैं, अनेक मन्दिरों का निर्माण होता है, उनमें जैनधर्म के प्रवर्तक तीर्थंकरों की प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं, लाखों रुपया उत्सवोंके समारोह और पञ्चायती भोज में व्यय किये जाते हैं, किन्तु उन्हीं तीर्थंकरों के हितकारी उपदेश की रक्षा एवं उद्धार तथा प्रचार के लिए आजतक किसी भी दानी ने कोई जिनवाणी मन्दिर स्थापित करने का

संकल्प भी नहीं किया। सिंघई तथा सवाई सिंघई बनने के लिये अनेक धर्मात्मा दानी प्रति वर्ष गजरथ चलाते हैं जब भगवान का राज्याभिषेक होता है तब बड़ी बड़ी भेंट चढ़ाते हैं, तप कल्याणक के समय भी बड़ी उमंग से आहार दान देते हैं, किन्तु जब केवलज्ञान कल्याणक होताहै तब किसी भी माई के लाल ने यह घोषणा करने की उदारता नहीं दिखलाई कि आज भगवान ने अपने केवलज्ञान के द्वारा सचराचर जगत को जानकर संसार के जीवों को हित का उपदेश दिया था, अतः मैं जिनवाणी प्रचार के लिये यह रकम प्रदान करता हूं।

जिन बिम्बों की स्थापना के लिये जितना रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है उसका शतांश भी यदि जिनवाणी की रक्षा के लिये व्यय किया जाये तो दिगम्बर समाज के सिर से जिनवाणी को नष्ट होने देने का कलङ्क दूर किया जा सकता है।

हमारे मित्र प्रो० हीरालाल जी ने दिगम्बर साहित्य के प्रकाशन की योजना जैनसमाज के सामने रक्खी है, हम उसका हृदय से अभिनन्दन करते हैं। जैन साहित्य के प्रचार का यह उपयोगी समय है। प्रो० साहब के शब्दों में साहित्य रक्षा का कार्य इस समय सर्वोपरि प्रधान है। बिना हमारा पूरा साहित्य प्रकाशित हुए हमारा पुराना सच्चा इतिहास भी कैसे लिखा जा सकता है।

साहित्य प्रकाशन के शुभ कार्य में दिगम्बर समाज को श्वेताम्बर समाज का अनुकरण करना चाहिये। एक तो दिगम्बर साहित्य से श्वेताम्बर साहित्य वैसे ही विस्तृत है; दूसरे उसका प्रकाशन भी बड़े ज़ोरशोर से हो रहा है। यदि आप प्रकाशित दिगम्बर साहित्य के अच्छे अच्छे ग्रन्थों का संग्रह करना चाहें तो आपको अधिक से अधिक ५००) रुपये व्यय करने पड़ेंगे। किन्तु यदि प्रकाशित श्वेताम्बर साहित्य का संग्रह करें तो व्यय का मीज़ान कई हज़ार रुपयों तक पहुँच जायेगा। इसी से उनके प्रकाशन कार्य का अनुमान लगाया जा सकता है। पचास साठ वर्ष पहिले श्वेताम्बर जैन आगम के समस्त साहित्य को मुर्शिदाबाद के रायबहादुर बाबू धनपतसिंह ने लाखों रुपयों की लागत से छपवा कर बटवा दिया था। कई वर्ष हुए गुजरात पुरातत्व मन्दिर से सिद्धसेन वर्द्धमान सन्मति तर्क सटीक प्रकाशित हुआ है। इसकी लागत का विवरण सुन कर ही हमारे दिगम्बर भाइयों के पैरों तले से ज़मीन खसक जायेगी। सन्मति तर्क के प्रकाशन में २५०) मासिक पर दो विद्वान केवल संशोधन कार्य के लिये नियुक्त किये गये थे जिन्होंने उस कार्य को १२ वर्ष में पूर्ण किया। अब उस ग्रंथ का मूल्य ५०) रक्खा गया है जो बराबर बिक रहा है।

[शेष आगामी अङ्क में]

[शेषांश पृष्ठ ३६०]

नौज की प्रतिष्ठित पार्श्वनाथजी महाराज की प्राचीन प्रतिमा है। इसका फ़ोटो भी शिखर जी के मुक़दमे में भेजा गया था और सवाई माधवपुर के तेरापन्थी मन्दिर जी में है। यहां जैनियों के न रहने के कारण सवायी माधवपुर वाले कई बार समवसरण यहां से उठा ले जाने को तैय्यार हुए और कहते हैं कि ऐसा करने पर विघ्न आजाने से असमर्थ रहे। जीर्णोद्धार के लिये सहायता की आवश्यकता है। दर्शनों से बड़ा आनन्द आता है।

चमत्कार जी—आलनपुर ग्राम में सवायी माधवपुर से डेढ़ मील दूर बड़ा मनोज्ञ व स्वास्थ्यप्रद स्थान है। यहां के ख़ास श्री जो ज़मीन से निकले हैं और बड़े चमत्कार पूर्ण हैं। उनके चमत्कार से विस्मित व लाभान्वित हो यहां पहिले किसी समय के एक मुसलमान नाज़िम ने भी मण्डप व वेदी मकरानेकी बनवाई थी। अब भी अक्सर कोई न कोई चमत्कार होता ही रहता है।

जयपुर राज्य में जैनियों का सदैव बोलबाला रहा और अब भी है। पर कहते हैं कि आज से पचहत्तर छिहत्तर वर्ष पूर्व एक बड़ा अर्थ संकट पूर्ण समय कुछ दिनों को आया था और एक ही रात में जयपुर राज्य भर के सब स्थानों के अनेक मन्दिर लूट लिये गये थे और उनमें शिवजी विराजमान कर दिये गये थे। जैन लोग अपने को सामान्य हिन्दू प्रगट करने व रात्रि में झूठमूठ भोजन बनाने व करने के अर्थ बर्तन खटकाते थे। ये लूटे हुए मन्दिर अब भी सब ही स्थानों पर धर्म्मोपदेशक जी ने देखे और उनमें अब शिवालय या दूसरे सरकारी मदरसे आदि हैं। ये मन्दिर बड़े विशाल व हज़ारों रुपये की लागत के हैं और जैन समाज की निर्बलता को प्रगट कर रहे हैं। जिन स्थानों पर मुसलमानों या दूसरे हिन्दू लोगों की सहायता से मन्दिर सुरक्षित रहे उन लोगों को लाग किसी न किसी रूप में जैन लोग अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिये अब भी देते हैं व उन का आदर मान रखते हैं। इससे अब जैन लोगों को स्वावलम्बी व बलवान बनकर अपने स्वत्वों की रक्षा करना चाहिए। —मंत्री उपदेशक विभाग

Regd. No. A. 2379

समाचार संग्रह

—स्वस्तिका शब्द की उत्पत्ति और अर्थ के जाननेकी बढ़ती हुई उत्कंठाके विषय में, जोकि आज कल जर्मनी में एक बड़ा प्रसिद्ध शब्द हो रहा है और जिसके संबन्ध में "स्टेटसमैन" में प्रश्न भी छपा है, मैं यह कहना चाहता हूँ कि स्वस्तिका का रूढ़ि अर्थ इस प्रकार है—'स्वस्ति-क्षेमान् कायति' अर्थात् इस शब्द की उत्पत्ति काय से हुई है। 'स्वस्तिका' प्रत्येक जैनी तीर्थंकर की आठ शुभ वस्तुओं में से एक है। यह सातवें जैनी तीर्थंकर महात्मा सुपार्श्वनाथ की पताका का चिन्ह था, और अब भी अनेक जैनी धार्मिक कृत्यों में प्रयुक्त होता है। इन बातों से यह प्रमाणित होता है कि स्वस्तिका शब्द की उत्पत्ति जैनी तीर्थंकरों से हुई। —"नवयुग से"

—श्री स्याद्वाद दिगम्बर जैन महाविद्यालय भदैनी काशीमें १७ दिसम्बरको 'वर्णव्यवस्था जन्मना कर्मणा वा' इस विषय पर संस्कृत भाषामें वाद-विवाद हुआ। सर्व श्री बालकृष्णजी शास्त्री, सभापतिजी शास्त्री और वीरमणिजी एम० ए० निर्णायक थे। काशीके प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान अपने छात्रों सहित बहुसंख्या में उपस्थित थे। वाद-विवाद में २५ छात्रोंने भाग लिया। जन्मना पक्ष में भारत-धर्म महामण्डलके छात्र अयोध्याप्रसाद को और कर्मणा पक्षमें स्याद्वाद दिगम्बर जैन महाविद्यालय के छात्र श्यामलाल को सर्वोत्तम होनेके कारण रजतपदक प्रदान किये गये। तथा "समन्तभद्र ट्राफी" भारतधर्म महामंडल को देना निश्चय हुआ जो विद्यालय के वार्षिकोत्सव के समय प्रदान की जायगी। —हर्षचन्द्र जैन, अध्यक्ष।

—उदयपुर से लगभग चालीस कोस दूर अरावली पहाड़ी के जङ्गलमें ज़मीन के अन्दर एक सुन्दर जैन मंदिर मिला है। अनुमान है कि यह जैन मंदिर १४ वीं सदी का बना हुआ है। स्थानीय तथा अन्य सज्जनों को जाकर विशेष हाल मालूम करके शीघ्र प्रकाशित करने चाहियें।

—माघ सुदी ११ को कुंडलपुर में मेला होगा।

—फागुन बदी १४ से फागुन सुदी ३ तक श्री सम्मेदशिखर पर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा तथा खंडेलवाल महासभा का अधिवेशन होगा।

—माघ सुदी १० से फागुन बदी १० तक थूबौन जी में मेला होगा। उसी समय श्री भा० व० दि० जैन परवार सभा व दि० जैन बुन्देलखण्ड प्रान्तिक सभा व प्रबन्धकारिणी कमेटी श्रीअतिशय क्षेत्र थूबौनजी के वार्षिक अधिवेशन होंगे तथा मेले के अन्तिम दिन जल विहारोत्सव भी होगा।

शोक !

१—गत ता० २४ दिसम्बर को प्रातः ८ बजे सेठ पद्मचन्द जी जैन का स्वर्गवास हो गया।

आप आगरे की जनता में धनाढ्य एवं दानी होने के अतिरिक्त परोपकारी व्यक्ति भी थे। जैन समाजकी कई सभाओं की ट्रस्टियों के सभापति थे, दुःख के समय हर व्यक्ति के साथ आपकी सहानुभूति रहती थी, यह आप में एक अद्भुत गुण था। आपने करीब २५ हज़ार रुपये का दान देकर आँखों का एक मुफ्त दवाखाना "फ्री आइज़ हॉस्पिटैल" के नाम से बल्हकने घाट में खोल रक्खा है जिस में जनता की मुफ्त आँखें बनाई जाती हैं। आप करीब १ मास से दक्षिण में यात्रा करने गये हुये थे। वहाँ से आप अब लौटने ही वाले थे कि यकायक बीचमें लकवे का प्रकोप हो गया और नागपुर के पास आप का देहान्त हो गया। आपके शव को आगरे लाकर दाह क्रिया की गई।

२—नवीन तर्ज़ के भजनों तथा मैनासुन्दरी आदि नाटकों के बनाने वाले श्रीमान बा० न्यामत सिंह जी हिसार का भी स्वर्गवास हो गया है।

हम आप लोगों के कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रगट करते हुये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी आत्माओं को शान्ति प्रदान करें।

दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस, आगरा की कार्य कारिणी सभा की बैठक ता० ३० दिसम्बर सन् १९३३ को हुई जिसमें आगरा निवासी स्वर्गीय सेठ पदमचन्द जी की ता० २४—१२—१९३३ को अचानक मृत्यु हो जाने पर ला० मगनमलजी के सभापतित्वमें एक शोक प्रस्ताव पास किया गया।
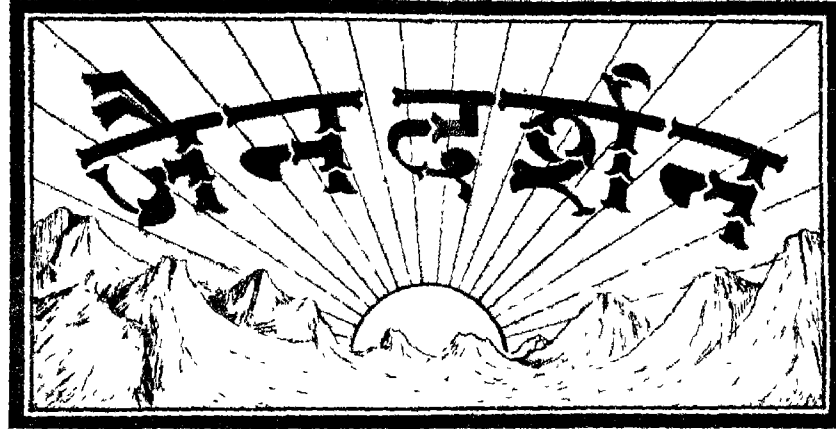
मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रकाशित किया।

तारीख १ फरवरी सन् १९३४ ई०

श्री जिनाय नमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क १५

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। —ऑनरेरी सम्पादक— पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

हार्दिक धन्यवाद!

"जैन दर्शन" के प्रेमियों ने "दर्शन" को निम्न प्रकार सहायता देकर अपना प्रेम प्रकट किया है जिसके लिये धन्यवाद है। आशा है अन्य दानी श्रीमान् भी अनुकरण करेंगे :—

५०) मित्रसेन गैंदनलाल जी जैन आढ़ती, मुजफ्फरनगर

२५) ला० बाबूलाल जी जैन, खतौली

२५) ला० विशम्भरदास शान्तिप्रसाद जी जैन, खतौली

२५) ला० मुन्शीराम शीतलप्रसाद जैन आढ़ती, खतौली

५) श्री० पंढरीनाथ दत्तोबा उदगीरकर मु० गाधवड़ (पूज्य पिता के स्मरणार्थ)

३) ला० सुमेरीलाल गुलाबराय जी, बाराबंकी (अवध)—गृह प्रवेश उपलक्ष में

विनीत:—मैनेजर।

वार्षिक मूल्य— ३॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

समाचार संग्रह !

—"उदगिर" से तार मिला है कि "उदगिरि-आर्यसमाज" का जलसा ता० १० फ़र्वरी से १४ फ़र्वरी तक होगा जिसमें पं० रामचन्द्र देहलवी व स्वामी कर्मानन्द वगैरा आर्यसमाजी विद्वान पहुँचेंगे। वहां की आर्यसमाज ने श्री १०८ मुनि जयसागर जी को शास्त्रार्थ करने के लिये चैलेंज दिया है। अतएव दिगम्बरी विद्वानों से ८ फ़र्वरी को उदयगिरि पहुंचने के लिये प्रार्थना की जाती है—विद्वानों को अवश्य पहुंचना चाहिये।

—जैनमित्र मंडल देहली का महावीर जयन्ती उत्सव ता० २५-२६-२७-२८ मार्च को होगा। दो दिन श्री० बैरिस्टर चम्पतराय जी सभापति पद को सुशोभित करने की कृपा करेंगे।

—मुलतान जैन यात्रा संघ ने माघ शुक्ला ३ को सोनागिर विद्यालय का निरीक्षण किया। छात्रों की परीक्षा ली। फल सन्तोषजनक रहा। थोड़े ही खर्च में विद्यालय व छात्रावास का कार्य चल रहा है। यात्रासंघ ने ७) दान किया।

—सहारनपुर में ता० १८ जनवरी को ला० प्रद्युम्नकुमार जैन रईस के सुपुत्र चि० देवकुमार का विद्यारम्भ संस्कार बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

—धामपुर (बिजनौर) की 'कुरीति निवारक सभा' की कमेटी ने अपना नाम "दि० जैन युवक मंडल" रक्खा है। इसका तीसरा सालाना जल्सा २१-२२-२३ फ़र्वरी को बड़ी धूमधाम से होने वाला है। "मंडल" की प्रार्थना पर ला० बिशम्भरनाथ मुमरुचन्द्र जैन सहारनपुर ने अपने लड़केकी शादी में आई हुई रंडियों का नाच बन्द कर दिया—अनेक धन्यवाद।

—मुलतान से श्री दिगम्बर जैन तीर्थयात्रा संघ माघ वदी द्वितीया को उत्सवपूर्वक रवाना हुआ जिसमें स्त्री पुरुषों की संख्या करीब ३५ है। संघ लाहौर, सहारनपुर, देहली, मथुरा, आगरा, शूरीपुर बटेश्वर, ग्वालियर, सोनागिर, ललितपुर, देवगढ़, चंदेरी, लखनऊ, बनारस ठहरता हुआ आरा पहुँचा है। प्रायः सभी स्थानों पर १३ सभाएं कीं जिनमें, भजन गायन तथा मनोहर व्याख्यान हुए—३-४ स्थानों पर स्त्री सभाएं भी हुईं। प्रमुख व्याख्यान-दाता श्रीमान् पं० अजितकुमार जी शास्त्री थे। स्त्री सभाओं में मुख्य रूप से भाषण श्रीमती चमेलीबाई (धर्मपत्नी श्रीमान् पं० अजितकुमार जी) के हुए। इन सभाओं के द्वारा इस यात्रा संघ ने सर्वत्र जागृति उत्पन्न की है। दो एक स्थान पर शिक्षा संस्थाएं भी खुलवाने का आयोजन किया गया है। संघ ने नीचे लिखे अनुसार दान दिया है।

११) श्री दि० जैन मंदिर लाहौर
११) श्री नेमिसागर औषधालय देहली
११) श्री ऋषभब्रह्मचर्याश्रम मथुरा
५) श्री दि० जैन मंदिर चौरासी
१२॥) शूरीपुर बटेश्वर
१५) तीर्थक्षेत्र कमेटी सोनागिर
७) श्री वीर विद्यालय सोनागिर
४) पंचायती मंदिर सोनागिर
४॥) दरिद्रों को अन्नदान सोनागिर
३२) देवगढ़
२५) स्याद्वाद विद्यालय बनारस
७) सिंहपुरी चंद्रपुरी।

—लखनऊ में सदा की भाँति बसंतपंचमी पर रथयात्रा महोत्सव सानन्द होगया। ता० २४ जनवरी को प्रातः "मुलतान जैन यात्रा संघ" भी वहां पहुँचा। पं० अजितकुमारजी के उपयोगी भाषणों से अत्यन्त आनन्द रहा। ब्र० प्रेमसागर जी के भी महत्वपूर्ण भाषण हुए। संघ को प्रीतिभोज दिया गया।

"जैनदर्शन" की आवश्यक सूचनायें!

(१) "जैनदर्शन" का प्रकाशन हर महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हो जाता है।

(२) इस का वार्षिक मूल्य केवल २॥) है, किन्तु संघ के मेम्बरों से वार्षिक मेम्बरी फ़ीस सहित ३) एवं संस्थाओं तथा विद्यालयों से केवल २) लिया जाता है। [इस वर्ष उपहारी पुस्तकों के पोस्टेज के लिये प्रत्येक से =) और अधिक लिया जा रहा है।]

(३) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय, मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २-२ प्रतियाँ "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद जैन विद्यालय भदैनी घाट बनारस" के पास और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/o 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहियें।

(४) इस पत्र में अश्लील व धर्म-विरुद्ध विज्ञापन नहीं छापे जाते। इसी कारण विज्ञापन छपाने के रेट बहुत कम रखे गये हैं, जो निम्न प्रकार हैं। इनमें किसी प्रकार भी कमी करने के लिये लिखना व्यर्थ होगा। कुल रुपया पेशगी लिया जाता है, अतः कृपया विज्ञापन के साथही कुल रुपया भेजिये:—

	एक बार	३ मास (६ बार)	एक वर्ष (२४ बार)
१. साधारण पूरा पृष्ठ	४)	२०)	७२)
२. साधारण आधा पृष्ठ	२॥)	१२॥)	४५)
३. टाइटिल पूरा पृष्ठ (पृष्ठ २-३-४)	६)	३०)	१००)
४. टाइटिल आधा पृष्ठ	४)	२०)	६०)

नोट—मुख पृष्ठपर विज्ञापन छपाई केवल आधे ही पृष्ठकी ५) ली जातीहै। साधारण पृष्ठोंमें आधे पृष्ठ कम जगह के विज्ञापनों पर ।) प्रति लाइन प्रति कालम के हिसाब से चार्ज किया जाता है।

सर्व प्रकार के पत्र व्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैनदर्शन" C/o. दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽग्ररश्मिर्भस्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमतजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ | बिजनौर, फल्गुण कृष्णा २—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० | अङ्क १४

प्रबन्ध के दोष !

हमारे भारतवासी भाइयों को विशेषकर जैनी सज्जनोंको **प्रबन्ध करना नहीं आता**, यही बातहै कि हमारी संस्थाएं बिगड़ जाती हैं। हममें से प्रत्येक मनुष्य सभापति, मंत्री, खजानची, अधिष्ठाता बनकर कुर्सी तो तोड़ना चाहता है किन्तु अपने भाग का कार्य करनेके लिए अपना समय तथा शारीरिक श्रम नहीं खर्च करना चाहता।

हम मुख देखकर तिलक लगाया करते हैं— जो मनुष्य धनाढ्य हैं लोभवश उनको ही संस्थाओं का प्रधान कार्यकर्ता बना देते हैं, चाहे उनसे कार्य कुछ भी न हो।

हम उन कर्मण्य लोगों को संस्थाओं की बागडोर नहीं सम्भालने जो कार्य कर सकते हैं, किन्तु धनिक नहीं हैं। धन न होने के कारण सुयोग्य कार्यकर्ता भी हमको अयोग्य दीख पड़ते हैं।

हमारी दृष्टि में सदा यह बात रहती है कि हमको कार्य करने वाला अवैतनिक (आनरेरी) ही मिले; कार्य पर हमारी निगाह नहीं जाती। अवैतनिक कार्यकर्ता यदि कुछ भी कार्य न करे तो हमको बुरा नहीं मालूम होता किन्तु यदि कोई वेतनभोगी (तनख्वाह पाने वाला) पुरुष जी तोड़ कर अच्छा भी कार्य करे तो भी हम उसको आदर की दृष्टि से नहीं देखते—उसको अपने से हीन, नौकर समझते हैं।

हमारे भीतर आनरेरी पद का एक रोग पैदा हो गया है। ज्योंही किसी ने जरा आनरेरी पद सम्हाला कि वह प्रायः अपने को परमात्मा का भाई समझ बैठता है। उस आनरेरी रोग से उसका दिमाग आकाश के साथ बातें करता है। चाहे जो कुछ अंधाधुन्ध कर डाले उसके लिये सब क्षम्य है। वह फिर उस संस्था का ऐसा दुर्दम्य, उच्छृङ्खल कार्यकर्ता बनता है कि संस्था का सत्तानाश करते भी नहीं हिचकिचाता।

जब तक ये त्रुटियां हमारे भीतर से दूर न होंगी तब तक सफलता से हम कोई कार्य नहीं चला सकते।

सम्पादकीय !

विज्ञान और धर्म

बम्बई विश्वविद्यालय के कनवोकेशन हाल में वैज्ञानिक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए गवर्नर ने जो भाषण किया था उसमें विज्ञान और धर्म के बारे में महत्वपूर्ण उद्गार प्रगट किया गया था। गवर्नर ने कहा—"वर्तमान संसार के निर्माण का बहुत बड़ा श्रेय इन्हीं वैज्ञानिकों को प्राप्त है। वैज्ञानिकों ने काल और स्थान सम्बन्धी विचारों में क्रान्ति उत्पन्न करदी है। संसार की बनावट तथा जगत के भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध में उन्होंने नई बातें मानव बुद्धि के सामने ला खड़ी करदी हैं। इतना सब होते हुए भी वैज्ञानिकों में आज यह सन्देह उठ खड़ा हुआ है कि क्या केवल विज्ञान ही नवीन स्वर्ग तथा नवीन पृथ्वी की सृष्टि कर सकता है। यह बात अब स्पष्ट हो गई है कि केवल विज्ञान ही जीवन के लिये पर्याप्त नहीं है। जब तक विज्ञान के साथ साथ धर्म का संमिश्रण न होगा तब तक विज्ञान का वैसा ही नाशकारी परिणाम होगा जैसा बच्चों के हाथ में चाकू दे देने से होता है"।

बहुत समय से विज्ञान—भौतिक विज्ञान—और धर्म—आध्यात्मिक विज्ञान—में युद्ध छिड़ा हुआ है। यह युद्ध विज्ञान और धर्म का युद्ध नहीं है बल्कि पूर्वीय और पाश्चात्य संस्कृतियों का युद्ध है। विज्ञान की छत्रछाया में पाली पोषी गई पाश्चात्य संस्कृति संसार में अपना पैर फैलाती जाती है—विज्ञान नवीन आविष्कृत सांघातिक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर उसकी रक्षा करता है और वह निर्भय होकर असहाय दीन दुःखियों को पददलित करती हुई मनुष्यता के शव पर नग्न नृत्य करती है। और धर्म को—ऊं—उसे तो नासमझों के दिल बहलाव के लिये एक खिलौना समझती है। धर्म से यहाँ हमारा आशय बाह्य क्रियाकांड से नहीं है। बाह्य क्रियाकांड तो धर्म का शरीर है, धर्म की आत्मा, मानवता यानी आत्मदृष्टि है। जब मनुष्य की आत्मदृष्टि लुप्त हो जाती है तब वह मोहान्ध हो जाता है—अपने को भूल जाता है। उसकी मानवता लुप्त हो जाती है और वह दूसरे प्राणियों को भी अपनी ही तरह मानवता से शून्य समझने लगता है। विज्ञान ने धर्म की उसी आत्मा मानवता पर धावा बोल रक्खा है—आधुनिक यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति उसका जीता जागता उदाहरण है। विज्ञान के आविष्कारों ने—कल कारखानों ने—करोड़ों

आदमियों को बेकार कर दिया। पूंजीपतियों की बन आई—पुतलीघरों में तैयार माल का ढेर लग गया। उसे खपाने के लिये नये २ बाज़ारों की खोज होने लगी—गांठ के पूरे और आंख के अन्धे देश फंसाये जाने लगे। किन्तु जब सभी देश अपनी आवश्यकता से अधिक माल तैयार करने लगे और अपना २ माल खपाने के लिये प्रयत्न करने लगे तब संघर्ष अनिवार्य है। इस संघर्ष के भय से वैज्ञानिकों ने अनेक ध्वंसक यंत्रों का आविष्कार किया। एक २ गोला सैकड़ों मीलों तक आबाद बस्ती को उजाड़ जंगल बना सकता है। इसके नमूने जर्मनी के युद्ध में देखे जा चुके हैं।

आज युद्ध के भय को दूर करने के लिये वैज्ञानिक देशों में निःशस्त्रीकरण कान्फ्रेंसें की जा रही हैं, किन्तु सब व्यर्थ। किसी का दिल साफ़ नहीं है। सबको एक दूसरे का भय लगा हुआ है। जनता को चूसा जाता है और उसकी पसीने की कमाई यह विज्ञान संसार खा जाता है। विज्ञान की उन्नति के लिये वैज्ञानिक, जीवित पशुओं पर अपने प्रयोगों की जांच करने के लिये हृदयद्रावक अत्याचार करते हैं। अफ्रीका में तो पुराने समय में जिस हबशी को फांसी की आज्ञा दी जाती थी उसे फांसी पर न लटका कर वैज्ञानिकों को सौंप दिया जाता था और क्रूर वैज्ञानिक उसके जीवित शरीर को थोड़ा २ काट कर शरीर-शास्त्र का अध्ययन करता था। हम उपयोगी वैज्ञानिक आविष्कारोंके विरोधी नहीं हैं। हमारी दृष्टि में उन तथा उनके आविष्कर्ताओं के प्रति यथेष्ट सन्मान है। किन्तु विज्ञान का दुरुपयोग किया जा रहा है। वे आविष्कार जो मनुष्यों को गुलाम बनाये रखने में मदद पहुंचाते हैं, हजारों गरीबों की आजीविका छीन लेते हैं, मनुष्य को मनुष्य से पशु बना देते हैं, संसार के लिये आशीर्वाद नहीं, शाप हैं। यह शाप आशीर्वाद में परिणत किया जा सकता है। किन्तु कब? जब विज्ञान के शरीर में धर्म का प्रवेश हो, तब। जब विज्ञान का उपयोग, केवल कुछ जातियों की रक्षा के लिये ही नहीं, मानव संसार के कल्याण के लिये किया जायेगा और मानव संसार के लिये ही क्यों, प्राणी मात्र को सुख पहुँचाने के लिये किया जायेगा तब विज्ञान सचमुच में विज्ञान कहा जा सकेगा। आजकल का विज्ञान मानव-हित की दृष्टि से अज्ञान कहे जाने के योग्य है, अन्यथा बम्बई गवर्नर के शब्दों में विज्ञान का वैसा ही नाशकारी परिणाम होगा जैसा बच्चों के हाथों में चाकू दे देने से होता है।

धर्म के लिये अधर्म

कराँची का समाचार है कि एक मुसलमान हज करने जा रहा था। आबकारी विभाग के अफ़सर ने संदेह पर उसकी तलाशी ली तो उसके पास अफीम मिली। मजिस्ट्रेट की अदालत में उसके ऊपर मुकद्दमा चलाया गया। सबूत पक्ष की गवाही से मालूम हुआ कि वह मुसलमान अफीम बेचकर उससे प्राप्त धन से हज करना चाहता था। मुसलमान पर दया करके मजिस्ट्रेट ने ५०) जुर्माना किया जो वहीं अदालत में सहानुभूति दिखलाने वाले दर्शकों से प्राप्त हो गया।

मुसलिम समाज में ही नहीं, किन्तु प्रत्येक धार्मिक समाज में धर्म के नाम पर अधर्म करने के उदाहरण मिलेंगे। तीर्थयात्रा, पूजा, प्रतिष्ठा आदि

सत्कार्य श्रावकधर्म के अंग ही नहीं, प्रधान अंग हैं। इन कार्यों के करने से गृहस्थ के अन्तःकरण में जो एक उल्लास होता है—झूठा अभिमान नहीं—वह उल्लास, वह आत्मसन्तोष की पवित्र शान्त निर्मल धारा उसके कर्मरज को प्रशमित करने में सहायक होती है। तीर्थ स्थान—जो पुरातन पुण्य पुरुषोंके पवित्र स्मृति चिन्हों के भग्नावशेष हैं, जहां का प्रत्येक रजकण संयमी, सन्तोषी, आत्म भावना-रत, जितेन्द्रिय, जिनकल्प पवित्र आत्माओं के अनवरत संसर्ग से उनके रंग में शराबोर होकर यात्रियों को शील संयम सन्तोष और इन्द्रियनिग्रह का पवित्र उपदेश देता है; जहाँ पर अंकित चरण चिन्ह आत्मोत्कर्ष के पवित्र मार्ग की ओर संकेत करते हैं—में पहुँचकर सच्चे यात्रार्थी को जो सुख सन्तोष और शान्ति प्राप्त होती है वह लेखनी के बाहिर है—स्वसंवेद्य है। गृहस्थाश्रम साँसारिक सुख के अभिनय का पवित्र रंगमंच होते हुए भी अनेक झंझटों से पूर्ण है, कोलाहल का आकार है—माया और प्रवंचना की नर्तन भूमि है। इसलिये आत्मकल्याण का इच्छुक सद्गृहस्थ—गार्हस्थिक कोलाहल से दूर—पवित्र आत्माओं की तपोभूमि की ओर आकृष्ट होता है।

पुराने ज़माने में रेल के न होने से तीर्थयात्रा सबके लिये सुलभ नहीं थी। बिरले ही महाजन एक संघ बनाकर कभी कभी यात्रा के लिये निकलते थे। बैलगाड़ियों से यात्रा का मार्ग तय किया जाता था। वर्षों का समय लगता था, बहुत से मार्ग में ही स्वर्ग सिधार जाते थे। आज रेल के हो जाने से, मोटरों की चहल पहल से, सम्मेद शिखर और गिरनार की यात्रा सर्वसाधारण के लिये सुलभ हो गई है। प्रति वर्ष हज़ारों यात्री तीर्थयात्रा के निमित्त से देश भ्रमण के लिये निकलते हैं। किन्तु हमारी समझ के अनुसार यह यात्राएं जितनी सुलभ होती जाती हैं यात्रियों के हृदय में उनका मूल्य भी उतना ही कम होता जाता है। इसका कारण समय का प्रभाव भी है। ज्यों ज्यों मनुष्यों का नैतिक पतन होता जाता है धर्म के वास्तविक उद्देश से वे कोसों दूर होते जाते हैं। इसीलिए अब वे तीर्थयात्रा के वास्तविक महत्व को या तो समझते नहीं, या समझते भी हैं तो अपनी आदतों के दास बन गये हैं। यात्रा की जाती है और पुण्य बंध के लिये की जाती है किन्तु यात्रार्थी शायद यह भूल गये हैं कि तीर्थयात्रा में अपना आचार व्यवहार और रहन सहन कैसा रखना चाहिये। इसीलिये यात्रियों की घर रहने के समय की दिनचर्या में और तीर्थयात्रा के समय की दिनचर्या में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। घर पर उनका जीवन जैसा वैषयिक और वंचना पूर्ण रहता है वैसा ही यात्रा के समय में भी। तीर्थों की पवित्र भूमि पर, समय काटने के लिए ताश खेलना तो एक मामूली सा रिवाज हो गया है—मनचले लोग दूसरों की बहू बेटी तक को ताकने से बाज़ नहीं आते। कम से कम तीर्थयात्रा के समय यह आवश्यक है कि रेलवे के नियमों का स्वयं पालन किया जाये। रेलवे के नियम के अनुसार यदि तीसरे दर्जे का मुसाफ़िर बिस्तरा और मार्ग के लिये कलेवा को छोड़ २५ सेर सामान रख सकता है तो अधिक सामान को बुक करवा लेना चाहिये। रेल के नियम को न मानकर पकड़े जाने पर बाबूओं को घूस देने वाला यात्री स्वयं

चोर है और जनता में चोरी का प्रचार करता है। यह दोष अधिकांश यात्रियों में पाया जाता है। कोई २ सज्जन बिना टिकिट के भी यात्रा करते देखे गये हैं।

सम्मेद शिखर में आचार्य संघ के पधारने के अवसर पर, मैं शिखर जी जाने के लिए मुगल सराय के स्टेशन पर टिकिट खरीद रहा था। बहुत से दूर २ के यात्री—जिन्हें अपने स्टेशन से सीधा ईसरी का टिकिट न मिल सका था—भी टिकिट खरीद रहे थे। बाबू लोगों की चांदी हो रही थी। फ़ी टिकिट दो आना रिश्वत के मिलने पर टिकिट मिल सकता था। एक यात्री ने २३ टिकिट खरीदे और दो आने फ़ी टिकिट के हिसाब से बाबू की जेब गर्म की। मेरे पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया—मैंने रिश्वत के पैसे जेब से नहीं दिए किन्तु २४ की जगह २३ टिकिट खरीद लिये हैं। मुझे बनिये यात्री की बनियाई बुद्धि पर आश्चर्य और खेद के साथ तरस आया। व्यापार में जालसाज़ी करने वाले वणिक यात्रा में भी अपनी चतुरता के नमूने दिखाने से नहीं चूकते, शोक।

धर्म के लिए, अधर्म करने वाले यात्रियों से हमारा नम्र निवेदन है कि वह यदि अपनी आदत से लाचार हैं—तीर्थ स्थान तथा मार्ग में जुआ चोरी और आशिक मिज़ाजी के अद्भुत करश्मे दिखाने से नहीं चूक सकते। तो उन्हें तीर्थयात्रा के पवित्र नाम को और पुण्य पुरुषों के पवित्र धाम को अपने अपवित्र संसर्ग से दूषित करने से बाज़ आना चाहिये। पहिले अपनी बुरी आदतों को छोड़ो, पीछे तीर्थयात्रा करो। "पवित्र आत्माओं के संसर्ग से ही तीर्थ बनते हैं और आत्मा को पवित्र करने के लिये ही तीर्थों की यात्रा की जाती है"। इस मूल मंत्र को भूलकर जो तीर्थयात्रा में अपनी गन्दी आदतों को नहीं छोड़ते वे धर्म के लिए अधर्म करते हैं।

पानीपत के मैदान में

यह उस तार के शब्द हैं जिसने मुझे पानीपत जाने के लिये वाध्य किया। पानीपत, देहली, अम्बाला रेलवे लाइन पर एक बड़ा कसबा है, और मुगल कालीन भारत के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भारतवर्ष में ऐसे बिरले मनुष्य होंगे जिन्होंने "पानीपत की लड़ाइयों" का नाम न सुना हो। सन् १५२६ ई० में पानीपत के मैदान में पहिला युद्ध हुआ, जिसमें बाबर के हाथों से इब्राहीम लोदी मारा गया। इस युद्ध से तीन वर्ष बाद सन् १५५६ में पानीपत का रणक्षेत्र दूसरी बार यवनों के खून से सींचा गया, बाबर के पोते शाह अकबर और हेमू में घनघोर संग्राम हुआ। आंख में तीर लगने से हेमू बेहोश हो गया। उसकी सेना भाग गई और वह पकड़ा गया। पानीपत की तीसरी और संभवतः अन्तिम लड़ाई सन १७६१ में हुई। उस समय मराठा राज्य उन्नति के शिखर पर था। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर मुसलमानी राज्य भयभीत हो रहे थे। सदाशिव भाऊ ने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया था। ऐसी स्थिति में अहमदशाह अब्दाली ने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई की। मुसलमान अहमद शाह से मिल गये। दोनों ओर की सेनाएं पानीपत की प्राचीन रणभूमि में आ

डर्टी, बड़ी घमासान लड़ाई हुई जिसमें मराठा हार गये। आज भी बहुत से विदेशी भारत की इस युद्ध भूमि को देखने के लिये पानीपत जाते हैं। पानीपत एक ऊंचे टीले पर बसा हुआ है। मुगल समय में यहाँ किसी किले के होने की संभावना की जाती है। युद्ध के समय शाही सैन्य का मुख्य पड़ाव पानीपत में ही रहता होगा। और इस तरह पानीपत निवासियों को युद्ध तथा सैन्य के प्रबन्ध के निरीक्षण करने का खूब अवसर मिलता होगा। तभी तो उन्हीं की सन्तान युद्ध का प्रबन्ध तथा संचालन करने में आज भी खूब दक्ष है। युद्ध का आयोजन सुनकर वृद्धों की भी रगों में खून जोश करने लगता है। पानीपत की जैनसमाज तथा आर्यसमाज में दो बार वाग्युद्ध का होना मेरे उक्त अनुमान का साक्षी है। हां तो—पानीपत के मैदान में जैनों और आर्यों के बीच दो बार लोहा बज चुका था। तीसरे युद्ध की आयोजना करके दोनों समाजों ने पानीपत के मैदान की लाज रख ली। अस्तु—

मैं जिस समय पानीपत पहुँचा, प्रतिपक्षी की तरफ से वार किया जा चुका था। प्रत्युत्तर देने की तैयारियाँ हो रही थीं। शास्त्रार्थ संघ का शिविर अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित था। युद्धसचिव पं० राजेन्द्रकुमार जी अपने स्टाफ़ सहित गोला बारूद तैयार करने में संलग्न थे और पानीपत-वासी—क्या वृद्ध और क्या युवक—दिलो जानसे इस कलम युद्ध में सहायता दे रहे थे। आठ दिन तक खूब घमासान युद्ध हुआ, गोलियों का जवाब गोलों से दिया गया और पानीपत की तीसरी लड़ाई समाप्त हुई। इस युद्ध में जिन वीरों ने अपने जौहर दिखलाये उनमें पानीपत के वकील बाबू जय भगवान जी का नाम उल्लेखनीय है। आपके यहाँ जैन बौद्ध वैदिक तथा विदेशी साहित्य का अच्छा संग्रह है और आप उसका सर्वदा अध्ययन करते हैं। आर्यसमाज के पत्रों का उत्तर देते समय आप बौद्ध तथा वैदिक साहित्य के जो उदाहरण उप-स्थित करते थे, वे बड़े मार्के के होते थे। यथार्थ में यदि जैन समाज का अंग्रेज़ी शिक्षित वर्ग अपना कुछ समय जैन साहित्य के अध्ययन और मनन में व्यय करे तो जैन साहित्य का बड़ा उपकार हो सकता है।

पानीपत में जैनों के कई सौ घर हैं। ५ जिन मंदिर हैं, जिनमें बड़ा मन्दिर विशेष दर्शनीय है। इसकी इमारत बहुत मज़बूत बनी हुई है। सम-तल से लगभग डेढ़ मंज़िल तक मंदिर के नीचे का हिस्सा ठोस भरा हुआ है। उसपर शिखरबन्द मन्दिर है। चहार दीवारी किलों के जैसी ही है। कई सौ वर्ष बीत जाने पर भी प्लास्टर ज्यों का त्यों बना हुआ है। और इतना साफ़ है कि उसमें मनुष्य के प्रतिबिम्ब की अस्पष्ट आभा झलक जाती है। कई सो प्रतिबिम्ब हैं जो प्रायः १६ वीं, १७ वीं शताब्दी के हैं। यहाँ मुसलमानी मुहाल में कल-न्दर सा० की कब्र देखने योग्य है। इसमें बहुमूल्य कसौटी पत्थर के खम्बे लगे हैं। कहा जाता है कि बादशाह जहांगीर के किसी वज़ीर को किसी हिन्दू मंदिर की लूटमें यह खम्बे हाथ लगे थे। चालाक वज़ीर ने लूट के अन्य सामान के साथ इन खम्बों को बादशाह के हुज़ूर में उपस्थित नहीं किया और चोरी से अपने मकान में लगवा दिये। शाही ज़माने के दस्तूर के अनु-

सार किसी चुगलखोर ने बादशाह सलामत से यह बात कह दी। सेना को तुरन्त आज्ञा दी गई कि वज़ीर का मकान गिराकर कसौटी के खम्भे हुज़ूर में उपस्थित करे और वज़ीर को गिरफ्तार करके लाये। शाही फ़रमान की ख़बर वज़ीर के कानों तक पहुंची। आत्म रक्षा का दूसरा उपाय न देख कर सैन्य के पहुंचने के पहिले ही वजीर ने कसौटी के खम्भे रातोंरात पानीपत में लाकर कलन्दर साहिब की कब्र पर पहुँचा दिये और देहली में जाकर जहाँपनाह की खिदमत में अर्ज़ किया—हुज़ूर! पानीपत में कलन्दर साहब बड़े पहुँचे हुए फकीर थे। बुतख़ाने के खम्भों को मैं ने उन्हीं शाह साहब के मज़ार शरीफमें चुनवा दिया है। बादशाह ने अपना फ़रमान वापिस ले लिया।

उन कसौटी के खम्भों की यही दास्तान है। एक दिन हम संध्या के समय अपनी पार्टी के साथ अभागे बादशाह इब्राहीम लोदी और उसके प्यारे हाथी की कब्र देखने गये। यह कब्र प्रायः पानीपत से १ मील की दूरी पर बनी हुई है। दोनों कब्रें बिलकुल सटी हुई हैं। मरहूम शाह की कब्र को देखकर हमें किसी शायर का एक शेर याद आगया—

जिनके महलों में हज़ारों रंग के फ़ानूस थे।
झाड़ उनकी कब्र पर हैं अर निशां कुछ भी नहीं॥

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[१२]

शिलालेखों के सिवाय अनेक प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ताओं तथा इतिहास वेत्ता विद्वानों का भी यही निश्चित मत है कि सम्राट चन्द्रगुप्त भद्रबाहु स्वामी के समकालीन तथा उनके शिष्य थे। अपने जीवन के अंतिम भाग में वे जैन साधु होकर कटवप्र पर्वत पर तपस्या करते हुए स्वर्गारोहण कर गये।

प्रख्यात इतिहासज्ञाता, पुरातत्व के विद्वान मि० वी० लुईस राइस साहिब लिखते हैं कि—

चन्द्रगुप्त के जैन होने में कोई सन्देह नहीं तथा चन्द्रगुप्त भद्रबाहु स्वामी के समसामयिक शिष्य थे। (देखो एपिग्राफिका कर्नाटिका, मैसूर और कुर्ग शिलालेख तथा मैसूर गजेटियर)

इन्साइक्लोपीडिया आफ् रिलीजन में लिखा है कि बी० सी० २९७ में संसार से विरक्त होकर चन्द्रगुप्त ने मैसूर प्रान्तवर्ती श्रवणबेलगुल में १२ वर्ष तक जैन दीक्षा से दीक्षित होकर तपस्या की और तपस्या करते हुए स्वर्गयात्रा कर गये।

इस प्रकार इतिहास के साधन शिलालेख, मंदिर (चन्द्रगुप्त बस्ती), कटवप्र पर्वत, भद्रबाहु गुफा, भद्रबाहु चरण आदि तथा भद्रबाहुचरित्र, राजबलिकथा, इन्साइक्लोपीडिया आफ् रिलीजन आदि ऐतिहासिक ग्रंथ और मि० बी० लुईस राइस आदि इतिहासवेत्ता इत्यादि सभी दिगम्बरीय संघभेद के कथानक को सत्य प्रमाणित करते हैं।

श्रीमान बा० पूरणचन्द् जी नाहर वकील आदि कतिपय श्वेताम्बरीय विद्वान इस कथा को असत्य

बतलाते हैं। नाहर जी महोदय का लिखना है कि—

१—किसी भी अजैन इतिहास में "सम्राट् चन्द्रगुप्त भद्रबाहु स्वामीका शिष्य था और वह उनके साथ मुनि होकर दक्षिण देशकी ओर गया था" ऐसा नहीं लिखा है।

२—कटवप्र पर्वतपर तपस्या करने वाले भद्रबाहु चन्द्रगुप्त प्रथम न होकर द्वितीय भद्रबाहु तथा द्वितीय चन्द्रगुप्त होंगे।

३—बारहवर्षी अकालके समय भद्रबाहु स्वामी पटना से दक्षिण दिशा (नैपाल की ओर) चले गये थे मैसूरकी ओर नहीं गये थे।

४—किसी भी श्वेताम्बरीय ग्रंथ में इस कथन का उल्लेख नहीं पाया जाता।

५—शिलालेखों पर सम्राट् चन्द्रगुप्त का वृत्तान्त सत्य घटनाओं के आधारपर खोदा गया होगा।

इसका उत्तर यह है कि—

१—*अजैन इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्तका इतिहास केवल राज्य समय का लिखा है। इस कारण उनके बनाये हुए इतिहासों में यह घटना न लिखी गई तो कोई आश्चर्य नहीं तथा चन्द्रगुप्त के जैन साधु जीवन को उन्होंने महत्व न देकर छोड़ दिया* हो यह भी सम्भव है।

२—कटवप्र पर्वत के शिलालेखों में से चौथे पांचवें शिलालेख में भद्रबाहु स्वामी को स्पष्टरूपसे अन्तिम श्रुतकेवली लिखा है। अतः वे द्वितीय भद्रबाहु नहीं हो सकते और श्रुतकेवली भद्रबाहु से बहुत समय पीछे द्वितीय चन्द्रगुप्त हुआ है। इस कारण कटवप्र वाला चन्द्रगुप्त द्वितीय न होकर प्रथम चन्द्रगुप्त (सम्राट्) ही मानना पड़ेगा।

३—बारहवर्षी दुष्काल के समय भद्रबाहु स्वामी पटना से दक्षिण में नैपाल की ओर गये थे, यह बात निराधार है जबकि मैसूर प्रान्त की ओर जाकर कटवप्र पर्वत पर तपस्या करने के परिचायक अनेक शिलालेख विद्यमान हैं।

४—श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में यह उल्लेख इस कारण नहीं मिलता कि इस कथन से श्वेताम्बर सम्प्रदाय की अर्वाचीनता सिद्ध होती है जो कि उनको अभीष्ट न होगी।

५—आपके कहे अनुसार यदि यही मान लिया जावे कि 'सत्य घटनाओं के आधार पर शिलालेख खोदे गये होंगे' तो इससे यह कथन असत्य किस प्रकार कहा जा सकता है?

ओसवाल नवयुवक में श्रीमान् पूर्णचन्द्र शामसुखा जी ने "जैन श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों की उत्पत्ति" शीर्षक एक लेख लिखा था, उसमें भी उन्होंने कुछ ऐसे ही एतराज़ उठाये थे। *ओसवाल नवयुवक सामने न होने से उस* विषयमें विशेष नहीं लिख सकते किन्तु अपने पास नोट किए हुए अभिप्राय के आधार पर कुछ प्रकाश डालते हैं। आपके एतराज़ इस रूप में थे—

१—*भद्रबाहु स्वामी ने कल्पसूत्र बनाया है* जिसमें कि श्वेताम्बरीय सिद्धान्त तथा भगवान महावीर के गर्भापहरण आदि कथाएँ विद्यमान हैं। अतः भद्रबाहु स्वामी से भी पहले श्वेताम्बर सम्प्रदाय का अस्तित्व था।

२—भद्रबाहु स्वामी और सम्राट् चन्द्रगुप्त ऐतिहासिक दृष्टि से समकालीन नहीं सिद्ध होते, अतः दिगम्बरीय कथा असत्य है।

३—श्रवणबेलगोला के प्रथम शिलालेख में अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी से पीछे के आचार्यों के नाम उल्लिखित हैं। अतः वे भद्रबाहु द्वितीय ही हो सकते हैं, प्रथम नहीं।

४—श्वेताम्बरीय ग्रन्थ प्राचीन हैं; उनमें साधुओं के वस्त्र पहनने का विधान है। महावीर स्वामी १३ मास तक साधु अवस्था में वस्त्र पहने रहे। अतः श्वेताम्बर साधु परम्परा प्राचीन है।

५—भगवान पार्श्वनाथ के समय १ जैनसाधु वस्त्र पहनते थे।

आपके इन एतराज़ों का उत्तर यह है—

१—कल्पसूत्र भद्रबाहु स्वामी ने मौखिकरूप से निर्माण किया था, इसका कहीं भी कुछ प्रमाण नहीं मिलता, न आप ही कुछ दे सकते हैं। हां ! कल्पसूत्र के पुस्तकरूप निर्माण का समय वीर सं० ९८० यानी विक्रम सं० ५१० अवश्य है, जैसा कि कल्पसूत्र में भी उल्लेख है। देखिये—

"समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खपहीणस्स नव वाससयाइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ।" तथोक्तं—

वल्लहिपुरंमि नयरे देवड्ढियमुहसयल संघेहिं।
पुत्थे आगमलिहिओ नवसय असीआओ वीराओ ॥

(वीर सं० २४४९ में निर्णयसागरसे प्रकाशित कल्पसूत्र पृ० १२५)

अर्थात्—कल्पसूत्र—सर्व दुख समूह के नाशक भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के नौ सौ वर्ष बीत जाने पर तथा दशवीं शताब्दी में ८० वर्ष और व्यतीत होने पर लिखा गया। टीकाकार लिखते हैं कि—

वल्लभीपुर नगर में वीर सं० ९८० में देवर्द्धिगणि आदि समस्त संघ ने आचारांग सूत्र आदि आगमों को पुस्तकारूढ़ किया यानी पुस्तकरूप में बनाया।

अतः कल्पसूत्र का भद्रबाहु स्वामी द्वारा विरचित कहना निराधार एवं असत्य है।

२—इतिहास पुरातन शिलालेख आदि से पीछे के विद्वान बनाते हैं। भद्रबाहु श्रुतकेवली और चन्द्रगुप्त प्रथमकी समकालीनता अनेक पूर्वलिखित शिलालेखों से सिद्ध होती है। अतः जो इतिहासवेत्ता उनका विभिन्न समय निर्दिष्ट करते हैं श्रवणबेलगोला में जाकर उन्हें अपना इतिहास ठीक करना चाहिये। उनका लिखा हुआ इतिहास ग़लत हो सकता है वे प्राचीन शिलालेख असत्य नहीं हो सकते।

३—प्रख्यात पुरुष परम्परा लिखने की यह भी एक पद्धति है; जैसे "भगवान ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन आदि तीर्थंकर परम्परा में जितशत्रु राजा के पुत्र भगवान अजितनाथ तीर्थंकर हुए"। इसका अर्थ यह नहीं कि भगवान संभवनाथ, अभिनन्दननाथ का नामोल्लेख हो जाने से भगवान अजितनाथ को उनके पीछे का तीर्थंकर माना जायगा। ठीक, ऐसी ही बात आचार्य परम्परा के विषय में प्रथम शिलालेख की है।

४—आचार्य कुन्दकुन्द का समय विक्रम सं० ४४ है। अर्हद्बली भूतबली आचार्य उनसे भी पहले हुए हैं। उन्होंने षट्खंडागम ग्रन्थ लिखा था। कुन्दकुन्दाचार्य ने अनेक पाहुड़ ग्रन्थों की रचना की, जो कि सब इस समयभी उपलब्ध हैं। अतः दिगम्बरीय ग्रन्थरचना का समय विक्रम संवत् से पहले का है,

जबकि श्वेताम्बरीय ग्रंथ विक्रम सं० ५१० में लिखने प्रारम्भ हुए। अतः श्वे० ग्रंथों का कथन संघभेद से पहले का सत्य इतिहास नहीं माना जा सकता।

५—प्राचीन बौद्धग्रन्थों में जैनसाधु के नग्नवेश का ही उल्लेख मिलता है। संघभेद से पहले का ऐसा कोई भी आधार नहीं जिससे जैनसाधु वस्त्रधारक सिद्ध हो। इसलिये यह बात असत्य है कि भ० पार्श्वनाथ के समय के साधु वस्त्र पहनते थे।

अतः संघभेद की दिगम्बरीय कथा सत्य प्रमाणित होती है। क्या ही अच्छा होता कि श्रीमान् बा० पूर्णचन्द्र जी नाहर तथा श्रीमान पूरणचन्द्र जी शामसुखा दिगम्बरीय कथा को अप्रमाण सिद्ध करते समय संघभेद का कोई प्रामाणिक इतिहास रखते। केवल दूसरे के खंडन से अपने मन्तव्यका मंडन नहीं होता।

[क्रमशः]

राजस्थान के प्रसिद्ध राज्यकुलों में जैनधर्म

[ले०—श्रीमान् सरदार भँवरलाल जी, रतलाम]

१. मेवाड़ राज—उदयपुर

उदयपुर के महाराणा वर्त्तमानमें शीशोदिया क्षत्रिय (राजपूत) कहलाते हैं, किन्तु यह सुप्रसिद्ध सूर्यवंशी राज्यकुल पूर्व में कई नामों से प्रख्यात हो चुका है। प्राचीन इतिहास से विदित होता है कि मेवाड़ का राजवंश सौराष्ट्र देश के वल्लभीपुर से उत्पन्न होने के कारण आदि में वल्लभीगण कहलाते थे; पश्चात् इस वंशमें महाराज शिलादित्य के गुहा या गोह नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, इस गुहा के उत्तराधिकारी गहिलोत कहलाने लगे, तत्पश्चात् शीशोद गांव से शीशोदिया कहलाते हैं।

राजस्थान—इतिहास में कर्नल टॉड साहब ने लिखा है कि—"वल्लभीपुर के विध्वंस होने पर वहां के रहने वाले मरुदेश में (मारवाड़ में) भागे और वहां वल्ली, संदेरी, और नादोल नामक तीन नगर बसाये। यह तीन नगर अबतक एक हो भाव से प्रसिद्ध हो रहे हैं। छठी ईस्वी शताब्दी के आरम्भ में जिस दिन म्लेच्छों ने वल्लभीपुर को विध्वंश किया था उस दिन वहां पर जैनधर्म का प्रचार था और आज उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले भाग में भी वह प्राचीन जैनधर्म वहां पर उसी प्रकार से चलता हुआ दिखाई देता है।" (भाग १ पृष्ठ ८७)।

मेवाड़ में धर्म प्रतिष्ठा, पर्वोत्सव व आचार व्यवहार वाले बाईसवें अध्याय में कर्नल टॉड साहब ने लिखा है कि—"मेवाड़ में अत्यन्त प्राचीनकाल से जैनधर्म की आलोचना हो रही है, यद्यपि मेवाड़ के दो एक राजा शैवधर्म को छोड़ कर जैनधर्मावलम्बी हो गये परन्तु शैवधर्म की सब ही ने विशेष सहायता की और उत्साह देते रहे हैं। गिल्होट कुल के आदि पुरुष वल्लभी लोग भी जैनधर्म में दीक्षित थे। ज्ञात होता है कि गिल्होट कुल के राजा लोग इस ही कारण से पितृ

पुरुषों के अवलम्बित धर्म पर अनुराग दिखाते थे। इसमें अकाट्य प्रमाण चित्तौर में बना हुआ पार्श्वनाथ का स्तम्भ ही है" (भाग १ पृष्ठ ७१५)।

२. मारवाड़ राज—जोधपुर

जोधपुर—राठौर क्षत्रियों (राजपूतों) का मुख्य राज्य है। इस राज्य से बीकानेर, किशनगढ़, ईडर रतलाम आदि राज्यों के अधिपति अपने वंशका निकास बतलाते हैं। राठौड़ों की प्रसिद्ध "ख्यात" में लिखा है कि—

गुरु खरतर प्रोहितशिवड़, रोहड़ियो बारट्ट।
कुलको मंगत देवडो, राठौडां कुल भट्ट॥

अर्थात् खरतर गच्छ (श्वे० जैनियों का एक गच्छ) के आचार्य को अपना गुरु और शिवड़ जातिका पुरोहित व रोहडिया बारट्ट व देवडा भाट इनको सदा के लिये राठोड़ वंश में मानेंगे। इसके अतिरिक्त नाउलाई जैन मंदिर को वंशावली के प्रमाण से भी राठौड़ों का पूर्व में जैनी होना सिद्ध होता है।

३. जैसलमेर राज

जैसलमेर के महारावल यदुवंशी भाट्टी क्षत्रिय (राजपूत) हैं। इस सुप्रसिद्ध राजवंश में दीर्घ-काल तक जैनधर्म की आराधना रही है। जैसलमेर में विक्रम सोलहवीं शताब्दी के अन्त में समयसुंदर जी नाम के एक प्रख्यात विद्वान हो गये हैं। उनके बनाये "समाचारीशतक" नामक ग्रन्थ में जो भंडसाली गोत्र की उत्पत्ति लिखी है उससे लोद्रवाधीश्वर महारावल सगरका निज पुत्रों सहित विक्रम संवत १०९१ में जैनधर्म स्वीकार करना स्पष्ट रीतिसे प्रमाणित है। कर्नल टॉड साहब ने भी अपने राजस्थान इतिहास के एक नोट में लिखा है कि—"मुझे लोद्रवा में प्रजराज के समयका अर्थात् दशवीं शताब्दी का एक तांबे का अनुशासन पत्र मिला था वह जैन भाषा में लिखा हुआ था। उससे यह जाना जाता है कि इस देश में उस समय जैनधर्म प्रचलित था" (भाग २ पृष्ठ ४८८)। जैसलमेर विक्रम संवत् १२१२ में बसी है। पहिले लोद्रवामें राजधानी थी।

नोटः—जैसलमेर राजवंश से ही मेरे वंश का निकास है अतएव इस सम्बन्ध में मेरे पास प्राचीन वंशोत्पत्ति पत्रादि और भी प्रमाण हैं कि पूर्व में वहां जैन धर्माराधन किया जाता था। सोलहवीं शताब्दी के पश्चात् वल्लभकुल सम्प्रदाय की मान्यता हुई है।

जैनधर्म और वेद!

(लेखक—वेदविद्या विशारद पं० मंगलसैन जी, अम्बाला)

सज्जनों! सहारनपुर से प्रकाशित होने वाले 'विकाश' का आर्यसमाजांक हमारे सम्मुख उपस्थित है। इसके पृष्ठ ६४ में "जैन-धर्म और वेद" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक स्वामी कर्मानन्द जी हैं! इसमें आपने लिखा है कि—"जैनियों के दो मुख्य सम्प्रदाय हैं! एक दिगम्बर दूसरा श्वेताम्बर। दोनों सम्प्रदायों के मान्य शास्त्रों में वेद की मान्यता है।

उसमें यह स्पष्ट लिखा है कि पहिले वेदों में हिंसा का विधान नहीं था। बाद में कुछ स्वार्थियों ने गड़बड़ की है! इस बात को सिद्ध करने के लिये महापुराण पर्व ६७ श्लोक ३८९ में लिखा है कि—वेद विद्भिरहिंसोक्ता वेदो ब्रह्म निरूपितः। अर्थात् वेद ईश्वर कृत हैं। इसलिये उनमें अहिंसा का ही विधान है" इत्यादि।

महाशय जी! इस लेख में आपने जैनों को साम्प्रदायिकता का भेद बतलाते हुये उनके मान्य ग्रंथों द्वारा वेदों की मान्यता को भी लिखा है! सो मिथ्या है, क्योंकि आर्यसमाजमें भी दो भेद पाये जाते हैं! एक कालिज पार्टी दूसरी गुरुकुल पार्टी। जिन में कालिज पार्टी वाले स्वामी दयानन्द जी रचित प्रथमवार के सत्यार्थप्रकाश के अनुसार ही वेदों में हिंसा का विधान मानते हैं और इस मान्यता के आधार से ही आमिष-समीक्षा आदि कई पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं जिनके अवलोकन से पता चलता है कि वेदों में हिंसा का विधान अर्थात् छुरी से पशु को मारना, काटना प्रत्येक अङ्ग को साफ करके पकाना और हवि तैयार करके यज्ञ में हवन करना लिखा है। इन हिंसा विधायक श्रुतियों को हम कई लेखों में प्रकाशित भी कर चुके हैं परन्तु आर्यसमाज के विद्वानों ने उन हिंसक श्रुतियों का उत्तर आज तक नहीं दिया। द्वितीय गुरुकुल पार्टी—स्वामी दयानन्द जी के प्रथम एडीशन वाले सत्यार्थप्रकाश व उनकी लिखित प्रतिज्ञाओं को मानती ही नहीं—वह तो केवल अपनी मान्यता के अनुसार ही वेदार्थ को मानती है, अन्य को नहीं। इसलिये वेदों के विरुद्ध मान्यता के होने से इस द्वितीय पार्टी को वेद विरोधी भी कहा जावे तो इसमें हानि क्या?

साथ ही में—आप जैन शास्त्रों में अपने मान्य वेदों की मान्यता को भी बतलाते हैं! सो यह सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि जिन वेदों में असम्भव दोष, गंदी बातें, हिंसा विधान, मांस भक्षण और पुनरुक्त आदि दोष पाये जाते हैं—ऐसे वेदों की मान्यता जैनशास्त्रों में कदापि नहीं है। यदि आप यही समझते हैं कि जैन शास्त्रों में इन्हीं ऋग्वेदादि की मान्यता है तो जो दोष आपके मान्य वेदों के सम्बन्ध में दिखलाये गये हैं, आप उनकी निवृत्ति करके दिखलावें अन्यथा जैनागम में वेदों की मान्यता को बतलाना सर्वथा मिथ्या है।

आप यह भी बतलाते हैं कि पहिले वेदों में हिंसा का विधान नहीं था, बाद में स्वार्थियों ने गड़बड़ कर दी है, इत्यादि। प्रथम आप यह तो बतलावें कि पहिले वेद कौनसे हैं और उनका नाम क्या है तथा किसके किये हैं। इसके लिये आपको प्रत्येक ग्रन्थ की प्रशस्ति द्वारा सिद्ध करना होगा! यदि आप ऐसा नहीं कर सकेंगे तो वे वेद यही हैं और स्वार्थियों ने अर्थ में गड़बड़ कर दी है यह कल्पना आपकी मिथ्या सिद्ध हो जायगी।

आगे उत्तर पुराण पर्व ६७ श्लोक ३८९ को इस प्रकार लिखाहै कि "वेद विद्भिरहिंसोक्ता! वेदो ब्रह्म निरूपितः" अर्थात् वेद ईश्वर कृत हैं इसलिए उनमें अहिंसा का ही विधान है, इत्यादि। आपने हिंसक वेदों को अहिंसा के प्रतिपादक और ब्रह्म के कहे हुए बतलाकर अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिये भरसक प्रयत्न किया है। परन्तु आपको यह पता नहीं कि इस प्रमाण से आपके सिद्धान्त की हानि

होगी। क्योंकि मूल श्लोकमें "वेदो ब्रह्म निरूपितः" इस प्रकार लिखा है। आपने ब्रह्म शब्द का अर्थ ईश्वर किया है, सो मिथ्या है।

क्योंकि ब्रह्म निराकार है और ईश्वर साकार है और साकार ईश्वर को आप वेदों का कर्ता मानते नहीं! इस लिए ब्रह्म शब्द का अर्थ "ईश्वर" करना मिथ्या है। और निराकार ब्रह्म भी वेदों का कर्ता सिद्ध नहीं होता, क्योंकि "त्रिपादूर्ध्वउदैत्पुरुषः। —यजु॰ ३१—४" इस यजुर्वेद के प्रमाण द्वारा आकाशकी उत्पत्तिके पूर्व तीन पैरवाला ब्रह्म तो उड़ कर ऊपर अधर जा लटका और उसका चौथा पैर यहां रह गया। अब आप बतलावें कि वेद तीन पैर वाले ब्रह्म से उत्पन्न हुये या एक पैर वाले से श्वास की भांति निकले? यदि आप ब्रह्मको पैरोंवाला मानें तो साकार सिद्ध होने से आपके सिद्धान्त की हानि होगी; और पाद कल्पना को नहीं मानेंगे तो आप वेद-विरोधी होने से नास्तिक सिद्ध होजावेंगे। मज़ा तो यह है कि उस समय आकाश के न होने से आपकी सारी ही कल्पनायें मिथ्या सिद्ध हो जाती हैं।

सम्भव है कि यहां पर आप ऐसी शंका उपस्थित करें कि महा प्रलय के पश्चात् और सृष्टि होने के पूर्व आकाश तो था परन्तु उस समय उसका व्यवहार नहीं था। सो इस प्रकार आपकी शंका भी मिथ्या है; क्योंकि वेद में सृष्टि होने के पश्चात् ही आकाश की उत्पत्ती लिखी है। यदि उस समय आकाश होता तो वेद में उसकी उत्पत्ति लिखनेकी आवश्यकता ही क्या थी। देखो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १२८ में आकाश की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है कि—नाभ्या आसीदन्तरिक्षं अस्य पुरुषस्यनाभ्या अवकाश यात्सामर्थ्या दन्तरिक्ष मुत्पन्नमासीत्। इस प्रमाण में स्वामी दयानन्द जी ने पुरुष के सामर्थ्य से आकाश की उत्पत्ति लिखी है। फिर इसी पुस्तकके पृष्ठ ८९ में लिखा है कि—"तस्माद्वाए तस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः"। 'तस्माद्वा' परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से आकाश, वायु, पृथ्वी आदि उत्पन्न हुये हैं। फिर इसी पुस्तक के पृष्ठ १३३ में लिखा है कि उस परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से आकाश को भी रचा है, जो कि सब तत्वों के ठहरने का स्थान है। ईश्वर ने प्रकृति से लेकर घास पर्यन्त जगत को रचा है, इत्यादि, वेद मंत्रों में आकाश की उत्पत्ति लिखी है। यदि आप वेद मंत्रों के प्रमाण दिखलाने पर भी आकाश के होने की हठधर्मी करेंगे तो वेद-विरोधी होने से आप नास्तिक अवश्य सिद्ध हो जावेंगे।

महाशय जीयालाल जी आगरा ने आर्यमित्र वर्ष ३६ अङ्क २० पृष्ठ १९ कालम एक में लिखा है कि काल और आकाश प्रकृति के रजोगुण में सम्मिलित हैं, इत्यादि। सो काल और आकाश को प्रकृति के रजो गुण में बतलाना मिथ्या है, क्योंकि वेद के अनेक प्रमाण आकाश की उत्पत्ति को सिद्ध करते हैं। और जबकि उस समय आकाश था ही नहीं तब बिना अवकाश के आपके माने हुये ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों ही पदार्थ मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं। फिर काल और आकाश को आप किस प्रकार प्रकृति के रजो गुण में सम्मिलित करते हैं। ज़रा प्रमाण सहित सिद्ध करके बतलाइये।

सम्भव है कि आप ऐसी शंका उत्पन्न करें कि सृष्टि उत्पन्न होने से पूर्व एक ब्रह्म ही था, इत्यादि।

सो इस प्रकार आपका कहना भी मिथ्या है, क्योंकि सृष्टि के पूर्व ब्रह्म के होने में आपने भूत कालिक क्रिया का प्रयोग किया है, और क्रिया काल वाचक होती है तथा कालको आप अनादि नित्य मानते नहीं, इसलिये काल को अनादि नित्य न मानने से सृष्टिके पूर्व एक ब्रह्म ही था, ऐसा कहना भी मिथ्या सिद्ध हो जाता है और जब कि आपका ब्रह्म किसी भी प्रमाण द्वारा अनादि व निर्दोष सिद्ध नहीं होता तब "वेदो ब्रह्म निरुपितः" के आधार से आप हिंसाविधायक वेदों को किस प्रकार अहिन्सक सिद्ध कर सकते हैं।

जैनधर्मोच्छेदन नामक पुस्तक के पृष्ठ १२ में स्वामी कर्मानन्द जी ने लिखा है कि आर्यसमाज का सिद्धान्त तो इसके सर्वथा विरुद्ध है अर्थात् आर्यसमाज आकाश को नित्य मानता है। स्वामी जी ने इस प्रमाण में आकाश को नित्य मानना आर्यसमाज का सिद्धान्त बतलाया है।

और आगे चल कर इसी पृष्ठ में इस प्रकार लिखते हैं कि आर्यसमाज का ईश्वर आपके तीर्थङ्करों की तरह शरीरधारी नहीं है जिसके लिये सिद्धशिला की आवश्यकता हो। अतः उस के रहने के लिये आकाश की आवश्यकता नहीं है। आपने इन दोनों लेखों में से एक जगह तो आकाश को नित्य लिखा है और दूसरे में ईश्वर को निराकार होने से आकाश का निषेध किया है। अब बतलाइये कि इन दोनों बातों में से आपकी कौनसी बात सत्य समझी जावे। इसलिये परस्पर विरुद्ध होने से दोनों ही मिथ्या हैं। साथ ही में तीर्थङ्करों को सशरीरी होने से आपने सिद्धशिला की आवश्यकता भी बतलाई है। सो आपका यह लिखना भी जैन सिद्धान्त की अनभिज्ञता को प्रदर्शित करता है, क्योंकि तीर्थङ्कर अर्थात् केवलज्ञानी जब सशरीरी होते हैं तब संसार में उपदेश करते हैं और जब अघातिया कर्मों का नाश होने से शरीर रहित होते हैं तब वे मुक्ति लाभ करते हैं। इस लिये शरीर सहित तीर्थङ्करों को सिद्धशिला की आवश्यकता बतलाना सर्वथा मिथ्या है। और "वेदो ब्रह्मनिरूपितः" इस प्रमाण से आपने वेदों के ईश्वर कृत होने में भरसक प्रयत्न किया है, परन्तु वेदों के प्रमाणों द्वारा ही परीक्षा करने पर वेद ईश्वर कृत सिद्ध नहीं होते। कहिये स्वामी जी जैन शास्त्रों की साक्षी से हिंसक वेदों को ईश्वर कृत सिद्ध करना यह प्रयत्न आपका मिथ्या है या नहीं?

(क्रमशः)

दिगम्बर जैन साहित्य के उद्धार की योजना पर सम्पादकीय अभिमत !

[गताङ्क से आगे]

श्वेताम्बर साहित्य के संरक्षण और प्रकाशन का श्रेय अधिकांश श्वेताम्बर समाज की त्यागी संस्था को प्राप्त है। यह लोग बड़े अध्यवसायी होते हैं। अच्छे २ विद्वान रखकर अध्ययन करते हैं—मनन करते हैं, और समाज के धनिक-वर्ग को शास्त्रोद्धार के लिये प्रोत्साहित करते हैं।

आज उनमें कई मुनि इतिहास प्राकृत—आगम और दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान और मर्मज्ञ लेखक हैं। पं० सुखलाल जी प्रज्ञाचक्षु, मुनि विजय जी, कल्यानविजय जी, पुण्यविजय जी, पं० बेचरदास जी, पं० हरिगोबिन्द जी ने श्वेताम्बर साहित्य के उद्धार के लिये जो कुछ लिखा है उस पर किसी भी समाज को गौरव हो सकता है। किन्तु हमारे समाज की दशा ही निराली है, त्यागीवर्ग, पण्डितवर्ग, और दानीवर्ग, तीनों ही इस ओरसे उदासीन हैं। तीनों में से एक भी विद्यारसिक नहीं कहा जा सकता। त्यागीवर्ग में विद्वान कहे जाने के योग्य विरले ही महानुभाव हैं। पण्डितवर्ग विद्वान है, परन्तु आलस्य और प्रमाद ने उसे अपने शिकंजे में कस रक्खा है। दस पांच वर्ष किसी विद्यालय में अध्ययन करने के बाद—किसी संस्था में जम जाना और जीवन भर बम्बई परीक्षालय के कोस पढ़ाते रहना ही उनका जीवनोद्देश रहता है। पुराने और नवीन पण्डितों में ऐसे विद्यारसिक शायद ही दो चार निकलेंगे जिन्होंने अपने अध्यापन काल में अपना ज्ञान बढ़ाने का प्रयत्न किया हो।

प्राकृत भाषा जैनागम की जान है, किन्तु उसका जानकार आज दिगम्बर समाज में एक भी नहीं है।

धनिकवर्ग को क्या दोष दिया जाये, वह तो अपनी समाज के त्यागियों और विद्वानों पर श्रद्धा रखकर दान करता है—वे जैसा उपदेश देतेहैं वैसा ही उसके दान का आधार भी होता है। अस्तु!

प्रोफ़ेसर साहब की योजना के अनुसार पचास हज़ार रुपया संचित हो जाने पर कार्य प्रारम्भ कर दिया जायेगा। रुपया एकत्रित करने के लिये सौ २ रुपये के १००० शेयर रक्खे गये हैं, जिनका भरा जाना मुश्किल नहीं है। जैनसमाज के मंदिरों का लाखों रुपया भण्डारों में जमा है, जिसके बानी मुबानी पञ्चायत के मुखिया बने हुए हैं। बहुत सा रुपया तो बेकार पड़े २ उन्हीं की जमा में शामिल हो जाता है, ऐसी दशा में उन जिन मन्दिरों का फालतू रुपया जिनवाणी के प्रकाशन में व्यय कर दिया जाये तो रुपये का सदुपयोग और माता का उद्धार, दोनों हो जायं। क्या जिनमन्दिरों की पञ्चायतें जिनवाणी माता के उद्धार में हाथ बटाकर अपनी सच्ची मातृ भक्ति का परिचय देंगी।

सर सेठ हुकुमचन्द जी ने विपुल धन व्यय करके अनेक पारमार्थिक संस्थाओं की स्थापना की—जैन विद्यालय, बोर्डिङ्ग, जिन मन्दिर, उदासीनाश्रम, धर्मशाला, जैन औषधशाला आदि। किन्तु जिनवाणी माता के उद्धार के लिये अभी तक भी उन्होंने किसी संस्था का बीजारोपण नहीं किया। सेठ जी की संस्थाओं में जिनवाणी उद्धारक संस्था का अभाव सबको खटकता है। हम आशा लगाये हुए हैं कि लोगों की खटक सेठ जी के द्वारा शीघ्र ही दूर कर दी जायगी।

मध्य प्रान्तीय दो श्रीमन्तों ने अपने जीवन में एक २ लाख के लगभग दान किया था। सिवनी के स्व० श्रीमन्त पूरनसाव जी के दान से एक दो संस्थायें चल रही हैं। हम उनके उत्तराधिकारी श्रीमन्त वृद्धिचन्द्र जी से अनुरोध करेंगे कि वे उस दान का कुछ अन्श जिनवाणी प्रकाशन के लिये देने का साहस करें। आजकल इस दान की बड़ी आवश्यकता है। खुरई के स्व० श्रीमन्त मोहनलाल

जी के दान का क्या उपभोग हो रहा है, इसका पता शायद ही किसी को होगा, उनका उत्तराधिकारी नाबालिग है। क्या कोई सज्जन हमारी आवाज़ स्वर्गीय श्रीमन्त जी की पत्नी तक पहुँचाने की तकलीफ उठायेंगे।

दिगम्बर साहित्य का प्रकाशन होने से अनेक विश्व विद्यालयोंमें दिगम्बर साहित्य कोर्समें भर्तीहो सकेगा, जिससे अनेक जैनेतर विद्वान और विद्यार्थी उसका अध्ययन करेंगे और इस तरह देश और विदेश में भगवान महावीर के उपदेश का प्रचार होगा।

भण्डारों में बन्द रखने के लिये जैनाचार्यों ने महान ग्रन्थोंकी रचना नहीं की थी। उनका उद्देश्य था कि जनता में सत्य का प्रचार हो। किन्तु वर्त्तमान दिगम्बर जैन समाज का अभिप्राय ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों के प्रकाशित होनेसे उसका कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि वह संस्कृत व प्राकृत को जानती नहीं। सम्भवतः इसीलिये अच्छे २ ग्रन्थ प्रकाशन के लिये पड़े रहते हैं और साहित्य का कचरा—यदि हिन्दी टीका सहित हो तो झट दानियों की सहायता से प्रकाशित हो जाता है। जैन समाज के दानियों के उक्त अभिप्राय पर हम यही निवेदन करना चाहते हैं कि भाइयों! यदि आप उन ग्रन्थों का अध्ययन करके अपनी आत्मा को उन्नत नहीं बना सकते तो उनके प्रचार में सहायता देकर पुण्य के भागी बनें। जैन कथानकों में लिखा है कि अनेक अज्ञानी शास्त्रदान के प्रभाव से श्रुतकेवली तक हो गये हैं। इसलिये ऐसी स्वार्थदृष्टि अच्छी नहीं। इस विषय में आपको श्वेताम्बर धनिकों का अनुकरण करना चाहिये, जो स्वयं कुछ न जानते हुए भी अपने साधुओं के उपदेश पर लाखों रुपया जिनवाणी माता के प्रचार के लिये दे डालते हैं।

अन्त में हम शास्त्रार्थ संघ की प्रबन्धसमिति तथा जनरल सेक्रेटरी का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

शास्त्रार्थ संघ को अपने नाम के अनुरूप शास्त्रोद्धारका काम अपनाना चाहिये। सामाजिक झगड़ों को घिस २ में पड़ने के लिये बहुत सी संस्थायें जीवित हैं। क्या समाज के विचारशील, त्यागी पण्डित इस ओर ध्यान देंगे।

"जैनदर्शन" पर लोकमत!

१. यति भूषण, कवि शिरोमणि, काव्य प्रभाकर पं० स्वरूपचन्द्र जी जैन सरोज H. M. B., M. R. A. S. (लन्दन) गोल्ड मैडालिस्ट, कानपुर से लिखते हैं कि—

देहली में, लाला पन्नालाल जी के यहां आपके "जैनदर्शन" के दर्शन उपलब्ध हुए। यह मेरे लिये पहिला ही अवसर था जबकि आपके पत्र का परिचय प्राप्त हुआ। पढ़कर हृदय गद्गद हो गया। वास्तव में इस समय ऐसे पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी ××× इसके संचालक महोदय एवं सम्पादक महानुभाव कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं।

२. श्रीयुत मणिलाल जी श्वे० जैन उपाश्रय सूरत से लिखते हैं कि—

में ने जेमण अङ्क जैनदर्शन ना वांचो त्या सामग्री जोई ने मन प्रफुल्लित थाय छे।

[१४]

केवली और मन

पंडित दरबारीलाल जी की सर्वज्ञत्व चर्चा की निम्न लिखित बातें अभी शेष हैं :—

(१) केवली और मन।

(२) केवली और अन्य ज्ञान।

(३) सर्वज्ञ शब्द का अर्थ।

दरबारीलाल जी ने अपनी पहिली बात के समर्थन में तीन बातें लिखी हैं—एक जैन शास्त्रों से केवली के मनोयोग का अस्तित्व, दूसरी केवली के ध्यान का होना और तीसरी केवली से प्रश्नोत्तरों का होना। इन तीनों बातों के लिखने से पूर्व दरबारीलाल जी ने निम्न लिखित वाक्य लिखे हैं—"केवली सब वस्तुओं को एक साथ नहीं जानते, इस विषय में और भी बहुतसी विचारणीय बातें हैं जिनका यहां उल्लेख किया जाता है। इस विषय में विशेष विचारणीय बात यह है कि केवली के मनोयोग होता है। जहां मनोयोग है वहां सब वस्तुओंका एक साथ प्रत्यक्ष हो नहीं सकता, क्योंकि मन एक समय में एक तरफ ही लग सकता है"।

मन एक समय में एक तरफ ही लगसकता है इसका अभिप्राय यदि यह है कि मनोयोग एक समय में एक तरफ लग सकता है तब तो यह बात असिद्ध है। मनोयोग से तात्पर्य तो मनके निमित्त से होने वाले केवल आत्म प्रदेशों के हलन चलन से है। इसका एक विषय और सब विषयों से क्या सम्बन्ध? यदि इसका यह मतलब अभीष्ट है कि मनके निमित्त से होने वाला ज्ञान, जिसको मनोपयोग कहते हैं एक समय में एक ही पदार्थ को जान सकता है तब तो इसके आधार से यही माना जा सकता है कि मनोपयोगी को एक साथ सब वस्तुओं का ज्ञान नहीं हो सकता। इससे यह बात तो सिद्ध नहीं हो सकती कि मनोयोगी को भी एक साथ सब वस्तुओं का ज्ञान नहीं हो सकता; क्यों कि मनोपयोग और मनोयोग, ये भिन्न २ दो बातें हैं। जहां कि मनके द्वारा पदार्थों का ग्रहण करना मनोपयोग है वहीं मनके निमित्त से आत्म प्रदेशों में हलन चलन होना मनोयोग है। यदि दरबारीलाल जी का अभिप्राय यह है कि वह केवली में इस बात को एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों के जानने के अभाव को-मनोपयोग से ही सिद्ध करना चाहते हैं तब तो उनको केवली में इसके अस्तित्व को प्रमाणित करना था। यह कैसे हो सकता है कि केवली में मनोपयोग के अस्तित्व को प्रमाणित किए बिना ही उनमें इसही के आधार से किसी भी बातको स्वीकार किया जा सके!

दरबारीलाल जी ने अपने इस वक्तव्य के समर्थन में राजवार्तिक की एक पंक्ति लिखी है और वह यह है कि "क्षयेऽपि सयोगकेवलिनः त्रिविधो योग इष्यते" अर्थात् क्षय हो जाने पर भी सयोग केवली के तीन प्रकार का योग माना गया है। राजवार्तिक के इस वाक्य के सम्बन्ध में पहिली बात तो यह है कि यह पूर्व पक्ष का वाक्य है। राजवार्तिककार भट्टाकलंक पूर्वपक्ष के भावको प्रगट करते हुए लिखते हैं * कि यदि क्षयोपशम की प्राप्ति को अभ्यन्तर कारण मानोगे तो यह योग व्यवस्था क्षयमें कैसे घटित होगी? क्षयकी अवस्था में भी सयोग केवली के तीन प्रकार का योग माना ही गया है। यदि आपका—उत्तर पक्षका—यह मन्तव्य है कि क्षय निमित्त भी योग होता है तो यह अयोग केवली और सिद्धों में भी मानना पड़ेगा। (अब यहां से उत्तर पक्ष शुरू होता है) यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि क्रियापरिणामी आत्मा का तीन प्रकार की वर्गणाओं के आधार से जो हलन चलन है वह योग है। इस प्रकार की व्यवस्था सयोग केवली में घटित हो जाती है, क्योंकि वहां हलन चलन की निमित्त भूत वर्गणाओं का सद्भाव है। इसही प्रकार की वर्गणाओं के अभाव से अयोग केवली और सिद्धों में यह बात घटित नहीं होती। राजवार्तिक के कथन के इस उद्धरण से पाठक समझ गये होंगे कि दरबारीलाल जी वाला वाक्य पूर्वपक्ष का वाक्य है। अतः इस वाक्य को यहां मान्यता के रूप में उपस्थित नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह है कि इस अभिप्राय को कि सयोग केवली में तीनों योग होते हैं स्वीकार कर लेने पर भी इससे दरबारीलाल जी का अभिमत सिद्ध नहीं होता, क्योंकि मनोपयोग के साथ सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान के अभाव का नियम है न कि मनोयोग के साथ। मनोपयोग और मनोयोग ये दोनों भिन्न २ हैं, जैसाकि हम पूर्व भी लिख आये हैं। अतः केवली में मनोयोग के स्वीकार करलेने से भी दरबारीलाल जी का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता!

प्रश्न—मनोपयोग को भले ही पदार्थ ग्रहण के नामसे और मनोयोग को हलन चलन के नाम से कहिये किन्तु ये दोनों हैं एक ही। जिस समय मनकी सहायता से पदार्थों का ज्ञान होता है उसही समय मनके निमित्त से हलन चलन भी होता है। क्या कोई ऐसा भी समय है जबकि मन के द्वारा पदार्थों का ज्ञान तो हो जाता हो किन्तु मनके निमित्त से हलन चलन न होता हो? यदि नहीं तो फिर इनको भिन्न २ कैसे स्वीकर किया जा सकता है? उत्तर—यदि आपही की बातको मान लिया जाय कि जिस समय मन की सहायता से पदार्थों का ज्ञान होता है उसही समय मनके निमित्त से हलन चलन भी होता तब भी यह कैसे माना जा सकता है कि ये दोनों एक ही हैं। एक समय में होना भिन्न बात है और एक होना भिन्न। सैकड़ों पदार्थ हैं जो एक ही समय में पैदा होते हैं,

---

* यदि क्षयोपशम लब्धिरभ्यन्तर हेतुः क्षये कथं? क्षयेऽपि सयोग केवलिनः त्रिविधो योग इष्यते। अथ क्षयनिमित्तोऽपि योगः कल्प्यते अयोग केवलिनां सिद्धानां च योगः प्राप्नोति? नैष दोषः क्रियापरिणामिनः आत्मनस्त्रिविध वर्गणा लंबनापेक्षः प्रदेश परिस्पन्दः सयोग केवलिनो योगविधिर्विधीयते, तदालंबनाभावात् उत्तरेषां योग विधिर्नास्ति। राजवार्तिक ६। १

फिर भी वे एक नहीं हैं। सूर्य प्रताप और सूर्य प्रकाश ही है। इन दोनों की उत्पत्ति सूर्य से एक ही समय होती है फिर भी ये एक नहीं हैं।

वे लोग जिनको बड़े २ शहरों में आने का अवसर मिला है और जिन्होंने चौराहों पर पुलिस के सिपाहियों को कार्य करते देखा है इस बात को भली भांति जानते हैं कि सिपाहियों के एक ही इशारे से गाड़ियों का एक तरफ़ से आना बन्द हो जाता है और दूसरी तरफ़ की गाड़ियों का चलना शुरू हो जाता है। ये दोनों कार्य एक ही समय होते हैं। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का एक साथ होना तो एक अति प्रसिद्ध बात है। इन सब दृष्टान्तों से प्रगट है कि एक समय में होने के आधार से एकत्व के प्रमाणित करने की चेष्टा बिलकुल निराधार है। ऐसा होना तो प्रत्युत उनकी भिन्नताका ही नियामक हो सकता है। वह वस्तु जो एक या अभिन्न है उसमें साथ या अभिन्न समय की बात ही क्या हो सकती है। इस प्रकार की बातें तो उन पदार्थों के सम्बन्ध में घटित हो सकती हैं जो भिन्न २ हैं। एक ही पदार्थ के आने जाने और होने आदि में कोई नहीं कहता कि साथ आये, साथ गये और साथ हुए। इस प्रकार की कथनी तो अनेक पदार्थों के सम्बन्ध में ही हुआ करती है। इससे प्रगट है कि एक समय में होना मनोपयोग और मनोयोग की अभिन्नता का नियामक कदापि नहीं हो सकता, प्रत्युत यह तो उनकी भिन्नता पर ही प्रकाश डालता है।

इसके सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार मनोपयोग के साथ मनोयोग अवश्य रहता है उसही प्रकार मनोयोग के साथ मनोपयोग का नियम नहीं।

शास्त्रकारों ने जहां मन के द्वारा योग को मनोयोग स्वीकार किया है वहीं मन के निर्माण के योग को भी मनोयोग माना है। यही कारण है कि मनोयोग का लक्षण करते हुए भट्टाकलंक +, पूज्यपाद × और विद्यानन्दि ÷ सरीखे आचार्यों ने लिखा है कि मनोवर्गणा की अपेक्षा होने वाला प्रदेश परिस्पन्द मनोयोग है। यदि इनको मननिर्माण में होने वाला योग मनोयोग इष्ट न होता तो ये मनोवर्गणा के निमित्त से होने वाले प्रदेश परिस्पन्द को मनोयोग कदापि न लिखते। मनोवर्गणा और मन, ये पुद्गल द्रव्य की पूर्वा पर पर्यायें हैं। जब तक पुद्गल स्कन्ध द्रव्य मन के आकार को धारण नहीं करते किन्तु इस योग्य हो जाते हैं तब तक उनको मनोवर्गणा कहते हैं। जिस समय ये द्रव्य मन रूप परिणमन कर लेते हैं उस समय इनकी अवस्था वर्गणारूप नहीं रहती। मनोवर्गणा और द्रव्यमन की बिलकुल ईंट और दिवाल जैसी बात है; अतः स्पष्ट है कि वर्गणानिमित्तक योग तभी तक है जब तक कि उनके द्वारा द्रव्यमन का निर्माण नहीं होने

+ मनः परिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोगः। राजवार्तिक ६। १

× बाह्यनिमित्त मनोवर्गणालम्बने च सति मनः परिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोगः। सर्वार्थसिद्धि ६। १

÷ कायादि वर्गणालम्बितो जीवप्रदेश परिस्पन्दो योगस्त्रिविधः प्रत्येतव्यः। श्लोक वार्तिक। ६। १

पाता। और यह मनोनिर्माण या उसके दृढ़ीकरण का ही समय होसकता है। इसी प्रकारका मनोयोग सयोग केवली की पूर्व अवस्था में माना गया है। गोम्मटसार जीवकाण्ड में लिखा है * कि आङ्गोपाङ्ग नाम कर्म के उदय से जिनेन्द्र भगवान के द्रव्यमन के निमित्त मनोवर्गणारूप पुद्गल स्कंध आते हैं, अतः उनके मनोयोग होता है। सर्वार्थसिद्धि✽ और श्लोकवार्तिक † भी इसी प्रकार का वर्णन करती हैं।

केवली के इस प्रकार मनोयोग स्वीकार करके भी इन शास्त्रकारों ने उनके मनोपयोग का स्पष्ट निषेध किया है। सर्वार्थसिद्धि ‡ में साफ़ तौर से स्वीकार किया है कि असंज्ञी के पहिला गुणस्थान होता है और संज्ञी के पहिले से बारहवें तक। सयोग केवली और अयोगकेवली न संज्ञी है और न असंज्ञी ही। संज्ञी और मनोपयोगी यह एक बात है* इससे स्पष्ट है कि यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि जहां २ मनोयोग है वहां वहां मनोपयोग भी।

तीसरी बात यह है कि मनोपयोग चेतनागुण की एक अवस्था का नाम है जबकि मनोयोग ऐसा नहीं है; अतः यह भी मनोपयोग और मनोयोग की भिन्नता में एक युक्ति है। स्पष्टता के लिये यों समझियेगा कि एक हिलता हुआ दर्पण है जिसमें भिन्न २ प्रकार के पदार्थों के आकार झलक रहे हैं। यहाँ दो बातें हैं—एक दर्पण का हिलना और दूसरी पदार्थों के आकारों का उसमें झलकना। हिलने से पदार्थों के आकारों का झलकना एक भिन्न बात है, इसी प्रकार पदार्थों के आकारों के झलकने से हिलना भी एक भिन्न बात है।

दर्पण में जो हिलने की बात है वैसे ही आत्मा में योग की और जैसी यहाँ पदार्थों के आकारों के झलकने की है वैसी ही आत्मा में उपयोग की। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनोयोग मनोपयोग से एक भिन्न बात है तथा राजवार्तिक आदि के उल्लेख सयोग केवली में मनोयोग के ही अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि मनोपयोग की ही एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान के अभाव के साथ व्याप्ति है। अतः इन आधारों से केवली में एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान का अभाव प्रमाणित नहीं होता। दरबारीलाल जी ने इसही सम्बन्ध में एक बात और भी लिखी है और वह है मनोयोग के उपचार के सम्बन्ध में। आपने बतलाया है कि जब केवली में मनोयोग के कारण एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान का ही अभाव होने लगा तब पीछे के लेखकों ने इस बात की कल्पना की कि केवली में मनोयोग उपचार से है। दरबारीलाल जी केवली में मनोयोग के इस उपचार के दो कारण मालूम कर

* अंगोवंगुदयादो दव्वमणट्ठं जिणिंद चंदम्हि। मणवग्गण खंधाणं आगमणादो दु मणजोगो। गा० २२९

✽ देखो गत पृष्ठ नं० ३८७ का फुटनोट × † देखो गत पृष्ठ नं० ३८७ का फुटनोट ÷

‡ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु द्वादश गुणस्थानानि क्षीणकषायान्तानि। असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टि स्थानम्। तदुभय व्यपदेशरहितः सयोगकेवली अयोग केवली च। सर्वार्थ० १। ८

* संज्ञिनः समनस्काः। तत्त्वार्थ सूत्र २। २४

सके हैं जिनका यहाँ हम उनके ही शब्दों में उल्लेख किये देते हैं :—

(१) छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) जीवों के मन-पूर्वक बचन व्यवहार देखा जाता है, इसलिये केवली के भी मनोयोग मानागया; क्योंकि वे भी बचन व्यवहार करते हैं।

(२) केवली के मनोवर्गणा के स्कन्ध आते हैं, इसलिए उपचार से उनके मनोयोग मानाजाता है।

दरबारीलाल जी ने मनोयोग के उपचार के दोनों ही कारण गोम्मटसार जीवकाण्ड की योग-मार्गणा की २२८ † और २२९ * वीं गाथाओं के आधार से लिखे हैं। उपचार के इन दोनों कारणों पर दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित बाधायें उपस्थित की हैं:—(१) अज्ञानियों में मन के साथ बचन व्यवहार का अविनाभावी सम्बन्ध नहीं, असंज्ञियों में बिना मनके भी बचन व्यवहार होता है, अतः इसके आधार से केवली में मनोयोग उपचरित नहीं माना जा सकता। (२) यदि वर्गणाके आने मात्रसे ही योगकी कल्पना की जायगी तब तो तैजसयोग भी मानना होगा, क्योंकि तैजसवर्गणायें भी तो आती हैं। मनोवर्गणायें भी उस समय आती हैं जब कि बचन और कायवर्गणायें भी आती हैं; अतः उस समय भी मनोयोग मानना पड़ेगा।

दरबारीलाल जी ने इन गाथाओं पर यदि गवेषणात्मक दृष्टि से विचार किया होता तो वे इस परिणाम पर कदापि न पहुँचते। इन गाथाओं का वह भाव बिलकुल नहीं जो कि उन्हों ने लिखा है। ये दोनों गाथायें योग मार्गणा की गाथायें हैं। योग मार्गणा गोम्मटसार जीवकाण्ड में २१६ वीं गाथा से प्रारम्भ होती है। योग मार्गणा के प्रारम्भ और इन गाथाओं में केवल १२ गाथाओं का ही अन्तर है;इन १२ गाथाओं में से पहिली गाथा में योग का लक्षण है। दूसरी में बतलाया गया है कि मन और बचन की प्रवृत्ति सत्य, असत्य, उभय और अनुभय पदार्थों में होती है। अतः इनके भी— मन और बचन, ये ही नाम रख दिये गये हैं। इन सत्य, असत्य, उभय और अनुभय मन और बचन का योग सहायक है। अतः योग भी इसी प्रकार के कहलाते हैं। तीसरी और चौथी गाथा में मनो-योग के चारों भेदों का स्वरूप है। पांचवीं से ११ वीं गाथा तक बचनयोग के भेदों का वर्णन किया गया है। १२ वीं गाथा में बचनयोग और मनोयोग के कारणोंका वर्णन है। १३ वीं और १४ वीं गाथायें विवादस्थ गाथायें हैं। इनके द्वारा शास्त्रकार ने केवली में मनोयोग का वर्णन किया है। किन्तु यह मनोयोग क्या है इसके लिये गाथा नम्बर दो पर दृष्टि डालनी होगी। गाथा नम्बर ‡ २ में बतलाया गया है जैसा कि हम पूर्व भी लिख चुके हैं कि मन और बचन की प्रवृत्ति सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप अर्थों में होती है। इनके संबन्ध से मन और बचन के भी इतने ही भेद हैं। यहां मन से तात्पर्य्य मनोपयोग से है।

द्रव्यमन जड़ होने से सत्य, असत्य, उभय, और अनुभय पदार्थों का ग्राहक नहीं होसकता।

---

† मणसहियाणं वयणं दिट्ठं तप्पुव्व मिदि सजोगम्हि। उत्तो मणोवयारेणिंदिय णाणेण हीणम्हि ॥२२८॥

* अंगोवंगुदयादो दव्वमणट्ठं जिणिंद चंदम्हि। मण वग्गण खंधाणं आगमणादो दु मणजोगो ॥२२९॥

‡ मणवयणाण पउत्ती सच्चा सच्चुभय अणुभयत्थेसु। तण्णामं होति तदा तेहि दु जोगा हु तज्जोगा ॥२१७॥

तथा यहां वही मन उपादेय है जोकि इस प्रकार के पदार्थों को ग्रहण कर सकता हो। अतः यह भी इस बात को पुष्ट करती है कि यहां मन का अर्थ मनोपयोग ही है। इस प्रकार इन गाथाओं से भिम्नलिखित बातें प्रमाणित होती हैं:—(१) मनोपयोग और मनोयोग ये दोनों भिन्न २ बातें हैं। (२) सत्य मन, असत्य मन, उभय मन और अनुभय मन से तात्पर्य इस प्रकार के मनोपयोगों से है। (३) योग आत्म प्रदेशोंका परिस्पन्द स्वरूप है तथा यह इन मनोपयोगोंका सहायक है अतः वह भी सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोग कहलाता है। सयोग केवली में इसी प्रकार के मनोयोगके समर्थनमें आचार्य नेमिचन्द्रने इन दोनों विवादस्थ गाथाओं की रचना की है। जिस प्रकार कि सत्य मनोयोगादि में सत्यमन से तात्पर्य सत्य मनोपयोग से है और उसका सहायक होने से योग को भी सत्य मनोयोग कहा गया है। उसही प्रकार यहां भी मन से तात्पर्य मनोपयोग से है और उसका सहायक होने से योग को मनोयोग कहा गया है। इससे प्रगट है कि यहां मनोयोग शब्द केवल मनोयोग के ही अर्थ में व्यवहृत नहीं हुआ है किन्तु यहां इसका मतलब सहायक मनोपयोग मनोयोग है। अतः केवली में इसके सिद्ध करने के लिए भी दोनों बातों का समर्थन अनिवार्य हो जाता है।

एक मनोपयोग और दूसरा मनोयोग। आचार्य नेमिचन्द्र ने इसी लिये इन दोनों विवादस्थ गाथाओं की रचना की है। आचार्य ने पहिली गाथा से केवली में मनोपयोग का समर्थन किया है और दूसरी से मनोयोग का। इन दोनों बातों के सिद्ध हो जाने पर मनोपयोग सहायक स्वरूप मनोयोग का सिद्ध हो जाना तो एक स्वाभाविक बात है। मनोपयोग सयोग केवली के नहीं किन्तु मनोयोग है। मनोयोग एवं उसके भेदों की व्याख्या आचार्य नेमिचन्द्र ने इस ढंग से की है जिससे इसके लिये केवली में मनोपयोग का मानना अनिवार्य है। अतः उन्होंने गाथा नं० २२८ से उपचरित मनोपयोग को केवली में स्वीकार किया है।* गाथा का भाव यह है कि मन सहित प्राणियों का वचन व्यवहार मन पूर्वक होता है अतः इन्द्रियज्ञान से रहित सयोग केवली में भी मन उपचार से माना गया है। विवादस्थ दूसरी गाथा † से शुद्ध मनोयोग ‡ का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से उपचार का कोई सम्बन्ध नहीं है। गाथा का भाव यह है कि आङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय से द्रव्य मन के निमित्त जिनेन्द्र भगवान में मनोवर्गणायें आती हैं अतः उनमें मनोयोग है। इससे प्रगट है कि दरबारीलाल जी का इन दोनों गाथाओं को मनोयोग के उपचार के कारण में घटित करना मिथ्या है। साथ ही यह भी प्रगट है कि विवादस्थ पहिली गाथा को शुद्धमनोयोग के सम्बन्ध में घटित करना भी मिथ्या है। इस गाथा में ऐसा कोई शब्द नहीं जिसका अर्थ इस प्रकार का मनोयोग किया जा सके। यहां साफ़ लिखा है कि मन सहितों के वचन व्यवहार मनपूर्वक देखे गये हैं, इस लिये सयोग केवली में भी वही मन उपचार से माना

---

* पहिले लिख आये हैं † गाथा २२९ है। इसही लेख में पहिले लिख चुके हैं ‡ शुद्ध मनोयोग से तात्पर्य केवल मनोयोग से—मनोवर्गणा के निमित्त से होने वाले आत्म प्रदेश परिस्पंद—है।

गया है। वह मन जिसके अनुसार मन सहित प्राणियों के वचन व्यवहार होता है मनोपयोग के अतिरिक्त अन्य नहीं हो सक्ता। क्योंकि यह बात न मनोयोग के सम्बन्ध में ही घटित होती है और न द्रव्यमन के ही सम्बन्ध में। दूसरी बात यह है कि मन से शास्त्रकार का तात्पर्य यदि मनोयोग या द्रव्यमन से होता तो वे उसको यहां उपचरित न मानते, क्योंकि इनका वास्तविक अस्तित्व तो उन्होंने स्वयं इससे अगली गाथा ही में स्वीकार किया है। तीसरी बात इनसे यह भी सिद्ध होती है कि सयोग केवली में मनकी सहायता से ज्ञान नहीं होता। यदि ऐसा होता तो शास्त्रकार को इस प्रकार के ज्ञानका उपचरित अस्तित्व न बतलाना पड़ता। प्रश्न—गाथा नं० २२८ को आप भलेही मनोयोग के सम्बन्ध में न मानें और मनोपयोग के ही सम्बन्ध में मानें, किन्तु फिर भी इसके सम्बन्धमें दरबारीलालजी का दोष तो तदवस्थ ही है। उत्तर—दरबारीलालजी ने गाथा नं० २२८ में दोष के निकालने का प्रयत्न नहीं किया, किंतु उसके बनानेकी चेष्टा की है। दरबारीलालजी ने इस गाथा के (मणसहियाणं) शब्द का अर्थ छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) किया है। मन सहित भी छद्मस्थ या अल्पज्ञानी है किन्तु यह नियम नहीं कि जितने छद्मस्थ या अल्पज्ञानी हैं वे सब मनसहित ही हों। छद्मस्थ या अल्पज्ञानी तो एक, दो, तीन और चार इन्द्रिय वाले जीव भी हैं किन्तु वे मनसहित नहीं है। अतः दरबारीलाल जी का (मणसहियाणं) शब्द का छद्मस्थ अर्थ मिथ्या है। दरबारीलाल जी से इस प्रकार की ग़लती असावधानी से नहीं हुई है किन्तु उन्होंने ऐसा जानकर किया है। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता और गाथा के शब्द का वही अर्थ रक्खा होता जोकि अति स्पष्ट है और उसके टीकाकारों ने किया* है तो फिर दूषण को जो कि इसके सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने दिया है स्थान ही नहीं था। दूषण देते हुए दरबारीलालजी लिखते हैं कि असंज्ञी जीवों के वचनयोग और वचन व्यवहार होता है किन्तु उनके मनोयोग नहीं माना जाता। दरबारीलाल जी के इसी दूषण को यदि गाथा के ठीक अर्थ के अनुसार दिया जाय तो यह घटित ही नहीं होता। वहां तो यह बतलाया गया है कि मन-सहितों का वचन व्यवहार मनपूर्वक है। इसमें असंज्ञियों—मन रहितों—से दूषण की रंचमात्र भी गुंजायश नहीं। इससे प्रगट है कि गाथा के अर्थ के अनुसार तो दरबारीलाल जी के दूषण की दोनों ही हालतों में बिलकुल गुंजायश नहीं है। यह दूषण तो दरबारीलाल जी के बदले हुए अर्थ पर ही लागू हो सकता है। अतः दूषण की बात बिल-कुल निःसार है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी का उपचार सम्बन्धी कथन भी मिथ्या है।

[क्रमशः]

---

* (क) यथा अस्मदादेः छद्मस्थस्य मनोयुक्तस्य तत्पूर्वकं मनपूर्वकं मेव वचनं ······बड़ी टीका २२८

(ख) अस्मादृशां छद्मस्थानां मनः सहितानां, तत्पूर्वं मनः पूर्वमेव वचनम् ······दूसरी बड़ी टीका २२८

आचार्य कुन्दकुन्द और उनका समय

[अनु०—पं० खुशालचन्द्र जी शास्त्री, स्या० वि०, काशी]

[गताङ्क से आगे]

दक्षिण भारत के प्रारम्भिक राज्य चेर, चोल और पांड्य थे। इनमें पांड्यराजा जैनी तथा जैनधर्म के शुभचिन्तक थे, यह ऐतिहासिक सत्य है। उन ने ८ वीं शताब्दी के लगभग अप्पर (Appar) और सुन्दरार (Sundarar) के वैष्णव प्रभाव से प्रभावित होकर अपना धर्म परिवर्तन कर लिया था। सीलोन के राजा गजबाहु के समकालीन चेर राजा के छोटे भाई द्वारा एक प्रसिद्ध तामिल जैन ग्रन्थ 'शिलापदीकर्म' का लिखा जाना यह सिद्ध करता है कि चेर भी जैन थे। चोल भी कभी कभी जैनधर्म के शुभचिन्तक रहे और अन्तिम समय शैव हो गये थे। इनकी राजभाषा तामिल थी, और अशोक के समय में दक्षिण में वर्तमान थे। तो क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य का इन तीनों में से किसी के साथ सम्बन्ध रहा होगा। यह कल्पना आसानी से की जा सकती थी पर एक बाधा आ जाती है, वह यह है कि—प्राभृतत्रय के टीकाकार यह मानते हैं कि यह ग्रन्थ आचार्य ने अपने शिष्य राजा शिवकुमार को समझाने के लिये लिखे थे, पर वे यह नहीं बताते कि यह राजा किस वंश या देश का था। इसलिये फिर अनुमान की शरण लेनी पड़ती है। यह शिवकुमार महाराज अवश्य जैनी होंगे, इनकी राज्यभाषा भी प्राकृत होगी, और कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य होने के कारण कहीं न कहीं दक्षिण में ही राज्य करते होंगे। पर यह नाम तीनों तामिल वंशों की वंशावलीमें नहीं पाया जाता है, और न यह ही सिद्ध होता है कि किसी भी राजा की राजभाषा प्राकृत थी। पर अपना पक्ष सिद्ध करने के पहिले हमें के० बी० पाठक (K. B Pathak) लिखित महाराज शिवकुमार विषयक समानता का सुधार कर देना चाहिये।

भारतीय खोजविभाग सं० १८८५ के पृष्ठ १५ (The Indian Antiquary Vol XIV, 1885 page 15) के अनुसार कुन्दकुन्दाचार्य एक लोकमान्य जैन ग्रन्थकर्ता थे। उनके ग्रन्थ प्राभृतसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, रयणसार और द्वादशानुप्रेक्षा हैं। यह सब ग्रन्थ प्राकृत में लिखे गये हैं, प्राभृतसार के टीकाकार बालचन्द्र, जो कि अभिनवपम्पा के पहिले हुए थे, भूमिका में लिखते हैं कि कुन्दकुन्द का दूसरा नाम पद्मनन्दी था, और वे शिवकुमार महाराज के धर्मगुरू थे। हम महाराज शिवकुमार को कदम्ब वंशीय 'श्री विजय शिवमृगेश महाराज' ही मानते हैं, क्योंकि इनके समय में जैन निर्ग्रन्थ और श्वेतपट विभागों में बँट चुके थे। जैसाकि आचार्य कुन्दकुन्द श्वेताम्बर मान्यता का खण्डन करते हुए कहते हैं कि 'स्त्री वस्त्र धारण करती है, अतः निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकती' यथा 'चित्ते चिंतामाया तम्हा तासि ण णिव्वाणं'। दूसरा प्रमाण यह है कि उस समय जैनधर्म सब देशों में न फैला था, इसलिये इन देशों की जनता विष्णु पूजा करती थी। इसी विषय में समयसार में लिखा है:—

लोयसमणाणमेवं सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो।
लोगस्स कुणदि विण्हु समणाणं अप्पओ कुणदि॥३५१॥

तात्विक दृष्टि से जनता तथा श्रमणों में विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि जनता विष्णु को जगतकर्ता मानती है और श्रमण आत्मा को मानते हैं।

ऐसी तात्कालिक परिस्थिति होने के कारण, तथा पट्टावलियों में वर्णन की हुई उनकी मान्यता पर ध्यान देने से, और धारवार (Dharwar) तथा मैसूर (Maisur) के जैन विद्वानों द्वारा, उपलब्ध जैन साहित्य में उनकी कृतियों का सबसे पुराना माना जाना, इन दो हेतुओं के बल पर माना जा सकता है कि चरित्रनायक, कदम्बराज शिवमृगेश महाराज के समकालीन थे।

के० बी० पाठक द्वारा दिये गये प्रमाण भी ठीक हैं। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर, श्वेताम्बर विभिन्नता (जो कि भद्रबाहु प्रथम के समय में हुई थी) के बाद हुए हैं। संभवतः इनके समय में अधिकांश जनता वैदिक धर्म को मानती थी। पर यह प्रमाण कदम्बराज शिवमृगेश वर्माको शिवकुमार महाराज मानने के लिये पर्याप्त नहीं हैं। लेविशकृत (Lewis Rice) 'मैसूर तथा कुर्ग' पृष्ठ २१ के अनुसार कदम्बों ने तीसरी शताब्दी से लेकर छठी तक मैसूर का राज्य किया है। और शिवमृगेश वर्मा ५वीं शताब्दी के लगभग राजा थे, पर कुन्दकुन्द का आचार्यपना ईसा के ८ वर्ष पहिले प्रारम्भ हुआ था। जे० एफ० फ़्लीट (J. F. Fleet) कृत 'प्रारम्भिक राजवंश' बोम्बे गज़ेटियर पृष्ठ २८८ के अनुसार प्रारम्भिक कदम्बों को ईसा से ८ वर्ष पहिले मान लेना उनके समय को बहुत पीछे ले जाना है। तथा हम यह भी नहीं जानते कि कदम्ब प्राकृत भाषा जानते थे या नहीं, अतः हमें कुन्दकुन्द के शिष्य शिवकुमार महाराज के स्थान की बाबत और कहीं खोजना पड़ेगा।

काञ्चीपुरम (Conchipuram) पल्लव की राजधानी थी। उनका राज्य थोन्डामंडलम् (Thonda-Mandalam) और तेलगू (Telugu) प्रान्तके कृष्ण नदी तक के हिस्सेपर था। दोनों पिनारोंके बीचके देश को थोन्डामण्डलम् कहते हैं, दक्षिणी पिनार दक्षिण आरकटिके और उत्तरी पिनार नेलोर (Nellor) तथा पूर्वीघाट के हिस्से को कहते हैं। यह देश बहुत से नान्डु, तथा नान्डु अनेक कोत्तमों में विभक्त थे। यहां पर अनेक विद्वान पाये जाते थे। कितने ही महानलेखक जैसे—कुरलकर्त्ता, महान तामिल कविपित्रि एव्वाई (Avvai) तथा नाला-वेन्डीकार (Nalavendi) पुहाजान्थी 'मधुर' (Puhajanthi the Sweet) थोन्डामण्डलम् के ही निवासी थे। सम्पूर्ण तामिल साहित्यमें थोन्डीनाडु (Thondi Nadu) निवासियों की साहित्यिक प्रवीणता तथा सभ्यता का उल्लेख पाया जाताहै। इसलिये काञ्चीपुरम् अवश्य शिक्षा केन्द्र रहा होगा। देशके विभिन्न प्रान्तों के विद्यार्थी पढ़ने तथा अपने आप को पल्लव दरबार से सम्बन्धित करने के लिए वहाँ जाया करते थे। कदम्बवंश के संस्थापक मयूर शर्मा अपनी धार्मिक शिक्षा को पूर्ण करने के लिये काञ्चीपुर गये थे, वहाँ उनका एक अश्वारोही क्षत्रिय से वाद विवाद हो गया, और जन्मना ब्राह्मण मयूर शर्मा ने प्रतिज्ञा की कि जन्म से ब्राह्मण भी युद्धकला के योग्य हथियार बांधकर कुशलता से राज्य स्थापित कर सका है और इस प्रकार उससे कदम्बवंश की उत्पत्ति हुई।

शिक्षा केन्द्र होने के कारण पल्लव राजधानी दूसरी सदी में अवश्य प्रसिद्ध रही होगी। अतः शिक्षाप्रचारक की हैसियत से कांजीपुर के राजा ने हिन्दू बौद्ध जैनादि सब धर्मों के विद्वानों को धार्मिक विवाद करने के लिये प्रोत्साहित किया हो, और संभव है कि ऐसे दार्शनिक विवाद में भाग लेने से उनके व्यक्तिगत भावों से परिवर्तन हुआ हो, जैसा कि ईसा की प्रथम शताब्दी में वादी प्रति-वादी का सामान्यरूप से विजयी का धर्म ग्रहण करना सिद्ध करता है। ऐसा ही हम जैन साहित्य में भी पाते हैं कि समन्तभद्र स्वामी कांजीपुर गये और शिवकोटि महाराज ने प्रभावित हो धर्म-परिवर्तन किया, और वे बाद में शिवकोटि मुनि के नाम से धर्मोपदेशक हुये। इसके बाद ८ वीं शताब्दी में अकलंकदेव उक्त राजधानी में गये और खुले तौर पर बौद्धों को शास्त्रार्थ में जीतकर बौद्ध राजा हिमशीतल(Himaseethala)को जैन बनाया। इस लिये यह असंभव नहीं कि प्रथम शताब्दी के पल्लव राजा जैन धर्म के हितैषी या मानने वाले रहे हों।

बहुत से शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उनके समयमें राजभाषा प्राकृत भी थी। मायीदावोलु दान-पत्र (Mayidavolu grant) दक्षिणके इतिहासमें एक ऐतिहासिक सत्य है। अन्तिम मंगलाचरण को छोड़ कर—जो कि संस्कृत में है—इसका प्रधान भाग साहित्यिक पाली से मिलती जुलती प्राकृत में लिखा है। डाक्टर बुहलर कृत (Dr Buhler) भारतीय स्मारक रिपोर्ट प्रति प्रथम के पृष्ठ २ के अनुसार लेख की *भाषा पाली तथा अन्य* भाषाओं की अपेक्षा जैन प्राकृत तथा महाराष्ट्री से अधिक मिलती जुलती है। यह लेख कांजीपुर के पल्लव राजा शिवस्कन्दवर्मा ने लिखवाया था, और यह बहुत सी बातों में मथुरा के जैन शिलालेखों के सदृश है। इसमें लिखा हुआ शब्द 'सिद्धम्' इसकी उत्पत्ती जैनों से सिद्ध करता है। हमें इससे जो विशेष बात मालूम होती है वह है "शिवस्कन्द वर्मा" यह नाम, जो कि शिवकुमार महाराज का दूसरा नाम प्रतीत होता है; पर यह भी निश्चित है कि यह नाम आन्ध्रवंश में भी आया है। महाशय जे० जी डुवरिनल(J.G Dubreuil)इन दोनों वंशों में वैवाहिक सम्बन्ध सिद्ध करते हैं। वे लिखते हैं कि "शिवस्कन्द वर्मा आन्ध्रराज शिवस्कन्द शातकर्मी की लड़की के पुत्र थे"। पर पल्लवों में यह नाम उक्त सम्बन्ध से आया या स्वतन्त्र, यह यहां विचार-णीय नहीं है। तो भी इतना निश्चित है कि पल्लव वंश में कोई शिवस्कन्द वर्मा या शिवकुमार महा-राज अवश्य हुये हैं। दूसरी घोषणा में यही राजा 'युवामहाराज' के नाम से लिखे हैं, और यह नाम भी कुमार महाराज से समानता रखता है। अतः यह सिद्ध होता है कि कांजीपुर के यही शिव स्कन्द वर्मा या उन्हीं के नाम का कोई उनका पूर्वज राजा कुन्दकुन्दाचार्य का शिष्य था। ऐसा मानना कुन्दकुन्द की अन्य घटनाओं के भी अनु-कूल है। कुन्दकुन्द अथवा इलाचार्य थोन्डामन्डल के थे। इसी तरह द्राविड़ों का स्थान पाटलिपुत्र भी थोन्डामन्डल में रहा होगा।

इस क्रम में हमें दो निराधार कल्पनाओं का निराकरण करना पड़ता है। इतिहासकारों ने *प्रायः पल्लवों को परसिया से आये विदेशी माना है,* इनकी तुलना पहलवों (Pahelwas) से की

गई है जिसका अर्थ एल राइस (Lewis Rice) लिखित "मैसूर तथा कुर्ग" पृष्ठ ५३ के अनुसार पार्थिव अथवा पार्थियन होता है। इसी के आधार पर राइस (Rice) साहब कल्पना करते हैं कि चालुक्य जो कि कभी २ पल्लवों के शत्रु थे सोलङ्की वंश के थे। वी० वैंन्कैया दूसरा ही सिद्धान्त उपस्थित करतेहैं जोकि शाब्दिक समानता पर निर्भर है। उनका पक्ष नामों की समानता के बल पर खड़ा किया गया है, यह ऐतिहासिक दृष्टि से तब तक मान्य नहीं होसका जब तक किसी स्वतन्त्र प्रमाण से सिद्ध न किया जाय, पर कोई प्रमाण नहीं मिलता है। अतः पल्लव बिना विरोध के दाक्षिणात्य हिन्दू सिद्ध होते हैं। दूसरी कल्पना पल्लवों को प्राचीन कुरम्ब जाति का बतलाना है। यह भी 'कद्वार' शब्द के प्रयोग पर आश्रित है जो कि बाद के पल्लवों को जताता है। यद्यपि कद्वार शब्द का अर्थ जंगली होता है पर ऐसा कोई हेतु नहीं है जो कद्वारों को वन्य सिद्ध करे। तामिल साहित्य में यह शब्द 'अति सभ्य और शिक्षित' अर्थ में आता है, अतः इनके पल्लव नाम पड़ने का कोई दूसरा ही कारण होगा। यह 'पाल्लका दार' इस शब्द का संक्षिप्त रूप हो सकता है जिसका अर्थ पालक्कादो निवासी होता है, जो पल्लवों की दूसरी राजधानी थी।

इन दोनों कल्पनाओं को असंभव मानते हुए, हम थोन्डामन्डल निवासी तथा आन्ध्र-भृत्यों में—जो कि मौर्यों के बाद हुए हैं—कोई निकट सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते हैं। तामिल में 'थोन्डा' शब्द का अर्थ सेवा, तथा 'थोन्डार'का सेवक अर्थ होता है, अतः 'आन्ध्रभृत्य' का तामिल अनुवाद 'थोन्डार' हो सकता है। अतः थोन्डार अथवा पल्लव आन्ध्रों की ही शाखा थी जो कि दक्षिण में आन्ध्रराज्य के कुछ भाग पर राज्य करती थी। यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें राज्यप्राप्ति वैवाहिक सम्बन्ध से हुई थी या स्वतन्त्र रूप से। अतः पल्लवों को शिक्षित तथा अति सभ्य और आन्ध्रभृत्यों का सम्बन्धी मानना संभव प्रतीत होता है और तात्कालिक घटनाओं से प्रमाणित होता है। पल्लवों का इतिहास लिखकर यह विषयान्तर प्रवेश इसलिये किया गया कि इससे कुन्दकुन्दाचार्य का राजनीतिक सहवास सिद्ध हो जाय, जो कि उनकी जन्मतिथि के अनुसार आवश्यक था। अन्त में हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने प्राभृतत्रय की रचना शिवकुमार महाराज के लिये की थी जो कि पूर्व वर्णित शिवस्कन्द वर्मा थे।

---

* स्वास्थ्य *

(बंगला लेख से अनुवादित)

[अनु०—पं० मौजीलाल जी परवार, कुचामन]

साधारणतयः हम लोग रोग के न होने को स्वास्थ्य कहते हैं। बहुत से लोगों का कहना है कि हमारे शरीर में रोग तो किसी प्रकार का नहीं है, परन्तु तब भी हम अपने मनको एक ओर बहुत देर तक नहीं लगा सकते और बहुतों का कहना है कि अभी तो रोग नहीं है परन्तु हां कुछ

कुछ बढ़ता जाता है। ऐसे लोगोंको हम स्वस्थ नहीं कहते। गत वर्ष एक मनुष्य ने आकर हमसे कहा था कि मुझमें दुर्बलता तो बहुत है परन्तु रोग का कुछ चिन्ह नहीं जान पड़ता। हमने भी उसकी बहुत परीक्षा की, पर उसमें रोग का कुछ चिन्ह नहीं दीखपड़ा। इसके बाद उसके पेशाब की परीक्षा करने से जान पड़ा कि उसे बहुमूत्र रोग हो रहा है। उसके पेशाब के सौ हिस्सों में से तीन हिस्सा शर्करा निकलती थी।

हमारा शरीर एञ्जिन के समान एक यंत्र विशेष है। इसके प्रत्येक अंग जब तक नियमित रूप से अपना २ कार्य करते रहते हैं तब तक शरीर निरोग रहता है। इसी अवस्था को वास्तव में स्वास्थ्य कहते हैं। एञ्जिन जिस तरह स्वाभाविक नियमों के आधीन है उसी तरह शरीर भी है। उनका कुछ भी जब उल्लंघन होता है तब ही शरीर अस्वस्थ हो जाता है। एञ्जिन के लिए जैसे कोयला और जल की ज़रूरत पड़ती है वैसे ही शरीर के लिए उचित आहार और जल की ज़रूरत है।

एञ्जिन की गति आदि जिस प्रकार ड्राइवर के ऊपर निर्भर है उसी तरह शरीर की रक्षा भी आचार और ज्ञानके ऊपर निर्भर है। शरीर को सुरक्षित रखना सब चाहते हैं परन्तु वे अपने अज्ञान के कारण अपनी प्रवृत्ति को इतर मार्ग में लगाकर रोगी हो जाते हैं। इसलिए स्वास्थ्य की रक्षा करना सब के लिए उचित है। सबको निरन्तर अपने स्वास्थ्य पर विचार करते रहना चाहिए।

हमारे शरीर और मन का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए एक के अस्वस्थ होने पर दूसरा भी अस्वस्थ होजाता है। स्वस्थ शरीर का मुख्य लक्षण मन की प्रसन्नता है। जब शरीर निरोग रहता है तब मन भी स्वभाव से प्रसन्न रहता है।

शरीर की गठन इस तरह की होनी चाहिए जिससे हम पुरुष गिने जासकें। इसलिए शरीर का सुन्दर होना भी स्वास्थ्य का एक लक्षण है।

स्वस्थ शरीर न केवल देखने में ही सुन्दर होता है, किन्तु बलवान और कर्मवीर भी होता है। निरोग शरीर में जो सौन्दर्य्य होता है उसे देख कर सबका चित्त उसकी ओर आकर्षित हो जाता है इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि निरोगता की चाह करना सबके लिए आवश्यक है और निरोग रहने ही से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है।

स्वास्थ्य जितने ही स्वाभाविक नियमों के आधीन है। उनका जरा कुछ उल्लंघन हुआ कि शरीर कभी रोगी अस्वस्थ हो जाता है। हम माता के गर्भ और जन्मदिनसे लेकर मृत्यु पर्यन्त शारीरिक नियमों के अनुसार चलें तब ही अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं। पहली अवस्था में अर्थात् जन्म से लेकर जब तक हम में ज्ञान का विकास न हो तब तक हमारे शरीर रक्षा के नियम का पालन माता पिता के ऊपर निर्भर है, पर कई समय उनके ठीक ठीक नियमों का पालन न करने के कारण बच्चों को कष्ट उठाना पड़ता है। यद्यपि इन नियमों के सम्बन्ध में कहना तो बहुत कुछ है पर इस समय संक्षेप में इनका उल्लेख किये देते हैं।

माता के गर्भ में या जन्म लेते समय पिता माता की जैसी शारीरिक और मानसिक अवस्था होती है उसी का प्रतिबिम्ब पुत्र की शारीरिक और मानसिक अवस्था पर पड़ता है। इसे सब जानते

हैं कि रोगी माता पिता की सन्तान कभी बलवान और निरोग नहीं होती। कितने रोग ऐसे होते हैं जो माता पिता से पुत्र में उतर कर आते हैं; जैसे उपदंश (गर्मी), यक्ष्मा (क्षय) बात आदिक। यह तो हुई शारीरिक अवस्था की बात।

मानसिक अवस्था भी ठीक इसी तरह देखी जाती है। क्रोधी तथा डरपोक माता पिता की संतान भी क्रोधी और भयभीत होती है।

जहा तक सन्तान माता के गर्भ में रहती हैं उस समय तक उसके भविष्य स्वास्थ्य और मन की अवस्था माता के स्वास्थ्य और मन की अवस्था पर निर्भर रहती है। इस लिए गर्भाधान के समय में स्त्रियों का शरीर स्वस्थ रह सके और मन प्रसन्न और पवित्र रह सके ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि गर्भावस्था में निरोग शरीर, प्रसन्न चित्त और पवित्र विचार वाली स्त्रियों की सन्तान ही सुन्दर बलवान् धर्मभीरु और विद्वान होती है।

सन्तान पालन के समय माता पिता का स्वास्थ्य रक्षा के सम्बन्ध में अज्ञान होता है—असावधानी रहती है। उसका क्या फल होता है यह प्रति दिन हम आंखों से देखते हैं। विशेष करके उस समय जबकि बहुत थोड़ी आयु की स्त्रियां सन्तानवती होकर शिशुपालन रूप एक महान कार्य का भार अपने ऊपर लेती हैं। पाठक विचारें तो कि वे स्वयं अपने बालक बालिकाओं की क्या रक्षा कर सकेंगी? ऐसी अवस्थामें सन्तान की जो शोचनीय दशा होती है उसका हम क्या वर्णन लिखें? इस लिए उचित कर्तव्य है कि बालिकाओं को विवाहके पहिले स्वास्थ्य रक्षा और शिशु पालन की कुछ कुछ शिक्षा दी जाजाय।

संतान पालन के समय माता को अपने स्वास्थ्य की रक्षा पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। कारण माता के अस्वस्थ रहने से उसका दूध बालक के लिए अहितकर हो जाता है। शिशु पालन के समय किसी प्रकार का मादक द्रव्य (नशीली वस्तु भांग आदि) शरीर के स्वास्थ्य में हानि पहुंचाने वाला भोजन (अपक्व या बासी भोजन) अथवा विष मिश्रित औषध आदि खाने को कभी नहीं लेना चाहिए। स्वास्थ्य रक्षा के लिए जैसे कुछ साधारण नियम शिशु के लिए पालनीय हैं। उसी तरह माता को भी उनका पालन करना ज़रूरी है।

[अपूर्ण]

शोक !

शेनवाल समाज के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध गृहस्थ दत्तोवाकृष्ण जी उदगीरकर, मु० गाधवड को विश्वनाथ नामक एक दुष्ट स्वभावी जैन ने तलवार से मार डाला! शोक! प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्राप्त हो।

उनके सुपुत्र पंढरीनाथ दत्तोबा उदगीरकर ने उनके स्मरणार्थ ११५) का दान किया है, जिसमें से ५) "दर्शन" को प्राप्त हुए हैं। एतदर्थ धन्यवाद।

—प्रकाशक

Regd. No. A. 2379.

* समाचार-संग्रह *

देवगढ़ मेला—मिती फागुन बदी २-३-४ ता० १-२-३ फ़र्वरी तक होगा। इसी अवसर पर बैरिस्टर चम्पतराय जी के सभापतित्व में भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई और भा० दि० जैन महिला परिषद् के अधिवेशन होंगे!

गजपंथा जी में—फागुन बदी २ से १२ तक पंचकल्याणक व मानस्तंभ प्रतिष्ठा होगी!

बखतगढ़ का मेला—तारीख २० से २२ फ़रवरी तक होगा!

भा० जैन युवक संघ की स्थापना—इटारसी परिषद् में हुई है, जो बाद में युवकों के सामने एक प्रोग्राम रखेगा, जिससे नई जाग्रती हो। एक कमेटी ७ मेम्बरों की बनेगी, समाचार पत्रों में इसकी सूचनायें छपा करेंगी।

—चन्द्रसेन जैन वैद्य, इटावा।

लाभ लिया—उग्रसेन दि० जैन औषधालय अम्बाला छावनी से गत मास, ९४०५ रोगियों ने लाभ लिया।

भूकम्प

भारत में प्रलयकारी भूकम्पने १५ जनवरी को सबसे अधिक हानि बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर, दरभंगा, मोतिहारी, मुंगेर, भागलपुर और तिर्हुत के ज़िलों में हुई है। सब मकान ज़मीन पर ढेर हो गये, जगह २ ज़मीन फट कर नये नये पानी के नाले उमड़ २ कर बह निकले, रेलवे लाइनें टूट गयीं हैं। २०-२५ हज़ार आदमियों की लाशें निकल चुकी हैं। जगह २ से भूकम्प पीड़ितों को लाखों रुपयों की सहायता पहुँचाई जा रही है। आप भी यथाशक्ति निम्न पते पर सहायता भेजें :—

मि० जगन नारायणलाल
जनरल सेक्रेटरी हिन्दू महासभा बिहार
रिलीफ़ कमेटी, बाँकीपुर-पटना।

नये महाद्वीप की खोज!

हिंद महासागर के तल के सम्बन्ध में हुई ताज़ी खोजों ने 'गोन्दवनालन्द' के लुप्त महाद्वीप के सम्बन्ध में काफ़ी प्रकाश डाला है।

लन्दन विश्वविद्यालय के डॉ० डबल्यू मैकब्राईड ने एक मुलाकात में कहा कि इस बात के सबूत मौजूद हैं जो यह साबित करते हैं कि हैकल के लिमूरिया के प्रदेश की बनिस्बत में गोन्दवनालन्द अधिक पुराना है। आगे उन्होंने महाद्वीपोंके स्थान-परिवर्तन की दृष्टि का वर्णन किया। अर्थात् कैसे एक भूमि खण्ड उठ कर दूसरी जगह खुद खिसक जाता है। [नवयुग से]

आवश्यकता

जैन पाठशाला नहटौर के लिये एक पंडित की आवश्यकता है जो लड़के और लड़कियों को प्रेम-पूर्वक शिक्षा दे सके, उन्हें पूजन करना सिखला सके और प्रति दिन शास्त्रसभा में शास्त्र बांच सके। वेतन २०) माहवार तक। पत्रव्यवहार का पता :-

लाला छोटेलाल सुमेरचन्द्र जैन
मंत्री जैन पाठशाला, नहटौर (बिजनौर)

योग्य वर चाहिये

एक मीत्तल गोत्रीय जैन एडवोकेट की सुन्दर, सुशील और पढ़ी लिखी कन्या के लिये योग्य वर की ज़रूरत है। जानकार भाई निम्न पते पर सूचित करने की कृपा करें :—

"चैतन्य" प्रिंटिङ्ग प्रेस, बिजनौर (यू० पी०)

कुंवरी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रकाशित किया।

तारीख़ १६ फ़रवरी सन् १९३४ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क १५

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुलतान सिटी। —ओनरेरी सम्पादक— पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

शोक !

इस महीने में निम्नलिखित कई धर्मप्रेमी सज्जनों के स्वर्गवास-समाचार प्राप्त हुए हैं। आप लोगों के स्वर्गवास से समाज को बड़ी क्षति पहुँची है। हम आप लोगों के संबंधियों के साथ हार्दिक सम्वेदना प्रकट करते हुए स्वर्गगत आत्माओं के कल्याण के लिये शुभ कामना करते हैं:—

१. श्रीमान् सेठ चम्पालाल जी, ब्यावर
२. श्रीमान् सेठ टीकमचन्द्र जी, अजमेर
३ श्रीमान् सेठ किशनदास पूनमचन्द्र जी, कापड़िया

—प्रकाशक।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

भूकम्प से जैनतीर्थों को हानि

उत्तर बिहार में ऐसा कौनसा भवन है जिसको गत भूकम्प से कुछ न कुछ नुकसान नहीं उठाना पड़ा है। जैनियों की इमारतों को भी प्राचीन होने के कारण काफ़ी नुक़्सान पहुंचा है। पावापुरी, विशालानगरी, कुण्डलपुर, गुनाया जी, राजगिर, भागलपुर, चम्पापुर आदि स्थानों के जैन मन्दिरों और धर्मशालाओं को काफ़ी हानि पहुंची है। सभी स्थानों की मरम्मत के लिये द्रव्य की सहायता की आवश्यकता है। अतएव समाज को चाहिये कि अच्छी संख्या में रुपया इकट्ठा करके मंत्री तीर्थक्षेत्र कमेटी के पास शीघ्र भेजें, जिससे ज़रूरी मरम्मत करके इमारतें ठीक करा दी जावें।

संघ समाचार

श्री आचार्य सूर्यसागर जी महाराज का संघसहित विहार करहल, मैनपुरी, औगांव, अलीगञ्ज, कम्पिला, क़ायमगंज, आदि गांवों में सानन्द हो रहा है।

बिहार सहायक फण्ड

बिहार के भूकम्प पीड़ित भाइयों की सहायता के लिये वयोवृद्ध बाबू वृद्धिचन्द्र जी सरावगी और बा० बल्देवदास जी जैन के प्रयत्न से "बिहार सहायक फण्ड" खोला गया है जिसमें १३२३३) हो चुके हैं। इस फ़ण्ड की ओर से "जैन युवक समिति कलकत्ता" के स्वयंसेवकों के तीन दल भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिये मुज़फ्फरपुर, मुंगेर, मोतीहारी में पहुंच चुके हैं।

—श्रीमान् धर्मपरायण सेठ टीकमचन्द जी सोनी व सेठ चम्पालाल जी व्यावर के स्वर्गवास होने पर श्री दि० जैन विद्यालय किशनगढ़ के भवन में ता० ४ को शोक सभा हुई तथा एक दिन विद्यालय भी बन्द रखा गया।

—आनन्दीलाल विद्यार्थी

—रामपुर (मनियारान) में एक आम सभा ता० ४ फ़रवरी को ला० चमनलाल आनरेरी मजिस्ट्रेट के सभापतित्व में हुई। यह निश्चित हुआ कि सहारनपुर ज़िला जैन परिषद् कान्फरेन्स २३ मार्च १९३४ को रामपुर में हो। स्वागत कारिणी कमेटी बनादी गई जिसके सभापति मान्यवर ला० फूलचन्दजी रिटायर्ड एम० डी० ओ० तथा बाबू अनन्तप्रसाद जी वकील मंत्री और ला० हुलाशचन्दजी सहमन्त्री नियुक्त किये गये।

२० मार्च से २५ मार्च तक रामपुर में वार्षिक उत्सव भी होगा। जलसे की पूरी कामयाबी के लिये अच्छी तय्यारियां हो रही हैं।

—अनन्तप्रसाद वकील

—वेदों को अपौरुषेय, नित्य, निर्भ्रान्त न मानने के कारण दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के आचार्य पं० विश्वबन्धु जी के विरुद्ध १३५ स्थानों की आर्यसमाजों की प्रेरणा से आर्यसमाज प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान ने लाहौर में प्रस्ताव पास किया है कि पं० विश्वबन्धु जी को आर्यसमाज के प्लेटफ़ार्म पर न चढ़ने दिया जाय।

—भूकम्प जैसी विपत्ति का ज्ञान जहाँ मनुष्य को पहले नहीं हो पाता, वहाँ पशुओं को चार दिवस पूर्व ही हो जाता है, और वे ऐसे भय के स्थान को छोड़कर सुरक्षित स्थान में जाकर आश्रय लेते हैं। मैक्सिको में जब कुछ काल पूर्व भूकम्प हुआ था, तो वहाँ के तोते वग़ैरह पक्षी और चूहों को ४ दिन पहले ही ख़बर लग गई और वे स्थान छोड़ कर गायब हो गये।

"जैनदर्शन" की आवश्यक सूचनायें !

(१) "जैनदर्शन" का प्रकाशन हर महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हो जाता है।

(२) इस का वार्षिक मूल्य केवल २॥) है, किन्तु संघ के मेम्बरों से वार्षिक मेम्बरी फ़ीस सहित ३) एवं संस्थाओं तथा विद्यालयों से केवल २) लिया जाता है। [इस वर्ष उपहारी पुस्तकों के पॉस्टेज के लिये प्रत्येक से =) और अधिक लिया जा रहा है।]

(३) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय, मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २-२ प्रतियाँ "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद जैन विद्यालय भदैनी घाट बनारस" के पास और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/o 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहियें।

(४) इस पत्र में अश्लील व धर्म-विरुद्ध विज्ञापन नहीं छापे जाते। इसी कारण विज्ञापन छपाने के रेट बहुत कम रक्खे गये हैं, जो निम्न प्रकार हैं। इनमें किसी प्रकार भी कमी करने के लिये लिखना व्यर्थ होगा। कुल रुपया पेशगी लिया जाता है, अतः कृपया विज्ञापन के साथही कुल रुपया भेजियें:—

	एक बार	३ मास (६ बार)	एक वर्ष (२४ बार)
१. साधारण पूरा पृष्ठ	४)	२०)	७२)
२. साधारण आधा पृष्ठ	२॥)	१२॥)	४५)
३. टाइटिल पूरा पृष्ठ (पृष्ठ २-३-४)	६)	३०)	१००)
४. टाइटिल आधा पृष्ठ	४)	२०)	६०)

नोट—मुख पृष्ठपर विज्ञापन छपाई केवल आधे ही पृष्ठकी ५) ली जाती है। साधारण पृष्ठोंमें आधे पृष्ठ से कम जगह के विज्ञापनों पर ।) प्रति लाइन प्रति कालम के हिसाब से चार्ज किया जाता है।

सर्व प्रकार के पत्र व्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैनदर्शन" C/o. दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

शोक सभा हुई तथा।
बन्द रखा गया।
...नन्दीलाल विद्या
...क आम

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽम्बरेऽस्मिन् [illegible] दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ ; बिजनौर, फाल्गुण शुक्ला ३—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० ; अङ्क १५

प्रबन्ध के गुण !

आज सहस्रक अंग्रेज सात [illegible] करोड़ भारतवासियों पर शासन क्यों कर रहे हैं, इसका मुख्य उत्तर है प्रबन्ध की स्वच्छता। [illegible] करना आता है और हमको नहीं ।

अंग्रेज कार्य का सम्मान करते हैं, व्यक्ति [illegible] नहीं । वाइसराय [illegible] सात सौ रुपये रोज़ वेतन लेता है किन्तु यह नहीं कि [illegible] इसका सम्मान न होता हो । वह अपने कार्य के कारण भारतवर्ष का अधिपति बनकर यहां रहता है ।

एक ही वाइसराय [illegible] क्रान्तिकारियों का प्रबन्ध करता है, उत्तरपश्चिमी सीमाप्रान्त के पठानों का दमन करता है, मद्रास की जनता का शासन [illegible] है और पंजाब, युक्तप्रान्त आदि प्रान्तों तथा समस्त देशी राज्यों को भी नियन्त्रित रखता है । क्या मजाल है कि जरा भी कहीं राजविद्रोह या गड़बड़ हो जावे ?

अंग्रेज कितना ही बड़ा अफसर हो दुराचार का शिकार न रहेगा, जबकि भारतीय लोग ८) मासिक का सिपाही बनकर अपने दुराचार से पदाधिकारियों तक को भी तंग करना प्रारम्भ कर देगा ।

अंग्रेज जिस प्रकार अपना काम पूरे तौर पर ठीक करेंगे, उसकी आजीविका का भी उसी तरह पूर्ण प्रबन्ध रखेंगे । वाइसराय से काम लिया जाता है तो उसको वेतन भी इक्कीस हजार रुपये मासिक मिलते हैं । भारतवासी कार्य तो खूब कराना चाहते हैं, किन्तु उसके लिये खर्च करना पाप समझते हैं जिससे कि वह मनुष्य दिल लगाकर कार्य नहीं कर पाता ।

अंग्रेज अनधिकार चर्चा नहीं करते, कलक्टर की शिकायत गवर्नर कभी न सुनेगा, क्योंकि उसकी शिकायत सुनने का अधिकार कमिश्नर का है । गवर्नर कमिश्नर की शिकायत पर हस्तक्षेप करेगा । किन्तु हम लोग ऐसा नहीं करते ।

भीषण भूकम्प और बिहार।

भारतवर्ष के इतिहास में १५ जनवरी का दिन कितना भीषण था, उसका स्मरण करने मात्र से आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। संभवतः भारतवर्ष में इतना भीषण भूकम्प पहिले कभी नहीं हुआ था। यों तो प्रायः भारतवर्ष के बहुभाग को इससे हानि उठानी पड़ी है किन्तु धन और जन दोनों का जैसा प्रलयकारी संहार बिहार और नैपाल में हुआ है वैसा शायद जापान और इटली के भूकम्पों में भी न हुआ हो। उत्तर बिहार के मुज़फ्फ़रपुर, मुंगेर, दरभंगा और मोतीहारी के आस पास की बस्ती खण्डहर होगई है। अभी उस दिन सिनेमा में हम "बिहार में भूकम्प के प्रलयकारी दृश्य" की फ़िल्म देखने गये थे। यद्यपि फ़िल्म भूकम्प से कई दिन बाद ली गई है और उसमें ऐसे ही स्थान दिखाए गए हैं जो बहुत कुछ साफ़ किए जा चुके हैं फिर भी मुज़फ्फ़रपुर और मुंगेर का बाज़ार दिल दहला देने वाला था। उत्तर बिहार में जैनों की आबादी बहुत कम है, कुछ मारवाड़ी भाई व्यापार के ख्याल से अवश्य बस गये हैं। मुज़फ्फ़रपुर चम्पारन और दरभङ्गा ज़िले में-जहाँ तक हमें मालूम है-शायद ही कोई जैन परिवार हो। किन्तु मुंगेर में खण्डेलवाल भाइयोंके चार पांच घर थे। एक जिन मन्दिर भी था जोकि गया के भाइयों के कथनानुसार मिट्टी में मिल गया। सुना है मूर्तियां भागलपुर के भाई ले गए हैं। जैन परिवारों की क्या दशा हुई, अभी तक कुछ पता नहीं चला। इस विपत्ति के समय में भारतवर्ष के हर एक प्रदेश से धन और जन की जो सहायता प्राप्त हो रही है उसे देखकर किस भारतीय के हृदय में आनन्द से आंसू न उमड़ पड़ेंगे। किन्तु आवश्यकता को देखते हुए यह सहायता आटे में नमक की बराबर भी नहीं है। हम अपने विपत्ति-ग्रस्त भाइयों के दुःख में हार्दिक समवेदना प्रगट करते हुए, जैन समाज से अपील करते हैं कि वह दिल खोलकर बिहारी बन्धुओं की सहायता करें, क्योंकि कहावत मशहूर है—"सदा दिन नाहि बराबर जात"।

अद्भुत सूझ

महात्मा गांधी अछूतोद्धार के लिये देश में दौरा कर रहे हैं। आप अपने व्याख्यानों तथा लेखों में, बिहार की विपत्ति को, अछूतों के साथ किये गए दुर्व्यवहार का फल बतलाते हैं। इस पर काशी के "आज" पत्र ने तर्क उठाया कि बिहार में

तो अछूतों की समस्या ही नहीं है फिर उसे इस पाप (?) का फल क्यों भोगना पड़ा? इस पर महात्माजी लिखते हैं कि ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है—देश के पाप का फल राष्ट्र के किसी भी भाग को भोगना पड़ता है। हमें महात्मा जी जैसे विचारक पुरुष की इस उक्ति पर हंसी आती है। गांधी जी जिस दैवी विपत्ति को अछूतों के साथ किए गए दुर्व्यवहार का फल बतलाते हैं—उसे उनके विरोधी लोग गांधी जी की धर्म-कर्मनाशिनी नीति का फल बतलाते हैं। संभव है भोली जनता को अछूतोद्धार के आन्दोलन में सम्मिलित करने के लिए गांधी जी ने इस विभीषिका का उल्लेख किया हो। जो कुछ हो, है यह उनकी अद्भुत सूझ।

जैन साहित्य की कुछ आवश्यकतायें

[एक उद्भट विद्वान की दृष्टि में]

उस दिन क्वीन्स कालिज की कोर्ट कमेटी का कार्य समाप्त हो जाने के बाद, हम संयुक्त प्रान्तीय संस्कृत परीक्षाओं के रजिस्ट्रार डाक्टर मंगलदेव शास्त्री एम ए से मिले। आप बहुत सरल स्वभावी और निरभिमानी पुरुष हैं। आपने जैन साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन करने का विचार प्रकट किया। गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी में जैन पुस्तकों का संग्रह करने के लिए आप लाइब्रेरी में वर्तमान जैन पुस्तकोंका सूचीपत्र बनवा रहे हैं।

इसके बाद हमें क्विन्स कालिज के प्रिन्सिपिल श्री गोपीनाथ कविराज एम. ए. से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपकी गणना काशी ही के नहीं किन्तु भारतवर्षके ख्यातनामा दार्शनिकोंमें की जाती है। इतने बड़े विद्वान के सरल व्यवहार ने मुझे बड़ा प्रभावित किया। आपसे आध घण्टे तक जैन साहित्य के विषय में बातचीत हुई। आपने जो विचार प्रगट किए और जैन साहित्य की जिन त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया, वे बड़ी महत्वपूर्ण हैं। समाज की जानकारी के लिए आपके विचारों का आशय यहाँ देते हैं—

सबसे प्रथम आपने "जैनदर्शन" पत्र पर बात-चीत की। आपने बतलाया कि प्रति वर्ष कुछ ऐसे विषयों की सूची बना लेनी चाहिए जिन पर लेख प्रगट करने की आवश्यकता हो। इससे यह लाभ होगा कि संपादक को इस बात का पता लगता रहेगा कि उसके चुने हुए विषयों में से किस पर लेख लिखे जा चुके हैं और कितने विषयों पर लेख लिखाने की आवश्यकता है। बहुधा सामयिक पत्रों में ऐसा देखा जाता है कि किसी विषय पर तो ज़रूरत से ज़्यादा लेख निकल जाते हैं और कितने ही विषय अछूते रह जाते हैं। इसके बाद आपने जैन साहित्य में जो कमी है उसकी ओर ध्यान दिलाया। आपने चार बातों की आवश्यकता बतलाई, जो संक्षेप में निम्न प्रकार हैं:—

१. एक संग्रह ऐसा प्रकाशित किया जाना चाहिए जिसमें अब तक के पाये गए समस्त शिलालेखों का, सिक्कों का तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री का व्यौरेवार वर्णन रहे जिसे अंग्रेज़ी में Epigraph कहते हैं।

२ अब तक देश तथा विदेश के विद्वानों ने जैनधर्म पर अपनी पुस्तकों में जो कुछ लिखा है उन सब का संकलन करके पृथक पुस्तक रूप में

प्रकाशित करना चाहिये। आपने अनेक विद्वानों के नाम बतलाए जिन्होंने अपनी पुस्तकों में जैनधर्म पर कई २ सौ पृष्ठ लिखे हैं, जिनमें स्व० डाक्टर भण्डारकर का नाम भी है।

३. विदेशों के सामयिक पत्र पत्रिकाओं में प्रायः जैनधर्म पर लेख निकलते रहते हैं। आपने बतलाया कि यूरूप के प्रसिद्ध पत्रों में शायद ही कोई ऐसा पत्र होगा जिसमें प्रतिवर्ष जैनधर्म पर एक दो महत्वपूर्ण लेख न निकलता हो। उन पत्रिकाओं का किसी जैन लाइब्रेरी में संग्रह रहना चाहिए और उनमें जो लेख हों उनको पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहिए।

४. एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता है जिसमें उपलब्ध जैन साहित्य का संक्षिप्त परिचय हो। परिचय में इतनी बातें होनी चाहियें—१. पुस्तक का नाम २. कर्ता का नाम (संक्षिप्त परिचय सहित). ३. किस विषय का वर्णन है ४. छपी या नहीं ५. परिमाण कितना है ६. यदि प्रकाशित होचुकी है तो मूल्य और मिलने का पता, और यदि प्रकाशित नहीं हुई है तो किस भण्डार में है।

यह चारों कार्य कितने महत्वपूर्ण हैं इस बात के बतलाने की आवश्यकता नहीं है। हम प्रो० हीरालाल जी तथा बाबू कामताप्रसादजी का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। श्री जुगमन्दिरलाल जैनी के फण्ड के ट्रस्टियों को इस कमी की पूर्ति के लिये कुछ धन की सहायता करनी चाहिए। आशा है जैन समाज के कर्मठ विद्याव्यसनी श्री कविराज जी की बतलाई हुई कमी की पूर्ति करेंगे।

———

जैन विद्वानों का प्रमाद

इस कर्मयुग के आघातों से चिरनिद्रित भारतवर्ष की तन्द्रा धीरे २ दूर होती जाती है, किन्तु हमारी समाज के विद्वानों की पलक भी नहीं खुलती। कुछ दिन हुए हमने "जैनदर्शन" के द्वारा उनसे लेख लिखने की प्रार्थना की थी। अनेक विद्वानों के पास पत्रों की भरमार भी की, किन्तु जवाब नदारद। बहुत से विद्वान सामाजिक चखचख में नहीं पड़ना चाहते। अच्छी बात है—भई मत पड़ो। किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में क्या भय है? क्या जैनाचार्यों के विचारों को उनके ग्रन्थों से लेकर सरल सुन्दर रूप में लिखकर, पत्रों में भेजने में भी किसी पाप की आशंका है? विद्यार्थी अवस्था में गिने चुने पाठ्य ग्रन्थों को तोते की तरह रटना और अध्यापक बनकर उन्हीं ग्रन्थों को तोते की तरह रटवाना और इसी में जिन्दगी खतम कर देना, क्या यह भी कोई जीवन है? यदि अध्यापकों की जीवनचर्या देखनी हो तो किसी कालिज के प्रोफेसर के घर जाइये। आप उन्हें नवीन नवीन पुस्तकों का अध्ययन करते हुए या लिखते हुए ही पायेंगे। किन्तु हममें से विरले ही ऐसे अध्यापक होंगे जिन्होंने अपने जीवन में पठन पाठन के अलावा अन्य जैन ग्रंथों का अवलोकन किया हो। बहुत सों को तो ऐसे साधन ही नहीं हैं, किन्तु जिन्हें साधन हैं वे भी उनसे लाभ नहीं लेते। बहुत से नवयुवक विद्वान लिखने का उपक्रम करते हैं, किन्तु अभ्यास न होने से बीच में ही ऊब कर छोड़ बैठते हैं, उनसे हमारा निवेदन है—घबड़ावें नहीं, सतत अध्यवसाय वह वस्तु है जो पत्थर को भी मोम कर देता है। जन्म से न तो कोई पंडित

पैदा होता है और न लेखक। सब परिश्रम करके ही नवीन ज्ञान का संचय करते हैं। आप जिस लेख को प्रारम्भ करें उसे तब तक न छोड़ें जबतक वह पूर्ण न हो। भले ही समय और काग़ज़ खराब करना पड़े। पुराने पंडितों को प्रणाम करने की चीज़ समझिए। हमारी आशा और भरोसा आप पर है। अपनी विद्यालय की ही शिक्षा से संतुष्ट मत हो जाइए, विद्यालय या कालिज की शिक्षा शिक्षा का अन्त नहीं है—प्रारम्भ है। सच्ची शिक्षा तो अध्यापकी जीवन में स्वयं अध्ययन और मनन करने से प्राप्त होती है।

क्या आप भी अपने पुराने पंडितों का ही अनुकरण करेंगे? अपने कार्यों से उत्तर दीजिए।

———

शोक!

ब्यावर के प्रसिद्ध धनी श्री० सेठ चम्पालाल जी रानी वालों का खुर्जा (बुलन्दशहर) में स्वर्गवास हो गया। आप बड़े धर्मात्मा दानी नररत्न थे। अपने पीछे आप एक बहुत बड़ा परिवार छोड़ गये हैं। सेठ जी के स्वर्गवास से समाज में जो स्थान रिक्त हो गया है, हमें आशा है उनके सुयोग्य पुत्र उसकी पूर्ति अपने सत्कार्यों से अवश्य करेंगे। यद्यपि ब्यावर विद्यालय के अधिकांश व्यय का भार आपके घराने पर ही निर्भर है; फिर भी यदि इस समय कोई एक मुश्त रकम स्थायी कोष में दानकर दीजाती तो विद्यालय स्थायी होजाता। अंत में हम दुःखी परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रगट करते हुए, स्वर्गगत आत्माके लिये शुभ कामना करते हैं।

———

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[१२]

राजा खारवेलका शिलालेख

हमारे श्वेताम्बरी विद्वान् यद्यपि दिगम्बर श्वेताम्बररूप संघभेद होने का अपनी ओर से किसी प्रामाणिक घटना का उल्लेख नहीं करते और नाहीं अपने ग्रंथों की संघभेद सूचक कथा को प्रमाणिकता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु उनका उद्योग एक तो दिगम्बरीय ग्रंथों में प्रतिपादित स्वामी भद्रबाहु आचार्य तथा सम्राट् चन्द्रगुप्त की कथा को किन्हीं लचर युक्तियों से असत्य सिद्ध करने का होना है; दूसरा उद्योग उनका यह भी रहता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायका अस्तित्व प्राचीन सिद्ध कर दिखावें।

उनके प्रथम उद्योग का संक्षिप्त परिहार पीछे हो चुका है। अब उनकी दूसरी बात पर प्रकाश डालते हैं।

श्वेताम्बरीय सज्जन अपनी प्राचीनता सिद्ध करने के लिए दो शिलालेखों का आधार लेते हैं—एक तो कलिंगाधिपति राजा खारवेल का लेख, दूसरा मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई से प्राप्त हुए स्तूप शिलालेख; किन्तु ये दोनों शिलालेख

भी उनका मनोरथ सिद्ध नहीं करते। प्रथम ही खारवेल का शिलालेख देखिये—

खारवेल राजा का शिलालेख पुरी ज़िले के उदयगिरि पर्वत पर है। इस पर्वत पर अनेक गुफाएं हैं। उनमें से हाथी गुफा के पाषाण पर ५ गज़ लम्बे, २ गज़ चौड़े स्थानमें खुदा हुआ है; लेख १७ पंक्तियों में है। प्रत्येक पंक्तिमें ९०—१०० अक्षर हैं। भाषा अपभ्रंशरूप में प्राकृत है। लिपी उत्तरीय ब्राह्म है।

इस लेखमें कलिंगराज खारवेलका संक्षिप्त इतिहास है। यह राजा बहुत पराक्रमी तथा जैनधर्मका भक्त था। लेख के प्रारंभिक वाक्य 'नमो अरहंतान नमो सवसिधानं' हैं जोकि णमोकार मंत्र के अनुसार हैं। लेख में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका अभिप्राय अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। श्रीमान् इतिहासवेत्ता काशीप्रसाद जी जायसवालने इस लेख का बहुत परिश्रम से अध्ययन किया है।

यह शिलालेख अब से लग भग २१०० वर्ष पहले खोदा गया था, क्योंकि लेख पर सं० १६५ अंकित है जिसको कि श्रीमान् काशीप्रसाद जी जायसवाल ने अनेक युक्तियों से मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का संवत् सिद्ध किया है। उनके कथनानुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त लगभग आज से २२५४ वर्ष पहले राज सिंहासन पर बैठे थे। तदनुसार मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के १६५ वर्ष पीछे अनेक राजाओं पर विजय करने के पश्चात् अपनी उदासीन अवस्था में महामेघ वाहन, कलिंग (उड़ीसा) नरेश खारवेल ने (महामेघवाहन, भिक्षुराज, धर्मराज, क्षेमराज कलिंगाधिपति आदि शब्द राजा खारवेल के अपर नाम हैं) यह शिलालेख खुदवाया था।

इस लेखकी १४ वीं पंक्ति इस प्रकार है—

"सुपवत विजयिचक् (+अ) कुमारी पवते अरहिते (य) परवीन सं (ि) सत (े) हि काय निसीदीयाय यापञावकेहि राजभितनि चिनवतानि वासासितानि पूजाय रत उवास खारवेल सिरिना जीव देह सोरिका परिखिता"

इसका अभिप्राय श्रीमान् जायसवाल जी इस प्रकार प्रगट करते हैं कि "इस कुमारी पर्वत पर खारवेल राजा ने यापज्ञापक जैन साधुओं को रेशमी सफ़ेद वस्त्र दिये। तथा इस पर्वत पर उपासकरूप से तपस्या की और आत्मा व शरीरका भेदभाव पहचाना।

इस अभिप्राय के आधार पर हमारे श्वेताम्बरी विद्वान इस लेख में श्वेताम्बरीयता की गंध लेते हैं। उनका कहना है कि "पहले जैन साधु सफ़ेद वस्त्र पहनते थे, जैसे कि आज कल श्वेताम्बरीय जैन साधु पहना करते हैं। इसी कारण खारवेल राजाने उनको वस्त्र भेंट किये थे। अतएव श्वेताम्बर सम्प्रदाय प्राचीन है, विक्रम संवत् से पीछे का नहीं, किन्तु पहले का है।" आदि।

किन्तु उनकी यह धारणा ठीक नहीं, क्योंकि लेख की पंक्ति से उपर्युक्त अर्थ निकालना केवल एक प्रकार से अटकलपच्चू है; निर्णीत अर्थ नहीं है। देखिये पंक्ति के सारभाग की संस्कृतच्छाया स्वयं श्रीमान जायसवाल जी इस प्रकार लिखते हैं—

"अर्हयते प्रक्षीणसंसृतिभ्यः कायनिषीद्यां यापज्ञापकेभ्यः राजभृतीश्चीनवस्त्राणि वासासितानि।"

इसका सीधा सरल अर्थ यह होता है कि—

"क्षीणसंसारियों के लिये तथा (संसार का नाश करने वाले) कायनिषीदी में यापज्ञापकों के लिये बहुमूल्य चीनवस्त्र और सफ़ेद कपड़े भेंट किये।"

यहां पर जैनसाधु का स्पष्ट उल्लेख किसी भी शब्द से प्रगट नहीं होता। प्रक्षीणसंसृति, यापज्ञापक शब्दों का अर्थ कहीं भी 'जैनसाधु' नहीं पाया जाता। इस कारण श्रीमान् जायसवालजी का अर्थ केवल अनुमानित है, असंदिग्ध नहीं। संभव है दान करते समय ये वस्त्र संसारसे विरक्त, किन्हीं यापज्ञापक नामक अजैन संन्यासियों को दिये होवें, जैसे कि उत्सव के समय आजकल भी अनेक जैन भाई भारी दान करते समय अजैन साधुओं को भी कुछ दे डालते हैं। खारवेलने राज्याभिषेक के ९ वें वर्ष में भी हाथी, घोड़े, रथ, मकान, वस्त्र आदि का भारी दान किया था।

इस कारण इस १४ वीं पंक्ति से निर्भ्रान्तरूप में यह समझ लेना कि "खारवेल ने जैनसाधुओं को रेशमी, सफ़ेद वस्त्र भेंट किये थे" निराधार है; हमारे खयाल से ठीक नहीं।

दूसरे—यदि कदाचित् उन शब्दों से 'संसार विरक्त जैन' ही समझा जावे तो उससे 'महाव्रती साधु' यही अर्थ किस प्रकार निकाला जा सकता है। ग्यारहवीं प्रतिमाधारक श्रावक भी संसार से परम उदासीन तथा वस्त्रधारक होताहै। खारवेल ने कपड़े ग्यारवीं प्रतिमाधारक ऐलक, क्षुल्लक श्रावकों (जो कि साधु के छोटे भाई समझे जाते हैं) को दिये हों,इसमें क्या आपत्ति है? क्षुल्लक-ऐलकों को वस्त्र न देकर महाव्रत धारक साधुओं को ही दिये थे, इसका साधक प्रमाण हमारे श्वेताम्बरी भाइयों के पास क्या है?

तीसरे—जिस उदयगिरि पर्वत पर यह लेख विद्यमान है वह सदा से दिगम्बरी तीर्थक्षेत्र रहा आया है। खारवेल ने वहाँ पर बने हुए जैनमंदिरों का जीर्णोद्धार कराया था; उन मंदिरोंके प्रतिबिम्ब दिगम्बर रूप में ही आज तक उपलब्ध हैं। मगध देश का नन्दराजा खारवेल के समय से ३०० वर्ष पहले खारवेल के पूर्वजों से जो भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा ले गया था वह भी दिगम्बर ही होनी चाहिये, क्योंकि मुद्राराक्षस नाटक से अनुमान होता है कि नन्दराजा दिगम्बर साधुओं का भक्त था। उसने भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा को सुरक्षित रक्खा तो वह दिगम्बर प्रतिमा ही होनी चाहिये। उस प्रतिमा को पुनः लाना खारवेल की दिगम्बरीयता सिद्ध करता है। तब वह जैनसाधुओं को वस्त्र क्योंकर देवे?

चौथे—यदि कुछ देर के लिये यह भी मान लिया जावे कि खारवेल ने श्वेताम्बरीय साधुओं को ही वस्त्र दिये थे, तब भी इससे श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता किस प्रकार सिद्ध होती है? क्योंकि खारवेल से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु तथा उनके शिष्य,पहले सम्राट् तथा पीछे मुनि, चन्द्रगुप्त हुए हैं। उनके समय में बारह वर्षी दुर्भिक्ष के कारण कुछ जैनसाधु प्राचीन नग्नवेश को छोड़कर कपड़े भी पहनने लगे थे (दिगम्बर, श्वेताम्बर नाम संस्कार विक्रम् सं० १३६ में हुआ था)। जैनत्व के प्रेम से यदि आपके कथनानुसार वस्त्र उनको "खारवेल" ने दे

जैनधर्म और वेद !

[लेखक—वेद विद्या विशारद पं० मंगल सैन जी, अम्बाला]

[गताङ्क से आगे]

द्वितीय सिद्धि का साधन—वेदविद्धिरहिंसोक्ता—यह बतलाया है कि वेद अहिंसा के प्रतिपादक हैं, इत्यादि। सो जैनशास्त्रोंके आधार से वेदों को अहिंसा का प्रतिपादक बतलाना भी मिथ्या है, क्योंकि इस वाक्य द्वारा शास्त्रकार ने अपने मन्तव्य को नहीं बतलाया किन्तु नारद एवं उसके साथी, और परवत एवं उसके साथियों के संलाप को लिखते हुए नारद के साथियों के कथन को लिखा है। अतः यह नारद एवं उनके साथियों की ही मान्यता हो सकती है न कि उसके उल्लेख करने वाले शास्त्रकार की। आज वेदों में सैकड़ों ही श्रुतियाँ हिंसाविधायक उपस्थित हैं और उनमें पशुओं को मारना, काटना, पशुके प्रत्येक अङ्ग को बांटना और मांस को पकाना, हुत शेष मांस की भिक्षा माँगना आदि बातें पाई जाती हैं। यदि आप को इसमें कुछ भी सन्देह है तो इसके लिये हम माँस पकाने की ही श्रुति को उपस्थित करते हैं। देखिये आर्य पण्डित लालचन्द जी शर्मा अपनी आमिषमीमांसा नामक पुस्तक के पृष्ठ ३९ में मांस पकाने की विधि का मंत्र इस प्रकार लिखते हैं—

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति। सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेध शृत पाकं पचन्तु। ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६२ मं० १० और यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र ३३

ॐ यदित्यस्य दीर्घतमाऋषि। निच्यृदार्षीत्रिष्टुप छन्द। अश्वोदेवता। अश्वस्तुति करणे विनियोगः।

(उदरस्य) पेट के (यत्) जो (ऊवध्यम्) ईषज्जीर्ण हुये तृणादि को (अपवाति) निकालता है (यः) जो मनुष्य (आमस्य) कच्चे (क्रविषः) मांस के (गन्धः) लेश वा कतरा (अस्ति) है (शमितारः) बनाने, मारने, काटने वाले (तत्) उसको (सुकृता) अच्छी प्रकार सब दोष दूर करके (कृण्वन्तु) करें (उत्) और (शृत पाकम्) विद्वानों के योग्य जो पाक हो वैसा (पचन्तु) पकावे।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि यज्ञ में पशु को मार कर उसके पेट में से जो खराब वस्तु है निकाल कर तथा कच्चे भाग जो खराब हैं उन सबको निकाल कर भली भाँति से सब दोष दूर करके विधिपूर्वक न अति पक्व न न्यून पक्व हो,

---

[शेषांश पृष्ट ४०३]

दिये तो इससे श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता अथवा संघभेद वाली दिगम्बरीय कथा की अप्रामाणिकता किस प्रकार सिद्ध हुई ?

इस प्रकार कलिंग देश के विख्यात पराक्रमी राजा खारवेल का शिलालेख भी श्वेताम्बरीय मान्यता को तथा श्वेताम्बरीय प्राचीनता को सिद्ध नहीं करता।

[क्रमशः]

किन्तु जैसा सुन्दर पाक को जिससे देवता प्रसन्न हों पकावे। पाक में किसी प्रकार की न्यूनता न रहने पावे, अन्यथा फल तो क्या, उल्टी हानि होती है। इससे विचारपूर्वक इस पाक रूप कार्य का आरम्भ यज्ञ में करो।

स्वामी दयानन्द जी ने इसी मंत्र का गौतम ऋषि। यज्ञो देवता। निवृत् त्रिष्टुपछन्दः। और फिर कौन किसके लिये क्या न करे—विनियोग लिखा है परन्तु मग्नोऽश्वनोमोयं दीर्घतमास्त्रिष्टुभं-द्वाविंशत्यृचमश्वस्तुति स्तृतीया षष्ठ्यांजगत। ३-५ इस कात्यायन सूत्र के प्रमाण से मंत्र का दीर्घतमा ऋषिः। त्रिष्टुपछन्दः। अश्वोदेवता। अश्वस्तुति-करणेविनियोगः सिद्ध होता है। इसलिये मन्त्र के ऋषि देवता छन्दादि जो कि स्वामी दयानन्द जी ने लिखे हैं वे सूत्र के विरुद्ध होने से मिथ्या हैं; और जबकि मंत्र का देवता ही ठीक नहीं है तब उसके आधार से होने वाला वेदार्थ भी व्यर्थ है। समझ में नहीं आता कि स्वामी कर्मानन्द जी ने ऐसे असत्य वेदार्थ को लेकर भोली जनता को धोखे में डालने के लिये क्यों ऐसा प्रयत्न किया है। क्या विद्वान् देवताओं का यही सत्य व्यवहार है अथवा बाँधा नियम दूसरों के लिये ही बनाया गया या उसका आप भी कुछ अनुकरण करते हैं या नहीं। खेद!

स्वामी दयानन्द जी प्रथम बार के सत्यार्थ-प्रकाश पृष्ठ ३९९ में जैनियों से कहते हैं कि यज्ञों के विषय में आप कुतर्क करते हैं सो पदार्थ विद्या के न होने से, क्योंकि घृत, दूध और मांसादिकों के यथावत् गुण जानते और यज्ञ का उपकार कि पशुओं के मारने में थोड़ा सा दुःख तो होता है परन्तु यज्ञ में चराचर का अत्यन्त उपकार होता है। इस लेख में स्वामी जी ने यज्ञ में पशु को मारना और यज्ञ द्वारा विशेष उपकार बतलाया है। सो इसके लिये स्वामी कर्मानन्द जी को चाहिये कि स्वामी दयानन्द जी की इस आज्ञा का पालन करें। अन्यथा वेद विरोधी बनने से लाभ क्या?

फिर उसी सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३०२ में लिखा है कि कोई भी मांस न खाय तो जानवर, पक्षी, मत्स्य और जलजन्तु इतने हैं कि उनसे शत सहस्र गुणे हो जायं, फिर मनुष्यों को मारने लगें और खेतों में धान्य ही न होने पावे। फिर सब मनुष्यों की आजीविका नष्ट होने से सब मनुष्य ही नष्ट हो जायँ। कहिये स्वामी जी महाराज दयानन्द जी ने मांस खाने में युक्ति क्या अच्छी लिखी है। अब इस कार्य को करके गुरु भक्ति का परिचय अवश्य देना चाहिये। इसके अतिरिक्त हिंसाविधायक वेद, ब्राह्मण, सूत्र और निरुक्तादि के अनेक प्रमाण हमारे पास उपस्थित हैं जिनको हम यथा अवसर लिखेंगे। अब आप बतलावें कि जिन वेदों को जैन शास्त्रों के आधार से आप अहिंसा के प्रतिपादक सिद्ध करना चाहते हैं, और वेद हिंसा के विधायक होने से वैसे सिद्ध होते नहीं, तब आपका प्रयत्न करना निष्फल है या नहीं। ज़रा कुछ तो समझ कर लिखना चाहिये। खेद!

महाशय जी आपने अपने लेख में उत्तरपुराण का आधा श्लोक लिखा है, उसी के अनुसार हमने आपके मान्यवेदों की परीक्षा करके दिखला दिया कि वेद हिंसा आदि के विधायक होने से ब्रह्म के कहे हुए सिद्ध नहीं होते। यदि आप इसी तरह

आगामी भी आर्षवाक्य लिखकर अपने मान्य वेदों को उनके आधार से सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे तो हम भी उन आर्षवाक्यों के आधार से ही सिद्ध करके दिखलावेंगे कि मौजूदा वेद ब्रह्म के कहे हुए नहीं हैं और जबकि आपके मान्य वेद जैनग्रन्थों के आधारोंसे वैसे सिद्ध नहीं होते तब आपका उनको आर्षवाक्यों के अनुकूल सिद्ध करने का प्रयत्न भी व्यर्थ है। [क्रमशः]

बौद्ध धर्म की कुछ भावनायें!

[लेखक—पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री]

जैन धर्म के अन्तिम उद्धारक भगवान महावीर और बौद्धधर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध दोनों समकालीन थे। और दोनों ने अपने पावन जन्म से भारतवर्ष के एक प्रदेश विहार को पवित्र किया था। यह तो हुई दोनों धर्माचार्यों की दैशिक और कालिक समानता, जिसे प्रत्येक इतिहास का विद्यार्थी जानता है। अपने पाठकों को आज हम यह बतलाना चाहते हैं कि जैनधर्म और बौद्धधर्म के व्यवहार धर्म विषयक विचारों में कितनी अधिक समानता पाई जाती है। दोनों में द्रव्य पूजा और भाव पूजा का क्रम एकसा ही है। यहां पर बोधि सत्व की कुछ भावनाओं का वर्णन बोधिचर्यावतार से दिया जाता है, पाठक देखेंगे कि यह विचार जैन त्यागी के विचारों से इतने अधिक मिलते जुलते हैं कि जब तक कोई जानने वाला यह न बतलावे कि यह विचार बौद्धाचार्यों के हैं, तब तक एक जैन उन्हें जैनाचार्यों के ही विचार समझेगा। आइये—कुछ काल के लिये संसार के मायाजाल को हृदय से दूर करके अपनी खबर लीजिये और प्रथम ही अशरण भावना का विचार कीजिये—

यमदूतैर्गृहीतस्य कुतो बन्धुः कुतः सुहृत्।
पुण्यमेकं तदा त्राणं मया तच्च न सेवितम्॥

मृत्यु समय मित्र बन्धु कोई भी रक्षा नहीं कर सकता, पुण्य कर्म ही जीव का रक्षक है, किन्तु शोक! मैं ने पुण्य कर्म भी नहीं किये।

एकत्व भावना—

जीवलोकमिमं त्यक्त्वा बन्धून्परिचितांस्तथा।
एकाकी क्वापि यास्यामि किं मे सर्वैः प्रियाप्रियैः॥

एक दिन परिचित इष्ट मित्रों से भरे हुए इस संसार को छोड़कर अकेला कहीं चला जाऊंगा। इन प्रिय और अप्रिय वस्तुओं से मुझे क्या?

इष्ट मित्रों से परिपूर्ण संसार में अनुरक्ति मत करो, किन्तु अपने इस सुन्दर सलोने शरीर को तो देखो, क्या इसे भी रद्दी की टोकरी में शामिल करोगे? सुनिये—

रक्षसीमं मनः कस्मादात्मीकृत्य समुच्छ्रयम्।
त्वत्तश्चेत्पृथगेवायं तेनात्र तव को व्ययः॥

हे चित्त! इस हाड़ चाम के पींजड़े से क्यों ममत्व करता है, इसकी रक्षा के लिये क्यों व्याकुल होता है। जब तुमसे यह जुदा ही है, तब इसके नष्ट हो जाने से तुम्हारी क्या हानि है? शरीर

मुझसे जुदा है, यह बात कुछ समझ में नहीं आती। यह तो मेरे साथ ही पैदा हुआ है दुख सुख में बराबर मेरा साथ देता है, फिर कैसे इसे अपने से जुदा समझूं" ?

इमं चर्मपुटं तावत्स्वबुद्धयैव पृथक् कुरु ।
अस्थि पंजरतो मांसं प्रज्ञाशस्त्रेण मोचय ॥
अस्थिन्यपि पृथक्कृत्वा पश्य मज्जानमन्तत ।
किमत्र सारमस्तीति स्वयमेव विचारय ॥

ज्ञान छुरिका से इस हाड़ चाम के पींजड़े को चीरकर देखो, तो अन्दर रक्त और मांस का भंडार मिलेगा। मांस पृथक् करने पर हड्डियों पर दृष्टि पड़ेगी। और हड्डियों को चीरने पर चर्बी के दर्शन होंगे। अब मूढ़चित्त ! तुमही बतलाओ, इसमें क्या सार है ?

दत्वास्मै वेतनं तस्मात्स्वार्थं कुरु मनोऽधुना ।
न हि वैतनिकोपात्तं सर्वं तस्मै प्रदीयते ॥

यह शरीर मालिक नहीं है, नौकर है। वेतन भोजन लेता है और काम करता है। क्या कोई मालिक सेवा के द्वारा उपार्जित कुल धन सेवक को देकर आप कंगाल हो जाता है ? तब शरीर के द्वारा उपार्जित की हुई जीवन भर की पुण्य सम्पत्ति को शरीर के मोह में पड़कर क्यों नष्ट करना चाहते हो।

भिक्षु समाधि में लीन है। कोई दुष्ट धीरे से आकर साधु पर डंडे से प्रहार करता है। रंग में भंग हो जाता है, भिक्षु के शान्तमन में संकल्प विकल्पों की आँधी उठ खड़ी होती है। ज्ञानी भिक्षु उस आँधी का सामना करता है और अशान्त मन को समझाते हुए कहता है—

मुख्यं दण्डादिकं हित्वा प्रेरके यदि कुप्यते ।
द्वेषेण प्रेरितः सोऽपि द्वेषे द्वेषोऽस्तु मे वरं ॥

मुझे डण्डे ने चोट पहुँचाई है, इसलिये डण्डे पर ही क्रोध करना चाहिये। किन्तु डण्डा तो नासमझ है, जड़ है, उसका क्या दोष है ? डण्डे का प्रेरक मनुष्य ही दोषी है। अतः उस पर ही क्रोध करना चाहिये। तब तो मनुष्य भी निर्दोष है—क्योंकि उसने भी द्वेष से प्रेरित होकर ही यह दुष्कर्म किया है। अतः मुझे मनुष्य से द्वेष न करके द्वेष से ही द्वेष करना चाहिये।*

मयाऽपि पूर्वं सत्वानामीदृश्येव व्यथा कृता ।
तस्मान्मे युक्त मेवैतत्सत्त्वोपद्रवकारिणः ॥

पूर्व जन्म में मैं ने भी प्राणियों को ऐसे ही कष्ट दिये थे, अतः उसका फल मिलना युक्त ही है।

एतानाश्रित्य मे पापं क्षीयते क्षमतो बहु ।
मामाश्रित्य तु यान्त्येते नरकान् दीर्घवेदनान् ॥
अहमेवापकार्येषां ममैते चोपकारिणः ।
कस्माद्विपर्ययं कृत्वा खलचेतः प्रकुप्यति ॥

इन उपद्रव करने वालों के निमित्त से मेरे दुष्कर्मों की निर्जरा होती है, क्योंकि मैं उन्हें क्षमा करता हूं। और यह बेचारे मेरे निमित्तसे दुखदायी नरकों में जाते हैं। इसलिये मैं ही इनका अपकारक हूं। यह तो मेरे उपकारक हैं, तब मूढ़मन उल्टा समझ कर क्यों क्रोध करता है ?

---

* क्षत्रचूड़ामणि में भी इसी आशय का श्लोक है—

अपकुर्वति कोपश्चेत् किं न कोपाय कुप्यसि ।
त्रिवर्गस्यापवर्गस्य जीवितस्य च नाशिने ॥

अथाहमात्मदोषेण न करोमि क्षमामिह।
मयैवात्र कृतो विघ्नः पुण्यहेतावुपस्थिते॥

यदि असहिष्णु बनकर मैं इसे क्षमा नहीं करता हूँ, तो पुण्य संचय का एक सुनहरा अवसर (Golden opportunity) हाथ से खो देता हूँ। मोह निद्रा में निमग्न मुसाफ़िरो! जागो, संसार सागर से पार उतरने के लिये नाव तैयार है।

मानुष्यं नावमासाद्य तर दुखमहानदीम्।
मूढ़ कालो न निद्राया इयं नौर्दुर्लभा पुनः॥

मनुष्य जन्मरूपी नाव से दुख रूपी महानदी को पार कर डालो। मूढ़! यह समय सोने का नहीं है, दुर्लभ है, बार बार नहीं मिलता है। व्रती को सर्वदा सावधान रहना चाहिये, क्योंकि—

विषं रुधिरमासाद्य प्रसर्पति यथा तनौ।
तथैवच्छिद्रमासाद्य दोषश्चित्ते प्रसर्पति॥

जैसे विष रुधिर में मिलकर समस्त शरीर में फैल जाता है उसी प्रकार ज़रासी भी शिथिलता आने पर मन में विकार पैदा हो जाते हैं। इसलिये—

तस्मादुत्संगे सर्पे यथोत्तिष्ठति सत्वरम्।
निद्रालस्यागमे तद्वत् प्रतिकुर्वीत सत्वरम्॥

यथा—गोद में अकस्मात् सर्प के आ जाने पर तुरन्त हड़बड़ाकर खड़े हो जाते है, वैसे ही निद्रा और आलस्य के आने पर उनका प्रतीकार तुरन्त करना चाहिये।

व्रती को अज्ञानी पुरुषों की संगति से सर्वदा बचना चाहिये, क्योंकि उनकी संगति करने से—

ईर्ष्योत्कृष्टात्समा द्वन्द्वो हीनान्मानः स्तुतेर्मदः।
अवर्णात्प्रतिघश्चेति कदा बालाद्धितं भवेत्॥

अपने से बड़ों को देखकर ईर्षा होती है, समान से विषाद होता है, हीनों को देखकर मान होता है, तथा अपनी प्रशंसा सुनने से मद और निन्दा सुनने से द्वेष होता है।

जैन शास्त्रों में मुनियों की माधुकरी वृत्ति का वर्णन मिलता है, बोधि सत्व भी माधुकरी वृत्ति की भावना भाता है। सुनिये—

धर्मार्थमात्रमादाय भृंगवत्कुसुमान् मधु।
अपूर्व इव सर्वत्र विहरिष्यामि संस्तुतः॥

वह दिन कब आवेगा, जब फूलों से मधु संचय करने वाले भ्रमर के समान, मैं धर्म साधन के योग्य भोजन वस्त्र मात्र ग्रहण करके विहार करूंगा।

शून्य देवकुले स्थित्वा वृक्षमूले गुहासु वा।
कदानपेक्षो यास्यामि पृष्ठतोऽनवलोकयन्॥

शून्य देवस्थान, वृक्षमूल, या पर्वत की गुफाओं में, बीती बातों का स्मरण न करते हुए मेरे दिन कब बीतेंगे।

कायभूमिं निजां गत्वा कङ्कालैरपरैः सह।
स्वकायं तुलयिष्यामि कदा शतन धर्मिणम्॥
अयमेव हि कायो मे एवं पूतिर्भविष्यति।
शृगाला अपि यद्गन्धान्नोपसर्पेयुरन्तिकम्॥
अस्यैकस्यापि कायस्य सहजा अस्थिखंडकाः।
पृथक्पृथग्गमिष्यंति किमुतान्यः प्रियो जनः॥

श्मशान भूमि में जाकर वहाँ पड़े हुए नर कङ्कालों के साथ अपने शरीर की तुलना कब करूंगा? एक दिन मेरा शरीर भी उन्हीं कङ्कालों के समान घिनावना होगा, जिसकी दुर्गन्ध से उसके पास स्यार भी न आवेंगे। अन्त समय मेरे शरीर के अस्थि पंजर तक जुदे २ हो जावेंगे, फिर प्रियजनों की बात ही क्या है? शरीर से विरक्त करके आचार्य व्रती को संबोधते हैं।

कङ्कालान्कतिचिद्दृष्ट्वा श्मशाने किलते घृणा ।
ग्रामश्मशाने रमसे चलत्कंकाल संकुले ॥

कुछ कंकालों को देखकर तुम श्मशान से घृणा करते हो और चलते फिरते नर कङ्कालों से व्याप्त इन ग्राम या नगर रूपी श्मशानों से मोह करते हो। बनको छोड़कर शहरों में बसने वाले भिक्षु तुम्हारी अजीब दशा है। तुम्हें तो—

एवमुद्विज्य कामेभ्यो विवेके जनयेद्रतिम्।
कलहायास शून्यासु शान्तासु बनभूमिषु ॥

काममद मोह से विरक्त होकर कलह-द्वन्द से रहित निर्जन बन भूमि से प्रेम करना चाहिये ।

बौद्धाचार्य का उक्त उपदेश और विचार जैन साधुओं के विचारों से कितना अधिक मिलता है, यह पाठक स्वयं जान सकेंगे। किन्तु चित्त को सांसारिक विषय वासनाओं से विरक्त करके जब बौद्ध धर्म नैरात्म्य बाद का उपदेश देता है तब सब मज़ा किरकिरा हो जाता है। जब आत्मा अवस्तु है, न कुछ है, तब इतना आयास किसके लिये है ?

हार्दिक धन्यवाद !

१. श्रीमान् ला० शिब्बामल जी जैन रईस अम्बाला छावनी जैनसमाज के दानियों में से एक हैं। आपकी तरफ़ से भिन्न २ विद्यालयों में कई छात्र वृत्तियां और समय २ पर अन्य सहायतायें भी दी जाती रही हैं! शास्त्रार्थ संघ से तो आपका एक विशेष अनुराग है, और आप इसको कभी भी आर्थिक कठिनाई का सामना नहीं करने देते हैं। अभी कुछ ही समय हुआ, जब आप "जैनदर्शन" के संचालन के लिये संघ को ५०१) की सहायता दे चुके हैं, किन्तु फिर भी आपने संघ के कार्य को दृढ़ता से चलाने के लिये अभी इकमुश्त साढ़े तीन हज़ार ३५००) की सहायता और दी है, जिसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है।

२. श्रीमान् साहू प्यारेलाल जी जैन रईस धामपुर भी संघ के हितैषियों में से एक हैं। आपने भी पानीपत के दो शास्त्रार्थों में से एक को अपनी सहायता से प्रकाशित कराने की स्वीकारता दी है, यह शास्त्रार्थ करीब २०० पेज का है, और इसके प्रकाशन में लगभग अढ़ाई सौ रुपया लगेगा! संघ आपके इस सहयोग का हृदय से आभारी है।

निवेदकः—
राजेन्द्रकुमार जैन, प्रधान मंत्री
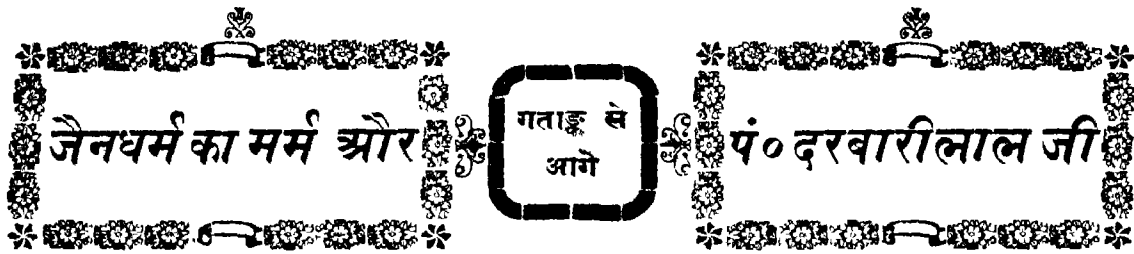
[१५]

केवली और मन

केवली सम्पूर्ण पदार्थों को एक साथ नहीं जानते या यों कहिये कि केवली के मानसिक ज्ञान है, इस बात के समर्थन में दरबारीलाल जी ने दूसरी बात ध्यान की लिखी है। आपका कहना है कि ध्यान बिना मन के नहीं हो सकता तथा केवली के ध्यान स्वीकार किया गया है, अतः यह भी स्पष्ट है कि केवली के कार्यकारी मन भी है। पाठक दरबारीलाल जी के अभिप्राय को विशदता के साथ समझ सकें, अतः यहाँ हम इस सम्बन्ध के उनके वाक्यों को भी उद्धृत किये देते हैं—

"तेरहवें गुणस्थान में केवली के ध्यान बतलाया जाताहै, ध्यान बिना मन के हो नहीं सकता, इसलिये भी केवली के मन मानना पड़ता है। तेरहवें गुणस्थान के सूक्ष्म क्रियाप्रतिपातिध्यान में बचनयोग के समान मनोयोग का भी निरोध किया जाता है। यदि मनोयोग उपचरित माना जाय तो ध्यान के लिये उसके निरोध की आवश्यकता ही क्या है? जब वास्तव में मनोयोग है ही नहीं तो उनका निरोध क्या?

दरबारीलाल जी के इस वक्तव्य का यदि विश्लेशन कर दिया जाय तो निम्नलिखित रूप रह जाता है :—

ध्यान से कार्यकारी मन का समर्थन और तेरहवें गुणस्थान में वास्तविक मनोयोग का अस्तित्व।

अब विचारणीय यह है कि क्या दरबारीलाल जी का उपर्युक्त वक्तव्य युक्तियुक्त है? इस बात के निर्णय के लिये निम्नलिखित बातों का निर्णय आवश्यक है :—

१—ध्यान और कार्यकारी मन की व्याप्ति।

२—तेरहवें गुण स्थान में वास्तविक मनोयोग का अस्तित्व और उसका प्रकृत विषय से सम्बन्ध।

सूत्रकार उमास्वामी ने ध्यान का लक्षण "एकाग्रचिन्तानिरोध" किया है †। इसका तात्पर्य अपरिस्पन्दात्मक ज्ञान है ‡। जिस प्रकार किसी भी पदार्थ के एक जगहसे दूसरी जगह जाने को क्रिया या परिस्पन्द कहते हैं उसी ही प्रकार ज्ञान के एक ज्ञेयसे दूसरे ज्ञेयपर जानेको भी। अतः जिस समय

† तत्वार्थ सूत्र ९ । २७

‡ एतदुक्तं भवति ज्ञान मेवापरिस्पन्दमानमपरिस्पन्दाग्निशिखावदवभासमानं ध्यानमिति —सर्वार्थसिद्धि ९।२७

हम अपने उपयोग को एक विषय से हटाकर दूसरी तरफ़ ले जाते हैं उस समय इसमें परिस्पन्द होता है या इसकी उस अवस्थाको परिस्पन्दात्मक अवस्था कहते हैं। इसके विपरीत जब हम अपने उपयोग को एक विषय से दूसरे विषय पर नहीं जाने देते और उसको उसही पर रोके रखते हैं उस समय हमारे ज्ञान में ज्ञेय से ज्ञेयान्तर जाना रूप परिस्पन्द नहीं होता; अतः ऐसी अवस्था में हमारा ज्ञान अपरिस्पन्दात्मक कहलाता है। इसीको ध्यान कहते हैं और यही एकाग्रचिन्ता निरोध है। इस प्रकार की अवस्था उस समय होती है जब कि हम चिन्ताओं—मनोवृत्तिओं—को चारों तरफ़ से हटाकर एकही तरफ़ लगा लेते हैं; या उस समय भी होती है जब हम सम्पूर्ण चिन्ताओं का बिलकुल अभाव ही कर देते हैं। इसी बातको ध्यानमें रखकर शास्त्रकारों ने इस चिन्तानिरोध को एक देश और सर्वदेश इस प्रकार दो भेदों में विभाजित किया है ‡। एक देश चिन्तानिरोध वहां है जहां कि एक चिन्ता के अतिरिक्त अन्य शेष चिन्ताओं का अभाव है। सर्व देश चिन्तानिरोध से तात्पर्य्य उस अवस्था से है जहाँ कि मनोवृत्तियों का बिलकुल अभाव है। इसही को यदि दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि यह वह अवस्था है जहां कि क्षायोपशमिक ज्ञान का अभाव होकर क्षायिक ज्ञान का उदय हो जाता है। चिन्तानिरोध से तात्पर्य्य यदि केवल एक देशीय चिन्तानिरोध से ही होता तब तो इसके लिये कार्यकारी मन का अस्तित्व अनिवार्य ही था, क्योंकि ऐसी अवस्था में भले ही अन्य विषयों से चिन्ता का—मनोवृत्ति का—अभाव हो गया हो किन्तु जिस पर वह मौजूद है। उसके सम्बन्ध में तो मानसिक ज्ञान मौजूद ही है अन्य विषयों से चिन्ता को हटाकर एक विषय पर लगा देने से उसमें परिस्पन्दात्मक पने का अभाव तो हो जाता है किन्तु यह कैसे हो सकता है कि उसके लिये कार्यकारी मन की ही ज़रूरत न रहे। ऐसा होने पर तो वह चिन्ता ही नहीं कहला सकती, क्योंकि मनकी प्रवृत्ति का नाम ही तो चिन्ता है ※। यहां तो चिन्तानिरोध से तात्पर्य दोनों ही प्रकार के चिन्तानिरोधों से है। जिस प्रकार पहिली अवस्था में कार्यकारी मनका अस्तित्व अनिवार्य है उसी ही प्रकार दूसरी अवस्था में उसका अभाव। यदि दूसरी अवस्था में भी चिन्ताओं के सर्वदेश अभाव में कार्यकारी मन का अस्तित्व माना जायगा या यों कहिये कि मन की सहायता से ज्ञान का होना माना जायगा तो इस अवस्था में सर्वदेश से चिन्ता का अभाव ही नहीं हो सकेगा। जहां मनकी सहायता से ज्ञान हो रहा हो वहां यह कहना कि यहां मनोवृत्तियों का बिलकुल अभाव है परस्पर विरोधी कथन है। दूसरी बात यह है कि वह ज्ञान क्षायिक ज्ञान भी नहीं कहला सकता, क्योंकि क्षायोपशमिक ही हो जायगा। प्रतिपक्षी कर्म के बिलकुल क्षय से जो अवस्था होती है उसको क्षायिक और जिसमें क्षय, उपशम और उदय तीनों कार्य करते हैं इसको क्षायोपशमिक कहते हैं। जिस समय प्रतिपक्षी कर्म का बिलकुल अभाव हो जाता है उस समय

‡ चिन्तानिरोधस्यैक देशतः कात्स्न्र्यतो वा ध्यानस्यैकाग्रविषयत्वेन विशेषणात् —श्लोक वा० ९—२७

※ चिन्ता अन्तःकरणवृत्तिः। अन्तः करणवृत्तिरर्थेषु चिंतेत्युच्यते—राजवार्तिक ९—२७

वह गुण पूर्ण विकसित अवस्था को प्राप्त हो जाता है। किन्तु जब तक प्रतिपक्षी कर्म का बिलकुल अभाव नहीं होता तब तक वह गुण भी पूर्ण विकाश को प्राप्त नहीं हो सकता। कार्यकारी मनके अस्तित्व में जो भी ज्ञान होता है वह चरमसीमा को पहुँचा हुआ ज्ञान नहीं है, क्योंकि ऐसी अवस्था में भी अधिक ज्ञानकी लालसा बनी ही रहती है, अतः स्पष्ट है कि ऐसा ज्ञान क्षायोपशमिक ही हो सकता है। इससे प्रगट है कि चिन्तानिरोध के साथ कार्यकारी मन के अस्तित्व की व्याप्ति नहीं। अतः इसही के—ध्यान के—आधार से केवली के कार्यकारी मनका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। आचार्य विद्यानन्दि ने भी इसी प्रकार का एक प्रश्न श्लोकवार्तिक में उठाया है। प्रश्न का सारांश यह है कि मन रहित केवली के एकाग्र चिन्ता निरोध रूप ध्यान कैसे हो सकता है*। इसके उत्तर में उक्त आचार्यवर्य ने बतलाया है कि निश्चयनय से सम्पूर्ण चिन्ताओं का निरोधरूप जो ध्यान है वह केवली के है। साथ ही उनके उत्कृष्ट स्थिरता और एकाग्रता भी है। अतः साक्षात् मोक्ष का कारण ऐसा जो मुख्य ध्यान है वह केवली के है। जिस प्रकार एक वस्तु में ज्ञान की स्थिरता ही एकाग्रता है उसही प्रकार इस एकाग्रता को एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों में से कौन रोक सकता है। जिस प्रकार मोही ज्ञाता के मोह के उपशम से व्याक्षेप नहीं होता उसही प्रकार क्या मोहरहित ज्ञाता के उसका अभाव न होगा। जिस प्रकार मोही ज्ञाता का एक पदार्थ में व्यापार रहता है उसही प्रकार केवली के अनन्तपर्यायात्मकद्रव्य में क्यों न रहेगा? इस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थों को एक साथ जानने वाले केवलियों के बुद्धिमानों को निश्चयनय से ध्यानका निषेध नहीं करना चाहिये †। प्रश्न—जहां कि आचार्य विद्यानन्दि ने श्लोकवार्तिक में केवलियों के ध्यान के अस्तित्व का समर्थन किया है वहीं वह उसही को उन्हीं में औपचारिक स्वीकार करते हैं। फिर इन दोनों प्रकार के कथनों का समन्वय कैसे किया जाय। उत्तर—आचार्य विद्यानन्दि ने केवलियों में जिस दृष्टि से मुख्य ध्यान का सद्भाव बतलाया है वह दृष्टि उस दृष्टि से भिन्न है जिससे वे उनमें उस ध्यान का औपचारिक वर्णन करते हैं। आचार्य का कहना है कि दूसरी चिन्ताओं से रहित चिन्ता—मनोवृत्ति—मनसहित के हो सकती है न कि सम्पूर्ण पदार्थों को एक साथ जानने वाले और मन रहित केवली के। अतः उनके इस प्रकार की एकाग्रता का अभाव है। साथ ही साथ केवली के चिन्ता निरोधरूप ध्यान

---

* अथा मनस्कस्य केवलिनः कथमेकाग्रचिन्ता निरोध लक्षणं ध्यानं संभाव्यते इत्यारेकायामिदमाह।
श्लोकवा० ९—४४

† सर्व चिन्तानिरोधस्तु यो मुख्यो निश्चितान्नयात्। सोस्ति केवलिनः स्थैर्यमेकाग्रं च परंसदा॥ मुख्यं ध्यानमतस्तस्य साक्षान्निर्वाणकारणं। छद्मस्थयोपचारात्स्यात्तदन्यास्तित्वकारणात्॥ यथैकवस्तुनि स्थैर्यं ज्ञानस्यैकाग्र्यमिष्यते। तथा विश्व पदार्थेषु सकृत्तत्केनवार्यते॥ मोहानुद्रेकतो ज्ञातुर्यथा व्याक्षेपसंक्षयः। मोहिनोस्ति तथा वीतमोहस्यासौ सदा न किम्॥ यथैकत्र प्रधानेर्थेवृत्तिर्वात्तस्य मोहिनः। तथा केवलिनः किं न द्रव्येऽनंत विवर्तके॥ इति निश्चयतो ध्यानं प्रतिषेध्यं न धीमता। प्रधानं विश्वतत्त्वार्थवेदिना प्रस्फुटात्मना॥ —श्लोकवा० ९—४४

मौजूद है। अतः उनके इस प्रकार के ध्यान को उपचार से माना जा सकता है ‡। इससे पाठक समझ गये होंगे कि केवली में उपचरित ध्यान और मुख्य ध्यान का वर्णन भिन्न दृष्टियों से है। इन्हीं सब बातों को और भी स्पष्ट करते हुए आचार्य विद्यानन्दि ने भी लिखा है कि पुरुष में कहीं नियत विषय चिन्ता ही—मनोपयोग—ध्यान है और कहीं इन चिन्ताओं के सम्पूर्ण रीति से अभावस्वरूप और सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान ही ध्यान है। भिन्न भिन्न नयों की दृष्टि से कोई कहीं मुख्य है और कहीं गौण आदि ×।

प्रश्न—चिन्तानिरोध के आप भले ही एक देश और सर्वदेश भेद करदें और केवली में सर्वदेश चिन्ताओं का अभाव भी मान लें, किन्तु फिर भी उनमें ध्यान का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। क्योंकि ध्यान के लिये इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण भी आवश्यकीय है और वह है एकाग्रता। केवली एक ही समय में सम्पूर्ण पदार्थों को जानते हैं यह एक मानी हुई बात है, अतः उनमें एकाग्रता घटित नहीं हो सकती। और जब एकाग्रता ही नहीं है तब उनमें सर्वदेश चिन्ताओं का अभाव भी मानकर ध्यान नहीं माना जा सकता। उत्तर—एकाग्रता का सम्बन्ध एक विषय के जानने और न जानने से नहीं किन्तु स्थिरता से है। वह व्यक्ति जो अनेक पदार्थों को जान रहा है किन्तु अपने उपयोग को दूसरी तरफ़ नहीं जाने देता एकाग्री है। परन्तु वह जो एकही पदार्थ को जान रहा है लेकिन अपने उपयोग को बदलता रहता है—एक समय यदि किसी पदार्थ को जानता है तो दूसरे समय किसी अन्य को—, एकाग्री नहीं हो सकता।

यदि एकाग्रता का सम्बन्ध एक ही ज्ञेय के साथ रक्खा जायगा तब तो कोई भी ज्ञान एकाग्र न हो सकेगा, क्योंकि कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जिसको कि एक ही ज्ञेय—एक ही दृष्टि से ज्ञेय—कहा जा सके। जिसको अभी हम किसी दृष्टि से जानते हैं उसही को दूसरे समय दूसरी दृष्टि से। दृष्टान्त के लिये एक घड़े को ही ले लीजियेगा। भिन्न भिन्न समयों में भिन्न २ दृष्टियों से इसका भिन्न २ प्रकार का ज्ञान होता है। एक समय यदि इसके पेट की सुन्दरता को जानते हैं तो दूसरे समय इसके मुख की रचना विशेष को। यही बात प्रत्येक पदार्थ के सम्बन्ध में घटित की जा सकती है। ऐसा होने पर भी जब हम एक पदार्थ को एक ही ज्ञान द्वारा जानते हैं तब भी वे सब बातें

---

‡ संक्लेशांगतयैकाग्र चिंता चितांतरच्युता । पापंध्यानं यथा प्रोक्तं व्यवहारनयाश्रयात् ।
विशुद्ध्यंगतया चैवं धर्म्यं शुक्लं च किंचन । समनस्कस्य तादृक्षं नामनस्कस्य मुख्यतः ॥
उद्भूतकेवलस्यास्य सकृत्सर्वार्थवेदिनः । ऐकाग्र्यभावतः केचिदुपचाराद्वदन्तितत् ।
चिन्ता निरोधसद्भावोध्यानात्सोपि निर्बंधनं । तत्रध्यानोपचारस्ययोगे लेश्योपचारवत् ॥

श्लोक वार्तिक ९—४४

× क्वचिच्चिन्ता ध्यानं नियतविषयं पुन्सिकथितं । क्वचित्तस्याः कात्स्न्याद्विलयनमिदं सर्व विषयं ॥
क्वचित्किंचिन्मुख्यं गुणमपि वदन्ति प्रतिनयं । ततश्चित्यं सद्भिः परमगहनं जिनपतिमतं ॥

श्लोक वार्तिक ९—४४

उसमें प्रतिभासित होती हैं। इससे स्पष्ट है कि यदि एक ही ज्ञेय के ज्ञान को एकाग्र कहा जायगा तो यह एकाग्रता ही न बन सकेगी! यदि एक ज्ञेय से तात्पर्य एक समय में जाने जाने वाले पदार्थ या पदार्थों से है और उसही के सम्बन्ध में ज्ञान की दृढ़ता का नाम एकाग्रता है तब तो यह केवली के सम्बन्ध में भी युक्तियुक्त ही ठहरती है। केवली जिसको पहिले समय में जानते हैं वह तो उनका एक ज्ञेय हुआ और उनका ज्ञान अगले समयों में भी उसही ज्ञेय पर रहता है यह उनके ज्ञान की एकाग्रता है। इससे पाठक समझ गये होंगे कि पदार्थों के थोड़े या बहुत के जानने से एकाग्रता या उसका अभाव नहीं होता किन्तु विषय से विषयान्तर जाने से एकाग्रता का अभाव होता है तथा यह बात केवली के सम्बन्ध में लागू नहीं होती अतः उनके ज्ञान में एकाग्रता का अभाव और फिर उससे केवली में ध्यान का अभाव स्वीकार नहीं किया जा सकता! इससे प्रगट है कि ध्यान के साथ मनोपयोग की व्याप्ति नहीं। अतः इसही के आधार से केवली में मनोपयोग का प्रतिपादन युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता!

तेरहवें गुणस्थान में मनोयोग वास्तविक है, यह हम अपने १४ वें लेख में बतला चुके हैं। अतः यहाँ अब उसके सम्बन्धमें लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। साथ ही साथ इसही लेख में हम यह भी स्पष्ट कर चुके हैं कि मनोयोग और मनोपयोग ये दोनों भिन्न भिन्न हैं। अतः सयोग केवली में मनोयोग का अस्तित्व और फिर आखीर में उसका अभाव होने पर भी इससे केवली में मनोपयोग सिद्ध नहीं होता। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी की दूसरी बात भी—केवली में ध्यान की मौजूदगी भी—केवली में मनोपयोग को प्रमाणित नहीं करती!

[क्रमशः]

विवाह कितनी अवस्था में होना चाहिये ?

[स्व० सर गुरुदास बनर्जी बङ्गाल के ख्यातनामा विचारपति और विज्ञ बहुश्रुत लेखक थे। उनके एक उच्चकोटि के बङ्गला ग्रन्थ का अनुवाद "ज्ञान और कर्म" नाम से बम्बई की सुप्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर सिरीज से प्रकाशित हुआ है। हमें उस अनुवाद के देखने का सौभाग्य तब प्राप्त हुआ जब शारदा ऐक्ट को लेकर भारत के प्राचीन और नवीन विचार के लोगों में खूब संघर्ष होरहा था। हमने पुस्तक का कई बार स्वाध्याय किया। तब अनुभव किया कि पुस्तक के विवाह विषयक निबन्धों को संकलित कर समाचार पत्रों के द्वारा लेखमाला के रूप में जनता के सामने रक्खें; क्योंकि हमारी धारणा है कि हिन्दी भाषा में होने पर भी, उच्चश्रेणी का गम्भीर साहित्य होने के कारण, पुस्तक के सामाजिक मन्तव्यों की आवाज़ अभी जन साधारण तक नहीं पहुँच सकी है। आज कई वर्ष के बाद हम अपने विचार को कार्य रूप में परिणत कर सके। आशा है कि प्राच्य और पाश्चात्य दोनों पक्ष के सज्जन, दास बाबू के निष्पक्ष विचारों को चाव से पढ़ेंगे। —सम्पादक]

पाश्चात्य देश के लोगों की, और इस देश के समाज-संस्कारों की, राय में पूर्ण जवानी के पहले विवाह होना उचित नहीं है। आईन के अनुसार योरुप में साधारणतः कम से कम पुरुष का चौदह वर्ष की अवस्था में ब्याह होना चाहिए। ऐसे ही फ्रांस में पुरुष का १८ वर्ष की अवस्था में और स्त्री का १५ वर्ष की अवस्था में ब्याह हो सकता है। किन्तु इन सब देशों में ऊपर लिखी हुई अवस्था से अधिक अवस्था में ही अकसर ब्याह होते हैं। भारतवर्ष में, विवाह की अवस्था के सम्बन्ध में, शास्त्रों में पुरुष के लिए इतनी न्यून सीमा पाई जाती है कि द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) के बालक ८ वर्ष की अवस्था में जनेऊ हो जाने पर कम से कम ९ वर्ष और ब्रह्मचर्य के साथ वेद पढ़ने में बिता कर उसके बाद ब्याह कर सकते हैं।

इसके अनुसार पुरुष की विवाह योग्य अवस्था कम से कम १७ वर्ष की है। स्त्री के लिए, कहीं प्रथम रजोदर्शन के पहले ब्याह होने की विधि है और कहीं ८ वर्ष से लेकर १२ की अवस्था तक विवाह की अवस्था लिखी है। प्रचलित व्यवहार के अनुसार हिन्दू समाज में पुरुष के लिए कम से कम १४ वर्ष की अवस्था और स्त्री के लिए ९ या १० वर्ष की अवस्था विवाह के योग्य समझी जाती है। स्त्रियों का विवाह अधिक से अधिक १२ या १३ वर्ष की अवस्था में अवश्य हो जाता है। उनके लिए यह अवस्था उच्च सीमा है। भारतवर्ष में लौकिक विवाह की अवस्था न्यून सीमा, सन् १८७२ ई० के ३ आईन के अनुसार, पुरुष के लिए १८ वर्ष और स्त्री के लिए १४ वर्ष है।

बाल्य विवाह के प्रतिकूल युक्ति।

जो लोग बाल्यविवाह के, अर्थात् कमसिनी में विवाह के, विरोधी हैं वे अपने मत का समर्थन करने के लिए निम्नलिखित तीन बातें कहते हैं:—

(१) विवाह सम्बंध जैसा गुरुतर है और

उसका फलाफल जैसा दीर्घकाल तक रहने वाला है, उसे सोचकर देखते बुद्धि पक्की होने के पहिले किसी को भी उस तरह के सम्बन्ध बन्धन में बंधने देना उचित नहीं मालूम पड़ता।

(२) विवाह का प्रधान उद्देश्य है—उपयुक्त संतान पैदा करना। अतएव थोड़ी अवस्था में, अर्थात् देह और बुद्धि के पकने के पहले, व्याह करना उचित नहीं है। कारण माता पिता का शरीर और मन अगर पूर्णता को प्राप्त न होगा तो संतान की भी काया सबल और मन प्रबल नहीं हो सकेगा।

(३) संसार में जीवन संग्राम ऐसा कठिन होता आ रहा है कि थोड़ी अवस्था में व्याह करके स्त्री-पुत्र का बोझ सिर पर लाद लेने से, लोग अपनी उन्नति के लिए यथोचित चेष्टा नहीं कर सकते।

ये तीनों युक्तियां इतनी संगत और प्रबल हैं कि सुनते ही जान पड़ता है, इनका कुछ उत्तर नहीं है। और, जिन देशों में थोड़ी अवस्था में व्याह होने की रीति प्रचलित नहीं है उन सब देशों की ऐहिक उन्नत अवस्था के साथ बाल्य विवाह प्रथा के अनुगामी भारत की ऐहिक हीन अवस्था का मिलान करने से जान पड़ता है कि पूर्वोक्त युक्तियों के अनुकूल प्रचुर प्रमाण मिल गया। बस, उक्त युक्तियों के प्रतिकूल अगर कोई विज्ञ प्रवीण पुरुष भी कुछ कहना चाहता है तो वह अत्यंत भ्रांत जान पड़ता है, और उसकी बात एकदम सुननेके अयोग्य प्रतीत होती है। × ×

ऐसा होना विचित्र नहीं है। इस देश में एक समय बाल्यविवाह जिस ढङ्ग से प्रचलित था, उस में अनेक दोष थे और उससे बहुत कुछ अनिष्ट हुआ है। अतएव उस पर लोगों के मन में अश्रद्धा उत्पन्न होना स्वभाव-सिद्ध था।

उसके ऊपर इस देश की ऐहिक हीन अवस्था से होने वाले कष्ट थोड़ा बहुत सभी को भोगने पड़ रहे हैं, और वे सहज ही देखे जाते हैं। और यह कुफल इस देश की प्राचीन रीति नीति का ही है—बात चाहे सच हो या न हो, ऐसा ही बहुत लोगों का विश्वास है। उस प्राचीन रीति नीति का अगर कुछ सुफल हो, तो वह ऐहिक या वैषयिक नहीं है, आध्यात्मिक है, सब लोग उतने सहज में उसका अनुभव नहीं कर सकते। इसके सिवा लोग अपने मत के विरुद्ध रीति-नीतियों के दोष दिन रात बखान करके लोगों के मन को इतना अधीर बना देते हैं कि वे उस रीति नीति के कुछ गुण रहने पर भी उसकी ओर आंख उठा कर देखना नहीं चाहते। यह भी स्वाभाविक ही है।

प्राचीन रीति नीतियां भी समाज की अवस्था बदलने के साथ २ परिवर्तन योग्य हो जाती हैं। बस समाज संस्कारक लोग लोक हित के लिए उन्हें बदलने की चेष्टा करते हैं। सब ओर दृष्टि रखकर सब बातों के भले बुरे दोनों पहलुओं पर विचार करके चला जाय तो उस में बहुत धीरे चलना पड़ता है। इसी कारण वे एक देश दर्शी होकर वेग के साथ संस्कार की ओर अग्रसर होते चलते हैं। वे अपना कार्य करते हैं, और करेंगे, उसमें उनके साथ मेरा कोई विरोध नहीं है। उनसे मेरा केवल यही विनीत निवेदन है कि वे प्राचीन रीति नीतियों के दोषों को खोज करते समय उनके गुणों की

ओर से एक दम आंख न फेर लें। इसमें संदेह नहीं कि संसार निरंतर गतिशील है। कुछ भी स्थिर नहीं है। कोई सामने, कोई पीछे, कोई सुपथ में, कोई कुपथ में, इस तरह जगत के सभी पदार्थ चल रहे हैं। अतएव परिवर्त्तन का विरोध टिक नहीं सकता। किन्तु यदि कोई किसी वस्तु को सुमार्ग में चलाने की और उसे उसके गंतव्य स्थान में ले जाने की इच्छा करे, तो केवल उसकी गति का वेग बढ़ा देने से ही काम नहीं चलेगा, उसकी गति की दशा भी स्थिर रखनी होगी। चतुर सवार घोड़े के केवल कोड़े ही नहीं मारता चला जाता, साथ ही उस की लगाम को भी खींचता है। अतएव संस्कारक अगर केवल सामने देखने में ही लगा रहेगा तो काम नहीं चलने का—आगे पीछे और चारों ओर देख सुनकर सावधानी से चलना आवश्यक है।

इतनी बातें केवल इसी आशा से मैं ने कही हैं कि इन्हें स्मरण रखकर पाठकगण थोड़ी अवस्था में होने वाले विवाह के अनुकूल भी जो कुछ वक्तव्य है उस पर ध्यान देंगे। किन्तु सब के पहले ही कह देना उचित है कि कुछ दिन पहले इस देश में (यहां लेखक का मतलब केवल बङ्ग देश से है) समय २ पर जैसे बाल्यविवाह के दृष्टान्त देखे जाते थे (जैसे पांच छः वर्ष की बालिका के साथ दस बारह वर्ष के बालक का ब्याह) उनका अनुमोदन मैं नहीं करता। इस समय कोई भी नहीं करता, और जिस समय वैसे बाल्यविवाह कुछ कुछ प्रचलित थे उस समय भी शायद लोग केवल प्रयोजन के अनुरोध से उस तरह के विवाह करते थे। इसके सिवा उनका अनुमोदन कोई भी नहीं करता था। मैं जिस तरह के बाल्यविवाह के अनुकूल कुछ वक्तव्य बना रहा हूं वह उस तरह का बाल्यविवाह नहीं है, उसे थोड़ी अवस्था का विवाह कहना उचित होगा। वह थोड़ी अवस्था कन्या के लिये १२ से १४ वर्ष तक और वर के लिए १६ से १८ वर्ष तक समझनी चाहिए।

ऐसे विवाह को भी बाल्यविवाह कह सकते हैं। लेकिन बाल्यविवाह न कह कर उसको थोड़ी अवस्था का विवाह कहना ही अच्छा होगा। स्त्री की १४ वर्ष की अवस्था के बाद और पुरुष की १८ वर्ष की अवस्था के बाद होने वाले विवाह को बाल्यविवाह कह कर कोई दोष नहीं देता, और यह भी नहीं है कि वैसा विवाह भारतके लौकिक विवाह के आईन द्वारा अनुमोदित न हो। ×××

[क्रमशः]

भारत के शासक और जैनधर्म।

[लेखक—श्रीमान् बा० कामताप्रसाद् जी एम० आर० ए० एस०]

[क्रमागत]

[७]

पाण्डव और कौरव

कुरुजांगल देश के शासक कुरुवंशी क्षत्रिय थे। उनकी राजधानी हस्तिनापुर में थी। पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेव के समय में इस देश के शासक राजा श्रेयान् और सोमप्रभ थे। इस कल्पकाल में उन्होंने ही दानधर्म की परिपाटी चलाई थी। राजा सोमप्रभ का पुत्र जयकुमार

सम्राट् भरत का सेनापति था। जयकुमार का पुत्र कुरु था। कुरु प्रतापी राजा था। उसी के कारण यह क्षत्रिय वंश 'कुरु' और हस्तिनापुर के आसपास का देश कुरुजांगल कहलाने लगा था। इस कुरुवंश में अनेकानेक राजा हुए। चौथे चक्रवर्ती सम्राट् सनत्कुमार भी इसी वंश के भूषण थे। शान्ति, कुन्थु और अरह नामक तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती भी इसी वंश के पुरुष-रत्न थे, जैसे कि लिखा जा चुका है। उपरान्त इसी कुरुवंश में राजा धृतराज हुए, जिनकी अंबिका, अंबालिका और अंबा नामक रानियों से क्रमशः धृतिराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नामक पुत्र हुए। धृतिराष्ट्र की रानी गांधारी थी, जिनके नीति और पौरुष के भंडार दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए। राजा पांडु का विवाह कुन्ती से हुआ था और उनके पुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम थे। पांडु की दूसरी रानी मद्री थी। नकुल और सहदेव उसी की कोख से जन्मे थे। यह पाँचों ही भाई पर्वत के समान निश्चल थे और पांडु के पुत्र होने के कारण पाण्डव कहलाते थे। पाण्डु के स्वर्गवास होने पर दुर्योधन आदि कौरवों और पाण्डवों में राज्य के लिये टंटा हुआ। किन्तु भीष्म-विदुर आदि ने बीच में पड़कर उसको शान्त कर दिया। इस समझौते के अनुसार आधे राज्य के मालिक दुर्योधन आदि कौरव और आधे के पांचों पाण्डव हुए। इस प्रकार यह गृहकलह इस समय तो टल गई परन्तु इसकी आग कौरवों के हृदयों में दबी ही रही! आखिर अवसर पाकर वह धधक उठी। कौरवों ने उक्त प्रकार हुई सन्धि से असंतोष प्रगट किया। पाण्डवों ने भी कौरवों की यह अन्याय घोषणा सुनी। धर्मराज युधिष्ठिर ने तो उसे सुनी अनसुनी कर दिया, किन्तु शेष चारों पाण्डव यह सुनकर बहुत ही कुपित हुए। युधिष्ठिर ने उन्हें भी शान्त कर दिया।

किन्तु कौरवों को पाण्डवों की यह शान्ति सहन न हुई। वह और भी उद्धत हो गये। गुप्त मंत्रणा करके कौरवों ने पाण्डवों के महल में आग लगवा दी। पाण्डवों का पुण्य यहाँ भी उनका सहायक हुआ। वे सुरङ्ग के रास्ते से निकल कर बाल बाल बच गये! इस द्वेषानल को और अधिक न भड़काने के लिये वे देश छोड़ विदेश चले गये। वे जहां गये वहां उनका आदर-सत्कार हुआ और सबही भाइयों के विवाह भी हो गये। कांपिला-नगरी में अर्जुन ने राजा द्रुपद की कन्या द्रौपदी से स्वयंवर में वरमाला प्राप्त की थी। यहीं पर कौरव पांचों भाइयों से आकर मिले थे। कौरव-पाण्डव मिलकर हस्तिनापुर पहुँचे और सुख शांति से कालक्षेप करने लगे।

पाण्डवों के वैभव ने पुनः कौरवों के हृदयों में डाह उत्पन्न कर दिया। आखिर कौरवों और पाण्डवों ने जुआ खेलने की ठानी। पाण्डव जुए में हार गये और कौरवों ने उन्हें देशनिकाले की आज्ञा सुनाई! सत्यव्रत युधिष्ठिर ने उसे शिरोधार्य किया और वे पाँचों भाई एक बार फिर अपने देश को छोड़ कर चल दिये। राम-लक्ष्मण की तरह बारह वर्ष का बनोवास उन्होंने स्वीकार किया। इस बनोवास में पाँचों पाण्डव सारे भारत में घूमे और जहाँ २ वे पहुँचे वहाँ २ लोगों का उन्होंने उपकार किया। बारह वर्षोंके पूरे होने के समय वे द्वारिका पहुँचे। यादवों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। पांच यादव कन्याओं से उनका विवाह हो गया।

बनोवास की अवधि पूरी हो चुकी थी। यादवों ने इस बात का प्रयत्न किया कि कौरव अन्याय को छोड़कर पाण्डवों का राज्य उन्हें वापस दे दें। किन्तु अन्यायी कौरव किसी बात पर राज़ी न हुये। हठात् पाण्डवों और कौरवों का महायुद्ध हुआ, जो 'महाभारत' के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में भारत के प्रायः सबही राजाओं ने भाग लिया था। महा प्रचंड युद्ध हुआ था और उसमें दोनों ओर के बड़े २ योद्धा काम आये थे। युधिष्ठिर का धर्मपक्ष था। अतः अन्त में उन्हीं की विजय हुई। अर्जुन हस्तिनापुर में रह कर धर्मराज्य करने लगे और युधिष्ठिर ने दक्षिण मथुरा को प्रयाण किया जहां वह शासनाधिकारी हुये।

उस समय बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमि विहार करते हुये पल्लवदेश में पहुँचे थे। पांडवों ने भी यह बात सुनी और वे सब भगवान की बन्दना करने गये। भ० अरिष्टनेमि के श्री-मुख से पाण्डवों ने धर्मका स्वरूप और अपने पूर्व भव सुने जिन्हें सुनकर पाण्डवों को वैराग्य हो गया। पांचों पाण्डवों ने भ० अरिष्टनेमि से साधुओं के व्रत ग्रहण किये। कुन्ती, द्रौपदी आदि भी आर्यिका हो गईं। शत्रुञ्जय पर्वत पर पाँडवों ने घोर तप तपा और वे सिद्ध परमात्मा होगये।

इस प्रकार कौरव—पाण्डवों का वर्णन है। कौरवों ने अधर्म पर कमर कस कर अपना नाश किया और पाण्डवों ने धर्मपक्ष ग्रहण करके अपने को अमर कर लिया। कौरवों को आज भी कोई भला नहीं कहता और पाण्डवों को उस समय की प्रजा ही नहीं आज भी जनता धर्मात्मा शासक कहकर याद करती है। भारत के हर प्रान्त में पाण्डवों की स्मृति को बताने वाले खण्डहर और स्मारक मिलते हैं और शत्रुञ्जय पर्वत पर उनके पवित्र चरण आज भी दर्शक को धर्म का महत्व हृदयङ्गम कराते हैं! धन्य हैं वीर शासक पाण्डव!

[क्रमशः]

---

* स्वास्थ्य *

(बंगला लेख से अनुवादित)

[अनु०—पं० मौजीलाल जी परवार, कुचामन]

[गताङ्क से आगे]

खाद्य—जिस तरह इञ्जनके चलानेके लिये कोयला आवश्यक है उसी तरह शरीर रक्षा के लिये खाद्य—भोजन—की आवश्यक्ता है। कोयला अग्नि की सहायता से जैसे ताप उत्पन्न करके जल को वाष्प बना डालता है और उसी वाष्प से फिर इञ्जिन में एक प्रचण्ड शक्ति आ जाती है। खाद्य भी उसी तरह शरीर में अनेक तरह की जटिल रासायनिक क्रियाओं के द्वारा दो रूप में विभक्त होता है। उनमें जो अजीर्ण अंश रहता है वह तो मल के रूप में परिणत होता है और जो जीर्णांश है वह खून के साथ मिलता है और फिर शरीर के सब स्थानों में परिचालित होकर वह शरीर के गठन कार्य में उपादान होता है।

भूख व भोजनासक्ति सब जीवों में होती है, इसका न होना हानिकारक है। कारण आहार के सिवा शरीररक्षा नहीं हो सकती, पर अधिक आसक्ति बुरी है। हम जानते हैं कि सीमा से अधिक आहार करने से बहुत जल्दी बुरा फल होता है—बहुत आहार पेट में गड़बड़ कर देता है और इसका भावी फल तो बहुत ही हानिकारक होता है। उससे बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं: जैसे—अजीर्ण उदरामय, मन की अप्रसन्नता और अनिद्रा।

आहार का सबसे साधारण नियम यह है कि उदर को तीन भाग आहार से पूर्ण करके एक भाग वायुसञ्चालन के लिये खाली रख छोड़े।

पीने योग्य—सब तरह के पीने योग्य पदार्थों में जल ही प्रधान और प्रकृतिप्रदत्त है। हमारा शरीर दस भाग में नौ भाग जल से पूर्ण है। इसीलिए शरीर का उपादान जल है। वह वाष्परूप होकर श्वासोच्छ्वासके साथ और त्वक् से पसीना होकर तथा शरीर से प्रस्राव होकर प्रतिदिन निकलता रहता है। इस तरह जल का शरीर से निकलना और उसमें उसकी कमी होना इसका अनुभव प्यास से होता है। हमें प्यास तब लगती है जब शरीर में जल की कमी होती है; इसलिए तृषा दूर करने के लिए जल का पीना उचित है। परन्तु पीने का जल निर्मल और शुद्ध होना चाहिए। कारण पवित्र जल के न पीने से अनेक तरह के रोग पैदा होते हैं।

वायु—पृथ्वी वायु से वेष्टित है। मछली आदि जलजन्तु जैसे जल में डूबे रहते हैं, उसी तरह हम भी वायु में डूबे हुए हैं। जलरहित जगह में जैसे मछली जी नहीं सकती, ठीक वैसे ही हम वायु रहित जगहमें कभी नहीं जी सकते। इसी वायु का व्यवहार हम प्रति दिन श्वासोच्छ्वास के रूप में करते हैं। वायु का एक उपादान आक्सिजन वाष्प है। यही आक्सिजन श्वास के साथ साथ फुफ्फुस या फेफड़े में आकर और खून के साथ मिलकर सारे शरीर में बहता है। फिर रक्त से कार्बोनिक एसिड (हिंसक वायु) वाष्प आदि सब दूषित पदार्थ श्वासवायु के साथ शरीर से निकलते हैं। इसी तरह से वायु रक्त को शुद्ध करता है। वायु के दूषित होने से रक्त दूषित होता है और फिर उसमें बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए स्वास्थ्य रक्षा के लिए शुद्ध वायु का सेवन करना जरूरी है।

व्यायाम व शारीरिक परिश्रम—अङ्ग और प्रत्यङ्ग का संचालन जरूरी है, क्योंकि उनका संचालन न होने से वे पुष्ट नहीं होते और उनके पुष्ट न होने से फिर वे अपना अपना कार्य भी ठीक रीति से नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि धीरे धीरे फिर स्वास्थ्य खराब हो जाता है। व्यायाम या शारीरिक परिश्रम करना जरूर चाहिए, पर अपनी शक्ति के अनुसार। शक्ति से अधिक परिश्रम का या व्यायाम का फल भी स्वास्थ्य को हानिकारक है। शारीरिक परिश्रम अंतड़ियों को मूत्राशय को और त्वचा को मैल दूर करने के लिए उत्तेजित करता है और उन्हें निरोग और शक्तिशाली बनाता है अर्थात् परिश्रम से पसीना आता है और उससे उक्त अवयवों का मैल दूर होता है तथा उक्त अवयव बलवान बनते हैं। शारीरिक परिश्रम के द्वारा पाकस्थान, खून के

संचालन का यंत्र और फेफड़ा उत्तेजित होता है, उससे भूख बढ़ती है, शरीर पुष्ट होता है, सब अङ्ग और प्रत्यंग पूर्ण होते हैं और कष्ट सहने की शक्ति बढ़ती है।

व्यायाम उस तरह करना उचित है जिससे अंग प्रत्यंग का समुचित संचालन हो और जिस व्यायाम से एक ही अंग में क्रिया हो और दूसरों में एक बार भी न हो तो वह शरीर के लिये सुखकर नहीं होता। व्यायाम का परिमाण सबके लिये समान नहीं है, किन्तु इसका निश्चय अपने शरीर की अवस्था पर से करना चाहिये। साधारण परिमाण यह समझना चाहिये कि जब कष्ट जान पड़ने लगे तब व्यायाम करना छोड़ देना उचित है।

विश्राम व निद्रा—स्वास्थ्य के लिए जैसे परिश्रम की आवश्यकता है वैसे ही विश्राम की भी आवश्यकता है। निद्रा ही विश्राम का उत्तम और स्वाभाविक उपाय है। हम दिन में काम करते हैं, उससे हमारे शरीर में जो हानि होती है उसकी पूर्णता रात्रि में नींद लेने से होती है। शरीर के लिये जैसे विश्राम की आवश्यकता है उसी तरह मन के लिये भी है। मानसिक वृत्ति को निरन्तर चलाते रहने से देह और मन दोनों ही शिथिल और शून्य हो जाते हैं। स्वास्थ्य के उक्त नियमों को सदा ध्यान में रखना उचित है। इनके विरुद्ध कार्य करने से दुःख उठाना पड़ता है।

मि० एनीबीसेंट के शिक्षा संबंधी मूल सिद्धात।

[लेखक—पं० प्रवीण चन्द्र जी शास्त्री]

शिक्षा के सिद्धान्त यों तो मनुष्य जाति के लिये समान रूप से लागू होते हैं, पर उनके प्रयोग की रीतियां, काल और स्थान के अनुसार होती हैं। प्राकृतिक प्रेरणाओं के साथ शिक्षा देनी चाहिये, इस सिद्धान्त को मानने के पश्चात् हमें इसका उपयोग करने में पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये जिससे हम शिक्षा के उत्तम से उत्तम प्रकारों को ढूंढ सकें। प्राकृतिक नियमों का अनुसरण करने से एक बालक के युवावस्था तक पहुँचने में जो विकास होगा हम उसमें सुविधा पहुँचायेंगे। इस तरह शिक्षा एक आडम्बर और बोझ होने की अपेक्षा एक निश्चित विज्ञान का रूप धारण कर लेगी और बालकों की प्राकृतिक शक्तियों के विकास में और उपयोग में पूरा २ हाथ बटायगी। आनन्द जीवन-शक्ति का वर्धक है और दुख उसका नाशक है। प्रेम सदाचार की ओर झुकाता है। क्रूर शक्तियों का ह्रास करके घृणा उत्पन्न करता है, इसलिये बालक के सन्मुख चाहे वह घर में हो, पाठशाला में हो अथवा महाविद्यालय में, आनन्द और प्रेम का वातावरण छाया रहना चाहिये।

मानव आत्मिक शक्ति को ज्ञान, भावना और कार्यों के द्वारा बाह्य संसार में प्रगट करता है; इसलिये बालकों की शिक्षा बुद्धि, भावना और कर्मशीलता को उत्तेजित करने वाली होनी चाहिये, अर्थात् उसकी शिक्षा धार्मिक, मानसिक आचार सम्बन्धी और शारीरिक होनी चाहिये। वह शिक्षा

जो इन चारों अंगों में से एक भी अंगकी अवहेलना करती है अपूर्ण और अवैध है. और इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य उन सब शक्तियों के विकास से वंचित रहता है जो समाज के लिये उपयोगी हैं।

'समाज' शब्द हमें ध्यान दिलाता है कि शिक्षा किसी मनुष्य के लिये व्यक्तिगत रूप से नहीं दी जानी चाहिये, बल्कि व्यक्ति समाज से पृथक् नहीं है, वह तो उसके आधीन है. ऐसा मानकर हमें शिक्षा की आयोजना करनी चाहिये। समाज परस्पर सम्बद्ध व्यक्तियों का समूह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के स्थान और कार्य निश्चित हैं, जिनका ठीक तरह से उपयोग और प्रयोग सारे समाज की उन्नति के लिये होता है। इस लिये बालकों को भावी नागरिक मान कर और तदनुसार सामाजिक कर्तव्य और उत्तरदायित्व का ध्यान में रख कर घर और बाहर (स्कूलों कालिजों में) शिक्षा दी जानी चाहिये, जिससे वे अपनी मातृभूमि के प्रति कर्तव्य और उत्तरदायित्व को समझने लगें, और जिससे आगे चलकर संसार की अधिक से अधिक सेवा कर सकें। हमें उन में कर्तव्य की भावना जागृत करनी चाहिये, उन को बताना चाहिये, कि मातापिता, भाई बहन और परिजनों का उन पर कितना ऋण है और उन्होंने उनको आनन्दित रखने में क्या २ भाग लिया है? उन्हें यह बतला कर कि उनके विचार, भावनाओं और कार्यों का स्वयं पर तथा समाज पर पूरा प्रभाव पड़ता है, उत्तर दायित्व के भाव को उनमें जागृत करना चाहिये। इन सिद्धान्तों की मौखिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, वरन् इनको माता पिताओं और अध्यापकों को पूरी तरह से समझ कर प्रयोग में लाना चाहिये, जिन्हें देखकर बालक स्वयं सीख जायँ।

शिक्षा में दो बातों का पूरा ध्यान रखना चाहिये—१. जीवन का विकास और २ परिस्थिति। पहली बात को ध्यान में रखने से एक व्यक्ति की सारी नैसर्गिक शक्तियां विकसित होंगी और इस तरह उसका व्यक्तित्व बहुत कुछ बढ़ जायगा, और दूसरी से घर, विद्यालय, नगर, प्रांत, देश और इतना ही नहीं मानव-जाति से अपने सम्बन्ध का ज्ञान हो जाने से उसका कार्यक्षेत्र बढ़ जायगा। यह सिद्धान्त सब देशों और सब कालों के लिये समान है।

अब शिक्षाके प्रत्येक विभागके कार्य पर विचार करना है—

धार्मिक शिक्षा—इसका ध्येय संस्कारों की पुष्टि को रोकने वाली बाधाओं को हटाकर, ईश्वर और मानव जाति के प्रति प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना है। इससे मनुष्य अपने आपको समाज से पृथक नहीं समझ पाता, जो सारी बाधाओं की जड़ है।

मानसिक शिक्षा—इसका कार्य बुद्धि का विकासन है; इसके द्वारा निरीक्षण, स्मृति, योजना, तर्क, निश्चय, विचारों की परिपक्वता और उनका धाराप्रवाही प्रकाशन बढ़ते रहते हैं। इसका राजनीतिक भाग यह है कि इससे समाज के अब तक के विकास का ज्ञान हो जाता है और आगे उन्नति मार्ग पर चलने के लिये दिव्य दृष्टि मिल जाती है।

आचार सम्बन्धी शिक्षा—इसके द्वारा भावना शक्ति का विकास होता है। समाज के द्वारा जिस आदर्श का निश्चय हो जाता है उसको प्राप्त करने

के लिये इसके द्वारा इच्छाशक्ति भावना और कार्य शीलता प्राप्त होती है। इससे सारे बौद्धिक कार्यों में निश्चितता और सत्यनिष्ठता आ जाती है। और राजनैतिक दृष्टि से सारे सामाजिक गुणों का, कर्तव्य और उत्तरदायित्व की भावना का इसमें अन्तर्भाव हो जाता है।

शारीरिक शिक्षा—इसके द्वारा शरीर के अङ्गों और उपांगों, एक एक जोड़ का विकास होता है। इससे संगठित और संयत शरीर प्राप्त होता है जो सारी धार्मिक, मानसिक और आचार सम्बंधी शिक्षाओं का साधन है। यह सारी शिक्षाएं शारीरिक स्थिति के अनुसार ही कार्य कर पाती हैं। राजनैतिक दृष्टि से मनुष्य की सेवा कार्य में, सब अवस्थाओं में यह शिक्षा उपयोगी है।

कीन्स कालिज में जैन कोर्स

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ ने अपने हस्तिनागपुर के अधिवेशन में, क्वीन्स कालिज बनारस में जैन कोर्स प्रविष्ट कराने के लिए एक प्रस्ताव पास किया था। तदनुसार संघ के जनरल सेक्रेटरी पं० राजेन्द्रकुमार जी ने कालिज के रजिष्ट्रार से लिखा पढ़ी की और एक जैन कोर्स बनाकर भेजा जो जैन दर्शन अङ्क प्रथम में प्रकाशित हो चुका है। संघ की प्रार्थना पर ध्यान देते हुए संयुक्त प्रान्तीय सरकार की शिक्षा विभागीय सिन्डीकेट ने जैन कोर्स को तैयार करने के लिए एक सब कमेटी गत वर्ष निश्चित कर दी थी। गत आश्विन मास में श्वेताम्बर विद्वान पं० सुखलाल जी जैन दर्शनाध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, भी रजिष्ट्रार से मिले और उन्होंने श्वेताम्बर तथा दिगम्बर साहित्य का सम्मिलित पठन क्रम बनाकर कमेटी के पास भेजा। गत २९ जनवरी को कोर्स कमेटी की मीटिंग क्वीन्स कालिज के प्रिंसिपिल के कमरे में ११ बजे से प्रारम्भ हुई। श्वेताम्बरों की ओर से पं० सुखलाल जी को तथा दिगम्बरों की ओर से मुझे कमेटी ने आमंत्रित किया था। सर्व प्रथम प्रिंसिपिल महोदय ने प्रस्ताव रक्खा जिसका आशय था कि दिग० और श्वे० साहित्य का सम्मिलित पठनक्रम बनाया जाए। मैं ने इसका विरोध किया और कम से कम शास्त्री परीक्षा का कोर्स जुदा २ बनाने पर ज़ोर दिया, किन्तु सबकी सम्मति सम्मिलित कोर्स के पक्ष में होने से सम्मिलित कोर्स बनाना तय हुआ। शास्त्री और आचार्य कक्षा का कोर्स ही बनाया गया है, क्योंकि क्वीन्स कालिज में किसी ख़ास दर्शन की पृथक् मध्यमा नहीं है। सर्व दर्शनों की एक ही मध्यमा परीक्षा होती है। मैं ने दर्शन मध्यमा में एक जैन ग्रन्थ रखवाने का प्रयत्न किया, किन्तु कुछ आन्तरिक कारणों से अभी उस विचार को स्थगित करना उचित समझा गया। इस कोर्स में प्रायः सभी मुख्य २ दिगम्बर ग्रंथ आ गये हैं। एक दो ग्रन्थ रखने योग्य होने पर भी स्थान की कमी से फ़िलहाल नहीं रक्खे जा सके। इस पठनक्रम पर डाइरेक्टर के हस्ताक्षर होने से यह स्वीकृत समझा

आयेगा। संभवतः १९३६ से परीक्षा प्रारम्भ होगी। जैन विद्यालयों को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए। पठनक्रम निम्न प्रकार है :—

जैनदर्शन शास्त्री

प्रथम वर्ष

[१]

	पूर्णाङ्क
१. आप्त परीक्षा	२०
२. प्रमाण मीमांसा (श्वे०)	२०
३. सप्तभंगी तरंगणी	१०
	कुल ५०

[२]

१. सर्वार्थसिद्धि	२५
२. सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र (श्वे०)	२५
	कुल ५०

द्वितीय वर्ष

[१]

१. स्याद्वाद मंजरी (श्वे०)	२५
२. जैन तर्क परिभाषा (श्वे०)	२५
	कुल ५०

[२]

१. प्रवचनसार पंचास्तिकाय	२५
२. गोम्मटसार जीवकांड	२५
	कुल ५०

तृतीय वर्ष

[१]

१. प्रमेय कमल मार्तंड पूर्वार्द्ध	३०
२. राजवार्तिक १ अध्याय	२०
	कुल ५०

[२]

१. प्रमेयकमल मार्तंड उत्तरार्द्ध	५०
	कुल ५०

जैनदर्शन आचार्य

प्रथम वर्ष

[१]

१. सूत्र कृतांग—प्रथम श्रुतस्कंध (श्वे०) भगवती सूत्र—गोशालक अधिकार (श्वे०)	२५
२. कर्मकांड	२५
	कुल ५०

[२]

१. सम्मति तर्क—द्वितीय कांड (श्वे०)	२५
२. स्याद्वाद रत्नाकर—प्रथम परिच्छेद (श्वे०)	२५
	कुल ५०

द्वितीय वर्ष

[१]

१. तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक प्रथम अध्याय	३०
राजवार्तिक २, ४ और ५ अध्याय	२०
	कुल ५०

[२]

१. ज्ञान बिन्दु (श्वे०)	१५
२. नयामृत तरंगणी (श्वे०)	२०
३. न्यायालोक (श्वे०)	१५
	कुल ५०

तृतीय वर्ष

[१]

१. अष्ट सहस्री	५०
	कुल ५०

[२]

१. शास्त्रवार्ता समुच्चय—यशोविजयकृत टीका (श्वे०)	५०
	कुल ५०

नोट—जिन ग्रन्थों के आगे (श्वे०) ऐसा निशान छपा है वे श्वेताम्बर ग्रन्थ हैं।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री।

* समाचार-संग्रह *

—बारोसाल (बंगाल)में सितम्बर का मालिया टैक्स न दे सकने के कारण ३५० आगोरें नीलाम कर दी गईं।

—कलकत्ता कार्पोरेशन की रिपोर्ट से पता चलता है कि पर्दा प्रथा के कारण मुसलमान स्त्रियां अधिक मरती हैं।

—जबलपुर से १२ मील दूर एक तालाब में एक आदमी बतखों का शिकार खेलने गया, किन्तु कीचड़ में फंसकर खुद मर गया।

—मुसल्मान काश्मीर में फिर गड़बड़ करने के लिये तय्यारी कर रहे हैं।

—मदुरा के पास एक ज़हरीली घास खा लेने के कारण १४ जंगली हाथी मर गये।

—पाँच तथा दस रुपये के नोटों का पतला काग़ज़ होने से उन्हें बन्द कर दिया जायगा।

—वाइसराय मई में छुट्टी पर जावेंगे। उनके स्थान पर मद्रास गवर्नर काम करेंगे।

—लाहौर म्युनिस्पैलिटी ने भीख मांगना अपराध क़रार दे दिया है।

—पैकसाही (भारतवर्ष) में खजूर का एक वृक्ष है, जो २४ घण्टे में एक बार पृथ्वी पर गिर पड़ता है। रात के २ बजे से दोपहर तक वह पेड़ ज़मीन पर पड़ा रहता है और दिन के १२ बजे से रात के १२ बजे तक खड़ा रहता है।

—ब्रिटिश सरकार को इस साल ३६ करोड़ की आमदनी हुई है खर्च ४६ करोड़। इस तरह १० करोड़ का घाटा हुआ। गत वर्ष घाटे की रक़म ६५ करोड़ थी!

—जेसी (रूमानिया) में एक बालकको स्वप्न आया कि वह अन्धा हो गया है। सुबह सो कर उठा तो वह अन्धा था।

—जापान में नाचने वाले चूहों की एक किस्म है, जो अपने पिछले पैरों पर एक साथ ३१६ बार बिना ठहरे घूम सकते हैं।

—दुनिया में सोने का सब से बड़ा सिक्का जापान का है। सिक्के का नाम 'ओबन' है। उसकी लम्बाई ५ इञ्च व वज़न ४ औंस है।

—ट्रिनीडाड में क्लीफर्ड रिचर्डसन नामक एक प्रोफ़ेसर हैं। उनकी लड़की, बहन, माता और दादी की अंगुलियों में बारह २ अंगुलियाँ हैं। बहन के तो पैर में भी १२ अंगुलियाँ हैं, केवल एक भाई के ११ अंगुलियाँ हैं।

—ऐसा प्रकाशित हुआ है कि सारे संसार की क़ब्रों में मुहम्मद पैगम्बर साहब की क़ब्र ही सबसे अधिक मूल्यवान है। क्योंकि उस पर २० लाख पौंड के मूल्य के हीरे जवाहरात जड़े हैं।

—जर्मनी में एक प्रकारकी लकड़ी से भी शकर बनाई जाने लगी है।

—लंकाशायर वालों ने एक ऐसा कपड़ा बनाया है, जो बिलकुल काँच की तरह होता है।

—वियना में एक ऐसी घड़ी बनाई गई है, जो संसार में सबसे बड़ी है। कहा जाता है कि उसके दोनों काँटे ही डेढ़ मन वज़न के हैं।

—पेरिस एक्सप्रेस भारी कुहरे के कारण दूसरी एक्सप्रेस से टकरा गई जिससे १८० यात्री मर गये ३०० घायल हुए।

—ब्रिटिश अजायबघर लन्दन के लिये एक

Regd. No. A. 2379.

पुरानी बाइबिल रूस सरकार से दश लाख पौंड में खरीदी गई है।

—लंडन में एक पागल आदमी को पागलखाने से छोड़ दिया गया जिससे उसने अपने घर आकर सब आदमियों को मार दिया।

—यूरोप में बहुत सर्दी पड़ रही है; टेम्स और राईन नदी का पानी जम गया है। पेरिस की एक सड़क पर ६ फीट मोटी बर्फ जम गई है।

—जर्मनी में भावी सन्तान सुधार के विचार से, मृगी आदि रोगग्रस्त चार लाख आदमी [illegible] (नपुंसक) बनाये जावेंगे, जिससे वे रोगी, निर्बल सन्तान उत्पन्न न कर सकें।

—बर्मिंघम में एक ५ फीट कद वाले मनुष्य के साथ पौने तीन फीट ऊंची स्त्री का विवाह हुआ है।

—अमेरिका के जोज़ेफ् वेम्स औपन्यासिक विद्वान सिगरेट पीते २ सो गये। सिगरेट से उनके कपड़ों में आग लग गई, जिससे वे मर गये।

—रूसकी सरकार ने अपने एक कारीगर से केवल सात मास में सबसे बड़ा हवाई जहाज़ बनवाया है जिसमें १२८ आदमी बैठ सकते हैं।

—स्वीडन के स्टाकहल्म स्थान में एक ६ वर्ष की लड़की गणित में पूर्ण विदुषी है।

—इङ्गलैण्ड में मोटर दुर्घटनाओं से प्रति वर्ष ७००० मनुष्य मर जाते हैं।

—पोर्ट इलिज़ावेथ (केप प्रांत) अफ्रीका में एक आदमी ४० साल से नहीं सोया। एक दिन उसे गवाही देने के लिये अदालत जाना पड़ा। पेशी होने में देर थी, इस लिये वह एक बेंच पर लेट कर सो रहा। मामूली आवाज़ों पर जब वह न बोला तो उसे ज़ोर से झंझोड़ कर जगाया गया।

—जेकोबाबाद सब से ज़्यादा गरम स्थान है।

—सबसे बड़ा (रेगिस्तान सहरा) अफ्रीका में है। उसकी लम्बाई ३००० मील और चौड़ाई ९०० मील है।

—सबसे गहरी कोयले की खान बेलजीयम में है; वह ३५४२ फीट गहरी है।

—अमेरिका में एक नये प्रकार के "अलार्म क्लाक" का आविष्कार किया गया है, जो बजता बजता चाय भी तैयार कर देता है।

—सनफ्रान्सीसको (अमेरिका) में १००० आदमियों के पीछे ४० टेलीफोन हैं।

—जेफरसन सिटी के अजायबघर में जूतियों का एक जोड़ा है, जिसका माप २२ इञ्च है। जूतियों का जोड़ा एक स्त्री का बतलाया जाता है, जिसकी ऊंचाई ८ फीट ४ इञ्च थी।

—अमेरिका की कुछ छोटी-मोटी रियासतों ने अपने यहां काठ के सिक्के चलाए हैं। उनका कहना है कि इससे बड़ा लाभ है। कहते हैं कि नेलसन नामक एक व्यक्ति का कोट नदी में गिर पड़ा। कोट की जेब में सिक्के थे। लकड़ी होने के कारण वे तैरने लगे और उसने उन्हें प्राप्त कर लिया। अगर वह चांदी सोने या काग़ज़ के होते तो न मिलते?

—लिवरपूल में एक दुकानदार ने नमक का एक डला तोड़ा तो उसमें से एक शिलिंग, एक सोने का छल्ला, एक ६ पैंस का सिक्का, एक हाफ् क्राउन और एक चाकू बरामद हुए।

—व्हेल मच्छली की उम्र ५०० वर्ष होती है, कछुए की १०० वर्ष।

—जापान में ऐसे-ऐसे वृक्ष हैं जिनकी ऊँचाई तो २-२॥ फीट से अधिक नहीं होती, मगर आयु २०० से ३०० वर्ष तक होती है।

मुन्शी जयरामसिंह ने "चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर में छपाकर प्रकाशित किया।

तारीख १ मार्च सन् १९३४ ई०

श्री जिनाय नमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र ।

वर्ष १ अङ्क १६

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी । —ऑनरेरी सम्पादक— पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी ।

हार्दिक धन्यवाद !

"जैन दर्शन" के प्रेमियों ने "दर्शन" को निम्न प्रकार सहायता देकर अपना प्रेम प्रकट किया है जिसके लिये धन्यवाद है । आशा है अन्य दानी श्रीमान् भी अनुकरण करेंगे :—

१००) साहू चंडीप्रसाद जी, धामपुर ज़िला बिजनौर

१०) ला० वासुदेव प्रसाद जी रईस टूंडला (आगरा)

२) ला० सम्पतराय शेरसिंह जी जैन, सरधना (मेरठ)
[पुत्र विवाहोत्सव समय]

३) दि० जैन ओसवाल संघ, मुलतान

—प्रकाशक ।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

"जैनदर्शन" की आवश्यक सूचनायें!

(१) "जैनदर्शन" का प्रकाशन हर महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख़ को हो जाता है।

(२) इस का वार्षिक मूल्य केवल २॥) है, किन्तु संघ के मेम्बरों से वार्षिक मेम्बरी फ़ीस सहित ३) एवं संस्थाओं तथा विद्यालयों से केवल २) लिया जाता है। [इस वर्ष उपहारी पुस्तकों के पोस्टेज के लिये प्रत्येक से ≈) और अधिक लिया जा रहा है।]

(३) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय, मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २-२ प्रतियाँ "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद जैन विद्यालय भदैनी घाट बनारस" के पास और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/o "चैतन्य" प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहियें।

(४) इस पत्र में अश्लील व धर्म-विरुद्ध विज्ञापन नहीं छापे जाते। इसी कारण विज्ञापन छपाने के रेट बहुत कम रक्खे गये हैं, जो निम्न प्रकार हैं। इनमें किसी प्रकार की कमी करने के लिये लिखना व्यर्थ होगा। कुल रुपया पेशगी लिया जाता है, अतः कृपया विज्ञापन के साथही कुल रुपया भेजिये:—

	एक बार	३ मास (६ बार)	एक वर्ष (२४ बार)
१. साधारण पूरा पृष्ठ	४)	२०)	७२)
२. साधारण आधा पृष्ठ	२॥)	१२॥)	४५)
३. टाइटिल पूरा पृष्ठ (पृष्ठ २-३-४)	६)	३०)	१००)
४. टाइटिल आधा पृष्ठ	४)	२०)	६०)

नोट—मुख पृष्ठपर विज्ञापन छपाई केवल आधे ही पृष्ठकी ५) ली जाती है। साधारण पृष्ठोंमें आधे पृष्ठ कम जगह के विज्ञापनों पर ।) प्रति लाइन प्रति कालम के हिसाब से चार्ज किया जाता है।

सर्व प्रकार के पत्र व्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैनदर्शन" C/o. दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोम्ररश्मिर्भूमीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ } बिजनौर, फाल्गुण शुक्ला १५—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० { अङ्क १६

धनिक सम्बोधन !

यदि पूर्वभव में आपने दान देकर धन का सदुपयोग न किया होता तो क्या आपको निश्चय है कि आज आपके पास यह वैभव होता ? आपने पहले समय धन का सदुपयोग किया, उसी का फल अब इस भव में आपको प्राप्त हुआ है। अब भविष्य के लिये आपका क्या विचार है ?

यदि आप भविष्य में भी सुखसाधन पाना चाहते हैं तो आपको तदनुकूल कार्य करना चाहिये, क्योंकि आपको स्वयं इस बात का विश्वास नहीं कि आपकी जीवनलीला कब समाप्त हो जावे और न आपको यह ही निश्चय है कि किस दिन आप इतर साधारण जनता के समान इस विनश्वर वैभव से हाथ धो बैठें।

तब जितना शीघ्र हो सके इस सम्पत्ति द्वारा आपको कोई सुकृत कार्य कर डालना चाहिये। देखिये आपके सामने कितने आवश्यक कार्य पड़े हुए हैं—

१—विश्वकल्याणकारी जैनधर्म केवल १२ लाख मनुष्यों में ही परिमित है। इस कारण कुछ जैनधर्म के प्रचार के लिये ख़र्च कीजिये; जनता की मांग है कि हमको सत्य पथ दिखलाओ।

२—हमारे ऋषिवरों ने बड़े परिश्रम से संसार का हितसाधन करने वाले अपूर्व ग्रन्थों की रचना की है किन्तु वे अभी तक अंधेरे भंडारों में निवास कर रहे हैं। क्या आप उनको प्रकाश में लाकर संसार का भला करना अपना कर्तव्य नहीं समझते ?

३—काल की करालगति से हज़ारों जैनधर्मानुयायी दरिद्रता के शिकार हो रहे हैं, हजारों अनाथ स्त्रियां तथा बच्चे भटकते फिरते हैं; क्या आप इनको सहायता नहीं पहुँचा सकते ? क्या आपके केवल २-१ अनाथ आश्रम ही इसके लिये पर्याप्त हैं ? यदि नहीं तो अधिक आश्रमों का प्रबन्ध कीजिये।

किन्तु देखना सब कुछ करते हुए भी अपने चित्त में अभिमान की छाया न आने देना।

सम्पादकीय !

प्रभावना !

सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में प्रभावना भी एक मौलिक अंग समझा जाता है। सोलह कारणभावनाओं में—जो तीर्थंकर प्रकृति के आश्रव की कारण समझी जाती हैं—इसकी गणना होने से इसका महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। अब प्रश्न यह है कि क्या सोलह कारण भावनाओंमें गणना होने के कारण ही प्रभावना अंग का विशेष महत्व है या स्वयं महत्वशाली होने के कारण उस की गणना उक्त भावनाओं में की गई है? कभी२ उच्च पद व्यक्ति की महत्ता को बढ़ा देता है, किन्तु यदि उस पद पर अयोग्य व्यक्तियों की नियुक्ति होने लगे तो अवश्य ही पद की मर्यादा जाती रहेगी। इसलिये योग्य व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते हैं। ठीक इसी तरह तीर्थङ्कर जैसे उच्च पद की प्राप्ति के सहायक साधारण सत्कार्य नहीं हो सकते, इसलिये प्रभावना को अवश्य ही स्वयं महत्वशाली होना चाहिये।

स्वामी समन्तभद्र ने प्रभावना का स्वरूप बतलाते हुए लिखा है—जनता में फैले हुए अज्ञान अन्धकार को दूर करके, उसके हृत्पटल पर जिन शासन के माहात्म्य की अमिट छाप अंकित करना प्रभावना कहा जाता है। अज्ञान का क्षेत्र बहुत विस्तृत है; उसमें जैन और जैनेतर जनता सम्मिलित है। आजकल जैनेतर जनता तो जैनधर्मसे अनभिज्ञ हैं ही—जैन जनता भी जैनधर्म से प्रायः अनभिज्ञ है। जैन सिद्धान्त बहुत गहन हैं; उसे समझने के लिये विचार शील बुद्धिमान विद्वानों की आवश्यकता है। अतः साधारण जनता उस तत्वज्ञान की बारीकियों को समझने में सर्वदा असमर्थ रही और रहेगी। इस तर्क को हम स्वीकार करते हैं। किन्तु जब हम यह देखते हैं कि हमारी समाज के बच्चे अपने को "जैन" कहना तो जानते हैं किन्तु जैन-धर्म के मामूली सिद्धान्तों से भी बिल्कुल कोरे हैं, तब हमारी आत्मा व्याकुल हो जाती है। क्या इन्हीं अज्ञानियों पर, जो भविष्य में समाज के कर्णधार बनेंगे, जैनधर्म की रक्षा का भार सौंपा जायेगा। जिनकी भुजाओं में क्षत्रियों का बल नहीं, जिनकी आत्मा में विकसित ज्ञान का भण्डार नहीं, वे किस बल पर! भविष्य में समाज की रक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे? धन… !!! क्या कहा? धन बल पर। हो सकता है—वैश्यों के पास धनबल के सिवा अन्य बल हो भी कैसे सकता है, किन्तु यदि उस का उपयोग धर्म के आवश्यक अंगों

की पूर्ति में किया जाये तो धन के बल पर भी धर्म की रक्षा हो सकती है। पर हमारी तो दशा ही निराली है। हमने ज्ञान और ज्ञान-दाता इन दोनों को दो जुदी २ वस्तुएं समझ लिया है। तभी तो ज्ञान दाताओं की मूर्तियाँ और मन्दिरों के निर्माण तथा उन्हें सोने चांदी से जड़वाने में प्रति वर्ष लाखों रुपये खर्च किये जाते हैं, किन्तु उन्हीं ज्ञानदाताओं की वाणी जिनवाणी को भण्डारों में चूहे और दीमक खा रहे हैं। एक समय ऐसा था जब इन शास्त्रभंडारों का नामों निशां भी न था—चलते फिरते मूर्तिमान शास्त्र—ज्ञान के भण्डार पूज्य परमेष्ठी—यत्र तत्र विचरण करते थे। समय ने पल्टा खाया—जिन वाणी की रक्षा के लिये उसे ताड़-पत्रों पर लिखा गया और वर्त्तमान शास्त्रों की रचना हुई। यवनों से रक्षा करने के लिये भट्टारकों ने शास्त्र भण्डारों की पद्धति चलाई—उनके सत्प्रयत्न से कुछ साहित्य बच गया। किन्तु अब वे ही भंडार अपने वर्तमान संरक्षकों की कृपा से रक्षक से भक्षक बन गये हैं। क्या उस तरफ़ किसी ज्ञानी या दानी ने कभी ध्यान दिया है। समाज के पुत्रों में ज्ञान की भावना दिन २ नष्ट होती जाती है, शास्त्रों को दिन दिन भक्षक खाते जाते हैं। और यदि ऐसी ही ढंढ्ढी रफ़्तार रही तो वह दिन दूर नहीं जब मन्दिर में प्रतिष्ठित पवित्र पुरुषों की प्रतिकृतियों के विषयमें—सिवाय इसके कि इन्हें हमारे बाप दादा पूजते थे—भविष्य संतान और कुछ न बतला सकेगी। हमारी दशा ठीक उस राजा के जैसी है जो राज्य की आमदनी का बहु भाग राज्य की रक्षा के लिये सेना रखने में खर्च कर देता है, किंतु राज्यकी प्रजा में फैले हुए अज्ञान और रोग की ओर ध्यान नहीं देता।

हमारे विचारों से कुछ भिन्न यह अर्थ लगायेंगे कि हम मन्दिर प्रतिष्ठाओं के विरोधी हैं। हम ज़ोर के साथ उनके इस अभिप्राय का विरोध करते हैं। हम जिनालयों के अनन्य उपासक हैं, किन्तु हमारा कहना सिर्फ़ इतना ही है कि समय और आवश्यकता का हर समय ध्यान रखना चाहिए। यदि दानी पुरुष ज्ञान और उसके साधनों के संरक्षण और संवर्द्धन में भी ऐसी ही तत्परता दिखावें तो सोने में सुहागा हो जाये। और तब की प्रभावना असली प्रभावना हो। आजकल प्रभावना का जो ढंग चल रहा है उसमें जैनधर्म के ऐश्वर्य की प्रभावना नहीं होती—जैनों के ऐश्वर्य की प्रभावना अवश्य हो जाती है। जैनधर्म का सच्चा ऐश्वर्य तो सर्व जीव कल्याणकारी सात्विक उपदेश है। जिस दिन जैनधर्म के पालक उस ऐश्वर्य के प्रकाशन की ओर ध्यान देंगे, वह दिन सचमुच प्रभावक दिन होगा।

वात्सल्य !

अभी उस दिन मुंगेर में भूकम्प का जो ताण्डव नृत्य होगया वह किसी से छिपा नहीं है। एक महीना होगया, किन्तु अभी तक सड़कों पर से मलवा साफ़ नहीं किया गया। सम्भावना की जाती है कि मलवे में कुछ लाशें हों। पं० जवाहरलाल जी भूकम्प से ध्वस्त हुए स्थानों का निरीक्षण करते हुए मुंगेर पहुंचे। आपने अभी तक मलवा साफ़ न किये जाने पर खेद प्रगट किया और लोगों को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाने के लिये स्वयं कुदाली और टोकरी लेकर ३ घंटे तक मलवा सफ़ा करने में मदद दी। ३ लाशें जो अभी तक दबी

पड़ी थीं निकाली गईं। हम एक भारतवासी के नाते दीनवत्सल नेहरू के इस दीन-वात्सल्य का हृदय से अभिनन्दन करते हैं। संसार में ऐसे कितने माई के लाल हैं जो राज वैभव को लात मार कर निःसहायों के कष्ट में कार्यतः सम्मिलित होते हैं ?

शोक !

पिछले अंक में हम ब्यावर के स्वनामधन्य सेठ चम्पालाल जी के लिये शोक प्रकाशित करके अभी शान्त भी न हुए थे कि हमें अजमेर के सेठ टीकमचन्द्र जी के स्वर्गारोहण का दुःखदायी समाचार मिला। सेठ जी अच्छे दानी और धर्म शील व्यक्ति थे। आपके स्वर्गवास से समाज को बहुत बड़ी क्षति पहुंची है। हम आपके सुपुत्र कुँवर भागचन्द्रजी तथा अन्य कुटुम्बी जनों के साथ हार्दिक समवेदना प्रगट करते हुए स्वर्गगत आत्मा के कल्याण के लिए शुभ कामना करते हैं।

वाद विवाद (Debate)

आजकल शिक्षासंस्थाओं में वार्षिक वाद-विवाद का आयोजन किया जाता है। यद्यपि भारतवर्ष और उसकी देववाणी संस्कृत भाषा के लिये वाद-विवाद कोई नवीन वस्तु नहीं है फिर भी उसका आधुनिक रूप अवश्य नई चीज़ है। उसे अङ्गरेज़ी में "डिबेट" कहते हैं। अंग्रेज़ी कालिजों में अखिल भारतवर्षीय 'डिबेट' हुआ करती है और उसमें भिन्न २ कालिज और विश्वविद्यालयों के छात्र दूर २ से आकर भाग लेते हैं। "डिबेट" से दो लाभ होते हैं—प्रथम वक्तृत्व शक्ति के विकास के लिए छात्रों का उत्साह बढ़ता है। दूसरे, किसी भी विषय के अनुकूल और प्रतिकूल युक्तियों पर विचार करने से विचारशक्ति परिमार्जित होती है। अस्तु, काशी के स्याद्वाद विद्यालय में २, ३ वर्ष से संस्कृत में वार्षिक वाद-विवाद होता आता है, जिसके समाचार प्रकाशित हो चुके हैं। इस वाद विवाद में स्थानीय संस्थाएं ही भाग लेती हैं। जैन संस्कृत संस्थाएं दूर प्रदेशों में होने के कारण, इसमें सम्मिलित नहीं हो सकतीं। अभी अन्य जैन संस्थाओं के अधिकारियों का ध्यान इस उपयोगी कार्य की ओर आकर्षित नहीं हुआ है। इसका एक कारण छात्रों के आने जाने का व्ययभार भी हो सकता है। किन्तु यदि संस्थाएं अन्य बहुत से व्ययों के साथ कार्यकर्त्ताओं के मार्गव्यय के खाते में प्रतिवर्ष दो छात्रों का भी मार्गव्यय सम्मिलित करले तो व्ययभार असाध्य नहीं हो सकता। हमारे विचार में एक अखिल भारतीय जैन वाद-विवाद की आयोजना की जानी चाहिये और इस वाद-विवाद का समारोह प्रति वर्ष भारत के भिन्न २ प्रान्तों में क्रमशः मनाया जाना चाहिये और वह संस्कृत तथा हिन्दी दो भाषाओं में होना चाहिये। प्रत्येक भाषा का विषय भिन्न २ हो। इससे जैन संस्थाओं के छात्रों में बहुत कुछ प्रगति होने की सम्भावना है। आशा है—शिक्षा प्रेमी संचालक गण इस ओर लक्ष्य देंगे।

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[१४]

कलिंग देशाधिपति महामेघवाहन भिक्षुराज, क्षेमराजादि पद विभूषित प्रतापी राजा खारवेल के शिलालेख द्वारा श्वेताम्बरीय प्राचीनता सिद्ध करने के लिये हमारे किसी कृपालु श्वेताम्बर विद्वान ने संसार के नेत्रों में धूल झोंकने के लिये एक चाल चली है, जोकि इतिहास वेत्ता विद्वानों की दृष्टि में तुरंत बनावटी जंच सकती है और जँच भी गई, क्योंकि ऐसे बनावटी कार्यों में कहीं न कहीं भूल रह ही जाती है।

उसने हिमवंत थेरावली नामक ग्रंथ में राजा खारवेल का इतिहास मिला दिया जिसमें कि उसने खारवेल की वंशपरम्परा, अन्य राजाओं पर विजय प्राप्ति, मगधराजा से भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का वापिस लाना आदि वृत्तान्त शिलालेखानुसार लिखकर यह भी लिखा कि खारवेल ने उदयगिरि पर्वत पर देवाचार्य, नक्षत्राचार्य आदि २०० जिनकल्पी साधु, आर्यसुस्थित, उमास्वाति आदि ३०० स्थविर कल्पी साधु, ३०० साध्वी, ७०० श्रावक और ७०० श्राविकाओं को एकत्र किया और उनमें से श्यामाचार्य, उमास्वाति आदि साधुओं से पन्नवणासूत्र, तत्वार्थसूत्र आदि ग्रंथोंका निर्माण कराया, आदि (पूर्ण लेख अनेकान्त की चौथी किरण में मुनि श्री कल्याणविजय जी ने प्रकाशित कराया है)।

लेखक यद्यपि अपनी समझ के अनुसार थेरावलीकार के नाम पर जाली रचना मिला तो गया, किन्तु उसने एक तो अपने प्राचीन ग्रन्थोंका, और पुरातन साधुओं के जीवन समय का तथा शिलालेख की नवीन खोजका खयाल नहीं रक्खा, जिससे कि उसका जाली लेख तुरंत पकड़ में आ गया।

जिन नक्षत्राचार्य आदि साधुओं का नामोल्लेख उसने अपने लेख में किया है वे नाम यद्यपि दिगम्बरीय ग्रंथों में मिलते हैं, किन्तु श्वेताम्बरीय ग्रंथों में नहीं पाये जाते तथा विक्रमकी दूसरी शताब्दी में होने वाले उमास्वाति आचार्य और उनसे लगभग ३०० वर्ष पहले होने वाले साधु उदयगिरि पर्वत पर एकत्र किस प्रकार हो सकते हैं? स्वयं राजा खारवेल से लगभग तीन सौ वर्ष पीछे श्री उमास्वाति आचार्य हुए हैं। इत्यादि मोटी गलतियों के कारण उसकी जाली बनावट सरलता से मालूम हो गई।

श्रीमान् ऐतिहासिक विद्वान (श्वे० मुनि) जिनविजय जी ने पटना से अपने ता० १२-४-३० के पत्र में श्रीमान् बा० जुगलकिशोर जी मुख्तार को इस विषय में जो कुछ लिखा था उसका सारभाग इस प्रकार है—

"यहां पर मित्रवर श्रीयुत काशीप्रसाद जी जायसवाल से समागम हुआ और उन्होंने अनेकान्त में आये हुए खारवेल के लेखों के विषय में चर्चा की जिसमें खास तौर पर उस लेख के बारे में विशेष चर्चा हुई जिसमें हिमवन्त थेरावलि के आधार पर कुछ बातें लिखी गई हैं।

यह थेरावलि अहमदाबाद में पंडित प्रवर श्री सुखलाल जी के प्रबन्ध से हमारे पास आ गई थी

और उसका हमने खूब सूक्ष्मता के साथ वाचन किया। पढ़ने के साथ ही हमें वह सारा ही ग्रन्थ बनावटी मालूम हो गया; और किसने और कब यह गढ़ डाला उसका भी कुछ हाल मालूम हो गया।

इन बातों के विशेष उल्लेख की मैं आवश्यकता नहीं समझता, सिर्फ इतना ही कह देना उचित होगा कि हिमवन्त थेरावलि के कल्पक ने खारवेल के लेख वाली जो किताब हमारी (प्राचीन जैन लेख संग्रह प्रथम भाग) छपाई हुई है और जिसमें पं० भगवानलाल इन्द्र जी के पढ़े हुए लेख का पाठ और विवरण दिया गया है उसी किताब को पढ़ कर, उस पर से यह थेरावलि का वर्णन बना लिया है।

उस कल्पक को श्री जायसवाल जी के पाठ की कोई कल्पना नहीं हुई थी; इस लिये उस कल्पक की थेरावली अपटुडेट नहीं बन सकी। खैर! ऐसी रीति हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है; इससे हमें कोई आश्चर्य पाने की बात नहीं।"

श्रीमान मुनि जिनविजय जी के पत्र से निम्न लिखित दो बातों पर प्रकाश पड़ता है :—

१—थेरावलि में वह खारवेल वाला प्रक्षिप्त भाग अभी किसी विद्वान ने जिसको कि मुनि जी जानते भी हैं मिला दिया है जिसकी कि कल्पना उसने पं० भगवानलाल इन्द्र जी के प्रकाशित लेख पर से की।

२—इस प्रकार जाली रचनाओं का रिवाज हमारे यहाँ प्रचीन समय से चला आ रहा है।

'हमारे' शब्दका वाच्य 'श्वेताम्बर सम्प्रदाय' है अथवा कुछ और? सो कुछ पता नहीं चला। अस्तु।

प्रसंग वश लिखना पड़ता है कि संघ भेद की शिवभूति वाली कथा के समान इस खारवेल के लेख पर भी हमारे किसी कृपालु श्वे० विद्वान ने अपने सम्प्रदाय के अनुकूल बनाने की थेरावलि द्वारा चेष्टा की, जिसमें वे महानुभाव इतिहास को गंदा करते हुए सफल न हो सके।

दिगम्बर सम्प्रदाय में भी कुछ स्वार्थ पोषण के लिये कतिपय बनावटी ग्रंथ दीख पड़ते हैं। थेरावलि के समान सूर्यप्रकाश में भी इतिहास का रूप कुछ बनावटी रख दिया है तथा चर्चासागर, सोमसेन त्रिवर्णाचार में अनेक सिद्धान्तविरुद्ध कथन रक्खे गये हैं। अस्तु।

अतएव खारवेल के शिलालेख पर से जो श्वेताम्बरीय प्राचीनता का तथा संघभेद की दिगम्बरीय कथा के असत्य मानने का भाव हमारे श्वेताम्बरीय विद्वानों के हृदय में उत्पन्न हुआ है, वह निराधार है। अग्रिम अङ्क में मथुरा के शिलालेखों पर प्रकाश डाला जावेगा। [क्रमशः]

जैनधर्म और वेद !

[लेखक—वेद विद्या विशारद पं० मंगल सैन जी, अम्बाला]

[गतांक से आगे]

आपके ता० २३ । ९ । ३० के पत्र के उत्तर में लिखा था कि महाशय जी शुक्ल यजुर्वेद संहिता वाजसनेय (माध्यन्दनी शाखा) अथवा कृष्णयजुर्वेद संहिता तैत्तिरीशाखा एवं अनार्ष वेद जिनमें हिंसा का प्रतिपादन किया है जैनग्रन्थों में उनकी प्रशंसा कदापि नहीं है। आप केवल वेद शब्द को देखकर ही मुग्ध हो गये हैं। और यही एक शब्द आपको तृण की भाँति बचने का सहारा मिला है। तथा इसी शब्द के आधार से आप लोगों ने लालकुर्ती बाज़ार के शास्त्रार्थ में भोली जनता को सरासर धोखा दिया था। यदि आप में अब भी कुछ सचाई की मात्रा है तो उक्त नाम और अहिंसा के प्रतिपादक वेदों को सिद्ध करके दिखलावें और आदिपुराण के श्लोक का पूरा पता लिखें। जब तक आप वेदों द्वारा अहिंसा का प्रतिपादन करके नहीं दिखलावेंगे तब तक केवल शब्द मात्र से आपका कार्य कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। और प्रमाण दिखला कर दोषों से बच जाना तो सहज है परन्तु वेदों से अहिंसा सिद्ध करके दिखलाना बड़ी टेढ़ी खीर है, इत्यादि। इसके उत्तर में आपने जैनभ्रमोच्छेद नामक पुस्तक के पृष्ठ १६ में लिखा है कि "पं० मंगलसैन जी ने हमको लिखा है कि यह श्लोक ही वहाँ नहीं है। अभिप्राय यह है कि यह प्रमाण आप लोगों के लिये एक आफ़त हो गई है। जो भाई इस प्रकरण को पढ़ता है उसे यह मालूम हो जाता है कि वास्तव में वैदिकधर्म ही ठीक है, इत्यादि।"

महाशय जी मैं ने अपने पत्र की नक़ल करके आपके सन्मुख उपस्थित करदी है। अब आप साबित करें कि मैंने कहां लिखा है कि उक्त श्लोक वहाँ पर नहीं है। आप 'विद्वान्सोहिदेवाः' इस मान्यश्रुति के अनुसार विद्वान होने से देवता सिद्ध होते हैं और देवता सत्य का ही व्यवहार करते हैं तब क्या आप मेरे पत्र के लेख से वह सिद्ध करने की कृपा करेंगे जो कि आपने अपनी पुस्तक जैनभ्रमोच्छेद में लिखा है। यदि आप मेरे पत्र से उक्त लेख को सिद्ध नहीं कर सकेंगे तो आपका लेख मिथ्या होने से ब्राह्मणश्रुति का आशय व श्रद्धा भी मिथ्या सिद्ध हो जायगी। लिखिये सचाई के लिये आपके पास क्या प्रमाण है? और जबकि वेद ब्रह्म के कहे हुए वा अहिंसा के प्रतिपादक सिद्ध नहीं होते तब आप हमारी आफ़त को किस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं। और वेद हिंसा के विधायक होने से 'वैदिक धर्म ही ठीक है' ऐसा लोग स्वीकार भी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि अब समय परीक्षा का है, अन्धविश्वास का नहीं।

आगे लिखा है कि अन्य ग्रन्थों में भी नारद और पर्वत मुनि का इतिहास लिखा है, इत्यादि। आपने इस लेख में पर्वत को मुनि लिखा है सो ठीक नहीं है। क्योंकि किसी भी जैन ग्रंथ में उसके मुनि होने का उल्लेख नहीं है। यदि आप उसको मुनि समझते हैं और आपके पास कोई आर्ष प्रमाण है तो उसको लिख कर दिखलाइये। अन्यथा ऐसे मिथ्या लेख लिख कर आप अपनी हंसी क्यों कराते हैं?

आगे लिखा है कि द्वितीय दिन सभा में राजा वसु ने पर्वत का समर्थन किया। इसपर सब आर्यों ने मिलकर पर्वत को जातिच्युत कर दिया। पर्वत बन में फिरने लगा। वहां उसको एक और जातिच्युत ब्राह्मण मिल गया, इत्यादि। यद्यपि वहां पर आर्य शब्द का उल्लेख नहीं है तथापि आपने आर्य शब्द का प्रयोग अपनी तरफ़ से किया है और वास्तव में आर्य शब्द का आशय भी बुरा नहीं है। परन्तु जो व्यक्ति हिंसाविधायक वेदों के श्रद्धानी हैं उनके लिये आर्य शब्द का प्रयोग करना सर्वथा अनुचित है। और जो अहिंसा धर्म के प्रतिपादक आर्ष वेदों के श्रद्धानी हैं उनके लिये आर्य शब्द का प्रयोग करना वास्तव में उचित ही है। आपने कालासुर को भी जातिच्युत लिख दिया है, परन्तु यह कब जाति से च्युत किया गया और इसके लिये आपके पास प्रमाण क्या है? यदि आपके पास कोई आर्ष प्रमाण है तो लिखकर दिखलाइये। अन्यथा ऐसे मिथ्या लेख लिखने से लाभ क्या?

आगे लिखा है कि जातिच्युत ब्राह्मण बड़ा विद्वान् था; उसने और पर्वत ने मिल कर वेदों के अर्थों को वेदों के नाम से हिंसामय यज्ञों का प्रचार किया, इत्यादि। इस लेख में आप यह बतलाना चाहते हैं कि उस कालासुर और पर्वत ने आर्ष वेदों के अर्थों को बदल कर उनके नाम से ही हिंसामय यज्ञों का प्रचार किया. परन्तु पहिले आप यह बतलावें कि अहिंसा धर्म के प्रतिपादक वे वेद कौन से हैं, जिनका कि जातिच्युत ब्राह्मण और पर्वत ने अर्थ बदल कर हिंसामय यज्ञों का प्रचार किया? और जिन ऋग्वेदादि को आप मानते हैं उनमें आज भी हिंसा का विधान पाया जाता है; फिर आप कैसे कह सकते हैं कि पर्वतादि ने वेदों का अर्थ बदल कर हिंसामय यज्ञों का प्रचार किया।

साथ ही में आप यह भी बतलावें कि "यजैर्यष्टव्यं" यह श्रुति किस वेद की है और जब तक इस श्रुति का निश्चय न हो तब तक अर्थ का निश्चय होना कठिन ही नहीं बल्कि सर्वथा असंभव है; क्योंकि श्रुति का अर्थ आम्नाय, प्रकरण, और विधि के अनुसार ही हो सकता है, अन्यथा कदापि नहीं। इस लिये जिस वेद की उक्त श्रुति है उसका पूरा पता आप अवश्य लिखें।

आगे लिखा है कि महावीर स्वामी वेदों के अनन्य भक्त थे, परन्तु दुःख है कि आज उनके अनुयायी वेदों का विरोध करना अपना गौरव समझते हैं, इत्यादि।

महाशय जी जो ऋग्वेदादि आज उपस्थित हैं इनके महावीर स्वामी अनन्य भक्त कदापि नहीं थे। यदि आप उनको इन हिंसक ऋग्वेदादि के अनन्य भक्त सिद्ध करना चाहते हैं तो इनमें जो हिंसा आदि का विधान पाया जाता है उसकी निवृत्ति करके दिखलावें। और हिंसा के विधायक होने से उनके अनुयायी भी उन ऋग्वेदादि का विरोध करने में अपना गौरव समझते हैं, इसमें आपको दुःख क्यों होता है।

आगे लिखा है कि आदिनाथ जी से भी पूर्व वैदिक धर्म विद्यमान था, इसका वर्णन आदि पुराण के ३९ वें पर्व से ४२ वें पर्व तक मिलता है, इत्यादि। महाशय जी, इन हिंसक श्रुतियों के प्रमाण ऋग्वेदादि के आधार से ही हम दिखला चुके हैं, फिर इससे अधिक आप क्या कह सकते हैं। और जब कि आप आदिपुराण के द्वारा

आदिनाथ जी से पूर्व का वैदिक धर्म सिद्ध करके दिखलावेंगे तब हम उस ग्रन्थ के आधार से ही आपकी अर्वाचीनता को भी सिद्ध करके दिखला देंगे। आपतो केवल शब्दों द्वारा ही अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं, परन्तु यह प्रयत्न आपका सर्वथा अनुचित है।

अन्त में आपसे निवेदन है कि अहिंसा प्रेमी जैन जनता को आप केवल शब्द मात्र दिखला कर इन हिंसक वेदों का भ्रम पैदा न करें। और यदि आप जैनियों को भ्रम पैदा कराने में ही अपना गौरव समझते हैं तो हमको भी आपके मान्य वेदों की वास्तविकता को दिखलाकर उन अहिंसा प्रेमियों का भ्रम दूर करना ही पड़ेगा।

विशेष—पतञ्जलिऋषि के भाष्यानुसार वेदों की ११३१ शाखायें सिद्ध होती हैं और शाखाओं को आर्यसमाजी ऋषि कृत मानते हैं। अब आप जिनको ईश्वर कृत मानते हैं उन मूल संहिताओं को प्रमाणों द्वारा सिद्ध करके दिखलावें। यदि आप ११२७ शाखाओं के होने में कोई प्रमाण नहीं दे सकेंगे तो चारसंहिता ही ईश्वर कृत हैं, यह श्रद्धा आपकी मिथ्या सिद्ध हो जायगी। और काशी की छपी यजुर्वेद संहिताके टाइटिल पेज पर लिखा है कि 'शुक्लयजुर्वेद संहिता वाजसनेयिमाध्यन्दिन शाखीया' तथा इसके अध्याय २३ के अन्त में लिखा है कि 'इति माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयिसंहितायां त्रयोविंशोऽध्यायः' तथा अजमेर के छपे शतपथ ब्राह्मण के टाइटिल पेज पर लिखा है कि 'यजुर्वेदीय माध्यन्दिनीयम् शतपथ ब्राह्मणम्'। इस प्रकार आपकी मान्य मूल संहितायें भी शाखा होने से ऋषि कृत सिद्ध होती हैं। अब आप उनको ईश्वर कृत किन प्रमाणों द्वारा सिद्ध करते हैं? ज़रा प्रमाण सहित लिखिये।

भारत के शासक और जैनधर्म।

[लेखक—श्रीमान् बा० कामताप्रसाद जी एम० आर० ए० एस०]

[क्रमागत]

[८]

श्रीकृष्ण और अरिष्टनेमि तीर्थङ्कर

क्षत्रिय वंशों में हरिवंश प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से हरिवंशी राजा मथुरा में राज्य करते आए हैं। इसी हरिवंश में एक राजा यदु हुए थे। वह महा पराक्रमी थे। उन्हीं के कारण उपरान्त हरिवंशी 'यादव' नाम से प्रसिद्ध हो गये। यदु का पुत्र सूर था, जिसके दो पुत्र (१) सौरी (२) सुवीर थे। सौरी ने अपना मथुरा का राज्य सुवीर को दे दिया और उन्होंने स्वयं अपने लिए कुशार्त देश में सौरीपुर की स्थापना की। सौरी के अन्धकवृष्णि आदि पुत्र हुए और भोजवृष्णि आदि सुवीर के पुत्र थे। सुवीर ने अपना राज्य भोजवृष्णि को दे दिया और सिन्धु देश में आकर सौवीर नगर को बसा कर वह वहाँ रहने लगे। भोजवृष्णि का एक पुत्र उग्रसेन नामक था, जिनका पुत्र कंस था। अन्धकवृष्णि के दश पुत्र

(१) समुद्रविजय (२) अक्षोभय (३) स्तिमित (४) सगर (५) हिमवन् (६) अचल (७) धरण (८) पूरण (९) अभिचन्द्र और (१०) वसुदेव थे। उनके दो कन्यायें कुन्ती और मद्री भी थीं, जो कुरुवंश में व्याही गई थीं।

श्रीकृष्ण वसुदेव और देवकी के पुत्र थे। उनकी विमाता रोहिणी से उनके भाई बलभद्र का जन्म हुआ था। श्रीकृष्ण नारायण महापुरुष थे। वह जन्म से ही विशेषताओं को लिये हुए जन्मे थे। कंस ने अतिमुक्तक मुनिराज के वचनों से जान लिया था कि देवकी का पुत्र उसके जीवन और ऐश्वर्य का नाश करेगा। इसी कारण कंस ने वसुदेव और देवकी को कारागृह में डाल रक्खा था; किन्तु पूर्व पुण्योदय से बालक कृष्ण कारागृह में जन्म लेने पर भी नन्द के गृह जाकर बड़े हुए। युवावस्था को प्राप्त होते ही उनके बल और बुद्धि की प्रशंसा चहुँ ओर होने लगी। कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिये अनेक षड्यंत्र रचे, परन्तु वह उनमें असफल रहा। उसने दूसरे का बुरा विचारा, फिर भला उसका भला कैसे होता? श्रीकृष्ण ने उस अत्याचारी को युद्ध में प्राणरहित कर डाला! कंस के श्वसुर जरासिन्धु इस घटना से यादवों पर कुपित हुए!

आखिर श्रीकृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारिका जा बसे। उनके सम्ब, प्रद्युम्न आदि प्रख्यात पुत्र थे। उग्रसेन की कन्या सत्यभामा भी उनकी रानियों में एक थी। सत्यभामा की विमाता धारिणी की पुत्री राजमती थी। इस तरह सत्यभामा और राजमती दोनों बहिनें थीं। राजमती सौन्दर्य, विद्या, कला आदि में अनुपम थीं।

सौर्यपुर (वर्तमान बटेश्वर सूरीपुर) के राजा समुद्रविजय की रानी शिवदेवी थीं। कार्तिक कृष्णा द्वादशी को उनके गर्भ में तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि का महत् पुण्यशाली जीव आया। उस समय उन्होंने शुभसूचक हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे। श्रावण शुक्ला पंचमी को चित्रा नक्षत्र में अरिष्टनेमि का जन्म हुआ। महान् उत्सव मनाया गया।

अरिष्टनेमि जन्म से ही विशेष ज्ञान के धारी थे। वह विद्या कला में शीघ्र ही निपुण हो गये। उनका शारीरिक सौन्दर्य और बल भी अनुपम था। पर इतने पर भी वह बहुत सीधे साधे और भोले थे। राजकुमार होते हुए भी वह भोगों से विरक्त थे। लोग उनकी इस अनूठी मनोवृत्ति पर आश्चर्य प्रकट करते थे।

यादवों से जब जरासिंधु का युद्ध हुआ तो उसमें अरिष्टनेमि ने अपना अद्भुत युद्ध कौशल और भुजविक्रम दर्शाया। यह बात कृष्ण और बलभद्र भी जानते थे। एक रोज़ नेमि जी ने कृष्ण जी का पंचानन शङ्ख अनायास ही फूंक दिया। श्रीकृष्ण के दिल पर इस घटना का कुछ और ही असर पड़ा। वह नेमि के अद्भुत बल को देख उनसे ईर्ष्या करने लगे और सशङ्क हो गए! किन्तु बलभद्र ने उनके इस भय को बहुत कुछ दूर किया!

श्रीकृष्ण इन्द्र के समान राज्य करने लगे। उन्होंने अत्याचार पीड़ित लोगों का उद्धार किया। कंस, जरासिन्ध आदि का नाश करके उन्होंने अन्यायी कौरवों का नाश करने में पाण्डवों का साथ दिया। अपनी इस परोपकारवृत्ति के कारण ही वह जनता के प्रियभाजन थे। लोग उन्हें अवतारी पुरुष मानने लगे। द्वारिका में रहकर उन्होंने

देश का शासनविधान ऐसे अच्छे ढंग से किया कि छप्पन करोड़ यादव संतुष्ट रहे और उनका राष्ट्र खूब फला फूला ! मथुरासे जब कृष्ण द्वारिका की ओर आये तब उनके साथ भोजक—वृष्णी—अंधक आदि लोग भी आये थे। वे सब कृष्ण के राज्य शासन में बड़े सुख से रहते थे।

राजमती भोजवंशी राजा उग्रसेन की सुपुत्री थीं। श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि को बहुत कोशिश करके विवाह करने के लिये राज़ी किया। राजमती से ही उनका विवाह पक्का हुआ। शुभ मुहूर्त में अरिष्टनेमि की बारात राजा उग्रसेन के यहां पहुँची। बड़ा उत्सव मनाया गया। किन्तु अरिष्टनेमि को तो 'भोग' के स्थान पर 'योग' का आनन्द लूटना बदा था। श्वसुरगृह के पास उन्होंने एक बाड़े में बंद बहुत से पशुओं को चिल्लाते देखा। सारथी से उन्होंने जाना कि यह पशु उन राजाओं के लिये बन्द किये गये हैं जो मांस खाते हैं। नेमि जी को यह बात असह्य हुई। उनका करुण हृदय दया से भीग गया। उन्होंने पशुओं के बन्धन तुड़वा दिये और वैराग्य उनके हृदय में हिलोरें लेने लगा। झट से उन्होंने अपना रथ वापस मोड़ दिया। राजमुकुट, कंकन, वस्त्राभूषण आदि उन्होंने उतार कर फेंक दिये। वे गिरनार पर्वत पर जा बैठे और ध्यान में लीन हो गये। श्रीकृष्ण आदि ने उन्हें बहुत रोका, परन्तु वह घर न लौटे।

राजमती ने जब यह खबर पाई तो वह घबड़ा गईं। दौड़ी २ नेमि जी के पास पहुंचीं; परन्तु नेमि जी को योग से विमुख न कर सकीं। आखिर वह भी उनसे व्रत लेकर साध्वी हो गईं।

अरिष्टनेमि सर्वज्ञ परमात्मा हुए और उन्होंने लोक का कल्याण करके गिरिनार पर्वत से निर्वाण पद प्राप्त किया !

सबके दिन एकसे नहीं रहते। यादवों के सुदिन भी न रहे। वे सुमति खो बैठे। श्रीकृष्ण ने बहुतेरा प्रतिबन्ध किया, परन्तु मदिरा ने यादवों का सर्वनाश करके छोड़ा ! कृष्ण, बलराम और जरत्कुमार ही यादवों में बचे—शेष द्वारिका के साथ अग्निदेव के कोप में भस्म हो गये। कृष्ण जी वन में पड़े सो रहे थे। उनके पैर का पद्म चमक रहा था। जरतकुमार समझा वह हिरण है—झट से वह बाण मार बैठा ! अकाल में ही श्रीकृष्ण के प्राणपखेरू इस नश्वर शरीर को छोड़ गये। अब वह आगे तीर्थङ्कर होकर सर्वज्ञ परमात्मा होंगे !

श्रीकृष्ण निस्सन्देह एक महान् शासक, चतुर राजनीतिज्ञ और महान् योद्धा थे। उन्होंने अत्याचारियों के संताप से लोक को मुक्त किया था !

—— —

[क्रमशः]

जैन राजधर्म।

[ले०—श्रीमान् सरदार भँवरलाल जी, रतलाम]

आजकल के राजा महाराजा जैनधर्म से बिलकुल अनभिज्ञ हैं; वे जैनधर्मको एक वर्ण विशेष अर्थात् वैश्यों का ही धर्म समझते हैं। उनको यह विदित नहीं है कि "हमारी उत्पत्ति जैन राजकुल से है, हमारे पितृ पुरुष जैनधर्म के अनुयायी थे, जैनधर्म एक सर्व श्रेष्ठ धर्म है आदि"। अस्तु, इन सब बातों का ज्ञान राजा महाराजाओं को कराना जैनियों का एक आवश्यकीय कर्तव्य है।

जैनधर्म से क्षत्रिय राजाओंका कितना अधिक सम्बन्ध है, यह मैं संक्षेप में प्रगट करता हूं।

जैनधर्म के प्रवर्तक २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण और ९ बलदेव ये त्रेशठ शलाका अर्थात् पदवीधारक महान् पुरुष प्रत्येक कल्पकाल में होते हैं और ये सब नियम से वीर क्षत्रिय राजवंश के सर्वोच्चकुल में ही जन्म लेते हैं।

यों तो जैनधर्म को चारों वर्ण से लेकर तिर्यंच तक स्वशक्ति अनुसार धारण कर सकते हैं, किन्तु जैनधर्म ने विशेषता क्षत्रिय वर्ण को ही दी है; क्योंकि "जो कर्मे शूरा सो धर्मे शूरा" अर्थात् जिनमें कर्म करनेकी शक्ति है वही कर्मों का नाश कर सकता है, और यह गुण क्षत्रियोंमें प्रधानतासे होता है। इसी से जैनशास्त्रों में यत्र तत्र वीर क्षत्रियों के ही गुणों का कथन बाहुल्यता से भरा हुआ है। जैन पुराणों को यदि वीर क्षत्रियों का इतिहास कहा जावे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

भगवान् ऋषभदेव ने तीनों वर्ण के कर्म बतलाते हुए क्षत्रियों के असि (शस्त्र) कर्म को प्रथम स्थान दिया है। शस्त्रकला का प्रचार सबसे पहिले जैनियों के घर से हुआ है। जैन शब्द में ही वीरत्व भाव भरा हुआ है, जैनधर्म को शक्तिधारी आत्मा ही भले प्रकार से धारण कर सकता है।

जैनधर्म राजाओंका ही धर्म है, उन्होंने इसे प्रगट किया है, बहुत काल तक राजा महाराजा इस धर्मके अनुयायी रहे हैं। यह समयका परिवर्तन है कि आज एक भी राजा महाराजा जैनधर्म में दृष्टिगत नहीं होते।

जैन इतिहास से प्रगट होता है कि आज से २४६० वर्ष पूर्व चरम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी स्वयं इस पृथ्वी पर विद्यमान थे। महावीर स्वामी बिहार ज़िले के कुण्डलपुर नगर के नाथवंशी राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। राजा सिद्धार्थ का विवाह सिंधु देशके महाराजा चेटक की बड़ी पुत्री त्रिशला-देवी (प्रियकारिणी) से हुआ था, जिनसे महावीर स्वामी का जन्म हुआ। रानी त्रिशलादेवी की बहिन चेलना मगध देश की राजगृही नगरी के राजा श्रेणिक (जिनका नाम भारतीय इतिहासों में बिम्बसार लिखा है) को व्याही गई थी। इस सम्बन्ध से राजा श्रेणिक महावीर स्वामी के मौसा होते थे। उसी समय में कलिंग देश के यादववंशी राजा जितशत्रु थे, जिनको राजा सिद्धार्थ की बहिन यानी महावीर स्वामी की बुआ व्याही गई थीं।

इस तरह से उस समय भारतवर्ष के बड़े बड़े क्षत्रिय राजा महाराजा एक न एक सम्बन्ध से जैन राजकुलों में फंदे हुए थे। उसी समय में बौद्ध सांख्य आदि मतमतान्तर भी प्रचलित थे, स्वयं महावीर स्वामी के मौसा राजा श्रेणिक बौद्ध मतावलम्बी थे जिन्हें उनकी रानी चेलना ने जैनी बनाया था। यह सब घटनाएं आज से कुल ढाई हज़ार वर्ष पूर्व की हैं।

मगध देशके राजा श्रेणिक (बिंबसार) के कोणिक (अजातशत्रु), दर्भक, अजय, नन्दिवर्धन, महानन्द (नव नंद विख्यात हुए), समाल्प, और चन्द्रगुप्त क्रम से उत्तराधिकारी हुए। यह वही प्रसिद्ध भारत सम्राट चन्द्रगुप्त हैं जिन्होंने ग्रीस के राजा सिकंदर के सेनापति सिल्यूकस को युद्ध में पराजय कर भगाया था। राजा चन्द्रगुप्त जैनी था, इसी धर्मद्वेष के कारण उसे मुद्राराक्षस आदि पुस्तकों में शूद्राजात कहडाला है, परन्तु क्षत्रिय उपकारिणी महासभा ने राजा चन्द्रगुप्त को शुद्ध मौर्यवंशी क्षत्रिय माना है। चन्द्रगुप्त के बिंदुसार; उसके अशोक, कुणाल और उसके राजा सम्प्रति हुआ। यहां तक मगधराजकुल में जैनधर्म विद्यमान था, और यह समस्त राजा भारत के इतिहास-प्रसिद्ध सम्राट हुए हैं।

इनके पश्चात् भी गंग और राष्ट्रकूट (राठौड़) वंशके राजा अमोघवर्ष, श्रीवल्लभ, नारसिंह, इन्द्र राजा, रायचूड़ामणि, गरुडकेशरी, व मैसूर के चमराजा वोडेयर, देवगिरी यादव वंश का राजा सिंहण, कलचूरी वंश का सुप्रसिद्ध राजा बिज्जल, सिलाहार वंश का राजा लक्ष्मण व बारहवीं शताब्दी का अति प्रसिद्ध चालुक्य अर्थात् सोलंकी वंश का राजा कुमारपाल और विक्रमसिंह आदि अनेक जैन राजा हुए हैं।

भारतवर्ष के समस्त राजा महाराजा एक दम जैनधर्म से विमुख क्यों हो गये, इस प्रश्न को मीमांसा के लिये मैं यहां कुछ अर्वाचीन इतिहास के विवरण आपके समक्ष रखता हूँ।

"भरतखण्डनो सरल इतिहास" नामक गुजराती इतिहास पृष्ठ ४८ (हिन्दी अनुवाद) में लिखा है कि—ब्राह्मण धर्म प्रथम दक्षिण में प्रवेश हुआ। वह बदल कर अशोक के समय से बौद्ध धर्म चला परन्तु बौद्धधर्म की गिरती समय में फिरसे ब्राह्मण धर्मका प्रसार हुआ। गुजरात से जैनधर्म दक्षिण में जाते कितनेक राजा जैनधर्मी हुए। सातवीं शताब्दी तक जैनधर्म का वहां प्राबल्य था। आगे शंकराचार्य ने व रामानुज स्वामी ने कितनेक राजाओं को फिरसे शिवमार्गी और विष्णुमार्गी बना कर ब्राह्मण धर्म में लिया।

"पृष्ठ ६७ (हिं० अ०)" सुलतान महमद ने जब चढ़ाई करना आरम्भ की उस समय बौद्धधर्म भरतखण्ड में से नाबूद हो गया था, परन्तु जैनधर्म पूरी चढ़ती पर था। गुजरात, मारवाड़, और दक्षिण में उसका (जैनधर्म का) विशेष ज़ोर था। ब्राह्मण धर्म को फिर से स्थापना करने वाले शंकराचार्य गुज़र गये थे, उनके शिष्य लोग अपने धर्म की मज़बूती करने का प्रयत्न करते थे। इस समय में भरतखण्ड के थोड़े से राजाओं के सिवाय सब ब्राह्मण धर्म में आ गये थे। जाति बन्धन मजबूत हो गया था।

"पृष्ठ ६१ (हिं० अ०)" बाबर बादशाह ने हिन्दुस्तान जीता, उस समय बौद्धधर्मी भरतखण्ड

में नहीं थे और जैनधर्म का ज़ोर हट गया था, उस समय में शंकराचार्य के चलाये हुए शिवमार्ग का ज़ोर बहुत था जिससे सबके सब राजा राणा इस पंथ में मिल गये थे।

विष्णुपंथ ईस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी में रामानुज स्वामी ने दक्षिण में चलाया। सोलहवीं शताब्दी में विष्णु मार्ग को गिरता देख तैलंग देश में उत्पन्न हुए वल्लभ स्वामी ने इस पंथ में थोड़ा सा फेरफार करके इसी शाक में कृष्णकी पुष्टि का भक्तिमार्ग चलाया। आजकल लुवाणा, भाटिया, वाणिया, बहुत से लोग इस पंथ में हैं। उत्तर भरतखण्ड में इस पंथ का ज़ोर विशेष है।

इन ऐतिहासिक विवरणों से आपको यह विदित हो गया होगा कि भारतवर्ष में किस तरह की धार्मिक घटनाएं होती रही हैं और कैसे २ धर्म परिवर्तन हुए हैं।

जैनधर्म पर बड़ी २ आपत्तियां आई हैं, परन्तु यह इस धर्म का ही प्रभाव है कि जो अबतक बिना किसी जैनी राजा या बादशाह के, अखण्ड रूपसे भव्य जीवों के कल्याण के लिये इस भूमण्डल पर प्रचलित है।

अब जैनियों को अपने धर्मप्रचार के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये, क्योंकि सब धर्मवाले अपने २ धर्म को जगत्मान्य बनाने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। ऐसे समय में जैनियों को चुप रहना योग्य नहीं, उन्हें सब से प्रथम जैनधर्म से बिछुड़े हुए राजा महाराजाओं को अपने प्राचीन और हितकारी धर्म से परिचित कराना चाहिये।

विवाह कितनी अवस्था में होना चाहिये ?

[गताङ्क से आगे]

[२]

थोड़ी अवस्था के विवाह के अनुकूल युक्तियां

उपर्युक्त प्रकार के थोड़ी अवस्था के विवाह के प्रतिकूल पहले कही गई युक्तियों के साथ २ जो कई एक अनुकूल युक्तियां हैं, वे भी संक्षेप में नीचे लिखी जाती हैं:—

(१) उल्लिखित प्रथम प्रतिकूल युक्ति के साथ साथ विचार करके देखने से जान पड़ेगा कि जैसी थोड़ी अवस्था में विवाह होने की बात कही जा रही है उस अवस्था में बालक-बालिकायें 'विवाह सम्बन्ध क्या है' और 'विवाह का गुरुत्व कितना बड़ा है' इस विषय को बिलकुल ही नहीं समझ सकते, यह बात नहीं कही जा सकती। × × ×

हां, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इतनी अवस्था में बालकों या बालिकाओं में अपने जीवन की चिरसंगिनी अथवा चिरसंगी छांट लेने की क्षमता नहीं होती, किन्तु और दो चार साल अपेक्षा करने से ही क्या उनमें यह क्षमता आ जायगी ? अथवा और कितने दिन अपेक्षा करने के लिये आप कहेंगे ? जो लोग बाल्यविवाह के विरोधी हैं,

वे भी यौवन-विवाह का विरोध नहीं करते, और विरोध करने से भी काम नहीं चल सकता। अंग्रेज़ राजकर्मचारियों ने भी लौकिक विवाह आईन अर्थात् सन् १८७२ ई० में विवाह के योग्य अवस्था की न्यून-सीमा पुरुष के लिये १८ वर्ष और स्त्री के लिये १४ वर्ष निश्चित की है। अतएव विवाह का यथासंभव समय चाहे जो निश्चित हो, वर कन्या का परस्पर चुनाव केवल उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर होने देना कभी युक्तिसिद्ध नहीं होगा। उसके बारे में उनके माता पिता या अन्य किसी नगीची अभिभावक की सलाह लेने की आवश्यकता अवश्य रहेगी। परन्तु विवाह का समय उल्लिखित अल्प अवस्था की अपेक्षा और भी दो चार वर्ष अधिक होने से जैसा कोमल, परिवर्तन योग्य और गुरुजनों की इच्छा का अनुगामी रहता है वैसा अवस्था बढ़ने के साथ २ फिर नहीं रहता—क्रमशः कठिन, अपरिवर्तनीय, और स्वेच्छानुवर्ती हो उठता है। इसी से यौवन विवाह में वर-कन्या के निर्वाचन में गुरुजनों के उपदेश का यथेष्ट प्रयोजन रहता है। अथच वह उपदेश अपनी इच्छा के विरुद्ध होने पर उसे ग्रहण करने में अनिच्छा अति प्रबल हो उठती है और अनेक स्थलों में वह अनिच्छा उस प्रयोजन की उपलब्धि भी मन में नहीं होने देती।

इसके सिवा और भी एक बड़ी भारी बात है। यौवन विवाह में वर कन्या दोनों के परस्पर के चुनाव में कुछ समर्थ होने पर भी अगर उनसे भूल हो अर्थात् अगर विवाह सम्बन्धी चुनाव के बाद स्वामी और स्त्री दोनों यह समझ पावें कि उन दोनों की प्रकृति में इतना वैषम्य है कि वे परस्पर एक दूसरे के लिये उपयोगी नहीं हो सकते, तो उस भूल का संशोधन करने के लिए विवाह बंधन को तोड़ने के सिवा उनके लिए और कोई उपाय नहीं रह जाता। बाल्य विवाह में भी इस तरह की भूल होने की यथेष्ट संभावना है। तो भी, पहले तो, यौवन विवाह में जितनी हैं उतनी बाल्य-विवाह में नहीं हैं। कारण, यौवन विवाह में युवक युवती ही अपनी २ प्रवृत्ति की प्रेरणा से कार्य करते हैं और उस समय उस अवस्था में प्रवृत्ति के भ्रम में पड़ जाने की संभावना अत्यंत अधिक है। किन्तु बाल्यविवाह में, उक्त प्रवृत्ति के द्वारा प्रेरित युवक और युवती की जगह संयत प्रवृत्ति वाले और सत्य विवेचना से संचालित प्रौढ़ प्रौढ़ा जनक जननी ही उस निर्वाचन का भार अपने ऊपर लेते हैं, और उनसे भूल होने की संभावना अपेक्षाकृत अल्प ही है। फिर दूसरे, अल्प अवस्था में प्रकृति के कोमल और चरित्र के परिवर्तनशील होने के कारण जैसे विवाह संबंध में बंधे हुए बालक और बालिका परस्पर के लिए उपयोगी होकर अपनी प्रकृति और चरित्र को उसी तरह का बना ले सकते हैं, उससे पश्चाताप करने का कारण प्रायः नहीं रह जाता कि उनके निर्वाचन में भूल हुई थी। इन बातों के काल्पनिक न होने का अर्थात् यथार्थ होने का उत्कृष्ट प्रमाण यह है कि जिन देशों में अधिक अवस्था में ब्याह होने की चाल है उनमें जितने विवाह विभ्राट् होते हैं और अदालत में ब्याह बन्धन तोड़ने के लिये जितनी दरख्वास्तें गुज़रती हैं उनका शतांश भी इस बाल्यविवाह प्रथा के अनुगामी भारत में नहीं होता—बल्कि यह भी कहें तो कह सकते हैं

कि वे बातें यहां होती ही नहीं। अतएव यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि बाल्यविवाह के सम्बन्ध में प्रथम प्रतिकूल युक्ति के साथ २ अनेक अनुकूल बातें भी हैं।

(२) बाल्यविवाह के विरुद्ध पक्ष में उल्लिखित दूसरी आपत्ति यह है कि बाल्यविवाह से उपयुक्त सन्तान पैदा करने में बाधा पड़ती है। किन्तु यह आपत्ति अखंडनीय नहीं है। यह बात कोई नहीं कहता कि विवाह होते ही स्त्री-पुरुष दोनों पूर्ण सहवास के योग्य हो जाते हैं। माता पिता अगर कर्त्तव्यनिष्ठ और दृढ़-प्रतिज्ञ हों, तो वे थोड़ी अवस्था में ब्याहे गये पुत्र कन्या के स्वास्थ्य और सन्तान पैदा करने के योग्य समय पर लक्ष्य रखकर उनके सहवास को इस तरह नियमबद्ध कर दे सकते हैं कि उससे केवल हितकर फल ही होगा, अहितकर फल न होगा। और वैसा होने पर उनके सहवास से परस्पर के प्रति प्रेमसंचार और इन्द्रिय सेवा के संयम की शिक्षा, दोनों ही फल प्राप्त होंगे।

पक्षांतर में, विवाह में अधिक विलंब करने से उसका क्या फल होता है, वह भी विचार कर देख लेना चाहिए। स्त्री और पुरुष के परस्पर संसर्ग की चाह अक्सर चौदहवें या पन्द्रहवें वर्ष में उद्दीपित होती है। उस प्रवृत्ति (चाह) को एक निर्दिष्ट पात्र में न्यस्त करके निवृत्तिमुखी बनाना, और इन्द्रिय चरितार्थ का विधि संगत और नियमित उपाय निकाल कर उसके अवैध और असंयत स्वेच्छाचार को रोकना, अगर विवाह का एक मुख्य उद्देश्य है, तो जान पड़ता है, थोड़ी अवस्था में ब्याह कर देना ही उस उद्देश्य को पूर्ण करने का प्रशस्त मार्ग है। असाधारण पवित्र और संयत चित्त लोगों की बात मैं नहीं कहता, और वैसे लोग संख्या में अधिक भी नहीं हैं, किन्तु साधारण लोगों में उक्त इंद्रिय सुख की प्रवृत्ति होने पर, अगर शीघ्र ही उसके निर्दिष्ट पात्रमुखी होने की व्यवस्था नहीं की जाय, तो वह काल्पनिक मनमाने व्यभिचार में, अथवा वास्तविक अपवित्र या अस्वाभाविक चरितार्थता प्राप्त करने में लगजाती है। और यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि उस तरह का काल्पनिक या वास्तविक व्यभिचार दोनों ही के देह और मन के लिए समान रूप से अहित कर है। अगर कोई कहे कि जो प्रवृत्ति इतनी प्रबल है उसे एक निर्दिष्ट पात्र में रख देने से ही वह संयत रहेगी, इसकी संभावना कहां है? तो इसका उत्तर यह है कि किसी भोग्य वस्तु का अभाव अवश्य आकांक्षा को बढ़ाता है, लेकिन वह वस्तु मिल जाने पर फिर भोग की लालसा वैसी तीव्र नहीं रहती। यह साधारणतः मनुष्य का स्वभाव सिद्ध धर्म है।

(३) बाल्यविवाह के सम्बन्ध में ऊपर कही गई तीसरी आपत्ति यह है कि बाल्यविवाह होने से थोड़ी ही अवस्था में मनुष्य पर स्त्री पुत्र कन्या आदि के पालन पोषण का बोझ पड़ जाता है, उसके मारे वह अपनी उन्नति के लिए यत्न करने का अवसर नहीं पाता। किन्तु यह बात नहीं है कि इस बात के विरुद्ध भी कुछ कहने की बात न हो। विवाह होने से ही स्वामी अपनी स्त्री के भरण पोषण का भार अपने ऊपर लेने के लिए अवश्य बाध्य है, किन्तु पुत्र कन्या के पालन पोषण का भार उनके उत्पन्न होने के पहिले नहीं आ पड़ता, और बालबच्चों के जन्मकाल में देर करने की

क्षमता खुद पिता के ही हाथ में है। अतएव जिस में स्त्री के खिलाने पिलाने और पालने की क्षमता नहीं है उसे जब तक वह क्षमता न प्राप्त हो तब तक अवश्य ही विवाह नहीं कराना चाहिए। किन्तु अन्य कारण से विवाह विहित होने पर, केवल संतान पैदा होने की आशंका से उसे रहित करने का प्रयोजन नहीं देख पड़ता। कोई २ कहते हैं, स्त्री के रक्षणवेक्षण की ज़िम्मेदारी और स्त्री संग की लालसा जो है वह विवाहित पुरुष के विद्यालाभ या अर्थलाभ के लिए यथेष्ट विचरण में बाधा डाल सकती है। किन्तु जो स्वामी हिन्दू परिवार के अन्तर्गत हैं उसे स्त्री के रक्षणवेक्षण के लिए विशेष चिंता का कोई कारण नहीं देख पड़ता। और, एक तरफ़ जैसे स्त्री संग लाभ की लालसा अन्यत्र जाने में बाधा डालने वाली हो सकती है, वैसे ही दूसरी तरफ़ स्त्रीके सुख संतोष को बढ़ाने की इच्छा से अपने कृती होने की चेष्टा को उत्साह भी मिलता है। यह सत्य है कि जिसे स्त्री के और पुत्र कन्या आदि के भरणपोषण के लिए, चाहे जिस तरह से हो, कुछ कमाने के लिए बाध्य होना पड़ता है, वह अपनी उन्नति करने के लिए मनमाने तौर से चेष्टा नहीं कर सकता। किन्तु उधर जिसके लिए अभाव पूर्ति के वास्ते कमाने का विशेष प्रयोजन नहीं है, उस व्यक्ति में भी अपनी उन्नति के लिए अधिक चेष्टा करने की उत्तेजना पूर्णरूप से नहीं रहती। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध वक्ता और विचारक अर्स्किन साहब की बात स्मरणीय है—स्त्री पुत्र आदि के पालन का कोई उपाय न देख कर अर्स्किन सा० बैरिस्टरी करने लगे। पहले पहल जो मुकद्दमा उन्होंने अपने हाथ में लिया। उसमें जब वह वक्तृता देने लगे, तब बीच में प्रधान विचारपति मैन्सफील्ड ने यह कहकर कि उनका अमुक विषय अप्रासंगिक है उन्हें उसका उल्लेख न करने के लिए इशारा किया। मगर उक्त बैरिस्टर ने उस इशारे की पर्वा न करके तेज़ी के साथ उसी विषय को उठाकर खूब बहस की। उनकी वह वक्तृता इतनी ज़ोरदार और दिल पर असर डालने वाली हुई कि उसी दिन से उन्होंने अपने रोज़गार में असाधारण प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। वक्तृता दे चुकने के बाद बैरिस्टर सा० के एक मित्र ने पूछा कि मैन्सफील्ड जैसे प्रबल प्रतापी प्रधानविचारपति की आज्ञा को न मानने का साहस वे कैसे कर सके ? इस प्रश्न के उत्तर में अर्स्किन सा० ने कहा—"उस समय मुझे मालूम पड़ रहा था कि भूख से पीड़ित मेरे बच्चे मानों करुणस्वर में मुझसे कह रहे हैं—पिता इस सुयोग में अगर आप हमारे खाने पीने का कुछ सुभीता कर सकेंगे, तो कर सकेंगे, नहीं तो कुछ न होगा।"

अतएव देखा जाता है कि थोड़ी अवस्था के विवाह के विरुद्ध ऊपर जिन तीन प्रबल आपत्तियों का उल्लेख हुआ था, उनमें से हर एक के साथ २ उसका सम्पूर्ण खण्डन न सही, उसके विपरीत युक्तियां भी हैं। थोड़ी अवस्था में जैसे विवाह के गुरुत्व की उपलब्धि करके उपयुक्त चिरसंगी या चिरसंगिनी के निर्वाचन की क्षमता नहीं उत्पन्न होती, वैसे ही अधिक अवस्था में होने वाला निर्वाचन भ्रांति रहित ही होगा—यह भी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। अधिक यह है कि उस अधिक अवस्था के निर्वाचन में भूल हो जाने पर उस अवस्था में स्त्री और पुरुष के लिए अपनी २

प्रकृति को परस्पर उपयोगी बनाने का समय नहीं रह जाता। थोड़ी अवस्था के विवाह में जैसे भावी पुत्र कन्याओं के सबल देह और प्रबलमना होने के बारे में खटका बना रहता है, वैसे ही थोड़ी अवस्था में विवाह न कर देने से फिर वर्तमान बालक बालिकाओं की शारीरिक सुस्थता और मानसिक पवित्रता की रक्षा में विघ्न पड़ने की संभावना बनी रहती है। थोड़ी अवस्था में ब्याह होने से जैसे लोग गृहस्थी उठाने और परिवार पालने के बोझ में दबकर यथासाध्य अपनी २ उन्नति की चेष्टा करने में असमर्थ होते हैं, वैसी ही उधर थोड़ी अवस्था में ब्याह कर देने से स्वाधीन भले ही रहें, किन्तु उनमें आत्मोन्नति के लिए चेष्टा भी अपेक्षा कृत अल्प ही रहती है। × × ×

विवाह काल के बारे में स्थूल सिद्धांत

वह चाहे जो हो, देख पड़ता है कि बाल्यविवाह के अर्थात् उल्लिखित प्रकार के थोड़ी अवस्था के विवाह के प्रतिकूल जैसे अनेक युक्तियाँ हैं, वैसे ही उसके अनुकूल भी अनेक बातें हैं। और बाल्य-ब्याह में जैसे दोष है, वैसे ही कई गुण भी हैं। उधर यौवन-विवाह या प्रौढ़ ब्याह में जैसे गुण हैं वैसे ही कुछ दोष भी हैं। जब इस तरह दोनों ओर उभय-संकट है तो फिर कौन मार्ग अवलम्बनीय है? × × ×

अगर हमें सबल रणकुशल सैनिक या सुदूर समुद्र यात्रा में न डरने वाले नाविक, अथवा साहसी उद्यमशील बनिये (सौदागर) पैदा करने हों, तो थोड़ी अवस्था के विवाह की प्रथा त्याज्य है। किन्तु यदि शिष्ट, शांत, धर्मपरायण, संयत-प्रवृत्ति वाले गृहस्थ पैदा करना हों, तो ऊपर लिखे अनुसार थोड़ी अवस्था में ब्याह कर देना ही अच्छा है। मगर हां, आर्थिक अवस्था कुछ अनुकूल न होने पर, जब तक स्त्री पुत्र कन्या के पालन का सुभीता न हो तब तक ब्याह करना उचित नहीं है। और जहां विद्योपार्जन आदि अन्य उच्चतर उद्देश में लड़के का मन एकान्त निविष्ट है और उसके लक्ष्य भ्रष्ट होकर कुमार्ग में जाने की संभावना नहीं है, वहां पर भी विलम्ब में उसका ब्याह किया जाय तो अच्छा। विवाह काल के बारे में, संक्षेप में, यही स्थूल सिद्धान्त है। इस सम्बन्ध में किसी बंधे हुए नियम की स्थापना, अथवा इस बात को लेकर समाज-संस्कारक या संस्कार विरोधी इन दोनों दलों का अनर्थक विवाद वांछनीय नहीं है।

प्रतिरोध !

जीवन की सूनी कुटिया है क्यों इतने ललचाते हो,
क्षणिक प्रेम पीयूष पान हित आ आ व्यर्थ लुभाते हो।
क्यों मतवाले मद नयनों को मेरी ओर चलाते हो,
कह कर निज यह प्रणय कहानी तरसाते कलपाते हो॥

इस जीवन में कहाँ हर्ष है कहां प्रणय का मधुर स्वाद।
विधना ने विधि में मेरे तो एक लिखा है हाय विषाद॥—"कुमरेश" जैन

[१६]

केवली सम्पूर्ण पदार्थों को एक साथ नहीं जानते या यों कहिये कि केवली के मानसिक ज्ञान है इस बात के समर्थन में दरबारीलाल जी ने तीसरी बात केवली से प्रश्नोत्तर आदि की लिखी है। आपका कहना है कि जिस समय केवली किसी के प्रश्न का उत्तर देते हैं, किसी को धर्मोपदेश देते हैं, स्थान से स्थानान्तर जाते हैं और अपने मत का प्रचार करते हैं उस समय उनका उपयोग इन्हीं बातों पर रहता है। पाठक दरबारीलाल जी के इस अभिमत को विशदता के साथ जान सकें, अतः यहाँ हम उनके इस सम्बन्ध के वाक्यों को उद्धृत किये देते हैं—"जब कोई प्रश्न पूछता है तब वे (केवली) मन लगाकर उसकी बात सुनते हैं और मन लगा कर उसका उत्तर भी देते हैं। एक आदमी वर्षों तक देश २ में विहार करता है, उपदेश देता है, अपने मत का प्रचार करता है, सबकी शंकाओं का समाधान करता है, किन्तु यह सब काम वह बिना मन के करता है ऐसा कहने वाला अन्धश्रद्धालुता की सीमा पर बैठा है, यही कहना पड़ेगा। इसलिये ऐसे मत का कुछ मूल्य न होगा"। दरबारीलालजी यह भी स्वीकार नहीं करते कि केवली अपने उपयोग को इन कार्यों के साथ ही साथ इनके अतिरिक्त अन्य समस्त ज्ञेयों पर ही रख सकते हैं, जिससे यह सब बातें उसकी सर्वज्ञता में बाधक न हो सकें। दरबारीलाल जी का तो यही कहना है कि केवली का उपयोग इन २ कार्यों के समय इन्हीं कार्यों पर रहता है जैसा कि दरबारीलाल जी के निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट है—"यदि केवली के त्रिकाल त्रिलोक का युगपत् साक्षात्कार होता तो केवली का मन किसी अमुक व्यक्ति के उत्तर देने में कैसे लगता"। अब विचारणीय यह है कि क्या दरबारीलाल जी का उपर्युक्त वक्तव्य युक्तियुक्त है? इस बात के निर्णय के लिये निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है:—

१—क्या केवली प्रश्नोत्तर करते थे?

२—क्या जिस समय जिस बात का उत्तर दिया जाय या प्रतिपादन किया जाय अथवा ज्ञान किया जाय तो उस समय उसही पर और इतने पर ही उपयोग का रहना अनिवार्य है?

केवली प्रश्नोत्तर करते थे, यह एक ऐसी बात है कि जिसके सम्बन्ध में श्वेताम्बरों के समान दिगम्बरों को भी कोई एतराज़ नहीं। दिगम्बरीय साहित्य में भी इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं जिनसे केवली के साथ प्रश्नोत्तरों का होना प्रमाणित है। यदि इस विषय में दिगम्बर और श्वे-

ताम्बरों में कोई मतभेद है तो वह यही है कि दिगम्बर श्वेताम्बरियों की तरह केवली के उपदेश को केवल प्रश्नोत्तर स्वरूप ही स्वीकार नहीं करते हैं। दिगम्बरियों का कहना है कि केवली प्रश्नों का उत्तर भी देते थे और प्रश्नों के बिना भी उपदेश देते थे। किसी भी धर्मप्रवर्तक के लिये यदि यह संभव नहीं कि वह बिना ही प्रश्नोत्तर किये अपने धर्म का प्रचार कर सकें तो उसके लिये यह भी एक असंभव बात है कि वह प्रश्नोत्तरस्वरूप ही उपदेश देता रहे। ऐसे बहुत से अवसर आया करते हैं जहाँ कि किसी धर्मविशेष के सम्बन्ध में किसी को भी कोई जानकारी नहीं होती। ऐसी जगह यदि वह धर्मप्रवर्तक चला जाता है तो उसके लिये प्रश्नोत्तरों के बिना ही धर्मोपदेश देना अनिवार्य हो जाता है। दूसरी बात यह भी है कि किसी समय प्रश्न तो कुछ होता है और आत्मकल्याण का मार्ग कुछ और ही; ऐसी अवस्था में केवली यदि प्रश्नों का उत्तर देकर ही बन्द हो जायेंगे तो वह मोक्षमार्ग के उपदेशक भी न ठहर सकेंगे। तीसरी बात यह है कि श्वेताम्बरीय साहित्य में बहुत से इस प्रकार के भी प्रश्न हैं जो कि प्रश्न रूप में ही उपस्थित नहीं किये जा सकते थे। इससे स्पष्ट है कि जहाँ तक तीर्थङ्करों के प्रश्नोत्तरों का सम्बन्ध है वहाँ तक तो हमको इसमें कोई विरोध नहीं, किन्तु जब यह कहा जाता है कि वह केवल प्रश्नोत्तर ही करते थे तब ही मतभेद हो जाता है; और यह एक असंभव बात भी है। अब विचारणीय यह है कि जिस समय केवली प्रश्नोंको जानते या उत्तर देते अथवा प्रश्नोत्तर के बिना ही उपदेश देते थे उस समय उनका उपयोग केवल इन्हीं बातों पर रहता था या इनके अतिरिक्त जगत के अन्य समस्त पदार्थों पर भी। जहाँ कि शास्त्रकार केवली को प्रश्नों का उत्तरदाता या मोक्षमार्ग का उपदेशक बतलाते हैं वहीं सर्वज्ञ भी। तत्वार्थ सूत्र के मङ्गलाचरण को ही इसके प्रमाण में उपस्थित किया जा सकता है। इसमें केवलीको सर्वज्ञ के साथ मोक्ष मार्ग का उपदेशक भी स्वीकार किया है †। यह श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही के लिये एक सा माननीय है। अतः स्पष्ट है कि शास्त्र दृष्टि से तो यह बात योंही प्रमाणित होती है कि केवली उपदेश देते समय भी अपने उपयोग को जगत के सम्पूर्ण पदार्थों पर रखते थे। युक्ति भी इसी बात का समर्थन करती है। हम अनुभव करते हैं कि जिस समय हम किसी एक पदार्थ को देखते हैं उस ही समय हमको दूसरे व्यक्ति के शब्द भी सुनाई देते हैं। परीक्षा के लिये हर एक व्यक्ति इसका अनुभव कर सकता है। इस बात का परीक्षण चलती हुई ट्रेन में, चलती हुई और आवाज़ करने वाली—खड़ खड़ करने वाली—मोटर में, गायनस्थान, टाकी सिनिमा और फ़ोनोग्राफ आदि वस्तुओं के सुनने के समय सरलता के साथ हो सकता है। जिस समय आप ट्रेन में भ्रमण कर रहे हैं और थोड़े समय के लिये अपनी दृष्टि को किसी एक पदार्थ पर लगा लेते हैं उस समय भी आपको चलती हुई ट्रेन की आवाज़ सुनाई देती

† मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म भूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्व तत्वानां, वन्दे तद्गुण लब्धये ॥

है। यही बात चलती हुई और खड़खड़ करने वाली मोटर के सम्बन्ध में है। ऐसी मोटर में भी यदि आप अपनी दृष्टि को किसी एक पदार्थ पर लगा लेते हैं तो आपको उस समय भी मोटर की आवाज़ सुनाई देती है। गाना, टाकीसीनेमा और फ़ोनोग्राफ़ बाजे का सुनना यह एक ही प्रकार की बातें हैं। ऐसे समयों में भी यदि आप अपनी दृष्टि को किसी एक तरफ़ लगा लेते हैं तब भी आपको इन की आवाज़ें सुनाई देती हैं। इन्हीं सब बातों को यदि और भी स्पष्ट करना चाहें तो यों कह सकते हैं कि जिस समय हम ट्रेन या मोटर में सफ़र कर रहे हैं और हमने अपनी नज़र को इनके शीशे या सीटोंपर लगा लियाहै, ऐसी अवस्थामें हमको इनका ज्ञान तो होता ही है किन्तु साथ ही साथ ट्रेन या मोटर के चलने की आवाज़ भी सुनाई देती है। इसही प्रकार जब हम टाकी सीनेमा के स्थान पर या बजते हुए फ़ोनोग्राफ़ के पास अथवा उस सभा में जहां कि गाना हो रहा है बैठे हुये हैं और अपने उपयोग को मकान की दीवाल पर या किसी कुर्सी आदि पर लगा लेते हैं तब भी हमको इनके गाने की आवाज़ें और इनके अर्थों का अनुभव होता है। इससे स्पष्ट है कि किसी भी आवाज़ को सुनते समय या उसके मतलब को जानते समय हमारा उपयोग इन्हीं पर रहेगा, यह नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार किसी आवाज़ को सुनते या उसके अर्थ को जानते हुए भी हम उसी समय अन्य पदार्थों को जान सकते हैं या जानते हैं उसी प्रकार किसी आवाज़ का उच्चारण करते हुये या व्याख्यान देते समय भी। इसका अनुभव भी हम भिन्न २ प्रकार से कर सकते हैं। दृष्टान्त के लिये इसको यों समझियेगा कि एक व्याख्याता व्याख्यान दे रहा है। साथ ही साथ उसको सभा की अन्य बातों का ज्ञान भी होता ही है। कौन कह सकता है कि ऐसा भी कोई समय आता है जबकि व्याख्याता को सभा मण्डप के प्रकाश व उपस्थित जनता आदि के सम्बन्ध में ज्ञान का अभाव हो जाता हो। इससे यह भी स्पष्ट है कि यह भी नियम नहीं बनाया जा सकता कि जो जिस समय जिस बात का उपदेश देता है उस समय उसका उपयोग केवल उसी बात पर रहता है। प्रश्न—आपका इस प्रकार का विवेचन कि जिस समय हम बोलते या सुनते हैं उसी समय हमको अन्य पदार्थों का भी ज्ञान होता है, जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल है—जैन शास्त्रोंमें लिखा है कि एक साथ दो उपयोग नहीं हो सकते ‡। किन्तु आप अपने उपर्युक्त विवेचन से इस बात का विरोध करते हैं। उत्तर—सुनते या बोलते समय भी अन्य पदार्थों का ज्ञान होता है, इसका यह मतलब नहीं कि दो उपयोग एक साथ होते हैं। किन्तु जिस प्रकार एक ही इन्द्रिय की सहायता से होने वाले एक उपयोग में अनेक पदार्थ प्रतिभासित होते हैं और फिर भी वह एक ही उपयोग रहता है, इसही प्रकार यहाँ भी। दो उपयोग एक साथ नहीं होते, इसका यह तात्पर्य नहीं कि दो या अनेक पदार्थों का ज्ञान एक साथ नहीं होता; किन्तु यह है कि चेतनागुण की दो पर्यायें एक साथ नहीं होतीं। उपयोग चेतना गुण की अवस्था का नाम है। चेतनागुण ही क्या, किसी भी गुण की एक समय दो पर्याय नहीं हो

‡ सह द्वौ न स्तः। उपयोगादित्यार्ष वचनात्। —अष्टसहस्री छपी पेज २८१

सकतीं। एक समय में ही एक ही उपयोग के द्वारा अनेक पदार्थों का अपने २ स्वरूप के अनुसार प्रतिभास हो सकता है, इस बात का समर्थन हम पहिले विशदता के साथ कर चुके हैं। जबकि हम लोगों में ही इस बात की व्याप्ति सिद्ध नहीं होती कि जब हम बोलते, सुनते या समझते हों, उस समय हमारा उपयोग उन्हीं विषयों पर सीमित रहे, फिर इस बात को केवली के सम्बन्ध में कैसे स्वीकार किया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि केवली का प्रश्नों का जानना, उनका उत्तर देना और उपदेश देना आदि बातें उनकी सर्वज्ञता में बाधक नहीं। वे सर्वज्ञ होते हुये भी यह सब कार्य कर सकते हैं। प्रश्न—भले ही आप व्याख्यान देते समय या किसी शब्द को सुनते या उसके अर्थ को समझते समय अन्य पदार्थों को भी जानते रहें किन्तु प्रश्नोत्तरों के समय यह बात घटित नहीं होती। प्रश्नोत्तरों के समय तो हमारा ध्यान उन्हीं पर रहता है। उत्तर—प्रश्नोत्तर दो प्रकार के होते हैं; एक वे जिनके लिये विचार की आवश्यकता पड़ती है और दूसरे वे जिनके लिये विचार की आवश्यकता नहीं पड़ती। गणित शास्त्र के पारङ्गत विद्वान् से यदि कोई पूछता है कि दो और दो कितने होते हैं तो वह इसका उत्तर तुरन्त दे देता है कि चार। यह एक ऐसा उत्तर है जिसके लिये विचार की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी को यदि छोटे बालक के सामने रख दिया जाता है तो उस को इसी के उत्तर के लिये सोचना पड़ता है। अतः यही उस बालक की दृष्टि से दूसरे प्रकार का प्रश्न बन जाता है। स्पष्टता के लिए यों समझियेगा कि जिस विषय के सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान है उसके सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर के लिये विचार की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु जिसके सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान नहीं है उसके सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर के लिये विचार की आवश्यकता पड़ती है। जहाँ प्रश्नों के उत्तरों में विचार की आवश्यकता नहीं पड़ती वहाँ यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनके समय हमारा ध्यान उन्हीं पर रहता है। हम अनुभव करते हैं कि इस प्रकार के प्रश्नोत्तर करते समय भी हम अन्य बातों को जानते ही रहते हैं। केवली प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं, उनके ज्ञान में जगत के समस्त पदार्थ प्रतिभासित होते ही रहते हैं। अतः यह भी स्पष्ट है कि उनको प्रश्नोत्तरों के लिये किसी भी प्रकार के विचार की आवश्यकता नहीं। अतः यह बात भी केवली के उपयोग को विषय विशेष की ही तरफ़ प्रमाणित नहीं करती। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केवली के साथ प्रश्नोत्तरों का होना और उनका उपदेश करना आदि बातें भी उनमें सर्वज्ञता की—एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों के जानने की—बाधक नहीं हो सकतीं। केवली के एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान के अभाव को प्रमाणित करने के लिये दरबारीलाल जी ने तीन बातें लिखी थीं, जिनमें से दो पर तो हम पहिले ही विचार कर चुके हैं तथा तीसरी पर इस लेख में किया गया है। इससे स्पष्ट है कि दरबारीलालजी की ये तीनों ही बातें केवली में एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान का अभाव प्रमाणित करने में कार्यकारी नहीं।

[क्रमशः]

संघ का प्रचार कार्य !

उदगीर निज़ाम राज्य में एक ताल्लुका है। इसकी जनसंख्या दस हज़ार से अधिक है यह हैदराबाद से करीब १७५ मील दूरी पर है। हैदराबाद में उपसर्ग विजय के पश्चात् निज़ाम राज्य में विहार करते हुए उपसर्गविजयी १०८ श्रीजयसागर जी महाराज जब उदगीर पहुँचे तब आपसे वहाँ के आर्यसमाजियों ने कुछ प्रश्न किये। मुनिराज ने आर्यसमाजियों के प्रश्नों के उत्तर बड़ी ही योग्यता से दिये, जिससे जैनधर्म की वहाँ अपूर्व प्रभावना हुई। आर्यसमाज को यह बात सहन न हुई और उसने कुछ ही दिन बाद जब मुनिराज लातूर पहुँच चुके थे तो आपको शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज दे दिया! मुनिराज को यह चैलेञ्ज श्री वंशीलाल जी, उप-प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा निज़ाम राज्य की तरफ़ से दिया गया था। चैलेञ्ज पत्र में लिखा था कि यदि आप शिवरात्री के समय उदगीर पहुंचकर आर्यसमाज से शास्त्रार्थ न करेंगे तो आपकी पराजय पत्रों में प्रकाशित कर दी जायगी!

आर्यसमाज को यदि दिगम्बर मुनि से शास्त्रार्थ करना था तो उसका कर्तव्य था कि वह उनके स्थान पर पहुंच कर उनसे शास्त्रार्थ करता। ऐसा न करके आर्यसमाज का दिगम्बर मुनि को शास्त्रार्थ के लिए अपने स्थान पर बुलाना और न आने पर पराजय प्रकाशित करने की धमकी देना किसी भी तरह समुचित नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्था में भी आर्यसमाज इससे अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा न कर सके, अतः श्री मुनिराज फिर उदगीर पहुंचने के लिए लातूर से रवाना हो गये।

उदगीर जैन पंचान ने इस शास्त्रार्थ की सूचना दि० जैन शास्त्रार्थ संघ के कार्यालय में भी भेज दी थी। अतः उसके प्रधान मन्त्री पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ और ब्र० कुँवर दिग्विजय सिंह जी भी यथा समय उदगीर पहुँच गये थे। इस शास्त्रार्थ का आन्दोलन दोनों ही तरफ़ से अपने २ स्थानों पर यथेष्ट रीति से किया गया था। अतः शास्त्रार्थ को सुनने के लिए जनता भी दूर २ से आई थी। इन सब बातों के होने पर भी ताल्लुकेदार अव्वल ज़िला बीदर, पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ज़िला बीदर और मजिष्ट्रेट उदगीर ने इसकी रुकावट के आर्डर मन्त्री आर्यसमाज उदगीर और मन्त्री मुनि महाराज के पास भेज दिये। आर्डरों में यह लिखा था कि मालूम हुआ है कि शिवरात्री के समय आर्यसमाज के जलसे में आर्यसमाज उदगीर और जैन गुरु श्री जयसागर जी महाराज में शास्त्रार्थ होने वाला है। सरकार को इस शास्त्रार्थ से शान्तिभंग होने की आशा है। अतः वह आर्यसमाज उदगीर को सूचना देती है कि वह इस प्रकार के शास्त्रार्थ को अपने उत्सव के समय न करे। आर्यसमाज को यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उसके इस उत्सव में कोई ऐसा व्याख्यान भी न होने पावे जिसमें दूसरे धर्म का खण्डन किया गया हो। जहाँ कि राज्य के उक्त कार्यकर्त्ताओं ने आर्यसमाज

पर उपर्युक्त पाबन्दियाँ लगाई थीं वहीं इन्होंने मंत्री महोदय श्री जयसागर जी महाराज को भी इस बात की सूचना दी थी कि वे मुनिराजसे निवेदन करदें कि वे उदगीर आने का कष्ट न करें।

राज्य की तरफ़ से इस प्रकार के प्रतिबन्ध के तीन कारण बतलाये गये हैं—

पहिला यह कि लातूर के किसी जैन महानुभाव ने इस अवसर पर शान्तिभंग होने की संभावना बतलाई थी, अतः सरकार इस अवसर पर शान्तिभंग होना मुमकिन समझती है। दूसरा कारण यह है कि आर्यसमाज ने अपने उत्सव की स्वीकारता माँगते हुए प्रोग्राम में शास्त्रार्थ का प्रोग्राम नहीं दिया था। तीसरे यह कि मुनिराज को सरकारवाली की तरफ़ से केवल बीदर तक आने की इजाज़त थी।

कुछ भी सही इस प्रकार के प्रतिबन्ध को आर्यसमाज और दिगम्बर जैनसमाज उदगीर, दोनों ही ने हानिकारक समझा और इसके हटाने का संयुक्त प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया। तदनुसार दोनों समाजों की तरफ़ से स्थानीय मजिष्ट्रेट की कोर्ट में एक सम्मिलित दरख्वास्त दी गई। दरख्वास्त में लिखा था कि हम लोग सदैव से भाई भाई की भांति रहते आये हैं। हम में किसी प्रकार का झगड़ा नहीं है। दोनों समाजों के शास्त्रार्थ से शांतिभंग तो दूर रही यहाँ तो मनोमालिन्य भी न हो सकेगा, हम लोग इसके लिये उत्तरदायि हैं। अतः शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध आर्यसमाज और जैन मुनि श्रीजयसागर जी महाराज पर लगाये गये हैं उन्हें वापिस ले लिया जाय। यह दरख्वास्त १२ फ़रवरी सन् १९३४ को दी गई थी। इधर यह कार्रवाई हो रही थी तो दूसरी तरफ़ यानी ताल्लुकेदार अव्वल ज़िला बीदर और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के आर्डरों की वापिसी का प्रयत्न भी प० राजेन्द्रकुमार जी बड़े ही वेग से कर रहे थे। सौभाग्य से १३ फ़रवरी को स्वयं पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट और सहायक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ज़िला बीदर उदगीर ही आगये थे। सहायक महानुभाव तो स्वयं महाराज के दर्शनार्थ भी महाराज के ही स्थान पर आये थे। आप दोनों महानुभावों से पं० राजेन्द्रकुमार जी की कई घण्टे तक बात चीत हुई और अन्त में इन्होंने यह बात स्वीकार करली कि मुनि महाराज से पाबन्दियाँ हट जानी चाहियें। तदनुसार आप दोनों ही महानुभावों ने ज़ोरदार शिफ़ारिस के साथ एक विस्तृत रिपोर्ट १३ फ़र्वरी को ही रात्रि को ख़ास तौर से बतौर अर्जेण्ट काग़ज़ के ताल्लुकेदार अव्वल के पास बीदर भेजदी। बीदर उदगीर से क़रीब ६० मील की दूरी पर है। ताल्लुकेदार साहब अव्वल ज़िला बीदर ने भी पुलिस के ऑफ़ीसरान की शिफ़ारिस को मानते हुए मुनिराज से पाबन्दी हटाली और उनको उदगीर आने की इजाज़त दे दी। ताल्लुकेदार सा० अव्वल ज़िला बीदर का यह पत्र पं० राजेन्द्रकुमार जी को १४ फ़र्वरी को शाम के समय ही मिल गया था। अतः १५ फ़र्वरी को प्रातःकाल महाराज को गाजे बाजे के साथ उदगीर में लाया गया और इसके बाद उदगीर में धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई।

दिगम्बर मुनि श्री जयसागर जी महाराज निर्भय एवं सिंहवृत्ति के व्यक्ति हैं। आपको जिस समय इस प्रतिबन्ध के दूर होने की सूचना दी गई

थी उस समय आप मलकापुर—उदगीर से एक मील की दूरी पर थे। आपने यह संकल्प कर लिया था कि जब तक यह प्रतिबन्ध दूर न होगा तब तक आहार ग्रहण नहीं करूंगा। आपके उपवास का दूसरा ही दिन था कि यह सब कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो गया और तीसरे दिन ही आपका उदगीर विहार एवं आहार भी उदगीर हुआ था। इधर यह कार्य हो रहा था तो दूसरी तरफ़ शास्त्रार्थ की बात भी बिलकुल बंद नहीं थी। शास्त्रार्थ का प्रतिबन्ध आर्यसमाज उदगीर और मुनिराज के सम्बन्ध में था। मुनिराज का कहना था कि शास्त्रार्थ को मुझे रुकावट है न कि पं० राजेन्द्रकुमार जी को। अतः उनको आर्य समाज के पण्डाल में जाकर शास्त्रार्थ करना चाहिये और जैनधर्म की विजयपताका फहरा ही देना चाहिये। मुनिराज की इस आज्ञा के अनुसार ही आर्यसमाज से शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में आवश्यक बातें निश्चय हो गई थीं और १३ व १४ फ़र्वरी को शाम के ५ बजे से ८ बजे तक 'क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है' और 'क्या ईश्वर जगत् कर्त्ता है' विषयों पर क्रमशः शास्त्रार्थ होना निश्चय हो गया था। इस निश्चय के अनुसार आर्यसमाज ही के पण्डाल में दोनों समाजों के प्लेटफ़ार्म लग गये थे, पुस्तकें टेबुलों पर रखदी गई थीं और वादी और प्रतिवादी विद्वान् भी एक दूसरे के सामने आ डटे थे। कुछ ही मिनट में शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने वाला था कि सहायक ज़िला सुपरिन्टेन्डेण्ट बीदर ने जो कि वहाँ पहिले से ही पुलिस के जवानों के साथ मौजूद थे, आर्यसमाज को एक और नोटिस दे दिया। नोटिस का मतलब यह था कि तुम बिना आज्ञा किसी से भी शास्त्रार्थ नहीं कर सकते, क्योंकि तुमने अपने उत्सव के प्रोग्राम में शास्त्रार्थ का प्रोग्राम नहीं दिया है। इस प्रकार फिर भी शास्त्रार्थ न हो सका। अब इस सम्बन्ध में जैन समाज की तरफ़ से उदगीर आर्यसमाज को लिख दिया गया है कि यदि आपका दिगम्बर मुनि श्री जयसागर जी महाराज को दिया हुआ शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज अब भी खड़ा है तो हम अब भी शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। आप इसके लिये मुनासिब आज्ञा प्राप्त करलें। यदि आप इस शास्त्रार्थ को किसी दूसरे स्थान पर करना चाहेंगे तो हमें इसमें भी कोई आपत्ति नहीं होगी। इस सम्बन्ध में अगाड़ी जैसा भी होगा, पाठकों को यथा समय सूचित करदिया जावेगा। इन्हीं दिनों उदगीर में श्री ऋषभ निर्वाणोत्सव भी मनाया गया था जिसमें पूजन आदि के अतिरिक्त बाहर से आये हुये विद्वानों के व्याख्यान भी हुये थे। इसके अतिरिक्त १५ फ़र्वरी की शाम को पं० राजेन्द्रकुमार जी का एक भाषण भी हुआ था। आपके इस भाषण का विषय गृहस्थ धर्म था। उपस्थित जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और कई भाइयों ने नियम भी लिये। अन्त में पं० राजेन्द्रकुमार जी १५ फ़र्वरी की रात्रि की गाड़ी से हैदराबाद होते हुये अम्बाला के लिये रवाना होगये और १८ फ़र्वरी की रात्रि को अम्बाला आगये। ब्रह्मचारी कुंवर दिग्विजयसिंह जी उदगीर रह गये और अभी आप कुछ समय तक मुनि महाराज के साथ ही भ्रमण करेंगे।

मंत्री—उपदेशक विभाग,
दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

महावीराष्टक ।

[ले०—बा० मोहनलाल जैन "श्रीपति" बी० ए०]

जिनके विमल ज्ञान दर्पण में सब पदार्थ एकत्र लखात।
जग जीवों के हृदयस्थल की गुप्त प्रगट जानें सब बात ॥
जो सत्पंथ प्रदर्शन करते जग जीवों को सूर्य समान ।
हों मेरे लोचन पथ गामी वे श्री महावीर भगवान ॥ १ ॥

ईषत् अरुण अक्रोध विलोचन प्रकटित करते करुणाभाव ।
कमलासन पै निश्चल मुद्रा युक्त विराजे हों बिनचाव ॥
जिनकी अतिशय शान्त मूर्ति है अंतरंग है विमल महान ।
हों मेरे लोचन पथ गामी वे श्री महावीर भगवान् ॥ २ ॥

जिनके पद पर खेल रहा हो देव-मुकुट-मणियों का नूर ।
जिनका ध्यान तुरंत बुझाता जन मन-दुख-दवारि भरपूर ॥
जिनकी कृपा वारि-धारा नित, करती है शीतलता दान ।
हों मेरे लोचन पथ गामी वे श्री महावीर भगवान् ॥ ३ ॥

जिन पदपूजा भावानंदित असित जोनि जानक मंडूक ।
क्षण में हुआ सर्व गुण आगर सुखागार पति देव अचूक ॥
जिन पदपंकज सेइ भक्त जन लहैं मोक्ष पद अगम अमान ।
हों मेरे लोचन पथ गामी वे श्री महावीर भगवान् ॥ ४ ॥

कंचन कांति समान प्रभाधर यद्यपि हैं अलक्ष अशरीर।
नाना रूप धरें जग भासैं यद्यपि एक अमान गभीर ॥
अज, तथापि सिद्धार्थज अद्भुत सम्पति तदपि विराग महान् ।
हों मेरे लोचन पथ गामी वे श्री महावीर भगवान् ॥ ५ ॥

जिनकी वाणी सुर सरिता में नाना नीति लहरि संचार ।
अति निर्मल, पंडित मराल गण करते जहाँ सदैव विहार ॥
जिनके ज्ञान वारि में करते अब भी भक्त समूह स्नान।
हों मेरे लोचन पथ गामी वे श्री महावीर भगवान् ॥ ६ ॥

अविनाशी, अप्रतिहत बलधर तीन लोक विजयी मुनिराज।
मोद मयी सुशान्ति रजधानी के अनुपम अवाध महाराज ॥

जब कुमार थे तभी मार को दे कुमार तोड़ा अभिमान।
हों मेरे लोचन पथ गामी वे श्री महावीर भगवान् ॥ ७ ॥
जो अज्ञान रोग हरने को हैं आकस्मिक वैद्य सुजान ।
बंधु अकारण, ख्यात विरद वर मंगल कारी महिमा वान ॥
शरणागत रक्षक, कृपालुचित उत्तम गुण गण के आधान।
हों मेरे लोचन पथ गामी वे श्री महावीर भगवान ॥ ८ ॥

अन्मोलबूटी—आक या मदार

[अनुवादक :—पंडित गोविन्द राम जी शर्म्मा, ज़िमींदार, काशीरामपुर-कोटद्वार]

परिचय

इसके नाम वैसे तो हर भाषा में कई २ और अलग २ हैं ही, किन्तु साधारणतः हिन्दी भाषा में इसको मदार, आक, आख, अकवा, अनकव्वा, अकौन आदि कहते हैं।

इस के पेड़ जंगल में भूड़ों (रेतीली जगह) पर खुदरों (स्वयमेव ही उत्पन्न हो जाने वाले) बहुत होते हैं। इसकी डालियां अधिक से अधिक पांच छः फुट तक लम्बी होजाती हैं, जो ज़्यादातर ज़मीन पर ही फैली व नीचे को झुकी रहती हैं।

इसके पत्ते बड़ के पत्तों की तरह दलदार होते हैं, जिन पर कि सुफ़ेद रुवां सा जमा होता है।

इसके फल तोते की चोंच की तरह चोंचदार और कुछ २ आम की सी शक्ल के होते हैं, जिनके पक कर सूख जाने पर उनके अन्दर से काले व ख़ाकी रंग के चपटे बीज और बड़ी कोमल सुफ़ेद रंग की रुई निकलती है।

इस पेड़ की टहनी, पत्ते, फल, फूल, सब ही अङ्गों में सफ़ेद रंग की दूध जैसी रतूबत होती है, जो कोई सी भी चीज़ तोड़ने पर निकल पड़ती है। तथा सब ही अङ्ग विषैले होते हैं जो गर्म मिज़ाज वालों को अधिक लाभदायक नहीं होते।

यह पौधा आम तौर पर निम्नलिखित तीन तरह का पाया जाता है, पर लक्षण लगभग सब ही के समान होते हैं :—

(१) वह जिसका पेड़ बड़ा, फूल सुफ़ेद, पत्ते बड़े बड़े, खूब ज़्यादा दूध वाला।

(२) वह जिसका पेड़ इससे छोटा, फूल सुफ़ेद अन्दर कुछ बनफ़शी रंग मायल सुर्ख़ी, दूध की बहुत कमी।

(३) वह जो सबसे छोटा, फूल पिस्तई रंग मायल सुफ़ेद या पीला, कम दूध वाला।

इन सब में सर्वोत्तम नं० (१) है।

गुणावगुण

दूधः—गरम खुश्क। कफ़ नाशक, उदर रोग नाशक, खाल में ज़ख़्म डालने वाला, खाने में

ज़हरीला—दिल व जिगर व आंत व मेदे में सूजन और सोज़िश पैदा करता है। इसका उचित रीति से सेवन करना आंख की सुर्खी, कम दीखना, आंखों से पानी जाना, आंखों के पलकों का मोटापन, लाली, खाँसी, दमा, गठिया, दान्त का दर्द, बवासीर, खुजली, दाद, फुन्सी, फोड़ा, गंज, मुह आना, बिच्छू व सांप का ज़हर, बावला कुत्ता व गीदड़ का ज़हर, नपुंसकता, जिगर की बीमारी, पेट के कीड़े, गुल्म, कोढ़, जलन्धर वग़ैरा को लाभ पहुँचाता है।

फूल व कली:—गरम खुश्क। युक्ति पूर्वक सेवन करनेपर अजीर्ण, वायुगोला, मन्दाग्नि, नपुंसकता, तपलर्ज़ा, स्वांस, खाँसी, तिल्ली, इत्यादि को लाभदायक हैं।

पत्ते व टहनी:—गर्म खुश्क। फ़ालिज, जलन्धर, खुजली, खाँसी, दमा, स्वांस, कानदर्द गठिया, बवासीर, आतशक, नासूर, आधा सीसी, सुफेद दाग़, पेट के रोग, हैज़ा, कमज़ोरी वग़ैरा रोगों को लाभदायक हैं।

छाल व जड़:—गर्म खुश्क। दस्तावर है। दर्द शूल, दर्द हूक, हैज़ा, आतशक, मिर्गी, आंखों की बीमारी, नाखूना, दांत का दर्द, पसली का दर्द, ज़हर सांप व बिच्छू वग़ैरा को लाभदायक है।

रुई:—पथरी, खून बहना, कफ़ व वायु के रोगों को लाभदायक है।

गोंद:—गर्म खुश्क। कुछ वैद्यों की राय में यह ओस है जो कि इस पेड़ की शाखों पर जमा हो जाती है और कुछ की राय में पेड़ के अन्दरसे निकल कर ही जम जाने वाली चीज़ है। यह गोंद सफ़ेद और स्याह दो तरह का होता है। सफ़ेद उत्तम है व गर्म भी कम है। गोंद का स्वाद कुछ मिठास लिए हुए ज़रा खट्टा मालूम होता है व खाने के बाद तलखाहट देता है। आंख में आँजने से निगाह (दृष्टी) को शक्ति देता है। पेट के सुद्दे को गलाता है। पुरानी खाँसी, छाती का दर्द, गुर्दा, मसाना, फेफड़े के रोग, सिल वग़ैरा रोगों को लाभदायक है। मगर सिर दर्द पैदा करता है। इसकी शक्ति २० वर्ष तक स्थायी रहती है। बहुत मुश्किल से मिलता है।

विष उपाय

साधारणतः बादाम का तेल, गाय का दूध, घी व कै करने से विष हरण होता है।

यदि किसी ने ग़लती से बिना युक्ति इसका दूध खा लिया हो तो गाय का दूध और घी खूब खाना चाहिए। गाय का दूध, घी इस के दोष व अवगुणों को हरण करने की शक्ति रखता है। यदि कभी इस का दूध आंखों में लग जाए तो बकरी के दूध में साफ़ कपड़ा भिगो कर आंखों पर रक्खें व गाय का घी लगायें। *

---

* यह लेख स्वर्गीय पं० बिहारीलालजी जैन "चैतन्य" द्वारा लिखित उर्दू भाषा की प्रसिद्ध पुस्तक "अनमोलबूटी" के प्रथम अध्याय का भाषानुवाद है। यदि 'दर्शन' के पाठकोंको यह लेख रुचिकर हुआ और 'दर्शन' में स्थान मिलता रहा तो पुस्तक के शेष अध्यायों का अनुवाद भी आगामी प्रगट किया जायगा, जो पूर्ण होने पर पाठकों के पास एक अच्छी वैद्यक विषय की पुस्तक रूप में तैयार हो जायगा। —लेखक

* समाचार-संग्रह *

—रामपुर मनियारान में सहारनपुर ज़िला परिषद् का अधिवेशन ता० २३ मार्च सन् ३४ को होने के समाचार गत अङ्क में प्रगट किये गये थे। किन्तु अब मंत्री महोदय सूचित करते हैं कि अधिवेशन २३ मार्च को न होकर २४ मार्च को बड़े धूमधाम से होगा। साथ ही सर्व भाइयों से उस उत्सव में शरीक होने की प्रार्थना भी करते हैं।

—जैनकुमार सभा आगरा ने रा० ब० सेठ टीकमचन्द् जी साहब अजमेर की अचानक मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुये उनके कुटुम्बियों के प्रति समवेदना प्रकट की।—कपूरचन्द जैन, आगरा

—१८ फ़र्वरी की दोपहर को देहली में जैन-मित्र मण्डल के दफ्तर में परिषद् प्रचार कमेटी की मीटिंग हुई जिसमें कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए तथा 'वीर' का प्रकाशक नवम्बर १९३६ तक बा० मंगलकिरण जैन मल्हीपुर को बनाया गया। उस समय तक 'वीर' का हानि लाभ उन्हीं का होगा।

—थूबौन जी का मेला सानन्द समाप्त हो गया; करीब १५०० आदमियों की उपस्थिति थी। अत्यन्त आवश्यक ९ प्रस्ताव पास हुये।

—सोनागिर जी का मेला, चैत्र बदी २ तारीख ३ मार्च से होगा। बम्बई पेशावर मेल और एक्सप्रेस भी स्टेशन पर खड़ी होंगी।

—श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू सातवीं बार जेल गये हैं। आपको दो वर्ष सादी कैद हुई है।

—मुंगेर में अभी तक लाशें निकल रही हैं। ७ फर्वरी को मलबे के नीचे से एक जीवित मनुष्य निकाला गया है।

—लंदन के अजायबघर में एक देसी पुस्तक है जिसका मूल्य ३। लाख पौण्ड है। यह संसार में सब से मंहगी पुस्तक है।

—अम्बाला छावनी के रा० ब० ला० बनारसी दास ने भूकम्पपीड़ितों की सहायतार्थ ६०० मन आटे की दो गाड़ियाँ भिजवाई हैं, जिसका मूल्य २०००) रु० होता है।

—अमेरिका का एक वैज्ञानिक दुनिया भर के दौरे से वापिस आया है। उसने हिमालय की एक चोटी पर एक गुफा के भीतर से मनुष्य की एक खोपड़ी बरामद की है। वैज्ञानिक का कथन है कि उक्त खोपड़ी एक लाख वर्ष पहले की है। आजकल इतने बड़े सिर वाला मनुष्य मिलना असम्भव है।

—संसार का इस समय सब से गर्म स्थान हिमालय पर्वत के मध्य भाग का काश्मीर का लाद्दक ज़िला है। वहां कभी कभी १६० डिग्री की गर्मी होती है।

—लकड़ी के बुरादे से भी शक्कर तैयार की जा रही है। सौ पौंड से ६० पौंड शक्कर निकलती है। थोड़े दिनों में भारत के बाज़ार में यह शक्कर भी दिखाई देगी।

—जापान के एक वैज्ञानिक प्रयत्न कर रहे हैं कि मनुष्य का दाँत टूटनेपर उसके स्थान पर जानवरों के दाँत लगाये जा सकें। अबतक आपने मनुष्य के दाँत गिलहरी को लगाये हैं।

—इङ्गलैण्ड में औसतन २ करोड़ ४० लाख व्यक्ति सिनेमा देखते हैं।

Regd. No. A. 2379

—पंजाब कौंसिल की सदस्या श्रीमती लेखवती जैन ने एक प्रस्ताव पेश किया है कि म्युनीसीपल कमेटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के मत-दाताओं में नाम लिखाने में स्त्री-पुरुषों में जो भेद है उसे स्त्रियों के सम्बन्ध में साधारणतः हटा दिया जाय और उन्हें आज्ञा दी जाय कि वह म्युनीसीपल कमेटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की सदस्या बन सकें। श्रीमती लेखवती ने कौंसिल हाल में अपना प्रथम भाषण देते हुए कहा कि आजकल कमेटियों और बोर्डों में कुप्रबन्ध का ज़ोर है। स्त्रियां चाहती हैं कि वह इनके प्रबन्ध को बेहतर बनाने का प्रयत्न करें। उन्होंने सिद्ध किया है कि महिलायें सब प्रकार से इस कार्य के योग्य हैं।

—२० फर्वरी को शाम के ७ बजे बोबोली (विजय नगर) में भूचाल आया। भूकम्प तीन या चार मिनिट तक रहा। ज़मीन के अन्दर से फुंकारने जैसी आवाज़ सुनाई पड़ने लगी थी। कोई नुक़सान नहीं हुआ।

—१७ फ़रवरी को सवेरे ५॥ बजे और ८। बजे दरभंगा में भूकम्प के धक्के और सन्नाटे की आवाज़ें हुईं। इसके थोड़ी देर बाद आकाश मेघाछन्न हो गया। हवा की सनसनाहट के साथ पानी बरसने और ओले पड़ने लगे। चारों ओर लोग भयभीत हो गये। राम राम और अल्लाहोअकबर की आवाज़ सड़क पर खूब सुनाई दे रही थी।

—अब तक वायसराय बिहार सहायक फण्ड में क़रीब २५ लाख रुपये जमा हो गये हैं।

—बाबू राजेन्द्रप्रसाद की संरक्षकता में बिहार केन्द्रीय सहायता कोष में क़रीब १८ लाख रुपये जमा हो चुके हैं।

—रायल एयर फोर्स की लारी से टकरा कर एक कसाई अम्बाला छावनी में मर गया।

—डबलिन (आयरलैण्ड) में एक तीन वर्षीय बच्चा है, जो लोहे की जन्जीरों को तोड़ डालता है, और मोटी मोटी लोहे की सलाखों को मोड़ देता है। शारीरिक शक्ति के साथ-साथ उसकी मस्तिष्क-शक्ति ने भी काफ़ी उन्नति की है। वह पिआनो अच्छी तरह बजाता है।

—बर्लिन (जर्मनी) में हाल ही में छोटे २ कीड़ों की एक नुमाइश हुई, जिसमें २००० मक्खियों की भी नुमाइश हुई, जिन्हें एक वैरन ने पाल रक्खा था।

—इङ्गलैण्ड में मकानों को धुएँ से जितना नुकसान होता है, उसकी मरम्मत पर मकान मालिकों को २० लाख पौण्ड वार्षिक व्यय करना पड़ता है।

—बर्लिन की ख़बर है कि हर हिटलर की सरकार ने इस सम्बन्ध में प्रोपैगेण्डा शुरू किया है कि स्त्रियां घरों में रहकर बच्चों का लालन पालन करेंगी तो उन्हें छात्रियाँ इनाम में मिलेंगी।

—अफ़्रीका में एक काला साँप होता है, जो ३५ मील प्रति घण्टा की रफ़्तार से दौड़ सकता है। यह साँप अत्यन्त ज़हरीला होता है और अफ़्रीका में लोग इससे बहुत डरते हैं।

—फ़ोटो का कैमरा कई प्रकार का है। सबसे छोटा अंगूठे के नख के बराबर है।

—डेनमार्क के वैज्ञानिकों ने दक्षिण अफ़्रीका के तट के निकट ह्वेल मछली का एक ६ फ़ीट लम्बा बच्चा मालूम किया है, जो बड़ा होकर १९ फ़ीट लम्बी मछली बन जाता है। वैसे इस मछली के बच्चे की लम्बाई ३ इञ्च से अधिक नहीं होती।

—डा० वसाई हौस का परिवार संसार में सबसे बड़ा है। इसमें कुल जनसंख्या ८४७८ है। इस परिवार में औसतन ५ बच्चे रोज़ पैदा होते हैं।

"चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस बिजनौर से छप कर प्रकाशित हुआ।

तारीख १६ मार्च सन् १९३४ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।
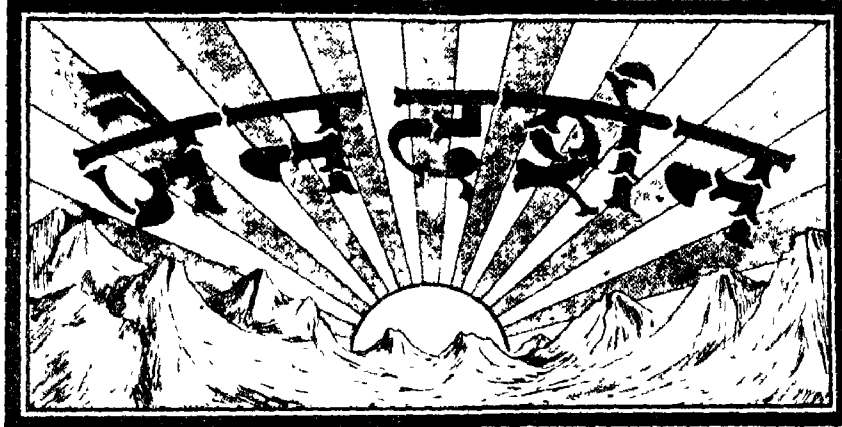
वर्ष १ अङ्क १७

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। —ऑनरेरी सम्पादक— पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

धन्यवाद !

धूलिया (खानदेश) निवासी श्रीमान सेठ संसकरण जी सेठी ने जैनदर्शन के विशेषांक के लिये ५) की सहायता की स्वयं स्वीकारता प्रदान की है। एतदर्थ आपको धन्यवाद है।

जैनदर्शन किसी दलबन्दी में न पड़कर तथा झगड़ालू लेखों से अछूता रहकर निर्भीकरूप से समाज सेवा कर रहा है। प्रथम वर्ष होने के कारण जैनदर्शन पर आर्थिक संकट आना अनिवार्य है। इसके लिये जिन समाज हितैषी सज्जनों को 'दर्शन' से हार्दिक प्रेम और सहानुभूति है उन्हें जैनदर्शन के ग्राहक बढ़ाने का उद्योग करना चाहिये। 'जैनदर्शन' की ग्राहक संख्या बढ़ाना समाज सेवा का मार्ग मजबूत करना है। पर्याप्त ग्राहक संख्या हो जाने पर "जैनदर्शन" अपने पैरों पर खड़ा हो जायगा।' अतः प्रत्येक उत्साही ग्राहक को दो दो ग्राहक बना कर दर्शन की सहायता में अवश्य हाथ बटाना चाहिये।

विशेषांक के लिये सहायक महानुभावों की आवश्यकता है।

—सम्पादक।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

"जैनदर्शन" की आवश्यक सूचनायें!

(१) "जैनदर्शन" का प्रकाशन हर महीने की पहिली और सोलहवीं तारीख को हो जाता है।

(२) इस का वार्षिक मूल्य केवल ३॥) है, किन्तु संघ के मेम्बरों से वार्षिक मेम्बरी फ़ीस सहित ३) एवं संस्थाओं तथा विद्यालयों से केवल २) लिया जाता है। इस वर्ष उपहारी पुस्तकों के पोस्टेज के लिये प्रत्येक से =) और अधिक लिया जा रहा है।]

(३) लेख और परिवर्तन के पत्र "पं० अजितकुमार जी जैन शास्त्री चूड़ीसराय, मुलतान सिटी" के पास, समालोचनार्थ पुस्तकों की २-२ प्रतियाँ "पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री स्याद्वाद जैन विद्यालय भदैनी घाट बनारस" के पास और प्रकाशनार्थ समाचार आदि "प्रकाशक जैनदर्शन C/o 'चैतन्य' प्रेस, बिजनौर" को भेजना चाहिये।

(४) इस पत्र में अश्लील व धर्म-विरुद्ध विज्ञापन नहीं छापे जाते। इसी कारण विज्ञापन छपाने के रेट बहुत कम रक्खे गये हैं, जो निम्न प्रकार हैं। इनमें किसी प्रकार भी कमी करने के लिये लिखना व्यर्थ होगा। कुल रुपया पेशगी लिया जाता है, अतः कृपया विज्ञापन के साथ ही कुल रुपया भेजिये:—

	एक बार	३ मास (६ बार)	एक वर्ष (२४ बार)
१. साधारण पूरा पृष्ठ	४)	२०)	७२)
२. साधारण आधा पृष्ठ	२॥)	१२॥)	४५)
३. टाइटिल पूरा पृष्ठ (पृष्ठ २-३-४)	६)	३०)	१००)
४. टाइटिल आधा पृष्ठ	४)	२०)	६०)

नोट—मुख पृष्ठ पर विज्ञापन छपाई केवल आधे ही पृष्ठ की ५) ली जाती है। साधारण पृष्ठों में आधे पृष्ठ से कम जगह के विज्ञापनों पर ।) प्रति लाइन प्रति कालम के हिसाब से चार्ज किया जाता है।

सर्व प्रकार के पत्र व्यवहार का पता:—

मैनेजर—"जैनदर्शन" C/o. दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भस्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमनिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ } बिजनौर, चैत्र शुक्ला १—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० { अङ्क १७

खंड-प्रलय

वह माघ वदी अमावस्या के दिन के सवा दो बजे का समय भी बड़ा भयानक था जबकि अनिष्ट ग्रहों की सूचनानुसार भूकम्प हुआ। भूकम्पकी भयानक लीला हमने बिहार के अनेक नगरों मे तथा मुंगेर में जाकर प्रत्यक्ष देखी। क्या देखा, इस प्रश्न का उत्तर लेखनी लिख नहीं सकती, रसना कह नहीं सकती, जितना लिखा कहा जावे थोड़ा है।

अभिमानी पुरुषों को शिक्षा देने के लिये यह एक भीषण चित्र था। इस दयनीय समय में श्रीमान बा० हरनारायण जी भागलपुर, बा० कस्तूरचन्द्र जी नवादा, श्रीयुत मनोहरलाल जी पांड्या कलकत्ता आदि अनेक जैन वीरों ने पीड़ित जनता को उद्योग करके सहायता पहुंचाई है। वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस भूकम्प ने आरा के अनेक जिनालय हिलाकर जर्जरित कर दिये हैं, पटना, पावापुरी, नाथनगर, बटेश्वर आदि कई तीर्थक्षेत्रों को भी बहुत हानि पहुंचाई है। मुंगेर नगर ही जब समूचा धराशायी हो गया तो वहां का जैन मन्दिर भी क्यों न धराशायी होता।

आपका न्यायोपार्जित द्रव्य इन मंदिरों के जीर्णोद्धार के लिये खर्च होना चाहिये। बिहार के लाखों मनुष्य तबाह हो गये हैं उनको वस्त्र अन्न, घर आदि की अनिवार्य आवश्यकता है; उसके लिये भी आपका धन खर्च में आना चाहिये।

धन, जीवन की तो यह दशा है जो कि भूकम्प ने केवल ढाई मिनट के भीतर बिहार प्रान्त में दिखला दी। फिर आप इस पर क्या अटल स्वामित्व समझे बैठे हैं। आप यदि इस धनको अपने साथ ही रखना चाहते हैं तो उपर्युक्त क्षेत्रों में सहर्ष यथाशक्ति दान कर दीजिये।

तीर्थयात्रा

मुलतान नगर से माघ वदी द्वितीया के दिन तीर्थयात्रा संघ बड़ी धूमधाम के साथ रवाना हुआ था जो कि अनेक सिद्धक्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों की वंदना करता हुआ, अनेक मंदिरों के दर्शन करता हुआ तथा बहुत से नगरों में पर्यटन करता हुआ चैत्र वदी तृतीया के दिन आनन्दसहित वापिस मुलतान आ गया। संघ के समाचार समय समय पर पत्रों में प्रकाशित होते रहे हैं, अतः उस विषय को पुनः लाना व्यर्थ है।

इसी संघ के साथ हमको भी तीर्थयात्रा करने का सौभाग्य मिला, इसलिये उस पर्यटन के समय जैनदर्शन के संपादन में श्रीमान पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ अम्बाला ने बहुत सहायता दी है एतदर्थ उनको धन्यवाद है।

मोहमाया में फंसे हुए गृहस्थ मनुष्य को धर्म-साधन का अवसर बहुत कम मिलता है, गृहकार्यों में रात दिन व्यग्र रहने के कारण गृहस्थ मनुष्य का यह अमूल्य जीवन यों ही व्यर्थ बीत जाता है। ऐसी दशा में तीर्थयात्रा एक ऐसा सुलभ साधन है जो कि इस जीवनसुधार के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। घर, परिवार, दुकान, धंधा आदि झंझटें छूट जाने से तीर्थयात्रा के समय जो निर्विघ्न धर्मसाधन होता है उसका लिखना या कहना असंभव है जिनका चित्त गृहजंजाल में व्याकुल रहता है उनको तीर्थयात्रा करके स्वयं इस धर्मसाधन और शान्तिलाभ का अनुभव करना चाहिये।

श्री सम्मेदशिखर पर फागुन वदी १४ से पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा आदि होने के कारण अच्छा उत्सव भी हुआ जिसमें कि बाहर से लगभग दश हजार स्त्री पुरुष पधारे थे। अधिकांश मारवाड़ी सज्जन थे। एक दो दिन जलवर्षा तथा तूफान ने कुछ गड़बड़ की थी। इतनी जनता के तीर्थयात्रा के खयाल से तो यह उत्सव ठीक रहा, किन्तु आगन्तुक जनता को इसके सिवाय अन्य कुछ विशेष लाभ नहीं पहुँचा।

प्रबन्ध की कमी के कारण आई हुई जनता को व्याख्यान सुनने, कोई रचनात्मक कार्य प्रणाली निर्माण का तथा जैनधर्मप्रचार एवं समाजसुधार का महत्वपूर्ण कार्यक्रम बनाने का उद्योग ज़रा भी नहीं हुआ। खंडेलवाल महासभा का अधिवेशन

हुआ, उसमें भी कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ, किन्तु कुछ कलकत्ता निवासी सज्जनों के कथनानुसार कोढ़ा माजन प्रकरण को लेकर बहुत कुछ निष्फल चखचख हुई।

इस ढंग पर उत्सव होने में जितना अधिक व्यय होता है उसके अनुरूप जनता को लाभ नहीं हो पाता। मेलों का कार्यक्रम किस ढंग पर रखना चाहिये, यह हम किसी दूसरे अङ्क में प्रगट करेंगे। धार्मिक प्रभावना एवं सामाजिक लाभ की दृष्टि से सुजानगढ़ निवासी श्रीमान सेठ हजारीमल प्रतापमल ने जो अपने धनका उपयोग किया उस भावना के लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री दि० जैन तेरापंथी कोठी के वर्तमान प्रबन्धक महानुभाव भी विशेषकर श्रीमान सेठ चैनसुख जी पांड्या सभापति, सेठ प्रभुलाल जी पांड्या मंत्री तथा पं० पन्नालाल जी काव्यतीर्थ मैनेजर प्रशंसा के पात्र हैं जिनके उद्योग से तेरापंथी कोठी इस दर्शनीय उन्नत दशा में पहुंची है।

इस तीर्थयात्रा में तीर्थक्षेत्र, समाज तथा भिन्न संस्थाओं सम्बन्धी हमको अनेक अनुभव हुए हैं जिन्हें कि हम समय समय पर पाठकों के सामने उपस्थित करेंगे।

तीन महारथियों की स्वर्गयात्रा

दिगम्बर जैन समाज एक तो वैसे ही दलबंदी की दलदल में फंसा हुआ दुख पा रहा है उस पर फिर उसके गणनीय नररत्न उससे सदा के लिये जुदे होते जा रहे हैं। हमारी तीर्थयात्रा के समय जिन गण्य मान्य महानुभावों का वियोग हुआ है उनके प्रसिद्ध शुभ नाम श्रीमान सेठ चम्पालाल जी रानी वाले ब्यावर, सेठ टीकमचन्द्रजी सोनी अजमेर तथा सेठ पद्मचन्द्रजी आगरा हैं।

ये तीनों ही महानुभाव सौभाग्यशाली, उदार एवं धार्मिक पुरुष थे। सेठ चम्पालाल जी का आयुष्य ८५ वर्ष का होने पर भी वे अपना धार्मिक नित्यनियम पूर्ववत् पालन करते थे। रानी वालों में आप धन जन संपन्न प्रमुख सौभाग्यशाली थे। आपके सुपुत्र श्रीमान रायसाहिब कुंवर मोतीलाल जी, कुंवर तोतालाल जी, सुन्दरलाल जी आदि भी अच्छे उदार, दयालु, धार्मिक, मिलनसार सज्जन हैं।

श्रीमान सेठ टीकमचन्द्र जी अभी केवल ५१ वर्ष के थे। श्रीमान कुंवर भागचन्द्र जी को मोटर दुर्घटना से सख्त चोट आने के कारण असह्य चिन्ता से तथा पसली में पीड़ा होने के कारण आप २-१ घण्टे में ही परलोक गमन कर गये। आपके स्वर्गवास से जैनसमाज को जो हानि हुई है उसका लिखना असंभव है। आपके सुपुत्र श्रीमान कुंवर भागचन्द्र जी एक होनहार युवक हैं आशा है आप सेठ जी के समान बल्कि उनसे भी अधिक धार्मिक प्रचार, समाजरक्षा, जीर्णमंदिरोद्धार आदि उपयोगी कार्यों में हाथ बटाकर अपनी कुलकीर्ति को और भी विस्तृत बनावेंगे।

श्रीमान सेठ पद्मचन्द्र जी आगरा जैनसमाज के एक प्रमुख व्यक्ति थे। वे अपने बाहुबल द्वारा न्यायोपार्जित द्रव्य से एक उपयोगी संस्था खोलना चाहते थे। उनकी आयु भी लगभग सेठ टीकमचन्द्र जी के बराबर थी। तीर्थयात्रा करते हुए अकस्मात्

आपका देहावसान हो गया उनके उत्तराधिकारी सुपुत्र भी अच्छे सहृदय, प्रसन्नमुख नवयुवक हैं आशा है आप भी आवश्यकतानुसार धार्मिक सेवा तथा सामाजिक सेवा में अपनी शक्ति लगाकर यशस्वी बनेंगे।

स्व० श्रीमान राजा लक्ष्मणदास जी मथुरा के परिवार का प्रकाशमान, होनहार दीपक भी बुझ गया। सेठ मथुरादास जी अभी २० वर्ष के युवक थे। आप भी सदा के लिये जुदा हो गये। दो वर्ष पहिले आपका विवाह हुआ था। सेठ गोपालदास जी के पीछे आपसे समाज को बहुत आशा थी किन्तु वह भी टूट गई।

उक्त महानुभावों के परिवारों को अब शोक छोड़कर भविष्य को उज्वल बनाने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि यह एक ऐसा घाटा है जिसको किसी भी प्रकार पूरा नहीं किया जा सकता।

श्रीऋषभदेव केशरियानाथ का आन्दोलन

उदयपुर राज्य के धुलेव ग्राममें भगवान ऋषभदेव का प्राचीन, ऐतिहासिक, विशाल दिगम्बर जैन मंदिर है। जिसमें कि मूल-नायक प्रतिमा दिगम्बरी है उसके नीचे सोलह स्वप्नों की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं तथा मंदिर के भिन्न २ भागों में अनेक शिलालेख हैं।

यह मंदिर लगभग सौ वर्ष पहिले श्वेताम्बरी दीवान सेठ जोरावरमल जी वाफणा के समय से श्वेताम्बरी प्रभाव में आगया था जिससे कि भट्टारक जी के पीछे मंदिर का प्रबन्ध एक कमेटी के अधिकार में आया जिसमें कि सभी मेम्बर श्वेताम्बर जैन होते थे।

इसी शक्ति के कारण ६-७ वर्ष पहले इस मंदिर की दिगम्बर मूर्तियों को ज़बर्दस्ती मुकुट कुंडल पहनाते समय दिगम्बरियों द्वारा विरोध करने पर श्वेताम्बरी अफ़सरों ने श्रीमान पं० गिरधारीलालजी आदि ५ दिगम्बर युवकों को निर्दयता से मंदिरजी में ही मरवा दिया था और अखबारों में प्रकाशित कराया था कि वे भीड़ में कुचल कर मरे हैं। उस समय किसी भी श्वेताम्बरी नेता ने सत्य बात कह कर सहानुभूति प्रगट करने का साहस नहीं किया।

मंदिर की मालिकी का मामला, ध्वजादंड चढ़ाने का अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न दिगम्बर समाज की ओर से उदयपुर नरेश के पास चल रहा है। अभी कुछ दिनों से सर सुखदेवप्रसाद जी महोदय दीवान होकर उदयपुर राज्य में आये हैं। आपने जहां उदयपुर राज्य में अन्य सुधार प्रारम्भ किये वहां इस ऐतिहासिक दि० जैन मन्दिर के प्रबन्ध में भी उचित परिवर्तन किया।

प्रबन्धक कमेटी में पहले सब श्वेताम्बर सदस्य होते थे, दिगम्बरी मेम्बर एक भी न था, वहाँ अब दीवान साहिब ने दो दिगम्बर मेम्बर रक्खे दो श्वेताम्बर और पांच अजैन। यद्यपि इस चुनाव में भी पर्याप्त परिवर्तन की आवश्यकता है। अधिक न हो तो तीन तीन मेम्बर तीनों सम्प्रदायों के हों। किन्तु दिगम्बर जैनसमाज के साथ अब कुछ थोड़ा बहुत न्याय हुआ। मंदिर के प्रबन्ध में उसका भी कुछ हाथ आया, इस कारण दिगम्बर जैन समाज जहां कुछ सन्तुष्ट हुआ है वहां श्वेताम्बर समाज को घोर असन्तोष हुआ है क्यों कि प्रबन्ध में उसका हाथ अब बहुत कुछ कम हो गया है।

पंडों को बोली का रुपया जैसा पहले दिया जाता था जोकि बीच में कुछ दिनों से बन्द था उसको दीवान जी ने फिर चालू करा दिया। श्वेताम्बर समाज के दूसरे असन्तोष का कारण यह है।

इनही निमित्तों को लेकर श्वेताम्बर समाजकी ओर से पहले के समान इस मन्दिर पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने की घोर चेष्टा हो रही है। कुछ ट्रैक्ट, पुस्तकें आदि भी प्रकाशित हुई हैं जिनमें इस मन्दिर को श्वेताम्बरी मंदिर सिद्ध करने की चेष्टा की है।

दिगम्बर जैन समाज को इस समय प्रमाद में रहने की आवश्यकता नहीं। श्रीमान् सेठ टीकमचन्द जी के स्वर्गवास हो जाने के कारण इस समय हमारे यहाँ कोई उदयपुर राज्य के साथ प्रभावपूर्ण कार्यवाही करने वाला नेता नहीं रहा, इस कारण और भी अधिक सचेत होने की आवश्यकता है। जैनत्व के नाते से हम श्वेताम्बर समाज के साथ हैं, किन्तु जहाँ इस मन्दिर के अधिकार पाने का प्रश्न है वहां हमारा उसके साथ मतभेद है, क्योंकि ऐतिहासिक शिलालेखों से मन्दिर दिगम्बरी सिद्ध होता है। इस कारण मन्दिर का अधिकार, ध्वजादंड चढ़ाने का हक़ दिगम्बर जैन समाज को ही मिलना चाहिये।

वर्तमान दीवान महोदय ने अभी तक कोई ऐसी अनुचित कार्यवाही नहीं की जिससे उन पर आक्षेप किया जावे। इस बात का समर्थन उदयपुर निवासी श्रीमान भैंरूमल जी दोशी (श्वताम्बर) भूतपूर्व तहसीलदार भी करते हैं। दिगम्बर जैन समाज को इस समय स्थान २ से उदयपुर नरेश, ए० जी० जी० राजपूताना तथा वाइसराय महोदय एवं दीवान महोदय के पास तार, मैमोरियल आदि भेजकर निवेदन करना चाहिये कि यह ऐतिहासिक मन्दिर दिगम्बर सम्प्रदाय का है, निष्पक्ष जाँच कराकर इसको दिगम्बर सम्प्रदाय के अधिकार में देना चाहिये।

दिगम्बर जैन समाज ने इस समय यदि यह उद्योग नहीं किया तो सम्भव है कि इस मन्दिर के अधिकार के विषय में उसे बहुत हानि उठानी पड़ेगी। इस कारण प्रत्येक पंचायत, सभा, मित्र-मंडल, नवयुवक मंडल, तीर्थक्षेत्र कमेटी आदि को अपने अपने यहाँ से उपर्युक्त महानुभावों के पास तार, पत्र आदि शीघ्र भेजने चाहियें।

जैनदर्शन के तीसरे अङ्क के ६३—६४ वें पृष्ठ पर इस मन्दिर के अनेक ऐतिहासिक प्रमाण प्रकाशित हुए हैं, मैमोरियल में उनका उल्लेख करना बहुत आवश्यक है।

सोने चाँदी के भगवानों की स्तुति !

[लेखक—पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, बनारस]

प्राचीन समय में, जिनमन्दिर और जिन-बिम्बों की रचना किस प्रकार की होती थी, इसका कुछ आभास सातवीं-आठवीं शताब्दी के साहित्य में पाया जाता है। उसके आधार पर, हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन और अर्वाचीन मन्दिर निर्माण में स्थापत्यकला की दृष्टि से अन्तर पड़ जाने पर भी, उसका मौलिक रूप—अनेक परिवर्तनों को स्वीकार करके भी—आज तक सुरक्षित है। हमारा मत है कि जिनमन्दिर और जिनबिम्बों की रचना, किसी भी समय उस आधार पर नहीं हुई जिस आधार पर हमारे कुछ सुधारप्रेमी भाई उनका निर्माण कराना चाहते हैं। सुधारक भाइयों का मत है कि वीतराग के मन्दिर बिल्कुल सादे होने चाहियें, उन्हें रंग बिरंगे सुनहली रुपहली अनेक प्रकार के कांच से सुशोभित, मनाकर्षक छत्र चमर सिंहासन भामंडल कलाबत्तु के चंदोवों से सुशोभित, चित्रों से चित्रित, झाड़, फानूस, हांडी, गोले और बिजली की बत्तियों से चकाचक और सोने चांदी के बर्तनों से परिपूर्ण बनाना नहीं चाहिये। जैन मन्दिरों के निर्माण पर टीका टिप्पणी करते समय, हमें यह न भूल जाना चाहिये कि वर्तमान मन्दिर समवशरण की प्रतिकृतियाँ हैं। जैनाचार्यों ने समवशरण की जिस विभूति का वर्णन किया है, आधुनिक मन्दिरों की विभूति उसके सामने पासंग भी नहीं है। माना, भगवान वीतराग थे किन्तु उनके पूजकों में सरागों की ही संख्या अधिक थी और है। श्रद्धालु ज्ञानवान् सराग पूजक, अपने आराध्य के सच्चे स्वरूप में कोई अन्तर न आसके, इस ढङ्ग से उनके स्थान को सजाने का प्रयत्न करता है। रागी बिना राग के कोई कार्य नहीं कर सकता। वह वीतरागों से भी राग करता है। किन्तु उसका राग सन्मार्ग में होने के कारण प्रशस्त राग कहाता है। एक धनी सांसारिक राग रंग में लाखों रुपया व्यय करता है और दूसरा धनी धर्मायतनों को सजाने में अपनी संपत्ति का उपयोग करता है। दोनों में कौन सन्मार्ग की ओर है ? इस प्रश्न के उत्तर में सुधारक भाई भी दूसरे ही का नाम उपस्थित करेंगे। आज कल प्रथम श्रेणी के धनिक ही अधिकतर पाये जाते हैं। उनके धन का उपयोग यदि होता है तो भोग विलास में। दूसरी श्रेणी में कुछ इने गिने दानी हैं जो रागी होकर भी धर्मायतनों से राग करते हैं—अधर्मायतनों से नहीं। और इसलिए वे प्रथम श्रेणी के विलासी धनिकों से उत्तम कहे जाते हैं।

अतः जिन मन्दिरों के समवशरण की प्रतिकृति होने से और उनके पूजकों के रागी होने के कारण मन्दिरों में सोने चांदी का काम किसी दृष्टि से अच्छा कहा जा सकता है, किन्तु यदि कोई धनिक समाज के बच्चों को शिक्षित बनाने, अनाथ

और विधवाओं के पालन पोषण, आजीविका से दुखी साधर्मी भाइयों की सहायता करने, नष्ट भ्रष्ट मन्दिरों के जीर्णोद्धार, जिनवाणी के प्रचार आदि सत्कार्यों में अपने धन का उपयोग करता है तो वह उससे प्रशस्त दानी कहा जायेगा क्यों कि धर्म और समाज के आवश्यक अंगों का संवर्द्धन और रक्षण करना ही दान का उद्देश्य कहा जाता है। इस उद्देश्य को दृष्टि में न रखकर आज कल के दान की प्रगति का प्रवाह केवल एक ओर को ही बह रहा है जिससे समाज रूपी क्षेत्र के बहुत से उर्वर अंश सूखते जाते हैं। इसमें धनिकों का ही दोष नहीं, समाज के कर्णधार कहे जाने वाले स्वयंभु नेताओं का भी दोष है जो मामूली वेदी प्रतिष्ठाओं का तो ज़ोरदार विज्ञापन करते हैं और जिनवाणी प्रचार जैसे महान कार्यों में दी गई हज़ारों की रकम पर अपने आँख कान बन्द कर लेते हैं। धार्मिक दल के इस एकांगी पक्षपात पर यदि सुधारक भाई नुक्ताचीनी करें तो वह अनुचित नहीं कही जा सकती।

किन्तु मन्दिर और मूर्तियों पर नुक्ताचीनी करने वालों में ऐसा भी एक दल है जिसकी नुक्ताचीनी से ऐसा आशय झलकता है कि वह दल मूर्तियों में विशेष आस्था नहीं रखता। इस दल की नुक्ताचीनी का बिल्कुल ताज़ा उदाहरण, 'वीर' पत्र, वर्ष ११ के अङ्क दसवें में प्रकाशित एक लेख है जिसका शीर्षक है—"सोने चाँदी के भगवानों की स्तुति"। स्तुतिकार ने अपनी स्तुति में भगवान को खूब खरी खोटी सुनाई है और मन्दिरों के सजाने में धन का व्यय करने वाले धनिकों पर का दोष बेचारे निर्दोष भगवान पर निकाला है। स्तुति गद्य में है और उसकी संख्या १५ है। उसमें से कुछ अंश निम्न प्रकार हैं:—"जाति हितैषी सुधारवादी निर्भीक मोतीलाल रांका को अनेक प्रकार के काय क्लेश तप तपाकर अन्त में सशरीर निर्वाण करा देने वाले सोने चांदी के भगवान तुम्हें साष्टांग प्रणाम"।..........."मेवाड़ के केशरिया जी अतिशय क्षेत्र पर पं० गिरधारीलाल न्यायतीर्थ के बलिदान कराने वाले और अपने भक्तों में परस्पर मारपीट कलह कराने वाले हे सोने चाँदी के भगवान् तुम्हारी जय हो"।.........."गुंडों की लार टपकाते हुए विहार करने वाले हे सोने चांदी के भगवान जय जय स्वामी जय जय जय"।......."प्राचीन ध्वंसावशेषों में सैकड़ों हज़ारों मूर्तियों की अविनय होते हुए भी नवीन नवीन प्रति वर्ष अवतार लेने वाले अपनी जाति के संहारक और स्वोन्नति-कारक हे सोने चांदी के भगवान तुम्हारी जय जय जय" आदि। लेखक ने लेख के शीर्षक से यह बात बतलाने की कोशिश की है कि वह (लेखक) सोने चाँदी की मूर्तियों के विरोधी हैं। किन्तु उनका लेख यह स्पष्टतया घोषित करता है कि लेखक मूर्तिमात्र का विरोधी है। अन्यथा वे केसरिया के हत्याकाँड को सोने चाँदी की मूर्तियों के सिर न लादते। क्योंकि जहाँ तक हमें पता है केशरिया जी में ऋषभदेव की मूर्ति पाषाण की है—सोने चांदी की नहीं है।

जैसे मुसलमानों में, धर्म के नाम पर, धर्म की ओट में या धर्म के बहाने से, मृत्यु के मुख में गया हुआ मुसलमान, तुरन्त "शहीद" का ख़िताब पा जाता है। कुछ इसी तरह अब सुधारकों में भी पदवीलीला होने लगी है, पुलिस के अत्याचारों

से घबरा कर आत्मघात करने वाले मोतीलाल रांका को जाति हितैषी निर्भीक सुधारवादी आदि विशेषणों से सम्बोधित करना उसी मनोवृत्ति का परिचायक है—अस्तु। मोतीलाल के प्राण जाने में भी सोने चांदी के भगवान ही दोषी हैं? क्योंकि न सोने चांदी के भगवान होते और न चोरी होती। इसी तरह गुण्डों की लार टपकाने में भी दोष उनही भगवान का है—उनका सोने चांदी का शरीर देखकर ही चोरों के मुंह में पानी आ जाता है। लोगों को खुशी मनाना चाहिये कि लेखक महोदय न्यायाधीश न हुए, नहीं तो आपके न्यायासन से वह फ़ैसले होते जिन्हें देखकर न्याय भी न्याय के लिये तरसता।

यदि किसी धनी के घर चोरी होती और पुलिस किसी व्यक्ति को संदेह में गिरफ्तार करके आपकी अदालत में पेश करती तो फैसला दिया जाता कि धनी ने धन क्यों रक्खा, इस लिये धनिकों को ख़तम कर देना चाहिये।

यदि कोई नवयौवना सुन्दर स्त्री बाज़ार से निकले और मनचलों के मुंह में पानी भर आवे तो दोषी कौन? स्त्री; अतः या तो ऐसी स्त्रियों को संसार से मिटा दिया जाये या उन्हें जन्म भर किसी तहखाने में बन्द रखा जाये। यदि विधर्मी मूर्तियां और मन्दिर तोड़ते हैं और धर्म और कर्म में बाधा डालते हैं तो दोष मूर्ति, मन्दिरों और धर्म कर्म करने वालों का है। न ये मूर्तियाँ मन्दिर और धर्मात्मा होते, न विधर्मियों के हाथों में खाज उठती। अतः लेखक महोदय के मतानुसार मूर्ति मन्दिर और धर्म कर्म सब पर हरताल फेर देना चाहिये। बलिहारी है इस तर्क की।

अन्तिम स्तुति वाक्य में, सोने चांदी के भगवानों को लेखक ने "अपनी जाति के संहारक और स्वोन्नति कारक" जैसे घृणित विशेषण से विशेषित किया है। लेखक को मालूम होना चाहिये कि सोने चाँदी की मूर्तियों को प्रतिष्ठित करने के लिये ही नवीन प्रतिष्ठाएं नहीं की जातीं। जैन मन्दिरों में सोने चांदी की मूर्तियों की संख्या अंगुली पर गिनने लायक ही मिलेगी। फिर यदि आज कल के प्रतिष्ठा कारक जीर्णोद्धार में धन को न लगा कर नवीन मन्दिरों के निर्माण में उसका व्यय करते हैं तो यह दोष उन धनिकों का है। निर्दोष निर्विकार मूर्ति को—जो पवित्र ध्यानावस्थ आत्माओं की पुण्य स्मृति का स्मारक है—इस प्रकार के अपशब्दों से सम्बोधित करना एक जैन के लिये कभी भी शोभाजनक नहीं हो सकता।

'वीर' के इसी अङ्क में लेखक महोदय का दूसरा लेख "तात्कालिक कविता" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। उसमें भी पहिले लेख के समान बे सिर पैर की बातें बघारी गई हैं और जिन मन्दिरों में चोरी होने पर हर्ष प्रगट किया है। आप लिखते हैं—"धनाढ्यों ने मन्दिरों में यह सामान रखकर मन्दिरों को झगड़े की जड़ बना रक्खा है। इसी की बदौलत प्रत्येक नगर में फूट फैल रही है, मन्दिर के प्रबन्धकर्ता देवद्रव्यापहरण के दोषी बनते हैं, मारपीट होती है, मुक़दमे चलते हैं, कहीं २ मनुष्य-हत्या हो जाती है, चोर चोरी करने को ललचाते हैं। वीतराग मन्दिर सराग मन्दिर हो जाते हैं……… उस सामान की यदि चोरी हो गई तो अच्छा ही हुआ। न रहेगा बांस न बजेगी बाँसुरी"।

अपनी इस खुशी में लेखक महोदय ने सोने

चांदी के भगवानों पर बड़ी कृपा की जो इस चोरी में उन्हें शामिल नहीं किया। किन्तु उन्हें चोरी के सामान में शामिल न करने से झगड़े की एक शाखा रह ही जाती है। यदि इस शाखा को भी उड़ा दिया जाये तो जड़ फिर भी रहेगी ही, क्यों कि संसार में जिस वस्तु का अस्तित्व है उसके विरोधी और प्रेमी दोनों अवश्य पाये जाते हैं; और उस वस्तु के रहने से एक दिन दोनों में सिर फुटौवल की नौबत आ सकती है। अतः झगड़ा-भीरु लेखक जी को संसार से मन्दिरों और मूर्तियों की सफ़ाई कराना चाहिये। मगर अफ़सोस, झगड़े बन्द होने की फिर भी आशा नहीं। क्योंकि झगड़ालु मनुष्य पत्थरों से भी लड़ाई ठान लेता है। अतः झगड़ा मेटने की इस औषधि से रोग की सफ़ाई होने की आशा नहीं है। आपको तो अपने विशाल अनुभव और तर्क के अनुसार ऐसी औषधि पिलानी चाहिये जिसमें रोग और रोगी दोनों का सफ़ाया हो जाये, क्योंकि यदि रोगी (मनुष्य) न होता तो रोग ही क्यों पैदा होता; अतः संसार से रोगी को ही उठा देना चाहिये जिससे "न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी"।

सम्भव है कि लेखक महोदय का यह प्रयत्न रोगी (मन्दिर-मूर्ति) को ही सफ़ा करने के लिये हो, किन्तु यह उसका व्यर्थ प्रयास है और इस प्रयास में योग दान देने के कारण, पत्र के संचालक भी दोषी हैं। समाज सुधारक को सुधार की दलदल में फंस कर समाज शास्त्र के नियमों को न भूलना चाहिये। समाज में हर तरह के व्यक्ति रहते हैं—सबकी श्रद्धा और दृष्टिकोण एक सरीखा नहीं हो सकता। यदि ऐसा हो सकता तो व्यवहार धर्म में इतने मत भेदों का प्रादुर्भाव न होता। मत भेदों को दृष्टि में रखते हुए जो विकृति को विकृत के रूप में देखते हैं और मूल वस्तु पर आस्था रखते हुए विकृति को दूर करने का सत्प्रयत्न करते हैं वे सच्चे सुधारक हैं और ऐसे सुधारकों की समाज को सर्वदा आवश्यकता रही है और रहेगी। किन्तु जो सुधार की धुन में पागल होकर अविकृति को विकृति समझ बैठते हैं या विकार की धुन में मूल वस्तु पर ही हाथ साफ़ करने का दुष्प्रयत्न करते रहते हैं वे सुधारक समाज के कलंक हैं और ऐसे महापुरुषों से सर्वदा बचे रहने में ही समाज का कल्याण है।

जैनपंचांग किस तरह प्रसिद्ध हो सके ?

[लेखक—श्वे० मुनि विकासविजय जी पालनपुर]

प्राचीन काल से न्यायादि के अनेक ग्रन्थ जैनाचार्य प्रणीत इस वक्त दृष्टिगोचर हो रहे हैं और प्राकृत भाषामय साहित्य भी प्रचुर दिखलाई दे रहा है। इतना ही नहीं किन्तु कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य विरचित प्राकृत व्याकरण तथा प्राकृतोद्भव अपभ्रंश भाषामय व्याकरण भी जैनाचार्यों ने बनाकर उस उस समय की देश भाषा को सुरक्षित किया। अन्त में गुजराती भाषा

का प्रादुर्भाव हुआ उसमें भी जैनाचार्यों ने मुख्य भाग लिया है, ऐसा अर्वाचीन काल के प्रखर भाषा शास्त्री मंजूर करते हैं, परन्तु ज्योतिष जैसो चमत्कारी और व्यवहारोपयोगी विद्या का फैलाव तिस प्रकार का हुवा होवे ऐसा मालूम देता नहीं, तथापि एक समय जैपुर की वेधशाला देखने के लिये मैं वहाँ गया था, तब वहां के ज्योतिर्विदाचार्य केदारनाथ जो का परिचय हुआ। उन्होंने कहा कि यह यंत्र प्रखर जैन ज्योतिर्विदाचार्य महेन्द्रसूरि कृत "यंत्रराज" नामक ग्रन्थ उपरसे बनाये हुए हैं और इस वेधशाला में मुख्य यंत्र का नाम भी यंत्रराज ऐसा रखा हुआ है और वह यंत्र (यंत्रराज) किस तरह से बनाना, उसकी "उपपनिक" सरल प्रक्रिया जैपुर महाराणा जयसिंहजी की बनाई हुई जयसिंह कारिका में खूब विस्तारसे दी गई है। यह सम्बन्ध जैपुर निवासी राजज्योतिषी पंडित गोकुलचन्द भावन विरचित भारतीय ज्योतिष यन्त्रालय "वेध पथ दर्शक" नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ६४-६५ में वर्णित है। इस वेधशाला को निरीक्षण करने के बाद मेरे मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि निज प्राचीन आचार्यों ने भी ज्योतिष विद्या का मंथन किया हुआ होना चाहिये।

अधुना सूर्यप्रज्ञप्ति और ज्योतिष करंडक ग्रंथ विचारते हुए उनमें रहा हुआ अद्‌भुत चमत्कारिक और ज्योतिष विद्याविषयक रचनात्मक रहस्य तथा नक्षत्र गणना का अद्भुत भान हुआ, जिसकी श्रीमान् भास्कराचार्य जैसों को कल्पनायें भी न होनी होंगी। जैनाचार्यों के मतानुसार पाँच वर्ष का १ युग और इसके १८३० दिन याने एक वर्ष के ३६६ दिन होते हैं। जिस समय वर्तमान प्रचलित पंचांगों में ३६५ दिन १५ घड़ि ३१ पल ३१ विपल और २४ प्रतिविपल इतना वर्षमान सूर्यसिद्धान्तानुसार है और ग्रहलाघवीय पंचांगानुसार वर्षमान ३६५ दिन १५ घड़ि ३१ पल और ३० विपल है उस समय सिद्धान्त शिरोमणि अनुसार वर्षमान ३६५ दिन १५ घड़ि ३० पल २२ विपल ३० प्रतिविपल है। इन तीन ग्रंथों के वर्षमानों में भेद तो है किन्तु वह बहुत कम है।

महाभारत के समय में जो पंचांग प्रचलित थे, जिनका उल्लेख विराट पर्व अध्याय ५२ के श्लोक दूसरे में दिया है, उस रीति से वर्षमान बराबर ३६६ दिन का, पाँच वर्ष का १ युग और एक युग में २ अधिक मास इस तरह से निर्विवाद सिद्ध होता है। वर्तमान काल में जो पंचांग बनते हैं उन पंचांगों में प्रति नक्षत्र का काल समान माना हुआ है, वह वास्तविक नहीं है। जैनाचार्यों का नक्षत्रविषयक जो मन्तव्य है उसके साथ सम्पूर्ण समानता सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथकर्ता श्रीमान् भास्कराचार्य का होता है यानि नक्षत्रों में चन्द्र की गति जैनाचार्यों ने मानी हुई है वह भास्कराचार्य ने स्फुट की हुई है। वर्तमान पंचाँगों का आरम्भ किस समय हुआ होगा उसकी कल्पना करनी दुष्कर है, परन्तु जो सूर्यप्रज्ञप्ति अनुसार नक्षत्र गणना रखकर पंचांग बनाया जावे तो एकाद दिन का फर्क तो ज़रूर आवे। उससे जो तिथि में वार प्रचलित पंचाँगों में आता हो उस तिथि में वही वार मिलेगा नहीं, तथापि जैनाचार्यों के मतानुसार जो पंचांग बनाने में आवे तो एक ही पंचाँग के अनुसार अखिल आर्यावर्त में तिथि का स्थूलमान अवश्य समान होता है अर्थात् देशदेशान्तर के अक्षांश

रेखांशानुसार तिथि की घड़ियों में कमोबेशी अवश्य आवेगी। उसका कारण यह है कि सूर्यप्रज्ञप्ति के अनुसार बड़े से बड़ा दिन १८ मुहूर्त्त यानि ३६ घटि हो सकता है। उस वक्त १२ मुहूर्त्त यानि २४ घटि रात्रि होती है। उस तरह बड़ी से बड़ी रात्रि ३६ घटिका की आती है। यह दिनमान सिर्फ हिन्दुस्तान के उत्तर के थोड़े विभाग तक पहुँच सकता है किन्तु इङ्गलैंड की वेधशाला का मुख्य स्थान ग्रोनीच ५१ अक्षांश पर होने से वहां बड़े से बड़ा दिनमान ४० घटिका और उसी दिन रात्रिमान २० घटिका का होना है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय इस वक्त अनुभव में आता है तब भरतखंड के बाहिर दिनमान छोटा बड़ा किस तरह से होवे उस विषयक गणित का खुलासा यानि कि ३६ घटि से बड़ा दिनमान वगैरह किस तरह से गिनना वह सूर्यप्रज्ञप्ति और ज्योतिष करंडक ऊपरसे मैं नहीं समझ सका। उसमें जो यह विषय होवें तो जो कोई भी ज्ञाता मुनिराज और श्रावक होवे और वह उस विषय का खुलासा करने की कृपा करें तो मैं उनका उपकार मानूंगा।

इस वक्त महेन्द्रसूरि कृत 'यंत्रराज' ग्रंथ मुझे उपलब्ध हुआ है। उस पर मलयचन्द्र सूरिकृत टीका है और बनारस निवासी ज्योतिर्विद् भास्कर सुधाकर द्विवेदी कृत प्रतिभाबोधक भी रचा हुआ है। यह महेन्द्रसूरि श्रीमद् मदनसूरि जी के शिष्य थे और यह ग्रंथ इन्होंने भरुच नगरमें रचा है जिसमें निर्माण काल शक १२९२ यानि संवत् १४२७ है। इस ग्रन्थ में अनेक प्रकार के यंत्र, ग्रहवेध लेने की रीति और पंचाङ्ग के अनुकूल स्पष्टग्रह और भावसाधने की रीति सरलतापूर्वक दी हुई है और प्रतिभाबोधककर्ता श्रीमान द्विवेदी जैसे मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा करते हैं। यह ग्रंथ पंचांग बनाने में भी उपयोगी है कारण कि उसमें दिया हुआ गणित जैपुर की वेधशाला के साथ अंश अंश मिलता है। सूर्यप्रज्ञप्ति के गणित के साथ स्पष्टग्रह इस यंत्रराज ऊपरसे करनेमें आवे तो सुन्दर से सुन्दर वेधसिद्ध गणित के साथ जैनपंचांग सम्पूर्ण मिल आवे, ऐसी मेरी मान्यता है। विशेष में मुझे ऐसा भी मालूम हुआ है कि सूर्यप्रज्ञप्ति और ज्योतिष करंडक में सूर्य चन्द्र के अलावा दूसरे ग्रहों का स्पष्टीकरण किस तरह से करना यह नहीं बताया। यह भी सुज्ञ महाशय बताने की कृपा करेंगे तो उनका कृतज्ञ बनूंगा।

सूर्यप्रज्ञप्ति अनुसार ६० सौरमास ६१ कर्ममास और ६७ नक्षत्रमास का एक युग माना है और उस पांच वर्ष के एक युग के १८३० दिन होते हैं। अब वर्तमान प्रचलित पंचांगों में वर्षमान ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल और ३० विपल के हिसाब से पांच वर्ष के १ युग में १८२६ दिन १७ घटि ३७ पल ३० विपल होते हैं, और वैसे आठ युग में एक चांद्रमास जितना गणित आगे बढ़ता है, यदि भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण सम्वत् २४६० तक का गणित करें तो एक वर्ष में ३६६ दिन के अनुसार अभीतक अपने आठ युग के एक मास के हिसाब से ४९२ युग में पाँच वर्ष अधिक होते हैं यानि विक्रम सम्वत् के साथ जो मेल रखते हैं वो बिलकुल मिलता नहीं है कारण कि विक्रम संवत् १९९० में विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ से युग संख्या ३१८ पूरे होते हैं। उतने समय में ४९ मास का फर्क आताहै यानि उसका स्पष्ट अर्थ यह होता

है कि वीर सम्वत् का हरेक वर्ष ३६६ दिन का होवे तो उसका विक्रम सम्वत् के साथ मेल रखने के लिये विक्रम सम्वत् १९९४ मानना चाहिये या तो विक्रम सम्वत् की समानता के लिये वीर सम्वत् २४५६ मानना चाहिये किन्तु वैसा तो कभी हुआ ही नहीं और वीर सम्वत् ४७० से विक्रम सम्वत् का जो आरम्भ हुआ है वो फर्क बिना एक सरीखा अद्यापि पर्यंत अविच्छिन्न चला आता है। इस विषय में तो किसी का विसंवाद नहीं है।

सूर्यप्रज्ञप्ति अनुसार चाँद्र वर्ष का मान ३५४ दिन ११ घटि ३६ पल आता है, तब सिद्धांत शिरोमणि के गोलाध्याय मध्यगति वासना अनुसार २९ दिन ३१ घटि ५० पल का एक चाँद्र मास होता है। तदनुसार उसका एक चाँद्रवर्ष ३५४ दिन २२ घटिका का होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्यप्रज्ञप्ति मतानुसार का चाँद्रवर्ष १० घटिका कमती है। इससे ६ वर्ष में ६० घटिका यानि एक चांद्र नक्षत्र का फर्क आता है, किन्तु अद्यापि पर्यंत वैसा बना ही नहीं। इससे ऐसा मानने में सबल कारण मिलता है कि अपने पूर्वाचार्यों ने बराबर विक्रम सम्वत् के साथ और शक सम्वत् के साथ मेल रखनेवाली किसी भी पद्धति को स्वीकार कर और व्यवस्था भी की होनी चाहिये और वह पद्धति वेधसिद्ध गणितवाली होनी चाहिये।

श्रीमान् हरिभद्र सूरि जी महाराज ने लग्नशुद्धि ग्रन्थ की गाथा ८२ में मेषादि लग्नों के पलात्मक मान दिखलाये हैं, वह यह हैं—

स्वदेशोदयमान		*लंकोदयमान*	
मेष २१९	मीन	मेष २७८	मीन
वृषभ २५१	कुंभ	वृषभ २९९	कुंभ
मिथुन ३०३	मकर	मिथुन ३२३	मकर
कर्क ३४३	धन	कर्क ३२३	धन
सिंह ३४७	वृश्चिक	सिंह २९९	वृश्चिक
कन्या ३३७	तुला	कन्या २७८	तुला

लंकोदय मेष लग्न के पलों में से स्वदेशी मेष लग्न के उदय के पल बाद करनेसे शेष २७८–२१९= ५९ रहते हैं। यह प्रथम चरखंडा गिना जाता है यानि वेधनियमानुसार ५९÷१० करीब ६ अंगुल की पलभा होनी चाहिये यानि १२ आंगुल के शंकु की छाया वह पलभा। यह छाया हमेशा सायन सूर्य जब मेष राशि का होता है उस दिन मध्यान्ह समय ली जाती है। अब उस विषय का विचार करते मालूम होता है कि गुजरात के उत्तर विभाग में भी अब भी ५ आंगुल और २० व्यंगुल की पलभा है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि श्रीमान हरिभद्रसूरि जी के दिखलाये हुए लग्नमानों का स्थान गुजरात नहीं है किन्तु वह श्रीमान मगध देश में विचरते हुवे उस समय पाटलीपुर (पटना) या मगध के किसी और स्थान में रहकर यह ग्रंथ किया होवे और द्वादशांगुल शंकु से पलभा साध कर वेधसिद्ध चरखंडो से वह लग्न मान दिये होवें, ऐसा स्वतः सिद्ध होता है, कारण कि समय पटना की पलभा ५–४५ अंगुलादि है। पलभा का उपयोग हमेशा पृथ्वी के कोई भी विभाग में अपने अपने स्थानिक गणितानुसार दिनमान, रात्रिमान और तिथिशान वैसे ही योग वगैरह, कितनी घटि और कितने पल हैं यह जानने के लिये ही होता है।

श्रीमान हरिभद्र सूरि जी महाराज के बाद *आचार्य श्री उदयप्रभसूरि महाराज ने स्वरचित आरम्भसिद्धि के पांचवें विमर्श के श्लोक ६२ में मध्यदेश के लग्नोदयमान दिये हैं, वैसे ही श्लोक ६३*

में पट्टन के भी लग्नोदय मान दिये हैं, इससे भी यह निश्चय होता है कि उन्होंने भी वेध सिद्धपद्धति को स्वीकार किया है। उनका सत्ताकाल सम्वत् १२९९ था, (देखो आरम्भ सिद्धि की प्रस्तावना पृष्ठ ६ में दी हुई कणिका वृत्ति की प्रशस्ति)। इसके बाद वेध सिद्ध गणित करने वाले आचार्य श्री महेन्द्र सूरि जी ने सम्वत् १४२७ में भरुच नगर में यंत्रराज नाम का ग्रन्थ रचा है, इस ग्रन्थ ऊपर ही जयपुर की वेधशाला है, यह मैं पहिले कह चुका हूं। इस यंत्रराज ग्रन्थ में ज्यामिति (Geometry) का गणित बहुत ही सरल पद्धति से दिखलाया है। वैसे ही सायन निरयन के भेद, खगोल और भूगोल के वृत्त और वह सब जानने के साधन (यंत्र) किस तरह से बनाने और वैसे ही उन यन्त्रों के अलग अलग नाम वगैरा अनेक विषयों का समावेश इस ग्रन्थ में करने में आया है। यह वेधसिद्ध गणित करने वालों ने जो परिश्रम उठाया है उसे जानने का अपने समाज में प्रयास हुआ होवे ऐसा मेरी जान में नहीं है। अब 'लग्नशुद्धि' इस नामका जो विचार करने में आवे तो पहिले लग्न का निर्णय करने की आवश्यकता है, वह लग्न वेधसिद्ध गणित के बिना किस राशि के कितने अंश ऊपर है वह कभी निर्णय हो नहीं सकता।

उपरोक्त तीनों आचार्यों की दिखलाई हुई वेध सिद्ध पद्धति का उनके बाद हरेक आचार्यों ने स्वीकार किया है जिससे सिद्ध होता है कि अपने पंचांग वेधसिद्ध ही होने चाहियें। जो लग्नशुद्धि मानने में आवे तो वेधसिद्ध पद्धति का ही स्वीकार हुआ है यह निर्विवाद है।

वेधसिद्ध गणित के साथ मिलती होवे वैसी ग्रहगणित करने की पद्धति अपने किन किन ग्रन्थों में है वह विस्तारसे जानने को जिज्ञासु, जैसे मेरी अभिलाषा है, सब आचार्य मुनिवर व श्रावक वर्ग में से कोई इस विषय के ज्ञाता दिखलाने की कृपा करेंगे तो मेरे कार्य में उपयोगी होंगे।

सम्पादकीय नोट

मुनि जी का प्रयत्न स्तुत्य है। इस समय विद्वानों की दृष्टि जैन ज्योतिष की ओर बिलकुल नहीं है। जैनाचार्यों ने ज्ञान की प्रत्येक दिशा में अपने अगाध पांडित्य का परिचय दिया था इस लिये ज्योतिष में भी उनकी प्रतिभा की अमिट छाप अवश्य अंकित होगी। आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने त्रिलोकसार में ज्योतिर्लोकाधिकार नाम से एक प्रकरण दिया है। उसमें प्रसंगवश दिन मान आदि का भी सूत्र रूप में वर्णन किया गया है। पंच वर्षात्मक युग की दस आवृतियों (पांच उत्तरायण और पांच दक्षिणायण) की तिथि और नक्षत्र भी दिये गये हैं। किन्तु बहुत संक्षिप्त उल्लेख होने के कारण केवल उसी ग्रन्थ पर उक्त विषय को पल्लवित नहीं किया जा सकता। मुनि जी से प्रार्थना है कि वह उसे भी देखें। अन्त में हम जैन सिद्धान्त भवन आरा के पुस्तकाध्यक्ष पं० भुजबलि जी शास्त्री का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। यदि वे उपलब्ध जैन ज्योतिष विषयक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय "दर्शन" के पाठकों को करा सकें तो इस विषय की खोज में बहुत सहायता मिलने की आशा की जा सकती है।
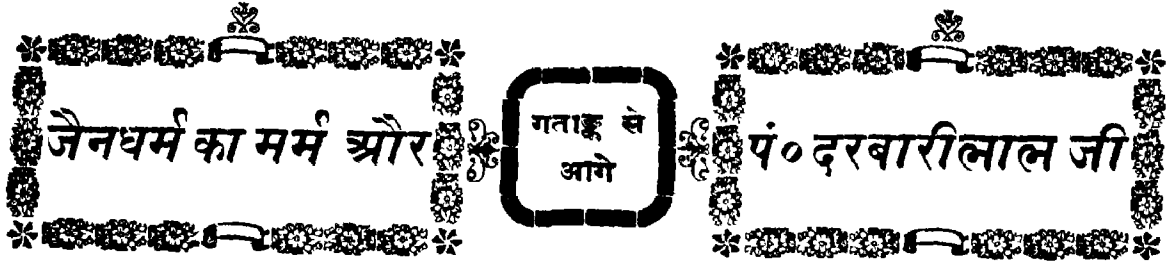
[१७]

केवली और अन्य ज्ञान

पंडित दरबारीलाल जी का कहना है कि केवली के केवल केवलज्ञान ही नहीं होता किन्तु अन्य ज्ञान भी होते हैं। केवली किसी समय मतिज्ञानी रहते हैं तो किसी समय केवलज्ञानी ! आपका यह भी कहना है कि यही मान्यता प्राचीन और युक्तियुक्त है ! दरबारीलाल जी ने अपने इस वक्तव्य के समर्थन में निम्नलिखित बातें उपस्थित की हैं:—

(१) तत्त्वार्थसूत्र के स्वोपज्ञ भाष्य में इस बात का उल्लेख।

(२) केवली के द्रव्येन्द्रिय का सद्भाव।

(३) इसके अभाव में केवली के परीषहों के घटित न होने से।

(४) इसके अभाव में केवली के भोग और उपयोग के न होने से।

साथ ही आपने यह भी बतलाया है कि केवली में इस नवीन और युक्तिविरुद्ध बात की रक्षा के लिये उनमें निद्रा का अभाव स्वीकार किया गया है। अब विचारणीय यह है कि क्या दरबारीलाल जी का उपर्युक्त वक्तव्य युक्तियुक्त है ?

दरबारीलाल जी ने पहिली बात से इस मत की प्राचीनता एवं शेष बातों से इसकी युक्तियुक्तता के सिद्ध करने की चेष्टा की है ! आपका कहना है कि जब इस मत का उल्लेख सूत्रकार उमास्वामी ने ही अपने भाष्य में किया है, तब इसकी प्राचीनता में सन्देह ही क्या रह जाता है। केवली के द्रव्येन्द्रिय का सद्भाव तो सबको ही स्वीकार है, फिर इसके कार्यमें ही क्यों आपत्ति होनी चाहिये ! केवली में ग्यारह परीषह और भोग और उपभोग भी माने गये हैं, तथा ये मतिज्ञान के बिना हो नहीं सकते, अतः केवली में इसका मानना भी अनिवार्य है ! दरबारीलाल जी के इस कथन की प्राचीनता और युक्तियुक्तता के निर्णय के लिये निम्न लिखित बातों पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है :—

(१) तत्त्वार्थसूत्र का प्रस्तुत भाष्य कितना प्राचीन है, तथा उससे क्या प्रमाणित होता है।

(२) क्या केवली के द्रव्येन्द्रियां कार्यकारी हैं ?

(३) क्या केवली के परीषह और भोग और उपभोग का अस्तित्व युक्तियुक्त है, यदि हां तो इनका प्रकृत विषय से क्या सम्बन्ध है ?

तत्वार्थसूत्र का प्रकृत भाष्य स्वोपज्ञ है, इसके समर्थन में अभी तक ऐसे प्रमाण नहीं मिले जिनसे कि इसको यथार्थ माना जा सके ! यदि इस बात के समर्थन में दरबारीलालजी के पास कुछ सामिग्री है तो वह उपस्थित करें ताकि उसकी यथार्थता

और अयथार्थता पर विचार किया जाय ! जब तक यह प्रमाणित न हो जाय कि तत्त्वार्थसूत्र के प्रस्तुत-भाष्य के रचयिता स्वयं सूत्रकार उमास्वामी हैं, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि इसका मतिज्ञानादिक के सम्बन्ध में अन्य आचार्यों का मतोल्लेख सूत्रकार के समय से प्राचीन है !

सूत्रकार उमास्वामी केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, यह एक सर्वमान्य बात है *। आचार्य कुन्दकुन्द आदिक प्राचीन आचार्यों की भी ऐसी ही मान्यता है। अतः दरबारीलाल जी का केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों के अस्तित्व को प्राचीन मान्यता बतलाना निराधार है।

इसके सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि तत्त्वार्थसूत्र का प्रकृत भाष्य यह नहीं बतलाता कि किन्हीं आचार्यों की ऐसी मान्यता है कि केवल ज्ञान के साथ मतिज्ञानादिक का अस्तित्व रहता है, किन्तु उसका भाव यह है कि ये उस ही में लीन हो जाते हैं। स्पष्टता के लिये इसको यों समझियेगा कि एक कमरे में एक बीस नम्बर का बिजली का लट्टू प्रकाश कर रहा है, यदि इसही के स्थान पर तीस नम्बर या चालीस नम्बर का लट्टू लगा दिया जाता है तो प्रकाश की उतनी ही वृद्धि हो जाती है। यहाँ उस प्रकाश का जो कि बीस नम्बर के लट्टू के द्वारा हो रहा था, न तो अभाव हो है और न जुदी सत्ता ही, किन्तु सम्मिलित अस्तित्व है। अभाव तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसकी कारणरूप बिजली का व्यय हो रहा है, तथा जुदी-सत्ता इसलिये स्वीकार नहीं की जा सकती कि उसके लिये भिन्न बिजली खर्च नहीं हो रही। यदि ऐसा होता तो चालीस नम्बर के लट्टू के प्रकाश के समय उतनी बिजली व्यय होनी चाहिये थी जितनी कि साठ नम्बर के लट्टू के प्रकाश के समय होती है, किन्तु यह बात मिथ्या है। सम्मिलित अस्तित्व इसलिये कहा जाता है कि उसके लिये जितनी बिजली आवश्यक थी उसमें उतनी ही बिजली के संयोगसे यह प्रकाश होता है जितनी कि लट्टू के नम्बरों की संख्या अधिक है। यही बात ज्ञानों के सम्बन्ध में है ! कोई भी ज्ञान क्यों न हो जितने अंश में वह उपयोगस्वरूप है, वह निज-रूप है। जिस प्रकार मोहनीय कर्म अपने प्रतिपक्षी गुण को विकारी बनाता है, उस प्रकार ज्ञानावरणी नहीं; किन्तु यह तो उसके प्रकाश को रोकता है, इससे यह बात प्रकट हो जाती है कि जितने अंश में ज्ञानावरणी कर्म का उदय है उतने अंश में तो ज्ञान का अभाव है, किन्तु जितने अंश में ज्ञान है वह आत्मा का निज रूप है।

ज्यों २ ज्ञानवरणीकर्म का अभाव होता जाता है, त्यों २ ज्ञान का भी विकाश होता जाता है। ज्ञान के विकाश की भिन्न भिन्न अवस्थाओं के ही मतिज्ञानादिक नाम हैं ! जिस समय ज्ञान पूर्ण विकाश को प्राप्त हो जाता है उस समय इसको केवलज्ञान कहते हैं ! ज्ञान की इस अवस्था में ज्ञान की इस अवस्था का, जिसको मतिज्ञान या श्रुत-ज्ञानादिक कहते हैं, न तो अभाव ही है और न प्रथक अस्तित्व ही किन्तु सम्मिलित अस्तित्व है। अभाव मानने पर केवलज्ञान में उनके ज्ञान का अभाव होना चाहिये ! किन्तु ऐसा है नहीं। इसही

* एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः। —तत्त्वार्थसूत्र १—३०

प्रकार भिन्न अस्तित्व मानने में इनको भिन्न गुणों को पर्याय मानना पड़ेगा, किन्तु यह बात भी असम्भव है। अतः सम्मिलित अस्तित्व ही ठीक बैठता है, इस बात के खुलासा करने को उन उन आचार्यों ने दीप और सूर्य का जो दृष्टान्त दिया है, वह प्रकाश की न्यूनाधिकता की दृष्टि से है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि जिस प्रकार दीपक का प्रकाश सूर्य के प्रकाश से भिन्न है और वह सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाता है। यदि इस दृष्टान्त का यह भाव लिया जायगा तब तो यह दार्ष्टान्त के सम्बन्ध में घटित ही न होगा, क्योंकि यहां मतिज्ञान और केवलज्ञान का एक समय में भिन्न भिन्न अस्तित्व नहीं। इसका खुलासा हम पूर्व कर चुके हैं, अतः इस दृष्टान्त का इतना ही भाव है कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से दीपक का प्रकाश मन्द है, अतः वह सूर्य के प्रकाश के समय उसमें अन्तर्लीन हो जाता है, उस ही प्रकार मतिज्ञानादिक केवलज्ञान में! इससे प्रकट है कि जिस प्रकार चालीस नम्बर के लट्टू के प्रकाश के समय बीस नम्बर वाले लट्टू का प्रकाश भिन्न नहीं रहता, उसही प्रकार केवलज्ञान के समय मतिज्ञानादिक। अतः स्पष्ट है कि इससे तो उन आचार्यों ने जिनके मत का उल्लेख तत्वार्थसूत्र के भाष्य में मिलता है केवल यह बतलाया है कि ज्ञान के विकाश के समय पहिले समयों के ज्ञानों की क्या अवस्था रहती है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि पूर्णविकाश के समय ज्ञान की जो अवस्था होती है, उस समय पहिली अवस्था के ज्ञान भी अपना २ स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं जिससे कि केवल ज्ञान के समय मतिज्ञानादिक का अस्तित्व माना जा सके। भाष्यकार को यह बात अभीष्ट नहीं थी, वह इस बात को स्वीकार नहीं करते थे कि ज्ञान के अधिक २ विकाश के समय ज्ञान की न्यून २ विकास की अवस्थायें भी वैसे ही रूप में रहती हैं। अतः भाष्यकार ने इस मत का उल्लेख कर दिया। इससे प्रकट है कि भाष्य के इस उल्लेख से तो यही बात प्रमाणित की जा सकती है कि जिस समय इस भाष्य की रचना हुई थी उस समय ऐसे आचार्य भी मौजूद थे जो कि ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि के समय भी उनकी पहिली २ अवस्थाओं की सत्ता को भी उस ही ढंग से उनमें सम्मिलित रूप से मानते थे न कि यह कि ज्ञान की अत्यधिक विकसित अवस्था में अल्पविकसित अवस्थायें अपने २ अस्तित्व को भिन्न रूप से रखती थीं, और फिर सूर्य प्रकाश में दीपक के प्रकाश की तरह अन्तर्लीन हो जाया करती थीं। इससे सिद्ध है कि तत्वार्थसूत्र के भाष्य का यह उल्लेख केवलज्ञान के समय मतिज्ञानादिक का अस्तित्व सिद्ध करने में बिलकुल असमर्थ है! अतः दरबारीलाल जी का अपने वक्तव्य में प्राचीनता की बात लिखना बिलकुल निराधार है। इसके सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने दूसरी बात युक्तियुक्तता की लिखी है, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित वाक्य प्रश्नोत्तर के रूप में लिखे हैं:—

"प्रश्नः—किरणें तो केवली की आँखों पर भी पड़ती हैं, परन्तु भावेन्द्रिय न होने से उसका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता! भावेन्द्रिय तो क्षयोपशम से प्राप्त होती है, किन्तु केवली के सम्पूर्ण ज्ञानावरण का क्षय हो जाने से क्षयोपशम नहीं हो सकता!

उत्तरः—भावेन्द्रिय और कुछ नहीं है वह द्रव्येन्द्रिय के साथ सम्बन्ध पदार्थ को जानने की शक्ति है। वह ज्ञानगुण का अंश है। क्षयोपशम अवस्था में वह अंश ही प्रकट हुआ था। किन्तु क्षय होने पर उस अंश के साथ अन्य अनन्त अंश भी प्रकट हो गये। इसका यह अर्थ कैसे हुआ कि क्षयोपशम अवस्था में जो अंश प्रकट था, वह अब लुप्त हो गया है। क्षयोपशम अवस्था में जो अंश प्रकट था, क्षय अवस्था में भी प्रकट रहेगा। यदि यह अप्रकट हो जायगा तो उसको अप्रकट करने वाले घातक कर्म का सद्भाव मानना पड़ेगा, परन्तु जिसके ज्ञानावरण का क्षय हुआ है, उसके ज्ञान घातक कर्म कैसे होगा? इसलिये केवली को आँखों से जानने की शक्ति का घात नहीं मानना चाहिये! इस प्रकार केवली के आँखें भी हैं और जानने की पूर्ण शक्ति भी है, तब आँखों से दिखना कैसे बन्द हो सकता है? एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

एक मनुष्य मकान में बैठा हुआ गवाक्ष (खिड़की) में से एक तरफ़ का दृश्य देख रहा है; अन्य दिशाओं में दीवालें होने से वह अन्य दिशाओं के दृश्य नहीं देख पाता। इतने में कल्पना करो कि किसी ने दीवालें हटा दीं। अब वह चारों तरफ से देखने लगा। इस अवस्था में खिड़की तो न रही, परन्तु जिस तरफ़ खिड़की थी, उस तरफ़ से अब भी देख सकता है। इसी प्रकार ज्ञानावरण के क्षय हो जाने से क्षयोपशम के द्वारा जो देखने की शक्ति प्रकट हुई थी, वह नष्ट नहीं हो सकती। बल्कि उसकी शक्ति बढ़ जाती है। अब वह अपनी आँखों से और भी अच्छी तरह देख सकता है"।

खिड़की की अवस्था और दीवाल रहित स्थान की अवस्था में जो अन्तर है, वह क्षायोपशमिक ज्ञान और क्षायिक ज्ञान में नहीं। कल्पना कीजियेगा कि वह कमरा जिसकी खिड़की के सम्बन्ध में यह चर्चा है दस फ़ीट लम्बा है और खिड़की दो फ़ीट की है। यदि कमरे की खिड़की के अतिरिक्त अन्य आठ फ़ीट दीवाल को भी तोड़ दिया जाता है, तो अब प्रकाश के आने की जगह दो फ़ीट के बजाय दस फ़ीट हो जाती है! इस प्रकार खिड़की और दीवाल रहित स्थान में अल्पस्थान और अधिक स्थान का भेद है, किन्तु यह बात क्षायोपशमिक ज्ञान और क्षायिक ज्ञान के सम्बन्ध में नहीं। जिस प्रकार खिड़की के स्थान से दीवाल रहित कमरे का स्थान कई गुणित है, उसही प्रकार क्षायोपशमिक ज्ञानसे क्षायिक ज्ञान का नहीं। क्षायोपशमिक ज्ञान और क्षायिक ज्ञानका तो एक ही स्थान है। जितने स्थान में क्षायोपशमिक ज्ञान रहता है, उतने ही में क्षायिक भी।

दूसरी बात यह है कि दीवाल व्यक्ति स्वरूप प्रकाश का प्रतिरोध करती है। वह प्रकाश जिसको दीवाल रोकती है उसही प्रकाश का एक भागहै जोकि खिड़की द्वारा आरहा है। अतः कहा जासकता है कि जो प्रकाश खिड़की के द्वारा आता है उसका उस समय भी सद्भाव रहता है जब कि कमरे की दीवालें तोड़ दी जाती हैं और पूरे हिस्से से प्रकाश आने लगता है। यह बात क्षायोपशमिक और क्षायिक ज्ञान के सम्बन्ध में घटित नहीं होती। क्षायोपशमिक अवस्था में जो ज्ञान रहता है वह ज्ञान उस ज्ञान का कोई भाग नहीं जो कि क्षायिक है। क्षायोपशमिक ज्ञान और

क्षायिक ज्ञान ये दोनों ज्ञानकी—चैतन्य गुण की—दो अवस्थायें हैं। दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार दीवाल व्यक्ति रूप प्रकाश का आवरण करती है उस प्रकार ज्ञानावरणी कर्म व्यक्ति रूप ज्ञान का आवरण नहीं करता, किन्तु ज्ञानको शक्ति रूपसे व्यक्ति रूप होने नहीं देता। जहाँ आवृत पदार्थ व्यक्ति रूप रहता है वहां एक देश आवरण के समय उसका जो विकाश रहता है वही सर्वदेश आवरण के अभाव के समय भी। दृष्टान्त के लिये इस ही प्रकाश को लिया जा सकता है जो कि खिड़की से आ रहा था और दीवाल से रुक रहा था। तथा फिर दीवालके भी हट जानेसे कमरे की दृष्टि से सब देश आवरण रहित कहा जासकता है। यहाँ उस प्रकाश में जो कि खिड़की से आता है, दीवाल की मौजूदगी और गैर मौजूदगी में कोई अन्तर नहीं। यह बात वहां घटित नहीं होती जहाँ कि आवरण का प्रभाव शक्ति रूप से व्यक्ति रूप हो जाने पर पड़ता है। ऐसी अवस्था में तो जितना २ आवरण दूर होता जाता है उतनी २ ही भिन्न अवस्थायें होती हैं! दृष्टांत के लिए खान से निकले हुए स्वर्ण को लिया जासकता है। इसको जितना २ तपाया जाता है उतना २ ही यह चमकदार होता जाता है। शुरु से लेकर आखीर तक इसकी जितनी भी चमकदारी की हालतें होती हैं वे सब स्वर्ण का निज रूप हैं। फिर भी एक हालत से दूसरी हालत भिन्न है। यह बात नहीं कि स्वर्ण में एक समय में जितनी चमक प्रगट हो जाती है, इसकी अधिक चमकीली हालत में वह पूरी यों ही रहे और उसमें चमक के कुछ हिस्सों की वृद्धि हो गई हो किन्तु ये सब भिन्न २ हालतें हैं। पहिली अवस्था के स्वर्ण का जो परिणमन था, दूसरी अवस्था का परिणमन उससे भिन्न है। यदि दूसरे समय में भी पहिले समय की चमक को माना जायगा तो फिर दूसरे समय में उससे अधिक चमक न हो सकेगी। क्योंकि पहिली चमक स्वर्ण की पर्याय विशेष थी तथा उसको दूसरे समय से भी माना जाता है, और फिर विशेष चमक किसकी पर्याय ठहरेगी। यह बात हो नहीं सकती कि पहिली पर्याय अंश विशेष की अवस्था हो। और फिर दूसरी पर्याय दूसरे अंश विशेष की। यदि ऐसा होता तब तो पहिली अवस्था का दर्शन और दूसरी अवस्था के दर्शन भी भिन्न २ देश में होने चाहिये थे।

साथ ही साथ यह बात भी असंभव थी कि उसी चमक के स्थान पर उससे अधिक चमक का प्रतिभास होता!

इससे स्पष्ट है कि बाह्य कारणों के निमित्त से जिस चमक का स्वर्ण में पहिले समय में आविर्भाव हुआ था, दूसरे समय उसमें ही कुछ चमक की वृद्धि होकर अधिक चमक नहीं हो गई किन्तु यह स्वर्ण का एक स्वतन्त्र परिणमन है।

यही बात ज्ञान के सम्बन्ध में है। ज्ञानावरणी कर्म का प्रभाव भी ज्ञान को शक्ति रूप से व्यक्तिरूप होने पर पड़ता है। अतः स्वर्ण की चमक की तरह इसकी भी जितनी अवस्थायें होती हैं वे सब ज्ञानस्वरूप होने पर भी एक दूसरे से भिन्न हैं, और एक का अस्तित्व दूसरे के समय नहीं रहता।

यही बात थी जिसको कुछ आचार्य मानते थे तथा जिनके मत का उल्लेख तत्वार्थ सूत्र के भाष्य-

कार ने अपने भाष्य में किया था, किन्तु यह बात युक्ति और सिद्धान्त दोनों के प्रतिकूल है, जैसा कि हम उपर बतला चुके हैं। इससे स्पष्ट है कि क्षायोपशमिक अवस्था में जो भावेन्द्रियलब्धि और उपयोग रूप ज्ञान—रहती है, वह क्षायिक अवस्था में नहीं रहती। भावेन्द्रिय के अस्तित्व से ही इन्द्रिय ज्ञान होता है, इस बात में दरबारीलाल जी ने भी कोई आपत्ति उपस्थित नहीं की। अतः स्पष्ट है कि क्षायिक अवस्था में द्रव्येन्द्रिय के रहने पर भी भावेन्द्रिय के अभाव होने से इन्द्रिय ज्ञान नहीं होता।

प्रश्नः—आपकी बात स्वीकार कर लेने पर भी तो यह बात सिद्ध होती है कि क्षायोपशमिक ज्ञान से क्षायिकज्ञान अधिक सूक्ष्म एवं बलशाली है! फिर वह उसके भी कार्य को क्यों नहीं करता ?

उत्तरः—हमने यह कहाँ कहा है कि क्षायोपशमिक ज्ञान के द्वारा हम जिस बात को जानते थे, उसको क्षायिक के द्वारा नहीं जान सकते! हम इस बात को तो खुले दिल से स्वीकार करते हैं कि जिसको हम क्षायोपशमिक ज्ञान के द्वारा जानते थे उसही को क्षायिक के द्वारा अवश्य जानते हैं। अन्तर केवल साधनमार्ग में है। जिसको हम ज्ञान की क्षायोपशमिक अवस्था में इन्द्रियों की सहायता से जानते हैं! उसही को ज्ञान की क्षायिक अवस्था में बिना ही इन्द्रियों की सहायता से जान लेते हैं। एक मनुष्य की आँखों की नज़र कम पड़ गई है और वह चश्मे की सहायता से जानता है। यदि उपचार विशेष से उसकी आँखों की नज़र बिलकुल ठीक हो जाती है और वह चश्मे की सहायता को नहीं लेता तो इसका यह मतलब नहीं कि वह अब वह चीज़ नहीं देखता जो कि चश्मे की सहायता से देखता था, किन्तु यह है कि चीज़ तो वही देखता है, किन्तु निर्बलतासे जिस चश्मे की सहायता आवश्यक हो गई है, अब उसके दूर हो जाने से वह आवश्यक नहीं रही।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी का केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों के अस्तित्व को द्रव्येन्द्रिय के अस्तित्व के आधार से युक्तियुक्त बतलाना मिथ्या है।

[क्रमशः]

विवाह कितनी अवस्था में होना चाहिये ?

[गताङ्क से आगे]

[३]

वर-कन्या का चुनाव कौन करे ?

जब देखा गया कि थोड़ी उम्र में विवाह की चाल एक दम परित्याग के योग्य नहीं है तब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि पात्र पात्री का निर्वाचन किसका कर्तव्य है और उस निर्वाचन में क्या क्या देखना आवश्यक है ?

विवाह की कम से कम जो अवस्था ऊपर ठीक की गई है* उस अवस्था में पात्र और पात्री

* हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई से प्रकाशित "ज्ञान और कर्म" नामक पुस्तक से संकलित।

परस्पर का चुनाव करने में खुद समर्थ नहीं होते, लेकिन बिलकुल अक्षम भी नहीं होते । अतएव उनके माता पिता अथवा अन्य अभिभावकों का प्रथम कर्तव्य उनको अपनी अपनी समझ के अनुसार योग्य पात्र या पात्री पसंद करना है। और उनका दूसरा कर्तव्य उस पसंद किये गये पात्र या पात्री के दोष गुण अपनी कन्या या पुत्र को जता देना और उन्हें पसंद करने का कारण समझा देना, तथा कन्या और पुत्र से उसकी राय पूछना है। पुत्र या कन्या की लज्जाशीलता इस प्रश्न का उत्तर देने में बाधक होगी। अगर कोई उत्तर देगा भी, तो इतना ही उत्तर मिलेगा कि उसे माता-पिता की सत् विवेचना के ऊपर दृढ़ विश्वास है और वे जो अच्छा समझें वहीं करें। उस समय पुत्र को विवाह करने की यदि इच्छा न होगी, तो वह उसे प्रगट कर देगा और वर के कुरूप या अधिक वयस्क होने पर कन्या कुछ इशारे से असन्तोष जनावेगी (बस इतना ही पात्र और पात्री कर सकते हैं—उनसे इतना ही उत्तर पाने की इच्छा की जा सकती है)। चाहे जो हो पुत्र कन्या को समझा कर, उनसे अपने मन का यथार्थ भाव प्रकट करने के लिये कहना, और उस भाव को खुद समझ लेना, तथा उस पर दृष्टि रखकर काम करना, पिता और माता का कर्तव्य है।

पात्र और पात्री के निर्वाचन में क्या क्या दोष गुण देखने योग्य होंगे इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं है। मनुष्य को पहिचानना कठिन है, खासकर जिस समय तक उसके शरीर और मन का पूर्ण रूप से विकाश न हुआ हो, तथापि देहतत्व और मनस्तत्व के ज्ञाता पण्डितों ने जो कुछ नियम निश्चित कर दिये हैं, उन पर दृष्टि रखकर विज्ञ पिता माता यत्न करें तो अनेक दोषों और गुणों का निरूपण कर सकते हैं। पात्र या पात्री का शरीर सुगठित और सुस्थ है कि नहीं, उनके पितृकुल और मातृकुल में किसी पूर्वपुरुष के कोई असाध्य उत्कट रोग था कि नहीं, खुद पात्र पात्री का और उसके पिता माता का स्वभाव कैसा है, और उनके मातृ कुल या पितृकुल में किसी दुष्कर्म से कलुषित कोई आदमी था कि नहीं, इन सब बातों का विशेष रूप से पता लगाना पात्र-पात्री के पिता-माता या अन्य अभिभावक का कर्तव्य है। इन बातों की खोज करने से दोष गुण का बहुत कुछ पता लग सकता है। इस प्रकार की जाँच में अगर कोई गुरुतर दोष मालूम हो तो उस दोष से सम्बन्ध रखने वाले पात्र-पात्री को छोड़ देना चाहिये। खेद की बात तो यह है कि आजकल अधिकांश लोग इन सब गुरुतर विषयों पर दृष्टि न रखकर अपेक्षाकृत लघुतर विषयों के लिये ही व्यस्त देखे जाते हैं। कहावत के तौर पर एक साधारण श्लोक सुना जाता है—

कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः ॥१॥

अर्थात् कन्या वर का रूप चाहती है, कन्या की माता वर का धन और कन्या का पिता वर की विद्या देखता है, बन्धु-बान्धव कुल चाहते हैं और अन्य बराती वगैरह लोग मिठाई खाने पर नज़र डालते हैं।

रूप अवश्य अग्राह्य करने की वस्तु नहीं है, किन्तु वह यदि यथार्थ रूप हो। कन्या ही क्यों, कन्या के माँ बाप कुटुम्बी और अन्य सभी वर का रूप देखकर सन्तुष्ट होते हैं।

वर के पक्ष में भी यही बात बहुत कुछ घटित होती है कि रूप का अर्थ केवल गोरा चमड़ा ही नहीं है। एक बार एक भले आदमी के मुख से मैं ने सुना था कि उनकी सहधर्मिणी का मत है कि उनकी भावी पुत्रवधू के अगर एक आंख न हो तो भी किसी तरह चल सकता है, लेकिन उसका रङ्ग अवश्य ही गोरा होना चाहिये। सहसा यह बात सुनकर विस्मित होना पड़ता है, किन्तु जब कुछ सोचकर देखा जाता है कि बहुदर्शी मनुष्यतत्व और जातितत्व के ज्ञाता बड़े बड़े पाश्चात्य पण्डितों के भी वर्ण-ज्ञान के अनुसार वर्णभेद ही मनुष्य के बल, बुद्धि, नीति, प्रकृति का प्रधान परिचयदाता है तो अल्पदर्शिनी अन्तःपुरवासिनी हिन्दू रमणी को यह बात उतने आश्चर्य की नहीं जान पड़ती। चाहे जो हो अंगसौष्ठव, अच्छे स्वास्थ्य के कारण प्रकट हुई शरीर की उज्वल कांति और लावण्य, और मानसिक पवित्रता या प्रफुल्लता से उत्पन्न मुख की निर्मल कान्ति ही यथार्थ रूप और सौन्दर्य है। उस रूप सौन्दर्य की खोज अवश्य ही करनी होगी। उसके अलावा रूप मिले तो अच्छा ही है और अगर न मिले तो उससे कुछ विशेष हानि नहीं। यह भी याद रखना चाहिये कि रूप का आदर तो विवाह के बाद कुछ दिन तक ही रहता है—गुण ही का आदर सदा होता है। रूप के सम्बन्ध में और एक बात है कि अत्यन्त रूप, गुण के द्वारा संशोधित न होने पर सर्वत्र वाञ्छनीय नहीं है। सौन्दर्य-गर्भित असंयत प्रवृत्ति संपन्न नर नारी अपने समान स्वरूप पति या पत्नी न पाने से पहिले असंतुष्ट होते हैं, और फिर अन्त को प्रलोभन में पड़कर उनके कुपथगामी होने की यथेष्ट आशंका है। रूप की अपेक्षा गुण का अधिक मूल्य है और गुण की ओर कुछ अधिक दृष्टि रखना, दोनों ही पक्षों का आवश्यक कर्तव्य है।

पात्र के यहाँ कुछ धन है कि नहीं और स्त्री-पुत्र कन्या आदि के भरण पोषण का सुभीता है कि नहीं, यह देखना कन्या की माता ही का क्यों, कन्या के पिता का भी मुख्य कर्तव्य है। मगर हाँ धन के ख़याल से निर्गुण पात्र को कन्या देना किसी के लिये भी उचित नहीं है। जो गुणहीन है, उसे धन से भी सुख नहीं मिलता और उसका वह धन भी बहुत सहज में नष्ट हो जा सकता है। पात्री पक्ष के धन है या नहीं, यह देखने का विशेष प्रयोजन नहीं है—हो तो अच्छा ही है न हो तो कुछ हर्ज नहीं। मनाकर, दबाव डालकर कन्या पक्ष से धन या गहने वगैरह वसूल करना बहुत ही निन्दित नीच कार्य है। पिता-माता स्नेह के मारे स्वयं ही कन्या और दामाद को यथाशक्ति गहने वगैरह देने के लिये तैयार रहते हैं। उससे अधिक लेने की चेष्टा शिष्टाचार विरुद्ध है, यह बात सर्ववादि संमत है। इस बात को सभी लोग कहा करते हैं, किन्तु दुख का विषय यही है कि काम पड़ने के समय उनमें से अधिकांश लोग इस बात को भूल जाते हैं। यह कुरीति शास्त्र के द्वारा अनुमोदित या चिरप्रचलित प्रथा नहीं है। यह आधुनिक प्रथा है, और जब सभी लोग इस प्रथा की निन्दा करते हैं तो आशा की जाती है कि यह धीरे २ उठ भी जायगी।

तौलव देशकी जैनवीर राणियाँ।

[अनुवादकः—मा० वर्द्धमान हेंगड़े मूड़बिद्री]

कर्नाटक देश के प्राचीन इतिहास देखने से मालूम होता है कि आज से सैकड़ों वर्ष पहिले यहाँ बहुत से जैन क्षत्रिय राजाओं ने शासन किया था। इतना मात्र नहीं उस समय राज वंश की बहुतसी रानियों ने भी शासन किया और पुरुषों के समान रणांगण में प्रवेश करके बड़ी वीरता से युद्ध किये हैं। उनके परिचय एक जैनेतर विद्वान के कनड़ी लेख से अनुवाद कर 'दर्शन' के मान्य पाठकों के सामने उपस्थित कर रहा हूँ। इसमें सिर्फ तौलव देश का वर्णन है, इस प्रान्त में कर्णाटक और तुल प्रान्त में बंग, चौट, अजिल, सावत, मूल, तोलार, भैररस वंश के जैन राजाओं ने शासन किया था। बंग वंश में पहिला शंकरदेवी, दूसरा शंकरादेवी, तीसरा शंकरदेवी, विठला-देवी, पदुमलादेवियों ने अपने २ समय में राज गद्दी पर बैठकर बहुत उत्तम रीति से शासन किया था।

चौट राज कुटम्ब में पहिला अब्बक्का देवी, पहिला पदुमला देवी, पहिला चन्नम्मा देवी, दूसरा अब्बक्का देवी, तिरुमलादेवी, दूसरा चन्नम्मा देवी, तीसरा चन्नम्मा देवी, दूसरा तीसरा अब्बक्का देवियोंने शासन किया। उनमें दूसरा अब्बक्क देवी ने अपनी पहिली राजधानी उल्लाल में शासन करते समय 'पोर्तगीस' लोगों के साथ कई बार ज़मीन और समुद्र में युद्ध किया था। इनकी लड़की तिरुमलादेवी भी बड़ी बहादुर थी। वह कांकलि इम्मडिराय की राणी थी। बैरब राय के साथ वैमनस्य होने से साणूर के पास युद्ध किया था। यह तिरुमल देवी हज़ारों सैनिकों के साथ रणांगण में प्रवेश करके बड़ी वीरता से लड़ी थी और सैकड़ों विरोधी वीरों को मार डाला था। 'पोर्तगीस' लोगों के साथ कई बार युद्ध करके अन्त में रणांगण में वीर मरण पाई थी।

अजिल वंश में चन्नम्मा देवी, मदुरक्का देवी, दूसरा मदुरक्कादेवी, पदुमलादेवी, दूसरा पदुमला देवी, शंकरदेवी आदियों ने शासन किया था।

मूलार राजवंश में सोमिला देवी ने बड़ी कीर्ति पाई थी। यह वीर नरसिंह लक्ष्मप्परस बंगराज की रानी थी। दोनों में अनन्तव्रत के सम्बन्ध में झगड़ा पैदा होकर रणांगण में परस्पर भयंकर युद्ध हुआ था। अन्त में बंग राजा मर गया। पति को मरते हुए देखकर सोमिलादेवी ने भी तुरन्त वहीं आत्म हत्या करली। इन दोनों की समाधी बैलगंडी राजमहल के सामने आजतक मोजूद है।

तोलार वंश में अनेक जैन रानियों ने राज्य शासन किया था। उनमें कुसमादेवी 'पोर्तगीस' लोगों से मुकाबला करते हुए बड़ी वीरता से कई बार लड़ी थी। यह बात उनकी (पोर्तगीस) चरित्र से मालूम पड़ती है।

संगीतपुर में शासन करनेवाली बैरववंशी

भैरव देवी ने 'पोर्तगीस' चरित्र में खूब नाम पाया था। वे उन्हें "काली मिर्चि" के नाम से पुकारते थे, ऐसा देखने में आया। यह इक्केरी राजाओं के साथ भी लड़ी थी। इसके मरणान्तर उसके पुत्र साल्व ने मूडबिद्री त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि (श्रीचन्द्रनाथजी मन्दिर) के अगाड़ी माता की स्मारक रूप में बड़ी विशाल भैरवा देवी शिला मय मंडप बनवाया और उसके ऊपर की तल्ले में सहस्र-कूट चैत्यालय (मन्दिर) नाम का १००८ जिनेश्वर प्रतिमाओं का एक लोह मय मनोहर यन्त्र तय्यार करके प्रतिष्ठा कराया था।

कुम्बले राज्य की शासक प्रथम रानी सुशीला देवी ने पांडराज को युद्ध में हराकर शरणागत होने के बाद वापिस भेजा था।

पानीपत शास्त्रार्थ

क्या ईश्वर जगतकर्त्ता है ?

यह शास्त्रार्थ लिखित हुआ है। इसका विषय "क्या ईश्वर जगतकर्ता है" है। इसमें आठ पूर्व पक्ष और आठ ही उत्तरपक्ष हुए हैं। पूर्वपक्ष आर्यसमाज का रहा है और उत्तरपक्ष जैनसमाज का। शास्त्रार्थ को असली रूप में—पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष के ही शब्दों में—शास्त्रार्थ संघ की तरफ से प्रकाशित किया जा रहा है। छपकर यह २०×३० के करीब १३ फार्म का रहेगा। दर्शन के पाठकों के परिचय के लिए यहां हम उन युक्तियों और प्रत्युक्तियों को जो इस सम्बन्ध में पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की तरफ से उपस्थित की गई हैं संक्षेप में लिखे देते हैं। इस शास्त्रार्थ में निम्नलिखित बातों पर विशेष विचार हुआ है:—

(१) प्रलय।

(२) सृष्टि।

(३) ईश्वर कर्तृत्व।

आर्यसमाज की तरफ से प्रलय के समर्थन में निम्नलिखित प्रमाण उपस्थित किये गये हैं—

(१) जैनशास्त्र।

(२) व्यष्टि और समष्टि का नियम।

(३) वैज्ञानिक मान्यतायें।

आर्यसमाज का कहना है कि जैनशास्त्र प्रलय को स्वीकार करते हैं। प्रमाणस्वरूप उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लो० ४४६, त्रिलोकसार श्लोक ८६७, और मोक्षशास्त्र अ० ३ सू० २७ उपस्थित किये हैं। आर्यसमाज का कहना है कि इनमें प्रलय को स्वीकार किया गया है; अतः जैनशास्त्रों से प्रलय का अस्तित्व प्रमाणित है।

आर्यसमाज की इस युक्ति के सम्बन्ध में जैनसमाज की तरफ से दो बातें उपस्थित की गई हैं। एक आर्यसमाजी प्रलय का स्वरूप और दूसरी उससे जैनशास्त्रों के कथन की असमानता। जैनसमाज का कहना है कि जगत के समस्त परमाणुओं का चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक परमाणु रूप में रहना आर्यसमाज की प्रलय है। जैन शास्त्र इस प्रकार की प्रलय का समर्थन नहीं करते।

प्रलय के सम्बन्ध में दोनों मान्यताओं का—आर्यसमाज और जैनसमाज—तुलनात्मक विचार करते हुए जैनसमाज की तरफ़ से निम्नलिखित वाक्य लिखे गये हैं:—"आर्यसमाज मतानुसार प्रलयकाल में समस्त लोक चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष पर्य्यन्त निष्क्रिय अणुरूप हो जाता है। उस समय न जीवों के रहने का कोई आयतन है न उनके कर्मभोग का कोई साधन है और न उनके बंध और मोक्ष की कोई व्यवस्था है। परन्तु जैन-शास्त्रोक्त प्रलयकाल में समस्त लोकों की व्यवस्था बनी रहती है और उसमें रहने वाले जीव भी यथा कर्मफल भोगते रहते हैं। बंध और मोक्षव्यवस्था भी ज्यों की त्यों बनी रहती है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागण, स्वर्ग, नरक व मध्यलोक अन्तर्गत जम्बूद्वीप आदि पृथ्वियाँ भी यथा नियम स्थित रहती हैं। केवल जम्बूद्वीप अन्तर्गत सात क्षेत्रों में से भरत ऐरावतक्षेत्र के अन्तर्गत आर्यावर्त खण्ड की ऊपर की किंचित्मात्र भूमि भूकम्प जलबाढ़ आदि कारणों से कुछ समय के लिये मनुष्य आदि कुछ प्राणियों के रहने अयोग्य होजाती है"। इससे प्रगट है कि जैनशास्त्र विवादस्थ प्रलय का समर्थन नहीं करते।

इस पर आर्यसमाज ने जम्बूद्वीप के इस भाग की प्रलय को ही वर्तमान जगत की प्रलय सिद्ध करने की चेष्टा की है किंतु वह इसमें असफल रहा है। आर्यसमाजकी इस असफलताके निम्नलिखित कारण हैं:—पहिला यह है कि वह जैन शास्त्रों के आधार से सूर्य और चन्द्र आदिक के अभाव को प्रमाणित नहीं कर सकता। दूसरा यह है कि ऐसी अवस्था में भी ये सब पदार्थ विद्यमान रहते हैं, इस बात का वर्णन जैन शास्त्रों में मौजूद है और तीसरा यह है कि जम्बूद्वीप का यह भाग ही समस्त जगत प्रमाणित नहीं होता। इस बात के समर्थन में जैनसमाज ने अनेक वैदिक प्रमाणों का उल्लेख किया है। प्रलय के सम्बन्ध में आर्यसमाज और जैनसमाज की तरफ़ से जिन जैन शास्त्रों का उल्लेख किया गया है उनसे यह बात प्रमाणित नहीं होती कि जैनशास्त्र जगत के समस्त परमाणुओं का चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की तो बात ही दूर है एक समय के लिये भी भिन्न २ होना मानते हैं। अतः आर्यसमाज का अपनी प्रलय की सिद्धि में जैन शास्त्रों का सहारा लेना व्यर्थ ही है।

आर्यसमाज ने इसके समर्थन में दूसरी बात व्यष्टि और समष्टि की लिखी है। समाज का कहना है कि जो बात अवयव में होती है वही अवयवी में भी होती है। वियोग जगत के एक अवयव में प्रत्यक्ष सिद्ध है, अतः यही बात जगत रूप अवयवी में भी माननी पड़ती है। यही प्रलय है।

इसका खण्डन करते हुये जैन समाज ने बतलाया है कि प्रथम तो यह नियम ही असिद्ध है। जगत को ही ले लीजियेगा, इसमें किसी एक मकान के गिरने से जगत नष्ट नहीं होता। दूसरी बात यह है कि जैसे जगत में किसी का वियोग होता है उसही प्रकार किसी का संयोग भी; तथा ये दोनों बातें एक समय होती हैं, फिर यह कैसे हो सकता है कि वियोग से प्रलय को माना जावे और संयोग से स्थिति को नहीं। आर्यसमाज इस आपत्ति का निराकरण बिलकुल नहीं कर सका है। अतः आर्यसमाज की यह युक्ति भी प्रलय के समर्थन

में असमर्थ रही है। प्रलय के समर्थन में आर्य-समाज ने तीसरी बात विज्ञान की लिखी है। आर्य-समाज का कहना है कि विज्ञान जगत के प्रलयवाद को स्वीकार करता है। प्रमाण में निम्नलिखित वाक्य उपस्थित किये हैं:—

सृष्टि और विज्ञान

"Century नामक पत्र के मई १६२८ ई० के अङ्क में एक सत्य के अन्वेषक लिखते हैं—'So the Hindus have the honour of out sciencing science in their logical analysis of the universe. And their conclusion is that there is no such thing as any primal "Creation" any more than there can be any such thing as final destruction'. अर्थ—अतः जगत का तार्किक विश्लेषण करने में वर्तमान विज्ञान (साइंस) को परास्त करने का श्रेय हिन्दुओं को प्राप्त है और यह उनका सिद्धांत है कि प्रारम्भिक सृष्टिनिर्माण (Creation) ऐसी और कोई वस्तु नहीं है और न अन्तिम प्रलय से बढ़ कर कोई वस्तु हो सकती है।

"श्रीयुत् चार्ल्स जान्स्टन महाशयने Fredrick-Soddy और Jolly महाशय के मत का पोषण करते हुए लिखा है—"Thus says Soddy, in cosmical time, geological age and incandescent age alternate as night and day. And this brings us straight back to the days and nights of Brahma in ancient Aryan science'.

"अर्थ—साडी महाशय कहतेहैं कि इस प्रकार सूर्योदयास्त काल में, भू-निर्माण-काल और प्रलय काल दिन और रात्रि के समान क्रमशः प्रवर्तित होते हैं और यह बात सीधी वापिस हमको प्राचीन आर्य विज्ञान के ब्रह्म दिवस और रात्रि के पास ले आती है।

विज्ञान और ईश्वर

"Flint's Theism के पृष्ठ १८५ पर लिखा है—'Besides, how could matter of itself produce order, even if it were self-existent and eternal? It is far more unreasonable to believe that the atoms or constituents of matter produced of themselves, without the action of a supreme mind, this wonderful universe, than that letters of the English alphabet produced the plays of Shakespeare, without the slightest existance from the human mind known by that famous name These atoms might, perhaps now and then, at great distance and long intervals, produce, by a chance contact, some curious collection as compound, but never could they produce order or organization on an extensive scale or of a durable character, unless ordered, arranged, and adjusted in ways of which intelligence alone can be the ultimate explanation'."

जैन समाज ने इसका समाधान निम्नलिखित शब्दों द्वारा किया है :—

सृष्टि और विज्ञान का सार

"आज आपने विज्ञान के दो तीन प्रमाण देकर

अपनी योग्यता की रही सही कलई (पोल) खोल दी। आप वैज्ञानिक सिद्धांतों का विवेचन तो क्या करेंगे, पहिले आप वैज्ञानिक भाषा के अर्थ को तो समझलें। आपने जो पहला प्रमाण Century नामक पत्र के हवाले से दिया है, महाशय जी वह तो आपके सृष्टि कर्तावाद का पूर्णतया खण्डन करता है। आपको किस गुरुकुल के छात्र ने ऐसी सरल अङ्गरेज़ी के इतने उलटे अर्थ बतला दिये—

"'And their conclusion is that there is no such thing as any primal creation any more than there can be any such thing as final destruction'.

"अर्थात्—उनका यह मन्तव्य है कि जगत की न कोई आदि सृष्टि है और नाहि कोई इसका अंतिम प्रलय है यानि जगत अनादि और अनन्त है।

"इसे कहते है 'जादु सिर चढ़ कर बोलना'। महाशय जी, तुम्हारा क्या दोष, तुम्हारा ईश्वर ही तुम्हारी कर्तावाद रूप भ्रान्ति का नाश कर रहा है।

"आपने जो दूसरा प्रमाण Charles Jhonston का दिया है वह भी आपका उल्टा घातक है। वह तो जैनियों के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल की स्थापना करता है। जैसा कि दिन के पश्चात् रात्रि आती है और रात्रि के पश्चात् फिर दिन, इसी तरह उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का चक्र अनादि काल से अनन्तकाल तक चलता रहता है।

"इसी तरह तीसरा प्रमाण देकर तो आपने कमाल ही कर दिया; कौन नहीं जानता कि "कांट" विज्ञानवादी नहीं था, किन्तु वह तो एक अद्वैतवादी फिलोसफर था।

अब लीजिये—आधुनिक विज्ञान !

"जिससे आपके सृष्टि कर्तावाद का पूर्णतयः खण्डन होता है—1. Hackel अपनी किताब The Riddle of the Universe में पृष्ठ १९८ पर फ़रमाते हैं—(2) The duration of the world is equally infinite & unbounded, it has no biginning & no end, it is no eternity. (3) Substance is everywhere and always in uninterrupted movement and transformation nowhere is there perfect repose and rigidity; yet the infinite quantity of matter and eternally changing force remains Constant.

"अर्थात्—यह विश्व भी अनादि और अनन्त है। इसका न कोई आरम्भ है न अन्त, यह सनातन है, जगत द्रव्य से परिपूर्ण है जो सदा अन्तर रहित परिणमन शील है। जगत में कहीं पर भी सर्वथा निष्क्रियपन अथवा कूटस्थता नहीं है, ताहं पुद्गल की अनन्त मिक़दार और उसकी सदा परिणमन शील शक्ति सदैव एकसी रहती है।

"2. Modern Inorganic Chemistry में J. W. Mellor. D. Sc. पृष्ठ ८४४ पर पुद्गल द्रव्य के सम्बन्ध में निम्न लिखित मन्तव्य प्रगट करते हैं:—'We have here the principal of opposing reactions, and the radioactivity of normalradium in an equilibrium value because the rates of production & disintegration of the emanation are evenly balanced'. अर्थात् हम इस (रेडियम) में दो विभिन्न शक्तियों को एक साथ काम करते

हुए पाते हैं, साधारण रेडियो एक्टीविटी सदा एकसी रहती है चूंकि उसकी शक्ति की छटा की उत्पत्ति और ह्रास की रफ़्तारें दोनों समान रहती हैं।

"3. 'The Science for you'. chapter 3 The Moon is our Saviour.

"४. यदि आपको अत्यन्त आधुनिक सृष्टि और प्रलयके सम्बन्ध में वैज्ञानिक तत्व को समझना है तो आप "Nature, 31 st January 1931, Page 167 to 170" देखें, जिसमें प्रोफ़ेसर R. A. Millikan, Noble prize winner in Physics ने इस बात को सिद्ध करके दिखलाया है कि चूंकि अंतरिक्ष प्रदेशों से Cosmic Rays (कौस्मिक रेज़) पैदा हो होकर सूर्य चन्द्र पृथ्वी आदि की निरन्तर ह्रास हुई शक्तियों की पूर्ती करती रहती हैं इसलिये विश्व के इतिहास में कोई समय ऐसा सम्भव नहीं हो सकता जबकि विश्व का सर्वथा परमाणु रूप विनाश हो जाय।

"अब रहा आपके जगत की व्यवस्था के संबंध में वैज्ञानिक मत सो भी देखिये :—Inorganic Chemistry में J. W. Mellor, D Sc. Page 861 पर Mayers floating Magnets के परीक्षण से सिद्ध करते हैं कि पुद्गल स्कन्धों की व्यवस्थामय आकृति, परमाणु और सन्निकट अन्य स्कन्धों की पारस्परिक आकर्षण शक्ति से, बन जाया करती है। यही तथ्य उन्होंने पृष्ठ १७६–१७७ पर Crystalisation का उल्लेख करते हुए सिद्ध किया है। और यह नित्यप्रति देखने में भी आता है कि हलवाई के शकोरों में पड़ी हुई मीठे की चाशनी कुछ ही काल में कैसे सुन्दर २ मिश्री के रवों की आकृति धारण कर लेती है।"

आर्यसमाज ने अपने अगले वक्तव्यों में इस बात के सम्बन्ध में सांस तक भी नहीं ली। इससे स्पष्ट है कि आर्यसमाज की विज्ञान की बात भी उसके लिए घातक ही प्रमाणित हुई है।

इन युक्तियों के अतिरिक्त अन्य कोई युक्ति आर्यसमाज ने प्रलय के समर्थन में उपस्थित नहीं की।

प्रलय के अभाव के समर्थन में जैनसमाज ने निम्नलिखित बातें उपस्थित की हैं :—(१) अक्षिताः वै लोकाः शतपथ ब्रा० १२, ३, ४, ११ अर्थात् लोक अनन्त है। (२) वैज्ञानिक उल्लेख जिनको आर्यसमाज के प्रलय सम्बन्धी प्रमाणों की आलोचना के समय लिख चुके हैं।

आर्यसमाज ने शतपथ ब्राह्मण के अर्थ को बदलने की चेष्टा की है और इस ही लिए उसको एक के बाद दूसरा अर्थ करना पड़ा है।

एक जगह लिखा है "प्रश्न—शतपथ में लोक को नित्य बतलाया है। उत्तर—वहां प्रवाह से नित्यता बतलाई है न कि स्वरूप से"। दूसरी जगह लिखा है कि "अक्षिताः का अर्थ न्यूनता का अभाव है अर्थात् यह संसार पूर्णज्ञानी का निर्मित है; इसलिए इसमें कोई त्रुटि नहीं है, यह भाव है"।

झूठा अर्थ करने में जैसी गड़बड़ी होनी चाहिये थी वैसी ही यहाँ हुई है; अतः अक्षिताः शब्द का वास्तविक अर्थ अनन्तता ही है और यह आर्यसमाज की प्रलय के प्रतिकूल है। अतः स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य प्रलयवाद के प्रतिकूल है।

प्रलय के सम्बन्ध में एक महत्वशाली घटना

हुई है और वह यह है कि अन्त में आकर जब आर्यसमाज का कुछ भी बस नहीं चला तब उसने आर्यसमाज की प्रलय की व्याख्या को मानने से ही इन्कार कर दिया।

आर्यसमाज ने प्रलय का स्वरूप ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पेज ५७ पर निम्नलिखित स्वीकार किया है:—"हज़ार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटा के प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है उसका नाम ब्रह्म रात्रि रक्खा है अर्थात् सृष्टि के वर्तमान होने का नाम दिन और प्रलय होने का नाम रात्रि है। यह जो वर्तमान ब्रह्म दिन है उसके एक अरब छियानवे करोड़, आठ लाख, बावन हज़ार, नौ सौ छियत्तर वर्ष इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में व्यतीत हुए हैं और दो अरब तैंतीस करोड़ बत्तीस लाख सत्ताईस हज़ार चौबीस वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी हैं"।

इससे स्पष्ट है कि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक प्रलय रहती है और इतने ही समय तक सृष्टि। प्रलय से तात्पर्य जगत के कारणरूप में—परमाणु रूप में—रहने से है और सृष्टि से कार्यरूप—परमाणु संयोगरूप—से है। सत्यार्थ-प्रकाश में भी लिखा है कि "सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक २ द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना" (देखो मन्तव्यामन्तव्य नं० ८)।

यही विवेचन जैनसमाज ने अपने पहिले वक्तव्य से लेकर आख़ीर तक आर्यसमाज के सामने रक्खा है। आर्यसमाज ने प्रलय की इस व्याख्या को अस्वीकार करते हुए निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—"अबकी बार आपने चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक परमाणुओं को फिर भिन्न भिन्न बतला दिया। श्रीमान जी ऐसी ही भ्रान्ति से तो आपने इतने पत्र काले किए हैं परन्तु फिर भी वही रफ़्तार है। भगवन् हम ऐसा नहीं मानते। जिस प्रकार रात्रि के ठीक बारह बजे पश्चात् दिन प्रारम्भ होता है उसी तरह प्रलय की अन्तिम अवस्था समाप्त होते ही कुछ काल के पश्चात् सृष्टि प्रारम्भ होती है। इसही प्रकार सृष्टिकाल के मध्य-भाग से प्रलय प्रारम्भ हो जाती है"।

विचारशील पाठक स्वयं समझ सकेंगे कि आर्यसमाज पानीपत ने आर्यसमाज की मान्यता को कितना निर्बल समझा है। यदि ऐसा न होता तो वह उसका त्याग न करता! कुछ भी सही इससे यह तो निःसन्देह प्रमाणित है कि आर्यसमाज का प्रलयवाद मिथ्या है।

इन सब बातों का स्पष्ट परिणाम यही है कि आर्यसमाज अपनी प्रलय की मान्यता के समर्थन एवं उसके निराकरण में दिये गये प्रमाणों के निराकरण में असमर्थ रहा है। [क्रमशः]

शोक !

श्रीमान सेठ लक्ष्मीचन्द जी पछार वालों का माघ शुक्ल ५ को असमयमें स्वर्गवास होगया। आपने अन्त समय में ३६५) का दान किया है। हम आपके सब कुटम्बियों के प्रति इस वियोग जन्य शोक में समवेदना प्रकट करते हैं और श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करते हैं कि स्वर्गीय आत्मा को शांति लाभ हो। दान में ११) शास्त्रार्थसंघ के लिये भी हैं, एतदर्थ धन्यवाद। —प्रकाशक

समाचार संग्रह !

—श्री सम्मेदशिखर जी पर मेले के समय अनेक सज्जनों ने मधुवन के आस पास अथवा ईसरी में एक उदासीनाश्रम स्थापित करने का विचार किया है, जिसमें १०—५ त्यागी ब्रह्मचारी रहकर विद्याध्यन करें। उनके अध्यापन के लिये वहाँ एक विद्वान भी रहे तथा एक पुस्तकालय भी हो। इसके लिये चालीस पचास हज़ार रुपये के स्थायी फंड की आवश्यकता है। तदर्थ सबसे प्रथम बांकीपुर निवासी श्रीमान् सूर्यमल जी बसंतीलाल जी ने ५१००) रुपये देना स्वीकार किया है। कलकत्ता निवासी सेठ वृद्धिचन्द्र जी ने यह सम्मति दी कि ११ सदस्यों की एक कमेटी बनाकर चंदा एकत्र करने कलकत्ता पधारें तो फंड होना कुछ कठिन नहीं है। अतः इस कार्य में विलम्ब न करके शीघ्र कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिये।

निवेदक—लक्ष्मीनारायण बड़जात्या, नवादा

सं० अभिमत—सेठ साहिब को स्वयं इस उद्योग में लग जाना चाहिये। वे कलकत्ते आकर वहां के उत्साही उदार पुरुषों में से चुनकर एक कमेटी बनाकर कार्य प्रारम्भ करदें।

—असत्य आक्षेप—कुछ भाइयों ने बीस पंथी कोठी मधुवन पर यह आक्षेप किया है कि मेले के समय उसने तेरापंथी यात्रियों को ठहरने के लिये अपनी धर्मशालाका स्थान नहीं दिया, यह आक्षेप [illegible] है। बीस पंथी कोठी के पास जितना स्थान [illegible]ना किसी भेदभाव के उसने यात्रियों को [illegible]खोलकर दिया था। खेद है कि लोग निरा-[illegible]धार कुछ आक्षेप कर बैठते हैं। —सम्पादक

—ललितपुर में बुन्देलखंड दि० जैन सुकृत फंड क़ायम हुआ है। इसमें पारमार्थिक संस्थाओं की रक़मों को सुरक्षित रखते हुए उचित सूद पर देकर दिगम्बर जैन भाइयों की भी सहायता की जावेगी। इस प्रकार प्रत्येक प्रान्त में प्रबन्ध होना चाहिये। यह स्कीम श्रीमान सेठ रोडमल मेघराज सुसारीने चालू की है।

—देहली में सदैव की भाँति इस वर्ष भी ता० २५ से २८ मार्च तक जैन मित्र मंडल श्री महावीर जयन्ती महोत्सव बड़े समारोह के साथ मनायगा।

—श्री [illegible]कुमार सभा आगरा की तरफ़ से भी श्री महावीर [illegible]न्ती उत्सव ता० २८ व २९ मार्च को बड़ी धूम धाम से मनाया जावेगा।

—श्री अ० भा० पल्लीवाल जैन महासभा का द्वितीय अधिवेशन मिति चैत सुदी १४-१५ ता० २९-३० मार्च को श्री अतिशय क्षेत्र महावीर जी (चाँदनगाव) में होगा। इसलिए समस्त पल्लीवाल भाइयों से निवेदन है कि वे अवश्य पधारें और अपने आने की सूचना मंत्री स्वा० स० के पास चैत्र सुदी ११ तक भेज दें, जिससे कि यथोचित प्रबन्ध हो जाय।

स० मंत्री श्यामलाल जैन बारोलिया,
बेलनगंज, आगरा।

—अ० क्षेत्र थूवौन जी के बड़े मन्दिर न० १३ में श्रीमान् सेठ कुंजीलाल जी ने व न० ३ में सिंघई बालचन्द्र जी ने टाईल का फ़र्श लगवाने की उदारता की है, तदर्थ धन्यवाद। क्षेत्र पर जीर्णोद्धार का कार्य चालू है। द्रव्य की अत्यन्त आवश्यकता है। श्रीमानों को ध्यान देना चाहिये।

—मंत्री।

—ललितपुर क्षेत्रपाल में चैत्र सुदी १ से श्री अभिनन्दन दि० जैन पाठशाला पुनः चालू होगी।

Regd. No. A. 2379.

—स्वर्गीय श्रीमान सेठ टीकमचन्द जी के स्मरण में उनके सुपुत्र श्रीमान कुंवर भागचन्द जी सोनी ने ५००००) पचास हज़ार रुपया परमार्थ के लिये निकाला है। हमारे ख्याल से यह रुपया आपको पुरातत्व के लिये या खोज (रिसर्च) के कार्य के लिये लगाना चाहिये।

—श्रीमान रावराजा सरसेठ हुकमचन्द जी इन्दौर की अध्यक्षता में श्रीमान कुंवर भागचन्द जी सोनी, रा० ब० बा० नांदमल जी अजमेरा, कुंवर ऋषभदास जी जयपुर, सेठ [illegible] जी [illegible] जी नसीराबाद और [illegible] धुलेव [illegible] उदयपुर गए हैं जो कि [illegible] केशरिया [illegible] मंदिर के विषय में दिगम्बर जैन समाज के लिये [illegible] न्याय कराने के लिये वहां के रेजीडेन्ट साहब, दीवान साहिब तथा उदयपुर महाराज से मिलेंगे। उन्होंने इस विषय में न्याय करने की आशा [illegible] दिया है।

—प्रतापगढ़ के मेले में निम्नलिखित [illegible] उल्लेखनीय कार्य हुए हैं :-

१—श्रीमान पूज्य क्षुल्लक ज्ञानसागर जी को मुनिदीक्षा देकर उपाध्याय पदवी से [illegible] किया गया। आपका दीक्षित नाम [illegible] रक्खा गया। आपका [illegible] सप्तम प्रतिमा ग्रहण करने पर ज्ञानचन्द्र, [illegible] होने पर ज्ञानसागर नाम था।

२—श्री क्षुल्लक चन्द्रसागर जी (पूर्वनाम [illegible]) अजमेरा को मुनिदीक्षा [illegible] नाम आदिसागर रक्खा गया।

३—ब्रह्मचारी शान्तिप्रसाद जी को क्षुल्लक दीक्षा दी गई।

४—तपकल्याणक के दिन संघपति श्रीमान सेठ पूनमचन्द जी ने धर्मार्थ एक लाख रुपया दान के लिये निकाला तथा मुरैना विद्यालयको आजन्म साढ़े तीन सौ रुपये वार्षिक देना स्वीकार किया। आप प्रतापगढ़ के आस पास श्राविकाश्रम खोलना चाहते हैं।

५—प्रतापगढ़ नरेश ने सेठ पूनमचन्द जी को राज्य की ओर से 'सेठ' पदवी प्रदान की।

मेले में उपस्थिति २०-२५ हजार की थी।

—सन १९२१ की जन गणना अनुसार जैन लोग ११७८५९६ हैं। जिनमें पुरुषों की संख्या ६४४६११ है तथा स्त्रियों की संख्या ५०६९२० है। यह संख्या अपूर्ण है, क्योंकि अनेक स्थानों पर जैन लोगों को हिन्दुओं के खाने में रखकर वैश्य लिख दिया गया है।

—सरकार की ओर से २८ फरवरी को एसेम्बली में प्रस्ताव रक्खा गया है, जिसमें लिफाफे का मूल्य एक पाई घटाकर केवल पांच पैसे रखने की, एक आने का टिकिट लगाकर लिफाफे में आधा तोला वज़न तक की चिट्ठियां भेजने की तथा तेरह आने के बजाय ९ आने में ८ शब्दों वाला तार भेजने की बातें शामिल हैं। बुक पैकेट पांच तोले तक दो पैसे के बजाय तीन पैसे में जावेगा।

—पहली अप्रैल से रसीदें, हुंडी आदि पर लगाने वाले टिकिट डाकखाने के टिकटों से दूसरी तरह के चलेंगे।

—सरकार ने भारत में आने वाली चांदी पर साढ़े सात आने प्रति औंस ड्यूटी घटाकर ५ आने कर देने का तथा देशी खांड पर एक रुपया पांच आने हन्ड्रेडवेट चुंगी लगाने का निश्चय किया है। दियासलाई पर भी चुंगी लगेगी।

"चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस बिजनौर से छप कर प्रकाशित हुआ।

तारीख़ १ अप्रैल सन् १९३४ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क १८

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुल्तान सिटी। —ऑनरेरी सम्पादक— पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

जैनदर्शन पर लोकमत !

श्रीमान पं० सुब्रय्य जी शास्त्री न्यायतीर्थ मैसूर दरबार के आस्थान विद्वान लिखते हैं कि—जैनदर्शन में सभी लेख पाठ्य एवं महत्वपूर्ण रहते हैं। पार्श्वंदुवाद के खंडन करने का सौभाग्य इसी पत्र को मिला है। इसका प्रत्येक अङ्क दर्शनीय एवं पठनीय है। इस पत्र द्वारा दिगम्बर जैन समाज में प्रकाश फैलेगा ऐसी आशा है। हमारी कामना है कि इसकी उन्नति दिनों दिन होती रहे।

आयुर्वेद विशारद पं० मनोहरलाल जी वैद्यशास्त्री झांसी लिखते हैं कि—जैनदर्शन प्रशंसनीय रूप में प्रकाशित हो रहा है; इसका उन्नत रूप जैनसमाज और जैनधर्म को बहुत लाभ पहुंचावेगा।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

हार्दिक धन्यवाद !

"जैन दर्शन" के प्रेमियों ने "दर्शन" को निम्न प्रकार सहायता देकर अपना प्रेम प्रकट किया है, जिसके लिये धन्यवाद है। आशा है अन्य दानी श्रीमान् भी अनुकरण करेंगे:—

५) ला० बिहारीलाल जी जैन, बैजोई
५) ला० करोरीलाल जी जैन, बैजोई
२) ला० रूप चन्द्र जी जैन, बैजोई।
२) श्री० चन्द्रनाथ बाबा जी डोले जैन कासार, लातूर—विवाहोत्सव के समय
२) ला० मुक्खामल जैन, जालन्धर छावनी

—मैनेजर "जैन दर्शन"

शास्त्रार्थ

१—ज्वालापुर महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता बा० काशीनाथ शर्मा ने शास्त्रार्थ संघ को ता० १५-३-३४ को शास्त्रार्थ का निमंत्रण दिया था, अतः निमंत्रण स्वीकार कर लिया गया है। यह शास्त्रार्थ ता० २ अप्रैल को होगा। इसका विषय है—

क्या वेद ईश्वर कृत है या ईश्वरीय ज्ञान है ?

२—झांसी में भी मंत्री आर्यसमाज ने जैन-समाज को शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया है, पत्र व्यवहार हो रहा है। शायद यह शास्त्रार्थ १५ अप्रैल के बाद हो, ऐसी सम्भावना है।

—संवाददाता

—कासगंज (अलीगढ़) में श्री जैन रथोत्सव मेला तथा वेदी शुद्धि विधान ता० ८ अप्रैल से ११ अप्रैल तक बड़ी धूमधाम से होगा। सबको पधारना चाहिये।

—मंत्री

श्वेताम्बर समाज के योगिराज का अनशन भंग

श्वेतांबर जैन समाज के योगिराज (?) शांति विजयजी का श्री ऋषभदेवजी के सम्बन्ध में ता० २८ से अनशन करना प्रसिद्ध किया गया था, किन्तु विश्वस्त रूपसे मालूम हुआ है कि सिर्फ़ एक दिन अनशन करके ही अनशन भंग कर दिया गया है— अब वे छाछ और सब्जी खाने लग गये हैं।

उदयपुर के प्रधान सचिव सर सुखदेव प्रसाद जी से आपकी बात चीत हुई थी; विश्वस्त रूप से मालूम हुआ है कि उस समय आपने क्रोध में आ कर अंटसंट कहा और शान्ति का नमूना प्रकट दिखा दिया। साथ में यह भी मालूम हुआ है कि पीछे आपने क्षमा याचना भी कराई है।

अन्तर्जातीय विवाह

के इच्छुक अपने पुत्र पुत्रियों के नाम, आयु, योग्यता तथा अपनी जाति व मासिक आय लिख कर निम्न पते पर भेजदें। सहानुभूति रखने वाले महानुभाव अपनी २ सम्मति लिख भेजने की भी कृपा करें:—

जैन अन्तरजातीय विवाह सहायक समिति
C/o ला० जुगमन्दर दास जैन,
२०१ हरीसन रोड, कलकत्ता।

अहिच्छेत्र—वार्षिकोत्सव

यात्री कम आने पर भी इस वर्ष पं० राजेन्द्र-कुमार जी व चौ० धर्मचन्द्र जी व ब्रह्मचारी बुद्धि-सागर जी के पधारने व उनके उपदेश के कारण आनन्द अधिक रहा। शास्त्र सभा व व्याख्यानों से धर्म की खूब प्रभावना हुई।—

—अभिनन्दनप्रसाद जैन, धामपुर।

श्री जैनदर्शननभसि प्रथितोग्ररश्मिर्भस्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमनिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ । बिजनौर, वैशाख वदी २—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० । अङ्क १८

बड़प्पन कहां है ?

मनुष्य अपने उज्वल कार्यों से महत्व पाता है। बाहरी धूमधाम से कोई बड़ा नहीं बन जाता। यदि कोई धनकुबेर होकर भी अपना द्रव्य धर्मप्रचार, विद्याप्रसार एवं लोकहितकर कार्यों में दान नहीं करता तो वह यशस्वी नहीं हो सकता, क्योंकि धन तो वेश्याएं भी एकत्र कर लेती हैं। वह मनुष्य उससे अधिक उन्नत है जो अल्प धनिक होने पर भी परोपकार में अच्छा खर्च करता है।

वह भीम काय पुरुष भी किस काम का जिसने अपने शारीरिक बल का उपयोग बलहीन की सहायता तथा संकट समय में निर्भय होकर धर्मरक्षा के लिए नहीं किया। वह मनुष्य उससे लाख दर्जे अच्छा है जो दुबला पतला होने पर भी निडर है तथा निःस्वार्थ सेवा में अग्रसर है।

बड़ा विद्वान होने पर भी यदि उसने मानवसमाज का अन्धकार दूर नहीं किया तो उससे क्या लाभ? उसकी अपेक्षा वह व्यक्ति प्रशंसनीय है जो थोड़ा पढ़ा लिखा होने पर भी शक्ति अनुसार समाज में प्रकाश फैलाता है।

वह महा उपदेशक भी किस काम का जिसका लच्छेदार उपदेश केवल लोगों के मनोरञ्जन के लिये है; जिसका निजी आचरण कुछ भी नहीं।

इसी प्रकार वह लेखक भी कुछ नहीं जिसकी लेखनी मुर्दा दिलों में जीवन पैदा न कर देवे।

विशाल सागर से वह छोटा सा सरोवर अच्छा है जिसका मीठा पानी प्यासे जीवों की प्यास बुझाता है।

सम्पादकीय !

हमारे नवयुवक !

[गताङ्क से आगे]

[८]

विषय कर्म

जिन पशुओं को हमने विवेकहीन समझ रक्खा है यदि उन पशुओं पर दृष्टिपात करके अपनी गुणग्राहिणी नीति से उनके कामसेवन पर विचार करें तो अधिकांश मनुष्य उन पशुओं से भी पतित साबित होते हैं।

सिंह को देखिये उसको केवल एक बार कामवेदना उत्पन्न होती है, तदनुसार वह केवल एक बार विषयसेवन करता है जिससे कि सिंहनी गाभिन (गर्भिणी) हो जाती है। गर्भाधान के पीछे सिंह फिर उसकी ओर विकार दृष्टि से देखता भी नहीं।

सांड का विचार कीजिये—हजारों गायों के झुंड में रात दिन रहते हुए भी वह मैथुन इच्छा से किसी भी गाय को नहीं छेड़ता, किन्तु जो गाय रजस्वला होती है उसी से दो एक बार कामसेवन करके गाभिन हो जाने पर फिर उसको विषयसेवन का निशाना नहीं बनाता। सांड को इस विषय में मनुष्य से भी अधिक ज्ञान है कि गाय का शरीर सूंघ लेने पर उसे पता चल जाता है कि यह गाय गर्भिणी है या नहीं, गर्भिणी गाय के साथ वह पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहता है।

शेर के समान गृहस्थ पुरुष तो करोड़ों में दो चार होंगे। सिंह की पशुवृत्ति अन्य बातों में भले ही हो किन्तु ब्रह्मचर्य की तुलना में मनुष्य के भीतर सिंह से बढ़कर दुराचार है। सांड के समान गृहस्थ पुरुष भी विरले ही दीख पड़ेंगे। अधिकांश मनुष्य महिला समुदाय के भीतर अधिक समय तक रहते हुए अपने अखिण्ड ब्रह्मचर्य को उस तरह सुरक्षित नहीं रख सकते जिस प्रकार गायों के झुंड में रात दिन रहते हुए भी सांड अपने ब्रह्मचर्य को पतित नहीं होने देता। तथैव पत्नी के गर्भाधान समय में ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले युवा पुरुष भी बहुत कम मिलेंगे।

कुत्ते का स्थान मनुष्यों ने बहुत नीचा समझ रक्खा है, किन्तु कामवासना की दृष्टि में वह भी मानव जाति से बहुत कुछ उच्च है। वर्ष के ११ मासों में वह पूर्ण ब्रह्मचारी रहकर केवल एक आध मासके लिये कुशीलसेवन करता है, जबकि सभ्यता

का पुजारी मनुष्य विषयवासना का शिकार होकर उस कुत्ते से भी कई गुणा अधिक विषयी जा ठहरता है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से तो यह बात निश्चित है ही कि जो जितना अधिक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसका आत्मा उतना ही अधिक बलवान होता है, किन्तु व्यावहारिक नीति से भी विचारशील अनुभवी विद्वानों का यह सिद्धान्त है कि कामवेदना प्रायः निर्बल मनुष्य को अधिक रहती है। पौरुषहीन नपुंसक लोग रात दिन विषयवेदना से बेचैन रहते हैं जबकि बलवान पहलवान अधिक ब्रह्मचर्य का आनन्द अनुभव करते हैं।

देवगति का विवरण भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालता है। उनके भीतर नीच जाति के स्वल्पसुखी देवों में विषयवासना की प्रबलता है, जबकि ऊंची जाति के देव विषयसेवन से दूर रह कर उनसे बहुत अधिक सुखी बतलाये गये हैं।

नवयुवकों को इन दृष्टान्तों से सार शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। विवाहित अवस्था में उन्हें आध्यात्मिक तथा शारीरिक अभ्युदय का ख्याल रखते हुए विषयवासना में उतना अधिक न बढ़ना चाहिये जहां तक कि पशु भी नहीं बढ़ पाते।

गर्भावस्था में तो ब्रह्मचर्य का परिपालन अति-आवश्यक है। उस समय का मैथुनकर्म न केवल अनुचित है, किन्तु गर्भस्थ सन्तान के लिये भी बहुत हानिकारक है।

उत्तम गुणी सन्तान यदि घर में एक ही जन्म ले तो वह माता पिताके लिये सुखदायक है, किन्तु अयोग्य निर्बल पुत्र यदि अनेक भी उत्पन्न हो जावें तो उनसे परिवार का दुखभार और भी भारी हो जाता है। इस कारण गृहस्थ मनुष्य को उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का ही उद्देश्य रखना चाहिये।

उत्तम सन्तान का जन्म जहाँ दैवाधीन है वहां बहुत कुछ माता के भी आधीन है। माता एक तो स्वयं सदाचारिणी, गुणवती होनी चाहिये; दूसरे गर्भावस्था में उसको अपनी ओर और भी अधिक सावधानी से रहने की आवश्यकता है, क्योंकि माता की विचार-क्रियाओं का प्रभाव सन्तान पर पड़ता रहता है।

माता यदि गर्भावस्था में अपना दुराचार न छोड़े तो सदाचारी सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती, क्रोधी स्त्री से क्रोधी बच्चे का प्रसव होता है। चोरी, चुगलखोरी, गाली गलौज आदि पाप कार्य करने वाली गर्भिणी महिला के उदर से धार्मिक पुत्र का उत्पन्न होना असंभव प्रतीत होता है।

इसी प्रकार मूर्ख, बुद्धिहीन स्त्री के गर्भ पर वह असर पड़ता है कि उसका बच्चा कुंद बुद्धि मूर्ख ही निकलता है और डरपोक माता डरपोक पुत्र को जन्म देती है। इस कारण गर्भावस्था के समय माता को सन्तानसुधार के विचार से बहुत कुछ सावधान रहने की आवश्यकता है।

[क्रमशः]

उपयुक्त दान

जैनधर्म का प्रचार जो बहुत फीका पड़ गया है अन्य कारणों के सिवाय उसमें एक विशेष कारण यह भी है कि हमारे धनिक लोग या तो अपने धनभंडार को हवा नहीं लगाते और यदि भंडार का द्वार खोलते भी हैं तो अनु-

पयोगी कार्यों में द्रव्य खर्च कर डालते हैं। इस समय ऐसे अनेक उपयोगी कार्य जैनसमाज के सामने हैं जिनमें रुपये की आवश्यकता है, किन्तु उस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता।

यह जानकर हर्ष हुआ है कि स्वर्गीय श्रीमान सेठ टीकमचन्द्र जी के स्मरण में उनके होनहार सुपुत्र सेठ भागचन्द्र जी सोनी ने पचास हज़ार रुपया दान के लिये निकाला है। आपको यह रकम आवश्यक कार्य में खर्च करनी चाहिये। इस समय दो कार्य बहुत आवश्यक हैं—१. जैनपुरातत्व, २. जैनसिद्धान्त का वैज्ञानिक ढंग से प्रचार।

भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में अनेक स्थान ऐसे हैं जहां पर कि जैनधर्म का प्राचीन गौरव पृथ्वी के भीतर छिपा हुआ है और किसी चतुर मज़दूर की कुदाली की प्रतीक्षा कर रहा है तथा ग्वालियर, उदयपुर, देवगढ़, मथुरा, खंडगिरि, श्रवणबेलगोला अनेक स्थान ऐसे हैं जहां के शिला लेखोंका बड़ी सूक्ष्म रीति से अध्ययन होना चाहिये, क्योंकि इन प्राचीन लेखों में बहुत महत्व भरा हुआ है। भगवान महावीर स्वामी की विहारभूमि बंगाल का एक एक गांव "खोज" (रिसर्च) के लिये महत्व की वस्तु है जहां स्थान स्थान पर दो दो हज़ार वर्ष पुराने मंदिर व प्रतिमायें पाई जाती हैं।

इसके लिये यदि सेठ साहिब पचास हजार रुपये का ध्रौव्य फंड बनाकर केवल उसके सूद से कार्य चालू कर दें तो जैनधर्म का गौरव अच्छा प्रकाश में आवेगा और आपका यश भी अमर हो जावेगा।

बिना छने जल में त्रस जीव होते हैं, विधि-पूर्वक छाने हुए जल में नहीं होते, प्रासुक जल में सर्वथा नहीं होते, द्विदल, कंदमूल, रात्रि का अन्न भोजन, बासी भोजन आदि क्यों अभक्ष्य हैं? इनका वैज्ञानिक ढंग से समाधान करने वाली सचित्र पुस्तकें अभी तक प्रकाशित नहीं हुईं। परमाणुओं का बंध, वायु में रूप, प्रकाश, अन्धकार की पौद्गलिकता इत्यादि विषय वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध होकर उन्हें प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

इसके लिये भी एक स्थायी कोष की आवश्यकता है जिसका सूद ही खर्च किया जावे। यदि सेठ भागचन्द्र जी साहिब इन दोनों कार्यों में से एक को भी अपना कर अपना द्रव्य लगा दें तो वे जैनधर्म की अनुपम सेवा कर सकेंगे।

यदि उनको ये सम्मतियां नापसंद हों और वे इस द्रव्य को संस्थाओं की सहायता के लिये ही संकल्प कर चुके हों तो फिर **शास्त्रार्थ संघ अंबाला** सरीखी उपयोगी किन्तु धनहीन संस्थाओं को नहीं भुलाना चाहिये क्योंकि वर्षा खेत में उपयोगी होती है, समुद्र में नहीं।

प्रतापगढ़ मेले के अवसर पर श्रीमान संघपति सेठ पूनमचन्द्रजी घासीलालने भी एक लाख रुपया **श्राविकाश्रम तथा मंदिरों के जीर्णोद्धार के** लिये निकाला है। ये कार्य भी उपयोगी हैं; उस प्रान्त में जहां श्राविकाश्रम की आवश्यकता है वहां भारतवर्षीय जीर्ण दिगम्बर जैन मंदिरों के उद्धार की भी आवश्यकता है।

सेठ जी को ५०-६० हज़ार रुपये का ध्रौव्य कोष बनाकर जीर्णोद्धार का कार्य स्थायी बना देना चाहिये इसके लिये निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान देना चाहिये :—

१—प्रत्येक तीर्थक्षेत्र पर उसके प्राचीन इतिहास का सूचक शिलालेख लगाना आवश्यक है।

२—बटेश्वर, मंदारगिरि, गुणावा, पटना आदि क्षेत्रों पर धर्मशाला की आवश्यकता है। ३००-४०० रुपये में वहां यात्रियों के ठहरने योग्य कोठरी तय्यार हो जाती है।

३—अभी भूकम्प से बिहार के अनेक मंदिर गिर गये हैं या फट गये हैं तथा बुंदेलखंड में अनेक अतिशय क्षेत्र जीर्ण हो गये हैं उनका उद्धार होना आवश्यक है।

४—देवगढ़, खंडगिरि, उदयगिरि आदि क्षेत्रों पर उनके कार्य पूर्ति के लिये द्रव्य की आवश्यकता है।

५—चौरासी (मथुरा) पर क्षेत्र का बाड़ा ७-८ हाथ बाकी रह गया है उसके लिये केवल तीन चार सौ रुपये की ज़रूरत है।

६—मंदारगिरि आदि कुछ क्षेत्रों पर प्रतिमा तथा साइनबोर्ड सरीखे शिलालेखों की आवश्यकता है।

७—प्रत्येक तीर्थक्षेत्र के संक्षिप्त इतिहास प्रकाशित होने की आवश्यकता है।

सेठ जी यदि स्थायी कोष कायम करके उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहेंगे तो जीर्णोद्धार का कार्य प्रशंसनीय रहेगा तथा स्थायी-कोष के कारण यह कार्य सदा चलता रहेगा।

आशा है हमारे ये शब्द उक्त सेठ महानुभावों के विचार में स्थान पावेंगे।

यात्रा के अनुभव

श्री सम्मेदशिखर की यात्रा करते समय मार्ग में अनेक तीर्थक्षेत्रों की वंदना करने का हमको सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अवसर पर तीर्थक्षेत्रों की दशा का जो कुछ साधारणतया अनुभव हुआ उसको आवश्यक समझ पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं।

चौरासी (मथुरा)

यह तीर्थक्षेत्र मथुरासे १ मील दूर होने से तथा यहां का जलवायु उत्तम होने से अच्छा रमणीक है; इस क्षेत्र का प्रबन्ध स्व० राजा लक्ष्मणदास के प्रदत्त गांव की वार्षिक आमदनी से होता है। सेठ गोपालदास जी तथा सेठ मथुरादास जी के स्वर्गवास हो जाने से क्षेत्र की व्यवस्था अच्छी नहीं है। श्रीमती सेठानी जी को एक स्थानीय पुरुषों की कमेटी बनाकर प्रबन्ध ठीक रखना चाहिये।

१—बगीचा बुरी हालत में पड़ा है, उसका सुधार होना चाहिये। २—धर्मशालाओं की सफाई होकर उनमें ताले पड़े रहने चाहियें जिनकी चाबियां या तो ब्रह्मचर्याश्रम के मैनेजर के पास रहें अथवा मंदिर के जमादार के पास। ३—एक माली और बढ़ाना चाहिये। ४—क्षेत्र का कोट कुछ अधूरा है वह पूरा हो जाना चाहिये। ५—मुनिसंघ के तथा मथुरानगर में रथयात्रा होने के स्मरण में जो यहां देहली वालों ने स्तम्भ खड़ा किया है वह ज़रा सा अधूरा रह गया है उन्हें उसको पूरा करा देना चाहिये।

क्षेत्र पर श्री ऋषभब्रह्मचर्याश्रम होने से रौनक रहती है। आश्रम की दशा पहले से तो अच्छी है किन्तु अभी बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है।

वृन्दावन में पहले जैनमंदिर बहुत साधारण अवस्था में था किन्तु अब श्रीमती पं० चन्दाबाई आरा ने उसका जीर्णोद्धार करा के अच्छा बनवा दिया है।

शोरीपुर--बटेश्वर

आगरे के पास यह बहुत प्राचीन दर्शनीय तीर्थक्षेत्र है; आगरा आने वालों को यहां की वंदना अवश्य करनी चाहिये। बटेश्वर में जमना नदी के किनारे ५ खंडका एक विशाल मंदिर बना हुआ है। शोरीपुर यहांसे एक मील है, वहाँ प्राचीन छतरी बनी हुई है। इस स्थान पर अधिकार प्राप्त करने के लिये दिगम्बर श्वेताम्बर समाज का मुकद्दमा चल रहा है, जिसकी पैरवी दिगम्बरियों की ओर से श्रीमान बा० ताराचन्द्र जी रपरिया बेलनगंज आगरा कर रहे हैं। इस क्षेत्र पर जीर्णोद्धार के लिये तथा धर्मशाला बनाने के लिये द्रव्यकी आवश्यकता है। उदार पुरुषों को इधर अवश्य ध्यान देना चाहिये। [अपूर्ण]

अद्भुत बुद्धि विकास

हमारे अनेक महानुभाव तीर्थङ्करों के अतिशयों को तथा उनकी सर्वज्ञता को अपने दिमाग़ी गज़ से नापने का उद्योग किया करते हैं और थाह न पाकर कह बैठते हैं कि यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती। उन महाशयों को निम्नलिखित आधुनिक विद्यमान व्यक्तियों के अतिशय ज्ञान का मनन करना चाहिये :—

अमृतबाजार पत्रिका में अभी ११—३—३४ को प्रकाशित हुआ है कि—

१—श्री मणिमोहन कुशारी एक १० वर्ष का लड़का है, वह गणित में इतना चतुर है कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने उसकी आयु का तथा पहली परीक्षाएं पास न करने का विचार न करके उसको एम० ए० की परीक्षा में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी। अब उसको कलकत्ता यूनिवर्सिटीने गणित का ऊंचा अध्ययन करने के लिये इङ्गलेण्ड भेजा है। वह पदार्थ भार परिमाण विद्या (Statics) में तथा बलविद्या (Dynamics) में पूर्ण निपुण है।

२—लबैक (Lubeck) (जर्मनी) निवासी हैनरिक कैनेकन नामक एक बच्चा था जो कि उत्पन्न होने के दो मास पीछे बोलने लगा था; जब वह १३ महीने का हुआ तब उसको बाइबिल तथा पैन्टेटच (मूसा का बनाया हुआ ग्रंथ) नामक पुस्तकें याद हो गईं। जब वह दो वर्ष का हुआ तब वह सारा नया, पुराना इतिहास जान गया एवं उसको फ्रेंच तथा लैटिन भाषा का पूर्ण ज्ञान हो गया। उसका दिमाग़ बहुत वेग से उन्नति कर रहा था किन्तु दुर्भाग्य से वह होनहार असाधारण विद्वान पांच वर्ष से अधिक समय तक अपनी अद्भुत लीला न दिखा सका और परलोक यात्रा कर गया।

३—मिस जोन मैनिंग संडर्स ८ वर्ष की आयु में बड़प्पन की तरह स्वतंत्रता से कार्य करने लगी; जब वह बारह वर्ष की हुई तब वह निपुण चित्रकार (आर्टिस्ट) बन गई। जिस समय वह केवल १४ वर्ष की थी तब उसके हाथ का बना हुआ एक सुन्दर चित्र चित्र-प्रदर्शिनी में रक्खा गया।

४—हरन (जालंधर) गांव में अभी ८ मार्च को एक अद्भुत बच्चा उत्पन्न हुआ है जो १४ इञ्च लम्बा तथा ४१ रतल (लगभग २० सेर) वज़न का है। उसके मुख में पूरे दांत हैं। उसके शरीर पर बाल हैं तथा डाढ़ी भी है।

देखने के लिये आये हुए मनुष्यों से वह बात

चीत भी करता है तथा उनके प्रश्नों का ठीक उत्तर देता है। उस गांव में दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती है।

अपने परिमित बुद्धिवैभव से सर्वज्ञ के असीम ज्ञान की नाप तौल करके सर्वज्ञता पर अपनी लेखनी से कूची फेरने वाले महानुभावों के लिये उपर्युक्त उदाहरण नवीन समस्या रखते हैं जिनपर से उनका मनन करने की आवश्यकता है।

श्वेताम्बरमतसमीक्षा

हमारे परिचित प्रेमी श्रीमान यति सूर्यमलजी कलकत्ता के शुभ उद्योग से श्वेताम्बरमत समीक्षा की आड़ में आज अनेक महानुभावों की लेखनी से प्रिय असभ्य शब्द पूर्ण लेख पढ़ने के लिये मिल रहे हैं। इसके लिये अपने प्रेमपात्र यति जी के हम आभारी हैं और अपने अधीर विरोधी मित्रों के लेखों का स्वागत करते हैं।

हमको कतिपय श्वेताम्बर दिगम्बर मित्रों ने पत्रों द्वारा प्रेरित किया है कि इस विषय में हम कुछ प्रतिवाद करें। हम अपने उन मित्रों से निवेदन करते हैं कि अभी इस विषय में हमारे कुछ लिखने का समय नहीं आया। जब समय आवेगा तब हम आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे।

क्योंकि अभी तक प्रायः किसी भी लेखक ने प्रकृत विषय पर कुछ भी सार पूर्ण नहीं लिखा—केवल ऊटपटांग, गालीगलौज से अपना परिचय सर्वसाधारण को कराया है, उनमें से अधिकाँश तो ऐसे हैं जिन्होंने श्वेताम्बरमतसमीक्षा को देखा भी नहीं है, कुछ ऐसे भी हैं जो दूसरे के कंधे पर बन्दूक रखकर असफल निशानेबाज़ी कर रहे हैं, कुछ वीर ऐसे भी हैं जो अपने यहाँ से खुद अकेले लिखकर, पंचायत का नाम कर रहे हैं। जहाँ केवल एक भाई का ही घर है वे भी लिख रहे हैं कि **हमारे यहां सभा हुई जिसमें श्वेताम्बरमतसमीक्षा का बायकाट हुआ।** अखबार पढ़ने वाले समझते होंगे कि शायद वहाँ भी ५०—१०० घर होंगे। कुछ सुयोग्य सम्पादक महानुभावों को भी आज ४-५ वर्ष पीछे अंधी घुड़दौड़ के समय दयनीय उबाल आया है। वे भी बिना कुछ देखे भाले मनचाहा लिखकर अपना सम्पादन सफल कर रहे हैं। मानों बरसाती टर्रटर्र ने आज उनकी निद्रा भंग कर दी है। ऐसे भोले लेखकों का कृतिका प्रतिवाद करना व्यर्थ है।

जब कोई विचारक दृष्टि से इस विषय पर लेखनी चलावेगा, तब हम भी उस पर विचार करके लिखेंगे। जो महाशय अपने आपको ज़िम्मेवार समझते हैं वे यदि पुस्तक का आद्योपान्त शांत, निष्पक्ष भाव से अवलोकन करके इस विषयपर कुछ लिखेंगे तो कुछ लाभ होगा, अन्यथा शक्तिव्यय करना व्यर्थ है।

कुछ महानुभावों ने लिखा है कि तुम्हारे **ग्रन्थों में मांसभक्षण आदि अनुचित विधान है।** हम उनके बहुत आभारी होंगे कि यदि वे महानुभाव उन ग्रन्थों का नाम, पृष्ठ, कथन आदि बतलाने की कृपा करेंगे। यदि उनका कहना सत्य होगा तो वे देखेंगे कि उस ग्रंथ की अप्रामाणिकता सिद्ध करने में यह लेखनी पीछे न रहेगी।

यह जानकर कुछ खेद होता है कि जैनसमाज में शान्ति, गम्भीरता, विचारशीलता और सभ्यता से लेखनी चलाने वाले केवल कुछ एक हैं—सर्वत्र पांचवें सवारों की बहुलता है।

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[१५]

मथुरा का पुरातत्व

मथुरा नगर बहुत प्राचीन समय से जैन-धर्म का गणनीय स्थान रहा है; यहां पर पुरातन समय में अनेक जैन राजा राजसिंहासन पर बैठकर निष्कंटक शासन कर चुके हैं। अन्तिम केवली श्री जम्बूस्वामी मथुरा से मुक्त हुए थे; इस कारण मथुरा में जैनपुरातत्व का मिलना अवश्यम्भावी है, तदनुसार कुछ मिला भी है; प्रयत्न किया जावे तो और भी बहुत कुछ मिलने की आशा है।

मथुरा नगर के बाहर गोवर्द्धन दरवाजे से एक मील दूरी पर 'कंकाली टीला' नामक एक स्थान है। डा० फुहरर की अध्यक्षता में उस स्थान की खुदाई सन १८८९ से सन १८९६ तक हुई थी। इस खुदाई के परिणामस्वरूप उस स्थान पर महत्वपूर्ण जैनपुरातत्व उपलब्ध हुआ है।

यहां पर एक बड़ा स्तूप था जो कि किस राज पुरुष के स्मारकरूप में किस के द्वारा बनाया गया यह कुछ मालूम न हो सका। इस स्तूप की एक ओर दिगम्बर मंदिर तथा दूसरी ओर एक श्वेताम्बर मंदिर धराशायी रूप में उपलब्ध हुआ है।

खोदते समय सावधानी से काम नहीं लिया गया, इसी कारण खोदने वाले मजूरों की कुदालों से वह स्तूप तथा मंदिरों के भाग छिन्न भिन्न हो गये हैं। अस्तु।

यहां का पुरातत्व जैनसंघभेद पर अच्छा प्रकाश डालता है। इस स्थान पर जितनी भी प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं, एक प्रतिमा के सिवाय शेष सभी नग्न हैं। एक प्रतिमा के शरीर पर वस्त्र उकेरा हुआ दृष्टि पड़ता है। पुरातत्व वेत्ताओं ने श्वेताम्बर मंदिर से प्राप्त नग्न प्रतिमाओं को तथा इस वस्त्रधारक प्रतिमा को श्वेताम्बरीय प्रतिमा बतलाया है किन्तु अर्हन्त प्रतिमा के समस्त शरीर पर कपड़ा होना श्वेताम्बरीय सिद्धान्त के भी विरुद्ध है। अस्तु।

नग्न प्रतिमाओं पर जिन्हें कि श्वेताम्बरीय बतलाया जाता है निम्नलिखित लेख खुदे हुए हैं:—

सिद्धं सं० २० ग्रमा १ दि २०+५ कोट्टियतो गणतो वाणियतो कुलतो वेरितो शाखातो शिरिकातो भत्तितो वाचकस्य अर्य संघसिंहस्य निर्वतनं दत्तिलस्य ...... वि ......लस्य कोठुंबिकिये जयवालस्य देवदासस्य नागदिनस्य च नागदिनाये च मातुये श्राविकाये दिनाये दानं-इ (श्री) वर्द्धमान प्रतिमा।

अंग्रे पुरातत्ववेताओं ने लेखों के सिद्धं शब्द का अर्थ 'जय' करते हुए इस लेख का अर्थ यों किया है—

"जय ! सम्वत २० के गर्मीऋतु के पहले मास की १५ मिती, श्री वर्द्धमान की प्रतिमा दत्तिल की पुत्री वि ......ल की पत्नी जयवाल जयपाल देवदास और नागदिन (नागदिन्न या नागदत्त) और नागदिना (नागदत्ता) की माता दिना अर्थात् दिन्ना या दत्ता श्राविका ने दान की। यह प्रतिमा कोट्टिक-गच्छ में से वणिज कुल से वैरीशाखा के आर्य संघसिंह की प्रतिष्ठित है।"

एक अन्य श्री महावीर भगवान् की प्रतिमा पर लेख इस प्रकार खुदा हुआ है—

सिद्धं महाराजस्य कनिष्कस्य राज्ये संवत्सरे नवमें ९ मासे प्रथ १ दिवसे ५ अस्यां पूर्वायें कोटियतो गणतो वाणियतो कुलतो वैरितो शाखातो वाचस्यक नागनंदिस निर्वरतनं ब्रह्मधूतुये भट्टिमित कुटुंबिनिये विकटाये श्री वर्द्धमानस्य प्रतिमा कारिता। सर्वसत्वानं हितसुखाये।

भावार्थ—कनिष्क महाराजाके राज्य में नौवें वर्ष में पहले मास की पंचमी मिती के दिन में समस्त जीवों के कल्याण सुख के लिये भट्टिमित्र की स्त्री और ब्रह्मकी विकटा नामक पुत्री ने श्री वर्द्धमान की प्रतिमा बनवायी है। प्रतिमा कोटिक गण के वाणिज कुल के और वैरी शाखा के वाचक नागनंदिने प्रतिष्ठित की है।

लेख

संवत्सरे ९० व······स्य कुटुंबनि व· दानस्य वोधुय कोटियतो गणतो प्रश्न वाहनकतो कुलतो मज्झमातो शाखातो ···· ·सनिकाय भतिगालाय थवानि········ ····।

भावार्थ—संवत् ९० में ········पत्नीने प्रतिमा अर्पण की। कोटिकगण के प्रश्नवाहन कुलकी मध्यम-शाखा के··········।

इस प्रतिमा का पूर्ण लेख न होने से अर्थ स्पष्ट नहीं है; भावार्थ यह ज्ञात होता है कि सं० ९० में किसी स्त्री ने यह प्रतिमा अर्पण की।

एक प्रतिमा के सिंहासन का एक अंश मिला, उस पर निम्नलिखित लेख है:—

सं० ७९ व्र दि २० एतस्यां पूर्वायां कोटिये गणे वैरायं शाखायां को अयिवृधिहस्ति अर्हतो नंदि (आ) वर्तस प्रतिमं निर्वर्तयति······ ··भार्यये श्राविकाये (दिनाये) दानं प्रतिमा वोद्वे थूपे देव निर्मिते प्र।

भावार्थ—सम्वत् ७९ में वर्षा के चौथे मास में बीसवें दिन अयिवृधिहस्ति (आर्यवृद्धिहस्तिन) ने जो कि वैरीशाखा के कोटिकगण के उपदेशक हैं अर्हन्त नंदिआवर्त (नन्द्यावर्त) की प्रतिमा बनाने की सम्मति दी। यह प्रतिमा······जो······की आर्या श्राविका दिना (दत्त) का दान है, देवनिर्मित वाद्व (Vodva) स्तूप में लगाई गई।

इनके सिवाय श्वेताम्बरीय मंदिर से उपलब्ध अन्य पाषाणखंडों पर और भी शिलालेख हैं जिन पर कि प्रायः उपरिलिखित संवत् से मिलते जुलते ही गण, शाखा, सम्वत् आदि उल्लिखित हैं।

प्लेट नं० १७ का खंडित शिला भाग भी एतिहासिक अनुसंधान के लिये एक अच्छा महत्वपूर्ण साधन है। इस पाषाण पर बीच में एक छोटा सा स्तूप आकार उकेरा हुआ है उसके दोनों ओर दो दो पद्मासन तीर्थङ्करों की मूर्तियां बनी हुई हैं जिनमें से एक पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। इनके नीचे खड़े हुए एक साधु की मूर्ति बनी हुई है, जिसके बांयें हाथ की कलाई पर एक छोटा वस्त्र है। दांया हाथ ऊपर को कंधे की ओर उठा हुआ है और उसमें पीछी है। शेष सारा शरीर उस साधुका नग्न है। साधु का नाम कन्ह लिखा हुआ है। साधु के पास चार भक्त स्त्रियां खड़ी हुई हैं। एक के सिर पर सर्प का फण बना हुआ है।

प्रतिमाओं के ऊपरी नीचले भाग में जो लेख खुदा हुआ है वह इस प्रकार है—

सिद्धं सं० ९५ (?) ग्रि २ दि १८ कोट्टिय (ा) तो गणातो थानियातो कुलातो वैर (ा ता) (शा) खातो आर्य अरह········शिशिनि धामथाये (?) गृहदतस्य धि ······ ··धनहथि ·······।

भावार्थ—सम्वत् ९५ में ग्रीष्म के दूसरे मास में १८ वें दिन कोटिक गण, थानियकुल वेरी शाखा के आर्य अरह······की शिष्या धामथा के लिये गृहदत्त की पुत्री धनहथि (धनहस्ती) की······।

इन लेखों के विषय में कुछ विवेचन करने के पहले यहां पर डा० फुहरर ने जो अपनी सम्मति (३१ मार्च सन् १८८९ म्यूज़ियम रिपोर्ट में) प्रगट की है उल्लिखित कर देना आवश्यक समझते हैं। डाक्टर फुहरर लिखते हैं कि—

"इंडोसाइथियन कालकी १० श्वेताम्बर जैन मूर्तियां मिलीं जिनमें से ४ के शिलालेख जैन इतिहास के लिये महत्व के हैं। ३४ भग्नभाग इंडोसाइथियन राजा हुविष्क के समय के श्वेताम्बर जैन मंदिर के मिले। एक मूर्ति महावीर नाथ की २३ तीर्थङ्करों से वेष्टित मिली। दो बड़ी मूर्तियाँ श्री पद्मप्रभनाथ की सं० १०३६ और ११३४ की मिलीं"।

[अपूर्ण]

प्राप्त समालोचना !

लोहड़साजन निर्णय—यह पुस्तक हमको श्री सम्मेदशिखर जी के मेले से पहले प्राप्त हुई थी। प्रेषक महानुभाव की प्रेरणा थी कि उस की समालोचना शीघ्र प्रकाशित कर दी जावे किंतु मेले में जाने के कारण पुस्तकको देखने का अवसर न मिला अतः उस समय समालोचना न होसकी।

खंडेलवाल जाति में लोहड़साजन भाइयों की १० हज़ार संख्या विद्यमान है। इनका समस्त व्यवहार बड़साजन खंडेलवालों सरीखा है। पूजन, प्रक्षाल, मुनियों को आहारदान आदि धार्मिक कृत्य ये बड़साजनों के अनुसार ही करते हैं। लोहड़साजन बड़साजनों में परस्पर कच्ची रोटी खान पान का व्यवहार भी है।

इतना ही नहीं किन्तु लेखक ने ऐसे १४७ व्यक्तियों के नाम भी साधारण विवरण सहित प्रकाशित किये हैं जिनके घरों में विवाह सम्बन्ध लोहड़साजनों के पुत्र, पुत्रियों के साथ हुआ है। इनमें इन्दौर, अजमेर आदि नगरों के प्रमुख नेता पुरुषों के घराने भी हैं।

खंडेलवाल महासभा ने इस विषय का निर्णय करने के लिये जो कमेटी नियत की थी उसने भी यही निर्णय दिया कि लोहड़साजन बड़साजनों के समान शुद्ध हैं, दस्सा नहीं हैं।

अनेक खँडेलवाल पंचायतों, तथा अनेक गणनीय महानुभावों ने भी लोहड़साजनों की शुद्धतासूचक अपनी सम्मति प्रदान की है जो कि पुस्तक में विद्यमान हैं।

प्रत्येक खंडेलवाल भाई को यह पुस्तक श्रीमान पं० कन्हैयालाल जी शास्त्री किशनगढ़ (अजमेर) से मंगाकर आद्योपान्त पढ़नी चाहिये तथा अपने यहाँ सबको सुनाकर इस बात का निर्णय करना चाहिये।

पुस्तक पढ़कर यह दुख हुआ कि लोहड़साजनों का सब प्रकार बड़साजनों के साथ रोटी

बेटी व्यवहार होते हुए भी कतिपय व्यक्ति लोहड़साजनों का अपमान करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को रोक देना चाहिये। खंडेलवाल भाइयों को चाहिये कि वे अपने यहाँ पूर्ण निर्णय करके अपने यहां से लोहड़साजन बड़साजन शब्द व्यवहार को उड़ा दें क्योंकि बिना कारण भेदभाव संगठनशक्ति को जड़ खोखली कर देता है।

सज्जन सम्मेलन—यह श्रीमान हकीम बसन्तलाल जी रचित विवाह समय वर तथा कन्यापक्ष से परस्पर कहने योग्य कवितामय ट्रैक्ट है। विवाह समय प्रत्येक भाई को इसका उपयोग करना चाहिये। जैन सेवामंडल धूलियागंज आगरा से बिना मूल्य प्राप्त होता है।

वास्तविक मृतक के चिन्ह

जिस प्रकार सर्प के डस लेने पर मनुष्य सर्प के विष से मूर्छित हो जाता है, मरता नहीं, यहां तक कि ऐसी मूर्छित अवस्था तीन दिन तक बनी रहती है। उस समय में यदि कोई अमोघ औषधि अथवा अमोघ मंत्र उसके लिये मिल जावे तो वह मूर्छित मनुष्य अच्छा हो सकता है किन्तु इतनी देर तक प्रतीक्षा लोग बहुत कम करते हैं अतः बहुत से मनुष्य उसी मूर्छित अवस्था में जला दिये जाते हैं।

इसी प्रकार कुछ रोग और भी हैं जिनके कारण रोगी वास्तव में मरता नहीं है किन्तु गहरा मूर्छित होकर मृतक सरीखा हो जाता है। उस अवस्था में निकटवर्ती लोग उसको मरा हुआ समझ कर भूल से जला देते हैं। इस विषय पर हिन्दी मिलाप में एक लेख प्रकाशित हुआ है उसको उपयोगी समझ कर यहां उद्धृत करते हैं, पाठक महानुभाव ध्यान से पढ़ें।

मृतक वास्तव में कब मरता है? और किस प्रकार कई मनुष्य जीवित ही दफ़ना अथवा जला दिए जाते हैं? इन दोनों प्रश्नों के उत्तर आपको इस दिलचस्प लेख से मिलेंगे। १५ नवम्बर की अमृत बाज़ार पत्रिका में एक ब्राह्मण देवी को मृतक समझने का समाचार प्रकाशित हुआ था। इससे कइयों के हृदय में विचार उठता है कि क्या ऐसी ग़लती का केवल यही एक मामला हुआ है? साधारण जनता ही नहीं वरन् बड़े बड़े डाक्टर इस प्रश्न का उत्तर पाने को लालायित हैं। मैं इस प्रश्न का विवेचन करता हूँ।

पिछले वर्ष भूतपूर्व एक असिस्टेंट सरजन ने मुझे एक नवयुवक की, जिसे हैज़ा हो गया था, कथा सुनाई। वह धीरे धीरे क्षीण होने लगा। उसके हृदय और पेट पर राई की मालिश की गई परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ और वह मृतक समझ लिया गया। यह एक गांव का ज़िक्र है जहां कि बनी बनाई अर्थी नहीं मिलती और बांस तथा मनुष्यों को एकत्र करने में काफ़ी समय लग जाता है। मृतक ने (जैसा कि उसे बाद को मालूम हुआ) बताया कि "मैं ४ घण्टे तक बिल्कुल अचेत अवस्था में रहा। लेकिन चार घण्टे के उपरान्त मैं ने अपने निकट सम्बन्धियों के रुदन का

एक क्षीण स्वर अनुभव किया और साथ ही मुझे मालूम हुआ मानों मेरे पेट और हृदय पर चींटियां रेंग रही हों। तब धीरे धीरे ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया मैंने राई के लेप की गर्मी और रुदन करने वालों की आवाज़ अनुभव की"। उसने बताया कि वह चिल्लाया भी। परन्तु उसका चिल्लाना किसी ने नहीं सुना और उसने हरकत भी की (यह हरकत भी आन्तरिक ही रही) परन्तु तब भी रुदन जारी रहा। कई मिन्टों के आन्तरिक संग्राम के बाद लोगों ने उसके ओंठ हिलते हुए देखे और रुदन बन्द कर दिया। उसने कहा कि "मेरा जीवन लेप और इन्जेक्शन के कारण ही बचा।"

हरिदास साधुका मामला—जो कि सन् १८४७ ई० में ४२ दिन तक पृथ्वी के अन्दर गड़ा रहा था और महाराजा रणजीतसिंह तथा उनके सभासदों के सामने बन्द सन्दूक में से निकाला गया था। इसी प्रकार एक दूसरा साधु जो कि परीक्षा के तौर पर २२ दिन तक मूर्छितावस्था में रहा।

यह सब मामले उससे कहीं अधिक विचित्र हैं जो कि कर्नल टाऊन सेण्ड ने प्रदर्शित किया। वह अपनी इच्छा से आध घण्टे तक मृत पड़े रहे परन्तु जीवित होकर उनकी फिर उसी शाम मृत्यु हो गई।

इसी प्रकार एडनबर्ग के डाक्टर डनकन ने एक मैडीकल विद्यार्थी का वर्णन किया है जिसे हृद्रोग हो गया था। वह सफलतापूर्वक मृतक की तरह अपनी शक्ल बना लेता था। वह भी कुछ दिनों बाद मर गया।

परन्तु इस २५ वर्षीया ब्राह्मण देवी का मामला चेतना शक्ति के विलुप्त होने का एक उदाहरण है। उसे मृगी के दौरे हुआ करते थे और उसे संग्रहणी हो गयी थी। उसे नाममात्र भोजन मिलने पर भी कठिन परिश्रम करना पड़ता था। हैज़ा, विष, बच्चों के दांत निकलना, बच्चे की पैदायश, सूर्य की गर्मी आदि कई कारण हैं जिनसे मनुष्य की विपरीत अवस्थाओं में मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार अत्यन्त शोक अथवा प्रसन्नता से भी हृदय की गति रुक जाती है, बिजली, अधिक क्रोध होने से भी ऐसा ही हो जाता है, और मनुष्य मृतवत प्रतीत होने लगता है।

इससे प्रकट होता है कि सैकड़ों ऐसे कारण हैं जिन से मनुष्य की जीवन गति रुक जाती है। आप इस रुकावट को किसी नाम से पुकारें; परन्तु आश्चर्य तो यह है कि जीवन गति का यह अवरोध मालूम नहीं पड़ता और इसमें किसी को संदेह भी उत्पन्न नहीं होता। मृत्यु का यह प्रदर्शन इतना सत्य प्रतीत होता है कि इसमें बड़े बड़े अनुभवी वैद्यों को भी मौत होने का पता नहीं लगता। संसार में शायद ही कोई देश अथवा ऐसा व्यक्ति होगा जिसने ऐसी घटनाएं सुनी न हों। इसका परिणाम यह है कि **बहुत से मनुष्य अज्ञानवश, जला अथवा दफना दिए गए हैं।**

मेरे सामने लंदन से प्रकाशित विलियम टेब की एक पुस्तक है **"समय से पूर्व मृतक संस्कार"**। प्रत्येक स्त्री-पुरुष इसे अवश्य पढ़े। इसमें समय से पूर्व मृतक संस्कारों के कई उदाहरण हैं। मनुष्य जो कि जीवित प्राणी और उसके उत्तराधिकारियों को इच्छित वस्तु देता रहता है, मृतक के बारे में एक दम चुप साध लेता है। मृतक शरीर का कोई

अधिकारी नहीं होता, परन्तु उसका अपहरण एक दोष है । हिन्दू लाश को तब तक नहीं उठाते जब तक कि कुछ समय व्यतीत न हो जावे । इस देश के ईसाई मृतक के सम्बन्धियों और मित्रों की सुविधानुसार लाश को बारह अथवा आठ घण्टे तक पड़ा रहने देते हैं । यूरोप में ४ दिन तक लाश को रख छोड़ते हैं । बौद्धों में मृतक को मरने के १२ घण्टे पश्चात् जलाने का नियम है । जब कोई पारसी मरता है तब एक कुत्ता उसकी लाश के पास लाया जाता है—एक तो मृत्यु के समय और फिर क़ब्र में पहुंचने पर, क्योंकि कुत्ता सरलता से पहचान सकता है कि मेरा स्वामी अभी तक जीवित है, अथवा नहीं । ऐसा कहा जाता है कि गिद्ध उस शरीर को नहीं छूते जो कि सड़ने न लग गया हो । किसी पारसी की वास्तविक अथवा अनुभासित मृत्यु के पश्चात् उसके शरीर के पास आग जलाई जाती है । मुसलमानों में लाश गाड़ने में लगभग छः सात घण्टे लग जाते हैं । और लगभग एक घण्टा तो मृतक को क़ब्रिस्तान तक लेजाने में ही लग जाता है । यह तो हुई रस्म रिवाज की बात । अब हम कैसे जानें कि मनुष्य वास्तवमें मर गया है ? रोमन लोग मृतक की उङ्गली का जोड़ खोलते थे, डाक्टर प्रायः ध्यान से हृदय की गति को सुनने का प्रयत्न करते हैं और देखते हैं कि श्वास आ रहा है या नहीं ।

यद्यपि मृत्यु के १२ चिन्ह हैं परन्तु लाश की सड़न के अतिरिक्त कोई भी एक दूसरे पर अवलम्बित अथवा ज़रूरी नहीं । परन्तु अभाग्य वश उस समय तक बहुत कम लोग प्रतीक्षा कर सकते हैं । जन-साधारण की जानकारी के लिये कि अमुक व्यक्ति वास्तव में मर गया है अथवा अभी जीवित है, मैं कुछ बातें बताना आवश्यक समझता हूं—

१—यदि मुखाकृति का रङ्ग परिवर्तित न हो, २—यदि शरीर की गर्मी उत्तरोत्तर घट न रही हो, ३—यदि कड़ापन नहीं आ रहा हो, ४—यदि तेज़ प्रकाश में आँखों की पुतलियां सुकड़ती हों, ५—यदि बदबू पैदा नहीं हो रही हो, तब प्रत्येक अवस्था में मनुष्य जीवित है । जन साधारण का खयाल है कि ज्योंही मृत्यु आती है तमाम शरीर ठण्डा पड़ जाता है; परन्तु ऐसा नहीं है, ठण्डक धीरे २ आया करती है । विष, शराब, हैज़ा, चेचक और गठिया से मृत्यु होने पर तो कभी कभी थोड़ी देर के लिये शरीर की गर्मी बढ़ भी जाती है ।

इससे प्रगट होता है कि वास्तविक और आवरण मात्र मृत्यु का पहिचानना कितना कठिन है । इससे विश्वास होता है कि वास्तविक मृत्यु के पश्चात् लाश की क्रियाकर्म के नियम कितने व्यर्थ हैं । इस प्रकार लाश को ठिकाने लगाने के लिए किसी डाक्टर से मृत्यु-सार्टिफ़िकेट प्राप्त करना भी कितना व्यर्थ सा है । प्रथम तो कोई भी डाक्टर इस बात की क़सम नहीं उठा सकता और दूसरे ऐसे सार्टीफ़िकेट केवल डाक्टरों के मान को बनाए रखने में सहायक होते हैं । पश्चिमीय देशों में तो—जहां मृत्यु सार्टीफ़िकेट प्राप्त करना आवश्यक है—ऐसे सार्टीफ़िकेट बिना शरीर को देखे हुए ही दे दिये जाते हैं ।

---
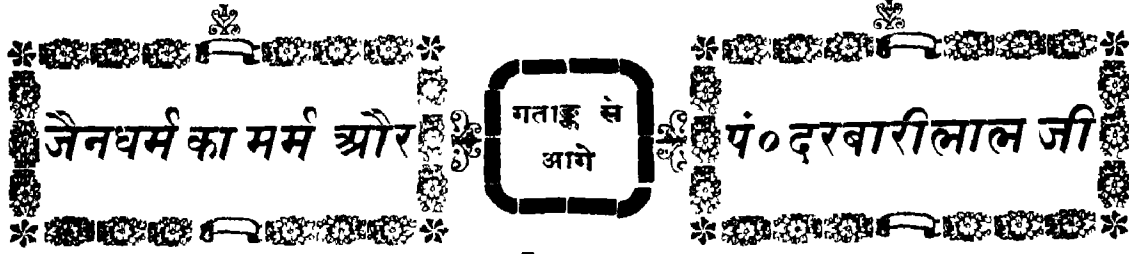
[१८]

केवली के केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञान न मानने में दरबारीलाल जी ने एक आपत्ति परीषहों के अभाव को उपस्थित की है। आपका कहना है कि केवली में यदि मतिज्ञानादिक न माने जायंगे तो उनके परीषह भी घटित न हो सकेंगी। केवली के परीषह स्वीकार की गई हैं, अतः उनके मतिज्ञानादिक भी मानने ही चाहिये। पाठक दरबारीलाल जी के इस सम्बन्धी अभिप्राय को दृढ़ता के साथ जान सकें अतः यहां हम उनके ही वाक्यों को उद्धृत किये देते हैं—"अगर हम केवली के इन्द्रिय ज्ञान न मानेंगे तो केवली के जो ग्यारह परीषह मानी जाती हैं वे भी सिद्ध न होंगी। केवली के ग्यारह परीषहों में शीत, उष्ण, दंशमशक आदि परीषह हैं। यदि केवली की इन्द्रियाँ बेकार हैं तो उनकी स्पर्शन इन्द्रिय भी बेकार हुई। तब शीत उष्ण की वेदना या डांस मच्छर की वेदना किस इन्द्रिय के द्वारा होगी"।

अब विचारणीय यह है कि क्या केवली के परीषह स्वीकार की गई है? यदि हाँ तो वह किस दृष्टि से और इसका प्रकृत विषय पर क्या प्रभाव है?

केवली में परीषहों का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए तत्त्वार्थ सूत्र के नवें अध्याय का ग्यारहवां सूत्र उपस्थित किया जाता है * और दरबारीलाल जी ने भी ऐसा ही किया है। इस सूत्र के सम्बन्ध में दिगम्बर सम्प्रदाय की तरफ़ से निम्नलिखित दो बातें उपस्थित की जाती हैं:—

(१) विवादस्थ ग्यारह परीषह वेदनीय कर्म के उदय से होती हैं तथा केवली के वेदनीय कर्म मौजूद है। कारण की दृष्टि से यह भी कह दिया जाता है कि केवली के ग्यारह परीषह हैं, अतः केवली के परीषहों का वर्णन औपचारिक है।

(२) विवादस्थ सूत्र में न परीषहों का विधायक ही कोई शब्द है और न निषेधक ही। इस प्रकार की व्यवस्था के अभाव में भी यदि इस सूत्र को केवली के परीषहों के अस्तित्व में घटित किया जा सकता है तो अभाव समर्थन में क्यों नहीं? इस प्रकार का कार्य इसही सूत्र की विग्रह के द्वारा किया जा सकता है। विवादस्थ सूत्र के एकादश शब्द के अंशों को यदि भिन्न २ कर दिया जाय तो वह "एक + अ + दश" इस रूप में आ जाता है। इनमें से एक का अर्थ एक और अ का अर्थ अभाव है। इस ही प्रकार दशका अर्थ दश है। समुदाय दृष्टि से इसी ही का यह अर्थ निकलता है कि एक से अधिक दश—ग्यारह—नहीं हैं। इस अर्थ के साथ यदि विवादस्थ सूत्र के शेष अंश "जिने"

* एकादश जिने।—तत्त्वार्थसूत्र ९-११

को भी जोड़ दिया जाय तो भाव बिलकुल स्पष्ट हो जाता है और इस रूप में आ जाता है कि केवली में ग्यारह परीषह नहीं हैं।

हमारे इन दोनों वक्तव्यों में से पहिले वक्तव्य के निराकरण में दरबारीलाल जी ने निम्न लिखित वाक्य लिखे हैं:—"वेदनीय कर्मका उदय बतलाने के लिए परीषहों के कहने की क्या ज़रूरत है? जब परीषह वहाँ नहीं होती तब क्या परीषहों का अभाव बतला कर कर्म का उदय नहीं बतलाया जा सकता। दशवें गुणस्थान में चारित्रमोह का उदय तो है, परन्तु वहाँ चारित्र मोह के उदय से होने वाली सात परीषहों का अभाव बतलाया गया है। इससे मालूम होता है कि कर्म का उदय होने से ही परीषहों का सद्भाव नहीं बताया जाता, किन्तु जब वे वास्तव में होती हैं तभी उनका सद्भाव बताया जाता है। तेरहवें गुणस्थान में वे परीषह वास्तव में हैं, इसलिए वहाँ बताई गई हैं"।

दशवें गुणस्थान का नाम सूक्ष्मसाम्पराय है। साम्पराय से तात्पर्य कषाय से है और वह यहां सूक्ष्म रूप से रहती है, अतः इस गुणस्थान को सूक्ष्म साम्पराय कहते हैं। सूक्ष्म कषाय भी यहाँ सब प्रकार की नहीं रहती, किन्तु केवल संज्वलन लोभ ही रहता है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से नाग्न्य, अरति, स्त्री आदि सात परीषह बतलाई हैं। ये सातों परीषहें संज्वलन के सूक्ष्म लोभ के उदय से नहीं होतीं किन्तु कषाय के अन्य भेद और प्रभेदों के उदय से होती हैं। कषाय का क्षेत्र बहुत व्यापक है। यदि कोई बात कषाय के उदय से होती है तो उसका यह तात्पर्य नहीं कि वह कषाय के हर एक भेद और प्रभेद के उदय से होती है। ज्ञानावरणी कर्म का बंध भी कषाय से होता है। इस ही प्रकार वेदनीय और नाम आदि कर्मोंका भी। किन्तु वह कषाय जो ज्ञानावरणी कर्म के बंधका कारण है एक भिन्न जाति की है और वह जो दूसरे कर्मों के बंध का कारण है एक भिन्न जाति की। इससे प्रगट है कि दशवें गुणस्थान में चारित्र मोह का उदय होने पर भी उस जाति के चारित्र मोह का उदय नहीं है जिससे परिषह होती हैं। अतः दरबारीलाल जी का लिखना कि "दशवें गुणस्थान में चारित्र मोह का उदय तो है परन्तु वहां चारित्र मोह के उदय से होने वाली सात परीषहों का अभाव बतलाया गया है; इससे मालूम होता है कि कर्म का उदय होने से ही परीषहों का सद्भाव नहीं बताया जाता" मिथ्या है। अब रह जाता है केवली में परीषहों के वास्तविक अस्तित्व का प्रश्न। परीषह से तात्पर्य यहां केवल वेदनीय कर्म के फल से ही नहीं है, किन्तु वेदनीय कर्म के फल के निमित्त से होने वाली वेदना से है। स्पष्टता के लिए यों समझियेगा कि एक व्यक्ति है जिसको बुखार का ठहरना—तपेदिक की प्राथमिक अवस्था—शुरू हो गया है, किन्तु उसको इसका पता नहीं है। इस मनुष्य की यह अवस्था असाता-वेदनीय का फल तो अवश्य है किन्तु इसको उसकी दृष्टि से रोगपरीषह नहीं कह सकते। रोग परीषह तो यह तब कहला सकती थी जब वह इससे वेदना का अनुभव करता तथा जब वह ऐसा करने लगता है तभी यह उसके लिए रोगपरीषह हो जाती है। तपेदिक की पहिली अवस्था में इस प्रकार की घटना का होना एक साधारण बात है। यही बात वेदनीय कर्म के उदय से होने वाली

अन्य परीषहों के सम्बन्ध में भी घटित कर लेनी चाहिये।

तत्त्वार्थ सूत्र में परीषह जय को संवरके कारणों में गिनाया है *। संवर आश्रव के विपरीत है ‡। इसही प्रकार संवर के कारण भी आश्रव के कारणों से उल्टे हैं। परीषह जय यदि संवर का कारण है या यों कहिये कि यदि इससे संवर होता है तो परीषह से आश्रव का होना अनिवार्य है। आश्रव के कारणों में ऐसी कोई भी बात नहीं जो केवल वेदनीय कर्म ही का फल हो, प्रत्युत वहां तो ऐसी बातें हैं जिनका स्पष्ट सम्बन्ध आत्मगुणों की वैभाविक अवस्था से है या यों कहिये कि वे आत्मगुणों की वैभाविक अवस्थायें हो हैं। आश्रव और बंध, चाहे इनको द्रव्याश्रव और द्रव्यबंध में घटित कीजिये या भावाश्रव और भावबंध में, पूर्वोत्तर अवस्था स्वरूप या उनके कारण हैं। जो पहिले समय में द्रव्याश्रव स्वरूप हैं वे ही दूसरे समय में द्रव्यबंधस्वरूप हो जाते हैं। प्रति समय में ये बातें होती रहती हैं। जो कर्मवर्गणायें पहिले समय में द्रव्याश्रव के रूप में थीं, वे ही अभी द्रव्यबंध की अवस्था में हैं। इसही प्रकार जो अभी द्रव्याश्रव की अवस्था में हैं वे ही अगले समय में द्रव्यबंध की अवस्था में हो जायंगी। ये दोनों बातें आत्मपरिणामों के निमित्त से होती हैं, अतः उनको भी भावाश्रव और भावबंध दोनों ही प्रकारसे स्वीकार किया गया है। अतः आश्रव और बंध के कारण आत्मपरिणामों में कोई अन्तर नहीं है। यही बात है जिससे जिनको एक आचार्य ने बंध का कारण स्वीकार किया है † उनही को दूसरे ने आश्रव का कारण बतलाया है ⊛। बात एक ही है केवल दृष्टिकोण में अन्तर है। मिथ्यादर्शनादि में से आप किसी में भी परीषह को रखिये, उसको वेदनास्वरूप ही स्वीकार करना होगा।

वेदनीय कर्म अघातिया कर्म है, अतः उसका फल भी शरीरादिक पर ही पड़ सकता है न कि जीव के अनुजीवी गुणों पर। अतः इस दृष्टि से भी केवल वेदनीय के फल को ही परीषह स्वीकार नहीं किया जासकता। इन सब बातों को स्पष्ट करने के लिए ही आचार्य अकलंक ने परीषह के दो भेद किये हैं। एक द्रव्यपरीषह और दूसरी भावपरीषह। उक्त आचार्य ने द्रव्य परीषह से वेदनीयकर्म के उदय को लिया है और भाव परीषह से तज्जन्य वेदना को +। इस सम्बन्ध में अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं, स्वयं पं० दरबारी लाल जी ने भी परीषह शब्द का प्रयोग वेदना के अर्थ में ही किया है, जैसा कि उनके निम्नलिखित शब्दों से प्रगट है—"तब शीत उष्ण की वेदना या डांस मच्छर की वेदना किस इन्द्रिय के द्वारा होगी।"

---

* तत्त्वार्थसूत्र ९-२ ‡ आश्रव निरोधः संवरः। तत्त्वार्थ सूत्र ९-१

† मिथ्यादर्शनाविरति प्रमाद कषाययोगाःबन्धहेतवः —तत्त्वार्थ सूत्र ८-१

⊛ मिच्छत्ताविरदि पमादजोगकोहादओ थ विण्णेया:।
पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदादु पुव्वस्स॥ —द्रव्यसंग्रह गाथा ३०

+ क्षुदादि वेदनाभाव परीषहाभावेऽपिवेदनीय कर्मोदय द्रव्य परीषह सद्भावात्। —राजवार्तिक ९-११

इस प्रकार की वेदना मोहनीय कर्म का कार्य है। यदि ऐसा न होता तो परीषह को आश्रव के कारणों में और परीषह जय को संवर के कारणों में स्वीकार करना नितान्त असंभव था। मोहनीय कर्म का केवली के अभाव है या यों कहिये कि केवली ही मोहनीय कर्म के अभाव से होते हैं*। केवली के जब मोहनीय कर्म ही शेष नहीं है तब उनके उसके निमित्त से होने वाली परीषहों को भी किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है। जहां केवली के मोहनीय कर्म का अभाव है, वहीं उनके वेदनीय कर्म का सद्भाव है, वेदनीय कर्म इन ग्यारह परीषहों का कारण है। अतः मोहनीय कर्म के अभाव से वास्तविक परीषहों के अभाव में भी वेदनीय कर्म के अस्तित्व से उपचरित परीषहों को स्वीकार किया गया है। यही बात महर्षि अकलङ्क ने निम्नलिखित वाक्य से बिलकुल स्पष्ट कर दी है:—"तथा क्षुधादि वेदनाभाव परीषहाऽभावेऽपि वेदनीय कर्मोदय द्रव्यपरीषह सद्भावात् एकादश जिने सन्तीति उपचारो युक्तः" ‡ अर्थात् भूख आदि की वेदना स्वरूप भाव परीषहों के अभाव में वेदनीय कर्म के उदयस्वरूप द्रव्यपरीषहों के रहने से केवली में ग्यारह परीषहों का उपचार किया जाता है।

केवली में परीषहों का वास्तविक अस्तित्व स्वीकार कर लेने पर न तो वे अनन्त बली ठहरते हैं और न अनन्तसुखी ही। जिस समय मनुष्य को भूख की वेदना सताती है उस समय न तो वह सुखी ही रहता है और न बलवान ही। केवली को अनन्त सुखी के साथ अनन्त बली भी स्वीकार किया गया है। अतः यह आपत्ति भी केवली में वास्तविक परीषहों के अभाव को पुष्ट करती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तत्त्वार्थ सूत्र के विवादस्थ सूत्र के सम्बन्ध में हमारा पहिला वक्तव्य युक्तियुक्त है और पं० दरबारीलाल जी ने उस पर जो आपत्ति उपस्थित की थी वह मिथ्या है।

विवादस्थ सूत्र सम्बन्धी हमारे दूसरे वक्तव्य के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित तीन आपत्तियाँ उपस्थित की हैं:—

(१) इस सूत्र का निषेधपरक अर्थ नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस सम्बन्ध के इससे पहिले सूत्रों का अर्थ विधिपरक है।

(२) विवादस्थ सूत्र के "एकादश" शब्द का "ग्यारह नहीं" अर्थ तब किया जा सकता था जब कि ग्यारह अर्थ के लिये "एक दश" शब्द प्रयोग में आता होता और सूत्र में एकादश शब्द होता।

(३) निषेधपरक अर्थ करने से भी केवली के ग्यारह परीषहों का अस्तित्व ही सिद्ध होता है। कुल बाइस परीषहें हैं जिनमें से यह सूत्र केवली में ग्यारह का अभाव बतलाता है; इसका तात्पर्य ही यह है कि शेष ग्यारह उनमें रहती हैं।

दिगम्बराचार्यों ने विवादस्थ सूत्र का यदि निषेधपरक ही अर्थ किया होता तब तो यह आपत्ति उपस्थित की जासकती थी कि यहां विधिपरक अर्थ का प्रकरण है, फिर निषेधपरक अर्थ क्यों किया जाता है? उक्त आचार्यों ने तो विधिपरक भी

* मोह क्षयाज्ज्ञान दर्शनावरणान्तराय क्षयाच्च केवलं। तत्त्वार्थ सूत्र १०—१

‡ तत्त्वार्थ राजवार्तिक ९—११

अर्थ किया है। निषेधपरक अर्थ करके तो उन्होंने एक दृष्टिकोण का प्रदर्शन ही किया है। उक्त आचार्यों का अभिप्राय यह है कि यदि अर्थ को करते समय उपचार दृष्टि को लिया जायगा तब तो विधिपरक अर्थ ही ठीक बैठता है किन्तु जब निश्चय दृष्टिको सामने रक्खा जावेगा तब तो निषेधपरक अर्थ ही युक्तियुक्त हो सकता है। अतः इस सम्बन्ध में दरबारीलाल जी की पहिली आपत्ति मिथ्या है।

ग्यारह का वाचक एकदश शब्द होता और विवादस्थ सूत्रमें एकादश शब्द का प्रयोग किया गया होता तो ऐसी अवस्था में दरबारीलाल जी यदि विवादस्थ सूत्र का अर्थ निषेधपरक कर सकते थे तो वह ग्यारह के लिये एकादश शब्द के रहने पर और इस ही शब्द के विवादस्थ सूत्र में आने पर भी हो सकता है।

ग्यारह का वाचक एकदश शब्द हो या एकादश, इससे यहां अर्थ में अन्तर की गुञ्जायश नहीं है। ग्यारह का वाचक एकदश शब्द होता और सूत्र में एकादश शब्द प्रयोग में लाया गया होता तब भी "अ" निकाला जा सकता था और ग्यारह के वाचक और विवादस्थ सूत्र में एकादश शब्द के रहने पर भी। व्याकरण के सिद्धान्तानुसार अक् प्रत्याहार को सवर्ण सामने रहने पर दीर्घ होता है ‡। यह बात दोनों ही हालतों में समान है। हर एक अवस्था में एक और अदश से ही एकादश बनता है।

इस सम्बन्ध में दरबारीलाल जी का लिखना कि "व्याकरण की दृष्टि से इसपर जितना विचार किया जाय 'एकादश' का ग्यारह नहीं अर्थ निकालना उतना ही असंगत होगा" केवल कथन मात्र है। आपने इस सम्बन्ध में कोई युक्ति उपस्थित नहीं की। अतः विवादस्थ सूत्र के सम्बन्ध में आप की दूसरी आपत्ति भी मिथ्या है।

विवादस्थ सूत्रका अर्थ यदि ग्यारह परीषहों का अभाव स्वीकार कर लिया जाता है तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि बाईस में से ग्यारह का अभाव किया जा रहा है, किन्तु वेदनीय कर्म के उदय से होने वाली परीषहों के अभाव से है। इनके अतिरिक्त शेष ग्यारह परीषहों का अभाव तो केवली में उनके कारण कर्मोंके अभाव से सुनिश्चित ही है। विवाद यदि हो सकता था तो वह केवल इन ही ग्यारह के सम्बन्ध में हो सकता था! जिस बात की सम्भावना ही नहीं उसका अभाव तो इस ढंग से वृत्तिकार भी नहीं करते, सूत्रकार की तो बात ही क्या है? अतः विवादस्थ सूत्र के अर्थ के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी की तीसरी आपत्ति भी मिथ्या है! उपर्युक्त विवेचन का निम्नलिखित परिणाम निकलता है:—

(१) परीषह केवल वेदनीय का ही कार्य नहीं, किन्तु उसके लिए मोहनीय का निमित्त भी अनिवार्य है।

(२) मोहनीय कर्म का केवली में अभाव है।

(३) तत्त्वार्थ सूत्र के विवादस्थ सूत्र का निषेधपरक अर्थ भी किया जा सकता है और इसका सम्बन्ध वेदनीय के उदय से होने वाली परीषहों से है।

इससे स्पष्ट है कि केवली में निश्चय दृष्टि से परीषहों का अभाव है। जहाँ कहीं भी इस प्रकार

‡ अकः सवर्णे दीर्घः।—कौमुदी

विवाह सम्बन्ध का तोड़ना

[विवाह को धार्मिक कृत्य न मानते हुए पश्चिमी रंग से रंगे हुए बहुत से महानुभाव आजकल यों कहने लगे हैं कि यदि पति पत्नी का परस्पर प्रेम स्थिर न रहे अथवा अन्य कोई बाधा हो तो पत्नी को विवाह बन्धन तोड़ कर तलाक़ देने का अधिकार मिलना चाहिये । ऐसे ही विचार वाले २-१ महानुभावों ने ऐसेम्बली में कुछ दिन पहले तलाक़ बिल रक्खा था। इस विषय में स्व० गुरुदास बनर्जी ज्ञान और कर्म पुस्तक द्वारा कैसा युक्तिपूर्ण प्रकाश डालते हैं पाठक महानुभाव उसका ध्यान पूर्वक अवलोकन करें ।

—सम्पादक]

अब विवाह सम्बन्ध का विच्छेद किस अवस्था में हो सकता है या वह कभी होना चाहिये या नहीं, इस प्रश्न की कुछ आलोचना की जायगी ।

सोच कर देखे बिना पहिले जान पड़ सकता है कि दोनों पक्षों की सम्मति के अनुसार इस संबंध के विच्छिन्न होने में कोई बाधा नहीं, किन्तु कुछ सोचकर देखने से समझ पड़ेगा कि इस तरह के गुरुतर सम्बन्ध का विच्छेद उस तरह से होना किसी तरह न्याय संगत नहीं होसकता। अगर इस तरह विवाह सम्बन्ध विच्छिन्न होगा तो दुर्निवार इन्द्रियों की संयत-तृप्ति, संतान उत्पन्न करना और पालना, दाम्पत्य-प्रेम और अपत्यस्नेह से क्रमशः स्वार्थपरता का त्याग और परार्थपरता का अभ्यास आदि जो विवाह संस्कार के उद्देश्य हैं वे पूरे न हो सकेंगे—उनपर पानी फिर जावेगा। कारण, जब चाहो तब विवाह सम्बन्ध का विच्छेद हो सकने पर प्रकारान्तर से यथेच्छ इन्द्रिय-तृप्ति प्रश्रय पावेगी। जनक जननी का विवाह बन्धन विच्छिन्न होने पर बच्चे जो हैं वे पालन के समय पिता के या माता के और कभी दोनों ही के आदर पात्र से वंचित होंगे। दाम्पत्य प्रेम और अपत्य स्नेह पशु पक्षियों की अपेक्षा मनुष्यों में अधिक है, यह कह कर गौरव गर्व करने का अधिकार नहीं रहेगा। स्वार्थपरता के त्याग और परार्थ-परता के अभ्यास की जगह उसके विपरीत शिक्षा प्राप्त होगी। यद्यपि पाश्चात्य नीति वेत्ता बेन्थम साहब की राय में दोनों पक्षों की स्वेच्छा से विवाह बंधन विच्छिन्न हो जाना उचित है, किन्तु उस मत की अनुयायिनी प्रथा सभ्य समाज में कहीं भी प्रचलित नहीं हुई।

अनेक लोगों का यह मत है कि केवल पति-

का वर्णन मिलता है वह उपचार दृष्टि से है। जब कि केवली में निश्चय दृष्टि से परीषहों का अस्तित्व ही नहीं तब फिर परीषह के अभावकर आपत्ति भी ठीक नहीं। जिस बात को युक्तियुक्त समझा जा रहा है उसही को आपत्ति-स्वरूप बतलाना युक्ति संगत नहीं। अतः इस दृष्टि से भी केवली में केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता।

[क्रमशः]

पत्नी की इच्छासे न हो, उपयुक्त कारण से विवाह बंधन विच्छिन्न हो सकना उचित है। अनेक सभ्य समाजों की प्रचलित प्रथा इसी मत के अनुसार संस्थापित हुई है, किन्तु यह मत और यह प्रथा उच्च आदर्श की नहीं जान पड़ती। सच है कि पति-पत्नी दोनों का परस्पर व्यवहार अगर बुरा हो तो उन दोनों का एक साथ रहना अत्यन्त कष्टकर होता है। लेकिन जहां वे जानते हैं कि ऐसी अवस्था में हम विवाह बंधन से छुटकारा पा सकते हैं, वहां उस छुटकारा पाने की इच्छा ही से बहुत कुछ वैसे बुरे व्यवहार को उत्तेजना मिलने लगती है। मगर जहां उन्हें मालूम है कि यह बंधन अविच्छेद्य है वहां उनका वह ज्ञान ही उनके परस्पर कुव्यवहार को बहुत कुछ कम किये रहता है; हिन्दू समाज ही मेरे इस कथन का प्रमाण है। मैं यह नहीं कहता कि हिन्दू समाज में विवाह बंधन का विच्छेद न हो सकने के कारण स्त्री पुरुष के बीच गुरुतर विवाद होता ही नहीं. किन्तु होने पर भी वह इतने कम स्थलों में और ऐसे ढङ्ग से होता है कि उसके कारण समाज की स्थिति में कुछ विशेष विघ्न नहीं होता, और अभी तक कोई यह नहीं सोचता कि विवाह बंधन विच्छेद की विधि बनाने की जरूरत है।

जिस जगह एक पक्ष के साथ दूसरे पक्ष का व्यवहार अत्यन्त निन्दित और कलुषित है, उस जगह बहुत लोग ऐसा समझ सकते हैं, कि जिस पक्ष के साथ निन्दित व्यवहार किया जाता है, उस पक्ष का विवाह बन्धन से छुटकारा पाना अत्यन्त प्रयोजनीय है। जो व्यक्ति खुद निर्दोष है केवल दूसरे के दोष से कष्ट पाता है, उसके लिये अवश्य ही सब लोग दुःखित हो सकते हैं। और उसका दुख दूर करने के लिये चेष्टा कर सकते हैं, किन्तु विवाह बन्धन से छुटकारा पाकर उसे जो शान्ति और सुख मिलेगा वह जीवन संग्राम में विजय पाने वाले को सुख शान्ति नहीं है, वह उस संग्राम में अशक्त होकर भागकर जो छुटकारा मिलता है, उसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता। अतएव विवाह बन्धन विच्छेद निर्दोष के लिये सुखकर या गौरवजनक नहीं है।

उधर उसके द्वारा दोषी पक्ष की अवस्था अत्यंत शोचनीय हो जाती है। पाप के बोझ से दबा हुआ आदमी पुण्यात्मा के साथ मिलकर रहने से किसी तरह कष्ट से साथी की सहायता से भवसागर के पार जाने में समर्थ भी हो सकता है, किन्तु जो उसका साथी उसे बीच में छोड़ दे तो अकेले उसके पार होने का उपाय नहीं रह जाता। जिसके साथ सदा एकत्र रहने का और सुखदुख में सम भागी होने को अंगीकार करके विवाह की गांठ बंधी थी, उसे ऐसी शोचनीय दशा में त्याग करना बड़ी ही निठुराई का काम है।

यह सच है कि प्रणय में प्रतारणा की यन्त्रणा बहुत तीव्र होती है। यह सच है कि पाप का संसर्ग अति भयानक है। किन्तु जिन्होंने परस्पर एक दूसरे को सुमार्ग में रखने का भार अपने २ सिरपर लिया था, उनमें से एक आदमी अगर कुमार्ग में जाय, तो दूसरे का उसे छोड़कर निश्चिन्त होना उचित नहीं है। बल्कि उसका दोष दूर करने की उपयुक्त चेष्टा नहीं हुई, यह सोचकर संतप्त होना और उस दोष को कुछ २ अपने कर्म का फल समझना ही उचित है। पार्थिव प्रेम प्रति दान की आकांक्षा

रखता है, किन्तु जिसे प्रणय कहते हैं वह निष्काम और पवित्र है। वह पाप के स्पर्श से अपने कलुषित होने का भय नहीं रखता, बल्कि सूर्य किरणों की तरह अपने पवित्र तेज से अपवित्र को पवित्र कर लेता है। पवित्र प्रेम का अमृतरस इतना गाढ़ा और मधुर है कि वह प्रतिहिंसा आदि कड़वे तीखे रसों को अपनी मधुरता में एकदम डुबा दे सकता है।

दाम्पत्य प्रेम का आदर्श भी इसी तरह का होना चाहिये। एक पक्ष से पवित्र प्रेम की अमृत-धारा निरन्तर बरसती रहने से, दूसरा पक्ष चाहे जितना नीरस हो उसे आर्द्र होना ही पड़ेगा—वह चाहे जितना कटु हो उसे मधुर होना ही पड़ेगा, वह चाहे जितना कलुषित हो उसे पवित्र होना ही पड़ेगा। ये सब बातें काल्पनिक नहीं हैं। सभी देशोंमें दाम्पत्य प्रेम का यही मधुमय पवित्र फल फलता रहता है और अनेक लोगों ने अनेक स्थानों में उसके उज्वल दृष्टान्त देखे हैं। भारत में, हिन्दू समाज में और चाहे जितने दोष हों, सब दोषों के रहते भी दाम्पत्य प्रेम के उच्च आदर्श ने ही हिन्दू परिवार को इस समय भी सुख का घर बना रखा है। और उसी ने अब तक इस समाज में किसी को विवाह बंधन के विच्छेद की प्रयोजनीयता का अनुभव नहीं करने दिया। अतएव उपयुक्त कारण से विवाह बंधन विच्छेद की प्रथा अनेक देशों में प्रचलित रहने पर भी वह उच्च आदर्श नहीं है।

एक पक्ष की मृत्यु से विवाह बंधन टूट जाना उचित है या नहीं, यह विवाह के विषय का अंतिम प्रश्न है। मृत्यु से विवाह का बन्धन टूट जाता है, यह मत प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। केवल पॉज़िटिविस्ट (Positivist) सम्प्रदाय में और हिन्दू शास्त्र में उसका अनुमोदन नहीं किया गया है। यद्यपि हिन्दू शास्त्र के मत में एक स्त्री के मरने पर स्वामी दूसरा विवाह कर सकता है, किन्तु उससे पहिली स्त्री के साथ जो सम्बन्ध था उसका छूट जाना नहीं सूचित होता। कारण, पहिली स्त्री के मौजूद रहने पर भी हिन्दू स्वामी दूसरा विवाह कर सकता है। किन्तु पुरुष के लिये बहु विवाह निषिद्ध न होने पर भी हिन्दू शास्त्र ने उसका समादर नहीं किया है। स्त्री के लिये जैसे पति की मृत्यु के बाद अन्य पति को ग्रहण करना अनुचित है, वैसे ही स्वामी के लिये भी स्त्री की मृत्यु के बाद अन्य स्त्री को ग्रहण करना अनुचित है, यह प्रसिद्ध विद्वान कामटी (Comte) का मत है, और इसमें सन्देह नहीं कि यह मत विवाह के उच्च आदर्शका अनुगामी है। लेकिन उस उच्च आदर्श के अनुसार जनसाधारण के चल सकने की आशा अब भी नहीं की जा सकती। प्रायः सभी देशों में इसके विपरीत रीति प्रचलित है। वह स्त्री की अपेक्षा पुरुष के अधिक अनुकूल होने के पक्ष-पात दोष के कारण, अन्य समाज के लोग और हिन्दू समाज के अन्तर्गत संस्कारक (Reformer) लोग उसको आदर की दृष्टि से नहीं देखते, बल्कि उसे अति अन्याय कहकर उसकी निन्दा करते हैं।

किन्तु यह याद रखना चाहिये कि यदि देश के आधे के लगभग आदमी किसी उच्च आदर्श की अनुयायिनी प्रथा का पालन करते हैं, तो शेष आधे लोग उसका पालन न करने से खुद निन्दनीय

होंगे। चिर वैधव्य अगर उच्चादर्श की प्रथा है तो यह कहकर—कि पुरुष लोग पत्नी वियोग के बाद अन्य विवाह कर लेते हैं वह प्रथा उठा देना कर्तव्य नहीं है, बल्कि समाज-संस्कारकों को यही उचित है कि मर्द लोग भी जिससे उसी उच्चादर्श के अनुसार चल सकें वह यत्न करें।

जल में पत्थर तैरता है

[ले०—श्रीमान वर्द्धमान जी हेगड़े जैन "विशारद" धर्मस्थल]

दक्षिण देश में कनाड़ा के पूर्व की ओर बङ्कवाड़ी नामक एक ग्राम है, वहाँ पर एक बहुत प्राचीन भगवान शीतलनाथ का मन्दिर है। यह प्रान्त किसी समय 'बंगराज ओडेयर' नामक जैन राजा के अधिकार में था। अब भी वहां पर पुराने राजमहल के खंडहर पड़े हैं। इस गाँव में इस समय जैन भाइयों के २० घर हैं। यहाँ प्रति वर्ष पूष सुदी दशमी के दिन रथोत्सव होता रहता है।

दूसरे दिन दोपहर को वहां से पौन मील दूर जंगल में बने हुए ब्रह्मयक्ष के मंदिर में सब भाई एकत्र होते हैं। इस मंदिर को वहां की भाषा में श्रवणगुन्ड (मुनियों का मंदिर) भी कहते हैं। पहले यहां पर मुनिगण तपस्या किया करते थे; यह स्थान शान्त एवं मनोज्ञ है। मंदिर के पास एक छोटा कुँवा है जिसमें पानी नहीं रहता। उस दिन सब आदमी पास के एक तालाब से छान कर २५ घड़े पानी लाकर इस कुँवे में डाल देते हैं। दिन को तीन बजे वहां खूब भक्तिभाव से धूमधाम के साथ पूजन होता है। यहां पद्मासन भगवान शीतलनाथ की प्रतिमा है। प्रतिमा के नीचे धरणीन्द्र पद्मावती के समान भगवान शीतलनाथ का भक्त शासनदेव ब्रह्मयक्ष घोड़े पर सवार बना हुआ है।

पूजन हो जाने पर वहां पर रक्खा हुआ एक चमत्कारी गोल काला पत्थर उस कुएं में छोड़ा जाता है जो कि पहले पानी के भीतर जाकर फिर पानी पर काष्ठ की तरह तैरने लगता है। उपस्थित समस्त यात्री इस अद्भुत चमत्कार को देखते हैं। इस वर्ष शोलापुर निवासी श्रीमान सेठ रावजी सखाराम दोशी और फलटण निवासी श्रीमान सेठ वीरचन्द्र कोदर जी गान्धी ने भी यह बात प्रत्यक्ष देखी थी। कुछ समय पीछे पुनः उस पत्थर को कुएं से निकाल चांदी की डिब्बी में बंद करके रख देते हैं।

दक्षिण यात्रा के समय जो भाई यात्रा के लिये आवें वे यहां अवश्य पधारें उनकी इच्छा इस चमत्कार को देखने की होगी तो उत्सव कराकर वह चमत्कार भी देख सकते हैं। उत्सव १५-२० रुपये में हो जाता है।

भारत के शासक और जैनधर्म ।

[लेखक—बा० कामताप्रसाद जी एम० आर० ए० एस०]

[क्रमागत]

[७]

शिशुनाग और नन्द वंशों के शासक

महाभारत के बाद भारतवर्ष का राष्ट्रीय जीवन छिन्न भिन्न हो गया था। अनेकानेक छोटे मोटे राज्य क़ायम हो गये थे और कितनेक छोटे छोटे क्षत्रिय-वंशों ने एकत्र हो संगठित रूप में 'गण-राज-संघ' स्थापित कर लिए थे। इन गणराज्यों को स्थापित करने में इन क्षत्रियों का उद्देश्य अपने पड़ौसी प्रबल राज्यों के आक्रमणों से अपने को सुरक्षित बनाना था। वस्तुतः उस समय राष्ट्रीयता के अभाव में व्यक्तिगत स्वार्थ और लोभ ही शासकों में घर कर गया था, जिसके कारण वे सब आपस में ज़रा ज़रा सी बात पर लड़ते-झगड़ते थे।

उदाहरणरूप उस समय के प्रसिद्ध गणराज्य 'वृजि राजसंघ' को लीजिये। इस गण-संघ में विदेह के क्षत्रिय, लिच्छवि, ज्ञात्रिक आदि आठ राजवंश सम्मिलित होकर वृजि-देश पर प्रजासत्तात्मक रूप में शासन करते थे। इन आठों राजकुलों को उक्त प्रकार संगठित होने में मुख्य कारण उनका पड़ोसी मगध राज्य था। मगध का राजा इस समय भी प्रभावशाली गिना जाता था। सचमुच यादवों के बाद एक बार फिर भारत का राजकीय नेतृत्व द्वारिका और उज्जैनी से हटकर मगध पहुँचा था। शिशुनागवंशी राजा उस समय प्रधान समझे जाते थे। वे लिच्छवि क्षत्रियों के पड़ौसी थे। राजा श्रेणिक बिम्बसार उस समय अर्थात् ईस्वी पूर्व छठी शताब्दि में वहाँ शासनाधिकारी थे। श्रेणिक से और लिच्छवियों से कई बार युद्ध हुआ था। आख़िर श्रेणिक के पुत्र अजातशत्रु ने लिच्छवियों को परास्त करके उन्हें अपना करद बना लिया था।

अजात शत्रु ने और भी पड़ौसी राज्यों से अपना लोहा मनवाया था। इसमें उनका उद्देश्य मगधराज्य की खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त करना तो था ही, परन्तु साथ ही वह भारतीय शक्ति को अपने में केन्द्रीभूत करके उसकी प्रतिष्ठा को स्थिर और विदेशियों के आक्रमण से सुरक्षित रखना चाहते थे; क्योंकि भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर ईरानियों ने पैर जमा लिये थे। आख़िर अजातशत्रु अथवा नन्दवर्द्धन ने उन ईरानियों को परास्त करके भारत से बाहर खदेड़ दिया था। नन्दवर्द्धन ने प्रायः उत्तर भारत की शक्ति को मगध साम्राज्य में केन्द्रीभूत कर दिया था। दक्षिण भारत पर भी उसका आतङ्क छाया हुआ था। परिणामतः मौर्य-साम्राज्य में मगध निस्सन्देह भारत का भाग्य-विधाता बन गया था।

सौभाग्यवश उक्त शासकों का सम्बन्ध जैनधर्म से विशेष रहा था। वृजिगण राज्य में जैन तीर्थङ्कर महावीर के वंश के लोग ज्ञातृ क्षत्रिय सम्मिलित

थे। लिच्छविराज चेटक उनके मातुल थे। महावीर प्रभु का विश्वप्रेममय संदेश उक्त स्थिति को उत्पन्न करने में एक मुख्य कारण था। मनुष्यों में भ्रातृभाव को उन्होंने जागृत किया था और राष्ट्र-धर्म को ठीक ठीक पालने की भी शिक्षा उन्होंने दी थी। धर्मक्षेत्र में जहां कर्मशत्रुओं को परास्त कर आत्मस्वातन्त्र्य प्राप्त करने का मार्ग उन्होंने निर्दिष्ट किया था, वहीं उन्होंने लोगों को यह भी बतला दिया था कि वे अपने इस उद्देश्य को तभी सिद्ध कर सकते हैं जब वे कर्मवीर बने रहें और अपने देश को ईति-भीति आदि से मुक्त रखकर एक धार्मिक क्षेत्र बनाये रक्खें! अधर्म-मय क्षेत्र में रहकर कोई भी आत्म-सुख को प्राप्त नहीं कर सकता, भ० महावीर की यह शिक्षा कार्यकारी हुई थी। भारत की राष्ट्रीयता के लिये उसने सीमेन्ट का काम किया। परिणाम स्वरूप भारत में सद्धर्म की वैजयन्ती फिरी! और वह अपनी प्रतिष्ठा की मुहर एक बार फिर विदेशों पर लगाने में सफल हुआ!

श्रेणिक बिम्बसार और अजात शत्रु भ० महावीर के परमभक्त थे। अपने प्रारंभिक जीवन में यह दोनों सम्राट् बौद्ध धर्मानुयायी थे, परन्तु उपरान्त वे जैनधर्म में दीक्षित हो गये थे। सम्राट् श्रेणिक ने जैनधर्मोत्कर्ष के लिये अनेक कार्य किये थे। वीर संघ के मुख्य श्रावक वे ही थे और उन्हीं के सत्प्रयासों से धर्म का उद्योत विशेष हुआ था। जब जब भ० महावीर का समोशरण राजगृह आया तब तब सम्राट् श्रेणिक ने पहुँचकर उनकी अभिवन्दना की और धर्म प्रभावना के लिए कुछ उठा न रक्खा। अनेक जिनमंदिर और धर्मायतनों की उन्होंने स्थापना की थी। अजात शत्रु उन्हीं के पुत्र थे। जैनधर्म के वे भी परम भक्त थे। सुधर्मास्वामी के उपदेश से उन्हों ने धर्म के लिए शुभ प्रयत्न किये थे। सम्राट् नन्दवर्द्धन की गणना भी कहीं २ शिशुनागवंश में की जाती है। वह एक साहसी नृप थे और जैनधर्म के दृढ़ श्रद्धानी थे। कलिङ्गदेश को जीतकर वे वहां की प्रसिद्ध जिनमूर्ति ले आये थे और उसे उन्होंने अपने राजनगर में विराजमान करके उसे शोभान्वित किया था। इस राजा का नाम मात्र 'नन्द' था और 'वर्द्धन' इसकी उपाधि थी। मगध साम्राज्य का विस्तार इन्हों ने खूब किया था, इसीलिए सम्मान सूचक 'वर्द्धन' विरुद् से उनका नाम समलंकृत मिलता है। इनका सम्बन्ध लिच्छवि और शिशुनाग, दोनों ही वंशों से प्रगट होता है; क्योंकि इनकी माता एक लिच्छवि राजकुमारी अनुमान की गई हैं। ई० पू० ४५८ में इनका राज्याभिषेक हुआ था और तबही से इन्हों ने अपना एक संवत् भी चलाया था, जिस का उल्लेख हाथी गुफा के प्रसिद्ध शिलालेख में है।

शिशुनागवंशी राजाओं के बाद मगध साम्राज्य के अधिकारी नन्द वंशी राजा हुये थे। इन राजाओं में भी जैनधर्म की गति थी। उनके राक्षस, कल्पक, शकटाल, आदि मंत्री जैन धर्मानुयायी थे। नन्दराजाओं में महापद्म सम्भवतः जैनधर्मानुयायी था। वह एक पराक्रमी राजा था और उसकी धाक सारे देश पर जमी हुई थी, किन्तु उसके उत्तराधिकारी उसके समान न निकले। परिणामस्वरूप अन्तिम नन्द राजा को ई० पू० ३२६ में चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य ने नष्ट करके मगध के राज सिंहासन पर अधिकार जमाया था।

[क्रमशः]

यूरोप के नवीन विवाहित दम्पति !

कहाँ किस प्रकार की सुविधाएं हैं

गत दस वर्ष में अपने देश के नवयुवकों को विवाहित जीवन व्यतीत करने के लिये अनेक यूरोपियन राष्ट्रों ने भिन्न २ उपायों का अवलम्बन किया है। गृहस्थ जीवन के भार को हलका करने के लिये युद्ध के पश्चात् फ्रांस के अधिक जनसंख्या वाले कुटुम्बों को अधिकारियों ने बधाइयाँ दीं और धन देकर सम्मानित किया। दो और तीन सन्तान एक साथ पैदा करने वाली महिलाओं को भी पुरस्कार दिया गया। पर अविवाहितों पर कर नहीं लगाया गया। फ्रांस की तरह इटली अधिक जन संख्या वाले कुटुम्बों को पुरस्कृत करती है और कभी कभी मुसोलिनी इस सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत धन से लोगों को पुरस्कार दिया करते हैं। स्टेट रेलवे नवविवाहित दम्पतियों के भाड़े में तीस प्रति शत कमी कर देती है।

आयरिश फ्री स्टेट ने १९२५ से यह नियम कर दिया है कि जो नवयुवक विवाहित जीवन व्यतीत करेंगे उनका वेतन बढ़ा दिया जायगा। इस नियम में यह भी लिखा था कि वेतन में प्रतिवर्ष १० पौंड से लेकर दो सौ पौंड तक की वृद्धि की जायगी और विवाह के अवसर पर १२ महीने का वेतन एक मुश्त सरकार की ओर से दिया जायगा। जर्मनी में जो मसविदा तैयार किया गया है उसमें इतना धन विवाहितों के लिये खर्च नहीं किया जायगा। जर्मनी में विवाहित लोगों को विवाह के लिये २७५ डालर ऋण दिया जाया करेगा जिसे उन्हें ८॥ साल के अन्दर चुकाना होगा। इस ऋण पर उन्हें प्रति मास एक प्रति शत ब्याज भी देना होगा।

आयरलैंड की महिला क्लर्क ६ साल तक नौकरी करने के बाद यदि विवाह करती है तो उसे एक साल में एक महीने की तनख्वाह विवाह के लिये मुफ्त दी जाती है। नवजात शिशु के भरणपोषण के लिये ६० पौंड अधिक दिये जाते हैं। जेकोस्लेविया में लड़कियों के विवाह की अवस्था १४ से बढ़ा कर १६ वर्ष कर दी गई है। टर्की ने विवाह की पुरानी पद्धति को बदल दिया है। वहां संयुक्त राज्य अमेरिका के ढंग पर विवाह होते हैं।

[मिलाप]

रिपोर्ट धर्म्मोपदेशकीय भ्रमण

ब्रह्मचारी कुंवर दिग्विजयसिंह धर्म्मोपदेशक और प्रचारक "शास्त्रार्थ संघ"

[मास जनवरी और फरवरी १९३४ ई०]

आलनपुर—सवायी माधवपुर से डेढ़ मील दूर ग्राम है और यहाँ पर चमत्कार जी का बड़ा मन्दिर व विशाल धर्मशाला है। यहाँ पर १ जनवरी के अपराह्न में धर्म्मोपदेशक की आम सभा हुई। कुछ अजैन सज्जन भी पधारे थे। आपने "धर्मकी आवश्यकता व उसका स्वरूप" बतलाया।

सवायी माधवपुर—में जनवरी १ से ४ तक रात्रि को तेरापन्थी मन्दिर जी में सभायें हुईं, जिनमें "धर्म्म की अनेक सूक्ष्म बातें" बतलायी गयीं। एक आर्य्यसमाजी सज्जन से सभा में ही दो तीन दिन तक खूब शङ्का समाधान भी हुआ। दो "जैन दर्शन" के ग्राहक बने।

करौली (राजस्थान)—में २५ जनवरी तक आपकी शास्त्र व व्याख्यान सभायें हुईं और अनेक जैन अजैनों ने अपनी शङ्काओं का समाधान पाया। यहाँ जैनियों ने अभी हाल ही एक नवीन दिगम्बर जैन धर्म्मशाला बनवाई है जिसका गृह प्रवेश संस्कार धूमधाम से हुआ। श्री जी का हाथी पर विहार हुआ। श्रीमान् दरबार साहब अपने प्रतिष्ठित राज्य कर्म्मचारियों सहित २५ जनवरी को पधारे थे और अपना सन्तोष प्रगट किया।

अम्बाला छावनी—२६ जनवरी को आकर आप देवगढ़ मेले के लिये ३१ जनवरी को गये।

देवगढ़—ज़िला झांसी (यू० पी०) के शहर ललितपुर से दस बारह कोस दूर एक वन्य प्रदेशीय जैन अतिशय क्षेत्र है। यह होगा तो सैकड़ों वर्ष से ही पर इसकी भारतवर्षीय जैन प्रसिद्धि इधर आठ दस वर्ष से ही झांसी के बाबू विश्वम्भर दास जी गार्गीय और ललितपुर के सिंघई नाथूराम जी के प्रयत्न से हुई है और यहां अब बुन्देलखण्ड के आसपास के लोगों के सिवाय दूसरे प्रान्तों के यात्री भी दर्शनार्थ जाने लगे हैं। तीर्थक्षेत्र संरक्षण विषयिक जैनियों की असावधानी से इस क्षेत्र के मन्दिर और सैकड़ों प्रतिबिम्ब नष्ट भ्रष्ट व जीर्ण शीर्ण अवस्था में आ गये हैं। सरकार का पुरातत्व विभाग इसको अपने अधिकार में लेने ही वाला था कि कुछ भाइयों के प्रयत्न से यह क्षेत्र सुव्यवस्थित अवस्था में आने लगा है और इसके मन्दिरों की मरम्मत व प्रतिबिम्बों का संरक्षण होने लगा है और श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की देखरेख में ललितपुर में एक कमेटी बन गयी है जिसने कि इस विषय में अच्छा काम व आन्दोलन किया है।

अभी फरवरी १ से ३ तक यहाँ के वार्षिक मेले के अवसर पर श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी व देवगढ़ कमेटी के अधिवेशन हुए थे और यथा समय आन्दोलन हो जाने के

कारण मेले में आसपास व बाहर के बहुत से भाई आये थे।

क्षेत्र में जीर्णोद्धार की बड़ी आवश्यकता है। भाइयोंको वैसा करके पुण्य व यश कमाना चाहिए।

पिपरई—राज्य ग्वालियर (सो० आई०) के उत्साही सज्जन व थूबन जी जैन अतिशय क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी के मन्त्री चौधरी रामलाल जी परवार जैन की विशेष प्रेरणा से धर्मोपदेशक देवगढ़ से थूबन जी के वार्षिक मेले में भी ठहरे और वहां आपकी एक शास्त्र सभा हुई।

थूबनजी—ग्वालियर राज्य में प्रसिद्ध जैन अतिशय क्षेत्र है और यहाँ कई जैन मन्दिर व विशाल प्रतिबिम्ब हैं। यहाँ भी जीर्णोद्धार की आवश्यकता है। यहां की प्रबन्धकारिणी कमेटी के मन्त्री चौधरी रामलाल जी परवार जैन ने क्षेत्र के विस्तृत विवरण सहित सचित्र रिपोर्ट प्रकाशित की है जिससे कि यहां का पूरा हाल जाना जा सकता है। ऐसी विस्तृत व सब आवश्यक बातें बतलाने वाली रिपोर्ट कदाचित ही किसी जैन संस्था की निकलती हो। रिपोर्ट पठनीय व अनुकरणीय है। मन्त्री महोदय का कार्य प्रशंसनीय है।

उदगिर (निज़ाम) हैदराबाद डेकन निज़ाम सरकार के ज़िला विदरका बड़ा कस्बा है और यह इधर आर्य समाजियों का गढ़ समझा जाता है। यहाँ प्रति वर्ष फाल्गुण कृष्णा चतुर्दशी (शिव रात्रि) से स्थानीय आर्यसमाज का तीन चार दिन वार्षिक उत्सव होता है जिसमें कि आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान और आसपास के आर्यसमाजी अधिक संख्या में भाग लेते हैं।

इस वर्ष निज़ाम स्टेट की आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान महाशय बन्सीलाल जी आर्य वकील हाईकोर्ट ने लातूर स्थान पर हैदराबाद प्रतिबन्ध विजयी श्री दिगम्बर जैन मुनि जयसागरजी महाराज को शिवरात्रि के अवसर पर उदगिर आकर आर्य समाज से शास्त्रार्थ करने का चैलेंज दिया था और इस शास्त्रार्थ की तैयारियां ज़ोरों से हो रहीं थीं। इस शास्त्रार्थ में भाग लेने के अर्थ धर्मोपदेशक ८ फ़र्वरी को उदगीर पहुँचे। दूसरे दिन संघ के महामन्त्री पण्डित राजेन्द्रकुमार जी शास्त्री भी वहां पहुंच गये। श्री मुनिमहाराज भी वहां पहुँचने वाले थे पर मैजिष्ट्रेट की ओर से शास्त्रार्थ बन्द कर दिया गया। जैनसमाज और आर्यसमाज दोनों ने मिलकर शान्ति पूर्वक शास्त्रार्थ हो जाने की ज़ामिनी भी दी, पर प्रतिबन्ध के कारण शास्त्रार्थ न होसका। इस सम्बन्ध में आर्य समाज से पत्र व्यवहार चल रहा है। बहुत सम्भव है कि निकट भविष्य में आर्य समाज के साथ यह शास्त्रार्थ हो सके।

यहां धर्मोपदेशक जी की दो तीन सभाएं हुईं। शङ्का समाधान का बड़ा आनन्द रहा। यहां एक मुसल्मान पेशेदार फ़कीर कलामुल्लाशा के पास कई पुश्तों से चली आई शाहमलाल बुखारी और सूफ़ी सरमस्त देहलवी की दो पुरानी तस्वीरें देखने में आयीं। ये दोनों साहबान मुसल्मान फ़कीर थे और नङ्गे (दिगम्बर) रहा करते थे। इन दोनों तस्वीरों की फ़ोटो आपने यत्न कर प्राप्त कीं। ये दोनों तस्वीरें बहुत पुरानी और जीर्ण शीर्ण अवस्था में हैं और मुसल्मान लोग इनको बड़ी इज्ज़त की निगाह से देखते हैं।

हैदराबाद (मुसल्मान राज्य) में दिगम्बर जैन मुनियों के विहार सम्बन्ध में कड़ी बाधाएं व

* समाचार-संग्रह *

वीर जयंती

धामपुर—इस वर्ष यहाँ श्री वीर भगवान की जयंती बड़े समारोह के साथ जैन युवक मंडल धामपुर की तरफ़ से मनाई गई।

ता० २८ मार्च को प्रातःकाल प्रभात फेरी दी गई। इसके बाद श्री महावीर भगवान का पूजन बड़े आनन्द के साथ किया गया।

ता० २८ मार्च की सायंकाल को ७॥ बजे साहू चंडी प्रशाद जी जैन रईस की प्रधानता में आम सभा हुई। जैन झंडे की प्रार्थना के बाद जैन कन्या पाठशाला की लड़कियों ने प्रार्थना पढ़ी। ब्रह्मचारी बुद्धिसागर जी महाराज का उपदेश महावीर भगवान के जीवन पर हुआ; फिर कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें बाहर से बा० ज्योति प्रशाद जी जैन देवबन्द और बा० राजेन्द्रकुमार जी जैन 'कुमरेश' बिलराम (एटा) की कवितायें भी आई थीं, जिनको यह मंडल धन्यवाद देता है।

अन्त में 'वीर जयंती' की सरकारी छुट्टी मंज़ूर कराने के लिये एक प्रस्ताव पास किया गया जिसकी नक़ल वायसराय, गवर्नर, कमिश्नर, कलक्टर व हाईकोर्ट को भेजी गई। —अभिनन्दन प्रसाद

ललितपुर—अन्य वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष यह उत्सव अधिक उत्साह से मनाया गया। प्रभात फेरी के बाद गाजे बाजे के साथ तालाब से जल लाकर १००० मनुष्यों की उपस्थिति में श्री महावीर स्वामी का अभिषेक व पूजन किया गया। इसी दिन श्री नाभिनन्दन दि० जैन पाठशाला का उद्घाटन किया गया। शाम को नगरकीर्त्तन किया गया। रात्रि को घरों व बाज़ारों में दीपादि जलाये गये। पश्चात् ९ बजे आम सभा हुई जिसमें सर्वसम्मति से वीर जयंती की सरकारी छुट्टी होने बाबत प्रस्ताव पास किया गया। प्रस्ताव की नक़लें उपरोक्त सब जगह भेजी गईं। दोपहर में एक स्त्री सभा भी हुई। —नाथूराम सिंघई

—हापुड़ इम्पीरियल बैंक के ख़ज़ाञ्ची श्री कैलाशप्रसाद जी जैन ने ३ मार्च की रातको आत्महत्या करली। आप अपने धनिक पिता के इकलौते पुत्र थे। आपके पीछे अनाथ पत्नी तथा ४ लड़कियाँ रह गई हैं।

—स्काटलैण्ड की रानी के सारे बाल एक रात में सफ़ेद हो गये थे।

—जापानी विचित्र रीति से अपनी उम्र की गिनती करते हैं। जनवरी, फ़रवरी, मार्च या किसी मास में लड़का पैदा हो, वे अगली जनवरी में उसको एक साल का मानते हैं।

—पहले पहल दैनिक समाचार पत्र जर्मनी में सन् १६१५ में निकला।

—सन १४५० में गुटेनवर्ग (जर्मनी) में पहले पहल पुस्तक छपी। वहीं छपने का काम प्रारंभ हुआ।

—जापान ने १ मिनिट में दस हज़ार गोली छोड़ने वाली मशीनगन का निर्माण किया है।

—जर्मनी के वनस्पति शास्त्रज्ञ काला गुलाब पैदा करने लगे हैं।

—सन् १९३२ में संसार की खानों से १० करोड़ पौंड का सोना निकला।

—मिट्टी के तेल के व्यापार में लाखों रुपया जिसने कमाया उस हार्पर ने अपनी वसीयत में लिखा है कि मैं अपने तोते के लिये ८०० पौंड दे जाता हूँ। इससे तोते को रोज़ नारंगी का रस, काफ़ी, रोटी, फल आदि मिलना चाहियें।

* समाचार-संग्रह *

वीर जयंती

रामपुर—इस वर्ष यहाँ श्री वीर भगवान की जयंती बड़े समारोह के साथ जैन युवक मंडल रामपुर की तरफ से मनाई गई।

ता० २८ मार्च को प्रातःकाल प्रभात फेरी दी गई। इसके बाद श्री महावीर भगवान का पूजन बड़े आनन्द के साथ किया गया।

ता० २८ मार्च की सायंकाल को ७॥ बजे लाला चंडी प्रसाद जी जैन रईस की प्रधानता में आम सभा हुई। जैन झंडे की प्रार्थना के बाद जैन कन्या पाठशाला की लड़कियों ने प्रार्थना पढ़ी। ब्रह्मचारी बुद्धिसागर जी महाराज का उपदेश महावीर भगवान के जीवन पर हुआ; फिर कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें बाहर से बा० ज्योति प्रसाद जी जैन देवबन्द और बा० राजेन्द्रकुमारजी जैन 'कुमरेश' बिलराम (एटा) की कवितायें भी आई थीं, जिनको यह मंडल धन्यवाद देता है।

अन्त में 'वीर जयंती' की सरकारी छुट्टी मंज़ूर कराने के लिये एक प्रस्ताव पास किया गया जिसकी नकल वायसराय, गवर्नर, कमिश्नर, कलक्टर व हाईकोर्ट को भेजी गई। —अभिनन्दन प्रसाद

ललितपुर—अन्य वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष यह उत्सव अधिक उत्साह से मनाया गया। प्रभात फेरी के बाद गाजे बाजे के साथ तालाब से जल लाकर १००० मनुष्यों की उपस्थिति में श्री महावीर स्वामी का अभिषेक व पूजन किया गया। इसी दिन श्री नाभिनन्दन दि० जैन पाठशाला का उद्घाटन किया गया। शाम को सत्कीर्तन किया गया। [illegible] की [illegible] व बाजारों में दीपावलि मनाई गई। रात को ८ बजे आम सभा हुई जिसमें सर्वसम्मति से वीर जयंती की सरकारी छुट्टी होने बाबत प्रस्ताव पास किया गया। प्रस्ताव की नकलें उपरोक्त सब जगह भेजी गई। दोपहर में एक स्त्री सभा भी हुई। —[illegible]

—हापुड़ इम्पीरियल बैंक के खजांची श्री कैलाशप्रसाद जी जैन ने ३ मार्च की रात्री आत्महत्या करली। आप अपने धनिक पिता के इकलौते पुत्र थे। आपके पीछे अनाथ पत्नी तथा ७ लड़कियां रह गई हैं।

—स्काटलैण्ड की रानी के सारे बाल एक रात में सफेद हो गये थे।

—जापानी विचित्र रीति से अपनी उम्र की गिनती करते हैं। जनवरी, फरवरी, मार्च या किसी मास में लड़का पैदा हो, वे अगली जनवरी में उसको एक साल का मानते हैं।

—पहले पहल दैनिक समाचार पत्र जर्मनी में सन् १६१५ में निकला।

—सन् १४५० में गुटेनबर्ग (जर्मनी) में पहले पहल पुस्तक छपी। वहीं छपने का काम प्रारंभ हुआ।

—जापान ने १ मिनिट में दस हजार गोली छोड़ने वाली मशीनगन का निर्माण किया है।

—जर्मनी के वनस्पति शास्त्रज्ञ काला गुलाब पैदा करने लगे हैं।

—सन् १९३२ में संसार की खानों से १० करोड़ पौंड का सोना निकला।

—मिट्टी के तेल के व्यापार में लाखों रुपया जिसने कमाया उस हार्नर ने अपनी वसीयत में लिखा है कि मैं अपने तोते के लिये ८०० पौंड दे जाता हूँ। इससे तोते को रोज़ गाजरों का रस, काफी, रोटी, फल आदि मिलना चाहिये।

Regd. No. A. 2379.

—कुमारी मिचेल बड़ी निपुण टाइपिस्ट है। कोई कहता जाय तो वह एक मिनट में १३० शब्द टाइप कर सकती हैं। १२० शब्द टाइप करते समय बातचीत भी कर सकती हैं। आंखों पर पट्टी बांध कर भी अच्छी की तरह टाइप कर सकती हैं।

—रूस में एक ऐसा हवाई जहाज़ बन रहा है जिस पर प्रेस, टलीफ़ोन, सिनेमा, रेडियो आदि रहेंगे।

—इङ्गलैंड में जिप्सी नामक लोग अछूत माने जाते हैं।

—मौज़ा हीरा तहसील निकोदर के एक मैरासी के घर एक बालक पैदा हुआ है। उसके मुंह में दांत पूरे हैं, दाढ़ी है, सारे शरीर पर बाल हैं। सारे बाल सफ़ेद हैं, जैसे ७० वर्ष का वृद्ध हो। उससे जो पूछा जाये वह उसका सही उत्तर देता है। लोग उसे अवतार समझते हैं।

—बम्बई के विख्यात पारसी धनी सर दिनशा पेटिट की बहिन श्रीमती हाजाबाई मेहता ने अपनी पारसी जाति के हित के कार्यों पर व्यय करने के लिये आदि २७ लाख रुपया दान किया है।

—हैदराबाद में ऐक फ़क़ीर करोड़पति मुस्लिम भिखारी है, जिसकी आमदनी ५०) रु० मासिक के करीब है। उसकी उम्र ८२ वर्ष की है। उसका नाम खैरबख्श है। वह अपने भाई के साथ रहता है, जो उसे सवेरे ८ बजे एक कोने पर बैठा जाता है और रात को ९ बजे ले जाता है।

—एक २३ वर्ष का लंगड़ा युवक लकड़ी की घोड़ी के सहारे सात सौ मील की यात्रा करके, अपनी रोज़ी के लिए ईस्ट लंदन पहुंचा है। किसी [illegible] के कारण वह अपना समझा ऐस को बैठा था। केपटाउन में गुज़र होना मुश्किल जान कर, उसने अपना सामान पीठ पर लाद कर लकड़ी की घोड़ी के सहारे ईस्ट लंदन की ओर प्रयाण किया था। इतना रास्ता तय करने में उसे ढाई मास लग गया।

—कौन कहता है कि पूंछ वाले मनुष्य दुनिया में नहीं हैं? सूदान के पोछे वाले शीगान प्रदेश में इन लोगों की ३० से लेकर ४०००० तक की बस्ती है। उन लोगों को २-३ इञ्च लम्बी पूंछ होती है। वे मनुष्य का मांस खाते हैं और सूर्य, चन्द्र, अग्नि, सर्प आदि की पूजा करते हैं।—जागरण १०-२-३४

—~~लण्डन में~~ एक फ़िल्म स्टार पयूअरी की उम्र इस समय २६ वर्ष की है, किन्तु वह इस छोटी सी उम्र में २० विवाह कर चुकी है। उसके कई विवाह तो कुछ दिन रह कर नई कुछ घण्टे ही रहे।

—बल्गेरिया (यूरोप) में १५८ व्यक्ति ऐसे हैं, जिनकी उम्र १०० वर्ष से अधिक है। यह संख्या ताज़ा मर्दुम शुमारी से मालूम हुई है।

—गत १० वर्ष में जापान में २२००० बार भूकम्प हुआ। १९२२ का भूकम्प सबसे अधिक भीषण था और उसमें ९९३०० जानों का नुकसान हुआ था।

—रियासत हैदराबाद में १॥ लाख आदमी भीख मांगते हैं। इनमें ६६२१२ स्त्रियां हैं।

—शिकागो (अमेरिका) में लिन्टन नाम के एक आदमी ने मैरी नाम की एक स्त्री से १९२५ ई० में शादी की थी। लिन्टन का कथन है कि १९३३ ई० के अन्त तक वह अपनी स्त्री को ६१ बार तलाक़ दे चुका है, परन्तु वह प्रत्येक बार मेरी खुशामद करके मुझे अपने चुङ्गल में फंसाती रही है।

"चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस बिजनौर में छप कर प्रकाशित हुआ।

तारीख़ १६ अप्रैल सन् १९३४ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क १६
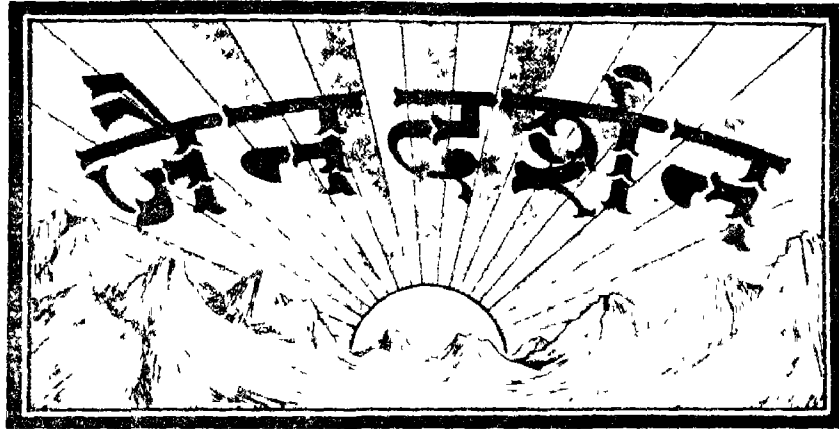
पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुलतान सिटी। } ——ऑनरेरी सम्पादक—— { पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

आवश्यक सूचनायें

१ जिन महाशयों की सेवा में उपहारी पुस्तकें अभी तक भी नहीं पहुंची हैं वे महानुभाव =) के टिकिट पोस्टेज के लिये भेज कर उपहार मंगवालें।

२. हमारे यहां से 'दर्शन' का प्रत्येक अङ्क यद्यपि दो बार जांच कर भेजा जाता रहा है, किन्तु फिर भी हमारे पास जिन २ पाठकों की पत्र न मिलने की शिकायत आई है, हम बराबर उन्हें दुबारा और तिबारा तक भी अङ्क भेज देते रहे हैं। किन्तु इस प्रकार बार बार अङ्क भेजते रहने से व्यर्थ ही हानि उठानी पड़ती है। अतएव जिन ग्राहकों को पत्र 'न मिलने की' शिकायत रहती है वे पाठक कृपया अपना ठीक २ पता हिन्दी या अंग्रेजी में लिख भेजें जिससे प्रत्येक अंक समय पर ही उनके पास पहुंच सके। अधिकांश ग्राहक तो शिकायती पत्र लिखते समय भी अपना पूरा पता नहीं लिखते, इस लिये फिर भी उनकी शिकायत नहीं दूर की जा सकती।

विनीत—प्रकाशक "जैनदर्शन", बिजनौर यू० पी०।

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

भूल सुधार

प्रेस-मैनेजर की असावधानी से "दर्शन" के गत अङ्क में जैन दर्शन और संघ की नीति के प्रतिकूल (१) अन्तर्जातीय विवाह और (२) श्वे० समाज के योगिराज का अनशन भंग, यह दो समाचार प्रकाशित हो गये थे जिसका हमें दुख है। आशा है पाठकगण इस असावधानी के लिये हमें व प्रेस को क्षमा करेंगे।

'संघ' और 'दर्शन' दोनों ही व्यक्तिगत समाचारों को स्थान देने और अन्तर्जातीय विवाह के प्रचार को हानिकर समझते हैं।

—मैनेजर जैनदर्शन

धन्यवाद !

पं० [illegible]चन्द्र जी जैन ने "जैनदर्शन" [illegible] [illegible] २) सहायतार्थ भेजे हैं, तदर्थ धन्यवाद है।

—मैनेजर

वीर जयंती उत्सव

प्राप्त हुए समाचारों से प्रगट है कि इस वर्ष श्री वीर भगवान की जन्म तिथि पर [illegible] जगह अभिषेक, पूजन, भजन किये गये के, [illegible] जलूस [illegible] के साथ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मनाने के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है। प्राप्त समाचारों का सार [illegible] प्रकार है :—

आगरा — जैन कुमार सभा ने [illegible] बड़ी धूम धाम से यह उत्सव मनाया जिसमें [illegible] दो दिन जैनों के धार्मिक [illegible] [illegible] व सनातनी विद्वान व जनता भी बहुत बड़ी संख्या में मौजूद थी। जयन्ती का जुलूस भी बड़े बाजार निकाला गया। व्याख्यान सभा में पं० कल्याणचन्द्र जी पं० राजेन्द्रकुमार जी आदि कई जैन विद्वानों [illegible]पूर्ण व्याख्यान हुए। श्रीमान बाबू गुलाब [illegible] एम० ए०, सेठ अचलसिंह जी, पण्डित श्रीमंडलदेव जी, पं० लक्ष्मीधरजी बाजपेयी भू०पू० सम्पादक आर्यमित्र, बा० पूरनचन्द्र जी वकील, पं० बद्रीप्रसाद जी आदि बहुत से अजैन विद्वानों ने भी जैनधर्म की महत्ता को प्रगट करते हुए बड़े प्रभावशाली व्याख्यान दिये। पं० हरिशंकर जी शर्मा सम्पादक आर्यमित्र और डा० सुवरण सिंह जी वर्मा "आनन्द" ने अहिंसा के अवतार संबंधी कवितायें सुनाईं और श्री आनन्द जी ने "अहिंसा की तलवार" नामक नाटक के दो दृश्य स्वयं ही पढ़ कर सुनाये। इसको उन्होंने बड़े परिश्रम से यहाँ के जैनियों के आग्रह के कारण तैयार किया है। अजैन जनता में ट्रैक्ट आदि भी बाँटे गये।

देहली —यहाँ उत्सव चार दिन तक बड़ी धूम धाम से मनाया गया, जिसमें बड़े २ विद्वानों के व्याख्यान हुए। इसी बीच जैन दर्शन दिवाकर पं० चम्पतराय जी बैरिस्टर के सभापतित्व में सार्वधर्म सम्मेलन तथा उपन्यास सम्राट श्री प्रेमचन्द्र जी की अध्यक्षता में कवि सम्मेलन हुआ।

कुरई—अभिषेक पूजन के साथ [illegible] शहर में नगरकीर्तन भी हुआ। शाम को पं० बाबूलाल जी मथुराकर द्विवेदी बी० ए० के सभापतित्व में आम सभा हुई। जैन वक्ताओं के अलावा पं० सीताराम जी पाण्डेय एम० ए० साहित्यरत्न, नगर-आचार्य पं० शिवप्रसाद जी शर्मा रिटायर्ड आदि सज्जनों तथा सभापति महोदय के बड़े प्रभावपूर्ण व्याख्यान हुए। उन्होंने यह सिद्ध किया कि भ० महावीर ऐतिहासिक व्यक्ति थे। उनके बताये अहिंसा मार्ग का हमें अनुसरण करना चाहिये।

मुलतान—दि० जैन सभा की ओर से खूब धूम धाम से बाजारों में जुलूस निकाला गया और मंदिर जी में बा० रोशन लाल जी एम० ए० एग्जीक्यूटिव आफीसर की अध्यक्षता में सभा हुई, जिसमें महत्वपूर्ण व्याख्यान और भजन गान हुए।

अम्बाला, चन्देरी, भूपाल, पानीपत, हैदराबाद आदि अनेक स्थानों के जलसों के भी बड़े उत्साहवर्धक समाचार मिले हैं, किन्तु हमें अफ़सोस है कि स्थानाभाव से हम उन्हें प्रकाशित नहीं कर रहे हैं।

श्री जैनदर्शनर्मिति प्रथितोग्ररश्मिर्भस्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलिता बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ | बिजनौर, वैशाख शुक्ला ३—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० | अङ्क १६

उत्थान के रोड़े !

दिगम्बर जैन समाज का दिनोंदिन पतन क्यों हो रहा है, उत्थान क्यों नहीं होता, इसके कतिपय निम्न लिखित मुख्य कारण हैं

१—नेताओं की भरमार—दिगम्बर जैन समाज की जनसंख्या यदि ८ लाख मानी जाय तो उसमें नेता भी छह लाख निकलेंगे। यहाँ जितने दिमाग हैं कमसे कम उतने ही नेता हैं। सब कोई नेता बनकर कुर्सी तोड़ना चाहते हैं, सेवा के लिये वहाँ कोई नौकर आना चाहिये।

२—परोपदेश—हमारे नेताओं में एक गुण यह व्यापक रूप से पाया जाता है कि उनका उपदेश केवल दूसरों के लिये होता है; क्योंकि परोपकार के मतलब भी उनके ख्याल में यही है। उनका निजी आचरण कुछ नहीं होता दूसरों से जिन बुरी बातों का त्याग कराते हैं, लुक छिप कर उन बातों को स्वयं कर डालते हैं।

३—समाचारपत्र—उपदेशकों का कार्य स्थायी रूप से चालू रखने के लिये अखबार चालू किये गये, जिनका कि हजारों रुपये प्रति वर्ष घाटा समाज को पूरा करना पड़ता है। वे भी फूट के बीज बोते फिरते हैं। अपनी प्रशंसा दूसरे की निन्दा, झगड़ालू कड़े से उदरपूर्ति, उनका नित्यनियम कार्य होता है। कुरीति संचालन करते हुए भी जिनके सम्पादक अपनी उज्वलता को बघारते हुए नहीं अघाते।

४—निजी द्वेष को सामाजिक रूप—समाजसुधार या धर्मप्रचार के लिये जो बड़ी बड़ी पंचायतें या सभाएं की जाती हैं उनमें आगे बैठने वाले या खूब बोलने वाले जागीर अपने निजी मनोमालिन्य को वहाँ निकालकर सामाजिक कार्य में रोड़ा डाल देते हैं। एक वाचाल आदमी प्रयत्न करता है कि मैं अपनी वचन शक्ति से लोगों को भड़काकर अपना स्वार्थ साध लूं। नेताओं को इन त्रुटियों पर ध्यान देकर सुधार करना चाहिये।

सम्पादकीय !

हमारे नवयुवक !

[गतांक से आगे]

[६]

गर्भावस्था में रहन सहन

इसके लिये गर्भिणी स्त्रियोंको जहां अपने शरीर और जिह्वा के कार्योपर (कामकाज तथा बातचीत पर) सावधानी रखना आवश्यक है वहां विशेष रूपसे उनको अपनी मानसिक प्रवृत्ति को सुधारने का ख़याल रखना भी अति आवश्यक है।

मानसिक प्रवृत्ति सुधारने के लिये दो सरल साधन है—एक तो अच्छे ग्रंथों का स्वाध्याय, दूसरे अच्छे (सजीव—अजीव) चित्रों का अवलोकन करते रहना।

अच्छी अच्छी पुस्तकों के पढ़ने से मनका झुकाव अच्छी बातों की ओर होता है, बुरी बातों से चित्त हटता है जिससे कि गर्भस्थ सन्तान पर अच्छा एवं गुणोत्पादक प्रभाव पड़ता है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक महान पुरुषों की जीवन घटनाओं का अध्ययन मन को उनके प्रशंसनीय गुणों की ओर आकर्षित करता है।

जो स्त्री सुकुमाल चरित को मन लगा कर पढ़े उसके चित्तमें सुकुमाल सरीखा अडिग तपस्वी पुत्र उत्पन्न करने की भावना उत्पन्न होगी, जिसने सुदर्शन सेठ का चरित हृदयंगम कर लिया उसके विचार स्वयमेव इस प्रकार हो जाते हैं कि ब्रह्मचारी सुदर्शन सेठ के समान होना चाहिये और जिसने बाहुबली, भीमसेन, अभिमन्यु, चन्द्रगुप्त, शिवाजी. प्रताप आदि की जीवनी ध्यान पूर्वक पढ़ी होंगी उसके हृदय में वीर पुत्र उत्पन्न करने की अभिलाषा होगी; एवं जो स्त्री स्वामी समन्तभद्र, अकलंकदेव, लोकमान्य तिलक के इतिहास का अध्ययन—मनन करेगी उसके मानसिक विचारों में यह बात लहराती रहेगी कि मेरा पुत्र ऐसा बुद्धिमान विद्वान होना चाहिये।

ऐसा ही परिणाम चित्रों के देखने से निकलता है। जिस प्रकार रजस्वला होने के अनन्तर स्नान करने के पीछे स्त्री जिसका मुख देखे या जैसा चित्र देखे गर्भाधान हो जाने पर गर्भस्थ बालक का रूप रंग प्रायः वैसा हो आता है। पति का या पति के चित्र का उस समय दर्शन करने पर सन्तानकी सूरत पति की शक्ल पर आती है।

उसी प्रकार गर्भिणी स्त्री को यदि धार्मिक,

शूरवीर, बुद्धिमान, सदाचारी पुरुषों के चित्र देखने के लिये मिलते रहें तो उसकी सन्तान पर उन गुणों का प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत यदि असभ्य, दुराचारी, मूर्ख मनुष्यों की तसवीर को वह देखती रहे तो उसकी संतान भी असभ्य, दुराचार पूर्ण, मूर्ख उत्पन्न होगी।

अतः गर्भावस्था में स्त्रियों को अच्छे ग्रंथ पढ़ने, सुनने का तथा अच्छे चित्रों के देखने की व्यवस्था अवश्य कर देनी चाहिये। हमारे अधिकांश नवयुवक अपने शयनागार में कामी पुरुष स्त्रियों के बुरे चित्र लगाया करते हैं। नग्न स्त्रियों की तसवीरें लगाकर वे बहुत प्रसन्न होते हैं; एवं गंदे अश्लील उपन्यास स्वयं बड़े चाव से पढ़ते हैं और साथ ही अपनी स्त्रियों को वे पुस्तकें दिखलाकर फूले नहीं समाते।

किन्तु खेद है कि वे अपनी मूर्खता का घातक परिणाम देखकर भी नहीं पहचानते। आजकल अच्छे अच्छे घरानों में जो दुराचारी पुत्र जन्म लेते हैं उस का कारण प्रायः ऐसी ही भूल है। इस कारण हमारे नवयुवकों को अपने घरों में अच्छे गुणाढ्य पुरुष स्त्रियों के चित्रों को ही स्थान देना चाहिये; एवं अच्छी पुस्तकें ही स्त्रियों के पढ़ने के लिये अपने घरों में रखनी चाहिये।

प्रसंग वश यहाँ यह लिख देना आवश्यक दीखता है कि आजकल बोलने वाले सिनेमा (टाकी सिनेमा) देखने की प्रवृत्ति शहरों में बढ़ती चली जा रही है। इन सिनेमाओं का स्वयं देखना तथा स्त्रियों को दिखलाना चरित्र के लिये घातक उपाय तय्यार करना है, क्योंकि सिनेमा के पात्र (ऐक्टर) प्रायः वेश्यायें, कंजर हुआ करते हैं जिनके अभिनय (एक्टिंग) में दुराचार की गंध पूर्णतया आती है। वहाँ से सदाचार की गंध लेना मूर्खता की पीठ ठोंकना है। इस कारण गर्भिणी स्त्री को तो ये सिनेमा कदापि न दिखाने चाहियें।

इस प्रकार आदर्श संतान उत्पन्न करने के लिये यह दिग्दर्शन कराया है जो कि नवयुवकों को हृदयंगम करना आवश्यक है।

प्रसंगवश यहाँ पर यह लिख देना भी ठीक मालूम होता है कि बहुत से पुरुष न बोल सकने वाले छोटे बच्चोंके सामने कामपिपासा शान्त करते हैं; वे समझते हैं कि यह बच्चा अबोध है, इसको इस बात की कुछ समझ नहीं, न यह मुख से किसीको कुछ कह सकता है। इस समझ से वे इस रहस्य कार्य को उनके सामने करते हुए कुछ हानिका अनुभव नहीं करते; किन्तु यह उनकी बहुत भूल है छोटा बच्चा यद्यपि कुछ कह नहीं सकता, किन्तु कुछ न कुछ जानता अवश्य है। वह बाहर जैसा कुछ देखता है अपने कोमल हृदय पर उसको अंकित करता चला जाता है।

लाहौर निवासी वैद्य हरनामदासजी लिखते हैं कि गर्मी की ऋतु में दिन के समय एक दिन मैं अपने कमरे में जागृत दशा में लेटा हुआ था। इतने में पड़ौस का एक लड़का तथा एक लड़की वहां आये, उन्होंने यह जानकर कि यह सो रहा है पहले सब दरवाज़े बंद कर दिये, फिर उन दोनों ने आपस में कहा आओ हम तुम विवाह करें। पता नहीं विवाह उन्होंने किस तरह किया, किन्तु फिर उन्होंने कहा कि चलो पलंगपर आनन्द करें; तब मैंने उनकी चेष्टा पर निगाह रक्खी—पहले उन्होंने पलंग पर कपड़े बिछाये फिर अपने सब कपड़े उतार कर युवा

पुरुष स्त्रियोंके समान कुचेष्टा करनेको तय्यार हुए। तब मैं ने उठकर उन दोनों को ताड़ना देकर भगाया। उन दोनों की आयु केवल ५—६ वर्ष की थी। उनके पिताओं से पूछने पर पता लगा कि उन बच्चों की ३—४ वर्ष की उम्र तक वे उनके सामने भी कामसेवन में कुछ हानि नहीं समझते थे, किन्तु मेरे कहने पर उनको अपनी भूल ज्ञात हुई।

छोटे बच्चों के सामने काम सेवन करने का बच्चों के चरित्र पर कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है इस बात को जानने के लिये यह उदाहरण पर्याप्त है।

[क्रमशः]

तीर्थयात्रा का अनुभव

सोनागिर

सोनागिर तीर्थक्षेत्र का प्रबन्ध पहले की अपेक्षा इस समय अच्छा है। जलवायु अच्छा होने से तथा शान्त वायुमंडल होने के कारण यहाँ पर अधिक दिन तक ठहरने को जी चाहता है। खाद्य पदार्थ भी सस्ते हैं, किंतु सेठानी की जो दुकान है उससे माल मंहगा तथा खराब मिलता है, घुने हुए गेहूँ भी पिसा देती है; इसका प्रबन्ध होना आवश्यक है। पहाड़ के नीचे वाले पंचायती मंदिरों में से कुछ की आमदनी कम है। यात्रियों को उनके भंडार में अधिक सहायता देनी चाहिये।

पर्वत पर बने हुए मंदिरों में से कुछ मंदिरों में विराजमान प्रतिमाएं ठीक नहीं हैं, प्रतिष्ठाचार्यों की सम्मति लेकर उनको कहीं अगाध जल में प्रवाह करके उनके स्थान पर दूसरी प्रतिमाएँ विराजमान करा देनी चाहियें।

छठे तथा बत्तीसवें मंदिर की प्रतिमा अपूज्य हैं। ४४ वें मंदिर की प्रतिमा बहुत विकृताकार है। ७४ वें मंदिर के भीतर दीवालों पर अन्य देवों की तसवीरें बनी हुई हैं। कतिपय प्रतिमाएं ऐसी हैं जिनके शिर पर सर्पफणा है, किन्तु चिन्ह साँथिये का है। तीर्थ क्षेत्र कमेटी को इन त्रुटियों का सुधार शीघ्र अवश्य करना चाहिये।

देवगढ़

ललितपुर से १८ मील तथा जाखलौन स्टेशन से १० मील दूर बेतवा नदी के मुहाने पर एक थोड़ी ऊंची किन्तु बहुत लम्बी पहाड़ी पर यह तीर्थक्षेत्र है। पहाड़ी के नीचे एक छोटी सी धर्मशाला तथा चैत्यालय है। पहाड़ी पर चढ़ने की पक्की पुरानी सड़क है। इस पहाड़ी पर किसी जैन राजा का क़िला बना हुआ था, यह बात प्रवेश-द्वार तथा तीन कोटों के देखने से मालूम होती है।

तीसरे कोट के भीतर जीर्ण मंदिर हैं, जिनमें से कुछ खड़े हुए हैं और शेष सब गिरे हुए हैं; दो मंदिर दोमंज़िले हैं। बड़ा मंदिर श्री शान्तिनाथ भगवान का है; इसके भीतर में १२ फ़ीट ऊंची खड्गासन श्री शान्तिनाथ भगवान की मूर्ति है। मंदिरों का निर्माण समय विक्रम सं० ९१९ से १८७६ तक है, ऐसा शिलालेखों से प्रतीत होता है।

यहाँ पर अगणित प्रतिमाएं हैं जिनमें बहुतसी खंडित हैं; अखंडित मूर्तियों की भी बहुत भारी संख्या है। कई मानस्तम्भ तथा एक सहस्रकूट चैत्यालय भी है। प्रतिमाओं की कारीगरी प्रशंसनीय है। प्रायः सभी मूर्तियां ऐसी सुन्दर, मनोज्ञ, शान्त, वीतराग हैं कि उनके दर्शन करते हुए नेत्र तृप्त नहीं होते—चित्त वहां से हटना नहीं चाहता।

यहां के दर्शन करने के लिये कम से कम ६—७ घंटे का समय चाहिये।

अभी यहां पर कितनी प्रतिमाएं पृथ्वी में दबी हुई हैं इसका कुछ पता नहीं चलता; जहां खोदते हैं वहींपर मनोज्ञ प्रतिमाएं निकलती हैं। यद्यपि सरकारी पुरातत्वविभाग ने प्रबन्धकार्य जैनसमाज के हाथ में सौंप दिया है, किन्तु वहां से मूर्तियों को अन्यत्र ले जाने की मनाही करदी है। अन्यथा नवीन मूर्ति निर्माण की अपेक्षा इन परम सुन्दर, वीतराग प्रतिमाओं का मंदिरों में विराजमान करना बहुत लाभदायक होता। मूर्तियां कितनी मनोज्ञ हैं, इसका बोध स्वयं दर्शन करने से होता है—कहने सुनने का विषय नहीं है।

श्रीमान सेठ बच्चूलालजी, सिंघई नाथूलालजी, बरया भगवानदास जी आदि को तथा स्वर्गीय श्रीमान सेठ पदमचन्द जी को धन्यवाद है जिनका तन मन धन इस क्षेत्र के उद्धार के लिये लगा। इस क्षेत्र का जीर्णोद्धार होने के लिये प्रचुर धनकी आवश्यकता है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराने के बजाय यदि प्रतिष्ठा कराने वाले श्रीमान् अपना द्रव्य इस क्षेत्र के उद्धार के लिये प्रदान करें तो बहुत उपकार होगा। प्रत्येक महानुभाव इस क्षेत्र की बन्दना अवश्य करें। प्राचीन जैन शिल्प कितना प्रशंसनीय और उन्नत था उसका बहुत कुछ बोध देवगढ़ से हो सकता है।

दलबन्दी से संस्थाओं को हानि

दिगम्बर जैन समाज दलबन्दी को दल दल में दिनोंदिन बुरे रूप से फंसता जा रहा है, जहां यह एक शोचनीय बात है वहां इससे बढ़ कर दुखकर बात यह है कि यह दलदल अब सामाजिक संस्थाओं को भी हानि पहुंचाने लगी है। इसका अनुभव हमको अभी तीर्थयात्रा के समय हुआ, जिसकी २-३ घटनाएं पाठकों के समक्ष रक्खी जाती हैं।

१—स्याद्वाद महा विद्यालय बनारस संस्कृत भाषा का ऊंचा शिक्षण देने के लिये इस समय भी वैसा ही कार्य कर रहा है जैसा कि पहले करता था। व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, परीक्षाओं में अब भी इस विद्यालय के छात्र बैठते हैं और उत्तीर्णता प्राप्त करते हैं, बल्कि न्यायतीर्थ आदि परीक्षाएं पास करके इंग्लिश में बी० ए०, एम० ए० पास होने वाले भी इसी विद्यालय के छात्र हैं। इस विद्यालय को एक सेठ जी ३—४ रुपये मासिक सहायता दिया करते थे किन्तु उनके एक चापलूस पंडित जी ने (जो कि महासभा के कट्टर भक्त हैं) सेठ जी के कान भर कर वह सहायता बन्द करा दी।

२—मुरेना विद्यालय-जैनसिद्धान्त की शिक्षा देने का एक गणनीय विद्यालय है। इसके प्रचारक श्रीमान् पं० अयकुमार जी काव्यतीर्थ विद्यालय के लिये सहायता प्राप्त करने एक शहर में पहुँचे। वहां साधारण रूप से भी चिट्ठा ज़रा सा सहारा देने पर साढ़े तीन सौ, चार सौ रुपये का होजाता है, किन्तु वहां के २—४ प्रमुख पुरुष विद्यालय के कार्यकर्ताओं के प्रतिकूल भाव रखते थे। अतएव उन्होंने उधर अनुकूल योग न दिया जिससे कि वहां मुरेना विद्यालय के लिये केवल ४०—४५ रुपये एकत्र हुए।

३—एक नगरमें शास्त्रार्थ संघ के लिये वहां के

निवासियों ने बड़े उत्साह से एक अच्छी रकम इकट्ठी करके वहां के सेठ जी के पास रख दी। इतने में सेठ जी के कच्चे कान उनके चापलूसों ने भर दिये कि सेठ जी शास्त्रार्थ संघ वाले गांधी टोपी लगाते हैं, खद्दर के कपड़े पहनते हैं, इनको सहायता देने में धर्म को धक्का लगेगा। सेठ जी के कान ठहरे—धर्मरक्षा के मंत्र ने वह रकम दातारों की इच्छा के प्रतिकूल सेठ जी द्वारा अन्यत्र भिजवा दी गई।

दलदल का दूषित वायु मंडल उक्त तीन घटनाओं से समझा जा सकता है। जो संस्थाएं सामाजिक हैं, धर्म प्रचार की साधन भूत हैं, स्वार्थी लोग उनको अपने द्वेषभाव का निशाना बनाकर हानि पहुंचाते नहीं चूकते; यह कटुता हमारे कृपालु खंडेलवाल हितेच्छु सरीखे पत्रों ने और भी बढ़ा दी है। इस कटुता में अधिकतर सामाजिक हानि है, प्रायः किसी के घर का निजी हानि लाभ नहीं होता।

जैन बोर्डिङ्ग हाउस

शिक्षा प्रचार के कार्य में जैनसमाज यद्यपि अग्रेसर नहीं, किन्तु बहुत पीछे भी नहीं है; स्थान स्थान पर पाठशालाओं विद्यालयों का होना इस बात का एक प्रबल प्रमाण है। इस समय इंग्लिश भाषा देश की राजभाषा है, अतः इसके अध्ययन में भी अन्य समाजों के समान जैन समाज ने अच्छा योग दिया है। पर्याप्त संख्या में जैन विद्यार्थी इंग्लिश पढ़ रहे हैं। अनेक जैन हाई स्कूल भी स्थापित हो चुके हैं।

किन्तु इंग्लिश शिक्षा जहां आर्थिक दृष्टि से बहुत महंगी पड़ती है वहां चारित्र की दृष्टि से भी उसका मूल्य बहुत मंहगा है। फ़ैशन का शिकार होना तथा संगतिदोष से अशुद्ध खान पान का अभ्यासी बन जाना एवं सुलभ अनुकूल संयोग न मिलने के कारण धार्मिकज्ञान-आचरण से शून्य रह जाना इंग्लिश पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिये साधारण बात है। उसमें प्रायः ईसाइयत तथा आर्यसमाज का रंग चढ़ जाता है। इस कारण अनेक जैन युवक इंग्लिश पढ़ सुशिक्षित होकर समाज सुधार एवं धार्मिक प्रचार के योग्य नहीं हो पाते। प्रत्युत कुछ तो शराब पीने के तथा उसके समान अन्य अभक्ष्य भक्षण के अभ्यासी हो जाते हैं।

उसमें उतना दोष उन विद्यार्थियों का नहीं है जितना कि जैनसमाज का है, जो कि उनके लिये उचित प्रबन्ध नहीं करती। इस त्रुटिका अनुभव स्वर्गीय श्रीमान सेठ माणिकचन्द्र जी जे० पी० ने किया था, तदनुसार उन्होंने इस त्रुटिसुधार के लिये अनेक स्थानों पर जैन छात्रों के चारित्र सुधार के लिये जैन बोर्डिङ्ग हाउस स्थापित किये तथा करवाये, जिनके द्वारा उनके रहने वाले छात्रों को जहां रहन सहन का आराम पहुंचा वहां उनका अन्यत्र की अपेक्षा चारित्रसुधार भी हुआ।

इस कारण इस समय जहां पर जैन छात्र कालिजों में पढ़ते हैं वहां उनके चारित्र सुधार के लिये जैन बोर्डिङ्ग हाउस अवश्य बनने चाहियें।

किन्तु केवल बोर्डिंग हाउस के हो जाने से ही लक्ष्य सिद्ध नहीं होता जब तक कि उन में एक सुयोग्य धर्माध्यापक का नियम से प्रबन्ध न रहे। धार्मिकज्ञान से शून्य इंग्लिश भाषा के शिक्षित छात्र जैन समाज के सुधार एवं धार्मिक प्रचार

के लिये अनुपयोगी ही नहीं, किन्तु खतरनाक भी हैं। श्रीमान् सागरचन्द्र जी बैरिष्टर मुसलमान क्यों हुए, दक्षिण प्रांत के अनेक शिक्षित जैन युवक ईसाई क्यों हुए, इसका एक मात्र उत्तर यही है कि वे धार्मिक शिक्षा से शून्य थे। यदि वे जैनधर्म के जानकार होते तो कदापि धर्मच्युत न होते। इस कारण अंग्रेज़ी पढ़ने वाले छात्रों के लिये जहां बोर्डिङ्गहाऊसों की आवश्यकता है वहाँ बोर्डिंग हाऊसों के छात्रों के लिये अनिवार्य धार्मिक शिक्षण का प्रबंध रखनेकी उससे भी अधिक आवश्यकताहै।

पद्मपुराण में मांस भक्षण विधानका भ्रम

श्वेताम्बरीय पत्र जैन में ११ मार्च को 'दिगम्बर जैन समाज से निवेदन' शीर्षक लेख श्रीयुत वैद्य प्यारेलाल जी यति बीकानेर ने प्रकाशित कराया है। यति जी ने यह लेख तत्वनिर्णय की इच्छा से प्रगट किया है, किन्तु इस लेख का अवलम्बन लेकर इतर श्वेताम्बरीय पत्र दिगम्बर जैन समाज पर आक्षेप कर रहे हैं। यति जी ने इस लेख में यह जानने की इच्छा प्रगट की है कि क्या एक आर्यसमाजी महाशय के लिखे अनुसार दिगम्बरीय ग्रंथों में मांसभक्षण विधान है ? यहाँ इसी पर कुछ प्रकाश डाला जाता है—

फीरोज़ाबाद निवासी आर्यसमाजी स्वर्गीय श्री० मुंशी मगन बिहारीलालजी मुहक्किक ने आज से १८-२० वर्ष पहले **मांसभक्षण के आदि प्रचारक कौन थे** नामक एक छोटा सा ट्रैक्ट लिखा था, जिसमें आपने कतिपय जैन ग्रंथों का हवाला देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि जैन लोग ही मांस भक्षण के आदि प्रचारक थे। इस पुस्तक का फीरोज़ाबाद में अनेक बार अच्छी तरह खुले मैदान निराकरण हो चुका है तथा ६-७ वर्ष पहले फीरोज़ाबाद में जब उक्त पुस्तक लेखक मुंशी जी सत्यार्थदर्पण के विषय में हमसे मिले थे उस समय प्रसंगवश उन्होंने स्वयं कहा था कि कि यह पुस्तक निःसार है। जैनों से किसी चिढ़ का बदला लेने के ख्याल से ही मैं ने इसे प्रकाशित किया था।

यति जी ने अपने लेख में मुहक्किक जी की उस पुस्तक के सात उद्धरण रक्खे हैं जिनमें से चार उद्धरण तो रत्नकरण्ड श्रावकाचार की भाषाटीका वाले हैं। श्रीमान् पं० सदासुख जी ने रत्नकरंड की टीका में श्वेताम्बरीय ग्रंथों पर आक्षेप करते हुए उनको लिखा है। अतः इन दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवे उद्धरणों का उत्तरदायित्व श्वेताम्बर समाज पर है; दिगम्बरीय ग्रंथों से इनका कुछ संबंध नहीं।

छठा उद्धरण श्रीमान् स्व० पं गोपाल दास जी बरैया के ता० १-११-१३ को देहली में दिये गये व्याख्यान के विषय में है, जिसका भाव मंगसिर शु० ४ वीर सं० २४४० के जैन गज़ट में प्रकाशित हुआ था कि पंडित जी ने अपने व्याख्यान में सिंह आदि माँस भक्षी पशुओं के तथा चांडाल आदि मांसभक्षी मनुष्यों के व्रतरहित सम्यक्त्व ग्रहण करने की दशा में उदासीनता से मांस भक्षण की पुष्टि की थी।

इस विषय में दो बाते हैं—एक तो यह कि अविरत सम्यग्दृष्टि के लिये मांसभक्षण का विधान उक्त स्वर्गीय पंडित जी के लिखे हुए किसी ग्रंथ में नहीं है। अपने व्याख्यान में उन्हों ने क्या कुछ कहा

था, इसका कुछ मानने योग्य प्रमाण इस समय मौजूद नहीं। जैनगजट उस समय पंडित जी के विरुद्ध लिखा करता था। इस कारण बहुत संभव है कि पंडित जी के भाषण का भाव उलट पलट कर पंडित जी को बदनाम करने के ख़याल से ऐसा उसने लिख दिया हो।

दूसरे—उक्त पंडित जी का भाषण कोई आर्ष-वाक्य नहीं जो कि दिगम्बर समाज को अनिवार्य मान्य हो सके। दिगम्बर समाज को तो आर्षवाक्य ही मान्य हो सकता है। अतः श्रीमान् पं० गोपाल दास जी के भाषण द्वारा माँसभक्षण विधान सिद्ध करना निःसार है।

पहले उद्धरण में यति जी ने पद्मपुराण की मांसभक्षी राजा सौदास की कथा का तथा सातवें उद्धरण में मछली खाने वाले अहिदेव महिदेव की कथा का उल्लेख किया है; सो यह भी निष्प्रयोजन है, क्योंकि सौदास, अहिदेव, महिदेव का जैसा आचरण था वही पद्मपुराण में कथा रूप से उल्लिखित है। उनके मांसभक्षण की पद्मपुराण में कुछ सराहना नहीं की गई; अतः पद्मपुराण को मांस भक्षण का समर्थक समझना मोटी भूल है। इस प्रकार की सैकड़ों कथाएं तो श्वेताम्बरीय ग्रंथों में भी होंगी तो क्या उससे उनको मांसभक्षण का समर्थक कहा जा सकता है? कदापि नहीं।

क्या श्वेताम्बरीय पत्र संपादकों को कथा के उल्लेख तथा समर्थन में कुछ भेद प्रतीत नहीं होता जो वे ऐसे ग़लत स्वप्न देख रहे हैं?

यति जी वह पुस्तक यदि भेजने की कृपा करें तो उस सब का उत्तर प्रकाशित किया जा सकता है।

प्राप्त पत्रों का सार

खंडेलवाल जाति में हलचल

गत मास में खंडेलवाल जाति के भीतर उल्लेखनीय दो घटनायें हुई हैं। एक तो लोहड़ साजन प्रकरण के कारण श्रीमान मुनि चन्द्रसागर जी तथा सर सेठ हुकमचन्द्र जी इन्दौर के बीच हुई है और दूसरी कलकत्ता में श्रीयुत राजेन्द्रकुमार जी लुहाड़्या का एक जैसवाल कन्या के साथ विवाह करने के कारण हुई है। उभयपक्ष के समाचार आदि हमारे सामने हैं, जिनमें से कुछ तीव्र प्रेरणा के साथ दर्शन में प्रकाशित करने के लिये आये हैं। उन सबका निचोड़ इस प्रकार है—

लोहड़साजन भाइयों के साथ अज्ञात कारणों से कहीं कहीं पर अन्य समस्त खान पान आदि व्यवहार रहते हुए भी बेटी व्यवहार नहीं है, किन्तु कहीं कहीं पर लोहड़साजन बड़साजन खंडेल वालों का परस्पर रोटी बेटी व्यवहार चालू है। खंडेलवालों के अनेक प्रतिष्ठित घरानों में लोहड़साजनों का सम्बन्ध हो चुका है; इस कारण तथा हीनता में प्रमाणाभाव से एवं अनेक खंडेलवाल पंचायतों की सम्मति अनुसार लोहड़साजन बड़साजनों के समान शुद्ध कुलीन हैं दस्सा नहीं हैं।

फिर भी श्रीमान् मुनि चन्द्रसागर जी जहां २ पधारते हैं वहां २ पर लोहड़ साजनों को हीन बतलाकर उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार बंद कर देने का एवं उनको पूजन प्रक्षाल न करने देने का तीव्र प्रेरणापूर्वक बड़साजन खंडेलवालों को उपदेश करके लोहड़ साजनों को अपमानित करते हैं। यह बात सुनकर श्रीमान् सेठ हुकमचन्द्र जी साहिब

कुछ गणनीय व्यक्तियों के साथ दाधिया (किशनगढ़) पहुँचे। वहां पर आपने मुनि महाराज को लोहड़ साजनों के विरुद्ध अपमान जनक व्यवहार न करने की प्रार्थना की, किन्तु मुनि महाराज न माने। उन्होंने सेठ साहिब के साथ भी अपमान जनक व्यवहार किया।

इस पर सेठ जी ने १२ मार्च को मुनि महाराज के बहिष्कार का पर्चा प्रकाशित करा दिया, जिसमें खंडेलवाल जाति से अपील की कि मुनि चन्द्रसागर जी को मुनि न मानें और न उनके कहे अनुसार लोहड़ साजनों से विषम व्यवहार करें।

इस पर्चे के ७—८ दिन पीछे श्रीमान डाक्टर गुलाबचन्द्र जी द्वारा अजमेर में सेठ साहिब के एक तार का हवाला देकर पर्चा प्रकाशित हुआ कि सेठ साहिब मुनि भक्त हैं उन्होंने बहिष्कार वाले पर्चे पर बिना लेख पढ़े हस्ताक्षर कर दिये थे।

इस विषय में हमारा केवल यह लिखना है कि मुनि चन्द्रसागर जी महाराज अपनी मुनिचर्या में निर्दोष हैं। उनका बहिष्कार करना अनुचित है, किन्तु मुनि महाराज के लिये भी यह उचित नहीं कि तीव्र क्रोध मान पर विजय न पाकर एक शुद्ध धार्मिक जन समुदाय को निराधार रूप से कुल हीन कहकर उसका अपमान करें या करावें। सत्य महाव्रत तथा भाषा समिति ऐसे व्यवहार में रुकावट डालती है। परिणाम में जोश वश सर सेठ हुकमचन्द्र जी सरीखे प्रमुख व्यक्ति भी आपके विरुद्ध ऐसा शोचनीय व्यवहार कर सकते हैं। आपके ऐसे व्यवहार से धार्मिक जगत में अशान्ति कलह उत्पन्न होती है।

श्रीमान रावराजा सर सेठ हुकमचन्द्र जी दिगम्बर जैनसमाज के एक मुख्य नेता हैं। आपका कार्य इतना कच्चा, ढीला, डांवाडोल नहीं होना चाहिये। पहले तो आपको बहिष्कार का पर्चा आगा पीछा देखकर प्रकाशित करना चाहिये था और जब प्रकाशित ही किया था तो फिर झट उसी का लचर दलीलों से खंडन न करना था। आपको अपने हस्ताक्षर इतने कम मूल्य के कदापि न बनाना चाहिये। न्याय्य दृढ़ता ही नेतृत्व का प्रशंसनीय गुण है। अपने हस्ताक्षरों को अयुक्त ठहराने के लिये पर्चे का लेख न पढ़ने की दलील देने की बजाय आप कोई अन्य सबल युक्ति पेश करते तो मान्य होती।

श्रीयुत राजेन्द्रकुमार जी लुहाड्या के विवाह के विषय में एक दूसरे के विरुद्ध दो लेख कलकत्ता से आये हैं।

एक में कलकत्ता खँडेलवाल पंचायत के नाम से राजेन्द्रकुमार जी तथा उनके सहयोगियों का जाति मर्यादा तोड़ने के कारण बहिष्कार किया गया है।

दूसरे में लिखा है कि राजेन्द्रकुमार जी ने धर्मानुकूल कार्य किया है। बहिष्कार करने वाले कलकत्ता की विशाल खंडेलवाल पंचायत के नाम से केवल ४०—५० व्यक्ति थे, जिनमें भी अनेक बहिष्कार के विरुद्ध थे। इस कारण बहिष्कार का ढोंग उपेक्षणीय है।

एक लेख जयपुर से आया है जिसमें वहां के वीर नवयुवक मंडल (जिसके सदस्य प्रायः खंडेलवाल ही हैं) का सर्वसम्मति से पास किया हुआ प्रस्ताव लिखा है, जिसका संक्षिप्त भाव यह है कि—

"राजेन्द्र कुमार जी लुहाड्या ने जैसवाल

कन्या के साथ विवाह करके समयानुसार धर्मानुकूल कार्य किया है। हम उनका स्वागत करते हैं तथा उन्हें बधाई देते हैं। पंचायत के नाम पर कलकत्ता के जिन कतिपय लोगों ने उनका बहिष्कार किया है उनपर हम रोष तथा ग्लानि प्रगट करते हैं; आदि।

खंडेलवाल जाति के शान्त वातावरण में उपर्युक्त दो हलचलें उत्पन्न हो गई हैं।

दरख्शां जी की चौंक

विधवा विवाह प्रेरक श्रीमान बा० भोलानाथ जी दरख्शां भी आदर्श हितैषिता का रूप दिखलाने के लिये श्वेताम्बरमत समीक्षा का नाम सुनकर चौंक पड़े और सनातन जैन के मार्च वाले अङ्क में अपनी सभ्यता का भंडार खोल बैठे हैं। आपने अपनी चौंक में पुस्तक के दर्शन करने की भी आवश्यकता नहीं समझी।

दरख्शां जी! आपके सनातन जैन का जब जन्म भी नहीं हुआ था तब तो यह पुस्तक बन चुकी थी और आपकी सम्पादकी से कई वर्ष पहले छप चुकी थी। अनेक श्वेताम्बर दिगम्बर विद्वान इसका अवलोकन कर चुके हैं। अपने सम्पादक जी से ज़रा इसका परिचय मालूम कर लीजिये। इसके पीछे आप ज़रा शान्त निष्पक्ष चित्त से आद्योपान्त इस पुस्तक का अवलोकन कीजिये। श्वेताम्बर समाज के प्रति पुस्तक लेखक की मनोवृत्ति जानने के लिये आपको "आर्यसमाज के एक सौ प्रश्नों का उत्तर" शीर्षक ट्रैक्ट देखने की भी आवश्यकता है, फिर दलबन्दी की दलदल में पुस्तक-लेखक का स्थान कहाँ है, यह भी ज़रा दृष्टि डालकर मालूम कीजिये और उस समय आप इस पुस्तक की समालोचना करने का कष्ट उठाइये—परिस्थिति एवं विवरण से अनभिज्ञ रहकर भी लेखनी चला बैठना अनुचित है।

जैन संघ भेद

[गतांक से आगे]

[१६]

मथुरा का पुरातत्व

उसी श्वेताम्बरीय जैन मंदिर से एक खड्गासन नग्न मूर्ति, जो कि श्री पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर की है, उपलब्ध हुई है। उसका लेख यह है—

"सिद्ध कोट्टियतो गणतो उछेनगरितो शाखतो बमदासियतो कुल तो शिरिगृहतो संभोकतो अर्य ज्येष्ठहस्तस्य शिष्यो अ (र्यमि) हि (लो) तस्य शिष्य अर्यक्षेर (को) वाचक तस्य निर्वत न वर (ण) हस्तिस्य स च देविय च धित जय देवस्य वधुमो शिनिये वधुकुटस्य कमुथस्य प्रमृप (ति) हस्तिराये दत सावदा भद्रिक सर्वस्तवन हितसुखये।"

भावार्थ—सिद्ध! कोट्टियगण उच्चैनगरी शाखा और बमदासिक (ब्रह्मदासिक) कुल के आर्य ज्येष्ठहस्ति के शिष्य आर्य मिहिल थे। उनके शिष्य वाचक आर्यक्षेरक थे। इनकी इच्छा से एक चतुर्मुख मूर्ति स्थिरा के दानरूप, वर्णहस्ति और देवी की

पुत्री, माशिनी की बहू और कुठकसुन की पहली स्त्री थी। सब जीवों के कल्याण और सुख के लिये।

'अर्हन्त प्रतिमा नग्न वीतराग होनी चाहिये, शृङ्गार की हुई वस्त्र धारक नहीं होनी चाहिये, केवल उसके लेख से श्वेताम्बर दिगम्बर का बोध कराना उचित है' इस बात की उपादेय शिक्षा श्वेताम्बरी भाइयों को इस प्रतिमा से प्राप्त होती है।

स्तूपके पश्चिम दिशा की ओर जो दिगम्बरी मंदिर प्राप्त हुआ जिसकी कि खुदाई श्वेताम्बरी मन्दिर प्राप्त हो जाने के पीछे सन् १८९० में हुई थी, इसमें तीर्थङ्करों की ८० मूर्तियां और १२० टूटे फूटे पत्थर तोरण आदि के प्राप्त हुए। उनमें १७ इंडोसा-इथियन समय के सं० ५ से ८६ तक के थे। डाक्टर फुहरर इस मंदिर के विषय में यों लिखते हैं कि—

"पहले की खुदाई से यह विशेष महत्वशाली थी। एक तोरण-पट बड़े कामकी वस्तु थी जिसमें स्तूपको पूजा करते हुए गरुड़ सुपर्ण आदि को दिखलाया है। ·········यहां के भग्नावशेषों पर ईसवी से पूर्व सं० १५० से सन् १०२३ तक के शिलालेख मिले हैं। ·········किन्तु यह भी विदित होता है कि ईसवी सन् से पूर्व १५० वर्ष से भी पहले का एक जैन मंदिर मथुरा में था जिसकी वस्तुओं को नवीन मन्दिरों में काम में लाया गया था। अरह नामक तीर्थङ्कर की मूर्ति पर लेख है कि यह मूर्ति देव-निर्मित स्तूप में विराजमान थी। इससे प्रगट होता है कि यह स्तूप ईसवी सन् से कई शताब्दी पहले का बना हुआ था। और यह भी पता चलता है कि इन मंदिरों का उपयोग जैनी ईसवी की ११ वीं शताब्दी तक करते रहे थे। इनका नाश बहुत पीछे हुआ है।"

दिगम्बर मन्दिर से प्राप्त मूर्तियों में से एक खड्गासन प्रतिमा का शिलालेख इस प्रकार है—

"·········सं० १५ ग्रि ३ दि १ अस्या पूर्व (1) य·········हिकातो आर्य्य जयभूतिस्य शिषोनिनं अर्य्यसंनामिके शिषीन अर्य्य वसुलये (निर्वर्त) नं०·········लस्य धी (तु)·········इ·········भुवेणि श्रेष्टि (स्य) धर्मपत्निये भट्टि (से) नस्य········· (मातु) कुमरमितयो दनं भगवतो (प्र) मा सव्य तो भद्रिका।"

भाषानुवाद—(सिद्धं!) सं० १५ ग्रीष्म का तीसरे मास का पहला दिन, इस ऊपर (लिखित तिथि को) भगवान की चौमुखी प्रतिमा कुमरमिता (कुमारमित्रा) के दानरूप, (जो) ल की पुत्री,·········की बहू, श्रेष्टि वेणि की प्रथम पत्नी, भट्टिसेन की माता (है) (मे) हिक कुल के अर्य्य जयभूति की शिष्या, अर्य्य संगमिकाकी (प्रति) शिष्या अर्य्यवसुला की इच्छानुसार (अर्पित हुई)।

इत्यादि और भी शिलालेख हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि मथुरा का यह पुरातत्व दिगम्बर, श्वेताम्बर सम्प्रदाय के भेदभाव के प्रारम्भिक समय का है। संघभेद से पहले जैनसंघ का पूजनीय एक स्तूप था, किन्तु जब दिगम्बर श्वे-ताम्बर रूप संघभेद हुआ तब दोनों सम्प्रदायों ने स्तूप के दोनों ओर अपने अपने मन्दिर बना लिये। इसके सिवाय यह भी सिद्ध होता है कि एक बहुत पुराना जैनस्तूप मथुरा में और भी था जिसके भग्नांश इन मन्दिरों के काम में लाये गये। यदि इस स्थान की खुदाई सावधानी से चतुर मजदूरों द्वारा की जाती तो जैन इतिहास के लिये यह पुरातत्व और भी अधिक महत्वशाली सिद्ध होता। अस्तु।

इस पुरातत्व से श्वेताम्बरी भाई अपनी प्राचीनता का स्वप्न देखते हैं सो तो अनेक कारणों से गलत है। मुख्य मोटा कारण यह है कि उसी समय का बना हुआ दिगम्बर मन्दिर भी वहाँ पर मिला है। यदि केवल श्वेताम्बर मन्दिर ही वहां उपलब्ध होता तब तो श्वेताम्बरी भाइयों का भाव कुछ देर के लिये स्थान भी पाता किन्तु इस दशा में वे अपनी प्राचीनता नहीं बतला सकते।

दूसरे—जिन कोट्टिय आदि गण का उल्लेख इन शिलालेखों में है वे गण श्वेताम्बरीय ग्रन्थों के लिखे अनुसार वीर सम्वत् की चौथी शताब्दी में उत्पन्न हुए हैं, जबकि बारह वर्षी दुष्काल के अनन्तर संघभेद वीर सम्वत् की दूसरी शताब्दी में ही हो गया था। कल्पसूत्र, जैनतत्वादर्श (पृष्ठ ५६७) आदि के लेखानुसार सुहस्ति आचार्य वीर सं० २९१ में स्वर्गवासी हुए। उनके पीछे उनके शिष्योंने कोट्टिक आदि गण स्थापित किये। गण स्थापित हो जाने के बहुत पीछे शिलालेखों के उल्लिखित आर्यवृद्धहस्ति आदि श्वेताम्बर आचार्य हुए हैं। अतएव मथुरा पुरातत्व के शिलालेख संघभेद से बहुत पीछे के हैं।

तीसरे—शिलालेखों पर जो सम्वत् खुदा हुआ है वह प्रायः कुशान राजाओं का अर्थात् शक सम्वत् है जो कि वीर सम्वत् से ६०५ वर्ष पीछे तथा विक्रम सम्वत् से १३५ वर्ष पीछे और ईस्वी सन् से ७८ वर्ष पीछे प्रचलित हुआ है। इस कारण जिस प्रतिमा पर सं० ७९ है वह वीर सम्वत् ६८४ और विक्रम सम्वत् २१४ तथा सन् १५७ की समझनी चाहिये। अतः ये मथुरा के शिलालेख संघभेद से बहुत पीछे के हैं।

जो शिलालेख ईस्वी सन् से १५० वर्ष पहले के निश्चित किये जावें वे भी संघभेद से लगभग दो सौ वर्ष पीछे के हो सकेंगे। जिस प्राचीन जैन स्तूप का अस्तित्व ईसवी सन से ६०० वर्ष पहले बताया जाता है वह संघभेद से पहले का सामान्य जैन समुदाय का था। उसके भग्नांश संघभेद हो जाने पर दिगम्बरी श्वेताम्बरी मंदिरों में लगाये गये।

चन्द्रगुप्त के समय बारह वर्ष के दुष्काल के कारण नग्न जैन साधुवेश में उस समय कितना कैसा परिवर्तन आया था इसका सचित्र उदाहरण श्वेताम्बरी मन्दिर से प्राप्त प्लेट नं० १७ की मूर्ति (कन्ह श्रमण) से विदित होता है। कन्ह श्रमण का समस्त शरीर नग्न है यहां तक कि चित्र में उसके लंगोट भी नहीं दीख पड़ता; केवल उसके बायें हाथ पर छोटा सा कपड़ा रक्खा हुआ है। श्वेताम्बर साधुओं का वेश मथुरा में श्वेताम्बरीय मंदिर बनने के समय तक कन्ह श्रमण के समान केवल हाथ पर एक छोटा सा वस्त्र रखने रूप रहा होगा व चादर, चोलपट्ट आदि अधिक वस्त्र रखने की प्रथा इसके पीछे प्रारम्भ हुई होगी।

सम्भवतः श्वेताम्बरीय साधुओं के इसी प्राचीन एवं प्रारम्भिक रूप को भद्रबाहु चरित्र में अर्द्धफालक नामसे कहा है। इस कारण जैन इतिहास के लिये मथुरा पुरातत्व की इतर सामग्री जहां महत्वशालिनी है वहां कन्हश्रमण की मूर्ति भी ऐतिहासिक अनुसंधान की दृष्टि से कुछ कम महत्व नहीं रखती।

इस प्रकार मथुरा के कंकाली टीले से उपलब्ध जैनपुरातत्व संघभेद की दिगम्बरीय कथा को अप्रमाणिक नहीं ठहराता, क्योंकि उसके लेख श्री

भद्रबाहु स्वामी से बहुत पीछे के हैं जबकि संघभेद की नीव भद्रबाहु स्वामी के अन्तिम समय में अथवा उनके स्वर्गारोहण के पीछे (तत्काल ही) पड़ गई थी। दिगम्बर श्वेताम्बर नाम करण विक्रम सं० १३६ में हुआ था।

इस पुरातत्व से यह सारांश भी निकालना चाहिये कि जिस पद्मासन प्रतिमा पर पुरुषांग न हो और उस पर श्वेताम्बरीय गण, शाखा आदि के नाम उल्लिखित हों वही नग्न मूर्ति श्वेताम्बर सम्प्रदाय की माननी चाहिये; शेष सब मूर्ति दिगम्बर सम्प्रदायकी माननी चहिये, क्योंकि छोटे आकार की अनेक दिगम्बरीय पद्मासन प्रतिमाएं इस समय भी अनेक जगह उपलब्ध हैं जिनमें लिंग का चिन्ह नहीं है।

[क्रमशः]

मूर्ति पूजा और वेद

[लेखक—वेद विद्या विशारद पं० मंगल सैन जी, अम्बाला छावनी]

सहारनपुर से प्रकाशित होने वाले 'विकाश' नामक पत्र के विशेषाङ्क में बाबू कामताप्रसाद जी ने स्वामी दयानन्द और जैनधर्म शीर्षक देकर एक लेख प्रकाशित कराया था और दो ईसाई लेखकों का मत उपस्थित करते हुए Modern Religious movement in India के पृष्ठ १०४ के आधार से लिखा था कि मोर्वी से दक्षिण की ओर १४ मील पर टंकारा ग्राम है और राजकोट से वहां २३ मील है। पहिले वर्तमान ठाकुर साहब के पिता मोर्वी रियासत में राज्य करते थे। वह स्थानकवासी जैन साधुओं के अनन्य भक्त थे और उनके प्रधान मंत्री भी एक स्थानक वासी थे। फलतः उस समय मोर्वी राज्य में स्थानकवासी जैनधर्म का ज़ोर था। स्थानक वासी साधु और साध्वियें मोर्वी से राज्यकोट जाते हुये टंकारा ग्राम होकर ज़रूर निकलते थे, जहाँ अम्बाशंकर और उनके सुपुत्र रहते थे। इससे उस वातावरण के अस्तित्व का समर्थन होता है, जिसने बालक दयानन्द को शिवालय में मूर्ति पूजा का विरोधी बनाया। वस्तुतः जैनधर्म में मूर्तिपूजा अथवा पत्थर पूजा का कोई स्थान नहीं; वह तो आदर्श पूजा का हिमायती है, क्योंकि जैनधर्म में मूर्ति का विधान आत्मसमाधी को प्राप्त करने के मार्ग में एक साधन मात्र है—जैसे भूगोल के विद्यार्थी को नक़शा आदि। इसका उत्तर आर्य मित्र वर्ष ३६ अङ्क ४१-४२ के पृष्ठ १९ में स्वामी दयानन्द और जैनधर्म शीर्षक देकर स्वामी कर्मानन्द जी ने प्रकाशित कराया है और उसमें लिखा है कि बहुत विचार करने पर भी मेरी बुद्धि में इस प्रमाणाभास अनुमान का कोई अभिप्राय समझ में नहीं आया, इत्यादि।

महाशय जो बहुत विचार करने पर भी आपकी समझ में न आया तो उस समय आप 'घृतेन शीता' यजु० १२-७० इस मंत्र द्वारा घी सहित और शक्कर

से पटेले की पूजा करने अथवा रीड की हड्डी पर ध्यान लगाते तब प्रमाणाभास अनुमान आप की समझ में शीघ्र ही आ जाता। परन्तु किया क्या जाय? जो व्यक्ति अपनी मान्यता को ही वेद समझते हैं अथवा वेदार्थ को अपनी मान्यता के अनुकूल करना चाहते हैं उनकी बुद्धि के विरुद्ध तो सारे ही प्रमाणाभास हैं।

आगे लिखा है कि लेखक महोदय बतला सकते हैं कि इन स्थानकवासी साधुओं के भ्रमणमात्र से कितने मनुष्य मूर्ति पूजा के विरोधी हो गये, इत्यादि। महाशय जी वर्तमान में स्थानकवासी साधुओं की प्रचारप्रणाली ठीक न होने से असर न भी हो, परन्तु स्वामी दयानन्द पर प्रचार प्रणाली का असर अवश्य हुआ है। क्योंकि काशी शास्त्रार्थ पृष्ठ ७ में लिखा है कि "आदित्यं ब्रह्मेत्युपास्मोतेत्यादि वचनं वेदषु दृश्यते"—इस प्रमाण में ब्रह्म के स्थान में सूर्य की उपासना करना वेदों में बतलाया है। तथा ॐ की उपासना करना भी उपनिषदों में लिखा है और ॐ शब्द वास्तव में जड़ है; फिर वेदों के विरुद्ध कार्य होने पर भी आप कैसे कह सकते हैं कि स्थानकवासी साधुओं का असर स्वामी दयानन्द जी पर नहीं हुआ।

आगे लिखा है कि आश्चर्य तो इस बात का है कि बालक मूल शंकर तो दर्शन मात्र से मूर्ति पूजा का विरोधी बन गया, परन्तु लेखक महोदय साधु का सत्संग, ग्रन्थों का स्वाध्याय करने पर भी मूर्तिपूजा के समर्थक बने हुये हैं इत्यादि।

महाशय जी मूलशंकर के पूर्वज तो स्थानकवासी साधुओं के अनन्य भक्त थे और उनका प्रधान मंत्री भी स्थानकवासी था; इस कारण परम्परागत संस्कारों के होने से ही मूलशंकर मूर्तिपूजा का विरोधी बना, न कि दर्शन मात्र से। और लेखक के पूर्वज स्थानवासी साधुओंके अनन्य भक्त नहीं थे, इस कारण परम्परागत संस्कारों के न होने से मूलशंकर की भाँति लेखक के विचार नहीं हुये। इसमें अब आपको आपत्ति क्या?

आगे लिखा है कि आपने अपनी एक पुस्तक में जैनधर्म को प्राचीन सिद्ध करने के लिये वेद में से व्रात्य शब्द निकाला है और लिखा है कि ये व्रात्य जैनी थे, इत्यादि। स्वामी कर्मानन्द जी को जैनधर्म की प्राचीनता बहुत खटकती है और इसी कारण आपने लेखक महोदय की पुस्तकों की समालोचना करने का साहस भी किया है। परन्तु आपको यह ध्यान नहीं कि एक व्रात्य शब्द ही क्या बल्कि जैनधर्म की प्राचीनता के लिये वेदों में अनेक प्रमाण उपस्थित हैं; जिनमें से नग्न अतिथियों के अतिरिक्त प्रथम हम अरिष्टनेमि का ही मंत्र उपस्थित करते हैं, जोकि जैनधर्म में २२ वें तीर्थङ्कर माने गये हैं। [मंत्र]

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु। ऋ० १—६—१६। यजु० अध्या० २५ मंत्र १९।

(१) ॐ स्वस्तीत्यस्य गोतम ऋषिः। विराट् स्थाना त्रिष्टुपछन्दः। विश्वे देवा देवताः। वैश्वदेवशाज्यानुवाक मंत्र पाठे विनियोगः।

मंत्रार्थः—(वृद्धश्रवाः) महान कीर्तिमान (इन्द्रः) ऐश्वर्यसम्पन्नइन्द्र (नः) हमारे निमित्त (स्वस्ति) कल्याण (दधातु) विधान करें (विश्ववेदाः) सर्वज्ञ (पूषा) सबके पोषण करने में कुश-

कार्य देवता (नः) हमको (स्वस्ति) कल्याणविधान करें। (अरिष्टनेमिः) जिसके चक्र धारा की गति कोई भी रोकने को समर्थ नहीं वह अथवा (तार्क्ष्यः) गरुड़ (नः) हमको (स्वस्ति) कल्याण करें (बृहस्पतिः) देवगुरु (नः) हमारे निमित्त (स्वस्ति) कल्याण विधान करें। इस मंत्रार्थ में इन्द्र का वृद्धश्रवा और पूषा का विश्ववेदा विशेषण बतलाया गया है परन्तु अरिष्ट नेमि को गरुड़ का विशेषण नहीं बतलाया। क्योंकि मंत्रार्थ में 'वह' यह सर्वनाम और 'अथवा' यह शब्द सर्वथा भिन्नरूप दिखलाने के लिये ही दिया गया है। इसलिये अरिष्ट नेमि गरुड़ का विशेषण न होने से वह स्वयं ही देवता रूप माना गया है और बृहस्पति की भाँति ही उससे कल्याण विधान की प्रार्थना की गई है। इसी का मंत्रार्थ स्वामी दयानन्द जी ने अपने यजुर्वेद भाष्य में इस प्रकार किया है—

स्वस्ति न इत्यस्य गोतम ऋषिः। ईश्वरोदेवता। स्वराः बृहती छन्दः। फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये—इस विषय पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वृद्धश्रवाः) बहुत सुनने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख जो (विश्ववेदाः) समस्त जगत में वेद ही जिसका धन है वह (पूषा) सबका पुष्टि करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख जो (तार्क्ष्यः) घोड़े के समान (अरिष्ट नेमिः) सुखों को प्राप्ति कराता हुआ (नः) हमलोगों के लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख तथा जो (बृहस्पतिः) महत्तत्व आदि का स्वामी वा पालना करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख को (दधातु) धारण करे वह तुम्हारे लिये भी सुख को धारण करे।

स्वामी दयानन्द जी ने इस मंत्र का ईश्वरो देवता लिखा है, परन्तु ईश्वरो देवता भी सिद्धि में कोई प्रमाण न होने से मिथ्या है। देखिये देवता की सिद्धि में कात्यायन सर्वानुक्रमणिका में इस प्रकार लिखा है—आनोदशार्चजागतं वैश्वदेवं गोतमः स्वस्ति नो विराट् स्थानाभद्रं कर्णोभिस्तृचंत्रैन्दुभं ३-५ इति सूत्रं। इस प्रमाण से मंत्र का गोतम ऋषिः, विराट्स्थानात्रिष्टुपछन्दः, विश्वे देवा देवता और विश्वेदेवयाऽध्यानुवाक मंत्रपाठे विनियोगः सिद्ध होता है। फिर स्वामी जी ने जो इस मंत्र का ईश्वरो देवता लिखा है वह सूत्र के विरुद्ध होने से मिथ्या है। और जबकि मंत्र का देवता मिथ्या है तब उसके आधार से होने वाला वेदार्थ भी मिथ्या है।

स्वामी जी इस मंत्र में इन्द्र पूषा व अरिष्ट नेमि आदि शब्दों को ईश्वर के विशेषण बतलाते हैं, परन्तु जबकि मंत्र का देवता ही किसी प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं होता तब उसके विशेषण बतलाना सर्वथा व्यर्थ हैं। स्वामी जी अर्थ में लिखते हैं कि ईश्वर घोड़े के समान सुखों को प्राप्ति कराता है, इत्यादि। महाशय जी! निराकार निष्क्रिय ब्रह्म घोड़े के समान सुखों की प्राप्ति नहीं करा सकता। क्योंकि निराकार निष्क्रिय ब्रह्म में दूसरों को ऋषियों की भांति उपदेशादि द्वारा सुखों की प्राप्ति कराने की शक्ति भी नहीं है। यदि आप कहें कि वह सर्वव्यापक होने से करा सकता है तो आपका यह कहना भी मिथ्या है, क्योंकि "त्रिपादूर्ध्वउदैत्पुरुषः" ३१—४। इस यजुर्वेद के प्रमाण से जबकि तीन पैर वाला ब्रह्म आकाश के बिना ही

ऊपर अधर जा लटका तब व्याप्य और व्यापक का सम्बन्ध न होने से सुखों की प्राप्ति कदापि नहीं करा सकता।

स्वामी जी ने एक बात बड़ी ही विलक्षण लिखी है जिससे कि वेद मंत्रों का ईश्वर कृत होना सर्वथा ही असंभव हो जाता है। आप वेदार्थ में लिखते हैं कि ईश्वर हमारे लिये उत्तम सुख को धारण करै वह तुम्हारे लिये भी सुखों को धारण करै। इस लेख में ईश्वर से सुखों की याचना की गई है और सुखों की याचना वही करता है जो वास्तव में दुखी होता है। यदि आप मंत्रों को ईश्वरकृत मानते हैं तो उनमें सुखों की याचना नहीं होनी चाहिये और याचना करना यथार्थ है तब वेदमन्त्र ईश्वरकृत नहीं हो सकते हैं। इस लिये वेदार्थ में सुखों की याचना होने से वेदमंत्र ईश्वरकृत कदापि नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार स्वामी दयानन्द जी का वेदार्थ प्रकरण व देवता के विरुद्ध होने से मिथ्या है और ऊपर हमारा लिखा हुआ मंत्रार्थ वेदानुकूल होने से सत्य है। और उसमें जैनमत के मान्य २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि से जो कल्याण विधान की प्रार्थना की गई है वह भी सत्य है। स्वामी कर्मानन्द जी को तो वेद का एक भाष्य शब्द ही खटका था, परन्तु इस वेद मंत्र द्वारा जैन मत के २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का उल्लेख सिद्ध करके दिखलाया गया है। संभव है कि स्वामी कर्मानन्द जी का पारा अब और भी अधिक चढ़ जावे।

[क्रमशः]

बाहुबलि की प्रतिमाएं गोम्मट नाम से क्यों कही जाती हैं ?

[इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, जिल्द ४ थी, नं० २, सन् १९२८, पृष्ठ २७० में प्रकाशित श्री गोविन्द पै के लेख का अनुवाद]

[अनुवादकः—श्रीमान जगदीश चन्द्र जी जैन M. A.]

दक्षिण भारतवर्ष में तीन विशाल दि० जैन मूर्तियाँ हैं*। ये तीनों आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव की दूसरी स्त्री सुनन्दा के पुत्र बाहुबलि के स्मारक में निर्मित की गई थीं। ये प्रतिमाएं बाहुबलि के निर्वाण प्राप्ति के पूर्व प्रतिमायोग में सीधे खड़े हुए बाहुबलि का प्रदर्शन करती हैं। इनके सम्बन्ध

* ये प्रतिमाएं निम्न लिखित तीन स्थानों पर हैं :—(१) मैसूर स्टेट में "श्रवण वेलगोला" में सन ९८१ में स्थापित, ऊंचाई ५७ फ़ीट (२) दक्षिण कनाडा ज़िले के अन्तर्गत "कारकल" में सन् १४३२ में स्थापित, ऊंचाई ४१॥ फ़ीट (३) दक्षिण कनाडा ज़िले के अन्तर्गत "वेणूर" में सन् १६०३ में स्थापित, ऊंचाई ३५ फ़ीट।

में आकर्षक बात यह है कि ये तीनों प्रतिमाएं जैन अजैन सर्व साधारण में "गोम्मट"†, 'गोमट", "गोमट्ट", "गुम्मट" अथवा बाहुबलि की दिव्य शक्ति के प्रति आदर का भाव सूचन करने के लिये उपर्युक्त शब्दों में ईश्वर शब्द लगा कर "गोम्मटेश्वर", "गोमटेश्वर", गोमट्टेश्वर, गुम्मटेश्वर के नाम से प्रख्यात हैं। इससे यह मालूम होता है कि मानो ये मूर्तियाँ बाहुबलि की न होकर जैन सम्प्रदाय में मान्य "गोम्मट" आदि अथवा गोम्मटेश्वर आदि नामक अन्य किसी मुक्त जीव की मूर्ति हों। ये बाहुबलि की मूर्तियाँ जिस नाम से प्रसिद्ध नहीं थीं उस नाम से क्यों और कैसे प्रसिद्ध हुईं, इसके कारणों को खोज करना ही इस निबन्ध का उद्देश्य है।

यह यहाँ ध्यान रखने की बात है कि बाहुबलि का "गोम्मट" आदि नाम नहीं था और न वास्तव में उनका यह कोई दूसरा ही नाम था, क्योंकि भुजबलि दोर्बली आदि जिन नामों से वे कहे गये हैं उनमें से कोई भी भिन्न अर्थ का बोधक नहीं है। "बाहु", "भुज" "दो:" आदि शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं।

यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य है कि तीनों मूर्तियों में "चामुण्डराय" अथवा "चावुण्डराय" द्वारा श्रवणबेलगोला में स्थापित की हुई सबसे प्राचीन मूर्ति पहले जनसाधारण में गोम्मट आदि अथवा गोम्मटेश्वर आदि नाम से कही जाती थी। कुछ समय पीछे जब उसी तरह की मूर्तियाँ कारकल तथा वेणूर में स्थापित हुईं, तो उनकी भी प्रसिद्धि श्रवणबेलगोला के प्रधान नमूने पर (Great archetype) हुई। अतएव श्रवणबेलगोला की मूर्ति इस नाम से क्यों कही जाने लगी, इस के कारणों की खोज करना ही हमारे प्रयोजन के लिये पर्याप्त होगा।

दूसरे स्थान * पर मैं ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि चामुण्डराय द्वारा स्थापित श्रमण बेलगोला की मूर्ति का स्थापन काल सन् ९८१ होना चाहिये। यह निश्चित है कि चामुण्डराय ने इसे सन् ९७८ से पहिले स्थापित नहीं किया। क्योंकि यदि ऐसा होता तो चामुण्डराय अपने कनाड़ी के महान ग्रंथ "त्रिषष्ठि लक्षण महापुराण" अथवा "चामुण्डरायपुराण" में विस्तृत रूप से गिनाये हुए अपने नाना साहसिक कार्यों तथा कार्यों द्वारा प्राप्त की हुई विविध पदवियों के वर्णन के साथ इसकी चर्चा करने में कभी न चूकते। यह ग्रंथ, जैसा इसमें उल्लेख है, १८ फरवरी सन् ९७८ में समाप्त हुआ था तथा कनाड़ी के महाकवि "रत्न" अथवा "रन्न" के अपने "अजित तीर्थङ्कर पुराणतिलक" अथवा "अजित पुराण" नामक कनाड़ी काव्य में उल्लेख करने के कारण, यह भी कम निश्चित नहीं है कि यह मूर्तियां सन् ९९३ से पहिले स्थापित की गई थीं।

ये कनाड़ी काव्य "अत्तिमब्बे" नामक अपनी

---

† "गोम्मट", गोमट, गोमट्ट, गुम्मट, ये एक ही नाम के प्रकारान्तर हैं। इनमें सबसे प्राचीन रूप गोम्मट जान पड़ता है।

* देखो कनाड़ी मासिक पत्र, पुत्तूर (दक्षिण कनाड़ा) का "कर्णाटक केशरी" जिल्द १ ली, अगस्त और सितम्बर सन् १९२७।

संरक्षिका की, उन्नत कुक्कुटेश्वर † (अजित-पुराण १।६१) नाम से प्रसिद्ध जिनेश्वर की यात्रा के समय अक्टूबर सन् ९९३ में समाप्त हुआ था। यह कुक्कुटेश्वर ‡ श्रमणबेलगोला में बाहुबलि की गोम्मटेश्वर मूर्ति के अतिरिक्त और कोई नहीं है। 'रन्न' के अजितपुराण में यह उल्लेख बड़े महत्व का इस लिये है कि कवि—जो चामुण्डराय का भी आश्रित × था, श्रमण बेलगोला की मूर्ति को वास्तविक और जन साधारण में प्रचलित कई शताब्दियों तक कहे जाने वाले 'गोम्मट" अथवा "गोम्मटेश्वर" नाम से उल्लेख न करके उसके पौराणिक नाम "कुक्कुटेश्वर" (अजित पुराण १—६१) का ही उल्लेख करता है। इस उल्लेख न करने का (Nonfeasance—यदि वास्तव में ऐसा हो सके) अर्थ इस बात से और भी बढ़ जाता है कि "कुक्कुट" और "गोम्मट" (अथवा गोमट वा गुम्मट) दोनों शब्द तीन मात्रा वाले ("भ" गण) हैं तथा कुक्कुट शब्द की तरह गोम्मट शब्द भी

† श्रमण बेलगोला की प्रतिमा कुक्कुटेश्वर तथा दक्षिण कुक्कुटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। यह श्रमणबेलगोला के निम्न शिलालेखों (एपी ग्राफिका कर्नाटिका, जिल्द २ री, पुनरावृत्ति) से भली भांति मालूम देता है:— (१) नं०२३४ (सन् ११८३ के लगभग), (२) नं० २३५ (सन् ११९५), (३) नं० ३४९ (सन् ११५९), (४) नं० ३९७ (सन् १११८)

‡ यह कहा जाता है कि यद्यपि बाहुबलि ने संसार के जीतने वालों पर विजय प्राप्त की थी, तथापि अपने बड़े भाई भरत के ऊपर विजय प्राप्त करने के समय जब उन्होंने भरत को द्वंद युद्ध में प्रवृत्त देखा, तो चक्रवर्ती भरत की हार से दुखी होकर, संसार से उदासीन हो, उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। बाहुबलि ने प्रतिमायोग में पूरे एक वर्ष तपस्या की। उनके शरीर के चारों ओर "कुक्कुट सर्प" (सर्पों के फणों से युक्त कुक्कुट) नामक एक विचित्र विषैले जन्तु चढ़ जाने के कारण उनका नाम कुक्कुटेश्वर पड़ा। बहुत दिनों बाद जब श्रमण बेलगोला में उनकी मूर्ति निर्मित हुई तो प्रायः कुक्कुटेश्वर तथा विशेष कर दक्षिण कुक्कुटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह मूर्ति सम्राट भरत द्वारा, अधार्मिक युद्ध के पश्चात्ताप स्वरूप बाहुबलि की स्मृति में, पोदनापुर नामक स्थान में स्थापित की हुई कही जाने वाली मूर्ति से भिन्न है और यह भी कहा जाता है कि पोदनापुर की मूर्ति भी उसी प्रकार के फणों वाले कुक्कुटों से सहित होने के कारण कुक्कुटेश्वर नाम से कही जाती थी। उपर्युक्त प्रथम उद्धरण का (श्रमणबेलगोला का २३४ नं० का लेख) लक्ष्य पोदनापुर की मूर्ति की ओर है।

× रन्न कहते हैं कि चामुण्डराय पवित्रता दयालुता, तथा धार्मिकता में बहुत बड़े थे (अजित पुराण १२—९)। वीरता में अजेय थे तथा उसके (रन्न के) हितैषी थे (अजितपुराण १२—४८)। इसके अतिरिक्त अपने राजा रायमल्ल चतुर्थ से अपनी योग्यता के कारण प्राप्त की हुई चामुण्डराय की "राय" उपाधि पर, कवि ने स्वयं अपने पुत्र का नाम "राय" रक्खा था (अजितपुराण १२—५३)।

छन्द में बिल्कुल ठीक बैठता है। अतएव श्लोक में पाये जाने वाले "उन्नत कुक्कुटेश्वर जिनेश्वर" पद की तरह ही "उन्नत गोम्मटेश्वर जिनेश्वर" ठीक बैठता है। इसलिये यह सारांश अनिवार्य है कि श्रमणबेलगोला की मूर्ति कम से कम सन् ९९३ तक अर्थात् "रन्न" के अपने अजितपुराण नामक काव्य समाप्त करने के समय तक "गोम्मटेश्वर" नाम से प्रसिद्ध नहीं हुई थी।

अब, इस तरफ़ के और कर्नाटक के सभी जैनों का तथा श्रमण बेलगोला की मूर्ति के विषय में चर्चा करने वाले जैन अजैन विद्वानों का भी यही मत है कि इस मूर्ति के स्थापित करने वाले चामुण्डराय का "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" नाम भी था। आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मट सार में इसी नाम से उल्लेख भी किया है। अतएव चामुण्डराय द्वारा स्थापित मूर्ति वास्तव में उनके नाम पर "गोम्मटेश्वर" कही जाने लगी।

इसकी विवेचना इस प्रकार की गई है— गोम्मटस्य चामुण्डरायस्य—ईश्वरः अर्थात् गोम्मट यानी चामुण्डराय का ईश्वर अर्थात् स्थापित और पूजित ईश्वर। परन्तु मुझे आशा है कि निम्न-लिखित कई बातें यह बताने को पर्याप्त होंगी कि यह मत सङ्गत नहीं है :—

चामुण्डराय, श्रमण बेलगोला के (नं० २८१ के शिलालेख) "ब्रह्मदेव खम्भे" की उत्तर तरफ़ लिखित प्रशंसा में, अपने त्रिषष्ठिलक्षण महापुराण अथवा चामुण्डराय पुराण में तथा चारित्रसार नामक संस्कृत ग्रंथ की प्रशस्ति में, कहीं भी "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" को अपने उपनाम अथवा अपनी विशेष उपाधि के रूप में उल्लेख करते हुए नहीं जान पड़ते। तथा चामुण्डराय के आश्रित रन्न कवि भी अपने अजित पुराण में अपने संरक्षक का "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" नाम से उल्लेख नहीं करते। अतएव यह सारांश कि "चामुण्डराय का यह नाम कमसे कम सन ९९३ तक नहीं था" अयुक्तियुक्त तथा भ्रमपूर्ण नहीं है।

पिरीय पट्टण के "दोड्डय्य" नामक कवि सन् १५५० में रचित "भुजबलि शतक" नाम के संस्कृत ग्रन्थ में कहते हैं कि जब श्रमणबेलगोला में "चन्द्र-गिरि" नामक छोटी पहाड़ी पर चामुण्डराय ने खड़े होकर "इन्द्रगिरि" अथवा "विन्ध्यगिरि" नामक बड़ी पहाड़ी पर तीर छोड़े, उस समय बड़ी पहाड़ी पर पोदनापुर के "गोम्मट" ने दर्शन दिये। इस पर चामुण्डराय ने उस भगवान की नित्य पूजा के लिये बहुत से गाँव दान किये। इस दानवीरता को सुनकर चामुण्डराय के राजा "रायमल्ल" अथवा "राजमल्ल" ने उसे "राय" † की महान

† देखो श्रमण बेलगोला के शिलालेख (एपी ग्राफिका कर्णाटिका, जिल्द २ की भूमिका पृष्ठ १४-१५)—"राय" चामुण्डराय का कोई विशेष नाम अथवा चामुण्डराय को किसी राजा द्वारा प्रदान की हुई उपधि थी, यह निम्न उल्लेखों से मालूम होता है। ये उल्लेख भुजबलि शतक से पहिले हैं :—

(१) रन्न कवि ने चामुण्डराय के नाम पर अपने पुत्र का नाम "राय" रक्खा (अजितपुराण १२—५१,५३)

(२) चामुण्डराय के दूसरे आश्रित कनाड़ी कवि "नागवर्मन्" अपने "छन्दोऽम्बुधि" नामक

उपाधि प्रदान की। इस भुजबलि शतक में पोदनापुर स्थान में अपने भाई "भुजबलि" के स्मारक रूप राजा भरत द्वारा स्थापित की हुई आदिम तथा इतिहास के पहिले की मूर्ति (यद्यपि यह अधिकतर पौराणिक है) "पोदनापुर का गोम्मट" नाम से कही गई है, लेकिन चामुण्डराय इस नाम से नहीं कहे गये हैं। ये दोनों बातें यह प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं कि श्रमणवेलगोला की मूर्ति का "गोम्मट" नाम मूर्ति के स्थापक चामुण्डराय से नहीं लिया गया, बल्कि इससे विपरीत, श्रमणवेलगोला में मूर्ति को स्थापन करने के कारण चामुण्डराय का ही नूतन नाम गोम्मट रक्खा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पहले स्वयं बाहुबलि की (श्रमणवेलगोला में) मूर्ति को ही यह नाम दिया गया; पीछे इसके प्रतिफल स्वरूप ही चामुण्डराय ने यह नूतन नाम प्राप्त किया। [क्रमशः]

छन्दशास्त्र की कनाड़ी रचना में कहते हैं कि "नृप" और "अण्ण" उनके संरक्षक हैं। ये दोनों चामुण्डराय की उपाधियाँ हैं। इनमें से प्रथम शब्द तो "राय" का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ राजा होता है तथा दूसरे का अर्थ बड़ा भाई है।

(३) श्रमणवेलगोला के ७३, १२५ और २५१ नं० के शिलालेख (ये सब सन् १११८ के हैं) निम्न रूप से सूचित करते हैं :—"क्या गङ्गराज (गङ्गराज "होय्सल" वंश के राजा "विष्णु वर्धन" के सेनापति तथा श्रमणवेलगोला की मूर्ति के चारों ओर परकोट बनवाने वाले थे) पूर्वकाल के गङ्गों (गङ्ग वंश के राजाओं) से सौगुना भाग्यशाली नहीं है ?"

यहाँ "राय" का अर्थ वास्तव में चामुण्डराय है जो गङ्ग वंश के (तलकाद के पश्चिमीय गङ्ग) "मारसिंह" "रायमल्ल चतुर्थ" तथा "रक्कस गङ्ग" इन तीनों राजाओं का मंत्री तथा सेनापति था।

(४) श्रमण वेलगोला के ३४५ नं० के शिलालेख (सन् ११५९) में भी लिखा है :—"यदि पूछा जाय कि अपरिवर्तन शील जैन सिद्धान्त के प्रथम प्रवर्द्धक कौन थे, तो कहा जायगा, राजा रायमल्ल के श्रेष्ठ मन्त्री "राय चामुण्डराय"।

[१६]

दरबारीलाल जी ने केवली के अन्यज्ञान न मानने में दूसरी आपत्ति भोग और उपभोग की उपस्थित की है। आपका कहना है कि केवली के भोग और उपभोग स्वीकार किये गये हैं तथा ये इन्द्रिय ज्ञान के बिना हो नहीं सकते; अतः उनके इन्द्रिय ज्ञान का मानना भीअनिवार्य है। पाठक दरबारीलाल जी के इस सम्बन्धी अभिप्राय को अच्छी तरह समझ सकें अतः यहाँ हम इस सम्बन्धी उनके ही वाक्य उद्धृत किये देते हैं—"घाति कर्मों के क्षय हो जाने से केवली के नव लब्धियाँ प्राप्त होती हैं। उनमें भोगान्तराय और उपभोगान्तराय के क्षय से भोग लब्धि और उपभोग लब्धि भी होती है। पंचेन्द्रिय के विषयों में जो एक बार भोगने में आवे वह भोग और जो बार २ भोगने में आवे वह उपभोग है। भोजन भोग है, वस्त्र उपभोग। केवली के जब भोग और उपभोग माना जाता है तब यह निश्चित है कि उनके इन्द्रियाँ भी होती हैं और वे विषय ग्रहण करती हैं। इन्द्रियों के सद्भाव से मतिज्ञान सिद्ध हुआ"।

अब विचारणीय यह है कि क्या केवली के भोग और उपभोग स्वीकार किये गये हैं? यदि हाँ तो क्या ये बिना इन्द्रिय ज्ञान के नहीं हो सकते?

केवली के भोग और उपभोग है, इसका वर्णन जैन शास्त्रों में मिलता है। अतः इस विषय पर विशेष विचार की आवश्यक्ता नहीं। जहाँ हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि उक्त दोनों बातें केवली के रहती हैं वहीं हम इस बात के स्वीकार करने को तय्यार नहीं कि ये बिना इन्द्रिय ज्ञान के हो ही नहीं सकतीं! इससे विचारशील पाठक यह न समझें कि इस बात के स्वीकार न करने की हमारी हट है किन्तु हम इसके समर्थन में प्रमाण का अभाव पाते हैं। भोग और उपभोग के साथ इन्द्रिय ज्ञान का होना अनिवार्य है या यों कहिये कि बिना इन्द्रियज्ञान के ये बातें असंभव हैं। इस बात के समर्थन में विद्वान लेखक ने कोई युक्ति उपस्थित नहीं की; केवल इतना ही लिख कर छोड़ दिया है कि "जब भोग और उपभोग माना जाता है तब यह निश्चित है कि उनके इन्द्रियाँ भी होती हैं और वे विषय ग्रहण करती हैं"। इस प्रकार का निश्चय क्यों हुआ, ऐसी कौन सी बात है जो इस प्रकार के निश्चय को निश्चित कराती है, जब तक यह सिद्ध न कर दिया जाय तब तक ऐसा लिख देना केवल प्रतिज्ञा वाक्य ही है और उसका परीक्षक के लिए कुछ भी मूल्य नहीं! अतः स्पष्ट है कि दरबारीलाल जी का प्रस्तुत वक्तव्य इस बात के समर्थन में बिलकुल अनुपयोगी है। दूसरी बात यह है कि केवली के भोग और उप-

भोगों का अस्तित्व होने पर भी केवली भोगी और उपभोगी नहीं हैं। भोग और उपभोग का अस्तित्व एक जुदी चीज़ है और भोगी और उपभोगी होना एक जुदी बात।

पंचेन्द्रियों के विषयों में से जो पदार्थ एक बार ही सेवन में आते हैं उनका अस्तित्व ही भोग का अस्तित्व है। इस ही प्रकार इन ही में से जो पदार्थ अनेक बार भोग में आते हैं उनका अस्तित्व ही उपभोग का अस्तित्व है। इन दोनों प्रकार के पदार्थों की मौजूदगी में भी यदि कोई इनको भोगता नहीं है तो वह न भोगी ही है और न उपभोगी ही!

भोग और उपभोग का प्राप्त होना वेदनीय कर्म का कार्य है। यह वेदनीय कर्म तब तक इस प्रकार के पदार्थों को प्राप्त नहीं करा सकता जब तक कि तद्विषयक अन्तराय कर्म का अस्तित्व रहता है। केवली के अन्तराय कर्म का अभाव है तथा वेदनीय कर्म तो पहले ही से मौजूद है; अतः उस प्रकार के पदार्थ उनको प्राप्त हो जाते हैं। एक समय शास्त्रसभा की बात है वहां यह चर्चा चल रही थी कि श्री सम्मेद शिखर जी कौन २ जा रहे हैं। इतने में एक बन्धु ने कहा कि जिस २ के कर्म में होगा वह २ चले जायंगे! इस बन्धु को उस बात को सुनकर दूसरे उपस्थित व्यक्ति ने तुरन्त एक प्रश्न उपस्थित कर दिया कि क्या पंडित जी यह बात मान्य है? इसका उत्तर यही था कि कर्म से श्री सम्मेद शिखर जी के दर्शन नहीं हो सकते। कर्म तो इस प्रकार के दर्शनों में बाधायें ही डाल सकते हैं। हां जिसके कर्म की रुकावट नहीं होगी और यदि वह इस प्रकार के दर्शनों के अर्थ प्रयत्न करेगा तो वह दर्शन प्राप्त कर सकता है।

इसही प्रकार की व्यवस्था यहाँ है। जिस प्रकार शुभ कार्यों में कर्म केवल रुकावट किया करते हैं और उनके अभाव में केवल उस रुकावट का अभाव हो जाता है, उस कार्य के लिए प्रयत्न फिर भी करना पड़ता है, उस ही प्रकार यहाँ भी अन्तराय के अस्तित्व से बाधायें हो हुआ करती हैं। जब यह अन्तराय कर्म दूर हो जाता है तब केवल वे बाधायें ही नहीं रहतीं। इन पदार्थों के प्राप्त करने के लिए तो फिर भी वेदनीय कर्म का उदय ही आवश्यक है। इस ही को यदि दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि भोग और उपभोग की प्राप्ति में अन्तराय के अभाव का प्रभाव तो बाधाओं के अभाव तक ही है। इनकी प्राप्ति रूप कार्य में यदि किसी का व्यापार है तो वह वेदनीय ही है। जहां भोग और उपभोग की प्राप्ति वेदनीय के कार्य हैं वहीं भोगी और उपभोगी होने के लिए इनसे भिन्न कारणों की भी आवश्यकता है। इस बात के निर्णय के लिए सर्व प्रथम हम इस ही बात पर प्रकाश डालते हैं कि भोगी और उपभोगी क्या तत्व हैं? आत्मद्रव्य अन्य द्रव्यों की भांति गुणों का समुदाय रूप है। इनही गुणों में से जिनका समुदायस्वरूप आत्म द्रव्य है चैतन्य और सुख गुण भी है। सुख गुण की ही वैभाविक—विकारी —अवस्था का नाम दुःख है। आकुलता का नाम दुःख और निराकुलता का नाम सुख है। जिस समय हम बाह्य पदार्थों के आकर्षण से या केवल कर्म के उदय से बाह्य पदार्थों की तरफ़ खिच जाते हैं और हमारे अन्दर यह विचार पैदा होने लगता है कि हम इन पदार्थों को प्राप्त करें, उस समय हम आकुल या दुःखी कहलाते हैं। जब हम में इस

प्रकार की बातें नहीं होतीं या होकर नष्ट हो जाती हैं तो हम सुखी हो जाया करते हैं।

जब हम जगत के पदार्थों की तरफ खिंच जाते हैं और ऐसा होने से ही आकुलित होजाते हैं उस समय हम उन २ पदार्थों का सेवन करके उस आकुलता को दूर करते हैं। यही भोगी और उपभोगी होना है। अतः भोगी और उपभोगी ये सुख गुण की अवस्थायें हैं तथा ये उस ही आत्मा में होती हैं जहां कि जगत के पदार्थ प्रभाव पैदा करते हैं और इनसे वह आत्मा आकुलता अनुभव करता है।

केवली इन बातों से दूर हैं। न उन पर बाह्य पदार्थ प्रभाव ही पैदा करते हैं और न उनमें आकुलता ही होती है। उनकी अवस्था तो उस फौलाद के लोहे जैसी है। उनमें मुड़ने की ताकत ही नहीं; फिर एक क्या सैकड़ों लुहार भी उसको मोड़ नहीं सकते! उपादान कारण यद्यपि योग्य है और वह उस २ ही अनुरूप हो जाता है जिस २ रूप उसको निमित्त कारण करते हैं किन्तु वहां निमित्त कारण भी व्यर्थ हो जाते हैं, जहां उपादान में उस प्रकार की शक्ति ही नहीं होती।

भगवान पार्श्वनाथ के सम्बन्ध में रति और कामदेव वाली बातचीत यहां बिलकुल उपयुक्त बैठती है *। कामदेव का रति से कहना कि यह वह भगवान हैं जिन्होंने मोहपर विजय प्राप्त कर ली है, फिर हम लोग तो इनके सेवक हैं। जब मालिक ही प्रभाव पैदा नहीं कर सका तब सेवकों की तो बात ही क्या है। तात्पर्य केवल इतना ही है कि वहीं विकार पैदा होता है—आकुलता आती है—जहां मोह शेष है। जो जिस पदार्थ से मोहित ही नहीं होता वह उसकी तरफ आकर्षित होगा यह तो एक व्यर्थ जैसी बात है। केवली के मोह नष्ट हो चुका है या यों कहिये कि मोह को नाश के ही केवली होते हैं, यह एक उभय मान्य बात है। मोह के अभाव में भोगी और उपभोगी होने की तनिक भी गुंजायश नहीं है, इस बात का खुलासा हम ऊपर कर चुके हैं। अतः स्पष्ट है कि केवली के भोग और उपभोग रहने पर भी वे भोगी और उपभोगी नहीं हैं।

प्रश्न—जो बात केवली के उपभोग में स्वीकार की गई है उनहीं में से छत्र, चमर और सिंहासनादिक हैं। केवली सिंहासन पर बैठते हैं, छत्र उनके मस्तक पर विराजमान रहते हैं और भामण्डल पीछे रहता है। इसही प्रकार अन्य बातें भी हैं जो केवली के प्रयोग में आती हैं, फिर उनका भोग और उपभोग रहित कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

उत्तर—किसी भी पदार्थ का केवल सम्बन्ध ही भोग और उपभोग नहीं है। एक लखपति है और वह लाख रुपये के नोटों को सदैव अपने पास रखता है, किन्तु उनको उपयोग में नहीं लाता तो वह उनका भोगी कदापि नहीं कहला सकता! इसही को दूसरे दृष्टान्त से यों समझियेगा कि एक राजा है और उसके पास हर एक प्रकार की भोग और उपभोग की सामिग्री है। ऐसा होने पर भी वह बीमार है और अपनी किसी भी वस्तु का न भोग ही कर सकता है और न उपभोग ही! इन दोनों व्यक्तियों से भोग और उपभोग का सम्बन्ध

* कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी हूँ हूँ प्रतापी प्रिये, हूँ हूँ तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेप क्रिया। मोहोऽनेन विनिर्जितो प्रभुरसौ तत्किंकराः के वयम्, इत्येवं रतिकाम जल्प विषयः पार्श्वप्रभु पातु नः॥

है; फिर भी ये भोगी और उपभोगी नहीं। इनमें और केवली में थोड़ा सा ही अन्तर है और वह यह है कि इनमें से पहिले में भोग और उपभोग के साधनों के रहने पर भी उसमें भोग और उपभोग के भाव ही पैदा नहीं हुए हैं। इसही प्रकार दूसरे में सामिग्री भी है और भोग और उपभोग के उपभोग करने के भाव भी हैं किन्तु बीच में बाधक कारणों से वह ऐसा नहीं कर पाता। केवली में इन दोनों ही बातों का अभाव है—न वहां पर भोग और उपभोग के विचारों का पूर्व रूप ही है और न बाधक कारण ही, किन्तु वहां इस प्रकार के भावों के उत्पन्न होने का मूल ही नष्ट हो चुका है। इन दोनों में यदि प्रागभाव है तो केवली में प्रध्वंसा भाव; कुछ भी क्यों न सही अभाव की दृष्टि से तो दोनों में समानता है। इसही प्रकार बाह्य साधन सामिग्री की दृष्टि से भी इनमें समानता है। प्रस्तुत दृष्टान्तों में यदि लाख रुपये के नोट और भोग्य और उपभोग्य सामिग्री है तो केवली में छत्र चमरादिक। बाह्य सामिग्री के रहने पर भी यदि इनको भोगी और उपभोगी नहीं माना जाता तो केवली को ही छत्र चमरादिक के अस्तित्व से भोगी और उपभोगी किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है।

यदि इस सब विवेचन को संक्षेप में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि किसी भी पदार्थ के अस्तित्व या सम्बन्ध मात्र से कोई भी उसका भोगी या उपभोगी नहीं हो सकता, इसके लिए तो उसको तज्जन्य आकुलता निवृत्ति आवश्यक है। यह बात केवली के छत्र और चमरादिक के सम्बन्ध में नहीं, अतः केवली से उनका सम्बन्ध होने पर भी वे इनके आधार से भोगी या उपभोगी स्वीकार नहीं किये जा सकते।

प्रश्न—केवली को यदि छत्र चमरादिक से आकुलता निवृत्ति नहीं होती (क्योंकि उनमें आकुलता को स्थान ही नहीं है, फिर आकुलता निवृत्ति की तो बात ही क्या हो सकती है) तो न सही, उनको इन का ज्ञान तो है। आकुलता निवृत्ति से भी तो ज्ञान ही होता है; अतः इस दृष्टि से भी केवली भोगी या उपभोगी ही प्रमाणित होते हैं ?

उत्तर—आकुलता निवृत्ति में भी ज्ञान होता है यह बात सत्य है किन्तु आकुलता निवृत्ति और ज्ञान ये दो बातें हैं। इन दोनों में ज्ञान और ज्ञेय का अन्तर है। हम कह चुके हैं कि आत्मा जिन गुणों का समुदायस्वरूप है उनमें चेतना और सुख भी है; साथ ही साथ यह भी इस ही लेख में स्पष्ट कर चुके हैं कि आकुलता निवृत्ति सुख गुण का ही परिणमन है। जिस समय जीव आकुलता निवृत्ति का अनुभव करता है उस समय अनुभव ज्ञान है और आकुलता निवृत्ति ज्ञेय। आकुलता निवृत्ति ही भोगका उपयोग या भोगीत्व है। अतः पदार्थों के ज्ञान के होने पर भी जब तक उनसे होने वाली आकुलता निवृत्ति न हो तब तक भोगीत्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। केवली सर्वज्ञ हैं, अतः उनको जगत के अन्य पदार्थों की तरह छत्र चमरादिक का भी ज्ञान है, किन्तु उनके उनसे होनेवाली आकुलता निवृत्ति नहीं है; अतः उनको केवलज्ञान मात्र ही से भोगी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

यदि केवली भोगी होते तब तो इसके लिए उनको इन्द्रिय व्यापार करना पड़ता और फिर

ज्वालापुर में शानदार विजय

ज्वालापुर (हरद्वार) ज़िले सहारनपुर में एक प्रसिद्ध स्थान है। यहां आर्यसमाज का एक प्रसिद्ध महाविद्यालय है। जब से कांगड़ी में गंगा की बाढ़ से गुरुकुल कांगड़ी की इमारत समाप्त हो गई है तब से उक्त गुरुकुल भी ज्वालापुर में ही है। गुरुकुल ने अपनी पक्की इमारत लाखों रुपया लगा कर अब ज्वालापुरमें ही बनाली है। गुरुकुल कांगड़ी और महाविद्यालय ज्वालापुरमें केवल ३-४ फर्लांग का ही अन्तर है। आर्यसमाज की इन प्रसिद्ध संस्थाओं के अतिरिक्त यहां सनातन धर्मियों का भी एक ऋषिकुल है। आर्यसमाज की उक्त दोनों ही संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशन ईस्टर की छुट्टियों में हुआ करते हैं। अब की ज्वालापुर महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता ने संघ को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने संघ को उक्त महाविद्यालय के अधिवेशन के समय शास्त्रार्थ के लिये निमंत्रित किया था, संघ ने उक्त विद्यालय के मुख्याधिष्ठाता के इस निमंत्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया और तदनुसार शास्त्रार्थ की तारीख भी १ अप्रैल सन् १९३४ निश्चित हो गई थी। इन दोनों संस्थाओं में इस बात का निश्चय मार्च के आखीर सप्ताह में ही हुआ था, अतः इसकी यथेष्ट सूचना जैन जनता को नहीं दी जा सकी थी। पूर्व निश्चय के अनुसार संघ के कार्यकर्त्ता ठीक समय पर ज्वालापुर पहुँच गये थे, और शास्त्रार्थ भी निश्चित तारीख को ही ठीक दुपहर के एक बजे प्रारम्भ हो गया था। शास्त्रार्थ का विषय—"क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है" था। यह शास्त्रार्थ समाज के ही पिण्डाल में हुआ था। पक्ष और प्रतिपक्ष के लिये अलग २ स्टेजें थीं! आर्य समाज की स्टेज पर उसके माननीय महानुभाव करीब १०० की संख्यामें थे; इधर जैनसमाज की स्टेजपर भी संघके संरक्षक ला० शिब्बामल जी जैन रईस अम्बाला और उसके प्रधान मन्त्री पं० राजेन्द्रकुमार जी शास्त्री के अतिरिक्त चौ० धर्मचन्द्र जी B. Sc. और ज्वालापुर कनखल और हरद्वार के प्रतिष्ठित जैन उपस्थित थे। इस शास्त्रार्थ में जैन समाज का प्रतिनिधित्व पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ ने किया था।

इस शास्त्रार्थ में पूर्व पक्ष जैन समाज का था, अतः उसको उपस्थित करते हुए पं० राजेन्द्रकुमार जी ने बतलाया कि आर्यसमाज ने वेद का लक्षण मंत्र समुदायात्मक माना है; सनातन धर्मी मंत्रों के

उससे उनको मतिज्ञानी प्रमाणित किया जा सकता था। केवली भोगी या उपभोगी नहीं, इसका समर्थन हम उपर कर चुके हैं तथा केवल भोग और उपभोग के अस्तित्व के साथ इन्द्रिय व्यापार का अविनाभावी संबन्ध नहीं; अतः केवली के भोग और उपभोग स्वीकार करके भी उनके मतिज्ञान का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता। इससे प्रगट है पं० दरबारीलाल जी की यह आपत्ति भी व्यर्थ ही प्रमाणित हुई है।

[क्रमशः]

साथ ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद मानते हैं। आर्य-समाज की मान्यता के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थों में इतिहास है, तथा इतिहास जिसका होता है वह उसके बाद लिखा जाता है, अतः ब्राह्मण ग्रन्थों को ईश्वरीय स्वीकार नहीं किया। जिन बातों को आर्यसमाज ब्राह्मण ग्रन्थों में पाता है, वे ही बातें वेदों में भी मिलती हैं; अतः इस ही आधार से वेदों को भी ईश्वरीय स्वीकार नहीं किया जा सक्ता! ब्राह्मण ग्रन्थों की तरह वेदों में भी मनुष्यों की कृतियाँ, मान्यता और उपदेशों का अस्तित्व मौजूद है। अथर्ववेद काण्ड ५ सूक्त १ मंत्र ६ में लिखा है कि "विद्वानों ने सात मर्यादायें" बनाई हैं। इसही प्रकार ऋग्वेद में बतलाया है कि एक ही सत को विद्वान् लोग बहुत प्रकार से वर्णन करते हैं। इसही प्रकार के वर्णन अथर्व वेद काण्ड १२ सूक्त ४ मन्त्र ३३-६ में भी मिलते हैं। अथर्व वेद काण्ड १ सूक्त ६ मंत्र २ और अथर्व० काण्ड ५ सूक्त १९ मंत्र १० में मनुष्यों के उपदेशों का स्पष्ट वर्णन है। इन बातों के अतिरिक्त ऋग्वेद मंत्र १० सूक्त ९९ मंत्र ५—७ में शान्तनु और अथर्व काण्ड २० सूक्त १२७ मंत्र १—१० में परीक्षित के विशद इतिहास का भी वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि वेदों में भी ब्राह्मण जैसे वर्णन मौजूद हैं! स्वा० दयानन्द ने मुसलमानों के कुरान को इसही लिये ईश्वरीय पुस्तक नहीं माना कि उसके प्रारम्भ में खुदा को नमस्कार किया गया है। स्वामी दयानन्द की यह आपत्ति ऋग्वेद में भी तदवस्थ है। क्योंकि उसमें भी सबसे पहिले मंत्र में ईश्वर को नमस्कार किया गया है। अतः इस दृष्टि से भी वेदों को ईश्वरीय नहीं माना जा सकता।

इन सब बातों के अतिरिक्त ऋग्वेद मं० १० सूक्त १२९ मंत्र ६-७ में जगत की उत्पत्ति और प्रलय ज्ञान के सम्बन्ध में अज्ञान बतलाया है। यदि ये ईश्वर कृत होते तो इनमें इस प्रकार का वर्णन न मिलता।

वेदों को ईश्वरीय ज्ञान प्रमाणित करने वाला कोई प्रमाण भी नहीं है; अतः वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानना मिथ्या है।

आर्य समाज की तरफ़ से इन सब बातों के समाधान स्वरूप दो बातें उपस्थित की गई थीं—एक उत्तर पुराण का नारद और पर्वत वाला संवाद तथा दूसरे जैन समाज की तरफ़ से उपस्थित किये गये वेद मंत्रों का दूसरा अर्थ। जैनसमाज ने आर्यसमाज की इन युक्तियों का निराकरण बड़ी ही स्पष्टता के साथ कर दिया! जैनसमाज ने बतलाया था कि नारद और पर्वत का संवाद नारद और पर्वत की बातचीत है न कि जैनियों का सिद्धान्त, अतः यह बात जैन समाज के सामने प्रमाण रूप में उपस्थित नहीं की जा सकती। बदले हुए अर्थों को जब जैन समाज ने आर्यसमाज से लिखकर मांगा तब आर्य समाज ने इस पर आपत्ति उपस्थित की। किन्तु चूंकि इस बात का निर्णय शास्त्रार्थ से पूर्व ही नियमों का निर्णय होते समय हो गया था कि यदि एक दूसरे के वक्तव्य को एक दूसरी तरफ़ से लिखकर मांगा जायगा तो एक दूसरे पक्ष को ऐसा करना पड़ेगा, अतएव लिखकर देने के लिये आर्यसमाज को मजबूर किया गया; तब भी उसने लिखकर न दे ज़बानी ही यह कहा कि हम वही अर्थ मानते हैं, जो कि जैन समाज की तरफ़ से किया गया है।

जैन समाज ने आर्य समाज की इस बात को भी लिखकर मांगा; तब फिर आर्यसमाज ने कहा

कि हम इन मंत्रों का पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा किया गया अर्थ प्रमाण मानते हैं। आर्यसमाज के इस वक्तव्य पर जैन समाज की तरफ़ से फिर यही आपत्ति उपस्थित की गई कि इसी ही को लिख कर दे दीजियेगा। इस पर आर्यसमाज ने लिख दिया कि हम इन मंत्रों के क्षेमकरणदास के अर्थ को मानते हैं।

आर्यसमाज की इस प्रकार की समय २ पर बात को बदलने की घटना से जनता को आर्यसमाज की परिस्थिति बिलकुल स्पष्ट हो गई। अन्त में जैनसमाज की तरफ़ से बतलाया गया कि आप इन मंत्रों का कोई सा भी अर्थ स्वीकार कर लें—किंतु वह आपके प्रतिकूल ही प्रमाणित करेगा। इन मंत्रों में लिखा है कि "मुझे सोम ने बतलाया है कि अग्नि में सम्पूर्ण रोगों को नाश करने की शक्ति है। राजा वरुण ने कहा था कि ब्राह्मण की गाय को चुराकर जगत में कोई सुखी नहीं रह सकता"। इनमें सोम और वरुण का अर्थ आप व्यक्ति विशेष करेंगे तब भी ये मंत्र आपके प्रतिकूल ही सिद्ध करेंगे। क्योंकि ऐसा होने से यह बात प्रमाणित हो जायगी कि वेद मंत्रों में व्यक्ति विशेषों का उपदेश मौजूद है। यदि आप इन शब्दों का अर्थ परमात्मा करेंगे, तब भी यह आपके प्रतिकूल ही जायंगे। क्योंकि यहांपर दो व्यक्ति हैं—कहने वाला और सुनने वाला; यदि परमात्मा को ही कहने वाला मान लिया जाता है तो भी सुनने वाला तो जीवात्मा ही ठहरता है, और यह शब्द सुनने वाले के हैं। अतः इस प्रकार भी वेद मंत्र मनुष्य-कृत ही प्रमाणित होंगे।

आर्यसमाज जैनसमाज की इन युक्तियों का भी कोई समाधान नहीं कर सका; अन्य भी छोटी २ बातें दोनों तरफ़ से शास्त्रार्थ में उपस्थित की गई थीं, जिनका प्रभाव भी जनता पर जैनसमाज के अनुकूल ही रहा।

यदि इस शास्त्रार्थ के परिणाम को थोड़े शब्दों में कहना चाहें तो यों कहना चाहिये कि इस शास्त्रार्थ के द्वारा आर्यसमाज पर जैनसमाज का अपूर्व प्रभाव हुआ है। साथ ही साथ यह शास्त्रार्थ जैनसमाज के इतिहास में एक उल्लेख योग्य घटना हुई है।

अन्त में दोनों तरफ़ से एक दूसरी समाज को उसकी उदारता एवं मित्रता पूर्ण व्यवहार के लिये धन्यवाद दिया गया और इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। निवेदकः—

मंत्रीः—उपदेशक विभाग,

दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी

पुस्तक समालोचना

सूर्यप्रकाश परीक्षा—लेखक पं० जुगलकिशोर मुख्तार, प्रकाशक लाला जौहरीमल सर्राफ़ बड़ा दरीबा देहली। मूल्य-विचार और प्रचार। दो आने पोस्टेज खर्च भेजने पर प्रकाशक से प्राप्त।

इस समय, जनता में अपने विचारों का

प्रचार करने के लिए समाचार पत्रों का बोलबाला है। किसी समय यह कार्य ग्रंथ निर्माण से लिया जाता था। गत शताब्दी में, दिगम्बर सम्प्रदाय के तेरा पंथ और बीस पन्थ को लेकर—जान पड़ता है—खूब 'तू' 'तू' 'मैं' 'मैं' हुई थी। उसी के प्रतिफल स्वरूप "चर्चासागर" और "सूर्यप्रकाश" सरीखे ग्रन्थ, जैन साहित्य के मस्तक पर कलंक की तरह विराजमान हैं। प्रस्तुत पुस्तक में सूर्यप्रकाश नामक ग्रन्थ की समीक्षा की गई है। मैं ने सूर्यप्रकाश (जिसके दर्शनों के लिये लाला जौहरीमल जी सर्राफ़ का आभारी हूँ) और उसकी इस समीक्षा का एक साथ तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया। समीक्षा में जिन बातों की आलोचना की गई है वे सब बातें ग्रंथ में मौजूद हैं, बल्कि कुछ बातें अब भी आलोचना करने से शेष रह गई हैं जिन्हे संभवतः पुस्तक बढ़ जाने के भय से छोड़ देना पड़ा है। ग्रन्थकार नेमीचन्द हैं। ग्रंथ में भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों की भरमार है—फिर भी अनुवादक ने ग्रंथ-निर्माता को आचार्य का पद प्रदान कर दिया है। ऐसे श्रद्धालु भक्तों की कृपा से अब आचार्य बनना बिल्कुल साधारण बात हो गई है।

अनुवादक ने अपनी ओर से नमक मिर्च मिलाने और अर्थ में काट छांट करने में बड़ी उदारता से काम लिया है। जहाँ २ ग्रन्थकार ने भगवान के चरणों में चन्दन लिम्पन न करने वालों को अपशब्द कहे हैं—उन अपशब्दों का अर्थ नहीं दिया गया है फिर भी ग्रंथकार के प्रत्येक शब्द को वीर वाणी बतलाने की धृष्टता की है। नमक मिर्च मिलाने का नमूना देखिये—

स्यात्तदा पूजया योग्या तन्मूर्तिः सकलात्मनां।
सर्वे भव्याः प्रतिपक्षं तद्विबंध्य तदाप्तये ॥२०॥
उदकेक्षु घृतैर्दुग्धैः दधि सर्वौषधादिभि।
अभिषेकं प्रकुर्वन्तो, शुद्ध रम्य कदम्बकैः ॥९१॥

अर्थ—भगवान की मूर्ति की परोक्ष पूजा प्रत्यक्ष पूजा से भिन्न होती है। इस लिये परोक्ष पूजा उस मूर्ति की जल, इक्षुरस, घी, दूध दही, सर्वौषधि आदि उत्तम और पवित्र द्रव्योंसे की जाती है। **यह सनातन विधि श्री जिनेन्द्र देव ने प्रतिपादन की है। और इन्द्रादिक देव इसी विधि नन्दीश्वरादि द्वीपों में अकृत्रिम जिन बिम्बों का अभिषेक करते हैं।**

मोटे शब्द अनुवादक जी ने अपनी ओर से मिलाये हैं। जिससे ज्ञात होता है कि आपका पञ्चामृताभिषेक-प्रेम ग्रन्थकार से भी चार कदम आगे बढ़ गया है।

जिनेन्द्र देव और सनातन मार्ग दोनों शब्द आपकी लेखनी के आधीन हैं। जहां चाहा—जोड़ दिया; कौन पूछता है।

टिप्पणी में दिये हुए फ़तवे भी देखने ही योग्य हैं। ज़रा उनका भी स्वाद लीजिये—

"मुनिगण, आर्यिका आदि के लिये गृहस्थ अपने यहाँ लकड़े के फलक (तख्ता) रखता है जिस पर मुनिगण शयनादि करते हैं"। पृष्ट २९९

मुनि के २८ मूलगुणों में एक भूमि शयन नाम का भी मूल गुण है। श्री राजवार्तिक में शय्या परीषह के वर्णन में, तथा अनगार धर्मामृत में पृ० ४५७ पर कंकर पत्थर से व्याप्त ऊंचे नीचे भूमि प्रदेश का ही उल्लेख किया है। पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका में तो शय्या के लिये तृणमात्र का ग्रहण करना भी निर्ग्रन्थता की हानि करने वाला बतलाया है।

पृष्ठ २२४ पर वात्सल्य अंग का लक्षण भी अनोखा ही रचा गया है—"अपने साधर्मी भाइयों को भक्ति भाव से भोजन कराना, पंचायन को निमंत्रण कर प्रीति भोजन देना, सहधर्मी भाइयों ने मेला प्रतिष्ठा आदि अवसर के निमित्त से भक्ति पूर्वक भोजनादि के द्वारा सत्कार करना, समय २ पर सहधर्मी भाइयों को भोजन कराना...वात्सल्य अंग है। परस्पर प्रेम भावना और धर्म में अनुराग इस अंग से ही होता है। सर्व श्रावकाचारों में इसी को वात्सल्य अंग माना है।......आचार्यों ने मेला प्रतिष्ठा आदि में आहार दान देने से तीर्थङ्कर गोत्र का पुण्य बतलाया है"।

सत्याणुव्रती श्रावक का अनर्गल प्रलाप पढ़ कर किस ज्ञानी का हृदय क्षुब्ध न हो जायेगा। अपने कपोल कल्पित लक्षण को सर्व श्रावकाचारों के मत्थे मढ़ना और मेले प्रतिष्ठा के साथ भी भोज को तीर्थङ्कर गोत्र का कारण बतलाकर उसे आचार्यों का वाक्य बतलाना, अनुवादक महाराज जैसे सत्यवादियों (?) को ही शोभा देता है। विष्णु कुमार मुनि ने न मालूम किसको भोजन जिमाया था जो उनका नाम वात्सल्य अंग के साथ स्मरण किया जाता है?

सूर्य प्रकाश और उसके अनुवाद में गाली गलौज और शास्त्र-विरुद्ध अनर्गल प्रलाप के सिवा कुछ भी सार नहीं है। अपनी समीक्षा में जैन साहित्य के इस नाबदान का भण्डा फोड़ करके मुख्तार सा० ने जिनवाणी के माथे के कलंक को साफ़ करने का स्तुत्य कार्य किया है जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमी को यह समीक्षा अवश्य पढ़नी चाहिये। और भगवान महावीर के नाम पर अनाप शनाप बकने वालों की चालों से अपने श्रद्धान की रक्षा करनी चाहिये।

दि० जैन शास्त्रार्थ संघ की प्रबंधकारिणी कमेटी की मीटिंग की

कार्य्यवाही

[स्थान देहली—तारीख २६, २७ मार्च १९३४]

तारीख २६ मार्च सन् १९३४ को दुपहर के दो बजे से ४॥ बजे तक और तारीख २७ मार्च सन् १९३४ को दुपहर के दो बजे से ४ बजे तक मित्र मंडल देहली के कार्यालय में संघ की प्रबन्धकारिणी की बैठक हुई। इसमें विद्या वारिधि पं० चम्पतराय जी बार एटला, वेद विद्या विशारद पं० मंगलसेन जी, पं० कैलाश चन्द्र जी शास्त्री, लाला शिब्बामल जी, साहु रघुनन्दन प्रसाद जी, वाणी भूषण पं० तुलसीराम जी और पं० राजेन्द्रकुमार जी उपस्थित थे। इनके अतिरिक्त बा० जयभगवान जी एडवोकेट, बा० रतनलाल जी एडवोकेट और ला० रूपचन्द्र जी गार्गीय पानीपत भी उपस्थित थे।

संघ के सभापति न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसाद जी की अनुपस्थिति में सभापति का स्थान संघ के सीनियर उपसभापति विद्या वारिधि पं० चम्पत राय जी ने सुशोभित किया। दोनों ही दिन मंगलाचरण श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्रजी बनारस ने किया। तदुपरान्त बहुत वादानुवाद के पश्चात् निम्न लिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुये:—

(१) संघ की प्रबन्ध कारिणी की यह मीटिङ्ग प्रस्ताव करती है कि जैनदर्शन का विशेषांक दूसरे वर्ष का पहला अंक रखा जाय और इस ही प्रकार हर एक वर्ष का प्रथम अंक विशेषांक रहना चाहिये। प्रस्तावक—पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री

समर्थक—पं० मंगलसैन जी

(२) संघ की प्रबन्ध कारिणी की यह बैठक प्रस्ताव करती है कि अगले वर्ष दर्शन के घाटे के लिये आठ सौ रुपया स्वीकार किया जाय, और उसको पच्चीस २ के बत्तीस सहायक बना कर एकत्रित किया जाय।

प्रस्तावक—पं० मंगलसैन जी

समर्थक—पं० राजेन्द्रकुमार जी

(३) संघ के हस्तनागपुर वाले अधिवेशन में संघ की कार्यकारिणी में इक्कीस महानुभाव रखने का निश्चय हुआ था, उनमें से बीस का चुनाव तो उस ही समय हो गया था तथा एक के चुनने का अधिकार प्रबन्धकारिणी को दे दिया था। अतः संघ की कार्य कारिणी की यह बैठक

Regd, No. A. 2379.

प्रस्ताव करती है कि श्रीमान् पं० चैनसुख दास जी न्यायतीर्थ जयपुर का नाम प्रबन्ध कारिणी में सम्मिलित कर लिया जाय और इनको संघ के मुखपत्र जैनदर्शन का तीसरा सम्पादक भी नियत किया जाय। प्रस्तावक—पं० कैलाश चन्द्र जी

समर्थक—पं० राजेन्द्र कुमार जी

(४) संघ की प्रबन्ध कारिणी की यह बैठक प्रस्ताव करतीहै कि इस वर्ष संघ के प्रकाशन विभाग से निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित की जायं:—

(१) जैनधर्म की प्राचीनता पर। (२) गृहस्थ धर्म पर। (३) सत्यार्थ दर्पण का परिवर्तित तीसरा संस्करण। (४) जैनधर्म परिचय का बड़ा संस्करण। (५) अमेरिका की धर्म परिषद् के विद्यावारिधि जी के लेखों का हिन्दी भाषान्तर। (६) अहिंसा का नया एडीशन। प्रस्तावक—पं० राजेन्द्र कुमार जी।

समर्थक—ला० शिब्बामल जी।

(५) संघ के हस्तनागपुर वाले अधिवेशन के अनुसार किस कालेज में जैन कोर्स भर्ती कराने में उक्त कालेज के रजिष्ट्रार महोदय डा० मंगलदेव जी ने संघ को उल्लेख योग्य सहयोग प्रदान किया है, तथा पं० कैलाशचन्द्र जी ने संघ के प्रतिनिधी स्वरूप कोर्स कमेटी में कार्य किया है; अतः संघ की प्रबन्ध कारिणी का यह जलसा प्रस्ताव करता है कि उक्त दोनों महानुभावों को संघ की तरफ से धन्यवाद प्रदान किया जाय।

प्रस्तावक—पं० राजेन्द्रकुमार जी

समर्थक—साहु रघुनन्दन प्रसाद जी

(६) संघ के हस्तनागपुर वाले अधिवेशन में बन्द शास्त्र भण्डारों को खुलवाने तथा खुले हुओं की एक बड़ी सूची तय्यार करने के लिये एक प्रस्ताव पास हुआ था। इसके अनुसार जितना कार्य होना चाहिये था उतना नहीं हुआ है। अतः संघ की प्रबन्धकारिणी का यह जलसा प्रस्ताव करता है कि अब इस कार्य को ज़ोर से किया जाय और अधिक से अधिक एक वर्ष में नागौर के बन्द भंडार को खुलवा दिया जाय। साथ ही साथ खुले हुओं की सूचियों के द्वारा एक बड़ी सूची तय्यार की जाये। जब यह सूची अब तक प्रकाशित सूचियों से बड़ी हो जाये तब उसको प्रकाशित कर दिया जाय। यह सूची अबसे दो वर्ष में प्रकाशित होनी चाहिये। इसके प्रकाशित हो जाने पर इसको भिन्न २ पुस्तकालयों और मन्दिरों में भेज दिया जाय तथा इस बात का पता लगाया जाय कि कौन २ से शास्त्र रह गये हैं, जिनके नाम इसमें नहीं हैं। ज्यों २ नये २ नाम मालूम होते जायें त्यों २ उन २ को भी छपवा कर इसमें जोड़ते रहना चाहिये। नागौर भंडार खुलवाने में सहायता के लिये कुंवर भागचन्द्र जी सोनी अजमेर से निवेदन किया जाय।

प्रस्तावक—ला० शिब्बा मल जी।

समर्थक—पं० मंगल सेन जी।

(७) समाज में उपदेशकों की भारी कमी है और इसके कारण जैन धर्म का प्रचार जैनों में भी नहीं हो पाता। इस ही कारण बहुत से भाई धर्म में शिथिल होते जा रहे हैं और कहीं २ तो धर्म को छोड़ने के भी दृष्टान्त मिलते हैं। अतः संघ की प्रबन्ध कारिणी का यह जलसा प्रस्ताव करता है कि संघ के उपदेशक विभाग को बढ़ाया जाय और यदि आवश्यका प्रतीत हो तो उपदेशकों को तैयार करने के लिये एक उपदेशक विद्यालय खोला जाय, जिसमें योग्य उपदेशकों को तैयार किया जा सके। इन सब बातों के विचार के लिये निम्न लिखित महानुभावों की एक सब कमेटी बनाई जाय और उनको इसके सम्बन्ध में आयोजना तैयार करने, उसके लिये एक स्वतंत्र फंड स्थापित करने और कार्यको प्रारम्भ करने के अधिकार दिये जायं। इस कमेटीको अपने में अन्य भाइयों को सम्मिलित करने के भी अधिकार दिये जायं—

(१) पं० मंगलसैन जी (२) ला० शिब्बामल जी (३) बा० जयभगवान जी एडवोकेट (४) पं० तुलसीराम जी (५) पं० कैलाशचन्द्र जी (६) पं० अजितकुमार जी (७) पं० राजेन्द्रकुमार जी

प्रस्तावक——राजेन्द्रकुमार

समर्थक—पं० मंगलसैन जी

,, पं० कैलाशचन्द्र जी

,, ला० शिब्बामल जी

ह० राजेन्द्रकुमार जैन, महामंत्री।

"चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस बिजनौर से छप कर प्रकाशित हुआ।

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र ।
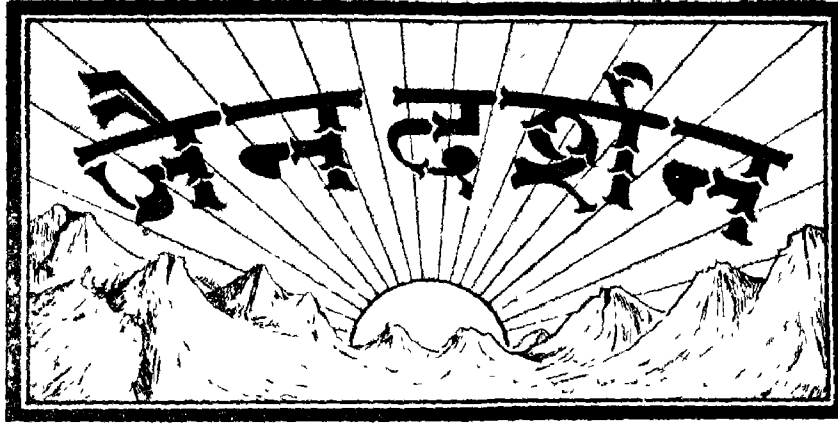
वर्ष १ अङ्क २०

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुलतान सिटी । } ——ऑनरेरी सम्पादक—— { पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी ।

डाक खर्च आदि में फ़ायदा चाहने वालों से

आवश्यक निवेदन !

जिन सज्जनों को अनेक प्रकार की सूचनायें, नोटिस, रिपोर्ट, हिसाब, सूचीपत्र आदि आदि छपवाकर भारतवर्ष तथा बाहर के जैनों में बुक पैकेट द्वारा वितरण करने पड़ते हैं उनसे प्रार्थना है कि वे अपने इस कार्य में अब "जैन दर्शन" से सहायता लेवें । क्योंकि बुक पैकेट द्वारा भेजने में आपको काग़ज़, छपाई, पैकिंग, क्लर्क, पोस्टेज आदि में जो अत्यधिक ख़र्चा करना पड़ता है उसमें, हमारे यहाँ छपवा कर "दर्शन" के साथ वितरण कराने से, काफ़ी बचत कर सकेंगे ।

यदि आप "दर्शन के ग्राहकों के अतिरिक्त अन्य पतों पर भी भिजवाना चाहेंगे तो हम उन पर भी भेजने का प्रबन्ध कर देंगे ।

छपाई और बंटाई चार्ज बहुत कम होगा । जो चीज़ छपानी या छपी छपाई बटवानी हो वह हमारे पास भेज कर उचित चार्ज मालूम करें ।

निवेदक—प्रकाशक "जैनदर्शन", बिजनौर
(यू० पी०)

वार्षिक मूल्य—— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से—— २)

श्वेताम्बरमत समीक्षा—अनेक स्थानों के श्वेताम्बर भाइयों ने अविचार पूर्वक जो श्वेताम्बरमत समीक्षा का बहिष्कार करने की असफल चेष्टा की है उससे दिगम्बर श्वेताम्बर समाज में उस की मांग बढ़ गई है। पाली पोसांगन आदि स्थानों के १५—२० कार्ड हमारे पास आये पड़े हैं जिनसे वे श्वेताम्बरमत समीक्षा वी० पी० द्वारा मंगा रहे हैं। उन सज्जनों की सेवा में निवेदन है कि श्वेताम्बरमत समीक्षा हमारे पास नहीं बिकती। श्रीधर प्रेस भवानी पेठ, शोलापुर तथा जैन पुस्तकालय चंदावाड़ी सूरत से २॥) में प्राप्त हो सकती है। आर्यसमाज के १०० प्रश्नों का उत्तर, आर्यसमाज गप्पाष्टक, सत्यार्थदर्पण आदि हमारे लिखे हुए अन्य ट्रैक्ट, मैनेजर जैनशास्त्रार्थ संघ अम्बाला छावनी तथा सूरत से प्राप्त होते हैं। कृपया पुस्तकों की माँग कोई भी सज्जन हमारे पास न भेजें।

—अजितकुमार जैन, मुलतान

पत्रोत्तर न मिलेगा—अनेक सज्जन कई प्रकार की सामाजिक धार्मिक बातों के विषय में पत्र भेजा करते हैं किन्तु पत्र के साथ उत्तर के लिये टिकिट या पोष्टकार्ड भी नहीं रखते। ऐसे सज्जनों को उत्तर नहीं दिया जायगा। उत्तर के लिये पत्र के साथ पोष्टेज आना आवश्यक है।

—अजितकुमार जैन, मुलतान सिटी

देवगढ़—अपने यहां प्लेग के कारण मैं अपने परिवार तथा पं० उग्रसेन जी लखनऊ के साथ जाखलौन उतर कर देवगढ़ की वंदना के लिये गया। देवगढ़ वास्तवमें जिनेन्द्रदेव का गढ़ है। यहाँ के प्राचीन मंदिर, मानस्तंभ आदि देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। मनोहर, शान्त असंख्य प्रतिमाओं के दर्शन करने से जो आनन्द आया वह लिखा नहीं जा सकता। प्रत्येक भाई को जी० आई० पी० लैन पर सफ़र करते समय इस अतिशय क्षेत्र की वंदना अवश्य करनी चाहिये।

—प्रद्युम्नकुमार जैन, ज़मीन्दार, सिवहारा।

ब्र० बुद्धिसागरजी के विषय में—एक पत्र श्रीमान ब्र० सुन्दरलाल जी ने शिकायत भरा हुआ श्रीमान् पं० पन्ना लाल जी गोधा के पास भेजा था जिसमें लिखा था कि बुद्धिसागर जी श्रावकों से भोजन में एक पाव घी अपने लिये तथा आधा पाव घी अपने साथ वाले आदमी के लिये लेते हैं, अपने आपको उदासीनाश्रम इंदौर में रहा हुआ ब्रह्मचारी बतलाते हैं, सो क्या आपके यहां ऐसे ही ब्रह्मचारी बनाये जाते हैं? इस विषय में श्रीमान गोधा जी को ब्र० सुन्दरलाल जी को तथा समाज को सूचना है कि ब्र० बुद्धिसागर जी न तो हमारे आश्रम में कभी प्रविष्ट हुए और न यहां कुछ दिन रहे ही हैं। हमारे यहाँ के उदासीन ब्रह्मचारी न तो भगवा कपड़े आदि का कोई भेष बनाते हैं और न किसी से कुछ वस्तु मांगते हैं, रुपये पैसे कोई उनको देवे तो नहीं लेते हैं, आश्रम के सहायतार्थ प्राप्त रकम को भी जहां तक होता है सीधा मनिआर्डर से भिजवा देते हैं। अकेले भी प्रायः नहीं आते जाते; कम से कम उदासीन रहते हैं। इन बातों के विरुद्ध जिसका आचरण हो वह इंदौर उदासीनाश्रम का ब्रह्मचारी न समझा जावे।

कालूराम जैन मुनीम

उदासीनाश्रम, तुकोगंज, इंदौर

भूकम्प से राजगृही को हानि—हमने अपने यात्रा विवरण में लिखा था कि भूकम्प से राजगृही में कुछ विशेष हानि नहीं हुई, इस विषय में वहां के मुनीम जी का हमको पत्र प्राप्त हुआ है कि नवीन मंदिर की जिन दो संगमर्मर की वेदियों के पत्थर एक एक इंच आगे पीछे हट गये थे उन वेदियों को फिर से उतरवा कर बनवाना पड़ा है, जिस में लगभग दो हज़ार रुपया खर्च आवेगा।

—संपादक

—कुछ श्वेताम्बरीय पत्रों में दिगम्बरीय ग्रंथों में मांस विधान के प्रमाण में लेख प्रकाशित हुए हैं, उनका उत्तर दर्शन के आगामी अंक में प्रकाशित होगा।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोमरश्मिर्भस्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ | बिजनौर, वैशाख द्वि० कृ० २—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० | अङ्क २०

प्रेम महिमा !

अजेय शक्ति का निवास प्रेम के भीतर होता है। बिखरी हुई वैयक्तिक शक्ति को जोड़ कर प्रेम ही एक ऐसा अटूट संगठन उत्पन्न कर देता है जिसका पराभव करना अशक्य नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। प्रेम के भीतर एक ऐसी आकर्षण शक्ति है जो हज़ारों मील दूर पर बैठे हुए दो हृदयों को एक दूसरे से मिलाये रहती है। जो दुष्कर कार्य धन, अधिकार आदि अन्य किसी शक्ति से नहीं हो सकते वे प्रेम के कारण अनायास हो जाते हैं। संसार में यदि प्रेम भाव का अभाव हो तो कौन कह सकता है कि क्षण भर भी संसार का कोई व्यावहारिक या पारमार्थिक कार्य चल सके?

हमारी शोचनीय निर्बलता का कारण प्रेम भाव की कमी है। हमारे परिवारों में प्रेमभाव सूख रहा है। इसी कारण माता, पिता, पुत्र, भाई, स्त्री आदि एक घर में नहीं रह सकते। परस्पर में लड़ झगड़ कर बर्बाद हो जाते हैं। समाज में फूट की बेल फैल रही है जिससे सामाजिक शक्ति छिन्न भिन्न हो गई है। एक स्थान पर बैठ कर किसी उपयोगी बात का विचारना अथवा कोई हितकर कार्य करना असंभव हो रहा है।

दिगम्बर श्वेताम्बर समाजों का परिश्रम से एकत्र किया हुआ धन इसी प्रेम के अभाव में अदालतों के द्वारा मांसभक्षियों की उदरपूर्ति कर रहा है। इस प्रेमरस के सूखने का विशेष कारण स्वार्थ और अभिमान है। हम जबकि स्वार्थवश अथवा अपनी नाक ऊंची रखने के लिये दूसरे की परवा नहीं करते, उससे सहानुभूति छोड़ देते हैं, वहीं अन्य व्यक्ति के हृदय में द्वेष अग्नि धधक उठती है, जिससे प्रेमरस सूख कर खाक हो जाता है।

प्रिय सज्जनो! यदि अपना, अपने समाज का अभ्युदय चाहते हो तो खुदगर्ज़ी को दबाकर अपने दीन, हीन, निर्बल भाइयों से सहानुभूति पैदा करो। उसी समय तुम बड़े बन सकोगे और तभी प्रेम का प्रवाह बहा कर समाज की उन्नति कर सकोगे। अन्यथा तुम्हारा जीवन किसी काम का नहीं।

सम्पादकीय !

हमारे नवयुवक !

पत्नी की योग्यता

[क्रमागत]

[१०]

कभी कभी वर कन्या समान शिक्षित नहीं मिल पाते। स्त्री शिक्षा की कमी के कारण लड़कियाँ प्रायः ग्रह कार्यों में चतुर होती हुई भी पढ़ी लिखी नहीं होतीं और पुरुषों में अधिक शिक्षा प्रचार होने के कारण लड़के प्रायः अच्छे शिक्षित सुलभता से सर्वत्र मिल जाते हैं। आजकल यद्यपि कुछ कुछ स्त्री शिक्षा का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है किन्तु पुरुष शिक्षा के सन्मुख वह कुछ भी नहीं। गांवों में तो प्रायः कन्या पाठशाला का उचित प्रबन्ध न होने से लड़कियां कुछ नहीं पढ़ लिख पातीं। हां, नगरों में पुत्री पाठशालाओं का संयोग मिल जाने से लड़कियां कुछ हिन्दी भाषा पढ़ लिख लेती हैं। सो भी वे प्रायः १२—१३ वर्ष की उम्र से आगे नहीं पढ़ पातीं क्योंकि फिर उनका विवाह समय आ जाता है।

इस समय कतिपय श्राविकाश्रम स्थापित हो चुके हैं जिनमें स्त्रियों की उच्च शिक्षा का भी प्रबन्ध है। जहां से कि अब वे काव्यतीर्थ आदि परीक्षाएं पास करने लगी हैं किन्तु इस उच्च पढ़ाई का अवसर भी किसी विरल महिला को प्राप्त होता है। इसके लिये श्रीमान पं० शान्तिराज जी न्याय-तीर्थ सरीखे शिक्षा प्रेमी पति मिलें जो कि अपनी श्रीमती जी को आरा भेजकर काव्यतीर्थ तक पढ़ने का सौभाग्य प्रदान करें।

कुछ एक कन्याओं को १८—२० वर्ष की आयु तक कालिजों की इङ्गलिश शिक्षा प्राप्त करने का भी अवसर मिल जाता है किन्तु हम इस शिक्षा को लाभदायक नहीं समझते, क्योंकि पुरुषों के साथ कालेज में लड़कियों का अंग्रेजी पढ़ना चरित्र के लिये प्रायः हानि पहुँचाने वाला है। दूसरे अंग्रेजी शिक्षा स्त्रियों के लिये अनुपयोगी है। तीसरे भारतीय संस्कृति का इससे विनाश होता है, आदि।

सारांश—यह है कि प्रथम तो लड़कियों के लिये पढ़ने लिखने का उचित प्रबन्ध न होने से अधिकतर कन्याएं अशिक्षित रह जाती हैं और यदि कुछ पढ़ती लिखती भी हैं तो बहुत साधारण, जबकि लड़के हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाएं तथा वैद्यक, डाक्टरी आदि विषयों में ऊंची से ऊंची शिक्षा प्राप्त कर लिया करते हैं।

अतः वर यदि अच्छा शिक्षित होता है तो कन्या वैसी नहीं होती। इस विषम अवस्था में अनेक परिवार अशान्ति का घर बन जाते हैं, क्यों कि बहुत से युवकों को अपनी अशिक्षित पत्नी पसन्द नहीं आती। कुछ ऐसे भी मामले आ जुटते हैं कि पति महाशय तो अंग्रेज़ी सभ्यता में इतने रंगे होते हैं कि अपने रहन सहन से अंग्रेज़ों को भी मात करते हैं किन्तु उनकी पत्नी लज्जाशील भारतीय सभ्यता की पूर्ण अनुगामिनी होती है, जिसको कि लेडियों के चाल चलन की कोई भी बात पसंद नहीं। इस विकट समस्या में पति पत्नी बहुत दुखी होते हैं। दोनों का परस्पर हार्दिक प्रेम नहीं जुड़ता।

किन्तु—विचार करने पर यह रोग असाध्य प्रतीत नहीं होता, कठिन साध्य हो यह बात दूसरी है; चिकित्सा उसकी होसकती है। प्रथम तो विवाह करते समय वर कन्याओं के माता पिताओं को इस बात का विचार रखना चाहिये कि शिक्षित वर के लिये शिक्षित कन्या मिलावें जिससे वे परस्पर प्रेम से गृहस्थाश्रम चला सकें। किसी लोभ में आकर वे अपने लड़के लडकियों के विवाह सम्बन्ध में विषमता न आने दें। जहां तक हो सके अपने बुद्धिमान पुत्र की रुचि मालूम करके ही सम्बन्ध निश्चित करें; किसी कन्या के साथ सगाई पक्की करते समय यदि उनको अपने समर्थ पुत्र की किसी प्रकार अरुचि प्रतीत हो तो वे उस कन्या के साथ सगाई करने की शीघ्रता न करें; क्योंकि सम्भव है उस जल्दी का परिणाम आगे चल कर ठीक न निकले।

हमारे नवयुवकों को भी अपने विवाह के लिये यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि वे सबसे अधिक कन्या के विषय में अपना विचार केन्द्रित करें। गृहदेवी बनने की योग्यता रखने वाली गुणवती कन्या ही विवाहने योग्य है। सम्पन्न घर तथा ऊपरी चटक मटक हो अथवा कोरी पढ़ाई लिखाई ही कन्या की योग्यता नहीं होती। ये बातें प्रायः बहुत हानि भी पहुँचाया करती हैं।

हमारे एक बैरिस्टर साहिब का उदाहरण हमारे समक्ष है। उन्होंने एक कुलीन, सभ्य, देवी स्वरूप पत्नी के रहते हुए भी बाहरी भड़क में फंस कर एक इङ्गलिश महिला से विवाह कर लिया और अपनी पत्नी को एक प्रकार से छोड़ दिया किन्तु एक समय जब वे सख्त बीमार हो गये उस समय उनकी वह मेम साहिबा या तो कुर्सी पर बैठकर नौकरों पर हकूमत करती थीं अथवा बीमार पति को छोड़कर टेनिस खेलने चली जाती थीं। तब बैरिस्टर साहिब को होश आया, उन्होंने अपनी उस पूर्व भारतीय पत्नी को तार देकर बुलाया। उस धर्मपत्नी के लिये तो बैरिस्टर साहिब फिर भी देवतास्वरूप थे। उसने आकर बड़े प्रेम और भक्ति तथा परिश्रम से उनकी सेवा की और उनको शीघ्र स्वस्थ बना दिया।

तब बैरिस्टर साहिब ने उस मेम साहिबा को अपने लिये अयोग्य पत्नी समझा और उसको ज्यों त्यों छुट्टी देकर उससे अपना पीछा छुटाया तथा उस कुलीन भारतीय पत्नी को ऐसा अपनाया कि फिर वे जन्म भर कभी उससे अलग न रहे। यह उदाहरण मनन करने योग्य है। विवाह के इच्छुक नवयुवकों को इस पर ध्यान रखना चाहिये।

———

[क्रमशः]

निवेदन

१—समाचारों या किसी दो एक लेख के सिवाय "जैनदर्शन" का प्रायः सभी मैटर छपने के लिये हमारे यहां से १२ दिन पहले रवाना होजाता है। अतएव अनेक लेख जो हमको पीछे प्राप्त होते हैं वे छपने के लिये भेजे जाने पर भी स्थान अवशिष्ट न रहने के कारण प्रकाशित नहीं हो पाते। लगभग डेढ़ फार्म का मैटर प्रायः बच जाया करता है, जिस में से कुछ तो सामयिक न रहने के कारण रद्द करना पड़ता है, कुछ आगामी अंकमें प्रकाशित हो पाता है। वीर जयन्ती के अनेक उपयोगी लेख दर्शन में इसी कारण प्रकाशित नहीं हो पाये। यह बात हमारे अनेक लेखक महानुभावों को अखरती होगी, किन्तु विवशता के लिये हम क्षमा चाहते हैं।

२—अन्तर्जातीय विवाह का खंडन तथा मंडन जैनदर्शन की नीति के अनुकूल नहीं है। इस कारण १८ वें अंक का समाचार तथा १९ वें अंक के भूलसुधार में प्रकाशक महोदय स्वयं भूल कर गये हैं।

—सम्पादक

जैन उत्सवों का ढंग

समयानुसार मनुष्य को अपने अनेक कार्य बदलने पड़ते हैं। जिस समय रेलवे नहीं थी उस समय लोगों को बैलगाड़ियों से सफ़र करना पड़ता था, किन्तु अब लंबे सफर के लिये वह अनावश्यक है। इसी प्रकार धर्मप्रभावना का ढंग पहले अन्य तरह से सफल माना जाता था, किन्तु आज उसमें परिवर्तन होने की आवश्यकता है। जितने भारी (५०-४० हज़ार रुपये) खर्च में हम एक उपयोगी संस्था खोल सकते हैं उतना भारी खर्च करके भी आधुनिक मेलों में जो हमको उतनी धर्मप्रभावना नहीं होती दीखती, इस का कारण यही है कि इस समय हमको अपना कार्यक्रम बदलना आवश्यक है।

इसके लिये निम्न लिखित रूप से कार्यक्रम अमल में आना आवश्यक है :—

१—मेले में एक विशाल सभामंडप अवश्य बनवाया जावे जिसमें अच्छी संख्या में श्रोता बैठ सकें।

२—व्याख्यानदाता विद्वान कम से कम २-३ होने चाहियें, उनके व्याख्यानों का विषय, समय आदि पहले से निश्चित करके सर्वसाधारण को सूचित कर देना चाहिये। व्याख्यान ठीक समय पर प्रारंभ हो जावे, इसका खास प्रबन्ध होना चाहिये। व्याख्यान के विषय अच्छे चुनिंदा होवें, जिनसे कि अजैन जनता के हृदय पर जैनधर्म का प्रभाव पड़ सके।

३—शंका समाधान के लिये भी कम से कम मेले के समय प्रति दिन दिन के समय २ बजे से चार बजे तक अथवा किसी और समय दो घंटे का टाइम शंका समाधान के लिये नियत रखना चाहिये, जिसकी सूचना अजैन शिक्षित जनता को दी जावे कि जैनधर्म के विषय में जिनको शंका समाधान करना हो उस समय पर आकर कर सकते हैं।

४—जैनधर्म का महत्व बतलाने वाले ट्रैक्ट पैम्फलेट हज़ारों की संख्या में शिक्षित जनता में वितरण करने चाहियें।

५—स्थानीय वकील, जज, तहसीलदार, कल-

क्टर आदि आफीसरों को किसी एक दिन निमंत्रण देकर बुलाना चाहिये और उनके सामने अंग्रेजी भाषा में जैनधर्म क्या है ? वह कब से है ? अन्य धर्मों से उसमें क्या विशेषता है ? आदि विषयों पर व्याख्यान कराने चाहियें और उनको कुछ अंग्रेजी पुस्तकें भेंट करनी चाहियें।

६—जैनजनता के लिये उपदेश शास्त्रसभा के समय अथवा अन्य किसी उपयुक्त समय होना चाहिये।

७—एक मेले में जिसमें कि किसी विशेष सभा का अधिवेशन नहीं है विद्वान प्रायः ३-४ से अधिक न बुलाने चाहियें। मेले की प्रसिद्धि जैनियों की तरह बल्कि उससे भी अधिक अजैन जनता में करनी चाहिये—अजैन विद्वानों के पास विशेषतया निमंत्रण पहुंचने चाहियें।

८—मेले में यदि स्त्रियां भी आई हों तो उनकी सभाओं के लिये भी एक पृथक् मंडप का प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये तथा व्याख्यान देने के लिये सुयोग्य, व्याख्यान देने वाली जैन महिलाओं को बुलाना चाहिये !

९—जो महानुभाव थोड़े खर्च में प्रभावना करना चाहें वे अपने यहां बाहर की जैन जनता को न बुलाकर केवल २-४ जैन विद्वानों को बुलावें। अपने यहां की अजैन जनता को बुलाने का अच्छा प्रबन्ध करें और २-३ दिन तक खूब व्याख्यान, शंका समाधान, ट्रैक्ट वितरण आदि करें।

प्रति वर्ष पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं का कराना अथवा एक ही वर्ष में अनेक स्थानों पर बिम्बप्रतिष्ठाओं का होना लाभदायक नहीं, क्योंकि इस प्रकार खर्च अधिक और लाभ थोड़ा होता है। बिम्बप्रतिष्ठा कम से कम १० या १५ वर्ष पीछे एक होनी चाहिये जिससे प्रतिष्ठा का गौरव अनुभव हो। प्रतिष्ठा कराने वाले धनिक महोदय को कम से कम १०-१५ हज़ार रुपये विद्याप्रचार के लिये दान करके स्थायी फंड बनाकर अपने यहां जैन पाठशाला की नींव डालकर तदर्थ ५०) पचास रुपये मासिक का प्रबन्ध कर देना चाहिये।

ऐसा करने से उत्सवों द्वारा अधिक प्रभावना हो सकेगी। अन्यथा जिस ढंग से आज कल अव्यवस्थित रूप से जो मेले होते हैं उनमें खर्च अधिक तथा लाभ न कुछ के बराबर होता है। अजैन शिक्षित जनता जैनसमाज की हंसी उड़ाती है और आई हुई जैनजनता भी सरसपाटे के सिवाय अन्य कुछ लाभ नहीं उठा पाती।

एक नररत्न का वियोग !

सुजानगढ़ निवासी बालब्रह्मचारी श्रीमान् पं० पन्नालाल जी बाकलीवाल अब हमारे सामने नहीं हैं। आप ८ अप्रैल को स्वर्गारोहण कर गये हैं। आप दिगम्बर जैन समाज के एक पुराने निःस्वार्थ सेवक थे। स्व० श्रीमान् सेठ माणिकचन्द्र जी, स्व० श्रीमान् पं० गोपालदास जी बरैया, स्व० श्रीमान पं० धन्नालाल जी के साथ कंधा लगाकर आपने जैन समाज के उत्थान के लिये बहुत कुछ कार्य किया था।

महासभा, महाविद्यालय, परीक्षालय, बम्बई प्रान्तिकसभा, जैनमित्र, जैनहितैषी आदि का जन्म देने में तथा उनके संचालन में थोड़ा बहुत हाथ आपका अवश्य रहा। जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था आपके प्रमुख उद्योग का फल है। दिगम्बर जैन समाज में सबसे पहले छपे हुए ग्रंथों का

प्रचार आपने ही किया था। आप कार्य अधिक करते थे, बोलते कम थे। गुरु जी के नाम से पुकारे जाते थे।

स्व० बा० छगनमल जी आपके भतीजे थे श्रीयुत नेमिचन्द्र जी बाकलीवाल भी आपके भतीजे हैं। गुरुजी के वियोग से दि० जैन समाज की बहुत भारी क्षति हुई है। ———

श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) का फ़ैसला

श्री ऋषभदेव मंदिर (केशरियानाथ) धुलेव के विषय में उदयपुर दरबार ने गत वैशाख बदी १ को जो निर्णय (फ़ैसला) दिया है उसका सार इस प्रकार है:—

१-मंदिर के प्रबन्ध करने के लिये ४ दिगम्बर, ४ श्वेताम्बर मेम्बरों की कमेटी बनाई जाय जिसमें दो दो मेम्बर उदयपुर राज्य के और दो दो मेम्बर स्टेट से बाहर के हों। इस कमेटी का प्रधान देव-स्थान हाकिम होगा। पूजन प्रक्षाल आदि कार्य पुरानी प्रथा के अनुसार होगा।

२-ध्वजादंड चढ़ाने के विषय में बनेड़े राजा अमरसिंह जी, मिस्टर ट्रेंच, पं० रत्नलाल जी अंताणे और बाबू बिन्दुलालजी भट्टाचार्य, इन चार सज्जनों की एक जांच कमेटी बनी है जो कि निष्पक्ष रूप से दिगम्बर श्वेताम्बर लोगों की गवाहियां लेकर अपनी रिपोर्ट तथा अपनी सम्मति उपस्थित करेगी कि मंदिर पर ध्वजादंड चढ़ाने का अधिकार किसको दिया जावे।

३-पंडों को पूजा प्रक्षाल की बोली आदि की कुल आमदनी न दी जाकर एक नियत रकम अथवा आमदनी का कुछ मुकर्रिर हिस्सा दिया जाया करे। किन्तु ऐसा करने से पहले हाकिम देव स्थान सारा मामला पेश करे कि मंदिर की औसत आमद कितनी है? पंडे कितने हैं? वे क्या कैसी सेवा करते हैं? क्या उनका खर्च होता है, उनको इसके सिवाय और भी कोई आमदनी है; आदि।

उदयपुर दरबार का उपर्युक्त फ़ैसला बहुत अंश में संतोषजनक, न्यायपूर्ण है, जिसके लिये हिज़हाई-नेस महाराणा उदयपुर तथा वहां के सीनियर दीवान महोदय को धन्यवाद है, किन्तु इस फ़ैसले में एक बात रह गई जिसका कि निर्णय होना आवश्यक है। वह यह कि **एक जांच कमेटी नियत करके दीवान महोदय इस बात को भी जाँच करावें कि वास्तव में यह मंदिर किस सम्प्रदाय का है? किसका इस मंदिर पर न्याय्य अधिकार है?**

कहना होगा कि यह सब कुछ स्व० श्रीमान पं० गिरधारी लाल जी न्यायतीर्थ आदि ४ दि० जैन भाइयों के बलिदान का, हिज़हाईनेस महाराणा उदयपुर तथा वर्त्तमान दीवान महोदय की न्यायप्रियता का, एवं श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्द्र जी, सेठ भागचन्द्र जी सोनी आदि महानुभावों के उद्योग का फल है।

श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्द्र जी को तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा डेपुटेशन के सदस्यों की सम्मति लेकर मंदिर ऋषभदेव की प्रबन्धक कमेटी के लिये ऐसे कार्यकुशल दो मेम्बर चुन देने चाहियें जो अपना समय दे सकते हों तथा कार्य करने वाले हों। केवल बड़प्पन का ख़याल न किया जावे।

आशा है हमारे न्यायप्रिय, शान्तिइच्छुक श्वे-

ताम्बर सज्जन भी उदयपुर राज्य के इस फ़ैसले से सन्तुष्ट होंगे।

अब श्रीमान रावराजा सरसेठ हुकमचन्द्र जी, सेठ भागचन्द्रजी सोनी, डा० गुलाबचद्र जी पाटनी पू० ब्र० चांदमल जी आदि महानुभावों को ध्वजादंड जांच कमेटी के सामने ध्वजादंड चढाने के ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित कराने चाहिये। इस के लिये श्रीमान पं० गौरीशंकर जी लिखित राजस्थान का इतिहास, मंदिर के शिलालेख तथा धुलेव, उदयपुर के वृद्ध पुरुषों के बयान आदि सामग्री बहुत उपयोगी रहेगी। इस अंतिम प्रयत्न में मुस्तैदी से भाग लेना चाहिये।

श्री ऋषभदेव (केशरिया जी) का इतिहास

जैनसमाज आपसी फूट के कारण लाखों रुपये व्यर्थ खो कर संसार को अपना तमाशा दिखा रही है। पावापुरी, सम्मेदशिखर, राजगृही आदि तीर्थक्षेत्रों के झगड़ों ने दिगम्बर श्वेताम्बर समाज का इतना रुपया अदालतों में खो दिया जितने रुपयों का एक ऐसा विशाल फंड बन जाता जिससे कि धार्मिक प्रचार या असहाय जैन सेवा का कोई विशाल स्थायी कार्य होता।

तीर्थक्षेत्रों का प्रबन्ध दोनों सम्प्रदाय आपसी सहयोग से करें और एक दूसरे के धर्मसेवन में बाधा न डालें तो कहीं कोई झगड़ा नहीं हो सकता। जब एक पक्ष स्वार्थबुद्धि से दूसरे के न्यायोचित अधिकारों को पददलित करता है तो दूसरा पक्ष अपना अधिकार पाने के लिये तीसरे की शरण लेता है। परिणाम यह निकलता है कि आपसी फूट से दोनों को निर्बल देख कर तीसरे व्यक्ति की बन आती है। पावापुरी आदि क्षेत्रों पर श्वेताम्बर समाज यदि अपने दिगम्बर समाज के उचित अधिकार झपटने का उद्योग न करता तो वहां कभी इस तरह धन की बर्बादी न होती।

अभी कुछ दिन पहिले सेठ चन्दनमल जी नागोरी ने एक 'श्री केशरिया जी तीर्थ का इतिहास' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने प्रकाशित किया है कि **यह मंदिर श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय का है।** वे मुख से तो दिगम्बर श्वेताम्बर एकता की बात कहते हैं किन्तु उधर अपनी इस पुस्तक में दिगम्बर सम्प्रदाय के अधिकारों को पददलित करते हैं। आपकी पुस्तक की जब जैनदर्शन में सत्य समालोचना प्रकाशित हुई तब आप व्यग्र होकर केशरियानाथ (ऋषभदेव) मंदिर में दिगम्बरीयता का प्रमाण मांगने लगे। मंदिर किस सम्प्रदाय का है? उस पर किस का कितना अधिकार है यह बात कुछ तो उदयपुर दरबार ने तय कर दी है, शेष और तय हो जायगी; अस्तु।

हम पारस्परिक संगठन, प्रेम और न्याय के नाम पर सेठ चंदनमल जी नागोरी, बा० जवाहर लाल जी लोढ़ा संपादक श्वेताम्बर जैन तथा इतर सभी उन श्वेताम्बर जैन नेताओं के सामने निम्न तीन बातें रखते हैं। पहिले वे अपने निष्पक्ष, न्यायप्रिय चित से उनका उत्तर दें:—

१—केशरियानाथ मंदिर में मूलनायक श्री ऋषभदेव की प्रतिमा नग्न दिगम्बर है या नहीं?

२–उसके दोनों ओर खड्गासन मूर्तियां नग्न हैं या नहीं ? ३–प्रतिमा के नीचे पत्थर पर १६ स्वप्न खुदे हुए हैं या नहीं ? (जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय १४ स्वप्न, ही मानता है)। क्या इन तीनों प्रमाणों से इस प्राचीन मंदिर पर दिगम्बर सम्प्रदाय का अधिकार सिद्ध होता है या नहीं ?

सेठ चंदनमल जी अपनी पुस्तक की सत्यता सिद्ध करने के लिये तथा लोढ़ा जी अपने लेखों को सत्य साबित करने के लिये पहले इसका उत्तर दें, फिर हम अन्य प्रमाण उनके सामने रक्खेंगे।

काला पक्षपात

अपने समुदाय की सत्य या असत्य निन्दा करके अन्य समुदाय की सच्ची झूठी प्रशंसा कर देना आजकल की निष्पक्षता है। इस निष्पक्षता के शिखर पर हमारे पुराने मित्र श्रीमान पं० दरबारीलाल जी चढ़ते जा रहे हैं। वह दिन दूर नहीं जब कि वे उसकी चोटी पर खड़े दिखाई देंगे। उनकी दृष्टि में दिगम्बरीय ग्रन्थ अर्वाचीन तथा सत्य घटनाओं से शून्य हैं, जबकि श्वेताम्बरीय साहित्य में प्रायः वह कमी नहीं है, आदि। साथ ही उनको अपनी लेखनी पर अभिमान है कि मैं जो कुछ लिखूंगा सर्वज्ञवाणी से बढ़ कर होगा।

जैनजगत के गत १० वें अंक में आपने दो ढाई मास पहले छपे हुए श्रीमान यति सूर्यमल जी कलकत्ता के भक्त नौबतराय जी बदलिया के पर्चे का आधार लेकर **झगड़ालू साहित्य** शीर्षक लेख द्वारा श्वेताम्बर मत समीक्षा की समीक्षा की है। आज से ४ वर्ष पहले प्रकाशित होने वाली श्वेताम्बर मत समीक्षा पर पं० दरबारीलाल जी की लेखनी आज चली है। इसमें कुछ थोड़ा निःसार रहस्य है और कुछ प्रचलित प्रवाह में डुबकी लगाने की अदम्य उत्सुकता भी कारणभूत है। अस्तु !

आप श्वेताम्बर मत समीक्षा के किसी एक प्रकरण को लेकर या कम से कम उल्लिखित मांस प्रकरण पर लेखनी चलाते तो ज़रा उत्तर प्रत्युत्तर में सार निकलता। पं० दरबारीलाल जी ने लेखक की मनोभावना को न छूते हुए वर्तमान अंधी घुड़दौड़ में अपना घोड़ा दौड़ा दिया है; यह उनके निष्पक्ष हृदय का नमूना है। आपको पहले **आर्यसमाज के एक सौ प्रश्नों के उत्तर** नामक ट्रैक्ट में ३६ वें तथा ४१ वें प्रश्न उत्तर को देख लेना आवश्यक था। उस समय आपको पता लगता कि श्वेताम्बर साहित्य में किसी स्वार्थी व्यक्ति द्वारा मिलाये गये मैल को दूर कराना ही श्वेताम्बर मत समीक्षा का उद्देश्य है। अपने लेख द्वारा आपने बजाय उस मैल को धो डालने के उस पर वार्निश फेरने का प्रयत्न किया है। इस तरह आप श्वेताम्बर साहित्य के तथा जैनसमाज के कितने हितैषी सिद्ध होते हैं यह विचारणीय है।

श्वेताम्बर समाजको वह मैल अपने साहित्य से आज नहीं तो कल, आखिर किसी न किसी दिन अवश्य हटाना पड़ेगा। जो श्वेताम्बरमतसमीक्षा श्वेताम्बर समाज को आज कड़वी मालूम होती है वही श्वेताम्बरमतसमीक्षा उसको अपने लिये एक दिन स्वास्थ्यप्रद औषध ज्ञात होगी। पं० दरबारीलाल जी को व उनके सहयोगियों को यह जानकर दुख होगा कि इस समय भी अनेक श्वेताम्बरी सज्जनों ने जिन्होंने कि गुण ग्रहण की दृष्टि से इस

पुस्तक का अवलोकन किया है पुस्तक को अपने लिये हितकर एवं उपयोगी पाया है। कुछ दिन बाद आप उनको मैदान में देखेंगे।

"भगवान् महावीर स्वामी का जीवन चरित्र दिगम्बरीय ग्रन्थानुसार इस कारण सत्य है कि उसमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कोई अस्वाभाविक सिद्धान्त विरुद्ध घटना का समावेश नहीं है, जबकि श्वेताम्बरीय ग्रन्थानुसार गर्भपरिवर्तन, तेजोलेश्या का आक्रमण, रोगी होना, रेवती के घर का भोजन मंगाना आदि कथन अस्वाभाविक एवं स्वयं श्वेताम्बर सिद्धांत के प्रतिकूल है; अतएव वह सत्य सिद्ध नहीं होता" यह हमारा मन्तव्य है और इसको सिद्ध करने के लिये हम सदा तय्यार हैं। श्वेताम्बरीय ग्रंथानुसार भगवान महावीर के पवित्र जीवन पर धब्बा लगता है जो कि हमको असह्य है। इसी कारण उस धब्बे को छुटाने के लिये हमने श्वेताम्बर समाज से अपील की है। इसको यदि कोई झगड़ा या द्वेषभाव समझे यह उसकी मोटी भूल है। स्वयं पं० दरबारीलाल जी अथवा इतर कोई विद्वान श्वेताम्बरीय ग्रंथानुसार श्री महावीर भगवान के जीवन चरित्र को या भगवती मल्लिकुमारी के जीवन आदि बातों को सत्य एवं सिद्धान्त अनुकूल सिद्ध करना चाहे तो उनके साथ विचार करने के लिये हम तयार हैं। यों तो फिर अपनी लेखनी अपना पत्र है, किसी बात की कसर कहीं निकालने को चाहे कुछ लिखा जा सकता है।

श्वेताम्बरी साहित्य में मांस भक्षण सिद्ध हो जाने पर लोग मांस भक्षण करने लगेंगे, यह एक निर्बल विचार है। किसी दोष का मूलोच्छेद करने के लिये ऐसे भयों की आशंका करना कायरता है। आपरेशन करने से जहां कुछ देर के लिये गंदा रक्त और मांस कम होजाता है वहाँ कुछ समय बाद उस से भी अधिक निर्दोष रक्त वहां फिर आ जाता है।

'साधारण जैनेतर जनता यह कहेगी कि जैनशास्त्रों में मांस विधान है' पं० दरबारीलालजी का यह लिखना उलटा है। इतर जनता मांसविधान का दूषण जैन समाज पर इस समय लगा रही है और इस त्रुटि को निकाले बिना आगामी समय में और भी अधिक लगावेगी। इन प्रक्षिप्त दोषों को हटा देने पर जैनसमाज पर कोई उङ्गली भी न उठा सकेगा।

'**हमारे सभी पूर्वज एक न एक दिन आखिर मांसभक्षी थे**' दरबारीलाल जी का यह लिखना उनकी एक असाधारण खोज है। उनके पूर्वज केवल उनके कान में कह गये हैं कि **हम सब पहले मांसभक्षी थे**। शायद डार्विन का विकासवाद दरबारीलाल जी के मस्तिष्क में जमकर बैठ गया है जिससे उन्हें प्राचीन समय से इस समय ज्ञान, आचरण उन्नत नज़र आता है। यदि पं० दरबारीलाल जी इस विकासवाद का सप्रमाण उपस्थित करें अथवा अपने पूर्वजों का मांसभक्षी इतिहास खोलकर रक्खे तो उनके मंतव्यका वज़न मालूम होवे।

दुःख तथा आश्चर्य है कि जैनसमाज के शान्त वायु मंडल में अशान्ति उत्पन्न करने के लिये स्वयं पं० दरबारीलाल जी की लेखनी निराधाररूप से **"द्रौपदी के पांच पति थे, फिर भी वह सती थी; भगवान मल्लिनाथ स्त्री थे, प्राचीन जैन मांस खाते थे"** आदि गंदे, अनुचित, सिद्धान्त-विरुद्ध

विषयों पर हवाई कल्पना या लचर युक्तियों के सहारे चलती है। वह उनको झगड़ालू साहित्य नहीं दीखता, किन्तु जैनधर्म की पवित्रता कायम करने की कारण भूत श्वेताम्बरमत समीक्षा उन्हें झगड़ालू साहित्य नजर आता है। यह निष्पक्ष दृष्टि है। आप श्वेताम्बर विद्यालय में अध्यापक हैं, इस कारण आप ऐसा न करें तो अच्छा है; क्योंकि इस दशा में आपका यह मुख्य कर्तव्य है कि इतिहास, युक्ति तथा सिद्धान्त बल से श्वेताम्बर समाज के सामने विचारने के लिये सत्य कथन रक्खें जिससे आपकी निष्पक्षता में सार मालूम हो अन्यथा आपकी रंगी हुई निष्पक्षता से विचारशील व्यक्ति कदापि भ्रम में नहीं आ सकता।

शास्त्रार्थ

जैनसंघ के टुकड़े कब, क्यों, कैसे हुए, इस विषय को सुलझाने के लिये जहां अनेक प्राचीन दिगम्बर श्वेताम्बर ग्रन्थकारों ने अपने अपने ग्रन्थों में अनेक रूप से प्रतिपादन किया है वहां आधुनिक विद्वानों ने भी ऐतिहासिक रूप से स्पष्ट करने के लिये इस विषय पर लेखनी चलाई है। स्वर्गीय श्रीमान् आचार्य आत्मानन्द जी तथा बा० पूरणचन्द्र जी नाहर आदि अनेक श्वेताम्बर विद्वानों ने तत्वनिर्णय प्रासाद आदि ग्रन्थों द्वारा इस विषय पर प्रकाश डाल कर यह सिद्ध किया कि जैन संघ का प्राचीन रूप वही था जो आज श्वेताम्बर सम्प्रदाय का है; दिगम्बर सम्प्रदाय अर्वाचीन है; आदि।

हमने भी इस विषय पर विचार करके जो सार तत्व समझा उसको जैनदर्शन में जैनसंघभेद नामक लेखमाला से प्रकाशित किया है। यह लेखमाला हमारे अनेक श्वेताम्बरी भाइयों को इस लिये खटकी है कि वह उनकी धारणा के विरुद्ध है। फिर इस समय श्वेताम्बरमत समीक्षा को साथ मिला कर हमारे कुछ मित्रों ने श्वेताम्बर समाज को हमारे प्रतिकूल भड़काया भी है। इससे कतिपय महानुभावोंका ध्यान इस लेखमाला की ओर भी अधिक गया है। इस कारण वे उस लेखमाला को ऐतिहासिक घटना की दृष्टि से न पढ़कर आक्षेप की दृष्टि से उसका अवलोकन कर रहे हैं। यह एक साधारण बात है कि किसी भी एक घटना को भिन्न २ मनुष्य अपने दृष्टिकोण अनुसार भिन्न भिन्न रूप में ग्रहण करते हैं। इस लेखमाला पर जिस तरह हमारे दिगम्बर, श्वेताम्बर भाइयों के भिन्न भिन्न रूप में बीसों प्रकार के विचार हैं, ठीक उसी प्रकार तत्वनिर्णयप्रासाद आदि ग्रन्थों के लेखों के विषय में भी हो सकते हैं। अस्तु!

खामगांव निवासी श्रीमान बालचन्द्राचार्य ने भी हमारी लेखमाला को आक्षेप की दृष्टि से अवलोकन किया है। इस कारण उन्होंने २९ मार्च के श्वेताम्बर जैन में संघभेद समीक्षा लेख द्वारा इस लेख माला को द्वेषवर्द्धक बतलाया है। यद्यपि आपकी यह भूल है, किन्तु आपने जिस निगाह से इसको देखा है संभव है उससे आपको ऐसा ही नजर आता हो।

आपने हमारी लेखमाला को असत्य सिद्ध करने के लिये लेखनी उठाई है यह एक हर्ष की बात है क्योंकि संभव है कि आपके लेख से हमको नवीन बातों पर विचार करने का अवसर मिले।

आपने अपने लेख में भद्रबाहुचरित्र को असत्य सिद्ध करने का साहस प्रगट करते हुए हमको उसकी सत्यता सिद्ध करने के लिये शास्त्रार्थ करने का चैलेंज दिया है।

तदर्थ निवेदन है कि यदि सचमुच आप निर्णय बुद्धि से इस विषय पर शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो हमको कोई आपत्ति नहीं; हम शान्ति प्रेम के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार हैं, आप मुलतान पधारिये, आपकी यहां उचित सेवा होगी और आपकी इच्छानुसार आयोजन हो सकेगा।

अन्यथा श्वेताम्बर जैन में आपकी लेखमाला चल ही रही है जिस समय आप एक प्रकरण समाप्त कर चुकेंगे उस समय हम उसका उत्तर लिखेंगे। आपके नाम के सामने आचार्य पदवी अंकित है, इस कारण अच्छा हो यदि आप भाषा समिति को आचरण में लाते रहें।

जैन संघ भेद

[गताङ्क से आगे]

[१७]

ओसवाल जाति

संघभेद की दिगम्बरीय कथा को असत्य सिद्ध करने के लिये हमारे अनेक श्वेताम्बर विद्वानों ने अपने ग्रंथों में ओसवाल जाति की प्राचीनता पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि "वीर सं० ७० में श्री रत्नप्रभसूरि ने राजपूतों को १८ जातियों को चमत्कार दिखलाकर जैनधर्म में दीक्षित किया। वीर सं० ७० का समय विक्रम सं० से ४०० वर्ष पहले का है। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु उससे लगभग एक सौ वर्ष पीछे हुए हैं। रत्नप्रभसूरि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ही माननीय आचार्य हुए हैं; दिगम्बर सम्प्रदाय की पट्टावलियों में कहीं भी उनका नामोल्लेख नहीं और न ओसवाल ही मूल में दिगम्बर मतानुयायी थे। समस्त ओसवाल जाति अपने प्रारम्भ समय से श्वेताम्बर सम्प्रदाय की अनुयायिनी रही है। अतः श्वेताम्बर सम्प्रदाय का अस्तित्व भद्रबाहु स्वामी से पहले का सिद्ध होता है; तदनुसार संघभेद की दिगम्बरीय कथा असत्य है।"

ओसवाल जाति के बनने की कथा महाजन वंशमुक्तावली, जैन सम्प्रदाय शिक्षा आदि श्वेताम्बरीय पुस्तकों में उल्लिखित है। महाजनवंशमुक्तावली के तीसरे से आठवें पृष्ठ तक इस कथा को यों लिखा है—

विक्रम संवत् से ४०० वर्ष पहले श्री भीनमाल नगरी के शासक भीमसेन पवार के उपलदेव, आसपाल, आसल नामक तीन पुत्र थे। राजकुमार उपलदेव ने दिल्ली के महाराजा साधु की आज्ञा लेकर ऊहड़, ऊधरण नामक अपने दो मंत्रियों के साथ ओसियां पट्टण नामक नगर बसाया, जिसमें चारों वर्ण के चार लाख घर थे; सवा लाख घर केवल राजपूतों के थे। वहां की समस्त प्रजा

और राजा वाममार्ग के अनुयायी थे; सच्चाय देवी के भक्त और मांस मदिरा का खान पान करते थे ।

उस समय केशिकुमार गणधर के पोते शिष्य, भगवान पार्श्वनाथ के छठे पट्टधारी श्री रत्नप्रभसूरि श्रुतिकेवली थे। वे अपने ५०० शिष्यों के साथ विहार करते हुए आबूपर्वत पर आये। वहां चातुर्मास करके जब वे विहार करने लगे, तब उस तीर्थ की अधिष्ठात्री अंबा देवी ने गुरु जी से प्रार्थना की कि आप मरुदेश (मारवाड़) में पधारें । रत्नप्रभसूरि ने उत्तर दिया कि मारवाड़ के मनुष्य माँस भक्षी हैं, वहाँ हमको शुद्ध आहार नहीं मिलेगा। तब देवी ने कहा कि आपके पधारने से उनको धर्मलाभ होगा और वे अभक्ष्य खान पान छोड़ देंगे। रत्नप्रभसूरि ने देवी की बात मान कर संघ के पाँच सौ साधुओं को गुजरात भेज दिया और अपने साथ केवल एक साधु रखकर ओसियां पट्टण विहार कर गये ।

वहां किसी देवस्थान में मासक्षपण तप धारण कर ठहर गये। उनका शिष्य अपने लिये गोचरी को जाता किन्तु वहाँ नियमानुसार शुद्ध आहार न मिलने से यों ही लौट आता था। तब उसने एक गृहस्थ का रोग औषध से मिटा कर उसके घरसे भोजन लिया। रत्नप्रभसूरि ने अपने शिष्य को उस अयोग्य बात को जान कर उसको फटकारा, तब शिष्य ने कहा कि महाराज इस नगर में ४२ दोष रहित आहार न मिलने से मैं ने दूषित आहार लिया है। यह सुनकर रत्नप्रभसूरि वहाँ पर शुद्ध भोजन मिलने का अभाव देखकर वहा से अन्यत्र विहार करने के लिये तैयार हुए।

उस समय वहां की सच्चाय देवी ने विचारा कि ऐसे तपस्वी ऋषि यहां पर शुद्ध भोजन न मिलने के कारण यहाँ से जा रहे हैं, इससे बढ़कर इस नगर के लिये अमंगल (दुख आपत्ति) की और कौनसी बात हो सकती है। यह विचार कर वह रत्नप्रभसूरि के पास आ प्रत्यक्ष होकर बोली कि गुरुदेव! आपको यहाँ से जाना उचित नहीं। आप यहाँ की प्रजा को लब्धि मंत्र से धर्मशिक्षा दीजिये।

रत्नप्रभसूरि ने कहा कि साधु यदि बिना कारण लब्धि फिरावे तो दंडनीय होता है।

देवी ने उत्तर दिया कि तीर्थङ्करों की आज्ञा है कि साधुघाती तथा जिनधर्म निन्दकों को पुलाक साधु लब्धि बल से समाप्त कर दे। विष्णुकुमार मुनि ने बलीब्राह्मण को ऐसा ही प्राणान्त दंड दिया था; इत्यादि। आप भी धर्मरक्षा के लिये लब्धि फिरावें। जिस काम में थोड़ी हानि और लाभ अधिक हो वह कार्य श्रावक और साधु को करना चाहिये।

देवी की बात रत्नप्रभसूरि के हृदय में बैठ गई, तब उन्होंने अपने शिष्य को नगर में भेजकर वहाँ से एक रुई की पौनी मंगवाई। फिर दशवें पूर्व विद्यानुवाद में लिखे हुए मंत्र से उस रुई की पौनी का सर्प बना दिया और उस सर्प को रत्नप्रभसूरि ने आज्ञा दी कि जाओ, जिस ढंग से इस नगर में दयाधर्म की प्रवृत्ति हो जावे उस ढंग से कार्य करो।

वह रुई से बना हुआ सर्प वहाँ से चल कर राजसभा में पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने राजा उपलदेव के पुत्र को काट खाया। सभा के लोग जब उसको मारने दौड़े तब वह अदृश्य हो गया। राजपुत्र के शरीर में विष फैल गया जिससे वह तत्काल अचेत हो गया। उस सर्पविष को उतारने

के लिये राजा ने अनेक मंत्रवादी बुलाये किन्तु किसी से भी उसका विष दूर न हुआ। सारे नगर में हाहाकार मच गया; लोगों ने दुख से खाना पीना छोड़ दिया।

अन्त में राजपुत्र को मरा हुआ समझ कर लोग उसके शरीर को जलाने के लिये श्मशान ले चले। रास्ते में रत्नप्रभसूरि के शिष्य ने उस अर्थी को रोका और लोगों से कहा कि इसे मेरे गुरु जी के पास ले चलो; वे इसका विष दूर करके इसको जीवित कर देंगे। यह बात सुनकर राजा उपलदेव तथा प्रजा को कुछ धैर्य आया और वे राजपुत्र के शरीर को लेकर शिष्य के पीछे पीछे रत्नप्रभसूरि के पास चले।

रत्नप्रभसूरि के पास पहुंच कर राजा ने रोते हुए, गुरु के पैरों में शिर रखकर कहा कि मेरी वृद्ध अवस्था का यह पुत्र ही सहारा है, आप इसको जीवित कर दीजिये, मेरा परिवार तथा मेरी समस्त प्रजा आपकी आज्ञानुसार सेवा करेगी। प्रजा के लोगों ने भी साधु जी से गद्‌गद होकर ऐसी प्रार्थना की।

तब रत्नप्रभसूरि ने कहा कि यदि तुम समस्त लोग जैनधर्म स्वीकार करो तो यह राजपुत्र अभी सचेत हो जायगा।

राजा, प्रजा ने रत्नप्रभसूरि का कहना हृदयसे स्वीकार किया। तब रत्नप्रभसूरि ने योगविद्याबल से उस रुई की पौनी से बनाये हुए सर्प को अपने पास बुलाया और उसको विष चूसने की आज्ञा दी। सर्प ने राजपुत्र के जहाँ काटा था उसी स्थान से सारा विष चूस लिया और विष चूसकर फिर अदृश्य हो गया।

तब राजपुत्र सचेत होकर उठ बैठा और उसने अपने पिता से पूछा कि इस जंगल में इस रथी पर रख कर मुझे यहां क्यों लाये हो और इतने आदमी साथ क्यों आये हैं? राजपुत्र के सचेत हो जाने से राजा प्रजा सभी को बहुत आनन्द हुआ। राजाने पुत्र को छाती से लगाया और रत्नप्रभसूरि से कहा कि गुरुदेव! मेरा यह समस्त राजभंडार लेकर मुझे कृतार्थ कीजिये।

रत्नप्रभसूरि ने राजा से कहा कि हमने मुक्ति प्राप्त करने के लिये अपने पिता का ही राज्य स्वीकार नहीं किया तब इसकी हमको क्या आवश्यकता है। तुम यदि मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो जैनधर्म धारण करो, अभक्ष्यभक्षण छोड़ो, दया पालो, जैन मंदिर बनवाओ और उसमें अर्हन्त भगवान की मूर्ति विराजमान करके उसकी पूजा प्रतिष्ठा करो। ऐसा कहते हुए उन्होंने जैनधर्म का उपदेश दिया।

रत्नप्रभसूरि का उपदेश सुनकर सच्चाय देवी ने मिथ्यात्व त्याग कर सम्यक्त्व धारण किया तथा उस नगर के सवा लाख राजपूतों ने तथा राजा उपलदेव ने जैनधर्म स्वीकार किया। इस बात को सुनकर भीनमाल के राजा आमल ने भी जैनधर्म स्वीकार किया।

भीनमाल तथा ओसियापट्टण में वहाँ के राजाओं ने भगवान महावीर के मंदिर बनवाये उन मंदिरों की प्रतिष्ठा एक दिन एक ही समय एक ही मुहूर्त में रत्नप्रभसूरि ने अपने दो रूप बना कर की।

जिन सवा लाख राजपूतों को रत्नप्रभसूरि ने जैनधर्म की दीक्षा दी उन की जाति का नाम ओसिया के नाम पर ओसवाल रक्खा गया। उनके

गोत्रों के नाम पलट कर दूसरे नवीन नाम रक्खे; राजा उपलदेव पमार का गोत्र श्रेष्ठी (सेठी) स्थापित किया। उन ओसवाल राजपूतों के १८ पुरातन गोत्रों के नाम बदल कर निम्न लिखित नाम रक्खे गये :--श्रेष्ठी, तातेड़, बाफणा, कर्णावट, बलाहा, मोरख, कुलहट, विरहट, श्रीश्रीमाल, संचेति, आदित्यनाग, भूरि, भद्र, चिंचट, कुंमड, डिड्ड, कन्नौजिया, लघुश्रेष्ठी। आगे चलकर इन गोत्रों की औषध देकर रोग अच्छा करने आदि निमित्तों से वैद आदि सैकड़ों शाखाएं हो गई।

[क्रमशः]

बाहुबलि की प्रतिमाएं गोम्मट नाम से क्यों कही जाती हैं ?

[इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, जिल्द ४ थी, नं० २ सन् १९२८, पृष्ठ २७० में प्रकाशित श्री गोविन्द पै के लेख का अनुवाद]

[अनुवादकः—श्रीमान जगदीश चन्द्र जी जैन M. A.]

[गताङ्क से आगे]

इसके अतिरिक्त, चामुण्डराय स्वयं, मूर्ति पर के तीन शिलालेखों में अपने को "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" नहीं कहते। ये शिलालेख निःसन्देह उन्हीं के आदेशानुसार खोदे गये हैं जो निम्न रूप में हैं:—

(क) नं० १७५ "श्री चामुण्डराय ने बनवाया" (क्या और कब इसका उल्लेख नहीं है) और यह शिलालेख प्राचीन कनाड़ी भाषा और कनाड़ी अक्षरों में है।

(ख) नं० १७६ "श्री चामुण्डराय ने बनवाया" (क्या और कब यह नहीं बताया गया है) इस शिलालेख की भाषा तामिल है, लेकिन पहिले दो शब्द "ग्रन्थ" नामक लिपि में हैं और अन्त के "वट्टेलुट्टु" नामक लिपि में हैं।

(ग) नं० १७९ "श्री चामुण्डराय ने बनवाया" (क्या और कब यह नहीं लिखा है) यह शिलालेख नागरी लिपि और मराठी भाषा में है।

मूर्ति के स्थापन में प्राचीनतः उल्लेखों का कथन करने वाले ये तीनों शिलालेख स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मूर्ति "गोम्मट" अथवा "गोम्मटेश्वर" नाम से नहीं कही जाती थी। तथा मूर्ति स्थापन के समय न चामुण्डराय का ही ऐसा कोई नाम था।

इसलिये यदि स्थापन के समय और संभवतः सन ९९३ तक * मूर्ति अथवा मूर्ति के संस्थापक

* देखो इस लेख का पूर्वांश ("जैन दर्शन" अङ्क १७)

चामुण्डराय "गोम्मट" अथवा "गोम्मटेश्वर" नहीं कहे जाते थे तो फिर मूर्ति का नाम "गोम्मट" अथवा "गोम्मटेश्वर" और चामुण्डराय का "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" किस समय पड़ा ?

श्रमण बेलगोला के शिलालेखों (एपी ग्राफिका कर्णाटिका, जिल्द २ री, इन्डेक्स पृष्ठ १३) की सूची पर एक दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि उनमें से कितने लेख "गोमट", गोमट देव", "गोमटेश", "गोमटेश्वर", "गोम्मट जिन", "गोम्मट-नाथ" आदि नामों से मूर्ति का उल्लेख करते हैं। इस नाम का सर्व प्रथम उल्लेख करने वाले नं० ७३ और १२५ के लेखों में (सन् ११९८) "गोम्मटदेव" आता है तथा ये दो लेख "गोम्मट राय" के ठीक २ छद में बैठने पर भी चामुण्डराय को "गोम्मटराय" उल्लेख न करके, उसे पूर्वकाल के "गङ्गवंश के राय" के रूप में उल्लेख करते हैं। इससे मुझे यह सारांश निकालने का प्रलोभन होता है कि मूर्ति "गोम्मट" अथवा "गोम्मट देव" के रूप में पहिले ही प्रसिद्ध थी जबकि चामुण्डराय का इस तरह का कोई नाम होना नहीं पाया जाता; और यदि कोई था भी तो वह बिलकुल भुलाया जा चुका था। मूर्ति को "गोम्मटजिन" "गोम्मटदेव" "गोम्मट नाथ" "गोम्मटेश्वर" तथा केवल "गोम्मट" के नाम से उल्लेख करने वाले श्रमण बेलगोला के २३४ नं० के शिलालेख, चामुण्डराय को भी "गोम्मट" * कहते हैं। लेकिन ये सब शिलालेख चामुण्डराय तथा उसके मूर्ति स्थापन के समय से बहुत पीछे के हैं। इसलिये हमें इससे भी प्राचीन और समकालीन उल्लेखों को देखना है।

चामुण्डराय का "गोम्मट" अथवा "गोम्मट राय" के रूप में उल्लेख, सबसे पहिले प्राकृत ग्रन्थ "पञ्चसंग्रह" अथवा "गोम्मटसार" में उपलब्ध होता है। यह ग्रंथ "नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती" ने चामुण्डराय के लिये उसे लक्ष्य करके लिखा है † ।

यद्यपि गोम्मटसार की रचना का समय ज्ञात नहीं है, लेकिन इसमें कोई विवाद नहीं है कि "नेमिचन्द्र" के चामुण्डराय से परिचित होने तथा उसके गुरु बनने के पहिले यह नहीं रचा गया है। "गोम्मटसार" के टीका कार "अभयचन्द्र" लिखते हैं कि यह ग्रन्थ 'नेमिचन्द्र' ने चामुण्डराय के अध्ययन तथा ज्ञान प्राप्ति के लिये, तथा स्वयं चामुण्डराय द्वारा किये हुये प्रश्नों के उत्तररूप में लिखा है ‡ । क्योंकि "रन्न" कवि और "नागवर्मन" दोनों चामुण्डराय का "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" नाम से उल्लेख नहीं करते। इसलिये यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि नेमिचन्द्र ने "गोम्मटसार" को सन् ९९३ के पश्चात् ही रचा है। इसके पश्चात्, नेमिचन्द्र के प्रधान शिष्य और इसलिये चामुण्डराय तथा नेमिचन्द्र के सम-

*—(१) इस प्रकार गोम्मट (चामुण्डराय) ने इस भगवान (बाहुबलि भगवान की प्रतिमा) को निर्मित करवाया। (२) क्या मनु की बराबरी करने वाले ये चामुण्डराय उर्फ गोम्मट नहीं थे जिन्होंने इस भगवान (बाहुबली भगवान की प्रतिमा) को बहुत परिश्रम द्वारा तैयार कराया !

†—गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा ९६८, ९६९, ९७१ तथा ९७२

‡—देखो द्रव्य संग्रह (सैक्रेड बुक्स ऑफ दि जैन्स जिल्द १ ली की भूमिका पृष्ठ ४०)

कालीन माधवचन्द्र, नेमिचन्द्र के दूसरे प्राकृत ग्रंथ "त्रिलोकसार" की टीका में त्रिलोकसार को भी चामुण्डराय को ज्ञान प्राप्ति के अर्थ रचा हुआ बताते हैं †। यहां चामुण्डराय "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" के नाम से नहीं कहे गये हैं। अतएव नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार की रचना के पूर्व ही त्रिलोकसार की रचना की, यह सारांश अयुक्ति सङ्गत नहीं है।

त्रिलोकसार की पहली गाथा से भी इसकी पुष्टि होती है। नेमिचन्द्र और चामुण्डराय के समकालीन माधवचन्द्र इस गाथा पर टीका करते हुए लिखते हैं कि इस गाथा के कई अर्थों में से एक अर्थ गुरु नेमिचन्द्र के लिये चामुण्डराय की प्रार्थना को द्योतित करता है—"वे नेमिचन्द्र कैसे हैं जिनके चरणों में चामुण्डराय और राजा रायमल्ल दोनों नमस्कार करते हैं"। एक समकालीन व्यक्ति का उक्त उल्लेख यह सिद्ध करने को पर्याप्त है कि नेमिचन्द्र केवल चामुण्डराय ही के नहीं बल्कि राजा रायमल्ल के भी गुरु थे। इसके आगे प्रारंभ की गाथा में राजा रायमल्ल का नेमिचन्द्र के चरणों में नमस्कार करने का उल्लेख भी यह प्रमाणित करने को कम पर्याप्त नहीं है कि नेमिचन्द्र ने त्रिलोकसार अवश्य ही राजा के जीवित रहते हुए ही अर्थात् सन ९८४ से पहिले (क्योंकि राजमल्ल चतुर्थ ने सन् ९७४ से ९८४ तक राज्य किया था) लिखा है, क्योंकि चामुण्डराय त्रिलोकसार में कहीं भी "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" के नाम से नहीं कहे गये हैं। इस लिये यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि चामुण्डराय का सन् ९८४ के पीछे (जब राजमल्ल की मृत्यु हुई) यह नाम पड़ा।

अब, नेमिचन्द्र चामुण्डराय के सम्पर्क में कब आये और कब उसके गुरु बने, इस प्रश्न की चर्चा के पूर्व हमको अपना ध्यान "चामुण्डराय" और "रायमल्ल' के दूसरे तथा पहिले के गुरु की ओर ले जाना है। ये गुरु 'बंकापुर" * के प्रसिद्ध "अजितसेन" के अतिरिक्त और कोई नहीं थे, क्योंकि ये ही श्रवणबेल गोला की प्रतिष्ठा के समय उपस्थित थे, नेमिचन्द्र नहीं।

(१) ये अजितसेन, "मारसिंह", "रायमल्ल" और "रक्कसगङ्ग" गङ्गवंश के क्रमागत इन तीनों राजाओं के गुरु थे। इनमें से मारसिंह का तप करते हुए, बङ्कापुर ‡ में अजितसेन के चरणों में स्वर्ग सिधारना कहा जाता है।

(२) रन्न कवि भी "अजितपुराण" में उन्हें, अपने तथा गङ्गराजाओं के गुरु होने का उल्लेख करते हैं (१—७)। इसके आगे, इसी काव्य में कवि अजितसेन और चामुण्डराय के नाम को मिला देते हैं और चामुण्डराय को अपना हितैषी

† त्रिलोकसार पृष्ठ २

* यह स्थान बम्बई प्रेसीडेन्सी में धारवाड़ जिले के अन्तर्गत है। यह विशेषकर दिगम्बरों के "सेन" सम्प्रदाय का केन्द्र मालूम देता है, क्योंकि इसी स्थान पर महान जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र रहे थे और उन्होंने आदिपुराण और उत्तर पुराण की रचना की थी। बंकापुर में जैन मन्दिरों का एक बड़ी संख्या में होना मालूम देता है। इनमें से कुछ मन्दिरों का जीर्णोद्धार 'हाय्सल" वंश के नरसिंह प्रथम राजा के प्रधान सेनापति "हुल्ल" ने कराया था।

‡ श्रमण बेलगोला का शिलालेख नं० ५९ (सन ९७४)

कहते हैं (१३—४८)। इसी काव्य के प्रत्येक सर्ग की प्रशस्ति में वे अपने को अजितसेन का शिष्य कहते हैं।

(३) अजितसेन, चामुण्डराय के आश्रित दूसरे कनाड़ी कवि नागवर्मन् के भी गुरु थे। नागवर्मन् अपने "छन्दोऽम्बुधि" में कहते हैं—"रक्कस नृपति मेरे राजा हैं, प्रसिद्ध अजितसेन मेरे गुरु हैं, तथा चामुण्डराय मेरे हितैषी संरक्षक हैं"।

(४) कनाड़ी ग्रन्थ चामुण्डरायपुराण की प्रशस्ति में चामुण्डराय अपने को अजितसेन ‡ का शिष्य कहते हैं।

(५) श्रमण बेलगोला के १२१ नं० के शिलालेख के (सन ९९५ के लगभग) अनुसार अजितसेन, चामुण्डराय के पुत्र "जिनदेवन" के भी गुरु मालूम होते हैं।

(६) स्वयं नेमिचन्द्र गोम्मटसार † में कहते हैं कि अजितसेन चामुण्डराय के गुरु थे।

(७) दिगम्बरों के "सेन" सम्प्रदाय की पट्टावली अजितसेन को चामुण्डराय का गुरु उल्लेख करती है (जैनसिद्धान्त भास्कर, प्रथम किरण, पृष्ठ ३८)॥।

ये सब, तथा मूर्ति और उसके स्थापन के ऊपर रचे हुए विभिन्न ग्रन्थों की परम्परा, कमसे कम इसका पर्याप्त रूप से अवस्थाघटित (Circumstantial) प्रमाण है कि श्रमण बेलगोला की मूर्ति की स्थापना के समय, चामुण्डराय के निवास स्थान पर अजितसेन ही उपस्थित थे, नेमिचन्द्र नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि मूर्ति स्थापन के पश्चात् ही अथवा अधिक से अधिक मूर्ति स्थापन के समय, चामुण्डराय नेमिचन्द्र के परिचय में आये। क्योंकि यह विश्वास करना अयुक्ति संगत नहीं है कि सूचना पाकर तथा असाधारण धार्मिक उत्सव से आकृष्ट होकर वहां बहुत से जैन साधु और जैन गृहस्थ आये हों तथा इसी समय नेमिचन्द्र ने भी इस कार्य में कोई हाथ बटाया हो—अवश्य ही अजितसेन के निम्न पदस्थ होकर।

[क्रमशः]

‡ चामुण्डराय के संस्कृत ग्रन्थ "चारित्रसार" की प्रशस्ति में भी अजितसेन को चामुण्डराय का गुरु कहा गया है।

† देखो जीवकाण्ड गाथा ७३३ और कर्म काण्ड गाथा ९६६

॥ इस वाक्य में स्पष्ट रूप से मतभेद है, क्योंकि चामुण्डराय दक्षिण तैलग देश के और कर्णाटक के अधिपति नहीं थे, बल्कि दक्षिण कर्णाटक में शासन करने वाले गंगवंश के राजाओं के मन्त्री तथा सेनापति थे। तथा अजितसेन को गुणभद्र से आठ गुना ऊंचा पद देना ठीक नहीं, क्योंकि चामुण्डराय के समकालीन अजितसेन ईसा की दशवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में मौजूद थे, जबकि गुणभद्र का समय, जैसा उत्तर पुराण के एक श्लोक से मालूम होता है नवमीं शताब्दी का अन्त है। अतएव चामुण्डराय के गुरु और श्रमणबेलगोला मूर्ति के प्रतिष्ठाचार्य अजितसेन गुणभद्र के पहिले नहीं हुए और इस प्रकार पट्टावली में दिया हुआ क्रमागत क्रम (Order of Succession) ठीक ही है। चामुण्डराय की तरफ़ से अजितसेन द्वारा मूर्ति स्थापन की बात के ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन और जैन समाज

[लेखक—पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, बनारस]

सच्चे राष्ट्रप्रेमियों की दृष्टि में कांग्रेस का जितना महत्व है, हिन्दी भाषा भाषियों में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का भी उतना ही महत्व है। आज भारत वर्ष में हिन्दी की जो प्रगति देखने में आती है उसका श्रेय उक्त सम्मेलनको ही प्राप्त है। इस वर्ष देहली में इसका वार्षिक समारोह मनाया गया। वीर-जयन्ती में सम्मिलित होने के लिये मैं देहली गया था। अतः २६ मार्च को प्रातःकाल दर्शन परिषद में सम्मिलित होने का अवसर मिला। सभापति थे महामहोपाध्याय पं० गिरधार शर्मा चतुर्वेदी। इसमें शक नहीं कि आप एक उच्च कोटि के विद्वान् और सफल वक्ता हैं। आपका भाषण बड़ा सरस और कई दृष्टिओं से महत्वपूर्ण भी था, किन्तु था साम्प्रदायिकता को लिए हुए। आपने बतलाया कि दर्शन शास्त्र का प्रादुर्भाव क्षत्रियों* से हुआ है।

जैनधर्म की ओर से पं० चम्पतराय जी बैरिस्टर का भी भाषण हुआ था; अस्तु। यहां हमें इतना ही कहना है कि जैनसमाज प्रत्येक कार्य क्षेत्र में आज तक भी पीछे रहता आया है। उसकी आन्तरिक दशा पर कहां तक आंसू बहाय। शिक्षित अर्द्धशिक्षित और अशिक्षित सब एक ही नाव पर सवार हैं। कुछ लोग सामाजिक कार्यों में व्यस्त हैं, किंतु अधिकांश शिक्षित (विशेषतया पंडितजन) जो परिस्थितिवश सामाजिक झगड़ों से अपने को दूर रखनेका प्रयत्न करते हैं—अपना समय व्यर्थ गंवाते हैं। ये महानुभाव यदि साहित्य को अपने जीवन का कार्य क्षेत्र बनाले तो जैनसमाज में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जाये, और उन्हें कुछ आर्थिक लाभ भी हो सके। जैन समाज की उन्नति और जैनधर्म प्रचार के लिये हमें प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिये। क्या हिन्दी भाषा भाषी जैन विद्वान हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण नहीं कर सकते। हमें अच्छा कवि, योग्य लेखक और उच्च-कोटि का अध्ययन शील विद्वान् बनने की आवश्यकता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभामंच पर किसी कुशल जैन विद्वान का न होना हमें बड़ा अखरता है।

यह तो रही सम्मेलन की बात। एक अभाव—जिसने मेरे मर्म स्थान पर आघात किया—बड़ा ही हृदय विदारक था। सम्मेलन की ओर से एक साहित्यिक प्रदर्शनी का प्रबन्ध किया गया था। प्रदर्शनी के संयोजक थे पं० चन्द्रशेखर शास्त्री। आपने पुराने हस्त लिखित ग्रन्थों के संग्रह करने के लिये भारत का भ्रमण किया था। बनारस भी आये थे। जैन विद्यालय में आपसे भेंट भी हुई। मैं ने प्राचीन जैन ग्रंथों को प्रदर्शनी में रखने का आग्रह किया। आप भी इच्छुक थे, किन्तु समय कम होने

* जैन तीर्थंकर क्षत्रिय थे हो। ले०।

तथा शास्त्र भंडारों के मालिकों की धींगाधींगी के कारण आप अपनी इच्छा पूरी न कर सके। मैं प्रदर्शनी देखने गया तो एक भी जैन ग्रंथ या जैन समाचार-पत्र का नामोनिशान न था। प्रचार के ऐसे सुन्दर अवसर बार २ नहीं आते।

मन्नूलाल पुस्तकालय गया के पुस्तकालयाध्यक्ष कई सौ बहुमूल्य हस्त लिखित ग्रन्थ लेकर स्वयं प्रदर्शनी में उपस्थित हुए थे। महाराज किशनगढ़ के पुस्तकालय से भी बहुत सी सचित्र हस्त लिखित पुस्तकें आई थीं, जो कई दृष्टियों से दर्शनीय थीं। अनेक ग्रन्थ, ताड़पत्रों पर लिखे हुए थे। गया पुस्तकालय की पुस्तकों में कुछ पुस्तकें केले के गाफ़ पर लिखी हुई थीं। सचित्र भगवत गीता तथा भागवत दशमस्कन्ध के चित्र बड़े मनोहर थे। सोमप्रयोग नामक एक प्राचीन पुस्तक रूपवाई नामक एक स्त्री लेखक की लिखी हुई थी, जिसपर उसे ८००) पारितोषिक मिला बतलाया जाता है।

किशनगढ़ दरबार की पुस्तकों में फ़िरदोसी का शाहनामा एक अलभ्य ग्रन्थ समझा जाता है। आठसौ वर्ष बीत जाने पर भी इसके चित्र और अक्षर ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। समाचारपत्रों का संग्रह दिलचस्पी के साथ नहीं किया गया। यहाँ वहाँ से जो पत्र मिल गया-प्रदर्शनी में दाखिल कर दिया गया। हमारे मत से हिन्दी के वर्तमान काल के प्रारम्भ से आजतक जो समाचार पत्र प्रकाशित हुए और बन्द होगये, उन सबका भी संकलन होना आवश्यक था। इससे समाचार पत्रों के क्रमिक विकास पर प्रकाश पड़ता और दर्शकगण कुछ नवीन विचार लेकर प्रदर्शनी से निकलते।

जैनसमाज की गिरी दशा होने के कारण, अपने देश के साधारण व्यक्तियों पर भी उसका अच्छा प्रभाव नहीं है, ऐसी दशा में हमें स्वयं ही सार्वजनिक प्रचार के क्षेत्रों में पदार्पण करना चाहिए। जब जनता हमारे साहित्य में दिलचस्पी लेने लगेगी तब हमारे लिये प्रचार और सेवा का मार्ग सुलभ होजायगा।

[२०]

केवली के केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञान न मानने में दरबारीलाल जी ने अन्तिम आपत्ति भोजन के अभाव की उपस्थित की है। आपका कहना है कि यदि केवली में इन्द्रिय ज्ञान न माना जायगा तो वह भोजन भी न कर सकेंगे। आपने इसके सम्बन्ध में निम्न लिखित शब्द लिखे हैं:—"यदि केवली के केवलज्ञान के सिवाय अन्य ज्ञान न माने जायं तो केवली भोजन भी न कर सकेंगे, क्योंकि आँखों से देखे बिना भोजन कैसे किया जा सकता है? केवलज्ञान से भोजन देखेंगे तो केवलज्ञान से तो त्रिकाल त्रिलोक के पवित्र अपवित्र अच्छे बुरे सब पदार्थ दिखते हैं। इसलिए अमुक भोज्य पदार्थ की तरफ उनका उपयोग कैसे लगेगा ?"।

विद्वान लेखक ने इससे अगाड़ी इसही विषय के सम्बन्ध में एक प्रश्न भी उपस्थित किया है। प्रश्न का भाव यह है कि केवली के भोजन का होना श्वेताम्बरियों ने माना है। दिगम्बरी केवली को कवलाहारी स्वीकार नहीं करते; अतः इस आपत्ति का दिगम्बरियों पर कुछ भी प्रभाव नहीं है। इसका समाधान करते हुए आपने लिखा है कि यहां श्वेताम्बरी और दिगम्बरी का प्रश्न नहीं है। दोनों ही सम्प्रदाय भगवान की पूजा करते हैं। यदि केवली में इस प्रकार का अतिशय होता तो श्वेताम्बरियों ने भी अवश्य स्वीकार किया होता; आदि २।

अब विचारणीय यह है कि क्या केवली वास्तव में कवलाहारी हैं? इस बात के समर्थन में दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित बातें लिखी हैं:—

(१) केवली के कवलाहार की कल्पना पीछे की है।

(२) दिगम्बरी लोग भी क्षुधा परीषह, तृषा-परीषह तो मानते हैं। यदि केवली को भूख और प्यास लगती है तो वे भोजन क्यों न करते होंगे ?

(३) कोई मनुष्य जोकि जीवन भर भोजन करता रहा है किन्तु विशेष ज्ञानी हो जाने से देश देशान्तरों में विहार करता हुआ व्याख्यान आदि करता हुआ वर्षों और युगों तक भोजन न करे इस बात पर अन्ध श्रद्धालुओं के सिवाय और कोई विश्वास नहीं कर सकता।

(४) केवलज्ञान के इस कल्पित रूप की रक्षा के लिए भगवान के निद्रा का अभाव मानना पड़ा है और निद्रा को दर्शनावरण का कार्य कहना पड़ा है। जब कि ये दोनों बातें अविश्वसनीय और तर्क विरुद्ध हैं।

१.—केवली के कवलाहार की कल्पना पीछे

की है, इस बात के समर्थन में दरबारीलाल जी ने कोई युक्ति उपस्थित नहीं की, केवल इतना ही लिखकर छोड़ दिया है कि यदि केवली के इस प्रकार का अतिशय होता तो यह श्वेताम्बरियों ने भी अवश्य स्वीकार किया होता। किसी भी बात का वर्णन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लेखकों ने नहीं किया, अतएव वह वास्तविक नहीं और उसकी कल्पना बाद को की गई है—इस बात को दरबारीलाल जी ही स्वीकार करते हैं या यों कहिये कि इस प्रकार का विवेचन उनके लिए ही युक्तियुक्त हो सकता है। स्वतंत्र विचारक के लिए तो इसमें तनिक भी सार नहीं है। अतः दरबारीलाल जी का केवली के कवलाहार की मान्यता को कल्पित और उसकी कल्पना को बाद में की गई बतलाना निराधार और अतएव अमान्य है।

२—दिगम्बर लोग केवली के क्षुधा और तृषा परीषह किस प्रकार की मानते हैं, तथा उसका वहां क्या प्रभाव है इस बात का उल्लेख हम अपने १८ वे लेख में कर चुके हैं। विद्वान पाठकों को चाहिये कि वे यह बात वहां से देखने का कष्ट उठावें।

यहां दरबारीलाल जी का लिखना कि "यदि केवली को भूख और प्यास लगती है तो वह भोजन क्यों न करते होंगे" ठीक नहीं। केवली को भूख और प्यास नहीं लगती, ऐसा तो तब स्वीकार किया जा सकता था जबकि उनमें परीषहों का वास्तविक अस्तित्व होता। केवली में तो ये उपचार से ही स्वीकार की गई हैं। दूसरी बात यह है कि ऐसा होने पर केवली के अनन्त सुख में भी बाधा आती है। तीसरी बात यह है कि इस बात के स्वीकार करने पर केवली को अनन्त बली भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा होता तो केवली के अन्तराय कर्म का अभाव न हुआ होता। अतः दरबारीलाल जी का इस आधार से भी केवली को कवलाहारी सिद्ध करना मिथ्या है।

३—चलते समय या बैठते समय हमारे शरीर में क्रिया होती है, इससे हमारे शारीरिक बल में न्यूनता आती है; अतः हम भोजन करते हैं। भोजन से हमको दो प्रकार के तत्व मिलते हैं—एक शरीर की शक्ति की न्यूनता को दूर करने वाले और दूसरे शरीर में वृद्धि करने वाले। शरीर में वृद्धि एक नियमित समय तक होती है, किन्तु शारीरिक बल की न्यूनता का अभाव शारीरिक स्थिति के अन्त समय तक होता है। इस ही बात से हम इस परिणाम तक पहुँच जाते हैं कि जो देश देशान्तर विहार करते हैं उनके लिए भोजन अनिवार्य है।

जिस प्रकार के साधन के साथ साध्यका अविनाभाव निश्चित होता है उसही प्रकार के साधन से उस साध्य की सिद्धि हो सकती है। धूम के साथ अग्नि का अविनाभावी सम्बन्ध है, किन्तु वह धूम एक भिन्न प्रकार का है। हर एक धूम से आग को सिद्ध नहीं किया जासकता। यदि ऐसा होता तो गोपाल घटिका की धूम से भी अग्नि सिद्ध हो जाती। यही बात प्रकृत साध्य साधन के सम्बन्ध में है। जिस प्रकार का देश-देशान्तर-विहार शक्ति की न्यूनता का कारण है या वहां मिलता है उसही प्रकार के विहार से भोजन का अस्तित्व माना जा सकता है।

केवली में देश देशान्तर विहार अवश्य है, किन्तु वह इस प्रकार का विहार नहीं जिसके

आधार से उनमें भोजन का अस्तित्व मानना अनिवार्य हो! केवली चलते समय हमारी तरह पैर उठाकर नहीं चलते, किन्तु तपो विशेष से उनमें जो एक ऋद्धि पैदा हो चुकी है उससे वे बग़ैर शारीरिक अवयवों को हिलाये भी गमनागमन कर सकते हैं।

यदि केवली का गमन हमारी ही तरह होता या यों कहिये कि उनको भी चलने में शारीरिक क्रियायें आवश्यक होतीं तब उनमें उससे शारीरिक शक्ति की न्यूनता और फिर उसके पूरा करने के लिए हमारी तरह आहार की बात पैदा हो सकती थी!

प्रश्न—केवली चलते समय अपने शरीर के अवयवों को बिना हिलाये ही चले जाते हैं, यदि आपकी इस बात को मान भी लिया जाय, तब भी केवली साँस तो लेते हैं। साँस लेने में भी शक्ति का ह्रास होता है; अतः इस दृष्टि से भी केवली में शारीरिक बल की न्यूनता और फिर उसके लिए भोजन का सद्भाव मानना ही पड़ेगा।

उत्तर—केवली साँस लेते हैं और उनकी इस क्रिया से उनके शारीरिक बल में न्यूनता भी आती है, किन्तु यह न्यूनता कवलाहार से ही दूर होती है, इसमें क्या प्रमाण है? जैन शास्त्र केवली को कवलाहारी का निषेध करके भी उनको आहारी मानते हैं। केवली के आहार का निषेध नहीं है, किन्तु आहार विशेष का निषेध है। आहार के छः भेद हैं। उनमें से एक कवलाहार भी है। केवली के कवलाहार न होने पर भी उनके नोकर्म आहार है। अतः इससे उनके शरीर में बिलकुल भी न्यूनता नहीं आने पाती ‡।

प्रश्न—इस प्रकार की शक्ति की न्यूनता कवलाहार से दूर होती है। यदि इसमें कोई प्रमाण नहीं है तो वह नोकर्माहार से ही दूर होती है, इसही में क्या प्रमाण है?

उत्तर—साँस लेने में शारीरिक शक्ति में ह्रास होता है यह भी एक मानी हुई बात है और वह दूर भी हो जाती है यह भी एक मानी हुई बात है। अब विचारणीय केवल इतना ही रह जाता है कि इस प्रकार का कार्य कवलाहार से होता है या नोकर्माहार से। यदि कवलाहार से इस कार्य को माना जायगा तो केवली के अनन्त सुख और अनन्त वीर्य का अभाव मानना पड़ेगा। कवलाहार के मानने पर केवली में भूख भी माननी पड़ती है। जहाँ भूख है वहाँ पीड़ा और शक्ति की न्यूनता भी। विवेकी बिना भूख के कवलाहार में प्रवृत्ति नहीं करता। ये बातें नोकर्माहार के सम्बन्ध में घटित नहीं होतीं। नो कर्माहार का ग्रहण बुद्धिपूर्वक नहीं होता, किन्तु वर्तमान कर्म के उदय और प्रतिबन्धक के अभाव से प्रति समय होता रहता है। अतः नोकर्माहार से ही प्रकृत कार्य होता है, यही मानना युक्ति संगत ठहरता है। यहाँ एक बात और भी उपस्थित की जा सकती है और वह है केवली में भूख को मानकर भी उसको केवल शारीरिक धर्म ही स्वीकार करना! यदि यह बात बिलकुल ठीक बैठ जाती तो इससे अनन्त सुख के अभाव की आपत्ति को केवली में स्थान न रहता,

‡ तत्रत्र कवलाहाराभावेऽप्यन्यस्य कर्म नो कर्मादान लक्षणस्याविरोधात्। षड्विधो ह्याहारः।

—प्रमेयकमल मार्तण्ड पृ० ८५।

किन्तु ऐसा है नहीं। भूख का प्रभाव यदि केवली के शरीर तक ही होता तो केवली को कवलाहार की क्या आवश्यकता थी? जिससे केवली की शान्ति ही भंग नहीं होती, उसके निराकरण के लिए उनमें प्रयत्न की कल्पना ही नहीं हो सकती थी।

दूसरी बात यह है कि यदि केवली की शारीरिक शक्ति का ह्रास था और इस के लिए उनको कवलाहार ज़रूरी होता तब भी वे ऐसा क्यों करते। जो मर नहीं सकता, जिसको अगाड़ी दुःख की सम्भावना नहीं, शरीर के छूट जाने पर सिद्ध हो जाना जिनके लिए अनिवार्य है, वर्तमान शरीर का सम्बन्ध जिनके लिए एक प्रतिबन्ध ही है या जिससे जो पूर्ण मुक्त नहीं हो पाते, उसकी रक्षा के लिए केवली प्रयत्न करते इसको कौन मान सकता है? दुनियां उन्नति की तरफ चलती है, कोई नहीं चाहता कि वह एक क़दम भी अवनति की तरफ या उसके लिए रक्खे; फिर केवली में ही इस बात को कैसे माना जा सकता है? क्या केवली का कवलाहार ग्रहण करके धीरे २ कम होने वाली शारीरिक शक्ति को पूरा करना उनके लिए उतने ही समय के लिए संसार का संरक्षक नहीं था?

इससे प्रगट है कि जब तक भी केवली शरीर में रहे, तब तक उन्होंने स्वयं शरीर की रक्षा के लिए प्रयत्न नहीं किये, किन्तु आयु कर्म और नोकर्माहार से उनके शरीर की रक्षा स्वयं होती रही †। अतः देश देशान्तर विहार या सांस लेने आदि के आधार से केवली को कवलाहारी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

देवगण जीवन पर्यन्त कवलाहार ग्रहण नहीं करते, फिर भी वे जीवित रहते हैं। औदारिक शरीरी भी गर्भावस्था में कवलाहारी नहीं, फिर भी उनके शरीर का परिवर्धन और संरक्षण होता है। बाहुबलि आदि महा पुरुषों का एक विशेष समय तक कवलाहार ग्रहण न करने पर भी शरीर की स्थिति जन प्रसिद्ध ही है। यही क्या, आजकल भी इस प्रकार के परीक्षण हो चुके हैं। प्राणायाम के सम्बन्ध में एक विद्वान ने, जिनका नाम वीकार्ट (Vierordt) था, अनेक परीक्षण किये और वे इस परिणाम पर पहुंचे कि ऐसी अवस्था में मनुष्य स्वाभाविक रीति से भूख के कष्ट से मुक्त रहता है ‡। इसही प्रकार के परीक्षण तप के सम्बन्ध में भी हुए हैं। इन सब का साक्षात या परम्परा प्रभाव प्रस्तुत विषय पर पड़ता है।

अतः स्पष्ट है कि केवली को कवलाहारी मानना निराधार ही नहीं, अपितु युक्ति और अनुभव के प्रतिकूल भी है।

---

† आयुः कर्मैव हि प्रधानं तत्स्थितेर्निमित्तम्। भुक्त्यादिस्तु सहायमात्रं। तच्छरीरोपचयोऽपि लाभान्तराय विनाशात् प्रति समयं तदुपचय निमित्त भूतानां दिव्य परमाणूनां लाभात् घटते।

—प्रमेय कमल मार्तण्ड पृ० ८५।

‡ A treatise on the Yoga Philosophy by N. C. Paul. Page 8—114.

चिर वैधव्य विधवा जीवन का उच्च आदर्श है।

["ज्ञान और कर्म" नामक पुस्तक से उद्धृत]

मूल प्रश्न यह है कि पुरुष चाहे जो करे, स्त्रियों के जीवन का उच्च आदर्श चिर वैधव्य पालन है कि नहीं?

इस प्रश्न का ठीक उत्तर देने के लिये यह आवश्यक है कि विवाह के उद्देश्यों पर दृष्टि रखी जाय।

विवाह का पहिला उद्देश्य यही है कि संयत भाव से इन्द्रिय तृप्ति, सन्तान उत्पन्न करना और उसका पालन पोषण करना। किन्तु विवाह का एक यही उद्देश्य नहीं है और न इसको श्रेष्ठ उद्देश्य ही कह सकते हैं। विवाह का दूसरा और श्रेष्ठ उद्देश्य है—दाम्पत्य प्रेम और अपत्य स्नेह से क्रमशः चित्त की सत्प्रवृत्तियों का विकास, उसके द्वारा मनुष्य की स्वार्थ परता का क्षय, परार्थ परता की वृद्धि और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करना। अगर पूर्वोक्त पहिला उद्देश्य ही विवाह का एक मात्र उद्देश्य होता तो संतान पैदा करने के पहिले पति-वियोग हो जाने पर दूसरे पति का ग्रहण करने में विशेष दोष न रहता। मगर हां, संतान पैदा करने के बाद द्वितीय पति ग्रहण करने से उस संतान के पालन पोषण करने में बाधा पड़ती है। अतएव उस अवस्था में चिर वैधव्य, केवल उच्च आदर्श क्यों, प्रयोजनीय भी होता। किन्तु विवाह के दूसरे उद्देश्य पर दृष्टि रखने से चिर वैधव्य पालन के ही उच्चादर्श होने में कोई संदेह नहीं रह जाता।

जिस पति-प्रेम का विकास क्रमशः पत्नी की स्वार्थपरता के क्षय और आध्यात्मिक उन्नति का कारण होगा, वह अगर पति के अभाव में लुप्त हो जाय, और अगर पत्नी अपने सुख के लिये उस पति प्रेम को अन्य पति में स्थापित करे तो फिर स्वार्थपरता का क्षय क्या हुआ? इसके उत्तर में कभी २ विधवा विवाह के अनुकूल पक्ष के मुख से यह बात सुन पड़ती है कि "जो लोग विधवा विवाह का निषेध करते हैं वे विवाह को केवल इन्द्रिय तृप्ति के लिये आवश्यक समझते हैं, और विवाह के उच्चादर्श को भूल जाते हैं। वास्तव में विधवा का फिर विवाह करना केवल इन्द्रिय तृप्ति के लिये कर्तव्य नहीं है। वह पति-प्रेम, अपत्यस्नेह आदि सब उच्च वृत्तियों के विकास के लिये कर्तव्य है"। उन लोगों का यह कथन बेशक विचित्र ही है। विधवा विवाह का निषेध विधवा की आध्यात्मिक उन्नति में बाधा डालने वाला है और विधवा विवाह की विधि उस उन्नति के साधन का उपाय है। यह बात कहां तक संगत है, देखना चाहिये। पति प्रेम जो है वह एक साथ ही सुख का आकर और स्वार्थ-परता के क्षय का उपाय है। किन्तु उसे वैषयिक भाव से सुख का स्थान समझ कर अधिक आदर करने से उसके द्वारा स्वार्थपरता के क्षय की अर्थात् आध्यात्मिक भाव के विकास की संभावना बहुत ही थोड़ी है।

विधवा के आध्यात्मिक भाव से पति-प्रेम के अनुशीलन के लिये दूसरे पति को ग्रहण करना निःप्रयोजन है, बल्कि उस पति प्रेम के अनुशीलन में बाधा डालने वाला है। उस विधवा ने प्रथम पति पाने के समय उसी को पति प्रेम का पूर्ण आधार समझकर उसे आत्म-समर्पण किया था। अतएव उसकी मृत्यु के बाद स्मृति मन्दिर में स्थापित उसकी मूर्ति को जीवित रखकर, उस के प्रति प्रेम का अविचलित रख सकने से वही निःस्वार्थ प्रेम का और आध्यात्मिक उन्नति का साधन होगा। उस दान का प्रतिदान अवश्य ही वह नहीं पावेगी, किन्तु उच्च आदर्श का प्रेम प्रतिदान चाहता भी नहीं। पक्षान्तर में विधवा यदि दूसरे पति से विवाह कर लेगी तो अवश्य ही उसके पति-प्रेम के अनुशीलन में भारी संकट आ पड़ेगा। जिस प्रथम पति को पति-प्रेम का पूर्ण आधार जान कर आत्म समर्पण किया था उसे भूलना होगा। उसकी हृदय में अंकित मूर्ति को वहाँ से निकाल देना होगा। और उस जो प्रेम अर्पण किया था वह उससे फेर कर अन्य पात्र को सौंपना होगा। ये सब कार्य आध्यात्मिक उन्नति के साधन में भारी बाधा डालने वाले होने के सिवा उसके लिये उपयोगी कभी नहीं हो सकते। यह सच है कि मृत पति की मूर्ति का ध्यान करके उसके प्रति प्रेम और भक्ति को अविचलित रखना अति कठिन कार्य है, किन्तु असाध्य या असुखकर नहीं है और हिन्दू विधवा का पवित्र जीवन ही उसका प्रशस्त प्रमाण है जो कि बहुतायत से देखने को मिल सकता है। मैं यह नहीं कहता कि सभी विधवायें चिर वैधव्य पालन में समर्थ हो सकती हैं या हैं। जो असमर्थ हैं उनके लिये देखने सुनने वालों का हृदय अवश्य ही व्यथित होता है। अगर वे दूसरा पति ग्रहण करलें तो मैं उन्हें मानवी ही कहूंगा, किन्तु जो विधवायें चिर वैधव्य का पालन करने में समर्थ हैं उन्हें देवी कहना होगा। और अवश्य उन्हीं के जीवन को विधवा के जीवन का उच्च आदर्श कहना चाहिये।

विधवाविवाह की प्रथा के अनुकूल और प्रतिकूल युक्तियाँ !

चिर वैधव्य को उच्च आदर्श स्वीकार करके भी अनेक लोग कहते हैं कि वह उच्च आदर्श सर्व साधारण विधवाओं के लिये अनुसरण योग्य नहीं है। सर्व साधारण विधवाओं के लिये विधवा-विवाह का प्रचलित होना ही उचित है। इस सम्बन्ध में जो अनुकूल युक्तियां हैं, उन्हीं की पहिले आलोचना की जावेगी।

इस आलोचना के पहिले ही कुछ बातें स्पष्ट करके कह देना उचित है। विधवा विवाह के बारे में अब तक जो कुछ मैं ने कहा है, वह हिन्दू शास्त्र की बात नहीं है, सामान्य युक्ति की बात है। यह कह देना भी आवश्यक है कि अब भी आगे जो कुछ आलोचना करूंगा वह केवल युक्ति मूलक आलोचना होगी; हिन्दू शास्त्र मूलक आलोचना न होगी। सुतरां यहां पर यह प्रश्न नहीं उठता कि विधवा विवाह कभी होना उचित है कि नहीं। चिर वैधव्य पालन उच्च आदर्श होने पर भी यह बात नहीं सोची जा सकती कि उस आदर्श के अनुसार सभी स्त्रियां चल सकेंगी, या चल सकती हैं। यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि

दुर्बल देहधारिणी मानवी के लिये प्रथम अवस्था में वैधव्य कष्टकर है। वह कष्ट कभी कभी, जैसे बाल वैधव्य की हालत में, मर्म विदारक होता है और विधवा के कष्ट से सभी के हृदय को व्यथा पहुँचेगी। जो विधवायें आध्यात्मिक बल के प्रभाव से उस कष्ट को कातर हुए बिना सहकर धर्मव्रत में अपना जीवन अर्पण कर सकती हैं, उनका कार्य अवश्य ही प्रशंसनीय है।

[अपूर्ण]

झाँसी-शास्त्रार्थ

झाँसी यू० पी० में एक कमिश्नरी है और बुन्देलखन्ड प्रान्त का यह खास स्थान है। यहां वृटिश गवर्नमेण्ट की छावनी भी है। छावनी के कारण ही यह दो भागों में विभाजित है—एक झांसी शहर और दूसरा झांसी छावनी। अभी कुछ दिन हुए जब छावनी में आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव हो रहा था। इस ही समय आर्यसमाज के एक प्रसिद्ध उपदेशक ने जैनधर्म के सम्बन्ध में कई अनुचित बातें कहीं और साथ ही यह भी कहा कि यदि जैनियों में अपने पक्ष की सत्यता सिद्ध करने की हिम्मत है तो हम उनको शास्त्रार्थ के हेतु निमंत्रित करते हैं।

आर्यसमाज के इस उत्सव में मैं भी उपस्थित था—मुझ से आर्यसमाज की यह अनुचित कार्यवाही सहन न हो सकी, अतः मैंने उनके इस चैलेञ्ज को उस ही समय स्वीकार कर लिया था। इसके बाद इस सम्बन्ध में दोनों तरफ़ से पत्र-व्यवहार चालू हो गया और निम्नलिखित बातें निश्चित हो गईं:—

(१) शास्त्रार्थ की तारीखें १७—१८ अप्रेल रक्खी जायें।

(२) शास्त्रार्थ के विषय, क्या जैन शास्त्र प्रमाणिक हैं और क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं—रक्खे जायें।

इस निश्चय के अनुसार शास्त्रार्थ ठीक १७ तारीख को शुरू होकर १८ को समाप्त हो गया। शास्त्रार्थ का समय रात के ८ बजे से ११ तक रहता था। सभापति का स्थान दोनों ही दिन आर्यसमाज की तरफ़ से पं० रामचन्द्र देहलवी ने और जैन समाज की तरफ़ से बा० अजित प्रसाद जी एडवोकेट लखनऊ ने ग्रहण किया था। पहिले दिन पूर्व पक्ष आर्यसमाज का था और उत्तर पक्ष जैन समाज का। इसही प्रकार दूसरे दिन पूर्व पक्ष जैन समाज का और उत्तर पक्ष आर्यसमाज का। आर्यसमाज की तरफ़ से पहिले दिन स्वामी कर्मानन्द जी और दूसरे दिन पं० देवेन्द्रनाथ जी सांख्यतीर्थ आचार्य गुरुकुल सिकन्दराबाद बोले थे। जैन समाज की तरफ़ से दोनों ही दिन दि० जैन शास्त्रार्थ संघ के महामंत्री पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ बोले थे।

पहिले दिन की जन संख्या २-२॥ हज़ार के अनुमान थी और दूसरे दिन की जन संख्या पांच

हज़ार से किसी तरह भी कम नहीं थी । झांसी छावनी और शहर के अतिरिक्त ग्वालियर, मुरार, कोलारस, मुँगावली, बीना, ललितपुर, रानीपुर, मऊ, चन्देरी, आगरा, बरुआसागर आदि के बहुत से जैनी और अम्बाले से शास्त्रार्थ संघ के संरक्षक ला० शिब्बामल जी जैन रईस भी इस शास्त्रार्थ को देखने आये थे, आये हुए जैनों की जन संख्या ४०० के करीब थी । पहिले दिन पूर्व पक्ष को उपस्थित करते हुए स्वामी कर्मानन्द जी ने बतलाया कि जैन शास्त्रों में परस्पर विरुद्ध, असंभव, अश्लील और अकल्याण की बातों के वर्णन मौजूद हैं, अतः उनको प्रमाण नहीं माना जा सकता । परस्पर विरोध के समर्थन में आर्यसमाज ने सीता का जन्म, रामचन्द्र के बनवास का वर्णन, और नक्षत्रों की ऊँचाई आदि बातें रक्खी थीं । इस ही प्रकार जैन शास्त्रों के कथनों में असंभवता प्रमाणित करने के लिये आर्यसमाज ने मलकृति की बात उपस्थित की थी और बतलाया था कि यह बात असंभव है कि साधुओं की टट्टी में सर्व रोग दूर हो जाते हैं । अश्लील कथन के समर्थन में आर्यसमाज ने भगवान नेमिनाथ की सत्यभामा के साथ होली खेलना लिया था । जैन शास्त्रों में कल्याण के उपदेश का अभाव है, अतः आर्यसमाज ने उनको अकल्याणक बतलाया था ।

इन बातों के अतिरिक्त आर्यसमाज ने एक बात यह भी उपस्थित की थी कि सर्व प्रथम तो यही बात विवादस्थ है कि जैन शास्त्र आप्त के उपदेश स्वरूप हैं । जैन शास्त्र सर्वज्ञ और हितोपदेशी को ही आप्त स्वीकार किया जासकता है । जैन शास्त्र आप्त का आज से दो हज़ार वर्ष तक अभाव बतलाते हैं । आजकल उपलब्ध जैन साहित्य इससे प्राचीन नहीं है, अतः उसको आप्तोपज्ञ भी नहीं माना जा सकता ।

पं० राजेन्द्र कुमार जी ने इन सब बातों का निराकरण करते हुए बतलाया कि दि० जैन सम्प्रदाय मूलसंघ के शास्त्रों को स्वतः और इतरसंघों के शास्त्रों को जहां तक वे मूल संघ के शास्त्रों का विरोध नहीं करते प्रमाण मानता है । महापुराण जिसमें आदिपुराण और उत्तर पुराण दोनों ही सम्मिलित हैं मूल संघ का शास्त्र है । शेष हरिवंश पुराण और पद्मपुराणादिक पुराण इतर संघों के हैं; अतः यदि इनके कथन और महापुराण के कथनों में कोई विरोध है तो वहां तक ये शास्त्र हमको प्रमाणीक नहीं । अतः पुराणों के आधार से विरोध की बातें निष्फल हैं ।

राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धिकार ने सूर्य और चन्द्रादिक की ऊंचाई का वर्णन एक ही गाथा के आधार से किया है जिसको दोनों ही आचार्यों ने उद्धृत करके अपने २ शास्त्रों में लिखा था । राजवार्तिक में गाथा के छपते समय या लिखते समय असावधानी की गई है, जिससे गाथा में कुछ अंतर हो गया है और उस ही के कारण नक्षत्रादि की ऊंचाई में भी अन्तर आ गया है । यह सब लेखक या सम्पादक की गलती है न कि शास्त्रकार की । शास्त्रकार की रचना का नाम शास्त्र है न कि लेखक या सम्पादक की कृति का । अतः इस बात के आधार से भी विरोध की गुंजाइश नहीं है । जैन शास्त्रों में विरोध प्रमाणित करने के लिये अन्य कोई बात आर्यसमाज ने उपस्थित की नहीं है, अतः आर्यसमाज का जैन शास्त्रों

में विरोध बतलाने का प्रयत्न करना बिल्कुल व्यर्थ है।

मलऋद्धि का तात्पर्य साधुओं की टट्टी से नहीं है किन्तु नाक, कान, आंख और दांतों के मैल से है। आर्यसमाज ने इस विषय को यदि गवेषणात्मक दृष्टि से देखा होता तो उससे इस प्रकार की गलती न हुई होती। राजवार्तिक में इसका विषद विवेचन है। अतः आर्यसमाज की यह बात ही निराधार है। नाक और कानों के मैल से बीमारियाँ दूर होती हैं इस बात को वैद्यक शास्त्रकारों ने भी माना है। अतः असंभव बात का वर्णन भी कहना मिथ्या है। अश्लीलता के लिये जिन बातों को उपस्थित किया है, उनसे ऐसा प्रमाणित नहीं होता। आर्य-समाज को चाहिये कि वह इन प्रकरणों के पं० दौलतराम जी के हिन्दी भाषान्तर को देखें। जैन शास्त्र कल्याण का उपदेश देते हैं, यही बात नहीं किन्तु उनका वर्णन उपदेश स्वरूप ही है। तत्त्वार्थ-सूत्र के पहिले सूत्र से ही कल्याण का उपदेश है; यही बात अन्य शास्त्रों के सम्बन्ध में है। अतः आर्यसमाज की यह बात भी मिथ्या है। वर्तमान जैन साहित्य भगवान महावीर के बाद का है, यह बात अवश्य सत्य है किन्तु उसकी बचन रचना ही इस प्रकार की है। भाव तो वही है जिसका प्रति-पादन वीर प्रभु ने किया है। अतः वचन दृष्टि से वीरोपज्ञ न होने पर भी अर्थ दृष्टि से जैनसाहित्य अवश्य वीरोपज्ञ है। ऋग्वेद की आज जितनी भी प्रतियां मिलती हैं उनमें से कोई भी ऐसी नहीं है जो ऋग्वेद काल की लिखी हो। जिस प्रकार ऋग्वेद की लिपि से लिपि होती हुई आज तक चली आई है और फिर भी ऋग्वेद उतना ही प्राचीन माना जाता है उसही प्रकार भाव दृष्टि से गुरुपरम्परा से चला आया वीरोपदेश भी उतना ही प्राचीन मानना पड़ता है। अतः जैन शास्त्रों के आप्तोपज्ञत्व पक्ष की आर्यसमाज की आपत्ति भी मिथ्या है। आज के शास्त्रार्थ में जो एक विशेष बात हुई वह यह है कि आज आर्यसमाज के वक्ता ने इस बात की अत्यधिक चेष्टा की कि वह स्थानीय समाजियों को जैनियों के प्रति उत्तेजित कर दे, किन्तु जब जैन विद्वान ने आर्यसमाज के शास्त्रों से यह बात सिद्ध कर दी कि आर्यसमाज ने श्री कृष्ण जी के सम्बन्ध में असभ्य शब्द लिखे हैं तब आर्यसमाज को मुंह की खानी पड़ी। अन्य भी अनेक छोटी २ बातें आज आर्यसमाज की तरफ से उपस्थित की गई थीं जिनका मुँह तोड़ जवाब उनको दे दिया गया था। इस प्रकार पहिले दिन की कार्यवाही समाप्त हुई।

दूसरे दिन पूर्व पक्ष को उपस्थित करते हुये पं० राजेन्द्रकुमार जी ने बतलाया कि वेद के सम्बन्ध में आर्यसमाज और सनातनियों की भिन्न भिन्न मान्यता है।

जहाँकि आर्यसमाज केवल मंत्र भाग को ही वेद मानता है वहां सनातनी ब्राह्मण भाग को भी। यही बात नहीं, आर्यसमाज ने मंत्रों का अपना भाष्य भी सनातनियों के भाष्य से भिन्न बनाया है। आज का विचार आर्यसमाज की मान्यता के अनुसार है। आर्यसमाज का विश्वास है कि सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा इन चार ऋषियों पर चार वेद उतरे थे।

आर्यसमाज की इस मान्यता में कोई प्रमाण नहीं, अतः यह मिथ्या है। दूसरी बात यह है कि ईश्वर शरीर रहित है, अतः वह शब्द स्वरूप वेद का

उपदेश भी नहीं दे सका। तीसरी बात यह है कि वेदों में अनीश्वरीय के लक्षण मिलते हैं। आर्यसमाज ने मुसल्मानों के कुरान को इसलिए ईश्वरीय स्वीकार नहीं किया कि उसकी पहिली आयत में खुदा को स्मरण किया गया है; इसी तरह ऋग्वेद के पहिले मंत्र में ईश्वर की स्तुति की गई है, अतः इस आधार से इसको भी ईश्वरीय नहीं मानना चाहिये।

इसही प्रकार आर्यसमाज जिस बात से सनातनियों के ब्राह्मण ग्रन्थों को ईश्वरीय नहीं मानता, वे ही बातें वेदों में भी मौजूद हैं। आर्यसमाज का कहना है कि ब्राह्मणों में इतिहास है, अतः वे ईश्वरीय नहीं। इसही प्रकार का इतिहास वेदमंत्रों में भी है, अतः उनको भी ईश्वरीय नहीं मानना चाहिये। इतिहास के लिये देखो—ऋग—मं० १० सूक्त ९८ मं० ५-७। अथर्व का० २० सूक्त १२७ मंत्र १-१०।

इन सब बातों के अतिरिक्त वेदों में अश्लील, मांस विधान, मद्य समर्थन, असम्भव, परस्पर विरुद्ध बातें भी मिलती हैं। अतः ये बातें भी मंत्रों के ईश्वरीय ज्ञान होने में बाधक हैं।

अथर्व का० ६ सूक्त ७० मंत्र १ का भावार्थ करते हुये आर्यसमाज के माननीय विद्वान् पं० जयदेव विद्यालंकार ने निम्न लिखित वाक्य लिखे हैं:—

"इसी प्रकार मांस लोभी को मांस द्वारा, शराबी को शराब से, जुयेखोर को जुए से, कामी को स्त्री के द्वारा वश करना चाहिये"। पहिली तीन बातों के समर्थन में इससे बढ़कर और किस प्रमाण की आवश्यकता है? इसके अतिरिक्त भी सत्यार्थप्रकाश पहिला एडीशन पेज ३०१—४ तक में मांस का समर्थन होता है। नियोग के सम्बन्ध में निर्णय देते हुये एक मजिस्ट्रेट एवं जज ने निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं:—

"इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि दयानन्द की खास धर्म पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में फने मुज़ामत (कोकशास्त्र) की तालीम दर्ज है। हुई इस बात को तसलीम करता है कि वह उसूलों पर जिन में एक ब्याही हुई औरत को अपने असली खाविंद (पति) के जीते जी किसी दूसरे ब्याहे हुये आदमी के साथ हमबिस्तरी की हिदायत है। यह रस्म बेशक व बिलाशुबह ज़िनाकारी (व्यभिचार) है। इस वास्ते यह ज़िक्र करते हुए कि दयानन्द के मुरीदान मुन्दर्जेबाला उसूलों पर ईमान लाते हुए रस्म ज़िनाकारी का आगाज़ कर रहे हैं और अगर इन उसूलों पर इनको यकीन इसी तरह रहा तो वह इसी ज़िनाकारी को ज़्यादा तरक्की देंगे"।

इसकी अपील का फ़ैसला करते हुए शिशन जज ने भी निम्न लिखित वाक्य लिखे हैं:—

"दयानन्द के उसूल इस किस्म के उसूल हैं कि वह अहले हुनूद व दीगर मज़ाहिब के हुस्न व अखलाक को सख्त नुकसान करते हैं। और इस किताब सत्यार्थप्रकाश के चन्द हिस्से खुद भी निहायत फ़ोश हैं"।

असम्भव के लिये यजु० अध्या० ३३ मंत्र ९ देखें। इसमें तेज चलने वाले घोड़े की लीद के तपाने से तत्त्व ज्ञान होना बतलाया है।

विरोध के सम्बन्ध में बात यह है कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पेज १२३—६ पर आकाश को अनित्य और यजु० अ० ३३ में नित्य बतलाया है। इसही प्रकार का विरोध आत्मा के सम्बन्ध में है। अन्य भी अनेक मंत्र इस प्रकार की बातों के समर्थन में जैनसमाज ने उपस्थित किये थे।

आर्यसमाज ने बहुत चेष्टा की, किन्तु वह इन बातों का समाधान करने में असफल रहा।

इस प्रकार अपूर्व प्रभावना के साथ यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। इस शास्त्रार्थ के अतिरिक्त ता० १८ और १९ को पब्लिक व्याख्यान भी हुये, जिनमें व्याकरणाचार्य पं० वंशीधर जी, बा० अजितप्रसाद जी एडवोकेट और बा० धर्मचन्द जी के व्याख्यान विशेष उल्लेख योग्य हैं।

इन व्याख्यानों का भी जनता पर अपूर्व प्रभाव पड़ा है।

१९ को ही सवेरे विमानोत्सव भी हुआ था, जिसमें सब भाइयों ने सहयोग किया जिससे उत्सव की शोभा अपूर्व हुई। इस प्रकार यह उत्सव समाप्त हुआ।

समाज का तुच्छ सेवक—
विशम्भरदास गार्गीय,
मंत्री—जैनसमाज, झांसी।

Regd. No. A. 2379

* समाचार-संग्रह *

—केशरियानाथजी, उदयपुर राज्य की ओर से अभी श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) मंदिर के लिये एक जांच कमेटी बनाई गई है जोकि मंदिरके प्रबंध, पूजा, भंडार, ध्वजादंड चढ़ाने आदि विषयों की जाँच करेगी कि यहाँ किसका क्या कैसा अधिकार है।

अब जांच कमेटी को जांच कार्य में उचित सहायता देने के लिये श्रीमान सरसेठ हुकमचन्द्रजी श्री सेठ भागचन्द्र जी सोनी, डाक्टर गुलाबचन्द्र जी पाटनी तथा उदयपुर के भाइयों को सफल उद्योग मुस्तैदी से करना चाहिये और प्रत्येक स्थान से इस आशय के तार या पत्र श्रीमान हिज़ हाईनेस महाराजा उदयपुर, दीवान महोदय उदयपुर और रेज़ीडेन्ट उदयपुर को शीघ्र अवश्य भेजे जाने चाहिये कि जांच कमेटी में दिगम्बर जैन समाज का सहयोग प्राप्त किया जावे तथा भगवान ऋषभदेव की मूर्ति का उसके दोनों ओर की खड्गासन मूर्तियों का उसके नीचे खुदे हुए १६ स्वप्नों का, पुराने शिलालेखों का एवं पुराने समय से मंदिर पर चले आये दिगम्बरी भट्टारकों के अधिकार की जांच सूक्ष्म तौर से की जावे।

—इस वर्ष श्रीमान बाबू लालचन्द्र जी तथा बा० उग्रसेन जी वकील ने पंजाब हाईकोर्ट के चीफ जज, रोहतक के डिप्टी कमिश्नर तथा सेशन जज के पास डेपुटेशन ले जाकर रोहतक में वीर जयन्ती के दिन सरकारी छुट्टी करा दी जो कि आगामी वर्ष में स्थायी हो जायगी। एतदर्थ आपको धन्यवाद है।

—मेवाड़ राज्यान्तर्गत धरियाबाद के राजा श्री खुमान सिंह जी बहादुर ने श्री आचार्य शान्तिसागर जी के उपदेश से प्रभावित होकर आजन्म शिकार खेलने का त्याग किया है तथा घोषणा की है कि उनके राज्य में प्रत्येक बदी अष्टमी तथा प्रत्येक सुदी चतुर्दशी को कहीं भी जीववध न होगा।

—मूडबिद्री में चैत्र सुदी १५ को रथोत्सव हो जाने पर दूसरे श्रीमान् भट्टारक जी महोदय ने तथा वहां के पंचों ने ग्रंथराज जयधवल की अन्य स्थानों के लिये प्रतिलिपि (नकल) करा देने की स्वीकारता दे दी है। इसके लिये आपको धन्यवाद है।

—सोनागिर क्षेत्र के लिये २०)-२५) मासिक वेतन वाले चतुर ईमानदार मुनीम की आवश्यकता है। रहने के लिये मकान मुफ्त मिलेगा। लिखो विश्वम्भरदास गार्गीय, सदर, झांसी।

—कानपुर में श्रीमान एस० पी० शाह आई० सी० एस० के सभापतित्व में वीरजयन्ती धूम धाम के साथ मनाई गई जिसमें तीनों जैन सम्प्रदाय सम्मिलित थे। श्री ब्र० गेबीलाल जी तथा श्रीमान् बा० अजित प्रसाद जी वकील लखनऊ, रायसाहिब बा० रूपचन्द्र जी, बा० सुन्दरलाल जी, बा० पारसदास जी, सेठ गुलाबसिंह जी जौहरी तथा वैद्यराज पं० कन्हैयालाल जी के भगवान महावीर का जीवन, विश्वप्रेम, अहिंसा आदि विषयों पर भाषण हुए तथा इस दिन की सरकारी छुट्टी कराने के लिये प्रस्ताव पास हुआ।

—जापान की यूनिवर्सिटी में हिन्दी तथा फ़ारसी पढ़ाने के लिये श्रीमान् बा० मदनलाल जी जैन (पंजाब) नियुक्त हुए हैं।

—पंजाब कौंसिल में जो कर्ज़ाबिल पेश हुआ है जिससे कि साहूकारों को विशेष कर हिन्दुओं को बहुत हानि पहुँचने की सम्भावना है; उसके विरुद्ध प्रत्येक स्थान पर आन्दोलन करने के लिये एक कमेटी बनी है। उसकी प्रधान मंत्रिणी श्रीमती लेखमती जी जैन एम० एल० सी० नियत हुई हैं।

—हाकोडेट (जापान) में भयंकर अग्निकांड हो गया जिसके २७ बाज़ारों में से २४ बाज़ार भस्म हो गये। डेढ़ लाख आदमी घरहीन हो गये। १५ करोड़ येन का नुकसान हुआ।

"चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस बिजनौर से छप कर प्रकाशित हुआ

तारीख १६ मई सन् १९३४ ई०

श्री जिनायनमः
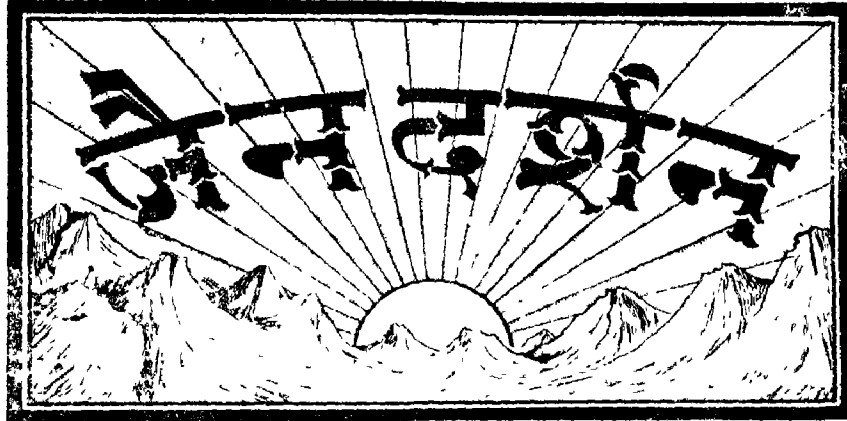
भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र ।

वर्ष १ अङ्क २१

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ीसराय, मुलतान सिटी । —ऑनरेरी सम्पादक— पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी ।

डाक खर्च आदि में फ़ायदा चाहने वालों से

आवश्यक निवेदन !

जिन सज्जनों को अनेक प्रकार की सूचनायें, नोटिस, रिपोर्ट, हिसाब, सूचीपत्र आदि आदि छपवाकर भारतवर्ष तथा बाहर के जैनों में बुक पैकेट द्वारा वितरण करने पड़ते हैं उनसे प्रार्थना है कि वे अपने इस कार्य में अब "जैन दर्शन" से सहायता लेवें । क्योंकि बुक पैकेट द्वारा भेजने में सरकार ने पोस्टेज अब)॥ की जगह)॥। कर दिया है, इस कारण पोस्टेज में तथा कागज़, छपाई, पैकिंग, क्लर्क आदि में भी जो आप को अत्यधिक खर्चा करना पड़ता है उससे, हमारे यहाँ छपवा कर "दर्शन" के साथ वितरण कराने से काफ़ी बचत कर सकेंगे ।

यदि आप "दर्शन के ग्राहकों के अतिरिक्त अन्य पतों पर भी भिजवाना चाहेंगे तो हम आपसे पते मिलने पर उन पर भी भेजने का प्रबन्ध कर देंगे ।

छपाई और बंटाई चार्ज बहुत कम होगा । जो चीज़ छपानी या छपी छपाई बंटवानी हो वह हमारे पास भेज कर उचित चार्ज मालूम करें ।

निवेदक—प्रकाशक "जैनदर्शन", बिजनौर
(यू० पी०)

वार्षिक मूल्य— २॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

चरणदास जी के चरण

श्वेता० जैन तथा जैनपथप्रदर्शक में "श्वेताम्बर समाज मृत्युशय्या पर" तथा "श्वेताम्बरमत समीक्षा ही अशान्ति का कारण है" शीर्षक दो लेख श्रीमान् चरणदास जी ने छपाये हैं जोकि काफी लम्बे चौड़े हैं। नामके साथ मंत्री-जैन यंगमैन एसोसियेशन की उपाधि लगाते हुए जनता को अंग्रेज़ी डिग्री का भ्रम उत्पन्न कराने के लिये M. S. S. भी नाम के साथ लिख दिया है जिसका अर्थ 'मेम्बर सेवा समिति' भी हो सकता है। ये चरणदास जी कोई कल्पित महाशय हैं अथवा सचमुच कोई महानुभाव हैं, यह ज़रा संदेह है। यदि वे सचमुच कोई महानुभाव हैं तो अपने चरणों से किस स्थान को पवित्र कर रहे हैं यह पता नहीं चला और न यही मालूम हुआ कि यह जैन यंगमेन एसोसियेशन कहां पर विराजमान है? इस बात का पता जानकार व्यक्ति हमको देंगे अथवा चरणदास जी ही अपना मुखचन्द्र घूंघट से निकाल कर स्पष्ट दर्शन देंगे, जिससे हम उनकी पोज़ीशन समझ सकें। क्योंकि हमको पत्र द्वारा मालूम हुआ है कि चरणदास नामक एक कल्पित व्यक्ति मुलतान के आस पास ही हैं। आशा है चरणदास जी सजीव, वास्तविक मनुष्य की मूर्ति होंगे और अपने स्थान को घूंघट में छिपाने का उद्यम न करेंगे।

—अजितकुमार जैन, मुलतान।

पते चाहियें

अजमेर में २४ मई से ओसवाल महासम्मेलन होने वाला है, उसमें समस्त दिगम्बर श्वेताम्बर ओसवालों के नाम व पते की आवश्यकता है। तदर्थ दिगम्बरी ओसवालों के अपने यहाँ के प्रमुख पुरुषों के नाम गोत्रसंख्या, जन संख्या, "रायसाहिब किशन लाल जी मंत्री स्वागतसमिति, अजमेर" के पास भेज देने चाहियें।

(शेषांश पृष्ठ ५९२ का)

आवरण दूर हो गया है, और व्यापनावस्था रूप चेतना वह जितनी कि पदार्थ ग्रहण में कार्य कर रही है। तीसरी को उपयोग, दूसरी को लब्धि और पहिली को शक्ति कहते हैं। चेतना गुण जब भी मिलता है, उपयोग रूप अवस्था में ही मिलता है। इसमें जो अधिक पदार्थों के ग्रहण की निरावरण शक्ति है, वह लब्धि है। इससे प्रगट है कि ऐसा कोई भी समय नहीं आसकता क्योंकि चेतना गुण केवल लब्धि की अवस्था में ही रहे।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि निद्रावस्था में चैतन्य को लब्धि रूप अवस्था में नहीं माना जा सकता। अब विचारणीय केवल एक ही बात रह जाती है और वह यह है कि यदि निद्रावस्था में चैतन्य को लब्धिरूप अवस्थामें नहीं माना जासकता तो न सही। चैतन्यगुण की इस अवस्था को दर्शन ही क्यों न स्वीकार किया जाय? जिस प्रकार उपयोग रूप ज्ञान चैतन्य गुण की अवस्था विशेष है उसही प्रकार दर्शन भी।

दर्शन और उपयोग रूप ज्ञान दोनों ही चैतन्य गुण की अवस्थायें हैं किन्तु फिर भी इनमें भारी अन्तर है। जिस समय चैतन्यगुण केवल अपना प्रकाश करती है उस समय इसको दर्शन और जिस समय यह अपने प्रकाश के साथ ही साथ पर पदार्थों का भी प्रकाश करता है उस समय इसही को ज्ञान कहते हैं। निद्रा अवस्था में चैतन्य केवल स्व-प्रकाशक ही, नहीं किन्तु पर प्रकाशक भी है; अतः इसको दर्शन रूप स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि केवली के निद्रा का अभाव है और निद्रा को दर्शनावरण के भेदों में गिनना युक्तियुक्त है। अतः इसके आधार से दरबारीलाल जी का केवली के केवल ज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों का अस्तित्व प्रमाणित करना बिलकुल मिथ्या है।

केवली में केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों का अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए दरबारीलाल जी ने जितनी भी बातें उपस्थित की हैं वे सब मिथ्या प्रमाणित हुई हैं अतः यह भी प्रगट है कि केवली के केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों का मानना बिलकुल निराधार एवं युक्ति-विरुद्ध है।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भास्वानभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ | बिजनौर, द्वि० वैशाख शु० २—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० | अङ्क २१

समाज !

अनेक प्रकार के मनुष्यों के समुदाय को ही समाज कहते हैं। अतः समाज में शिक्षित, अशिक्षित, धनिक, दरिद्र, बलवान, निर्बल, सच्चरित्र, दुश्चरित्र सभी प्रकार के मनुष्य होते हैं। स्वयं एक मनुष्य ही शिक्षा, दारिद्र, दुश्चरित्र आदि अनेक विषम गुणों की खानि होता है। उसके यदि एक गुण पर निगाह जाती है तो वह समाज में उच्च पद के योग्य दीखता है; उसी के जब किसी दुर्गुण पर विचार होता है तब वह अछूत सरीखा जान पड़ता है। इस विषम दशा में बुद्धिमान पुरुष को उससे यथायोग्य कार्य निकाललेना चाहिये।

यदि एक धनिक अपने धनबल से समाज सेवा कर सकता है तो विद्वान पुरुष विद्याबल से समाज का मस्तक उन्नत कर सकता है और अशिक्षित दरिद्र व्यक्ति अपने शरीर बल से समाज का सुधारपथ साफ़ सरल बना सकता है। जिस कार्य को सेठ जी नहीं कर सकते उस कार्य को निर्धन मनुष्य कर सकता है तथा जो कार्य अशिक्षित मनुष्य से नहीं हो पाता वह विद्वान पुरुष से होजाता है। सारांश यह है कि समाज को सभी तरह के मनुष्यों की आवश्यकता होती है; अतः समाज के किसी भी व्यक्ति को सामाजिक सेवा के अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता। शर्त यह है कि उसके योग्य कार्य उसको दिया जावे।

कहीं पर पंडितदल की अनिवार्य आवश्यकता होती है, उसकी सहायता बिना वह कार्य किसी प्रकार होता ही नहीं। कहीं पर बाबूदल की सहायता आवश्यक होती है, क्योंकि वह कार्य सिवाय उसके किसी अन्य दल से नहीं होसकता। कहीं कोई कार्य धनिक मंडली से ही साध्य होता है। कोई कार्य ऐसे भी आ खड़े होते हैं जिनमें लड़ाकू, निर्भीक दल से कार्य लेना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से समाजमें सभी तरह के मनुष्य उपयुक्त ठहरते हैं। अतः दलबन्दी रखते हुए भी हमको परस्पर सहयोग से कार्य करना आवश्यक है। यही सफलता का मूल मन्त्र है।

हमारे नवयुवक !

पत्नी की योग्यता—दहेज

[क्रमागत]

[११]

हमारे बहुत से नवयुवक अच्छा धनाढ्य घर देखते हैं। वे समझते हैं कि सम्पन्न श्वसुर हमारा बेड़ा पार लगा देंगे। अग्रवाल जाति में वर की योग्यतानुसार दहेज़ की रकम कन्या के पिता को पहले से इस प्रकार तय करनी पड़ती है जिस प्रकार बाज़ार में किसी वस्तु का भाव ठहराया जाता है। वहां पर अल्प योग्य कन्याएं भी दहेज़ के बल से सुयोग्य वर महाशयों के लिये भेट हो जाती हैं। और सुयोग्य कन्याएं भारी दहेज़ न दे सकने के कारण या तो अविवाहित रह जाती हैं अथवा अयोग्य वरों से विवाह दी जाती हैं।

इसी प्रकार खंडेलवाल जाति में प्रायः वर की योग्यता का उतना ख्याल नहीं किया जाता जितना कि उसके रुपये पैसे पर ध्यान रक्खा जाता है। यहां तक देखा गया है कि जानते बूझते भी नपुंसक वर को केवल धनाढ्य होने के कारण मूर्ख माता पिता अपनी कन्या विवाह देते हैं। वृद्धविवाह का कारण तो यह धन लोभ है ही।

इस अवस्था में यदि वर कन्या का पारस्परिक प्रेम संबंध स्थापित न हो, परिवार अशान्ति का घर बना रहे तो क्या आश्चर्य है? लोभ और अदूरदर्शिता का यह परिणाम तो निकलना ही चाहिये।

इस कारण कन्या के पिता को तो सबसे अधिक वरकी योग्यता का ख्याल रखना चाहिये—वह गुणी हो और परिवार का खर्च चलाने की योग्यता रखता हो; चाहे उसका घर धन सम्पन्न न भी हो, क्योंकि जिस कन्या को उन्होंने जन्म देकर बड़ा किया है लोभवश उसके लिये अन्याय या अविवेक से काम लेकर वर की योग्यता पर दृष्टिपात न करना दुष्टता एवं मूर्खता है।

इसी तरह बुद्धिमान, वयस्क वर को एवं उसके माता पिता को दहेज़ आदि का विचार छोड़ कर कन्या की योग्यता देखनी चाहिये। लड़की यदि दरिद्र किन्तु कुलीन घर की है अथवा अनाथिनी है किन्तु गुणवती है तो बुद्धिमान युवक को उसके साथ पाणिग्रहण करने में कुछ आनाकानी नहीं होनी चाहिये।

इतने पर भी यदि किसी युवक को ऐसी पत्नी मिल जावे जो पढ़ी लिखी नहीं है अथवा थोड़ी पढ़ी लिखी है किन्तु विनय, प्रेम, गृहचातुर्य आदि सर्वगुण सम्पन्न है तो उसका किसी प्रकार निरादर करना उचित नहीं। उनके अन्य गुणोंका आदर करना उसका मुख्य कर्तव्य है, क्योंकि स्त्री यदि पढ़ी लिखी हो तो बहुत अच्छा है; क्योंकि शिक्षित पत्नी अच्छी अच्छी पुस्तकों का अवलोकन करके, शास्त्रों का स्वाध्याय करके अपना कल्याण कर सकती है जो कि अपढ़ स्त्री नहीं कर सकती। शास्त्र श्रवण कर उतना न सही तो उससे कुछ कम आत्म कल्याण अपढ़ स्त्री भी कर सकती है, परन्तु जो स्त्री केवल पढ़ी लिखी ही है, पढ़ने लिखने के सिवाय जिसने और कुछ गृह कार्य नहीं सीखा, वह तो गृहस्थाश्रम के लिए एक भारी विपत्तिस्वरूप है, क्योंकि वह घर की सम्हाल कुछ नहीं कर सकती।

एक महानुभाव का दयनीय दृश्य आंखों के सामने घूमता रहता है, जिनकी पत्नी सुन्दरी तथा मैट्रिक पास और हारमोनियम बजाने में चतुर थीं। उन महाशय ने उनके साथ विवाह भी बड़े प्रयत्न से इसी कारण किया था—सोचा था कि शिक्षिता पत्नी पाकर सुखानुभव करेंगे, किन्तु हुआ सब कुछ विपरीत। उनकी पत्नी गृहकार्य में बिलकुल अनाड़ी थी, आटा गूंदना तक न आता था, दाल शाक बनाना, सीना पिरोना तो आगे की बात रही; इस कारण पति महाशय बहुत ही तंग होते। इतना अच्छा था कि कुछ रसोई बनाना उनको आता था, इस कारण वे चूल्हा जलाकर रसोई करने बैठते थे और पत्नी जी कुर्सी पर बैठ कर या तो अंग्रेजी में मज़ाक उड़ातीं अथवा बाजा बजाने बैठ जातीं। अधिकतर बाजार से खाना पीना आता। कभी २ घर में खूब झगड़ा होता, तब पति पत्नी अपनी २ भूल पर खूब पछताते। इस प्रकार यह अशान्ति वर्ष डेढ़ वर्ष तक चलती रही; फिर कहीं उस शिक्षित पत्नी ने कच्ची पक्की रसोई करना सीखा।

इस कारण पत्नी में मुख्यतया गृहसम्बन्धी योग्यता होना आवश्यक है। तदनन्तर यदि पढ़ाई लिखाई की भी आवश्यकता प्रतीत हो तो स्वयं उन युवकों को इतना कष्ट उठाना चाहिये कि अपना कुछ समय निकाल कर अपनी पत्नी को पढ़ा दिया करें। पढ़ना लिखना ऐसा कोई असाध्य कार्य नहीं जो कि विवाह हो जाने के पीछे स्त्री को किसी प्रकार न आ सके। अनेक स्त्रियां ऐसी हैं जो कि विवाहित अवस्था में ही बहुत अच्छा पढ़ लिख गई हैं।

हाईकोर्ट के जज स्वर्गीय महादेव गोविन्द राणाडे महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं, जिनकी कि दूसरी पत्नी बिलकुल अपढ़ थी। अपढ़ होने के कारण राणाडेजी ने उसका तिरस्कार नहीं किया, किन्तु बड़े प्रेम भाव से उसको पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। वे प्रति दिन दो घंटे तक उसको स्वयं पढ़ाते थे। फलतः कुछ दिनों पीछे वह पढ़ लिखकर अच्छी विदुषी बन गई।

इस दृष्टान्त के अनुसार अन्य महानुभाव भी अपनी अशिक्षित पत्नी को शिक्षित बना सकते हैं। जिस प्रेमभाव के बिना गृहस्थाश्रम दुःखाश्रम बन जाता है वह प्रेम भाव यदि पत्नी के अपढ़ होने से तोड़ दिया जावे तो इससे बढ़कर भूल और क्या हो सकती है? इस कारण नवयुवकों को यह त्रुटि स्वयं सुधार लेनी चाहिये। [क्रमशः]

वीर जयन्ती का अवकाश

भारत वर्ष में जैनसमाज एक प्रभावशाली व्यापारिक, सभ्य, शिक्षित धनिक समाज माना जाता है किंतु राजनैतिक दृष्टि से उसका वज़न न कुछ के बराबर है। यही कारण है कि उच्च पदाधिकारी अनेक जैन महानुभावों के होते हुए भी सरकारी छुट्टियों में अब तक कोई भी ऐसी छुट्टी नहीं रक्खी गई जो कि केवल जैन त्योंहार के उद्देश से हो। हमारे धर्म प्रेमी वे जैन भाई पर्युषण पर्व के लिये तड़फड़ाते रह जाते हैं जो कि सरकारी आफ़िसों में नौकर हैं और जिन्हें उस समय छुट्टी नहीं मिल पाती। यह सब कुछ हमारे प्रमाद का कटुक फल है।

चैत्र सुदी त्रयोदशी के दिन श्री वीर जयन्ती का दिन भी एक पवित्र दिवस है जिस दिन कि श्री भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। वीर जयन्ती का उत्सव प्रायः सभी जगह तीनों सम्प्रदाय के जैन अच्छे उत्साह के साथ मनाया करते हैं किन्तु सरकारी छुट्टी न होने के कारण इस दिन भी सरकारी जैन कर्मचारी अपने धार्मिक उत्सव में सम्मिलित होने से वंचित रह जाते हैं। यह बात जैनसमाज को अच्छी तरह अनुभव करनी चाहिये।

हर्ष के साथ प्रगट किया जाता है कि इस त्रुटि सुधार के लिये रोहतक निवासी श्रीमान बा० लालचन्द्र जी वकील तथा बा० उग्रसेन जी वकील ने उद्योग करके आंशिक रूप में सफलता प्राप्त की है। उन्होंने इस वर्ष अथक उद्योग करके वीर जयन्ती की छुट्टी रोहतक के सरकारी आफ़िसों में करा दी। इस कार्य के लिये उन्हें एक डेपुटेशन बना कर कार्यवश रोहतक आये हुए पंजाब हाईकोर्ट के चीफ़ जज श्रीमान सर शादी लाल जी, ज़िला तथा सेशन जज भगत जगन्नाथ जी साहिब एवं, मिस्टर सत्यदेव जी डिप्टी कमिश्नर से मिलना पड़ा था। रोहतक में सिविल कोर्टों की छुट्टियों में तो यह छुट्टी इसी वर्ष से सम्मिलित हो गई है, किन्तु कमिश्नर से स्वीकारता प्राप्त करने के लिये डिप्टी कमिश्नर को पर्याप्त समय न मिलने के कारण उन्होंने अपने समस्त सरकारी दफ्तरों के जैन कर्मचारियों को ही छुट्टी दी थी। आशा है आगामी वर्ष से उन आफिसों में भी वीर जयन्ती की छुट्टी स्थायी रूप से प्रविष्ट हो जायगी। इस सफलता के लिये उक्त दोनों वकील महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

देहली जैन-मित्र-मंडल ने इससे पहले देहली प्रान्त में भाद्रपद सुदी चतुर्दशी की छुट्टी सरकारी तौर पर स्थायीरूप से कराने में सफलता पाई थी।

अपने अपने यहाँ समस्त भाइयों को वीर जयन्ती की छुट्टी कराने के लिये ज़िला जज, सेशन जज, डिप्टी कमिश्नर (कलेक्टर), म्युनिसिपैलिटी के सभापति, एग्ज़ीक्यूटिव आफ़ीसर आदि से मिलकर उद्योग करना चाहिये। इसप्रकार के उद्योगों की सफलता प्राप्त हो जाने पर भारतवर्ष में व्यापकरूप से सरकार अपनी सूची में इस दिन की छुट्टी को सम्मिलित करने के लिये बाध्य होगी।

आधुनिक मंदिर

जिनालय का निर्माण एक पुण्यकार्य है भविष्य में सद्गति प्राप्त करने वाले

भाग्यशालियों का धन ही ऐसे पवित्र कार्य में लगा करता है। एक जिनमंदिर से असंख्य प्राणधारियों का आत्मकल्याण हुआ करता है, किन्तु इस पुनीत कार्य में भी आवश्यक सुधार होने की आवश्यकता है। जब किसी अच्छे कार्य में दोष आ जावें अथवा समयानुसार जिसमें परिवर्तन की आवश्यकता दीखे, उस समय उसमें सुधार करना ही बुद्धिमानी है। मन्दिरों के बनाने में इस समय निम्नलिखित सुधार अमल में आने चाहियें:—

१—जिस गांव या छोटे कस्बे में अथवा बड़े शहर के जिस मुहल्ले में मंदिर विद्यमान हो, वहीं पर अन्य मंदिर न बनाया जावे। यदि किसी की इच्छा मन्दिर बनाने की हो तो ऐसे स्थान पर मन्दिर बनवावे जहां जैन भाई हों किन्तु दरिद्रता के कारण वे मन्दिर न बनवा सकते हों, क्योंकि जल वर्षा समुद्र में होने से कुछ विशेष लाभ नहीं होता।

२—नवीन मन्दिर बनवाने वाले महानुभाव को उसका खर्च चलाने का स्थायी प्रबन्ध अवश्य कर देना चाहिये। या तो मंदिर इस ढङ्ग से बनाया जावे कि उसके नीचे या आस पास मंदिर की जमीन में दुकानें हों जिनके किराये की आमदनी हो; जैसे गाजियाबाद, अमृतसर, मोतीकटरा आगरा, भूलेश्वर बम्बई आदि स्थानों के मंदिरों की है। अथवा—उसके खर्च के लिये कोई मज़बूत फंड का प्रबन्ध कर देना चाहिये, जैसे कि कुछ प्रबन्ध श्रीमान स्व० सेठ टीकमचन्द्रजी पावापुरी मंदिर के लिये कर गये हैं।

३—नवीन मंदिर निर्माण की अपेक्षा जीर्ण मंदिरों का उद्धार बहुत आवश्यक और लाभदायक है। जीर्णोद्धार का पुण्य भी नवीन मंदिर निर्माण के समान है। अनेक स्थानों पर मंदिरों के जीर्णोद्धार की आवश्यकता है।

४—प्रत्येक मंदिर में एक उस मन्दिर का शिलालेख अवश्य होना चाहिये जिससे कालान्तर में उस मंदिर का इतिहास जाना जा सके। आज कल जो मंदिर बनाये जाते हैं उनमें यह त्रुटि रहती है इसको दूर करना चाहिये। श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) के मंदिर में शिलालेख न होते तो दिगम्बर सम्प्रदाय को इस समय अधिकार मिलना कठिन हो जाता।

५—मंदिरों में सुन्दरता का उतना ध्यान नहीं रखना चाहिये जितना कि सिंहपुरी में बने हुए नवीन बौद्ध मंदिर के समान मज़बूती का। जो रुपया सोने चांदी पर खर्च किया जाता है उसका बहुभाग मंदिर की मज़बूत इमारत बनाने पर होना चाहिये।

आदर्श कार्यवाहक

संस्थाओं के अधःपतन के मुख्य दो कारण हैं—एक तो स्थायी फंड का न होना, दूसरे प्रबन्ध में त्रुटियों का भर जाना। ये दोनों कारण अयोग्य कार्यकर्ताओं के निमित्त से उत्पन्न होते हैं। दिगम्बर जैन समाज में गुणी मनुष्य का सत्कार करने की कमी है। आनरेरी कार्यकर्ता चाहे जितना अयोग्य हो किन्तु जनता उसको आदर की दृष्टि से देखती है और वेतनिक कार्यकर्ता चाहे जितना योग्य हो उसका आदर नहीं किया जाता; यही कारण है जो उपर्युक्त दोषों को उत्पन्न करता है।

हम अपने उन कतिपय योग्य कुशल कार्यसंचालकों का नाम उपस्थित करते हैं जिनका कार्य कौशल आदर्श है—

१—श्रीमान पू० क्षुल्लक समन्तभद्रजी—(पूर्व नाम-ब्र० देवचन्द्र जी) कारंजा गुरुकुल का कार्य अब तक जो सुचारु रूप में चला है तथा उसका अच्छा स्थायी कोष बन गया है वह सब आपके परिश्रम का मधुर फल है।

२—श्रीमान ब्रह्मचारी चाँदमल जी—मेवाड़ सरीखे ज्ञानशून्य प्रदेश में विद्याप्रचार तथा धार्मिक जागृति का जो महान कार्य आपने किया है वह छिपा नहीं है। आपने अपने अथक परिश्रम से उदयपुर विद्यालय की नीव मज़बूत बना दी है।

३—श्रीमान ला० भगवान दास जी—बड़नगर सरीखे नगण्य नगर का नाम भारतव्यापी बनाने में कारण आपका ही सफलतापूर्ण उद्योग है। शुद्ध औषधालय तथा अनाथालय सरीखी उपयोगी संस्थायें सफलता के साथ जो चल रही हैं यह आपकी कार्यकुशलता का प्रमाण है।

४—श्रीमान पं० मक्खनलाल जी प्रचारक—देहली अनाथालय आज जो अपनी निजी विशाल इमारत तथा अच्छे ध्रौव्य फण्ड के साथ दीख रहा है वह सब आपके परिश्रम का नतीजा है। आप अपने वचन कौशल तथा सौम्य स्वभाव से कृपण थैली का भी मुंह खुलवा देते हैं।

यदि इन संस्थाओं से उक्त महानुभावों का सम्बन्ध टूट जावे तो इन संस्थाओं का जीवन विपत्ति में पड़ जावे। जैन समाज में ऐसे कार्यवाहकों का आदर होना चाहिये जिससे उत्साहित होकर वे कार्यक्षेत्र में और भी आगे बढ़ें।

यद्यपि समाज में और भी प्रशंसनीय कार्यकर्ता विद्यमान हैं किन्तु जिस परिस्थिति में उपर्युक्त महानुभाव अच्छा कार्य कर रहे हैं वह अवश्य ही आदर्शरूप है।

संघभेदसमीक्षा

श्री भगवान महावीर के उपासक एक ही जैनसंघ के दिगम्बर, श्वेताम्बर रूप दो भेद क्यों, कब, कैसे हुए, इस बात पर प्रकाश डालने के लिये जैनदर्शन में 'जैनसंघभेद' शीर्षक लेखमाला चल रही है जो कि हमारे अनेक श्वेताम्बर भाइयों को उनकी धारणा के प्रतिकूल होने के कारण कटुक प्रतीत हुई है जिससे कि कुछ भाई तो व्यग्र होकर प्रस्ताव पास करके सन्तुष्ट हो रहे हैं और कुछ सभ्यता को कुचल कर युक्ति शून्य कुछ पंक्तियाँ छपाकर अपना कर्तव्य अदा कर रहे हैं।

किन्तु अभी खामगाँव निवासी श्रीमान बालचन्द्राचार्य ने इस लेखमाला के प्रतिवादरूप संघभेदसमीक्षा शीर्षक एक लेखमाला श्वेताम्बरजैन में प्रारम्भ की है। उसमें आपने अन्तिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु और मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त की विषम कालीनता बतलाते हुए कुछ निर्बल युक्तियों से श्रवण बेलगोला के शिलालेखों पर अप्रामाणिकता का प्रकाश डालना चाहा है।

श्री बालचन्द्राचार्य जी अपनी लेखमाला में "संघभेद का युक्तियुक्त कारण क्या है, संघभेद सूचक श्वेताम्बरीय कथा सत्य है या असत्य ?, संघभेद से पहले प्राचीन जैन साधु का रूप कैसा था ?, बारह वर्षी अकाल कब पड़ा ?", आदि बातों को निष्पक्ष सबल प्रमाणों से स्पष्ट करेंगे, ऐसी आशा है।

जिस समय आपकी लेखमाला का कोई एक प्रकरण समाप्त हो जायगा उस समय हम अपने वक्तव्य के समर्थन में आपकी लेखमाला का उत्तर देना प्रारम्भ कर देंगे।

जांचकमेटी के सन्मुख

श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) मंदिर पर ध्वजादंड चढ़ाने के लिये जो जांच कमेटी नियुक्त हुई है उसके सामने अपना वक्तव्य रखने के लिये श्रीमान बैरिस्टर चम्पतराय जी तथा श्रीमान बा० अजितप्रसाद जी एम० ए० वकील सरीखे सुयोग्य महानुभावों के हाथ कार्य सौंपना चाहिये। आपकी कानूनी योग्यता एवं तीर्थ सेवा श्री सम्मेदशिखर जी के इंजक्शन केस में तथा पावापुरी केस में प्रसिद्धि पा चुकी है। आप दोनों महानुभावों को भी बिना अधिक अनुरोध कराये इस बागडोरको स्वयं आगे आकर अपने हाथ में लेना चाहिये। लगभग एक सौ वर्ष पूर्व संवत् १८८९ में सबसे प्रथम श्वेताम्बरी दीवान ने दिगम्बरी भट्टारक द्वारा दीवानी प्रभाव से ध्वजादंड चढ़ाया था। उसके पहले दिगम्बरी भट्टारक चढ़ाते रहे, इत्यादि बातों का सूक्ष्म रीति से मनन करके उक्त दोनों महानुभाव सारपूर्ण वक्तव्य जांच कमेटी के सामने पेश करें, ऐसा निवेदन है।

पुरातत्व विभाग के भारतीय जनरल डायरेक्टर

सरकारी पुरातत्व विभाग के जनरल डायरेक्टर पद पर श्रीमान् रायबहादुर दयाराम जी साहनी की नियुक्ति हुई है। देवगढ़ तीर्थक्षेत्र के शिलालेखों का संपादन आपने किया था तथा इस क्षेत्र सम्बन्धी अन्य अनेक सुविधाएं भी आपके द्वारा जैनसमाज को प्राप्त हुई थीं।

दिगम्बर जैनसमाज के इतिहास प्रेमी विद्वानों को आपसे सहयोग प्राप्त करके लाभ उठाना चाहिये। श्रीमान् बा० हीरालाल जी एम० ए०, प्रोफेसर ए० एन० उपाध्याय कोल्हापुर, बाबू छोटेलाल जी कलकत्ता, बा० रूपचन्द्र जी कानपुर, बा० कामता प्रसाद जी आदि महानुभावों को यथासंभव इस ओर ध्यान देकर विचार विनिमय करना चाहिये तथा जैन पुरातत्व के उद्धार के लिये आपको उत्साहित करना चाहिये।

श्वेताम्बर मत समीक्षा

श्वेताम्बर मत समीक्षा के विषय में अनेक दिगम्बर श्वेताम्बर महानुभाव प्राइवेट पत्रों द्वारा अनेक बातें पूछ रहे हैं। उत्तर के लिये टिकिट न आने से तथा अवकाश न होने से हम उनको पृथक् पृथक् उत्तर न देकर यहां पर समुच्चय रूप से उत्तर दिये देते हैं—

१—दिगम्बर श्वेता० समाज के बीच में सिद्धान्त भेद की पड़ी हुई गहरी खाई को पाटकर दोनों सम्प्रदायों को एक सिद्धान्त पर लाने के उद्देश्य से श्वेताम्बर मत समीक्षा का निर्माण हुआ है। दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायोंके कतिपय ग्रन्थों में किन्हीं स्वार्थी पुरुषों द्वारा मिलाई गई अनुचित सिद्धान्त विरुद्ध बातें दूर होकर, सत्यसिद्धान्त के बल पर ढोंग धतूरे को छोड़ ऐक्यरूप से समस्त भाई जैनधर्म का प्रचार करें, ऐसी हमारी भावना है। तदर्थ ही यह पुस्तक लिखी गई है एवं चर्चासागर आदि दिगम्बर ग्रन्थों के विरुद्ध भी लेख लिखे गये हैं।

२—दो पुस्तक प्रकाशकों ने (जिनमें से एक प्रेस मालिक भी हैं) श्वेताम्बर मत समीक्षा के द्वितीय संस्करण (ऐडीशन) के लिये स्वीकारता मांगी है सो उनको अभी कोई स्वीकारता नहीं दी गई।

३—चार पाँच सज्जनों ने इसका द्वितीय भाग लिखने की प्रेरणा की है; उनका आज्ञापालन भी हम इस समय नहीं करना चाहते।

४—लिखने का पुरस्कार हमको केवल प्रचार रूप में ही चाहिये, अन्य किसी पुरस्कार की आवश्यकता नहीं है।

५—तीर्थयात्रा के समय जब हम कलकत्ता पहुँचे तब पुराने प्रेमी श्रीमान यति सूर्यमल जी से भेट हुई थी। उस समय आपने कहा था कि श्वेताम्बर मत समीक्षा का हम उत्तर लिख रहे हैं; इस बात का समर्थन अभी देहली में एक आर्टिस्ट यति जी के गुरु जी ने भी किया है। यति सूर्यमलजी के प्रश्नोत्तर में विशेष तात्विक आनन्द आता है, अतः उसको देख कर तथा अन्य किसी विद्वान द्वारा लिखित श्वेताम्बर मत समीक्षा का प्रतिवाद पढ़ कर इस पुस्तक के दूसरे एडीशन की तयारी की जायगी। कुछ विशेष नोट जो हमारे पास तयार हैं वे भी उसमें जोड़ दिये जावेंगे। इस से पहले दूसरा एडीशन अथवा परिशिष्ट भाग छपवाने की हमारी इच्छा नहीं।

उन श्वेताम्बर जैन नवयुवकों (जो जैनधर्म प्रचार के लिये लालायित हैं) से प्रेमपूर्वक निवेदन है कि इस पुस्तक का तथा पुस्तक में उल्लिखित अपने ग्रन्थों के उद्धरणों का शान्ति, प्रेम और निष्पक्ष भाव से अवलोकन करें; एवं ढोंग-पाखंड के कूड़े को बाहर फेंकने के लिये उद्यत हों। उनका अभिप्राय होना चाहिये कि जो प्रामाणिक सत्य है वही हमारा मान्य सिद्धान्त है। संसार में प्रचलित धार्मिक सत्यता ही जैन धर्म है—अन्य सब पाखंड है। पाखंड पर परदा डालने के बजाय निकाल बाहर करना अत्यन्त लाभदायक है। अन्ध विश्वास कायर लोगों के लिये एक बहाना है।

तीर्थयात्रा

सिंहपुरी

सिंहपुरी (सारनाथ) में दि० जैन मंदिर अब पहले से अच्छी दशा में है; अच्छा सुन्दर बन गया है। मंदिर के सामने बड़े मैदान में नवीन, विशाल बौद्ध मन्दिर बना हुआ है। बुद्ध मन्दिर पत्थर का बना हुआ सुन्दर मज़बूत है। जैन धनिकों को मन्दिर बनवाने के पहले इस मन्दिर को देख कर इस प्रकार का सादा, सैकड़ों वर्ष ठहरने वाला पाषाण मन्दिर निर्माण कराना चाहिये। यहाँ एक बौद्ध साधुओं का विद्यालय भी है जिसमें कि १९ साधु अध्ययन करते हैं।

पटना

गुलजाबाग में पुरानी धर्मशाला को गिरा कर रहने योग्य नवीन धर्मशाला बन रही है, जिसकी कि बहुत आवश्यकता थी। भूकम्प से यहां का मन्दिर चूर हो गया है। किसी भाग्यशाली पुरुष को इसका उद्धार कराना चाहिये। शहर का पंचायती मन्दिर नया बन गया है, किन्तु भूकम्प से उसको भी कुछ हानि पहुँची है। यहां के कार्यकर्ता श्रीमान बा० जगन्नाथ प्रसाद जी अच्छे कार्य कुशल व्यक्ति प्रतीत हुए।

राजगृही

पहले पर्वत पर चढ़ने को सड़क ठीक बन गई। इस पर्वत को उतरने वाली सड़क एवं दूसरे पर्वत की दोनों सड़कें दिगम्बर समाज की ओर बनवानी है। अन्य व्यर्थ खर्चों को रोककर कोई महानुभाव इस कार्य में अपना द्रव्य खर्च करें तो वे स्वपर कल्याण के अधिक अधिकारी बन सकेंगे। शेष तीन पर्वतों की सड़कें श्वेताम्बर समाज की ओर से बनेंगी, जो कि अभी नहीं बनी हैं। यहांपर श्रीमान ला० न्यादरमल जी देहली ने अच्छा सुन्दर मंदिर बनवाया है, जिसके दर्शन पूजन में बहुत आनन्द आता है।

पावापुरी

पावापुरी का प्रबन्ध अच्छा है। भूचाल से यहां पर मंदिर तथा धर्मशाला को कुछ हानि पहुंची है जिसकी कि मरम्मत शीघ्र हो जानी चाहिये। जलमंदिर संगमर्मर का बन गया है। इस मंदिर में कोल्हापुर निवासी श्रीमान सेठ भूपाल अप्पा जी जिरगे ने जरी, रेशम का मूल मंडप के नाप का एक चंदोवा चढ़ाया था, जोकि मंदिर में इस समय भी लगा हुआ है। किन्तु यह देख कर ज़रा दुख हुआ कि श्वेताम्बर भाइयों ने उस पर रेशमी धागे से बुने गये सेठ भूपाल अप्पा जी जिरगे के नाम को दिगम्बरी होने के कारण मिटा दिया है, जो कि अब केवल छायारूप में दीख पड़ता है। यह मनोवृत्ति खराब तथा तीव्र अशुभ बन्ध का कारणभूत है।

श्री महावीर जी तीर्थ पर कृपादृष्टि

श्वेताम्बर जैन के संपादक श्रीयुत जवाहर लाल जी लोढ़ा एक ओर तो तीर्थ सम्बन्धी दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायों की मुकद्दमे बाज़ी पर खेद प्रगट करते हैं किन्तु दूसरी ओर दिगम्बरी तीर्थों पर अधिकार करने के लिये श्वेताम्बर समाज को संकेत भी करते हैं।

चौरासी (मथुरा) क्षेत्र को श्वेताम्बरी क्षेत्र बनाने वाले कतिपय लेख गतवर्ष श्वेताम्बर जैन में प्रकाशित हुए थे। श्वेताम्बर जैन के २६ वीं अप्रैल के २२ वें अंक में खड्गबहादुर जी का एक लेख प्रकाशित करके यह अभिप्राय प्रगट किया गया है कि "महावीर जी (पद्मपुरा गेट) का प्रसिद्ध मन्दिर श्वेताम्बरीय था। दिगम्बर समाज ने उस पर अधिकार कर लिया है। मंदिर को पीछे की वेदी में एक श्वेताम्बर प्रतिमा विराजमान है, मन्दिर के बनाने वाले दीवान जोधराज जी पल्लीवाल थे, पल्लीवाल श्वेताम्बर होते हैं, आदि"।

उदयपुर राज्य में अभी श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) के झगड़े का निर्णय नहीं हुआ; तब एक और नवीन झगड़े का स्रोत खोलने की तैयारी श्वेताम्बर जैन ने करदी। हमारे ख्याल से श्री जवाहरलाल जी लोढ़ा को एक ऐलान कर देना चाहिये कि "जैन का अर्थ श्वेताम्बर जैन है अतः भारतवर्ष के जितने भी जैनमन्दिर हैं उन पर श्वेताम्बर समाज का अधिकार है।" क्योंकि ऐसे एक एक मन्दिर को हड़पने में बहुत समय लगेगा।

जिस अतिशययुक्त श्री भगवान महावीर की मूलनायक प्रतिमा पर यह तीर्थक्षेत्र प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है वह प्रतिमा दिगम्बर होते हुए भी मन्दिर को श्वेताम्बरी बतलाना कितना भारी साहस है? संपादक जी को पता नहीं कि यह क्षेत्र

दिगम्बरी भट्टारकों के अधिकार में प्रारम्भ से रहता आया है, फिर यह मन्दिर श्वेताम्बरी कैसे होगया?

हज़ारों पल्लीवाल भाई सैकड़ों वर्षोंसे दिगम्बराम्नायी चले आ रहे हैं। आप यदि इतिहास जानना चाहें तो श्रीमान रायसाहिब हकीम कल्याणराय जी, श्रीमान पं० मक्खनलाल जी देहली आदि पल्लीवाल विद्वानों से जान सकते हैं। अतः दीवान जोधराज जी का सम्बन्ध मिला कर दिगम्बरी मन्दिर को श्वेताम्बरीय बतलाना आकाश में कोट निर्माण करना है।

देहली के प्रमुख भाइयों का, क्षेत्र की प्रबन्धक कमेटी के सदस्यों का तथा इधर जयपुर के महानुभावों का एवं श्रीमान सेठ भागचन्द्र जी सोनी का ध्यान इधर आकर्षित होना चाहिये। वे प्रतिमाओं का निरीक्षण करें तथा क्षेत्र की सहायतार्थ दान द्रव्य लेते समय खास ध्यान रक्खें। दिगम्बर जैन भाइयों के सिवाय अन्य किसी का द्रव्य भण्डार में न लें जिससे कि कोई झगड़े की नींव पड़ सके।

खुदा के घर में चोरी

यों तो कुछ मनचले भाई मन्दिरों से जूते चुराकर अपना पाप भण्डार पूरा करते हैं, तीर्थयात्रा के समय भी बेईमानी का पल्ला नहीं समेटते, किन्तु अभी एक मस्जिद में जो मनोरञ्जक घटना हुई है वह अपने ढंग की निराली है। मनोरञ्जक होने से उसे यहाँ उल्लिखित करते हैं:—

बटाला की एक मस्जिद में २० अप्रैल शुक्रवार के दिन चोरी की एक विचित्र घटना हुई। जुमे का दिन था। मौलवी साहिब खुतबा पढ़ रहे थे। थोड़ी दूर एक बड़ी टाइमपीस घड़ी दो बजे के अलार्म की चाबी देकर रखी थी ताकि जब दो बजे घण्टी हो तो नमाज़ पढ़ाई जाय। नमाज़ पढ़ने वाली मुसलमान स्त्रियाँ और पुरुष समय से पहले ही आने आरम्भ हो गए। एक स्त्री ने टाइमपीस को उठाकर अपनी सलवार (पाजामा) के नाड़े से बाँधकर अपनी सलवार के अन्दर डाल लिया। जब अधिक लोग आ गए तो मौलवी साहब ने समय देखना चाहा, पर घड़ी वहाँ नहीं थी; इस पर उन्होंने नमाज़ शुरु करादी। कुछ देर बाद अलार्म चलना शुरु हो गया और वह स्त्री पकड़ी गई, पर क्षमा मांगने पर उसको छोड़ दिया गया।

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[१८]

ओसवाल जाति

रत्नप्रभसूरि ने जिन राजपूतों को जैनधर्म में दीक्षित करके ओसवाल जाति की नींव डाली, उनके गोत्रों के दीक्षित नाम से पहले जो नाम थे उनका सूचक निम्नलिखित एक छप्पय महाजन वंशमुक्तावली में लिखा हुआ है:—

प्रथम साख परमार, शेष सीसौद सिंगाला,
रणथंभा राठोड़ वंश चंवाल बचाला।

दइया भाटी सोन गरा कच्छाया धन गौड कहीजे,
जाद मझाला जिंद लाज मरजाद लहीजे ।
खरदरा पाट ओ पेखरा लेणा पटा जलाखरा,
एक दिवस इता महाजन हुआ सूर बड़ाभिड़ साखरा।

इस तरह महाजनवंशमुक्तावली के लिखे अनुसार श्री रत्नप्रभसूरि द्वारा सीसोदिया, परमार, भाटी आदि १८ गोत्रों के सवा लाख राजपूतों को ओसवाल जाति बन जाने पर पीछे समय समय पर श्वेताम्बर आचार्यों ने अजैन लोगों को जैनधर्म में दीक्षित करके उसी ओसवाल जाति में सम्मिलित किया। उसका कुछ संक्षिप्त विवरण यहां उल्लेख कर देना आवश्यक है—

१—सुचिती गोत्र—वर्द्धमान सूरि विहार करते हुए दिल्ली पधारे। वह समय विक्रम सं० १०२६ का था। वहाँ का राजा सानीगरा चौहान था; उसके पुत्र बोहित्थकुमार को बाग में सोते हुए सांप ने काट खाया। उसका विष जब किसी से न उतरा तब उसको मृतक जानकर लोग हाहाकार करते हुए जलाने ले गये। वर्द्धमान सूरि अपने पाँचसौ शिष्यों के साथ बड़वृक्ष के नीचे बैठे थे; उन्होंने शिष्य भेज कर उन लोगों को अपने पास बुलाया। आचार्य ने राजा से कहा यदि आप सब लोग जैनधर्म धारण करें तो मैं तुम्हारे पुत्र को सचेत कर दूंगा। आचार्य महाराज की आज्ञा सबने स्वीकार की; तब वर्द्धमान सूरि ने उसका विष उतार कर उन सब को जैन बनाया और उनका गोत्र नाम सुचिती रखकर उनको ओसवाल जाति में सम्मिलित कर दिया।

२—बरडिया—भोजराजा के स्वर्गवास हो जाने पर नवरों ने भोजराजा के वंश वालों से मालवा देश छीन लिया। वे लक्ष्मणपाल आदि मालवासे आकर मथुरा में बस गये। वहां वि० सं० ९५४ में नेमिचन्द्र सूरि के पास लक्ष्मणपाल ने एकान्त में अपनी दरिद्रता तथा सन्तान न होने की कथा सुनाई और उनसे धन व सन्तान प्राप्ति का उपाय पूछा। आचार्य महाराजने उनको भार्यासहित जैन बनाकर उनके मकान के पीछे गड़े हुए धन को बतला दिया। कुछ समय पीछे उसके तीन पुत्र हुए। बड़ा पुत्र नारायण था। नारायण के एक सांप के समान लड़का और एक लड़की हुई। उस लड़की ने अपने भाई के ऊपर असावधानी से गर्म पानी डाल दिया जिससे वह मर गया और व्यन्तर होकर उसको दुःख देने लगा।

अनुनय विनय करने पर उसने लक्ष्मणपाल को बरदान दिया कि क्षणिक पीड़ा वाला जो मनुष्य तुम्हारे घर को छुवेगा उसकी पीड़ा चली जायगी। इस बात से लक्ष्मणपाल के गोत्र का नाम 'वरदिया' पड़ गया। उसी का नाम अपभ्रंश वरडिया हो गया।

३—कूकड़ चोपड़ा—श्री जिनवल्लभसूरि वि० सं० ११७६ में मंदोदर नगर पधारे। वहां के राजा नानूदे पडिहार के कोई सन्तान नहीं थी। वह राजा साधु जी को अतिशय ज्ञानी जान सन्तानोत्पत्ति का उपाय पूछने के लिये उनके पास गया। जिनवल्लभसूरि ने उसको कहा कि यदि तू जैनधर्म धारण करे और अपने प्रथम पुत्र को साधु होने दे तो सन्तान उत्पत्ति का उपाय बतला सकता हूँ। राजा ने स्वीकार किया। साधुजी ने एक वासचूर्ण राजा को दिया और कहा कि तुम्हारी स्त्री इसको अपने शिर पर रक्खे। राजाने वैसा ही किया; तब उसके चार पुत्र हुए। आचार्य वहां से चले गये।

कई वर्ष पीछे फिर उसी नगर में जिनवल्लभ सूरि आये, राजा से उन्होंने प्रथम पुत्र के साधु बनाने की बात याद दिलाई, किन्तु रानी ने मोहवश पुत्र को साधु न होने दिया। साधु वहां से विहार कर गये। कुछ दिन बाद बड़े पुत्र को सर्प का विष चढ़ गया, जिससे वह अचेत हो गया। तीन दिन तक राजा ने उसको अच्छा कराने के लिये अनेक उपचार कराये, किन्तु कुछ आराम न आया, बल्कि शरीर फट गया और उससे पीप झरने लगा।

तब मंत्री ने जिनवल्लभसूरि को बुलवाया। उन्होंने प्रतिज्ञा भंग का दंड मिला है ऐसा कह कर राजा से सपरिवार जैनधर्म धारण करने की प्रतिज्ञा कराली। फिर उन्होंने राजा की कुकड़ी नामक गाय का चोपड़ा (मक्खन) मंगाकर मंत्र प्रयोग करते हुए उस लड़के के शरीर पर लगाया, जिससे पीप झरना बन्द हो गया और वह सचेत हो गया।

इस प्रकार कुकड़ी गाय के चोपड़ा (मक्खन) के नाम पर उस राजाका गोत्र कुकड चोपड़ा रख कर उसे ओसवाल जाति में मिलाया।

इस प्रकार मंत्रबल से किसी को धन देकर, किसीको संतान देकर, किसी को युद्ध में जिताकर, किसी का रोग मिटा कर, किसी को नाहरी (सिंहनी) द्वारा उठाये गये पुत्र को दिला कर श्वेताम्बर आचार्यों ने भिन्न भिन्न समय पर अजैन लोगों को जिनमें प्रायः क्षत्रिय थे जैन बनाकर ओसवाल जाति में मिलाया।

ऐसी बीसों कथाएं महाजन वंश मुक्तावली में उल्लिखित हैं। ओसवाल जाति के प्रायः किसी भी गोत्र के विषय में यह नहीं लिखा है कि अमुक आचार्य ने प्रभावशाली धर्मोपदेश देकर अजैन लोगों को जैनधर्म में दीक्षित किया। इन कथाओं से जैन आचार्यों की कृतियों पर तथा ओसवाल जाति पर कैसा प्रकाश पड़ता है इसका पाठक महानुभाव स्वयं विचार करें।

ओसवाल जाति के प्रादुर्भाव की यह कथा अनेक कारणों से असत्य सिद्ध होती है। देखिये—

१—श्रुतकेवली जैनधर्म के प्रचार के लिये अपने मंत्रबल से बाज़ीगर के समान रुई से सर्प बना दे, वह सर्प राजपुत्र को काटे, क्योंकि सर्प इसके सिवाय और करेगा ही क्या? फिर उस विषाक्रान्त राजपुत्र को जैनधर्मी होने की शर्त लेकर सचेत करे, यह बात अनुचित है। प्रभावशाली उपदेश द्वारा अजैनों को जैनधर्म का श्रद्धानी बनाना श्रुतकेवली के लिये योग्य कार्य है। सर्प बनाकर किसी को कटवाना, लाखों मनुष्यों में भारी क्षोभ और दुख उत्पन्न कर देना, श्रुतकेवली के लिये योग्य कार्य नहीं।

२—श्वेताम्बरीय ग्रन्थानुसार भी वीर सं० ६२ में गौतम गणधर के मुक्त हो जाने पर प्रभव स्वामी पट्टधर हुए जो कि ११ वर्ष रहे। वीर सं० ७० में रत्नप्रभसूरि का अस्तित्व किसी भी प्रामाणिक श्वेताम्बर ग्रंथ में नहीं पाया जाता। एक रत्नप्रभसूरि नामक आचार्य का अस्तित्व श्वेताम्बर साहित्य में वीर सं० २२२ में अवश्य मिलता है जो कि भद्रबाहुस्वामी से लगभग आधी शताब्दी पीछे का समय है।

३—वीर सं० ७० में राजपूतों के गोत्रों का भी अस्तित्व नहीं था और न वीर सं० २२२ के समय में ही राजपूत जाति का कहीं प्रामाणिक उल्लेख

मिलता है। कुछ ऐतिहासिक विद्वान विक्रम संवत् की प्रारम्भिक शताब्दियों में राजपूतों की सृष्टि बतलाते हैं जो कि वीर सं० से कम से कम ५०० वर्ष पीछे का समय था। इस दशा में जब वीर सं० ७० या वीर सं० २२२ में राजपूत ही नहीं थे तब उनका उस समय धर्मपरिवर्तन किस तरह सम्भव हो सकता है ?

४—जिन गोत्र वाले राजपूतों का सबसे प्रथम ओसवाल बनना लिखा है वे गोत्र विक्रम सं० ६०० से प्रथम के इतिहास द्वारा सिद्ध नहीं होते। देखिये १-परमार वंश का इतिहास सिन्धुराज से चलता है; सिन्धुराज का समय विक्रम सं० ९०० के लगभग प्रमाणित होता है। २-सीसोदिया नाम गहलोत क्षत्रियों का पीछे से बल्लभीपुर से आकर मेवाड़ के सीसोद गांव में बसने के कारण पड़ा था। बल्लभीपुर से सीसोद आने का समय विक्रम सं० ६०० है। ३-यदुवंशी महारावल भाटी जो कि लाहौर के सिंहासन पर विक्रम सं० की छठी शताब्दी में बैठे थे इनके नाम पर भाटी वंश का प्रादुर्भाव हुआ; इत्यादि। इस कारण विक्रम सं० से ४०० वर्ष पहले राजपूतों का अस्तित्व बतलाना निराधार एवं असत्य है।

५—जिस ओसियां नगरी में राजपूतों को नगरी के नाम पर ओसवाल बनाया गया वहां के प्राचीन, ऐतिहासिक भगवान महावीर के मन्दिर में तथा उसके आस पास जो शिलालेख मिले हैं वे प्रायः विक्रम सम्वत् की ११ वीं शताब्दी के हैं या उससे पीछे के हैं, पहले का कोई नहीं है।

श्रीमान् बा० पूरणचन्द्र जी नाहर ने वहाँ के समस्त उपलब्ध शिलालेख अपने जैन लेख संग्रह में उल्लिखित किये हैं; उनमें कोई भी पुराना शिला लेख नहीं। वहां महावीर स्वामी के मन्दिर के तोरण पर जो लेख है वह वहाँ के सब लेखों से पुरातन है, उसकी प्रतिलिपि इस तरह है—

'सं० १०३५ आषाढ़ सुदी १० आदित्यवारे स्वाति नक्षत्रे श्री तोरणं प्रतिष्ठापितमिति'।

सचियाय देवी के मन्दिर में भी तेरहवीं शताब्दी से पहले का शिलालेख नहीं। अतः ओसियाँ के इन शिलालेखों से, इतिहासज्ञ विद्वानों के मत से, तथा परमार आदि राजपूतों के गोत्रों से यह सिद्ध होता है कि ओसवाल जाति का आरम्भ विक्रम सम्वत् की ११ वीं शताब्दी से होता है। इसके पहले ओसवाल जाति का अस्तित्व किसी प्रामाणिक साधन से सिद्ध नहीं होता।

अतः कहना होगा कि वीर सं० ७० में या वीर सम्वत् २२२ में श्री रत्नप्रभसूरि द्वारा ओसवाल जाति का निर्माण केवल एक कल्पित निराधार अतएव निःसार असत्य बात है। उसमें ऐतिहासिक सत्यता का अन्श लेशमात्र भी नहीं है। यह निराधार कल्पना केवल श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता जमाने के लिये की गई है। श्वेताम्बरी विद्वानों को इस पर विचार करना चाहिये।

इस प्रकार इस ओसवाल जाति के इतिहास द्वारा भी संघभेद की दिगम्बरीय कथा असत्य प्रमाणित नहीं होती।

(क्रमशः)

बाहुबलि की प्रतिमाएं गोम्मट नाम से क्यों कही जाती हैं ?

[अनुवादकः—श्रीमान् जगदीश चन्द्र जी जैन M. A.]

[गताङ्क से आगे]

श्रमण बेलगोला के केवल तीन शिलालेख (नं० ५९, ६७ तथा १२१) अजितसेन का उल्लेख करते हैं, लेकिन इनमें से एक भी उस जगह इनके ठहरने के विषय में कुछ नहीं कहते । इसलिये जान पड़ता है कि अजितसेन श्रमण बेलगोला में स्थायी रूप से अथवा कुछ पर्याप्त रूप से भी अधिक समय तक के लिये नहीं रहे । श्रमण बेलगोला का उत्सव समाप्त होते ही वे बंकापुर को लौट गये और जीवन पर्यन्त वहीं रहे । इस लिये अजितसेन जब बङ्कापुर लौटे, तो इस बीच में चामुण्डराय नेमीचन्द्र के परिचय में आये और उन्होंने नेमिचन्द्र को अपना गुरु स्वीकार किया । इसी समय राजा रायमल्ल ने भी नेमिचन्द्र को गुरु बनाया । अतएव मेरे मतानुसार यदि श्रमण बेलगोला की मूर्ति का सन ९८१ में स्थापन किया जाना ठीक है तो नेमिचन्द्र सन ९८१ और ९८४ के बीच में रायमल्ल और चामुण्डराय के गुरु हुए (क्योंकि राजा रायमल्ल सन ९८४ में मृत्यु को प्राप्त हुए थे): इसी बीच में नेमिचन्द्र ने त्रिलोकसार की रचना की जिसकी प्रथम गाथा में दोनों शिष्यों का उल्लेख किया गया है । अब, क्योंकि त्रिलोकसार में चामुण्डराय के दूसरे नाम "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" का उल्लेख नहीं है (चामुण्डराय का यह नाम सन् ९८४ तक नहीं पड़ा था) तथा पीछे से रचे हुए नेमिचन्द्र के गोम्मटसार में "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" का सर्व प्रथम उल्लेख है किन्तु राजा रायमल्ल का नहीं, इस से स्पष्ट है कि गोम्मटसार की रचना राजा की मृत्यु के पश्चात अर्थात् सन ९८४ में होनी चाहिये । ये सब बातें अच्छी तरह समझाने को पर्याप्त हैं कि स्वयं नेमिचन्द्र ने ही पहिले अपने शिष्य चामुण्डराय को "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" नाम दिया तथा चामुण्डराय का यह नया नाम मूर्ति-स्थापन के कम से कम (यदि अधिक नहीं तो) तीन * वर्ष बाद पड़ा, तथा नेमिचन्द्र ने इस उल्लेख को गोम्मटसार की रचना के पहिले नहीं

* यदि रन्न के द्वारा इस नाम का उल्लेख नहीं किया जाना उक्त निर्णय में एक बाधक समझा जाये तो चामुण्डराय का यह नाम सन ९९३ से पहिले नहीं पड़ा था । दूसरे शब्दों में, गोम्मटसार की रचना सन ९९३ से पहिले नहीं होनी चाहिये ।

किया। अब हमें देखना चाहिये कि नेमिचन्द्र ने चामुण्डराय को यह नया नाम क्यों दिया।

(१) गोम्मट शब्द कनाड़ी में भी विशेषण रूप में मिलता है जिस का अर्थ "सुखकर" और "सुन्दर"*होता है। इसलिये कई लोगों का मत है कि नेमिचन्द्र ने चामुण्डराय को "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" अर्थात् "सुन्दर आकृति वाला पुरुष" अथवा "सुन्दर आकृति का राय" कहा हो। लेकिन यह सम्भव नहीं है कि चामुण्डराय प्रतिष्ठा के समय (सन ९८१) यदि साठ नहीं तो पचास वर्ष से कम रहे हों। स्वयं चामुण्डराय द्वारा "चामुण्डराय" पुराण में (सन ९७८) गिनाये हुए साहसिक कार्यों से इसका पर्याप्त रूप से परिचय मिलता है कि जब चामुण्डराय ने यह पुराण समाप्त किया तब वह अवश्य ही पचास वर्ष से अधिक होंगे। यदि ऐसा है तो पचास वर्ष से अधिक अवस्था वाले पुरुष को जिसने अपने जीवन का अन्तिम समय धर्म और उत्तम कार्यों में लगा दिया है "सुन्दर" नाम से सम्बोधित करना बिलकुल अप्रासङ्गिक है! इसके अतिरिक्त, चामुण्डराय एक बड़ा वीर योद्धा था। उसके जीवन का प्रत्येक क्षण (पूर्णतया धार्मिक वृत्ति स्वीकार करने के पहले) किसी वीरतापूर्ण कार्य से परिपूर्ण था; फलतः उसके शरीर का प्रत्येक अङ्ग साहसिक कार्यों के स्मारक क्षत चिन्हों से भरा था। चामुण्डराय की धार्मिक श्रद्धा भी साधारण नहीं थी; वह असाधारण दयावान था जैसा उसके पद्यों से, शिलालेखों से और कई रचनाओं से स्पष्ट प्रमाणित है। अतएव "सुन्दर" अथवा "सुखकर" शब्द—जो एक युवक वीर के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं—चामुण्डराय के लिये उनका प्रयोग स्थानानुकूल नहीं है। विद्वान और साधु नेमिचन्द्र भी चामुण्डराय को इस प्रकार के नाम से उल्लेख नहीं कर सकते, जिससे उसका "नेत्रों को सुखकर" अथवा "देखने में सुन्दर" ऐसा निर्दोष अर्थ होने पर भी इन्द्रियजनित विषयों की गन्ध निकलती। यदि दूसरी तरफ़, गोम्मट शब्द का अर्थ "आनन्द स्वभाव वाला" किया जाता है तो चामुण्डराय के लिये इसका प्रयोग अयुक्त न होगा। परन्तु जैसा आगे कहा जावेगा, शब्द की व्युत्पत्ति से इन्द्रियासक्ति के अतिरिक्त और किसी अर्थ का बोध नहीं होता। अतएव इसका अर्थ "आंखों को सुखकर" ही हो सकता है। इसके सिवाय, जब चामुण्डराय के अन्य नाम तथा उपाधियां हैं (जैसे राय अण्ण आदि) फिर नेमिचन्द्र ने चामुण्डराय को एक नया नाम तथा उपाधि क्यों दी? जब कि इस नये नाम के इतिहास का धर्म और परम्परा में कोई उल्लेख नहीं था।

(२) श्रीयुत पं० शान्तिराज शास्त्री न्यायतीर्थ १४ अगस्त सन् १९२६ के पत्र में मुझे लिखते हैं कि चामुण्ड नाम भयानक काली देवी के नाम से सम्बद्ध होने के कारण जैन विचारों के प्रतिकूल है। इसलिये सम्भव है कि नेमिचन्द्र ने चामुण्ड के स्थान में "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" कर दिया हो †। परन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ, क्यों

* देखो श्रमण बेलगोला शिलालेख नं० २३४ (सन ११९३ के लगभग)—"सेनापति हुल्ल ने इस सुन्दर जिनमन्दिर को बनवाया तथा लोगों ने कहा कि यह गोम्मटपुर के भूषण की तरह गोम्मट यानी "सुन्दर" था।

† श्रीयुत शान्तिराज जी की अनुमति लेकर मैं ने इसे प्रकाशित कराया है।

कि दिगम्बरों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है † कि बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ की यक्षिणी * का नाम चामुण्डी है। अतः निःसन्देह चामुण्डराय नाम भयोत्पादक काली के नाम पर न होकर उल्लिखित यक्षिणी के नाम पर ही था। चामुण्ड राय ने अपने नाम पर श्रमण बेलगोला में चन्द्रगिरि नामक छोटी पहाड़ी पर "चामुण्डरायवसति" नामक मन्दिर निर्माण कराया था। इस मन्दिर में उन्होंने २२ वें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ नाम की मूर्ति तथा मूर्ति के प्रवेश द्वार पर तीर्थङ्कर की यक्षिणी "कूष्माण्डिनी" की भी मूर्ति स्थापित की थी। कूष्माण्डिनी नाम भी कुछ कम भयोत्पादक नहीं है; अथच चामुण्डराय ने अपने प्रिय तीर्थङ्कर की प्रतिमा के पास ही इसे स्थान दिया तथा नेमिचन्द्र ने भी अपने शिष्य के इस कार्य को उदासीन रूप से नहीं देखा, इसलिये चामुण्ड नाम का भीषण काली के नाम से सादृश्य होने के कारण नेमिचन्द्र का चामुण्ड के स्थान में "गोम्मट" कर देने का कारण ठीक प्रतीत नहीं होता।

(३) कुछ थोड़े ही लोगों का मत है कि "गोम्मट" नाम स्वयं बाहुबली के लिये प्रयुक्त हुआ है। वैराग्य और निर्वाण प्राप्त करने के पहिले बाहुबली का बहुत दूर दूर तक यात्रा करना कहा जाता है। उसके अनुसार जो पृथ्वी पर भ्रमण करे वह "गोम्मट" है (गाम्-अटतीति गोमटः), परन्तु यह कहना अनावश्यक है कि समास और उसके विच्छेद को बुरी तरह भ्रमोत्पादक रूप में उपस्थित किया गया है। क्योंकि यदि ऐसा है तो "गोम्मट" में म् कहाँ से आया।

[क्रमशः]

चिर वैधव्य विधवा जीवन का उच्च आदर्श है।

["ज्ञान और कर्म" नामक पुस्तक से उद्धृत]

[गताङ्क से आगे]

अब प्रश्न यह है कि "विधवा विवाह का सर्वत्र प्रचलित प्रथा होना और चिर वैधव्य पालन के उच्च आदर्श होने पर भी उसका विधवा विवाह प्रथा के व्यतिक्रम स्वरूप से रहना उचित है या चिर वैधव्य पालन का ही सर्वत्र प्रचलित प्रथा होना और विधवा विवाह का चिर वैधव्य पालन के व्यतिक्रम स्वरूप से रहना उचित है अर्थात् चिर वैधव्य पालन मुख्य प्रथा और विधवा विवाह गौण प्रथा हो या विधवा विवाह मुख्य प्रथा और चिर वैधव्य पालन गौण प्रथा हो ?" इस प्रश्न का ठीक उत्तर क्या है, इस की अब विवेचना करनी है।

जिन सब देशों में विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित है, वहाँ इसके उठ जाने की कोई संभा-

---

† परन्तु श्वेताम्बरों के अनुसार वह गान्धारी नाम से कही जाती है।

* तुलना करो हेमचन्द्र का अभिधान चिन्तामणि श्लोक ४५, ४६

बना नहीं है। प्रसिद्ध पाश्चात्य पण्डित कामटी (Comte) बहुत दिन हुए, चिर वैधव्य पालन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर गये हैं, किन्तु उनके उस कथन से उक्त पाश्चात्य प्रथा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, मगर हाँ इस समय पाश्चात्य देश की स्त्रियाँ अपनी स्वाधीनता स्थापित करने के लिये जैसा दृढ़ व्रत धारण किये कमर कस कर मैदान में खड़ी हुई हैं उससे जान पड़ता है, विधवाएं ही क्यों कुमारियाँ भी धीरे २ विवाह बंधन में अनिच्छा प्रकट करने लगेंगी। और, वैसा होने पर शायद उनके उस दृढ़व्रत का एक फल यह होगा कि पाश्चात्य देशों में भी पवित्र चिर वैधव्य का उच्च आदर्श स्थापित हो सकेगा। किन्तु यह सब बहुत दूर की बातें हैं। इस समय निकट की बात यह है कि एक हिन्दू समाज में जो चिर वैधव्य प्रथा प्रचलित है, उस का उठ जाना उचित है कि नहीं ?

इस प्रथा के प्रतिकूल जो युक्तियां पेश की जाती हैं, वे नीचे लिखी जाती है। पहिले तो यह कहा जाता है कि इस प्रथा का फल स्त्रियों और पुरुषों के प्रति अति विसदृश है। अर्थात् पुरुष स्त्रियों के मरने पर फिर विवाह कर सके हैं और स्त्रियाँ पुरुष के मरने पर फिर विवाह नहीं कर सकतीं; इस आपत्ति का उल्लेख और कुछ आलोचना पहिले हो चुकी है। पुरुष स्त्री वियोग के बाद फिर विवाह करते हैं, इस लिये स्त्रियाँ भी मर्द के मरने पर फिर विवाह करेंगी, यह एक असंगत प्रतिहिंसा है। स्वाभाविक नियम के अनुसार स्त्री पुरुष के अधिकार में विषमता अनिवार्य है; सन्तान पैदा करने और पालने में प्रकृति ने ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री पर अधिक भार रख दिया है। भ्रूण का निवास स्थान माता के गर्भ में है। बच्चे का आहार माता की छाती में है। स्त्री की गर्भावस्था में, सन्तान की शैशवावस्था में पति की मृत्यु होने पर दूसरे पति के ग्रहण में, अवश्य ही विलम्ब करना होगा। उसके बाद ये सब शारीरिक बातें छोड़ देकर मन और आत्मा की बात देखने में भी स्त्री और पुरुष के अधिकार की विसमता जरूर रहेगी। और, यह बात मैं पुरुष का पक्षपाती होकर नहीं, स्त्री का पक्षपाती होकर ही कहता हूं। पुरुष की इच्छा से या अनिच्छा से संसार यात्रा के निर्वाह के अनेक अवसरों पर कठोर और निष्ठुर कर्म करने होते हैं, और इसके कारण उसका शरीर और मन निष्ठुर हो जाता है जिससे आत्मा के पूर्ण विकास में बाधा पड़ती है। स्त्री को यह कुछ नहीं करना पड़ता, इसीसे उसका हृदय कोमल रहता है। इसके सिवा स्वभाव से ही (जान पड़ता है, सृष्टि की रक्षा के लिये) स्त्री की मति स्थितिशील और निवृत्तिमार्ग सुखी होती है। स्त्री की सहन शीलता, स्वार्थ त्याग की शक्ति और परार्थ परता पुरुष की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। अतएव उसके लिये स्वार्थ त्याग का नियम अगर पुरुष से सम्बन्ध रखने वाले नियम की अपेक्षा कठिन तर हुआ हो, तो समझना चाहिये कि वह उसका पालन करने में समर्थ है, इसी से ऐसा हुआ है। वह नियम की विसमता उनके गौरव ही का कारण है, लाघव का नहीं; इसी कारण इस जगह उनकी प्रतिहिंसा को मैंने असंगत बतलाया है। जो लोग स्त्रियों की इस असंगत प्रतिहिंसा को प्रोत्साहित या उत्तेजित करते हैं, उन्हें उनका यथार्थ मित्र या हितचिन्तक कहने में सन्देह होता है।

चिर वैधव्य प्रथा के विरुद्ध दूसरी आपत्ति यह है कि वह अति निर्दय प्रथा है। वह विधवाओं की दुःसह वैधव्य यंत्रणा पर दृष्टिपात भी नहीं करती। विधवा की शारीरिक अवस्था पर नज़र डाली जाय तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि यह आपत्ति अत्यन्त प्रबल है। ऐसे दयाहीन हृदय थोड़े ही निकलेंगे जो विधवाओं के शारीरिक कष्ट के लिये व्यथा न पाते हों। किन्तु सोचना चाहिये, मनुष्य केवल देहधारी ही नहीं है, मनुष्य के मन और आत्मा भी है जो कि शरीर की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् और अधिक प्रबल है। देह रक्षा के लिये कई एक अभाव अवश्य पूरणीय है, किन्तु मन और आत्मा के ऊपर देह की प्रभुता की अपेक्षा देह के ऊपर मनका और आत्मा का अधिकार अधिकतर वांछनीय है। देह का कुछ कष्ट स्वीकार करने से अगर मन और आत्मा की उन्नति होती हो तो उस कष्ट को कष्ट ही नहीं समझना चाहिये। देह को कष्ट स्वीकार करके बुद्धि के द्वारा प्रवृत्ति का शासन करना, और आगे होने वाले अधिक सुख के लिये वर्तमान के अल्पसुख के लोभ को दबाना, ये ही वे गुण हैं जिनके कारण मनुष्य आज पशुओं से श्रेष्ठ समझा जाता है और इनकी उत्तरोत्तर क्रमोन्नति हुई है! पशु भूख लगने पर अपने पराये का विचार न करके जो सामने पाता है वही खा जाता है। असभ्य मनुष्य भी प्रयोजन होने पर अपने पराये का विचार न करके, जिस किस प्रयोजनीय वस्तु को पाता है उसी को ले लेता है। किन्तु सभ्य मनुष्य हज़ार प्रयोजन होने पर भी परवस्तु के अपहरण से पराङ्मुख रहता है। अर्थात् पराई चीज़ को नहीं छूता। विधवा यदि कुछ दैहिक कष्ट स्वीकार करके चिरवैधव्य पालन के द्वारा अधिकतर अपनी आत्मा की उन्नति और पराया हित करने में समर्थ हो, तो उसका वह कष्ट कष्ट ही नहीं है और जो लोग उसे वह कष्ट स्वीकार करने का उपदेश देते हैं वे उसके मित्र ही हैं, शत्रु नहीं। चिर वैधव्य पालन करने में अन्यान्य सत्कर्मों की तरह उसके लिये भी शिक्षा और संयम की आवश्यकता है। विधवा का आहार विहार संयम ब्रह्मचर्य के लिये उपयुक्त होना आवश्यक है। मछली मांस आदि शारीरिक वृत्तियों को उत्तेजित करने वाले आहार और वेशभूषा, विलास, विभ्रम आदि मानसिक प्रवृत्तियों को उत्तेजना देने वाले व्यवहार त्याग किये बिना चिर वैधव्य का पालन कठिन है। इसी कारण विधवा के लिये ब्रह्मचर्य की व्यवस्था है। यह ठीक है कि ब्रह्मचर्य पालन में इन्द्रिय तृप्तिकर आहार-विहारादि कुछ दैहिक सुखभोग ज़रूर छोड़ने पड़ते हैं, किन्तु उसके बदले में उससे शरीर निरोग, सबल, स्वस्थ होता है और मानसिक स्फूर्ति और सहनशीलता उत्पन्न होती है, जिसके फल से विशुद्ध स्थायी सुख पैदा होता है। अतएव, ब्रह्मचर्य पहिले कठोर जान पड़ने पर भी वास्तव में चिर सुख का आकर है। बिना समझे बूझे अदूरदर्शी लोग ब्रह्मचर्य की निन्दा करते हैं और बिना जाने ही भारत की व्यवस्थापक सभा के एक मनस्वी मेम्बर ने विधवा-विवाह आईन विधिबद्ध होने के समय हिन्दू विधवा के ब्रह्मचर्य पालन को भयंकर बतलाया था। इस सम्बन्ध में एक और कठिन बात है, विधवा कन्या या पुत्र वधू से ब्रह्मचर्य पालन कराना हो, तो उसके माँ बाप या सास ससुर को भी वैसे ही

ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये। किन्तु पहिले वह उनके लिये असुखकर होने पर भी परिणाम में शुभकर है और उनकी कन्या या पुत्र वधू के चिर-वैधव्य पालन जनित पुण्य का फल कहा जाता है। ब्रह्मचर्य पालन में दीक्षित विधवा अपने सुस्थ सबल शरीर के द्वारा तरह तरह के अच्छे कार्य करने का दृढ़ व्रत धारण कर सकती है; जैसे परिजन वर्ग की सुश्रूषा, परिवार के बच्चों का लालन-पालन और रोगियों की सेवा टहल तथा दवा पानी देना, धर्म चर्चा, स्वयं शिक्षा प्राप्त करना और परिवार की अन्य स्त्रियों को यथासंभव शिक्षा देना। इस प्रकार विधवा का परहित में लगा हुआ जीवन तीव्र, किन्तु दुखमिश्रित विषय सुखों में नहीं, प्रशान्त निर्मल आध्यात्मिक सुख में बीत जाता है। यह कल्पना का असम्भव चित्र नहीं है। ऐसे शान्तिमय, ज्योतिर्मय, पवित्र चित्र ने इस समय भी भारत के अनेक घरों को अपनी दिव्य ज्योति से उज्वल कर रक्खा है। मेरी अयोग्य जड़ लोहे की लेखनी उसके यथार्थ सौन्दर्य को अंकित करने में असमर्थ है। जिस प्रथा का फल खुद विधवा के लिये और उसके आत्मीय-परिजन वर्ग के लिये परिणाम में इतना शुभकर है उस प्रथा को आरम्भ में कठोर देखकर निर्दय कहना उचित नहीं है। [क्रमशः]

विनोद !

श्वेताम्बर जैन की विशेषताएं !

आगरे से प्रकाशित होने वाले श्वेताम्बर जैन पत्र में कतिपय ऐसी मौलिक विशेषताएं हैं जो कि अपने ढंग की निराली हैं; लाभदायक समझ उनका उल्लेख कर देना उचित है—

१—"श्वेताम्बर जैन" पत्र साप्ताहिक है, इस कारण उसे सात दिन पीछे प्रकाशित होकर एक महीने में ४ बार प्रकाशित होना चाहिये, किन्तु वह हफ्ते हफ्ते पीछे प्रकाशित होकर अपने पाठकों का अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करना उचित नहीं समझता। इसी कारण कभी १५ दिन पीछे, तो कभी १० दिन पीछे, तो कभी २० दिन पीछे प्रकाशित होता है किन्तु रहता साप्ताहिक ही है। उसका प्रथम अंक ५ अक्टूबर को प्रकाशित हुआ था, इस कारण ५ अप्रैल को उसे ६ मास होकर २४ अंक निकालने चाहियें, किन्तु उसने निकाले १९ ही अंक; केवल ५ अंक कम निकाले। सम्पादक जी ज़रा भूल गये। यदि इस अर्से में १८ अंक ही निकालते तो औसतन प्रतिमास ३ अंक बैठ जाते। खैर! ऐसी भूल हो जाना मामूली बात है।

दूसरा अंक १२ अक्टूबर को प्रकाशित हुआ तो तीसरा अंक २६ अक्टूबर को निकला। १ मार्च को १७ वाँ अंक निकला तो १८ वाँ अंक इस साप्ताहिक पत्र का निकला १५ मार्च को। पाठकों का मूल्यवान दिमाग़ पढ़ने में व्यर्थ हफ्ते २ खराब न हो, यह उद्देश इस पत्र का प्रशंसनीय है।

२—श्वेताम्बर जैन जहां समय की बचत करता है वहां इस महंगी के ज़माने में काग़ज़ की

कविवर-देवीदास—और उनकी रचनाएं

[लेखक—पं० जगमोहनलाल जी शास्त्री]

———×❋×———

पिछली तीन शताब्दियां हिन्दी के प्रतिभावान कवियों के इतिहास से भरी पड़ी हैं। इनके द्वारा जो लोकोपकार हुआ है वह वर्णनातीत है। आज तुलसी दास जी की रामायण को ही यह श्रेय प्राप्त है जोकि हिन्दू समाज का बच्चा २ रामचन्द्र जी के पवित्र चरित्र से परिचित है। आज भारत में आबाल वृद्ध वनिता रामायण का पाठ करते हुए देखे जाते हैं; रामभक्ति लोगों की रग २ में भर गई है। तुलसीदास जी के समकालीन जैन कवि बनारसीदास जी हो गए हैं, जिनकी अध्यात्म विषय की उत्कृष्ट रचनाएं आज हिन्दी संसार में अपना जोड़ा नहीं रखतीं। इनके बाद जैन समाज में अनेक कवियों ने जान फूंकी है। कविवर द्यानतराय जी, भूधर दास जी, दौलतराम जी, भैया भगवतीदास जी, कविरत्न भागचन्द्रजी, कविवर वृन्दावनजी, मंगतराय, रामकृष्ण, जिनदास, जवाहिर, हीराचन्द, कविवर हेमराजजी आदि अनेक कवियों की विभिन्न विषयों पर की गई उत्कृष्ट रचनाएं पूजन पद भजन स्तोत्र खण्डकाव्य आदि आज जैन समाज में बड़ी भक्ति और प्रेम से गाए जाते हैं। यह बात जोर देकर कही जा सकती है कि इन कवियों का ही प्रसाद है जो आज समाज के साधारण पढ़े लिखे लोग भी धर्म के विषय को तथा उसके गूढ़ तत्वों को समझते हैं, अन्यथा धार्मिक तत्व केवल संस्कृत भाषा की मजबूत और कठिन तिजोड़ी में बन्द पड़े रहते।

भी बनत कर लेता है। वैसे तो वह प्रायः ३ फार्म का निकला करता है किन्तु आश्चर्य, इसको मध्य अंक के समान कभी कभी दो ही फार्म का निकल कर व्यर्थ-व्ययनिरोध का आदर्श अन्य पत्रों के समक्ष रख देता है।

३—इसके सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक (जिसको कि अंग्रेजी वाले क्रमशः एडीटर, पब्लिशर, प्रिन्टर कहते हैं) एक श्रीमान जवाहरलाल जी लोढा हैं। आप बाबू, पंडित, सेठ में से किस पद से विभूषित हैं यह हमको पता नहीं। आपको जब कभी अपनी प्रशंसा श्वेताम्बर जैन में छापनी होती है तो अन्य पुरुष के रूप में "सम्पादक श्वेताम्बर जैन के पुत्ररत्न हुआ" "सम्पादक श्वेताम्बर जैन ने प्रभाव शाली भाषण किया" आदि रूप से छाप देते हैं।

४—यह पत्र सभ्यभाषी भी एक नम्बर का है। सम्मान्य पुरुषों के लिये मूर्ख, नालायक आदि मधुर शब्द लिख देना, इसके लिये साधारण बात है।

इसकी अन्य अनुपम विशेषताएं फिर लिखेंगे; अभी ४ ही काफी हैं।

निवेदक—स्वामी मस्तराम

दुःख है कि उक्त जैन कवियों की सुन्दर रचनाओं का जैसा प्रचार हिन्दी भाषा भाषियों में होना चाहिये था नहीं हुआ। यह हमारा ही प्रमाद है, यही कहना उचित है; अन्यथा जैन कवियों की रचनाओं में जो विशेषता है वह अन्यत्र बहुत कम पाई जाती है।

जैन कवियों ने केवल धार्मिक क्षेत्र का ही अवलम्बन किया है—शृंगारादि रस के काव्य-निर्माण को इन्होंने जनता के लिए उपादेय और कल्याण कारी नहीं समझा। कविवर बनारसी दास जी ने तो ऐसे कवियों को कुकवि कहा है। शृंगाररसिक कवियों की कल्पना की असत्यता का क्या ही सुंदर चित्र आपने खींचा है, देखिये—

मांसकी गरंथी—कुच-कंचन कलश कहैं,
　कहैं मुखचन्द्र जो श्लेष्मा को घर है।
हाड़ के दशन याहि हीरा मोती कहैं ताहि,
　मांस के अधर ओठ कहैं बिम्बा फल है॥
हाड़ दण्ड भुजा कहैं कोल नाल काम जुधा,
　हाड़ ही के थंभा जंघा कहैं रंभातरु है।
यों ही झूठी जुगति बनावें औ कहावें कवि,
　एते पर कहैं हमें शारदा को वर है॥

सत्रहवीं शताब्दि के अन्त में महा कवि देवीदास जी हो गए हैं। आपकी सुन्दर मनोहारिणी सरस और प्रौढ़ रचनाओं को देखकर आपके चरित्र का जो परिचय प्राप्त हो सका है उस पर सहसा विश्वास नहीं होगा, परन्तु पाठकों को समझ लेना चाहिये कि कमल जैसा सर्वाङ्ग सुंदर, सुगन्धि का भण्डार और कवि कल्पना का अनन्य आधार, कीचड़ जैसी मलिन जगह में ही उत्पन्न होता है।

परिचय

देवीदास जी दुगोड़ा नामक ग्राम के निवासी थे जो टीकमगढ़ स्टेट में एक छोटा सा गाँव है। यह ग्राम सिंघाड़ों के लिए प्रसिद्ध है, यहां का सिंघाड़ा वज़न में ४ से ५ तोला तक का होता है। एक सेर में २० से अधिक नहीं उतरते। बुन्देलखण्ड प्रान्त में जैनियों की तीन जातियों का निवास पाया जाता है—परवार, गोलापूर्व और गोलालारे। अतएव यह अनुमान किया जाता है कि इन तीनों में से ही किसी वंश को आपने अपने जन्म से अलंकृत किया होगा। देवी दास जी लिखना और पढ़ना नहीं जानते थे, फिर भी आप ऐसे महाकवि हुए, यह बड़े आश्चर्य की बात है। आपके साथ एक आपके परम मित्र गोपाल दास जी रहा करते थे जो कि आपके कार्य में बड़े मददगार थे। वे स्वयं भी बुद्धिमान थे और उक्त कवि की न्यूनता की पूर्ति किया करते थे। आपके गुरु या शिक्षा देने वाले संभवतः कमलापति नाम के कोई सज्जन थे जो केलगमा नामक ग्राम के रहने वाले थे। कवि ने "बुद्धिबावनी" नामक काव्य के अन्त में अपने परिचय के लिए एक छंद दिया है, जिसमें उक्त बातों की पुष्टि होती है—

संवतु साल अठारह से, पुनि द्वादस और धरौ अधिकारे।
चैत सुदी परमा गुरुवार, कवित्त जवै इकठे करधारे।
गंगह रूप गोपाल कहै, कमलापति सीख सिखावन हारे।
केलगमा पुनि ग्राम दुगोडह के सब ही बस वासन हारे।

एक वृद्ध सज्जन जो उसी प्रान्त के निवासी हैं, उनके सम्बन्ध में ऐसा कहते हैं कि गोपाल दास और कमलापति दोनों ही उनके सखा थे; गुरु इनमें कोई नहीं था। देवीदास जी ही इन सब में बुद्धिमान और चतुर थे। ये दोनों ही नहीं बल्कि ८ सज्जन ऐसे थे जो कवि के साथ सदा रहते थे और सब ही बुद्धिमान और आसपास के ग्रामों के रहने वाले थे, जिनमें दो तीन नाम और ग्राम हो सके हैं—दुगना ग्राम के छगनीराम जी, कारी के कमल नयन जी, तथा ललितपुर के लल्ला प्रसाद जी आदि। गोपाल दास जी को कवि ने गंगारूप कहा है। अन्यत्र सखा गुपाल करके भी लिखा है।

कहते हैं कि आपके साथ में एक बालक रहता था जो पढ़ाई लिखाई के कार्य की मदद किया करता था। कवि ने उसका नाम रखा था 'चश्मा'। सम्भवतः गोपाल दास जी का ही यह नाम रखा गया हो। अस्तु—

एक बार आप कार्यवश दूसरे गांव में गए। आपका नाम प्रसिद्ध था ही, उस ग्राम के लोगों ने आपका बड़ा सत्कार किया। रात्रि को आपसे शास्त्र जी पढ़ने का आग्रह किया। आप पढ़ नहीं सकते थे, अतएव आपने विचार किया कि ये लोग मुझे कवि जानकर बहुत पढ़ा लिखा विद्वान समझते हैं, इसी लिए बार २ आग्रह कर रहे हैं। आपने उत्तर दिया कि भाई मेरे साथ मेरा 'चश्मा' नहीं है और बिना चश्मे के मैं आपको कुछ भी न सुना सकूंगा। लोगों ने आपके पास अनेक चश्मे लाकर रख दिये। तब आपने कहा कि भाई, इन अचेतन चशमों से मेरा काम नहीं निकलता; मेरा चश्मा तो सचेतन है, यदि कोई सचेतन चश्मा मेरी मदद के लिए दिया जावे तो मैं आपको कुछ सुना सकूंगा। तब श्रोताओं में से एक सज्जन आपके पास आए और वे शास्त्रजी पढ़ते गए और आप उसका व्याख्यान करते गए। लोगों ने आपसे अनेक गूढ़ प्रश्न किये, जिनका आपने बड़ी योग्यता-पूर्वक समाधान किया और जिसे सुनकर लोग आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो गए।

कवि ने एक जगह अपने को 'जामसुत' करके लिखा है, जिससे उनके पिता का नाम प्रगट होता है।

आपने जो कविताएं रची हैं उनमें कुछ के नाम जो प्राप्त हो सके हैं वे इस प्रकार हैं—

(१) परमानन्द स्तोत्र (२) जीवचतुर्भेदादि निरूपण (३) जिनांतरावली (४) धर्मपच्चीसी (५) पंचपद पच्चीसी (६) दशधासम्यक्त्व (७) पुकार पच्चीसी (८) वीतराग पच्चीसी (९) दर्शन छत्तीसी (१०) बुद्धिबावनी (११) त्रिमूढ़ता अडतीसी (१२) शीलांग चतुर्दशी (१३) सप्तव्यसन दशक (१४) विवेक बत्तीसी (१५) स्वजोग रासो (१६) मारीचि भवांतावली (१७) पद पंक्ति (१८) पञ्चवर्ण कवित्त (१९) जोग पच्चीसी (२०) बारह भावना (२१) उपदेश पच्चीसी (२२) जिनस्तुति (२३) चक्र विभूति (२४) इन्द्रियविषय (२५) वर्तमान चौबीसी विधान।

इनके सिवाय और भी अनेक भजन, पूजन, छंद, स्तोत्र, और स्त्रियों के विवाह आदि माँगलिक अवसरों पर गाने लायक गारी आपकी बनाई हुई पाई जाती है। उक्त काव्यों में आपने अनेक छन्दों

का उपयोग किया है; जैसे—सवैया, कवित्त, दोहा, सोरठा, चौपाई, मनहर, सुन्दर आदि। अनेक रागों में पद बनाए हैं, जैसे—सोरठ—जैजैवन्ती—गौरी—नटराग—प्रभाती—विलाविल—ईमन—सारंग दादरा—धनश्री—कान्हड़ा, आदि।

अलंकार की दृष्टि से आपकी रचना सर्वोत्कृष्ट नहीं तो उत्कृष्ट दर्जे की ज़रूर कही जा सकती है। आपने कहीं कहीं गतागत छंद का उपयोग किया है अर्थात् जिसे प्रारंभ से अंत तक पढ़िये, चाहे अंत अक्षर से प्रारम्भ कर आदि तक पढ़िये एक ही बात पाई जावेगी; नमूना देखिए—

सुधी निपुन गुर वर नऊं; नरवर गुन पुनि धीसु।
सुखी सरन अरि कस करैं, कसकरि अनरस खीसु॥

प्रत्येक पंक्ति को दोनों तरफ़ से पढ़ा जा सकता है, फिर भी पद में निरर्थकता या पुनरुक्तता का दोष नहीं है। और भी देखिये—

मास रहैं वन चार अपीत, तपी अरचा न वहैं रसमा।
माछर भाव तजे सब हैं; स सहैं बस जे तवभार छमा॥
मार हनै जित नेह नमौं सु.सुमौन हतं तजि नेह रमा।
मान तजे तप आनिधरे न तरे धनि आप तजे तनमा॥

अनुप्रास का उदाहरण देखिए—

देवी सेवी सर्व जिन, खेवी दशविधि धूप।
लेवी सुरपद जाइकै. जेवी परम अनूप॥

चित्रबंध काव्य भी आपने अनेक बनाए हैं; अधिकतर निम्न प्रकार के चित्र काव्य आपके रचे हुए पाए जाते हैं :—

कटारबंध—पर्वतबंध—कमलबंध—चूलिका-बंध—चन्द्रबंध—कपाटबंध—मुकुटबंध—धनुषबंध सर्व तो मुख—आदि।

अनेक काव्यों में दो २ तीन २ गुण भी पाए जाते हैं; जैसे—गतागत छंद मिश्रित कमल बंध, पर्वतबंध होते हुए भी पद गुप्त, इत्यादि।

अनेक प्रश्नोत्तर ऐसे निबद्ध हैं कि जो प्रश्न-कारक वाक्य हैं वे ही वाक्य उत्तरदायक हैं जैसे—

को कवि बरनै, मूढ को परम धम्म बिछोही।
को परहित उपगार वंत देखो जगटोही॥
को पकरै दुख फंद बंध, का या जग कारन!
का या जग में झूठ, का जु आतम जग तारन॥
का मरम दुष्ट देख्यो प्रकट, का महंत करता सुबल।
या प्रश्न यही उत्तर बचन, अर्थ भेद करिये सरल॥

स्पष्टार्थ देखियेः—

प्रश्न—को कवि बरणैं—कवि कौन कहे गए हैं।

उत्तर—कोक बिबरणैं अर्थात् जो कोक शास्त्र का विवरण कर सकें वे (कवि कहे गए हैं)।

प्रश्न—परम धम्म बिछोही मूढ़ को अर्थात् परमधर्म को विछोह करने वाला मूढ़ कौन है।

उत्तर—पर मधम्म बिछोही मूं ढको, अर्थात् पर के बीच में विछोह डालकर जो चुप हो जावे वही मूढ़ है।

प्रश्न—को परहित उपगार वंत—परहित उप-कारी कौन है।

उत्तर—कोप रहित उपगारवंत—जो क्रोधरहित क्षमाशील हो सो उपकारी है।

प्रश्न—को पकरै दुख—दुख और दर्द फंद को कौन जान बूझकर पकड़ता है।

उत्तर—कोप करै दुख फंद बंध—क्रोध ही दुख और दंद फंद कराता है।

प्रश्न—का या जग कारण—संसार भ्रमण का कारण क्या है।

उत्तर—काया जग कारण—काया याने शरीर ही संसार का कारण है।

प्रश्न—का या जग में झूठ—संसार में झूठ कौनसी चीज़ है।

उत्तर—काया जग में झूठ—शरीर ही झूठ है यानी विनाशशील है।

प्रश्न—का जु आतम जगतारन—आत्माको संसार से उद्धार करने वाला कौन है।

उत्तर—काजु आतम—आत्मा का कार्य करना ही जगतारण है।

प्रश्न—का मरम दुष्ट देख्यो—मर्म भेदी दुष्ट कौनसा है।

उत्तर—काम रम दुष्ट—कामेच्छा ही मर्म भेदने वाली है।

प्रश्न—का महंत करता सुबल—बलवान और महान् पुरुष कौन है।

उत्तर—काम हंत करता सबल—कामेच्छा का हनन कर्ता ही बलवान है।

ऐसे २ अनेक छन्द हैं। विस्तार भय से जिनका विवरण यहां नहीं दिया गया। विवाह के अवसर पर समधी और समधिन को गालियाँ प्रदान करने की बुरी लोक रूढ़ि प्रचलित है। आपने यह सोच कर कि मांगलिक अवसरों पर इनकी सर्वथा रोक असंभव है, अनेक गारियां बनाई हैं। जो यथार्थ में आध्यात्मिक भावों से ओत प्रोत हैं और द्वयर्थक हैं। नमूने के लिए एक छंद यहाँ लिखा जाता है—

या समधो प्रकटी नहीं, पुनी कबहुँ तुम पास।
समिधिन कीनी सुमति की, तज दुरमति की आस॥

यहाँ समधी शब्द श्लेषात्मक है। समधी लड़का लड़की के पिता का वाचक है और समता रूपी बुद्धि का वाचक है।

उक्त उदाहरणों से पाठकों को कवि की गम्भीर बुद्धि, उत्कट ज्ञान तथा कवित्व शक्ति का परिचय सहज ही हो सकता है। दुःख है कि कवि की उक्त रचनाएं अभी तक प्रायः अप्रकाशित हैं—पुस्तक प्रकाशकों को ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन करने के लिए मैं इस लेख द्वारा प्रेरणा करता हूँ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन परीक्षा के कोर्स में जैन हिन्दी साहित्य के इन अमूल्य रत्नों को प्रवेश कराने का उद्योग होना चाहिये ताकि हिन्दी भाषा भाषियों को इनका परिचय मिल सके और धर्म का प्रचार हो। यदि पाठकों ने इसे पसंद किया तो कवि के उल्लिखित ग्रंथों से कुछ कविताएं किसी अंक में पुनः प्रकाशित की जायंगी।

[२१]

केवली के कवलाहार के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए दरबारीलाल जी ने केवली के निद्रा के अस्तित्व को भी प्रमाणित करने की चेष्टा की है। आपने इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित शब्द लिखे हैं:—"केवलज्ञान के इस कल्पित रूप की रक्षा के लिए भगवान के निद्रा का अभाव मानना पड़ा है और निद्रा को दर्शनावरण का कार्य कहना पड़ा है, जब कि ये दोनों बातें अविश्वसनीय और तर्क विरुद्ध हैं"।

दरबारीलाल जी के इस वक्तव्य की परीक्षा के लिए निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है:—

(१) क्या केवली के निद्रा का अस्तित्व है ?

(२) क्या निद्रा को दर्शनावरण का भेद स्वीकार करना तर्क विरुद्ध है ?

केवली नींद लेते हैं या उनके निद्रा का सद्भाव है इस बात के समर्थन में विद्वान लेखक ने निम्नलिखित शब्द लिखे हैं:—"जो भोजन करता है उसे नींद लेनी पड़ती है, इसलिए केवली भी नींद लेते हैं"। केवली कवलाहारी नहीं इस बात का निर्णय हम इस ही लेखमाला के इससे पहिले लेख में कर चुके हैं। जब कि केवली के भोजन का ही अभाव है तब उनके इस ही के आधार से होने वाला निद्रा का भी अस्तित्व किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि केवली के निद्रा का सद्भाव नहीं। निद्रा को दर्शनावरण का भेद स्वीकार करने में दरबारीलाल जी ने निम्नलिखित आपत्तियां उपस्थित की हैं:—

(१) चक्षुदर्शन आदि चार भेदों से अतिरिक्त अगर कोई पाँचवां दर्शन होता तो उसे घातने के लिए निद्रा आदि दर्शनावरण माने जा सकते थे।

(२) निद्रा अवस्था में अगर हम देख नहीं सकते तो जान भी तो नहीं सकते, इसलिये निद्रा आदि को दर्शनावरण के समान ज्ञानावरण का भेद क्यों न मानना चाहिये।

दर्शन के चार और चार ही भेद हैं, यह बात सत्य है किन्तु ऐसा होने पर भी निद्रा को दर्शनावरण के भेदों से पृथक नहीं किया जा सकता। किसी भी वस्तु के जितने भेद हैं या हो सकते हैं उसको ढकने वाले भी उतने ही प्रकार के हों यह नियम नहीं बनाया जा सकता। दृष्टान्त के लिये यों समझियेगा कि एक चौखूटा लैम्प है जिसकी हर एक तरफ़ (Side) भिन्न २ परिमाणवाली है। एक का परिमाण यदि दो दो इञ्च है तो दूसरी का तीन। इसही प्रकार तीसरी का चार तो चौथी का पाँच। इस लैम्प को इसकी प्रकाशित अवस्था में दो इञ्च के

आवरण से भी ढक सकते हैं और तीन इंच के आवरण से भी; इसही प्रकार चार और पांच इंच के आवरणों से भी। जहां कि हम इस लेम्प को इस प्रकार के आवरणों से ढक सकते हैं वहीं एक ऐसे आवरण से भी ढक सकते हैं जो इसके चारों तरफ आ जाय। पाँचवें आवरण और पहिले चार आवरणों के कार्यों में अन्तर है। जहां पाँचवां लेम्प के प्रकाश को बिलकुल रोकता है, वहाँ पहिले चार उसके प्रकाश के एक २ हिस्से को रोकते हैं। यही व्यवस्था दर्शनावरण के भेदों के सम्बन्ध में है। दर्शनावरण के पहिले चार भेद दर्शन की अवस्था विशेषों का आवरण करते हैं, उनको प्रगट नहीं होने देते। वही इसके अगाड़ी के भेद, निद्रा आदिक पाँच, दर्शन की किसी भी अवस्था को नहीं होने देते! चक्षु दर्शनावरण के समय चक्षु दर्शन, अचक्षुदर्शनावरण के समय अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शनावरण के समय अवधि दर्शन और केवल दर्शनावरण के समय केवल दर्शन नहीं होते किन्तु निद्रा आदिक के समय दर्शन के इन चारों भेदों में से कोई भी नहीं हो पाता! अतः जिस प्रकार चार तरफ़ वाला लेम्प भी चार से अधिक प्रकार के आवरणों से ढका जा सकता है, उसही प्रकार चार प्रकार का दर्शन भी। दूसरी बात यह है कि निद्रा आदिक दर्शन के भेदों को नहीं घातते, किन्तु समूचे दर्शन को घातते हैं, जैसाकि हम अभी बतला चुके हैं। अतः इस दृष्टि से भी दर्शन के चार भेदों का दर्शनावरण के भेदों पर कोई प्रभाव नहीं। उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि दर्शन के भेदों की चार संख्या का निद्रा के दर्शनावरण न मानने पर कोई प्रभाव नहीं।

प्रश्न—दर्शनावरण के इन नौ भेदों को शास्त्रकारों ने देशघाति और सर्वघाति इस प्रकार दो भेदों में विभाजित किया है। आदि के तीन को देशघाति और अन्त के छः को सर्वघाति माना है। केवल दर्शनावरण और निद्रादिक पाँच सर्वघाति हैं। आपने केवल-दर्शनावरण को भी पर्याय विशेष को आवरण करने वाला और चक्षुदर्शनावरण आदि के साथ लिखा है। क्या आपका इस प्रकार का प्रतिपादन सिद्धान्त विरुद्ध नहीं है?

उत्तर—सर्वघाति शब्द के दो अर्थ हैं—एक किसी भी गुण को सब अवस्थाओं का घात और दूसरा उसकी पूर्ण विकसित अवस्था का घात! केवलदर्शन दर्शन की पूर्ण विकसित अवस्था है और केवल दर्शनावरण उसको घातता है, अतः यह सर्वघाती कहलाता है। इसके अतिरिक्त निद्रादिक पांच दर्शन की किसी भी अवस्थाको नहीं होने देतीं, अतः वे भी सर्वघाति हैं। केवल दर्शनावरण का, चक्षु दर्शनावरण, अचक्षु दर्शनावरण और अवधि दर्शनावरण के साथ परिगणन और उसको अवस्था विशेष का घातक बतलाने का यह तात्पर्य नहीं कि हमने उसको सर्वघाती स्वीकार करने से इन्कार किया है या वह सर्वघाती नहीं है। किसी भी गुण की दोनों ही प्रकार की अवस्थायें होती हैं—एक पूर्ण विकसित और दूसरी अपूर्ण विकसित। यही बात दर्शन के संबंध में है। पहिले तीन दर्शनावरण दर्शन की अपूर्ण विकसित अवस्था को रोकते हैं और चौथा पूर्ण विकसित अवस्था को। पूर्ण विकसित हो या अपूर्ण विकसित, दोनों ही अवस्था विशेष हैं तथा अवस्था विशेष का घात अवस्था मात्र का घात नहीं; यही बात है जो अवस्था विशेष के घातक एक आवरण के सद्भाव में भी उस

ही गुण की दूसरी अवस्था बनी रहती है । केवल दर्शनावरण का उदय बारहवें गुणस्थान तक रहता है किन्तु फिर भी दर्शन की अन्य सबही अवस्थायें बारहवें गुणस्थान तक हुआ करती हैं । केवल दर्शनावरण को दर्शनावरण के पहिले तीन भेदों के साथ परिगणन करने से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही था कि ये सब ही अवस्था विशेष के घाती हैं । उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि हमारे इस विवेचन में किसी भी प्रकार सिद्धान्त विरोध की गुंजायश नहीं है ।

निद्रा अवस्था में दर्शन नहीं होता यह सत्य है, किन्तु ज्ञान नहीं होता यह मिथ्या है । निद्रा अवस्था में यदि ज्ञान न होता होता तो हमको नींद ठीक आई या ठीक नहीं आई इस बात का पता न चलता ※ । निद्रा अवस्था में स्वप्न ज्ञान होता है, यह एक सर्वजन प्रसिद्ध बात है । यदि निद्रा में ज्ञान का अभाव होता तो स्वप्न ज्ञान किस प्रकार हो सकता था ।

प्रश्न—ज्ञान के पहिले दर्शन अवश्य होता है । यदि निद्रा अवस्था में ज्ञान माना जायगा तो दर्शन भी अवश्य मानना पड़ेगा । इस प्रकार निद्रा दर्शन घातक भी सिद्ध न होगी ।

उत्तर—श्रुतज्ञान का लक्षण करते हुए सूत्रकार उमास्वामी ने लिखा है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है । इसका यह तात्पर्य नहीं कि हर एक श्रुतज्ञान के पहिले मतिज्ञान का होना अनिवार्य है । यदि ऐसा होता होता तो श्रुतज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान न होता होता* । सूत्रकार के वक्तव्य का भाव यही है कि सर्वप्रथम श्रुतज्ञान अवश्य मतिज्ञान पूर्वकही होगा । इस श्रुतज्ञान के आधार से होने वाले श्रुतज्ञान या ज्ञानों के लिए मतिज्ञान की आवश्यकता नहीं । इसही प्रकार की व्यवस्था दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग के संबंध में है । दर्शनोपयोग पूर्वक ज्ञानोपयोग होता है, इसका भी यह भाव नहीं कि ज्ञानोपयोग पूर्वक ज्ञानोपयोग नहीं होता । यदि यह बात सत्य होती तो फिर जिस प्रकार अवग्रह के पूर्व दर्शन होता, उसही प्रकार ईहा, अवाय और धारणा आदि के पूर्व भी दर्शनोपयोग का होना अनिवार्य होता !

ज्ञानोपयोग के पहिले दर्शनोपयोग होता है,

※ अस्ति चात्र स्वापलक्षणार्थ निरूपणमेतावत्कालं निरन्तरं सुप्तोहमेतावत्कालं सान्तरमित्यनु स्मरण प्रतीतेः । न च स्वापलक्षणार्थानुभवेपि सुप्तोत्थानानन्तरं गाढोहं तदा सुप्तइत्यनुस्मरणं घटते—तस्यानुभूत विषयत्वेनानुभवाविनाभावित्वात् । अन्यथा घटाद्यर्थाननुभवेपि तथानुस्मरण संभवात्कुतस्तदनु भवोपि सिद्धयेत् ? न च मत्तमूर्छिताद्यवस्थायामपि विज्ञानाभावाद् दृष्टान्तस्य साध्य विकलतेत्याशङ्कनीयं तदवस्थातः प्रच्युतस्योत्तर कालेमयान किञ्चिदप्यनुभूतमित्यनुभवाभाव प्रसङ्गात् स्मृतेरनुभव पूर्वकत्वात् । अतो येनानुभवेन सतात्मा निखिलानुभव विकलोनुभूयते तस्यामवस्थायां सोऽवश्याभ्युपगन्तव्यः

—प्रमेयकमल मार्तण्ड ९८

* तद्यथा—शब्दपरिणत पुद्गलस्कन्धादाहित वर्ण पद वाक्यादिभावाच्चक्षुरादि विषयाच्च आद्यश्रुत विषय भावमापन्नाद् व्यभिचारिणः कृतसंगी निर्जनोघटाजल धारणादि कार्य सम्बन्ध्यन्तरं प्रतिपद्यते धूमादेर्वाग्न्यादि द्रव्यं तदा श्रुतात् श्रुतप्रतिपत्तिरिति । —सर्वार्थ सिद्धि १—२०

इसका तात्पर्य यही है कि सर्व प्रथम ज्ञानोपयोग के पूर्व दर्शनोपयोग होता है और फिर ज्ञानोपयोग पूर्वक भी ज्ञानोपयोग हो जाया करते हैं। यदि इस बात को स्वीकार नहीं किया जायगा तो फिर मतिज्ञान पूर्वक श्रुतज्ञान और श्रुतज्ञान पूर्वक श्रुतज्ञान होते हैं यह सब व्यवस्था मिथ्या हो जायगी तथा इस प्रकार का होना युक्ति और अनुभव दोनों के ही प्रतिकूल है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ज्ञान के पहिले दर्शन का होना अवश्यंभावी नहीं! जबकि ज्ञान और दर्शन का अविनाभाव ही नहीं तब निद्रा में ज्ञान को मान कर भी दर्शन को स्वीकार करना कोई अनिवार्य नहीं। इससे प्रगट है कि निद्रा में ज्ञान के होने पर भी दर्शन का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता; अतः दरबारीलाल जी का लिखना कि निद्रा में ज्ञान मानने से दर्शन अवश्य मानना पड़ेगा और इस प्रकार निद्रा दर्शन घातक भी न रहेगी बिलकुल निराधार है।

गुण का कभी भी नाश नहीं होता। जहाँकि गुण का नाश नहीं होता, वहाँ उसमें प्रति समय परिणमन भी होता रहता है और उसही परिणमन का नाम पर्याय है; अतः गुण हमको किसी न किसी अवस्था में ही मिलता है। चैतन्य भी एक गुण है अतः यह भी अवस्था में ही रहता है। चैतन्यगुण की इन अवस्थाओं को शास्त्रकारों ने दर्शन और ज्ञान इन दो भेदों में विभाजित किया है। निद्रा अवस्था में चैतन्य गुण दर्शन अवस्था में तो रहता नहीं है; अतः इस दृष्टि से भी निद्रा में ज्ञान का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

प्रश्न—जहाँ तक कि चैतन्य का निद्रा में भी अवस्था विशेष में रहने की बात है वहां तक तो हम आपसे सहमत हैं, किन्तु जब आप इस अवस्था को ज्ञान स्वरूप स्वीकार करते हैं तभी मत भेद हो जाता है। चैतन्य गुण की इस अवस्था को ज्ञान स्वरूप न मान कर भी लब्धिरूप स्वीकार किया जा सकता है। अतः इस आधार से निद्रा में ज्ञान प्रमाणित नहीं होता।

उत्तर—दरबारीलाल जी भी निद्रा में ज्ञान को लब्धि रूप मानते हैं, जैसा कि उनके शब्दों से प्रगट है—"निद्रावस्था में उपयोग रहे चाहे न रहे परन्तु लब्धि तो रहती है", किन्तु यह बात मिथ्या है। लब्धि रूप होना चैतन्य की कोई अवस्था विशेष नहीं, किन्तु अवस्था विशेष में शक्ति विशेष का होना है। स्पष्टता के लिए यों समझियेगा कि एक फुट लम्बा एक रबड़ का टुकड़ा है जिसमें दस फुट तक खिंचने की शक्ति है, किन्तु उससे किसी ऐसी वस्तु का सम्बन्ध है जिससे वह ऐसा नहीं होपाता। ज्यों २ और जितना २ उस वस्तु को रबड़ के उस टुकड़े से दूर किया जाता है त्यों २ उसमें उतनी २ शक्ति प्रकट होती जाती है और जब वह इस से बिलकुल दूर हो जाती है तब इसमें दस फुट खिंचने की शक्ति प्रगट होजाती है। यहाँ तीन बातें हैं—एक प्रतिबन्ध सहित शक्ति, दूसरी प्रतिबन्ध रहित शक्ति और तीसरी शक्ति के अनुसार कार्यावस्था। यही बात चेतना या ज्ञान के सम्बन्ध में है। एक प्रतिबन्ध सहित चेतना, दूसरी प्रतिबन्ध रहित चेतना और तीसरी उसकी व्यापनावस्था। प्रतिबन्ध सहित चेतना वह है जिस पर ज्ञानावरण मौजूद है, प्रतिबन्ध रहित चेतना का वह हिस्सा है जिस पर से

(शेषांश टाइटिल के पृष्ठ २ पर देखो)

साहित्य समालोचना

नारीशिक्षादर्श—लेखक श्रीमान् बा० उग्रसेन जी वकील रोहतक; प्रकाशक जैन मित्र मंडल देहली। पृष्ठ संख्या १८० और मूल्य केवल छह आने है। कागज़ छपाई सफाई अच्छी है। टाइप मोटा है। इस पुस्तक में मिथ्यात्व निषेध, गृहस्थ के आवश्यक षट्कर्म, पत्नी कर्तव्य, जननी, शिशु, चौका, स्वास्थ्य, विधवा कर्तव्य आदि १० प्रकरण रक्खे हैं। स्त्रियों को सब प्रकार की उचित शिक्षा प्रदान करने के लिये लेखक महानुभाव ने प्रयत्न किया है, जिसमें कि बहुत अंश तक सफल हुए हैं। यह पुस्तक प्रत्येक स्त्री के पढ़ने योग्य है। प्रत्येक घर में इस ट्रैक्ट का होना आवश्यक है। ऐसा साहित्य ही समाज का उत्थान करता है। मित्र मंडल ने भी इसे प्रकाशित करके महिलासमाज का उपकार किया है।

टीकरी (मेरठ) निवासी श्रीमान पंडित श्यामलालसिंहजी जैन ने १. जन्मसुधार, २ जाति धर्म रक्षा, ३. विधवा रत्नमाला, ४. महावीर स्वामी का जीवन, ५. ढूंढक मत तारकीय लीला नामक पांच पुस्तकें समालोचनार्थ भेजी हैं। पुस्तक मोटे टाइप में साधारण कागज़ पर सफाई से छपी हैं। मूल्य तीन पुस्तकों का दो दो आने, चौथी पुस्तक के तीन आने और अंतिम १७२ पृष्ठ वाली पुस्तक के छह आने है।

प्रथम तीन पुस्तकें क्रमशः अभक्ष्य भक्षण निषेध छुआछूतलोप निषेध और विधवा विवाह निषेध, विषय पर लिखी गई हैं, जो कि अपने अपने विषयों पर साधारणतया अच्छा प्रकाश डालती हैं। अंतिम दोनों पुस्तक स्थानकवासी सम्प्रदाय के लिये लिखी गई हैं उनमें लेखक ने स्थानकवासी सूत्र ग्रंथों के अनुचित उल्लेखों पर प्रकाश डाला है और अपील की है कि स्थानकवासी उन प्रकरणों का सुधार करें।

लेखक का परिश्रम नया है, इस कारण पुस्तकों में वे अपना भाव प्रगट कर पाये हैं; भाषा ज़रा मजी हुई नहीं है। उन्होंने अनेक ग्रन्थ देख कर अनेक प्रकरणों का संचय किया है; पाठकों के लिये लाभदायक है।

रिपोर्ट—श्री दि० जैन सुकृत फण्ड मुसाने की इस वर्ष की रिपोर्ट श्रीमान सेठ राइमल मेघराज जी ने भेजी है। इस फंड में बड़वानी तथा तालनपुर क्षेत्रों का, दो पाठशालाओं का, एवं बोर्डिंग हाउस (बड़वानी) औषधालय आदि ९ संस्थाओं का रुपया जमा है जो कि ९८७७९ रुपयों का (जिसमें कि सूद की रकम भी सम्मिलित है) संरक्षण करता है तथा रकम को उचित स्थानों पर लगाकर असमर्थ जैन भाइयों को सहायता करता हुआ अच्छा सूद उत्पन्न करता है; फंड का कार्य प्रशंसनीय है। प्रत्येक संस्थाओं की रकम की रक्षा और वृद्धि इस ढंग पर की जावे तो बहुत लाभ हो।

जगदुद्धारक भगवान महावीर—श्रीमान् राजमल जी पवैया भोपाल ने स्वयं लिखकर इस ट्रैक्ट को प्रकाशित किया है। मूल्य कुछ नहीं

रक्खा है। ट्रैक्ट एक फ़ार्म का अच्छा उपयोगी है। अजैन लोगों में इसको वितरण करके प्रचार करना चाहिये।

सामाजिक अत्याचारों का दुष्परिणाम—लेखक पं० मुन्नालाल जी समगोरया कन्नड़। प्रकाशक जिनधर्म प्रचारक समिति कन्नड़। मूल्य दस आना। प्रस्तुत पुस्तक एक उपन्यास है। इसमें अनमेल विवाह, विधवाओं पर अत्याचार आदि सामाजिक अत्याचारों का दुष्परिणाम दिखाया गया है। किसी २ स्थल पर अस्वाभाविकता आ गई है और कहीं २ अश्लीलता भी झलकती है। पुष्पलता का प्रथम सम्मिलन के दिन ही इतना व्यग्र होना कुलांगना की दृष्टि से उचित नहीं जँचता। सती साम त्रिवेणी का इकलौती विधवा बहू पुष्पलता को घर के नौकरों से छेड़ छाड़ करने का उपदेश देना और यह कहना कि मेरे सब खिलाये हुए हैं—अस्वाभाविक और अश्लील है। पुस्तक साधारणतया रोचक है।

राजपूताने के जैन वीर—ले० अयोध्या-प्रसाद गोयलीय "दास"। भूमिका लेखक—रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा। पृष्ठ सं० ३५२, मूल्य दो रुपया। हिन्दी विद्या मन्दिर, पहाड़ी धीरज, देहली के पते से मिलती है।

वीरों का इतिहास कायर जाति के जीवन को जागृत करने की कुञ्जी है। जो जाति बहुत काल तक पराधीन रहने के कारण अपने स्वाभिमान को खो बैठती है, जिसकी रगों में बहने वाला लहू ठंडा हो जाता है, उसकी रगों में नया जोश भरने के लिये वीरों का इतिहास संजीवनी औषध का काम करता है। भूमिकालेखक के शब्दों में वीरता किसी जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। भारत में प्रत्येक जाति में वीरपुरुष हुए हैं, परन्तु इतिहास के अभाव में उनमें से अधिकांश के नाम तक लोग भूल गये हैं। जैन वीर भी उनमें ही सम्मिलित हैं। इस समय जब भारत के प्रमुख नेता तक जैनधर्म की अहिंसा पर भारत को कायर बनाने का लांछन लगाते हैं—विस्मृति के गर्त में लुप्त जैन वीरों को इतिहास की रंग भूमि में उपस्थित करके "दास" महोदय ने बड़ा उपकार किया है। सचमुच यह पुस्तक "खूने जिगर" से लिखी गई है। कम से कम प्रत्येक जैन स्त्री पुरुष को एक बार यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये और अपने पूर्वजों की वीरता तथा अपनी कायरता पर चार आंसू गिराकर लेखक के उत्साह को बढ़ाना चाहिये। लेखक के सुर में सुर मिलाकर हम भी भावना करते हैं कि—

हर दर्द मन्द दिल को रोना मेरा रुलादे।
बेहोश जो पड़े हैं शायद उन्हें जगादे॥

चम्पावती जैन पुस्तकमाला के चार पुष्प—भा० दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला छावनी के प्रकाशन विभाग से निम्न चार ट्रैक्ट प्रकाशित हुए हैं:—

१. जैन मत नास्तिक नहीं है—मि० हर्बर्ट वारन के अंग्रेज़ी लेख का हिन्दी अनुवाद है। इसमें जैनधर्म को नास्तिक बतलाने वालों के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर, लेखक ने बड़ी योग्यता से दिया है। यह उक्त पुस्तकमाला का प्रथम पुष्प है जो दूसरी बार छपकर प्रकाशित हुआ है—मूल्य एक आना।

२. जैन धर्मसन्देश —उक्त पुस्तक माला का १५ वां पुष्प, लेखक पं० अजितकुमार जी शास्त्री मुलतान सम्पादक "जैन दर्शन", मूल्य केवल एक आना; इसमें जैनधर्म के चार अनुयोगों का संक्षेप में बड़ी सुन्दर रीति से प्रतिपादन किया गया है। पढ़ने योग्य है।

३. आर्यसमाज भ्रमोन्मूलन—उक्त माला का १६ वां पुष्प, ले० पं० अजितकुमार जी शास्त्री सं० "जैनदर्शन" मुलतान, मूल्य एक आना।

इसमें आर्यसमाज के "जैन भ्रमोन्मूलन" नामक ट्रैक्ट का करारा जवाब दिया गया है। पुस्तक उपादेय है।

४. आर्यसमाज आगरा के ५० प्रश्नों का उत्तर—लेखक उक्त शास्त्री जी, मूल्य दो आना।

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है—जैनधर्म का प्रचार करने के इच्छुक भाइयों को संघ के ट्रैक्ट जैन तथा अजैन जनता में बिना मूल्य वितरित करने चाहियें।

* समाचार-संग्रह *

कृपया विद्वानगण उत्तर देवें

(१) वृद्ध अवस्था में शरीर के कमज़ोर होने में कौनसे कर्म की कौनसी प्रकृति कारण है?

(२) जब हमारी भूत भविष्य वर्तमान परणति को केवलियों ने जान लिया तो ज़रूरी है कि हमारी परणति उसी प्रकार होगी, उसके विरुद्ध नहीं हो सकती। इसलिए हमारा पुरुषार्थ व्यर्थ है या नहीं; यदि व्यर्थ नहीं तो क्यों?

(३) विमान जोकि अचेतन पदार्थ हैं मित्रों दुशमनों और मन्दिर आदिकों के ऊपर स्वयं ठहर जाते हैं, उसमें क्या कारण है।

(४) क्या पंचम काल में सम्यग्दृष्टियों की कोई खास गणना है यदि है तो कितनी और कौन से सम्यग्दृष्टियों की है और कौन से ग्रन्थ के अनुसार।

पोथीचन्द जैन,
ठि० ताराचन्द पोथी चन्द जैन,
कैराना (मुज़फ्फरनगर)

जीव दया प्रचारिणी सभा!

निःस्वार्थ राष्ट्र सेवक, आगरा जैन समाज के भूषण श्रीमान् सेठ अचल सिंह जी ने जीवदयाप्रचारिणी सभा के सम्बन्ध में अपना छपा हुआ वक्तव्य प्रकाशनार्थ भेजा है जिसका सार यह है कि "उक्त सभा के मंत्री महोदय सभा का ट्रष्ट बनाने तथा उसका सभापति मुझको बनाने के लिये आये थे; मैं ने उनसे कहा था कि आप प्रबन्धक कमेटी में आगरे के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नाम रखिये जिससे कमेटी की प्रत्यक्ष बैठक होसके। मंत्री महोदय ने पैंहन अधिवेशन में इसके लिये प्रस्ताव अन्य ढङ्ग से रख दिया। अस्तु—इस मामले को तय कराने के लिये मंत्री जी को मैं ने कई बार बुलाया, किन्तु वे नहीं आये"।

मंत्री महोदय को हमारी यह सम्मति है कि वे सेठ अचलसिंह जी की सम्मति का आदर करते हुए उनकी उपयुक्त तजवीज़ को कार्यरूप परिणत करें, क्योंकि सेठ साहिब एक निष्पक्ष, आदर्श, समाज सेवक पुरुष हैं।

Regd. No. A. 2379

वीर जयंती की छुट्टी

१.—इस की बाबत जो भारतवर्ष के बहुत से शहरों से वायसराय आदि को तार भेजने के समाचार गत अङ्कों में छपे थे, उनमें से धामपुर के युवक मंडल के तार के उत्तर में असि० सेक्रे० टु दी गव० आफ़ इन्डिया से निम्न उत्तर आया है:—

शिमला ५ मई ३४ ई०

श्रीमान् जी,

आपके २८ मार्च के पत्र के उत्तर में......भारत के भिन्न २ प्रान्तों में वहां की स्थानीय सरकार को ही सेक्सन २५ आफ दी नीगोटीएबिल इन्सट्रूमेन्ट एक्ट १८८१ के अनुसार छुट्टियां करने का अधिकार है। आपको इस बारे में स्थानीय सरकार को लिखना चाहिये। भारत सरकार के दफ़्तरों के अनुसार जैन सम्प्रदाय को भी छः दिन की छुट्टियों में से जोकि साल भर काम करने वालों को दी जाती हैं उस दिन की छुट्टी का अधिकार है।

द० डब्लु० डी० आलमिड

धामपुर युवक मंडल अब लोकल गवर्नमेन्ट से लिखा पढ़ी कर रहा है।

२.—बरुआसागर (झाँसी) के युवक मंडल को झाँसी के कलक्टर से निम्न जवाब मिला है:—

"पब्लिक छुट्टियाँ और अधिक बढ़ाने की मेरी राय नहीं है। अदालतों को, उन मुक़द्दमों को जो जैनों से सम्बन्ध रखते हों, उस तारीख में न रखने की हिदायत करदी जायगी।"

बरुआसागर का युवक मंडल इस हुक्म से संतुष्ट नहीं है। अतएव वायसराय महोदय से पूरी छुट्टि कर देने को प्रार्थना करता है।

—प्रकाशक

विवाह संस्कार और दान

हापुड़ निवासी श्रीमान् सेठ रामचन्द्र जी रारा के सुपुत्र भगवतीप्रसाद का शुभ विवाह चैत वदी १ शुक्रवार सम्वत् १९९० को लछमनगढ़ (सीकर) निवासी श्रीमान सेठ बिरधी चन्द जी छाबड़ा की आयुष्मती सुशीला कन्या के साथ बड़े समारोह के साथ हुआ था। विवाह संस्कार के समय पं० दुर्गा प्रसाद जी हापुड़ ने जैन पद्धति के अनुसार विवाह कराने के सम्बन्ध में सूक्ष्म रूप से हृदय रोचक एक व्याख्यान दिया था, जिसका प्रभाव जैन समाज और ब्राह्मण समाज पर अच्छा पड़ा। तत् पश्चात् धार्मिक संस्थाओं को वर पक्ष से १०१) रु० और कन्या पक्ष से ५१) रुपया दान दिया गया, जिसमें से ४) "जैन दर्शन" को और ५) भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ को भी प्राप्त हुए हैं। एतदर्थ धन्यवाद।

—प्रकाशक

शोक !

गत २२ अप्रैल को कानपुर निवासी स्वर्गीय श्रीमान् ला० रामस्वरूप जी की धर्मपत्नी, एवं श्री ला० नेमिचन्द्र जी रईस तथा रायसाहिब ला० रूपचन्द्र जी आनरेरी मजिस्ट्रेट की माता जी का समाधिमरण पूर्वक स्वर्गवास हो गया। आप एक प्रतिष्ठित वैष्णव वंश की सुपुत्री थीं तथा जैनधर्म की कट्टर भक्त थीं। आपका जीवन धर्ममय तथा जागरूक रहा। आपका जैन अजैन जनतामें समान सन्मान था। आपका शव अच्छी तरह सजाया गया शिर पर चाँदी का छत्र घूम रहा था। दाह संस्कार सरसैया घाट पर हुआ। इस स्थान पर दाह संस्कार का प्रथम अवसर आपके मृत शरीर को ही प्राप्त हुआ है।

"चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस बिजनौर से छप कर प्रकाशित हुआ।

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुखपत्र।
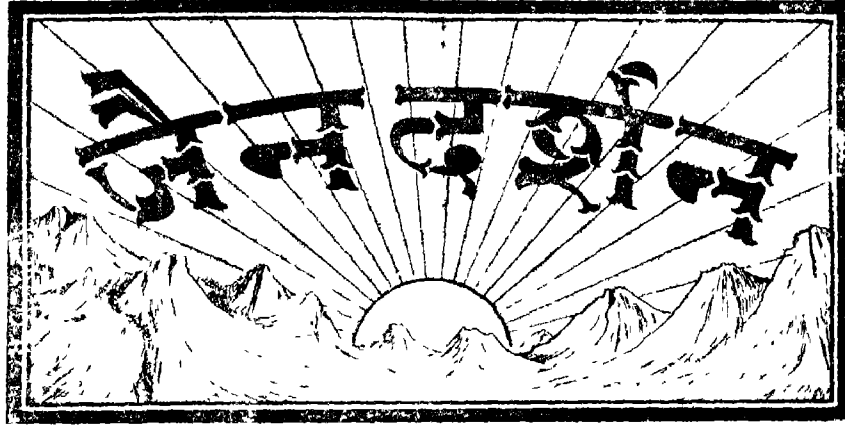
वर्ष १ — अङ्क २२

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुलतान सिटी। — ऑनरेरी सम्पादक — पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, भदैनी घाट, बनारस सिटी।

उपादेय नीति

विचारशील पुरुष को निम्न कार्य एक साथ नहीं करने चाहिये क्योंकि उनसे समूल विनाश की आशंका रहती है :—

१—किसी अन्य मनुष्य के घर सारे परिवार का एक साथ भोजन के लिये जाना उचित नहीं। २—सारा परिवार एक साथ कभी तीर्थयात्रा आदि सफ़र के लिये बाहर न निकले, घर पर कोई न कोई अवश्य रहे। ३—सारा परिवार नाव, जहाज़ पर भी एक साथ सवारी न करे। ४—अपनी सारी धन सम्पत्ति एक ही स्थान पर न रक्खे।

पूर्वोक्त तीन कार्यों में संभावना है कि विष, शस्त्र, दुर्घटना आदि निमित्त वश सारा परिवार एक ही साथ समाप्त हो जावे। चौथे कार्य में आशंका है कि किसी अग्नि, चोर, डाकू, हानि आदि कारणों से सारी सम्पत्ति एक दम स्वाहा हो जावे।

उपहारी सूचना !

जिन नवीन ग्राहकों से पोस्टेज के लिये =) हमें वसूल हो गये हैं उन्हें उपहारी पुस्तकें इसी सप्ताह अवश्य भेज दी जायेंगी —प्रेषकगण सम्हाल लें; देरी के लिये क्षमा करें।

निवेदक—प्रकाशक "जैनदर्शन", बिजनौर (यू० पी०)

वार्षिक मूल्य— २॥)

विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से— २)

धन्यवाद

आवागढ़ निवासी श्रीमान् इन्द्रकुमार सुरेन्द्रकुमार जैन ने अपने भाई की शादी के उपलक्ष में २) दर्शन की सहायतार्थ भेजे हैं; एतदर्थ धन्यवाद।

—प्रकाशक।

पूरा पता दें

हमारे पास प्रकाशचन्द्र जी विद्यार्थी इन्दौर ने २) रुपये मनीआर्डर से जैनदर्शन की वार्षिक फ़ीस के भेजे हैं। हमारे आदमी ने उनका पूरा पता नोट नहीं किया और न उन्होंने ही स्वयं कूपन पर अपना पूरा पता लिखा। अतः विवश "जैन दर्शन" उनके नाम अभी तक चालू नहीं हो सका है। पत्र द्वारा वे अपना पूरा पता लिख भेजें।

—अजितकुमार जैन, मुलतान।

३०) का पारितोषिक

जैनधर्म के २४ वें तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर स्वामी की जयंति के शुभ अवसर पर ला० हरिचन्द इन्द्रसेन जैन ट्रस्ट अंबाला शहर की तरफ़ से "जगदुद्धारक महावीर" के विषय पर सब से उत्तम लेख लिखने वाले सज्जन को रु० २५) का पारितोषिक दिया जाना सूचित कियागया था। इस सूचना पर ११ विद्वानों के लेख सभा में आए। लेख ललित और साहित्यक भी थे; गंभीर और सार गर्भित भी। निर्णायकों ने तीन महानुभावों के लेखों को टक्कर का निश्चित किया; इसी लिये तीनों को प्रथम नंबर पर रक्खा गया। ला० हरिचन्द इन्द्रसेन ट्रस्ट से रु० ५) पारितोषिक में वृद्धि कराकर तीनों प्रथम नम्बर के लेखकों को दस दस रुपये पारितोषिक देना निश्चित हुआ है। पारितोषिक पाने वाले लेख निम्न लिखित सज्जनों के हैं:—

१—श्रीयुत पं० शशि भूषण जी शास्त्री विद्यालंकार संस्कृताध्यापक श्री आत्मानन्द जैन हाई स्कूल अंबाला शहर।

२—श्रीयुत बनारसी दास जी विद्यार्थी श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल पंजाब, गुजरांवाला।

३—श्रीयुत बाबू कामताप्रसाद जी जैन एम० आर० ए० एस० आनरेरी सम्पादक "वीर" अलीगंज (एटा)।

लेखक महाशय गण को ट्रस्ट और सभा की तरफ़ से हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है।

निवेदक

विलायती राम मन्त्री

श्री आत्मानन्द जैन सभा, अम्बाला शहर

आवश्यकतायें

१—एक सुन्दर शुद्ध शास्त्र लेखक की आवश्यकता है। —अजितकुमार जैन, मुलतान सिटी

२—केशरियानाथ केस के लिये वीर पत्र के द्वितीय वर्ष की फ़ाइल तथा जैन गज़ट की वी० सं० २४५३ की फ़ाइल की बहुत आवश्यकता है जिस महानुभाव के पास हो उन्हें अथवा जिस पुस्तकालय में हो उसके प्रबन्धक महाशय को 'श्रीमान सेठ भागचन्द्रजी सोनी, अजमेर' के पास तुरन्त भेज देनी चाहिये; देख लेने पर वापिस कर दी जायगी। निवेदक—सम्पादक।

३—हमारे पास एक सुयोग्य विद्वान मौजूद हैं जो कि धर्मशास्त्र, व्याकरण, साहित्य के अच्छे ज्ञाता हैं। धर्मशास्त्र में विशारद तक योग्यता रखते हैं। क्वींस कालेज बनारस की व्याकरण मध्यमा परीक्षा पास हैं। शास्त्री कक्षा के ग्रंथ भी पढ़े हैं; जिनको आवश्यकता हो वे पत्र व्यवहार करें।

उपमंत्री—दिगम्बर जैन पाठशाला,

बहराइच (अवध) यू० पी०

४—सोनागिर विद्यालय को प्रवेशिका १० विद्यार्थियों तथा एक सुयोग्य प्रचारक की आवश्यकता है।

विज्ञप्ति

बाबा भगवान सागर ब्रह्मचारी जी ने १०० पाठशालाओं को ४—४ प्रतियाँ नवीन छह ढाला जैन तिथी दर्पण सहित देने के हित दान किया है जहां २ के अध्यापकों को चाहियें वे ~)। डाक महसूल के हित भेज कर मँगवालें; ~)। में ४ पुस्तकें आजायंगी। बी० डी० वैद्य,

जैन मंदिर डाली गंज, लखनऊ।

श्री जैनदर्शनामिति प्रथितोम्ररश्मिर्भष्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विर्मानजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ | बिजनौर, ज्येष्ठ बदी ४—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० | अङ्क २२

सहानुभूति !

विश्व चक्र का चक्कर सदा किसी को एक दशा में नहीं रहने देता। इस क्षणिक जीवन में कभी विपत्ति के बादल बरसते हैं तो कभी सुख शान्ति की छाया आ धमकती है। इन दशाओं में सज्जन, दुर्जन मनुष्यों की पहचान हो जाती है। दुर्जन पुरुष का हृदय अन्य मनुष्य को दुखी देखकर खिल खिला उठता है और दूसरे को सुखी जानकर उसे बहुत दुःख होता है।

किन्तु सज्जन पुरुष का मन अन्य प्राणधारी को दुखी देखकर दया से रो उठता है। उसको दूसरे की प्रसन्नता में ही आनन्द प्राप्त होता है। इसीका नाम सहानुभूति है। सहानुभूति मानव जीवन का सार, प्रेम का बीज और संगठन की नींव है।

सहानुभूति के कारण दुखी पुरुष का दुख आधा दूर हो जाता है और सुखी मनुष्य का हर्ष दुगुना हो जाता है। जो मनुष्य दूसरे के साथ सच्चे हृदय से सहानुभूति प्रगट करना नहीं जानता वह मानव समाज का कलंक है। जिनके हृदय में सहानुभूति का पौदा हरा भरा नहीं, संसार उनके पतन पर हर्ष मनाता है।

समाज सेवा के मैदान में हमारे हृदय के भीतर सहानुभूति की लहरें सदा जाग्रत रहनी चाहियें। समाज के किसी भी व्यक्ति के कष्ट का हम को ऐसा अनुभव होना चाहिये जैसे स्वयं अपने ऊपर वह कष्ट आया हो। हम अपनी सुखी हालत में मस्त होकर किसी के कष्ट को निगाह से हटादें, अपने सरीखा ही सारे संसार को सुखी मान बैठें, फिर करना चाहें समाज-सेवा; यह एक ऐसी टेढ़ी बात है जो सीधे हृदय में समा नहीं सकती।

हमारे जो नेता जैनसमाज का अभ्युदय चाहते हैं, उन्हें अपने तथा अन्य के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न करनी चाहिये, इसके बिना समाज का बेड़ा पार होना कठिन है।

सम्पादकीय !

हमारे नवयुवक !

[१२]

अर्थ उपार्जन

जैनसमाज को धार्मिक प्रचार तथा समाज सुधार के लिये अपना सर्वस्व समर्पण करने वाले बालब्रह्मचारी युवकों की बहुत आवश्यकता है, क्योंकि गृहजंजाल में फंसा हुआ मनुष्य धर्मप्रचार, शिक्षा प्रचार आदि निःस्वार्थ सेवा के लिये समय नहीं निकाल सकता। उसका प्रायः सारा समय अपने परिवार पालन के लिये धन उपार्जन में बीत जाता है। ब्रह्मचारी को उसकी कुछ आवश्यकता नहीं। श्रीमान पू० क्षुल्लक समन्त भद्र जी (भूतपूर्व ब्र० देवचन्द जी) श्री ब्र० गणेश प्रसाद जी वर्णी, बाबा भागीरथ जी वर्णी, ब्र० चांद मल जी आदि महानुभावों की अनुपम निःस्वार्थ समाज सेवा का कारण यह बालब्रह्मचर्य ही है। अतः मनुष्य जीवन का सार फल प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करके जो सज्जन सामाजिक तथा धार्मिक सेवा में पदार्पण करते हैं वे धन्य हैं। ऐसे कार्यकुशल व्यक्ति जितने अधिक होंगे उतना ही जैनसमाज का मस्तक उन्नत होगा।

किन्तु जो इंद्रिय संयम नहीं कर सकते अथवा जिनका विवाह हो चुका है उन युवकों को अपने गृहकार्य संचालन के लिये धन उपार्जन की अनिवार्य आवश्यकता है। जिस तरह साधु दीक्षा लेकर अपने पास रुपया पैसा रखना लानत का चिन्ह है, उसी प्रकार गृहस्थ होकर रुपया पैसा पैदा न करना भी कलंक का टीका है।

वैसे तो यह बात प्रसिद्ध है कि जैनी का बेटा जंगल में भी अपनी आजीविका उत्पन्न कर लेता है, भूखा नहीं रहता; किन्तु यह किसी पुरान समय की बात होगी। इस समय तो सैकड़ों, हज़ारों हाथ पैर वाले जैन नवयुवक बेकार दीख पड़ते हैं। उनमें अधिकतर संख्या शिक्षित मनुष्यों की है। क्योंकि आधुनिक शिक्षा केवल नौकर तयार करने की मशीन है, स्वावलंबी मनुष्य तयार करने का कोई पुर्ज़ा उसके भीतर है ही नहीं। नौकरी की आवश्यकता किसी सीमा तक होती है, उस संख्या की पूर्ति हो जाने पर अन्य उम्मेदवारों को बेकार अपने आप होना पड़ेगा।

पहले प्रत्येक सरकारी विभाग में इंग्लिश पढ़े लिखे मनुष्यों की आवश्यकता होती थी, जिससे कि लोग बहुत भारी खर्च करके भी अपने लड़कों को

इंग्लिश पढ़ाना उपयोगी समझते थे, किन्तु सरकारी आफ़िसों का पेट भर जाने के कारण अब उनकी आवश्यक्ता नहीं रही; इस कारण अब अंग्रेज़ी पढ़े लिखे सुशिक्षित पुरुषों में बेकारी बढ़ रही है जिससे कि वे प्रायः अपनी पढ़ाई के खर्च का सूद भी पैदा नहीं कर पाते। एवं १५–२० वर्ष पहले जैन समाज को संस्कृत भाषा के विद्वानों की बहुत आवश्यकता थी किन्तु आज उस आवश्यक्ता की भी बहुत कुछ पूर्ति हो चुकी है; इस कारण अध्यापकों के लिये तयार हुए संस्कृत भाषा के विद्वानों में भी बेकारी की बाढ़ आरही है। इस दशा में वे शिक्षित नवयुवक अशिक्षित मनुष्यों से भी बहुत दुखी दृष्टिगोचर होते हैं।

अतः शिक्षित पुरुष जब तक नौकरी की आशा छोड़ कर स्वावलंबन से कार्य न लेंगे तब तक वे अपने योग्य आजीविका उत्पन्न नहीं कर सकते। अब आराम से बैठ कर खाने कमाने का ज़माना बीत गया; अब तो कड़ा परिश्रम करने का समय है। जो मनुष्य अपनी शान की नाक ऊंची रखने के लिये परिश्रम से जी चुराता है वह आज कल सन्मान, सुख प्राप्त करना चाहे यह बात कठिन ही नहीं किन्तु बहु अंश में असम्भव है।

वैसे तो परिश्रम करना कोई बुरा कार्य नहीं, डांट फटकार खाने वाली, आत्मगौरव छीन कर चापलूसी कराने वाली नौकरी से बहुत कुछ ऊंचा है, किन्तु यदि भूलभरी समझ में वह हीन भी मालूम हो तो बेकार मनुष्य के लिये तो वह अनिवार्य शरण है। शिक्षित लोग नौकरी की आशा छोड़कर यदि अपने गांव, कस्बे में थोड़ी लागत की दुकान कर लेवें, अथवा शहरों में ही घूम फिर कर नित्य बिकने योग्य चीज़ों को बेचना शुरू कर दें, अथवा शुद्ध दूध घी खांड खाद्य पदार्थों की छोटी मोटी दुकान पर बैठें तो वे हमारे ख़याल से बेकारी के शिकार नहीं हो सकते। बड़े नगरों में बाहर से आने वाले यात्रियों को शुद्ध भोजन की आवश्यकता हुआ करती है, जैन लोग शुद्ध भोजन करने कराने में प्रसिद्ध हैं। रसोइये रखकर यह कार्य भी चलाया जा सकता है। इस तरह से और भी घूम फिर कर पुस्तकें बेचना आदि अनेक कार्य सोचे जा सकते हैं जिनसे कि शिक्षित नवयुवक अपनी आजीविका पैदा कर सकते हैं किन्तु अपने सर से झूठा लज्जा भार उतारने तथा कठिन परिश्रम के आलिंगन का मार्ग ग्रहण करने की आवश्यकता है।

अनेक शिल्प कार्य ऐसे हैं जो अल्प आरम्भ, परिग्रह से चालू हो सकते हैं; उनकी ओर भी हमारे शिक्षित पुरुषों का ध्यान जाना चाहिये। श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्द्र जी ने अपने विद्यालय में शिल्प की क्लास खोल दी है जिसमें तेल, पाऊडर, वैसलीन, सुर्मा, चूर्ण आदि अनेक उपयोगी पदार्थ बनाने का कार्य सिखलाया जाता है। यदि हमारे शिक्षित नवयुवक उन कार्यों को सीखकर उन वस्तुओं को बना कर बेचना प्रारम्भ करदें तो वे बेकारी से अपना पीछा छुड़ा सकते हैं।

बंबई में बाटलीवाला एक प्रसिद्ध धनिक हुआ है जो कि पुरानी शीशियां, बोतलें, टीन के डिब्बे, सस्ते मूल्य में ख़रीद कर उनको साफ़ करके अच्छे मुनाफ़े के साथ बेचता था। इस प्रकार कमाते २ उसने लाखों रुपये कमा लिये। जैनसमाज में ऐसे अनेक वीर इस समय भी हैं जिन्होंने कलकत्ते में

घूम फिर कर एक एक गज़ कपड़ा बेचते हुए अच्छी सम्पत्ति उपार्जन की। अमेरिका में ६४ खंड के प्रसिद्ध उलवर्थ बिल्डिङ्ग नामक विशाल महल का बनाने वाला धनिक केवल घूम फिर कर ढाई ढाई आने की चीज़ें बेचा करता था जिससे उसने इतनी बड़ी इमारत बनवाने योग्य धन कमा डाला।

इन उदाहरणों से हमारे नवयुवक उपादेय शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं; स्वाभिमान बेचकर चापलूसी पूर्ण नौकरी करना अथवा नौकरी की आशा में बेकार बैठे रहना अथवा अपने परिवार को निराश्रय छोड़ कर आत्मघात कर लेना कायरता है। अपनी झूठी शान का खयाल करके परिश्रम से अथवा छोटे व्यापार से जी चुराना मूर्खता है। यदि अपने नगर में लज्जा आती है तो दूसरे नगर में जाकर परिश्रमी व्यापार किया जा सकता है। नौकरी में जहां अपना भाग्य बेचा जाता है वहां व्यापार में भाग्य खुलता है। केवल भाग्य की आशा रखकर उद्योग छोड़ बैठना या ढीला कर देना बहुत भारी भूल है। इस कारण अपनी आर्थिक समस्या हल करने के लिये कड़े से कड़े परिश्रम से जी न चुराना चाहिये। पसीना बहा कर कमाया हुआ पैसा ही अपने पास ठहरता है और आनन्द देता है

अजैन युवक का अनुकरणीय साहस

हमारी अग्रवाल जाति में बंगाल की तरह वर विक्रय होता है। लड़का जिस योग्यता का हो तदनुसार दहेज के रूप में लेने के लिये एक निश्चित रकम वर का पिता कन्या के पिता से मांगता है। यदि उतनी रकम कन्या का पिता न भर सके तो उस कन्या के साथ वर का पिता अपने पुत्र की सगाई नहीं करता। दहेज की रकम कालेजी परीक्षाएं बी० ए०, एम० ए० पास करने के अनुसार दो हज़ार, चार हज़ार रुपये, मोटर आदि के रूप में मांगी जाती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि धनिक लोग तो दहेज़ से वर के पिता का मुख भरकर अपनी लड़कियों का विवाह देते हैं, किन्तु साधारण मनुष्य वैसा नहीं कर पाते जिससे कि उनके घर कन्याएं कुमारी बैठी रहती हैं। ऐसी कुमारी कन्याएं ३१-४० वर्ष आयु तक की सुनी हैं किन्तु २५-२६ वर्ष की आयु वाली कुमारी कन्याओं का तो हमको भी पता है।

कन्या के पिता लोग भी मूर्खतावश स्वस्थ, सुशील, कमाऊ लड़के को न खोजकर अंग्रेज़ी डिग्री प्राप्त वर को या धनिक घर को ही देखते हैं। वे यदि स्वस्थ, सुशील, कमाऊ वर की खोज करें तो उन्हें इतना कष्ट न हो। अस्तु—पाठकों के समक्ष हम एक आदर्श ताज़ी घटना रखते हैं जो कि निर्दय दहेज-भिक्षुकों के लिये अनुकरणीय है।

अयरपुल (आरा) की कन्या पाठशाला की एक कायस्थ अध्यापिका के एक १७ वर्ष की कन्या थी जो कि एन्ट्रेन्स तक हिन्दी अंग्रेज़ी पढ़ी थी। किन्तु कायस्थ जाति में दहेज़ की भरमार होने से वह अपनी कन्या का विवाह नहीं कर पाई, क्योंकि दहेज़ देने योग्य धनाढ्य न थी। विवश होकर उसने अपनी सारी परिस्थिति अखबारों में छपा दी, जिसको पढ़ कर दुर्गापुर (इलाहाबाद) निवासी कायस्थ युवक श्रीबांहार्यप्रसाद श्रीवास्तव एम०ए० के हृदय में दयाभाव उत्पन्न हुआ। उसने बिना कुछ दहेज़ लिये उस कन्या से विवाह कर लिया।

जैनसमाज को विशेष करके अग्रवाल जाति को भी ऐसे साहसी समाज सुधार प्रेमी युवकों की आवश्यकता है जो कि निर्धन सुयोग्य कन्याओं के माता पिताओं पर दयाभाव प्रगट करके बिना कुछ दहेज़ मांगे अपना विवाह करें। दहेज़ की रकम से जीवन नौका पार नहीं पहुँच सकती; उसके पार लगाने के लिये तो भुजबल की आवश्यकता है। जिसको अपना जन्म भर के लिये साथी बनाना है उसकी योग्यता देखना चाहिये न कि दहेज़ की भिक्षा।

कन्या के पिता भी वर के शील, स्वभाव स्वास्थ्य, कमाऊपन पर दृष्टिपात किया करें। बी० ए० एम० ए० पास करना कोई बड़ी आमदनी का सार्टीफ़िकट नहीं है। साधारण शिक्षित होने पर भी सदाचारी, स्वस्थ और धन उपार्जन की योग्यता रखने वाला पुरुष डिग्रीयाफ़्ता पुरुष से बहुत योग्य समझना चाहिये। आशा है कि साहसी युवक इस पर ध्यान देकर अमल करेंगे।

विद्यालयों का प्रबन्ध

दिगम्बर जैन समाज में यद्यपि अनेक विद्यालय तथा पाठशालाएं चालू हैं, किन्तु संगठित व्यवस्था न होने के कारण उनका कार्य, खर्च अधिक होने पर भी ठीक नहीं चल रहा। एक सुयोग्य निरीक्षक नियुक्त होना चाहिये, जो कि समस्त विद्यालय, पाठशाला, कन्यापाठशाला, अनाथालय, श्राविकाश्रम, ब्रह्मचर्याश्रम आदि का निरीक्षण करता रहे। उसका खर्च समस्त विद्यालयों से लिया जावे जिससे कि विद्यालयों की त्रुटियाँ सुधरती रहें। जहां जिस प्रकार की आवश्यकता प्रतीत हो उसकी पूर्ति का प्रबन्ध हो सके।

किन्तु यह बात तब हो सकती है जब कि समस्त प्रमुख विद्या मन्दिरों के मंत्रियों की एक सम्मिलित कमेटी हो; जिसकी बैठक वर्ष में कम से कम दो बार हुआ करे। निरीक्षक उसी कमेटी के आधीन रहे और अपनी रिपोर्ट उसी कमेटी को देवे। समस्त विद्यालयों का पठनक्रम एक हो। ऐसा हो जाने पर समस्त विद्यालयों का परस्पर सहयोग स्थापित हो सकता है। उस समय ऐसी छोटी मोटी गड़बड़ें कि एक विद्यार्थी एक विद्यालय छोड़कर दूसरे में चला गया, दूसरे को छोड़कर तीसरे में चला गया आदि स्वयमेव दूर हो जायँगी। इस प्रकार का उद्योग श्रीमान ला० प्रद्युम्नकुमारजी, ला० हज़ारीलालजी आदि को पुनः करना चाहिये। एक बार असफल रहे तो दूसरी बार सफलता अवश्य मिलेगी; साहस न छोड़ना चाहिये।

जैन पाठशाला टोंक

टोंक में एक पाठशाला है जिसमें नगर के तथा आस पास के जैन विद्यार्थी विद्यालाभ करते हैं। पाठशाला २०—२५ वर्ष से स्थापित है, किन्तु अब आमदनी कम होजाने से डाँवाडोल हो रही है, यह एक शोचनीय समाचार है। जो प्रान्त अज्ञान अंधकार में हो वहां जैनधर्म का अस्तित्व रखने के लिये पाठशाला का स्थिर रहना अति आवश्यक है। अतः टोंक से पाठशाला का उठ जाना वहाँ की जैन समाज के लिये बहुत हानिकारक होगा।

वात्सल्य, प्रभावना अंग का ध्यान रखते हुए दूसरी जगह के उदार श्रीमानों को टोंक की पाठशाला की नीव मज़बूत कर देनी चाहिये। हमारे श्रीमान धर्म के नाम पर कई ऐसे कार्य कर देते हैं जिनमें खर्च अधिक और लाभ थोड़ा होता है तथा व्यावहारिक कार्यों में अनेक व्यर्थ व्यय कर देते हैं, उनको वहाँ से बचत करके ऐसे कार्यों में खुले हृदय से सहायता करनी चाहिये। समस्त जैनसमाज को धर्म प्रेम की दृष्टि से देखते हुए टोंक के समान दूसरी जगह भी आवश्यकतानुसार अपना द्रव्य लगाकर धन का सदुपयोग करें तथा पुण्य भण्डार भरें।

टोंक वाले जैन भाइयों को निम्न लिखित बातें अमल में लानी चाहिये तब उनकी पाठशाला निर्विघ्न चल सकती है :—

१—जन्म, मृत्यु तथा विवाह समय एक निश्चित रक़म की लाग नियत करदी जाय जिससे कम कोई न देवे; अधिक देने की रोक न रहे।

२—प्रत्येक दुकान पर गोलक रक्खी जावे जिसमें कि माल की बिक्री पर अथवा मुनाफ़े पर रक़म डाली जाया करे। अथवा अपने यहां प्रत्येक भाई से हैसियत अनुसार मासिक चन्दा लिया जावे।

३—आस पास के जो विद्यार्थी पाठशाला में पढ़ने आते हैं उनसे यथाशक्ति कम से कम चार, आठ आने फ़ीस ली जावे।

४—प्रयत्न करके अपने यहां के म्युनिसिपल बोर्ड से अथवा राज्य से भी मासिक सहायता ली जावे।

५—सेठ माणिकचन्द्र ट्रस्टफंड C/o माणिकचन्द पानाचन्द जोहरी बाज़ार बम्बई के पते पर श्रीमान सेठ ठाकुरदास जी को तथा जिनवाणी भक्त श्रीमान् ला० मुसद्दीलाल जी जैन जलियाँवाला कटरा अमृतसर को पंचायती पत्र देकर उनसे मासिक सहायता प्राप्त की जावे।

जहाँ तक हो अपने पैरों पर खड़े होना चाहिये; इस ढंग पर पाठशाला चलती रहेगी।

तीर्थ क्षेत्र

वैभारगिरि

राजगृही के पांचवें पर्वत वैभारगिरि पर नवीन मन्दिर की पिछली ओर जो खुदाई करने पर पृथ्वी के भीतर दि० जैन मन्दिर निकला है उसकी प्रतिमाएं अच्छी मनोज्ञ तथा प्राचीन हैं। यह मन्दिर सरकारी पुरातत्व विभाग के हाथ में है, इस कारण उन प्रतिमाओं को बिना आज्ञा प्राप्त किये वहाँ से उठाया नहीं जा सकता। इस विषय में तीर्थक्षेत्र कमेटी को बिहार प्रान्तीय सरकार के साथ पत्रव्यवहार करके प्रतिमाओं के ऊपर छत बनवाने का उद्योग कराना चाहिये, जिससे प्रतिमाएं धूप, वर्षा आदि से सुरक्षित रहें। इस प्राचीन मंदिर का चित्र भी प्रकाशित करना चाहिये।

चम्पापुरी

माघ मास के भूकम्प ने चंपानाल के मंदिर का शिखर बिलकुल गिरा दिया है, जिससे कि मंदिर की ऊपरी वेदी जिसमें कि दिगम्बरीय प्रतिमाएं विराजमान थीं धराशायी हो गई हैं, किन्तु सौभाग्य से किसी भी प्रतिमा को हानि नहीं पहुँची। श्वेताम्बरी कर्मचारियों ने उन प्रतिमाओं को धर्मशाला की कोठरी में ज़मीन पर अवि-

नय पूर्वक रख दिया है। नीचे लकड़ी का तख़ता तक नहीं रक्खा जब कि अपनी मूर्तियाँ दूसरी वेदी में विराजमान कर दी हैं। शायद अब यह अविनय दूर कर दिया हो, अन्यथा तुरन्त कर देना चाहिये। पूज्य प्रतिमाओं के साथ अपमान जनक व्यवहार कदापि उचित नहीं।

मंदारगिरि

मंदारगिरि एक शान्त स्वास्थ्यप्रद तीर्थक्षेत्र है। यहाँ पर पर्वत के ऊपर बने हुए मन्दिरों पर बोर्ड के तौर पर शिलालेख अवश्य लगा देने चाहियें। खर्च की स्वीकारता ला० पारशदास जी शिवनाथ जी मुलतान ने दे दी है। धर्मशाला का बहुभाग अधूरा पड़ा है जो कि उदार पुरुषों को पूरा कराना चाहिये। धर्मशाला के पास एक बहुत बड़ा मैदान बंबई की ओर के एक सेठ जी ने विशाल मन्दिर तथा धर्मशाला बनवाने के लिये खरीदा हुआ है जिसमें कि सफ़ेद, काले पत्थर का अधूरा किन्तु सुंदर, मज़बूत मन्दिर भी बना हुआ है और आस पास मन्दिर निर्माण के लिये पत्थर पड़े हुए हैं। बीच में मुनीम द्वारा रकम हड़पने के कारण मन्दिर पूरा नहीं बन पाया। अब उन सेठ जी को या तो स्वयं इसका निर्माण कराना चाहिये अथवा जैनसमाज को यह भार सौंप देना चाहिये जिससे यह भूभाग सदुपयोग में आ सके। रुग्ण भाई यदि यहाँ पर निवास करें तो यहाँ के जलवायु से शीघ्र स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं।

गुणावा

इस तीर्थक्षेत्र का स्थान सड़क के किनारे अच्छे मौके पर है, किंतु पर्याप्त धर्मशाला न होने के कारण अभी यात्रियों के ठहरने योग्य सुविधा यहाँ पर नहीं हो पाई है। यहाँ तीन सौ रुपये में एक कोठरी तैयार हो जाती है; इस दशा में तीर्थभक्त पुरुषों को यह कमी अवश्य पूरी करनी चाहिये। जहाँ आवश्यकता हो वहीं पर द्रव्य लगाना धन का सदुपयोग है।

वीर की ध्वनि

वीर के गत १४ वें अंक में श्रीमान बा० कामताप्रसाद जी ने श्वेताम्बर मत समीक्षा पर अपनी सम्मति प्रगट की है। हमारे मित्र ने अन्य कुछ एक संपादकों के समान पुस्तक का अवलोकन बिना किये केवल विरोधी लेखों के आधार पर अपनी लेखनी चलादी, इस बात का हमें कारण दुख है कि उन्होंने अपना उत्तरदायित्व ठीक तरह नहीं निभाया। संपादक की क़लम न्यायाधीश की क़लम से कुछ कम महत्व नहीं रखती। इस कारण बा० कामताप्रसाद जी यदि श्वेताम्बर समीक्षा का अच्छी तरह स्वाध्याय करके अपनी सम्मति उस पर प्रगट करते तो अच्छा था।

दिगम्बर श्वेताम्बर समाज का पारस्परिक संगठन हम भी उतना ही चाहते हैं जितना कि हमारे मित्र महानुभाव; किन्तु हम केवल ऊपरी कच्चे, दिखावटी सहयोग को लाभदायक नहीं समझते। दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय के बीच में जो गहरी सैद्धान्तिक मतभेद की खाई पड़ी हुई है जब तक वह न पाट दी जावे तब तक आपसी स्थायी प्रेम स्थापित नहीं हो सकता। इसी खाई का पेट भरने के लिये श्वेताम्बर मत समीक्षा बनी है जो कि अपना कार्य कभी न कभी अवश्य

करेगी। बाग़ में आम का बीज कभी बोया जाता है तो वह वृक्ष रूप में खड़ा होकर फल कभी का कभी देता है।

इस समय जैन समाज की जो शोचनीय दशा है उसमें बहुत कुछ अपराध हमारे पत्र-संपादकों का भी है जो कि विवेचनीय विषयों पर भी गंभीरता पूर्वक विचार न करके, परिणाम पर दूरदृष्टि न रखते हुए शीघ्रता में लिख मारते हैं। "श्वेताम्बरमत समीक्षा" कब प्रकाशित हुई, उसमें किन २ विषयों का किस ढंग से प्रतिपादन है, वे बातें श्वे० ग्रंथों में संशोधन करने योग्य हैं या नहीं? इत्यादि विचारणीय बातों पर ध्यान केवल २—१ व्यक्ति के सिवाय किसी ने भी नहीं दिया। अतः कहना होगा कि वे अपनी लेखनी का महत्व कायम न रख सके।

श्वेताम्बरीय ग्रंथों का अपमान करने की हमारी नीयत है या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर में हमारे सुयोग्य सम्पादकों का आर्यसमाज के एक सौ प्रश्नों के उत्तर नामक ट्रैक्ट के ३६ व ३८ वें उत्तर को देखना चाहिये था। जौहरी यदि रत्न की परीक्षा बिना किये उसको कांच का टुकड़ा कह डाले इससे अधिक भूल उसके लिये और क्या हो सकती है?

हमारा 'वीर' के संपादक श्रीमान बा० कामताप्रसाद जी तथा श्रीमान पं० परमेष्ठीदास जी न्यायतीर्थ से अनुरोध है कि व श्वेताम्बरमतसमीक्षा व उक्त ट्रैक्ट एवं संतपरीक्षा का अच्छी तरह अवलोकन करके श्वेताम्बरमतसमीक्षा पर अपनी सत्य सम्मति प्रगट करें, फिर वह चाहे जैसी हो। यदि लेखक से भूल हुई हो तो उसे सप्रमाण समझाइये, अन्यथा सूत्र ग्रंथों के संशोधन के लिये श्वेताम्बर समाज से अपील कीजिये। श्वेताम्बरसमाज में भी अनेक सत्यान्वेषी महानुभाव विद्यमान हैं।

हम अपने मित्र बा० कामता प्रसाद जी, भोलानाथ जी दरख्शां तथा दरबारीलाल जी आदि से कहेंगे कि वे पहले आज से १२ वर्ष पहले छपी हुई संतपरीक्षा पुस्तक के २९ से लेकर ३४वें पृष्ठ तक के ६ सफे देखें, जिनको कि कट्टर श्वेताम्बर श्रीमान् बा० गणपति राय जी बी० ए० एल० एल० बी० सदरदार शहर (बीकानेर) की लेखनी ने लिखा है। उसमें भी लेखक महोदय ने भगवतीसूत्र, कल्पसूत्र आदि पाँच ग्रंथों का प्रमाण देकर भगवान महावीर के विषय में तथा महाव्रती साधुओं के विषय में स्पष्ट रूप से अभक्ष्य भक्षण का उल्लेख किया है। जहाँ हमारे निष्पक्ष श्वेताम्बरी विद्वान आज से १२ वर्ष पहले अपने सूत्र ग्रंथों के अनुचित विधानों पर प्रकाश डालते हैं वहाँ आज श्वेताम्बर मत समीक्षा पर हमारे दिगम्बर पत्र सम्पादक मताध साम्प्रदायिकता का अपराध आरोपण करते हैं। खेद!

वे जैनधर्म की शक्ति का क्षीण करने वाला ज्वर श्वेताम्बरीय ग्रंथों में रहने देना पसंद करते हैं किन्तु श्वेताम्बरमत समीक्षा कड़वी औषधि के रूप में जो उस ज्वर को निकालने का कार्य करती है उसे हमारे दयालु संपादक विष बतलाते हैं! क्या यह उनका श्वेताम्बर समाज के साथ आदर्श प्रेम है? श्वेताम्बरीय विचारशील नवयुवकों के सामने उन्हें उनकी सुधारणीय त्रुटियाँ प्रेम पूर्वक, निर्भयता से रखनी चाहिये; प्रेम का बीज तभी उत्पन्न होगा।

रेवती दान समालोचना

जयपुर के स्थानकवासी संघ ने कुछ दिन पहले श्वेताम्बर मत समीक्षा पर रोष भाव प्रगट करते

हुए यह प्रकाशित किया था कि समीक्षा के विशेष अंश के उत्तररूप हमारी ओर से रेवतीदान समालोचना पुस्तक प्रकाशित होगी। जैनपथ प्रदर्शक से पता चला कि वह छप भी गई है। चूँकि पुस्तक हमारी भूल सुधारणार्थ प्रकाशित हुई है, इस कारण कम से कम उसकी एक प्रति प्रकाशक महोदय को हमारे पास अवश्य भेजनी थी जो कि उन्होंने अभी तक नहीं भेजी है, कृपया अवश्य भेज देवें। समालोचनार्थ बिना मूल्य न सही तो मूल्य की वी० पी० द्वारा मुलतान हमको भेजने में विलंब न करें। यह कृपा यदि कोई अन्य महानुभाव कर सकें तो हम उनके आभारी होंगे।

निवेदन

हमारे कतिपय महानुभावों ने हम पर कुछ व्यक्तिगत आक्षेप किये हैं जिनका समुचित उत्तर हम कुछ समय बाद अवश्य देंगे, क्योंकि इस समय २—३ आवश्यक कार्यों में हमारा समय व्यतीत हो रहा है। सूचना इस कारण निकाली है कि हमारे कई मित्रों ने आक्षेपों का उत्तर प्रकाशित करने की तीव्र प्रेरणा की है। इस बीच में यदि कोई और महानुभाव लिखना चाहें तो लिख लें उत्तर सबका एक साथ हो जायगा। —अजितकुमार

पं० दरबारीलाल का हृदय

कुछ समय से श्रीमान पं० दरबारीलाल जी श्वेताम्बरीय ग्रन्थों की बड़े परिश्रम के साथ वकालत करने लगे हैं। श्वे० विद्यालय की अध्यापकी प्राप्त हो जाने पर हमारे मित्र का कर्तव्य था कि वह श्वेताम्बर समाज से सूत्र ग्रन्थों की अनुचित, अयुक्त, असंभव बातों के संशोधन करने की युक्तिपूर्वक प्रेरणा करते, किन्तु उन्होंने अपना कर्तव्य न निबाहते हुए उन बातों पर पर्दा डालने के लिये दिगम्बरीय ग्रन्थों में वैसी बातें खोजने का तथा इधर उधर का लचर युक्ति बल भिड़ाने का असफल प्रयास उठाया है।

दिगम्बरीय शास्त्र रचना से लगभग साढ़े पाँच सौ वर्ष पीछे बने हुए उपलब्ध श्वेताम्बरीय सूत्र ग्रन्थों को पं० दरबारीलाल जी दिगम्बरीय ग्रंथों से प्राचीन बतलाते हैं, जबकि उनके कहने को स्वयं श्वेताम्बर सूत्र ग्रंथ असत्य ठहराते हैं। यह बात पाठक महानुभाव इसी अंक के जैनधर्म भेद नामक लेख में आगे देख सकते हैं।

स्त्रीमुक्ति का समर्थन करते हुए वे जैनजगत में श्री मल्लिनाथ भगवान को भगवती मल्लिकुमारी रूप में स्त्री होना बतलाते हैं; आपका यह कथन भी कोई बलवान आधार नहीं रखता। बतलाइये कि भगवान मल्लिनाथ पुरुष रूप न होकर स्त्रीरूप ही थे, आपके पास इसका क्या प्रमाण है जिससे कि श्वेताम्बरीय ग्रन्थों का कथन तो ठीक और दिगम्बरीय ग्रंथों का कथन गलत कहा जा सके?

भगवान मल्लिनाथ का स्त्री शरीर में होना स्वयं श्वे० कर्मसिद्धान्त के प्रतिकूल है। कोई श्वे० विद्वान अथवा श्वे० सिद्धान्त का नाजायज़ पक्ष लेने वाले मित्रवर पं० दरबारीलाल जी श्वे० सिद्धान्त से इस बात को सिद्ध करना चाहें तो उन्हें सादर निमंत्रण है।

आर्यसमाज की निन्द्य नियोग प्रथा के समान पं० दरबारीलाल जी सती द्रौपदी के पांच पतियों का समर्थन करते हैं। शायद इसी कारण कि यह

बात श्वेताम्बरीय ग्रंथों में लिखी है। श्वेताम्बरीय कथा ग्रंथों में द्रौपदी के पाँचों पाँडव पति लिखकर भी उसको सती बतलाया है। पं० दरबारीलाल जी बतलावें कि यह बात गलत क्यों नहीं? और दिगम्बर ग्रन्थानुसार उसका एक पति अर्जुन ही ठीक क्यों नहीं?

शायद उन्होंने जैन जगत में भगवान महावीर स्वामी के विवाहित होने का भी उल्लेख किया है। यदि ऐसा है तो जहाँ उन्होंने दिगम्बरीय शास्त्रों के विरुद्ध निराधार रूप से अपनी लेखनी चलाई है वहीं श्वे० *आगम ठाणांग सूत्र* के विरुद्ध भी लिखा है। ठाणांगसूत्र को प्रमाणरूप मानते हुए श्वेताम्बरी सज्जन भगवान महावीर स्वामी को विवाहित कदापि नहीं कह सकते।

श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में माँसभक्षण विधान नहीं है, अपने इस कथन का पं० दरबारीलाल जी को प्रकरणवार सयुक्तिक ढंग से समर्थन करना चाहिये. लिख देने मात्र से क्या होता है? हमारी तो हार्दिक इच्छा है कि श्वेताम्बरीय ग्रंथों में अभक्ष्य-भक्षण विधान सर्वथा न हो जिससे कि जैनधर्म की पवित्रता पर धब्बा न लग सके, किन्तु यह बात तभी हो सकती है जब कि उन ग्रन्थों का संशोधन किया जावे जो कि कभी न कभी पवित्रता की रक्षा के लिये अवश्य करना होगा।

श्वेताम्बरीय ग्रंथों के माँसभक्षण विधान पर पर्दा डालने के लिये पं० दरबारीलाल जी की कृपा दृष्टि दिगम्बरीय ग्रन्थों पर जाती है। वे उन कथाओं को ढूंढ निकालते हैं जिनमें कि सौदास राजा आदि के माँसभक्षण का वर्णन है। आपने यहाँ तक लिख डाला है कि 'हमारे सभी पूर्वज एक दिन माँस भक्षी थे'।

पं० दरबारीलाल जी अपने पूर्वजों को माँस भक्षी बतलावें, यह उनके असत्य ज्ञानभार का नमूना है जो कि उनकी हवाई कल्पनाओं पर निर्भर है। इसको तो वे स्वयं जानें; इस बात की पोषक कोई युक्ति यदि उन्होंने उपस्थित की होती तो उस पर विचार किया जाता।

किन्तु उन्होंने कई कथाग्रंथों से जो मद्यपान, माँस भक्षण का उल्लेख किया है, पता नहीं इससे उनका कौनसा मनोरथ सिद्ध होता है? जिस मनुष्य ने जैसा कार्य किया, कथा-ग्रंथों में वैसा वर्णन है, इसका नाम विधान नहीं है। यदि दिगम्बरीय ग्रंथ राजा सौदास के माँसभक्षण को योग्य कर्त्तव्यरूप में समर्थन करते या उसका माँसभक्षण त्याग कर शुद्ध आचरण बना लेने के बिना भी मुक्ति-गमन बतलाते तब तो माँस भक्षण विधान सिद्ध होता, किन्तु ऐसा है नहीं; फिर दिगम्बरीय ग्रन्थों में माँस भक्षण विधान की गंध सूंघना बड़ी भूल है।

भगवान नेमिनाथ की बरात में यदि अजैन माँसभक्षी राजा भी गये हों (जैसे कि आज कल भी जैनियों की बरात में अजैन लोग जाया करते हैं) और कृष्ण की सम्मति से भगवान नेमिनाथ को वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये यदि उन माँसभक्षी राजाओं के अर्थ पशुसंग्रह कराया तो इससे भी माँस भक्षण विधान सिद्ध किस प्रकार हुआ? किसी घटना का उल्लेख करना विधान नहीं होता है जब तक कि उसका समर्थन न किया जाय।

दिगम्बरीय ग्रन्थों में माँसभक्षण, मदिरा पान का सर्वत्र निषेध है—रुग्ण, निर्बल अवस्था में भी

उनके उपयोग करने का विधान कहीं नहीं पाया जाता; फिर यदि किसी ने मद्यपान किया अथवा माँसभक्षण किया तो दिगम्बरीय सिद्धान्तानुसार उसने धर्मविरुद्ध आचरण किया।

पं० दरबारीलाल जी को चाहिये कि वे अनुचित पक्ष पोषण करके अपनी लेखनी को गंदा न बनावें।

दुःख है कि जैन जगत दिगम्बर जैन समाज का दूध पीकर अपने संपादक के कारण दिगम्बर जैन समाज के लिये ही विष उगलता है। जैन जगत के सहायक महानुभाव बतलावें कि वे जैन जगत द्वारा क्या धार्मिक प्रचार या समाज सेवा कर रहे हैं ?

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[१८]

शास्त्ररचना

संघभेद की दिगम्बरीय कथा को असत्य साबित करने के लिये तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये श्वेताम्बरीय सूत्र ग्रन्थों को भी उपस्थित किया जाता है।

उपलब्ध श्वेताम्बर सूत्रग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखे हुए हैं, जिसको कि श्वेताम्बरी भाई अर्द्धमागधी भाषा कहते हैं, जिस भाषा में कि तीर्थङ्कर का उपदेश होता है। किन्तु सूत्रों की भाषा का यह नाम कल्पित है, क्योंकि तीर्थङ्कर की भाषा को मनुष्य तिर्यञ्च सब समझते हैं; सूत्रों की भाषा में वह बात रंचमात्र भी नहीं। यदि इसी भाषा का नाम अर्द्धमागधी होता तो श्वेताम्बरी सूत्र ग्रन्थों के रचनाकाल से पहले के बनाये गये दिगम्बर ग्रंथ भी इस भाषा में अवश्य होते। अर्द्धमागधी भाषा की परिभाषा भी श्वेताम्बरी सूत्रों की उपलब्ध भाषा में घटित नहीं होती। इस कारण इस भाषा का नाम प्राकृत ही होना चाहिये; अर्द्धमागधी कहना केवल अपनी निजी कल्पना है अथवा प्राचीनता का रूप देने का एक मार्ग है।

सूत्रग्रंथों की भाषा के आधार पर श्रीमान बा० पूरणचन्द्र जी नाहर सरीखे श्वेताम्बरीय इतिहासज्ञ महानुभाव अपने ग्रन्थों को दिगम्बरीय ग्रन्थों से पुरातन कहते हैं तथा प्रायः समस्त श्वेताम्बर समाज की ऐसी ही धारणा है, बहुत से भोले भाई तो सूत्रग्रंथों को दिगम्बर श्वेताम्बर संघभेद से पहले समय का बना हुआ कह देते हैं। किन्तु हमारे विचार से श्रीमान नाहर जी की युक्ति बहुत निर्बल है और श्वेताम्बर समाज की धारणा में कोई विचार धारा के सामने ठहरने योग्य बल नहीं; क्योंकि पुरानी भाषा में किसी ग्रन्थ के लिखे जाने मात्र से कोई ग्रन्थ प्राचीन नहीं हो सकता। अपनी रचना पुरातन या नवीन भाषा में करने की इच्छा तो स्वयं कवि के आधीन है। आज यदि कोई हिन्दी कविता पुरानी हिन्दी में कर डाले तो उसका ऐतिहासिक समय पृथ्वीराजरासो से नहीं

मिलाया जा सकता। ठीक इसी प्रकार श्वेताम्बरीय सूत्रग्रन्थों को भाषा के आधार पर पुरातन ठहराना असंभव है। इस समय हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि अपनी २ रुचि के अनुसार कवि लोग ब्रज भाषा, खड़ी बोली, संस्कृत आदि में कविताएं कर रहे हैं, तो यह कहना भूल होगी कि "ब्रजभाषा में बनाई गई आधुनिक कविता भी प्राचीन है, खड़ी बोली उसकी अपेक्षा अर्वाचीन है"।

सूत्रग्रन्थों को पुरातन सिद्ध करने के लिये कल्पसूत्र को भी उपस्थित किया जाता है, इसका रचयिता अन्तिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी को बतलाया जाता है। ग्रन्थ के ऊपर भी 'श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु प्रणीत' छापा गया है। कतिपय श्वेताम्बरीय इतिहासज्ञ भाई श्रीमान् पूर्णचन्द्र जी शाम सुखा आदि भी इस बात का समर्थन करते हैं।

यदि श्वेताम्बरीय मित्रों के कथनानुसार कल्प सूत्र सचमुच अंतिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुस्वामी विरचित है तो दिगम्बर सम्प्रदाय को प्राचीन किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि कल्पसूत्र में सारा कथन श्वेताम्बर सिद्धान्तानुसार है। दिगम्बरीय सिद्धान्त के अनुकूल इसमें किसी भी बात का उल्लेख नहीं। किन्तु यह बात है नहीं, क्योंकि उसके निम्न दो बलवान बाधक कारण हैं :—

१—कल्प सूत्र के अष्टम व्याख्यान में स्थविरावली (स्थविर साधुओं की पट्टावली) लिखी है। उसमें भगवान महावीर स्वामी के पीछे होने वाले पट्टधर आचार्यों के नाम क्रमशः दिये गये हैं। वह नामावली इस तरह है—

१-सुधर्मस्वामी, २-जम्बूस्वामी, ३-प्रभवस्वामी, ४-शय्यंभवस्वामी, ५-यशोभद्र, ६-संभूतिविजय तथा भद्रबाहु (श्रुतिकेवली-स्वर्गवास वीर सं० १७०), ७-स्थूलभद्र (स्वर्गवास वीर सं० २२८), ८-आर्यमहागिरि तथा सुहस्तिसूरि (स्वर्ग० वीर सं० २९१) इत्यादि। चौदहवें पट्टधर वज्रस्वामी हुए जोकि वीर सं० ६२० में स्वर्गवासी हुए।

कल्पसूत्र की इस स्थविरावली के अनुसार अंतिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुस्वामी, जिनको कि कल्पसूत्र का तथा अन्य ८-९ श्वेताम्बरीय ग्रंथों का रचयिता बतलाया जाता है, वीर संवत् १७० में स्वर्गवासी हुए। यदि कल्पसूत्र के रचयिता ये भद्रबाहु स्वामी होते तो कल्पसूत्र की स्थविरावली में अधिक से अधिक छठे पट्ट तक के आचार्यों के नाम आते थे किन्तु उसमें भद्रबाहु स्वामी से ४५० वर्ष पीछे १४ वें पट्टधर वज्रस्वामी का नाम तथा उन दोनों के बीच वाले पट्टधर आचार्यों के नाम भी उल्लिखित हैं जिनका कि नाम श्री भद्रबाहुस्वामी की लेखनी से लिखा जाना असंभव है। अतः सिद्ध होता है कि कल्पसूत्र भद्रबाहु स्वामी से सैकड़ों वर्ष पीछे बना है।

२—कल्पसूत्र के छठे व्याख्यान की समाप्ति में लिखा है कि "समणस्स भगवओ महावीरस्स जावसव्वदुक्खपहीणस्स नववाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्सय वाससयस्स अय असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ"।

अर्थात्—ग्रंथरचना के समय के विषय में ग्रंथकर्ता लिखता है कि "सर्व दुख रहित श्रमण भगवान महावीर के ९०० (नौ सौ) वर्ष व्यतीत हो गये और दशवें सौ का ८० वां वर्ष (यानी ९८० वां वर्ष) यह जा रहा है यानी जिस समय कल्पसूत्र का छठा व्या·

ख्यान (अध्याय) समाप्त हुआ उस समय भगवान महावीर को मुक्त हुए ९८० वर्ष बीत गये थे।

कल्पसूत्र के इस उल्लेख से कल्पसूत्र की रचना का ठीक समय वीर सं० ९८० स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। श्रीभद्रबाहु स्वामी इससे ८१० वर्ष पहले स्वर्ग-यात्रा कर चुके थे। फिर वे कल्पसूत्र के रचयिता कब हो सकते हैं "

हमको खेद है कि श्वेताम्बरी भाई सत्य इतिहास पर पर्दा डालकर जनता को कितने भारी भ्रम में रखना चाहते हैं। आठसौ वर्ष का अन्तर होते हुए कल्पसूत्र को भद्रबाहु स्वामी विरचित बतलाना तथा पुस्तक पर भी छपा देना कितना भारी दुस्साहस है। हमारे मित्र श्रीयुत पूर्णचन्द्रजी शामसुखा तथा अन्य कोई श्वेताम्बरी सज्जन क्या अपनी बात को प्रमाणित करने का कष्ट उठावेंगे। यों तो फिर जैनवाङ्मय भगवान महावीर स्वामी के समय से मौखिक रूप में चला आ रहा था, इस कारण कल्पसूत्र को भगवान महावीर प्रणीत लिख दिया जाता तो भी कौन रोकता था।

ग्रंथरचना का समय

भगवान महावीर का उपदिष्ट सिद्धान्त अविच्छिन्न शिष्य परम्परा द्वारा मौखिक (ज़बानी) रूप में बहुत समय तक चलता रहा। उस समय साधुओं की बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि वे पठनपाठन बिना पुस्तक का सहारा लिए मुखजबानी करते थे, किन्तु मौखिक रूप से पठनपाठन के योग्य बुद्धि-बल जब कालक्रम से न रहा, बुद्धिबल क्षीण हो गया, तब विक्रम सं० प्रारंभ होने से पहले श्री धरसेनाचार्य ने अपनी आयु अल्प जानकर वेणाकतट के मुनिसंघ से श्री पुष्पदन्त, भूतबलि नामक दो तीक्ष्ण बुद्धि मुनि अपने पास बुलाये। उन मुनियों को उन्होंने कर्मप्राभृत पढ़ाया। फिर श्री पुष्पदन्त भूतबलि ने षट्खंडागम नामक ग्रंथ पुस्तकरूप में लिखकर जेष्ठ शु० पंचमी के दिन समाप्त किया (श्रुत पंचमी उसी दिन से प्रचलित हुई है); यही सब से पहला पुस्तकरूप जैन ग्रंथ बना। षट्खंडागम के प्रथम तीन खंडों पर श्री कुंदकुंदाचार्य ने बारह हज़ार श्लोक परिमाण वाली टीका लिखी।

कुंदकुंदाचार्य विक्रम सं० की प्रथम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए हैं, यह बात जैनदर्शन के ११-१२-१३ १४ वें अंक में प्रकाशित की जा चुकी है। इस कारण षट्खंडागम विक्रम संवत् से पहले बना है, यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है। तदनुसार दिगम्बरीय शास्त्रों की रचना का समय विक्रम सं० से पहले का ठहरता है।

कुंदकुंदाचार्य के समकालीन तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता उमास्वामी आचार्य हुए हैं जिनको कि दोनों सम्प्रदाय मानते हैं।

कुंदकुंदाचार्य के पीछे दूसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्वामी समन्तभद्र हुए। उन्होंने रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। रत्नकरण्डश्रावकाचार का ९वाँ श्लोक "आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट विरोधकम्। तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्।" सिद्धसेन दिवाकर (जिनको कि श्वेताम्बर भाई श्वेताम्बरी आचार्य कहते हैं—यद्यपि दिगम्बरीय आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में सिद्धसेन का नामोल्लेख किया है संभव है वे सिद्धसेन अन्य हों) विरचित न्यायावतार में भी ९ वें श्लोक के रूप में हूबहू पाया जाता है, किन्तु वह वहां

रत्नकरंड की तरह ठीक नहीं बैठता; रत्नकरंड से उद्धृत जान पड़ता है। इस कारण सिद्धसेन दिवाकर स्वामी समन्तभद्र से पीछे के विद्वान ठहरते हैं। श्वेताम्बरी भाई जो उनको प्रथम शताब्दी का विद्वान बतलाते हैं वह किसी अकाट्य प्रमाण से सिद्ध नहीं होता; अस्तु—इस तरह अकाट्य ऐतिहासिक युक्ति बल पर दिगम्बरीय ग्रंथों की रचना का समय विक्रम सं० से भी पहले का निश्चित होता है।

श्वेताम्बर आगम रचना का समय

संघभेद हो जाने पर लगभग वीर सं० ९७६ तथा विक्रम सं० ५०६ तक श्वेताम्बर सम्प्रदाय का सिद्धान्त पठन पाठन मौखिक रूप से चलता रहा; पुस्तक रूप कोई भी सूत्रग्रंथ नहीं बना। उस समय तत्कालीन प्रमुख श्वेताम्बर आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण जी ने बल्लभीपुर में एक साधुसम्मेलन किया जिसमें ग्रंथ रचना का प्रस्ताव रक्खा, फिर भिन्न भिन्न विद्वान साधुओं को भिन्न भिन्न ग्रंथ रचने का कार्य सौंप दिया। इस ढंग से बल्लभीपुर में चार वर्ष तक श्वे० ग्रन्थ रचना का कार्य होता रहा (शास्त्रोद्धार मीमांसा नामक स्थानकवासी ग्रंथ से भी यही बात सिद्ध होती है)। यह कार्य वीर सं० ९८० एवं वि० सं० ५१० में समाप्त हुआ। उस समय प्राकृत भाषा में (जिसको कि श्वे० भाई अर्द्धमागधी के नाम से कहते हैं) अनेक सूत्र ग्रन्थ बने जिनमें कि ४५ सूत्र ग्रंथ इस समय भी उपलब्ध हैं।

इस बात के समर्थन में पूर्वोक्त कल्पसूत्र का वाक्य उपस्थित है तथा उसी वाक्य के आगे 'उक्तं-च' रूप में एक गाथा भी कल्पसूत्र में लिखी है; देखिये—

"बल्लहि पुरम्मि नयरे देवड्ढि पमुहसयलसंघेहिं।
पुत्थे आगमलिहिओ नवसय असीआओ वीरओ"।

अर्थात्—बल्लभीपुर नगर में देवर्द्धिगणि आदि सकल संघ द्वारा वीर सं० ९८० में आगमों को पुस्तकरूप में लिखा गया।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि कल्पसूत्र, आचारांगसूत्र आदि श्वेताम्बर आगम ग्रंथ वीर सं० ९८० में रचे गये हैं। इस समय से पहले इनकी रचना का कोई बलवान प्रमाण नहीं मिलता। इस कारण भाषा के आधार पर श्रीमान बा० पूर्णचन्द्र जी नाहर आदि श्वेताम्बर विद्वान अपने सूत्र ग्रंथों को दिगम्बरीय ग्रंथों से प्राचीन बतलाते हैं, वह ठीक नहीं; क्योंकि इतिहास उनके कथन का समर्थन नहीं करता। दिगम्बरीय ग्रंथों की सुधरी हुई प्राकृत तथा संस्कृत भाषा है, इसी कारण उनको श्वे० सूत्र ग्रन्थों से अर्वाचीन बतलाना सत्य इतिहास की निर्दय रूप से हत्या करनी है।

अतएव ग्रन्थों के आधार से भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय को दिगम्बर सम्प्रदाय से प्राचीन होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि दिगम्बरीय ग्रंथ रचना श्वे० सूत्र ग्रंथों से पाँच सौ वर्ष से भी अधिक समय पहले हुई थी।

आर्य्यसिद्धान्त और स्वामी मंगलानन्द पुरी के विचार

आर्य्य मित्र वर्ष ३६ अङ्क ४७ पृष्ठ २७ में स्वामी मङ्गलानन्द पुरी का एक पत्र महाशय श्री रामजी कासगंज ने प्रकाशित कराया है। उसमें लिखा है कि "मैं सत्तरह १७ वर्ष की आयु में आर्यसमाजी बना था, अब साठ ६० वर्ष का बूढ़ा हूँ, गत २६ वर्ष से संन्यासी बनकर प्रचारक रहा हूँ, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी में प्रायः सभी पुस्तकें आर्यसामाजिक लेखकों की पढ़ी हैं, परन्तु काफ़ी छान बीन तहकीक़ात करने पर यह निर्णय कर पाया है" इस निर्णय की नक़ल हम जैनदर्शन के पाठकों के अवलोकनार्थ ज्यों की त्यों उपस्थित करते हैं। इसे पढ़ कर आर्य समाज के कल्पित सिद्धान्तों पर आप अवश्य विचार करेंगे। उस पत्र की नक़ल इस प्रकार है—

महाशय ! श्रीयुत् श्री राम आर्य नमस्ते।

"ॐ तत् सत्" परमात्मा आपको आनन्दित रक्खे। वृत्तान्त यह है कि मैं ने आर्यमित्र में आपके अनेकों प्रश्न पढ़े और प्रसन्नता इस बात से हुई कि आप स्वाध्यायशील महाशय हैं। आर्यसमाजियों में वेदों के स्वाध्याय की बिलकुल कमी बल्कि अभाव है। इन भले आदमियों ने सत्यार्थ प्रकाश को ही वेद मान रक्खा है; अस्तु—आपके प्रश्नों पर कोई ज़िम्मेवार उपदेशक उत्तर देंगे, परन्तु मैं यह पत्र आपको अपना निज अनुभव सुनाने के लिये भेज रहा हूं।

२—मैं सत्तरह १७ वर्ष की आयु में आर्य-समाजी बना था। अब साठ ६० वर्ष का बूढ़ा हूँ, गत २६ वर्ष से संन्यासी बनकर प्रचारक रहा हूँ। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू अंग्रेज़ी में प्रायः सभी पुस्तकें आर्यसामाजिक लेखकों की पढ़ी हैं, इत्यादि—परन्तु काफ़ी छान बीन तहक़ीक़ात (करने) पर यह निर्णय कर पाया है। और शोक से देखता हूँ कि वेदों का ठीक २ अभिप्राय न सनातनी प्रगट करते हैं, न आर्यसमाजी श्री स्वामी जी महाराज प्रगट होने देते हैं। ये तो और भी अधिक गुमराही में डाल गये हैं।

३—आपके प्रश्नों सदृश अधिकांश वे ही कर सकते हैं जो ध्यान से स्वाध्याय करें। साप वेद के साढ़े अठारह सौ मंत्रों में से केवल अठत्तर ७८ मंत्रों का नया होना—शेष सब ऋग्वेद में आ चुके हैं—चार ऋषियों में से एक की आवश्यकता को तो उड़ा ही देता है। फिर अग्नि वायु सूर्य (आग, हवा, सूर्य) मनुष्य ऋषि हुए ही नहीं। यह तो सरासर स्वामी (दयानन्द) की धींगा धींगी थी कि मनु—शतपथ के उन वाक्यों का अभिप्राय तो कुछ और था पर सृष्टि के आदि से चार वेद। अतः कोई न कोई चार ऋषि खड़े करने थे सो इन (अग्नि०) को ला पटका। सुन लो कि वेद एक ही था—इस कलियुग के आदि में वेद व्यास जी ने एक से चार बनाये और वह भी केवल सुगमता के लिये—यज्ञ वाले मंत्रों का संग्रह यजुः, गायन वालों का साम, दवाई इलाज आदि वाले मंत्रों का संग्रह अथर्व, स्तुति प्रार्थना आदि का ऋग्—पृथक् २ किये गये। यह एतिहासिक घटना

श्रीमद् भागवत् पुराण के १२ वें स्कन्ध में सविस्तार आई है। पुराणों में जो गपोड़े—सृष्टि नियम विरुद्ध बातें—हों उन्हें न माना जाय, परन्तु अन्य बातों को क्यों न ठीक माना जाय। भागवत बनाने वाले को ऊपरी बातें लिखने से क्या लाभ था, यदि वह गढ़न्त थीं।

४—वेद ईश्वरीय नहीं हैं। जिनको द्रष्टा कहा जाता है वे ही विश्वामित्र, वसिष्ठ, अगस्त, भरद्वाज, वाम देव आदि ऋषि ही उन २ सूक्तों के कर्ता (रचयिता—मुसन्निफ) हैं। आर्यसामाजिक पण्डित गण कुरान, इञ्जील को जिन युक्तियों से अनीश्वरीय सिद्ध करते हैं उन्हीं युक्तियों से वेदों का अनीश्वरीयत्व सिद्ध हो रहा है। अतः सचाई ईमानदारी की बात तो यह थी कि वर्तमान शास्त्रार्थ प्रणाली को रोक दिया जाता—श्री स्वामी जी महाराज ने तो दश नियमों में से एक नियम (सत्य का ग्रहण) बना दिया परन्तु उसपर अमल किसी का नहीं है।

अपनी छान बीन का सारांश मैं ने एक पुस्तक "वैदिकधर्मी समाज" नामक में जो १२० पृष्ठों का है छपवा दिया है। आप वेदों के सिद्धान्तों के समझने के इच्छुक हैं तो उसको मगा कर पढ़लें, फिर उस पर से पत्रों द्वारा शंकासमाधान कर सकेंगे। वह पुस्तक ॥) की है, वी० पी० का ।-) पड़ेगा; मंगाना हो तो एक कार्ड "मैनेजर शिवरत्न प्रेस कानपुर" इस पते पर भेजकर मगालेना। यदि आप उधार भेजें तो इस मास जुलाई भर यहां बड़ोदा में भेज सकते हैं, पश्चात् ऊपरो छपे हुए कानपुर के पते पर।

(५) मैं यह अपनी पुस्तक बिकने के लिये नहीं लिख रहा हूं, बल्कि आप जैसे जिज्ञासु धर्म-पिपासु (मुहक्किक) जैसों की ही सन्तुष्टि निमित्त यतः मेरा उक्त (पुस्तक रचना) पुरुषार्थ है। इस लिये आपको यह बतलाना उचित था कि आपके कल्याण का मार्ग वहाँ है। निस्सन्देह आपके इन प्रश्नों का उत्तर सचाई के साथ कोई आर्य सामाजिक पण्डित दे ही नहीं सकता। वे बिचारे भी क्या करें? लाचार इससे हैं कि जो मन्तव्य वेदों के सिद्धान्त मान लिये गये हैं वे सर्वांशतः वेदानुकूल नहीं हैं; अतः खैंचा तानी से काम चलाने के सिवाय और उपाय ही क्या है।

(६) मैं अन्त में आपको यह सुनाये देता हूँ कि उक्त पुस्तक में मैं ने यह दर्शाया है कि यतः वेदों का ठीक २ अभिप्राय सनातनी और आर्यसमाजी दोनों छिपा रहे हैं; अतः एक अन्य समाज स्थापित होनी चाहिये जो संसार में वेदों का ठीक २ सर्वमान्य या बहुमान्य अर्थ को प्रकट कराता हुआ ही उसका प्रचार करावे। अवश्य ही मेरी उक्त पुस्तक से आपकी सब शंकायें निवृत हो जायँगी। सारी शंकाओं की जड़ इस उस पुस्तक को ईश्वरीय मान लेना ही है; अतः उसको हमने उच्छिन्न कर डाला है। अब आप मेरा अभिप्राय समझ गये होंगे। अत और अधिक पढ़ना चाहे तो पुस्तक को पढ़लें। इतिशम्।

हितेच्छु--

मङ्गलानन्दपुरी--मार्फत पोस्ट मास्टर

बड़ोदा नगर

नोट—यहाँ पर पुरी जी ने पत्र समाप्त कर दिया है, परन्तु विशेष शब्द लिख कर कुछ और भी लिखा है और वह इस प्रकार है—

जीवात्मा शरीर से निकलकर आकाश में,

बादल में, वर्षा में, वृक्षों में, फलों में जाकर बैठता है। वहां से उन फलों (अन्न) को खाने पर पुरुष के शरीर में जाकर वीर्य में बैठा रहता है और अनुशयी नाम होता है; फिर जब वह स्त्री का समागम करता है तब गर्भाशय में जाकर गर्भस्थित बालक शरीर का अभिमानी जीव कहलाता है—ऐसा प्रमाण छान्दो० या बृहदा० में मिलता है। वस्तुतः ऐसा ही होगा—या और कुछ—यह कोई नहीं जान सका। उन ऋषियों के गम्भीर विचार में जो कुछ आया वे लिख गये। श्री नारायण स्वामी जी की वह बात भी उसी बृहदा० में आई है कि जैसे जोंक एक पाँव आगे रखकर पिछला उठाता है उसी प्रकार इस शरीर से निकलते ही जीवात्मा अगले शरीर में झट चला जाता है।

ये दोनों परस्पर विरुद्ध बातें क्यों? इस प्रश्न का उत्तर बेचारे आर्यसमाजी क्या देंवे। मुझसे यदि यह प्रश्न किया जावे तो मेरा उत्तर यह है कि वे ऋषि गण परब्रह्म परमेश्वर नहीं थे कि ठीक ठीक बात जानकर निश्चयकरेण कथन कर देते। वे भी तो आखिर मनुष्य ही तो थे—हां हम लोगों से बहुत उच्च कोटि के बुद्धिमान थे—वे सच्चे थे। जब २ जो २ बात उनके छान बीन में आई उन्होंने उस उसको यथार्थतः प्रगट कर दिया। अतः उनकी तहकीकातों से हम लाभ उठावें; जो ठीक जँचे उसे मानें—इत्यादि।

स्वामी मङ्गलानन्द पुरी जी के पत्र का सार इस प्रकार है—

(१) स्वामी दयानन्द जी का वेद भाष्य गुमराही में डालने वाला है।

(२) आर्यसमाज में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो वेदों का स्वाध्याय करता हो।

(३) वेद मनुष्यों के बनाये हुए हैं, ईश्वरीय नहीं हैं।

(४) पहिले केवल एक ही वेद था। व्यास ऋषि ने चार खण्ड कर दिये, जिनका विस्तृत हाल पुरी जी की पुस्तक में व भागवत में दिया है।

(५) अग्नि, वायु, आदित्य तथा आङ्गिर, चार ऋषि नहीं हुए; यह नाम भौतिक आग हवा सूरज आदि के ही हैं। ऋषि दयानन्द ने धींगाधींगी से इनको मनुष्य ऋषि लिख दिया है।

(६) भिन्न २ ऋषि भिन्न २ सूक्तों के कर्त्ता थे।

(७) पुरी जी ने बड़ी छान बीन के साथ एक किताब "वैदिक धर्मी समाज" लिखी है। उसमें मनुष्य के कल्याण का वास्तविक मार्ग है।

(८) एक नये वैदिकधर्मी समाज की स्थापना होना चाहिये जो वेदों का सर्वमान्य या बहुमान्य अर्थ प्रकाशित करे।

(९) आर्य्य समाजियों ने सत्यार्थप्रकाश को ही वेद मान रक्खा है।

(१०) दुनिया में कोई भी पुस्तक ईश्वरीय हो ही नहीं सकी।

(११) जीवात्मा शरीर से निकल कर आकाश में, बादल में, वर्षा में, वृक्षों में, फलों में जाकर बैठता है; वहां से पुरुष के शरीर में, वीर्य्य में जाकर बैठ रहता है।

(१२) उपनिषदों में परस्पर विरुद्ध बातें हैं जिन का निराकरण विचारे आर्य्यसमाजी पण्डितगण नहीं कर सकते हैं। भवदीय—

मङ्गलसेन, अम्बाला छावनी।

बाहुबलि की प्रतिमाएं गोम्मट नाम से क्यों कही जाती हैं ?

[अनुवादकः—श्रीमान् जगदीश चन्द्र जी जैन M. A.]

[गताङ्क से आगे]

अब "गोम्मट" की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने मत को प्रकाशित करने के पहले मैं यह कह देना चाहता हूं कि चामुण्डराय इस नाम को प्राप्त करने वाले किस प्रकार और क्यों नहीं हैं। तथा स्वयं मूर्ति ही इस नाम से पहले प्रचलित हुई।

(१) नं० २४२ (सन् ११७५), ३३३ (सन १२०६), ३४५ (सन ११५९), ३४९ (सन ११५०) और ३९७ (सन् ११२९) के शिलालेख श्रवणबेलगोला को "गोम्मटपुर" अर्थात् "गोम्मट का नगर" कहते हैं। इस नाम से यह स्पष्ट मालूम होता है कि इसका अभिप्राय भगवान् गोम्मट के नगर अर्थात् बाहुबलि की मूर्ति से है, चामुण्डराय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

(२) नेमिचन्द्र के गोम्मटसार की ९६८ वीं गाथा में लिखा है—"गोम्मटशिखर पर खड़े होने वाले जिन "गोम्मट" कहे जाते हैं"। क्या यह विश्वास करना अधिक सम्भव और सङ्गत नहीं है कि श्रमणबेलगोला की चोटी जहां मूर्ति स्थापित है, चामुण्डराय के नाम पर नहीं कही जाकर गोम्मट के नाम पर कही जाती थी ? यह मूर्ति विन्ध्यगिरि या इन्द्रगिरि नामक बड़ी पहाड़ी पर खड़ी है। यदि चामुण्डराय का गोम्मट नाम होने के कारण बड़ी पहाड़ी गोम्मटशिखर कही जा सकती थी तो चन्द्रगिरि नाम की छोटी पहाड़ी भी इसी अथवा इसके समान किसी और नाम से क्यों नहीं कही गई ? इसके ऊपर भी चामुण्डराय का बनाया हुआ एक मन्दिर है। इसलिये क्या यह सारांश सङ्गत नहीं है कि स्वयं मूर्ति पहले ही गोम्मट कही जाने लगी थी ? यही बात कारकल (दक्षिण कैनाड़ा ज़िला) के सम्बन्ध में है। वहाँ छोटी शिला भी जिसके ऊपर मूर्ति विराजमान है, मूर्ति के स्थापक "वीर पाण्ड्य" अथवा "पाण्ड्यराज" के नाम पर न कही जाकर स्वयं मूर्ति के गोम्मट नाम पर "गोम्मटबेट्ट" अर्थात् "गोम्मट की पहाड़ी" कही जाती है।

(३) सन् ९८१ और ९८४ के बीच में रचित त्रिलोकसार में नेमिचन्द्र ने चामुण्डराय को गोम्मट नाम से नहीं कहा है, लेकिन इसके पीछे रचे हुए गोम्मटसार में चामुण्डराय को गोम्मट कहा गया है। इससे ज़ाहिर होता है कि मूर्ति का "गोम्मट" अथवा "गोम्मटेश्वर" नाम इसी बीच में पड़ा है। सम्भव है कि प्रत्येक वर्ष में आने वाले बहुसंख्यक यात्रियों ने यह नाम दे दिया हो।

(४) बाहुबलि की स्मृति में स्थापित कारकल

और वेणूर की मूर्तियाँ अपने अलग २ शिलालेखों में "गोम्मट" नाम से कही गई हैं। कारकल मूर्ति के (सन् १४३२) वाम भाग का लेख निम्न प्रकार है—"यह मूर्ति विद्वानों से प्रशंसित भैरवेन्द्र के पुत्र वीर राजा पांड्य राज द्वारा बहुत समारोह से निर्मित की गई है। यह सुन्दर और पवित्र जिन की मूर्ति तुम्हारी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करे"।

वेणूर की मूर्ति (सन् १६०३) के बाँई ओर का लेख निम्न प्रकार है—"पुञ्जलि के राजधानी के राजा, राजाओं में श्रेष्ठ तिम्म ने आदि जिन के पुत्र गुम्मटेश नामक आनन्द रूप जिन भगवान की मूर्ति स्थापित की"।

कारकल और वेणूर की मूर्तियों को स्थापित करने वालों का, प्राचीन नाम गुम्मट को ही अविकल रूप से पसन्द करना यह प्रमाणित करता है कि श्रवणबेलगोला की आदिम मूर्ति का उल्लिखित नाम "गोम्मट" अथवा "गुम्मट" इसके प्रतिष्ठाता से नहीं लिया गया है।

ये युक्तियाँ मुझे—स्वयं चामुण्डराय ही गोम्मट नाम अथवा पदवी का पहले पहिल प्राप्त करने वाला था तथा मूर्ति के संस्थापक होने के कारण यह नाम मूर्ति के लिये लागू हो गया—इस मत से अथवा सब जगह फैले हुए इस विश्वास से असहमत होने को बाध्य करती हैं। अतएव मेरा अभिप्राय यह है कि बाहुबली की प्रतिमा होने के कारण स्वयं श्रमणबेलगोला की मूर्ति ही पहिले जन साधारण में सब जगह गोम्मट कही जाने लगी तथा नेमिचन्द्र ने, इस मूर्ति के प्रतिष्ठाता होने के कारण अपने शिष्य चामुण्डराय को गोम्मट अथवा गोम्मटराय यह नया नाम दिया। अब देखना है कि गोम्मट का क्या अर्थ है ?

कात्यायन कृत प्राकृत मञ्जरी में परिवर्तन नियमों के "न्मो मः" (३।४२) † सूत्र से द्वित्व वर्ण "म्म" बदल जाता है। इसमें संस्कृत मन्मथ शब्द जिसका अर्थ कामदेव है प्राकृत में गम्मह !……… हो जाता है।

(१) दन्त्य वर्ण जब संस्कृत शब्द के अन्त में होता है, कनाड़ी में मूर्धन्य हो जाता है; जैसे—

(संस्कृत)	(अर्थ)	(कनाड़ी)
ग्रन्थिः	(गाँठ)	गान्टि अथवा गण्डु
श्रद्धा	(विश्वास)	सड्डे
तान	(संगीत में)	टाण
पट्टन	(शहर)	पट्टण
पथ	(मार्ग)	बट्टे

अतएव प्राकृत "गम्मह" की तरह मन्मथ शब्द का "थ" कनाड़ी में अन्तिम "ह" न होकर "ट" हो जाता है तथा इस तरह संस्कृत में मन्मथ, प्राकृत में गम्मह तथा कनाड़ी तद्भव में गम्मट रूप होगा।

(२) कनाड़ी शब्दों में प्रथम "अ" के स्थान में छोटा "ओ" हो जाता है (जैसे अंगरेजी में not) जैसे "मगु" (बच्चा)—मोगु, "तप्पलु" (घाटी)—तोप्पलु, "मम्मग" (पोता)—मोम्मग, "मगच्चू" (उलटना)—मोगच्चू, "दट्टि" (गोशाला)—दोट्टि, "सप्पु" (सूखी पत्तियाँ)—सोप्पु, "मल" (हस्त परिमाण)—मोल, इत्यादि; अतएव यहाँ गम्मट * से गोम्मट होना स्वाभाविक और अनिवार्य है।

(३) यह ध्यान में रखना चाहिये कि छोटो

† निर्णयसागर प्रेस आवृत्ति, पृष्ठ ४१ * गम्मट रूप कहीं नहीं मिलता।

"ए" (जैसे अंगरेज़ी में Net, Red आदि) तथा छोटा "ओ" (जैसे अंगरेज़ी में Not, Rod, Sob आदि) संस्कृत में नहीं होते हैं। यद्यपि उपर्युक्त वर्ण प्राकृत में मिलते हैं, लेकिन इनका बोध कराने के लिये अलग अक्षर नहीं हैं। अब, गोम्मट शब्द में प्रथम वर्ण छोटा "ओ" है; यद्यपि यह आगे के द्वित्व व्यञ्जनों से छन्द में बढ़ जाता है लेकिन बड़ा "ओ" नहीं होता। इससे यह स्वाभाविक ही है कि जब यह शब्द संस्कृत में प्रयुक्त होता है इसका आदि का छोटा "ओ" संस्कृत की अलङ्कार प्रणाली रखने के लिये बड़े "ओ" में परिणत हो जाता है। इस तरह "गोम्मट" "गोमट" हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि प्राकृत में "गोम्मट" तथा संस्कृत में "गोमट" रूप की क्यों प्रधानता है।

(४) यह ऊपर ही कहा जा चुका है कि कनाड़ी तद्भव रूप में संस्कृत शब्द-पथ का "बट्ट" हो जाता है। यह आगे मालूम होगा कि संस्कृत शब्द का अन्तिम दन्त्य दीर्घोच्छ्वासी 'थ' मूर्धन्य ह्रस्वोच्छ्वासी द्वित्व हो जाता है। इस प्रकार मन्मथ गोम्मट्ट (प्रथम छोटे "ओ" के साथ) अथवा गोमट्ट (प्रथम बड़े "ओ" के साथ) हो जाता है।

(५) "गुम्मट" शब्द के विषय में यह मत है कि यह "गोम्मट" का ही दूसरा रूप है। "गोम्मट" में आदि के छोटे "ओ" के स्थानमें छोटा "उ" होगया है। इस प्रकार दो समान वर्णों के परस्पर परिवर्तन होने के उदाहरण कनाड़ी में बहुत साधारण हैं, यथा "कोडु" (देना)—"कुडु", "तोडु" (पहिला)—तुडु, "मोग्गे" (कलि)—मुग्गे, "मोरे" (शब्द करना)—मुरे, "मोरड्डु" (खरदरापन या विषमता) मुरड्डु, "बोगरी" (लट्टू)—बुगरी आदि अतएव गोम्मट और "गुम्मट" दोनों एक दूसरे के परिवर्तित रूप हैं।

इस प्रकार शब्द विज्ञान की बुनियाद पर से यह स्पष्ट है कि गोम्मट (छोटा "ओ") गोमट (बड़ा 'ओ"), गोम्मट्ट (छोटा "ओ"), गोमट्ट (बड़ा "ओ") और गुम्मट (छोटा "उ") ये सब केवल संस्कृत शब्द "मन्मथ" के—जिसका अर्थ कामदेव होता है—तद्भव रूप हैं।

आसरो तिहारो है !

धाये धाये भक्त लोग, नाशन को जन्म रोग,
योगी औ वियोगी आज जय जय उचारो है।
आये हैं त्रिलोकी नाथ, दीनबन्धु दीनानाथ,
कीन्हो विश्व को सनाथ पातकिन उधारो है॥
संतन महन्तन को ज्ञानी गुणवन्तन को,
रंकों धनवन्तन को, सुन्दर सहारो है।
बाल ब्रह्मचारी हो, अनंत गुणधारी हो,
प्रभु कुंथा कुमारी को आसरो तिहारो है॥

देश की दरिद्र दशा, देखिये दयानिधान,
भारत की भूमि ने भीषण रूप धारयो है।
मारो है मनुष्य को दीन दुखी पशुओं को,
महल मकान धन नाश कर डारो है॥
टारो है सुधा-सम सुजोत, भारत में ओतप्रोत
डोलै है डोल मांहि, यों कह पुकारो है।
तारो तारो आय के, उबारो मेरे प्रभु वीर,
हम दुरभागियों को आसरो तिहारो है॥*

—कुन्था कुमारी जैन

* वीर जयन्ती महोत्सव देहली के कवि सम्मेलन में पठित।

चिर वैधव्य विधवा जीवन का उच्च आदर्श है।

(ले०—स्वर्गीय गुरुदास बनर्जी)

[गतांक से आगे]

चिर वैधव्य प्रथा के प्रतिकूल तीसरी आपत्ति यह है कि इस प्रथा के अनेक कुफल हैं, जैसे—गुप्त व्यभिचार और गर्भपात। यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरह के कुफल कभी कहीं फलते ही नहीं, किन्तु उनकी संख्या कितनी है? दो एक जगह ऐसा हुआ है, या होता है, इसी लिये चिरवैधव्य पालने की प्रथा निन्दनीय नहीं ठहराई जा सकती। विधवाओं में ही क्यों, सधवाओं में ही क्या व्यभिचार नहीं है? किन्तु इस अप्रिय विषय को लेकर इस समय अधिक बातें कहना निष्प्रयोजन है। चिरवैधव्य प्रथा के विरुद्ध चौथी और शायद अंतिम आपत्ति यह है कि यह प्रथा जब तक प्रचलित रहेगी, तब तक विधवायें इच्छानुसार अपना विवाह करने का साहस नहीं करेंगी, कारण, प्रचलित प्रथा के विरुद्ध कार्य करने में सभी को संकोच होता है। और ऐसा कार्य जन समाज में निन्दित अथवा अत्यन्त अनादृत होता है। अतःएव आन्दोलन के द्वारा लोगों का मत बदलकर, जिसमें यह चिरवैधव्य पालन की प्रथा उठ जाय वही करना समाज संस्कारकों का कर्त्तव्य है।

जान पड़ता है इसीलिये विधवा विवाह आईन के द्वारा सिद्ध होने पर भी और उसमें बाधा डालने का किसी को अधिकार न रहने पर भी, विधवा विवाह के अनुकूल पक्ष वाले लोग चिर वैधव्य प्रथा को उठा देने के लिये इतना यत्न कर रहे हैं। यद्यपि वे सब, अथवा उनमें से अधिकांश लोग स्वीकार करते हैं कि अपनी इच्छा से चिरवैधव्य पालन उच्च आदर्श है तथापि वे चाहते हैं कि उस उच्च आदर्श का पालन प्रथा न हो कर प्रथा के व्यतिक्रम स्वरूप से रहे और विधवा विवाह ही प्रचलित प्रथा हो। जब इच्छा करते ही से बिना किसी बाधा के विधवा का विवाह हो सकता है, फिर वे क्यों स्वीकृत उच्च आदर्श की अनुयायिनी चिरवैधव्य पालन की प्रथा को उठा देकर विधवा विवाह की प्रथा को प्रचलित करना चाहते हैं, यह ठीक समझ में नहीं आता। वे चिर कौमार व्रत की बहुत बहुत प्रशंसा करते हैं। लेकिन चिर वैधव्य प्रथा को उठा देने के लिये कमर कसे हुये हैं, यह एक विचित्र बात जान पड़ती है। यदि यह प्रथा प्रयोजन या इच्छा के माफ़िक़ विधवाविवाह के लिये बाधाजनक होती, तो इसे उठा देने की चेष्टा का यथेष्ट कारण होता। किन्तु समाज बन्धन इतना शिथिल है और समाज की शक्ति इतनी थोड़ी है कि समाज की प्रथा किसी की भी इच्छा की गति में रुकावट नहीं डाल सकती। हाँ, यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि यद्यपि चिरवैधव्य पालन की प्रथा, विधवा अगर विवाह करने की इच्छा करें तो, उस में बाधा नहीं डाल सकती। किन्तु विधवा के मन

में वह इच्छा पैदा करने में अवश्य रुकावट डालती है। और इसी कारण से यद्यपि विधवाविवाह का आईन पास हुए आधी शताब्दी से भी अधिक समय बीत गया है, तो भी अबतक साधारणतः हिन्दु विधवा के मन में विवाह के लिये पहले से ही अनिच्छा बनी हुई है: उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तो फिर असल बात यह सिद्ध होती है कि हिन्दू विधवाओं की विवाह के लिये जो परंपरा गत अनिच्छा है उसे दूर करके विधवा विवाह के लिये प्रवृत्ति पैदा करना ही समाज संस्कारका का उद्देश्य है। इससे विधवाओं को कुछ २ क्षणभंगुर एहिक सुख हो सकता है, किन्तु उसके द्वारा न तो उन्हें कोई स्थायी सुख प्राप्त होगा और न समाज का ही विशेष कल्याण होगा। पक्षान्तर में पहिले ही दिखाया जा चुका है कि चिर वैधव्य के पालन में विधवाओं का निर्मल पवित्र स्थायी सुख मिलता है, और समाज का भी बहुत कुछ भलाई और उपकार होता है। आत्म संयम, स्वार्थ-त्याग, परार्थ परायणता आदि उच्च गुणों के विकास से हम अन्यान्य विषयों में मनुष्य की क्रमोन्नति का लक्षण मानते हैं, किन्तु विधवाओं के विवाह के विषय में क्यों उसके विपरीत ढंग पकड़ना चाहते हैं, इसका कारण समझना कठिन है। शायद कोई कोई यह समझ सकते हैं कि पाश्चात्य देशों में विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित है, और उन्हीं सब देशों ने वैषयिक उन्नति अधिक की है, इसलिये हमारे देश में भी वह प्रथा प्रचलित होने से हमारी भी वैसी ही उन्नति हो सकेगी। पहिले तो यह बात युक्ति से सिद्ध नहीं है; बाल्य विवाह के साथ देश की अवनति का कार्य कारण-सम्बन्ध रहना संभव भी है, किन्तु चिर वैधव्य पालन के साथ देश की अवनति का क्या सम्बन्ध है, सो कुछ समझ में नहीं आता। अगर यह बात ठीक होती कि समाज में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है, और विधवा विवाह प्रचलित न होने से पुरुष अविवाहित रह जाते हैं तथा इसी कारण देश के लोगों की संख्या समुचित रूप से बढ़ने नहीं पाती तो भी यह बात समझ में आ सकती थी। किन्तु वास्तव में हमारे यहाँ पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है, अतएव विधवा विवाह प्रथा प्रचलित होने से उसका फल यह होगा कि अनेक कुमारियाँ वर नहीं पावेंगी। इसी कारण यह स्वीकार किये बिना कि पाश्चात्य देशों की सभी रीतियों का आँख मूंद कर अनुकरण करना चाहिये, विधवा विवाह प्रचलित करने की चेष्टा का और कोई कारण नहीं दीख पड़ता।

शीतोष्ण मय जड़ जगत में हम उसी को सबल शरीर कहते हैं जो रोग से पीड़ित न होकर बिना क्लेश के सर्दी गर्मी को सह सके। वैसे ही इस सुख दुख मय संसार में उसी को सबल मन वाला कहा जा सकता है जो समान भाव से सुख दुख दोनों को भोग सकता हो, जिसका मन दुख में उद्विग्न न हो और जो सुख में स्पृहा शून्य रह सके. निरन्तर सुख किसी को नहीं मिलता, सभी को दुख भोगना पड़ता है, अतएव वही शिक्षा यथार्थ शिक्षा है जिससे शरीर और मन का ऐसा संगठन हो कि दुख का बोझ उठाने में कष्ट न हो। सुख की अभिलाषा करनी हो तो उसी सुख की अभिलाषा चाहिये जो कभी घटे नहीं और जिसमें दुख की

कालिमा न मिली हो । पति के न रहने पर दूसरा पति मिलना सम्भव है, लेकिन पुत्र या कन्या के मर जाने पर उसके अभाव की पूर्ति कैसे होगी ? जिस राह पर जाने से सब तरह के अभावों की पूर्ति हो, अर्थात् अभाव अभाव ही न जान पड़े, वही निवृत्ति सुखमार्ग प्रेय न होने पर भी श्रेय है । उसी मार्ग में जो लोग चलते हैं वे खुद सुखी हैं और अपने उज्वल दृष्टान्त से अन्य के दुख भार को एक दम भले ही न उतार सकें, कम अवश्य कर देते हैं । हिन्दू विधवायें ब्रह्मचर्य और संयम से अपने मन और शरीर का संशोधन करके उसी निवृत्तिमार्ग का अनुसरण करती हैं । उनको उस सुख से फिराकर विपथ में चलाने की चेष्टा करना न तो उन्हीं के लिये अच्छा है और न सर्व साधारण समाज के लिये हितकर है । हिन्दू विधवा के दुःसह कष्ट को स्मरण करके अन्तःकरण अवश्य अत्यन्त व्यथित होता है किन्तु उनकी अलौकिक कष्ट सहिष्णुता और असाधारण स्वार्थ-त्याग पर दृष्टि डालने से एक साथ ही विस्मय और भक्ति से परिपूर्ण हो उठता है । **हिन्दू विधवायें ही संसार में पति-प्रेम की पराकाष्ठा दिखा रही हैं । उनके उज्वल चित्र ने ही अनेक दुख और अन्धकार से पूर्ण हिन्दू के घर को प्रकाशित कर रक्खा है** । उनका प्रकाशमान दृष्टान्त ही हिन्दू नरनारियों की जीवन यात्रा का पथप्रदर्शक हो रहा है । **हिन्दू विधवा का निष्काम पवित्र जीवन पृथ्वी का एक दुर्लभ पदार्थ है ।**

ईश्वर करे वह पृथ्वी पर से भी कभी विलुप्त न हो; हिन्दू विधवा के चिर वैधव्य की प्रथा हिन्दू समाज का देवी मंदिर है । हिन्दू समाज में संस्कार के लिये अनेक स्थान हैं । संस्कारकों के लिये और बहुत से काम पड़े हुए हैं । उन्हें उनके अनेक स्थानों को वर्तमान समय और अवस्था के लिये उपयोगी बना कर संगठित करना पड़ेगा । किन्तु वे विलास भवन बनाने के लिये उल्लिखित देवी मन्दिरों को न तोड़ें, यही उनसे मेरा विनीत निवेदन है ।

मैं ने ऊपर थोड़ी अवस्था के विवाह के अनुकूल कई बातें कही हैं और यहां पर भी चिर वैधव्य पालन प्रथा के अनुकूल अनेक बातें कही हैं । इस से कोई महाशय मुझे समाज संस्कार का विरोधी न समझ लें । मैं यथार्थ संस्कार का विरोधी नहीं हूँ । मैं जानता हूँ कि समय समय पर समाज में परिवर्तन हुआ करते हैं; समाज कभी जड़ भाव से स्थिर नहीं रह सकता । मैं विश्वास करता हूँ कि यह जगत निरन्तर गतिशील है और वह गति बीच २ में व्यतिक्रम होनेपर भी अंत को उन्नति मुखी हुआ करती है । मेरी अत्यन्त इच्छा है कि समाज संस्कार का लक्ष्य सच्ची उन्नति की ओर अविचलित रहे और इसी से कोई कुछ भी कहे, मैं ने समाज संस्कारक सज्जनों से इतनी बातें कही हैं ।

साहित्य समालोचना

हम दुःखी क्यों हैं ?—ले० पंडित जुगल किशोर मुख्तार, दूसरी बार छपकर प्रकाशित, मूल्य एक आना। जैन मित्र मंडल, देहली से प्राप्त।

इसमें लेखक ने "हम दुःखी क्यों हैं ?" इस प्रश्न पर अच्छा प्रकाश डाला है और अन्त में सुखी होने के उपाय बताये हैं। पुस्तक प्रत्येक व्यक्ति के पढ़ने योग्य है।

२. मिथ्यात्व निषेध—ले० ब्र० शीतल प्रसाद जी, मूल्य एक आना। जैन मित्र मंडल देहली से प्राप्त।

इसमें धर्म और अधर्म का फल बतलाकर, देव शास्त्र और गुरु का स्वरूप समझाया गया है। ट्रैक्ट वितरण करने के योग्य है।

श्री सरल वृहद् जैन विवाह विधि—संपादक पं० मोहन लाल जैन शास्त्री, दि० जैन विद्यालय किशनगढ़ तथा प्रकाशक पं० बारे लाल जैन धर्म भूषण मु० पठा पो० टीकमगढ़ (झांसी यू० पी०)। मूल्य आठ आने किन्तु अब पाँच आने का मिलता है। सम्पादक या प्रकाशक से प्राप्त की जा सकती है। यह विवाह विधि यथार्थ में अपने नाम के अनुरूप ही सरल और विस्तृत है। विवाह विधि के पहिले जानने योग्य बातों की तालिका देकर बहुत सी बातें स्पष्ट करदी गई हैं। थोड़ा सा भी जानकार मनुष्य इसके द्वारा आसानी से पाणिग्रहण विधि करा सकता है।

नित्य प्रार्थना—लेखक बाबू ज्योतिप्रसाद जी "जैन कवि" देवबन्द। प्रकाशक जौहरी मल जैन सर्राफ़ बड़ा दरीबा, देहली। दातारों की ओर से निःशुल्क वितरित।

प्रस्तुत पुस्तिका कवि महाशय की एक सुन्दर रचना है। जिसका रंग ढंग "मेरी भावना" की तरह कहा जा सकता है। नित्य पाठ करने के योग्य है।

नूतन बोध माला—लेखक तर्करत्न पं० केन्द्रकुमार शान्तिनाथ जी शास्त्री। प्रकाशक—बालब्रह्मचारी पं० बापूदास नारायण सा धरणगांव (पूर्व खान देश) प्रकाशक की ओर से बिना मूल्य वितरित।

इसमें उत्तम क्षमा आदि धर्मों पर कुछ लेख हैं, अन्त में "जैन समाज का सुधार कैसे हो" शीर्षक से समाज सुधार के कुछ उपाय बतलाये गये हैं। लेखक महोदय ने मराठी भाषा भाषी होकर भी हिन्दी में लिखने का अच्छा प्रयास किया है।

बहीखाता प्रवेशिका, अर्थात् बही खाते के मूल तत्वों की कुञ्जी—रचयिता—जीवनराम लाल, रिटायर्ड डिपुटी इन्सपेक्टर ऑफ़ स्कूल्स, कटनी, सी० पी०। मूल्य आठ आने।

आजकल, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा-शालाओं में व्यापारिक शिक्षा की कितनी अधिक आवश्यकता है, इस बात का बतलाने की ज़रूरत नहीं है। किन्तु हिन्दी भाषा में इस विषय की पुस्तकों का अभाव सा है, प्रस्तुत पुस्तक उस अभाव को

आंशिक पूर्ति कर सकती हैं। इसमें, दुकान चलाने के नियम, बही बनाने की रीति, रोकड़ बही, खाता बही, ब्याज का जमा-खर्च, कच्ची आढ़त, पक्की आढ़त आदि बहुत से उपयोगी विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक को बरार और मध्य प्रान्त के शिक्षा विभागों ने शिक्षक के उपयोग के लिए स्वीकृत किया है। पुस्तक उपादेय है और जैन परीक्षालयों के प्रथमा के कोर्स के साथ रखने योग्य है। हम बम्बई तथा महासभा के परीक्षालय के मंत्री महोदयों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं।

भगवान महावीर और उनका समय—ले० पं० जुगलकिशोर मुख्तार; प्रकाशक हीरालाल पन्नालाल जैन दरीबा कलां देहली, मूल्य ४ आने पृष्ठ सं० ५४।

यह निबन्ध 'अनेकान्त' पत्र की प्रथम किरण में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत पुस्तक उसी का संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप है। नाम के अनुसार इसके दो विभाग हैं—एक भगवान महावीर के जीवन और शासन से सम्बन्ध रखता है, दूसरा प्रचलित वीर निर्वाण सम्वत् पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। दोनों विभागों में यथास्थान धवल और जयधवल नामक सिद्धान्त ग्रन्थों के कितने ही प्रमाणों का समावेश किया है, जिनसे इस निबन्ध की प्रामाणिकता और भी अधिक बढ़ गई है।

मुख्तार साहब विक्रम संवत् का राजा विक्रमादित्य की मृत्यु का सम्वत् मानते हैं, जब कि कुछ ऐतिहासिक विक्रम की शक-विजय के उपलक्ष में इसका प्रचलित किया जाना स्वीकार करते हैं। वास्तव में ऐतिहासिकों के लिये विक्रम राजा आज भी दुरूह बना हुआ है। अस्तु; पुस्तक जन साधारण तथा इतिहास प्रेमियों के पढ़ने तथा संग्रह करने के योग्य है।

आचार्य शान्तिसागर पूजन व स्तवन—यह पुस्तक श्रीमान् सेठ पूनमचन्द घासीलाल जी के द्रव्य से प्रकाशित होकर बिना मूल्य वितरण की गई है। इसमें उभय आचार्य महाराज शान्तिसागर जी का भाषा तथा संस्कृत पूजन स्तवन है। जिसके रचयिता श्रीमान पं० लालाराम जी शास्त्री व पं० मक्खनलाल जी शास्त्री मुरेना हैं। कविता सरल सुन्दर है। छपाई सफ़ाई ठीक है।

होली, नुक्ता—ये दो ट्रैक्ट भा० दि० जैन युवक संघ की ओर से श्रीमान् ओवरसियर बा० कुलवन्तराय जी हरदा द्वारा प्रकाशित हुए हैं। पहला ट्रैक्ट १॥ फ़ार्म का जैनग्रन्थानुसार होली की कथा पर लिखा गया है। लेखक श्रीमान् पं० कमलकुमार जी का परिश्रम प्रशंसनीय तो अवश्य है, किन्तु उन्होंने दबी लेखनी से कतिपय विधवा विवाह आदि सिद्धान्त-विरुद्ध सुधार की बातें उल्लिखित करके पुस्तक का रूप बिगाड़ दिया है। पुस्तक का मूल्य) है। दूसरा ट्रैक्ट मृतकभोजन के निषेध में है। ट्रैक्ट का अभिप्राय अच्छा होता हुआ भी शब्द रचना उग्र है। प्रेमरस भीगी, आकर्षक नहीं है।

वार्षिक रिपोर्ट (थूवान चन्देरी)—यह रिपोर्ट श्रीमन्त सेठ लखमीचन्द्र जी भेलसा की सहायता से श्रीमान चौधरी रामलाल जी महामंत्री ने प्रकाशित की है। इस रिपोर्ट में थूवोन, चन्देरी खंदार, बूढ़ी चंदेरी, गुरीलागिर, गोलाकोट, पचराई सेरोन आदि अनेक तीर्थक्षेत्रों का दो वर्ष का

सचित्र विवरण है। १२ चित्र हैं। क्षेत्रों का हिसाब सामान आदि इसमें दर्ज है। रिपोर्ट बड़े आकार में तथा पृष्ठसंख्या में भी बड़ी है एवं पठनीय है।

रिपोर्ट—जैन बोर्डिङ्ग हाऊस आगरा यह गत वर्ष की रिपोर्ट है। बोर्डिंग में एफ० ए० से लेकर एम० ए० तक के २८ छात्र हैं जिनमें से १० धर्म शास्त्र का भी अध्ययन करते हैं। परीक्षा में २८ में से २१ पास हुए हैं। इस तरह परीक्षाफल अच्छा रहा है। वार्षिक खर्च १४८२।)। हुआ है और २१२३॥।)। आमदनी हुई है जिसमें २९५॥।) पिछली रोकड़ बाकी भी है।

रिपोर्टें— श्रीमान् सेठ प्रभुलाल जी पांड्या मंत्री बंगाल बिहार उड़ीसा प्रान्तिक दि० जैन तीर्थ क्षेत्रकमेटी ने तेरापंथी कोठी सम्मेदशिखर मधुबन की वीर सं० २४५५-२४५६ और २४५७ की तथा चम्पापुर सिद्धक्षेत्र की वीर सं० २४५६-२४५७ और २४५८ की एवं श्री खंडगिरि उदयगिरि सिद्धक्षेत्र की वीर सं० २४५६-२४५७ की रिपोर्ट भेजी हैं। रिपोर्टों में जमा खर्च के आंकड़े सामानों की लिष्ट खुलासा रूप से दर्ज हैं।

सम्मेदशिखर जी की रिपोर्ट में कर्मचारियों के मासिकवेतनलिष्ट दर्ज नहीं है जो कि होनी चाहिये।

खंडगिरि उदयगिरि सिद्धक्षेत्र एक प्राचीन ऐतिहासिक क्षेत्र है। इस क्षेत्र की त्रुटियों की पूर्ति कराने के लिये मंत्री जी को विशेष प्रयत्नशील होना चाहिये। श्रीमान् सेठ भागचन्द्र जी सोनी अजमेर तथा सेठ पूनमचन्द्र जी प्रतापगढ़ को इस क्षेत्र की कमी पूर्ण करा देनी चाहिये।

रिपोर्टों के देखने से उक्त तीर्थक्षेत्रों का प्रबन्ध सराहनीय प्रतीत होता है। खंडगिरि उदयगिरि का ऐतिहासिक विवरण मंत्री जी को अवश्य प्रकाशित करना चाहिए; तदर्थ हाथीगुफा का खारवेल राजा वाले लेख का विवरण भी रखना आवश्यक है।

भूकम्प से जर्जरित तीर्थक्षेत्र

आदर्श तो, इस काल ने कब से छुड़ा हमसे लिये।
उनके स्मरण के चिन्ह भी भूकम्प ने जर्जर किये॥
दौड़ो! उठो!! हे भाइयो उनको सम्भालो शीघ्र ही।
ये भी चले जाय नहीं, कोशिश करो यों तीव्र ही॥

जनवरी के प्रलयकारी भूकम्प ने जो कुछ कर डाला, उसकी जानकारी से आप व समाज वंचित नहीं रहे हैं। इसने असंख्याता जन धन के सिवाय हमारे तीर्थों को भी असंख्य चोटों का शिकार किया है। उन जगत पूज्य आराध्यदेवों की स्मृतियों को बहुतही जीर्णशीर्ण कर दिया जिन्हें देखकर श्री संमेदशिखरजी की प्रतिष्ठादि में सम्मिलित होने वाले कितने ही महानुभाव दो आँसू बहाये बिना नहीं रह सके हैं।

बिहार प्रांत के श्रीपावापुरी, राजगृही, गुणावा, कुंडलपुर, मंदारगिरि, कमलदह आदि क्षेत्र और बिहार तथा नवादा के मंदिर एवं धर्मशाला बुरी तरह से जर्जरित हो गये हैं। कितने ही तो ऐसे ध्वस्त हुए हैं कि यदि शीघ्र ही मरम्मत न की

जायगी तो निकट भविष्य में कुछ और दुर्घटना भी होने की संभावना है।

अतएव हम अपने तीर्थ भक्त, धर्म श्रद्धालु भाइयों से निवेदन करते हैं कि अपनी अपनी पंचायतियों से या व्यक्तिगत अधिक से अधिक सहायता भिजवाकर इस पुण्य कार्य में सहयोग दें।

उपरोक्त तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार कार्यों में अंदाज़न पच्चीस तीस हज़ार रुपयों से कम नहीं लगेगा। अस्तु-दिगम्बर जैन समाज के प्रत्येक भाई बहिनों को इस कार्य में त्याग-वृत्ति के साथ साथ दानशीलता व तीर्थ भक्ति का परिचय शीघ्रातिशीघ्र देकर पुण्योपार्जन करना चाहिये।

निवेदक—

सभापति—रायबहादुर सखीचन्द (कैसरेहिंद)

मंत्री—बाबू निर्मलकुमार जैन, रईस और जिमींदार

[*सं० अभिमत*—भूकम्पसे जर्जरिततीर्थ क्षेत्र हमने स्वयं देखे हैं, उनकी मरम्मत अभी हो जाना आवश्यक है। जो कार्य आज थोड़े से खर्च में हो जायगा पीछे वह बहुत खर्च करने पर भी नहीं होगा। इस कार्य के लिये मुलतान से द्रव्य एकत्र हुआ है, इसी प्रकार प्रत्येक पंचायत और श्रीमान् के यहाँ से सहायता पहुँचनी चाहिये। आवश्यक धर्म क्षेत्र में दान करना धन का सदुपयोग है। सहायता श्रीमान् बा० निर्मलकुमार जी जैन रईस देवाश्रम आरा के पास भेजनी चाहिये]

श्रीमती चरणदास जी !

[विनोद]

श्रीमती चरणदास जी एक कुलीन पर्दानशीन महिला हैं जिनके लेख श्वेताम्बरजैन तथा जैन पथ प्रदर्शक में छपा करते हैं। आप लिक्खड़ अच्छी हैं। पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये M. S. S. का पाऊडर लगा कर कृत्रिम सुन्दरता से अपना मुख रंग कर फूली नहीं समातीं, लेकिन हैं ऐसी लजीली कि कुछ अपना पता ठिकाना नहीं देतीं जिससे निगोड़ा अनुरागी मन आपकी तलाश में हैरान हो जाता है। सुना है कि आपका श्वसुरालय मुलतान की तरफ़ तथा पीहर पूर्व की ओर है।

पर्दानशीन होने के कारण आप अपना पता पाठकों को नहीं देतीं, लेकिन दिखाने के लिये वृद्ध नहीं किन्तु यंग मैनों की ऐसोसियेशन से आपने गाढ़ प्रेम सम्बन्ध जोड़ लिया है; परिणाम कहीं ख़राब न निकले। नाम भी आपका मनोहर है—'चरणों की दास' (मुझे लिंग विंग का विशेष ज्ञान नहीं, भूल गया हूँ, पुस्तक छोड़े सैकड़ों साल गुज़र गये, ग़लती हो तो माफ़ करना, मतलब पर ध्यान देना, मेरे ख़याल से आप भी निर्लिङ्ग हैं क्योंकि श्रीमतियों के विषय में ऐसा ही सुना जाता है)। पता नहीं मेरे चरणों की दास या इतर पाठकों की दास, संपादकों के चरणों की अथवा अपने चरणों की दास। लोग कहते हैं आपका नाम बनावटी है; अजी बनावटी ही सही श्रीमती जी का शरीर समाज के लिये काम आना चाहिये। नाम बदले बिना क़दर भी तो नहीं। पर्दे के भीतर छिपा हुआ बदसूरत मुख भी अनुरागियों की दर्शन कामना को बढ़ा देता है। इसलिये श्रीमती जी आप मेरे सिवाय और किसी को अपने मुखचन्द्र का दर्शन न देना, क्योंकि ज़माना ख़राब है। हाँ! यह सुना है कि आप डाढ़ी मूँछ वाली हैं सो यह भी कोई अजीब बात नहीं, बहुत से मर्द भी तो बिना मूँछों के देखे जाते हैं, उनकी मूछ आपके मुख पर आ गई तो आपकी सुंदरता में कुछ अंतर नहीं आ सकता। ख़ैर!

मुझे ठीक अपना पता ठिकाना बता देना, जिससे मैं आपसे मिल कर अपनी मनो कामना सफल कर सकूं। बड़ी भारी आशा है कि आप कम से कम मुझसे पर्दा न करेंगी।

स्वामी—मस्तराम

Regd. No. A. 2379

समाचार संग्रह !

जैनधर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी शीर्षक लेख देरी से आने के कारण "दर्शन" के इस अंक में नहीं छप सका। —प्रकाशक

बधाई—श्रीमान पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ न्यायाध्यापक श्री स्या० म० विद्यालय बनारस इस वर्ष क्वींस कालेज की न्यायशास्त्री परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए हैं।

—श्रीयुत प० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के त्याग-पत्र देने पर वीर के सहायक संपादक श्रीमान् पं० परमेष्ठीदास जी न्यायतीर्थ नियुक्त हुए हैं।

—स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस २१ जून को खुलेगा। प्रवेश होने वाले छात्र प्रार्थनापत्र भेजें।

—श्री ब्रह्मचर्याश्रम चौरासी मथुरा में हिन्दी की चौथी कक्षा पास १५ छात्रों की आवश्यकता है। धोती, साड़ी, गलीचा, कालीन, दरी, निवाड़ आदि बुनने का कार्य भी यहाँ सिखाया जाता है।

—पटना के श्वे० जैन बा० हिरानन्द जी ने स्वर्गवास होते समय अपनी सम्पत्ति [illegible] का मिल्कियत [illegible] सम्पूर्ण [illegible] जैन-समाज के हितार्थ दान दी है।

—[illegible] हाईस्कूल में जुलाई मास से [illegible] की क्लास भी खुल जायेगा।

—सूरत के मंदिर में [illegible] के समान सिंहासन, छत्र, तथा चाँदी की प्रतिमा भी चोरी हो गई हैं। जैनरूप में एक मनुष्य दर्शन करने आया, वह ही चोरी करके गया है।

—श्रीमान सं० बालचन्द्र हीराचन्द्र जी [illegible] का एक मन सोना रेलगाडी में से [illegible] गया है. जिससे कि हानि लगभग एक लाख रुपये की है।

—वैसे तो इस मास में स्थान स्थान पर आंधी, आग, डाका, लड़ाई दंगे आदि की अनेक दुर्घटनाएं हुई हैं जिनसे कि जान, माल दोनों की पर्याप्त हानि हुई है किन्तु सबसे अधिक हानि शिकागो में आग लगने से हुई है। जलती हुई सिगरेट सूखी घास पर डाल देने से यह आग लग गई जिसने बढ़कर दो आग बुझाने वाले एंजिन, तीन गोदाम, दो भवन, दो बैंक, एक होटल, एक दुकान, एक रेलवे दफ्तर, एक टेलीफोन आफिस जलाकर भस्म कर दिये। सौ मील दूर पर उड़ने वाले हवाई जहाजों को इस आग की गर्मी मालूम हुई। कई मनुष्य व अनेक पशु भस्म हो गये हैं। ४०० आग बुझाने वाले पुरुष घायल हुए हैं। हानि लगभग साढ़े सात करोड़ रुपये की हुई है।

योग्य वर चाहिये

एक गोयल गोत्रीय जैन अग्रवाल की सुन्दर, सुशील और पढ़ी लिखी कन्या के लिये योग्य वर की जरूरत है। जानकार भाई निम्न पते पर सूचित करने की कृपा करें:—

"चैतन्य" प्रिंटिङ्ग प्रेस, बिजनौर (यू० पी०)

जैनियों के खाने योग्य शुद्ध

च्यवनप्राश

अपूर्व बल दायक, सम्पूर्ण वीर्य विकारों को समूल नष्ट करने वाला, दिल व दिमाग का प्राण, खाँसी दमा का शत्रु, मधु (शहद) रहित, अन्य प्रतिनिधि औषधियों युक्त, शास्त्रोक्त और सस्ता। मूल्य एक सेर का ४) व १ डिब्बी का १)। डाक व्यय पृथक्। पं० इन्द्रमणि जैन, वैद्य शास्त्री

'इन्द्र औषधालय', अलीगढ़

शान्तिचन्द्र जैन ने "चैतन्य" प्रिंटिंग प्रेस बिजनौर से छाप कर प्रकाशित किया।

तारीख १६ जून सन् १९३४ ई०

श्री जिनायनमः

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ
संघ का पाक्षिक मुखपत्र।

वर्ष १ अङ्क २३

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, चूड़ी सराय, मुलतान सिटी। } —ऑनरेरी सम्पादक— { पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री भदैनी घाट, बनारस सिटी।

हार्दिक धन्यवाद !

"जैन दर्शन" के प्रेमियों ने "दर्शन" को निम्न प्रकार सहायता देकर अपना प्रेम प्रकट किया है, एतदर्थ धन्यवाद है। आशा है अन्य दानी महानुभाव भी अनुकरण करेंगे:—

६) ला० नन्हेमल बाबूराम जी, कासगंज
५) सेठ पन्नालाल दुलीचन्द्र जी, दाहोद
४) सेठ रामचन्द्र भगवतीप्रसाद जी, हापुड़
२) छोटोबाई जैन, धर्म पत्नी स्व० ला० विमलप्रसाद जी
२) बा० सुमेरचन्द्र जी रिटायर्ड अकाउन्टेन्ट, अम्बाला छावनी

विनीतः—मैनेजर

वार्षिक मूल्य—२॥) विद्यार्थियों, संस्थाओं और संघ के सभासदों से—२)

श्वेताम्बर जैन की मनोवृत्ति

श्वेताम्बर जैन के २२ वें अंक में प्रकाशित हुआ है कि "करौली, भरतपुर, आगरा, अलवर आदि स्थानों के पल्लीवाल श्वेताम्बरी थे। महावीर जी मंदिर के बनाने वाले दिवान जोधराज जी श्वेताम्बर थे; अतः यह मन्दिर तथा अन्य कई गांवों के मंदिर श्वेताम्बरीय हैं। महावीर जी के मंदिर में भगवान महावीर की तथा कुछ अन्य प्रतिमाएं भी श्वेताम्बर हैं।" अर्थात् सब कुछ उनका है।

दिगम्बर श्वेताम्बर समाज में परस्पर प्रेम बढ़ाने की दिखावटी माला फेरने वाले श्वेताम्बर लेखक किस प्रकार कलह का बीज बोते हैं उसका यह एक नमूना है। इस पर भी श्वेताम्बरी संपादक लिख दिया करते हैं कि तीर्थक्षेत्रों का झगड़ा दिगम्बरी लोग शुरू करते हैं। दिगम्बर जैन समाज को महावीर जी मन्दिर के विषय में श्वेताम्बर समाज से सावधान रहना चाहिये। लेखक यदि पक्षपात छोड़ कर देखें तो उनको मालूम होगा कि पल्लीवाल सदा से दिगम्बरी ही हैं तथा महावीर जी का मन्दिर पूर्णतया दिगम्बर सम्प्रदाय का है।

—खुशीराम जैन, आगरा।

विवाह संस्कार और दान

कासगंज (एटा) निवासी श्रीमान ला० बाबूराम जी के सुपुत्र चि० वीरेन्द्रकुमार का शुभ विवाह द्वि० वैशाख सुदी २ मंगलवार सम्वत् १९९१ को कोलारा कलाँ (आगरा) निवासी ला० कुँदनलाल जी की सुपुत्री के साथ बड़ी धूम के साथ सानन्द समाप्त हो गया। इसी शुभावसर पर धार्मिक संस्थाओं को उभय पक्ष की तरफ़ से १०१) रु० का दान दिया गया, जिसमें से ६) रु० जैनदर्शन और ६) रु० भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ को प्राप्त हुये हैं, एतदर्थ धन्यवाद है।

—प्रकाशक

मन्दिर केशरियानाथ

श्री ऋषभदेव (केशिरियानाथ) मंदिर ध्वजादंड केस में जांच कमीशन के सामने गवाही देने के लिये दिगम्बर जैन समाज की ओर से निम्नलिखित प्रतिनिधि चुने गये हैं:—

१—श्रीमान् रावराजा सरसेठ हुकमचन्द्र जी इंदौर
२— ,, सेठ भागचन्द्र जी सोनी अजमेर
३— ,, रायबहादुर बा० नांदमल जी अजमेर
४— ,, सेठ गेंदमल जी जोहरी बंबई
५— ,, रायसाहिब सेठ चैनसुख छावड़ा सिवनी
६— ,, सेठ रतनचन्द्र जी जरीवाले बंबई
७— ,, सेठ सुंदरलाल जी ठोलिया जयपुर
८— ,, रायसाहिब सेठ मोतीलाल जी ब्यावर
९— ,, सेठ हीरालाल जी कामदार बिजौलिया
१०— ,, बा० अजितप्रसाद जी ऐडवोकेट लखनऊ
११— ,, बा० धीसूलाल जी एडवोकेट अजमेर
१२— ,, बा० हेमचन्द्र जी सोगानी एडवोकेट अजमेर
१३— ,, बा० गंगाराम जी वकील अजमेर
१४— ,, बा० झमकलाल जी वकील परतापगढ़
१५— ,, शाह नाथूलाल जी सर्राफ ऋषभदेव
१६— ,, केसरीमल जी श्रीमाल अजमेर
१७— ,, राजेन्द्रकुमार जी लुहाड्या नरेना

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की ओर से निम्नलिखित प्रतिनिधियों के नाम भेजे गये हैं:—

१—श्रीमान् साराभाई डाह्याभाई
२— ,, प्रतापभाई मोहोलभाई
३— ,, चिमनलाल लालभाई वकील
४— ,, चन्द्रकान्त छोटेलाल
५— ,, बा० राजबहादुरसिंह जी सिंघी
६— ,, नरोत्तमदास जेठाभाई
७— ,, सेठ गुलाबचन्द्र जी ढड्ढा

जैनबन्धु नामक एक मासिक पत्र जुलाई मास में सागर से प्रकाशित होगा।

श्री जैनदर्शननभसि प्रथितोग्ररश्मिः संभोभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ | बिजनौर, ज्येष्ठ शुक्ला ४—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० | अङ्क २३

मितव्ययता का उपयुक्त क्षेत्र !

गृहस्थाश्रम की गाड़ी आर्थिक सड़क के सहारे चलती है। आर्थिक आमदनी गृहस्थ पुरुष के लिये अति आवश्यक है। इस कारण जो नवयुवक अपने गृह-जीवन के योग्य धन उपार्जन की योग्यता नहीं रखता उसको कदापि अपना विवाह नहीं कराना चाहिये और न कन्या के पिता को अपनी पुत्री ऐसे अयोग्य वर को देनी चाहिये। यह विचार एक हद तक सर्वथा उचित है कि यदि धनी का पुत्र भी व्यापार करता न हो तो विद्यमान धन को देखकर उसको भी कन्या समर्पण करना ठीक नहीं क्योंकि इस समय अनेक ऐसे युवक दीख रहे हैं जो अपने पिता के संचित धन को खा पीकर खाखानंद हुए फिर रहे हैं।

जिस प्रकार धन कमाना एक कठिन कार्य है उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक कठिन उस धन की रक्षा करना है, क्योंकि आधुनिक पश्चिमी वायु ने फजूल साधन बहुत बढ़ा दिये हैं। पहले बच्चे एक पैसे के खिलौने से महीनों खेलते रहते थे; अब जापानी खिलौने अच्छी रकम हजम करके केवल कुछ एक दिन ठहरते हैं। स्त्री पुरुषों में इन्द्रियाधीनता के रूप से व्यर्थ फैशन इतना घर कर गया है कि साधारण आय वाला पुरुष उन फैशनों का खर्च भी नहीं उठा सकता। विवाह शादियों के बहाने से खर्च दिनों दिन बढ़ रहे हैं जबकि व्यापार, नौकरी पेशा दिनों दिन गिर रहा है। उधर मृतकभोज (खण्डेलवाल जाति में), लहानकी प्रथा भी जन्म भर की कमाई को थोड़े से समय में हड़प कर जाती है।

अतः सम्भलने का अवसर है, अपना रहनसहन जितना भी होसके सादा बनाना आवश्यक है। आमदनी के अनुसार उसमें से कुछ भाग बचाते हुए निर्वाह करना चाहिये। फैशन का भूत और दिखावटी का सर्वथा त्याग देना चाहिये। बल वर्द्धक खुराक, सदाचार, उत्तमोत्तम पुस्तक और व्यायाम के साधन का खर्च बढ़ाना चाहिये, मितव्ययता (किफायत) इन बातों में न होनी चाहिये, क्योंकि ये चीज जीवन को बनाने वाली हैं।

हमारे नवयुवक

[१२]

मितव्यय

आज कल चारों ओर से यह पुकार आ रही है कि परिवार के खर्च चलाने योग्य आर्थिक आमदनी नहीं रही, इसलिये महान कष्ट के साथ युद्ध करना पड़ता है। व्यापार मंदा हो गया है, अतः खर्च निकलना कठिन हो रहा है, वेतन (तनखा) घटा दिये जाने से घर का गुजारा दुष्कर हो रहा है, आदि। यह पुकार सत्य तो इस कारण है कि व्यापारिक मंदी और नौकरियों का छूटना या तनखाओं का कम हो जाना सर्वत्र प्रत्यक्ष दीख रहा है, किन्तु यह चारों पुकार गलत इस कारण है कि जहां आमदनी कम हुई वहां अन्न वस्त्र आदि आवश्यक पदार्थ भी तो सस्ते हो गये हैं जिससे कि एक ओर धन आने का मार्ग संकुचित हुआ है तो दूसरी ओर खर्च का मार्ग भी कम हो गया है; फिर रोने पीटने का क्या काम!

किन्तु उनका रोना सच है क्योंकि हमारी नवयुवक मंडली ने कमाई के समय में अपनी आवश्यकताएं बढ़ाली थीं। अनेक ऐसे व्यर्थ व्यय (फिजूल खर्च) अपना लिये थे जिनकी कि उनको कोई खास आवश्यकता न थी। अपना रहन सहन खान पान, पहनना ओढ़ना ऐसा विलासी बना लिया था जिसको कि इस मंदी के ज़माने में चलाना कठिन है, किन्तु आदत पड़ जाने से वह छूटता भी नहीं। फल यह हुआ कि रोना पीटना शुरू हो गया। किन्तु विचार किया जावे तो यह कष्ट इस मंदी के समय का नहीं, यह कष्ट हमारा अपने आप खरीदी हुई शौकीनी का है।

हमारे नवयुवक विद्यार्थी अवस्था में अपने आप को बिगाड़ लेते हैं। संगति दोष से अनेक तरह के फ़िजूल खर्चों का अपने आप को आदी बना लेते हैं जितने खर्च से एक बड़े परिवार का अच्छी तरह निर्वाह हो सकता है उतना खर्च केवल उनका अपना होता है। नैकटाई (जो कि ईसाइयत का धार्मिक चिन्ह है और जिसका अर्थ भी फांसी है) उनका आवश्यक भूषण होता है। गर्मी के दिनों में भी जुराबें पहनना उनके लिये अनिवार्य है। कोट, पतलून आदि कपड़े उनके पास अनेक प्रकार के होने चाहियें। कपड़ों की धुलाई, हैट, बूट, साबुन, पालिश, हजामत, तेल आदि शृंगार के साधन जुटाये बिना उनको चैन नहीं आता। फिर सोडा-

वाटर, सिगरेट, चाय, बिसकुट आदि खान पान के पदार्थ उनको जब तक प्राप्त न हों तब तक उनका जीवन सुरक्षित नहीं रहता इत्यादि।

एक युवा पुरुष हमारे सामने ऐसे हैं जिन्होंने एम० ए० पास करके अपने आप को इतना विलासी बना लिया है कि वे बेकारी की दशा में भी घर की वस्तुएं बेच २ कर अपने अकेले का खर्च ७०-८० रुपये मासिक कर रहे हैं। घर पर स्त्रियां सब तरह तंग हैं किन्तु बाबू जी को कोई परवाह नहीं। किसी की सम्मति तो वे मानते सुनते नहीं, क्योंकि स्वयं एम० ए० हैं। ऐसी विलासप्रियता में अपना जीवन तथा परिवार दुखी न हो तो फिर क्या हो?

पुरुषों के समान स्त्रियों के खर्चों में भी भारी बाढ़ आ गई है। पश्चिमी शृंगार के पदार्थों का उपयोग अब हमारी भारतीय महिलाओं में दिनों दिन बढ़ता चला जा रहा है। वस्त्रों की शौकीनी ने जहाँ स्त्रीसमाज के भीतर लज्जा की मात्रा कम कर दी है वहां खर्च की मात्रा बहुत बढ़ा दी है। स्नो, क्रीम, वैसलीन, पाउडर, बढ़िया साबुन आदि अनावश्यक तथा महंगी वस्तुओं का उपयोग स्त्रियों ने अपने लिये अनिवार्य सा बना लिया है। इसके साथ ही घर कामों से अब वे बहुत कुछ जी चुराने लगी हैं। जिन कसबों या नगरों में आटा पीसने की मशीनें हैं वहां पर घर की चक्कियां बंद हो हो गई हैं। चर्खा चलाना तो आजकल जानता ही कौन है। बाजार के बने हुए खास पदार्थ खाने पीने की प्रवृत्ति भी स्त्रियों में घर बनाती जा रही है।

इस प्रकार पति पत्नी दोनों ही ने अपने व्यर्थ खर्च बढ़ा लिये हैं। परिश्रम की कमी ने महिला समाज के शरीर प्रायः निर्बल रोगी बना दिये, जिससे प्रायः प्रत्येक घर में औषध खर्च भी बढ़ गया है। तब फिर इस मंदी के ज़माने में आर्थिक कष्ट का सामना क्यों न करना पड़े?

इस कष्ट से छुटकारा पाने के लिये पति, पत्नी को ज़रा बुद्धिमानी और साहस से काम लेना चाहिये। अपनी आय की कमी के अनुसार उन्हें अपने खर्च भी कम कर देने चाहियें।

जिस खान पान से शरीर का पोषण नहीं होता बल्कि अशुद्ध होने के कारण जो मानसिक संस्कारों में विकार पैदा करते हैं ऐसे सिगरेट, सोडावाटर, भंग, चर्स, बिस्कुट, चाट, चाय आदि पदार्थों का खान पान छोड़ कर घर का सादा शुद्ध भोजन करना चाहिये। फैशन में से उन चीजों का उपयोग एक दम हटा देना ठीक है जो कि अनावश्यक हैं तथा विदेशी लोगों की नकल करके व्यर्थ लादा जाता है। इसके सिवाय पिछले समय में अपने रहन सहन की जो आवश्यकताएं बढ़ाली गई हैं उनको भी यथा संभव घटा देना चाहिये।

इस तरह व्यर्थ खर्च घटाने पर सादा खान पान, सादा वेश भूषा कर लेने पर परिवार बहुत थोड़े खर्च में अपना निर्वाह कर सकता है। खाद्य पदार्थ तथा वस्त्र आदि जीवन उपयोगी प्रायः सभी पदार्थ इस समय सस्ते हैं, इसलिये व्यापारिक मंदी अथवा वेतनों (तनखा) का घट जाना कष्टदायक नहीं हो सकता।

शहरों में टाकी सिनेमा देखने की प्रवृत्ति दिनों दिन बढ़ रही है। मनुष्य इधर तो बेकारी के लिये रोते हैं किन्तु उधर सिनेमा घरों में चींटी की

तरह भरे होते हैं। उधार लेकर, भूखे रह कर, परिवार को कष्ट में डालते हुए भी टाकी सिनेमा देखे बिना उनको चैन नहीं आता, स्त्रियों में भी सिनेमा (चित्रपट) देखने का रोग बढ़ता जा रहा है। यह शौक जहाँ धन को बरबादी का मार्ग है, वहाँ पर सदाचार का भी बहुत भारी घातक है। उसका विशेष कारण यह है कि सिनेमाओं के पात्र (एक्टर) स्त्री पुरुष प्रायः वेश्याएं, कंजर आदि होते हैं जिनके कि हाव, भाव, नृत्य, गान, चित्त पर बुरा संस्कार उत्पन्न करते हैं। इस कारण सिनेमा देखना बहुत हानिकारक है।

नाटक, सर्कस आदि आमोद प्रमोद वर्द्धक खेल देखना भी इस समय त्याग देना चाहिये।

सारांश यह है कि स्त्री पुरुषों को जहाँ तक हो सके अपनी आवश्यकताओं को कम करके अपना रहन, सहन, खान, पान, पहनना, ओढ़ना, आहार विहार सादा बना डालने की आवश्यकता है, जिससे अपने समीप कष्ट आ ही न सकें।

श्रुतपंचमी

अंतिम तीर्थङ्कर पूज्य भगवान महावीर ने अपने केवलज्ञान से त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थमाला का यथार्थ भाव जैसा कुछ अवगत किया उनकी दिव्यध्वनि द्वारा समवशरण में वैसा ही मनुष्य, देव, पशुवर्ग के समक्ष उपदेशरूप में प्रगट हुआ। उस जिनवाणी को गौतम आदि गणधरों ने बारह अङ्गों के रूप में रखकर श्रोता प्राणियों को सरल और विशदरूप से समझा दिया जो कि अपनी अपनी बुद्धि अनुसार जीवों ने धारण किया। जिनका क्षयोपशम अधिक था उन आचार्यों ने उस द्वादशांग जिनवाणी को पूर्णरूप से हृदयंगम कर लिया और जिनका क्षयोपशम मंद था वे उसमें से थोड़ा भाग स्मरण रख सके।

द्वादशांगवेत्ता श्रुतकेवली आचार्यों ने अपने शिष्यों को पढ़ाया। बुद्धि निर्मल होने के कारण वे शिष्य लिखने का सहारा न लेकर मौखिकरूप से पढ़कर याद कर लेते थे। इस प्रकार का पठनपाठन भगवान महावीर स्वामी के मुक्त हो जाने पर लगभग साढ़े चारसौ वर्ष तक चलता रहा। किन्तु काल के अनुसार मनुष्यों का ज्यों ज्यों शरीरबल क्षीण होता जारहा था त्यों त्यों मानसिकबल क्षीण होते जाने से स्मरणशक्ति भी क्षीण होती जारही थी। यही कारण था कि उस समय कोई भी पूर्ण श्रुतज्ञानी न रहा। अङ्गों का साररूप मोटा भाग साधुओं को स्मरण रह गया।

तब श्रीधरसेन आचार्य ने अपनी आयु थोड़ी जानकर यह विचार किया कि अब भगवान महावीर स्वामी की जिनवाणी यों मौखिक पठनपाठन से सुरक्षित नहीं रह सकती जब तक कि इसकी रचना लिपिरूप में न करदी जावे। यह विचार कर उन्हों ने वेणाकतटवर्ती मुनिसंघ में से दो बुद्धिमान साधुओं को अपने पास बुलाया। आज्ञानुसार श्रीपुष्पदंत और भूतबलि नामक दो साधु धरसेनाचार्य के पास आये। धरसेनाचार्य ने उनको जैन-सिद्धान्त पढ़ाया।

श्री पुष्पदन्त, भूतबलि मुनियों ने सिद्धान्त का अध्ययन करके धरसेनाचार्य के स्वर्गवास हो जाने पर उस अवगत सिद्धान्त को शास्त्ररूप में लिखना प्रारम्भ किया तदनुसार षट्खण्ड आगम नामक ग्रन्थ लिखकर ज्येष्ठ सुदि पञ्चमी के दिन समाप्त

किया जो कि अभी तक उपलब्ध है। यह षट्खंड आगम ही जैनग्रन्थों में सबसे पहला ग्रन्थ है। इस कारण उस दिन ग्रन्थ रचना के उपलक्ष्य में बहुत हर्ष उत्सव मनाया गया। उसी समय से यह ज्येष्ठ सुदी पञ्चमी का शुभदिन श्रुतपंचमी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पूर्वज आचार्यों ने हमारे कल्याण के लिये अपने ध्यान, स्वाध्याय आदि के उपयोगी समय को शास्त्र निर्माण में व्यतीत करके अनेक शास्त्र लिखे हैं जिनके कारण आजतक संसार में जिनवाणी परम्परा से चली आरही है और अपने सत्य, हितमय कथन से जगत को बहुत कुछ लाभ प्रदान करने की शक्ति रखती है किन्तु खेद है कि उस पर स्वामित्व प्रायः उन कृपण वैश्य लोगों का है जो कि उसको बाहरी वायु संचार में रखना भी हानिकारक समझते है। यही कारण है कि दुर्जन लोगों के आक्रमणों से जिनवाणी को संभवतः जितनी हानि नहीं पहुँची जितनी हानि कि आधुनिक भक्त लोगों ने भण्डारों में बन्द कर के पहुँचाई है।

जिन अनुपम ग्रन्थरत्नों के प्रकाश से संसार में जैनधर्म का अभ्युदय बढ़ाना था वे अनेक ग्रन्थरत्न कई भण्डारों में इस प्रकार बन्द पड़े हुए हैं कि स्वयं उन भण्डार रक्षकों को भी उन ग्रन्थों के नाम तक का पता नहीं। ग्रन्थों के पत्र उपयुक्त वायु आदि न मिलने के कारण जीर्ण शीर्ण हो रहे हैं किन्तु उन भक्तों को उसका कुछ ख्याल नहीं। जिनवाणी माता की यह अन्धी भक्ति पूज्य जिनवाणी का अङ्ग भङ्ग कर रही है।

अतः उन बंद भण्डारों के स्वामियों को अपनी भूल सुधारनी चाहिये। समय की मांग है कि आप अपने भण्डार के बन्द कपाट खोलें, जिनवाणी का अन्य मनुष्यों को दर्शन करने दें तथा जो ग्रन्थ अन्य शास्त्रभण्डारों में नहीं हैं उनकी प्रतिलिपि उनको करादें।

लोहड़साजन

हमारे पास रिवाड़ी से श्रीमान् गणपतिराय जी पाटनी का एक दुख भरा पत्र आया है जिसका आशय निम्नलिखित रूप से है :—

"खंडेलवाल जाति के हरे भरे पौद को सुखा देने के लिये खंडेलवाल जाति में लोहड़साजन प्रकरण को लेकर एक आग धधक उठी है जो कि शीघ्र शान्त न की गई तो शान्तिबेल को भस्म कर देगी। श्रीमान् मुनि चन्द्र सागर जी (जो कि स्वयं खंडेलवाल हैं) की कृपा दृष्टि से लोहड़साजन भाइयों का किशनगढ़, नसीराबाद की तरफ असह्य अपमान हो रहा है। उसको खंडेलवाल महासभा चुपचाप बैठी देख रही है, उसका मुख पत्र खंडेलवाल हितेच्छु ऐसे विष भरे लेख लिख रहा है जिससे पानी में भी आग लग जावे। जब से मुनि चन्द्रसागर जी मारवाड़ में पधारे तभी से लोहड़साजन बड़साजन का तूफान खड़ा कर दिया।"

यह पत्र है जो कि एक जाति हितैषी व्यक्ति के दुखित हृदय का चित्र है। इस पत्र की ओर खंडेलवाल जाति नेताओं का ध्यान आकर्षित होना चाहिये। अपनी सत्ता को रखने वाली महासभा को चुपचाप बैठकर यह आपत्ति घटना न देखनी चाहिये। उसको अपने अथक परिश्रम से अपने घर का यह अशान्त वायुमंडल शीघ्र शान्त कर देना

चाहिये। सम्मेद शिखर अधिवेशन में अन्य साधारण बाहरी शोभा को बंद रख कर यदि खं० महासभा केवल इस एक प्रश्न का हल कर देती—यदि कुछ अधूरा रहता तो बराबर अब तक इस कार्य में लगी रहती—तब वह अपनी जाति का बहुत कुछ हित संपादन कर देती। जो सभाएं आपत्ति काल में कायरता या प्रमाद दिखलाती हैं वे केवल अपने भद्दे इतिहास की सामग्री रह जाती हैं।

इस समय भी तीर हाथ से छूटा नहीं है, जो काम आज थोड़े परिश्रम से हो सकता है वह पीछे घोर परिश्रम से भी न हो सकेगा; अतः समय को न चूकना चाहिये।

श्रीमान् मुनि चन्द्रसागर जी को क्या निवेदन करें, वे स्वयं विवेकशील साधु हैं, अशान्तिवर्द्धक तथा धर्म घातक कार्य उनकी प्रेरणा से हो, लोहड़साजनों को बड़साजन लोग अपमानित करके धर्म साधन से भी बल पूर्वक रोकें, यह दुर्घटना शोचनीय है। आपके पास जब लोहड़साजनों को हीन ठहराने वाला कोई मान्य प्रमाण नहीं फिर आपकी प्रेरणा से उनका अपमान हो यह आपके सत्य महाव्रत तथा भाषा समिति पर असह्य आघात है। मुनि महाराज निराधार, प्रमाण शून्य बात का हठ नहीं पकड़ते।

जब कि खंडेलवाल जाति में लोहड़साजन, बड़साजनों के अतिरिक्त दस्से खंडेलवाल पृथक् हैं और लोहड़साजन मंदिरों में पूजन प्रक्षाल आदि धार्मिक कृत्य बड़साजनों के समान सदा से करते आये हैं तो भी वे हीन माने जावें यह बात कुछ समझ में नहीं आती।

बुन्देलखंड में यदि किसी भाई के हाथ से अंडा फूट जावे तो उस जैन भाई को जाति बहिष्कृत करके उसका मंदिर में आना जाना बंद कर देते हैं। संभव है कभी ऐसे ही किसी साधारण कारण से लोहड़साजन बड़साजन दो तड़ पड़ गये हों। कुछ भी हो इस प्रश्न का निर्णय शीघ्र होना चाहिये तथा मुनि चन्द्र सागर जी को निवेदन करना चाहिये कि वे ऐसी अशान्ति उत्पन्न न करें, क्योंकि उसमें धर्म तथा समाज को बहुत हानि है। क्रोध मान कषाय पर विजय प्राप्त करना साधु का प्रशंसनीय गुण है।

एवं खंडेलवाल जाति के प्रभाव शाली नेताओं को ज़रा अपना आराम छोड़ कर इस मामले को हाथ में लेना चाहिये। उपयुक्त अवसर को हाथ से न खोकर जो महानुभाव समाज सेवा के लिये सहर्ष कष्ट स्वीकार करते हैं उन्हीं का नेतापद सफल और स्थायी होता है अथवा नाजुक मौकों को अपने कठिन परिश्रम से जो सम्हाल लेते हैं वे ही कर्मवीर नेता बन जाते हैं। आशा है कि ये वाक्य कर्मण्य पुरुषों के कर्णविवरों को खोल देंगे।

पशुहवन

आज से ढाई हजार वर्ष पहले मांसलोलुप याजक लोग पशुहत्या करके यज्ञ किया करते थे जिसको पूज्य भगवान महावीर ने अहिंसा का प्रचार करके बंद कराया था। उस समय यज्ञों का पशुहवन यद्यपि प्रायः बंद हो गया किन्तु ग्रंथों में पशुहवन का विधान ज्यों का त्यों बना रहा। इसी कारण बीच बीच में कभी २ कहीं २ पर ब्राह्मण लोग अपने आप को धार्मिक

गुरु मानते हुए इस निंद्य हिंसाकृत्य को कर डालते हैं।

अभी गत २७ मई को मदरास में कावेरी नदी के किनारे शंकराचार्य के कामकाठो मठ में मैसा ब्राह्मणों ने ऐसा पशुयज्ञ कर डाला जिसमें कि भिन्न २ स्थानों से आये हुए लगभग २००० ब्राह्मण सम्मिलित हुए थे। यह यज्ञ ब्राह्मण जाति के कल्याण के लिये देवताओं को प्रसन्न करने तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के उद्देश से किया गया था। यज्ञ सवेरे से शाम तक होता रहा जिसमें कि २३ बकरियों को मार कर हवन किया गया। हिन्दू जनताने इस यज्ञ के विरोध में गांधी पार्क के भीतर सभा की; इस पर ब्राह्मणों ने पुलिस को बुला लिया जिससे कि यज्ञस्थान पर उनके भक्त लोगों के सिवाय अन्य कोई मनुष्य नहीं जाने पाता था।

जो मूक पशु अपना दुख मुख से कह नहीं सकते, जिनकी रक्षा मानव समाज पर निर्भर है, उन दीन, निरपराध, दूध देने वाले पशुओं को तलवार के घाट उतार कर धार्मिक कृत्य मनाया जाता है यह कितना निर्दय, पापमय, निन्द्य कार्य है। जो ब्राह्मण समाज अपने आप को सर्वोत्तम, धर्मगुरु, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ तथा धर्मात्मा कहता है वही ब्राह्मण समाज अपने हाथों से ऐसी दया-हीन क्रिया कर सकता है, कितनी घृणित बात है!

कहां तो 'आत्मनःप्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' ऐसे स्मृति के अनेक वाक्य ब्राह्मण लोग सुना कर अहिंसा का उपदेश देते हैं और कहां पशुओं को छुरी से हनन करके निर्दय हत्या की लीला जनता के विरोध करने पर भी दिखलाते हैं। ब्राह्मण समाज का इससे बढ़ कर पतन और क्या हो सकता है?

लेखसार

श्वेताम्बर मतसमीक्षा के सहारे लापता चरणदासजी नाम के किसी श्वेताम्बर भाई ने जो दूसरा लेख प्रकाशित कराया है उसके प्रतिवाद में लगभग एक मास पहले श्रीमान् ला० न्यामतराय जी नौलक्खा मुलतान का आधे फ़ार्म का एक लेख दर्शन में प्रकाशित होने आया था, जो कि हमने अनावश्यक समझ प्रकाशित नहीं किया; एवं २-१ अन्य इसी प्रकार के प्राप्त लेखों को रद्द कर दिया। क्योंकि हम इस बात को साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं बनाना चाहते; अपने ऊपर आये हुए सारगर्भित आक्षेपों का समाधान हम स्वयं कर लेंगे। किन्तु उनकी तीव्र प्रेरणावश उनके लेखकी केवल एक प्रश्नरूप बात यहां प्रगट करते हैं—

"चरणदासजी ने लिखा था कि 'श्वे० मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय जबकि यहां पर श्वे० आचार्य लब्धिविजय जी पधारे थे तब दिगम्बरी लोग शास्त्रार्थ में हार गये थे, उसी पराजय को धो डालने के लिये श्वेताम्बर मत समीक्षा लिखी गई है। आदि'। यदि लापता चरणदासजी सचमुच कोई महाशय हैं तो वे बतलावें कि शास्त्रार्थ किस विषय पर हुआ था! और किस विद्वान् ने श्वेताम्बर समाज की ओर से विजय प्राप्त की थी तथा भयके कारण किसका मन्दिर से बाहर आहार विहार के लिये आवागमन बन्द था? आपका निवास स्थान कहां है? और आप अंग्रेज़ी कहां तक जानते हैं एवं जैन यङ्गमैन ऐसोसियेशन कौनसी है?"

लेखक को किसी सूत्र से पता चला है कि "चरणदास" मुलतान के एक व्यक्ति का कल्पित नाम है जो कि अंग्रेज़ी की ए. बी सी डी. से भी परिचित नहीं। झूठा प्रभाव प्राप्त करने के लिये M.A. लिखकर भ्रम उत्पन्न करना चाहता है।

नागरी लिपि

"नागरीलिपि जिसको कि हिन्दीलिपि भी कहते हैं संसार में सभी लिपियों से उत्तम है" इस बात को सभी विद्वान् हृदय से स्वीकार करते हैं। इङ्गलिश, फ़ारसी, उर्दू, लेटिन आदि सभी लिपियों में अनेक त्रुटियां पाई जाती हैं, किन्तु इस हिन्दीलिपि में कुछ भी त्रुटि नहीं है। मनुष्य जो कुछ मुखसे बोले वैसा ही हिन्दीलिपि में लिखकर दूसरे तक पहुँचा सकता है, किन्तु उर्दू अंग्रेज़ी आदि में वैसा नहीं हो सकता।

अंग्रेज़ी, उर्दू में उच्चारण कुछ होता है और लिखा कुछ जाता है, इसी कारण हिन्दी लिपि लिखने तथा सीखने में सबसे अधिक सरल है।

हमारे सेठ लोग अपने बहीखातों में इस उत्तम हिन्दीलिपि का व्यवहार नहीं करते। वे एक ऐसी लिपि में अपने बहीखाते रखते हैं जिसमें अक्षरों पर मात्रा ही नहीं लगाई जाती; 'लिखे ईसा पढ़े मूसा' वाली कहावत वहां चरितार्थ होती है, क्योंकि उस लिपि से लिखे हुए पत्रों का अभिप्राय स्वयं वे सेठ लोग भी कभी कभी नहीं निकाल पाते।

इस लिपि को वैसे कहते तो सराफ़ी हैं किन्तु है वह वास्तव में स्वर्गीय श्रीमान् सेठ सुखानन्द जी के कहे अनुसार 'चोरलिपि'। क्योंकि उसमें लिखे गये 'अजमेर गये हैं' वाक्य को 'आज मर गये हैं' भी पढ़ सकते हैं। 'बड़ी बही को भेज देना' को 'बड़ी बहू को भेज देना' पढ़ा जासकता है।

ऐसी लिपी का पत्र व्यवहार कभी कभी कितनी भारी हानि पहुँचा सकता है, यह उपर्युक्त उदाहरण से साबित होता है। इस कारण हमारे सेठ महानुभावों को अपना समस्त काम काज मुड़िया, सराफ़ी, मारवाड़ी आदि लिपि में न करके इसी नागरी लिपि में करना चाहिये। हर्ष है कि इस त्रुटि का झालरापाटन निवासी श्रीमान वाणिज्यभूषण सेठ लालचन्द्र जी सेठी ने अनुभव करके अपनी फ़र्मों से मुड़िया लिपि को हटाकर हिन्दी लिपि को स्थान दे दिया है। सेठ लालचन्द्र जी सेठी का अनुकरण प्रत्येक सेठ जी को करना चाहिये।

पंजाब प्रान्त के बहुत से जैनी भाइयों ने उर्दू लिपि को इस प्रकार अपना रक्खा है कि वे न तो शास्त्र स्वाध्याय कर सकते हैं, न जैन पत्र पढ़ सकते हैं--उनके लिये सब कुछ उर्दू में चाहिये--यह बड़ी लज्जा की बात है। अपनी भारतीय लिपि को छोड़कर मुसलमानी लिपि के हम इतने अधिक गुलाम बन जावें इस लाचारी का कोई विशेष कारण नहीं दीखता।

हिन्दी लिपि एक मास में अच्छी तरह आ सकती है, फिर भी इसको न सीखना भारतीय मनुष्य के लिये विशेष कर हिन्दू जाति के लिये बड़ी भारी भूल है। भाषा और लिपि का संस्कार आत्मा पर पड़ता है। इस कारण आत्मअभ्युदय के लिये तथा सरल लिखा पढ़ी के लिये हिन्दी लिपि में लिखना पढ़ना बहुत उपयोगी है।

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[१६]

जैन साधु का पुरातन रूप

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये उत्तराध्ययन सूत्र में उल्लिखित केशि गौतम संवाद भी उपस्थित किया जाता है। इस विषय में उत्तराध्ययन सूत्र यों लिखता है कि—भगवान पार्श्वनाथ की आचार्य परम्परा में भगवान महावीर के समय केशिकुमार आचार्य थे। वे अवधिज्ञानी तथा द्वादशांगवक्ता (श्रुतकेवली) थे। एक बार वे विहार करते हुए उसी श्रावस्ती नगरी में आये जहाँ पर कि भगवान महावीर के शिष्य गौतम गणधर अपनी शिष्य मंडली सहित विद्यमान थे। भगवान पार्श्वनाथ ने ब्रह्मचर्य महाव्रत के बिना चार महाव्रत बतलाये थे तथा महाव्रती साधु को वस्त्र त्याग करने (नग्न रहने) का उपदेश नहीं दिया था। अतः केशिकुमार और उनके शिष्य वस्त्र पहने हुए थे। किन्तु भगवान महावीर ने साधु के लिये पांच महाव्रत तथा नग्न रहने का उपदेश दिया था; तदनुसार गौतम गणधर और उनके शिष्य नग्न थे। अतः दोनों आचार्यों की शिष्यमंडली में यह संशय उत्पन्न हुआ कि किस आचार्य का चरित्र ठीक और अनुकरणीय है? शिष्य मंडली को यह बात जानकर गौतम गणधर अपने शिष्यों सहित केशिकुमार के पास गये। उस समय उन दोनों में निम्नलिखित रूप से वार्तालाप हुआ :—

"केशि—महाभाग! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ।

गौतम—भगवन्! इच्छानुसार पूछिये।

केशि १—भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर का जब एक ही मार्ग है तो भगवान महावीर ने चार प्रकार महाव्रत वाले चरित्र को पाँच प्रकार का क्यों कहा?

गौतम १—पार्श्वनाथ के समय लोग सरल प्रकृति के थे। इस कारण परिग्रह त्याग व्रत में ही ब्रह्मचर्य व्रत को गर्भित हुआ समझ लेते थे, किन्तु अब लोग कुटिल प्रकृति के हैं, इस कारण श्री महावीर स्वामी ने ब्रह्मचर्य व्रत पृथक् बतला दिया है।

केशि २—महावीर ने साधुओं का नग्न (दिगम्बर) वेष क्यों चलाया।

गौतम २—भगवान ने केवलज्ञान से जानकर जिसके लिये जैसा उचित है वैसा धर्मोपकरण बतलाया है। दूसरी बात यह है कि 'यह साधु है' ऐसा लोगों को विश्वास कराने के लिये नग्न वेष बतलाया है। तीसरे संयमनिर्वाह के लिये नग्नलिंग है। चौथे " मैं साधु हूं " ऐसी भावना बनाये रखने के लिये वेष है। ये सब कार्य दिगम्बरलिंग से भी होते हैं। वास्तव में तो ज्ञान दर्शन चारित्र ही मोक्ष के साधक हैं, लिंग नहीं।

केशि ३—हजारों शत्रुओं के भीतर रहकर तुमने उन्हें कैसे जीता?

गौतम ३—एक अशुद्धात्मा (मिथ्यात्व) को जीत लेने पर पांचों अशुद्धात्मा (मिथ्यात्व तथा चार कषाय) जीत लिये जाते हैं। इनके जीत लेने पर दश (पूर्वोक्त पांच तथा पांच इन्द्रियां) जीत लिये जाते हैं और दश के जीत लेने पर हजारों शत्रु जीत लिये जाते हैं।

केशि ४—अन्य सब लोग बन्धन से बन्धे हुए हैं, फिर आप उनसे कैसे छूट गये?

गौतम ४—राग द्वेष आदि का नष्ट करके मैं बन्धन से छूट गया हूँ।

केशि ५—हृदय में एक लता है जिसपर विष-फल लगते हैं उसको आपने कैसे उखाड़ा?

गौतम ५—तृष्णा को दूर करके मैं ने वह बेल नष्ट कर दी है।

केशि ६—आत्मा में एक प्रकार की ज्वालाएं उठती हैं उनको तुमने कैसे शान्त किया?

गौतम ६—इन कषायरूपी ज्वालाओं को मैं ने भगवान महावीर के उपदिष्ट श्रुत, शील और तप-रूप जल से शान्त किया।

केशि ७—इस दुष्ट घोड़े को कैसे वश करते हो?

गौतम ७—दुष्ट घोड़ा मन है; उसे मैं धर्म शिक्षा से वश करता हूँ।

केशि ८—लोक के बहुत से कुमार्गों से आप कैसे बचते हैं?

गौतम ८—मुझे कुमार्ग, सुमार्ग की पहचान होने से मैं कुमार्ग से बचता हूँ।

केशि ९—प्रवाह में बहते हुए प्राणियों का आश्रय स्थान कहां है?

गौतम ९—पानी में एक द्वीप है जहां पानी नहीं पहुँचता; वह धर्म है।

केशि १०—यह नौका तो इधर उधर जाती है, आप समुद्र का कैसे पार करेंगे?

गौतम १०—शरीर नौका में आस्रव लगा हुआ है, वह नौका पार नहीं पहुँच सकती। आस्रवरहित नौका पार पहुंच जायगी।

केशि ११—समस्त जीव अन्धकार में हैं, इस अन्धकार को कौन दूर करेगा?

गौतम ११—सूर्यसमान महावीर भगवान का उदय हो गया है।

केशि १२—दुःखरहित स्थान कौनसा है?

गौतम १२—लोक के अग्रभाग वर्ती निर्वाण स्थान।

इस प्रश्नोत्तर के पीछे केशिकुमार ने भगवान महावीर का धर्म स्वीकार किया।"

भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण होजाने के ९८० वर्ष पीछे लिखे गये उत्तराध्ययन सूत्र का यह केशिगौतम संवाद अनेक कारणों से कल्पित एवं अयुक्त प्रतीत होता है; देखिये—

१—तीर्थंकर सर्वज्ञ होते हैं उनका उपदिष्ट साधुचारित्र भिन्न भिन्न प्रकार का नहीं हो सकता। अतः यदि महाव्रती साधु के लिये नग्न रहना आवश्यक है तो वह भगवान पार्श्वनाथ के उपदिष्ट चारित्र में भी अवश्य आना चाहिये।

२—ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रहत्याग महाव्रत में बहुत भारी अन्तर है। मनोवृत्ति दोनों व्रतों के सद्भाव अभाव में भिन्न भिन्न प्रकार से दो प्रकार की है। इस कारण भगवान पार्श्वनाथ ने ब्रह्मचर्य व्रत को परिग्रह महाव्रत में समाविष्ट करके ४ व्रतों के पालन करने का उपदेश दिया, यह बात युक्तियुक्त नहीं। तथा सरल-कुटिल प्रकृति वाले मनुष्य हर समय होते रहे हैं। भगवान पार्श्वनाथ के समय में कुटिल मनुष्यों का अभाव था, यह बात ठीक नहीं। अतः चार महाव्रतों की बात कल्पित सिद्ध होती है।

३—केशिकुमार स्वयं श्रुतकेवली तथा अवधि ज्ञानी थे, उन्हें अन्धकार निवारक भगवान महावीर स्वामी का तथा मोक्षस्थान का भी पता न हो

तथा संसार से पार होने के क्या साधन हैं, मन किस तरह वश किया जाता है, कर्मों का नाश किस तरह होगा, कषाय शान्त किस प्रकार होती है, संसार से रक्षा करने वाला कौन है, आदि साधारण बातों का ज्ञान केशिकुमार को नहीं था, यह बात कहना उनके श्रुतकेवली पद का उपहास करना है। अतः एक श्रुतकेवली ऐसे साधारण प्रश्न करे यह बात असंभव है।

४—केशिगौतम संवाद में कुछ ऐतिहासिक सार नहीं। केशिकुमार यदि वास्तव में कोई श्रुत केवली अवधिज्ञानी साधु होते तो श्वेताम्बरीय सूत्र ग्रन्थों से ४-५ सौ वर्ष पहिले लिखे गये दिगम्बरीय ग्रन्थों में उनका कुछ न कुछ उल्लेख अवश्य होता।

५—पार्श्वनाथ भगवान की परम्परा के साधु वस्त्र पहना करते थे, यह बात निराधार है। श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली से पहले वस्त्रधारक जैन महाव्रती साधु का कोई भी प्रामाणिक अस्तित्व नहीं पाया जाता (यह बात हम आगे सिद्ध करेंगे)।

इस कारण उत्तराध्ययन सूत्र का यह संवाद केवल वस्त्रधारक साधुओं की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये कल्पित लिखा हुआ प्रतीत होता है।

भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के जैन साधु किस प्रकार के होते थे, इस बात पर ऐतिहासिक प्रकाश महात्मा बुद्ध की प्रारम्भिक साधुचर्या से पड़ता है। महात्मा बुद्ध साधु होकर भगवान महावीरस्वामी के केवलज्ञान उत्पन्न होने से पहले धार्मिक प्रचार में लग गये थे, इस कारण यह बात माननी पड़ेगी कि महात्मा बुद्ध के प्रारम्भिक साधुवेष पर भगवान महावीर के उपदिष्ट साधुचरित्र का प्रभाव नहीं पड़ सकता, क्योंकि केवलज्ञान होने से पहले तीर्थंकर का उपदेश नहीं होता। अतः महात्मा बुद्ध ने यदि प्रथम ही जैनसाधु की चर्या का अनुकरण किया तो वे जैनसाधु भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के ही थे, यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है।

महात्मा बुद्ध ने २९ वर्ष की आयु में जब घर छोड़ा तब से वे ३५ वर्ष की आयु तक दिगम्बर वेष में साधु रहे तथा जैनसाधु के समान आचरण पालन करते थे। देखिये बौद्धग्रन्थ मज्झिमनिकाय महासीह नादसुत्त १२—

'अचेलको होमि, हत्थापलेखनो होमि।
केसमस्सु लोचको विहोमि॥'

अर्थात्—महात्मा बुद्ध कहते हैं कि मैं पहले नग्न रहा, हाथों पर भोजन खाता था, और शिर तथा डाढ़ी के बालों का लोंच करता था।

महात्मा बुद्ध का उपर्युक्त प्रारम्भिक साधु आचरण जैन साधु के आचरण का प्रतिरूप है। अतः उन्हों ने यह आचरण जिन साधुओं के अनुकरण में ग्रहण किया वे 'जैनसाधु भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के थे तथा पाणिपात्र नग्न दिगम्बर थे' यह बात स्वयमेव सिद्ध हो जाती है।

इस ऐतिहासिक घटना से भगवान पार्श्वनाथ की शिष्य साधु परम्परा का वस्त्रधारक होना असत्य प्रमाणित होता है। यदि उस समय के जैन साधु वस्त्रधारक होते तो महात्मा बुद्ध उनके अनुकरणरूप में पाणिपात्र नग्नवेषधारक कदापि न होते। "महात्मा बुद्ध पहले भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में दीक्षित श्री पिहितास्रव नामक जैन-

साधु के शिष्य रहे थे" ऐसा जैनग्रन्थों में उल्लेख पाया जाता है, तदनुसार भी महात्मा बुद्ध का नग्न साधु वेष अपने गुरु जैन साधु के नग्न वेष का सिद्ध करता है। अतएव केशि गौतम संवाद सत्य सिद्ध नहीं होता।

निष्कर्ष

जैन संघ भेद दिगम्बरीय कथानुसार अंतिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु आचार्य के स्वर्गवास के पीछे ही हुआ तथा बारहवर्षी दुष्काल उनके समय में पड़ा, इत्यादि बातों का समर्थन निम्नलिखित साधनों से भी होता है :—

१—श्वे० आचार्य श्री हेमचन्द्र ने परिशिष्ट पर्व ६ में श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय बारह वर्ष के दुष्काल होने का उल्लेख किया है जिससे कि श्री भद्रबाहु स्वामी उस समय नैपाल की ओर चले गये थे और वहीं उनका स्वर्गवास होगया।

यहां हेमचन्द्राचार्य के कथन में भद्रबाहु स्वामी का नैपाल की ओर गमन करना कल्पित प्रतीत होता है, क्योंकि नैपाल में उनके आगमन तथा निवास करने का कोई चिन्ह नहीं मिलता, जबकि श्रवणबेलगोला में उनके ठहरने तथा यहां से स्वर्गारोहण के अनेक चिन्ह एवं अनेक शिलालेख विद्यमान हैं, इसलिये सिद्ध होता है कि अकाल के समय भद्रबाहु आचार्य नैपाल न जाकर दक्षिण देश में गये थे।

२—तत्त्वनिर्णयप्रासाद आदि श्वे० ग्रन्थों के लिखे अनुसार "जिनकल्प यानी महाव्रती साधु का पाणिपात्र एवं नग्न दिगम्बररूप वेष श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु आचार्य तक रहा"। इससे ध्वनिरूप में सिद्ध होता है कि जैन साधुओं का वस्त्रधारण तथा वस्त्रत्याग रूप संघभेद भद्रबाहु आचार्य के पीछे हुआ है। अपना पक्ष बलवान बनाने के लिये वास्तविक घटना को श्वे० ग्रन्थकारों ने यों लिख दिया कि भद्रबाहु स्वामी के समय तक मनुष्यों की शारीरिक शक्ति अच्छी थी, इस कारण तब तक जिन कल्पी (नग्नवेषधारक) साधु होते रहे, किन्तु उसके बाद शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाने से जिन-कल्प का व्यवच्छेद (अभाव) हो गया यानी वस्त्र धारण ही साधुओं का वेष रह गया।

३—मथुरा के कङ्काली टीले के पुरातत्व से प्राप्त कन्हश्रमण नामक जैन साधु की मूर्ति से सिद्ध होता है कि संघभेद होजाने के पीछे आज से लगभग १८०० वर्ष पहले तक श्वेताम्बर साधु वर्ग कन्हश्रमण के समान केवल एक खंड वस्त्र हाथ की कलाई पर रखने वाला अर्द्धफालक रूप में था।

४—मेवाड़, मारवाड़, मालवा प्रान्त में रहने वाले गुरु जो लोग पर्युषणादिक के दिनों में पगड़ी उतार कर डंडा झोली लेकर भोजन माँग लाते हैं, फिर पीछे आकर पगड़ी पहन लेते हैं। इनके इस बर्ताव पर यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जावे तो संघभेद के समय वस्त्रधारक साधुवेश का रहस्य बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार संघभेद की दिगम्बरीय कथा को सत्य प्रमाणित करने के लिये उपर्युक्त बातें पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।

---

[२२]

सर्वज्ञ शब्द का अर्थ

सर्वज्ञता के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी ने अपनी लेखमाला में जितनी बातें उपस्थित की हैं उनमें अब एक शेष है और वह सर्वज्ञ शब्द का अर्थ है। दरबारीलाल जी का कहना है कि सर्वज्ञ शब्द का प्रयोग भगवान महावीर से भी प्राचीन है किन्तु इसका प्रचलित अर्थ तर्क-विरुद्ध है। सर्वज्ञ शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है? इसके सम्बन्ध में आपने निम्नलिखित शब्द लिखे हैं :—

"सर्वज्ञ शब्द का सीधा और सरल अर्थ यही है कि सबको जानने वाला परन्तु सर्व शब्द का व्यवहार अनेक तरह से होता है।"

सर्व शब्द का यहां क्या अभिप्राय है इसको विद्वान लेखक ने कई लौकिक दृष्टान्तों के आधार से निम्नलिखित शब्दों द्वारा प्रगट किया है :—

"सर्व शब्द का अर्थ त्रिकाल त्रिलोक नहीं किन्तु इच्छित वस्तु है"।

पं० दरबारीलाल जी ने अपने इस अभिप्राय के समर्थन में कई जैन शास्त्रों के उल्लेख भी उपस्थित किये हैं। अब विचारणीय यह है कि क्या सर्वज्ञ शब्द का प्रचलित अर्थ तर्क-विरुद्ध है? क्या लौकिक दृष्टान्त और शास्त्रीय उल्लेख सर्वज्ञ शब्द का अर्थ इच्छित पदार्थज्ञ प्रमाणित करते हैं?

सर्वज्ञ शब्द के प्रचलित अर्थ को तर्क-विरुद्ध प्रमाणित करने के लिए दरबारीलालजी ने जो २ आपत्तियां उपस्थित की थीं उन सबका निराकरण हम इस लेखमाला में कर चुके हैं; अतः इनही आपत्तियों के आधार से सर्वज्ञ शब्द के प्रचलित अर्थ को तर्क-विरुद्ध स्वीकार नहीं किया जासकता।

"सब" शब्द का इच्छित पदार्थ अर्थ करने के लिए दरबारीलालजी ने कई दृष्टान्त उपस्थित किये हैं। वे सब एक ही प्रकार के हैं, अतः यहां हम एक दो का ही उल्लेख करेंगे। वे दरबारीलाल जी के ही शब्दों में निम्न प्रकार हैं:—"हमारे शहर के बाज़ार में सब कुछ मिलता है इस वाक्य में सब कुछ का अर्थ बाज़ार में मिलने योग्य व्यवहारु चीज़ें हैं जिनकी कि मनुष्य बाजार से आशा कर सकता है न कि सूर्य, चन्द्र, जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मा बाप आदि त्रिकाल त्रिलोक के समस्त पदार्थ"। "मुझ से क्या पूछते हो आपतो सब जानते हो। यहां पर भी जानने का विषय त्रिकाल त्रिलोक नहीं किन्तु उतना ही विषय है जितना पूछने से जाना जासकता है"।

सांख्यदर्शनकार कपिल ने पच्चीस तत्त्व स्वीकार किये हैं। इनमें कुछ केवल कारणस्वरूप हैं, कुछ केवल कार्यरूप और शेष कारण और कार्यरूप हैं। पच्चीसवां तत्व जिसको सांख्यदर्शन ने पुरुष संज्ञा प्रदान की है इन तीनों ही भेदों से भिन्न है।

बुद्धि, अहंकार और पंचतन्मात्रायें कारण और कार्यरूप हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेंद्रिय, पांच महाभूत और मन ये केवल कार्यरूप हैं, मूल प्रकृति केवल कारणरूप ही है। ×

बुद्धि प्रकृति का कार्य है और अहङ्कार की उत्पादक है, अतः उसको कार्य और कारण उभय रूप स्वीकार किया गया है। इसही प्रकार अहङ्कार बुद्धि का कार्य और सोलह गणों का कारण तथा पञ्च तन्मात्रायें अहङ्कार का कार्य और पञ्चमहाभूतों की उत्पादक हैं, अतः इनको भी उभयरूप माना गया है। कहने का निष्कर्ष केवल इतना ही है कि यहां कारण शब्द का प्रयोग दो दृष्टियों से होता है—एक केवल कारण की ही दृष्टि से और दूसरा कारण की भी दृष्टि से। यही बात सर्व शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में है। सर्व शब्द का प्रयोग एक तो वहां होता है जहां कि इसका आपेक्षिक वाच्य है। दृष्टान्त के लिए यों समझियेगा कि एक मकान में चार मनुष्य हैं और वे चारों ही कहीं चले जाते हैं तो यह कहा जाता है कि सब मनुष्य चले गये। इसही में यदि कुछ मनुष्य और भी सम्मिलित हो जाते हैं तो फिर सम्मिलित मनुष्य सर्व कहलाते हैं और पहिली सर्वसंख्या अब असर्व हो जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था तब तक चली जाती है जब तक कि कुछ भी सम्मिलित करने के लिए अवशेष रहता है। सर्व शब्द का वाच्य वह भी है जहाँ कि बिलकुल पूर्णता है और जिसको किसी भी दृष्टि से असर्वरूप नहीं किया जा सकता। सर्व शब्द के इन दो वाच्यों में से आपेक्षिक सर्व को सर्व कहना ही स्थिर नहीं है। जो अभी सर्व है वही थोड़ी ही देर में असर्व हो जाता है। यदि इस ही के आधार से सर्वज्ञता मानी जायगी तो फिर वह भी अस्थिर ही ठहरेगी। इस प्रकार सर्वज्ञ असर्वज्ञ और असर्वज्ञ सर्वज्ञ भी कहलायेंगे। ऐसा होने से अमुक व्यक्ति ही सर्वज्ञ है या अमुक व्यक्ति का कथन ही सर्वज्ञ का कथन है यह बात भी नहीं कही जा सकेगी!

सर्वज्ञ शब्द का अर्थ यदि इच्छित पदार्थज्ञ होता तो सर्व शब्द के व्यवहार की भांति सर्वज्ञ शब्द का व्यवहार भी इच्छित पदार्थज्ञ के लिए हुआ मिलना चाहिये था। आज वर्त्तमान जैन वाङ्मय में एक भी ऐसा दृष्टान्त नहीं मिलता जो इस प्रकार के भाव का समर्थन करता हो।

जहांकि इस प्रकार के उल्लेखों का अभाव है वहीं इसके विपरीत उल्लेखों से जैन वाङ्मय परिपूर्ण है। यही क्या बौद्ध साहित्य में भी इस बात का समर्थन होता है। ‡ इन सब बातों के आधार से

× मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।
—सांख्यतत्त्वकौमुदी।

‡ बौद्धों के 'अंगुत्तर निकाय' में निर्ग्रन्थ ज्ञात पुत्र (भ० महावीर) का उल्लेख 'सर्वज्ञ और सर्वदर्शी' रूप में हुआ है। वहां कहा गया है कि "उनकी सर्वज्ञता अनन्त (Infinite) थी—वह हमारे चलते, बैठते, सोते, जागते हर समय सर्वज्ञ थे।" (AN., PTS., Vol. I p. 220)। भ० महावीर के समय के लोग और खुद उनके भक्त जब सर्वज्ञता का अर्थ अनन्त—हर समय का ज्ञान करते हैं, तब भला कहिये उसके दूसरे अर्थ कैसे किये जायं?

'मज्झिम निकाय' में निर्ग्रन्थ श्रमण बुद्ध से कहते हैं कि "हमारे गुरू नातपुत्त सर्वज्ञ हैं......उन्होंने अपने

हम इस बात के कहने के अधिकारी हैं कि सर्व शब्द का आपेक्षिक दृष्टि से इच्छित पदार्थ के अर्थ में प्रयोग होने पर भी यह बात प्रमाणित नहीं होती कि सर्वज्ञ शब्द का अर्थ इच्छित पदार्थज्ञ है। अतः दरबारी लाल जी के लौकिक दृष्टान्त उनका अभिलषितार्थ प्रमाणित करने में कार्यकारी नहीं।

इस अर्थ के समर्थन में दरबारी लाल जी ने जहां तक शास्त्रीय उल्लेखों का सम्बन्ध है नीति वाक्यामृत, चन्द्रप्रभ चरित, हरिवंशपुराण और पद्म पुराण के कथन उपस्थित किये हैं।

नीति वाक्यामृत का वाक्य "लोक व्यवहारज्ञो हि सर्वज्ञः" है। इस का भाव यही है कि लोक व्यवहारज्ञ ही सर्वज्ञ है और 'सर्वज्ञ लोक व्यवहारज्ञ है' नहीं है इस बात के समर्थन में विद्वान लेखक ने कोई युक्ति उपस्थित नहीं की है। प्रस्तुत वाक्य का दूसरा अर्थ करने पर प्रचलित मान्यता में कोई भी बाधा नहीं आता—प्रत्युत इससे तो उसका समर्थन ही होता है। वह साधन जिसकी विपक्ष व्यावृत्ति निश्चित नहीं अपने साध्य की सिद्धि में असफल ही रहता है। यही बात प्रस्तुत वाक्य के दरबारीलाल जी के अर्थ की है। अतः स्पष्ट है कि नीति वाक्यामृत का प्रस्तुत वाक्य दरबारीलाल जी के सर्वज्ञ के अर्थ के समर्थन में कार्यकारी नहीं।

चन्द्रप्रभ चरित्र के कथनों के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी का कहना है कि इनमें अवधि ज्ञानी मुनि को भी कालत्रय और लोकत्रय के अशेष पदार्थों का ज्ञाता बतलाया है। अवधि ज्ञानी मुनि कालत्रय और लोकत्रय के अशेष पदार्थों के ज्ञाता नहीं, यह एक ऐसी बात है जिसमें किसी को भी मतभेद नहीं है। इसी ही प्रकार के व्यवहार दूसरे स्थानों पर भी हुए हैं। यहां हम दरबारी लाल जी के इस सम्बन्धी वाक्यों को भी लिखे देते हैं जिससे विद्वान पाठक उनके अभिप्राय को और भी विशदता के साथ जानलें।

"चन्द्रप्रभ चरित में पद्मनाभ राजा ने एक अपरिमित ज्ञान से यह उपदेश दिया है कि तुमने पूर्वभव में पाप किया है इत्यादि।' (P. T. S. II p. 214)। इस उल्लेख से भी 'सर्वज्ञता' का अर्थ वह सिद्ध नहीं होता जो प० दरबारीलाल जी बताते हैं, प्रत्युत इससे स्पष्ट है कि भगवान् के ज्ञान में जीवों के पूर्वभव झलकते थे अर्थात् वे अतीत का ज्ञान रखते थे। "संयुत्तनिकाय" का निम्न उल्लेख इस विषय को और भी स्पष्ट करता है। उसमें लिखा है कि:—

"प्रख्यात् ज्ञात्रिक नातपुत्त (महावीर) बतला सकते थे कि उनके शिष्य मृत्योपरान्त कहां जन्मे हैं और अगर कोई पूछता तो वह उनमें से प्रमुख को अमुक स्थानपर जन्म लेते बतला सकते थे"। (P.T. S IV p. 398)।

इस उल्लेख से भगवान की सर्वज्ञता में लोकस्थिति का चित्र झलकना प्रमाणित है—अन्यथा वह लोक में अमुकस्थान पर अपने शिष्य का जन्म होना नहीं बता सकते थे। अतएव 'सर्वज्ञता' का पुरातन और समीचीन अर्थ भूत-भविष्यत्-वर्तमान के पदार्थों का युगपत् ज्ञान ही है।

रॉकहिल सा० (Life of Buddha p. 259) लिखते हैं कि भ० महावीर ने सम्राट् अजातशत्रु से कहा था : "मैं सर्वज्ञ और सर्वदर्शी पुरुष हूं—मैं जो वस्तु है उसको जानता हूं। तुम्हारे सोते, जागते, बैठते उठते, चलते फिरते मेरा ज्ञान प्रकाशमान और सर्वथा प्रगट रहता है।" इस उल्लेख से भी सर्वज्ञता का रूप स्पष्ट है।

अवधिज्ञानी श्रीधर मुनि के दर्शन किए हैं । उस मुनि के वर्णन में कहा है—जिनके वचनों में त्रिकाल की अनन्तपर्याय सहित सब पदार्थ इसी प्रकार दिखाई देते हैं जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई देता है ।

फिर राजा मुनि से कहता है—"इस चराचर जगत में मैं उस .... मानता हूं जो आपके दिव्य ज्ञानमय चक्षु में प्रतिबिम्बित नहीं हुआ ।"

इस ही प्रकार लेखक महोदय ने राजा श्रीषेण सम्बन्धी भी एक उल्लेख उपस्थित किया है और वह लेखक के ही शब्दों में निम्नलिखित है:—"आप भूत भविष्यत की सब बात जानते हो । आपके ज्ञान के बाहर जगत में कोई चीज नहीं है । फिर बताइये कि संसार की सब दशा का ज्ञान होने पर भी मुझे वैराग्य क्यों नहीं होता ?"

ये दोनों ही उल्लेख दरबारीलाल जी के अभिमत को सिद्ध कर सकते थे, यदि ये इस ही प्रकार से होते जिस प्रकार कि इनको लेखक ने लिखा है । चन्द्रप्रभ चरित के इन दोनों कथानकों में दरबारीलाल जी ने दो बात जोड़दी हैं—एक मुनि श्रीधर का अवधिज्ञानी होना और दूसरी दूसरे उल्लेख के श्लोक के अर्थ में "सब" और आपके ज्ञान के बाहर जगत में कोई चीज़ नहीं है । मुनि श्रीधर जिनके ज्ञान को आचार्य वीरनन्दि ने कालत्रय की अशेष पर्यायों का ज्ञाता स्वीकार किया है अवधिज्ञानी थे यह बात निराधार है । चन्द्रप्रभ चरित में इनके सम्बन्ध में जितने भी श्लोक मिलते हैं उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो इनको अवधिज्ञानी प्रमाणित कर सके । यहां मुनि कालत्रय की अनन्त पर्यायों का जानता है या नहीं, यह बात विवादस्थ नहीं; यहां तो केवल इतना ही विवाद है कि आया किसी भी शास्त्र में अवधिज्ञानी के लिये भी इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं । यह बात तभी मानी जा सकती थी जब कि श्रीधर मुनि अवधिज्ञानी प्रमाणित हो जाते । मुनि केवलज्ञानी भी तो होते हैं, यदि मुनि श्रीधर को भी ऐसा ही स्वीकारकर लिया जाता है तो यह बात बिलकुल ठीक बैठती है और बजाय इसके कि यह दरबारीलाल जी के कथन का समर्थन करती उसके प्रतिकूल ही प्रमाणित करती है । ऐसी अवस्था में तो इस से यही प्रमाणित होता है कि शास्त्रकार केवलज्ञानी के सम्बन्ध में ही इस प्रकार का उल्लेख करते आये हैं तथा यह बात दरबारीलाल जी के प्रतिकूल है । अतः स्पष्ट है कि चन्द्रप्रभ का पहिला उल्लेख दरबारीलालजी का अभीष्ट सिद्ध करने में असफल ही रहा है !

जिस प्रकार चन्द्रप्रभ चरित में मुनि श्रीधर को अवधिज्ञानी प्रमाणित करने वाला कोई वाक्य नहीं और यह दरबारीलाल जी की निजी कल्पना है उसही प्रकार भूत और भविष्यत की बातों के साथ "सब" और "आपके ज्ञान के बाहर जगत में कोई चीज़ नहीं है" को भी है । यदि दरबारीलाल जी ने प्रस्तुत श्लोक के अर्थ को ज्यों का त्यों रक्खा होता तो फिर उनको इस प्रकार के विवाद को अवकाश भी न मिलता । विवादस्थ श्लोक निम्नप्रकार है :—

यद्भाविभूतमथवा मुनिनाथ तत्ते ।
बाह्यं न वस्तु कथयेद मतः प्रसाद् ।
संसार वृत्त मखिलं परिजानतोऽपि ।
नाद्यापि याति विरतिं किमु मानसं मे ॥३।५०॥

इसका सरलार्थ निम्नलिखित है:-हे मुनिनाथ! जो होगा और जो हो चुका है वह आप के ज्ञान के बाहर नहीं है; कृपया बतलाइयेगा कि संसार की सब दशाओं को जानते हुए भी मेरा मन वैराग्य को प्राप्त क्यों नहीं होता ?

भूत को जानना और सम्पूर्ण भूत का जानना ये दो बातें हैं। एक व्यक्ति भूत की बात को जानता है तो उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि सम्पूर्ण भूत काल की बात को जानता हो! हर एक मनुष्य को भूतकाल की कोई न कोई बात स्मरण है ही, फिर भी उसको भूतकाल की बहुत सी बातें अस्मरण भी हैं। प्रस्तुत श्लोक में केवल भूत की बात का ज्ञान मुनिराज के स्वीकार किया गया है। अतः इसका यह तात्पर्य नहीं लिया जासकता कि इस ही का यह अभिप्राय है कि मुनिनाथ को भूतकाल की सम्पूर्ण बातों का परिज्ञान है। अतः दरबारीलाल जी का भूत और भविष्यत की बातों के साथ "सब" का जोड़ना श्लोक के बाहर और अतएव काल्पनिक बात है। "आपके ज्ञानके बाहर जगत की कोई चीज़ नहीं है" दरबारीलालजी का यह अंश तो श्लोक से बिल्कुल ही असम्बन्धित है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि चन्द्रप्रभ चरित के दोनों उल्लेखों में से एक भी उल्लेख ऐसा नहीं है जो अल्पज्ञानी के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग प्रमाणित करे जिनका प्रयोग कि पूर्णज्ञानी के ही लिए हो सकता है।

हरिवंशपुराण और पद्मपुराण की बातें भी ऐसी ही हैं। इनमें भी ऐसी कोई बात नहीं है जिसके बल पर यह कहा जासके कि पूर्ण ज्ञान के वाचक शब्दों का प्रयोग अल्पज्ञानी के संबंध में भी हुआ है! पद्मपुराण १५-१२१ में तो साफ़ है कि हे! मित्र तू ही तो जगत की लीला को जानता है, तुझको छोड़कर मैं अपना दुःख किससे कहूँ। एक मित्र का अपने दूसरे मित्रको जगत्रय की लीला का ज्ञाता बतलाना ही उसको सर्वज्ञ स्वीकार करना नहीं है। एक नीतिज्ञ या अनुभवी व्यक्ति संसार के व्यवहार को भलीभाँति जानता है और अतएव उसको तीनों जगत की लीला का ज्ञाता कहा जा सकता है। इसका यह तात्पर्य कैसे हो सकता है कि उसको सर्वज्ञ स्वीकार किया जा रहा है। इसही प्रकार की व्यवस्था प्रस्तुत श्लोक में है। इससे प्रगट है कि पद्मपुराण का यह अंश भी दरबारीलाल जी की मान्यता के समर्थन में असफल हो रहा है।

दरबारीलाल जी ने इस सम्बन्ध में एक बात और उपस्थित की है और वह है श्रुतज्ञान और केवलज्ञान की समानता। केवलज्ञान श्रुतज्ञान के समान है; इसके समर्थन में विद्वान लेखक ने कई श्वेताम्बरी और दिगम्बरी शास्त्रों के उल्लेख उपस्थित किये हैं। आपने इस विषय पर टिप्पणी करते हुए निम्नलिखित शब्द लिखे हैं :—"त्रिकाल त्रिलोक की समस्त द्रव्य पर्यायों को न तो केवलज्ञान जान सकता है और न श्रुतज्ञान जान सकता है। परन्तु जैनविद्वान श्रुतज्ञान के सम्बन्धमें यह बात स्वीकार करने के लिए तय्यार हैं परन्तु केवलज्ञान के विषय में स्वीकार करने के लिए तय्यार नहीं हैं, परन्तु जब दोनों बराबर हैं तब दोनों को एक सरीखा मानना चाहिये"।

जहाँ तक दोनों ज्ञानों की समानता का प्रश्न है वहाँ तक यह एक अविवाद की बात है, किन्तु जब

दरबारीलाल जी की यह बात आजाती है कि जैन विद्वान् श्रुतज्ञान को तो त्रिकाल त्रिलोक की समस्त द्रव्य पर्यायों का न जानसकने वाला स्वीकार करने का तय्यार हैं तब ही मतभेद हो जाता है। दरबारीलाल जी की यह धारणा मिथ्या है। जैन विद्वानों ने इस बात को कहीं भी स्वीकार नहीं किया है और न वे करने को ही तय्यार हैं। जैन विद्वान तो इसके विपरीत ही कथन करते आये हैं। प्रमाण के रूप में वे सब बातें उपस्थित की जा सकती हैं जिनको विद्वान् लेखक ने केवलज्ञान और श्रुतज्ञान की एकता के समर्थन में प्रस्तुत किया है।

जैन मान्यता श्रुतज्ञान को यदि समस्त द्रव्य पर्यायों के जानने की शक्तिवाला स्वीकार न करती तब तो इसके आधार से केवलज्ञान को भी ऐसा ही स्वीकार किया जासकता था, किन्तु बात इससे विपरीत है। अतः दरबारीलाल जी की यह तर्क भी उनके साध्य के समर्थन में असफल ही प्रमाणित हुई है।

प्रश्न—श्रुतज्ञान समस्त द्रव्यपर्यायों को जान सकता है ऐसा कह देना तो सरल है, किन्तु इसका सिद्ध करना टेढ़ी खीर है। यदि आपका विश्वास ऐसा ही है तो कृपया यह बतलाइयेगा कि आज हम भूतकाल या भविष्यतकाल की उन घटनाओं को जिनके सम्बन्ध में ऐतिहासिक पुस्तकों में एक अक्षर भी नहीं पाते कैसे जान सकते हैं?

उत्तर—भूत और भविष्यत काल की जिन घटनाओं के सम्बन्ध में आपका प्रश्न है उनके सम्बन्ध में आप यह तो अवश्य स्वीकार करेंगे कि उनको उस २ समय के मनुष्य या प्राणी जानते थे या जानेंगे। जो प्राणी उन २ घटनाओं को जानते थे या जानेंगे, स्वभाव की दृष्टि से वे हमारे समान हैं। वे दो वस्तुएं जो आपस में समान हैं उनमें से एक वस्तु जिसको करती है दूसरी भी उसही को कर सकती है। दृष्टान्त के लिए यों समझियेगा कि एक रुपया और चार चवन्नी आपस में बराबर हैं; अब यदि चौंसठ पैसे एक रुपये के बराबर हैं या जितने अन्न को एक रुपये द्वारा खरीदा जा सकता है तो यह बात स्वयं माननी पड़ती है कि वे ही चौंसठ पैसे चार चवन्नियों के भी समान हैं और चार चवन्नियों से भी उतना ही अन्न खरीदा जा सकता है। इससे प्रगट है कि उन बातों को जानने की शक्ति आज भी हमारे श्रुतज्ञान में मौजूद है। दूसरी बात यह भी है कि यदि भूत और भविष्यत की घटनाओं के जानने की शक्ति हमारे श्रुतज्ञान में न होती तो हम आज रामायण और महाभारत की बातों को भी नहीं जान सकते थे। अन्य भी कोई ऐसी बात नहीं है जिसके जानने की शक्ति हमारे श्रुतज्ञान में न हो। अतः स्पष्ट है कि जैन शास्त्रों का श्रुतज्ञान का केवलज्ञान के तुल्य वर्णन करना पूर्ण युक्तिपूर्ण है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि दरबारीलाल जी के लौकिक एवं शास्त्रीय उल्लेख जिनसे वे सर्वज्ञता का अर्थ इच्छित पदार्थज्ञ ही प्रमाणित करना चाहते थे इस बात के समर्थन में असफल रहे हैं। अतः दरबारीलालजी की प्रस्तुत मान्यता भी मिथ्या है।

———

सोने चाँदी के भगवानों की स्तुति !

प्रत्यालोचना

'वीर' के दसवें अंक में, उक्त शीर्षक से, पं० चन्द्रसेन जी वैद्य का एक लेख प्रकाशित हुआ था। 'जैन दर्शन' के अंक १७ में हमने उस पर एक विस्तृत आलोचना प्रकाशित की थी। 'वीर' के संयुक्तांक ११-१२ में, "शास्त्री जी की समझ की बलिहारी" शीर्षक से लेखक महोदय ने हमारी आलोचना का उत्तर देने का प्रयत्न किया है और उसके साथ एक सम्पादकीय नोट भी लगा हुआ है।

लेखक और सम्पादक उक्त लेख को शिक्षा पूर्ण व्यंग बतलाते हैं और हम पर उसको न समझने, 'पाठकों को उल्टी पट्टी पढ़ाने', 'भोली समाज को बहकाने' आदि का दोषारोपण करते हैं। व्यंग एक कला है और कला का प्रयोग कुशल कलाकार ही कर सकता है। हिन्दी भाषा में बहुत से सिद्ध-हस्त लेखक हैं, किन्तु व्यंग पूर्ण लेख लिखने वाले सफल लेखकों की संख्या दो-चार से अधिक नहीं है। यदि अपने लेख को वैद्य जी व्यंग बतलाते हैं तो उन्होंने अवश्य ही व्यंग कला का गला घोटा है। कारण, उनके लेख में व्यङ्ग कुछ भी नहीं है; जो कुछ है स्पष्ट है और उसे अखबार-प्रेमी समाज जिसे लेखक 'भोली' बतलाते हैं-अच्छी तरह समझ सकती है। आजकल की अखबार-प्रेमी समाज को 'भोली' बतलाना उसका अपमान करना है। यदि लेखक का समाज को भोली बतलाना सत्य होता तो हमें अपने भ्रमण-काल में, उभयपक्ष के शिक्षित और अर्द्ध शिक्षित व्यक्तियों के मुख से 'वीर' के उक्त लेख के प्रति असन्तोष-जनक शब्दों को सुनने का अवसर न मिलता। अस्तु—

आप लिखते हैं—'मंदिरों को समवशरण की प्रतिकृतियां बतलाना भूल है × × × मनुष्योंको देवों का अनुकरण नहीं करना चाहिये' इत्यादि।

लेखक की पहिली बात उनकी जैन शास्त्र विषयक अज्ञानता को सूचित करती है। जैनाचार्यों ने अनेक स्थलों पर जिन मन्दिरों को समवशरण की प्रतिकृति † लिखा है।

आजकल जिन मन्दिर और प्रतिबिम्बों की रचनाओं में अधिकतर, भाव से मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि और पाक्षिक श्रावकों की ही प्रवृत्ति देखी जाती है। इन दर्जों में जिस जाति का राग होता है उसकी तुलना देवों के राग से की जा सकती है। ऐसी दशा में, जिस तरह जिनधर्म प्रेमी देव अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार शुभराग-मयी क्रियाओं में प्रवृत्त होता है उसी तरह मनुष्य अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार शुभराग से पुण्यकर्म का बंध करता है। यहां तक देव और मनुष्य दोनों किसी दृष्टि से समान हैं। इसके

† सेय साक्षात्पिका सोऽयं जिनस्तेऽमी सभासदः
चिन्तयन्निति तत्रोच्चैरनुमोदेत धार्मिकान् ॥ १० ॥ —सागार धर्मामृत, अध्याय ६।

बाद दोनों में अन्तर पड़ जाता है। मनुष्य क्रमशः आत्मिक विकास करके अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और देव अविरत का अविरत ही बना रहता है। उसके सराग संयम बतलाना पहाड़ जैसी भूल है—व्रत का सूक्ष्म सा भी अंश नहीं होसकता। इस लिये हम लेखक की दूसरी बात से पूर्ण सहमत हैं, किन्तु लेखक को एक बात का स्मरण रखना चाहिये। जिस तरह मनुष्यों को सर्वदा ऊंचा लक्ष्य रखने का उपदेश देना स्तुत्य है, उसी तरह निम्न श्रेणी के रागी मनुष्यों को शुभराग का उपदेश देना भी मनोविज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। शुद्धोपयोगी की दृष्टि से शुभोपयोग अवाञ्छनीय है, किन्तु जुवा और सट्टेबाज़ी आदि अशुभोपयोग की दृष्टि से शुभोपयोग अत्यन्त वाञ्छनीय है। इसलिये "मन्दिरों को समवशरण की प्रतिकृति बनाना या रागी होने के कारण मन्दिरों को सजाना किसी भी दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता" लेखक का यह लिखना कोरा भ्रम है।

लेखक ने अपने पहिले लेख में केसरिया के हत्याकाण्ड को सोने चांदी के भगवानों के सिर मढ़ा था, किन्तु केसरिया की मूर्ति पाषाण की है। इसलिये हमने उन्हें मूर्तिमात्र का विरोधी लिखा था। इस पर आप लिखते हैं—"केसरिया की मूर्ति स्वयं सोने चांदी की न सही, किन्तु उसी मूर्ति के आधार पर वहां सञ्चित लाखों का द्रव्य भी स्वयं मूर्तिमान होकर उपद्रव कराने का कारण है" इत्यादि। सोने चांदी के अधिष्ठाता ऋषभदेव की मूर्ति ने केसरिया जी में उपद्रव करा दिया। किन्तु क्या लेखक महोदय बतलाने की कृपा करेंगे कि शिखरजी के पारसनाथ बाबा कितने सोने चांदी के स्वामी हैं जिससे गतवर्षों में वहां के पहाड़ पर कई बार सिर फुटौवल हुई और अब तक मुक़दमेबाज़ी से पिण्ड नहीं छूट सका है! असल में सोने चांदी के भगवानों को पारस्परिक कलह की जड़ समझना नासमझी है। इसीलिये हमने अपने लेख में लिखा था—"झगड़ा मेटने की इस ओषधी से रोग की सफ़ाई होने की आशा नहीं है"।

शंकाजी की मृत्यु के विषयमें आप लिखते हैं—"बहुत दिनों बाद एक पत्र में किसी ख़ुशामदी ने यह भी छपाया था कि 'हमने ब्यावर में जाकर तहक़ीक़ात की, उसमें किसी दूसरे का हाथ नहीं था'। पर मन में मैल होने के कारण नीचे यह भी लिखा था कि 'मैं ने यह लेख किसी ख़ुशामद से नहीं लिखा है'।"

गत मगसिर में हमारे सहयोगी पं० अजित कुमार जी महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये ब्यावर गये थे। वहां से लौटकर 'जैनदर्शन' के दसवें अंक में उन्होंने उक्त समाचार के विषय में अपनी निष्पक्ष जांच का परिणाम छापा था। लेखक महोदय का अभिप्राय शायद उन्हीं से है। आजकल अपने को सुधारक कहने वाले मनुष्यों की मानसिक प्रवृत्ति कुछ इस ढँग की हो गई है कि वे धनिकों को ही (ख़ास कर सुधार-विरोधी धनिकों को) समस्त दोषों का भण्डार समझते हैं। यदि कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष जांच पड़ताल से धनिक को निर्दोषी देखे और पत्रों में उसे निर्दोषी बतलावे, तब भी वे महापुरुष उस व्यक्ति को ख़ुशामदी की टाइटिल दे ही डालते हैं। 'सुधारक' नामधारकों की उसी दूषित मनोवृत्ति को लक्ष्य करके संपादक 'जैनदर्शन' ने अन्तिम वाक्य

लिखा था, किन्तु मन के मैले वैद्य जी ने उसे भी मन का मैल लिख डाला। अपने अपने घर में बैठकर केवल एक व्यक्ति से पत्र द्वारा तहकीकात की और पं० अजितकुमारजी ने ब्यावर जाकर अनेक व्यक्तियों से पूछताछ की। फिर भी आपकी तहकीकात सत्य थी; क्यों कि शहीद गोंका जो सुधारक थे, और दोषी रानी वाले सुधार विरोधी; और पंडित जी की जांच खुशामद भरी थी क्योंकि वह एक धनिक वंश को निर्दोषी साबित करती थी। वैद्य जी की समझ की बलिहारी है।

सम्पादक 'वीर' अपने नोट में लिखते हैं—"भगवान सोने चांदी के नहीं होते और न पत्थर या जवाहरात के। जो व्यक्ति धातु पाषाण को भगवान मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। खेद ××× है कि लोक मूढ़ता के प्रवाह में बहकर आपकी बुद्धि इस सत्य को न समझ सकी और यह भान आप खो बैठे कि भगवान भी कहीं सोने चांदी के होते हैं"।

भगवान सोने-चांदी या हीरे जवाहरात के नहीं होते, किन्तु सोने चांदी की मूर्ति में भगवान की स्थापना की जाती है और उस दशा में उन मूर्तियों की प्रतिष्ठा मूल भगवान से किसी दशा में कम नहीं समझी जाती। शायद इस बात को सम्पादक जी स्वीकार नहीं करते और संभवतः इसीलिये उन्होंने अपने पत्र के द्वारा सोने चांदी के भगवानों पर व्यंग बाणों की वर्षा करवाई है और उसके समर्थन में लिखते हैं—"भगवान भी कहीं सोने चांदी के होते हैं"।

हमने अपने लेख के अन्त में लिखा था—"मत-भेदों को दृष्टि में रखते हुए जो विकृति को विकृति के रूप में देखते हैं और मूल वस्तु पर आस्था रखते हुए विकृति को दूर करने का सत्प्रयत्न करते हैं वे सच्चे सुधारक हैं और ऐसे सुधारकों की समाज को सर्वदा आवश्यकता रही है और रहेगी। किन्तु जो सुधार की धुन में पागल होकर अविकृति को विकृति समझ बैठते हैं या विकार की धुन में मूल वस्तु पर ही हाथ साफ़ करने का दुष्प्रयत्न करते रहते हैं वे सुधारक समाज के कलंक हैं और उस महापुरुषों से सर्वदा बचे रहने में ही समाज का कल्याण है"। सम्पादक 'वीर' ने इसे अपने लिये समझ लिया और अपने तथा 'संघ' की सदस्यता के विषय में अनेक बातें लिख डालीं, इसका हमें खेद है। हमने जो कुछ लिखा था किसी व्यक्ति को लक्ष करके नहीं लिखा था। हमारी दृष्टि से वह एक सत्य नियम है और सर्वत्र सर्वदा सब के प्रति लागू होता है। अस्तु—

अन्त में लेखक महोदय से हमारा निवेदन है कि यदि आप मूल वस्तु को क़ायम रखकर केवल विकृति को दूर करना चाहते हैं तो श्रद्धा और भक्तिपूर्ण लेखनी से काम लेने का कष्ट करें।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री

बाहुबलि की प्रतिमाएं गोम्मट नाम से क्यों कही जाती हैं ?

[अनुवादकः—श्रीमान जगदीश चन्द्र जी जैन M. A.]

[गताङ्क से आगे]

अब, बाहुबलि की मूर्ति "मन्मथ" अथवा कामदेव नाम से कैसे कही जाने लगी ?

क्या कभी बाहुबलि कामदेव या मन्मथ नाम से प्रसिद्ध थे ? क्या कभी उनका इस प्रकार का नाम था ?

(१) हाँ, संस्कृत, प्राकृत और कनाड़ी के सब ग्रन्थों में, प्रथम तीर्थंकर की दूसरी स्त्री से उत्पन्न पुत्र बाहुबलि अपने समयके कामदेव अथवा कामदेव के अवतार कहे गये हैं। *

(२) कनाड़ी कवि "पम्प" अपने आदिपुराण में (सन् ९४१) लिखते हैं—"बाहुबलि अपने युग के कामदेव थे, इसलिये वे कामदेव के सभी नामों से कहे जाते थे (८–५०, ५३)"।

(३) स्वयं चामुण्डराय के कनाड़ी ग्रन्थमें (सन् ९७६) कहा गया है—"सुनन्दा देवी के बाहुबलि नामक एक पुत्र का जन्म हुआ था जो अपने युग का कामदेव था"।

इसके सिवाय, इन सब ग्रन्थों में लिखा है कि बाहुबलि के पिता आदि तीर्थङ्कर ने बाहुबलि को कामशास्त्र की शिक्षा दी थी †।

(४) श्रमण बेलगोला के नं० २३४ के शिलालेख में (सन् ११९० के लगभग) लिखा है—

"क्या वे असाधारण सुन्दर हैं ? हाँ वे स्वयं स्मर हैं। अनङ्गरूप बाहुबलि हमारा भाग्योदय करें (२८, २९ पंक्ति)।

बाहुबलि ने कामदेव के रूपमें (संसार त्याग से पहिले) प्रेम के राज्य की महिमा प्राप्त की थी"।

संक्षेप में ऊपर उल्लिखित बातों से तथा उन पर के सारांश से मेरा मत है कि स्वयं बाहुबलि "मन्मथ" अर्थात् कामदेव के नाम से प्रसिद्ध थे। इसलिये स्वभावतः श्रमणबेलगोला में बाहुबलि की स्मारकमूर्ति पहिले समय में ही मौलिक नाम "मन्मथ" के तद्भवरूप "गोम्मट" अथवा "गोम्मटेश्वर" नाम से कही जाने लगी थी। उसके पश्चात् अपने शिष्य चामुण्डराय द्वारा मूर्ति स्थापना के महान और पवित्र कार्य की स्मृति बनाये रखने के लिये नेमिचन्द्र ने उस को "गोम्मट" अथवा "गोम्मटराय" नाम दिया (वह राय जिसने गोम्मट की स्थापना की) तथा स्पष्टरूप से चामुण्डराय के लिये लिखे हुए गोम्मटसार में इसका उल्लेख किया और अपने शिष्य का दिए हुए नाम को

* देखो जिनसेनाचार्य का आदिपुराण (सन् ८५० के लगभग) १६–९, २५।

† देखो जिनसेन का आदिपुराण १७–१२२; पम्प की आदिपुराण ७ ६०।

स्थायी रखने के लिये इसे गोम्मटसार नाम से कहा। क्योंकि ऊपर उल्लिखित ग्रन्थ गोम्मटसार का अर्थ है "गोम्मट" अर्थात् चामुण्डराय के लिये बनाया हुआ "सार" भाग (जैनसिद्धान्त का)। इस ग्रन्थ का यह नाम होने से इसका वास्तविक नाम "पञ्चसंग्रह" पूर्ण रूप से लुप्त हो गया है।

यद्यपि ऊपर कहा जाचुका है कि संस्कृत का मन्मथ शब्द कनाड़ी तद्भवरूप में गोम्मट हो जाता है, तथापि यह बहुत अधिक सम्भव जान पड़ता है कि इसे कनाड़ी ने मूलरूप में संस्कृत से न लेकर मराठी भाषा से लिया हो। मराठी और कनाड़ी दोनों भाषाओं के एक सरीखे प्रयुक्त होने वाले बहु संख्यक शब्दों से यह प्रमाणित होता है कि खास कर उस दूरवर्ती समय में दोनों भाषाओं के बीच में शब्दों का बहुत बड़ा व्यापार था (और अब भी है)। उसका कारण यह है कि जिन प्रदेशों में ये भाषाएं बोली जाती थीं वे बहुतसी बातों में समीपवर्ती रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि मराठी प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत से ली गई है और इसलिये यह आर्यों की भाषा है, जबकि कनाड़ी आर्यों की भाषा नहीं है। यह महाराष्ट्री प्राकृत श्वेताम्बरों में अधिक प्रचलित थी। मराठी के साथ २ मागधी अथवा अर्द्धमागधी से ली हुई एक और प्राकृत भाषा थी (और अब भी है)। यह भाषा "कोन्कन" की मातृ भाषा होने से "कोन्कनी" नाम से प्रसिद्ध है। यह कोन्कनी (अब इसके साहित्य का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है) कभी उन्नत दशा में थी। यह मराठी भाषा से, जिसे इसने अपने स्वयं के बहुत से शब्दों और व्याकरण के रूपों से अलंकृत किया था, बहुत पुरानी है। अब, गोमट अथवा गोम्मट जो अभी भी कोन्कनी में "गोमटो" अथवा "गोम्मट्टो" (पुलिङ्ग कर्ता एक वचन) रूप में मिलता है, मराठी में नहीं पाया जाता। यह कोन्कन के सिवाय इसके बाहिर "गोमटा" (पुलिङ्ग कर्ता एक वचन) रूप में मिलता है; इसलिये यह शब्द और किसी प्राकृत भाषा का न होकर स्पष्ट रूप से "कोन्कनी" का ही है।

(१) संस्कृत मन्थन (मथना)—को. में गान्टन। यहां संस्कृत का प्रथम वर्ण "म" कोन्कनी में "ग" हो गया है।

(२) सं० "पथ" (मार्ग)—को. "वाट्", सं. ग्रंथि (गाँठ)—को. "गान्टि", यहां संस्कृत शब्द के अन्त का "थ" कोन्कनी में "ट" हो जाता है। महान अलङ्कारिक, काव्यप्रकाश के कर्ता "मम्मट" का नाम इस परिवर्तन के उदाहरण में दिया जा सकता है। मम्मट भी संस्कृत मन्मथ का तद्भव है।

(३) कोन्कनी भाषा में संस्कृत शब्दों के प्रथम वर्ण "अ" का छोटा "ओ" होना बहुत साधारण है। जैसे सं. "पनस" (पनसफल)—को पोणस, "बकुल" (पुष्प)—को. बोल्ल, सं. मधु (शहद)—को "मोउ", सं. नवनि (नव्वे)—को. नोवि, सं. "रस"—को. रोसु, सं कटु (कड़वा)—को. कोड्डु इत्यादि।

ये सब परिवर्त्तन यह प्रमाणित करने को पर्याप्त हैं कि संस्कृत शब्द मन्मथ कोन्कनी में गोम्मट हो जाता है। अतः गोम्मट कोन्कनी का शब्द है तथा इसका मराठी से कनाड़ी में लिया जाना हर तरह सम्भव है। मेरी इस मान्यता में दूसरा कारण विचित्र शब्द "गोवा" (पुलिङ्ग कर्ता एक वचन गोवु-पति, स्वामी, ईश्वर) का पाया जाता है।

यह शब्द वास्तव में कोन्कनी भाषा का है और बहुत समय पहिले से कनाड़ी * में प्रचलित है। संभवतः यह 'गोवं' शब्द भी मराठी से कनाड़ी में आगया है। यद्यपि स्वयं मराठी में यह आजकल नहीं पाया जाता लेकिन यह कोन्कनी के दैनिक व्यवहार में प्रचलित बहुत अच्छा रूप है। यह 'गोव' † संस्कृत शब्द गृहीता (मूल गृहीतृ) से आया है जो परिगृहीता (मूल परिगृहीतृ—पति) का छोटा रूप है। इसी प्रकार कोन्कनी शब्द "दुव" संस्कृत शब्द दुहिता (मूलदुहितृ—बेटी) से आया है।

संस्कृत शब्द मन्मथ का गोम्मट कैसे और क्यों हुआ, यह मैं ने समझा दिया है जो किसी रूप में पूर्वोक्त कथन के विरुद्ध नहीं जाता।

[क्रमशः]

---

* मैं केवल दो ही उदाहरण देता हूं जो अभी मेरे ध्यान में हैं—(सन ११६०) "राजा एरेयंग (होय्सलवंश का) जो वीरों का प्रभु है" (एपिग्राफिका कर्णाटिका, जिल्द पांचवीं, नं० १९३); "राजा नरसिंह (होय्सल वंश का, सन—१२९६) जो वीरों का स्वामी है" (एपिग्राफिका कर्णाटिका जिल्द १२ वीं, नं० १२३)। इन दोनों में गोव शब्द आता है।

† दीर्घोच्छ्वासी अक्षरों के साथ, कोन्कनी शब्द "गोव" और "दुव" क्रम से 'घोव' और "धुव" रूप में भी मिलते हैं। इसका कारण मौलिक संस्कृत शब्दों में "ह" का पाया जाना है। इस 'ह' के लोप होने से, इसके पीछे, आने वाले व्यञ्जनों के उच्चारण में इसका असर होता है।

ज्योतिष शास्त्र

[लेखक—श्रीमान् पं० के० भुजबली जी शास्त्री, आरा]

जिस शास्त्र के द्वारा सूर्य, चन्द्र, मङ्गल आदि ग्रहों की गति, स्थिति आदि एवं गणित जातक, होरा आदि का सम्यक् बोध हो उसे ज्योतिष शास्त्र कहते हैं। विद्वानों का मत है कि भिन्न भिन्न शास्त्रों के समान यह शास्त्र भी मनुष्य जाति की प्रथमावस्था में अंकुरित हो ज्ञानोन्नति के साथ साथ क्रमशः संशोधित तथा परिवर्धित होकर वर्त्तमान अवस्था को प्राप्त हुआ है। सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की प्रक्रिया ऐसी अद्भुत एवं अलौकिक है कि उसकी ओर प्राणी मात्र का मन आकर्षित हो जाता है। प्राचीन समय से ही इसकी ओर सभी जातियों का ध्यान विशेषतः आकृष्ट हुआ था और अपनी २ बुद्धि के अनुसार सभी लोगों को इस लोकोपयोगी शास्त्र का यत्किञ्चित् ज्ञान भी अवश्य था। इसी लिये चीन, ग्रीक, मिश्र आदि सभी जातियां अपने को ज्योतिष शास्त्र का प्रवर्तक मानती हैं।

भारतीय प्राचीन विद्वानों ने ज्योतिष शास्त्र को सामान्यतः दो विभागों में विभक्त किया है—एक फलित और दूसरा सिद्धांत अथवा गणित। फलित के द्वारा ग्रह नक्षत्रादि की गति या संचारादि देखकर प्राणियों की भावी दशा (अवस्था) और कल्याण तथा अकल्याण का निर्णय किया जाता है। दूसरे सिद्धान्त अथवा गणित के द्वारा स्पष्ट गणना करके ग्रह नक्षत्रादि की गति, एवं संस्थानादि के नियम, उनका स्वभाव और तज्जन्य फलाफलों का स्पष्टीकरण किया जाता है। आंग्लेय विद्वान फलित ज्योतिष को Astrology और गणित ज्योतिष को Astronomy कहते हैं। पर यहां एक बात मैं कहे देता हूं, कि गणितज्ञ फलितज्ञों को सदा उपेक्षा दृष्टि से देखते आये हैं। इस धारणा की पुष्टि में भारतीय गणकशिरोमणि डाक्टर गणेशी जी का कथन है कि जन्मकालीन ग्रहनक्षत्रादि की स्थिति देखकर अमुक समय में हमें सुख और अमुक समय में दुःख होगा, इसको जानना न कोई कष्ट साध्य बात है और न उससे कोई विशेष लाभ ही है। खैर, यह एक विवादास्पद विषय है; अतः यहां मैं इस विषय में विशेष उलझना नहीं चाहता।

अब सामुद्रिक शास्त्र को लीजिये। सामुद्रिक भी फलित ज्योतिष का एक खास विभाग है। इस शास्त्र के द्वारा हस्त, पाद और ललाट की रेखा एवं भिन्न २ शरीरस्थ चिह्न देख कर मनुष्य का भूत, भविष्य और वर्तमान काल सम्बन्धी शुभाशुभ फल जाना जाता है। इस विद्या को अंग्रेजी में Palmistry अथवा Chirography कहते हैं। मुख्यतया हस्ताङ्कित रेखादि देखकर ही इस शास्त्र के द्वारा शुभाशुभ फलों का निर्देश किया जाता है। विद्वानों ने सामुद्रिक शास्त्र को अधिक महत्व क्यों दिया है, इसका खुलासा नीचे किया जाता है :—

यद्यपि शरीर के प्रत्येक अङ्ग में शुभाशुभबोधक चिन्ह विद्यमान हैं। किन्तु वे चिन्ह विशेषरूप से स्पष्ट हथेली में ही पाये जाते हैं। स्वभावतः हस्त को विशेष महत्व देने का हेतु एक और भी है। हमारे सभी काम हाथ से ही होते हैं। मंगल और अमङ्गल कार्यों को करने वाला यही है। अतः इसी हाथ पर शुभाशुभ चिह्नों का चित्रण करना उपयुक्त ही है। इसके साथ २ एक और भी बात है; अगर मनुष्य में इस विद्या का ज्ञान और अनुभव हो तो वह अपना हाथ स्वयं अन्य अङ्गों की अपेक्षा आसानी से देख सकता है। यह कार्य अन्य किसी अङ्ग से सुलभ नहीं हो सकता। इसी से हस्त का रेखा परिज्ञान के लिये विशेष स्थान प्राप्त है। विद्वानों का मत है कि इसके आविष्कारक होनेका सौभाग्य भारतको ही प्राप्त है। यहीं से चीन और ग्रीक में इस विद्या का प्रचार हुआ। पश्चात् ग्रीक से योरुप के अन्यान्य भागों में यह विद्या फैली। ऐतिहासिक विद्वानों का यह भी अनुमान है कि ईसा के लगभग ३००० वर्ष पूर्व चीन में एवं २००० वर्ष पूर्व ग्रीक में इसका प्रचार हुआ। अतः निभ्रान्तरूप से यह जाना जासकता है कि भारत में इसके पहले से ही इसका प्रचार रहा होगा। हाथ में जितनी ही कम रेखायें होंगी और हाथ साफ़ रहेगा वह पुरुष उतना ही अधिक भाग्यशाली समझा जाता है। हथेली की प्रधानतः सात रेखाओं पर ही विचार होता है—(१) पितृरेखा (२) मातृरेखा (३) आयु रेखा (४) भाग्यरेखा (५) चन्द्ररेखा (६) स्वास्थ्य रेखा और (७) धनरेखा। इनमें आदि की चार प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त सन्तान, शत्रु, मित्र, धर्म अधर्म आदि और भी कई रेखायें होती हैं। अस्तु इस विषय को यहाँ अधिक बढ़ाना अप्रासंगिक होगा।

अब मुझे यहां पर यह विचार करना है कि ग्रहों के शुभाशुभ फलकथन के सम्बन्ध में लोगों की क्या धारणा है। वैज्ञानिकों का कथन है कि मनुष्य अपने २ कर्मानुसार ही समय समय पर सुखी या दुःखी हुआ करते हैं। उनके उस सुख दुख में सूर्य चन्द्रादि खगोल के ग्रह कारण नहीं हैं। हाँ, ग्रहों की स्थिति के अनुसार प्राणियों के भावी कल्याण या अकल्याण का अनुमान किया जा सकता है। ग्रहों के अनुसार भविष्य में विपत्ति की सम्भावना होने पर उसको दूर करने के लिये शान्ति का अनुष्ठान करने से प्राणियों को फिर उस विपत्ति का ग्रास नहीं होना पड़ता आदि।

अस्तु, वैज्ञानिकों का ग्रहफल सम्बन्धी यह मन्तव्य जैनधर्म के ग्रहफल सम्बन्धी मन्तव्यों से सर्वथा मिलता है। विद्वानों का कथन है कि जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। अतः उल्लिखित मन्तव्य की एकता मुझे तो नितान्त ही उचित जंचती है। किसी किसी ज्योतिषी का यह भी मत है कि अन्यान्य कारणों के समान ग्रहों का अवस्थान भी मानव के सुख दुख में अन्यतम कारण है। जो कुछ हो; ग्रहों की स्थिति से भी मनुष्यों का शुभाशुभ फलों की प्राप्ति होती है; इससे तो सभी सहमत होंगे।

दिगम्बर जैन साहित्य में ज्योतिष शास्त्र का स्थान

प्रथमानुयोगादि अनुयोगों में ज्योतिष शास्त्र

को उच्च स्थान प्राप्त है । गर्भाधानादि अन्यान्य संस्कार एवं प्रतिष्ठा, गृहआरम्भ, गृहप्रवेश आदि सभी मांगलिक कार्यों के लिये शुभ मुहूर्त का ही आश्रय लेना आवश्यक बतलाया है। तीर्थङ्करों के पाँचों कल्याणक एवं मिन्न २ महापुरुषों के जन्मादि शुभ मुहूर्त्त में ही प्रतिपादित हैं। जैन वैद्यक तथा मंत्र शास्त्र सम्बन्धी ग्रंथों में भी मंगल मुहूर्त में ही औषध सम्पन्न एवं ग्रहण और शान्ति, पुष्टि, उच्चाटन आदि कर्मों का विधान है । कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रतिष्ठापाठ आराधनादि ग्रन्थों में भी इस शास्त्र का अधिक आदर दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक नहीं अष्टाष्टकादि जो फुटकर स्तोत्र हैं उनमें भी ज्योतिष का ज़िक्र है । मुद्राराक्षसादि प्राचीन हिन्दू एवं बौद्ध ग्रंथों से भी जैनी ज्योतिष विषय के विशेष विज्ञ थे यह बात सिद्ध होती है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनच्वांग के यात्रा विवरण से भी जैनियों की ज्योतिषशास्त्र की विशेषज्ञता प्रकटित होती है । उल्लिखित प्रमाणों से यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि जैन साहित्य में ज्योतिषशास्त्र कुछ कम महत्व का नहीं समझा जाता था।

दिगम्बर जैन ज्योतिष ग्रन्थ ।

आयज्ञान तिलक आदि दो एक ग्रन्थों को छोड़ कर आज तक के उपलब्ध दिगम्बर जैन ज्योतिष ग्रन्थों में मौलिक ग्रन्थ नहीं के बराबर हैं। हां, संख्यापूर्ति के लिये जिनेन्द्रमाला, केवलज्ञानहोरा, अर्हन्तपासाकेवली, चन्द्रोन्मीलन प्रश्न आदि कतिपय छोटी मोटी कृतियां उपस्थित की जा सकती हैं। परन्तु इन उल्लिखित रचनाओं से न जैन ज्योतिष ग्रन्थों की कमी की पूर्ति ही हो सकती है और न जैन साहित्य का महत्व एवं गौरव ही व्यक्त हो सकता है। यही बात जैन वैद्यक के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। सचमुच दर्शन, न्याय, व्याकरण, काव्य अलङ्कारादि विषयों से परिपूर्ण जैन साहित्य के लिये यह त्रुटि विशेष खटकती है। हां, प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य की अपेक्षा जैन कन्नड़ साहित्य ने इस विषय में कुछ आगे पैर बढ़ाया है अवश्य। फिर भी यह सन्तोष-प्रद नहीं है, क्योंकि तद्विषयक वे ग्रन्थ संस्कृत ग्रन्थों की छायामात्र हैं, अर्थात् वहां भी मौलिकता की महक नहीं है। इस त्रुटि का कारण मुझे तो और ही प्रतीत होता है। जैन साहित्य में मौलिक ग्रन्थों के लेखक ऋषि महर्षि ही हुए हैं। साथ ही साथ जैनधर्म निवृत्तिमार्ग का प्रतिपादक सर्वोच्च लक्ष्य को लिये हुए एक उत्कृष्ट धर्म है। इसी से ज्ञात होता है कि विषय-विरक्त एवं आध्यात्मिक रसिक उन ऋषि महर्षियों का ध्यान इन लौकिक ग्रन्थों की ओर नहीं गया। या उन्हों ने सोचा होगा कि हिन्दू वैद्यक तथा ज्योतिष ग्रन्थों से भी जिज्ञासु जैनियों का कार्य चल सकता है। क्योंकि धर्मविरुद्ध कुछ बातों को छोड़ कर हिन्दू एवं जैन वैद्यक तथा ज्योतिष ग्रन्थों में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। कन्नड़ साहित्य के लेखक अधिक संख्या में गृहस्थ ही थे। अतः उनकी रुचि उस ओर अधिक आकृष्ट होना स्वाभाविक ही कही जा सकता है। अस्तु, फिर भी खोज करने पर इस विषय के मौलिक ग्रन्थ अवश्य ही उपलब्ध हो सकते हैं। अतः साहित्यप्रेमियों को इस कार्य की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। खासकर

कर्णाटक प्रांत के ग्रामों में खोज करने से इस सम्बन्ध में विशेष सफलता मिल सकती है।

सं० अभिमत—दि० जैनसमाज साहित्यप्रचार के कार्य में बहुत पीछे है, इसी का यह परिणाम है कि ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों के ग्रन्थ अभी तक छिपे हुए पड़े हैं। स्व० श्रीमान् बा० देवकुमार जी आरा ने 'जैनसिद्धान्त भवन' स्थापित करके जो अमरकीर्ति प्राप्त की, वह अपरिचित नहीं। जैनसिद्धान्त भास्कर ऐतिहासिक-पत्र प्रकाशित करके उन्होंने जैनसमाज की अपूर्व सेवा का उपक्रम किया था जो कि दुर्भाग्यवश एक वर्ष से अधिक न चलने पाया; वह भी विस्मरणीय नहीं। आज उनके सुपुत्र, जैनसमाज के आशाकेन्द्र श्रीमान् बाबू निर्मलकुमार जी अपने पूज्य पिता के स्मारकरूप में जो श्री देवकुमार ग्रंथमाला चला रहे हैं यह भी धार्मिक सेवा का एक ठोस कार्य है। इस ग्रन्थमाला में पहले मुनिसुव्रतकाव्य प्रकाशित हुआ था, अभी एक ज्योतिष ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है, इसके पीछे श्री पूज्यपाद आचार्यकृत वैद्यसार ग्रन्थ भाषानुवाद सहित प्रकाशित होगा; तदनन्तर श्री अकलङ्कदेव विरचित अकलङ्कसंहिता (वैद्यक) तथा आयज्ञान तिलक (ज्योतिष) नामक ग्रन्थ प्रकाशित होंगे। इन अपूर्व ग्रन्थों को प्रत्येक मंदिर, शास्त्रभण्डार, विद्यालय, पुस्तकालय में रखना आवश्यक है।

साहित्य सेवा के लिये श्रीमान् बा० निर्मलकुमार जी धन्यवाद के पात्र हैं। जैनसिद्धान्त भास्कर का उदय भी पुनः अवश्य हो इस ओर आपका ध्यान आकर्षित होना आवश्यक है, क्योंकि जैनसाहित्य की एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति उस पत्र से भी हो सकती है।

हमारे अन्यान्य धनिक पुरुष भी यदि साहित्य प्रचार के लिये श्रीमान् बा० निर्मलकुमार जी के समान कुछ अनुकरण करें तो हमारे समाज का मस्तक बहुत कुछ उन्नत हो सकता है, यह एक धन के सदुपयोग का आदर्श ढंग है।

विधवा विवाह के विषय में एक विदुषी महिला के उद्गार

विधवा विवाह विषय पर नवयुग में एक विदुषी महिला ने मनन करने योग्य अपने विचार प्रकाशित किये हैं वे यहां उद्धृत किये जाते हैं। पाठक महानुभाव उसको ध्यान से अवलोकन करें।

भारत की विधवाओं के विवाह में सुख नहीं है। यह तो मृगमरीचिका की भांति प्रलोभन ही दीखता है, भला विचारो तो सही, जिस देश में प्रथम विवाह किये हुए गृहस्थी सुखी नहीं हैं, वहां पुनर्विवाह की क्या दशा होगी? यह तो सिर्फ़ वही बात है कि जिस प्रकार मांस की लोभी मछली व्याध से डाली गई मांस-लिप्त लोह शलाका का खयाल नहीं करती और पकड़ी जाती है, इसी भांति सुख की इच्छा रखने वाली हमारी विधवा बहिनें विवाह सुख की इच्छा करती हुई विधवा-विवाह रूपी लोहांकुश में पकड़ी जाकर ऐहिक तथा पारमार्थिक दोनों प्रकार के सुखों से वञ्चित रह जाती हैं। इस समय भारत की सेविका दल

की बड़ी आवश्यकता है। ये विधवा बहिनें बड़ी उत्तम सेविकायें बन सकती हैं। केवल ये अपनी प्रवृत्तियों को मोड़ें भर। जिन बहिनों को यह शिकायत है कि विधवाओं को आर्थिक कष्ट है, उन्हें यह भी तो सोचना चाहिए कि क्या वे संयम भी करने को तय्यार हैं? आर्थिक संकट तो समस्त देश के सम्मुख है। क्या विधवा, क्या सौभाग्यवती, क्या कमाई वाले, क्या बेकार। कोई ज़माना होगा तो सही परन्तु अब उत्तरीय भारत में जहाँ तक हमारा अनुभव है, और हमने बहुत देखा भी है कि विधवायें फैशन में और बेकार रहने में सधवाओं को भी मात करती हैं। कोई काम कहो तो होता नहीं, शतरञ्ज, ताश खेलना, मिलना जुलना, घूमना, यही काम रहता है। हमारे पास कन्या-गुरुकुल में ४, ६ छात्रवृत्तियाँ विधवाओं को अध्यापिकायें ट्रेण्ड करने के लिये हैं। हमने नोटिस निकाले। बहुतेरी बहिनों ने इच्छा प्रगट की और कई आईं भी, पर जब उन्हें पता लगा कि यहाँ ब्रह्मचर्य पूर्वक संयम से पठन-पाठन करना होगा, खद्दर पहिनना होगा, ३ बजे प्रातः उठना होगा, इत्यादि; तब रफूचक्कर! वे तो पढ़ना भी इसी लिये चाहती हैं कि सरकारी स्कूल में रह कर ६०) ७०) या इससे अधिक तनख्वाह ले थोड़ा काम कर दिया और फिर फैशन करें, मौज उड़ावें। भला जिस देश में स्त्री जाति में यह भाव आ जाये, वह कभी उन्नत उठ सकता है?

यदि यही अवस्था हमारी बहिनों की रही तो ५-१० वर्ष में जबकि पुनर्विवाह के विरुद्ध भाव और जागृत होंगे और ब्रह्मचर्य का प्रचार अधिक होगा तब हमारी स्त्री जाति को और भी दुःख उठाने पड़ेंगे। अतः बहिनों को चाहिये कि विवाह के लोभ को छोड़ कर ब्रह्मचर्य की ओर झुकें—संयम से रहना सीखें तभी सुख और शान्ति मिलेगी।

विधवा-विवाह के समर्थकों से—

क्या आप लोगों को मालूम है कि आजकल आप एक बड़ी भारी ज़िम्मेदारी का कार्य करने जा रहे हैं, आपकी ज़रा सी असावधानी से भयंकर अनर्थ हो सकता है। जिस समय आप विधवा विवाह की सोचते हैं उस समय क्या आप संयम तथा ब्रह्मचर्य की महत्ता को एक दम भूल जाते हैं? क्या आपका विधवा बहिनों को पुनर्विवाह का उपदेश देना उनकी कामुक शक्ति को प्रोत्साहन देना नहीं है? क्या उनको संयम तथा ब्रह्मचर्य से कोसों दूर लेजाकर अपनी पुरुष-जाति की कामुक वृत्तियों का शिकार बनाना ही उनके सुधार का एक मात्र सहारा है? आप लोग सुधार कीजिये। मना कौन करता है। पर सुधार ऐसे होने चाहियें जिन से अपनी उज्वलता का ज्ञान हो, हमें सुधारवादियों के पीछे नहीं चलना चाहिये। जो एक सती प्रथा को तो पाशविक बर्बरता कहें और एक कुत्ते को गोदी में बैठाकर मुंह चाटना या चटवाना आदर्श सभ्यता बतलावें! ऐसी सभ्यता को दूर से प्रणाम करना श्रेयस्कर होगा। आशा है आप लोग इस पर उचित विचार करने की कृपा करेंगे।

विधवाविवाह के विपक्षियों से—

आप विधवा विवाह करने के विपक्ष में हैं, बहुत अच्छी बात है। पर आपके यहाँ उनको रखने के लिये उचित वातावरण-स्थान भी है कि नहीं? आप को मालूम होना चाहिये कि संयम पूर्वक रहने के लिये सात्विकताकी बड़ी आवश्यकता है। यदि आप यह चाहें कि आपके यहाँ की विधवायें चटक मटक से भी रहें और अपने मस्तक पर कलङ्क का टीका भी न लगे तो यह असंभव है। यदि आप सचमुच अपने आदर्शोंको क़ायम रखना चाहते हैं तो उचित वातावरण कीजिये, उसके बनाने में मदद कीजिये।

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भष्मीभवन्निखिल दर्शनपक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष १ } बिजनौर, आषाढ़ बदी ५—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० { अङ्क २४

मानव जीवन

इस विशाल विश्व विपिन में मानव जीवन एक अनुपम, अमूल्य, दुर्लभ वस्तु है। हम भाग्यशाली हैं जो हमने इस शरीर को पाया है। अब हमारी बुद्धिमानी इसी बात में है कि हम इससे आत्म कल्याण का कोई उत्तम कार्य कर जावें।

केवल लोभ का शिकार होकर जैसे तैसे धन उपार्जन करने से मनुष्य अभ्युदय नहीं पा सकता, क्योंकि धन तो हिंसक तथा वेश्याओं के पास भी हो जाता है। न्यायपूर्वक, अन्य प्राणधारी को कष्ट न देते हुए धन कमाना उचित है। धन उपार्जन पूर्व संचित पुण्य कर्म का फल है; अतः धर्म साधन से सदा पुण्यबंध करते रहना चाहिये।

सब नशों से बढ़ कर तेज़ नशा इस धन का होता है। इस नशे का प्रभाव जो अपने ऊपर नहीं आने देता, वही धनिक प्रशंसनीय है। अभिमानी पुरुष संसार में एक घृणित, नीच जीव होता है। अपना मनुष्य जीवन उन्नत बनाने के लिए जहाँ धन का अभिमान छोड़ना आवश्यक है वहीं सुकार्यों में उसका त्याग करना भी ज़रूरी है।

किसी समय इस देश में तथा इस जैन समाज में दानी अधिक थे। दरिद्र, माँगने वाले थोड़े थे, किंतु इस समय दीन दरिद्रों की सेना बढ़ रही है, उनके कष्ट मिटाने के लिये अपने धन का अच्छा भाग लगा देना चाहिये। धर्म-पथ से विमुख जनता को सत्य-पथ पर लाने के लिये इस पैसे को ख़र्च करना आवश्यक है। इससे बढ़ कर धन का सदुपयोग और कोई नहीं है।

सामाजिक सेवा के लिये अपना तन मन धन लगा दो। पहले अपने आपको सुधार कर अपने परिवार को सुधारो; फिर अपने यहाँ की जनता का सुधार करो। तत्पश्चात समाज सुधार में लग जाओ।

हमारे नव युवक !

[१४]

विवाह का व्यय भार

जैन समाज में इस समय प्रायः सभी प्रान्तों के नगरों तथा गावों के रहने वाले अनेक परिवार ऐसे हैं जो कि बुरी तरह से दरिद्रता के शिकार हो रहे हैं। अनेक घरों में ऐसे अनाथ लड़के हैं जो कि अपनी जीवन नौका को बड़े कष्ट के साथ खे रहे हैं, दुर्भाग्य से उनके घर विवाह योग्य कन्या भी मौजूद है। बहुत से घर वे हैं जहां केवल अनाथ स्त्रियां रह गयी हैं फिर भी उनके ऊपर लड़कियों के विवाह करने का भार लदा हुआ है। बहुत से ऐसे दुखी कुटुम्ब हैं जो अपने पालन पोषण का काम बहुत कठिनता से चला पाते हैं फिर उनको अपनी अनेक कन्यायें विवाह योग्य नज़र आरही हैं। ऐसे बलहीन परिवार अपनी पुत्रियों के विवाह का असह्य भारी बोझ किस प्रकार उठा सकते हैं? पुत्रों को अविवाहित रक्खा जा सकता है जिस तरह कि हज़ारों धनहीन युवक कुंवारे फिर रहे हैं किन्तु कन्याओं को घर नहीं बिठाया जा सकता। उस दशा में कन्याओं के संरक्षकों की कैसी दयनीय हालत होती है उसको वही समझ सकता है जोकि अपने शरीर में सहानुभूति का भीगा हुआ हृदय रखता है।

विकट समय की चोटों को खाता हुआ भी जैनसमाज तथा उसकी पञ्चायतें ऐसे निर्बल परिवारों की कुछ परवाह नहीं करतीं, न उनको कुछ सहायता देती हैं। हां विवाहके लिये पुराने ज़माने के चले आये हुए भारी खर्च की सूची उन निर्धन लोगों के सामने अवश्य रख दी जाती है। यदि वे लोग अपनी कन्याओं का विवाह करना चाहें तो उस पञ्चायती खर्चे की सूची का पालन करें, अन्यथा विवाह होना कठिन।

इस विकट समस्या में उसी अनुचित मार्ग का मुख खुलता है, जिसको कि सभाएँ अपने कोरे प्रस्तावों से रोकने का आडम्बर रचती हैं। कन्याएं पञ्चायती खर्चों की खातिर गाय बकरियों के समान बिकना शुरू हो जाती हैं। खरीदार वे लोग निकल पड़ते हैं जिनकी आयु युवावस्था को पार कर जाती है। धन बल से वे लड़कियों को खरीद कर अपना तथा उस बालिका का जीवन खराब कर डालते हैं। पंचायतें इस पाप को देख समझ कर भी चूं तक नहीं करतीं, क्योंकि उनके क़ानून

में ऐसा करना कोई अपराध नहीं। उनके लिए तो जीमनवार का न करना आदि ही दण्डनीय अपराध है।

अथवा अनेक कन्याएं पूर्ण यौवन दशा में पहुँच जाने पर भी अविवाहित ही बैठी रहती हैं जो कि प्रायः कुसंगति का अवसर पाकर सदाचार को गंवा बैठती हैं। ऐसी घटनाओं से नेत्र, हृदय रखने वाले मनुष्य अपरिचित नहीं हैं।

साधारण स्थिति वाले पुरुष के घर यदि २-४ कन्याएं हुईं तो वह बेचारा उस चिन्ता से दिन के समय आकाश में तारे देखता रहता है।

क्या जैनसमाज ऐसी शोचनीय दशा में जीवित रह सकता है? जो कन्याएं किसी घर में पहुँच कर सूने घर को हरा भरा बना सकती हैं विवाह के कारण उनकी पूर्वोक्त ढंग से दुर्दशा हो तो क्या जैन बाग़ फूला फला रह सकता है? कदापि नहीं; वह तो दुखी परिवारों की गर्म आहों से कुछ सूख गया है तथा कुछ और शीघ्र सूख जायगा।

इस कारण जैनसमाज का अभ्युदय बढ़ाने के लिये हमारे उत्साही पुरुषों को साहस और बुद्धिमानी से कार्य लेना चाहिये। वे ऐसे दुखी परिवारों का दुख अपना निजी दुख समझ कर उन परिवारों की रक्षा करें। रक्षा करने के लिये उन्हें आर्थिक सहायता देने की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी बड़ी आवश्यकता विवाहके खर्चों के हटाने के लिये प्रबल उद्योग करने की है। वे अपने यहाँ शान्तिपूर्ण उत्साह से अन्य मनुष्यों को हमदर्द (दुखी मनुष्यों के साथ सहानुभूति रखने वाले) बनावें, उनके भीतर परोपकार, दीन रक्षण का भाव उत्पन्न करें। फिर वे उन परोपकार का भाव रखने वाले सज्जनों को अपने साथ करके अपनी पंचायत में इस बात का प्रचार करें कि विवाहकार्य में आवश्यक व्यावहारिक तथा धार्मिक क्रियाओं के वे सभी कार्य इच्छानुसार होने चाहियें जिनमें कि खर्च होता है, किंतु जिनके न करने से धर्मसमाज की कुछ हानि नहीं होती; जैसे कि भारी भारी जीमनवार, दहेज आदि। जो वैसे खर्च उठा सकते हों चाहिये तो उन्हें भी यह कि उनको कम कर दें, किन्तु वे यदि न करना चाहें तो उनकी इच्छा; किन्तु जो असमर्थ मनुष्य उन खर्चों को नहीं कर सकते उनके लिये छूट होनी चाहिये। इतना ही नहीं, बल्कि आग्रह से उनके द्वारा उन खर्चों को रुकवा देना उचित है।

विवाह, भारी जीमनवार करने या दहेज लुटाने का नाम नहीं, विवाह दो दिन तक मूर्ख पुरुषों की वाहवाही लेने के लिये अपना सर्वस्व स्वाहा कर देने का नाम नहीं, विवाह कुछ अपने सिर पर असह्य ऋणभार लादकर पञ्चायती खर्चों का पेट भरने से ही नहीं होता। विवाह तो गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक चलाने के लिये विधिपूर्वक देव, गुरु, धर्म, तथा पञ्च लोगों की साक्षी से कन्या का पाणिग्रहण करने का नाम है। यह कार्य लाख रुपये में किया जाय तो कोई बड़ाई नहीं और यदि कुछ खर्च न करके कर लिया जावे तो कुछ बुराई नहीं।

कोई ग़रीब विधवा स्त्री अपनी लड़की का विवाह यदि पचीस रुपये में करना चाहती है तो दयालु सच्चा जैन वही है जो उद्योग करके उसकी कन्या का विवाह उन्हीं पचीस रुपयों में कर देवे। किसी निर्धन भाई के पास कष्ट से एकत्र किये हुए केवल पचास रुपये हैं; वह बेचारा अपनी दो

कन्याओं का विवाह उसी रक़म से कर देना चाहता है तो सज्जन साधर्मी पुरुष का कर्त्तव्य है कि साहस करके उसका कार्य उसी पचास रुपये की रक़म में कर देवे, जिससे ग़रीब लोगों को विवाह एक भयानक मृत्यु का मुख न मालूम हो और कन्याओं को अपने सिर पर आपत्ति का भार न समझें। यद्यपि ऐसे कार्यों में उनको अनेक कठिनाई तथा कष्ट उपस्थित हो सकते हैं, निर्दय दुर्जन लोग पंचायती रीति रिवाज के बहाने का रोड़ा उनके मार्ग में डाल सकते हैं, किन्तु वीरता से उनका सामना करना चाहिये। शुभभावना से किया हुआ उद्योग कभी विफल नहीं होता, तथा निर्बल प्राणधारियों का आशीर्वाद आने वाले समस्त संकटों को हटा देता है।

वर्ष समाप्ति

इस अङ्क के साथ 'जैनदर्शन' का प्रथम वर्ष समाप्त होता है। जिस शुभ उद्देश को लेकर इस पत्र का उदय हुआ था, अपने इस छोटे से जीवन में उसने उस उद्देश की पूर्ति में कहा तक सफलता प्राप्त की इसका निर्णय हम अपने प्रेमी पाठकों पर ही छोड़ते हैं। यद्यपि पत्र के नाम के अनुरूप दार्शनिक लेखों का हम विशेष प्रबन्ध नहीं कर सके, फिर भी इस वर्षमें 'दर्शन' ने अपने पाठकों के सन्मुख जो ऐतिहासिक, साहित्यक, दार्शनिक तथा सामाजिक सामग्री भेंट की है, समाज के अन्यान्य पत्रों के संग्रह के सामने वह अधिक मूल्यवान और भार पूर्ण है। किन्तु, उससे हमें सन्तोष नहीं है। हम चाहते हैं कि 'जैनदर्शन' मार्मिक और गवेषणापूर्ण लेखों के द्वारा अपने नाम को सार्थक कर सके, और इसके लिये हम बराबर प्रयत्नशील हैं।

यद्यपि जैनधर्म के मूल पर होने वाले कुठाराघातों से उसकी रक्षा करने के लिये ही 'जैनदर्शन' का उदय हुआ था फिर भी उसके प्रकाशन की सूचना के प्रकाशित होते ही जैनधर्म की रक्षा के ठेकेदार कुछ पत्रों ने उसके विरुद्ध विष उगलना प्रारम्भ कर दिया और पारस्परिक द्वेष और कलह के बीज बोकर उसे भी पथभ्रष्ट करना चाहा, किन्तु 'दर्शन' अपने निश्चित पथ से विचलित न हो सका और संभवतः उसके जीवन में ऐसा दुर्दिन कभी भी न आवेगा।

जैनदर्शन आर्ष मार्ग का अनुगामी है—आर्ष मार्ग की ओट में भ्रष्टाचार का प्रचार करने वाले नाम्ना आर्ष मार्ग का अनुगामी नहीं है। वह आर्ष-मार्ग का रक्षक है, आर्ष-मार्ग के नाम पर अर्थ का अनर्थ करने वाले रूढ़ि भक्तों का नहीं, और न समय के प्रवाह में बह कर आर्ष वाक्यों के अर्थ का अनर्थ करने वाले रूढ़ि संहारकों का। उसकी दृष्टि में दोनों का एक मूल्य है। किन्तु आर्ष-मार्ग के साथ ही साथ सामाजिक शान्ति के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भी वह भली भांति समझता है। अतः दोनों का समन्वय करके ही आगे पैर बढ़ाना है। इस नीति का अनुसरण करने में कभी २ हमें अपने सहयोगी समझे जाने वालों को भी प्रतियोगी बनाना पड़ता है, जिसके लिये हम लाचार हैं।

विचार-भेद छद्मस्थ मनुष्य का स्वाभाविक धर्म-सा है; इसलिये उसकी उचित मात्रा किसी दृष्टि से क्षम्य है। उस क्षम्य विचार भेद वाला

मनुष्य यदि हमारे मान्य सिद्धान्तों के प्रकाशन, रक्षण और प्रचार में हमारा हाथ बटाकर हमारे धर्म की प्रभावना करता है तो हम कोई ऐसा कारण नहीं देखते हैं जिसकी वजह से उसका सहयोग न स्वीकार करा जाये। जब हम सहधर्मी सुधारकों का विरोध करने के लिये जैनधर्म के सनातन शत्रु विधर्मियों की 'ठकुरसुहाती' कर सकते हैं, उनके पत्रों से कविता और लेख उद्धृत कर सकते हैं, तब अपने धर्मानुयायिओं के जैनधर्म पोषक मन्तव्यों को छापने का विरोध करना, जैनधर्म की रक्षा के लिये जीने और मरने वाले 'पत्रों' को परिवर्तन में अपना 'पत्र' तक न देना कहाँ तक उचित है। हम ऐसे व्यक्तिगत द्वेष को समाज और धर्म के लिये हानिकर समझते हैं और शुभ कामना करते हैं कि जिनेन्द्रदेव की शुभ भक्ति हमें कर्तव्य पथ पर दृढ़ रखे और हमारे सहयोगी प्रतियोगियों को शुभ मति दे।

आभार-प्रदर्शन

जैनसमाज में आज विद्वानों की कमी नहीं है, किन्तु लेखकों का सर्वथा अभाव है। जैन सिद्धांतों पर घण्टों धारा-प्रवाह बोलने वाले मौजूद हैं, किन्तु उसी बात को सुन्दर और भावपूर्ण भाषा में लेख बद्ध करने वाले खोजने पर भी नहीं मिलते। ऐसी दशा में जिन विद्वानों और सुलेखकों ने अपनी रचनाओं के द्वारा जैनदर्शन के कलेवर को अलकृत करने में हमारा हाथ बटाया है, उनके प्रति हम कृतज्ञ हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी समाज-सेवा के इस पुनीत कार्य में वे हमारा हाथ बटायेंगे। जिन नवीन लेखकों ने हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर लेख लिखने का उत्साह किया है उनके प्रति भी हम कृतज्ञ हैं और हमें आशा है कि, वे यदि प्रयत्नशील रहे तो एक दिन अवश्य ही ख्यातनामा सुलेखक होकर जैनसमाज की कीर्ति को उज्ज्वल करेंगे।

पत्रों की स्थिति उसके ग्राहकों पर निर्भर है, अतः जिन प्रेमी पाठकों ने ग्राहक बनकर या आर्थिक सहायता देकर 'दर्शन' को अपनाया है हम उन सब के प्रति कृतज्ञ हैं और आशा करते हैं कि वे इसी प्रकार 'दर्शन' पर अपनी कृपा बनाये रक्खेंगे और अपने मित्रों को भी इस पुनीत सेवा के लिए उत्साहित करेंगे।

— —

तारण पंथ

हिन्दू जाति में जिस प्रकार आर्यसमाज, श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जिस प्रकार स्थानकवासी समाज मूर्तिपूजा का निषेधक उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय में मुसलमानी शासन के समय तारणस्वामी ने तारणपंथ की स्थापना की। अत्याचारी मुसलमान शासन मंदिर, मूर्तियों को तोड़ डालते थे; संभवतः यह असह्य अत्याचार देखकर तारणस्वामी ने उस समय अल्पवयस्क बालिकाओं की विवाह प्रथा के समान जिन मंदिरों में मूर्ति विराजमान न करने की प्रथा को लाभकारक समझ कर मूर्ति के स्थान पर शास्त्र विराजमान करने की प्रणाली चलादी, जो कि उनके अनुयायियों ने सिद्धान्तरूप में ग्रहण करली।

तारणस्वामी का समाधि स्थान ग्वालियर राज्य में नसई जी में है। तारणपंथी भाई समैया, गोलालारे आदि ६ संघों में विभक्त हैं। उनमें कुछ जैनसिद्धान्त के मर्मज्ञाता सज्जन भी हैं जो कि

अर्हन्त प्रतिमा का पूजन करने लगे हैं। ऐसे धर्म-प्रेमी भाइयों का कुछ कट्टर तारणपंथियों ने बहिष्कार किया है। गोलालारे आदि दि० जातिनेताओं को अविलम्ब ऐसे भाइयों को अपना लेना चाहिये। आजकल धर्मसाधन व्यावहारिक सहूलियत पर अवलम्बित है, इस बात को ध्यान में रखते हुए बुंदेलखण्ड के उत्साही, कर्मण्य युवकों को सचेत होकर इस कार्य में आगे आना चाहिये।

तारणपंथ समाज में उन्हें ऐसा शान्ति, प्रेम पूर्ण व्यापक प्रचार करना चाहिये कि ये हमारे बिछुड़े हुए भाई हम से फिर आमिलें। उत्साह, उद्योग, सहनशीलता और साहस ऐसे शुभकार्य में लगाना ही मानवजीवन का सार है। हमको पारस्परिक दलबंदी के झगड़ों को दुर्लक्ष्य करके ऐसे कार्यक्षेत्र में पैर रखना चाहिये। यदि इस कार्य के लिये एक सभा बन जावे तो उत्तम हो किन्तु बाहरी धूमधाम छोड़ कर शान्ति से प्रचाररूप कार्य होना चाहिये।

ऐसे कार्यों का फल एक दम न प्रगट होकर कुछ समय पीछे सामने आता है, क्योंकि अन्य पुरुष की अभ्यस्त मनोवृत्ति का बदलना कुछ समय चाहता है। अतः कार्य धैर्य, गम्भीरता के साथ प्रारम्भ होना चाहिये। क्या बुंदेलखण्ड के व्यापक क्षेत्र से ऐसे कुशल प्रचार कर्ता प्राप्त न होंगे ?

तारण पंथ के कुछ प्रश्न

तारणपंथ के सुयोग्य सज्जन श्रीमान पं० चुन्नीलाल जी वैद्य बांदा ने दिगम्बर जैनसमाज से १० प्रश्न किये हैं, किन्तु जो छपा हुआ पर्चा हमारे पास आया है उसमें ९ प्रश्न लिखे हुए हैं चौथे प्रश्न के अनन्तर छठा प्रश्न छपा हुआ है। उन प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर यहां लिखा जाता है :—

प्रश्न १—जैनधर्म में वीतरागता पूजनीय है या केवल दिगम्बरत्व ही ? क्या वीतरागी मुनि का मृतक शरीर भी पूजनीय है; यदि है तो क्यों ?

उत्तर—जैनधर्म दिगम्बरी वीतरागताका पूजक है, दिगम्बरता यद्यपि पशु, पक्षी, दरिद्र लोगों में दीख पड़ती है किन्तु वहां पर निर्विकार भाव का अभाव है; अतः वे दिगम्बरवेश में रहते हुए भी अपूज्य हैं। दिगम्बर वेषधारण किये बिना सच्चा वीतराग भाव प्रगट नहीं होता; इस कारण दिगम्बर वेषविभूषित वीतरागता ही जैन धर्मानुसार पूज्य है।

मृतक शरीर को उचित विधि से दग्ध कर देने का आदेश जैनधर्म देता है न कि उसका पूजना। अतः मुनिका शरीर भी विधिपूर्वक उचित सन्मान के साथ दग्ध कर दिया जाता है।

प्रश्न २—तीर्थंकर केवलज्ञानी होने से ही पूजनीय होते हैं या इससे पहिले भी ? यदि प्रथम ही पूजनीय होते हैं तो किन जीवों के द्वारा ? क्या वे ज्ञानीमात्र होने से ही ऋषियों द्वारा पूजनीय होते हैं या केवलज्ञानी और हितोपदेशी होने पर ही ?

उत्तर—वास्तविक पारमार्थिक पूज्यता तीर्थंकर में केवलज्ञान होने पर ही आती है क्योंकि उसी समय से वे निर्विकार, पूर्ण वीतराग हो पाते हैं। उसके पहले उनमें व्यावहारिक पूज्यता होती है जो कि व्यवहार प्रधान लोगों द्वारा मनाई जाती है। सर्वज्ञ दशा में तीर्थंकरों की पूज्यता पूर्णज्ञान, वीत-

रागभाव, हितोपदेश आदि अनेक सहभावी गुणों के कारण होती है।

प्रश्न ३—गृहस्थी लोगों ने श्री अरहन्तदेवकी अचेतन द्रव्य में जो कल्पना की है और अपना कल्पित व्योहार धर्म बनाया है उसे क्या वास्तविक व्यौहार धर्म कहा जा सकता है ?

उत्तर—श्री अर्हन्त भगवान की प्रतिमाओं का निर्माणमार्ग न तो नवीन है और न इस मार्ग के उपदेष्टा गृहस्थ लोग हैं। अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमाएं अनादिकालीन हैं यह बात तो भिन्न है किन्तु भगवान महावीर स्वामी के समय की तथा उस्मानाबाद की गुफाओं में करकन्डु राजा द्वारा विराजमान की गई प्रतिमाएं भगवान पार्श्वनाथ के समय की हैं। अनेक पुरातन प्रतिबिम्ब आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित पाये जाते हैं।

अर्हन्त प्रतिमा वीतराग परिणाम उत्पन्न करने का प्रबल कारण है; इस कारण अर्हन्त प्रतिमापूजन वास्तविक व्यवहार धर्म है।

प्रश्न ४—वास्तविक निश्चय धर्म की और वास्तविक व्यवहार धर्म की स्पष्ट व्याख्या क्या है।

उत्तर—आत्मस्वरूप में मग्न होना निश्चयधर्म तथा उसके कारणरूप प्रतिमापूजन स्वाध्याय आदि वास्तविक व्यवहारधर्म है।

प्रश्न ५—क्या जिन प्रतिमा कहलाने वाली प्रतिमा को वास्तविक जिन प्रतिमा कह सकते हैं ?

उत्तर—शास्त्रानुसार बनाई गई अरहन्त प्रतिमा को वास्तविक जिन प्रतिमा कह सकते हैं, क्योंकि मूल पदार्थ के आकार वाली मूर्ति प्रतिमा कहलाती हैं।

प्रश्न ६—क्या प्रतिमारूप में श्री जिनदेव की कल्पना भी हो सकती है ?

उत्तर—जिस प्रकार कल्पित अक्षरचिन्हों में जिनवाणी की स्थापना है उसी प्रकार कृत्रिम मूर्ति में श्री महावीर भगवान आदि की स्थापना हो सकती है।

प्रश्न ७—क्या कोई भी प्रतिमा सरागी वीतरागी हो सकती है।

उत्तर—जिसका दर्शन हृदय पर सांसारिक राग उत्पन्न करे वह प्रतिमा सरागी कही जाती है और जिसका प्रभाव आत्मा पर शान्ति, वैराग्य पैदा करता है वह प्रतिमा वीतरागी है।

प्रश्न ८—क्या नग्न प्रतिमा को वीतरागी और वस्त्रसहित प्रतिमा को सरागी कहा जा सकता है ?

उत्तर—छोटे बच्चे के समान निर्विकार नग्न प्रतिमा वीतरागी है; क्योंकि वह वीतराग भाव उत्पन्न कराने का साधन है। वस्त्रधारक प्रतिमा सरागी है क्योंकि वह कम से कम शरीररक्षक वस्त्र के साथ ममत्व भाव की सूचना देता है। उससे निस्पृह निर्विकार भाव का प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रश्न ९—क्या किसी प्रतिमा को सर झुकाने में राग और तिरस्कार करने में द्वेष के भाव नहीं होते ? और रागद्वेष संसार भ्रमण का कारण नहीं है क्या ?

उत्तर—वीतराग प्रतिमा की विनय, भक्ति वीतराग भाव के कारण भूत राग को उत्पन्न करती है जैसे कि जिनवाणी की भक्ति; अतः वह संसारका कारण नहीं किन्तु मुक्ति का कारण है। तिरस्कार करने में अवश्य द्वेषभाव प्रगट होता है जो कि संसार का कारण है।

विस्तारभय से यहां संक्षिप्त उत्तर लिखे हैं; मूर्तिपूजन पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। श्रीमान् पं० चुन्नीलाल जी के यदि और भी प्रश्न हों तो वे हमारे पास भेजदें, उनका उचित उत्तर प्रकाशित कर दिया जावेगा।

बदलिया जी की वर्षा

जैनपथप्रदर्शक के १३-१४-१५ वें अंक में कलकत्ता निवासी श्रीमान् नौबतराय जी बदलिया ने समीक्षा की परीक्षा शीर्षक लेख प्रगट किया है। इस लेख से आपने श्वेताम्बरमतसमीक्षा के किस अंश की परीक्षा कर उसको असत्य साबित किया, यह बात तो आपके सिवाय अन्य कोई नहीं जान सकता। किन्तु आपने इस लेख द्वारा अपने गुरु जो श्रीमान् यति सूर्यमल जी का पक्ष लिया है, यह सब कोई समझ सकता है। यति जी के साथ हमारा भी कुछ प्रमसम्बन्ध है, अतः यति जी को हम कुछ लिखें तो हमारे ख्याल से बीच में आपके आने की कुछ आवश्यकता न थी। अस्तु—

आपके लेख में यदि कोई उत्तर देने योग्य निःसार बात है तो वह यह कि आपने रत्नकरंड श्रावकाचार तथा पद्मपुराण में उल्लिखित ५ कथाओं का उल्लेख कर के दिगम्बरीय ग्रन्थों से मांस भक्षण सिद्ध करना चाहा है।

बदलिया जी को प्रथम तो जैन दर्शन का १९ वां अंक देखना चाहिये जिसमें हमने आपकी शंकाओं का उत्तर जैन पत्र के आधार से पहले ही दे दिया है।

दूसरे—आपको इस बात का परिचय प्राप्त करना चाहिये कि किसी मांसभक्षी पुरुष का ऐतिहासिक विवरण लिखना मांसभक्षण विधान है या उसकी पाप घटना का उल्लेख है।

यदि पद्मपुराण अथवा रत्नकरंड श्रावकाचार में कहीं पर विधान रूप में यों लिखा हो कि "किसी आपत्तिदशा में जैन गृहस्थ या साधु मांसभक्षण भी कर सकता है" तो आप देखेंगे कि हम, हमारे सहयोगी तथा दिगम्बर जैन समाज उनको अप्रामाणिक ठहराते क्षण भर की देर न करेंगे।

बदलिया जी—बतलावें कि जैनाचरण से भ्रष्ट यदि राजा सौदास ने मांस खाया, धर्मशून्य अतिदेव मतिदेव ने मछली पकाई और नरकगामी राजा अरविन्द ने शरीरदाह मिटाने के लिये अपने पुत्र को हिरणों के खून से बावड़ी भरने की आज्ञा दी जिसका कि उसके पुत्र ने पालन भी नहीं किया तो इससे मांसभक्षण विधान कैसे सिद्ध हुआ? ग्रंथकार ने क्या उनके कुकृत्य की प्रशंसा की या उसको योग्य बतलाया? यदि नहीं तो वह विधान किस तरह सिद्ध हुआ?

हमको दुख है कि बदलिया जी ने परिश्रम करके अपने पसीने की वर्षा की, किन्तु उससे कुछ किसी सार अभिप्राय का बीज नहीं उगाया। उन्होंने जहां लंबा लेख लिखने का कष्ट उठाया वहाँ यह जानने का उद्योग नहीं किया कि मांस भक्षण विधान का अर्थ क्या है?

जैन संघ भेद

[क्रमागत]

[२०]

अजैन विद्वानों की दृष्टि में प्राचीन जैन साधु का रूप

अब हम प्राचीन अजैन ग्रंथों की एवं ऐतिहासिक विद्वानों की सम्मति पाठकों के सन्मुख रखते हैं कि उनकी दृष्टि में प्राचीन जैनसाधु का रूप क्या था :—

भागवत ५ वां स्कंध ५ वां अध्याय भगवान ऋषभदेव के विषय में—

"शरीर मात्र परिग्रह उन्मत्त इव गगन परिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मवर्तात् प्रवव्राज"।

अर्थात्—शरीरमात्र परिग्रहधारी, उन्मत्त पुरुष के समान नग्न बिखरे हुए बालों वाले भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मावर्त (बिठूरदेश) से सन्यास लेकर चले गये।

बाल्मीकि रामायण बालकांड १४ वाँ सर्ग २२ वां श्लोक—

ब्राह्मणा भुंजते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते ।
तापसा भुञ्जते चापि श्रमणाश्चापि भुञ्जते ।

अर्थात्—राजा दशरथ के यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय भोजन करते थे। तापसी (शैवसाधु) तथा श्रमण यानी नग्न दिगम्बर साधु (श्रमण दिगम्बरा वातवसना इति निर्घंटुः—भूषण टीका) भी भोजन करते थे।

महाभारत आदि पर्व अध्याय ३—

साधयामस्तावदित्युक्त्वा प्रातिष्ठतोत्तङ्कस्ते कुंडले गृहीत्वा सोपदश्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छन्तं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च ॥१२६॥

अर्थात्—हम यत्न से करेंगे ऐसा कह कर उत्तङ्क कुंडलों को लेकर चल दिया। रास्ते में उसने एक ऐसे नग्न क्षपणक (जैन साधु) को देखा जो कभी स्पष्ट दीख पड़ता था कभी नज़र नहीं आता था।

'क्षपणक' शब्द का 'अर्थ नग्न जैन साधु' होता है; इस विषय की साक्षी निम्नलिखित ग्रन्थ देते हैं :—

कलकत्ते से प्रकाशित अद्वैतसिद्धि पृ० १६७—
'क्षपणका जैन मार्ग सिद्धान्त प्रवर्तका इति केचन'

यानी—जैनमत के सिद्धान्त को चलाने वाले क्षपणक होते हैं।

श्वे० आचार्य हेमचन्द्र कोष में क्षपणक का अर्थ नग्न साधु करते हैं :—

नग्नो विवाससि मागधे च क्षपणके

विश्वलोचन कोष के नान्तवर्ग में १४ वां श्लोक देखिये :—

'नग्नस्त्रिषु विवस्त्रे स्यात्पुंसि क्षपणबन्दिनोः'

श्वे० मुनि सुन्दर सूरि अपनी गुरु आवली में क्षपणक का अर्थ 'दिग्वसन' (दिगम्बर जैन साधु) करते हैं। अस्तु—

पद्मपुराण, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण आदि पुराणों में भी दिगम्बर जैन मुनि का स्पष्ट उल्लेख

मिलता है। जो महानुभाव देखना चाहें वे 'वेद पुराणादि ग्रन्थों में जैन धर्म का अस्तित्व' नामक पुस्तक का अवलोकन करें। उसमें—

'नग्नरूपो महाकायः सितमुण्डो महाप्रभः
मार्जनीं शिखिपत्राणां कक्षायां स हि धारयन्'

इत्यादि, नग्न दिगम्बर जैन मुनि वेश सूचक अनेक श्लोक विद्यमान हैं।

ऋग्वेद संहिता १०—१३६—२

'मुनयो वातवसनाः' यानी—मुनि वायु के वस्त्र वाले अर्थात्—नग्न होते हैं। वेदों में और भी कई स्थानों पर दिगम्बर साधु का उल्लेख मिलता है।

जाबालोपनिषद् सूत्र ६

यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रह........

शुक्लध्यान परायणः......

यानी—उत्पन्न हुए बालक के समान निर्विकार नग्न, निर्ग्रन्थ, परिग्रह रहित साधु शुक्ल ध्यान परायण होता है।

ये समस्त विशेषण जैन साधु के हैं, क्योंकि निर्ग्रन्थ आदि शब्दों का प्रयोग जैन साधु के लिये ही होता है।

तैत्तरीय आरण्यक १० प्रपाठक ६३ वा अनुवाक

कंथाकौपीनोत्तरा संगादीना त्यागिनो यथा जातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहाः इति संवर्त श्रुतिः।

अर्थात्—कंथा, कोपीन (लंगोट), उत्तरासंग (चादर) आदि वस्त्रों का त्यागी, उत्पन्न हुए बच्चे के समान निर्विकार नग्न, परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ साधु होते हैं।

मगध देश का शासक नन्दराज वंश दिगम्बर जैन मुनियों का भक्त था, यह बात मुद्राराक्षस नाटक से सिद्ध होती है। चाणक्य ने विश्वास में फंसाने के लिये राक्षस मंत्री के पास जीवसिद्धि नामक क्षपणक को दूत बनाकर भेजा था।

राजा विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्नों में से क्षपणक भी एक रत्न था। क्षपणक का अर्थ दिगम्बर जैन साधु होता है, यह पीछे सिद्ध किया जा चुका है।

राजा विक्रमादित्य की राजसभा का ज्योतिषी विद्वान वराहमिहिर अपनी संहिता में आजसे लगभग दो हजार वर्ष पहले लिखता है कि—

आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्सांकः प्रशान्त मूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः॥

अर्थात्—अर्हन्तभगवान का प्रतिबिम्ब नग्न बनाना चाहिये।

शङ्कराचार्य ने वेदान्तसूत्र शाङ्करभाष्यमें द्वितीय अध्याय, दूसरे पाद के ३२ वें सूत्र की टीका में "निरस्तः सुगतसमयः विवसन समय इदानीं निरस्यते। सप्तैवां पदार्थाः सम्मता जीवा जीवास्रव बन्ध संवरनिर्जरा मोक्षा नाम।" इत्यादि लिखकर 'जैनमत' को 'नग्नसाधुओं का मत' नाम से लिखा है।

बौद्धग्रन्थों में तो स्थान स्थान पर जैनसाधुओं का नग्न दिगम्बररूप में उल्लेख आया है। इस लेख माला को समाप्त करने के विचार से उन ग्रंथों के उल्लेख विस्तार भयसे छोड़ देते हैं। जिन महानुभावों को अवलोकन करना हो वे महानुभाव 'भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध' पुस्तक का स्वाध्याय करें। यहां पर केवल दिव्यावदान ग्रन्थ का एक श्लोक लिख देते हैं—

कथं स बुद्धिमान भवति पुरुषो व्यञ्जनान्वितः।

लोकस्य पश्यतो योऽयं ग्रामे चरति नग्नकः॥

अर्थात्—वह (निर्ग्रन्थ जैन साधु) अज्ञानी पुरुष बुद्धिमान कैसे हो सकता है जो कि गांव में देखने वाली जनता के सामने नंगा घूमता है।

इस प्रकार रामायण, महाभारत, पौराणिक, वैदिक, बौद्ध आदि किसी भी ज़माने के ग्रंथ देख डालिये, जैनसाधु का उल्लेख नग्न दिगम्बर रूप में मिलेगा। भद्रबाहु स्वामी से पहले के किसी भी ग्रन्थ में वस्त्रधारक जैनसाधु का उल्लेख कदापि नहीं मिलता।

अब हम इस विषय पर इतिहासवेत्ता विद्वानों की सम्मति प्रगट करते हैं:—

इन्साइक्लोपेडिया ब्रिटेनिया के ११वें ऐडीशन के १२७वें पृष्ठ पर लिखा है कि "दिगम्बर बड़ी प्राचीन निर्ग्रन्थ हैं जिनका वर्णन बौद्धकी पाली-पिटकों में आया है।"

मिस्टर वी० लेविस राइस सी. आई. ई. लिखते हैं कि—

"समय के फेर से दिगम्बर जैनियों में से एक विभाग उठ खड़ा हुआ जो इस प्रकारके कट्टर साधुपने से विरुद्ध पड़ा। इस विभाग ने अपना नाम 'श्वेताम्बर' रक्खा। यह बात सत्य मालूम होती है कि अत्यन्त शिथिल श्वेताम्बरियों से कट्टर दिगम्बरी पहले के हैं।"

इण्डियन एण्टिक्वेरी (जौलाई सन् १९००) पुस्तक नं० ३० में अलब्रेट वेबर द्वारा लिखित 'भारत में धार्मिक इतिहास' नामक लेख में लिखा है कि—

दिगम्बर लोग बहुत प्राचीन मालूम होते हैं क्योंकि न केवल ऋग्वेद संहिता में इनका वर्णन 'मुनयः वातवसनाः' अर्थात् पवन ही है वस्त्र जिनके इस तरह आया है, किन्तु सिकन्दर के समय में जो हिन्दुस्तान के जैन सूफ़ियों का प्रसिद्ध इतिहास है उससे भी यही प्रगट होता है।

जे० स्टीवेन्सन डी० डी० प्रेसीडेन्ट रायल एशियाटिक सुसायटी ने २० अक्टूबर १८५३ को एक लेख पढ़ा था जोकि सुसाइटी के जर्नल में जनवरी १८५५ को छपा था। उस लेख में उक्त विद्वान् ने 'तिर्थिय' तथा 'जैनसूफ़ी' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—

"इन तीर्थङ्करों में दो बड़ी विशेष बातें पाई जाती हैं तथा जो जैनियों के सब से प्राचीन ग्रंथों और प्राचीन इतिहास से ठीक ठीक मिलती हैं वे ये हैं कि एक तो उनमें दिगम्बर मुनियों का होना और दूसरे पशुमांस का सर्वथा निषेध। इन दोनों में से कोई बात भी प्राचीन काल के ब्राह्मणों और बौद्धों में नहीं पाई जाती है।"

जैन सूफ़ियों के विषयमें आपने लिखा है कि—

"क्योंकि दिगम्बर समाज प्राचीन समय से अब तक चला आ रहा है (लेख में इस बात को पुष्टि के अन्य कारण भी बतलाये हैं) इससे मैं यही तात्पर्य निकालता हूँ कि पश्चिमी भारत में जहाँ जैनधर्म अब भी फैला हुआ है जो जैनसूफ़ी यूनानियों को मिले थे वे जैन थे; न तो वे ब्राह्मण थे और न बौद्ध। तथा तक्षशिला के पास सिकन्दर को इनही दिगम्बरियों का एक संघ मिला था जिन दिगम्बरियों में से एक कालानस नामधारी फ़ारस देश तक सिकन्दर के साथ गया था।"

डाक्टर एच० एच० विलसन एम० ए० जैन-

धर्म विषय पर अपने व्याख्यान में कहते हैं कि—"जैनियों के प्रधान दो भेद हैं—दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बर बहुत प्राचीन मालूम होते हैं और बहुत अधिक फैले हुए हैं। सर्व दक्षिण के जैनी दिगम्बर मालूम होते हैं। यही हाल पश्चिमी भारत के जैनियों का है। हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में जैनियों को साधारणतया से दिगम्बर या नग्न लिखा है"।

वॉरनफ साहिब का मत है "कि जैनसाधु ही नग्न होते थे और बुद्ध नग्नता को आवश्यक नहीं समझते थे।"

श्री सम्मेद शिखर क्षेत्र के इंजकशन केस का फ़ैसला देते हुए रांचीकोर्ट के प्रतिभाशाली प्रख्यात सब जज श्रीयुत फणीन्द्रलाल जी सेन लिखते हैं कि "इस बात के बहुत दृढ़ प्रमाण हैं कि श्वेताम्बरी जैनों के पहले दिगम्बर जैनी बहुत पहले से मौजूद थे।"

डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए० प्रिन्सिपिल संस्कृत कालेज कलकत्ता लिखते हैं कि—

"जैनधर्म बौद्धधर्म से प्राचीन है। निर्ग्रंथों तथा नाथपुत्र का वर्णन बौद्धों के सबसे प्राचीन पाली ग्रंथ त्रिपिटक में आया है जो सन् ईस्वी से ५०० वर्ष पहले का है। ...... सन् ईस्वी के १०० वर्ष पहले एक महायान नाम का संस्कृत ग्रंथ बना है; उसमें खास 'दिगम्बर' शब्द भी आया है।"

सम्राट अशोक के स्तम्भों में भी निर्ग्रन्थों का उल्लेख है। शिलालेख नं० १०—

"श्री महावीर जी और उनके प्राचीन मानने वालों में नग्न भ्रमण की एक बहुत भारी विशेषता थी जिससे शब्द 'दिगम्बर' है। इस क्रिया के (नग्न भ्रमण करने के) विरुद्ध गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को खास तौर से चिताया था। तथा प्रसिद्ध यूनानी शब्द जैनसूफी में इसका (दिगम्बर का) वर्णन है। मेगस्थनीज़ ने (जो राजा चन्द्रगुप्त के समय सन् ईसवी से बहुत पहले भारतवर्ष में आया था) इस शब्द का व्यवहार किया है। यह शब्द (दिगम्बर) बहुत योग्यता के साथ निर्ग्रन्थों को ही प्रगट करता है"।

इत्यादि अनेक प्रख्यात निष्पक्ष ऐतिहासिक विद्वानों की प्रामाणिक सम्मतियों का निचोड़ यही है कि जैन साधुओं का प्राचीन रूप एक मात्र दिगम्बर (नग्न) था। वस्त्रधारक रूप उनमें पीछे से प्रचलित हुआ है।

जिस प्रकार पुरातन ग्रंथों में सर्वत्र जैनसाधु का नग्न वेश में ही अस्तित्व मिलता है उसी प्रकार उपलब्ध प्राचीन अर्हन्त मूर्तियों में भी कोई भी मूर्ति श्वेताम्बर सम्प्रदायानुसार लंगोटधारी आज तक नहीं निकली; सभी नग्न दिगम्बर वेश में प्राप्त हुई हैं. कंकाली टीला मथुरा से जितनी भी प्रतिमाएं श्वेताम्बर मन्दिरसे मिली हैं वे सभी नग्न हैं। यहां तक कि खड़ी हुई नग्न प्रतिमा भी उनमें से एक है। इससे इस बात का पता चलता है कि पहले जिस तरह कन्ह श्रमण के समान अर्द्धफालक रूप में श्वेताम्बर साधु केवल एक खन्डवस्त्र अपने पास रखते थे, किन्तु पीछे शिथिलाचार के बहाव ने उनको अनेक वस्त्र पहना दिये। ठीक इसी तरह श्वेताम्बर समाज में पहले नग्न अर्हन्त प्रतिमा पूज्य होती थी फिर लंगोट का चिन्ह होने लगा, उसके पीछे नेत्रों का जड़ाव, फिर मुकुट आंगी आदि का श्रृंगार

प्रवेश कर गया। यद्यपि श्वेताम्बरीय सिद्धान्तानुसार अर्हन्त भगवान बिलकुल नग्न वीतराग होते हैं किन्तु अब श्वेताम्बर भाई जैसा कुछ रूप बना देते हैं उसको सब कोई जानता है।

यदि कङ्काली टीले वाले श्वेताम्बर मन्दिर निर्माण के समय श्वेताम्बरीय सूत्र ग्रंथों का निर्माण हुआ होता तो उनमें श्वेताम्बर साधुओं को एक खण्डवस्त्र रखने के सिवाय अन्य वस्त्र रखने का विधान कदापि न होता। विक्रम सं० ५१० में श्वेताम्बर साधु जिस अवस्था तक पहुंच चुके थे तदनुसार वस्त्रधारण करने का विधान उनमें रख दिया गया। अस्तु—

वर्षसमाप्ति के साथ इस लेखमाला की भी समाप्ति होती है। आशा है विचारशील महानुभाव इस जैनसंघभेद के विषय में पक्षपात को दूर करके विचार करेंगे।

राष्ट्रकूटों का धर्म

[लेखक—श्रीमान् पं० के० भुजबली जी शास्त्री, आरा]

राष्ट्रकूट राजा अभिमन्यु के प्राचीन ताम्र पत्र पर 'अम्बिका' के वाहनसिंह की मूर्ति अङ्कित है। दन्तिवर्म्मन् (दन्तिदुर्ग द्वितीय) के ताम्रपत्र के मुहर में शिव की मूर्ति अङ्कित है। दन्तिवर्म्मन का समय शक सम्वत् ६७५ (वि० सं० ८१०, ई० सन् ७५३) है। प्रथम कृष्णराज के सिक्कों में उन्हें 'परममहेश्वर' की उपाधि दी हुई है, एवं उनके शक सम्वत् ६९० (वि० सं० ८२५, ई० सन् ७६८) वाले शिलालेख में 'शिवलिंग' की मूर्ति खुदी हुई है। परन्तु बाद के ताम्रपत्रों में कुछ में तो 'गरुड़' की मूर्ति और कुछ में 'शिव' की मूर्ति पाई जाती है।

राष्ट्रकूटों के झन्डे 'पालीध्वज' के नाम से प्रसिद्ध थे। वे सब 'ओककेतु' के भी नाम से पुकारे जाते थे। उन लोगों के राजकीय झंडे में (coat of arms) 'गङ्गा' और 'यमुना' के चिह्न अङ्कित रहते थे जो सम्भवतः बादामी के पश्चिम चालुक्यों की नक़ल थे।

बाद के राष्ट्रकूटों की कुल देवियां 'लातना' (लाताना), 'राष्ट्रश्येना', 'मनसा' या 'विंध्य-वासिनी' के नाम से प्रचलित थीं। कहा जाता है कि एक बार देवी ने एक बाज़ के शरीर को धारण कर राष्ट्रकूटों के राज्य की रक्षा की थी, अतः वह 'राष्ट्र-श्येना' के नाम से पुकारी जाती है। उक्त घटना के स्मरण स्वरूप मारवाड़ दरबार के राजकीय झंडे में आज तक एक बाज़ की मूर्ति चित्रित रहती है।

उपर्युक्त बातों से यह पता चलता है कि राष्ट्रकूटों के राजा समय समय पर शैव, वैष्णव और शाक्त मत अवलम्बन करते आए।

जैनों के 'उत्तरपुराण' में एक स्थान पर आया है—

यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादांभोजरजःपिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्ता स्वममोघवर्ष नृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं,
स श्रीमज्जिनसेन पूज्य भगवत्पादो जगन्मङ्गलम्॥

सारांश यह कि अमोघवर्ष जैन आचार्य जिनसेन के सम्मुख नत मस्तक हो अपने को पवित्र मानते थे। इससे पता चलता है कि अमोघवर्ष जिनसेन के मतानुयायी थे। अमोघवर्ष लिखित 'रत्नमालिका' (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका) में लिखा है—

प्रणिपत्य वर्धमानं प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम्॥
विवेकात्त्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलङ्कृतिः॥

अर्थात्—वर्धमान (महावीर) के सम्मुख झुक कर मैं प्रश्नोत्तर रत्नमालिका लिख रहा हूँ।

अमोघवर्ष ने विवेक के कारण अपने राज्य से विरक्त हो 'रत्नमालिका' नामक ग्रन्थ लिखा है। महावीराचार्य के गणितसार संग्रह में लिखा है—

प्रीणितः प्राणिशस्योघो निरीतिर्निरवग्रहः।
श्रीमताऽमोघ वर्षेण येन स्वेष्टहितैषिणा॥ १॥

× × ×

विध्वस्तैकान्त पक्षस्य स्याद्वादन्याय वादिनः।
देवस्य नृपतुङ्गस्य वर्धतां तस्य शासनम्॥६॥

अर्थात्—अमोघवर्ष के शासन से सभी प्रजा बहुत सुखी रहती थी। खेतों में काफ़ी फ़सल पैदा होती थी। जैनधर्मानुयायी नृपतुङ्ग (अमोघवर्ष) का राज्य सदैव फूलता फलता रहै।

इससे भी यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि अमोघवर्ष जैनधर्म के मानने वाले थे और सम्भवतः इस धर्म को उन्हों ने वृद्धावस्था में ग्रहण किया था।

यह पूर्ण रूपेण विदित है कि राष्ट्रकूट राजाओं के राज्यकाल में पौराणिक धर्म का खूब प्रचार हो गया था और बहुत से शिव एवं विष्णु के मन्दिर बनाए गए थे। दक्षिण के राष्ट्रकूटों के राज्यकाल के पूर्व के प्रायः सभी गुफ़ा मन्दिर आदि बौद्ध, जैन एवं निर्ग्रन्थों ही के लिए बनाए गए थे। परन्तु राष्ट्रकूटों के समय में बनाये गये एलोरा की गुफा का 'कैलाश' भवन सब से पहले 'शिव' के लिए बनाया गया था।

इस वंश के बहुत से कन्नोज के राजा वैष्णव धर्मानुयायी थे और उन लोगों के अब तक के ताम्र पत्रों से यह पता चलता है कि यह वंश प्रायः सभी अन्य शासक वंशों से अधिक उदार रहा है।

[पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ लिखित History of the Rashtra Kutas (राष्ट्रकूटों का इतिहास) नामक पुस्तक के The religion of the Rashtra Kutas (राष्ट्रकूटों का धर्म) का अनुवाद।]

[२३]

निष्कर्ष

पं० दरबारीलाल जी के सर्वज्ञता संबंधी कथन को यदि संक्षेप में कहना चाहें तो यों कहना चाहिये कि आपके विचारानुसार सर्वज्ञता की प्रचलित मान्यता एक विकृत मान्यता है। भगवान महावीर के उपदेश से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं! इसका आधार तो वर्तमान जैन साहित्य है। वर्तमान जैन साहित्य का निर्माण भगवान महावीर के कई सौ वर्ष बाद में हुआ है, अतः यह बलपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसमें जो कुछ भी बातें मिलती हैं वे सब भगवान महावीर के उपदेश स्वरूप ही हैं! भगवान महावीर के निर्वाण को ज्यों २ समय व्यतीत हुआ है त्यों २ उनके उपदेश में विकार आते गये हैं। यदि यह बात मिथ्या होती तो आज एक ही महापुरुष का कथन श्वेताम्बरीय और दिगम्बरीय मान्यता के भेद से भिन्न रूप न मिलता। कुछ भी सही, यह एक ऐसी बात है जिस के संबंध में मतभेद की गुंजायश नहीं। ऐसी परिस्थिति में वर्तमान जैनसाहित्य को भगवान महावीरके वास्तविक उपदेश को ढूँढ निकालने के लिये प्रमाण के रूप में उपस्थित नहीं किया जा सकता। हाँ, इसको साक्षी का रूप दिया जा सकता है। साक्षी के कथन को मानना ही चाहिये, पर एकान्त नहीं। साक्षी के कथन में जिस समय कुछ ऐसी बातें मालूम हो जाती हैं जिनसे उनकी सत्यता शंकित हो जाती है उस समय उसको अमान्य ठहरा दिया जाता है। यह सब बात साक्षी के कथन के परीक्षण के द्वारा होती है। यही बात वर्तमान जैन साहित्य के सम्बन्ध में है। हमको वर्तमान जैन साहित्य का भी परीक्षण करना चाहिये और जो २ बातें अकाट्य प्रतीत हों उन्हीं को भगवान महावीर का उपदेश समझना चाहिये!

विद्वान लेखक ने अपनी उपर्युक्त धारणा के आधार से वर्तमान जैनसाहित्य के सर्वज्ञता संबंधी कथन की परीक्षा की है और परिणाम को इस रूप में पाया है कि भगवान महावीर ने सर्वज्ञता के प्रचलित स्वरूप का प्रतिपादन नहीं किया था। या यों कहिये कि भगवान महावीर का सर्वज्ञता से तात्पर्य सर्वज्ञता की प्रचलित मान्यता से नहीं था। भगवान वीर के विचारानुसार तो सर्वज्ञता एक उपयोग विशेष है जो कि मन की सहायता से होता है और जिसके ज्ञेय जगत के सम्पूर्ण पदार्थ नहीं हैं। यही नहीं यह अन्य ज्ञानों की भाँति कभी २ हुआ करता है और

इसके साथ ही साथ आत्मा में अन्य ज्ञान भी रहते हैं।

आप ने इसके समर्थन में निम्नलिखित बातें उपस्थित की हैं:—

(१) सर्वज्ञता सम्बन्धी प्रचलित मान्यता की समर्थक युक्तियों का युक्तयाभास होना।

(२) केवली के भी दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग का क्रमवर्तित्व।

(३) केवलज्ञान का उपयोगात्मक होना।

(४) केवली के मन का अस्तित्व।

(५) केवलज्ञान के साथ अन्य ज्ञानों का अस्तित्व।

(६) सर्वज्ञ शब्द का अर्थ।

जहां कि दरबारीलाल जी की सर्वज्ञता के सम्बन्ध में उपर्युक्त धारणा है वहां हमारा मन्तव्य इससे भिन्न है। हमारे विचारानुसार सर्वज्ञता उपयोग विशेष होने पर भी वह न समय २ पर होती है और न उसके निमित्त मन की सहायता की ही आवश्यकता है। वह तो सदा प्रकाशमान रहती है और केवल आत्ममात्र सापेक्ष है। सर्वज्ञता के साथ अन्य ज्ञानों का अस्तित्व स्वीकार करना या उसको सर्व पदार्थ विषयक स्वीकार न करना भी अयौक्तिक एवं महावीर परम्परा के प्रतिकूल है।

भगवान महावीरके निर्वाण काल के पश्चात् महावीर के उपदेश में परिवर्तन एवं परिवर्धन अवश्य हुए किन्तु वे जहां हुए वहीं हुए। इसके आधार से यह नहीं कहा जा सकता कि आज जितना भी जैन साहित्य उपलब्ध है वह सब विकृत और अतएव अमान्य है। वर्त्तमान जैन साहित्य में जहां २ विकार आ गया है उसको अवश्य अमान्य कहा जा सकता है, किन्तु जहाँ विकार की गंध भी नहीं है उसको अमान्य कहना बुद्धिमानी नहीं। वर्त्तमान जैन साहित्य में कौन २ विकारी है और कौन २ अविकारी, इस बात का निर्णय परीक्षा के बल पर ही किया जा सकता है। अतः हम परीक्षा के विरोधी नहीं। जहां हम परीक्षा के विरोधी नहीं हैं वहीं हम इस बात को स्वीकार करने को भी तैयार नहीं हैं कि वर्तमान जैन साहित्य को एक दम विकारी स्वीकार कर लिया जाय और उस ही को अविकारी ठहरा जाय जो कि परीक्षा में ठीक उतरे, किन्तु हमारा तात्पर्य यह है कि साहित्य के उस ही अंश को विकारी ठहराया जाय जो कि परीक्षा में त्रुटिपूर्ण निकले।

अब इसके सम्बन्ध में दो बातें शेष हैं—एक परीक्षा का मार्ग और दूसरा उसका ध्येय। किसी भी विषय के सम्बन्ध में यह देखना कि आया यह प्रत्यक्ष और अनुमान के प्रतिकूल है या नहीं किसी भी विषय का परीक्षण है। यदि कोई बात प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध नहीं होती तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसको अमान्य ठहरा दिया जाय। यदि ऐसा होगा तो अनेक सत्य बातों को भी अमान्य ठहराना होगा! किसी भी मनुष्य के मनो विचारों को यदि हम प्रत्यक्ष और अनुमान से प्रमाणित नहीं कर सकते किन्तु फिर भी उनके अस्तित्व को मानते हैं। अमान्य ठहराने के लिए केवल प्रत्यक्ष और अनुमान की प्रतिकूलता ही देखना चाहिये। प्रत्यक्ष और अनुमान की प्रतिकूलता और उनसे किसी भी विषय का प्रभावित न होना इसमें महान अन्तर है।

इसही प्रकार परीक्षा का ध्येय भी किसी भी बात का महावीर परम्परा में स्थान पाने या न पाने के साथ प्रमाणाविरुद्ध होना या न होना ही है। जिस बात को प्रमाणाविरुद्धता के साथ महावीर परम्परा में स्थान है उसही को जैनधर्म का मर्म स्वीकार किया जा सकता है। वे बातें, जिनके प्रतिकूल प्रमाण नहीं मिलते किन्तु महावीर परम्परा में सम्मिलित नहीं हैं, जैनधर्म का मर्म स्वीकार नहीं की जा सकतीं। जहां हमको किसी भी विषय की यथार्थता या अयथार्थता के निर्णय का अधिकार है वहीं हमको किसी भी सिद्धान्त के स्थान पर सिद्धान्त निर्धारण का अधिकार नहीं; इस प्रकार की बातें हमारी मान्यतायें हो सकती हैं न कि महावीर का उपदेश या जैनधर्म का मर्म। सर्वज्ञता के सम्बन्ध में इनही सब बातों को देखना है। दरबारीलाल जी ने जिन बातों को अपनी धारणा के समर्थन में उपस्थित किया है उनमें से एक भी बात ऐसी नहीं है जिसका प्रतिवाद हमने अपनी लेखमाला में न कर दिया हो। विद्वान पाठक दोनों लेखमालाओं को तुलनात्मक ढङ्ग से सरलता के साथ देखसकें अतः यहां हम दोनों लेखमालाओं को मुख्य २ बातों के संबंध में जैनजगत और जैनदर्शन के पत्र लिखे देते हैं:—

१—सर्वज्ञता की प्रचलित मान्यता की समर्थक युक्तियाँ युक्तियाँ हैं या युक्त्याभास—जगत वर्ष ८ अङ्क १२ पेज ३-११, अङ्क १३ पेज ३-८। दर्शन वर्ष १ पेज ९०-९३, १२९-१३२, १६१-१६४, १९३-१९७, २२१-२२४, २४७-२५२, २६८-२७२।

२—केवली के ज्ञान और दर्शन साथ है या नहीं अथवा केवलज्ञान उपयोगात्मक है या नहीं—जगत वर्ष ८ अङ्क ९ पेज ४-११। दर्शन वर्ष १ पेज ३०५-३१०, ३२५-३२८ ग, ३५०-३५६।

३—केवली के मन का सद्भाव या अभाव—जगत वर्ष ८ अङ्क १० पेज ३-१०। दर्शन ३८५-३९१, ४१०-४१४, ४४३-४४६।

४—केवली के अन्य ज्ञानों का अस्तित्व है या नहीं—जगत वर्ष ८ अङ्क ११ पेज ३-१०। दर्शन ३६६-३७१, ४९४-४९८, ५२९-५३२, ५५६-५५९।

इन बातों के अतिरिक्त भी जितनी बातें सर्वज्ञता के प्रचलित स्वरूप के सम्बन्ध में आक्षेप स्वरूप पं० दरबारीलाल जी ने अपनी लेखमाला में लिखी हैं उन सबके निराकरण भी हम अपनी लेख माला में कर चुके हैं।

यहां हम एक बात और भी लिख देना आवश्यक समझते हैं और वह है सर्वज्ञता के इतिहास के सम्बन्ध में! पं० दरबारीलाल जी ने सर्वज्ञता के इतिहास के सम्बन्ध में लिखते हुए बतलाया है कि सर्व प्रथम ईश्वर के कर्तृत्ववाद की सृष्टि हुई। इसके बाद ईश्वर के अस्तित्व को न मानने वालों ने जीव को अवस्था विशेष में सर्वज्ञ स्वीकार किया; यही नहीं, इसके बाद भी अनेक मान्यताओं के निर्माण हुए। इनमें युक्त योगी, युञ्जान योगी आदि की बातें और मीमांसा और सांख्य दर्शन की मान्यताओं को ले सकते हैं। विद्वान लेखक के इस अभिप्राय को यदि संक्षेप में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि आपके विचारानुसार सर्व प्रथम कर्तृत्ववाद, उसके बाद निरीश्वर सर्वज्ञवाद, और इसके पश्चात् मीमांसा और सांख्य दर्शनों का निर्माण हुआ है।

किस दर्शन का किस समय प्रादुर्भाव हुआ

और वह किस २ दर्शन से प्राचीन और किस २ से नवीन है, इस बात का निर्णय दो बातों के आधार से हो सकता है। एक उस २ दर्शन की मान्यता और दूसरी स्वतंत्र ऐतिहासिक सामिग्री। जहां तक कि सम्प्रदाय विशेष के विश्वास की बात है वहीं तक पहिले प्रकार का निर्णय कार्यकारी हो सकता है। ऐसे निर्णय का निष्पक्ष परीक्षक के लिए कोई मूल्य नहीं। हर एक व्यक्ति अपने २ धर्म को अनादि मानता और उस पर विश्वास करता है किन्तु उसको उस मान्यता की उस ही तक सीमा है। निष्पक्ष विचारक तो इसमें रंचमात्र भी तथ्य अनुभव नहीं करता। दूसरी बात यह भी है कि इस प्रकार के आधार से एक साथ अनेक सम्प्रदायों के सम्बन्ध में निर्णय भी नहीं हो सकता; अतः प्रकृत विषय के निर्णय के लिए पहली बात तो उपयोगी प्रमाणित नहीं ठहरती। अब रह जाती है स्वतंत्र ऐतिहासिक सामग्री की बात। इसमें वर्तमान साहित्य और प्राचीन भग्नावशेष और प्राचीन शिलालेखों को ही लिया जा सकता है। आज जितना भी साहित्य उपलब्ध है उसमें वेदों को और उनमें से भी ऋग्वेद को ऐतिहासिक प्राचीन स्वीकार करते हैं। यदि इसही बात को स्वीकार कर लिया जाय तब भी दार्शनिक विचारों के निर्माण के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी की कल्पना सत्य प्रमाणित नहीं होती। ऋग्वेद के निर्माण का काल महाभारत का समय है। ऋग्वेद में स्वयं इस प्रकार के मंत्र मिलते हैं जिनसे इस बात की सत्यता प्रमाणित होती है†। ऋग्वेद के समय ईश्वरको कर्मफल दाता या जगत का निमित्त कारण स्वीकार नहीं किया जाता था। ऋग्वेद में एक भी मंत्र ऐसा नहीं है जिसमें इस प्रकार की मान्यता को उस समय प्रमाणित किया जा सके, प्रत्युत ऐसे मंत्र तो मिलते हैं जिनसे दरबारीलालजी की कल्पना का खण्डन होता है। ऋग्वेदमें अद्वैतवाद का स्पष्ट वर्णन है ‡। ऋग्वेद में इस प्रकार के मंत्रों का भी अभाव नहीं है जिनसे ऋग्वेदकाल में सांख्यदर्शन के तत्वों का सद्भाव प्रमाणित किया जासके। ऋग्वेदकार ने प्रलय का वर्णन करते हुए स्पष्ट स्वीकार किया है कि उसकी मान्यता के समय, प्रलय के समय, सत्, असत्, रज और आकाश आदि नहीं थे *। इससे प्रगट है कि जिस समय ऋग्वेद के इस मंत्र का निर्माण हुआ है उस समय इस प्रकार की तत्व व्यवस्था मौजूद है जिसका प्रलयकाल में उक्त शास्त्रकार ने अभाव स्वीकार किया है। ऋग्वेद के इस मंत्र पर भाष्य करने वाले प्रायः सब ही भाष्यकारों ने इन शब्दों को सांख्यदर्शन के मान्य तत्वों में ही घटित किया है। मीमांसक विचारों का अस्तित्व

† या औषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। —ऋग्वेद मं० १० सू० ९७ म० १।

इस मंत्र मे तीन युग पहिले उत्पन्न हुई औषधियों का वर्णन है। इससे प्रमाणित है कि जिस समय इस मंत्र की रचना हुई थी उस समय तीन युग—सतयुग, द्वापर और त्रेता—बीत चुके थे और चौथे कलयुग युग का प्रारम्भ था। कलयुग के प्रारम्भ का काल आज से पाँच हज़ार वर्ष ही पूर्व का है।

‡ यजुर्वेद अध्याय ३१ मंत्र १—८। ये ही मंत्र ऋग्वेद मे भी मौजूद हैं।

* ऋग्वेद अष्टक ८ अ. ७ वर्ग १७ मंत्र १–६।

तो ऋग्वेद के समय मानना ही पड़ता है। ऋग्वेद का क्रियाकाण्ड प्रायः मीमांसा से ही संबंधित है।

जहाँ कि वैदिककाल में सांख्य और मीमांसा-दर्शन के विचारों का अस्तित्व ऋग्वेद से प्रमाणित होता है वहीं इस समय जैनदर्शन का अस्तित्व भी स्वतंत्र ऐतिहासिक सामग्री के दूसरे अंश से प्रमाणित है।

सिन्ध में जो मोहनजोदारू की खुदाई हुई है जिसको अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं उनमें कुछ ऐसे चिह्न निकले हैं जिनसे उनके समय में जैनधर्म का अस्तित्व प्रमाणित होता है। भगवान ऋषभदेव की खड्गासन मूर्ति और प्लेट नं० ४४९ उन ही में से हैं। प्लेट पर स्पष्ट शब्दों में "नमोजिनेश्वराय" लिखा हुआ है। इसके सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए डा० प्राणनाथ ने निम्नलिखित शब्द लिखे हैं :-- The names and symbols on plates annexed would appear to disclose a connection between the old religious cults of Hindus & Jain with those of the Indus people.........It may also be noted that inscription on the Indus seal No 449 reads according to my decipherment Jineswara or Jinesah.—Indian H. quarterly V. VIII. डा० प्राणनाथ एक आर्य-समाजी विद्वान हैं। आर्य गुरुकुल कांगड़ीके स्नातक हैं और आजकल आप विश्वविद्यालय काशी में प्रोफ़ेसर हैं। ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं जिससे आप की इस मान्यता को स्वीकार करने से इन्कार किया जासके। यही बात भगवान ऋषभदेव की मूर्ति के सम्बन्ध में है। भगवान ऋषभदेव की मूर्ति को ही कुछ विद्वानों ने पशुपति की स्वीकार किया था, किन्तु पिछले दिनों के अनुसन्धान ने अब इस विषय को बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। किसी भी स्थान या किसी भी पुस्तक में आजतक पशुपति की मूर्ति का खड्गासन के रूप में उल्लेख नहीं मिलता। प्रो० रायबहादुर रामप्रसाद चन्दा ने इसही मूर्ति को आदिपुराण के वर्णन से मिलाया है। †

इस प्लेट के लेख या मूर्तिके निर्माण का समय ऋग्वेदकाल से किसी भी तरह पीछे का नहीं है। निष्पक्ष विद्वानों ने भी इन दोनों वस्तुओं को आज से ५-६ हज़ार वर्ष प्राचीन का माना है।

ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य वेदों में भी ईश्वरके निमित्तकारणवाद का उल्लेख नहीं मिलता। इसके बाद में बने हुए ब्राह्मणग्रन्थों और सूत्र साहित्य की भी ऐसी ही परिस्थिति है। ये भी ईश्वर के निमित्त कारणवाद का समर्थन नहीं करते। वेदान्तदर्शन के रचयिता वेदव्यास का समय भी बहुत प्राचीन है। इनही ने वेदमंत्रों का संग्रह करके उनको संहिता का रूप दिया था। सूत्र साहित्य और प्रायः ब्राह्मण साहित्य इनके समय के बाद ही का है। ये अद्वैतवाद के समर्थक तो थे ही, किन्तु इन्हों ने अपने वेदान्तसूत्रों में सांख्य तत्वों और जैन तत्वों का भी खण्डन किया है ‡। अतः इनके समय में भी यह सब ही मान्यतायें स्वीकार करनी पड़ती हैं।

---

† देखो मॉडर्न रिव्यू अगस्त ३२।

‡ नैकस्मिन्न संभवात्। —वेदान्त सूत्र अ० २ पा० २ मंत्र ३३।

ईश्वर के निमित्तकारणवाद की तो बात ही निराली है। यह तो बहुत पीछे की कल्पना मालूम होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका और वैशेषिक दर्शनकार कणाद का एक ही समय प्रतीत होता है। परमाणुवाद की मान्यता वैदिक संप्रदाय या सम्प्रदायों की निजी मान्यता नहीं है। यदि ऐसा होता तो वैशेषिक दर्शन से पहिले ग्रन्थों में इसका वर्णन मिलना चाहिये था। वैशेषिक दर्शनकार कणाद का समय अनुमानतः ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व का है। ऐसी अवस्था में ईश्वर के निमित्त कारणवाद की कल्पना का भी यही समय ठहरता है।

इन सब बातों के आधार से हम इस बात के कहने के अधिकारी हैं कि सर्वज्ञता के इतिहास के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी की कल्पना निराधार है।

अब हम अपनी लेखमाला के सर्वज्ञत्व संबंधी प्रकरण को यहां समाप्त करते हैं।

सर्वज्ञता की प्रचलित मान्यता जैनधर्म का मर्म है या दरबारीलाल जी की धारणा, अब इसके सम्बन्ध में हम एक अक्षर भी लिखना अनुपयोगी समझते हैं। हमारा जो कार्य था वह हमने किया; अब विद्वान पाठकों का कर्तव्य है कि वे इन दोनों लेखमालाओं पर निष्पक्ष रीति से विचार करें और वस्तु स्वरूप की वास्तविकता को पहिचानें।

॥ शुभमस्तु सर्व जगतः ॥

भारत दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ के आश्रित
उपदेशक विद्यालय की योजना

गत मार्च में जयन्ती के उत्सव के समय देहली में भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघकी कार्यकारिणीकी मीटिङ्ग हुई थी। इसमें संघ के उपदेशक विभाग को वृद्धिंगत करने और यदि योग्य उपदेशकों के तैयार करने के लिए आवश्यक प्रतीत हो तो उपदेशक विद्यालय के खोलने के लिए सर्व सम्मति से निर्णय हुआ था। इस कार्य को सुविधा पूर्वक अमल में लाने के लिए कार्यकारिणी ने एक सब-कमेटी भी बना दी थी। संघ की इस सब कमेटी ने उपदेशक विद्यालय के सम्बन्ध में आयोजना तैयार की है, साथ ही साथ इस बात का निर्णय भी किया है कि लोकमत मालूम करने के लिए इसको प्रकाशित किया जाय।

संघ की उक्त सब कमेटी के आदेशानुसार मैं इस योजना को आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ। आशा है आप इस पर विचार कर इसके संबन्ध में अपने अभिमत को प्रकाशित करने या सीधा मुझे भेजने की कृपा करेंगे!

विनीत प्रार्थी—
राजेन्द्रकुमार जैन, प्रधान मंत्री।

योजना

धर्म प्रचार के लिये, प्रत्येक व्यक्ति योग्य उपदेशकों की आवश्यक्ता का अनुभव करता है। कारण, उपदेशकों की योग्यता पर ही प्रचार की सफलता या असफलता निर्भर है। जैन तीर्थङ्कर और उनके अनुयायी जैनाचार्य, यदि सफल उपदेशक न होते तो भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में पाये जाने वाले जैन भग्नावशेषों का आज पता भी न चलता। इस समय भी पृथ्वी पर जो धर्म अधिक फैले हुए हैं, उनमें प्रचार की दृष्टि से ईसाई मिशनरियों का नाम उल्लेखनीय है। वे बाज़ार के चौराहों और स्टेशनों पर निडर होकर जिस ढङ्ग से अपने प्रभु ईसा का शुभ सम्वाद जनता के हृदयों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं, वह ढंग किसी प्रचारक के लिये ईर्षा की वस्तु हो सकता है! उनही का अनुकरण करके आज आर्यसमाज के प्रचारक भारतवर्ष के देहातों में और विदेशों में आर्यसमाज का झंडा फहराने में समर्थ हुआ चाहते हैं! समाजी और ईसाई प्रचारकों को इस सफलता का एक मुख्य कारण है। उनमें कुछ पढ़ लिख जाने मात्र से ही कोई उपदेशक नहीं बन जाता। किन्तु उपदेशक बनाने के लिये खास तौर शिक्षक का प्रबन्ध किया जाता है और उन्हें समाज के उपयोगी बना कर प्रचारकी का बाना पहनाया जाता है।

हमारे प्रचारक

किन्तु जैनसमाज की तो बात ही निराली है, इसमें कोई भी व्यक्ति "गत्यन्तराभावात" आवश्यका वश उपदेशकी का जामा पहन लेता है और आवश्यका पूरी होने पर उसे उतार कर फेंक देता है। प्रत्येक सभा ने—वह सभा प्रान्तिक हो या नागरिक, सार्वजनिक हो या घरेलु—और प्रत्येक संस्थाने—वह संस्था विद्यालय हो या औषधालय—कुछ

दिनों से अपने प्रचारक रखने का नियम सा बना लिया है। प्रत्येक संस्था के एक या अनेक प्रचारक गले में झोली डाले, समाज समुद्र का मंथन करने में लगे हुए हैं। सबका एक ही उद्देश है पैसा पैदा करना; और एक से ही भ्रमण के निश्चित स्थान हैं—कलकत्ता, बम्बई, इन्दौर, अजमेर आदि ! प्रचारकी का मुख्य फल है—पैसा बटोरना और आनुषाङ्गिक फल है, लेक्चर बाज़ी। इसी का यह फल है कि धनी नगरों में उपदेशकों की बाढ़ आजाती है, और बेचारे निर्धन देहात एक बूंद भी उपदेशक जल न मिलने से तड़प २ कर जैनधर्म से सर्वदा के लिये विदा हो जाते हैं। यह दोष प्रचारकों का नहीं है, संस्थाओं का है। बड़ी २ सभाओं ने उपदेशक विभाग को आमदनी का ज़रिया बना रक्खा है। इसके आन्तरिक कारणों पर विचार करना यहाँ अप्रासंगिक होगा, हमें केवल आधुनिक प्रचारकों पर प्रकाश डालना है।

आजकल अधिकतर, जैन विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करके निकलने वाले नवयुवक विद्वान ही प्रचार विभाग में पदार्पण करते हैं। प्रत्येक विद्यालय में एक साप्ताहिक व्याख्यान सभा हुआ करती है; उस व्याख्यान सभा को ही उन नवयुवक प्रचारकों की शिक्षादात्री कहा जा सकता है। कोई २ विद्यार्थी उन सभाओं से लाभ उठाते हैं और व्याख्यान देने की आदत डाल लेते हैं। कुछ बिल्कुल ही सफ़ाचट रहते हैं। शिक्षा समाप्त करने पर, सब अध्यापकी की तलाश में रहते हैं, यदि अध्यापकी मिल गई तो अच्छा ही है, न मिलने पर लाचार होकर किसी सभा या संस्था के प्रचारक बन जाते हैं। प्रचारक बनने में बेकारी तो कारण है ही, इसके अतिरिक्त भी अनेक उद्देशों को लेकर नवयुवक विद्वान् प्रचारकी विभाग में प्रविष्ट होते हैं। प्रथम उद्देश—प्रचारक को अनेक स्थानों में भ्रमण करना होता है, स्थान २ पर पाठशालाएं खुली हुई हैं, यदि किसी स्थान पर पाठशाला के संचालकों से बात चीत तय करली गई, तो वहीं प्रचारकी से स्तीफ़ा देकर अध्यापक बन बैठते हैं। ऐसी घटनाएं प्रति वर्ष होती रहती हैं। दूसरा उद्देश—कुछ निन्दनीय है, किन्तु किसी प्रचारक के हृदय में वह भी छिपा रहता है। अनेक प्रचारक संस्था के चन्दे की ओट में अपने लिये भी धन संग्रह करते रहते हैं। हम ऐसे कई प्रचारकों को जानते हैं जिन्हों ने अपने प्रचारकी काल में खूब धन संग्रह किया और बाद को स्वतंत्र-जीवी बन गये।

ऐसे प्रचारकों से धर्म प्रचार को आशा करना, शरद ऋतु के मेघों से पानी बरसने की आशा करने के समान ही है।

उपदेशक कैसे होने चाहियें !

जब आधुनिक उपदेशकों से धर्म-प्रचार का कार्य होना दुःसाध्य है, तब प्रश्न पैदा होता है कि उपदेशक कैसे होने चाहियें। हमारे विचार से जनता की रुचि और समय की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए उपदेशक दो प्रकार के होने चाहियें—एक भजनोपदेशक, दूसरे तत्त्वोपदेशक।

आजकल लोग उपदेशकों के नामसे भी चिढ़ते हैं अनेक प्रयत्न करने पर भी श्रोताओं की संख्या दश बीस से ऊपर नहीं हो पाती, और गायन में बिना बुलाये ही लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। आर्यसमाज के प्रचारक तथा महोत्सवों की

सफलता का बहुत कुछ श्रेय इन भजनोपदेशकों को ही प्राप्त है, किन्तु हमारी समाज में आज एक भी भजनोपदेशक नहीं है। अनेक स्थानों की जैन समाज वार्षिक जलसों में नगरकीर्त्तन करने के लिये आर्य उपदेशकों को २५ और ५० रुपये रोज़ देकर बुलाती हैं। क्या हमारे लिये यह डूब मरने की बात नहीं है? संघ के कार्यालय में प्रति वर्ष अनेक स्थानों से भजनोपदेशक की मांग आती रहती है, किन्तु संघ उनकी मांगों की पूर्ती नहीं कर सकता। इसलिये जैन समाज में गायन के साथ उपदेश देने वाले प्रचारक जब तक तैयार नहीं किये जायेंगे तब तक हमें अपने प्रचार कार्य में कभी भी सफलता नहीं मिल सकती। भजनोपदेशकों के सरल और सरस उपदेश से साधारण जनता का खूब मनोरंजन होता है, और वह गायन सुनने के लोभ में वक्ता का उपदेश भी बड़ी प्रसन्नता से सुनते हैं, किन्तु सब स्थानों के सब श्रोता एकसा ही नहीं होते, कुछ तत्वचर्चा के प्रेमी होते हैं, कुछ वैज्ञानिक ढंग से धर्म सिद्धान्तों को जानना चाहते हैं, और कुछ नुक्ता चीनी कर के ही वक्ता को परेशान करने की धुन में रहते हैं। इस लिये ऐसे श्रोताओं में जैनधर्म का वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन करने के लिये कुछ विद्वान बहुदर्शी विद्याव्यसनी तत्वोपदेशकों की आवश्यकता है, जो नवीन ढंग से प्रत्येक श्रोता का समाधान कर सके।

जैन समाज में, उक्त दोनों तरह के उपदेशकों का सर्वथा अभाव है, और अपने जन्म काल से संघ इस अभाव का अनुभव कर रहा है, कई वर्ष के अनुभव तथा ऊहापोह के बाद हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि जैन समाज में अनेक शिक्षण संस्थायें हैं, किन्तु उपदेशक विद्यालय एक भी नहीं है। अतः जबतक एक स्वतंत्र उपदेशक विद्यालय की स्थापना नहीं होगी, तब तक इस कमी की पूर्ति नहीं हो सकती। उक्त बात को दृष्टि में रख कर—उपदेशक विद्यालय के सम्बन्ध में एक छोटी सी योजना तैयार की गई है, जिसकी कुछ बातें निम्नप्रकार से हैं:—

उद्देश

समाज के उपयोगी उपदेशक तैयार करना इस विद्यालय का उद्देश होगा। वे उपदेशक दो प्रकार के होंगे—भजनोपदेशक और तत्वोपदेशक।

छात्रों का प्रवेश

वर्ष के प्रारम्भ में, इस विद्यालय में प्रविष्ट होने के इच्छुक छात्रों का चुनाव एक समिति के द्वारा होगा। प्रवेशेच्छुक छात्र को अपने प्रमाण-पत्रों के साथ समिति के सामने उपस्थित होना आवश्यक होगा, उपदेशकी विभाग के योग्य प्रमाणित होने पर छात्रों को प्रवेश की अनुमति दी जा सकेगी।

प्रवेशेच्छुक छात्रों की योग्यता

भजनोपदेशकी विभाग में प्रविष्ट होने के इच्छुक छात्रों को किसी जैन परीक्षालयों की कम से कम पूर्ण विशारद परीक्षा अवश्य पास करना होगा, तथा स्वर का मधुर और आकर्षक होना आवश्यक है।

तत्वोपदेशकी विभाग में प्रविष्ट होने के इच्छुक छात्र कम से कम पूर्ण शास्त्री परीक्षा पास अवश्य

होवें, जैन दर्शन का पूर्ण ज्ञान होने के साथ इतर दर्शनों का ज्ञान रखने वाले अंग्रेज़ी के जानकार छात्रों को प्रथम स्थान दिया जायगा। वाणी का ओजस्वी तथा आकर्षक होना आवश्यक है।

छात्रों के सम्बन्ध की कुछ अन्य बातें

१. जैनधर्म का प्रचार और जैनसमाज की सेवा करने के इच्छुक छात्र ही इस विभाग में पदार्पण करने का कष्ट करें। वृत्ति के लोभ से या अध्यापकी न मिलने से इस तरफ़ चले आना अपने जीवन और समाज के धन का दुरुपयोग करना है।

२. दोनों विभागों के प्रवेशेच्छुक छात्रों को अपने अध्ययनकाल में शास्त्र सभा तथा व्याख्यान सभा का अभ्यास करना चाहिये और लौकिक ज्ञान बढ़ाने के लिए समाचारपत्र तथा उच्च कोटि के हिन्दी साहित्य का अध्ययन बराबर करते रहना चाहिये।

शिक्षण काल

उपदेशक विद्यालय का शिक्षण काल दो वर्ष होगा।

शिक्षण का क्रम

भजनोपदेशक

१. जैन दर्शन का विशेष ज्ञान तथा इतर दर्शनों का साधारण परिचय।

२. संगीत के साथ उपदेश देना

३. विविध विषय

तत्वोपदेशक

१ जैन शास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन

२. जैनेतर दर्शन—विशेषतया वैदिक साहित्य का शिक्षण

३. शास्त्रार्थ करना तथा उपदेश देना

४. विविध विषय

छात्र वृत्ति

भजनोपदेशकी कक्षा के छात्रों को भोजन के अलावा प्रति मास १०) तक वृत्ति (स्कालर्शिप) दी जायगी और तत्वोपदेशकी कक्षा के छात्रों को भोजन से अलावा प्रति मास १५) रुपये तक छात्र वृत्ति दी जायगी और उपदेशक बनने पर उन्हें सुयोग्य स्थान दिलाने की गारंटी रहेगी।

फ़ण्ड

पचीस हज़ार रुपये की सहायता के वचन मिलने पर विद्यालय का कार्य प्रारम्भ कर दिया जायगा।

दाता

यदि कोई दानी महानुभाव इकमुश्त २५०००) रु० देंगे तो विद्यालय के साथ उनका नाम जोड़ दिया जायगा।

इकमुश्त ५०००) देने वाले महानुभाव विद्यालय के संरक्षक समझे जायंगे। स्थायी रूप से एक छात्र का व्यय प्रदान करने वाले दाता परम सहायक कहलायेंगे और १०००) इकमुश्त देने वाले दानी सहायक समझे जायेंगे। इन दाताओं की स्मृति को सुरक्षित रखने का उचित प्रयत्न किया जायेगा।

उच्छिष्ट भोजन

[लेखकः—श्री० विष्णुकान्त जैन, मुरादाबाद]

दो तीन या कई मनुष्यों को मिलकर एक साथ, एक थाली में, भोजन करना या दूसरों का झूंठा भोजन करना स्वास्थ्य के लिये बड़ा ही हानिकारक है। हमारी प्राचीन आहार विधि में इन बातों पर खूब ध्यान रखा गया है, इसीलिये हमारे पूर्वाचार्यों ने भाई भाई और पिता पुत्र तक को साथ अथवा एक दूसरे का झूंठा खानपान करने का सख्त निषेध कर दिया है। पर आजकल अनेक सुधारक हमारे पूर्वजों के इस महान उपकार को अपकार का जामा पहनाते हुए फ़र्माते हैं कि इस समय जो कुछ फूट, वैर और छुआछूत जनक अप्रेम दिखलाई दे रहा है, वह सब पूर्वजों के बोये हुए ऐसे ही विष-वृक्ष का फल है। इन लोगों की समझ में प्रेम की एक मात्र कसौटी एक साथ या झूंठा भोजन करना ही है। बिना साथ खाये परस्पर प्रेम हो ही नहीं सकता। कई मनुष्यों के साथ भोजन करने से या झूठा भोजन करने से हमारे स्वास्थ्य को क्या २ हानियाँ होती हैं, इसके सम्बन्ध में न्यूयार्क से प्रकाशित होने वाला "प्रजा आरोग्य संरक्षक" पत्र अपने एक लेख में लिखता है—

"मुख रोगजनक जन्तुओं के पेट में जाने का सदर दरवाज़ा है; अतः बहुत से मनुष्यों का एक साथ खाना, पीना नाना प्रकार के विषैले और संक्रामक जन्तुओं को प्रविष्ट करने का मुख्य साधन है।"

आजकल के अनुकरण प्रिय भारतवासी किसी की नहीं सुनते, वे एक साथ एक प्याले में खाना ही संगठन और परस्पर प्रेम का सबसे बड़ा उपाय समझते हैं, इसीलिये वे जिस तिस के साथ खाने का प्रचार कर रहे हैं।

बड़े बड़े शहरों में स्थान २ पर खुले हुए होटलों में एक ही बाटली में नाममात्र के साफ़ किये गये प्यालों में पचासों मनुष्य, हिन्दू और मुसलमान, रोगी और निरोगी, अच्छे और बुरे सभी लोग चाय और सोडे आदि का पान करते हैं। इस समय जो रोगों का इतना ढेर दिखलाई दे रहा है, वह सब इस प्रकार के खान-पान का ही कुफल है। आजकल हमारे खान पान का ढङ्ग बड़ा ही दूषित हो गया है, जिसके कारण हज़ारों निरोगी रोगी हो जाते हैं. और बिना मौत मर जाते हैं। होटलों के जिस पात्र में भोजन की झूँठी थालियां धोई जाती हैं, वह जल अत्यन्त विषाक्त और अनेक विषैले जन्तुओं से परिपूर्ण होता है।

बहुतेरे रोग ऐसे देखे जाते हैं कि जो सूक्ष्म जन्तुओं के उदर में पहुँचने से उत्पन्न होते हैं, और बहुत से रोग केवल संसर्ग ही से उत्पन्न हो जाते हैं। अनुभव के द्वारा जाना गया है कि इस खान-

पुस्तक-समालोचना !

माता (चेचक)—लेखक पं० इन्द्रमणि जैन वैद्य शास्त्री, इन्द्र औषधालय अलीगढ़। पृष्ठ सं० १६ मूल्य एक आना।

इसमें माता (चेचक) सम्बन्धी सम्पूर्ण विवरण है। रोग की शान्ति के लिये बहुत से नुसखे भी लिखे हुए हैं। प्रत्येक माता पिता को अवश्य पढ़ना चाहिये।

पल्लीवाल जैन—(मासिक पत्र) संपादक श्री [illegible] प्रसाद जैन बी० ए० एल० एल० बी० और श्री [illegible] जैन 'प्रेमी' काव्यकोविद। वार्षिक मूल्य २) 'जैनदर्शन' का आकार। पृष्ठ संख्या २४। छपाई, सफाई सुन्दर।

यह पल्लीवाल महासभा का मुखपत्र है। बीच में बंद हो गया था, अब नये रूप में पुनः प्रकाशित हुआ है। जैन पत्र की वृद्धि में [illegible] हम सहयोगी के जीवन की कामना करते हैं। पल्लीवाल भाइयों को [illegible] अपने जातीय पत्र को अपनाना चाहिये।

रिपोर्ट—सुमेरचन्द दि० जैन होस्टल, प्रयाग—जनवरी १९२९ ई० से अक्टूबर १९३३ तक। प्रकाशक—बा० भगवान दास जी बी० ए० मन्त्री।

बम्बई के स्व० सेठ माणिकचंद जी जे० पी० की प्रेरणा तथा प्रयाग के स्व० बा० सुमेरचंद जी धर्मपत्नी की उदारता से इस होस्टल की स्थापना हुई थी। सन् २४ में संस्थापिका जी की ओर से एक बड़ा हाल और एक चैत्यालय का निर्माण किया गया। सन् ३० में इस होस्टलमें नवीन कमरे बनाने के लिये एक डेपुटेशन भी घुमाया गया था जिसे अच्छी सफलता मिली। अनेक दाताओं ने नवीन कमरे बनवाने की स्वीकारता दी, जिनकी तालिका रिपोर्ट में अंकित है। अभी तक होस्टल के अधिकारियों का ध्यान मकान की ओर हो रहा है। इसलिये धार्मिक शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं हो सका है। इस वर्ष से शायद प्रबंध हो जावे। रिपोर्ट में हमें एक बहुत बड़ी त्रुटि यह जान पड़ी है कि चार वर्ष के विवरण में होस्टल में उपस्थित छात्रों की नामावली तो दूर, उनकी संख्या तक भी नहीं दी गई और न यही बतलाया गया है कि यह होस्टल जैन छात्रों को क्या क्या सुविधायें देता है? हम मंत्री महोदय का ध्यान इधर आकर्षित करते हैं और आशा करते हैं कि अग्रिम वर्ष की रिपोर्ट में जैनजनता के सामने [illegible] होस्टल की इमारत और जमीन के [illegible] जायेंगे, किन्तु धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध करके निर्जीव होस्टल में प्राण प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया जायगा। जैन दानवीरों को इधर ध्यान देना चाहिये।

योग्य वर चाहिये

एक सोलह वर्षीय जैन [illegible] की सुन्दर, सुशील और पढ़ी लिखी कन्या के लिये योग्य वर की जरूरत है। जानकार भाई निम्न पते पर सूचना करने की कृपा करें :—

"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस, बिजनौर (यू० पी०)